कौटलीय अर्थशास्त्र

हिन्दी अनुवाद सहित

अनुवादक—

विद्याभास्कर वेदरत्न प्रो० उदयवीर शास्त्री,

न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग तीर्थ

वेदान्तविशारद।

प्रकाशक :—

मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, अध्यक्ष

संस्कृत पुस्तकालय,

सैदामिट्ठा बाज़ार

लाहौर ॥

साधारण आवृत्ति ७) रु० } अगस्त १९२५ { लायब्रेरी एडीशन १०)

अमृत प्रैस, अमृतधारा भवन, लाहौर में लाला दुर्गादास
प्रिन्टर के अधिकार से मुद्रित हुआ ॥

उपोद्घात

कौटलीय अर्थशास्त्र, संस्कृत साहित्यमें, अपने विषयका उच्चकोटिका ग्रन्थ है। सबसे प्रथम इस ग्रन्थको सन् १९०९ ई० में, मैसूर राज्यकी ग्रन्थशालाके अध्यक्ष श्रीयुत शामशास्त्रीने प्रकाशित कराया। तथा अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगोंके सुभीतेके लिये उन्होंने इस ग्रन्थका इंग्लिश भाषामें अनुवाद भी करादिया। उसी समयसे इस दुरूह ग्रन्थको समझनेके लिये विद्वज्जन पर्याप्त परिश्रम कररहे हैं।

शामशास्त्रीने पहिले पहिल इस ग्रन्थका इंग्लिश अनुवाद किया; इसलिये उनका प्रयत्न प्रशंसनीय है, परन्तु यह कहे बिना नहीं रहा जासकता, कि उस अनुवादमें अनेक स्थलोंपर स्खलन हैं। जिनका यहां उल्लेख करना अनावश्यक है*। इस कार्यके अनन्तर इस विषयपर अनेक साप्ताहिक मासिक पत्र पत्रिकाओंमें लम्बे चौड़े विचारपूर्ण लेख समय २ पर प्रकाशित होतेरहे, परन्तु पुस्तकके रूपमें कोई महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित नहीं हुआ।

अबसे पांच बरस पहिले मैं यह विचार कररहा था, कि इस ग्रन्थका अनुवाद करूं, जिससे सर्वसाधारणके सन्मुख यह विषय उपस्थित किया जासके, तथा इसपर और भी अच्छा विचार होसके। कुछ ही समयके अनन्तर मैंने सुना कि प्राणनाथ विद्यालङ्कार इस ग्रन्थका अनुवाद कररहे हैं, मैं चुप होगया। और सन् १९२३ ई० में वह अनुवाद प्रकाशित होगया। उस अनुवादके देखनेपर, मैं इसका अच्छीतरह निर्णय करसका, कि मुझे भी अपने विचार कार्यरूपमें परिणत करदेने चाहियें।

---

* अनुवादके समय, किसी २ स्थलपर, हमने शास्त्रीजीके भ्रमका दिग्दर्शन कराया है। पाठक वहींपर देखेंगे।

यद्यपि प्राणनाथ विद्यालङ्कारने अपने निवेदनमें इस बातको बड़े जोरोंपर लिखा है, कि 'डाक्टर शामशास्त्रीके आंग्लभाषाके भाषान्तरको संमुख रखकर यह अनुवाद नहीं कियागया'। परन्तु दोनोंका मुकाबला करनेपर हमको यह दावा, कुछ गलत साबित हुआ है। यद्यपि विद्यालङ्कारजीने कहीं २ अपने अनुवादकी टिप्पणियोंमें शामशास्त्रीके अनुवादको अशुद्ध करनेका यत्न किया है, परन्तु वहांपर मूलके अर्थको न समझकर आप स्वयं ही मुंहकी खा गये हैं। इसके अतिरिक्त स्वयं अनुवाद करते हुए आपने पद पदपर स्खलन किया है। यदि आपके सम्पूर्ण अनुवादको सामने रखकर कहाजाय, तो बलात्कार मुंहसे ये शब्द निकल पड़ते हैं, कि यह अनुवाद अपूर्ण तथा मूलके विपरीत और विशृङ्खलित भावोंसे भरा हुआ है। हमारा विचार था, कि इसतरहके कुछ स्थलोंको यहां उद्धृत करदिया जाय, परन्तु स्थानाभाव और कुछ अप्रासंगिक होनेके कारण हमको अपना यह विचार शान्त करना पड़ा। परन्तु यह निश्चय है, कि आसन्नभविष्यमें, इस ग्रन्थकी विस्तृत समालोचनाके अवसरपर, वे सब ही बातें, पाठकोंके सन्मुख उपस्थित कीजासकेंगी।

अस्तु, जब हमारा यह विचार होरहा था, उसी समय हमको कौटलीय अर्थशास्त्रकी एक प्राचीन टीका 'नयचन्द्रिका' उपलब्ध हुई। इस टीकाको हमने ही सम्पादन किया, और सन् १९२४ में लाहौरसे ही यह टीका प्रकाशित होगई। यद्यपि यह टीका सम्पूर्ण अर्थशास्त्रपर प्राप्त नहीं हुई, पर जितनी भी प्राप्त हुई उतनी महत्त्वपूर्ण है: उसके पढ़ने और सम्पादन करनेसे, इस ग्रन्थकी बहुतसी उलझी हुई ग्रन्थियां सुलझ गईं, और हमें पूर्ण विश्वास हुआ, कि अब इस मूलग्रन्थ का अनुवाद सरलता से हो सकेगा।

इसी समयमें 'अनन्तशयन संस्कृत ग्रन्थावलि' में कौटलीय अर्थशास्त्र की, संस्कृत भाषामें एक विशद व्याख्या प्रकाशित हुई। यह व्याख्या महामहोपाध्याय गणपति शास्त्रीने प्राचीन टीकाओंके आधार पर लिखी है। आपने अपने इसी ग्रन्थ की भूमिकामें लिखा

है, कि उन्होंने कुछ भागपर नयचन्द्रिका, और कुछ भागपर भट्टस्वामीकी व्याख्याका अवलम्ब लेकर, तथा उनकी अपनी मातृभाषाके एक प्राचीन सम्पूर्ण अर्थशास्त्रके व्याख्यानका अवलम्ब लेकर, इस 'मूला' नामकी विशद व्याख्याको लिखा है।

इस सम्पूर्ण प्राचीन सामग्रीके आधारपर हमने इस अनुवादको पूरा करनेका विचार किया। इसी समय लाहौरके प्रसिद्ध संस्कृत पुस्तक विक्रेता–मेहरचन्द्र लक्ष्मणदासने, हमको यह कार्य बहुत जल्दी करदेनेके लिये प्रेरित किया। उसका फलस्वरूप यह अनुवाद पाठकोंकी भेंट है। इसकी उपयोगिता स्वयं पढ़कर ही पाठक जान सकेंगे।

हमारा विचार था, कि इस ग्रन्थके साथ एक विस्तृत उपोद्घात लिखाजाय; परन्तु कौटलीय अर्थशास्त्रके सम्बन्धमें अपने उन सब विचारोंको प्रकट करनेके लिये हमें ये उपोद्घातके पन्ने कुछ थोड़े प्रतीत हुए। अब विचार होगया है, कि मूल अर्थशास्त्र पर एक विस्तृत स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखाजाय। उसीमें ग्रन्थकर्त्ता के समय, स्थान, ग्रन्थकी विशेषताएं तथा अन्य आलोचना, प्रत्यालोचना आदिका समावेश होगा।

फिर भी इस ग्रन्थके सम्बन्धमें इतना जानलेना आवश्यक है, कि यह मूलग्रन्थ विष्णुगुप्त कौटल्य (चाणक्य) का लिखा हुआ है। चाणक्य, सम्राट् चन्द्रगुप्तका प्रधान अमात्य था। इसने मगधके राजा महानन्द पद्मको, अपना तिरस्कार करनेके कारण मारकर चन्द्रगुप्त मौर्यको राज्यसिंहासनपर बिठाया था। यदि अंग्रेजी गज़से नापा जाय, तो मौर्य चन्द्रगुप्तका समय ईसवी सन्‌से पहिले तीसरी सदी है। वही समय चाणक्यका भी समझना चाहिये।

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि यह कौटलीय अर्थशास्त्र कठिन ग्रन्थ है। इसमें अनेक अप्रसिद्ध पारिभाषिक शब्द हैं। विषय-गाम्भीर्य कूट २ कर भरा हुआ है। इस ग्रन्थमें ऐसे भी अनेक विषय हैं, जिनका विचार, वर्त्तमान पराधीन बूढ़े भारतके बालकोंके हृदयमें, स्वप्नमें भी स्थान नहीं पासकता; तथा जो वर्त्तमान परिस्थिति

के अनुसार हमसे सर्वथा परोक्ष होचुके हैं। यह सब कुछ होनेपर भी मैं अपनी उस पूजनीया मातृसंस्था (महाविद्यालय ज्वालापुर) का अत्यन्त कृतज्ञ हूं, जिसके स्वतन्त्र वातावरणमें रहकर, तथा दश वर्ष तक उसकी प्रेममयी गोदमें शिक्षा प्राप्तकर, इस दुरूह कार्यके करनेमें भी सरलतासे समर्थ होसका।

अन्तमें मैं अपने परम मित्र साहित्यभास्कर पं० रामस्वरूप शास्त्री काव्यतीर्थ (हरदुआगंज निवासी), पं० बलदेव शास्त्री बी० ए० (लाहौर निवासी), तथा श्रीयुत प्यारेलाल दुग्गल बी० ए० (कपूरथला निवासी) का अत्यन्त कृतज्ञ हूं; और इनका हार्दिक धन्यवाद करता हूं; इन्होंने अनेक स्थलोंपर ग्रन्थके समझनेमें, मुझे बहुत सहायता दी है।

लाहौर
श्रावण शुक्ला सप्तमी
मंगलवार
सं० १९८२ विक्रमी

विनीत—
उदयवीर

कौटलीय अर्थशास्त्र

प्रथम भाग ।

विषयानुक्रमणिका ।

विषय	पृष्ठ संख्या

विषय पृष्ठ संख्या

कौटलीय अर्थशास्त्र

विनयाधिकारिक-प्रथम अधिकरण

पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्तावितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम् ॥ १ ॥ तस्यायं प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः ॥ २ ॥

पृथिवीके प्राप्त करने और प्राप्तकी रक्षा करनेके लिये जितने अर्थशास्त्र प्राचीन आचार्योंने लिखे, प्रायः उन सबको ही संगृहीत करके यह एक अर्थशास्त्र बनाया गया है ॥१॥ सबसे प्रथम यह उसके प्रकरण और अधिकरणोंका निरूपण किया जाता है ॥ २ ॥

विद्यासमुद्देशः ॥ ३ ॥ वृद्धसंयोगः ॥ ४ ॥ इन्द्रियजयः ॥ ५ ॥ अमात्योत्पत्तिः ॥ ६ ॥ मन्त्रिपुरोहितोत्पत्तिः ॥ ७ ॥ उपधाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानाम् ॥ ८ ॥ गूढपुरुषोत्पत्तिः ॥ ९ ॥ गूढपुरुषप्रणिधिः ॥ १० ॥ स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणम् ॥ ११ ॥ परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः ॥ १२ ॥ मन्त्राधिकारः ॥ १३ ॥ दूतप्रणिधिः ॥ १४ ॥ राजपुत्ररक्षणम् ॥१५॥ अवरुद्धवृत्तम् ॥ १६ ॥ अवरुद्धे च वृत्तिः ॥१७॥ राजप्रणिधिः ॥ १८ ॥ निशान्तप्रणिधिः ॥ १९ ॥ आत्मरक्षितकम् ॥ २० ॥ इति विनयाधिकारिकं प्रथममधिकरणम् ॥ २१ ॥

१–विद्यासमुद्देश २–वृद्धसंयोग ३–इन्द्रियजय ४–अमात्योंकी नियुक्ति ६–मन्त्री और पुरोहितोंकी नियुक्ति ६–गुप्तरीतिसे अमात्योंके सरल तथा कुटिल-

भावकी परीक्षा ७–गूढ़ पुरुषोंकी स्थापना ८–गुप्तचरोंकी कार्योंपर नियुक्ति ९–अपने देशमें कृत्य और अकृत्य पक्षकी रक्षा १०–शत्रु देशके कृत्य और अकृत्य पक्षको वशमें करना ११–मन्त्राधिकार १२–दूतप्रणिधि १३–राजपुत्रकी रक्षा १४–अवरुद्ध राजकुमारका व्यवहार १५–अवरुद्ध राजकुमारके विषयमें राजाका व्यवहार १६–राजप्रणिधि १७–राज भवनकी स्थापनाका विचार १८–अपनी रक्षा १९–ये अठारह प्रकरण विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें हैं ॥३–२१ ॥

जनपदविनिवेशः ॥ २२ ॥ भूमिच्छिद्राविधानम् ॥ २३ ॥ दुर्गविधानम् ॥ २४ ॥ दुर्गविनिवेशः ॥ २५ ॥ संनिधातृनिचयकर्म ॥ २६ ॥ समाहर्तृसमुदयप्रस्थापनम् ॥ २७ ॥ अक्षपटले गाणनिक्याधिकारः ॥ २८ ॥ समुदयस्य युक्तापहृतस्य प्रत्यानयनम् ॥ २९ ॥ उपयुक्तपरीक्षा ॥ ३० ॥ शासनाधिकारः ॥३१॥ कोशप्रवेश्यरत्नपरीक्षा ॥ ३२ ॥आकरकर्मान्तप्रवर्तनम् ॥ ३३ ॥ अक्षशालायां सुवर्णाध्यक्षः ॥३४॥ विशिखायां सौवर्णिकप्रचारः ॥ ३५ ॥ कोष्ठागाराध्यक्षः ॥ ३६ ॥ पण्याध्यक्षः ॥ ३७ ॥ कुप्याध्यक्षः ॥ ३८ ॥ आयुधागाराध्यक्षः ॥ ३९ ॥ तुलामानपौतवम् ॥ ४० ॥ देशकालमानम् ॥४१॥ शुल्काध्यक्षः ॥४२॥ सूत्राध्यक्षः ॥ ४३ ॥ सीताध्यक्षः ॥ ४४ ॥ सुराध्यक्षः ॥४५॥ सूनाध्यक्षः ॥ ४६ ॥ गणिकाध्यक्षः ॥४७॥ नावध्यक्षः ॥४८॥ गोऽध्यक्षः ॥ ४९ ॥ अश्वाध्यक्षः ॥ ५० ॥ हस्त्यध्यक्षः ॥५१॥ रथाध्यक्षः ॥ ५२ ॥ पत्त्यध्यक्षः ॥५३॥ सेनापतिप्रचारः ॥५४॥ मुद्राध्यक्षः ॥ ५५ ॥ विवीताध्यक्षः ॥ ५६ ॥ समाहर्तृप्रचारः ॥ ५७ ॥ गृहपतिवैदेहकतापसव्यञ्जनाः प्रणिधयः ॥ ५८ ॥ नागरिकप्रणिधिः ॥५९॥ इत्यध्यक्षप्रचारो द्वितीयमधिकरणम् ॥६०

१–जनपदनिवेश २–भूमिच्छिद्रविधान ३–दुर्गविधान ४–दुर्गविनिवेश ५–संनिधाताका निचयकर्म ६–समाहर्त्ताके द्वारा राज्यकरका एकत्रित करना ७–अक्षपटलमें गाणनिक्यका अधिकार ८–अपहृत राज्य धनका पुनः प्राप्त करना ९–उपयुक्त परीक्षा १०–शासनाधिकार ११–कोशमें रखने योग्य रत्नोंकी परीक्षा १२–खानके कार्योंका संचालन १३–अक्षशालामें स्वर्णाध्यक्षका कार्य १४–विशिखामें सौवर्णिकका व्यापार १५–कोष्ठागाराध्यक्ष १६–पण्याध्यक्ष

१७-कुप्याध्यक्ष १८- आयुधागाराध्यक्ष १९-तोल मापका संशोधन २०-देश तथा कालका मान १२-शुल्काध्यक्ष २२-सूत्राध्यक्ष २३-सीताध्यक्ष २४-सुराध्यक्ष २५-सूनाध्यक्ष २६-गणिकाध्यक्ष २७-नावध्यक्ष २८-गोध्यक्ष २९-अश्वाध्यक्ष ३०-हस्त्यध्यक्ष ३१-रथाध्यक्ष ३२-पत्त्यध्यक्ष ३३-सेनापतिका कार्य ३४-मुद्राध्यक्ष ३५-विवीताध्यक्ष ३६-समाहर्त्ताका कार्य ३७-गृहपति, वैदेहक तथा तापसके वेशमें गुप्तचर ३८-नागरिकका कार्य ये सब अड़तीस प्रकरण अध्यक्ष प्रचार द्वितीय अधिकरण में हैं ॥२२-६०॥

व्यवहारस्थापना विवादपदनिबन्धः ॥६१॥ विवाहसंयुक्तम् ॥ ६२ ॥ दायविभागः ॥ ६३ ॥ वास्तुकम् ॥६४॥ समयस्यानपाकर्म ॥ ६५ ॥ ऋणादानम् ॥ ६६ ॥औपनिधिकम् ॥६७॥ दासकर्मकरकल्पः ॥ ६८ ॥ संभूयसमुत्थानम् ॥ ६९ ॥ विक्रीतक्रीतानुशयः ॥ ७० ॥ दत्तस्यानपाकर्म ॥७१॥ अस्वामिविक्रयः ॥ ७२ ॥ स्वस्वामिसंबन्धः ॥ ७३ ॥ साहसम् ॥ ७४ ॥ वाक्पारुष्यम् ॥ ७५ ॥ दण्डपारुष्यम् ॥ ७६ ॥ द्यूतसमाह्वयम् ॥ ७७ ॥ प्रकीर्णकानि ॥ ७८ ॥ इति धर्मस्थीयं तृतीयमधिकरणम् ॥७९॥

१-व्यवहारकी स्थापना २-विवाद पदोंका विचार ३-विवाह सम्बन्धी विचार ४-दायविभाग ५-वास्तुक ६-समय (प्रतिज्ञा) का न छोड़ना ७-ऋण लेना ८-औपनिधिक ९-दास तथा अन्य सेवकोंका विधान १०-सम्भूय समुत्थान ११-क्रय विक्रय विषयक अनुशय १२-धन देनेका वचन देकर फिर न देना १३-अस्वामिविक्रिय १४-स्वस्वामिसम्बन्ध १५-साहस १६-वाक्पारुष्य १७-दण्डपारुष्य १८-द्यूत समाह्वय १९-प्रकीर्णक ये उन्नीस प्रकरण धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें हैं ॥ ६१—७९ ॥

कारुकरक्षणम् ॥ ८० ॥ वैदेहकरक्षणम् ॥ ८१ ॥ उपनिपातप्रतीकारः ॥ ८२ ॥ गूढाजीविनां रक्षा ॥८३॥ सिद्धव्यञ्जनैर्माणवप्रकाशनम् ॥ ८४ ॥ शङ्कारूपकर्माभिग्रहः ॥ ८५ ॥ आशुमृतकपरीक्षा ॥ ८६ ॥ वाक्यकर्मानुयोगः ॥ ८७ ॥ सर्वाधिकरणरक्षणम् ॥ ८८ ॥ एकाङ्गवधनिष्क्रयः ॥ ८९ ॥ शुद्धश्चित्रश्च दण्डकल्पः ॥ ९० ॥ कन्याप्रकर्म ॥ ९१ ॥ अतिचारदण्डः ॥ ९२ ॥इति कण्टकशोधनं चतुर्थमधिकरणम् ॥ ९३ ॥

१–शिल्पियोंसे देशकी रक्षा २–व्यापारियोंसे देशकी रक्षा ३–दैवी आपत्तियोंका प्रतीकार ४–गूढ़ाजीवियोंसे प्रजाकी रक्षा ५–सिद्धवेष पुरुषोंके द्वारा प्रलोभन विद्याओंका प्रकाशन ६–सन्देह, वस्तु तथा कार्यके द्वारा चोर आदिको पकड़ना ७–आशुमृतक परीक्षा ८–वाक्य कर्मानुयोग ९–सब राजकीय विभागोंकी रक्षा १०–एक अंगके छेदनका निष्क्रय ११–शुद्ध और चित्र दण्ड विधान १२–कन्या प्रकर्म १३–अतिचार दण्ड। ये १३ प्रकरण कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरणमें हैं ॥ ८०—९३॥

दाण्डकर्मिकम् ॥ ९४ ॥ कोशाभिसंहरणम् ॥९५॥ भृत्याभरणीयम् ॥ ९६ ॥ अनुजीविवृत्तम् ॥ ९७ ॥ सामयाचारिकम् ॥ ९८ ॥ राज्यप्रतिसंधानमेकैश्वर्यम् ॥ ९९ ॥ इति योगवृत्तं पञ्चममधिकरणम् ॥ १०० ॥

१–दाण्डकर्मिक २–कोशका संग्रह ३ भृत्यभरणीय ४–राज्यकर्मचारियोंका वर्त्ताव ५–सामयाचारिक ६–राज्यप्रतिसन्धान ७–एकैश्वर्य। ये सात प्रकरण योगवृत्त नामक पंचम अधिकरणमें हैं ॥ ९४—१०० ॥

प्रकृतिसंपदः ॥ १०१ ॥ शमव्यायामिकम् ॥ १०२ ॥ इति मण्डलयोनिः षष्ठमधिकरणम् ॥ १०३ ॥

१–अमात्य आदि प्रकृतियोंके गुण २–शम और व्यायाम (उद्योग) ये दो प्रकरण मण्डलयोनि नामक षष्ठ अधिकरणमें हैं ॥ १०१–१०३ ॥

षाड्गुण्यसमुद्देशः क्षयस्थानवृद्धिनिश्चयः ॥ १०४ ॥ संश्रयवृत्तिः ॥ १०५ ॥ समहीनज्यायसां गुणाभिनिवेशः हीनसंधयः ॥ १०६ ॥ विगृह्यासनम् संधायासनम् विगृह्य यानम् संधाय यानम् संभूय प्रयाणम् ॥ १०७ ॥ यातव्यामित्रयोरभिग्रहचिन्ता क्षयलोभविरागहेतवः प्रकृतीनां सामवायिकविपरिमर्शः ॥१०८॥ संहितप्रयाणिकम् परिपणितापरिपणितापसृताश्च संधयः ॥१०९॥ द्वैधीभाविकाः संधिविक्रमाः ॥ ११० ॥ यातव्यवृत्तिः अनुग्राह्यमित्रविशेषाः ॥ १११ ॥ मित्रहिरण्यभूमिकर्मसंधयः ॥ ११२ ॥ पार्ष्णिग्राहचिन्ता ॥ ११३ ॥ हीनशक्तिपूरणम् ॥ ११४ ॥ बलवता विगृह्योपरोधहेतवः दण्डोपनतवृत्तम् ॥ ११५ ॥ दण्डोपनायिवृत्तम् ॥ ११६ ॥ संधिकर्म संधिमोक्षः ॥ ११७ ॥ मध्य-

मचरितम् उदासीनचरितम् मण्डलचरितम् ॥११८॥ इति षाड्गुण्यं सप्तममधिकरणम् ॥ ११९ ॥

१–षाड्गुण्यका उद्देश २–क्षय, स्थान और वृद्धिका निश्चय ३–संश्रयवृत्ति ४–सम, हीन और अधिकके गुणोंका अभिनिवेश ५–हीनसन्धि ६–विग्रह करके आसन ७–सन्धि करके आसन ८–विग्रह करके यान ९–सन्धि करके यान १०–सम्भूय प्रयाण ११–यातव्य और शत्रुके प्रति यानका निर्णय १२–प्रकृतियोंके क्षय, लोभ और विरागके हेतु १३–सामवायिक राजाओंका विचार १४–मिलकर आक्रमण १५–परिपणित, अपरिपणित और अपसृत सन्धि १६–द्वैधीभाव सम्बन्धी सन्धिविग्रह १७–यातव्यवृत्ति १८–अनुग्राह्य मित्रविशेष १९–मित्रसन्धि, हिरण्यसन्धि, भूमिसन्धि और कर्मसन्धि २०–पार्ष्णिग्राह चिन्ता २१–हीनशक्ति पूरण २२–प्रबल शत्रुके साथ विग्रह करके दुर्ग प्रवेशके कारण २३–दण्डोपनतवृत्त २४–दण्डोपनायिवृत्त २५–सन्धिकर्म २६–सन्धि मोक्ष २७–मध्यमचरित २८–उदासीन चरित २९–मण्डलचरित। ये उन्तीस प्रकरण षाड्गुण्यनामक सप्तम अधिकरणमें हैं ॥ १०४–११९ ॥

प्रकृतिव्यसनवर्गः ॥ १२० ॥ राजराज्ययोर्व्यसनचिन्ता ॥१२१॥ पुरुषव्यसनवर्गः पीडनवर्गः स्तम्भनवर्गः कोशसंगवर्गः ॥ १२२ ॥ बलव्यसनवर्गः मित्रव्यसनवर्गः ॥ १२३ ॥ इति व्यसनाधिकारिकमष्टममधिकरणम् ॥ १२४ ॥

१–प्रकृतिव्यसनवर्ग २–राजा और राज्यके व्यसनोंका विचार ३–पुरुषव्यसनवर्ग ४–पीडनवर्ग ५–स्तम्भनवर्ग ६–कोशसंगवर्ग ७–बलव्यसनवर्ग ८–मित्रव्यसनवर्ग। ये सब आठ प्रकरण व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरणमें हैं ॥ १२०—१२४ ॥

शक्तिदेशकालबलाबलज्ञानम् यात्राकालाः ॥ २२५ ॥ बलोपादानकालाः संनाहगुणाः प्रतिबलकर्म ॥ १२६ ॥ पश्चात्कोपचिन्ता बाह्याभ्यन्तरप्रकृतिकोपप्रतीकारः ॥ १२७ ॥ क्षयव्ययलाभविपरिमर्शः ॥ १२८ ॥ बाह्याभ्यन्तराश्चापदः ॥ १२९ ॥ दूष्यशत्रुसंयुक्ताः ॥ १३० ॥ अर्थानर्थसंशययुक्ताः तासामुपायविकल्पजाः सिद्धयः ॥ १३२ ॥ इत्यभियास्यत्कर्म नवममधिकरणम् ॥ १३२ ॥

१–शक्ति, देश और कालके बलाबलका ज्ञान २–यात्राकाल ३–सेनाओं के तैयार होनेका समय ४–सन्नाहगुण ५–प्रतिबलकर्म ६–पश्चात्कोपाचिन्ता ७–बाह्य और अभ्यन्तर प्रकृतिके कोपका प्रतीकार ८–क्षय व्यय तथा लाभका विचार ९–बाह्य तथा अभ्यन्तर आपत्तियां १०–दूष्य तथा शत्रुजन्य आपत्तियां ११–अर्थ, अनर्थ तथा संशय सम्बन्धी आपत्तियां १२–उन आपत्तियोंके प्रतीकारके लिये साम आदि उपायोंके प्रयोग भेदसे उत्पन्न होनेवाली सिद्धियां। ये सब बारह प्रकरण अभियास्यत्कर्म नामक नवम अधिकरणमें हैं ॥ १२५—१३२ ॥

स्कन्धावारनिवेशः ॥ १३३ ॥ स्कन्धावारप्रयाणम् ॥१३४॥ बलव्यसनावस्कन्दकालरक्षणम् ॥ १३५ ॥ कूटयुद्धविकल्पाः ॥ १३६ ॥ स्वसैन्योत्साहनम् ॥ १३७ ॥ स्वबलान्यबलव्यायोगः ॥ १३८ ॥ युद्धभूमयः पत्त्यश्वरथहास्तिकर्माणि ॥ १३९ ॥ पक्षकक्षोरस्यानां बलाग्रतो व्यूहविभागः सारफल्गुबलविभागः पत्त्यश्वरथहस्तियुद्धानि ॥ १४० ॥ दण्डभोगमण्डलासंहतव्यूहव्यूहनम् तस्य प्रतिव्यूहस्थानम् ॥१४१॥ इति सांग्रामिकं दशममधिकरणम् ॥ १४२ ॥

१–स्कन्धावारनिवेश २–स्कन्धावारप्रयाण ३–बलव्यसन, अवस्कन्दकालसे सेनाका संरक्षण ४–कूटयुद्धके भेद ५–स्वसैन्योत्साहन ६–स्वसेना और परसेनाका व्यवस्थापन ७–युद्धयोग्य भूमि ८–पदाति, अश्व, रथ तथा हाथी आदिके कार्य ९–पक्ष कक्ष तथा उरस्य इत्यादि व्यूह विशेषोंका सेनाके परिमाणके अनुसार व्यूह विभाग १०–सार तथा फाल्गु बलका विभाग ११-पदाति, अश्व, रथ तथा हाथियोंका युद्ध १२–दण्डव्यूह, भोगव्यूह, मण्डलव्यूह, असंहतव्यूह, इनके प्रकृतिव्यूह और विकृति व्यूहोंकी रचना १३–उपर्युक्त दण्डादि व्यूहके प्रतिव्यूहकी स्थापना। ये तेरह प्रकरण साङ्ग्रामिक दशम अधिकरणमें हैं ॥ १३३—१४२ ॥

भेदोपादानानि उपांशुदण्डः ॥ १४३ ॥ इति संघवृत्तमेकादशमधिकरणम् ॥ १४४ ॥

१–भेदक उपादान २–उपांशुदण्ड। ये दो प्रकरण संघवृत्त नामक ग्यारहवें अधिकरणमें हैं ॥ १४३—१४४ ॥

दूतकर्म ॥ १४५ ॥ मन्त्रयुद्धम् ॥ १४६ ॥ सेनामुख्यवधः मण्डलप्रोत्साहनम् ॥ १४७ ॥ शस्त्राग्निरसप्रणिधयः वीवधासार-प्रसारवधः ॥ १४८ ॥ योगातिसंधानम् दण्डातिसंधानम् एक-विजयः ॥ १४९ ॥ इत्याबलीयसं द्वादशमधिकरणम् ॥ १५० ॥

१–दूतकर्म २–मन्त्र युद्ध ३–सेनापतियोंका वध ४–मित्र आदि राज-मण्डलका प्रोत्साहन ५–शस्त्र, अग्नि तथा रसोंका गूढ़प्रयोग ६–वीवध आसार तथा प्रसारका नाश ७–योगातिसन्धान ८–दण्डातिसन्धान ९–एक विजय। ये नौ प्रकरण आबलीयस नामक बारहवें अधिकरणमें हैं ॥ १४५—१५० ॥

उपजापः ॥ १५१ ॥ योगवामनम् ॥ १५२ ॥ अपसर्पप्र-णिधिः ॥ १५३ ॥ पर्युपासनकर्म अवमर्दः ॥ १५४ ॥ लब्ध-प्रशमनम् ॥ १५५ ॥ इति दुर्गलम्भोपायस्त्रयोदशमधिकरणम् ॥ १५६ ॥

१–उपजाप २–योगवामन ३–गूढ पुरुषोंका शत्रु देशमें निवास ४–शत्रुके दुर्गको घेरना ५–शत्रुके दुर्गका अवमर्द ६–विजित दुर्ग आदिमें शान्ति स्थापित करना। ये छः प्रकरण दुर्गलम्भोपाय नामक तेरहवें अधिकरण में हैं। ॥ १५१—१५६ ॥

परघातप्रयोगः ॥ १५७ ॥ प्रलम्भनम् ॥ १५८ ॥ स्वबलो-पघातप्रतीकारः ॥ १५९ ॥ इत्यौपनिषादिकं चतुर्दशमधिकरणम् ॥ १६० ॥

१–परघातप्रयोग २–प्रलम्भन ३–शत्रुके द्वारा अपनी सेनापर किये गये घातक प्रयोगोंका प्रतीकार। ये तीन प्रकरण औपनिषदिक चौदहवें अधिकरणमें हैं ॥ १५७—१६० ॥

तन्त्रयुक्तयः ॥ १६१ ॥ इति तन्त्रयुक्तिः पञ्चदशमधिकर-णम् ॥ १६२ ॥

१–तन्त्रयुक्ति। यह एक प्रकरण तन्त्रयुक्ति नामक पन्द्रहवें अधिकरण में है ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

शास्त्रसमुद्देशः पञ्चदशाधिकरणानि सपञ्चाशदध्यायशतं सा-शीति प्रकरणशतं षट्श्लोकसहस्राणीति ॥ १६३ ॥

इस प्रकार सम्पूर्ण कौटलीय अर्थशास्त्रमें १५ अधिकरण, एकसौ पचास (१५०) अध्याय, एकसौ अस्सी (१८०) प्रकरण, और छः हजार श्लोक हैं।

(एक श्लोकमें ३२ अक्षर होते हैं, उनका समुदाय एक ग्रन्थ कहाता है, इस प्रकार यह कौटलीय अर्थशास्त्र कुल छः हजार ग्रन्थ है। अर्थात् इसके अक्षरोंको यदि अनुष्टुप् छन्दमें बांधदिया जाय, तो छः हज़ार श्लोक बनजाते हैं)॥१६३॥

सुखग्रहणविज्ञेयं तत्त्वार्थपदनिश्चितम्।
कौटल्येन कृतं शास्त्रं विमुक्तग्रन्थविस्तरम् ॥ १६४ ॥

इति कौटलीये ऽर्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे
राजवृत्तिः प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥

सुकुमारमति पुरुषभी इस शास्त्रको सरलतासे समझ सकते हैं, क्योंकि इस शास्त्रमें इस प्रकार यथार्थ अर्थ और पदोंका प्रयोग किया गया है, जिससे किसी तरहका भी सन्देह नहीं होता। ग्रन्थका व्यर्थ विस्तार भी नहीं किया गया, अर्थात् किसीभी अनावश्यक या अनपेक्षित बातका उल्लेख नहीं कियागया। इस अर्थशास्त्रको कौटल्यने बनाया है ॥ १६४ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त।

दूसरा अध्याय

पहिला प्रकरण

विद्या-समुद्देश

आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः ॥ १ ॥ त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति मानवाः ॥ २ ॥ त्रयीविशेषो ह्यान्वीक्षकीति ॥ ३ ॥

विद्या चार हैं:-आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्त्ता और दण्डनीति ॥ १ ॥ मनुके अनुयायी कहते हैं, कि विद्या तीन ही हैं:-त्रयी, वार्त्ता और दण्डनीति ॥ २ ॥ आन्वीक्षकी विद्या त्रयीके अन्तर्गत ही समझी जाती है, वह उससे पृथक् नहीं है ॥ ३ ॥

वार्ता दण्डनीतिश्चेति बार्हस्पत्याः। संवरणमात्रं हि त्रयी लोकयात्राविद इति ॥५॥ दण्डनीतिरेका विद्येत्यौशनसाः ॥६॥ तस्यां हि सर्वविद्यारम्भाः प्रतिबद्धा इति ॥ ७ ॥

बृहस्पतिके अनुगामी कहते हैं, कि विद्या दो ही हैं:-वार्त्ता और दण्ड, नीति ॥ ४ ॥ क्योंकि लोकयात्रावित् अर्थात् वार्त्ता और दण्डनीतिमें निपुण, सुचतुर संसारी पुरुषके लिए, त्रयी, केवल संवरण (नास्तिकतासे बचानेवाला

आवरणमात्र अर्थात् लोग उसे त्रयीके न माननेपर नास्तिक न कहने लग जांय, इसीलिए त्रयीकी सत्ता) है। वह पृथक् विद्या नहीं है ॥ ५ ॥ शुक्राचार्यके सम्प्रदायके विद्वान् कहते हैं कि—केवल दण्डनीति ही एक विद्या है ॥ ६ ॥ क्योंकि उसहीमें अन्य सब विद्याओंके योगक्षेमका निर्भर है ॥ ७ ॥

चतस्र एव विद्या इति कौटल्यः ॥ ८ ॥ ताभिर्धर्मार्थौ यद्विद्यात्तद्विद्यानां विद्यात्वम् ॥ ९ ॥ सांख्यं योगो लोकायतं चेत्यान्वीक्षकी ॥ १० ॥

परन्तु कौटल्य आचार्यका मत है, कि विद्या चार ही हैं ॥ ८ ॥ क्योंकि विद्याओंकी वास्तविकता यही है कि उनसे धर्म और अधर्मके यथार्थ स्वरूपका बोध होता है ॥९॥ सांख्य, योग और लोकायत ये आन्वीक्षकी विद्या हैं ॥१०॥

धर्माधर्मौ त्रय्यामर्थानर्थौ वार्तायां नयापनयौ दण्डनीत्याम् ॥ ११ ॥

त्रयीमें धर्म और अधर्मकी, वार्त्तामें उचित समयपर कृषि आदिके बोनेसे सुफल और न बोनेसे कुफल आदिका, तथा दण्डनीतिमें सन्धि विग्रह आदिके उचित उपयोगोंका प्रतिपादन किया गया है ॥ ११ ॥

बलाबले चैतासां हेतुभिरन्वीक्षमाणा लोकस्योपकरोति व्यसनेऽभ्युदये च बुद्धिमवस्थापयति प्रज्ञावाक्यक्रियावैशारद्यं च करोति ॥ १२ ॥

त्रयी आदि विद्याओंकी प्रधानता और अप्रधानताको युक्तियोंसे निर्धारित करती हुई आन्वीक्षकी विद्या लोक का उपकार करती है। दुःख और सुखमें बुद्धिको ठीक रखती है। सोचने, बिचारने, बोलने और कार्य करनेमें चतुराईको पैदा करती है ॥ १२ ॥

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम् ।
आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षकी मता ॥ १२ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे विद्यासमुद्देशे आन्वीक्षकीस्थापना नाम द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥

यह आन्वीक्षकी विद्या, सब बिद्याओंका प्रदीप, सब कार्योंका साधनभूत तथा सब धर्मोंका सदा आश्रयभूत मानी गई है ॥ १३ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त।

तीसरा अध्याय

त्रयी स्थापना

सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी ॥१॥ अथर्ववेदेतिहासवेदौ च वेदाः ॥ २ ॥ शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दोविचितिर्ज्योतिषमिति चाङ्गानि ॥ ३ ॥

सामवेद, ऋग्वेद और यजुर्वेद ये तीनों त्रयी कहाते हैं ॥ १ ॥ अथर्ववेद और इतिहासवेदको वेद कहते हैं ॥ २ ॥ शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दोविचिति और ज्योतिष ये छः अङ्ग हैं ॥ ३ ॥

एष त्रयीधर्मश्चतुर्णां वर्णानामाश्रमाणां च स्वधर्मस्थापनादौपकारिकः ॥४॥ स्वधर्मो ब्राह्मणस्याध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति ॥ ५ ॥

यह त्रयीमें निरूपण किया हुआ धर्म, चारों वर्ण और चारों आश्रमों को अपने २ धर्ममें स्थित रखनेके कारण लोकका अत्यन्त उपकारक है ॥ ४ ॥ ब्राह्मणका अपना धर्म, पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, तथा दान देना और लेना है ॥ ५ ॥

क्षत्रियस्याध्ययनं यजनं दानं शस्त्राजीवो भूतरक्षणं च ॥६॥ वैश्यस्याध्ययनं यजनं दानं कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च ॥ ७ ॥ शूद्रस्य द्विजातिशुश्रूषा वार्ता कारुकुशीलवकर्म च ॥ ८ ॥

क्षत्रियका अपना धर्म पढ़ना यज्ञ करना, दानदेना, शस्त्रोंसे जविन निर्वाह करना, तथा प्राणियोंकी रक्षा करना है ॥ ६ ॥ वैश्यका अपना धर्म पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, खेती और पशुओंकी रक्षा करना, तथा व्यापार करना है ॥ ७ ॥ शूद्रका अपना धर्म, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यकी सेवा सुश्रूषा करना, खेती, पशुओंका पालन तथा व्यापार करना, शिल्प, गाना, बजाना तथा भाट चारण आदिका कार्य करना है ॥ ८ ॥

गृहस्थस्य स्वकर्माजीवस्तुल्यैरसमानर्षिभिर्वैवाह्यमृतुगामित्वं देवपित्रातिथिभृत्येषु त्यागः शेषभोजनं च ॥ ९ ॥

गृहस्थका अपना धर्म, अपने वर्णके अनुकूल कार्योंसे आजीविका करना, अपने कुल आदिसे समान और भिन्न गोत्रवालोंके साथ विवाह कार्य करना, ऋतुगामी होना, देव, पितर, अतिथि तथा भृत्य आदि सबको देकर फिर पीछेसे स्वयं भोजन करना है ॥ ९ ॥

ब्रह्मचारिणः स्वाध्यायो ऽग्निकार्याभिषेकौ भैक्षव्रतत्वमाचार्ये प्राणान्तिकी वृत्तिस्तदभावे गुरुपुत्रे सब्रह्मचारिणि वा ॥ १० ॥

ब्रह्मचारीका अपना धर्म, वेदाध्ययन करना, अग्निहोत्र तथा नित्य स्नान करना, भिक्षाचर्या, तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारीका जीवन पर्यन्त गुरूके समीप रहना, गुरुके न रहनेपर गुरुपुत्र अथवा अपने किसी समान शाखाध्यायी के समीप रहना है ॥ १० ॥

वानप्रस्थस्य ब्रह्मचर्यं भूमौ शय्या जटाजिनधारणमग्निहोत्राभिषेकौ देवतापित्रतिथिपूजा वन्यश्चाहारः ॥ ११ ॥

वानप्रस्थका अपना धर्म, ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना, भूमिपर शयन करना, जटा तथा मृग चर्म आदिका धारण करना, अग्निहोत्र तथा नित्य स्नान करना, देव, पितर तथा अतिथियोंकी पूजा करना, और जंगलमें होनेवाले कन्दमूल फल आदिका आहार करना है । ११ ॥

परिव्राजकस्य संयतेन्द्रियत्वमनारम्भो निष्किंचनत्वं सङ्गत्यागो भैक्षमनेकत्रारण्ये वासो बाह्यमाभ्यन्तरं च शौचम् ॥१२॥ सर्वेषामहिंसा सत्यं शौचमनसूयानृशंस्यं क्षमा च ॥ १३ ॥

संन्यासीका अपना धर्म, जितेन्द्रिय होना, कामनारहित होना, किसी वस्तुपर अपना अधिकार न रखना, और शरीर, वाणी तथा मनकी अच्छी तरह शुद्धि करना है ॥ १२ ॥ मन, वचन, कर्मसे किसी तरह भी हिंसा न करना, सत्य बोलना, पवित्र रहना, किसीसे ईर्ष्या न करना, निष्ठुर न होना और क्षमाशील होना, ये सब वर्ण और आश्रमोंके लिये साधारण धर्म हैं। इनका प्रत्येकका पालन करना चाहिये ॥ १३ ॥

स्वधर्मः स्वर्गायानन्त्याय च ॥ १४ ॥ तस्यातिक्रमे लोकः संकरादुच्छिद्येत ॥ १५ ॥

अपने धर्मका पालन करना स्वर्ग और मोक्षप्राप्तिका साधन है ॥ १४ ॥ अपने धर्मका उलङ्घन करनेपर, कर्मसाङ्कर्य और वर्णसाङ्कर्य होनेसे लोक सर्वथा उच्छिन्न हो जाता है ॥ १५ ॥

तस्मात्स्वधर्मं भूतानां राजा न व्यभिचारयेत् ।
स्वधर्मं संदधानो हि प्रेत्य चेह च नन्दति ॥ १६ ॥

व्यवस्थितार्यमर्यादः कृतवर्णाश्रमस्थितिः ।
त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदति न सीदति ॥१७॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे विद्यासमुद्देशे
त्रयीस्थापना तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इसलिये राजाका कर्त्तव्य है कि वह प्रजाको धर्ममार्गसे भ्रष्ट न होने देवे । अपने २ धर्मका पालन कराता हुआ राजा, यहां और परलोकमें सुखी होता है ॥ १६ ॥ श्रेष्ठ मर्यादाके व्यवस्थित होनेपर, वर्ण और आश्रमकी ठीक२ परिस्थिति रहनेपर, इस प्रकार त्रयी प्रतिपादित धर्मके द्वारा रक्षाकी हुई प्रजा सदा सुखी रहती है, कभी क्लेशको प्राप्त नहीं होती ॥ १७ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय ।

वार्त्ता और दण्डनीतिकी स्थापना ।

कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता ॥ १ ॥ धान्यपशुहिरण्यकुप्यविष्टिप्रदानादौपकारिकी ॥ २ ॥ तया स्वपक्षं परपक्षं च वशीकरोति कोशदण्डाभ्याम् ॥ ३ ॥

कृषि, पशुपालन और व्यापार, यह वार्त्ता है । अर्थात् वार्त्ता नामक विद्यामें इन विषयोंका प्रतिपादन किया जाता है ॥ १ ॥ यह वार्त्ताविद्या, धान्य, पशु, हिरण्य, तांबा आदि अनेक प्रकारकी धातु और नौकरचाकर आदिके देनेसे राजा प्रजाका अत्यन्त उपकार करनेवाली होती है ॥ २ ॥ वार्त्ता विद्याके द्वारा उत्पन्न हुए २ कोश और सेनासे, अपने और पराये सबको, राजा वशमें करलेता है ॥ ३ ॥

आन्वीक्षकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः ॥ ४ ॥ तस्य नीतिर्दण्डनीतिः ॥ ५ ॥ अलब्धलाभार्था लब्धपरिरक्षणी रक्षितविवर्धनी वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी च ॥ ६ ॥

आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्त्ता इन सबके योग और क्षेमका साधन दण्डही है ॥ ४ ॥ उसकी (दण्डकी) नीति अर्थात् यथार्थ स्वरूपका प्रतिपादन करनेवाला शास्त्रही दण्डनीति कहाता है ॥ ५ ॥ यह दण्डनीतिही अप्राप्त वस्तुओंको प्राप्त करानेवाली, प्राप्त पदार्थोंकी रक्षा करनेवाली, सुरक्षित पदार्थोंमें

वृद्धि करनेवाली, और वृद्धिको प्राप्त हुए पदार्थोंको उचित स्थानोंमें लगाने वाली होती है ॥ ६ ॥

तस्यामायत्ता लोकयात्रा ॥ ७ ॥ तस्माल्लोकयात्रार्थी नित्यमुद्यतदण्डः स्यात् ॥ ८ ॥ न ह्येवंविधं वशोपनयनमस्ति भूतानां यथा दण्ड इत्याचार्याः ॥ ९ ॥

संसारका निर्वाह इसीके ऊपर निर्भर है ॥ ७ ॥ इसलिये संसारको ठीक २ रास्तेपर चलानेकी इच्छा रखनेवाला राजा सदा उद्यतदण्ड रहे ॥ ८ ॥ क्योंकि दण्डके अतिरिक्त इस प्रकारका और कोई भी साधन नहीं है, जिससे सबही प्राणी झट अपने वशमें होसकें, यह आचार्योंका मत है ॥ ९ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १० ॥ तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनीयः ॥ ११ ॥ मृदुदण्डः परिभूयते ॥ १२ ॥

परन्तु कौटल्य ऐसा नहीं मानता ॥ १० ॥ क्योंकि वह कहता है कि तीक्ष्णदण्ड (निष्ठुरतापूर्वक दण्ड देनेवाले) राजासे सबही प्राणी खिन्न होजाते हैं ॥ ११ ॥ तथा जो दण्ड देनेमें कमी करता है, लोग उसका तिरस्कार करते हैं ॥ १२ ॥

यथार्हदण्डः पूज्यः ॥ १३ ॥ सुविज्ञातप्रणीतो हि दण्डः प्रजा धर्मार्थकामैर्योजयति ॥ १४ ॥

इसलिये राजा उचित दण्ड देनेवाला होना चाहिये। इस प्रकार दण्ड देनेवाला राजा सदाही पूजा जाता है ॥ १३ ॥ क्योंकि विधिपूर्वक शास्त्रसे जानकर प्रयुक्त किया हुआ दण्ड, प्रजाओंको धर्म, अर्थ और कामसे युक्त करता है ॥ १४ ॥

दुष्प्रणीतः कामक्रोधाभ्यामज्ञानाद्वानप्रस्थपरिव्राजकानपि कोपयति किमङ्ग पुनर्गृहस्थान् ॥ १५ ॥ अप्रणीतो हि मात्स्यन्यायमुद्भावयति ॥ १६ ॥

अज्ञानतापूर्वक काम और क्रोधके वशीभूत होकर अनुचित ढंगसे प्रयुक्त किया गया दण्ड, वानप्रस्थ और परिव्राजक जैसे निःस्पृह व्यक्तियोंको भी कुपित करदेता है, फिर गृहस्थोंका तो कहनाही क्या ? ॥ १५ ॥ यदि दण्ड का प्रयोग सर्वथा रोक दिया जाय तो जिस प्रकार बड़ी मछली छोटी मछलियोंको खाजाती है, इसी तरह बलवान् व्यक्ति निर्बलोंको कष्ट पहुंचाने लगें ॥ १६ ॥

बलीयानबलं हि ग्रसते दण्डधराभावे ॥ १७ ॥ तेन गुप्तः प्रभवतीति ॥ १८ ॥

दण्डधारण करनेवाले राजाके न होनेपर सर्वत्र अराजकता फैल जाती है। और सबल निर्बलोंको सताने लगते हैं ॥ १७ ॥ परन्तु दण्डके द्वारा सुरक्षित हुआ २ निर्बल भी सबल या समर्थ हो जाता है ॥ १८ ॥

चतुर्वर्णाश्रमो लोको राज्ञा दण्डेन पालितः।
स्वधर्मकर्माभिरतो वर्तते स्वेषु वर्त्मसु ॥ १९ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे विद्यासमुद्देशे वार्तास्थापना दण्डनीतिस्थापना च चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

विद्यासमुद्देशः समाप्तः ॥

दण्डके द्वारा राजासे पालन किये हुए चारोंवर्ण और आश्रमोंके सम्पूर्ण लोग, अपने धर्मकर्मोंमें लगे हुए, बराबर उचित मार्गपर चलते रहते हैं ॥१९॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त।

पांचवां अध्याय।

२ प्रकरण।

वृद्ध-संयोग।

तस्माद्दण्डमूलास्तिस्रो विद्याः ॥१॥ विनयमूलो दण्डः प्राणभृतां योगक्षेमावहः ॥ २ ॥ कृतकः स्वाभाविकश्च विनयः ॥३॥

इसीलिये आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्त्ता इन तीनों विद्याओंकी स्थिति दण्डके ही अधीन है ॥ १ ॥ शास्त्रज्ञानपूर्वक उचित रीतिसे प्रयुक्त किया हुआ दण्ड, प्रजाओंके योग और क्षेमका साधन होता है ॥ २ ॥ विनय दो प्रकारका होता है। एक कृतक अर्थात् नैमित्तिक और दूसरा स्वाभाविक। (जो परिश्रम करके किन्हीं कारणोंसे प्राप्त किया गया हो वह कृतक और जो वासनावशही स्वतः सिद्ध हो, उसे स्वाभाविक समझना चाहिये) ॥ ३ ॥

क्रिया हि द्रव्यं विनयति नाद्रव्यम् ॥ ४ ॥ शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणविज्ञानोहापोहतत्त्वाभिनिविष्टबुद्धिं विद्या विनयति नेतरम् ॥ ५ ॥

जिस प्रकार अच्छी किस्मके पत्थर आदि द्रव्यही शानपर रक्खे जानेसे संस्कृत होते हैं, मामूली पत्थर आदि नहीं ॥ ४ ॥ इसी प्रकार शिक्षाके लिये

किया हुआ श्रमभी, शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, विज्ञान, ऊहा, अपोह और तत्त्वाभिनिवेश आदि बुद्धिगुणोंसे युक्त सुपात्र व्यक्तिको ही शिक्षित या विनीत बना सकता है, उपर्युक्त गुणोंसे रहित कुपात्र व्यक्तिको नहीं ॥ ५ ॥

विद्यानां तु यथास्वमाचार्यप्रामाण्याद्विनयो नियमश्च ॥ ६ ॥ वृत्तचौलकर्मा लिपिं संख्यानं चोपयुञ्जीत ॥ ७ ॥ वृत्तोपनयनस्त्रयीमान्वीक्षकीं च शिष्टेभ्यो वार्तामध्यक्षेभ्यो दण्डनीतिं वक्तृप्रयोक्तृभ्यः ॥ ८ ॥

भिन्न २ विद्याओंके अपने २ आचार्योंके अनुसारही शिष्यका शिक्षण और नियम होना चाहिये ॥ ६ ॥ मुण्डन संस्कारके अनन्तर अक्षराभ्यास तथा गिनने आदिका विधिपूर्वक अभ्यास करे ॥ ७ ॥ उपनयनके अनन्तर सदाचारी विद्वान् आचार्योंसे त्रयी और आन्वीक्षकीको, तथा उन २ विभागोंके अध्यक्षों (सीताध्यक्ष आदि) से वार्त्ताको, इसी प्रकार वक्ता और प्रयोक्ता अर्थात् सन्धि-विग्रह आदिके यथार्थ जानकर, तथा इनको उचित स्थानोंपर प्रयोग करनेवाले अनुभवी विद्वानोंसे दण्डनीतिको सीखे ॥ ८ ॥

ब्रह्मचर्यं चाषोडशाद्वर्षात् ॥ ९ ॥ अतो गोदानं दारकर्म चास्य ॥ १० ॥ नित्यश्च विद्यावृद्धसंयोगो विनयवृद्ध्यर्थं तन्मूलत्वाद्विनयस्य ॥ ११ ॥

सोलहवर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्यका यथावत् पालन करे ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर गोदानविधि (समावर्त्तन संस्कार=केशान्तकर्म) पूर्वक विवाह करे ॥ १० ॥ विवाहके बाद अपने विनयकी वृद्धिके लिये सदाही विद्यावृद्ध पुरुषोंका सहवास कियाकरे, क्योंकि अनुभवी विद्वान् पुरुषोंकी संगति ही विनय का मूल है ॥ ११ ॥

पूर्वमहर्भागं हस्त्यश्वरथप्रहरणविद्यासु विनयं गच्छेत् ॥१२॥ पश्चिममितिहासश्रवणे ॥ १३ ॥ पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः ॥ १४ ॥

दिनके पहिले भागको हाथी घोड़े रथ और अस्त्र शस्त्र आदि विद्या सम्बन्धी शिक्षाओंमें व्यतीत करे ॥ १२ ॥ दिनके पिछले भागको इतिहास आदि सुननेमें व्यतीत करे ॥ १३ ॥ ब्राह्म आदि पुराण, रामायण महाभारत आदि इतिहास, आख्यायिका, उदाहरण मीमांसा, आदि मन्वादि धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र ये सबही इतिहास शब्दसे समझने चाहियें ॥ १४ ॥

शेषमहोरात्रभागमपूर्वग्रहणं गृहीतपरिचयं च कुर्यात् ॥१५॥ अगृहीतानामाभीक्ष्ण्यश्रवणं च ॥ १६ ॥ श्रुताद्धि प्रज्ञोपजायते प्रज्ञया योगो योगादात्मवत्तेति विद्यासामर्थ्यम् ॥ १७ ॥

दिन और रातके शेष भागोंको नवीन ज्ञानके ग्रहण, और गृहीत ज्ञान के मनन या चिन्तन में व्यय करे ॥ १५ ॥ जो पदार्थ एकवार श्रवण करनेपर बुद्धिस्थ न हो, उसे बार २ श्रवण करे ॥ १६ ॥ क्योंकि शास्त्र श्रवणसे बुद्धिका विकास होता है, उससे योग अर्थात् शास्त्रोंमें श्रद्धा, और योगसे मनस्विता प्राप्त होती है, यही विद्याका फल है ॥ १७ ॥

विद्याविनीतो राजा हि प्रजानां विनये रतः ।
अनन्यां पृथिवीं भुङ्क्ते सर्वभूतहिते रतः ॥ १८ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे वृद्धसंयोगः
पञ्चमो ऽध्यायः ॥ ५ ॥

सुशिक्षासे शिक्षित या विनीत राजा, सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें लगा हुआ, तथा प्रजाओंके शिक्षण में तत्पर रहता हुआ निष्कण्टक पृथिवीका चिरकाल तक उपभोग करता है ॥ १८ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें पांचवां अध्याय समाप्त ।

छठा अध्याय

३ प्रकरण

इन्द्रियजय । (काम आदि छः शत्रुओंका त्याग)

विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजयः कामक्रोधलोभमानमदहर्षत्यागात्कार्यः ॥ १ ॥ कर्णत्वगक्षिजिह्वाघ्राणेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेष्वविप्रतिपत्तिरिन्द्रियजयः ॥ २ ॥

काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्षके त्यागसे इन्द्रियोंका जयकरे, क्योंकि इन्द्रियोंका जयही विद्या और विनयका हेतु है ॥ १ ॥ कर्ण, त्वक्, चक्षु रसन, और घ्राण इन्द्रियोंका शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध विषयोंमें प्रवृत्त न होनेदेना ही इन्द्रियजय कहाता है ॥ २ ॥

शास्त्रार्थानुष्ठानं वा ॥३॥ कृत्स्नं हि शास्त्रमिदमिन्द्रियजयः ॥ ४ ॥ तद्विरुद्धवृत्तिरवश्येन्द्रियश्चातुरन्तो ऽपि राजा सद्यो विनश्यति ॥ ५ ॥

अथवा शास्त्रोंमें प्रतिपादित कर्त्तव्योंके अनुष्ठानको भी इन्द्रियजयका कारण समझना चाहिये ॥ ३ ॥ क्योंकि सम्पूर्ण शास्त्रोंमें प्रतिपादित विधेय अर्थ इन्द्रियजयके कारण कहे गये हैं ॥ ४ ॥ शास्त्र विहित कर्त्तव्योंके विरुद्ध अनुष्ठान करने वाला, इन्द्रिय परायण (इन्द्रियोंको वशमें न करनेवाला) राजा, सम्पूर्ण पृथिवीका अधिपति होता हुआ भी शीघ्र ही नष्ट होजाता है ॥ ५ ॥

यथा दाण्डक्यो नाम भोजः कामाद्ब्राह्मणकन्यामभिमन्यमानः सबन्धुराष्ट्रो विननाश ॥ ६ ॥ करालश्च वैदेहः ॥ ७ ॥ कोपाज्जनमेजयो ब्राह्मणेषु विक्रान्तस्तालजङ्घश्च भृगुषु ॥ ८ ॥

जैसे कि भोज वंशका दाण्डक्य नामक राजा तथा विदेह देशका कराल नामक राजा कामके वशीभूत होकर ब्राह्मणकी कन्याका अपहरण करके उसके पिताके शापसे बन्धु बान्धव और राष्ट्रके सहित नाशको प्राप्त होगया ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ कोपके वशीभूत होकर जनमेजय ब्राह्मणोंके साथ कलह करके उनके शापसे नष्ट होगया, तथा तालजङ्घ भृगुओंपर क्रुद्ध होकर उनके शापसे मारा गया ॥ ८ ॥

लोभादैलश्चातुर्वर्ण्यमत्याहारयमाणः सौवीरश्चाजबिन्दुः ॥९॥ मानाद्रावणः परदारानप्रयच्छन् ॥ १० ॥ दुर्योधनो राज्यादंशं च ॥ ११ ॥

लोभके वशीभूत होकर इला का पुत्र पुरूरवा नामक राजा चारों वर्णोंसे अत्याचार पूर्वक धन अपहरण करता हुआ उनके शापसे नाशको प्राप्त हुआ, और इसी प्रकार सौवीर देशका राजा अजबिन्दु भी ॥ ९ ॥ अभिमानके वशीभूत होकर रावण परस्त्रीको उसके स्वामीके लिये न देता हुआ तथा दुर्योधन राज्यके हिस्से को अपने भाईयोंके लिए न देता हुआ नाशको प्राप्त हो गया ॥ १०—११ ॥

मदाड्म्भोद्भवो भूतावमानी हैहयश्चार्जुनः ॥१२॥ हर्षाद्वातापिरगस्त्यमत्यासादयन्वृष्णिसङ्घश्च द्वैपायनमिति ॥ १३ ॥

मदके वशीभूत होकर डम्भोद्भव नामका राजा सम्पूर्ण प्रजाओंका तिरस्कार करता हुआ नरनारायणके साथ युद्ध करके मारा गया, और इसी

प्रकार मदके कारण हैहय देशका राजा अर्जुन, परशुरामके हाथसे मारा गया ॥ १२॥ हर्षके वशीभूत होकर वातापि नामका असुर अगस्त्य ऋषिके साथ और यादव समूह द्वैपायन ऋषिके साथ वञ्चना करता हुआ उनके शापसे नाशको प्राप्त होगया ॥ १३ ॥

एते चान्ये च बहवः शत्रुषड्वर्गमाश्रिताः ।
सबन्धुराष्ट्रा राजानो विनेशुरजितेन्द्रियाः ॥ १४ ॥

ये उपर्युक्त और इसी प्रकारके अन्य बहुतेरे राजा, कामादि शत्रु षड्वर्ग के वशीभूत होकर, अपनी इन्द्रियोंको वशमें न रखते हुए बन्धु बान्धवों और राष्ट्रके सहित नाशको प्राप्त हो गये ॥ १४ ॥

शत्रुषड्वर्गमुत्सृज्य जामदग्न्यो जितेन्द्रियः ।
अम्बरीषश्च नाभागो बुभुजाते चिरं महीम् ॥ १५ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे इन्द्रियजये अरिषड्वर्गत्यागः षष्ठो ऽध्यायः ॥ ६ ॥

और इस शत्रु षड्वर्गको छोड़ कर, जितेन्द्रिय, जमदग्निके पुत्र परशुरामने, तथा अम्बरीष और नाभाग (नभाग राजा का पुत्र) ने चिरकाल तक इस पृथिवीका निष्कण्टक उपभोग किया ॥ १५ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें छठा अध्याय समाप्त ।

सातवां अध्याय

(राजर्षिका व्यवहार)

तस्मादरिषड्वर्गत्यागेनेन्द्रियजयं कुर्वीत ॥ १ ॥ वृद्धसंयोगेन प्रज्ञां चारेण चक्षुरुत्थानेन योगक्षेमसाधनं कार्यानुशासनेन स्वधर्मस्थापनं विनयं विद्योपदेशेन लोकप्रियत्वमर्थसंयोगेन हितेन वृत्तिम् ॥ २ ॥

इस लिये इन काम आदि छः शत्रुओंका सर्वथा परित्याग करके इन्द्रियोंका जयकरे ॥ १ ॥ वृद्ध विद्वानोंके सहवास से बुद्धिको विकसित करे, गुप्तचरोंके द्वारा अपने और पराये राष्ट्रकी व्यवस्थाको देखे, उद्योगके द्वारा योग और क्षेमका सम्पादन करे, राजकीय नियमों (कानूनों) के द्वारा अपने २ धर्म में प्रजाका नियन्त्रण करे, विद्याके प्रचारके द्वारा प्रजाओंको विनीत और शिक्षित बनावे, उचित पात्रोंमें धन आदिके देनेसे प्रजाका प्रिय बनारहे, अर्थात्

प्रजाको अपना अनुगामी बनाये रक्खे; और प्रजाओंके हितके साथही अपनी लोकयात्रा करे, अर्थात् अपने निजू व्यवहारों में भी प्रजाके हितका ध्यान रक्खे ॥ २ ॥

एवं वश्येन्द्रियः परस्त्रीद्रव्यहिंसाश्च वर्जयेत् ॥ ३ ॥ स्वप्नं लौल्यमनृतमुद्धतवेषत्वमनर्थसंयोगं च ॥ ४ ॥ अधर्मसंयुक्तं चानर्थसंयुक्तं च व्यवहारम् ॥ ५ ॥

इस प्रकार इन्द्रियोंको वशमें रखता हुआ परस्त्री, परद्रव्य, तथा परहिंसाका सर्वथा परित्याग करे ॥ ३ ॥ अनुचित निद्रा, चपलता, मिथ्याभाषण, उद्धतवेष, अनर्थकारी सम्पूर्ण कार्यों और इस प्रकारके पुरुषोंके सहवासको सर्वथा छोड़ देवे ॥ ४ ॥ अधर्म और अनर्थसे युक्त व्यवहार को भी छोड़ देवे ॥ ५ ॥

धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत ॥६॥ न निःसुखः स्यात् ॥७॥ समं वा त्रिवर्गमन्योन्य नुबन्धम् ॥ ८ ॥ एको ह्यत्यासेवितो धर्मार्थकामानामात्मानमितरौ च पीडयति ॥ ९ ॥

धर्म और अर्थके अनुसार ही कामका सेवन करे ॥६॥ सुखरहित अर्थात् कष्टके साथ जीवन निर्वाह न करे ॥ ७ ॥ अथवा परस्पर अनुबद्ध धर्म अर्थ और कामका बराबर २ सेवन करे ॥ ८ ॥ क्योंकि व्यसन पूर्वक अत्यधिक सेवन किया हुआ इनमेंसे कोई एक, आत्माको तथा शेष दोनोंको बहुत कष्ट पहुंचाता है ॥ ९ ॥

अर्थ एव प्रधान इति कौटल्यः ॥१०॥ अर्थमूलौ हि धर्मकामाविति ॥ ११ ॥ मर्यादां स्थापयेदाचार्यानमात्यान्वा ॥ १२ ॥

इन तीनोंमेंसे अर्थही प्रधान है, यह कौटल्य आचार्यका मत है ॥ १० ॥ क्योंकि धर्म और काम अर्थ मूलकही होते हैं, अर्थात् अर्थही इन दोनोंका कारण है ॥११॥ आचार्यों और अमात्योंको अपनी मर्यादा अर्थात् सीमा बनावे ॥१२॥

य एनमपायस्थानेभ्यो वारयेयुः ॥ १३ ॥ छायानालिकाप्रतोदेन वा रहसि प्रमाद्यन्तमभितुदेयुः ॥ १४ ॥

जो कि आचार्य आदि इसको बुराईयोंकी ओरसे रोक सकें ॥१३॥ अन्तः पुर आदि एकान्त स्थानोंमें प्रमाद करते हुए राजाको, आचार्य अमात्य आदि, छाया तथा नालिका (देखो अध्याय १९ सूत्र ६—९ तक) आदिके विभागसे समयका अपव्यय दिखाकर व्यथित करें ॥ १४ ॥

सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते ।
कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च शृणुयान्मतम् ॥ १५ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे इन्द्रियजये राजर्षिवृत्तं सप्तमो ऽध्यायः ॥ ७ ॥ इन्द्रियजयः समाप्तः ।

जिस प्रकार गाड़ीका एक पहिया दूसरेकी सहायताके बिना अनुपयुक्त होता है, इसी प्रकार राज्य चक्र भी अमात्य आदिकी सहायताके बिना एकाकी राजाके द्वारा नहीं चलाया जासकता । इसलिये राजाको उचित है कि वह योग्य अमात्योंको रक्खे, और उनके मतको बराबर सुने ॥ १५ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें सातवां अध्याय समाप्त ।

आठवां अध्याय ।

४ प्रकरण ।

अमात्योंकी नियुक्ति ।

सहाध्यायिनो ऽमात्यान्कुर्वीत दृष्टशौचसामर्थ्यत्वादिति भारद्वाजः ॥ १ ॥ ते ह्यस्य विश्वास्या भवन्तीति ॥ २ ॥

भारद्वाज आचार्यका मत है कि राजा अपने सहाध्यायियोंमेंसे ही किन्हींको अमात्य नियुक्त करे । क्योंकि इनके हृदयकी पवित्रता और कार्य करनेकी शक्ति, साथ पढ़नेके समयमें अच्छी तरह जानली जाती है ॥ १ ॥ और इसी लिये वे मन्त्री इस राजाके विश्वासपात्र भी होते हैं ॥ २ ॥

नेति विशालाक्षः ॥३॥ सहक्रीडितत्वात्परिभवन्त्येनम् ॥४॥ ये ह्यस्य गुह्यसधर्माणस्तानमात्यान्कुर्वीत समानशीलव्यसनत्वात् ॥ ५ ॥ ते ह्यस्य मर्मज्ञत्वभयान्नापराध्यन्तीति ॥ ६ ॥

विशालाक्ष इस मतको ठीक नहीं मानता ॥३॥ वह कहता है कि, अध्ययन कालमें साथ २ खेलनेके कारण वे लोग राजाका तिरस्कार कर सकते हैं ॥ ४ ॥ इसलिये जो लोग, राजाके छिपे हुए आचरणके समान ही आचरण करनेवाले हों, उन्हींको, स्वभाव व्यसनके समान होनेके कारण, अमात्य बनाना चाहिये ॥ ५ ॥ क्योंकि वे लोग, इस भयसे कि राजा हमारे सब मर्मोंको जानता है, कभी राजाका अपराध न करेंगे ॥ ६ ॥

साधारण एष दोष इति पराशरः ॥ ७ ॥ तेषामपि मर्मज्ञत्व-भयात्कृताकृतान्यनुवर्तेत ॥ ८ ॥

यावद्भ्यो गुह्यमाचष्टे जनेभ्यः पुरुषाधिपः ।
अवशः कर्मणा तेन वश्यो भवति तावताम् ॥ ९ ॥

परन्तु आचार्य पराशर कहते हैं कि यह दोष राजा और अमात्य दोनोंके लिये समान है ॥ ७ ॥ राजा भी, इस भयसे कि अमात्य मेरे सब मर्मोंको जानते हैं, उनके अच्छे या बुरे सभी तरहके कार्योंका अनुसरण करेगा ॥ ८ ॥ क्योंकि राजा जितने भी आदमियोंके सामने अपनी छिपी हुई बातोंको कहदेता है इस कार्यसे अधीर हुआ २, वह उतनेही मनुष्योंके वशमें होजाता है ॥ ९ ॥

य एनमापत्सु प्राणाबाधयुक्तास्वनुगृह्णीयुस्तानमात्यान्कुर्वीत ॥ १० ॥ दृष्टानुरागत्वादिति ॥ ११ ॥

इसलिये जो पुरुष, इसकी ऐसी भयावह आपत्तियोंमें सहायता करें जिनमें प्राणोंका भी भय हो, उन्हीं पुरुषोंको अमात्य बनाया जावे ॥ १० ॥ क्योंकि इस कार्यके करनेसे राजाके प्रति उनके अनुरागका ठीक २ पता लगजाता है ॥ ११ ॥

नेति पिशुनः ॥ १२ ॥ भक्तिरेषा न बुद्धिगुणः ॥ १३ ॥

परन्तु आचार्य नारद इस सिद्धान्तको भी नहीं मानते ॥ १२ ॥ उनका कहना है कि अपने प्राणोंकी भी परवाह न करके राजाकी सहायता करना, यह केवल भक्ति या सेवाधर्म है, इससे अमात्योंकी बुद्धिमत्ता प्रकट नहीं होती, और बुद्धिसम्पन्न होना अमात्यका सर्व प्रथम गुण है ॥ १३ ॥

संख्यातार्थेषु कर्मसु नियुक्ता ये यथादिष्टमर्थं सविशेषं वा कुर्युस्तानमात्यान्कुर्वीत ॥ १४ । दृष्टगुणत्वादिति । १५ ॥

इसलिये ऐसे पुरुषोंको अमात्य बनाना चाहिये, जो कि बताये हुए राजकीय कार्योंमें नियुक्त होकर उन कार्योंको उचित रीतिसे पूरा करदें, या उससे भी कुछ विशेष करके दिखावें ॥ १४ ॥ क्योंकि ऐसा करनेसे उनके बुद्धिगुणकी ठीक २ परीक्षा होजाती है ॥ १५ ॥

नेति कौणपदन्तः ॥ १६ ॥ अन्यैरमात्यगुणैरयुक्ता ह्येते ॥१७॥ पितृपैतामहानमात्यान्कुर्वीत ॥१८॥ दृष्टापदानत्वात् ॥१९॥

परन्तु आचार्य कौणपदन्त (भीष्म) नारदके इस सिद्धान्तको नहीं मानते ॥ १६ ॥ क्योंकि वे कहते हैं कि ऐसे अमात्य, अन्य अमात्योचित गुणोंसे

रहित ही रहते हैं ॥ १७ ॥ इसलिये अमात्य उन्हींको बनाया जाय, जिनके पिता, पितामह आदि इस पदपर कार्य करते चले आये हैं ॥ १८ ॥ क्योंकि वे पहिले-सेही अमात्य पदके सम्पूर्ण व्यवहारोंसे परिचित होजाते हैं ॥ १९ ॥

ते ह्येनमपचरन्तमपि न त्यजन्ति सगन्धत्वात् ॥ २० ॥ अमानुषेष्वपि चैतद्दृश्यते ॥ २१ ॥ गावो ह्यसगन्धं गोगणमतिक्रम्य सगन्धेष्वेवावतिष्ठन्त इति ॥ २२ ॥

और इसीलिये वे अपना अपकार किये जानेपर भी, अपने मालिकको सम्बन्धी या परिचित होनेके कारण कभी नहीं छोड़ते ॥ २० ॥ यह बात पशुओंमें भी देखी जाती है ॥ २१ ॥ गोएं अपने अपरिचित गो-समूहको छोड़कर परिचित समूहमें ही जाकर ठहरती हैं ॥ २२ ॥

नेति वातव्याधिः ॥ २३ ॥ ते ह्यस्य सर्वमपगृह्य स्वामिवत्प्रचरन्तीति ॥२४॥ तस्मान्नीतिविदो नवानमात्यान्कुर्वीत ॥२५॥ नवास्तु यमस्थाने दण्डधरं मन्यमाना नापराध्यन्तीति ॥ २६ ॥

परन्तु आचार्य उद्धव इस सिद्धान्तको भी नहीं मानते ॥ २३ ॥ उनका कहना है कि इसप्रकारके मन्त्री, राजाके सर्वस्वको अपने अधीन करके, राजाके समान स्वतन्त्र वृत्ति होजाते हैं ॥ २४ ॥ इसलिये नीति शास्त्रमें निपुण, नवीन पुरुषोंको ही अमात्य नियुक्त करे ॥ २५ ॥ इसप्रकारके पहिलेसे अपरिचित अमात्य, दण्ड धारण करनेवाले राजाको यमके स्थानमें समझते हुए, कभी उसका कोई अपराध नहीं करते ॥ २६ ॥

नेति बाहुदन्तीपुत्रः ॥ २७ ॥ शास्त्रविददृष्टकर्मा कर्मसु विषादं गच्छेत् ॥ २८ ॥ अभिजनप्रज्ञाशौचशौर्यानुरागयुक्तानमात्यान्कुर्वीत ॥ २९ ॥ गुणप्राधान्यादिति ॥ ३० ॥

परन्तु आचार्य बाहुदन्तीपुत्र (इन्द्र) इस मतको भी नहीं मानते ॥ २८ ॥ उनका कहना है, कि नीति आदि शास्त्रोंमें निपुण भी पुरुष, अमात्यके कार्योंसे अपरिचित होनेके कारण, उनमें असफल होसकता है ॥ २८ ॥ इसलिये ऐसे पुरुषोंको ही अमात्य नियुक्त किया जावे, जो कि कुलीन, बुद्धिमान्, पवित्र हृदय, शूर और स्वामीमें अनुराग रखनेवाले हों ॥ २९ क्योंकि अमात्यमें गुणोंकी प्रधानता होनी ही अत्यन्त आवश्यक है ॥ ३० ॥

सर्वमुपपन्नमिति कौटल्यः ॥३१॥ कार्यसामर्थ्याद्धि पुरुषसामर्थ्यं कल्प्यते सामर्थ्यतश्च ॥ ३२ ॥

कौटल्य आचार्यका मत है कि भारद्वाजके सिद्धान्तसे लगाकर अभीतक जो कुछ अमात्यके सम्बन्धमें कहा गया है वह सबही ठीक है ॥ ३१ ॥ क्योंकि पुरुषके सामर्थ्यकी व्यवस्था, उनके किये कार्योंके सफल होनेपर तथा उनके विद्या बुद्धिके बलपरही की जाती है ॥ ३२ ॥

विभज्यामात्यविभवं देशकालौ च कर्म च ।
अमात्याः सर्व एवैते कार्याः स्युर्न तु मान्त्रिणः ॥३३॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे अमात्योत्पत्तिः अष्टमो ऽध्यायः ॥८॥

इसलिये राजा, सहाध्यायी आदिका भी सर्वथा परित्याग न करे, किन्तु इन सबको ही, उनकी कार्य करनेकी शक्तिके अनुसार, उनके बुद्धि आदि गुण, देश, काल, तथा कार्योंको अच्छी तरह विवेचन करके अमात्य पदपर नियुक्त करे। परन्तु इनको अपना मन्त्री कदापि न बनावे। तात्पर्य यह कि सहाध्यायी आदिको उनके योग्य कार्योंपर तो नियुक्त करदे, पर उन्हें अपना मन्त्री अर्थात् सलाहकार न बनावे, मन्त्री वे ही हों जो सर्वगुण सम्पन्न हों ॥ ३३ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें आठवां अध्याय समाप्त ।

नौवां अध्याय

५ प्रकरण

मन्त्री और पुरोहितकी नियुक्ति ।

जानपदो ऽभिजातः स्ववग्रहः कृतशिल्पश्चक्षुष्मान्प्राज्ञो धारयिष्णुर्दक्षो वाग्मी प्रगल्भः प्रतिपत्तिमानुत्साहप्रभावयुक्तः क्लेशसहः शुचिर्मैत्रो दृढभक्तिः शीलबलारोग्यसत्त्वसंयुक्तः स्तम्भचापल्यवर्जितः संप्रियो वैराणामकर्तेत्यमात्यसंपत् ॥ १ ॥

अपने देशमें उत्पन्न हुआ २, कुलीन; जो बुराईयोंसे झट हटाया जासके, अथवा जिसके बन्धु बान्धव भी श्रेष्ठ हों; जो हाथी घोड़े आदिपर चढ़ने, रथ चलाने युद्ध करने तथा गाने बजाने आदिकी विद्याओंमें भी निपुण हो; अर्थ शास्त्रको जानने वाला; स्वाभाविक बुद्धिसे युक्त; स्मरण शक्तिसम्पन्न; चतुर; मधुर; और युक्त बोलने वाला; प्रगल्भ (दबंग); प्रतीकार और प्रतिवाद करने में समर्थ; उत्साही तथा प्रभाव शाली; क्लेशोंको सहन करने वाला; पवित्र हृदय; सबके साथ मधुर व्यवहार करने वाला; स्वामीमें दृढ़ अनुराग रखनेवाला; शील, बल, आरोग्य तथा धैर्यशाली; निरभिमान तथा स्थिर स्वभाव वाला; सौम्य

आकृति; तथा स्त्री भूमि आदिके निमित्त शत्रुता न करने वाला पुरुष प्रधान-मन्त्री होना चाहिये ॥ १ ॥

अतः पादार्धगुणहीनौ मध्यमावरौ ॥ २ ॥ तेषां जनपद-मवग्रहं चाप्ततः परीक्षेत ॥ ३ ॥ समानविद्येभ्यः शिल्पं शास्त्र-चक्षुष्मत्तां च ॥ ४ ॥

इन सब गुणोंमेंसे चौथाई गुण जिसमें नहीं, वह मध्यम; और आधे गुण जिसमें नहीं, वह निकृष्ट प्रधानामात्य समझा जाता है ॥ २ ॥ राजा, इन सब गुणोंमेंसे, मन्त्रीके निवास स्थान (उत्पत्ति स्थान) और बन्धु बान्धव आदि का पता आप्त पुरुषोंके द्वारा लगावे ॥ ३ ॥ हाथी आदिकी सवारी और शास्त्र नैपुण्यकी परीक्षा उनके सहपाठियोंके द्वारा करे ॥ ४ ॥

कर्मारम्भेषु प्रज्ञां धारयिष्णुतां दाक्ष्यं च ॥५॥ कथायोगेषु वाग्मित्वं प्रागल्भ्यं प्रतिभानवत्त्वं च ॥ ६ ॥ आपद्युत्साहप्रभावौ क्लेशसहत्वं च ॥ ७ ॥ संव्यवहाराच्छौचं मैत्रतां दृढभक्तित्वं च ॥ ८ ॥ संवासिभ्यः शीलबलारोग्यसत्त्वयोगमस्तम्भमचापल्यं च ॥ ९ ॥ प्रत्यक्षतः संप्रियत्वमवैरित्वं च ॥ १० ॥

प्रज्ञा, स्मरण शक्ति और चतुराईकी परीक्षा कार्योंके करनेमें ॥ ५ ॥ वाक्पटुता, प्रगल्भता तथा प्रतिभाकी जांच व्याख्यानों या सभाओंमें ॥ ६ ॥ उत्साह, प्रभाव और सहन शक्तिकी परीक्षा, आपत्तिके समय ॥ ७ ॥ हृदयकी पवित्रता, सबसे मैत्रीभाव और दृढ भक्तिकी परीक्षा व्यवहारसे ॥ ८ ॥ शील, बल, आरोग्य, धैर्य, निरभिमानिता और स्थिर स्वभावकी परीक्षा सहवासी पुरुषोंके द्वारा ॥ ९ ॥ सौम्य आकृति तथा प्रीतिकी परीक्षा, स्वयं अपने अनुभवसे राजा करे ॥ १० ॥

प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया हि राजवृत्तिः ॥११॥ स्वयंदृष्टं प्रत्यक्षं परोपदिष्टं परोक्षम् ॥ १२ ॥

क्योंकि राजाका व्यवहार प्रत्यक्ष, परोक्ष और अनुमेय तीनोंही प्रकारका होता है, इसलिये पिछले सूत्रोंमें, तीनोंही प्रमाणोंसे परीक्षा करनेका विधान किया है ॥ ११ ॥ अपने आप देखा हुआ व्यवहार प्रत्यक्ष, तथा दूसरोंसे बतलाया हुआ परोक्ष कहाता है ॥ १२ ॥

कर्मसु कृतेनाकृतावेक्षणमनुमेयम् ॥ १३ ॥ अयौगपद्यात्तु कर्मणामनेकत्वादनेकस्थत्वाच्च देशकालात्ययो मा भूदिति परो-

क्षममात्यैः कारयेदित्यमात्यकर्म ॥ १४ ॥

कार्योंमें, किये हुए कार्यसे न किये हुए कार्यका समझना या देखना अनुमेय कहाजाता है ॥ १३ ॥ क्योंकि राजकीय कार्य एक साथ नहीं किये जा-सकते, वे बहुत प्रकारके और अनेक स्थानोंमें होनेवाले होते हैं, ठीक २ स्थान और समयोंमें अकेलाही राजा उन सब कार्योंको नहीं कर सकता, इसलिये जिससे कि उन कार्योंके उचित देश और कालका अति क्रमण नहो, इसप्रकार राजा अमात्योंके द्वाराही परोक्ष रूपमें उन सब कार्योंको करवावे, इसी लिये उपर्युक्त अमात्योंकी परीक्षा और नियुक्तिका विधान किया गया है ॥ १४ ॥

पुरोहितमुदितोदितकुलशीलं षडङ्गे वेदे दैवे निमित्त दण्ड-नीत्यां चाभिविनीतमापदां दैवमानुषीणामथर्वभिरुपायैश्च प्रति-कर्तारं कुर्वीत ॥ १५ ॥ तमाचार्यं शिष्यः पितरं पुत्रो भृत्यः स्वामिनमिव चानुवर्तेत ॥ १६ ॥

शास्त्र प्रतिपादित विद्या आदि गुणोंसे युक्त; उन्नत कुलशील; षडङ्ग वेदमें, ज्योतिष शास्त्रमें, शकुन शास्त्रमें, तथा दण्डनीति शास्त्रमें अत्यन्त निपुण; दैवी और मानुषी आपत्तियोंका अथर्ववेद आदिमें बताये हुए उपायोंसे प्रतीकार करनेवाले व्यक्तियोंको पुरोहित नियुक्त किया जावे ॥ १५ ॥ और राजा, उस पुरोहितका इसप्रकार अनुगामी बना रहे, जैसे कि शिष्य आचार्यका पुत्र पिताका और भृत्य स्वामीका अनुगामी होता है ॥ १६ ॥

ब्राह्मणेनैधितं क्षत्रं मन्त्रिमन्त्राभिमन्त्रितम् ।
जयत्यजितमत्यन्तं शास्त्रानुगतशस्त्रितम् ॥ १७ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे मन्त्रिपुरोहितोत्पत्तिः नवमो ऽध्यायः॥९॥

इसप्रकार ब्राह्मण पुरोहितसे बढ़ाया हुआ, तथा उपर्युक्त गुणी मन्त्रियों की सलाहसे संस्कृत हुआ २, शास्त्रोंके अनुसार आचरण करने वाला क्षत्रियकुल; बिनाही युद्धके अजेय और अलभ्य वस्तुओंको भी अवश्यही अपने वशमें कर लेता है ॥ १७ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें नौवां अध्याय समाप्त ।

दसवां अध्याय ।

६ प्रकरण ।

गुप्तरीतिसे अमात्योंके हार्दिक सरल तथा कुटिल भावोंकी परीक्षा ।

मन्त्रिपुरोहितसखः सामान्येष्वधिकरणेषु स्थापयित्वामात्यानुपधाभिः शोधयेत् ॥ १ ॥ पुरोहितमयाज्ययाजनाध्यापने नियुक्तममृष्यमाणं राजावक्षिपेत् ॥ २ ॥

साधारण अधिकार पदोंपर अमात्योंको नियुक्त करके, मन्त्री और पुरोहितके सहित राजा, उनके मनकी पवित्रताका परीक्षण वक्ष्यमाण गुप्त रीतियोंसे करे ॥ १ ॥ राजा, नीच कुलोत्पन्न किसी अस्पृश्य व्यक्तिके यहां यज्ञ करानेके लिये या उसे पढ़ानेके लिये पुरोहितको नियुक्त करे, जब पुरोहित इस बातसे रुष्ट होवे तो उसको उसके अधिकार पदसे गिरादेवे ॥ २ ॥

स सत्त्रिभिः शपथपूर्वमेकैकममात्यमुपजापयेत् ॥ ३ ॥ अधार्मिकोऽयं राजा साधुधार्मिकमन्यमस्य तत्कुलीनमवरुद्धं कुल्यमेकप्रग्रहं सामन्तमाटविकमौपपादिकं वा प्रतिपादयामः ॥ ४ ॥

इसप्रकार तिरस्कृत हुआ पुरोहित, सत्त्रियों (गुप्तचरका कार्य करने वाले पुरुष या स्त्रियां) के द्वारा शपथ-पूर्वक एक २ अमात्यको राजासे इसप्रकार भिन्न करे ॥ ३ ॥ "देखो यह राजा बड़ा अधार्मिक है; इसके ही वंशमें उत्पन्न हुए किसी अन्य श्रेष्ठ सर्वपूज्य धार्मिक व्यक्तिको; अथवा समीप देशके किसी सामन्तको; या आटविक (जंगलके स्वामी) अथवा जिसको हम सब मिलकर निश्चय करलें उसे, इस राजाके स्थानपर नियुक्त करना चाहिये ॥ ४ ॥

सर्वेषामेतद्रोचते कथं वा तवेति ॥ ५ ॥ प्रत्याख्याने शुचिरिति धर्मोपधा ॥ ६ ॥

यह बात और सब लोगोंको अच्छी लगी है, उन्होंने इसको स्वीकार कर लिया है, अब बताओ तुम्हारी इसमें क्या सम्मति है" ॥ ५ ॥ यदि वह इस बातका समर्थन न करे, तो उसे शुचि अर्थात् पवित्र हृदय समझा जावे । यह धर्मोपधा अर्थात् धर्मके द्वारा गुप्तरीतिसे अमात्योंकी पवित्रताका पता लगाना कहा जाता है ॥ ६ ॥

सेनापतिरसत्प्रतिग्रहणावक्षिप्तः सत्त्रिभिरेकैकममात्यमुपजापयेल्लोभनीयेनार्थेन राजविनाशाय ॥ ७ ॥

इसीप्रकार राजा, किसी अपूज्य व्यक्तिका सत्कार करनेके लिये सेनापतिसे कहे, इस बातसे सेनापति जब रुष्ट होने लगे तो राजा पूर्वोक्त रीतिसे उसका तिरस्कार करे, और वह सत्त्रियोंके द्वारा एक २ अमात्यको धनका लोभ देकर राजाका नाश करनेके लिये, राजासे उनका भेद डाल देवे ॥ ७ ॥

सर्वेषामेतद्रोचते कथं वा तवेति ॥ ८ ॥ प्रत्याख्याने शुचिरित्यर्थोपधा ॥ ९ ॥

और फिर पूर्वोक्त रीतिसे कहे कि इस बातको सबने स्वीकार करलिया है, तुम्हारी इसमें क्या सम्मति है ॥ ८ ॥ यदि वह इस बातका समर्थन न करे तो उसे शुचि समझा जावे । यह अर्थोपधा अर्थात् धनका लोभ देकर गुप्तरीतिसे अमात्योंके हृदयकी पवित्रताका पता लगाना कहा जाता है ॥ ९ ॥

परिव्राजिका लब्धविश्वासान्तःपुरे कृतसत्कारा महामात्रमेकैकमुपजपेत् ॥ १० ॥ राजमहिषी त्वां कामयते कृतसमागमोपाया महानर्थश्च ते भविष्यतीति ॥ ११ ॥ प्रत्याख्याने शुचिरिति कामोपधा ॥ १२ ॥

किसी विश्वस्त साधुवेषधारिणी स्त्रीको अन्तः पुरमें. लेजाकर उसका अच्छीतरह सत्कार करे, और फिर वह महामात्रों (अमात्यों) के पास अलहदा २ जाकर उन्हें राजासे भिन्न करदेवे ॥ १० ॥ और कहे कि महारानी तुम्हें चाहती है, तुम्हारे साथ समागम करनेके लिये सब तरहके उपाय किये हुए हैं । इससे तुमको धनभी बहुत मिल जावेगा ॥ ११ ॥ यदि वह इस बातका प्रत्याख्यान करदे तो उसे शुचि समझा जावे । इसका नाम कामोपधा है ॥ १२ ॥

प्रवहणनिमित्तमेको ऽमात्यः सर्वानमात्यानावाहयेत् ॥ १३ ॥ तेनोद्वेगेन राजा तानवरुन्ध्यात् ॥ १४ ॥ कापटिकच्छात्रः पूर्वावरुद्धस्तेषामर्थमानावक्षिप्तमेकैकममात्यमुपजपेत् ॥ १५ ॥

नौका आदिकी सैर करनेके लिये जब कोई एक अमात्य, अन्य सब अमात्योंको इकट्ठा करे ॥ १३ ॥ तो राजा उनके इस कार्यसे अपने उद्वेगको दिखाकर उनपर जुरमाना करके अथवा पदसे उतारकर उनका अपमान करे ॥ १४ ॥ तदनन्तर राजासे, पहिले अपकृत हुआ २ कपटवेषी छात्र (छात्रके वेषमें गुप्तचर) अर्थ और मानसे तिरस्कृत हुए एक एक अमात्यके पास जावे, और उन्हें राजा से इसप्रकार भिन्न करे ॥ १५ ॥

असत्प्रवृत्तो ऽयं राजा ॥ १६ ॥ सहसैनं हत्वान्यं प्रतिपादयामः ॥ १७ ॥ सर्वेषामेतद्रोचते कथं वा तवेति ॥१८॥ प्रत्याख्याने शुचिरिति भयोपधा ॥ १९ ॥

यह राजा अत्यन्त असन्मार्गमें प्रवृत्त हुआ २ है ॥ १६ ॥ इसे सहसा मार कर, इसके स्थानपर किसी दूसरे धार्मिक राजाको गद्दीपर बिठाना चाहिये ॥ १७ ॥ इस बातको अन्य सभी अमात्योंने स्वीकार किया है, तुम्हारी इसमें क्या सम्मति है ॥ १८ ॥ यदि वह इस प्रस्तावको स्वीकार न करे तो उसे शुचि समझा जावे । इसका नाम भयोपधा है ॥ १९ ॥

तत्र धर्मोपधाशुद्धान्धर्मस्थीयकण्टकशोधनेषु स्थापयेत् ॥२०॥ अर्थोपधाशुद्धान्समाहर्तृसंनिधातृनिचयकर्मसु ॥ २१ ॥ कामोपधाशुद्धान्बाह्याभ्यन्तरविहाररक्षासु ॥ २२ ॥

इसप्रकार परीक्षा किये हुए इन अमात्योंमेंसे जो धर्मोपधासे परीक्षा किया गया हो, उसे धर्मस्थ (देखो-तृतीय अधिकरण) तथा कण्टकशोधन (देखो—चतुर्थ अधिकरण) कार्योंपर नियुक्त किया जावे ॥ २० ॥ जो अर्थोपधा शुद्ध हों, उनको समाहर्त्ता (कर वसूल करने वाले) और सन्निधाता (कोषाध्यक्ष) आदिके पदोंपर नियुक्त किया जावे ॥ २१ जो कामोपधा शुद्ध हों, उन्हें बाहर भीतरके राजकीय क्रीडास्थानों तथा स्त्रियोंकी रक्षापर नियुक्त किया जाय ॥ २२ ॥

भयोपधाशुद्धानासन्नकार्येषु राज्ञः ॥ २३ ॥ सर्वोपधाशुद्धान्मन्त्रिणः कुर्यात् ॥ २४ ॥ सर्वत्राशुचीन्खनिद्रव्यहस्तिवनकर्मान्तेषूपयोजयेत् ॥ २५ ॥

भयोपधा शुद्ध अमात्योंको राजा अपने समीपही किन्हीं कार्योंपर नियुक्त करे ॥ २३ ॥ जो सबतरहसे परीक्षा किये गये हों, उन्हें मन्त्री बनावे ॥ २४ ॥ तथा जो सब तरहकी परीक्षाओंमें अशुचि सिद्ध हुए हों, उन्हें, खान, लकड़ी आदिके जंगल, हाथीके जंगलोंमें जहां परिश्रम अधिक करना पड़े, नियुक्त करे ॥ २५ ॥

त्रिवर्गभयसंशुद्धानमात्यान्स्वेषु कर्मसु ।
अधिकुर्याद्यथाशौचमित्याचार्या व्यवस्थिताः ॥ २६ ॥

यह सब अन्य आचार्योंने व्यवस्थाकी है कि धर्म अर्थ काम और भयके द्वारा परीक्षा किये हुए अमात्योंको उनकी पवित्रताके अनुसार अपने कार्योंपर नियुक्त किया जावे ॥ २६ ॥

न त्वेव कुर्यादात्मानं देवीं वा लक्ष्मीश्वरः ।
शौचहेतोरमात्यानामेतत्कौटल्यदर्शनम् ॥ २७ ॥

आचार्य कौटल्यका तो अपना यह सिद्धान्त है कि राजा, अमात्योंकी परिक्षाके लिये बीचमें महारानी या अपने आपको कभी न डाले ॥ २७ ॥

न दूषणमदुष्टस्य विषेणेवाम्भसश्चरेत् ।
कदाचिद्धि प्रदुष्टस्य नाधिगम्येत भेषजम् ॥ २८ ॥

क्योंकि किसी दोष रहित अमात्यका छलमिश्रित गुप्त रीतियोंसे इसप्रकार ठगे जाना, कभी २, जलमें विष मिला देनेके बराबर होजाता है। यह अधिक सम्भव है कि फिर, बिगड़ा हुआ अमात्य किसी प्रकार भी न सुधारा जासके ॥ २८ ॥

कृता च कलुषा बुद्धिरुपधाभिश्चतुर्विधा ।
नागत्वान्तर्निवर्तेत स्थिता सत्त्ववतां धृतौ ॥ २९ ॥

छलपूर्वक गुप्त उपायोंसे भेदको प्राप्त कराई हुई धीर पुरुषोंकी बुद्धि, निश्चित अभिप्रेत फलको प्राप्त किये बिना फिर कभी विराम नहीं लेती ॥ २९ ॥

तस्माद्बाह्यमधिष्ठानं कृत्वा कार्ये चतुर्विधे ।
शौचाशौचममात्यानां राजा मार्गेत सत्त्रिभिः ॥ ३० ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे उपधाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानां दशमो ऽध्यायः ॥ १० ॥

इसलिये इन उपर्युक्त चारों प्रकारोंके गुप्त उपायोंमें, राजा किसी बाह्य वस्तुको ही लक्ष्य बनावे। और इसप्रकार गुप्तचरोंके द्वारा अमात्योंके प्रत्येक आन्तरिक बुरे या भले भावोंका अन्वेषण करता रहे ॥ ३० ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें दसवां अध्याय समाप्त ।

ग्यारहवां अध्याय ।

७ प्रकरण ।

गुप्तचर पुरुषोंकी स्थापना ।

उपधाभिः शुद्धामात्यवर्गो गूढपुरुषानुत्पादयेत् ॥ १ ॥ कापटिकोदास्थितगृहपतिकवैदेहकतापसव्यञ्जनान्सत्त्रितीक्ष्णरसदाभिक्षुकीश्च ॥ २ ॥

जिस राजाने धर्मोपधा आदि छलमूलक उपायोंसे अपने अमात्य वर्गकी अच्छी तरह जांच करली हो, वह गुप्तचर पुरुषोंकी नियुक्ति करे ॥ १ ॥ गुप्तचरोंके कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक, तापस, सत्री, तीक्ष्ण, रसद और भिक्षुकी आदि अनेक भेद हैं ॥ २ ॥

परमर्मज्ञः प्रगल्भः छात्रः कापटिकः ॥ ३ ॥ तमर्थमानाभ्यामुत्साह्य मन्त्री ब्रूयात् ॥ ४ ॥ राजानं मां च प्रमाणं कृत्वा यस्य यदकुशलं पश्यसि तत्तदानीमेव प्रत्यादिशेति ॥ ५ ॥

दूसरोंके गुप्त रहस्योंको जानने वाला, बड़ा प्रगल्भ तथा छात्रवेषमें रहने वाला गुप्तचर 'कापटिक' कहाता है ॥ ३ ॥ उसको बहुतसा धन देकर और सत्कारके द्वारा उत्साहित करके मन्त्री कहे ॥ ४ ॥ कि "तुम राजाको और मुझको प्रमाणभूत मानकर, जिसकी जो कुछ हानि होती देखो, उसी समय मुझे आकर बतलाओ" ॥ ५ ॥

प्रव्रज्याप्रत्यवसितः प्रज्ञाशौचयुक्त उदास्थितः ॥ ६ ॥ स वार्ताकर्मप्रदिष्टायां भूमौ प्रभूतहिरण्यान्तेवासी कर्म कारयेत् ॥७॥

बुद्धिमान्, पवित्र तथा सन्यासी वेषमें रहने वाले गुप्तचरका नाम उदास्थित है ॥ ६ ॥ वह अपने साथ बहुतसे विद्यार्थी और धन लेकर, जहां कृषि, पशुपालन तथा व्यापारके लिये स्थान नियत किया गया हो वहां जाकर, विद्यार्थियोंके द्वारा उपर्युक्त इन कार्योंको करवावे ॥ ७ ॥

कर्मफलाच्च सर्वप्रव्रजितानां ग्रासाच्छादनावसथान्प्रतिविदध्यात् ॥ ८ ॥ वृत्तिकामांश्चोपजपेत् ॥ ९ ॥ एतेनैव वेषेण राजार्थश्चरितव्यो भक्तवेतनकाले चोपस्थातव्यमिति ॥ १० ॥ सर्वप्रव्रजिताश्च स्वं स्वं वर्गमुपजपेयुः ॥ ११ ॥

उस कार्यके करनेसे जो कुछ आमदनी हो, उससे सब तरहके सन्यासियोंके भोजन वस्त्र और निवास स्थानका प्रबन्ध करे ॥ ८ ॥ जो सन्यासी नित्यही इसप्रकार भोजन वस्त्र आदि लेनकी इच्छा प्रकट करें उन्हें सब तरह वशमें करके समझा देवे, कि ॥ ९ ॥ 'इसही वेषसे तुम्हें राजाका कार्य करना चाहिये; और जब तुम्हारे भत्ते और वेतनका समय आवे, तो यहां उपस्थित होजाना ॥ १० ॥ इसी प्रकार प्रत्येक वर्गके संन्यासी, अपने २ वर्गके संन्यासियोंको समझावें ॥ ११ ॥

कर्षको वृत्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो गृहपतिकव्यञ्जनः ॥१२॥ स कृषिकर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेण ॥ १३ ॥

बुद्धिमान्, पवित्र हृदय गरीब किसानके वेषमें रहने वाले गुप्तचरको 'गृहपतिक' कहा जाता है ॥ १२ ॥ वह कृषि कार्यके लिये निर्दिष्ट कोई भूमि में जाकर 'उदास्थित' नामक गुप्तचरके समानही सब कार्य करावे ॥ १३ ॥

वाणिजको वृत्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो वैदेहकव्यञ्जनः ॥१४॥ स वणिक्कर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेण ॥ १५ ॥

बुद्धिमान्, पवित्र हृदय, गरीब व्यापारीके वेषमें रहने वाले गुप्तचरका नाम 'वैदेहक' है ॥ १४ ॥ वह व्यापार कार्यके लिये निर्दिष्ट कोई भूमिमें जाकर, अन्य सब कार्य 'उदास्थित' नामक गुप्तचरके समानही करावे ॥ १५ ॥

मुण्डो जटिलो वा वृत्तिकामस्तापसव्यञ्जनः ॥ १६ ॥ स नगराभ्याशे प्रभूतमुण्डजटिलान्तेवासी शाकं यवसमुष्टिं वा मासद्विमासान्तरं प्रकाशमश्नीयात् ॥ १७ ॥ गूढमिष्टमाहारम् ॥ १८ ॥

मुण्ड अथवा जटिल वेषमें रहकर, जीविकाके लिये राजाका काम करने वाला गुप्तचर 'तापस' कहाता है ॥ १६ ॥ वह कहीं नगरके पासही रहकर, बहुतसे मुण्ड अथवा जटिल विद्यार्थियोंको लेकर, हराशाक या मुट्ठीभर नाज महीने दो महीनेतकमें प्रकाश रूपमें खाता रहे ॥ १७ ॥ और छिपे तौरपर जो अपना रुचिकर आहार हो उसे खाता रहे ॥ १८ ॥

वैदेहकान्तेवासिनश्चैनं समिद्धयोगैरर्चयेयुः ॥ १९ ॥ शिष्याश्चास्यावेदयेयुरसौ सिद्धः सामेधिक इति ॥ २० ॥ समेधाशास्तिभिश्चाभिगतानामङ्गविद्यया शिष्यसंज्ञाभिश्च कर्माण्यभिजनेऽवसितान्यादिशेत् ॥ २१ ॥

तथा व्यापारी गुप्तचरके समीप रहने वाले कार्यकर्त्ता, इसको खूब अच्छी तरह धन आदि देकर इसकी पूजा करें ॥ १९ ॥ और इसके शिष्य चारों ओर इस बातको प्रसिद्ध करदें, कि ये बड़े महात्मा योगी हैं, तथा भविष्यमें होने वाली सम्पत्तियोंको भी बता देते हैं ॥ २० ॥ अपनी भावी सम्पत्तिको जाननेकी अभिलाषासे आये हुए पुरुषोंके कुटुंबमें सम्पन्न हुए कार्योंको, उनके शरीर आदि के चिन्होंको देखकर, तथा अपने शिष्योंके इशारोंके मुताबिक ठीक २ बतला देवें ॥ २१ ॥

अल्पलाभमग्निदाहं चोरभयं दूष्यवधं तुष्टदानं विदेशप्रवृत्तिज्ञानमिदमद्य श्वो वा भविष्यतीदं राजा करिष्यतीति ॥ २२ ॥ तदस्य गूढाः सत्त्रिणश्च संपादयेयुः ॥ २३ ॥

तथा यह भी बतावे कि, अमुक कार्योंमें थोड़ा लाभ होगा, आग लगने और चोरोंके भयको भी बतावे; दूष्य पुरुषोंके बध और सन्तुष्ट होनेपर इनाम देनेको भी बतावे, दूर देशके समाचारोंको भी बतावे, अमुक कार्य आज या कल को होगा, तथा अमुक कार्यको राजा करेगा, इत्यादि बातोंको भी कहे ॥ २२ ॥ उस तापसके इस कथनको साधारण गुप्त पुरुष तथा सत्री पूरा करें ॥ २३ ॥

सत्त्वप्रज्ञावाक्यशक्तिसंपन्नानां राजभाव्यमनुव्याहरेन्मन्त्रिसंयोगं च ॥ २४ ॥ मन्त्री चैषां वृत्तिकर्मभ्यां वियतेत ॥ २५ ॥

प्रश्न पूछने वालोंमें जो धैर्य, बुद्धि तथा वाक्पटुत्व आदि शक्तियोंसे युक्त हों, उन्हें कहे कि, तुम्हें राजाकी ओरसे कुछ धन मिलेगा और मन्त्रीके साथ तुम्हारी मुलाक़ात होगी ॥ २४ ॥ मुलाक़ात होनेपर मन्त्री भी इन पुरुषोंकी जीविका और व्यापारके लिये विशेषतौरपर यत्न करे ॥ २५ ॥

ये च कारणादभिक्रुद्धास्तानर्थमानाभ्यां शमयेत् ॥ २६ ॥ अकारणक्रुद्धांस्तूष्णींदण्डेन राजद्विष्टकारिणश्च ॥ २७ ॥

जो किसी विशेष कारणसे क्रुद्ध होगये हों, उन्हें धन और सत्कारके द्वारा शान्त करे ॥ २६ ॥ जो विना कारणही क्रुद्ध होगये हों, तथा राजाके साथ द्वेष करते हों, उन्हें चुपचापही मरवा डाले ॥ २७ ॥

**पूजिताश्चार्थमानाभ्यां राज्ञा राजोपजीविनाम् ।
जानीयुः शौचमित्येताः पञ्च संस्थाः प्रकीर्तिताः ॥ २८ ॥**

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे गूढपुरुषोत्पत्तौ संस्थोत्पत्तिः एकादशो ऽध्यायः ॥ ११ ॥

इसप्रकार धन और मानके द्वारा राजासे सत्कृत हुए २ गूढ पुरुष, अमात्य आदि राजोपजीवी पुरुषोंके सद् व्यवहारोंको अच्छी तरह जानें। इस अध्यायमें 'कापटिक' आदि पांच प्रकारके गुप्तचर पुरुषोंका निरूपण कर दिया गया है ॥ २८ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें ग्यारहवां अध्याय समाप्त ।

बारहवां अध्याय

८ प्रकरण ।

गुप्तचरों की कार्यों पर नियुक्ति ।

ये चाप्यसंबन्धिनो ऽवश्यभर्तव्यास्ते लक्षणमङ्गविद्यां जम्भकविद्यां मायागतमाश्रमधर्मं निमित्तमन्तरचक्रमित्यधीयानाः सत्रिणः ॥ १ ॥ संसर्गविद्या वा ॥ २ ॥

तथा जो राजाके सम्बन्धी हों, जिनका पालन पोषण करना राजाके लिये अवश्यंभावी है; ऐसे पुरुष जब सामुद्रिक आदि लक्षणशास्त्रको, शिक्षा व्याकरण आदि अङ्गों अथवा शरीरके अङ्गोंसे शुभाशुभ बताने वाली विद्याको, वशीकरण अन्तर्धान आदिकी विद्याको, इन्द्रजाल विद्या, मन्वादि धर्मशास्त्रोंमें प्रतिपादित आश्रमधर्म, शकुनशास्त्र, पाक्षिशास्त्र, (अन्तरचक्र=पाक्षियोंके द्वारा शुभाशुभ फलका बतलाने वाला शास्त्र), तथा कामशास्त्र और उससे सम्बन्ध रखने वाले गीत एवं नृत्त आदि शास्त्रोंको अच्छी तरह पढ़कर जानने वाले हों, तो सत्री कहे जाते हैं । (पहिले अध्यायमें जिन कापटिक आदि पांच प्रकारके गुप्तचर पुरुषोंका निरूपण किया है, वे एकही स्थानमें रहकर कार्य करनेके कारण 'संस्था' कहे जाते हैं । और सत्री आदि गुप्तचर पुरुष 'संचार' कहाते हैं, क्योंकि ये घूमते रहकर ही कार्यका सम्पादन करते हैं ।) ॥ १, २ ॥

ये जनपदे शूरास्त्यक्तात्मानो हस्तिनं व्यालं वा द्रव्यहेतोः प्रतियोधयेयुस्ते तीक्ष्णाः ॥ ३ ॥ ये बन्धुषु निःस्नेहाः क्रूराश्चालसाश्च ते रसदाः ॥ ४ ॥

जो अपने देशमें रहने वाले शूरवीर पुरुष, देहकी कुछ परवाह न करने वाले, हाथी अथवा व्याघ्र आदि हिंसक प्राणियों का द्रव्यके कारण मुकाबला करें, वे तीक्ष्ण कहे जाते हैं ॥ ३ ॥ जो अपने भाई बन्धुओंमें भी स्नेह रखने वाले नहीं, बड़े क्रूर और उत्साह रहित हों, वे 'रसद' कहे जाते हैं । सम्भवतः यह नाम इनको इसी लिये दिया गया है कि ये किसीको बिषतक देदेनेमें भी संकोच नहीं करते ॥ ४ ॥

परिव्राजिका वृत्तिकामा दरिद्रा विधवाप्रगल्भा ब्राह्मण्यन्तःपुरे कृतसत्कारा महामात्रकुलान्यधिगच्छेत् ॥ ५ ॥ एतया मुण्डा वृषल्यो व्याख्याताः ॥ ६ ॥ इति संचाराः ॥ ७ ॥

वृत्ति (जीविका-भोग) की कामना रखने वाली, दरिद्र, प्रौढ़, विधवा ब्राह्मणी अन्तःपुरमें सत्कार पाई हुई जो प्रधान आमात्योंके घर अधिक जावे वह परिव्राजिका कही जाती है ॥ ५ ॥ इसी तरह मुण्डा (बौद्ध भिक्षुकी) और शूद्राओंको भी समझ लेना चाहिये ॥ ॥ ६ ॥ इस प्रकार ये सत्री आदि गुप्त पुरुष संचार शब्दसे कहे जाते हैं ॥ ७ ॥

तान्राजा स्वविषये मन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजदौवारिकान्तर्वंशिकप्रशास्तृसमाहर्तृसंनिधातृप्रदेष्टृनायकपौरव्यावहारिककार्--

र्तान्तिकमन्त्रिपरिषदध्यक्षदण्डदुर्गान्तपालाटविकेषु श्रद्धेयदेशवेष-शिल्पभाषाभिजनापदेशान्भक्तितः सामर्थ्ययोगाच्चापसर्पयेत् ॥८॥

इन सत्री आदि गुप्तचर पुरुषोंको राजा, अपनेही देशमें मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, प्रतीहारी (दौवारिक), अन्तःपुर रक्षक, छावनी का संस्थापक, कलक्टर, कोषाध्यक्ष, प्रदेष्टा (कण्टकशोधनका अधिकारी पुरुष= कमिश्नर), सूबेदार, नगरका मुखिया अथवा वकील, खानोंका निरीक्षक, मन्त्रि सभाका अध्यक्ष, सेनारक्षक, दुर्गरक्षक, सीमारक्षक, और जंगलका अधिपति इन लोगोंके समीप, विश्वसनीय देश वेषभूषा कारीगरी भाषा तथा अभिजन (खान्दान) से युक्त होने पर, इनकी भक्ति और सामर्थ्य को देखकर ही रवाना करे ॥ ८ ॥

तेषां बाह्यं चारं छत्रभृङ्गारव्यजनपादुकासनयानवाहनोपग्राहिणः तीक्ष्णा विद्युः ॥९॥ तं सत्त्रिणः संस्थास्वर्पयेयुः ॥ १० ॥

उनमें से तीक्ष्ण नामक गुप्तचर पुरुष, बाहरी उपकरण—छत्र, चामर, व्यजन, पादुका आसन, डोली (यान-दोलिका) और घोड़े आदिको पकड़ कर या लेकर अमात्य आदिकी सेवा करें, और उनके व्यवहारोंको जानें ॥ ९ ॥ सत्री नामक गुप्तचर पुरुष, इस प्रकार तीक्ष्ण पुरुषके द्वारा जाने हुए सब व्यवहारोंको, स्थानिक कापटिक आदि गुप्तचरोंको बतला देवें ॥ १० ॥

सूदारालिकस्नापकसंवाहकास्तरककल्पकप्रसाधकोदकपरिचारका रसदाः कुब्जवामनकिरातमूकबधिरजडान्धच्छद्मानो नटनर्तकगायनवादकवाग्जीवनकुशीलवाः स्त्रियश्चाभ्यन्तरं चारं विद्युः ॥ ११ ॥

मन्त्री आदिके घरके सब व्यवहारोंको सूद (पाचक), आरालिक (मांस आदि पकाने वाला), स्नान कराने वाला, हाथ पैर आदि दबाने वाला, बिस्तर बिछाने वाला, नाई, कपड़े आदि पहनाने वाला, जल भरने वाला, इनके भेसमें रसद नामक गुप्तचर पुरुष; और कुबड़े, बौने, किरात (जंगली आदमी), गूंगे, बहरे, मूर्ख, अन्धे आदिके भेसमें गुप्तचर पुरुष, तथा नट, नाचने गाने बजाने वाले, किस्से कहानी कहने वाले, कूदने फांदने आदि का तमाशा करने वाले, और खुफिया औरतें अच्छी तरह जानें, अर्थात् प्रत्येक बातका पता लगावें ॥ ११ ॥

तं भिक्षुक्यः संस्थास्वर्पयेयुः ॥ १२ ॥ संस्थानामन्तेवासिनः

संज्ञालिपिभिश्चारसंचारं कुर्युः ॥ १३ ॥ न चान्योन्यं संस्थास्ते वा विद्युः ॥ १४ ॥

और भिक्षुकी, उस जाने हुए सब व्यवहारको, स्थानिक कापटिक आदि गुप्तचरोंके पास निवेदन करदें ॥ १२ ॥ संस्थाओं (कापटिक आदि गुप्तचरों) के विद्यार्थी, अपने निजी संकेतके अनुसार बनाई हुई लिपियोंके द्वारा, उस जाने हुए व्यवहारको राजातक पहुंचावें ॥ १३ ॥ इस बातका पूरा ध्यान रखना चाहिये कि परस्पर एक दूसरेको संस्था या संचार, तथा संस्थाओंको संचार और संचारोंको संस्था न जानने पावें । अर्थात् गुप्तचरका कार्य करने वाला पुरुष अनावश्यक अन्य गुप्तचर व्यक्तिको न जान सके ॥ १४ ॥

भिक्षुकीप्रतिषेधे द्वाःस्थपरम्परा मातापितृव्यञ्जनाः शिल्पकारिकाः कुशीलवा दास्यो वा गीतपाठ्यवाद्यभाण्डगूढलेख्यसंज्ञाभिर्वा चारं निर्हारयेयुः ॥ १५ ॥

यदि अमात्य आदिके भीतर घरोंमें भिक्षुकीके जानेकी मनाई हो, तो द्वारपालोंके द्वारा (पहिला द्वारपाल दूसरेको, दूसरा तीसरेको, इसीप्रकार सबसे बाहरका द्वारपाल भिक्षुकीको बतादेवें) वह समाचार बाहर लाया जावे । यदि यहभी सम्भव न होसके, तो अन्तःपुरके परिचारकोंके माता पिता बनकर बूढे स्त्री पुरुष भीतर चले जावें, और वे पता लगावें । या रानियोंके बाल आदि संवारने वाली स्त्रियां, गाने बजाने वाली, तथा अन्य दासियोंके द्वारा; अथवा इशारोंसे भरहुए गीत, श्लोक पाठ, बाजे तथा बर्त्तन या टोकरियोंमें गूढ लेख डालकर, या अन्य प्रकारके संकेतोंसे भीतरके समाचारोंको बाहर लाया जावे ॥ १५ ॥

दीर्घरोगोन्मादाग्निरसविसर्गेण वा गूढनिर्गमनम् ॥ १६ ॥ त्रयाणामेकवाक्ये संप्रत्ययः ॥ १७ ॥

अथवा किसी भयङ्कर रोग या पागलपनके बहाने, आग लगाकर या ज़हर देकर (जिससे कि अन्तःपुरमें गड़बड़ होजावे, उसी समय) चुपचाप गूढ़पुरुष बाहर निकल जावे ॥ १६ ॥ यदि तीन गूढ पुरुष, जो कि आपसमें एक दूसरेको न जानते हों, किसी समाचारको एक तरहसे ही बतावें, तो उसे ठीक समझना चाहिये ॥ १७ ॥

तेषामभीक्ष्णविनिपाते तूष्णींदण्डः प्रतिषेधो वा ॥ १८ ॥ कण्टकशोधनोक्ताश्चापसर्पाः परेषु कृतवेतना वसेयुः संपातनिश्चारार्थम् ॥ १९ ॥ त उभयवेतनाः ॥ २० ॥

यदि वे बार बार परस्पर विरुद्ध समाचार ही लावें, तो उन्हें उपांशु दण्ड दिया जाय, अर्थात् अकेलेमें चुपचाप पिटवाया जाय। अथवा नौकरीसे पृथक् कर दिया जाय ॥ १८ ॥ इन उपर्युक्त गुप्तचर पुरुषोंके अतिरिक्त कण्टक शोधन अधिकरणमें बताये हुए गूढ पुरुष भी नियुक्त किये जावें। उनको दूसरे देशोंमें वहींके अमात्य आदिके पास भेजा जावे; वे उनसे वेतन लेकर उनके पासही निवास करें और उनकी सेवा करें; जिससे कि उनके सबही गुप्त समाचार सरलतासे बाहर निकाले जासकें ॥ १९ ॥ ये गूढ पुरुष दोनोंही ओरसे पूरा वेतन लेने वाले होते हैं। अर्थात् विजिगीषु और शत्रु दोनोंकी ओरसे इनको वेतन मिलता है ॥ २० ॥

गृहीतपुत्रदारांश्च कुर्यादुभयवेतनान्।
तांश्चारिप्रहितान्विद्यात्तेषां शौचं च तद्विधैः ॥ २१ ॥

जिन व्यक्तियोंको दोनों ओरसे वेतन दिया जावे, उनके पुत्र और स्त्रियों-को विजिगीषु राजा, सत्कार पूर्वक अपने अधीन रक्खे। शत्रुकी ओरसे भेजेहुए उभय वेतन (दोनों ओरसे वेतन लेने वाले) व्यक्तियोंको, राजा अच्छी तरह जाने; और उनके द्वारा अपने उभयवेतन गूढ पुरुषोंकी पवित्रताको भी जाने ॥ २१ ॥

एवं शत्रौ च मित्रे च मध्यमे चावपेच्चरान्।
उदासीने च तेषां च तीर्थेष्वष्टादशस्वपि ॥ २२ ॥

इसप्रकार शत्रु, मित्र, मध्यम और उदासीन राजाओं तथा उनके मंत्री, पुरोहित, सेनापति आदि अठारह प्रकारके अनुचरोंके पास, सबही स्थानोंपर गुप्तचरोंको नियुक्त करे ॥ २२ ॥

अन्तर्गृहचरास्तेषां कुब्जवामनषण्ढकाः।
शिल्पवत्यः स्त्रियो मूकाश्चित्राश्च म्लेच्छजातयः ॥ २३ ॥

शत्रु, मित्र आदिके घरोंमें तथा उनके मन्त्री पुरोहित आदि अठारह प्रकारके अनुचरोंके भीतर घरोंमें खुफिया काम करने वाले कुबड़े, बौने, नपुंसक, कारीगर स्त्रियां, गूंगे, तथा अन्य नाना प्रकारके बहानोंको लेकर म्लेच्छ जातिके पुरुष नियुक्त किये जांय ॥ २३ ॥

दुर्गेषु वणिजः संस्था दुर्गान्ते सिद्धतापसाः।
कर्षकोदास्थिता राष्ट्रे राष्ट्रान्ते व्रजवासिनः ॥ २४ ॥

दुर्गोंमें, ठहरकर काम करने वाले व्यापारियोंको; दुर्गकी सीमापर सिद्ध तापसोंको; राज्यके अन्य स्थानोंमें कृषक और उदास्थित पुरुषोंको, तथा राज्यकी सीमापर गोपालोंको गुप्तचरका कार्य सौंपा जाय ॥ २४ ॥

वने वनचराः कार्याः श्रमणाटविकादयः ।
परप्रवृत्तिज्ञानार्थं शीघ्राश्चारपरंपराः ॥ २५ ॥

वनमें, शत्रुकी प्रत्येक गति विधिको जाननेके लिये चतुर, शीघ्र काम करने वाले श्रमण (वानप्रस्थ वृत्तिसे रहने वाले) और आटविक (अन्य जंगल वासी) पुरुषोंको, गूढपुरुषोंका कार्य करनेके लिये बराबर नियुक्त किया जाय ॥२५॥

परस्य चैते बोद्धव्यास्तादृशैरेव तादृशाः ।
चारसंचारिणः संस्था गूढाश्च गूढसंज्ञिताः ॥ २६ ॥

इसप्रकार छिपे हुए भी खुले तौरपर रहते हुए; ये लोग शत्रुकी ओरसे नियुक्त किये हुए सत्री तथा तीक्ष्ण आदि गूढ पुरुषोंको, तथा कापटिक, उदास्थित आदि संस्था नामक गुप्तचर पुरुषोंको, समानही खुफिया पुलिसके द्वारा पहंचानें। अर्थात् संस्था संस्थाओंको और सञ्चार सञ्चारोंको जाननेका यत्न करें ॥ २६ ॥

अकृत्यान्कृत्यपक्षीयैर्दर्शितान्कार्यहेतुभिः ।
परापसर्पज्ञानार्थं मुख्यानन्तेषु वासयेत् ॥ २७ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे गूढपुरुषोत्पत्तौ संचारोत्पत्तिः गूढपुरुषप्रणिधिः द्वादशो ऽध्यायः ॥ १२ ॥

शत्रुके वशमें अथवा उसके बहकानेमें न आने वाले अपने राष्ट्रके मुख्य पुरुषोंको, शत्रुके गुप्तचरोंको जाननेके लिये राष्ट्रकी सीमापर नियुक्त करे; और उनको यह समझा देवे कि शत्रुके जो आदमी हमारे वशमें आसकते हैं, उन्हें इन २ उपायोंसे अपने पक्षमें कर लिया जावे ॥ २७ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें बारहवां अध्याय समाप्त ।

तेरहवां अध्याय ।

९ प्रकरण ।

अपने देशमें कृत्य तथा अकृत्य पक्षकी रक्षा ।

अपने राष्ट्रके जो पुरुष शत्रुके वशमें आजाने वाले हों वे कृत्यपक्ष के, और जो शत्रुके वशमें न आसकें, वे अकृत्यपक्षके कहाते हैं, राजाको उचित है कि वह अपने देशके दोनों पक्षोंके मनुष्योंकी इसप्रकार देख भाल रक्खे, या उनकी रक्षा करे, जिससे कि वे शत्रुके वशमें कदापि न जासकें ।

कृतमहामात्रापसर्पः पौरजानपदानपसर्पयेत् ॥१॥ सत्त्रिणो द्वंद्विनस्तीर्थसभाशालापूगजनसमवायेषु विवादं कुर्युः ॥ २ ॥

प्रधान अमात्य, मन्त्री, पुरोहित आदिके समीप गुप्तचरोंको नियुक्त करके फिर नगर वासी तथा जनपद निवासी पुरुषोंके अनुराग और अपरागको जाननेके लिये वहांपर भी गुप्तचर पुरुषोंको नियुक्त करे ॥१॥ गुप्तचर पुरुष आपसमें झगड़ पड़ें, और नदी आदिके तीर्थ स्थानोंमें, ब्राह्मण आदिकी सभाओंमें, भोजन तथा पीने आदिकी दूकानोंमें, राजकीय कर्मचारियोंके समूहमें, तथा अन्य नाना प्रकारके पुरुषोंके झुण्डोंमें, निम्नलिखित रीतिसे आपसमें विवाद करना प्रारम्भ करें ॥ २ ॥

सर्वगुणसंपन्नश्चायं राजा श्रूयते ॥ ३ ॥ न चास्य कश्चिद्गुणो दृश्यते यः पौरजानपदान्दण्डकराभ्यां पीडयतीति ॥ ४ ॥ तत्र ये ऽनुप्रशंसेयुस्तानितरस्तं प्रतिषेधयेत् ॥ ५ ॥

'यह राजा सर्वगुणसम्पन्न सुना जाता है; ॥ ३ ॥ परन्तु इसका कोई गुण दीखता तो है नहीं, और उलटा, नगर निवासी तथा जनपद निवासी पुरुषोंको दण्ड देकर और अच्छी तरह कर वसूल करके पीड़ा पहुंचाता है।' इत्यादि ॥ ४ ॥ तदनन्तर उन तीर्थ आदि स्थानों पर, उपर्युक्त निन्दाके अनुसार राजाकी निन्दा करने वाले अन्य पुरुषोंको, तथा उस पूर्वनिन्दक गुप्तचरको रोककर दूसरा गुप्तचर कहे कि ॥ ५ ॥

मात्स्यन्यायाभिभूताः प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे ॥ ६ ॥ धान्यषड्भागं पण्यदशभागं हिरण्यं चास्य भागधेयं प्रकल्पयामासुः ॥ ७ ॥

देखो, पहिले प्रजामें यह अवस्था थी कि जैसे बड़ी मछली छोटी मछलीको खा जाती है, इसी प्रकार शक्तिशाली व्यक्ति निर्बल पुरुषोंको तंग करते थे, तब सम्पूर्ण प्रजाने मिलकर विवस्वान्के पुत्र मनुको अपना राजा बनाया ॥ ६ ॥ खेतीका छठा हिस्सा, व्यापारकी आमदनीका दसवां हिस्सा तथा कुछ सुवर्ण, राजाके लिये इतना भाग नियत कर दिया ॥ ७ ॥

तेन भृता राजानः प्रजानां योगक्षेमवहास्तेषां किल्बिषमदण्डकरा हरन्ति अयोगक्षेमवहाश्च प्रजानाम् ॥ ८ ॥ तस्मादुञ्छषड्भागमारण्यका अपि निवपन्ति तस्यैतद्भागधेयं यो ऽस्मान्गोपायतीति ॥ ९ ॥

उस हिस्सेको ग्रहण करते हुए राजाओंने प्रजाके योग क्षेमका भार अपने ऊपर लिया इस प्रकार राजा प्रयुक्त किये गये दण्ड और करोंसे प्रजाकी बुराइयोंको नष्ट करते हैं, तथा प्रजाके योग क्षेमका सम्पादन करते हैं ॥ ८ ॥ इसीलिये जंगलमें रहने वाले ऋषि मुनिजन भी, अपने बीने हुए नाज का भी छठा हिस्सा राजाको दे देते हैं, कि यह उस राजाका ही हिस्सा है, जो हमारी रक्षा करता है ॥ ९ ॥

इन्द्रयमस्थानमेतद्राजानः प्रत्यक्षहेडप्रसादाः ॥ १० ॥ तानवमन्यमानान्दैवो ऽपि दण्डः स्पृशति ॥ ११ ॥ तस्माद्राजानो नावमन्तव्या इति क्षुद्रकान्प्रतिषेधयेत् ॥ १२ ॥

ये राजा लोग प्रत्यक्षही प्रजाओंका निग्रह और उनपर अनुग्रह करने वाले होते हैं, इसीलिए ये इन्द्र और यमके समान हैं ॥ १० ॥ अतएव जो उनका तिरस्कार करता है, उसपर दैवी विपत्ति भी अवश्य आती है ॥ ११ ॥ इसलिये राजाओंका कभी तिरस्कार नहीं करना चाहिये, इत्यादि बातें कहकर साधारण जनताको राजाकी निन्दा करने से रोक देवे ॥ १२ ॥

किंवदन्तीं च विद्युः ॥ १३ ॥ ये चास्य धान्यपशुहिरण्यान्याजीवन्ति तैरुपकुर्वन्ति व्यसने ऽभ्युदये वा कुपितं बन्धुं राष्ट्रं वा व्यावर्तयन्त्यमित्रमाटविकं वा प्रतिषेधयन्ति तेषां मुण्डजटिलव्यञ्जनास्तुष्टातुष्टत्वं विद्युः ॥ १४ ॥

गुप्तचर पुरुष किंवदन्ती अर्थात् अफवाहोंको भी जानें ॥ १३ ॥ जो पुरुष धान्य, पशु तथा हिरण्य आदि पदार्थोंको राजाके लिए देते हैं, या व्यसन अथवा अभ्युदयके समयमें धान्य आदिके द्वारा राजाका उपकार करते हैं, या कुपित हुए बन्धु बान्धव तथा अन्य जनताको क्रोध करने से रोक देते हैं; इस प्रकारके लोगोंकी प्रसन्नता और अप्रसन्नताको भी, मुण्ड अथवा जटिल वेषमें रहने वाले गुप्तचर जानें ॥ १४ ॥

तुष्टानर्थमानाभ्यां पूजयेत् ॥ १५ ॥ अतुष्टांस्तुष्टिहेतोस्त्यागेन साम्ना च प्रसादयेत् ॥ १६ ॥ परस्पराद्वा भेदयेदेनान्सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धेभ्यश्च ॥ १७ ॥

जो राजासे सन्तुष्ट अर्थात् प्रसन्न न हों, उन्हें धन और सत्कार आदिसे और अधिक सत्कृत करे ॥ १५ ॥ तथा जो प्रसन्न न हों, उन्हें प्रसन्न करनेके लिए धन आदि देवे; और साम अर्थात् सान्त्वनासे भी उन्हें प्रसन्न करे।

॥१६॥ अथवा इन अप्रसन्न व्यक्तियोंमें परस्पर ही भेद डालदे, और सामन्त आटविक तथा उनके खान्दानी और मिलने जुलने वाले लोगोंसे भी इनका भेद करवा दे। जिससे कि ये सन्तुष्ट पुरुष सामन्त आदिको बहका न सकें। ॥ १७ ॥

तथाप्यतुष्यतो दण्डकरसाधनाधिकारेण वा जनपदविद्वेषं ग्राहयेत् ॥ १८ ॥ विद्विष्टानुपांशुदण्डेन जनपदकोपेन वा साधयेत् ॥ १९ ॥

यदि फिर भी ये अप्रसन्नही रहें, अपने वशमें न आवें, तो दण्ड सम्बन्धी अधिकारोंके द्वारा, अथवा कर सम्बन्धी अधिकारोंके द्वारा सम्पूर्ण जनपदके साथ इनका द्वेष करा देवें ॥ १८ ॥ जब जनपद निवासी लोग इनसे द्वेष करने लगें, तो इनका चुपचाप वध करवा दिया जाय अथवा जनपदके क्रोधके द्वाराही इनका दमन किया जाय। तात्पर्य यह है कि प्रान्त निवासी जनही अपना विरोधी होनेके कारण इसको मार डालें ॥ १९ ॥

गुप्तपुत्रदारानाकरकर्मान्तेषु वा वासयेत् ॥ २० ॥ परेषामास्पदभयात् ॥२१॥ क्रुद्धलुब्धभीतावमानिनस्तु परेषां कृत्याः ॥२२॥

अथवा इन अतुष्ट पुरुषोंके पुत्र और स्त्रियोंको अपने अधिकारमें करके, उन्हें खानके काम करनेमें नियुक्त कर देवें ॥ २० ॥ क्योंकि सम्भव है, ऐसा न करने पर ये लोग शत्रुसे जाकर मिल जांय ॥ २१ ॥ क्रोधी, लोभी, डरपोक और तिरस्कृत पुरुषही शत्रुके वशमें आजाने के योग्य होते हैं ॥ २२ ॥

तेषां कार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकव्यञ्जनाः परस्पराभिसंबन्धममित्राटविकप्रतिसंबन्धं वा विद्युः ॥ २३ ॥

इस प्रकारके लोगोंके आपसके सम्बन्धको, और शत्रुके साथ किये गये सम्बन्धको, कार्तान्तिक (पहिले कर्मोंको जानने वाला) नैमित्तिक (शुभ अशुभ शकुनोंको जानने वाला) और मौहूर्तिक (तीनों कालोंके वृत्तान्तोंको जानने वाला) के वेषमें रहने वाले गुप्तचर पुरुष जानें ॥ २३ ॥

तुष्टानर्थमानाभ्यां पूजयेत् ॥ २४ ॥ अतुष्टान्सामदानभेददण्डैः साधयेत् ॥ २५ ॥

जो व्यक्ति अपनेसे प्रसन्न हों, उन्हें अर्थ और सत्कारके द्वारा सत्कृत करे ॥ २४ ॥ और अपनेसे अप्रसन्न व्यक्तियोंको सामदान दण्ड भेद इन चारों उपायोंसे ही अपने वशमें करे ॥ २५ ॥

एवं स्वविषये कृत्यानकृत्यांश्च विचक्षणः ।
परोपजापात्संरक्षेत्प्रधानान्क्षुद्रकानपि ॥ २६ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणं त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इस प्रकार बुद्धिमान् राजा, अपने देशमें छोटे बड़े सभी कृत्य (शत्रुके वशमें आने वाले, क्रोधी लोभी आदि) और अकृत्य (किसी तरह भी शत्रुके वशमें न आने वाले) पुरुषोंको, शत्रुके बहकानेमें आनेसे बचावें ॥ २६ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें तेरहवां अध्याय समाप्त ।

चौदहवां अध्याय ।

१० प्रकरण ।

शत्रुके देशमें कृत्य तथा अकृत्य पक्षके पुरुषोंका संग्रह ।

कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः स्वविषये व्याख्यातः ॥ १ ॥ परविषये वाच्यः ॥ २ ॥

अपने देशमें कृत्य तथा अकृत्य पुरुषोंका संग्रह कह दिया गया है। ॥ १ ॥ अब शत्रुके देशमें, उसके कृत्याकृत्य पक्षके पुरुषोंको अपने वशमें कैसे करना चाहिये, इसका निरूपण किया जायगा ॥ २ ॥

संश्रुत्यार्थान्विप्रलब्धस्तुल्याधिकारिणोः शिल्पे वोपकारे वा विमानितो वल्लभावरुद्धः समाहूय पराजितः प्रवासोपतप्तः कृत्वा व्ययमलब्धकार्यः स्वधर्माद्दायाद्याद्वोपरुद्धो मानाधिकाराभ्यां भ्रष्टः कुल्यैरन्तर्हितः प्रसभाभिमृष्टस्त्रीकः कारादिन्यस्तः परोक्तदण्डितो मिथ्याचारवारितः सर्वस्वमाहारितो बन्धनपरिक्लिष्टः प्रवासितबन्धुरिति क्रुद्धवर्गः ॥ ३ ॥

क्रोधी, लोभी, भीत (डरे हुए) और मानी पुरुषही कृत्य कहाते हैं, यह बात पहिले कही जाचुकी है । उनमेंसे पहिले क्रोधी वर्गको बताते हैं, अर्थात् उन २ विशेष अवस्थाओंका निरूपण करते हैं, जिन अवस्थाओंके उपस्थित होने पर कोई पुरुष, राजा या राज्यसे क्रुद्ध हो सकता है, :—जिसको धन देनेकी

प्रतिज्ञा करके फिर धन न दिया गया हो (अर्थात् पहिले राजाने वचन दिया कि हम तुमको धन देंगे, परन्तु फिर उसे धन दिया नहीं गया, ऐसा पुरुष, राजासे क्रुद्ध होसकता है, इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिये), किसी प्रकारके शिल्प या उपकारके कार्यमें समान रीतिसे काम करने वाले दो पुरुषोंमेंसे एकका अधिक सत्कार करके दूसरेका अपमान किया गया हो, राजाके विश्वस्त नौकरोंने जिसको राजकुलमें प्रवेश करनेसे रोक दिया हो, पहिले स्वयं बुलाकर फिर जिसका तिरस्कार किया हो, राजाकी आज्ञासे अत्यधिक प्रवास करनेके कारण दुःखी हुआ २, व्यय करके भी (रिश्वत=घूंस देकर भी) जिसका कोई सरकारी काम पूरा न किया गया हो, जो अपने कुलक्रमागत किसी आचार (जैसे दाक्षिणात्य कुलोंमें अपने मामाकी लड़कीसे विवाह करलेनेका आचार है) के करनेसे, अथवा दायभाग लेनेसे रोक दिया गया हो, सत्कार या अधिकार पदसे जिसको गिरादिया गया हो, राजकुलके अन्य पुरुषोंसे जो बदनाम किया गया हो, बलात्कार जिसकी स्त्री छीन लीगई हो, जिसको कारागारमें डालदिया गया हो, विना विचारे दूसरेके कथनमात्रमें जिसको दण्ड दिया गया हो,मिथ्या बात कहकर धर्मका आचरण करनेसे जिसको रोका गया हो, जिसका सर्वस्व अपहरण कर लिया गया हो, अशक्य कार्योंपर नियुक्त करके जिसको कष्ट दिया गया हो, जिसके पुत्र या बन्धु बान्धव आदिको देशसे निकाल दिया गया हो, इसप्रकारके पुरुष राजासे क्रुद्ध होजाते हैं। इसी लिये उन्हें बड़ी आसानीसे फोड़ा जासकता है । अर्थात् शत्रुसे भेदकर अपनी ओर मिलाया जासकता है ॥ ३ ॥

स्वयमुपहतो विप्रकृतः पापकर्माभिख्यातस्तुल्यदोषदण्डेनोद्विग्नः पर्यात्तभूमिदण्डेनोपनतः सर्वाधिकरणस्थः सा (स) हसोपचितार्थस्तत्कुलीनोपाशंसुः प्रद्विष्टो राज्ञा राजद्वेषी चेति भीतवर्गः ॥ ४ ॥

इसके अनन्तर अब भीतवर्ग अर्थात् विजिगीषुसे डरे हुए पुरुषोंको बताते हैं, :–जो धनके लिये स्वयं किसीकी हिंसा करके दूषित होचुका हो, (ऐसा पुरुष विजिगीषुसे इसलिये डरता रहता है, कि कहीं विजिगीषु यह खयाल न कर लेवे, कि जिसतरह इसने मुझसे रुपया लेकर दूसरे आदमीको मार डाला है, इसी प्रकार शत्रुपक्षसे और अधिक रुपया लेकर कहीं मुझे न मार डाले; क्योंकि विजिगीषुके दिलमें ऐसा खयाल होनेपर वह अवश्यही मेरा वध करादेगा; इसलिये डरता रहता है); अन्तःपुर आदिमें विजिगीषुके विरुद्ध कार्यको करने वाला, ब्रह्महत्या आदि पाप कर्मोंके कारण बदनाम हुआ २,

अपने समान अपराध करने वाले पुरुषको दण्डित हुआ देखकर घबड़ाया हुआ, भूमिका अपहरण करने वाला, दण्डके द्वारा वशमें किया हुआ, सब राजकीय विभागोंपर अधिकार रखने वाला, जिसके पास अकस्मात् ही अथवा अपने परिश्रमसे बहुत सम्पत्ति इकट्ठी होगई हो, राजकुलके दायभागी किसी व्यक्तिके पास कुछ कामनासे आश्रित हुआ २, राजा जिसके साथ द्वेष करता हो, अथवा राजासे जो द्वेष करता हो; इसप्रकारके व्यक्ति सदा विजिगीषुसे डरते रहते हैं, इनकोभी सरलतासे अपनी ओर मिलाया जासकता है ॥ ४ ॥

परिक्षीणो ऽत्यात्तस्वः कदर्यो व्यसन्यत्याहितव्यवहारश्चेति लुब्धवर्गः ॥ ५ ॥

जिसका सब वैभव नष्ट होगया हो, राजाने दण्डरूप या कररूपमें जिसका धन लेलिया हो, कृपण, स्त्री तथा मद्यादि पीनेका व्यसनी, और अपव्ययी पुरुष लोभी होता है, ऐसे पुरुषोंको धन देकर बड़ी सरलतासे वशमें किया जासकता है ॥ ५ ॥

आत्मसंभावितो मानकामः शत्रुपूजामर्षितो नीचैरुपाहितस्तीक्ष्णः साहसिको भोगेनासंतुष्ट इति मानिवर्गः ॥ ६ ॥

'मैं बड़ा विद्वान् या बहादुर हूं । इस प्रकार अपने आपको बहुत कुछ समझने वाला, अपनी पूजा कराने की अभिलाषा रखने वाला, शत्रुकी पूजाको सहन न करने वाला, नीच पुरुषोंके द्वारा बड़ाई कर २ के किसी कार्यमें लगाया हुआ, अपनी जानकी भी कुछ परवाह न करने वाला (तीक्ष्ण), सहसा किसी कार्यमें प्रवृत्त हो जाने वाला, प्राप्त धन आदि भोग्य पदार्थों से सन्तुष्ट न होने वाला, पुरुष मानी होता है । ऐसे पुरुष सत्कारके ही द्वारा सरलता पूर्वक वशमें कर लिए जासकते हैं ॥ ६ ॥

तेषां मुण्डजटिलव्यञ्जनैर्यो यद्भक्तिः कृत्यपक्षीयस्तं तेनोपजापयेत् ॥ ७ ॥

उन क्रुद्ध आदि कृत्यपक्षके पुरुषोंमेंसे जो जिस मुण्ड या जटिल वेषधारी गुप्त पुरुषका भक्त हो, उसही मुण्ड या जटिल व्यक्तिके द्वारा उन २ उपायोंसे उसको वशमें करे । अर्थात् शत्रुसे भिन्न करके उसे अपनी ओर मिलाने का यत्न करे ॥ ७ ॥

यथा मदान्धो हस्ती मत्तेनाधिष्ठितो यद्यदासादयति तत्सर्वं प्रमृद्गात्येवमयमशास्त्रचक्षुरन्धो राजा पौरजानपदवधायाभ्युत्थितः ॥ ८ ॥

गुप्त पुरुष, क्रुद्ध वर्गके पुरुषको यह कहकर उसके स्वामीसे भेद डाले कि 'देखो जैसे मस्त हाथी, प्रमादी पीलवानसे चलाया हुआ, जो कुछ अपने सामने पाता है उसेही कुचल डालता है, इसी प्रकार यह, शास्त्र रूपी चक्षुसे हीन अन्धा राजा, अपनी तरहके अन्धे मन्त्रीके साथ रहता हुआ, नगरनिवासी तथा जनपद निवासी पुरुषोंको नष्ट करने के लिये तैयार हो रहा है ॥ ८ ॥

शक्यमस्य प्रतिहस्तिप्रोत्साहनेनापकर्तुममर्षः क्रियतामिति क्रुद्धवर्गमुपजापयेत् ॥ ९ ॥

इसके साथ शत्रुता रखने वाले पुरुषोंको प्रोत्साहन देनेसे अवश्यही इसका कुछ अपकार किया जासकता है। इसलिये राजाके प्रति प्रकोप उत्पन्न करो, यह कहकर क्रुद्ध वर्गका राजासे भेद डलवावे ॥ ९ ॥

यथा भीतः सर्पो यस्माद्भयं पश्यति तत्र विषमुत्सृजत्येवमयं राजा जातदोषाशङ्कस्त्वयि पुरा क्रोधविषमुत्सृजत्यन्यत्र गम्यतामिति भीतवर्गमुपजापयेत् ॥ १० ॥

भीत वर्गके पुरुषका इस प्रकार उसके स्वामीसे भेद डलवावे, गुप्त पुरुष उससे कहे कि देखो, जिस प्रकार डरा हुआ, सांप, जिधरसे भय देखता है, वहींपर अपना विष उगल देता है, इसी प्रकार इस राजाको तुम्हारी ओरसे कुछ शंका हो गई है; और यह तुम्हारे ही ऊपर सबसे प्रथम क्रोध रूपी विष उगलने वाला है; अच्छा यही है कि तुम यहांसे और कहीं चले जाओ। इस प्रकार भीत वर्गका भेद डलवावे ॥ १० ॥

यथा श्वगणिनां धेनुः श्वभ्यो दुग्धे न ब्राह्मणेभ्य एवमयं राजा सत्त्वप्रज्ञावाक्यशक्तिहीनेभ्यो दुग्धे नात्मगुणसंपन्नेभ्यः ॥ ११ ॥

लोभी पुरुषको इस प्रकार भिन्न करे, गुप्त पुरुष उससे कहे कि जिस प्रकार चांडालों की गाय उन्हींको दूध दे सकती है, ब्राह्मणोंके लिए नहीं दे सकती, इसी प्रकार यह राजा बल बुद्धि और वाक्शक्तिसे हीन पुरुषोंके लिए ही फल दायक (या लाभदायक) हो सकता है, जो आत्मगुणोंसे सम्पन्न पुरुष हैं, उनके लिये नहीं ॥ ११ ॥

असौ राजा पुरुषविशेषज्ञस्तत्र गम्यतामिति लुब्धवर्गमुपजापयेत् ॥ १२ ॥

किन्तु वह अमुक राजा विशेष पुरुषोंको खूब समझता है, तुम्हें उसी की सेवा करनी चाहिये। इस प्रकार कहकर लुब्ध वर्गके पुरुषको उसके स्वामी से भिन्न करे ॥ १२ ॥

यथा चाण्डालोदपानश्चण्डालानामेवोपभोग्यो नान्येषामेवमयं राजा नीचो नीचानामेवोपभोग्यो न त्वाद्विधानामार्याणाम् ॥ १३ ॥

जिस प्रकार चाण्डालोंका कुआ चाण्डालोंके लिये ही उपयोगका साधन होता है, अन्य पुरुषोंके लिये नहीं, इसी प्रकार यह नीच राजा, नीच पुरुषोंके लिये ही उपयोग अर्थात् सुखका साधन है, तुम्हारे जैसे श्रेष्ठ पुरुषोंके सुखका साधन नहीं हो सकता ॥ १३ ॥

असौ राजा पुरुषविशेषज्ञस्तत्र गम्यतामिति मानिवर्गमुपजापयेत् ॥ १४ ॥

किन्तु वह अमुक राजा विशेष पुरुषोंको खूब समझता है, तुम वहींपर चले जाओ। इस प्रकार कहकर मानिवर्गके पुरुषोंको उसके स्वामीसे भिन्न करे। ॥ १४ ॥

तथेति प्रतिपन्नांस्तान्संहितान्पणकर्मणा।
योजयेत यथाशक्ति सापसर्पान्स्वकर्मसु ॥ १५ ॥

इस प्रकार अपने स्वामीसे भिन्न हो जाने वाले पुरुषोंको, सत्य शपथ आदिके द्वारा उनसे सन्धि कर, गुप्त पुरुषों साथ २, उन्हें यथाशक्ति अपने २ कार्यों पर लगा देवे। अर्थात् जिन २ कार्यों पर वे पहिले राजाके पास लगे हुए थे, उन्हीं कार्यों पर लगा देवे, परन्तु उनके साथ गुप्त पुरुषोंको अवश्य रक्खे, जिससे उनकी प्रवृत्तिका पूरा २ पता लगता रहे ॥ १५ ॥

लभेत सामदानाभ्यां कृत्यांश्च परभूमिषु।
अकृत्यान्भेददण्डाभ्यां परदोषांश्च दर्शयेत् ॥ १६ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः चतुर्दशो ऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस तरह शत्रुकी भूमिमें कृत्य पक्षके पुरुषोंको साम और दानके द्वारा अपनी ओर मिलावे। परन्तु जो अकृत्य पक्षके पुरुष हों, उन्हें भेद और दण्ड के द्वारा अपने वशमें करनेका प्रयत्न करे, और उनके सामने शत्रुके दोषोंको बराबर दिखाता रहे, जिससे कि वे सरलतासे भिन्न हो सकें ॥ १६ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें चौदहवां अध्याय समाप्त।

पन्द्रहवां अध्याय।

११ प्रकरण।

मन्त्राधिकार

कृतस्वपक्षपरपक्षोपग्रहः कार्यारम्भांश्चिन्तयेत् ॥ १ ॥ मन्त्रपूर्वाः सर्वारम्भाः ॥ २ ॥

अपने देश और शत्रुके देशमें कृत्य तथा अकृत्य पुरुषोंको अपने अनुकूल बनानेके अनन्तर विजिगीषुको चाहिये कि वह अपने देशमें दुर्ग आदि तथा शत्रुके देशमें सन्धि विग्रह आदि कार्योंके प्रारम्भ करने की चिन्ता करे। ॥ १ ॥ सम्पूर्ण कार्योंका प्रारम्भ मन्त्र पूर्वकही किया जाता है। अर्थात् कार्य प्रारम्भ करनेके पूर्व उसका विचार करना अत्यन्त आवश्यक है ॥ २ ॥

तदुद्देशः संवृतः कथानामनिस्रावी पक्षिभिरप्यनालोक्यः स्यात् ॥ ३ ॥ श्रूयते हि शुकशारिकाभिर्मन्त्रो भिन्नः श्वभिरन्यैश्च तिर्यग्योनिभिः ॥ ४ ॥

जिस स्थान पर बैठकर मन्त्रणा की जाय, वह चारों ओरसे ढका हुआ होना चाहिये। आपसकी बातचीतका शब्द जिससे बाहर न जासके। तथा पक्षीभी जिसको न देख सकें ऐसा स्थान होना चाहिये ॥ ३ ॥ क्योंकि सुना जाता है पहिले कभी शुक (तोता) और सारिका (मैना) ने किसी राजाकी गुप्त मन्त्रणाको प्रकाशित कर दिया था। इसी प्रकार कुत्ते तथा अन्य पशु पक्षियों ने भी किया। इसलिये मन्त्रस्थानमें पशु पक्षियोंको भी न रहने देना चाहिये। ॥ ४ ॥

तस्मान्मन्त्रोद्देशमनायुक्तो नोपगच्छेत् ॥ ५ ॥ उच्छिद्येत मन्त्रभेदी ॥ ६ ॥ मन्त्रभेदो हि दूतामात्यस्वामिनामिङ्गिताकाराभ्याम् ॥ ७ ॥

इसीलिये कोई भी व्यक्ति राजाकी आज्ञा विना मन्त्रस्थानमें कदापि न आवे। अर्थात् जो २ पुरुष राजाकी आज्ञाके अनुसार विचार करनेके लिये नियुक्त हैं, वे ही वहां आवें, अन्य नहीं ॥ ५ ॥ यदि इनमें से ही कोई मनुष्य गुप्त विचारको प्रकाशित कर देवे, तो उसका सर्वथा उच्छेद कर देना चाहिये। ॥ ६ ॥ क्योंकि कभी २ विना कहे भी, दूत, अमात्य तथा राजाकी चेष्टा और आकार आदिसे ही गुप्त भेद प्रकाशित हो जाता है ॥ ७ ॥

इङ्गितमन्यथावृत्तिः ॥ ८ ॥ आकृतिग्रहणमाकारः ॥ ९ ॥ तस्य संवरणमायुक्तपुरुषरक्षणमाकार्यकालादिति ॥ १० ॥

स्वाभाविक क्रियाओंसे भिन्न क्रियाओंका करना चेष्टा या इङ्गित कहाता है ॥ ८ ॥ शरीरकी स्वाभाविक परिस्थितिसे भिन्न, उन २ विशेष भावोंको बताने वाली मुखकी मलिनता आदि एक विशेष प्रकारकी अङ्गकी परिस्थितिका नाम ही आकार या आकृति है ॥ ९ ॥ विजिगीषुको आवश्यक है कि वह, जबतक किये हुए कार्यके प्रारम्भ करनेका ठीक समय न आजावे, तबतक अपने इङ्गित या आकारको दबाकर रक्खे, किसी तरह भी उन्हें प्रगट न होनेदे । और मन्त्राधिकारपर नियुक्त हुए २ दूत तथा अमात्य आदिकी भी बराबर रक्षा अर्थात् निगरानी करता रहे ॥ १० ॥

तेषां हि प्रमादमदसुप्तप्रलापकामादिरुत्सेकः ॥ ११ ॥ प्रच्छन्नो ऽवमतो वा मन्त्रं भिनत्ति ॥१२॥ तस्माद्रक्षेन्मन्त्रम् ॥१३॥

क्योंकि मन्त्रकार्यपर नियुक्त हुए २ पुरुषोंके प्रमाद (भिन्न २ कार्योंमें व्यग्र रहनेके कारण उत्पन्न हुई २ असावधानता), मद (मद्य आदि पीनेसे उत्पन्न हुआ २ चित्तविकार), सुप्तप्रलाप (सोते हुए पुरुषका बड़बड़ाना), और काम (विषय भोगकी अभिलाषा) आदि दोष तथा गर्व (अभिमान=घमंड) ये भाव एकान्त प्रदेशमें विचार किये हुए निर्णीत मन्त्रको उगल देते हैं, अर्थात् प्रकाशित करदेते हैं ॥ ११ ॥ इसी प्रकार भींत आदिके पीछे छिपकर मन्त्रको सुनने वाला, अथवा 'यह मूर्ख है' ऐसा कहकर तिरस्कार किया हुआ पुरुष भी छिपे मन्त्रको प्रकाशित करदेता है ॥ १२ ॥ इसलिये राजाको उचित है कि वह सावधानता पूर्वक प्रमाद आदिसे मन्त्रकी रक्षा करे ॥ १३ ॥

मन्त्रभेदो ह्ययोगक्षेमकरो राज्ञस्तदायुक्तपुरुषाणां च ॥१४॥ तस्माद्गुह्यमेको मन्त्रयेतेति भारद्वाजः ॥ १५ ॥ मन्त्रिणामपि हि मन्त्रिणो भवन्ति ॥ १६ ॥ तेषामप्यन्ये ॥ १७ ॥ सैषा मन्त्रिपरंपरा मन्त्रं भिनत्ति ॥ १८ ॥

क्योंकि मन्त्रका प्रकाशित होजाना, राजा तथा मन्त्राधिकारपर नियुक्त हुए २ पुरुषोंके योगक्षेमको नष्ट करने वाला होता है ॥ १४ ॥ इसलिये ऐसी गुह्य अर्थात् छिपी हुई बातोंका विचार, राजा अकेलाही करे; अर्थात् मन्त्रीको भी साथमें न लेवे, यह भारद्वाज आचार्यका मत है ॥ १५ ॥ मन्त्रियोंको भी इसलिये साथ न लेवे, क्योंकि यह देखा जाता है, कि प्रायः मन्त्रियोंके भी अपने २ अलग मन्त्री होते हैं, और वे उनसे जाकर वह मन्त्र

कह देते हैं ॥ १६ ॥ उनके भी फिर अपने और मन्त्री होते हैं ॥ १७ ॥ इसप्रकार इस मन्त्रिपरम्परामें पड़कर वह मन्त्र अवश्य ही प्रकाशित होजाता है ॥ १८ ॥

तस्मान्नास्य परे विद्युः कर्म किंचिच्चिकीर्षितम् ।
आरब्धारस्तु जानीयुरारब्धं कृतमेव वा ॥ १९ ॥

इसलिये इस विजिगीषुके किये जाने वाले कार्योंको कोई भी दूसरा न जान सके, ऐसा यत्न करना चाहिये । जिस समय उस कार्यका आरम्भ किया जाय, उसी समय केवल उस कार्यको आरम्भ करने वालेही जान सकें, यदि वे भी कार्यारम्भसे उसके परिणामको जाननेमें असमर्थ हों, तो उस कार्यका पता कार्यकी समाप्तिपर ही लोगोंको लगे ॥ १९ ॥

नैकस्य मन्त्रसिद्धिरस्तीति विशालाक्षः ॥ २० ॥ प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया हि राजवृत्तिः ॥ २१ ॥

परन्तु विशालाक्ष आचार्य भारद्वाजके इस उपर्युक्त मतको ठीक नहीं समझता; वह कहता है कि एकही व्यक्तिका विचार किया हुआ मन्त्र कभी सिद्ध नहीं होसकता ॥ २० ॥ क्योंकि राजकार्य प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनोंही प्रकारके होते हैं । उनके पूरा करनेमें राजाको मन्त्री और पुरोहित आदिकी अवश्यही अपेक्षा होती है । प्रत्येक प्रकारके राजकार्यको, विना किसीकी अपेक्षा के राजा स्वयं नहीं करसकता ॥ २१ ॥

अनुपलब्धस्य ज्ञानमुपलब्धस्य निश्चयो निश्चितस्य बलाधानमर्थद्वैधस्य संशयच्छेदनमेकदेशदृष्टस्य शेषोपलब्धिरिति मन्त्रिसाध्यमेतत् ॥ २२ ॥ तस्माद्बुद्धिवृद्धैः सार्धमासीत मन्त्रम् ॥ २३ ॥

न जाने हुए कार्यका जानना, जाने हुए कार्यका निश्चय करना, निश्चित कार्यको दृढ़ करना, किसी कार्यमें सन्देह उत्पन्न हो जाने पर उस संशय का निवारण करना, कुछ जाने हुए कार्यके शेष भागकोभी जानना, ये सब कार्य मन्त्रियोंके द्वारा ही पूरे किये जासकते हैं ॥ २२ ॥ इसलिये, विजिगीषु, अत्यन्त बुद्धिमान् और अनुभवी व्यक्तियोंके साथ बैठकर मन्त्रका विचार करे ॥ २३ ॥

न कंचिदवमन्येत सर्वस्य शृणुयान्मतम् ।
बालस्याप्यर्थवद्वाक्यमुपयुञ्जीत पण्डितः ॥ २४ ॥

किसीका तिरस्कार न करे, प्रत्येकके मतको अच्छी तरह सुने। यहां तक कि बालकके भी सारगर्भित वाक्यको, विचारशील राजा स्वीकार कर लेवे ॥ २४ ॥

एतन्मन्त्रज्ञानं नैतन्मन्त्ररक्षणमिति पाराशराः ॥ २५ ॥ यदस्य कार्यमभिप्रेतं तत्प्रातिरूपकं मन्त्रिणः पृच्छेत् ॥ २६ ॥

पराशर मतानुयायी आचार्य विशालाक्षके इस उपर्युक्त मतको भी स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं कि जो कुछ विशालाक्षने कहा है, उससे केवल मन्त्रका ज्ञान हो सकता है मन्त्रकी रक्षा नहीं हो सकती ॥२५॥ इसलिये राजा को जो कार्य अभिप्रेत, हो उसके समान ही किसी दूसरे कार्यके सम्बन्धमें मन्त्रियों से पूछे ॥ २६ ॥

कार्यमिदमेवमासीदेवं वा यदि भवेत्तत्कथं कर्तव्यमिति ॥ २७ ॥ ते यथा ब्रूयुस्तत्कुर्यात् ॥ २८ ॥ एवं मन्त्रोपलब्धिः संवृतिश्च भवतीति ॥ २९ ॥

पूछनेका प्रकार यह है, किसी ऐतिहासिक घटनाको सामने रखकर कहे, कि यह कार्य पहिले इसप्रकार किया गया था, यदि यह इसप्रकारसे करना होता, तो कैसे करना चाहिये था ॥ २७ ॥ इस विषयमें मन्त्री जो कुछ कहें, उसहीके अनुसार अपना कार्य करे ॥ २८ ॥ ऐसा करनेसे मन्त्रका ज्ञान भी होजाता है, और मन्त्रकी रक्षा भी रहती है ॥ २९ ॥

नेति पिशुनः ॥ ३० ॥ मन्त्रिणो हि व्यवहितमर्थं वृत्तमवृत्तं वा पृष्टमनादरेण ब्रुवन्ति प्रकाशयन्ति वा ॥ ३१ ॥

परन्तु पिशुन (नारद) आचार्य पराशरके इस मतको ग्राह्य नहीं समझता ॥ ३० ॥ क्योंकि इसतरह प्रकारान्तरसे मन्त्रियोंके सम्मुख किसी बातके पूछे जानेपर, वे यही समझते हैं कि हमारे द्वारा किये जाने वाले कार्योंमें भी राजा हमपर विश्वास नहीं रखता। इसलिये वे व्यवहित, पहिले हुई २ या न हुई २ घटनाके विषयमें पूछेजानेपर अनादरसे अर्थात् उपेक्षा पूर्वकही उत्तर देते हैं। और उस मन्त्रको प्रकाशित भी करदेते हैं ॥ ३१ ॥

स दोषः ॥३२॥ तस्मात्कर्मसु येषु येऽभिप्रेतास्तैः सह मन्त्रयेत् ॥३३॥ तैर्मन्त्रयमाणो हि मन्त्रवृद्धिं गुप्तिं च लभत इति ॥३४॥

यह मन्त्रके लिये एक दोष है ॥ ३२ ॥ इसलिये राजाको उचित है, कि जो पुरुष जिन २ कार्योंपर नियुक्त किये हुए हैं, तथा विचार करनेके लिये राजाको अभिमत भी हैं, उन्हीं पुरुषोंके साथ राजा मन्त्रणा करे ॥३३॥ क्योंकि

उनके साथ गुह्य मन्त्रोंको विचारता हुआ राजा मन्त्र-वृद्धिको भी प्राप्त करता है, और मन्त्रकी रक्षाभी अच्छीतरह कर सकता है ॥ ३४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३५ ॥ अनवस्था ह्येषा ॥ ३६ ॥ मन्त्रिभिस्त्रिभिश्चतुर्भिर्वा सह मन्त्रयेत ॥ ३७ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य नारदके भी इस मतको ग्राह्य नहीं समझता ॥ ३५ ॥ क्योंकि वह कहता है कि यह नारद आचार्यने जो कुछ ऊपर कहा है, इसके अनुसार मन्त्र कभी व्यवस्थित नहीं होसकता। राजकार्य बहुत प्रकारके होते हैं, उन कार्योंपर पृथक् २ नियुक्त हुए २ अधिकारी भी बहुत होते हैं, प्रत्येकके साथ विचार करनेसे कभी मन्त्रकी व्यवस्था नहीं होसकती ॥ ३६ ॥ इसलिये इसी कार्यपर नियुक्त हुए २ तीन या चार मन्त्रियोंके साथ मिलकर ही मन्त्रणा करनी चाहिये ॥ ३७ ॥

मन्त्रयमाणो ह्येकेनार्थकृच्छ्रेषु निश्चयं नाधिगच्छेत् ॥ ३८ ॥ एकश्च मन्त्री यथेष्टमनवग्रहश्चरति ॥ ३९ ॥ द्वाभ्यां मन्त्रयमाणो द्वाभ्यां संहताभ्यामवगृह्यते ॥ ४० ॥

क्योंकि एकही मन्त्रीके साथ मन्त्रणा करता हुआ राजा, कठिनतासे निश्चय करने योग्य कार्योंके आपड़नेपर अर्थका निश्चय नहीं कर सकता ॥ ३८ ॥ और अकेले मन्त्री अपनी इच्छाके अनुसार राजाका प्रतिद्वन्द्वी बनकर प्रत्येक कार्यको करलेता है ॥ ३९ ॥ यदि केवल दो मन्त्रियोंकेही साथ राजा विचार करता है, तो यह बहुत सम्भव है कि वे दोनों आपसमें मिलकर राजाको अपने वशमें करलें ॥ ४० ॥

विगृहीताभ्यां विनाश्यते ॥ ४१ ॥ त्रिषु चतुर्षु वा नैकान्तं कृच्छ्रेणोपपद्यते महादोषम् ॥ ४२ ॥ उपपन्नं तु भवति ॥ ४३ ॥

अथवा यदि आपसमें उनका झगड़ा हो जाय, तो कार्यका ही सर्वथा नाश हो जाय। क्योंकि वे दोनों ही आपसमें झगड़ा करके मंत्रको फोड़ दें, या कार्यको उचित रीतिपर, झगड़ेके कारण, करें ही नहीं ॥ ४१ ॥ परन्तु तीन या चार मन्त्रियोंके सलाहकार होनेपर, इस प्रकारका कोई सी अनर्थकारी महानदोष कदापि उत्पन्न नहीं हो सकता। यदि किसी तरह हो भी जावे तो कठिनतासे ही होता है, अचानक नहीं ॥ ४२ ॥ फिर भी कार्यमें कोई बाधा नहीं पड़ती। वह ठीक तौरपर होता ही रहता है ॥ ४३ ॥

ततः परेषु कृच्छ्रेणार्थनिश्चयो गम्यते ॥ ४४ ॥ मन्त्रो वा

रक्ष्यते ॥ ४५ ॥ देशकालकार्यवशेन त्वेकेन सह द्वाभ्यामेको वा यथा सामर्थ्यं मन्त्रयेत ॥ ४६ ॥

यदि चारसे अधिक मंत्री हो जायं, तो फिर कार्यका निश्चय कठिनता से ही होता है। क्योंकि बहुतसे व्यक्तियोंकी सम्मति भिन्न २ होनेपर निर्णय करना कठिन हो जाता है ॥ ४४ ॥ तथा मन्त्रकी रक्षा करना भी कठिन होता है। क्योंकि मन्त्रका बहुत आदमियोंको पता होनेपर उसके फूट जानेकी अधिक सम्भावना रहती है ॥ ४५ ॥ देश, काल और कार्यके अनुसार, एक या दो मन्त्रियोंके साथभी राजा मन्त्रणा करे। सामर्थ्यके अनुसार स्वयं अकेला भी किसी कार्यका विचारकर निर्णय कर सकता है ॥ ४६ ॥

कर्मणामारम्भोपायः पुरुषद्रव्यसंपद्देशकालविभागो विनिपातप्रतीकारः कार्यसिद्धिरिति पञ्चाङ्गो मन्त्रः ॥४७॥ तानेकैकशः पृच्छेत् समस्तांश्च ॥ ४८ ॥

मन्त्रके पांच अङ्ग होते हैं—(१)—कार्योंके प्रारम्भ करनेका उपाय (अपने देशमें खाई परकोटा आदिक द्वारा दुर्ग आदि बनाना, तथा दूसरेके देशमें सन्धि विग्रह आदिके लिये दूत आदिको भेजना ये कार्य कहाते हैं; इनके प्रारम्भ करनेका साधन या प्रकार; यह मन्त्रका पहिला अङ्ग है। इसी प्रकार), (२)—पुरुष और द्रव्य सम्पत्ति (पुरुष अपने देशमें, दुर्ग आदि बनानेमें अत्यन्त चतुर बढ़ई लुहार आदि और द्रव्य लकड़ी पत्थर आदि; दूसरेके देशमें पुरुष, सन्धि आदि करनेमें कुशल दूत तथा सेनापति आदि और द्रव्य रत्न सुवर्ण आदि), (३)-देश और कालका विभाग (अपने देशमें, देश दुर्ग आदिके बनानेके लिये जनपदके बीचमें अथवा जलके किनारे परका कोई उपयोगी प्रदेश, और काल सुभिक्ष दुर्भिक्ष तथा वर्षा आदि; दूसरेके देशमें, देश, सन्धि आदि करनेपर कोई उपजाऊ प्रदेश, और काल आक्रमण करने या न करनेकी अवस्था, कहाता है। इनका विभाग अर्थात् विवेचन करना मन्त्रका तीसरा अङ्ग है), (४)—विनिपात प्रतीकार (अपने दुर्ग आदिपर आने वाले या आये हुए विघ्नोंका प्रतीकार करना चौथा अङ्ग), तथा (५)—कार्य सिद्धि (उन्नति अवनति और सम अवस्था ये तीन प्रकारकी ही सिद्धि अर्थात् किसी कार्यके फल निकल सकते हैं; अर्थात् उपर्युक्त प्रकारसे कार्य करनेपर अपनी उन्नति, शत्रुकी अवनति, अथवा दोनोंकी सम अवस्थाका होनाही कार्यसिद्धि कहाजाता है।) इसप्रकार मन्त्रके ये पांच अङ्ग होते हैं ॥ ४७ ॥ इसतरह मन्त्रके विषयमें राजा पृथक् २ एक २ मन्त्रीको बुलाकर भी पूछ सकता है, अथवा सभामें समस्त मन्त्रियोंको बुलाकर पूछ सकता है, कि इस कार्यको किसप्रकार किया जाय ॥ ४८ ॥

हेतुभिश्चैषां मतिप्रविवेकान् विद्यात् ॥ ४९ ॥ अवाप्तार्थः कालं नातिक्रामयेत् ॥ ५० ॥

युक्ति पूर्वक इनके भिन्न २ अभिप्रायोंको समझे । (किसी २ पुस्तकमें "हेतुभिश्चैकैकं मतं प्रविशेद विद्वान्" इस प्रकारका सूत्र पाठ है । उसका अर्थ इस तरह करना चाहिये:—'विचारशील राजा प्रत्येकके मतको समझे' । अर्थ दोनों पाठोंमें एकही है) ॥ ४९ ॥ अर्थका निश्चय करके उसको शीघ्रही कार्यमें परिणत करनेका यत्न करे । समयको व्यर्थ बिता देना अच्छा नहीं होता ॥ ५० ॥

न दीर्घकालं मन्त्रयेत ॥ ५१ ॥ न च तेषां पक्ष्यैर्येषामपकुर्यात् ॥ ५२ ॥

किसी एक कार्यको बहुत समय तक बिचारते जाना भी अच्छा नहीं होता । तात्पर्य यह है, जो कुछ करना हो, उसे शीघ्र विचार पूर्वक निश्चय करके आरम्भ कर देना चाहिये । बहुत विचारतेही रहनेमें मन्त्र फूट जाता है, और कार्य पूरा नहीं होता ॥ ५१ ॥ जिन पुरुषोंका कभी कुछ अपकार किया हो. ऐसे पुरुषोंके साथ या इनके पक्षको मानने वाले पुरुषोंके साथभी कभी मन्त्रणा न करनी चाहिये । क्योंकि एसे पुरुष कभी मन्त्रको गुप्त नहीं रख सकते । (५१ और ५२ इन दो सूत्रोंके स्थान पर किसी २ पुस्तकमें एकही सूत्र है, वह कुछ पाठ भेद से इस प्रकार है:—'न दीर्घकालं मन्त्रयेत च तेषां च रक्षेद्येषामपकुर्यात्" । अर्थ इस प्रकार है:—'दीर्घकाल तक मन्त्रणा न करे, और उन लोगोंसे मन्त्रकी रक्षा करे, जिनका पहिले कभी कुछ अपकार कर चुका हो ।' अभिप्राय दोनों पाठोंमें समान ही है ।) ॥ ५२ ॥

मन्त्रिपरिषदं द्वादशामात्यान्कुर्वीतेति मानवाः ॥ ५३ ॥ षोडशेति बार्हस्पत्याः ॥ ५४ ॥ विंशतिमित्यौशनसाः ॥ ५५ ॥

मनुके अनुयायी कहते हैं कि एक मन्त्रिपरिषद्में बारह अमात्योंको नियुक्त करे । अर्थात् बारह अमात्योंकी मन्त्रिपरिषद् होनी चाहिये ॥ ५३ ॥ बृहस्पतिके अनुयायी कहते हैं कि एक मन्त्रिपरिषद्में सोलह अमात्य होने चाहियें ॥ ५४ ॥ उशना (शुक्र) आचार्यके अनुयायियोंका सिद्धान्त है कि बीस अमात्यों की एक मन्त्रिपरिषद् होनी चाहिये ॥ ५५ ॥

यथासामर्थ्यमिति कौटल्यः ॥ ५६ ॥ ते ह्यस्य स्वपक्षं परपक्षं च चिन्तयेयुः ॥ ५७ ॥ अकृतारम्भमारब्धानुष्ठानमनुष्ठितविशेषं नियोगसंपदं च कर्मणां कुर्युः ॥ ५८ ॥

परन्तु कौटल्य कहता है, कि कार्य करने वाले पुरुषोंके सामर्थ्यके अनुसारही उनकी संख्या नियत होनी चाहिये ॥ ५६ ॥ उतनेही पुरुष, विजिगीषुके अपने पक्ष और परपक्षका विचार करें ॥ ५७ ॥ और जो कार्य अभीतक प्रारम्भ न किये गये हों उनका प्रारम्भ करावें; प्रारम्भ किये हुए कार्योंको पूरा करावें, जो कार्य पूरे होचुके हों उनमें और कुछ विशेषता (सफेदी कराना, तरह २ की चित्रकारी कराना आदि) करानी हों, तो वह भी करावें। तात्पर्य यह है, कि जिस २ तरहके भी कार्य हों, उन २ विभागोंके कार्यकर्त्ता अपने कार्योंको अन्त तक बहुत अच्छी तरह करवावें ॥ ५८ ॥

आसन्नैः सह कार्याणि पश्येत्, अनासन्नैः सह पत्त्रसंप्रेषणेन मन्त्रयेत ॥ ५९ ॥

जो मन्त्री राजाके समीपही रहते हों, राजा उनके साथ मिलकर कार्योंको देखे। परन्तु जो दूर रहते हों, उनके पास लिखित पत्र आदि भेजकर कार्यका निश्चय करे ॥ ५९ ॥

इन्द्रस्य हि मन्त्रिपरिषदृषीणां सहस्रम् ॥ ६० ॥ स तच्चक्षुः ॥ ६१ ॥ तस्मादिमं द्व्यक्षं सहस्राक्षमाहुः ॥ ६२ ॥

इन्द्रकी मन्त्रिपरिषद्में एक हज़ार ऋषि थे ॥ ६० ॥ वे ही कार्योंके दिखाने वाले होनेके कारण इन्द्रके चक्षुके समान थे ॥ ६१ ॥ इसलिये इस दो आंखवाले इन्द्रको भी सहस्राक्ष (हज़ार आंखवाला) कहाजाता है। इसीप्रकार प्रत्येक राजाको अपनी मन्त्रिपरिषद्में सामर्थ्यानुसार अनेक मन्त्रियोंको नियुक्त करना चाहिये ॥ ६२ ॥

आत्ययिके कार्ये मन्त्रिणो मन्त्रिपरिषदं चाहूय ब्रूयात् ॥६३॥ तत्र यद्भूयिष्ठाः कार्यसिद्धिकरं वा ब्रूयुस्तत्कुर्यात् ॥ ६४ ॥

जब कोई कठिन समस्या आपड़े, या प्राणों तकका भय हो, तो मन्त्रियों और मन्त्रिपरिषद्को बुलाकर राजा उनसे सब कुछ कहे, और उनकी सम्मति लेवे ॥ ६३ ॥ उनमेंसे अधिक मन्त्री जिस बातको कहें, अथवा जिस उपायको शीघ्रही कार्यकी सिद्धि कराने वाला बतावें, राजाको चाहिये कि उसही उपायका अनुष्ठान करे ॥ ६४ ॥

कुर्वतश्चः—

नास्य गुह्यं परे विद्युः छिद्रं विद्यात्परस्य च ।
गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि यत्स्याद्विवृतमात्मनः ॥ ६५ ॥

इसप्रकार अपने कार्योंको करते हुए राजाके गुह्य मन्त्रोंको कोई दूसरे पुरुष नहीं जान सकते, प्रत्युत वह दूसरोंके दोषोंको जान लेता है। जिसप्रकार कछुवा अपने अङ्गोंको संकुचित करके रखता है, उन्हें फैलने नहीं देता, इसीप्रकार राजाको चाहिये कि अपने आन्तरिक भावोंको फैलने न देवे। यत्न पूर्वक उनको छिपाकर रक्खे ॥ ६५ ॥

यथा ह्यश्रोत्रियः श्राद्धं न सतां भोक्तुमर्हति।
एवमश्रुतशास्त्रार्थो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥ ६६ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे मन्त्राधिकारः पञ्चदशो ऽध्यायः ॥१५॥

जिसप्रकार वेद न पढ़ने वाला ब्राह्मण, श्रेष्ठ पुरुषोंके यहां श्राद्ध नहीं खासकता, इसीप्रकार जिसने शास्त्रके अभिप्रायको नहीं सुना या जाना है, वह मन्त्रको नहीं सुन सकता। अर्थात् राजनीति शास्त्र आदिमें अत्यन्त निपुण विद्वानोंको ही मन्त्राधिकारपर नियुत करना चाहिये ॥ ६६ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें पन्द्रहवां अध्याय समाप्त।

सोलहवां अध्याय।

१२ प्रकरण।

दूतप्रणिधि।

उद्धृतमन्त्रो दूतप्रणिधिः ॥ १ ॥ अमात्यसंपदोपेतो निसृष्टार्थः ॥ २ ॥ पादगुणहीनः परिमितार्थः ॥ ३ ॥ अर्धगुणहीनः शासनहरः ॥ ४ ॥

मन्त्रके निश्चित होजानेपर ही दूतको भेजना चाहिये ॥ १ ॥ दूत तीन प्रकारके होते हैं—निसृष्टार्थ, परिमितार्थ और शासनहर। अमात्यके जो गुण पहिले बतलाये गये हैं, वे सम्पूर्ण गुण जिसमें हों वह निसृष्टार्थ नामक दूत कहाता है। उन गुणोंमेंसे चौथाई गुण जिसमें कम हों वह परिमितार्थ, और जिसमें आधे कम हों वह शासनहर कहाजाता है ॥ २,३,४ ॥

सुप्रतिविहितयानवाहनपुरुषपरिवापः प्रतिष्ठेत ॥ ५ ॥ शासनमेवं वाच्यः परः, स वक्ष्यत्येवं, तस्येदं प्रतिवाक्यमेवमतिसंधातव्यमित्यधीयानो गच्छेत् ॥ ६ ॥

पालकी आदि सवारी, घोड़े आदि वाहन, नौकर चाकर और सोने बिछाने आदिके सामानका अच्छीतरह प्रबन्ध करकेही, दूतको शत्रुके देशकी ओर जाना

चाहिये ॥ ५ ॥ अपने स्वामीका सन्देश शत्रुसे इसप्रकार कहना चाहिये, वह इसका इसतरह उत्तर देगा, मुझे उसको इसप्रकार प्रत्युत्तर देना चाहिये, और अमुक २ प्रकारोंसे उसे वशमें करना चाहिये, इत्यादि बातोंका विचार करता हुआ ही दूत शत्रुके देशकी ओर जावे ॥ ६ ॥

अटव्यन्तपालपुरराष्ट्रमुख्यैश्च प्रतिसंसर्गं गच्छेत् ॥ ७ ॥ अनीकस्थानयुद्धप्रतिग्रहापसारभूमीरात्मनः परस्य चावेक्षेत ॥ ८ ॥

आटविक, अन्तपाल (सीमारक्षक), नगर तथा राष्ट्रमें निवास करने वाले अन्य मुख्य २ व्यक्तियोंसे मित्रता उत्पन्न करे ॥ ७ ॥ अपनी और शत्रुकी, सेनाओंके ठहरनेके लिये युद्धयोग्य भूमि तथा अवसर आनेपर भाग जासकने योग्यभी भूमियोंका निरीक्षण करे ॥ ८ ॥

दुर्गराष्ट्रप्रमाणं सारवृत्तिगुप्तिच्छिद्राणि चोपलभेत ॥ ९ ॥

और इस बातका जानना भी आवश्यक है, कि दुर्ग कितने हैं, राज्यकी लम्बाई चौड़ाई कितनी है, किस २ विभागसे कितनी २ आमदनी है, धान्य या सुवर्ण आदिकी उत्पत्ति कैसी होती है, सर्वसाधारण लोगोंकी जीविका क्या है, राष्ट्रकी रक्षा किस प्रकार कीजाती है, और शत्रुके अन्दर क्या २ दोष हैं। इत्यादि सबही बातोंका दूतको पता लगाना चाहिये ॥ ९ ॥

पराधिष्ठानमनुज्ञातः प्रविशेत ॥ १० ॥ शासनं च यथोक्तं ब्रूयात् ॥ ११ ॥ प्राणाबाधे ऽपि दृष्टे ॥ १२ ॥

शत्रुके स्थानमें उसकी स्वीकृति लेकरही प्रवेश करे ॥ १० ॥ प्राणोंका भय उपस्थित होनेपर भी, अपने स्वामीके सन्देशको ठीक २ कहे ॥ ११-१२ ॥

परस्य वाचि वक्त्रे दृष्ट्यां च प्रसादं वाक्यपूजनमिष्टपरिप्रश्नं गुणकथासङ्गमासन्नमासनं सत्कारमिष्टेषु स्मरणं विश्वासगमनं च लक्षयेत्तुष्टस्य ॥ १३ ॥

यदि शत्रुकी वाणीमें मुखमें, और दृष्टिमें प्रसन्नता देखे, अपने (दूतके) कथनका सत्कार, अपनी इच्छानुसार प्रश्न करना या अपना अभीष्ट (जैसा प्रश्न किया जाना दूत चाहता है, वैसाही) प्रश्न करना, अपने स्वामीका (दूतके स्वामीका) कुशल प्रश्न पूछना, उसके गुणोंका वर्णन किये जानेपर उसे ध्यान पूर्वक सुनना, अपने समीपही बैठनेके लिये आसन देना, सत्कार करना, विशेष उत्सव आदिमें दूतको याद करना, और दूतके कार्योंपर विश्वास करना, इत्यादि बातोंको शत्रुमें देखे, तो दूतको समझ लेना चाहिये कि शत्रु मुझपर प्रसन्न है ॥ १३ ॥

विपरीतमतुष्टस्य ॥ १४ ॥ तं ब्रूयात् ॥ १५ ॥ दूतमुखा वै राजानस्त्वं चान्ये च ॥ १६ ॥

इससे विपरीत भाव होनेपर उसको अपनेसे अप्रसन्न समझे ॥ १४ ॥ दूत उसको (अप्रसन्न हुए शत्रुको) कहे, कि ॥ १५ ॥ आप और दूसरे सबही राजाजन दूत मुखही होते हैं। अर्थात् दूतही उनके मुख होते हैं, वे उन्हींके द्वारा अपनी सब बातोंको एक दूसरेको सुनाते हैं ॥ १६ ॥

तस्मादुद्यतेष्वपि शस्त्रेषु यथोक्तं वक्तारस्तेषामन्तावसायिनोऽप्यवध्याः ॥ १७ ॥ किमङ्ग पुनर्ब्राह्मणाः ॥ १८ ॥ परस्यैतद्वाक्यमेष दूतधर्म इति ॥ १९ ॥

इसलिये उन्हें वध करनेके लिये शस्त्र उठाये जानेपर भी, वे (दूत) ठीक २ बातको कहने वालेही होते हैं। उनमें यदि कोई चाण्डाल भी इस कार्यको करने वाला हो, तो वहभी अवध्यही होता है। फिर ब्राह्मणका तो कहना ही क्या ?। अर्थात् दूतका कार्य करने वाला चाहे नीच चाण्डाल भी हो, वह भी वध्य नहीं होता ॥ १७–१८ ॥ क्योंकि जो कुछ वे कहते हैं, वह उनका वाक्य नहीं होता, किन्तु दूसरेका ही होता है। यहांतक दूतधर्मका निरूपण किया गया ॥ १९ ॥

वसेदविसृष्टः प्रपूजया नोत्सिक्तः ॥ २० ॥ परेषु बलित्वं न मन्येत ॥ २१ ॥ वाक्यमनिष्टं सहेत ॥ २२ ॥ स्त्रियः पानं च वर्जयेत् ॥ २३ ॥ एकः शयीत ॥ २४ ॥

जबतक शत्रु राजा उसे जानेकी आज्ञा न दे, तबतक वहीं निवास करे; शत्रुके द्वारा किये गये सत्कारसे गर्वित न होजावे ॥ २० ॥ शत्रुओंके बीचमें रहते हुए अपने आपको बहुत बलवान् न समझे ॥ २१ ॥ यदि कोई बुरा वाक्य भी अपनेसे कहदे, तो उसे सहन करले ॥ २२ ॥ स्त्रीसंग तथा मद्य आदिका पीना सर्वथा छोड़ देवे ॥ २३ ॥ अपने स्थानमें अकेलाही शयन करे ॥ २४ ॥

सुप्तमत्तयोर्हि भावज्ञानं दृष्टम् ॥ २५ ॥

क्योंकि मद्य आदि पीनेसे आदमी पागल होजाता है और अपनी गुप्त बातोंको भी उगल देता है। इसीतरह सोते समय कभी २ आदमी अपने हार्दिक भावोंके अनुसार बड़बड़ाने लगता है, यदि वहां कोई दूसरा आदमी होवे, तो गुप्त रहस्योंको जान जाता है। इसलिये दूतको मद्य पीना और किसीके साथ सोना अत्यन्त वर्जित है ॥ २५ ॥

कृत्यपक्षोपजापमकृत्यपक्षे गूढप्रणिधानं रागापरागौ भर्तरि रन्ध्रं च प्रकृतीनां तापसवैदेहकव्यञ्जनाभ्यामुपलभेत ॥ २६ ॥

शत्रुके देशके कृत्यपक्ष (देखो–अधि. १, अध्या. १४) को शत्रुसे भिन्न करदेनेका कार्य, अकृत्य पक्षमें गूढपुरुषों (तीक्ष्ण, रसद आदि) का प्रयोग, अमात्य आदि प्रकृतियोंका राजामें अनुराग या अपराग तथा राजाके दोषोंको, तापस और वैदेहक (व्यापारी) के वेषमें वहां रहने वाले अपने गुप्तचरोंके द्वारा जाने ॥ २६ ॥

तयोरन्तेवासिभिश्चिकित्सकपाषण्डव्यञ्जनोभयवेतनैर्वा ॥२७॥ तेषामसंभाषायां याचकमत्तोन्मत्तसुप्तप्रलापैः ॥ २८ ॥

अथवा तापस और वैदेहकके शिष्योंके द्वारा, या चिकित्सक तथा पाषंड के वेशमें रहनेवाले गुप्तचरोंके द्वारा अथवा उभयवेतन गुप्त पुरुषोंके द्वारा, शत्रु के सब कार्योंका पता लगावे ॥ २७ ॥ यदि इन लोगोंके साथभी बातचीत करनेका अवसर न मिलसके, तो भिक्षुक, मत्त, उन्मत्त तथा सुप्तप्रलापोंके द्वारा जितनाभी मालूम होसके शत्रुके कार्योंका पता लगावे ॥ २८ ॥

पुण्यस्थानदेवगृहचित्रलेख्यसंज्ञाभिर्वा चारमुपलभेत ॥२९॥ उपलब्धस्योपजापमुपेयात् ॥ ३० ॥

नदीतट आदिक पवित्र तीर्थ स्थानों, देवालयों, घरके चित्रों तथा अन्य लिखित इशारोंके द्वारा, वहांके समचार जाने ॥ २९ ॥ ठीक २ समाचारोंके मालूम हो जाने पर, उनके अनुसार यथावश्यक भेद रूप उपाय का प्रयोग करे ॥ ३० ॥

परेण चाक्तः स्वासां प्रकृतीनां परिमाणं नाचक्षीत ॥ ३१ ॥ सर्वं वेद भवानिति ब्रूयात् ॥ ३२ ॥ कार्यसिद्धिकरं वा ॥ ३३ ॥

शत्रुके पूछनेपर भी, अपनी अमात्य आदि प्रकृतियोंकी ठीक २ अवस्था को न बताये ॥ ३१ ॥ केवल इतना कहदे कि, आप सब कुछ जानते ही हैं, मैं आपके सामने और अधिक क्या कह सकता हूं ॥ ३२ ॥ यदि इतने उत्तरसे शत्रु सन्तुष्ट न होवे, तो अपने अमात्य आदिकी उतनी ही हालत बतला देवे, जितनीसे कि अपना कार्य सिद्ध होजाय । अर्थात् जिससे अपने कार्यमें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित न हो ॥ ३३ ॥

कार्यस्यासिद्धावुपरुध्यमानस्तर्कयेत् ॥ ३४ ॥ किं भर्तुर्मे व्यसनमासन्नं पश्यन् ॥ ३५ ॥ स्वं वा व्यसनं प्रतिकर्तुकामः

॥ ३६ ॥ पार्ष्णिग्राहासारावन्तःकोपमाटविकं वा समुत्थापयितुकामः ॥ ३७ ॥ मित्रमाक्रन्दं वा व्यापादयितुकामः ॥ ३८ ॥ स्वं वा परतो विग्रहमन्तः कोपमाटाविकं वा प्रतिकर्तुकामः ॥३९॥ संसिद्धं मे भर्तुर्यात्राकालमभियन्तुकामः सस्यकुप्यपण्यसंग्रहं दुर्गकर्म बलसमुत्थानं वा कर्तुकामः ॥ ४० ॥ स्वसैन्यानां वा व्यायामदेशकालावाकांक्षमाणः ॥४१॥ परिभवप्रमदाभ्यां वा ॥४२॥ संसर्गानुबन्धार्थी वा ॥ ४३ ॥ मामुपरुणद्धीति ॥ ४४ ॥

कार्यके सिद्ध होजानेपर यदि शत्रु राजा दूत को अपने यहां ही रोकलेता है, अर्थात् उसे अपने देशमें चलेजाने की अभी अनुमति नहीं देता, तो दूतको विचारना चाहिये, कि यह मुझे क्यों रोक रहा है ॥ ३४ ॥ क्या इसने मेरे स्वामीपर, समीपमें ही आनेवाली किसी विपत्तिको जान लिया है?॥३५॥ या मेरे जानेसे पहिले २ अपने किसी व्यसनका प्रतीकार करना चाहता है ॥३६॥ अथवा पार्ष्णिग्राह (अपने स्वामीका शत्रु, अर्थात् शत्रु राजाका मित्रभूत) और आसार (पार्ष्णिग्राहका मित्र, अर्थात् शत्रुके मित्रका मित्र, इन) को मेरे स्वामी के साथ युद्ध करनेके लिये उभारना चाहता है। या मेरे स्वामीके अमात्य आदिको उससे कुपित कराना चाहता है, या किसी आटविकको लड़ानेके लिये तैयार करना चाहता है ॥ ३७ ॥ अथवा मित्र (विजिगीषुके सामने की ओरका मित्र) और आक्रन्द (विजिगीषुके पीछेकी ओरका मित्र। यह आगे पीछेकी कल्पना, शत्रुके देशको आगे समझकर उसीके अनुसार करनी चाहिये) को मारना चाहता है। (किसी पुस्तकमें 'मित्रमाक्रन्दाभ्यां' इस तरहका भी पाठ है, उसका अर्थ इस प्रकार करना चाहियेः—अथवा आक्रन्दोंके द्वारा मित्रको मरवाना चाहता है) ॥ ३८ ॥ अथवा दूसरोंसे अपने ऊपर किये हुए आक्रमणका अपने अन्तः कोप (अमात्य आदि अपनी प्रकृतियोंके कोप) का, या अपने आटविकका प्रतीकार करना चाहता है ॥ ३९ ॥ अथवा मेरे स्वामीके, इसपर, इस उचित आक्रमणके समय को टालना चाहता है, या इसमें रुकावट डालना चाहता है। अथवा अपने धान्य, लोहा तांबा, तथा इसी प्रकारकी अन्य आवश्यक वस्तुओंका संग्रह, दुर्ग आदि बनवाना, तथा सेनाओंका संग्रह करना चाहता है ॥ ४० ॥ अथवा अपनी सेनाओंकी कवायद, तथा उनकी स्थितिके लिये उचित देश और कालकी आकांक्षा कर रहा है ॥ ४१ ॥ अथवा किसी प्रकारके तिरस्कार, या सहवासकी प्रीतिके कारण ॥ ४२ ॥ अथवा विवाह आदि किसी सम्बन्धके निमित्त, या मेरे विषयमें किसी प्रकारका दोष उत्पन्न करनेके

निमित्त ॥ ४३ ॥ मुझे रोक रहा है । दूत अपने रोके जानेके इन सब उपर्युक्त कारणोंका अच्छी तरह विचार करे ॥ ४४ ॥

ज्ञात्वा वसेदपसरेद्वा ॥४५॥ प्रयोजनमिष्टमवेक्षेत वा ॥४६॥ शासनमनिष्टमुक्त्वा बन्धवधभयादविसृष्टो व्यपगच्छेत् ॥ ४७ ॥ अन्यथा नियम्येत ॥ ४८ ॥

जब ठीक २ रोकनेके कारणका पता लग जावे, तो उसके अनुसार अपनी अनुकूलता देखकर वहीं निवास करे, अथवा प्रतीकूल होने पर वहांसे चलाजावे ॥४५॥ अथवा अपने स्वामीके किसी अभीष्ट प्रयोजनका विचार करता हुआ, शत्रुके नगरमें ही रहे, और गूढ़ पुरुषोंके द्वारा अपने सब समाचारोंको राजातक पहुंचाकर, राजाके द्वारा ही इन सब बातोंका प्रतीकार करावे ॥४६॥ शत्रु राजाको सर्वथा अप्रसन्न करदेनेवाले, अपने (मालिकके) सन्देश को सुना कर, दूत, अपने पकड़ेजाने, या मारे जानेके भयसे शत्रु राजाकी अनुमतिके बिनाही वहांसे चला जावे ॥ ४७ ॥ ऐसा न करनेपर, दूत पकड़ लिया जाता है ॥ ४८ ॥

प्रेषणं संधिपालत्वं प्रतापो मित्रसंग्रहः ।
उपजापः सुहृद्भेदो गूढदण्डातिसारणम् ॥ ४९ ॥

शत्रुके देशमें अपना सन्देश सुनाने और शत्रुका सन्देश सुननेके लिये भेजना, पहिली कीहुई सन्धिकी रक्षा करना, अवसर आनेपर अपने प्रतापका प्रकाशन करना, मित्रोंका संग्रह करना, शत्रुके कृत्यपक्षके पुरुषोंमें भेद डालना, शत्रुके मित्रोंको उससे भिन्न करना, तीक्ष्ण, रसद आदि गूढपुरुषों तथा सेनाका भगा देना ॥ ४९ ॥

बन्धुरत्नापहरणं चारज्ञानं पराक्रमः ।
समाधिमोक्षो दूतस्य कर्म योगस्य चाश्रयः ॥ ५० ॥

बन्धु (अर्थात् शत्रुके) तथा रत्नोंका अपहरण करना, अर्थात् उन्हें अपने अधीन करना, शत्रुके देशमें रहते हुए गुप्तचरोंके कार्योंको ठीक २ जानना, अवसर आनेपर पराक्रम दिखाना, सन्धिकी दृढ़ताके लिये आधि (जमानत) रूपमें रक्खे हुए राजकुमार आदिका छुड़ाना, औपनिषदिक प्रकरणमें बताये हुए मारण आदिका प्रयोग करना, ये सब दूतके कर्म हैं ॥ ५० ॥

स्वदूतैः कारयेदेतत्परदूतांश्च रक्षयेत् ।
प्रतिदूतापसर्पाभ्यां दृश्यादृश्यैश्च रक्षिभिः ॥ ५१ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे दूतप्रणिधिः षोडशो ऽध्यायः ॥ १६ ॥

राजाको उचित है कि इन सब उपर्युक्त कार्योंको अपने दूतोंसे करवावे। और शत्रुके दूतोंके पीछे अपने और दूत लगादेवे, अथवा गूढपुरुषोंको लगादेवे! अपने देशमें तो वे उस दूतके प्रत्येक कार्यका प्रकट रूपमें रहते हुएही पता लगाते रहें; शत्रुदेशमें उसके सेवक बनकर अदृश्य रूपमें उसकेही पास रहें, और उसके प्रत्येक कार्यका पता लगावें। इसप्रकार इन पुरुषोंके द्वारा राजा शत्रुके दूतोंके प्रत्येक कार्यकी गवेषणा करता रहे ॥ ५१ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें सोलहवां अध्याय समाप्त।

सत्रहवां अध्याय।

१३ प्रकरण।

राजपुत्रोंसे राजाकी रक्षा।

रक्षितो राजा राज्यं रक्षत्यासन्नेभ्यः परेभ्यश्च ॥ १ ॥ पूर्वं दारेभ्यः पुत्रेभ्यश्च ॥ २ ॥

अपने समीप रहने वाले पुत्र बन्धु बान्धव आदि तथा शत्रुओंसे रक्षा किया हुआही राजा, राज्यकी रक्षा कर सकता है ॥ १ ॥ राजाके लिये सबसे प्रथम विपत्तिस्थान, उसकी स्त्रियां और पुत्रही हैं, इसलिये प्रथम उनमेंही रक्षाका उपाय करना चाहिये ॥ २ ॥

दाररक्षणं निशान्तप्रणिधौ वक्ष्यामः ॥३॥ पुत्ररक्षणम् ॥४॥

स्त्रियोंसे राजाकी रक्षा किसप्रकार करनी चाहिये, इस बातका निरूपण 'निशान्त प्रणिधि' (१७ प्रकरण) नामक प्रकरणमें किया जायगा ॥ ३ ॥ यहां पर पुत्रोंसे रक्षाका प्रकार बताया जाता है ॥ ४ ॥

जन्मप्रभृति राजपुत्रान्रक्षेत् ॥ ५ ॥ कर्कटसधर्माणो हि जनकभक्षा राजपुत्राः ॥ ६ ॥

राजाको उचित है कि जन्मसे लेकर, राजपुत्रोंकी निगरानी रक्खे, अर्थात् उनको स्वतन्त्र न होने दे, किसी प्रकारके बन्धन आदिमें ही उन्हें रक्खे ॥५॥ क्योंकि राजपुत्र, कर्कटक (कुलीर=केंकड़ा) के समान अपने पिताकोही खाने वाले होते हैं। यह लोक प्रसिद्ध है, कि केंकड़ा अपने पिताको खाता हुआ ही जीवित रहता है, इसीप्रकार राजपुत्र भी अपने पिताको नष्टकर अपना ऐश्वर्य चाहा करते हैं ॥ ६ ॥

तेषामजातस्नेहे पितर्युपांशुदण्डः श्रेयानिति भारद्वाजः ॥७॥

भारद्वाज आचार्यका मत है, कि यदि पुत्रोंमें, पिताके प्रति स्नेह उत्पन्न न हो, तो उनका उपांशुवध कर देनाही श्रेयस्कर है ॥ ७ ॥

नृशंसमदृष्टवधः क्षत्रबीजविनाशश्चेति विशालाक्षः ॥ ८ ॥ तस्मादेकस्थानावरोधः श्रेयानिति ॥ ९ ॥

परन्तु इसके विरुद्ध विशालाक्ष आचार्य कहता है कि निरपराध बच्चों-का इसप्रकार चुपचाप मारदेना घोरपाप और क्रूरता है, तथा ऐसा करसे क्षत्रिय वंशका नाश होजाना भी निश्चित है ॥ ८ ॥ इसलिये यही उचित है कि पुत्रोंको पिताके प्रति प्रीति उत्पन्न न होनेपर समीपके किसी स्थानमें कैद करके रक्खा जावे ॥ ९ ॥

अहिभयमेतदिति पाराशराः ॥ १० ॥ कुमारो हि विक्रमभयान्मां पिता रुणद्धीति ज्ञात्वा तमेवाङ्के कुर्यात् ॥ ११ ॥ तस्मादन्तपालदुर्गे वासः श्रेयानिति ॥ १२ ॥

परन्तु इसके विरुद्ध पाराशर आचार्य कहते हैं कि ऐसा करना तो सांपके भयके समान है। अर्थात् जैसे सांप, घरमें रहता हुआ भयावह होता है, इसीप्रकार, पुत्रका अपने पास कैदमें रखना भी भयावह समझना चाहिये ॥ १० ॥ क्योंकि कुमार यह समझकर कि पिता अपने वधके भयसे मुझको कैद करके रखता है, घरमें रहता हुआ सरलतासे ही उसके वध करनेका यत्न कर सकता है ॥ ११ ॥ इसलिये उचित यही है कि राजकुमारको राज्यकी सीमाके किसी दूरस्थित दुर्गमें रक्खा जावे। क्योंकि वहां दूर रहता हुआ वह सरलतासे पितापर आक्रमण नहीं कर सकता ॥ १२ ॥

औरभ्रकं भयमेतदिति पिशुनः ॥ १३ ॥ प्रत्यापत्तेर्हि तदेव कारणं ज्ञात्वान्तपालसखः स्यात् ॥ १४ ॥ तस्मात्स्वविषयादपकृष्टे सामन्तदुर्गे वासः श्रेयानिति ॥ १५ ॥

नारद आचार्यका मत है कि सीमास्थित दुर्गमें राजपुत्रका रखना मेंढके भयके समान है, जैसे मेंढा दूसरेपर आक्रमण करनेके लिये पीछेकी ओर कुछ दूर हटजाता है, इसीप्रकार सीमादुर्गस्थित राजपुत्र भी अवसर पाकर राजा-पर आक्रमण कर सकता है ॥ १३ ॥ क्योंकि जब उसे यह मालूम होजाय कि पिताने मुझे अपने वधके भयके कारणही यहां कैद करके रक्खा है, तो अपनी कैदके इस कारणको समझकर वह अपने कार्यको पूरा करनेके लिये अन्तपालके साथ मित्रता कर सकता है। अर्थात् अन्तपाल (सीमा दुर्गका रक्षक) की सहायतासे वह पितापर फिरभी आक्रमण करही सकता है ॥ १४ ॥ इसलिये

राजकुमारको अपने देशसे निकालकर सामन्त (अपने समीप देशका राजा) के दुर्गमें, उसका निवास करनाही श्रेयस्कर है ॥ १५ ॥

वत्सस्थानमेतादिति कौणपदन्तः ॥ १६ ॥ वत्सेनेव हि धेनुं पितरमस्य सामन्तो दुह्यात् ॥ १७ ॥ तस्मान्मातृबन्धुषु वासः श्रेयानिति ॥ १८ ॥

परन्तु आचार्य कौणपदन्त (भीष्म) इस मतको भी ग्राह्य नहीं समझता । वह कहता है कि राजकुमारको सामन्तके दुर्गमें बसाना, गायके बछड़ेको दूसरेके हाथमें देदेनेके समान है । अर्थात् जैसे बछड़ेके, दूसरेके हाथमें चलेजानेपर, वह बछड़ेके द्वारा जब चाहे गायको दुह सकता है । इसीप्रकार सामन्त भी उस पुत्रके द्वारा जब चाहे विजिगीषुसे इच्छानुसार धन आदि लेसकता है ॥ १६–१७ ॥ इसलिये राजकुमारकी माताके बन्धुओंके पासही राजकुमारका वास कराना श्रेयस्कर है ॥ १८ ॥

ध्वजस्थानमेतादिति वातव्याधिः ॥ १९ ॥ तेन हि ध्वजेनादितिकौशिकवदस्य मातृबान्धवा भिक्षेरन् ॥२०॥ तस्माद्ग्राम्यधर्मेष्वेनमवसृजेयुः ॥ २१ ॥ सुखोपरुद्धा हि पुत्राः पितरं नाभिद्रुह्यन्तीति ॥ २२ ॥

परन्तु आचार्य वातव्याधि (उद्धव) इस मतको भी हेय समझता है । वह कहता है कि राजकुमारको उसके मातृ कुलमें रखना एक ध्वजाके समान है ॥ १९ ॥ क्योंकि जिसप्रकार ध्वजा (चिन्ह विशेष) को दिखाकर, अदिति (भिन्न २ देवताओंकी प्रतिकृति दिखाकर भिक्षा एकत्रित करने वाली भिक्षुकी) और कौशिक (सपेरे, सांपको पकड़कर, उसे दिखा २ कर जीविका करने वाले) अपनी जीविका निर्वाह करनेके लिये भिक्षा एकत्रित करते हैं, इसीप्रकार राजकुमारके मातृकुलके पुरुष भी उसे दिखा २ कर लोगोंसे धन इकट्ठा कर सकते हैं ॥ २० ॥ इसलिये इस राजकुमारको ग्राम्यधर्म अर्थात् स्त्रीसंग आदिमें उसकी इच्छानुसार लगा रहनेदे ॥ २१ ॥ क्योंकि वैषयिक सुखोंमें रुके हुए पुत्र, अपने पिताके साथ कभी द्रोह नहीं करते ॥ २२ ॥

जीवन्मरणमेतादिति कौटल्यः ॥ २३ ॥ काष्ठमिव हि घुणजग्धं राजकुलमविनीतपुत्रमभियुक्तमात्रं भज्येत ॥ २४ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य इस सिद्धान्तको कदापि उपादेय नहीं समझता, वह कहता है, कि पुत्रोंको इसप्रकार विषयोंमें फंसाकर रखना तो उन्हें जीतेही मारदेना है । अर्थात् उनका इसप्रकारका जीवन सर्वथा मरणकेही समान है

॥ २३ ॥ क्योंकि जिसप्रकार घुण (एक प्रकारका कीड़ा, जो लकड़ीको भीतरसे काट २ कर निस्सत्त्व करदेता है), से काटी हुई लकड़ी शीघ्र नष्ट होजाती है, इसीप्रकार जिस राजकुलके राजकुमार शिक्षित नहीं बनाये जाते, वह राजकुल विना किसी युद्धादिके ही स्वयं नष्ट होजाता है ॥ २४ ॥

तस्मादृतुमत्यां महिष्यां ऋत्विजश्चरुमैन्द्रबार्हस्पत्यं निर्वपेयुः ॥ २५ ॥ आपन्नसत्वायां कौमारभृत्यो गर्भभर्मणि प्रजनने च वियतेत ॥ २६ ॥

इसलिये राजाको यह आवश्यक है कि वह इसका प्रबन्ध करदे, कि जब महारानी ऋतुमती होवे, तब ऋत्विज्, इन्द्र और बृहस्पति देवताके उद्देश्यसे चरुको सिद्ध करें । इन्द्रको ऐश्वर्यके लिये और बृहस्पतिको विद्या बुद्धिके लिये हविका देना कहागया है ॥ २५ ॥ जब महाराणी गर्भवती होजावे, तो शिशुचिकित्सक (कौमारभृत्यः), गर्भके पुष्ट करने और सुखपूर्वक प्रसव होनेके लिये पूर्ण यत्न करे ॥ २६ ॥

प्रजातायाः पुत्रसंस्कारं पुरोहितः कुर्यात् ॥ २७ ॥ समर्थं तद्विदो विनयेयुः ॥ २८ ॥

महाराणीके प्रसूता होनेपर अर्थात् पुत्र उत्पन्न होजानेपर, विद्वान् पुरोहित पुत्रका यथोचित संस्कार करे ॥ २७ ॥ तदनन्तर राजकुमारके समर्थ होजानेपर, उन २ विषयोंके निपुण विद्वान्, उसको भिन्न २ प्रकारकी उचित शिक्षा देवें ॥ २८ ॥

सत्त्रिणामेकश्चैनं मृगयाद्यूतमद्यस्त्रीभिः प्रलोभयेत् ॥ २९ ॥ पितरि विक्रम्य राज्यं गृहाणेति ॥ ३० ॥ तदन्यः सत्त्री प्रतिषेधयेदित्याम्भीयाः ॥ ३१ ॥

आम्भ आचार्यके अनुयायियोंका मत है कि सत्रियोंमेंसे एक इस राजकुमारको मृगया (शिकार), द्यूत (जुआ), मद्य और स्त्रियोंका प्रलोभन देवे ॥ २९ ॥ और कहे कि पितापर आक्रमण करके अपना राज्य ले लो । फिर खूब मौज उड़ाओगे ॥ ३० ॥ और दूसरा सत्री कहे कि ऐसा करना बहुत बुरा है । इस प्रकार ये सब काम करने का राजकुमार को प्रतिषेध करे ॥ ३१ ॥

महादोषमबुद्धबोधनमिति कौटल्यः ॥ ३२ ॥ नवं हि द्रव्यं येन येनार्थजातेनोपदिह्यते तत्तदाचूषति ॥ ३३ ॥ एवमयं नवबुद्धिर्यद्यदुच्यते तत्तच्छास्त्रोपदेशमिवाभिजानाति ॥ ३४ ॥ तस्माद्धर्ममर्थं चास्योपदिशेन्नाधर्ममनर्थं च ॥ ३५ ॥

परन्तु आम्भ आचार्यके अनुयायियोंके इस मत को कौटल्य सर्वथा हेय समझता है, वह कहता है, कि सरल स्वभाव बालकों को पिताके साथ द्रोह करना सिखाना महादोष है ॥ ३२ ॥ क्योंकि जिस प्रकार नया मृद्भाण्ड (मट्टी का वर्तन) आदि द्रव्य, जिस २ जल, घृत आदि वस्तुओंके साथ छुआया जाता है, उन सबको ही वह चूसता जाता है ॥ ३३ ॥ इसी प्रकार इस सरलबुद्धि बालकको जो २ कुछ कहाजाता है, उन २ सब बातोंको वह शास्त्रके उपदेश की तरह समझता है ॥३४॥ इसलिये इस सरलबुद्धि बालकको सदा धर्म और अर्थ का ही उपदेश करना चाहिये, अधर्म और अनर्थ का कदापि नहीं ॥ ३५ ॥

सत्त्रिणस्त्वेनं तव स्म इति वदन्तः पालयेयुः ॥ ३६ ॥ यौवनोत्सेकात्परस्त्रीषु मनः कुर्वाणमार्याव्यञ्जनाभिः स्त्रीभिरमेध्याभिः शून्यागारेषु रात्रावुद्वेजयेयुः ॥ ३७ ॥

और सत्त्री लोग, हम तेरे ही हैं, इस प्रकार कहते हुए इसकी पालना करें ॥ ३६ ॥ यदि राजकुमार यौवन मदसे परस्त्रियोंमें अपने मनको लेजाता है, तो राजा, या उसके रक्षकोंको चाहिये, कि वे सदा अपवित्र रहने वाली, आर्या (श्रेष्ठ स्त्रीके समान) वेष बनाये हुई स्त्रियोंके द्वारा; रात्रिके समय एकान्त स्थानमें उसे उद्विग्न करावें। जिससे कि खिन्न होकर वह फिर कभी अपने मनको परस्त्रियोंकी ओर न लेजावे ॥ ३७ ॥

मद्यकामं योगपानेनोद्वेजयेयुः ॥ ३८ ॥ द्यूतकामं कापटिकैः पुरुषैरुद्वेजयेयुः ॥ ३९ ॥

यदि राजकुमार, मद्य आदि पीनेकी कामना करे, तो उसे मद्यमें कोई विरस (जिसका रस बहुत खराब, चित्तको उद्विग्न करदेने वाला हो, ऐसी) वस्तु मिलाकर पिलावें, जिससे वह खिन्न होकर फिर कभी मद्य न पीवे ॥३८॥ यदि राजकुमार, जुआ खेलनेकी कामना करता हो, तो उसे कापटिक अर्थात् छल पूर्वक जुआ खेलनेमें अत्यन्त चतुर पुरुषोंके साथ जुआ खिलवाकर खूब उद्विग्न करें, जिससे कि वह फिर जुआ खेलनेका नाम न ले ॥ ३९ ॥

मृगयाकामं प्रतिरोधकव्यञ्जनैस्त्रासयेयुः ॥ ४० ॥ पितरि विक्रमबुद्धिं तथेत्यनुप्रविश्य भेदयेयुः ॥ ४१ ॥

यदि यह मृगया अर्थात् शिकारकी कामना रखता हो, तो उसे, चोरोंका वेष धारण किये हुए पुरुषोंके द्वारा अच्छीतरह खिन्न करें; जिससे कि बेचैन होकर, फिर कभी वह मृगयाकी ओर ध्यान न दे ॥ ४० ॥ जो राजकुमार,

अपने पितापरही आक्रमण करनेका विचार करे, तो पहिले उसके साथ मिलकर, अर्थात् ऊपरसे यह कहकर, कि हमभी तुम्हारे साथ हैं, जैसा तुम चाहते हो कर सकते हो, फिर उसको वह काम करनेसे रोकदें ॥ ४१ ॥

अप्रार्थनीयो राजा विपन्ने घातः संपन्ने नरकपातः संक्रोशः प्रजाभिरेकलोष्टवधश्चेति ॥ ४२ ॥

उस कार्यसे रोकनेके लिये उसको यह कहें, कि देखो राजाके साथ कभी द्वेष नहीं करना चाहिये, यदि तुम अपने कार्यमें सफल न होसके तो यह निश्चय रक्खो, कि तुम्हें मार दिया जायगा, यदि तुम अपने कार्यमें सफल होगये अर्थात् तुमने धोखेसे राजाको मारडाला तो निश्चयही तुम नरकमें पड़ोगे, सम्पूर्ण प्रजाजन तुम्हारी निन्दा करेंगे, और यह भी सम्भव है कि प्रजाजन आपसमें मिलकर दुर्गतके साथ तुम्हें मारडालें । इसलिये तुम्हें पितृवध रूपी घोरपाप कदापि न करना चाहिये ॥ ४२ ॥

विरागं प्रियमेकपुत्रं वा बध्नीयात् ॥ ४३ ॥ बहुपुत्रः प्रत्यन्तमन्यविषयं वा प्रेषयेद्यत्र गर्भः पण्यं डिम्बो वा न भवेत् ॥४४॥ आत्मसंपन्नं सैनापत्ये यौवराज्ये वा स्थापयेत् ॥ ४५ ॥

पितामें स्नेह न रखने वाला, किन्तु पिताका प्यारा एकही पुत्र यदि हो, तो उसे कैद करलेवे ॥ ४३ ॥ यदि पुत्र बहुत हों, तो उसे सीमा प्रान्त अथवा दूसरेही देशमें भेजदेवे, जहांपर कि राजपुत्रके उचित अन्न, तथा अन्य सुन्दर वस्त्र आदि सामान न मिलसकें । और जहांकी प्रजा, राजपुत्रके निमित्त किसी प्रकारका विप्लव करनेको तयार न हो ॥ ४४ ॥ जो पुत्र आत्मसंपत्तिसे (योग्य उचित गुणोंसे) युक्त हो, उसको सेनापति पदपर अथवा यौवराज्य पदपर स्थापित करे ॥ ४५ ॥

बुद्धिमानाहार्यबुद्धिर्दुर्बुद्धिरिति पुत्रविशेषाः ॥ ४६ ॥ शिष्यमाणो धर्मार्थावुपलभते चानुतिष्ठति च बुद्धिमान् ॥ ४७ ॥ उपलभमानो नानुतिष्ठत्याहार्यबुद्धिः ॥४८॥ अपायनित्यो धर्मार्थद्वेषी चेति दुर्बुद्धिः ॥ ४९ ॥

राजपुत्र तीन प्रकारके होते हैं, १ बुद्धिमान्, २ आहार्य बुद्धि, ३ दुर्बुद्धि ॥ ४६ ॥ बतलाये जानेपर, जो धर्म और अर्थको अच्छीतरह समझ लेता है, तथा फिर उसपर आचरण भी करता है; वह बुद्धिमान् कहाता है ॥ ४७ ॥ जो धर्म और अर्थको समझ तो लेता है, परन्तु उसपर फिर आचरण नहीं करता,

उसे आहार्यबुद्धि कहते हैं ॥ ४८ ॥ सदा बुराइयोंमें लगे रहने वाले तथा धर्म और अर्थसे द्वेष करने वाले पुत्रको दुर्बुद्धि कहाजाता है ॥ ४९ ॥

स यद्येकपुत्रः पुत्रोत्पत्तावस्य प्रयतेत ॥५०॥ पुत्रिकापुत्रानुत्पादयेद्वा ॥ ५१ ॥

यदि राजाका, एकही दुर्बुद्धि पुत्र हो, तो उसके पुत्रकी उत्पत्तिमें विशेष यत्न करे। अर्थात् ऐसा यत्न करे कि उसका पुत्र राज्यके योग्य बनसके ॥५०॥ यदि यह सम्भव न होसके, तो अपनी पुत्रीके पुत्रको इस कार्यके लिये तयार करे। तात्पर्य यह है, कि अपनी कन्याका विवाह जिसके साथ करे, उससे यह शर्त करले कि जो पहिला पुत्र इससे होगा, उसे मैं लेलूंगा, इस प्रकार उसे लेकर राज्यके योग्य बनावे ॥ ५१ ॥

वृद्धस्तु व्याधितो वा राजा मातृबन्धुकुल्यगुणवत्सामन्तानामन्यतमेन क्षेत्रे बीजमुत्पादयेत् ॥ ५२ ॥ न चैकपुत्रमविनीतं राज्ये स्थापयेत् ॥ ५३ ॥

अथवा यदि राजा बूढ़ा होगया हो, या सदा बीमार रहता हो, तो अपने मातृकुलके या अपने बन्धु कुलके किसी पुरुषसे, या गुणवान् सामन्तसे नियोगके द्वारा अपनी स्त्रीमें पुत्र उत्पन्न करालेवे, और उसको राज्यके लिये तयार करे ॥ ५२ ॥ किन्तु अशिक्षित दुर्बुद्धि एक पुत्रको राजा कदापि राज्यपर स्थापित न करे ॥ ५३ ॥

बहूनामेकसंरोधः पिता पुत्रहितो भवेत् ।
अन्यत्रापद ऐश्वर्यं ज्येष्ठभागि तु पूज्यते ॥ ५४ ॥

यदि बहुतसे पुत्रोंमेंसे एक कुबुद्धि हो, तो उसे अवश्यही किसी दूसरे देशमें निकालकर रोक कर रक्खे। यदि राजापर कोई आपत्ति न हो, तो वह सदा अपने पुत्रोंकी हितकामनाही करता रहे। अर्थात् पुत्रोंके द्वारा पितापर कोई आपत्ति न आनेपर, पिताका भी कर्त्तव्य है कि वह पुत्रोंका हित करे, जब बहुतसे पुत्र राजाको प्यारे हों, तो उनमें सबसे ज्येष्ठ पुत्रकोही राज्यासनपर स्थापित करना प्रशस्त समझा जाता है ॥ ५४ ॥

कुलस्य वा भवेद्राज्यं कुलसङ्घो हि दुर्जयः ।
अराजव्यसनाबाधः शश्वदावसति क्षितिम् ॥ ५५ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे राजपुत्ररक्षणं सप्तदशो ऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथवा सम्पूर्ण कुलकाही राज्यपर अधिकार होवे, अर्थात् वे सब मिलकरही राज्य शासनके कार्यको चलावें। क्योंकि कुलसमुदाय राज्यका नेता हुआर

शत्रुके द्वारा सरलतासे जीता नहीं जासकता। एक और भी बात है, यदि एक ही व्यक्ति राजा होता है, तो उसपर व्यसन आनेपर प्रजाका ठीक पालन नहीं होता, और प्रजा अत्यन्त पीडित होने लगती है, परन्तु समुदायके राजा होनेपर, यदि एकमें कोई व्यसन हो भी जाय, तो भी दूसरे व्यक्ति राज्य कार्यको यथाविधि चलाते रहते हैं, और प्रजाकी सुखमय अवस्था पृथिवीपर निरन्तर बनीही रहती है ॥ ५५ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें सत्रहवां अध्याय समाप्त।

अठारहवां अध्याय।

१४-१५ प्रकरण।

अवरुद्ध (अपने समीपसे हटकर कहीं दूसरे स्थानपर रक्खे हुए) राजकुमारका व्यवहार, तथा अवरुद्ध राजकुमारके प्रति राजाका व्यवहार

राजपुत्रः कृच्छ्रवृत्तिरसदृशे कर्मणि नियुक्तः पितरमनुवर्तेत ॥ १ ॥ अन्यत्र प्राणाबाधकप्रकृतिकोपकपातकेभ्य ॥ २ ॥

अपने अननुरूप (जो अपनी हैसियतके मुताबिक़ न हो, ऐसे) कार्यमें लगाया हुआ, इसीलिये बड़ी कठिनतासे जीवन निर्वाह करने वाला राजपुत्र, अपने पिताके कथनानुसार वर्त्ताव करता रहे ॥ १ ॥ परन्तु यदि उस कार्यके करनेमें प्राणोंका भय हो, अमात्य आदि प्रकृतियोंके कुपित होजानेका भय हो, या कोई पातक (घोरपाप) हो, तो पिताकी आज्ञाका अनुसरण कदापि न करे ॥ २ ॥

पुण्यकर्मणि नियुक्तः पुरुषमधिष्ठातारं याचेत ॥ ३ ॥ पुरुषाधिष्ठितश्च सविशेषमादेशमनुतिष्ठेत् ॥ ४ ॥ अभिरूपं च कर्मफलमौपायनिकं च लाभं पितुरुपनाययेत् ॥ ५ ॥

किसी पुण्यकार्यमें नियुक्त किया हुआ राजपुत्र, एक अधिष्ठाता (अपने नीचे रहकर सम्पूर्ण कार्योंकी देख रेख करने वाले) पुरुषको राजासे मांग लेवे ॥ ३ ॥ उस पुरुषसे युक्त हुआ २, राजाकी आज्ञाको विशेष रूपमें पालन करे ॥ ४ ॥ कार्यके करनेपर जो कुछ अनुरूप फल प्राप्त हो, तथा प्रजाजन जो कुछ

भेंट आदि उसे लाकर देवें, वह उस सम्पूर्ण सामग्रीको अपने पिताके पास भिजवा देवे ॥ ५ ॥

तथाप्यतुष्यन्तमन्यस्मिन्पुत्रे दारेषु वा स्निह्यन्तमरण्यायापृच्छेत् ॥ ६ ॥ बन्धवधभयाद्वा यः सामन्तो न्यायवृत्तिर्धार्मिकः सत्यवागविसंवादकः प्रतिग्रहीता मानयिता चाभिपन्नानां तमाश्रयेत ॥ ७ ॥

यदि फिरभी पिता सन्तुष्ट या प्रसन्न न होवे, और अपने दूसरे पुत्रों तथा स्त्रियोंमें ही स्नेह करता रहे, तो उस राजकुमारको चाहिये, कि वह जंगल में तपस्या आदि करनेको चलेजानेके लिये अपने पितासे आज्ञा लेलेवे ॥ ६ ॥ अथवा यदि अपने बांधेजाने या मारे जानेका भय हो, तो जो सामन्त, न्याय पूर्वक व्यवहार करने वाला, धार्मिक, सत्यवादी, अवञ्चक (धोखा न देनेवाला), शरणमें प्राप्त हुए पुरुषोंको आश्रय देनेवाला, तथा उनका सत्कार करनेवाला हो, उसका आश्रय लेलेवे ॥ ७ ॥

तत्रस्थः कोशदण्डसंपन्नः प्रवीरपुरुषकन्यासंबन्धमटवीसंबन्धं कृत्यपक्षोपग्रहं वा कुर्यात् ॥ ८ ॥ एकचरः सुवर्णपाकमणिरागहेमरूप्यपण्याकरकर्मान्तानाजीवेत् ॥ ९ ॥

वहां स्थित हुआ २, धन और सेनासे युक्त होकर, वहांके किसी वीर पुरुषकी कन्याके साथ विवाह सम्बन्ध करके, और अपने पिताके देशके आटविक पुरुषोंके साथ मित्रता आदिका सम्बन्ध जोड़के, वहांके कृत्यपक्षके पुरुषोंको अपनी ओर मिलानेका यत्न करे ॥ ८ ॥ यदि राजकुमार अकेलाही रहे, अर्थात् उसे धन और सेनाकी सहायता कहींसे भी न मिलसके, तो सुवर्णपाक (लोहे आदिको पुटपाक देकर सोना बनाना=रसतन्त्र प्रयोग करना आदि) कर्मके द्वारा, मणि, रंग, सुवर्ण, चांदी आदि विक्रेय पदार्थोंके व्यापार अथवा अन्य खनिज पदार्थोंके व्यापारके द्वारा अपनी जीविका करे ॥ ९ ॥

पाषण्डसङ्घद्रव्यमश्रोत्रियभोग्यं देवद्रव्यमाढ्यविधवाद्रव्यं वा गूढमनुप्रविश्य सार्थयानपात्राणि च मदनरसयोगेनातिसंधायापहरेत् ॥ १० ॥

अथवा पाखण्डी अधर्मी पुरुषोंके संगृहीत द्रव्यको, श्रोत्रियसे अतिरिक्त पुरुषोंके भोग्य द्रव्यको, देवताके निमित्त रक्खे हुए द्रव्यको, या किसी धन सम्पन्न विधवाके द्रव्यको, छिपकर इनके घरमें घुसकर अपहरण करले । अर्थात् उक्त प्रकारके धनको चोरी आदि करके अपने अधिकारमें करले । और जहाजसे

व्यापार करने वाले पुरुषोंके धनको भी, बेहोश करने वाली औषधि आदिका प्रयोग करके, उन्हें धोखा देकर अपहरण करलेवे ॥ १० ॥

पारग्रामिकं वा योगमातिष्ठेत् ॥ ११ ॥ मातुः परिजनोपग्रहेण वा चेष्टेत ॥ १२ ॥

अथवा पारग्रामिक (विजिगीषु जब कहीं दूसरे गांवको जाना चाहे, तब यह वहांपर अपना कार्य करले। देखोः—दुर्गलम्भोपाय अधिकरण) उपायका अनुष्ठान करे ॥ ११ ॥ अथवा अपनी माताके सेवक जनोंको अपने अनुकूल बनाकर, उनके द्वारा अपनी वृद्धिका यत्नकरे ॥ १२ ॥

कारुशिल्पिकुशीलवचिकित्सकवाग्जीवनपाषण्डछद्मभिर्वा नष्टरूपस्तद्व्यञ्जनसखश्छिद्रं प्रविश्य राज्ञः शस्त्ररसाभ्यां प्रहृत्य ब्रूयात् ॥ १३ ॥

अथवा बढ़ई लुहार, चित्रकार, गाने बजाने वाले, चिकित्सक (वैद्य), कथा कहकर जीविका करने वाले, तथा वेदबाह्य पाखण्डी पुरुषोंके वेषके साथ अपने असली रूपको छिपाकर, लुहार बढ़ई आदि पुरुषोंके सम नही हुआ २, अपने पिता (राजा) के किसी छिद्र (दोष—कमज़ोरी) को देखकर उसकेही द्वारा, शस्त्र अथवा विष आदि रसका प्रयोग करके अर्थात् इसतरह राजाको मारकर, अमात्य आदिसे कहे, कि ॥ १३ ॥

अहमसौ कुमारः सहभोग्यमिदं राज्यमेको नार्हति भोक्तुं तत्र ये कामयन्ते भर्तुं तानहं द्विगुणेन भक्तवेतनेनोपस्थास्य इति ॥ १४ ॥ इत्यवरुद्धवृत्तम् ॥ १५ ॥

मैं ही वह कुमार हूं। साथ २ भोगने योग्य इस राज्यको कोई अकेला नहीं भोग सकता। इसलिये जो अमात्य आदि राजकर्मचारी पूर्ववत् अपने अधिकारोंपर रहना चाहते हैं, वे शान्त पूर्वक रहें, मैं अपने राज्यकालमें उनको दुगना वेतन और भत्ता दूंगा ॥ १४ ॥ यहांतक अवरुद्ध राजकुमारके व्यवहारका निरूपण किया गया ॥ १५ ॥

अवरुद्धं तु मुख्यपुत्रमपसर्पाः प्रतिपाद्यानयेयुः ॥ १६ ॥ माता वा प्रतिगृहीता ॥ १७ ॥

अवरुद्ध राजकुमारको, अमात्य आदि मुख्य पुरुषोंके पुत्र गुप्त पुरुषके भेसमें जाकर यह समझाकर लेआवें कि यदि तुम राजाके अनुकूल रहोगे, तो वह अवश्य ही तुम्हें युवराज बनालेगा ॥ १६ ॥ अथवा राजासे सत्कृत हुई २ उसकी अपनी माता ही उसे वापस लेआवे ॥ १७ ॥

त्यक्तं गूढपुरुषाः शस्त्ररसाभ्यां हन्युः ॥ १८ ॥ अत्यक्तं तुल्यशीलाभिः स्त्रीभिः पानेन मृगयया वा प्रसज्य रात्रावुपगृह्यानयेयुः ॥ १९ ॥

यदि वह राजकुमार किसी तरहसे भी राजाके अनुकूल न होसके, तो राजाकी ओरसे परित्याग किये हुए उस राजकुमारको गूढपुरुष शस्त्र अथवा विष आदि रसोंके द्वारा मार डालें ॥ १८ ॥ यदि राजाने उसको अभीतक परित्याग न किया हो, तो उसके ही समान स्वभाववाली स्त्रियोंके द्वारा, मद्य आदि पिलाकर, अथवा मृगया (शिकार) में आसक्त कराके, रात्रिमें पकड़कर बांधकर राजाके समीप लेआवें ॥ १९ ॥

उपस्थितं च राज्येन ममोर्ध्वमिति सान्त्वयेत् ।
एकस्थमथ संरुन्ध्यात्पुत्रवान्वा प्रवासयेत् ॥ २० ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे ऽवरुद्धवृत्तमवरुद्धे च वृत्तिः अष्टादशो ऽध्यायः ॥ १८ ॥

जिस समय वह राजकुमार राजाके पास आवे, तो राजा उससे कहे कि यह राज्य मेरे बाद तुम्हारा ही होगा । अर्थात् धार्मिक राजपुत्रको भविष्यमें राज्य मिल जानेके कारण सान्त्वना देवे ; यदि एक ही पुत्र अधार्मिक हो तो उसे कैद करके रक्खे, और अन्य पुत्रोंके होनेपर उसे प्रवासित करदे; अर्थात् अपने देशसे बाहर करदे या मरवा डाले ॥ २० ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें अठारहवां अध्याय समाप्त ।

उन्नीसवां अध्याय ।

१६ प्रकरण ।

राजप्रणिधि ।

राजानमुत्तिष्ठमानमनूत्तिष्ठन्ते भृत्याः ॥ १ ॥ प्रमाद्यन्तमनुप्रमाद्यन्ति ॥ २ ॥ कर्माणि चास्य भक्षयन्ति ॥ ३ ॥ द्विषद्भिश्चातिसंधीयते ॥ ४ ॥ तस्मदुत्थानमात्मनः कुर्वीत ॥ ५ ॥

राजाके उन्नतिशील होनेपर उसके अमात्य आदि भृत्यवर्ग भी उन्नतिशील होते हैं ॥ १ ॥ यदि राजा प्रमादी होजावे, तो भृत्यवर्ग भी राजकार्योंमें प्रमाद करने लगते हैं ॥ २ ॥ और इसके कार्योंको खाजाते हैं । अर्थात् राजकार्यको सर्वथा नष्ट करदेते हैं ॥ ३ ॥ इस प्रकारका राजा शत्रुओंसे सदा

धोखा खाता है ॥ ४ ॥ इसलिये राजाको उचित है कि वह सदा अपने आपको उन्नतिशील बनाने का यत्न करता रहे ॥ ५ ॥

नाडिकाभिरहरष्टधा रात्रिं च विभजेत ॥ ६ ॥ छायाप्रमाणेन वा ॥ ७ ॥

कार्य-विभागके सुभीतेके लिये दिन और रातको आठ आठ नाड़ियोंके द्वारा विभक्त करे । अर्थात् आठ नाड़ी (घंड़ी) दिनकी और आठ रातकी ॥ ६ ॥ अथवा छायाके प्रमाणसे दिनका विभाग करे । अर्थात् पुरुषकी छाया जैसे २ लम्बी या छोटी होती जाय, उसहीके अनुसार दिनका विभाग करे ॥ ७ ॥

त्रिपौरुषी पौरुषी चतुरङ्गुला च्छाया मध्याह्न इति पूर्वे दिवसस्याष्टभागाः ॥ ८ ॥

उसका प्रकार यह है—प्रातःकाल जब सूर्य उदय हो, उस समयसे लगाकर जबतक पुरुषकी छाया तीन पुरुषोंके बराबर लम्बी रहे, वह दिनका पहिला आठवां हिस्सा है, इस छायाको त्रिपौरुषी छाया कहते हैं, इसके अनन्तर जब छाया एक पुरुषकी बराबर लम्बी रहजाय, उसे पौरुषी या एकपौरुषी छाया कहते हैं, यह दूसरा भाग है । इसके अनन्तर जब पुरुषकी छाया चार अंगुलकी रहजाय, उसे चतुरंगुला छाया कहा जाता है । यह तीसरा भाग है । इसके बादके समयको मध्यान्ह कहते हैं । यह चौथा भाग है । इस प्रकार आधे दिनके ये पहले चार भाग हैं, यह प्रत्येक सम्पूर्ण दिनका आठवां आठवां हिस्सा है ॥ ८ ॥

तैः पश्चिमा व्याख्याताः ॥ ९ ॥

इसहीके समान पिछले आधे दिनके भी हिस्से करलेने चाहियें । उनका प्रकार यह है:—मध्यान्हके अनन्तर जब पुरुषकी छाया फिर चार अंगुलकी होजाय, वह चतुरंगुला छाया, पहिला भाग समझना चाहिये । इसी प्रकार उस छायाके बढ़ते २ एक पुरुषकी बराबर होजानेपर पौरुषी और फिर तीन पुरुषकी बराबर होजानेपर त्रिपौरुषी, ये दिनके दूसरे तीसरे भाग हैं । इसके बादका चौथा हिस्सा दिनान्त कहाता है । इस प्रकार दिनके कुल आठ हिस्से होजाते हैं ॥ ९ ॥

तत्र पूर्वे दिवसस्याष्टभागे रक्षाविधानमायव्ययौ च शृणुयात् ॥ १० ॥

इस समय विभागमें से दिनके पहिले आठवें हिस्सेमें, राजा रक्षा विधान (रात्रिमें नियुक्त किये हुए रक्षा पुरुषोंके कार्य, कदाचित् रात्रिमें कोई

विशेष घटना तो नहीं होगई । इसलिये सबसे पहिले इसका जानना आवश्यक है) और गत दिवसके आय व्ययको सुने, अर्थात् उसका निरीक्षण करे ॥१०॥

द्वितीये पौरजानपदानां कार्याणि पश्येत् ॥ ११ ॥ तृतीये स्नानभोजनं सेवेत ॥ १२ ॥ स्वाध्यायं च कुर्वीत ॥१३॥ चतुर्थे हिरण्यप्रतिग्रहमध्यक्षांश्च कुर्वीत ॥ १४ ॥

दिनके दूसरे हिस्सेमें नगर तथा जनपद निवासियोंके कार्योंका निरीक्षण करे ॥ ११ ॥ तीसरे हिस्सेमें स्नान तथा भोजन आदि करे ॥ १२ ॥ और कुछ स्वाध्याय भी इसी समयमें करे ॥ १३ ॥ दिनके चौथे हिस्सेमें गत दिवसके शेप धनको संभाले और भिन्न २ कार्योंपर अध्यक्ष आदिकी नियुक्ति करनी हो तो करे ॥ १४ ॥

पञ्चमे मन्त्रिपरिषदा पत्रसंप्रेषणेन मंत्रयेत ॥ १५ ॥ चारगुह्यबोधनीयानि च बुद्ध्येत ॥ १६ ॥ षष्ठे स्वरविहारं मंत्रं वा सेवेत ॥ १७ ॥

दिनके पांचवें हिस्सेमें मन्त्रिपरिषद्के साथ, पत्र आदि भेजकर आवश्यक विषयोंपर विचार करे ॥ १५ ॥ गुप्तचरोंके कार्य तथा अन्य जानने योग्य गुह्य बातोंको भी इसी समयमें सुने या जाने ॥ १६ ॥ छठे हिस्सेमें इच्छानुसार विहार अथवा मन्त्रणा करे ॥ १७ ॥

सप्तमे हस्त्यश्वरथायुधीयान्पश्येत् ॥१८॥ अष्टमे सेनापतिसखो विक्रमं चिन्तयेत् ॥१९॥ प्रतिष्ठितेऽहनि संध्यामुपासीत॥२०॥

सातवें हिस्सेमें हाथी घोड़े रथ तथा हथियारोंका निरीक्षण करे॥ १८॥ आठवें हिस्सेमें सेनापतिको साथ लेकर युद्ध आदिके सम्बन्धमें विचार करे ॥ १९ ॥ इस प्रकार दिनके समाप्त होजानेपर सायंकालके समय संध्योपासना करे ॥ २० ॥

प्रथमे रात्रिभागे गूढपुरुषान्पश्येत् ॥ २१ ॥ द्वितीये स्नानभोजनं कुर्वीत स्वाध्यायं च ॥ २२ ॥ तृतीये तूर्यघोषेण संविष्टश्चतुर्थपञ्चमौ शयीत ॥ २३ ॥

दिनमें यथोचित विभागके अनुसार कार्योंका कथन करके रात्रिके पृथक् २ भागोंमें क्या २ कार्य करने चाहियें, अब इस बातका निरूपण किया जाता है:—रात्रिके प्रथम भागमें गूढपुरुषोंको देखे ॥ २१ ॥ दूसरे भागमें स्नान भोजन तथा स्वाध्याय भी करे ॥ २२ ॥ तीसरे भागमें गाने बजाने

आदिको सुनता हुआ, सो जावे, तथा पूरे चौथे और पांचवें भागमें शयन करे ॥ २३ ॥

षष्ठे तूर्यघोषेण प्रतिबुद्धः शास्त्रमितिकर्तव्यतां च चिन्तयेत् ॥ २४ ॥ सप्तमे मंत्रमध्यासीत गूढपुरुषांश्च प्रेषयेत् ॥ २५ ॥

पुनः रात्रिके छठे भागमें बाजे आदिके शब्दसे उठाया गया हुआ, शास्त्र (अर्थशास्त्र) तथा इतिकर्तव्यताका (जो कुछ कार्य दिनमें करने हों, उनका) चिन्तन करे ॥ २४ ॥ रात्रिके सातवें विभागमें, मंत्र अर्थात् गूढ बातों पर विचार करे। और गूढ पुरुषोंको जहां भेजना हो, वहां भेजे ॥ २५ ॥

अष्टम ऋत्विगाचार्यपुरोहितसखः स्वस्त्ययनानि प्रतिगृह्णीयात् ॥ २६ ॥ चिकित्सकमाहानसिकमौहूर्तिकांश्च पश्येत् ॥२७॥

इसके अनन्तर आठवें हिस्सेमें, ऋत्विक्, आचार्य और पुरोहितोंके साथ २ स्वस्तिवाचन, तथा मांगलिक मन्त्र पाठोंके सहित आशीर्वाद ग्रहण करे ॥ २६ ॥ और चिकित्सक (वैद्य), माहानसिक (पाकशालामें कार्य करने वाले रसोईयोंका निरीक्षक) तथा मौहूर्तिक (शुभाशुभ मुहूर्त्त आदिका बताने वाला=ज्योतिषी) को देखे। अपनी शारीरिक अवस्थाको जाननेके लिये वैद्यका, अभीष्टभोजन आदि बनानेके लिये माहानसिकका और उस दिनके कार्यके शुभाशुभका पता लेनेके लिये ज्योतिषीका प्रातःकालही राजासे मिलना अत्यन्त आवश्यक होता है ॥ २७ ॥

सवत्सां धेनुं वृषभं च प्रदक्षिणीकृत्योपस्थानं गच्छेत् ॥२८॥ आत्मबलानुकूल्येन वा निशाहर्भागान्प्रविभज्य कार्याणि सेवेत ॥ २९ ॥

बछड़े सहित गाय और बैलकी प्रदक्षिणा करके दरबारमें जावे ॥ २८ ॥ दिनरातका जो कार्य विभाग ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, उसे साधारणही समझना चाहिये, इसलिये राजा अपनी शक्ति और अनुकूलताके अनुसार दिन और रातके कार्योंको विभक्त करके यथारुचि उनका अनुष्ठान कर सकता है ॥ २९ ॥

उपस्थानगतः कार्यार्थिनामद्वारासङ्गं कारयेत् ॥ ३० ॥ दुर्दर्शो हि राजा कार्याकार्यविपर्यासमासन्नैः कार्यते ॥ ३१ ॥ तेन प्रकृतिकोपमरिवशं वा गच्छेत् ॥ ३२ ॥

राजा, जब दरबारमें उपस्थित हो, तो किसी कार्यके लिये आने वाले पुरुषको खुले तौरपर आनेदे। अर्थात् ऐसे अवसरपर दरबारमें आनेके लिये पुरुषोंको किसीतरहकी भी रुकावट न होनी चाहिये। जिससे कि प्रत्येक पुरुष सर-

लतासे राजाका दर्शन करसके ॥ ३० ॥ क्योंकि जो राजा दर्शन नहीं देता, या बड़ी कठिनतासे दर्शन देता है, उसके समीप रहने वाले सेवकोंके द्वारा, उसके कार्य उलट पुलट कर दिये जाते हैं। अर्थात् राजाके स्वयं दर्शन न देनेके कारण, उसके कार्य उसके समीप रहने वाले सेवकोंके द्वाराही कराये जासकते हैं, और वे इतने योग्य न होनेके कारण कार्योंमें विपर्यास करदेते हैं ॥ ३१ ॥ इसका परिणाम यह होता है, कि उस राजाके अमात्य आदि प्रकृतिजन उससे प्रकुपित हो उठते हैं। राजकार्य शिथिल होजाते हैं। अथवा राजा अपने शत्रुके वशमें चला जाता है। अर्थात् राजाके प्रकृतिव्यसनको देखकर इसके शत्रु इसे अपने अधीन कर लेते हैं ॥ ३२ ॥

तस्माद्देवताश्रमपाषण्डश्रोत्रियपशुपुण्यस्थानानां बालवृद्धव्याधितव्यसन्यनाथानां स्त्रीणां च क्रमेण कार्याणि पश्येत् ॥ ३३ ॥ कार्यगौरवादात्ययिकवशेन वा ॥ ३४ ॥

इसलिये राजाको उचित है, कि देवतास्थान (देवालय आदि), आश्रमस्थान (मुनि आदिके रहनेके स्थान), पाषण्डस्थान (धूर्तों या वञ्चकोंके निवास स्थान), श्रोत्रियस्थान (वेद पढ़ने वालोंके स्थान), पशुस्थान (गाय, घोड़ा हाथी आदिके स्थान) तथा इसीप्रकारके अन्य पुण्यस्थानोंके कार्योंका; और बालक, बूढे, रोगी, दुःखी अनाथ, तथा स्त्रियोंके भी सब कार्योंका क्रमपूर्वक. स्वयं जाकरही निरीक्षण करे। अपने आप जाकर देखनेसे राजा, उन कार्योंको बिलकुल ठीक २ हालतमें जान सकता है ॥ ३३ ॥ यदि इन कार्योंमेंसे कोई कार्य अत्यन्त महत्त्व पूर्ण हो, अथवा जिसका समय बहुत बीतगया हो, ऐसे कार्यके लिये राजा, उपर्युक्त कार्य-दर्शनके क्रमको तोड़ सकता है, अर्थात् पहिले इन कार्योंको देखकर अन्य कार्योंको देख सकता है ॥ ३४ ॥

सर्वमात्ययिकं कार्यं शृणुयान्नातिपातयेत् ।
कृच्छ्रसाध्यमतिक्रान्तमसाध्यं वाभिजायते ॥ ३५ ॥

राजाको उचित है कि जिस कार्यके लिये बहुत समय बीत चुकाहो, ऐसेही कार्यको पहिले सुने, उसका और अधिक काल अतिक्रमण न करे, क्योंकि इसप्रकार उचित कार्यकालके बीत जानेपर फिर वह कार्य कष्टसाध्य (बड़ी कठिनतासे पूरा होने वाला) अथवा सर्वथा असाध्यही होजाता है ॥ ३५ ॥

अग्न्यगारगतः कार्यं पश्येद्वैद्यतपस्विनाम् ।
पुरोहिताचार्यसखः प्रत्युत्थायाभिवाद्य च ॥ ३६ ॥

राजा, पुरोहित तथा आचार्यके साथ २ अग्निहोत्रशाला (यज्ञशाला) में उपस्थित होकर, वेद्य अर्थात् विद्वान् पुरुषोंके और तपस्वियोंके कार्योंको उन्हें (विद्वान् तथा तपस्वियोंको) अभ्युत्थान (आदरार्थ उनके आनेपर उठकर खड़े होजाना) देकर तथा अभिवादन (प्रणाम) करके, देखे ॥ ३६ ॥

तपस्विनां तु कार्याणि त्रैविद्यैः सह कारयेत् ।
मायायोगविदां चैव न स्वयं कोपकारणात् ॥ ३७ ॥

तपस्वियों तथा माया प्रयोगोंको जानने वाले पुरुषोंके कार्योंका निर्णय, राजा, सम्पूर्ण वेदोंके विद्वानोंके साथ बैठकरही करे, स्वयं अकेलाही इनका निर्णय कभी न करे, क्योंकि यह सम्भव है कि वह निर्णय उन लोगोंके विरुद्ध हो, और वे इसके कारण राजासे कुपित होजावें, तथा राजाको किसी प्रकारकी हानि पहुंचानेका यत्न करें । वेद-विद्वानोंके साथ रहनेपर उस निर्णयका उत्तरदायित्व राजाके ऊपर नहीं रहता, और वह इसीलिये उनके कोपसे रक्षित रहता है ॥ ३७ ॥

राज्ञो हि व्रतमुत्थानं यज्ञः कार्यानुशासनम् ।
दक्षिणा वृत्तिसाम्यं च दीक्षितस्याभिषेचनम् ॥ ३८ ॥

उद्योग करना, यज्ञ करना, व्यवहारोंका निर्णय करना, दक्षिणा अर्थात् दान देना, शत्रु और मित्रोंमें गुण दोषोंके अनुसार उचित समान वर्त्ताव करना, तथा यज्ञादिकी दीक्षा लेकर उसे पूर्ण करके फिर पवित्र स्नान आदि करना, ये सब राजाके व्रत अर्थात् नियम हैं । राजाको चाहिये कि वह इन सब कार्योंका यथोचित अनुष्ठान करे ॥ ३८ ॥

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम् ।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ॥ ३९ ॥

प्रजाके सुखमेंही राजाका सुख और प्रजाओंके हितमेंही राजाको अपना हित समझना चाहिये । अपने आपको प्रिय लगने वाले कार्योंका करना राजाका हित नहीं, किन्तु प्रजाओंके प्रिय कार्योंका करनाही राजाका अपना सबसे बड़ा हित है ॥ ३९ ॥

तस्मान्नित्योत्थितो राजा कुर्यादर्थानुशासनम् ।
अर्थस्य मूलमुत्थानमनर्थस्य विपर्ययः ॥ ४० ॥

इसलिये राजाको चाहिये, कि वह सदा उद्योगी हुआ २, व्यवहार पदोंका निर्णय तथा अन्य राज्य सम्बन्धी कार्योंको उचित रीतिपर करे । उद्योग ही सम्पत्तियोंका मूल कारण है, और उद्योगी न होना, हर तरहके अनर्थोंको उत्पन्न करदेता है ॥ ४० ॥

अनुत्थाने ध्रुवो नाशः प्राप्तस्यानागतस्य च ।
प्राप्यते फलमुत्थानाल्लभेत चार्थसंपदम् ॥ ४१ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे राजप्रणिधिः एकोनविंशो ऽध्यायः ॥१॥

राजाके उद्योगी न होनेपर, पहिले प्राप्त किये हुए अर्थोंका तथा भविष्यमें प्राप्त होने वाले अर्थोंका भी निश्चयही सर्वथा नाश होजाता है। परन्तु जो राजा उद्योगी होता है, वह अपने उद्योगसे, शीघ्रही अपने कार्योंके मीठे फलको प्राप्त करलेता है, और इच्छानुसार अर्थसम्पत्तियोंको लाभ करता है ॥ ४१ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें उन्नीसवां अध्याय समाप्त ।

बीसवां अध्याय ।

१६ प्रकरण ।

निशान्तप्रणिधि ।

{ राजभवनका नाम निशान्त है। उसके सम्बन्धमें क्या कुछ करना चाहिये, इसीका निरूपण इस प्रकरणमें किया गया है।

वास्तुकप्रशस्ते देशे सप्राकारपरिखाद्वारमनेककक्ष्यापरिगतमन्तःपुरं कारयेत् ॥ १ ॥

वास्तु विद्याको जाननेवाले (गृहनिर्माण आदिको जाननेवाले=इञ्जिनियर) पुरुष जिस स्थानकी प्रशंसा करें, उसही स्थानमें प्राकार (परकोटा=चारों ओर की बड़ी दीवार), परिखा (चारों ओरकी खाई), द्वार और अनेक कक्षाओं (ड्योढ़ियों या परिक्रमाओं) से युक्त अन्तःपुरका निर्माण कराया जावे ॥ १ ॥

कोशगृहविधानेन वा मध्ये वासगृहं गूढभित्तिसंचारं मोहनगृहं तन्मध्ये वा वासगृहं भूमिगृहं वासन्नकाष्ठचैत्यदेवतापिधानद्वारमनेकसुरुङ्गासंचारं प्रासादं वा गूढभित्तिसोपानं सुषिरस्तम्भप्रवेशापसारं वा वासगृहं यन्त्रबद्धतलावपातं कारयेत् ॥ २ ॥

अथवा कोशागारके निर्माणके अनुसार (देखो—'सन्निधातृनिचयकर्म' नामक प्रकरण, अधि. २ अध्या ५) अन्तःपुरके बीचमें, राजा अपने रहनेका घर बनवावे। अथवा पहिले चारों ओर ऐसा मकान बनवावे, जिसकी भींत

और रास्तेके सिलसिलेका ठीक २ पता न लगे, इसीको मोहनगृह (भूलभुलैयां) कहा जाता है। इसके बीचमें अपने निवासका मकान बनवावे। अथवा भूमि खुदवाकर उसके भीतर मोहनगृहके बीचमें अपना वासगृह बनवावे। उस भूमिगृहके दरवाजेपर, समीपही किसी दिशाके देवालयकी प्रसिद्ध देवता दुर्गा आदिकी मूर्त्ति अवश्य होनी चाहियें, तथा उसमें जाने आनेके लिये अनेक सुरङ्ग भी बनी हुई होनी चाहियें। अथवा ऐसा महल बनवावे, जिसकी दीवारोंके भीतर छिपे तौरपर आने जानेका रास्ता हो, अथवा पोले खम्भोंके भीतरसे चढ़ने उतरने या बाहर आने जानेका मार्ग हो। अथवा ऐसा वासगृह बनवावे, जिसका नीचे का भाग यन्त्रोंके आधारपरही आश्रित हो, अर्थात् यन्त्रोंके अपने हाथमें रहनेके कारण उसे इच्छानुसार रक्खा या नीचे गिराया जासकता हो ॥ २ ॥

आपत्प्रतीकारार्थमापदि वा कारयेत् ॥ ३ ॥ अतोऽन्यथा वा विकल्पयेत् ॥ ४ ॥ सहाध्यायिभयात् ॥ ५ ॥

इस प्रकारके वासगृह आपत्तिके निवारणके लियेही बनाये जाते हैं। इसलिये आपत्ति आनेसे पहिलेही ऐसे स्थानोंका निर्माण राजाको करा रखना चाहिए। अथवा यदि पहिलेसे निर्माण कराया हुआ न हो तो आपत्तिके उपस्थित होनेपर भी यह कार्य करालिया जावे ॥ ३ ॥ यदि राजाको इस बातका भय हो कि दूसरा मेरे समानही शास्त्रोंके तत्वका जानने वाला शत्रुराजा भी इन बातोंको जानकर इसीके अनुसार कार्य करसकता है, तो वह अपनी प्रतिभाके अनुसार इससे सर्वथा भिन्न प्रकारके वासगृहकी कल्पना करके, उसके अनुसारही कार्य करावे। तात्पर्य यह है कि यह कोई आवश्यक नहीं कि जो कुछ ऊपर वासगृहके सम्बन्धमें लिखा गया है, उसीके अनुसार कार्य करे, प्रत्युत वह अपनी बुद्धिके अनुसार इसमें परिवर्तन कर सकता है ॥ ४-५ ॥

मानुषेणाग्निना त्रिरपसव्यं परिगतमन्तःपुरमग्निरन्यो न दहति ॥ ६ ॥ न चात्रान्योऽग्निर्ज्वलति ॥ ७ ॥ वैद्युतेन भस्मना मृत्संयुक्तेन करकवारिणावलिप्तं च ॥ ८ ॥

मनुष्यकी हड्डीमें बांसके रगड़नेसे उत्पन्न होनेवाली आगके द्वारा, अन्तःपुरका स्पर्श कराते हुए, तथा इस सम्बन्धके अथर्वके मन्त्रोंका साथ २ ही उच्चारण करते हुए, बाईं ओरसे तीन परिक्रमा यदि अन्तःपुरकी करदी जावें तो फिर उसमें और कोई दूसरी आग असर नहीं करती। अर्थात् फिर अन्तःपुरको और कोई दूसरी आग जला नहीं सकती ॥ ६ ॥ तथा ऐसे अन्तःपुरमें

और कोई आग जल भी नहीं सकती। इसका यही तात्पर्य है कि यदि ऐसे मकानके पास आग लाई जावे, तो वह वहां आते ही बुझ जाती है, ठण्डी पड़जाती है ॥ ७ ॥ इसी प्रकार बिजलीसे जले हुए पेड़ आदिकी राख लेकर, उसमें उतनीही और मिट्टी (उस मट्टीसे तात्पर्य है जो दीवारोंपर लगाई जाती है) मिलाकर धतूरेके पानीके साथ गूंथकर, उसको दीवारपर लेपन किया जावे, तो भी उस मकानमें दूसरी आगका कोई प्रभाव नहीं होता । (किसी किसी पुस्तकमें 'कनकवारिणा' के स्थानपर 'करकवारिणा' पाठ है । करकका अर्थ ओला या वर्षा है । इसलिये इस पाठमें 'उस मट्टीको ओले या वर्षाके पानीके साथ गूंथा जावे' यही अर्थ करना चाहिये ॥ ८ ॥

जीवन्तीश्वेतामुष्ककपुष्पवन्दाकाभिरक्षीवे जातस्याश्वत्थस्य प्रतानेन वा गुप्तं सर्पा विषाणि वा न प्रसहन्ते ॥ ९ ॥

गिलोय, शंखपुष्पी, काली पांढरी (मुष्कक) और करोंदेके पेड़पर लगे हुए बन्देकी माला आदिके लगानेसे रक्षित हुए २, अथवा सैंजनेके पेड़के ऊपर पैदा हुए २ पीपलके पत्ते आदिकी माला लगानेसे रक्षित हुए २ अन्तःपुरमें सर्प तथा अन्य विषोंका कोई प्रभाव नहीं होता ॥ ९ ॥

मार्जारमयूरनकुलपृषतोत्सर्गः सर्पान्भक्षयति ॥ १० ॥ शुकशारिका भृङ्गराजो वा सर्पविषशङ्कायां क्रोशति ॥ ११ ॥ क्रौञ्चो विषाभ्याशे माद्यति ॥ १२ ॥

बिलाव, मोर, नकुल (नेवला), और मृगको घरमें छोड़नेपर, ये बिलाव आदि सर्पोंको खा जाते हैं ॥ १० ॥ तोता, मैना और बड़ा भौंरा ये, अन्न आदिमें सर्प विषकी आशङ्का होनेपर चिल्लाने लगते हैं ॥ ११ ॥ क्रौञ्चपक्षी विषके समीप होनेपर विह्वल होजाता है ॥ १२ ॥

ग्लायति जीवंजीवकः ॥ १३ ॥ म्रियते मत्तकोकिलः ॥ १४ ॥ चकोरस्याक्षिणी विरज्येते ॥ १५ ॥ इत्येवं अग्निविषसर्पेभ्यः प्रतिकुर्वीत ॥ १६ ॥

जीवंजीव (मोरके समान पंखवाला पक्षी, या चकोरकी जातिका एक पक्षी विशेष) नामक पक्षी, विषको देखकर ग्लानियुक्त, अर्थात् खिन्न हर्षरहित होजाता है ॥ १३ ॥ कोयल पक्षी विषको देखकर मरजाता है ॥ १४ ॥ चकोर पक्षीकी आंख विषको देखकर लाल होजाती हैं ॥ १५ ॥ इन सब उपायोंसे विष आदिकी परीक्षा करके, राजा अपने आपको अग्नि, विष तथा सर्पोंसे बचाकर रक्खे ॥ १६ ॥

पृष्ठतः कक्ष्याविभागे स्त्रीनिवेशो गर्भव्याधिवैद्यप्रत्याख्यातसंस्था वृक्षोदकस्थानं च ॥ १७ ॥ बहिः कन्याकुमारपुरम् ॥१८॥

राजाके वासगृहके पीछेकी ओरके कक्ष्या विभागमें अन्तःपुर अर्थात् राजास्त्रियोंके रहनेका स्थान बनवाया जावे। उसके समीपही, प्रसूता स्त्री, बीमार, तथा असाध्य रोगिणी स्त्रियोंके लिये पृथक् पृथक् तीन स्थान बनवावें। और उसके साथही छोटे २ उद्यान तथा जलाशय बनवावे ॥ १७ ॥ उससे बाहरकी ओर राजकन्याओं, तथा यौवन अवस्थाको प्राप्त न हुए २ राजकुमारोंके लिये स्थान बनवावें ॥ १८ ॥

पुरस्तादलंकारभूमिर्मन्त्रभूमिरुपस्थानं कुमाराध्यक्षस्थानं च ॥ १९ ॥ कक्ष्यान्तरेष्वन्तर्वंशिकसैन्यं तिष्ठेत् ॥ २० ॥

राजाके निवास स्थानके आगेकी ओर पहिले सुन्दर घास तथा फूलोंसे युक्त उपवन अथवा सुन्दर शोभा युक्त महल होना चाहिये। इसके आगे मन्त्र सभाका स्थान, फिर उपस्थान अर्थात् दरबारका स्थान, और इसके आगे युवा राजकुमार तथा समाहर्त्ता सन्निधाता आदि अध्यक्षोंके प्रधान कार्यालय होने चाहियें ॥ १९ ॥ कक्ष्याओंके बीच २ में कंचुकी आदि पुरुषों तथा अन्य अन्तःपुररक्षक पुरुषोंका समूह रहे ॥ २० ॥

अन्तर्गृहगतः स्थविरस्त्रीपरिशुद्धां देवीं पश्येत् ॥ २१ ॥ न कांचिदभिगच्छेत् ॥ २२ ॥

अन्तःपुरमें जाकर राजा अपने निवासके ही मकानमें, विश्वस्त किसी बूढ़ी परिचारिकाके साथ महारानीको देखे ॥ २१ ॥ किसी रानीको लक्ष्य करके स्वयं ही उसके निवास स्थान में न जावे ॥ २२ ॥

देवीगृहे लीनो हि भ्राता भद्रसेनं जघान ॥ २३ ॥ मातुः शय्यान्तर्गतश्च पुत्रः कारूशम् ॥ २४ ॥ लाजान्मधुनेति विषेण पर्यस्य देवी काशिराजम् ॥ २५ ॥

क्योंकि इसमें कभी २ बड़ा धोखा हो जाता है, सुना जाता है पहिले कभी भद्रसेन नामक किसी राजाके वीरसेन नामक भाईने उसकी रानीसे मिल कर, उसीके घरमें छिपकर, वहां भद्रसेन राजाको मार डाला था ॥ २३ ॥ इसी प्रकार माताकी शय्याके नीचे छिपे हुए राजपुत्रने अपने पिता कारूश नामक राजाको मार डाला था ॥ २४ ॥ इसी तरह काशिराजकी रानीने ही स्वयं काशिराजको, खीलोंमें मधुके बहाने विष मिला कर, और उसे खिलाकर मार डाला था ॥ २५ ॥

विषदिग्धेन नूपुरेण वैरन्त्यं मेखलामणिना सौवीरं जालूथमादर्शेन वेण्यां गूढं शस्त्रं कृत्वा देवी विदूरथं जघान ॥ २६ ॥ तस्मादेतान्यास्पदानि परिहरेत् ॥ २७ ॥

तथा विषमें बुझे हुए नूपुर (पायजेब–पैरका आभूषण) के द्वारा वैरन्त्य राजाको उसकी अपनी रानीने, मेखला (पगडी–कौंधनी) की मणिके द्वारा सौवीरको, आदर्श (शीशे) के द्वारा जालूथको. और अपनी वेणी (बालोंके जूड) में शस्त्र छिपाकर विदूरथ नामक राजाको, उनकी अपनी २ रानियोंने ही मार डाला था ॥ २६ ॥ इसलिये राजाको चाहिये कि रानियोंके निज निवास स्थानमें रात्रिके समय कदापि न जावे। प्रत्युत उनको ही अपने निवास स्थान पर किसी विश्वस्त परिचारिका के साथ बुलवावे ॥ २७ ॥

मुण्डजटिलकुहकप्रतिसंसर्गं बाह्याभिश्च दासीभिः प्रतिषेधयेत् ॥२८॥ न चैनाः कुल्याः पश्येयुरन्यत्र गर्भव्याधिसंस्थाभ्याम् ॥२९॥

मुण्डी, जटी, तथा अन्य वञ्चक पुरुषोंके साथ, और बाहरकी दासियों के साथ रानियोंका किसी प्रकारका भी संसर्ग न होने दे ॥ २८ ॥ और इनके (रानियोंके) बन्धु बान्धव भी इनको प्रसव तथा बीमारी आदिके समयके अतिरिक्त न देख सकें ॥ २९ ॥

रूपाजीवाः स्नानप्रघर्षशुद्धशरीराः परिवर्तितवस्त्रालंकाराः पश्येयुः ॥ ३० ॥

स्नान तथा उबटन आदिसे शरीरको शुद्ध करके, तथा वस्त्र और अलंकारों (आभूषणों) से सुसज्जित, होकर ही वेश्या तथा अन्य रानियां राजाको देखें ॥ ३० ॥

आशीतिकाः पुरुषाः पञ्चाशत्काः स्त्रियो वा मातापितृव्यञ्जनाः स्थविरवर्षवराभ्यागारिकाश्चावरोधानां शौचाशौचं विद्युः स्थापयेयुश्च स्वामिहिते ॥ ३१ ॥

अस्सी वर्षकी अवस्थाके पुरुष तथा पचास वर्षकी बूढ़ी स्त्रियां माता पिताके वेषमें, अर्थात् माता पिताकी तरह रानियोंका हित तथा पालन करनेवाले और बूढ़े तथा नपुंसक घरके अन्य कार्योंको करनेवाले, अवरोध अर्थात् अन्तःपुरकी रानियोंकी पवित्रता और अपवित्रताका सदा ध्यान रक्खें। तथा उनको (रानियोंको) सदा अपने स्वामीके कल्याणकी ओर ही लगाये रक्खें ॥ ३१ ॥

स्वभूमौ च वसेत्सर्वः परभूमौ न संचरेत् ।
न च बाह्येन संसर्गं कश्चिदाभ्यन्तरो व्रजेत् ॥ ३२ ॥

अपने २ स्थानपर ही सब (रानी, तथा अन्य अन्तःपुरके परिचारक जन) लोग रहें, दूसरेके स्थान पर आना जाना न रक्खें । और कोई भी भीतर का आदमी बाहरके किसी आदमीसे न मिले ॥ ३२ ॥

सर्वं चावेक्षितं द्रव्यं निबद्धागमनिर्गमम् ।
निर्गच्छेदभिगच्छेद्वा मुद्रासंक्रान्तभूमिकम् ॥ ३३ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमे ऽधिकरणे विंशो ऽध्यायः ॥ २० ॥

जो वस्तु महलोंके भीतरसे बाहर जावे, तथा बाहरसे भीतर आवे, वह सब अच्छी तरह देख लेनी चाहिये, और उसके आने जानेका स्थान तथा उसके सम्बन्धकी अन्य आवश्यक बातें भी पुस्तकमें लिख देनी चाहियें । तथा आने जानेवाली प्रत्येक वस्तुके ऊपर मुहर भी लगा देनी चाहिये । बिना मुहरके कोई भी वस्तु बाहर भीतर न जाने आने पावे ॥ ३३ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें बीसवां अध्याय समाप्त ।

इक्कीसवां अध्याय ।

१८ प्रकरण ।

आत्मरक्षा ।

पुत्र और स्त्रियोंसे राजाकी रक्षाका निरूपण कर दिया गया है । अब अन्य व्यक्तियोंसे भी राजाकी रक्षा किसप्रकार होनी चाहिये, इसका विधान किया जाता है ।

शयनादुत्थितः स्त्रीगणैर्धन्विभिः परिगृह्येत ॥ १ ॥ द्वितीयस्यां कक्ष्यायां कञ्चुकोष्णीषिभिर्वर्षवराभ्यागारिकैः ॥ २ ॥

प्रातः काल बिस्तरेसे उठतेही राजाको, उसकी रक्षाके लिये हाथमें धनुष लिये हुए स्त्रियोंका समूह चारों ओरसे घेर लेवे । अर्थात् उसके चारों ओर उपस्थित रहे ॥ १ ॥ जब राजा अपने वासगृहसे निकलकर दूसरी कक्ष्या (महलके दूसरे विभाग) में जावे, तो वहांपर कुर्त्ते और पगड़ी पहने हुए नपुंसक तथा अन्य गृहप्रबन्ध करने वाले पुरुष, राजाको सब ओरसे सुरक्षित रक्खें ॥२॥

तृतीयस्यां कुब्जवामनकिरातैः ॥ ३ ॥ चतुर्थ्यां मन्त्रिभिः संबन्धिभिर्दौवारिकैश्च प्रासपाणिभिः ॥ ४ ॥ पितृपैतामहं महासंबन्धानुबन्धं शिक्षितमनुरक्तं कृतकर्माणं जनमासन्नं कुर्वीत ॥५॥

जब राजा तीसरी कक्ष्यामें जावे, तो वहां कुबड़े, वामन, तथा किसी म्लेच्छ जातिके पुरुष राजाकी रक्षा करें ॥ ३ ॥ और चौथी कक्ष्यामें पहुंचनेपर राजाकी रक्षा, मन्त्रियों, सम्बन्धियों, तथा हाथमें भाले आदि लिये हुए द्वारपालोंके द्वारा होनी चाहिये ॥४॥ वंश परम्परासे प्राप्त हुए, बड़े उच्च कुलोंमें उत्पन्न हुए २, शिक्षित, अपनेमें अनुराग रखने वाले; तथा प्रत्येक कार्यको समझने वाले पुरुषोंको, राजा अपने समीप रक्खे । अर्थात् ऐसे पुरुषोंको अपना देहरक्षक नियुक्त करे ॥ ५ ॥

नान्यतोदेशीयमकृतार्थमानं स्वदेशीयं वाप्यपकृत्योपगृहीतम् ॥ ६ ॥ अन्तर्वंशिकसैन्यं राजानमन्तः पुरं च रक्षेत् ॥ ७ ॥

धन सम्पत्ति तथा सत्कारको न प्राप्त हुए २ विदेशी पुरुषको, तथा पहिले एकबार अपनेसे भिन्न होकर फिर आकर मिले हुए अपने देशके पुरुषको भी, राजा कदापि अपना देहरक्षक न बनावे ॥ ६ ॥ भीतर महलोंमें नियुक्त हुई २ सेना, राजा और अन्तः पुर (रानी आदि) दोनोंकी रक्षा करे ॥ ७ ॥

गुप्ते देशे माहानसिकः सर्वमास्वादबाहुल्येन कर्म कारयेत् ॥ ८ ॥ तद्राजा तथैव प्रतिभुञ्जीत पूर्वमग्नये वयोभ्यश्च बलिं कृत्वा ॥ ९ ॥

माहानसिक (पाकशालामें कार्य करने वाले पाचकोंका अध्यक्ष या निरीक्षक=राजाका भोजनाधिकृत पुरुष), किसी सुरक्षित स्थानमें, खानेकी हरएक चीज़का स्वाद ले २ कर उन्हें अच्छीतरह तैयार करावे । अथवा हरएक चीज़को स्वादु बनवावे ॥ ८ ॥ तदनन्तर राजा, इसप्रकार तैयार हुए २ भोजनको, पहिले बलिवैश्वदेव करके, अर्थात् अग्नि और पक्षियों आदिको बलिदेकर फिर स्वयं खावे ॥ ९ ॥

अग्नेर्ज्वालाधूमनीलता शब्दस्फोटनं च विषयुक्तस्य वयसां विपत्तिश्च ॥ १० ॥ अन्नस्योष्मा मयूरग्रीवाभः शैत्यमाशुक्लिष्टस्येव वैवर्ण्यं सोदकत्वमक्लिन्नत्वं च ॥ ११ ॥

विषमिश्रित अन्नको अग्निमें डालनेसे अग्निकी लपट और धुआं दोनों नीले रंगके निकलते हैं, और उसमें 'चट चट' इसप्रकार शब्द भी होता है । तथा विषमिश्रित अन्न खालेनेपर पक्षियोंकी विपत्ति अर्थात् मृत्यु उपस्थित

होजाती है ॥ १० ॥ विषयुक्त अन्नकी भाफ मोरकी गर्दनके समान रंगवाली होती है, तथा वह अन्न बहुत जल्दी ठण्डा होजाता है, हाथमें छूनेसे या ज़रा तोड़ने मोड़नेसे ही उसका रंग बदल जाता है, उसमें गांठसी पड़ जाती हैं, और वह अन्न अच्छीतरह पकता भी नहीं ॥ ११ ॥

व्यञ्जनानामाशुशुष्कत्वं च क्वाथश्यामफेनपटलविच्छिन्नभावो गन्धस्पर्शरसवधश्च ॥ १२ ॥

दाल आदि व्यञ्जन विषयुक्त होनेपर बहुत जल्दी सूखसे जाते हैं, यदि इनको फिर आगपर रखकर गरम किया जावे तो मठेकी तरह फट २ कर उबलते हैं, झागोंका रंग कुछ कालासा, और वे फटे २ से अलहदा २ होजाते हैं। तथा दाल आदिके असली गन्ध स्पर्श और रस (स्वाद) का भी नाश होजाता है ॥ १२ ॥

द्रव्येषु हीनातिरिक्तच्छायादर्शनम् ॥ १३ ॥ फेनपटलसीमान्तोर्ध्वराजीदर्शनं च ॥ १४ ॥

यदि रसेदार शाक भाजी आदिमें विष मिला हुआ हो, तो उसमें अपनी आकृति विकृत हुई २ दीखती है। अर्थात् कभी छोटी या कभी बड़ी दीखती है, ठीक नहीं दीखती ॥ १३ ॥ और झागोंका समूह अलहदा तथा पानी अलहदा दीखता है, और उसके ऊपर रेखासी दीखने लगती है ॥ १४ ॥

रसस्य मध्ये नीला राजी पयसस्ताम्रा मद्यतोययोः काली दध्नः श्यामा च मधुनः श्वेता ॥ १५ ॥

घी, तेल तथा रस (ईखका रस) आदिमें विष मिला हुआ होनेपर, उसमें नीले रंगकी रेखायें दीखती हैं, दूधमें ताम्रवर्णकी (तांबेके रंगकी तरहकी) शराब और पानीमें काले रंगकी, दहीमें श्याम और शहदमें सफेद रंगकी रेखायें दीखने लगती हैं ॥ १५ ॥

द्रव्याणामार्द्राणामाशुप्रम्लानत्वमुत्पक्वभावः क्वाथनीलश्यामता च ॥ १६ ॥

गीले भक्ष्य द्रव्य अर्थात् आम अनार आदि फलोंके विषयुक्त होनेपर, वे (फल आदि) बहुत जल्दी मुरझा जाते हैं, अर्थात् चुड़े हुएसे होजाते हैं; और उनमेंसे सड़े हुएकी तरह दुर्गन्ध आने लगती है, तथा पकानेपर वे फल कुछ काले, और बन्दरके रंगकी तरह कुछ भुरभुरसे होजाते हैं ॥ १६ ॥

शुष्काणामाशुशातनं वैवर्ण्यं च ॥ १७ ॥ कठिनानां मृदुत्वं मृदूनां कठिनत्वं च ॥ १८ ॥ तदभ्याशे क्षुद्रसत्त्ववधश्च ॥१९॥

सूखे हुए द्रव्योंमें विष मिलाया हो, तो उन द्रव्योंका बहुत जल्दी चूरा सा बन जाता है । तथा रंग भी बदल जाता है ॥ १७ ॥ विष मिलानेसे कठिन द्रव्य मृदु (मुलायम), और मृदु द्रव्य कठिन होजाते हैं ॥ १८ ॥ विषयुक्त वस्तुके समीप रींगने वाले छोटे छोटे कीड़े (चींटी आदि) की मृत्यु होजाती है ॥ १९ ॥

आस्तरणप्रावरणानां श्याममण्डलता तन्तुरोमपक्ष्मशातनं च ॥ २० ॥ लोहमणिमयानां पङ्कमलोपदेहता ॥ २१ ॥ स्नेहराग-गौरवप्रभाववर्णस्पर्शवधश्चेति विषयुक्तलिङ्गानि ॥ २२ ॥

बिछाने और ओढ़नेके कपड़ोंपर विषका योग करनेपर, कपड़ोंमें उस २ जगह कुछ काले या और नील वर्णके धब्बे पड़जाते हैं । तथा उस स्थानपरसे सूती कपड़ोंके तन्तुओंका, और ऊनी कपड़ोंके बालोंका रुआं उड़ जाता है ॥२०॥ सोना चांदी आदि धातुओंका तथा स्फटिक आदि मणियोंकी बनी हुई वस्तुओं-को यदि विषयुक्त कर दिया जाय, तो वे ऐसी मालूम होती हैं, जैसे इनके ऊपर कोई मैली कीचड़सी लिपटरही हो ॥ २१ ॥ तथा उनके, स्निग्धता, कान्ति, भारी-पन, प्रभाव (अपना कार्य करनेकी शक्ति), और स्पर्श आदि गुणोंका सर्वथा नाश होजाता है । यहांतक विषयुक्त पदार्थोंको पहचाननेके लिये उन २ विशेष लक्षणों या चिन्होंका निरूपण किया गया ॥ २२ ॥

विषप्रदस्य तु शुष्कश्याववक्त्रता वाक्सङ्गः स्वेदो विजृम्भणं चातिमात्रं वेपथुः प्रस्खलनं वाक्यविप्रेक्षणमावेगः स्वकर्मणि स्वभूमौ चानवस्थानमिति ॥ २३ ॥

अब विष देनेवाले पुरुषको पहचानकर पकड़नेके लिये, उसके भी कुछ चिन्ह बताते हैं:—विष देनेवाले पुरुषका मुंह कुछ सूखासा, तथा विवर्ण हो-जाता है, बात चीत करते समय वाणी लड़खड़ाने लगती है, पसीना आजाता है, घबड़ाहटके कारण शरीरमें जंभाई तथा कंपकपी होने लगती है, साफ़ रास्ता होनेपर भी बेचैनीके कारण वह पुरुष बार बार गिरपड़ता है, यदि कोई आदमी वैसेही आपसमें बात कर रहे हों, तो ध्यानसे सुनने लगता है—कहीं ये मेरी ही तो बात नहीं कर रहे; कोई बात होनेपर झट उसे क्रोध आजाता है (किसी किसी पुस्तकमें 'आवेग' की जगह 'आवेश' पाठ है, अर्थ दोनोंका एकही है),

अपने कार्योंमें तथा अपने स्थानपर उसका चित्त स्थिर नहीं रहता, इधर उधर हड़बड़ाया हुआसा घूमता रहता है ॥ २३ ॥

तस्मादस्य जाङ्गलीविदो भिषजश्चासन्नाः स्युः ॥ २४ ॥ भिषग्भैषज्यागारादास्वादविशुद्धमौषधं गृहीत्वा पाचकपोषकाभ्यामात्मना च प्रतिस्वाद्य राज्ञे प्रयच्छेत् ॥ २५ ॥ पानं पानीयं चौषधेन व्याख्यातम् ॥ २६ ॥

इसलिये विषविद्याको जानने वाले, तथा अन्य चिकित्सक पुरुषभी राजाके समीप अवश्य रहें। अथवा राजा अपने देह रक्षकोंमें इन पुरुषोंको भी अवश्य रक्खे ॥ २४ ॥ चिकित्सकको उचित है, कि वह औषधशालासे स्वयं खाकर परीक्षा कीहुई औषधिको लेकर, तथा राजाके सामने ही उस औषधिमें से कुछ थोड़ीसी, उसके पकाने वाले तथा पीसने वाले पुरुषको खिलाकर, एवं यथावसर स्वयं भी खाकर फिर राजाको देवे ॥ २५ ॥ इसी तरह औषधिके समान, मद्य तथा जलके विषयमें भी समझना चाहिये। अर्थात् मद्य और जल को भी पहिले परिचारक पुरुष स्वयं पीकर फिर राजाको देवें ॥ २६ ॥

कल्पकप्रसाधकाः स्नानशुद्धवस्त्रहस्ताःसमुद्रमुपकरणमन्तर्वंशिकहस्तादादाय परिचरेयुः ॥ २७ ॥ स्नापकसंवाहकास्तरकरजकमालाकारकर्म दास्यः कुर्युः ॥ २८ ॥

दाढ़ी मूंछ बनाने वाले नाई, तथा वस्त्र अलङ्कार आदि धारण कराने वाले पुरुष; स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहन कर तथा हाथ आदि अच्छी तरह साफ करके, मोहर लगे हुए, उस्तरे आदि तथा वस्त्र अलङ्कार आदिके बक्सों को, महलोंके अन्दर काम करने वाले कञ्चुकी आदिके हाथसे लेकर राजाकी परिचर्या (सेवा) करें ॥ २७ ॥ राजाको स्नान कराना, उसके अङ्गोंका दबाना, बिस्तर आदि बिछाना, कपड़े धोना तथा माला आदि बनाना, इन सब कार्योंको दासियां ही करें ॥२८ ॥

ताभिरधिष्ठिता वा शिल्पिनः ॥ २९ ॥ आत्मचक्षुषि निवेश्य वस्त्रमाल्यं दद्युः ॥ ३० ॥ स्नानानुलेपनप्रघर्षचूर्णवासस्नानीयानि स्ववक्षोबाहुषु च ॥ ३१ ॥ एतेन परस्मादागतकं च व्याख्यातम् ॥ ३२ ॥

अथवा दासियोंकी देखरेखमें अन्य शिल्पी अर्थात् उस२ कार्यके करनेमें चतुर कारीगर लोगही इन कार्योंको करें ॥२९॥ अपनी आंखोंसे देखकर ही दासियां उन

वस्त्र तथा माला आदिको राजाको देवें। जिससे कि उनमें विष आदिके योग का सन्देह न रहे ॥ ३० ॥ स्नानके समय उपयोग की वस्तुयें उबटन आदि, चन्दन आदि अनुलेप, तथा वस्त्र आदिको सुगन्धित करने वाले अन्य चूर्ण (पाउडर) पटवास आदि, और स्नानके समय सिर आदिमें लगाने की सुगन्धित वस्तुओंको पहिले दासियां अपनी छाती तथा बांह आदि पर लगा कर देख लेवें, फिर राजाको उसका उपयोग करावें ॥ ३१ ॥ इससे दूसरे स्थान से आई हुई वस्तुके उपयोगके विषयमें भी समझ लेना चाहिये ॥ ३२ ॥

कुशीलवाःशस्त्राग्निरसवर्जं नर्मयेयुः ॥ ३३ ॥ आतोद्यानि चैषामन्तस्तिष्ठेयुरश्वरथद्विपालंकाराश्च ॥ ३४ ॥

नट आदि अपने खेलोंमें हथियार, आग तथा विष आदि प्रयोगके खेलोंको छोड़ कर दूसरे खेल ही राजाके सामने दिखावें ॥ ३३ ॥ नटोंके उपयोगमें आने वाले बाजे आदि राज भवनमें ही रक्खे रहने चाहियें, अर्थात् नट अपने बाजोंको (विष आदि प्रयोगकी शङ्का होने के कारण) राजाके सामने लाकर नहीं बजा सकते, इसी तरह इनके अन्य उपयोगी सामान घोड़े रथ हाथी तथा भिन्न २ प्रकारके अलङ्कार आदि राजभवन से ही मिलने चाहियें। ॥ ३४ ॥

मौलपुरुषाधिष्ठितं यानवाहनमारोहेत् ॥ ३५ ॥ नावं चाप्तनाविकाधिष्ठिताम् ॥ ३६ ॥ अन्यनौप्रतिबद्धां वातवेगवशां च नोपेयात् ॥ ३७ ॥ उदकान्ते सैन्यमासीत ॥ ३८ ॥

विश्वस्त प्रधान पुरुषके साथ २ ही राजा, पालकी आदि यानों तथा घोड़े आदि सवारियों पर चढे ॥ ३५ ॥ तथा विश्वस्त नाविकसे युक्त नौका पर चढे, अन्यथा नहीं ॥ ३६ ॥ दूसरी किसी नावके साथ बन्धी हुई नावपर, और वायुके वेगसे बहने वाली नाव पर कदापि न चढे ॥ ३७ ॥ नावके चलने पर, नदीके दोनों तटों पर रक्षाके लिये सेना उपस्थित रहनी चाहिये ॥ ३८ ॥

मत्स्यग्राहविशुद्धमवगाहेत ॥ ३९ ॥ व्यालग्राहपरिशुद्धमुद्यानं गच्छेत् ॥ ४० ॥ लुब्धकैः श्वगणिभिरपास्तस्तेनव्यालपराबाधभयं चललक्षपरिचयार्थं मृगारण्यं गच्छेत् ॥ ४१ ॥

मछियारोंके द्वारा परिशोधित (जिसमें मछियारोंने घुस कर जल जन्तुओंसे किसी प्रकार का भय न होने का निर्णय कर दिया हो, ऐसे) नदी जल में ही, स्नान करनेके लिये प्रवेश करे ॥ ३९ ॥ सपेरोंसे परिशोधित उद्यानमें

ही श्रमण आदि के लिये जावे ॥ ४० ॥ कुत्ते रखने वाले शिकारियोंके द्वारा, चोर तथा व्याघ्र आदिके भयसे रहित हरिणोंके जंगलोंमें, चलते हुए लक्ष्य पर निशाना मारने का अभ्यास करनेके लिये जावे ॥ ४१ ॥

आप्तशस्त्रग्राहाधिष्ठितः सिद्धतापसं पश्येत् ॥ ४२ ॥ मन्त्रिपरिषदा सामन्तदूतं संनद्धोऽश्वं हास्तिनं रथं वारूढः संनद्धमनीकं गच्छेत् ॥ ४३ ॥

राजाको देखनेके लिये नये आये हुए किसी सिद्ध या तपस्वीको, शस्त्र सहित विश्वस्त पुरुषके साथ जाकर ही देखे, अर्थात् उससे मिले ॥४२॥ मन्त्रिपरिषद्के साथ २ ही सामन्तके दूतसे मिले। तथा युद्धोचित कवच आदि वेषको पहिन कर ही, घोड़े हाथी या रथपर सवार होकर युद्धके लिये तय्यार हुई २ सेनाको देखे ॥ ४३ ॥

निर्याणेऽभियाने च राजमार्गमुभयतः कृतारक्षं दण्डिभिरपास्तशस्त्रहस्तप्रव्रजितव्यङ्गं गच्छेत् ॥ ४४ ॥ न पुरुषसंबाधमवगाहेत ॥ ४५ ॥

दूसरे देशको जाने या वहांसे आनेके समय, हाथमें दण्ड लिये हुए रक्षक पुरुषोंके द्वारा दोनों ओरसे सुरक्षित राजमार्ग पर ही, राजा चले। तथा इस प्रकार का प्रबन्ध करे, कि जिससे मार्गमें कोई शस्त्र रहित पुरुष, सन्यासी या लूला लंगडा अङ्गहीन पुरुष न दीखे ॥ ४४ ॥ पुरुषोंकी भीड़में भीतर कभी न घुसे ॥ ४५ ॥

यात्रासमाजोत्सवप्रवहणानि दशवर्गिकाधिष्ठितानि गच्छेत् ॥ ४६ ॥

किसी देवस्थान, समाज, (सभा) उत्सव, या पार्टी (प्रवहण) आदि में जावे, तो कमसे कम सेनाके दस जवान तथा उनका नायक उस स्थानमें अवश्य उपस्थित होने चाहियें। ऐसे स्थानोंमें अकेला, तथा अपने परिमित परिवारको लेकर कदापि न जावे ॥ ४६ ॥

यथा च योगपुरुषैरन्यान्राजाधितिष्ठति ।
तथायमन्यबाधेभ्यो रक्षेदात्मानमात्मवान् ॥ ४७ ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे आत्मरक्षितकम् एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥
एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य विनयाधिकारिकं
प्रथममधिकरणं समाप्तम्॥

जिस प्रकार यह प्रयत्नशील विजिगीषु राजा, अपने गूढ पुरुषोंके द्वारा दूसरोंको कष्ट पहुंचाता है। इसी प्रकार दूसरोंके द्वारा प्रयुक्त किये हुए कष्टोंसे स्वयं अपनी रक्षा भी करे ॥ ४७ ॥

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरणमें इक्कीसवां अध्याय समाप्त।

विनयाधिकरण प्रथम अधिकरण समाप्त।

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरण

पहिला अध्याय।

१९ प्रकरण।

जनपदनिवेश।

भूतपूर्वमभूतपूर्वं वा जनपदं परदेशापवाहनेन स्वदेशाभिष्यन्दवमनेन वा निवेशयेत् ॥ १ ॥ शूद्रकर्षकप्रायं कुलशतावरं पञ्चशतकुलपरं ग्रामं क्रोशद्विक्रोशसीमानमन्योन्यारक्षं निवेशयेत् ॥ २ ॥

पुराने या नये जनपदको राजा, दूसरे देशसे मनुष्योंको बुलाकर अथवा अपने देशकी जन संख्याको अच्छी तरह बढ़ाकर बसावे ॥ १ ॥ जिसमें शूद्र और किसान ही प्रायः अधिक हों, ऐसे कमसे कम सौ घरों वाले और अधिक से अधिक पांचसौ घरों वाले गांवको बसावे। एक गांवका दूसरेसे एक कोस या दो कोस का फासला होना चाहिये। ये इस तरह बसाये जावें, जिससे कि अवसर आने पर एक दूसरे की सहायता कर सकें ॥ २ ॥

नदीशैलवनगृष्टिदरीसेतुबन्धशाल्मलीशमीक्षीरवृक्षानन्तेषु सीम्नां स्थापयेत् ॥३॥ अष्टशतग्राम्या मध्ये स्थानीयं चतुःशतग्राम्या द्रोणमुखं द्विशतग्राम्या खार्वटिकं दशग्रामीसंग्रहेण संग्रहणं स्थापयेत् ॥ ४ ॥ अन्तेष्वन्तपालदुर्गाणि ॥ ५ ॥

नदी, पहाड़ी, जंगल, बेरीके वृक्ष, खाई, सेतुबन्ध (तालाब आदि), सिंभलके वृक्ष, शमी (छोंकरा) के वृक्ष, तथा बड़ आदि वृक्षोंके द्वारा, उन गांवोंकी सीमाकी स्थापना करे ॥ ३ ॥ आठ सौ गांवोंके बीचमें एक 'स्थानीय' की स्थापना करे; चारसौ गावोंके समूहमें 'द्रोणमुख' दो सौ गावोंमें 'खार्वटिक' (किसी पुस्तकमें 'कार्वटिक' भी पाठ है), और दस गावोंका संग्रह करनेसे 'संग्रहण' नामके स्थान विशेषकी स्थापना करे ॥ ४ ॥ राज्यकी सीमा पर अन्तपाल नामक अध्यक्षसे अधिष्ठित दुर्गोंकी स्थापना करे ॥ ५ ॥

जनपदद्वाराण्यन्तपालाधिष्ठितानि स्थापयेत् ॥ ६ ॥ तेषामन्तराणि वागुरिकशबरपुलिन्दचण्डालारण्यचरा रक्षेयुः ॥ ७ ॥

तथा सीमापरही अपने जनपदके द्वारभूत स्थानोंकी स्थापना करे, इनके अधिष्ठाता अन्तपाल ही होने चाहियें ॥६॥ उनके मध्यभागोंकी रक्षा व्याध, शबर, पुलिन्द (ये दोनों भील जातियां हैं), चण्डाल तथा अन्य जंगलोंमें घूमने फिरने या रहने वाले लोग करें। अर्थात् उन स्थानों की रक्षाके लिये इन उपर्युक्त जातियोंमें से ही मनुष्य नियुक्त होने चाहियें ॥ ७ ॥

ऋत्विगाचार्यपुरोहितश्रोत्रियेभ्यो ब्रह्मदेयान्यदण्डकराण्यभिरूपदायकानि प्रयच्छेत् ॥ ८ ॥

राजाको चाहिये कि वह ऋत्विक्, आचार्य, पुरोहित तथा श्रोत्रिय (वेदाध्यायी ब्राह्मण) को, उनके भोगके लिये खेत आदि भूमि देवे। परन्तु उनसे किसी प्रकारका भी कर (लगान) आदि वसूल न करे। उस भूमिको ऋत्विक् आदिकी पराम्परामें होने वाले पुत्र पौत्र आदि सबही भोगते जावें। अर्थात् राजा फिर उस भूमिको उनसे कभी वापिस न ले ॥ ८ ॥

अध्यक्षसंख्यायकादिभ्यो गोपस्थानिकानीकस्थचिकित्साश्वदमकजङ्घाकरिकेभ्यश्च विक्रयाधानवर्जम् ॥ ९ ॥

तथा अध्यक्ष (भिन्न २ कार्योंका निरीक्षण करने वाले प्रधानाधिकारी= सुवर्णाध्यक्ष आदि), और संख्यायक (गणक=गणना करने वाले=सरकारी दफ्तरोंमें काम करने वाले क्लर्क) आदि पुरुषोंके लिये; इसी प्रकार गोप (दसगांव का अधिकारी), स्थानिक (नगरका अधिकारी पुरुष), अनीकस्थ (हाथियोंको शिक्षा देनेमें चतुर पुरुष), चिकित्सक (वैद्य), अश्वदमक (घोड़ोंको शिक्षा देने वाला), और जङ्घाकरिक अर्थात् दूर देशोंमें जाने आनेसे अपनी जीविका करने वाला, इन सब पुरुषोंके लिये भी राजा क्षेत्र आदि भूमि देवे। परन्तु इन लोगोंको, अपनी भूमिको बेचनेका तथा गिरवी आदि रखनेका अधिकार नहीं होता; उस भूमिका केवल भोग कर सकते हैं ॥ ९ ॥

करदेभ्यः कृतक्षेत्राण्यैकपुरुषिकाणि प्रयच्छेत् ॥ १० ॥ अकृतानि कर्तृभ्यो नादेयात् ॥ ११ ॥

लगान आदि देने वाले किसानोंके लिये, जो खेतीके लिये उपयोगी ठीक तैयार कीहुई ज़मीन दीजावे, वह जिस पुरुषके नाम दीजावे, उसहीके जीवन कालतक उसके पास रहसकती है, तदनन्तर राजाको अधिकार है कि वह उस ज़मीनको, उस पुरुषके पुत्रादिको देवे, अथवा अन्य किसीको ॥ १० ॥ जिन्

लगान आदि देने वाले किसानोंको बंजर भूमि दीगई है, और उन्होंने अपनेही परिश्रमसे उसे खेतीके योग्य बनाया है; राजाको चाहिये कि उन किसानोंसे उस ज़मीनको कभी न लेवे। ऐसी ज़मीनोंके ऊपर किसानोंको पूर्ण अधिकार प्राप्त होना चाहिये ॥ ११ ॥

अकृषतामाच्छिद्यान्येभ्यः प्रयच्छेत् ॥ १२ ॥ ग्रामभृतकवैदेहका वा कृषेयुः ॥ १३ ॥

यदि कोई किसान ज़मीनमें खेती नहीं करता, और उसे वैसेही पड़ी रहने देता है, राजाको चाहिये, उससे वह ज़मीन छीनकर और किसी खेती करने वाले किसानको देदेवे ॥ १२ ॥ अथवा ऐसे किसानके न मिलनेपर उस ज़मीनमें गांवके अधिकारी पुरुष या व्यापारी लोग खेती करें ॥ १३ ॥

अकृषन्तो ऽपहीनं दद्युः ॥ १४ ॥ धान्यपशुहिरण्यैश्चैनाननुगृह्णीयात्तान्यनुसुखेन दद्युः ॥ १५ ॥

यदि पहिले स्वीकार करके फिर खेती न करें, तो वे उसका हर्जाना देवें ॥ १४ ॥ राजाको उचित है कि वह धान्य (बीज आदिके लिये, अथवा यथावसर खानेके लिये भी), पशु और धन आदि खेतीके उपयोगी पदार्थोंके द्वारा, यथावसर किसानोंको सहायता देता रहे। फसल पैदा होनेपर किसान भी अपने सुभीतेके अनुसार धीरे २, ये सब वस्तु राजाको देदेवें ॥ १५ ॥

अनुग्रहपरिहारौ चैभ्यः कोशवृद्धिकरौ दद्यात् ॥ १६ ॥

राजा, किसानोंके स्वास्थ्यके लिये परिमित धन देता रहे, जिससे कि सुपुष्ट किसान अधिक काम करके राजकोषके बढ़ानेमें सिद्ध हों। (स्वास्थ्य बढ़ानेके लिये दिया हुआ धन 'अनुग्रह' शब्दसे यहां कहागया है; यह धन अखाड़े, गदका आदि भिन्न २ प्रकारके शक्ति वर्द्धक व्यायामोंमें व्यय किया जावे। बिगड़े हुए स्वास्थ्यको सुधारनेके लिये दिया हुआ धन 'परिहार' शब्दसे यहांपर कहागया है; यह धन गांव २ में औषधालय आदि स्थापन करनेमें व्यय किया जावे। ये ही स्वास्थ्य संपादनके उपाय हैं।) ॥ १६ ॥

कोशोपघातिकौ वर्जयेत् ॥ १७ ॥ अल्पकोशो हि राजा पौरजानपदानेव ग्रसते ॥ १८ ॥ निवेशसमकालं यथागतकं वा परिहारं दद्यात् ॥ १९ ॥

परन्तु यदि स्वास्थ्यके लिये अनुग्रह और परिहार देनेसे राजकोशको कोई हानि पहुंचे, तो कदापि न देवे ॥ १७ ॥ क्योंकि कोश थोड़ा होनेपर

राजा फिर नगर और जनपद निवासी पुरुषोंकोही सताता है अर्थात् कोश पूरा करनेको उन्हें धनादि लेनेके लिये कष्ट पहुंचाता है ॥ १८ ॥ किसी कुलके बसनेके समय, स्वास्थ्य संपादनकेलिये प्रतिज्ञात धन, उसे अवश्य देते रहना चाहिये, अथवा राजकोशकी आयके अनुसार, राजा, परिहार (बिगड़े स्वास्थ्यको सुधारनेके लिये) धन अवश्य देता रहे ॥ १९ ॥

निवृत्तपरिहारान्पितेवानुगृह्णीयात् ॥ २० ॥ आकरकर्मान्तद्रव्यहस्तिवनव्रजवणिक्पथप्रचारान्वारिस्थलपथपण्यपत्तनानि च निवेशयेत् ॥ २१ ॥

यदि पौरजानपद उस परिहारद्रव्यको चुकादेवें, तो पिताके समान राजा उनपर अनुग्रह करे । अर्थात् उनकी वृद्धिके लिये अनुग्रह धन देकरभी उनका उपकार करे ॥ २० ॥ खनिज पदार्थोंके बेचनेके स्थान, द्रव्यवन (चन्दन आदि बढ़िया लकड़ियोंके उत्पत्ति स्थान), हस्तिवन (हाथियोंका जंगल) गाय बैल आदिकी रक्षा और उन्हें बढ़ानेके लिये स्थान, आयत निर्यात (विदेशका माल स्वदेशमें लाना–आयत, तथा स्वदेशका माल विदेशमें भेजना–निर्यात कहाता है=इम्पोर्ट, एक्सपोर्ट , व्यापारके लिये स्थान; जलमार्ग और स्थलमार्ग तथा बड़े २ बाज़ार या मण्डियों आदिका निर्माण करावे ॥ २१ ॥

सहोदकमाहार्योदकं वा सेतुं बन्धयेत् ॥२२॥ अन्येषां वा बध्नतां भूमिमार्गवृक्षोपकरणानुग्रहं कुर्यात् ॥ २३ ॥ पुण्यस्थानारामाणां च ॥ २४ ॥

नित्यजल (नदी आदिसे जिनमें सदा लगातार जल आता रहे, ऐसे) अथवा अनित्यजल (जिनमें सदा जल न आवे, किन्तु वर्षा ऋतुमें इधर उधरके ऊंचे स्थानोंसे बहकर आया हुआ जल इकट्ठा होजावे, ऐसे) बड़े २ जलाशयोंके बांध बनवावे ॥ २२ ॥ यदि अन्य प्रजाजनही इस कार्यको करना चाहें, तो उन्हें जलाशय आदिके लिये भूमि, नहर आदिके लिये मार्ग, और यथावश्यक लकड़ी आदि सामान देकर उनका उपकार करे ॥२३॥ तथा पुण्यस्थान देवालय आदि और बाग़ बगीचे आदि बनाने वाले प्रजाजनोंकोभी भूमि आदिकी सहायता देवे ॥ २४ ॥

संभूय सेतुबन्धादपक्रामतः कर्मकरबलीवर्दाः कर्म कुर्युः ॥२५॥ व्ययकर्मणि च भागी स्यात् ॥२६॥ न चांशं लभेत ॥२७॥

इकट्ठे मिलकर सेतुबन्ध बनाने वाले पुरुषोंमेंसे यदि कोई मनुष्य इच्छा न होनेके कारण काम न करना चाहे तो अपनी जगह अपने नौकर तथा बैलोंको

काम करनेके लिये अवश्य देवे ॥ २५ ॥ यदि ऐसा करनेमें कुछ आनाकानी करे, तो उससे, उसके अपने कामके हिस्सेका सारा खर्च लिया जावे ॥२६॥ और कार्य समाप्त होनेपर उससे,उसे कुछभी फायदा न उठाने दिया जावे ॥ २७॥

मत्स्यप्लवहरितपण्यानां सेतुषु राजा स्वाम्यं गच्छेत् ॥ २८ ॥ दासाहितकबन्धूनशृण्वतो राजा विनयं ग्राहयेत् ॥ २९ ॥

इस प्रकारके बड़े २ जलाशयोंमें उत्पन्न होने वाली, मछली, प्लव, (कारण्डव—बतखकी तरहका एक जलका पक्षी), और कमलदण्ड आदि व्यापारी वस्तुओंपर राजाकाही अधिकार रहे ॥ २८ ॥ दास (भृति लेकर सेवा करने वाले नोकर), तथा आहितक (स्वामीसे धन आदि लेकर आधिरूपसे रक्खे हुए) बन्धु या पुत्र आदि यदि अपने मालिककी आज्ञाका उलंघन करें, तो राजा उन्हें उचित रीतिसे शिक्षा देवे ॥ २९ ॥

बालवृद्धव्याधितव्यसन्यनाथांश्च राजा बिभृयात् ॥ ३० ॥ स्त्रियमप्रजातां प्रजातायाश्च पुत्रान् ॥ ३१ ॥ बालद्रव्यं ग्रामवृद्धा वर्धयेयुराव्यवहारप्रापणात् ॥ ३२ ॥ देवद्रव्यं च ॥ ३३ ॥

बालक, बूढ़े, रोगी, दुःखी तथा अनाथ व्यक्तियोंका, राजा सदा भरण पोषण करे ॥ ३० ॥ अप्रजाता स्त्री (जिसके सन्तान न होती हो, अर्थात् बन्ध्या स्त्री) और प्रजाता स्त्रीके पुत्रादिकी, राजा सदा रक्षा करे, यदि वे अनाथ हों ॥ ३१ ॥ बालककी सम्पत्तिको, गांवके लोग सदा बढ़ाते रहें, जब तककि वह बालक बालिग न हो जावे ॥३२॥ इसी प्रकार जो द्रव्य देवताके निमित्तसे निश्चित किया हुआ हो, उसेभी सदा बढ़ाते रहें ॥ ३३ ॥

अपत्यदारान् मातापितरौ भ्रातॄनप्राप्तव्यवहारान्भागिनीः कन्या विधवाश्चाबिभ्रतः शक्तिमतो द्वादशपणो दण्डोऽन्यत्र पतितेभ्यः ॥ ३४ ॥ अन्यत्र मातुः ॥ ३५ ॥

लड़के स्त्रियां, माता पिता, नाबालिग भाई, अविवाहित तथा विधवा बहिन, आदिका, जो पुरुष सामर्थ्य रखते हुएभी पालन पोषण न करे, उसे १२ पण दण्ड दिया जाय। परन्तु ये लड़के स्त्री आदि पतित न हों, यदि किसी कारणसे पतित होगये हों, तो समर्थ सम्बन्धीको इनके पालन पोषणके लिये बाधित नहीं किया जासकता ॥ ३४ ॥ परन्तु यह प्रतिषेध माताके लिये नहीं है अर्थात् माता यदि पतित भी होगई हो तो भी उसकी रक्षा करनीही चाहिये ॥ ३५ ॥

पुत्रदारमप्रतिविधाय प्रव्रजतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३६ ॥ स्त्रियं च प्रव्राजयतः ॥३७॥ लुप्तव्यवायः प्रव्रजेदापृच्छय धर्मस्थान् ॥ ३८ ॥ अन्यथा नियम्येत ॥ ३९ ॥

पुत्र और स्त्रियोंके जीवन निर्वाहका प्रबन्ध न करके यदि कोई पुरुष संन्यासी होना चाहे, तो उसे प्रथम साहसदण्ड दिया जाय ॥ ३६ ॥ इसीप्रकार जो पुरुष अपने साथ स्त्रीको भी संन्यासी बनजानेके लिये प्रेरणा करे, उसे भी प्रथम साहसदण्ड दिया जावे ॥ ३७ ॥ जब पुरुषकी मैथुनशक्ति सर्वथा नष्ट होजाय, उस समय धर्मस्थ (धर्म-शास्त्रके अनुसार व्यवहारपदोंका निर्णय करने वाले) अधिकारी पुरुषोंकी अनुमति लेकर, वह संन्यासी होवे ॥३८॥ यदि कोई पुरुष इस नियमका उल्लंघन करे, तो उसे पकड़कर कारागारमें बन्द कर दिया जावे ॥ ३९ ॥

वानप्रस्थादन्यः प्रव्राजितभावः सजातादन्यः संघः समुत्थायिकादन्यः समयानुबन्धो वा नास्य जनपदमुपनिविशेत ॥ ४० ॥

वानप्रस्थसे अतिरिक्त कोई संन्यासी, इसके राज्यमें न रहने पावे, (इस जनपद निवासके निषेधका प्रयोजन यही है, कि प्रायः इसतरहके संन्यासी शत्रुकेही स्थान होते हैं, क्योंकि इस वेषमें शत्रुके पुरुषोंका अधिक रहना भी सम्भव है) इसीप्रकार राजा और राज्यके कल्याणके लिये एकत्रित हुए जनसंघसे अतिरिक्त दुष्ट जनसंघ, तथा इकट्ठे मिलकर सेतुबन्ध आदि, राजा प्रजाके हितकारी कार्योंको करने वाले पुरुषोंके समुदायसे अतिरिक्त, जनपदमें द्रोह आदि उत्पन्न करनेकी अभिलाषासे कोई जनसमुदाय न रहने पावे ॥ ४० ॥

न च तत्रारामविहारार्थाः शालाः स्युः ॥ ४१ ॥ नटनर्तकगायनवादकवाग्जीवनकुशीलवा वा न कर्मविघ्नं कुर्युः ॥ ४२ ॥ निराश्रयत्वाद्ग्रामाणां क्षेत्राभिरतत्वाच्च पुरुषाणां कोशविष्टिद्रव्यधान्यरसवृद्धिर्भवतीति ॥ ४३ ॥

जनपदमें सर्वसाधारणके विनोदके स्थान उपवन आदि तथा इसीप्रकारकी दर्शनीय शाला (नाट्यगृह आदि) न होनी चाहियें ॥ ४१ ॥ जिससे कि नट, नर्त्तक, गायन, वादक, वाग्जीवन (कत्थक=कथा आदि करने वाले) कुशीलव आदि वहां अपने खेल दिखाकर कृषि आदि कार्योंमें विघ्न उत्पन्न न कर सकें ॥ ४२ ॥ क्योंकि गांवोंके निराश्रय होनेसे अर्थात् ग्रामोंमें नाट्यशाला आदिके न होनेसे और ग्रामनिवासी पुरुषोंके अपने २ खेतके कामोंमें लगे रहनेसेही कोश, विष्टि (हठ पूर्वक कराये जाने वाले कार्य), द्रव्य (लकड़ी आदि), धान्य (हर

तरहके अन्न), और रस (घी तेल इक्षुरस), आदि वस्तुओंकी अच्छीतरह वृद्धि होसकती है ॥ ४३ ॥

परचक्राटवीग्रस्तं व्याधिदुर्भिक्षपीडितम् ।
देशं परिहरेद्राजा व्ययक्रीडाश्च वारयेत् ॥ ४४ ॥

शत्रुसमूह और आटविक पुरुषोंसे घिरेहुए, व्याधि और दुर्भिक्षसे पीड़ित हुए २ देशको, राजा इन आपत्तियोंसे बचावे । तथा धनका व्यय करने वाली क्रीड़ा या विलासप्रियता आदिको सर्वथा छोड़देवे ॥ ४४ ॥

दण्डविष्टिकराबाधैः रक्षेदुपहतां कृषिम् ।
स्तेनव्यालविषग्राहैः व्याधिभिश्च पशुव्रजान् ॥ ४५ ॥

दण्ड, विष्टि, और कर आदिके द्वारा उत्पन्न हुई बाधाओंके कारण नष्ट होती हुई कृषिको बचावे । अर्थात् किसानोंको उचितही दण्ड देवे, उनसे बेगार बहुत अधिक न ले, तथा कर आदि भी नियमानुसार उचितही लेवे, जिससे कि वे खेती अच्छीतरह कर सकें । इसीप्रकार चोर, हिंसक जन्तु, विषप्रयोग तथा अन्य प्रकारकी व्याधियोंसे पशुओंकी रक्षा करे ॥ ४५ ॥

वल्लभैः कार्मिकैः स्तेनैरन्तपालैश्च पीडितम् ।
शोधयेत्पशुसंघैश्च क्षीयमाणवणिक्पथम् ॥ ४६ ॥

वल्लभ (राजाके प्रिय पुरुष), कार्मिक (राजकर संग्रह करने वाले अधिकारी पुरुष=चुंगी या अन्य प्रकारके टैक्स वसूल करने वाले), चोर, अन्तपाल (सीमारक्षक), और व्याघ्र आदि हिंसक पशुओंसे पीडित; इसी लिये क्षीणताको प्राप्त होते हुए व्यापारी मार्गोंका परिशोधन राजा करे । अर्थात् इन सब आपत्तियोंसे मार्गोंकी रक्षा करे ॥ ४६ ॥

एवं द्रव्यद्विपवनं सेतुबन्धमथाकरान् ।
रक्षेत्पूर्वकृतान्राजा नवांश्चाभिप्रवर्तयेत् ॥ ४७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे जनपदनिवेशः प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥

आदितो द्वाविंशः ॥ २२ ॥

इसप्रकार राजा, पहिलेसे बने हुए द्रव्यवन (लकड़ीके जंगल), हस्तिवन (हाथियोंके जंगल), सेतुबन्ध और खानोंकी रक्षा करे । तथा आवश्यकतानुसार और नये द्रव्यवन आदिको बनवावे ॥ ४७ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

२० प्रकरण

भूमिच्छिद्रविधान ।

जिस भूमिमें अन्न आदि उत्पन्न नहीं होसकता, उसका नाम 'भूमिच्छिद्र' है । इस प्रकारकी भूमिको किसतरह कार्यके योग्य बनाया जासकता है, इसी बातका निरूपण इस प्रकरणमें होगा ।

अकृष्यायां भूमौ पशुभ्यो विवीतानि प्रयच्छेत् ॥ १ ॥ प्रदिष्टाभयस्थावरजङ्गमानि च ब्राह्मणेभ्यो ब्रह्मसोमारण्यानि तपोवनानि च तपस्विभ्यो गोरुतपराणि प्रयच्छेत् ॥ २ ॥

जिस भूमिमें कृषि न होसके, वहांपर पशुओंके लिये चरागाह आदि बनवा दिये जावें ॥ १ ॥ तथा स्थावर वृक्षलता आदि और जंगम मृग आदिको जहां अभयदान कियाहुआ हो, ऐसे एक गव्यूतिमात्र (चार कोसकी) दूरी तक फैले हुए, वेदाध्ययन और सोमयाग आदिके लिये अत्यन्त उचित जंगलोंको, वेदाध्यायी ब्राह्मणोंके लिये देदेवे । और इसी प्रकारके तपोवनोंको तपस्वियोंके लिये देदेवे ॥ २ ॥

तावन्मात्रमेकद्वारं खातगुप्तं स्वादुफलगुल्मगुच्छमकण्टकिद्रुममुत्तानतोयाशयं दान्तमृगचतुष्पदं भग्ननखदंष्ट्रव्यालं मार्गयुकहस्तिहस्तिनीकलभं मृगवनं विहारार्थं राज्ञः कारयेत् ॥ ३ ॥

तथा चार कोस तकही फैले हुए, एक द्वार वाले, चारों ओर खोदी हुई खाईसे सुरक्षित, स्वादु फल, लता कुञ्ज, फूलोंके गुच्छे तथा कण्टक (कांटे) रहित वृक्षोंसे और थोड़े गहरे जलाशयोंसे युक्त, मनुष्योंसे परिचित मृग आदि तथा अन्य जंगली जानवरोंसे युक्त, कटे हुए नख और डाढ़ों वाले व्याघ्रोंसे युक्त, शिकारके योग्य हाथी हथिनी तथा इनके बच्चोंसे युक्त, मृगवनको राजाके विहारके लिये (अर्थात् शिकार आदि खेलनेके लिये) तैयार करावे ॥ ३ ॥

सर्वातिथिमृगं प्रत्यन्ते चान्यन्मृगवनं भूमिवशेन वा निवेशयेत् ॥ ४ ॥ कुप्यप्रदिष्टानां च द्रव्याणामेकैकशो वा वनं निवेशयेत् ॥ ५ ॥ द्रव्यवनकर्मान्ताजटवीश्च द्रव्यवनापाश्रयाः ॥ ६ ॥

इस वनके समीपही, योग्य भूमि होनेपर एक और मृगवन तैयार करवाया जावे । उसमें सब देशोंके जानवर लाकर रक्खे जावें ॥ ४ ॥ कुप्याध्यक्ष

प्रकरणमें बताये हुए लकड़ी आदि द्रव्योंके लिये या अलहदा २ एक २ चीज़का जंगल लगाया जावे ॥ ५ ॥ द्रव्यवन सम्बन्धी (लकड़ीके जगलोंके सम्बन्धमें जितने कार्य हों, उन सब) कार्योंको, तथा अन्य जंगलोंके कार्योंको, द्रव्यवनोपजीवी (द्रव्यवनोंके सहारेपर ही अपनी जीविका करने वाले) पुरुषही सम्पादन करें ॥ ६ ॥

प्रत्यन्ते हस्तिवनमटव्यारक्ष्यं निवेशयेत् ॥ ७ ॥ नागवनाध्यक्षः पार्वतं नादेयं सारसमानूपं च नागवनं विदितपर्यन्तप्रवेशनिष्कसनं नागवनपालैः पालयेत् ॥ ८ ॥

अपने जनपदके सीमाप्रान्तमें, अटवीपाल (जंगलकी रक्षा करने वाले) पुरुषोंकी देख रेखमेंही एक हस्तिवन (हाथियोंके जंगल) की स्थापना करावे ॥ ७ ॥ हस्तिवनोंका प्रधान अध्यक्ष, पर्वतमें होने वाले, नदीके किनारेपर होने वाले, किसी बड़े भारी जलाशयके समीप होने वाले, तथा किसी जलमय प्रदेशमें होने वाले हस्तिवनोंके भीतर जाने आनेके मार्गोंको अच्छीतरह जानकर, उन २ हस्तिवनोंकी देखरेख करने वाले पुरुषोंके द्वारा, उनकी अच्छीतरह रक्षा करवावे ॥ ८ ॥

हस्तिघातिनं हन्युः ॥ ९ ॥ दन्तयुगं स्वयं मृतस्याहरतः सपादचतुष्पणो लाभः ॥ १०

जो कोई जंगली या अन्य पुरुष हाथीको मार डाले, तो उसे प्राण दण्ड दिया जाय ॥ ९ ॥ अपने आप मरे हुए हाथीके दांतोंको उठाकर, लाकर जो पुरुष, रक्षकोंके सुपुर्द करदे, उसे सवाचार पण इनाम दिया जावे ॥ १० ॥

नागवनपाला हस्तिपकपादपाशिकसैमिकवनचरकपारिकार्मिकसखा हस्तिमूत्रपुरीषच्छन्नगन्धा भल्लातकीशाखाप्रतिच्छन्नाः पञ्चभिः सप्तभिर्वा हस्तिबन्धकीभिः सह चरन्तः शय्यास्थानपद्यालण्डकूलपातोद्देशेन हस्तिकुलपर्यग्रं विद्युः ॥ ११ ॥

हस्तिवनके रक्षक पुरुष; हस्तिपक (फ़ीलवान), पादपाशिक (जाल फैलाकर हाथियोंके पांवसे उन्हें फंसाने वाला), सैमिक (सीमारक्षक पुरुष), वनचरक (जंगल वासी अन्य पुरुष), और पारिकार्मिक (हाथियोंकी अच्छीतरह परिचर्या करनेमें निपुण), इन सब पुरुषोंको अपने साथ लेकर; तथा हाथीके मल मूत्रके गन्धके समानही किसी अन्य गन्धसे युक्त होकर, भिलावेकी शाखाओंमें अपने आपको ढक कर; हाथियोंको वशमें करने वाली पांच सात हथि-

नियोंके साथ इधर उधर जंगलमें घूमते हुए; हाथियोंके शयन स्थान, पैड़ (पद-पंक्ति), मल मूत्र त्यागनेके स्थान, तथा करारों (ढांगों=नदीतटों) के गिराने आदिके चिन्होंसे, इस बातका पता लगावें, कि हाथियोंके झुंड, जंगलमें कहां २ तक घूमते हैं ॥ ११ ॥

यूथचरमेकचरं निर्यूथं यूथपतिं हस्तिनं व्यालं मत्तं पोतं बंधमुक्तं च निबन्धेन विद्युः ॥ १२ ॥

झुंडके साथ घूमने वाले, अकेले घूमने वाले, झुंडसे निकले हुए, झुंडके मालिक, क्रूरप्रकृति, मत्त (मस्त), पोत (छोटी उमरके=दश वर्ष तककी अवस्थाके), तथा बंधन से छूटे हुए हाथीको, हस्तिवनके रक्षक पुरुष, अपनी गणना पुस्तकसे जानें ॥ १२ ॥

अनीकस्थप्रमाणैः प्रशस्तव्यञ्जनाचारान्हस्तिनो गृह्णीयुः ॥ १३ ॥ हस्तिप्रधानो हि विजयो राज्ञाम् ॥ १४ ॥ परानीकव्यूहदुर्गस्कन्धावारप्रमर्दना ह्यतिप्रमाणशरीराः प्राणहरकर्माणो हस्तिन इति ॥ १५ ॥

हस्तिशिक्षामें सुचतुर पुरुषोंके कथनानुसार, श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त हाथियोंको, राजाके कार्यके लिये पकड़ लिया जावे ॥ १३ ॥ क्योंकि राजाओंके विजयी होनेमें हाथीही एक प्रधान साधन हैं ॥ १४ ॥ बड़े २ शरीर वाले हाथी ही, शत्रुकी सेना, व्यूह रचना, दुर्ग तथा छावनियोंको कुचलने वाले होते हैं, इसलिये येही शत्रुके प्राणोंका हरण करते हैं ॥ १५ ॥

कलिङ्गाङ्गगजाः श्रेष्ठाः प्राच्याश्चेति करूशजाः ।
दशार्णाश्चापरान्ताश्च द्विपानां मध्यमा मताः ॥ १६ ॥

कलिङ्ग और अङ्ग देशमें उत्पन्न हुए २ हाथी, तथा पूरबके करूश देशमें उत्पन्न हुए २ हाथी, सब हाथियोंमें उत्तम होते हैं । दशार्ण देशमें उत्पन्न हुए तथा पश्चिममें उत्पन्न हुए २ हाथी मध्यम समझे जाते हैं ॥ १६ ॥

सौराष्ट्रिकाः पाञ्चजनाः तेषां प्रत्यवराः स्मृताः ।
सर्वेषां कर्मणा वीर्यं जवस्तेजश्च वर्धते ॥ १७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे भूमिच्छिद्रविधानं द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥
आदितस्त्रयोविंशः ॥ २३ ॥

सौराष्ट्र और पञ्चजन देशोंमें उत्पन्न हुए २ हाथी अधम समझे गये हैं, यहांके हाथी सबसे घटिया होते हैं। परन्तु सबही तरहके हाथियोंका बल, वेग तथा तेज, उचित शिक्षाके द्वारा यथावश्यक बढ़ाया जासकता है ॥ १७ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त।

तीसरा अध्याय।

२१ प्रकरण।

दुर्गविधान।

चतुर्दिशं जनपदान्ते सांपरायिकं दैवकृतं दुर्गं कारयेत् ॥ १ ॥ अन्तर्द्वीपं स्थलं वा निम्नावरुद्धमौदकं प्रस्तरं गुहां वा पार्वतं निरुदकस्तम्बमिरिणं वा धान्वनं खञ्जनोदकं स्तम्बगहनं वा वनदुर्गम् ॥ २ ॥

चारों दिशाओंमें, जनपदके सीमास्थानोंमें, युद्धके लिये उपयोगी स्वाभाविक विकट स्थानोंकोही, दुर्गके रूपमें बनवा लेवे। अर्थात् यथावसर युद्धके लिये ऐसेही स्थानोंका आश्रय लेवे ॥ १ ॥ इस प्रकारके दुर्ग मुख्यतया चार तरहके होते हैं:—औदक, पार्वत, धान्वन और वनदुर्ग। इनमें प्रत्येकके फिर दो २ भेद हैं; इन्हीं सबका द्वितीय सूत्रमें निरूपण किया जाता है:—चारों ओर नदियोंसे घिरा हुआ बीचमें टापूके समान, अथवा बड़े २ गहरे तालाबोंसे घिरा हुआ मध्यका स्थल प्रदेश, यह दो प्रकारका औदक दुर्ग कहाता है। बड़े बड़े पत्थरोंसे घिरा हुआ, अथवा स्वाभाविक गुफाओंके रूपमें बना हुआ, यह दो प्रकारका पार्वत दुर्ग होता है। जल तथा घास आदिसे रहित अथवा सर्वथा ऊपर भूमिमें बना हुआ, यह दो प्रकारका धान्वन दुर्ग कहाता है। चारों ओर दलदलसे घिरा हुआ अथवा कांटेदार घनी झाड़ियोंसे घिरा हुआ, यह दो प्रकारका वनदुर्ग कहाता है ॥ २ ॥

तेषां नदीपर्वतदुर्गं जनपदारक्षस्थानं धान्वनवनदुर्गमटवीस्थानम् आपद्यपसारो वा ॥ ३ ॥ जनपदमध्ये समुदयस्थानं स्थानीयं निवेशयेत् ॥ ४ ॥

इन दुर्गोंमेंसे नदीदुर्ग और पर्वतदुर्ग, आपत्तिके समयमें जनपदकी रक्षाके स्थान होते हैं। धान्वनदुर्ग तथा वनदुर्ग आटविकोंकी रक्षाके लिये उप-

युक्त होते हैं । अथवा विशेष आपत्तिके समय, राजा भी भागकर इन्हीं दुर्गोंमें आश्रय लेसकता है ॥ ३ ॥ जनपदके बीचमें, धन आदिकी उत्पत्तिके मुख्यस्थान स्थानीय अर्थात् बड़े २ नगरोंको राजा बसावे ॥ ४ ॥

वास्तुकप्रशस्ते देशे नदीसङ्गमे ह्रदस्य वाविशोषस्याङ्के सरसस्तटाकस्य वा वृत्तं दीर्घं चतुरश्रं वा वास्तुकवशेन प्रदक्षिणोदकं पण्यपुटभेदनमंसवारिपथाभ्यामुपेतम् ॥ ५ ॥ तस्य परिखास्तिस्रो दण्डान्तराः कारयेत् ॥ ६ ॥

इसप्रकारके स्थानीय (बड़े २ नगर), नीचे लिखे प्रदेशोंमें बसाने चाहियें:—जिस प्रदेशको, वास्तु विद्या जानने वाले विद्वान् श्रेष्ठ बतावें; अथवा किसी नदीके संगमपर; अथवा बड़े २ अगाध जलवाले, या जिनमें कमल पैदा होते हों, ऐसे जलाशयोंके किनारेपर बसावें । वह स्थानीय, भूमिके अनुसार गोलाकार (वर्तुलाकार), अथवा लम्बा या चौकोर बनाया जाना चाहिये । उसमें चारों ओर छोटी २ नहरोंके द्वारा जलप्रवाह अवश्य बहता रहना चाहिये । उसके इधर उधर उत्पन्न होने वाली बिक्री वस्तुओंका वहां संग्रह तथा क्रय विक्रयका प्रबन्ध होना चाहिये । जल और स्थल दोनों तरहके मार्गोंसे वहां आनेका सुभीता होना चाहिये ॥ ५ ॥ उसके चारों ओर एक २ दण्डके फासलेसे तीन खाइयां खुदवावे । (चार हाथका एक दण्ड होता है । देखोः—प्र० ३८, देशकालमान=अधि० २, अध्या० २०) ॥ ६ ॥

चतुर्दशं द्वादशं दशेति दण्डान्विस्तीर्णाः विस्तारादवगाधाः पादोनमर्धं वा त्रिभागमूला मूले चतुरश्राः पाषाणोपहिताः पाषाणेष्टकाबद्धपार्श्वा वा तोयान्तिकीरागन्तुतोयपूर्णा वा सपरिवाहाः पद्मग्राहवतीश्च ॥ ७ ॥

वे खाई क्रमशः चौदह दण्ड, बारह दण्ड और दश दण्ड चौड़ी होनी चाहियें । जितनी चौड़ी हों, उससे चौथाई या आधी कम गहरी होनी चाहियें। अथवा चौड़ाईका तीसरा हिस्सा गहरी होनी चाहियें । नीचे तलेमें बराबर तथा पत्थर आदिसे बंधी हुई होनी चाहियें । इधर उधरके किनारे भी पत्थर अथवा ईंटोंसे मज़बूत चिने हुए होने चाहियें । कहीं २ से इनको इतना गहरा खोद दिया जाय, जहांसे स्वयंही इनमें जल निकलने लगे । अथवा किसी नदी आदिसे जल लाकर इनमें भर दिया जावे । इनमें जलके निकलनेका भी मार्ग अवश्य रहना चाहिये । कमल तथा नाकू आदि जलचर भी इनमें रहें ॥ ७ ॥

चतुर्दण्डावकृष्टं परिखायाः षड्दण्डोच्छ्रितमवरुद्धं तद्द्विगुणविष्कम्भं खाताद्वप्रं कारयेत् ॥ ८ ॥

परिखा (खाई) से चार दण्डके फासलेपर, छः दण्ड ऊँचा, अवरुद्ध अर्थात् सब ओरसे दृढ़; तथा जितना ऊँचा हो उससे दुगना नीचेसे चौड़ा वप्र अर्थात् सफील बनवावे, इसके बनवानेमें वही मिट्टी काममें लाई जावे, जो खाईसे खोदकर बाहर फेंकी गई है ॥ ८ ॥

ऊर्ध्वचयं मञ्चपृष्ठं कुम्भकुक्षिकं वा हस्तिभिर्गोभिश्च क्षुण्णं कण्टकिगुल्मविषवल्लीप्रतानवन्तं पांसुशेषेण वास्तुच्छिद्रं वा पूरयेत् ॥ ९ ॥

उस वप्रके बनानेके तीन प्रकार होते हैं:—ऊर्ध्वचय, मञ्चपृष्ठ तथा कुम्भकुक्षिक; जो वप्र (सफील) नीचेसे बहुत मोटा और ऊपरसे पतला हो, उसे 'ऊर्ध्वचय' कहते हैं; जो ऊपर नीचे दोनों जगहसे बराबर हो, वह 'मञ्चपृष्ठ' तथा ऊपर नीचेसे पतला और बीचमेंसे मोटा हो वह 'कुम्भकुक्षिक' कहाता है। सफीलको हाथी तथा गाय बैलोंसे खूब खुंदवाना चाहिये, जिससे कि उसकी मट्टी बैठकर वह खूब मज़बूत होजाय। तथा उसके इधर उधर कांटदार झाड़ियां और ज़हरीली लतायें लगा देनी चाहियें। यदि खाईयोंकी खुदी हुई मिट्टी फिर भी बच जावे तो उससे उन गड्ढोंको भर दिया जावे जहांसे मकान आदि बनानेके लिये मिट्टी खोदी गई हो ॥ ९ ॥

वप्रस्योपरि प्राकारं विष्कम्भाद्द्विगुणोत्सेधमैष्टकं द्वादशहस्तादूर्ध्वमोजं युग्मं वा आ चतुर्विंशतिहस्तादिति कारयेत् ॥ १० ॥

इस वप्रके ऊपर एक प्राकार (दीवार) खड़ा करवावे, वह अपनी चौड़ाईसे दुगना ऊँचा होना चाहिये, कमसे कम बारह हाथसे लगाकर तेरह पन्द्रह आदि विषम संख्याओंमें या चौदह सोलह आदि सम संख्याओंमें अधिकसे अधिक चौबीस हाथ तक ऊँचा होना चाहिये ॥ १० ॥

रथचर्यासंचारं तालमूलमुरजकैः कपिशीर्षकैश्चाचिताग्रं पृथुशिलासहितं वा शैलं कारयेत् ॥ ११ ॥

अथवा प्राकारको ऊपरसे इतना चौड़ा बनवावे, जिसपर एक रथ आसानीसे चलसके। ताड़वृक्षकी जड़के समान, मृदङ्ग बाजेके समान और बन्दरके सिरके समान आकार वाले छोटे बड़े पत्थरों तथा ईंटके चूरेसे, जिसके बाहर या ऊपरकी ओरका हिस्सा बनाया गया हो अथवा जो केवल बड़ी २ शिलाओंसेही बनाया गया हो, ऐसे प्राकारको वप्रके ऊपर करवावे ॥ ११ ॥

न त्वेव काष्ठमयम् ॥ १२ ॥ अग्निरवहितो हि तस्मिन्वसति ॥१३॥ विष्कम्भचतुरश्रमट्टालकमुत्सेधसमावक्षेपसोपानं कारयेत् त्रिंशद्दण्डान्तरं च ॥ १४ ॥

यह प्राकार लकड़ीका कभी नहीं बनवाना चाहिये ॥ १२ ॥ क्योंकि इसमें अग्नि सदा सन्निहित रहता है । अर्थात् इसमें आग लगने का भय सदा ही बना रहता है ॥ १३ ॥ प्राकारके आगे एक अट्टालक बनवावे; जो कि प्राकारके विस्तार या ऊंचाईके समान ही विस्तृत या ऊंचा होना चाहिये । तथा ऊंचाईके बराबर ही जिसमें चढ़ने उतरनेके लिये सीढ़ियां (पौढ़ियां) होनी चाहियें । एक अट्टालक का दूसरे से तीस दण्ड का फासला होना चाहिये । अर्थात् इतने २ फासले पर प्राकारके चारों ओर अट्टालक बनवाये जावें ॥ १४॥

द्वयोरट्टालकयोर्मध्ये सहर्म्यद्वितलां द्व्यर्धायामां प्रतोलीं कारयेत् ॥ १५ ॥ अट्टालकप्रतोलीमध्ये त्रिधानुष्काधिष्ठानं सपिधानच्छिद्रफलकसंहतमिन्द्रकोशं कारयेत् ॥ १६ ॥

दो अट्टालकोंके बीचमें, हर्म्यकी दूसरी मंजिलके सहित, चौड़ाईसे ड्योढ़ी लम्बी प्रतोली (गृह विशेष) बनवावे ॥ १५ ॥ अट्टालक और प्रतोलीके बीचमें एक इन्द्रकोश (स्थान विशेष, बनवावे । वह इतना बड़ा होना चाहिये जिसमें तीन धनुर्धारी पुरुष बैठ सकें । बाहरकी ओरसे रुकावट करनेके लिये उनके आगे एक तख्ता लगा रहना चाहिये, परन्तु उन तख्तेमें यथावश्यक छिद्र अवश्य होने चाहियें, जिनमें ये धानुष्क (धनुर्धारी पुरुष) बाहरकी वस्तुओंको देख सकें, तथा अवसरपर बाण आदि चलासकें ॥ १६ ॥

अन्तरेषु द्विहस्तविष्कम्भं पार्श्वे चतुर्गुणायाममनुप्राकारमष्टहस्तायतं देवपथं कारयेत् ॥ १७ ॥ दण्डान्तरा द्विदण्डान्तरा वा चार्याः कारयेत् ॥ १८ ॥

प्राकारके साथ २, अट्टालक प्रतोली तथा इन्द्रकोशके बीचमें दो हाथ चौड़ा और प्राकारके पास इससे चतुर्गुण अर्थात् आठ हाथ चौड़ा एक देवपथ (गुप्तमार्ग) बनवाया जावे ॥ १७ ॥ एक दण्ड या दो दण्डके फासलेसे चार्या अर्थात् प्राकार आदिपर चढ़ने उतरनेका स्थान बनवाया जावे ॥ १८ ॥

अग्राह्ये देशे प्रधावितिकां निष्कुहद्वारं च ॥ १९ ॥

न दीखने योग्य प्रदेशमें, प्राकारके ऊपरही प्रधावितिका, तथा उसके पासही निष्कुहद्वार बनवावे । (शत्रुके द्वारा बाहरकी ओरसे बाण आदिके

छोड़नेपर, उसकी नजरसे बचनेके लिये सिपाहीके सरलतासे छिपने योग्य छोटेसे आवरणका नाम 'प्रधावितिका' है। इस आवरणमें छोटे बड़े कुछ छेद भी रहते हैं, जिनके द्वारा शत्रुकी प्रत्येक चेष्टाको भीतर बैठा हुआ सिपाही अच्छी तरहसे देख सकता है; इन्हीं छेदोंका नाम 'निष्कुहद्वार' है ॥ १९ ॥

बहिर्जानुभञ्जनीं त्रिशूलप्रकरकूटावपातकण्टकप्रतिसराहिपृष्ठतालपत्रशृङ्गाटकश्वदंष्ट्रार्गलोपस्कन्दनपादुकाम्बरीषोदपानकैः छन्नपथं कारयेत् ॥ २० ॥

परिखासे बाहरकी भूमियोंमें, जानुभञ्जनी (घोंटूतक ऊँचे, लकड़ीके बने हुए खूंटे, जो रास्तेमें चलते समय घोंटुओंको तोड़नेवाले हों), त्रिशूलोंका समूह, अंधेरे गढ़े, लोहेकी शलाकाओं तथा तिनकोंसे ढके हुए गढ़े, लोहेके बने हुए कांटोंका ढेर, सांपके अस्थिपंजर तथा तालपत्रके समान बने हुए लोहेके जालों, तीन २ नोकवाले लोहेके नुकीले कांटों, कुत्तेकी डाढ़के समान तीक्ष्ण लोहेकी कीलों, बड़े २ लट्ठों, अथवा गिर जानेके लिये एकही पैरकी बराबर बनाये कीचड़से भरे हुए गढ़ों, तथा अग्निके गढ़ों और दूषित जलके गढ़ोंसे दुर्गके मार्गको पाट देवे। तात्पर्य यह है कि खाईके बाहरकी भूमिमें, दुर्गके लिये आनेवाले रास्तेपर इन २ वस्तुओंको बिछा देवे, या भूमिमें गाढ़ देवे, जिससे कि शत्रु दुर्गकी ओर न आसके ॥ २० ॥

प्राकारमुभयतो मण्डपकमध्यर्धदण्डं कृत्वा प्रतोलीषट्तलान्तरं द्वारं निवेशयेत् ॥ २१ ॥ पञ्चदण्डादेकोत्तरवृद्ध्याष्टदण्डादिति चतुरश्रं द्विदण्डं वा षड्भागमायामादधिकमष्टभागं वा ॥ २२ ॥

जिस जगहपर दरवाजा बनानेकी इच्छा हो, वहां पहिले नीचे प्राकारके दोनों भागोंमें डेढ़ दण्ड लम्बा चौड़ा मण्डप अर्थात् चबूतरासा बनाया जावे; तदनन्तर उसके ऊपर प्रतोलीके समान छः खम्भे खड़े करके द्वारका निर्माण कराया जावे ॥ २१ ॥ द्वारका विस्तार पांच दण्डसे लगाकर एक २ दण्डकी वृद्धि करते जानेसे, अधिकसे अधिक आठ दण्डतक प्राकारके अनुसार चौकोर होना चाहिये। अथवा दो दण्डका ही दरवाजा होवे, यह भी कोई विद्वान् कहते हैं। अथवा नीचे आधारके परिमाणसे छठा या आठवां हिस्सा अधिक करके ऊपर दरवाजा बनाया जावे ॥ २२ ॥

पञ्चदशहस्तादेकोत्तरमष्टादशहस्तादिति तलोत्सेधः ॥ २३ ॥ स्तम्भस्य परिक्षेपः षडायामा द्विगुणो निखातः चूलिकायाश्चतु-

भागः ॥ २४ ॥ आदितलस्य पञ्च भागाः शाला वापी सीमागृहं च ॥ २५ ॥

नीचेके तलसे खम्भोंकी ऊँचाई पन्द्रह हाथसे लगाकर अठारह हाथतक होनी चाहिये ॥ २३ ॥ और खम्भोंकी परिधि अर्थात् मोटाई, खम्भेकी ऊँचाई का छठा हिस्सा होनी चाहिये । जितनी मोटाई हो उससे दुगना भूमिमें गाड़ दिया जावे, और उसका चौथाई हिस्सा, खम्भेकी ऊपरकी चूलके लिये छोड़ा जावे ॥ २४ ॥ प्रतोलिका के तीन तलोंमेंसे पहिले तलके पांच हिस्स करे । उनमेंसे बीचके हिस्सेमें तो वापी (बावड़ी) बनवावे, उसके इधर उधर शाला और शालाके किनारोंपर सीमागृह बनवावे । (शालाओंके किनारेपर पांचवें हिस्सेमें बने हुए उस छोटे मकानको ही "सीमागृह" कहा जाता है) ॥ २५ ॥

दशभागिकौ समत्तवारणौ द्वौ प्रतिमञ्चौ अन्तरमाणिः ॥२६॥ हर्म्यं च समुच्छ्रयादर्धतलं स्थूणावबन्धश्च ॥ २७ ॥

शालाके किनारोंकी ओर मुकाबलेमें दो मञ्च अर्थात् छोटे २ बैठनेके योग्य चबूतरेसे बनवावे, उनपर चोटी अर्थात् बुर्जियां भी होनी चाहियें । और शाला तथा सीमागृहके बीचमें आणि अर्थात् एक छोटासा दरवाजा होना चाहिये ॥ २६ ॥ हर्म्य अर्थात् मकान की दूसरी मंजिलकी ऊँचाई पहिली मंजिलकी ऊँचाईसे आधी होनी चाहिये, आवश्यकतानुसार उसकी छतके नीचे छोटे २ खम्भोंका सहारा होना चाहिये । (किसी २ पुस्तकमें 'आणिहर्म्य' ऐसा इकट्ठा पाठ है, यहांपर आणिका अर्थ सीमा करना चाहिये, अर्थात् सीमागृहके ऊपरका हर्म्य, ऐसा अर्थ होना चाहिये) ॥ २७ ॥

आर्धवास्तुकमुत्तमागारं त्रिभागान्तरं वा ॥ २८ ॥ इष्टकावबन्धपार्श्वम् ॥ २९ ॥ वामतः प्रदक्षिणसोपानं गूढभित्तिसोपानमितरतः ॥ ३० ॥

उत्तमागार अर्थात् हर्म्यसे भी ऊपरकी तीसरी मंजिलकी ऊँचाई डेढ़ दण्ड होनी चाहिये । (एक वास्तुक, तीन दण्डका होता है, अर्धवास्तुक=डेढ़ दण्ड । यह परिमाण उसी समय समझना चाहिये, जब नीचे द्वारका परिमाण पांच दण्ड हो; उससेके अनुसार यह बड़ा भी होसकता है) । अथवा द्वारका तृतीयांश परिमाण उत्तमागारका होना चाहिये ॥ २८ ॥ उत्तमागारके इधर उधरके भाग, पकी ईंटोंसे खूब मजबूत बने हुए होने चाहियें ॥ २९ ॥ उसके

बांई ओर चक्करदार सीढ़ियां चढ़ने उतरनेके लिये होनी चाहियें । और दाहिनी ओर छिपे तौरपर भीतमें सीढ़ियां बनवाई जावें ॥ ३० ॥

द्विहस्तं तोरणशिरः ॥ ३१ ॥ त्रिपञ्चभागिकौ द्वौ कवाटयोगौ ॥ ३२ ॥ द्वौ द्वौ परिघौ ॥ ३३ ॥

द्वारका सिर अर्थात् द्वारके ऊपरका बुर्ज आदि दो हाथका बनाना चाहिये ॥ ३१ ॥ तीन अथवा पांच हिस्सोंके, दोनों किवाड़ या फाटक होने चाहियें । (तीन या पांच हिस्सेका अर्थ यह है, कि एक किवाड़ लम्बाईमें तीन तख्ते या पांच तख्तेका बना हुआ होना चाहिये) ॥३२॥ किवाड़ोंके पीछेकी ओर दो परिघ अर्थात् अगेला होने चाहियें ॥ ३३ ॥

अरत्निरिन्द्रकीलः ॥ ३४ ॥ पञ्चहस्तमणिद्वारम् ॥ ३५ ॥ चत्वारो हस्तिपरिघा ॥ ३६ ॥

एक अरत्नि परिमाण (चौबीस अंगुल परिमाणको अरत्नि कहा जाता है इसका दूसरा नाम 'हस्त' या हाथ भी है। एक हाथ=१½ फुट) की एक इन्द्रकील (चटखनी) किवाड़ोंको बन्द करनेके लिये होनी चाहिये ॥३४॥ फाटकके बीचमें एक छोटासा पांच हाथका दरवाजा होना चाहिये ॥ ३५ ॥ सम्पूर्ण द्वार इतना बड़ा होना चाहिये, जिसमें चार हाथी एक साथ प्रवेश करसकें । (इस सूत्रमें 'हस्तिपरिघ' शब्दका लाक्षणिक अर्थ—हाथियोंके प्रवेशके लिये पर्याप्त, यही करना चाहिये) ॥ ३६ ॥

निवेशार्धं हास्तिनखः मुखसमः संक्रमो ऽसंहार्यो वा भूमिमयो वा निरुदके ॥ ३७ ॥ प्राकारसमं मुखमवस्थाप्य त्रिभागगोधामुखं गोपुरं कारयेत् ॥ ३८ ॥

द्वारकी ऊंचाईसे आधी ऊंचाई वाला (अर्थात् द्वारकी ऊँचाई यदि पांच दण्ड हो तो ढाई दण्ड ऊंचा) हाथीके नाखूनके समान आवश्यकतानुसार चढ़ाव उतारवाला, दरवाजेके समान आकार वाला ही दुर्गके संचरणका मार्ग अर्थात् दुर्गपर यथावसर घूमने फिरनेका मार्ग, मजबूत लकड़ी आदि का बना हुआ, अथवा जल रहित स्थानोंमें मट्टीकाही होना चाहिये ॥ ३७ ॥ ऊँचाई आदिमें प्राकारके समानही निकलनेका मार्ग बनवाकर, उसका तृतीयांश, गोधा (गोह—एक जलचर प्राणी) के मुंहकी तरह आकार वाला गोपुर अर्थात् नगरद्वार बनवाया जावे ॥ ३८ ॥

प्राकारमध्ये कृत्वा वापीं पुष्करिणीद्वारं चतुःशालमध्यर्धान्तराणीकं कुमारीपुरं मुण्डहर्म्यं द्वितलं मुण्डकद्वारं भूमिद्रव्य-

वशेन वा ॥ ३९ ॥ त्रिभागाधिकायामा भाण्डवाहिनीः कुल्याः कारयेत् ॥ ४० ॥

प्राकारके बीचमेंही वापी (बावड़ी) बनाकर उसके साथही एक द्वार बनाया जावे, वापीके साथ सम्बन्ध होनेसे इस द्वारका नाम पुष्करिणीद्वार होता है । इसीप्रकार जिस दरवाजेके आसपास चार शाला बनाई जांय, और उस दरवाजेमें पहिले कहे हुए छोटे दरवाजेसे ड्योढ़ा अधिक छोटा दरवाजा लगा हो, उसका नाम कुमारीपुरद्वार होता है । जो दरवाजा दो मञ्जिलका बनवाया जावे, तथा उसपर कंगूरे वगैरह लगे हुए न हों, तो उसे मुण्डकद्वार कहा जाता है । इसतरह भिन्न २ रीतिसे राजा दरवाजोंको बनवावे । अथवा वहांकी अपनी भूमि तथा अपनी सम्पत्तिके अनुसार इनमें उचित परिवर्त्तन कर सकता है, अर्थात् जैसी भूमि और जितनी सम्पत्ति हो, उसीके अनुसार इनका निर्माण करावे ॥ ३९ ॥ अन्य सामान्य नहरोंसे तिहाई हिस्सा अधिक चौड़ी नहरें बनवाई जावें, जिनके द्वारा हर तरहके सामान अन्दर बाहर लाये तथा लेजाये जासकें ॥ ४० ॥

तासु पाषाणकुद्दालकुठारीकाण्डकल्पनाः ।
भुशुण्डीमुद्गरा दण्डचक्रयन्त्रशतघ्नयः ॥ ४१ ॥

उन नहरोंके द्वारा कौनसे सामान लाये लेजाये जासकते हैं, इसीका निरूपण इन दो श्लोकोंमें किया जाता है:—पत्थर, कुद्दाल (कसी आदि भूमि खोदनेके उपकरण), कुठार, बाण, कल्पना (हाथियोंके उपकरण), भुशुण्डी (बन्दूक आदि शस्त्र । किसी पुस्तकमें 'भुशुण्डी' के स्थानपर 'मुसृण्ठि' पाठ है; लोहेकी कीलोंसे युक्त, लकड़ीकी बनी हुई गदाका नाम 'मुसृण्ठि' है), मुद्गर, डंडे (लाठी आदि), चक्र, यन्त्र, शतघ्नी ॥ ४१ ॥

कार्याः कार्मारिकाः शूला वेधनाग्राश्च वेणवः ।
उष्ट्रग्रीव्यो ऽग्निसंयोगाः कुप्यकल्पे च यो विधिः ॥४२॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे दुर्गविधानं तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥

आदितश्चतुर्विंशः ॥ २४ ॥

लुहारोंके काममें आनेवाला सामान, अथवा उनका बनाया हुआ सामान, तीक्ष्ण नोक वाले भाले आदि, बांस, ऊँटकी गर्दनके आकारके हथियार, अग्नि लगाकर चलाये जाने वाले आयुध, तथा जिनका कुप्याध्यक्ष प्रकरणमें विधान किया गया है, वे सब सामान । ये पदार्थ हैं जो कि नहरके द्वारा लाये लेजाये जाते हैं ॥ ४२ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय ।

२२ प्रकरण ।

दुर्गनिवेश ।

पिछले अध्यायमें परिखा, वप्र, प्राकार, अट्टालक, प्रतोली, इन्द्र-कोश, देवपथ आदिसे युक्त दुर्गके निर्माणके विषयमें निरूपण कर दिया गया है । अब इस बातका निरूपण किया जायगा, कि उस दुर्गमें राजमार्ग राजभवन अमात्यभवन आदिका निर्माण किस प्रकार होना चाहिये ।

त्रयः प्राचीना राजमार्गास्त्रय उदीचीना इति वास्तुविभागः ॥ १ ॥

तीन राजमार्ग पूरबसे पच्छिमकी ओरको, और तीनही राजमार्ग उत्तरसे दक्खिनकी ओरको होने चाहियें । अर्थात् नगर बसानेके लिये एक स्थान केन्द्र मानकर वहांसे पूरबकी ओर तीन मार्ग, पच्छिमकी ओर तीन मार्ग आमने सामनेही एक सीधमें होवें । इसीप्रकार तीन मार्ग उत्तर और तीन मार्ग दक्षिणकी ओरको होने चाहियें । इसतरह लम्बे छः मार्गोंमें वास्तु अर्थात् गृहनिर्माण आदिके लिये निश्चित भूमिका विभाग करना चाहिये ॥ १ ॥

स द्वादशद्वारो युक्तोदकभूमिच्छन्नपथः ॥ २ ॥ चतुर्दण्डान्तरा रथ्याः ॥ ३ ॥

इन विभागोंके अनुसार प्रत्येक दिशामें तीन दरवाजे होनेके कारण चारों ओर कुल मिलाकर बारह दरवाजे होंगे । इसप्रकार बारह द्वारोंसे युक्त, तथा उचित जल, भूमि और गुप्त मार्गोंसे युक्त यह वास्तुविभाग होना चाहिये ॥ २ ॥ चार दण्ड चौड़ी रथ्या (उपवीथिका=छोटी गली) बनानी चाहिये । (४ अरत्नि=१ दण्ड=२ गज़ । इसप्रकार गलीकी चौड़ाई ८ गज़=२४ फीट हुई) ॥ ३ ॥

राजमार्गद्रोणमुखस्थानीयराष्ट्रविवीतपथाः संयानीयव्यूहश्मशानग्रामपथाश्चाष्टदण्डाः ॥ ४ ॥

राजमार्ग; द्रोणमुख (चारसौ गांवोंका प्रधानभूत केन्द्र स्थान), स्थानीय (आठसौ गांवोंका प्रधानभूत केन्द्रस्थान), राष्ट्र, तथा चरागाहको जाने वाला मार्ग और व्यापारी मंडियों (संयानीय) का मार्ग, सेनाका मार्ग, श्मशान तथा अन्य गांवोंको जाने वाला मार्ग; ये सब आठ २ दण्ड चौड़े होने चाहियें॥४॥

चतुर्दण्डः सेतुवनपथः ॥५॥ द्विदण्डो हस्तिक्षेत्रपथः ॥६॥ पञ्चारत्नयो रथपथश्चत्वारः पशुपथः ॥७॥ द्वौ क्षुद्रपशुमनुष्यपथः ॥ ८ ॥

जलाशयोंका मार्ग तथा जंगलोंका मार्ग भी चार दण्ड चौड़ा होना चाहिये ॥ ५ ॥ हाथियोंके चलनेका रास्ता, तथा खेतोंमें जानेका रास्ता दो दण्ड चौड़ा होना चाहिये ॥ ६ ॥ पांच अरत्नि अर्थात् ढाई गज़ चौड़ा रथोंका, तथा दो गज़ चौड़ा पशुओंका रास्ता होना चाहिये ॥ ७ ॥ दो अरत्नि अर्थात् एक गज़ चौड़ा रास्ता, मनुष्य तथा भेड़ बकरी आदि छोटे २ पशुओंके लिये होना चाहिये ॥ ८ ॥

प्रवीरे वास्तुनि राजनिवेशश्चातुर्वर्ण्यसमाजीवे ॥ ९ ॥ वास्तुहृदयादुत्तरे नवभागे यथोक्तविधानमन्तःपुरं प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा कारयेत् ॥ १० ॥

खूब मज़बूत ज़मीनोंमें राजभवनोंका निर्माण कराना चाहिये । साथमें यह भी देखलेना चाहिये कि यह भूमि चारों वर्णोंकी जीविकाके लिये अत्यन्त उपयोगी है ॥ ९ ॥ वास्तुके मध्य भागसे उत्तरकी ओरके नौवें हिस्सेमें पहिले कही हुई रीतिके अनुसार (देखोः—निशान्तप्रणिधि प्रकरण) अन्तःपुरका निर्माण कराया जावे, इसका द्वार पूरब या पश्चिमकी ओर होना चाहिये ॥१०॥

तस्य पूर्वोत्तरं भागमाचार्यपुरोहितेज्यातोयस्थानं मन्त्रिणश्चावसेयुः ॥ ११ ॥ पूर्वदक्षिणं भागं महानसं हस्तिशाला कोष्ठागारं च ॥ १२ ॥

उस अन्तःपुरके पूर्वोत्तर भागमें आचार्य पुरोहितके स्थान यज्ञस्थान तथा जलाशय बनवाये जावें, और मन्त्रियोंके निवास स्थान भी इस ओर ही बनवाने चाहियें ॥११॥ पूर्वदक्षिण भागमें (अर्थात् अन्तःपुरके पूर्वदक्षिण भागमें) महानस (रसोई), हस्तिशाला अर्थात् हाथीकी पीठके समान चौरस सभागृह अथवा हाथियोंके रहनेकी जगह और कोष्ठागार (वस्तुभण्डार) बनवाना चाहिये ॥ १२ ॥

ततः परं गन्धमाल्यधान्यरसपण्याः प्रधानकारवः क्षत्रियाश्च पूर्वां दिशमधिवसेयुः ॥ १३ ॥ दक्षिणपूर्वं भागं भाण्डागारमक्षपटलं कर्मनिषद्याश्च ॥ १४ ॥ दक्षिणपश्चिमं भागं कुप्यगृहमायुधागारं च ॥ १५ ॥

उसके आगे गन्ध (खुशबू=इतर फुलेल आदि), माला, अन्न, तथा घी तेल आदिकी दुकानें, और मुख्य शिल्पी (कारीगर लोग) तथा क्षत्रियोंका निवास स्थान पूरबकी ओर होना चाहिये ॥ १३ ॥ दक्षिणपूरबके हिस्सेमें भाण्डागार (राजकीय फुटकर वस्तुओंके रखनेका मकान), अक्षपटल (आय-व्ययकी गणना करनेका मुख्य स्थान), तथा सोने चांदी आदिकी बनी हुई वस्तुओंके रखनेके लिये स्थान होने चाहियें ॥ १४ ॥ दक्षिणपच्छिम हिस्से में कुप्यगृह (सोने चांदीको छोड़कर अन्य सब धातुओंके रखनेके स्थान), तथा आयुधागार (शस्त्र अस्त्र आदि रखनेके स्थान) का निर्माण कराना चाहिये ॥ १५ ॥

ततः परं नगरधान्यव्यावहारिककार्मान्तिकबलाध्यक्षाः पक्वान्नसुरामांसपण्याः रूपाजीवास्तालापचारा वैश्याश्च दक्षिणां दिशमधिवसेयुः ॥ १६ ॥

इसके आगे नगरव्यावहारिक (नगरके मकान आदिका व्यापार करने वाले), कार्मान्तिक (खानि आदि कार्योंके अधिकारी पुरुष) तथा सेनाध्यक्ष, (अथवा इस सूत्रके "अध्यक्ष" पदको प्रत्येकके साथ जोड़ना चाहिये और फिर नगराध्यक्ष (नगरका निरीक्षक अधिकारी पुरुष), धान्याध्यक्ष (अन्न आदिका निरीक्षक अधिकारीपुरुष, व्यावहारिकाध्यक्ष (व्यापारियोंका निरीक्षक अधिकारीपुरुष), कार्मान्तिकाध्यक्ष (खान तथा अन्य कारखानोंका निरीक्षक पुरुष) और सेनाध्यक्ष; यह अर्थ करना चाहिये) और पका हुआ अन्न बेचनेवाली दूकानें (होटल आदि) तथा शराब और मांसकी दूकानें; वेश्या तथा नट आदि और वैश्य, ये सब दक्षिण दिशाकी ओर बसाये जावें ॥ १६ ॥

पश्चिमदक्षिणं भागं खरोष्ट्रगुप्तिस्थानं कर्मगृहं च ॥ १७ ॥ पश्चिमोत्तरं भागं यानरथशालाः ॥ १८ ॥

पश्चिमदक्षिणके हिस्सेमें गधे और ऊंटोंका गुप्तिस्थान (रक्षागृह तबेले आदि), तथा कर्मगृह (ऊंट आदिके व्यापारका स्थान; अथवा ऐसी भूमि जहां नमूनोंके लिये पहिले छोटासा मकान आदि बनाकर फिर गिरा दिया जाता हो) बनवाया जावे ॥ १७ ॥ पश्चिमोत्तर भागमें शिबिका (पालकी) आदि यानोंके और रथ आदिके लिये मकान बनवाया जावे ॥ १८ ॥

ततः परमूर्णासूत्रवेणुचर्मवर्मशस्त्रावरणकारवः शूद्राश्च पश्चिमां दिशमधिवसेयुः ॥ १९ ॥ उत्तरपश्चिमं भागं पण्यभैषज्यगृहम् ॥ २० ॥ उत्तरपूर्वं भागं कोशो गवाश्वं च ॥ २१ ॥

उसके आगे ऊन सूत बांस तथा चमड़े आदिका काम करनेवाले; कवच हथियार तथा इनके आवरण (कव्हर) बनानेवाले और अन्य शूद्र भी पश्चिमकी ओर अपना निवासस्थान बनावें ॥ १९ ॥ उत्तरपश्चिमकी ओर पण्यगृह (राजकीय विक्रेय वस्तुओंके रखनेका घर), तथा औषधालयका निर्माण कराया जावे ॥ २० ॥ उत्तरपूर्वके हिस्सेमें कोश तथा गाय बैल और घोड़ोंके लिये स्थान निर्माण कराया जावे ॥ २१ ॥

ततः परं नगरराजदेवतालोहमणिकारवो ब्राह्मणाश्चोत्तरां दिशमधिवसेयुः ॥ २२ ॥ वास्तुच्छिद्रानुशालेषु श्रेणीप्रवहणिकनिकाया आवसेयुः ॥ २३ ॥

उसके आगे उत्तर दिशाकी ओर नगरके देवतास्थान तथा राजकुलके देवतास्थान, लुहार मनिहार और ब्राह्मणोंके निवासस्थानोंका निर्माण कराया जावे ॥ २२ ॥ वास्तुके बीचकी खाली जगहोंमें (अर्थात् कोनोंकी छूटी हुई जगहोंमें) धोबी, दर्जी, जुलाहे आदि, तथा बाहर विदेशसे आनेवाले अन्य व्यापारी लोग बसें ॥ २३ ॥

अपराजिताप्रतिहतजयन्तवैजयन्तकोष्ठकान् शिववैश्रवणाश्विश्रीमदिरागृहं च पुरमध्ये कारयेत् ॥ २४ ॥ कोष्ठकालयेषु यथोद्देशं वास्तुदेवताः स्थापयेत् ॥ २५ ॥

अपराजिता (दुर्गा), विष्णु, जयन्त, इन्द्र, इन देवताओंके स्थान तथा शिव, वैश्रवण (वरुण), आश्विनीकुमार, लक्ष्मी और मदिरा इन पांच देवताओंके स्थान नगरके बीचमें ही बनवाये जावें ॥ २४ ॥ पूर्व कहे हुए कोष्ठागार आदि स्थानोंमें भी अपने २ विचार या उस २ देशके अनुसार वास्तुदेवताओंकी स्थापना कीजावे ॥ २५ ॥

ब्राह्मैन्द्रयाम्यसैनापत्यानि द्वाराणि ॥ २६ ॥ बहिः परिखायाः धनुःशतापकृष्टाश्चैत्यपुण्यस्थानवनसेतुबन्धाः कार्याः, यथादिशं च दिग्देवताः ॥ २७ ॥

नगरके चारों दिशाओंके द्वारोंके भिन्न २ चार देवता होते हैं, उत्तरके द्वारका ब्रह्म देवता होता है, पूर्वका इन्द्र, दक्षिणका यम और पश्चिमका सेनापति होता है ॥ २६ ॥ नगरके चारों ओरकी परिखासे बाहर सौ दण्ड (=दो सौ गज) की दूरीपर चैत्य, पुण्यस्थान, जङ्गल तथा जलाशय बनवाये जावें। और वहींपर उस २ दिशाके अनुसार भिन्न २ दिग्देवताओं (दिशाके देवताओं) की भी स्थापना कीजावे ॥ २७ ॥

उत्तरः पूर्वो वा श्मशानवाटः ॥ २८ ॥ दक्षिणेन वर्णोत्तराणाम् ॥ २९ ॥ तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३० ॥

नगरके उत्तर या पूरबकी ओर श्मशान स्थान होना चाहिये ॥ २८ ॥ और दक्षिणकी दिशामें शूद्र आदिका श्मशान होना चाहिये ॥ २९ ॥ जो इस नियमका उल्लंघन करे, उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ३० ॥

पाषण्डचण्डालानां श्मशानान्ते वासः ॥ ३१ ॥ कर्मान्तक्षेत्रवशेन वा कुटुम्बिनां सीमानं स्थापयेत् ॥ ३२ ॥

पाषण्ड (कापालिक आदि) तथा चाण्डालोंका निवासस्थान श्मशानके समीपही बनवाया जावे ॥ ३१ ॥ नगरमें बसनेवाले परिवारोंके लिये निवासभूमिका निर्णय, उनके कार्य तथा भूमिकी परिस्थितिके अनुसारही करना चाहिये। (अर्थात् व्यापार आदि कार्य और खेत आदिके न्यूनाधिक होनेके अनुसारही परिवारोंकी निवासभूमिकी न्यूनाधिकता होवे) ॥ ३२ ॥

तेषु पुष्पफलवाटषण्डकेदारान्धान्यपण्यनिचयांश्चानुज्ञाताः कुर्युः, दशकुलीवाटं कूपस्थानम् ॥ ३३ ॥

उन खेतोंमें फूलों तथा फलोंके बाग, कमल आदिके समूह, तथा अन्य शाक आदिकी क्यारियां बनावें। और राजा तथा अधिकारी पुरुषोंकी अनुमति लेकर अन्न तथा अन्य विविध विक्रेय वस्तुओंको भी उनमें पैदा करें। साधारणतया दो हलोंसे जोती जाने योग्य भूमिका, नाम 'कुल' है, इसलिये 'दशकुलीवाट' शब्दका अर्थ—बीस हलोंसे जोती जाने योग्य भूमि, यह है। इतनी भूमिके बीचमें जलसेचनके लिये एक कुआ होना चाहिये। (किन्हीं २ विद्वानोंने 'दशकुलीवाट' शब्दका अर्थ—दश बैलोंसे जोती जाने योग्य भूमि, यह किया है) ॥ ३३ ॥

सर्पिःस्नेहधान्यक्षारलवणभैषज्यशुष्कशाकयवसवल्लूरतृणकाष्ठलोहचर्माङ्गारस्नायुविषविषाणवेणुवल्कलसारदारुप्रहरणाश्मनिचयाननेकवर्षोपभोगसहान्कारयेत् ॥३४॥ नवेनानवं शोधयेत् ॥३५॥

घी, तेल, अन्न, क्षार, नमक, दवाई, सूखेशाक, भुस, सूखामांस, घास, लकड़ी (सोख्ता=जलाने आदिकी लकड़ी), लोहा, चमड़ा, कोयला, स्नायु (तांत), विष, सींग, बांस, छाल, सारदारु (बढ़िया मजबूत लकड़ी मकान आदिके लिये; अथवा चन्दन आदि), हथियार, कवच तथा पत्थर इन सबही वस्तुओंको दुर्गमें इतनी अधिक संख्यामें जमा करे, जोकि अनेक वर्षोंतक उप-

योगमें लाई जासकें ॥ ३४ ॥ जो वस्तु पुरानी होजावें, उनके स्थानपर दूसरी नई वस्तुओंको रखदिया जावे ॥ ३५ ॥

हस्त्यश्वरथपादातमनेकमुख्यमवस्थापयेत् ॥ ३६ ॥ अनेकमुख्यं हि परस्परभयात्परोपजापं नोपैतीति ॥ ३७ ॥ एतेनान्तपालदुर्गसंस्कारा व्याख्याताः ॥ ३८ ॥

हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल इन चारों प्रकारकी सेनाओंको, अनेक मुख्य अधिकारियोंके निरीक्षणमें रक्खे ॥ ३६ ॥ क्योंकि अनेक मुख्य व्यक्तियोंके होनेपर, एक दूसरेके भयसे, उनमेंसे कोई भी शत्रुसे जाकर नहीं मिल सकता। यदि एकही मुख्य निरीक्षक हो, तो वह अपने समान दूसरे किसीके न होनेके कारण निर्भय हुआ २ लोभ आदिके वशीभूत होकर कदाचित् शत्रुसे मिल सकता है ॥ ३७ ॥ इसी तरह अन्तपालोंके दुर्गोंका निर्माण तथा प्रबन्ध आदि भी समझ लेना चाहिये। अर्थात् नगरके दुर्गोंके समानही जनपदकी सीमाके दुर्गोंका भी सब प्रबन्ध होना चाहिये ॥ ३८ ॥

न च बाहिरिकान्कुर्यात्पुरराष्ट्रोपघातकान् ।
क्षिपेज्जनपदस्यान्ते सर्वान्वा दापयेत्करान् ॥ ३९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे दुर्गनिवेशश्चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
आदितः पञ्चविंशः ॥ २५ ॥

राजाको चाहिये कि वह नट, नर्त्तक, धूर्त्त तथा जुआरी आदिको किसी तरह भी नगरमें न बसने देवे, क्योंकि ये लोग नगर तथा जनपदनिवासी पुरुषोंको अपने काम दिखाकर कुमार्गमें प्रवृत्त करानेवाले होते हैं। यदि राजा इनको बसानाही चाहे तो जनपदके सीमाप्रान्तमें बसावे। और वहांपर रहनेवाले अन्य परिवारोंकी तरह इनसे भी राज्यकर वसूल किया जावे ॥ ३९ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त।

पांचवां अध्याय।

२३ प्रकरण।

सन्निधाताका निचयकर्म।

सन्निधाता, भाण्डागाराधिपति या कोशाध्यक्षको कहते हैं। वह द्रव्यका किस प्रकार संग्रह करे, तथा किस तरह उसकी रक्षा करे, यही सब इस प्रकरणमें निरूपण किया जायगा।

संनिधाता कोशगृहं पण्यगृहं कोष्ठागारं कुप्यगृहमायुधागारं बन्धनागारं च कारयेत् ॥ १ ॥

सन्निधाता अर्थात् कोशाध्यक्ष कोशगृह, पण्यगृह (राजकीय विक्रेय वस्तुओंके रखनेका घर), कोष्ठागार (खाने योग्य अन्न तथा घृत आदि वस्तुओंके रखनेका घर), कुप्यगृह, आयुधागार और बन्धनागार (कारागृह) का निर्माण करावे ॥ १ ॥

चतुरश्रां वापीमनुदकोपस्नेहां खानयित्वा पृथुशिलाभिरुभयतः पार्श्वं मूलं च प्रचित्य सारदारुपञ्जरं भूमिसमं त्रितलमनेकविधानं कुट्टिमदेशस्थानतलमेकद्वारं यन्त्रयुक्तसोपानं देवतापिधानं भूमिगृहं कारयेत् ॥ २ ॥

पानी और नमीसे अर्थात् सीलसे रहित बावड़ी (बावड़ीके समान एक गढ़ा) खुदवाकर, चारों ओरसे उसकी दीवारोंको और नीचेकी तलीको बड़ी २ शिलाओंसे चिनकर मज़बूत बना दिया जावे, उसके बीचमें मज़बूत लकड़ियोंके बने हुए पिंजरेके समान तितला (तीन मंज़िल वाला), अनेक कोठरियोंसे युक्त, नीचे बीचमें तथा सबसे ऊपरके तलेमें बढ़िया फ़र्श लगे हुए, दरवाजे वाले, यन्त्र युक्त सीढ़ियोंके सहित (अर्थात् जिसकी सीढ़ियोंपर विशेष नियम या समयके अनुसारही पुरुष चढ़ सकता हो, अन्यथा नहीं, ऐसा), तथा देवताओं की आकृतिसे युक्त किवाड़ों वाला एक भूमिगृह बनवाया जावे ॥ २ ॥

तस्योपर्युभयतोनिषेधं सप्रग्रीवमैष्टकं भाण्डवाहिनीपरिक्षिप्तं कोशगृहं कारयेत् ॥ ३ ॥ प्रासादं वा जनपदान्ते ध्रुवनिधिमापदर्थमभित्यक्तैः पुरुषैः कारयेत् ॥ ४ ॥

उसके ऊपर, दोनों ओरसे रुका हुआ (अर्थात् बाहर भीतर दोनों ओरसे बन्द होनेवाला), सामने बरांडेसे युक्त, पक्की ईंटोंसे मज़बूत बना हुआ, चारों ओरसे विविध द्रव्योंसे भरे हुए मकानोंसे घिरा हुआ कोशगृह अथवा प्रासाद बनाया जावे ॥ ३ ॥ जनपदके मध्य प्रान्तमें, वध्य पुरुषोंके द्वारा, विपत्तिमें काम आनेके लिये एक ध्रुवनिधि (स्थायी कोश, जिसमेंसे हर समय व्यय न किया जाय, ऐसे गुप्त ख़जाने) का निर्माण कराया जाय। (यह कार्य वध्य पुरुषोंसे इसलिये कराया जाता है, कि जिससे उनको इस कार्यके समाप्त होते ही मार दिया जाय, ताकि वे इस गुप्त रहस्यका किसीको पता न दे-सकें) ॥ ४ ॥

पक्वेष्टकास्तम्भं चतुःशालमेकद्वारमनेकस्थानतलं विवृतस्त-म्भापसारमुभयतः पण्यगृहं कोष्ठागारं च दीर्घबहुलशालं कक्ष्या-वृतकुड्यमन्तः कुप्यगृहं तदेव भूमिगृहयुक्तमायुधागारं पृथग्धर्म-स्थीयं महामात्रीयं विभक्तस्त्रीपुरुषस्थानमपसारतः सुगुप्तकक्ष्यं बन्ध-नागारं कारयेत् ॥ ५ ॥

पक्की ईंटोंसे चिना हुआ, चारों ओर चार मकानोंसे युक्त, एक द्वार वाला, अनेक कोठरियों और खनों (मंज़िलों) से युक्त, चारों ओर खुले खम्भे वाले चबूतरोंसे घिरा हुआ पण्यगृह, तथा कोष्ठागार बनाना चाहिये । लम्बी २ बहुत शालाओंसे युक्त, चारों ओर कोठरियोंसे घिरी हुई दीवारों वाला, कुप्यगृह भीतरकी ओर बनाया जावे । भूमिगृहसे युक्त उस कुप्यगृहको ही आयुधागार बनाया जावे । बन्धनागारमें, धर्मस्थसे सजा पाये हुए, तथा महामात्रसे सजा पाये हुए पुरुषोंके लिये पृथक् २ स्थान बनाये जावें । (धमस्थ=व्यवहार निर्णेता। महामात्र=सन्निधाता समाहर्त्ता आदि) । तथा स्त्री पुरुषोंके लिये बिल्कुल अल-हदा २ स्थान बनाये जावें । बाहर निकलनेके मार्ग, तथा अन्य चारों ओरके उसके स्थानोंकी अच्छी तरह रक्षा कीजावे, इसप्रकारका बन्धनागार अर्थात् कारागृह बनवाना चाहिये ॥ ५ ॥

सर्वेषां शालाखातोदपानवर्च स्नानगृहाग्निविषत्राणमार्जार-नकुलारक्षाः स्वदैवपूजनयुक्ताः कारयेत् ॥ ६ ॥

इन सबही कोशगृह आदि स्थानोंमें, शाला परिखा तथा कुओंकी तरह स्नानगृह आदिभी बनवाये जावें । तथा अग्नि और विषके प्रयोगसे इनकी रक्षा कीजावे (रक्षाका उपाय देखोः—निशान्तप्रणिधि प्रकरण) विषसे रक्षा होनेके लिये बिल्ली और न्योले आदिका रखना भी उपयोगी है । तथा इन स्थानोंकी रक्षा, रक्षक पुरुषोंके द्वारा अच्छी तरह करवावे । और इनके अपने २ देवता-ओंकी पूजा भी करवावे । इनके देवता इसप्रकार हैं:—कोशगृहका देवता कुबेर, पण्यगृह और कोष्ठागारकी देवता श्री, कुप्यगृहका विश्वकर्मा, आयुधागारका यम और बन्धनागारका वरुण देवता समझना चाहिये ॥ ६ ॥

कोष्ठागारे वर्षमानमरत्निमुखं कुण्डं स्थापयेत् ॥ ७ ॥ तज्जा-तकरणाधिष्ठितः पुराणं नवं च रत्नं सारं फल्गुकुप्यं वा प्रतिगृ-ह्णीयात् ॥ ८ ॥

कोष्ठागारमें वृष्टिको मापने वाले एक कुण्ड (गर्त=छोटासा गढ़ा यन्त्रके समान बनाया जावे, जिसमें वृष्टिका पानी पड़नेसे वृष्टिकी इयत्ताका पता लगा

जाय) की स्थापना कीजावे, इसके मुंहका घेरा एक अरत्नि अर्थात् चौबीस अंगुल होना चाहिये ॥ ७ ॥ कोष्ठागाराध्यक्ष, उस २ वस्तुके अच्छे जानकार पुरुषोंकी सहायतासे नये और पुरानेकी विवेचना करके रत्न, सार (चन्दन आदि), फल्गु (वस्त्र आदि), और कुप्य (लकड़ी चमड़ा बांस आदि विविध, कोष्ठागार के लिये उपयोगी वस्तुएं) आदि पदार्थोंका संग्रह करे ॥ ८ ॥

तत्र रत्नोपधावुत्तमो दण्डः कर्तुः कारयितुश्च ॥ ९ ॥ सारोपधौ मध्यमः ॥१०॥ फल्गुकुप्योपधौ तच्च तावच्च दण्डः ॥११॥

यदि कोई पुरुष असली रत्नकी जगह कोष्ठागारमें नकली देवे, और छलसे असली रत्नका अपहरण करले, तो अपहरण करने और करानेवाले दोनोंको उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ९ ॥ चन्दन आदि सार पदार्थोंमें छल करनेपर मध्यम साहस दण्ड दिया जावे ॥ १० ॥ फल्गु और कुप्य पदार्थोंमें छल करनेपर, वह पदार्थ (उसकी तरहका दूसरा, या उसका मूल्य) लेलिया जावे; और उतनाही उसको दण्ड दिया जावे ॥ ११ ॥

रूपदर्शकविशुद्धं हिरण्यं प्रतिगृह्णीयात् ॥ १२ ॥ अशुद्धं छेदयेत् ॥ १३ ॥ आहर्तुः पूर्वः साहसदण्डः ॥ १४ ॥ शुद्धं पूर्णमभिनवं च धान्यं प्रतिगृह्णीयात् ॥ १५ ॥ विपर्यये मूलाद्विगुणो दण्डः ॥ १६ ॥

सिक्कोंको परखने वाले पुरुषोंके द्वारा सिक्कोंकी शुद्धताको जानकर हिरण्य (सुवर्णका सिक्का) आदिका संग्रह करे ॥ १२ ॥ और जो उन सिक्कोंमेंसे नकली या मिलावटी निकले, उसे उसी समय काट देवे, जिससे कि उसका फिर व्यवहार न हो ॥ १३ ॥ इसप्रकार बनावटी हिरण्य आदि सिक्कोंको लाने वाले पुरुषको प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ १४ ॥ धान्याधिकारी पुरुष शुद्ध, पूरा तथा नया अन्न लेवे ॥ १५ ॥ इससे विपरीत लेनेपर उसे मूलसे (अर्थात् जितने मूल्यका वह अन्न है, उससे) दुगना दण्ड दिया जावे ॥ १६ ॥

तेन पण्यं कुप्यमायुधं च व्याख्यातम् ॥ १७ ॥ सर्वाधिकरणेषु युक्तोपयुक्ततत्पुरुषाणां पणादिचतुष्पणाः परमपहारेषु पूर्वमध्यमोत्तमवधा दण्डाः ॥ १८ ॥

इसहीके समान, पण्य, कुप्य तथा आयुधके विषयमें भी नियम समझने चाहियें ॥ १७ ॥ प्रत्येक अधिकार स्थानपर काम करने वाले अधिकारी पुरुषको, उसके सहकारी पुरुषको, तथा इन दोनोंके नीचे काम करने वाले अन्य पुरुषोंको, प्रथमवार किसी वस्तुका अपहरण करनेपर एक पणसे लगाकर चार

पणतेक दण्ड दिया जावे । (किसी २ पुस्तकमें 'पणादिचतुष्पणाः' के स्थान पर 'पणद्विपणचतुष्पणाः' ऐसा पाठ है । उसका अर्थ—क्रमशः उनको एक पण दो पण और चार पण दण्ड दिया जावे, यह करना चाहिये) । यदि फिर भी वे अपहरण करते चले जावें, तो अपहरणके क्रमानुसार उन्हें प्रथमसाहस, मध्यम साहस तथा उत्तमसाहस दण्ड दिया जावे । यदि पांचवीं वार फिर अपहरण करें, तो प्राण दण्ड दिया जावे ॥ १८ ॥

कोशाधिष्ठितस्य कोशावच्छेदे घातः ॥ १९ ॥ तद्वैयावृत्यकाराणामर्धदण्डः ॥ २० ॥ परिभाषणमविज्ञाने ॥ २१ ॥

कोशाधिकारी पुरुष अर्थात् कोशाध्यक्ष, यदि सुरंग आदि लगाकर कोशका अपहरण करले, तो उसे प्राणदण्ड दिया जावे ॥ १९ ॥ तथा उसके नीचे कार्य करने वाले अन्य परिचारक पुरुषोंको आधा दण्ड दिया जावे ॥ २० ॥ यदि उन लोगोंको इस बातका पता न लगा हो कि सुरंगके द्वारा कोशाध्यक्षने धन अपहरण किया है, तो उनको दण्ड न दिया जाय, किन्तु केवल निन्दा पूर्वक उपालम्भ वचनोंके द्वारा उनकी भर्त्सना कीजावे ॥ २१ ॥

चोराणामभिप्रधर्षणे चित्रो घातः ॥ २२ ॥ तस्मादाप्तपुरुषाधिष्ठितः संनिधाता निचयाननुतिष्ठेत् ॥ २३ ॥

यदि अन्य चोर पुरुष इसप्रकार भींत फाड़कर धन अपहरण करलें, तो उनका चित्रवध किया जाय; अर्थात् उन्हें कष्टपूर्वक प्राण दण्ड दिया जाय ॥२२॥ इसलिये सन्निधाता अर्थात् कोशाध्यक्षको चाहिये, कि वह आप्त (विश्वस्त) पुरुषोंसे युक्त हुआ २ ही, धनसंग्रह आदिका कार्य करे ॥ २३ ॥

बाह्यमाभ्यतरं चायं विद्याद्वर्षशतादपि ।
यथा पृष्टो न सज्येत व्ययशेषं च दर्शयेत् ॥ २४ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे संनिधातृनिचयकर्म पञ्चमो ऽध्यायः ॥ ५॥
आदितः षड्विंशः ॥ २६ ॥

सन्निधाताको चाहिये, कि वह बाह्य अर्थात् जनपदसे होनेवाली और आभ्यन्तर अर्थात् नगरसे होनेवाली आयको अच्छी तरहसे जाने । यहांतक जाने कि यदि उससे सौ वर्ष पीछेकी भी आय पूछी जावे, तो वह बिना किसी रुकावटके झट कहदे । और शेष बचे हुए धनको कोशमें सदा दिखाता रहे ॥ २४ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें पांचवां अध्याय समाप्त ।

छठा अध्याय।

२४ प्रकरण।

समाहर्त्ताका करसंग्रह कार्य।

(देशमें उत्पन्न होनेवाली सब तरहकी फसलोंका अध्यक्ष समाहर्त्ता होता है। यही उनमेंसे राजाके अंशको (राजकरको) वसूल करता है। आजकल समाहर्त्ताको कलक्टर कहा जाता है। इसीके कार्योंका निरूपण इस प्रकरणमें किया जायगा।

समाहर्ता दुर्गं राष्ट्रं खनिं सेतुं वनं व्रजं वणिक्पथं चावेक्षेत ॥ १ ॥

समाहर्त्ता, दुर्ग, राष्ट्र, खनि, सेतु, वन व्रज, तथा व्यापारीमार्गोंका निरीक्षण करे। अर्थात् इनके विषयमें उन्नति अवनतिका अच्छी तरह विचार करे ॥ १ ॥

शुल्कं दण्डः पौतवं नागरिको लक्षणाध्यक्षो मुद्राध्यक्षः सुरा सूना सूत्रं तैलं घृतं क्षारं सौवर्णिकः पण्यसंस्था वेश्या द्यूतं वास्तुकं कारुशिल्पिगणो देवताध्यक्षो द्वारबाहिरिकादेयं च दुर्गम् ॥ २ ॥

शुल्क (चुंगी), दण्ड (प्रथम साहस आदि), पौतव (तराजू बाट आदिका ठीक करना), नगराध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष (खेत तथा बगीचे आदिकी सीमा, नापकर निश्चित करनेवाला अधिकारीपुरुष=पटवारी कानूगोह आदि), मुद्राध्यक्ष मद्याध्यक्ष, प्राणिवधाध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष, तैलविक्रयी, घृतविक्रयी, क्षारविक्रयी (गुड़ आदिका बेचनेवाला) सौवर्णिक (सुवर्णाधिकारी पुरुष), पण्यसंस्था (दूकान), वेश्या, द्यूत, वास्तुक (गृह निर्माण करनेवाले राज आदि), बढ़ई, लुहार तथा सुनार और पच्चीकारी आदिका बारीक काम करनेवाले कारीगरोंका समूह, देवालयका निरीक्षक, नगर आदिके द्वारपाल तथा नट नर्तक आदिसे आदेय धन 'दुर्ग' कहाता है अर्थात् चुंगी आदि बाईस उपायोंसे राजकरके रूपमें लिया हुआ धन 'दुर्ग' कहा गया है ॥ २ ॥

सीता भागो बलिः करो वणिक् नदीपालस्तरो नावः पट्टनं विवीतं वर्तनी रज्जूश्चोररज्जूश्च राष्ट्रम् ॥ ३ ॥

सीता (कृषि=खेती), भाग (धान्य आदिका छठा हिस्सा), बलि (उपहार अथवा भिक्षा), कर (फल तथा वृक्ष आदिके सम्बन्धमें राजदेय धन),

तर (नदी आदि पार होनेका टैक्स), नाव (नौकाध्यक्षके द्वारा लभ्य धन), पट्टन (कस्बोंसे लभ्य धन), विवीत (चरागाहके द्वारा प्राप्तव्य धन), वर्त्तनी (सड़कोंका टैक्स), रज्जू (विषयपाल=भूमिनिरीक्षक पुरुषोंके द्वारा प्राप्तव्य धन), तथा चोररज्जू (चोरोंको पकड़नेके लिये गांवसे प्राप्त हुआ धन), ये सब धनसंग्रहके द्वार यहां 'राष्ट्र' शब्दसे कहे गये हैं ॥ ३ ॥

सुवर्णरजतवज्रमणिमुक्ताप्रवालशङ्खलोहलवणभूमिप्रस्तररसधातवः खनिः ॥ ४ ॥ पुष्पफलवाटषण्डकेदारमूलवापाः सेतुः ॥५॥ पशुमृगद्रव्यहस्तिवनपरिग्रहो वनम् ॥ ६ ॥

सुवर्ण, चांदी, हीरा, मरकत आदि मणि, मोती, मूंगा, शंख, लोहा, लवण, भूमि, पत्थर, तथा रसधातु, ये सब पदार्थ खानसे प्राप्त होनेके कारण 'खनि' शब्दसे कहे गये हैं ॥ ४ ॥ फूल तथा फलोंके बाग, केला सुपारी आदि, अन्नोंके खेत, अदरख तथा हलदी आदि वस्तुओंके उत्पत्तिस्थान, इन सबका यहां 'सेतु' शब्दसे कथन किया गया है ॥ ५ ॥ गवय आदि पशु, हरिण, द्रव्य (भिन्न २ प्रकारकी लकड़ी आदि), तथा हाथियोंके जंगलही यहां 'वन' शब्दसे समझने चाहियें ॥ ६ ॥

गोमहिषमजाविकं खरोष्ट्रमश्वाश्वतराश्च व्रजः ॥ ७ ॥ स्थलपथो वारिपथश्च वणिक्पथः ॥ ८ ॥ इत्यायशरीरम् ॥ ९ ॥

गाय, भैंस, बकरी, भेड़, गधा, ऊंट, घोड़े, खच्चर आदि 'व्रज' कहाते हैं ॥ ७ ॥ स्थलमार्ग और जलमार्गकोही यहां 'वणिक्पथ' कहा गया है ॥ ८ ॥ यही आयका शरीर है । अर्थात् राजाको जिन २ मार्गोंसे आय होसकती है, वे यही हैं । धनकी आमदनीके ये ही स्थान हैं ॥ ९ ॥

मूलं भागो व्याजी परिघः क्लृप्तं रूपिकमत्ययश्चायमुखम् ॥१०॥

मूल (अन्न तथा फल आदिको बेचकर प्राप्त किया धन), भाग (अन्न आदिका छठा हिस्सा), व्याजी (व्यापारियोंसे, तुला मान आदिके न्यून होनेपर, फिर न्यून न हों इसलिये दण्डरूपमें लिया हुआ आमदनीका बीसवां हिस्सा, अर्थात् प्रति सैकड़ा पांच । देखोः—अधि. ३ अ०१७ सू. १५), परिघ (आतुरद्रव्य अर्थात् जिस द्रव्यका कोई वारिस न हो), क्लृप्त (नियत कर), रूपिक (नमकके व्यापारियोंसे लिया हुआ नमकका आठवां हिस्सा), अत्यय (धर्मस्थीय कण्टकशोधन आदि अधिकारियोंके द्वारा अपराधियोंपर किये गये जुरमानोंका धन), ये सब आयके स्थान, आयके मुख कहाते हैं। क्योंकि आमदनीके जितने द्वार बताये हैं, उन सबमेंसे येही मुख्य हैं ॥ १० ॥

देवपितृपूजादानार्थं स्वस्तिवाचनमन्तः पुरं महानसं दूतप्रवर्तनं कोष्ठागारमायुधागारं पुण्यगृहं कुप्यगृहं कर्मान्तो विष्टिः पत्त्यश्वरथद्विपपरिग्रहो गोमण्डलं पशुमृगपक्षिव्यालवाटाः काष्ठतृणवाटाश्चेति व्ययशरीरम् ॥ ११ ॥

देवपूजा, पितृपूजा, दान, स्वस्तिवाचन (शान्ति तथा पुष्टि आदिके निमित्त पुरोहितको दिया हुआ धन), अन्तःपुर, महानस, दूतका इधर उधर भेजना, कोष्ठागार, आयुधागार, पण्यगृह, कुप्यगृह, कर्मान्त (कृषि आदि व्यापार), विष्टि (हठपूर्वक कराये हुए कार्यका व्यय), पैदल, घोड़ा, रथ, हाथी इन चारों प्रकारकी सेनाओंका संग्रह, गाय, भैंस, बकरी आदिका व्यय, जंगली पशु, हरिण, पक्षी तथा व्याघ्र आदि हिंसक जानवरोंकी रक्षाके स्थान, लकड़ी घास तथा बगीचे आदि; ये सब व्ययका शरीर हैं। अर्थात् इनके निमित्त धन व्यय करना पड़ता है। ये व्ययके स्थान हैं ॥ ११ ॥

राजवर्षं मासः पक्षो दिवसश्च व्युष्टं वर्षाहेमन्तग्रीष्माणां तृतीयसप्तमा दिवसोनाः पक्षाः शेषाः पूर्णाः पृथगधिमासक इति कालः ॥ १२ ॥

राजाके राज्याभिषेक समयसे लगाकरवर्ष मास पक्ष और दिन, इन चार चीजोंको व्युष्ट कहा जाता है। इसका तात्पर्य यही है, कि उस राजाके समयमें जो भी कार्य हों, उनके लेखन आदिमें, इन चारोंका निर्देश किया जावे; जैसे अमुक राजवर्षके अमुक मास अमुक पक्ष और अमुक दिनमें उस पुरुषने इतना धन तथा अन्य कोई पदार्थ दिया इत्यादि। राजवर्षके तीन विभाग किये जावें, वर्षा, हेमन्त (जाड़ा), ग्रीष्म (गरमी। ये तीनों ऋतु कहे जाते हैं); इस प्रत्येक विभागमें आठ पक्ष होंगे, (वर्षा आदि एक एक ऋतु चार चार महीने का होता है, एक महीनेमें दो पक्ष =शुक्ल और कृष्ण; चार मासकी एक ऋतुमें आठ पक्ष हुए), उनमेंसे प्रत्येक ऋतुके तीसरे तथा सातवें पक्षमें एक एक दिन कम माना जावे (एक पक्ष पन्द्रह दिनका होता है, तीसरा तथा सातवां पक्ष चौदह २ दिन काही माना जावे), बाकी प्रत्येक ऋतुके छहों पक्ष पूरे (पन्द्रह २ दिनके) माने जावें। और इससे पृथक् एक अधिमास (अधिकमास=मलमास) माना जावे (सौरमासके अतिरिक्त जबकि महीनोंकी गणना चन्द्रमाकी गतिके अनुसार कीजाती है, तो प्रत्येक मासमें प्रायः दो एक दिनकी न्यूनता होती चली जाती है, चान्द्र गणनाके अनुसार हुई २ इस न्यूनताको पूरा करनेके लिये लगभग प्रत्येक ढाई वर्षके बाद, बारह महीने

के अतिरिक्त एक तेरहवां महीना और बढ़ा दिया जाता है, इसीका नाम अधिमास या मलमास होता है)। साधारण तथा राजकी व्यवहारोंके लिये यही काल समझना चाहिये ॥ १२ ॥

करणीयं सिद्धं शेषमायव्ययौ नीवी च ॥ १३ ॥ संस्थानं प्रचारः शरीरावस्थापनमादानं सर्वसमुदयपिण्डः संजातमेतत्करणीयम् ॥ १४ ॥

समाहर्त्ताको उचित है, कि वह करणीय, सिद्ध, शेष, आय, व्यय, तथा नीवीकी ठीक २ व्यवस्था करे ॥१३॥ करणीय छः प्रकारका होता है,:—संस्थान (अमुक ग्रामसे इतना धन लेना चाहिये, ऐसा निर्णय), प्रचार (देश अर्थात् पृथक् २ देशके अवान्तर विभागोंका ज्ञान), शरीरावस्थापन (जनपद और नगरोंकी इतनी आय है, इस प्रकार आयके शरीरका निश्चय), आदान (अन्न तथा हिरण्य आदिका ठीक समय पर लेलेना), सर्वसमुदयपिण्ड (प्रत्येक ग्राम तथा प्रत्येक नगरमें उत्पन्न हुए धान्य आदिका एकत्रित करना तथा उसकी जानकारी रखना), सञ्जात (प्रत्येक उपायसे प्राप्त किये हुए धनके परिमाणका ज्ञान रखना ये छः करणीय हैं। समाहर्त्ताके अवश्य करने योग्य कार्य होनेके कारण ये 'करणीय' शब्दसे कहे गये हैं ॥ १४ ॥

कोशार्पितं राजहारः पुरव्ययश्च प्रविष्टं परमसंवत्सरानुवृत्तं शासनमुक्तं मुखाज्ञप्तं चापातनीयमेतत्सिद्धम् ॥ १५ ॥

सिद्ध भी छः प्रकारका होता है, कोशार्पित (खजानेमें जमा कर दिया हुआ), राजहार (राजाने अपने निजी कार्यके लिये समाहर्त्तासे लिया हुआ), और पुरव्यय (नगरके शाला निर्माण आदि कार्योंमें खर्च हुआ २), यह तीनों प्रकारका धन 'प्रविष्ट' शब्दसे कहा जाता है । परमसंवत्सरानुवृत्त (पिछले साल का बचा हुआ धन, जो कि अभी प्रविष्ट नहीं हुआ, अर्थात् न खजानेमें जमा किया गया है, न राजाने अपने कार्य के लिये लिया है, और न नगरके कार्योंमें व्यय हुआ है), शासनमुक्त (जिस धनके सम्बन्धमें राजाने अभी तक अपनी कोई लिखित आज्ञा नहीं दी), और मुखाज्ञप्त (जिस धनके सम्बन्धमें राजाने मौखिक आज्ञा देदी है) यह तीन प्रकारका धन आपातनीय कहा जाता है। इस तरह तीन प्रकारका प्रविष्ट और तीन प्रकारका आपातनीय मिलकर कुल छः प्रकारका 'सिद्ध' कहा जाता है ॥ १५ ॥

सिद्धिप्रकर्मयोगः दण्डशेषमाहरणीयं बलात्कृतप्रतिस्तब्धमवसृष्टं च प्रशोध्यमेतच्छेषमसारमल्पसारं च ॥ १६ ॥

छः प्रकारका ही शेष होता है;—सिद्धप्रकर्मयोग (धान्य आदिके मिलजानेपर उन्हें अपने अधीन न करनेके लिये प्रवृत्ति करना) तथा दण्ड शेष (सेनाके उपयोगसे बचाहुआ धन) सुखपूर्वक लियेजासकनेके कारण इन दोनोंका नाम 'आहरणीय' है। राजाके प्रिय पुरुषोंने बलपूर्वक अपनी इच्छानुसार न दिया हुआ धन (तात्पर्य यह है कि जो पुरुष राजाके मुंह लगे हुए होते हैं, वे यह सोचकर कि समाहर्ता हमारा क्या करसकता है ? जान बूझकर राजदेय धन समाहर्त्ताको नहीं देते। ऐसा उन लोगोंसे प्राप्त न हुआ २ धन), और अवसृष्ट अर्थात् नगरके मुखिया लोगोंने अपनी इच्छानुसार न दिया हुआ धन 'प्रशोध्य' नामसे कहाजाता है। क्योंकि इन दोनों प्रकारके धनोंको वसूल करना समाहर्त्ताके लिये बड़ा यत्नसाध्य काम है, इसलिये इनका नाम प्रशोध्य रक्खा गया है। इस प्रकार दो तरहका 'आहरणीय' दो तरहका 'प्रशोध्य' मिलकर चार तरहका और असार (निष्फल व्यय हुआ २ धन) तथा अल्पसार (बहुत व्यय करकेभी जिसका फल थोड़ाही मिलाहो) ये सब मिलाकर छः प्रकारका शेष होता है ॥ १६ ॥

वर्तमानः पर्युषितोऽन्यजातश्चायः ॥ १७ ॥ दिवसानुवृत्तो वर्तमानः ॥ १८ ॥ परमसांवत्सरिकः परप्रचारसंक्रान्तो वा पर्युषितः ॥ १९ ॥

आय तीन प्रकारका होता है;—वर्त्तमान पर्युषित और अन्यजात ॥ १७ ॥ जो आय प्रतिदिन हो, अर्थात् दैनिक आय, वर्त्तमान आय कहाता है ॥ १८ ॥ पिछले वर्षका जो धन उस समय वसूल न हुआ हो, उसका अब वसूल होना; पहिले अध्यक्षके समयमें हिसाब आदिकी गड़बड़ीसे न मालूम हुए २ धनका मालूम होजाना; अथवा शत्रुके देशसे आया हुआ धन; यह 'पर्युषित' आय कहाता है ॥ १९ ॥

नष्टप्रस्मृतमायुक्तदण्डः पार्श्वं पारिहीणिकमौपायनिकं डमरगतकस्वमपुत्रकं निधिश्चान्यजातः ॥ २० ॥

भूले हुए धनका फिर याद आजाना, अपराधी पुरुषोंसे दण्डरूपमें लिया हुआ, करसे अतिरिक्त किन्हीं वक्र उपायोंसे अथवा अपने प्रभुत्त्वके कारण प्राप्त किया हुआ धन, चौपायोंसे सस्य आदिके नष्ट किये जानेपर उसके दण्डरूपमें प्राप्त हुआ २ धन, भेंटके रूपमें प्राप्त हुआ धन, शत्रुसे कलह होनेपर उस झगड़ेमें शत्रुकी सेनासे अपहरण किया हुआ धन तथा जिस धनका कोई दायभागी न हो इस तरहका प्राप्त हुआ २ धन 'अन्य जात' आयके नामसे कहा जाता है ॥२०॥

विक्षेपव्याधितान्तरारम्भशेषश्च व्ययप्रत्यायः ॥२१॥ विक्रये पण्यानामर्घवृद्धिरुपजा मानोन्मानविशेषो व्याजी क्रयसंघर्षे वा वृद्धिरित्यायः ॥ २२ ॥

किसी कार्यपर लगाई हुई सेनाके लिये व्यय किये जाने वाले धनमेंसे बचा हुआ धन, औषधालय आदिके व्ययके लिये निश्चित किये हुए धनमेंसे बचा हुआ धन, तथा दुर्ग या महलके लिये खर्च किये जाने वाले धनमेंसे बचा हुआ धन; यह 'व्ययप्रत्याय कहाता है । यह भी एक प्रकारकी आय है ॥२१॥ आयके और भी पांच प्रकार हैं:—विक्रय समयमें वस्तुओंकी कीमत बढ़-जाना, उपजा (प्रतिषिद्ध वस्तुओंके बेचनेसे प्राप्त हुआ धन), बाट आदिके न्यूनाधिक करनेसे अधिक प्राप्त हुआ २ धन, व्याजी (देखो—इसी अध्यायका १० वां सूत्र) और किसी वस्तुके बेचनेके समयमें खरीदारोंकी परस्पर स्पर्धासे जो मूल्य बढ़कर मिल जावे । इस प्रकार यहां तक आयका निरूपण किया गया ॥ २२ ॥

नित्यो नित्योत्पादिको लाभो लाभोत्पादिक इति व्ययः ॥ २३ ॥ दिवसानुवृत्तो नित्यः ॥ २४ ॥ पक्षमाससंवत्सरलाभो लाभः ॥ २५ ॥ तयोरुत्पन्नो नित्योत्पादिको लाभोत्पादिक इति ॥२६॥ व्ययसंजातादायव्ययविशुद्धा नीवी प्राप्ता चानुवृत्ता चेति ॥ २७ ॥

अब व्ययका निरूपण करते हैं, व्यय चार प्रकारका होता है:—नित्य, नित्योत्पादिक, लाभ, लाभोत्पादिक ॥ २३ ॥ जो व्यय प्रतिदिन नियम पूर्वक होता हो, उसे नित्य कहते हैं ॥ २४ ॥ पाक्षिक, मासिक तथा वार्षिक लाभके लिये जो धन व्यय किया जाता है, उस व्ययको 'लाभ' कहते हैं ॥ २५ ॥ नित्यव्यय और लाभव्ययके साथ जो और अधिक व्यय (व्ययके लिये निय-मित निर्णीत धनसे और अधिक धन, व्यय) होजावे, तो उसे यथासंख्य नित्योत्पादिक और लाभोत्पादिक कहा जाता है ॥ २६ ॥ सब तरहके व्ययसे बचा हुआ, आय और व्ययकी अच्छीतरह गणना करके ठीक २ निश्चित हुआ धन 'नीवी' कहाता है । यह दो प्रकारका होता है:—प्राप्त (जो खजानेमें जमा कर दिया गया हो) और अनुवृत्त (जो खजानेमें जमा किये जानेके लिये तैयार रक्खा हो) ॥ २७ ॥

एवं कुर्यात्समुदयं वृद्धिं चायस्य दर्शयेत् ।
ह्रासं व्ययस्य च प्राज्ञः साधयेच्च विपर्ययम् ॥ २८ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे समाहर्तृसमुदयप्रस्थापनं षष्ठो ऽध्यायः ॥ ६ ॥
आदितः सप्तविंशः ॥ २७ ॥

बुद्धिमान् समाहर्त्ताको चाहिये, कि वह इसीप्रकार राजधनका संग्रह करे । और आयकी वृद्धि तथा व्ययका ह्रास, हिसाब आदि ठीक करके दिखाता रहे । तात्पर्य यह है कि वह इसप्रकारका यत्न करे, जिससे आय बराबर बढ़ती जावे और व्यय यथाशक्य कम होजाय । यदि किसी अवस्थामें व्यय अधिक करके भी भविष्यमें विशेष आयकी सम्भावना हो, तो इस तरहसे भी आयकी सिद्धि करे ॥ २८ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें छठा अध्याय समाप्त ।

सातवा अध्याय ।

२५ प्रकरण ।

अक्षपटलमें गाणानिक्याधिकार ।

राजकीय धनके आय व्ययका लेखा जिस स्थानमें बैठकर किया जावे, उसे 'अक्षपटल' कहते हैं । गाणनिक (गणना करने वाले क्लर्क आदि) जो कार्य करते हैं, उसका नाम गाणानिक्य है, उसका अधिकार अर्थात् निरूपण इस प्रकरणमें किया जायगा ।

अक्षपटलमध्यक्षः प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा विभक्तोपस्थानं निबन्धपुस्तकस्थानं कारयेत् ॥ १ ॥

अध्यक्ष (आय व्ययका प्रधान निरीक्षक अधिकारी पुरुष), अक्षपटल (आय व्ययके प्रधान कार्यालय) का निर्माण करावे । उसका दरवाजा पूरब या उत्तरकी ओरको होना चाहिये; प्रत्येक छोटे बड़े लेखकों (क्लर्कों) के लिये पृथक् पृथक् स्थान होने चाहियें; आय व्ययके रजिस्टरोंके रखनेका, उसमें नियमित तथा सुरक्षित प्रबन्ध होना चाहिये ॥ १ ॥

तत्राधिकरणानां संख्याप्रचारसंजाताग्रं कर्मान्तानां द्रव्यप्रयोगे वृद्धिक्षयव्ययप्रयामव्याजीयोगस्थानवेतनविष्टिप्रमाणं रत्नसारफल्गुकुप्यानामर्घप्रतिवर्णकप्रतिमानमानोन्मानावमानभाण्डं

देशग्रामजातिकुलसङ्घातनां धर्मव्यवहारचरित्रसंस्थानं राजोपजीविना प्रग्रहप्रदेशभोगपरिहारभक्तवेतनलाभं राज्ञश्च पत्नीपुत्राणां रत्नभूमिलाभं निर्देशोत्पातिकप्रतीकारलाभं मित्रामित्राणां च संधिविक्रमप्रदानादानि निबन्धपुस्तकस्थं कारयेत् ॥ २ ॥

उस अक्षपटलमें क्या २ कार्य होने चाहियें; यह बताते हैं:—द्रव्योंके उत्पत्ति स्थानोंकी नामनिर्देशपूर्वक संख्या, जनपद तथा वहांकी हरतरहकी उपजको रजिस्टरोंमें लिखा जावे, अर्थात् अमुक जनपदमें इतने २ स्थानोंसे इतना २ धन प्राप्त हुआ। खान तथा हरप्रकारके कारखानोंके आय व्ययके सम्बन्धमें वृद्धि (ब्याज), अक्ष (पुरुषोंका नियुक्त करना), व्यय (धान्य हिरण्य आदिको कार्यमें लगाना), प्रयाम (तैयार हुआ २ अन्न आदिका समूह), व्याजी (देखो:—अधि० २, अध्या० ६, सूत्र १०), योग (अच्छे और बुरे द्रव्यकी मिलावट), स्थान (ग्राम आदि), वेतन, विष्टि (बेगार) आदि सब कार्योंका उल्लेख रजिस्टरमें किया जाय। रत्न सार फल्गु और कुप्य पदार्थोंके मूल्य, प्रत्येक वस्तुका गुण, तोल, लम्बाई चौड़ाई, ऊंचाई तथा असली मूलधनका उल्लेख रजिस्टरोंमें किया जावे। देश ग्राम जाति कुल तथा सभा सोसाईटियोंके धर्म, व्यवहार, चरित्र तथा विशेष परिस्थितियोंका भी उल्लेख किया जावे। राजोपजीवी पुरुषोंके प्रग्रह (पूजा, मन्त्री पुरोहित आदिके प्रति किया हुआ विशेष सत्कार), निवासस्थान, भोग (भेंट आदि), परिहार (कर आदिका न लेना), भक्त (उनके घोड़े हाथी आदिका खर्च देना), तथा वेतन आदिका भी उल्लेख किया जावे। महारानी तथा राजपुत्रोंके रत्न और भूमि आदिकी प्राप्तिका भी उल्लेख किया जावे। राजा, महारानी, और राजपुत्रोंको नित्य दिये जाने वाले धनसे अतिरिक्त दिया हुआ धन, विशेष उत्सव आदिसे प्राप्त हुआ धन, तथा रोगोंको शान्त करनेके लिये जनतासे प्राप्त हुआ धन, इनको भी रजिस्टरमें लिख लिया जावे। मित्र तथा शत्रुओंके सन्धि विग्रह और उनको दिये हुए तथा उनसे लिये हुए धन आदिका भी पुस्तकोंमें उल्लेख कर लिया जावे। ये ही सब कार्य हैं, जो कि अक्षपटल अर्थात् राजकीय कार्यालयोंमें होने चाहियें ॥ २ ॥

ततः सर्वाधिकरणानां करणीयं सिद्धं शेषमायव्ययौ नीवीमुपस्थानं प्रचारचरित्रसंस्थानं च निबन्धेन प्रयच्छेत् ॥ ३ ॥
उत्तममध्यमावरेषु च कर्मसु तज्जातिकमध्यक्षं कुर्यात् ॥ ४ ॥

तदनन्तर सब अधिकरणों (उत्पत्तिस्थानों या कार्यस्थानों) के करणीय, सिद्ध, शेष, आय, व्यय, नीवी (देखोः—पिछला छठा अध्याय), उपस्थान (कार्यकर्त्ताओंकी उपस्थिति); प्रचार, चरित्र तथा संस्थान आदि सबको लिखकर राजाको दे देवे ॥ ३ ॥ उत्तम, मध्यम तथा नीच कार्योंपर उनके अनुकूलही अध्यक्ष नियत किये जावें ॥ ४ ॥

सामुदायिकेष्ववक्लृप्तिकं यमुपहत्य न राजानुतप्येत ॥५॥

एकही कार्यको करनेवाले बहुतसे कर्मचारियोंमेंसे उसहीको अध्यक्ष बनाया जावे, जोकि कार्य करनेमें सबसे निपुण हो, यदि कई कर्मचारी समानही निपुण हों, तो उनमें जो गुणी हो, तथा समान गुणियोंमें भी जो यशस्वी हो (यह 'अवक्लृप्तिक' शब्दका भाव है); इनमेंसे भी ऐसे पुरुषको अध्यक्ष बनाया जाय, जिसको कि अपराध होनेपर दण्ड देनेके पश्चात् राजाको अनुताप या पश्चाताप न हो, इसका तात्पर्य यह है कि राजा ऐसे अध्यक्ष पदोंपर ब्राह्मणों अथवा अपने निकट सम्बन्धियोंको नियुक्त न करे, क्योंकि किसी अपराधमें इनको दण्ड देनेपर राजाको दुःखही होता है ॥ ५ ॥

सहग्राहिणः प्रतिभुवः कर्मोपजीविनः पुत्रा भ्रातरो भार्या दुहितरो भृत्याश्चास्य कर्मच्छेदं वहेयुः ॥ ६ ॥ त्रिशतं चतुःपञ्चाशच्चाहोरात्राणां कर्मसंवत्सरः ॥ ७ ॥

यदि कोई अध्यक्ष अपहरण किये हुए राजकीय धनको फिर न देसके, तो वह धन उसके साथी (जिन्होंने अपहृत धनमें हिस्सा लिया हो), प्रतिभू (जामिन), गणक (कर्मोपजीवी—अध्यक्षके नीचे कार्य करनेवाले अन्य कर्मचारी), उसके (अध्यक्षके) पुत्र, भाई, स्त्री, लड़की, अथवा नौकर लोग देवें (पहिलेके न होनेपर ही दूसरे देवें। यदि उस धन राशिको एक पूरा न कर सके, तो उसी क्रमसे और दूसरे करें) ॥ ६ ॥ तीनसौ चौवन (३५४) दिनरातका एक कर्मसंवत्सर समझना चाहिये। (प्रत्येक ऋतुमें एक २ दिन कम होते जानेसे यह समय समझना चाहिये) ॥ ७ ॥

तमाषाढीपर्यवसानमूनं पूर्णं वा दद्यात् ॥८॥ करणाधिष्ठितमधिमासकं कुर्यात् ॥ ९ ॥

उस संवत्सरको आषाढ़ मासकी पूर्णमासी तक समाप्त हुआ समझे। यदि कोई अध्यक्ष आदि बीच में ही कार्य पर नियुक्त किया गया हो, तो उसे उतने दिनको काटकर वेतन दे दिया जावे जिसने पूरा काम किया हो, उसे पूरा वेतन दे दिया जावे ॥ ८ ॥ प्रतिमासमें किस पुरुषने कितना काम किया

है, इस बातका पता उपस्थितिके गणक (हाजिरीका क्लर्क, अर्थात् सब कर्मचारियोंकी उपस्थिति का लेखक) से लेना चाहिये ॥ ९ ॥

अपसर्पाधिष्ठितं च प्रचारं प्रचारचरित्रसंस्थानान्यनुपलभमानो हि प्रकृतः समुदयमज्ञानेन परिहापयति ॥ १० ॥

अध्यक्षको चाहिये कि वह सम्पूर्ण जनपदके कार्यालयोंकी व्यवस्थाका ज्ञान गुप्तचरोंके द्वारा प्राप्त करता रहे। क्योंकि देशके समाचार और उसकी पूर्व स्थिति को गुप्तचरोंके द्वारा न जानता हुआ अध्यक्ष, अपनी अज्ञानतासे धनोंकी उत्पत्तिमें रुकावट डालने वाला हो जाता है, अर्थात् उसकी अनवधानतासे कर्मचारियोंमें इस प्रकारके दोष उत्पन्न हो जाते हैं, कि जिससे आमदनीमें रुकावट पड़जाती है ॥ १० ॥

उत्थानक्लेशासहत्वादालस्येन शब्दादिष्विन्द्रियार्थेषु प्रमादेन संक्रोशाधर्मानर्थभीरुर्भयेन कार्यार्थिष्वनुग्रहबुद्धिः कामेन हिंसाबुद्धिः कोपेन विद्याद्रव्यवल्लभापाश्रयाद्दर्पेण तुलामानतर्कगणिकान्तरोपधानाल्लोभेन ॥ ११ ॥

अर्थोत्पत्तिमें बाधा डालने वाले निम्नलिखित आठ दोष हैं,:—सबसे पहिला अज्ञान (जो पिछले सूत्रमें बताया जा चुका है), आलस्य, प्रमाद, काम, क्रोध, दर्प और लोभ; परिश्रमके दुःखको न सहन करनेके कारण आलस्यके द्वारा, गाना बजाना तथा स्त्रियों में आसक्तिके कारण प्रमादके द्वारा, निन्दा अधर्मके तथा अनर्थके कारण भयसे, किसी कार्यार्थी पर अनुग्रह करने के कारण कामके द्वारा, इसी तरह किसी पर क्रूरता करनेके कारण क्रोधके द्वारा, विद्या धन तथा राजा आदि का प्रिय होनेके कारण दर्पसे, तुला मान तर्कना तथा हिसाबमें गड़बड़ कर छलके कारण लोभ के द्वारा, कर्मचारी गण आमदनी में रुकावट डाल देते हैं ॥ ११ ॥

तेषामानुपूर्व्या यावानर्थोपघातस्तावानेकोत्तरो दण्ड इति मानवाः ॥ १२ ॥

ऐसे पुरुषोंको दण्ड दिया जावे, जो किसी प्रकार भी राजकीय धनका नाश करते हैं। मनु आचार्यके अनुयायियों का कथन है, कि जो कर्मचारी जितना अपराध (धन अपहरण आदि) करे, उसको इन अज्ञान आदि दोषों के क्रमके अनुसार एक २ गुना अधिक दण्ड दिया जावे। अर्थात् यदि अज्ञान से हानि हुई हो, तो हानि के बराबर ही उसे दण्ड दिया जाय, आलस्यके

कारण होने पर हानिसे दुगना, प्रमादके कारण होने पर तिगुना, इसी तरह आगे भी समझ लेना चाहिये ॥ १२ ॥

सर्वत्राष्टगुण इति पाराशराः ॥ १३ ॥ दशगुण इति बार्हस्पत्याः ॥ १४ ॥ विंशतिगुण इत्यौशनसाः ॥ १५ ॥ यथापराधमिति कौटल्यः ॥ १६ ॥

परन्तु पराशर आचार्यके अनुयायी कहते हैं, कि सब ही अपराधोंमें समानता होनेके कारण, सबको ही अठगुना दण्ड देना चाहिये ॥ १३ ॥ बृहस्पति के अनुयायी आचार्योंका सिद्धान्त है, कि सबको ही दसगुना दण्ड दिया जावे ॥ ११ ॥ शुक्राचार्यके शिष्य कहते हैं, कि सबको बीसगुना दण्ड मिलना चाहिये ॥ १४ ॥ परन्तु आचार्य कौटल्यका अपना मत है, कि जो जितना अपराध करे, उसको उसके अपराधके अनुसार ही दण्ड दिया जाना चाहिये ॥ १६ ॥

गाणनिक्यान्याषाढीमागच्छेयुः ॥१७॥ आगतानां समुद्रपुस्तभाण्डनीवीकानामेकत्र संभाषावरोधं कारयेत् ॥ १८ ॥

छोटे २ सब कार्यालयोंके अध्यक्ष, अपना हिसाब दिखानेके लिये, प्रतिवर्ष आषाढ़के महीनेमें प्रधान कार्यालय में आवें ॥ १७ ॥ आये हुए उन लोगोंका, उस समय तक परस्पर भाषण न होने दे, जब तक कि उनके पास राजकीय मोहर लगे हुए रजिस्टर तथा व्ययसे बचा हुआ शेष धन विद्यमान रहे । (अर्थात् जब उनका हिसाब जांच लिया जाय, और बाकी रकम लेली जाय तबही वे लोग आपस में मिल सकें ॥ १८ ॥

आयव्ययनीवीनामग्राणि श्रुत्वा नीवीमवहारयेत् ॥ १९ ॥ यच्चाग्रादायस्यान्तरवर्णे नीव्या वर्धेत व्ययस्य वा यत्परिहापयेत्तदष्टगुणमध्यक्षं दापयेत् ॥ २० ॥

आय व्यय तथा शेष परिमाणको सुन कर, जो कुछ उनके पास शेष हो वह ले लिया जावे ॥१५॥ अध्यक्षने आय धनका जितना परिमाण बताया है, यदि रजिस्टरमें उससे अधिक निकले, और इसी तरह जितना व्ययका परिमाण बताया है, रजिस्टरमें उससे कम निकले, तो वह आयकी अधिक और व्ययकी जितनी रकम कम बतलाई हो, उसका आठगुना उस अध्यक्ष पर जुर्माना किया जावे ॥ २० ॥

विपर्यये तमेव प्रति स्यात् ॥ २१ ॥ यथाकालमनागतानामपुस्तनीविकानां वा देयदशबन्धो दण्डः ॥ २२ ॥

यदि इस बातका निश्चय हो जाय, कि जितनी आमदनी हुई है, उससे कुछ अधिक रकम रजिस्टरमें लिखी गई है, अथवा वस्तुतः जितना व्यय हुआ है, उससे कम ही रजिस्टरमें दर्ज किया गया है, तो इस कारणसे शेषमें जितना अन्तर पड़े, उसके सम्बन्धमें अध्यक्षको दण्ड न दिया जाय। प्रत्युत जो आय व्ययकी न्यूनाधिकता हुई है, वह उसीकी समझा जावे। अर्थात् व्यय में जो कम लिखा गया है, वह धन अध्यक्षको देदिया जावे ॥ २१ ॥ जो अध्यक्ष, निर्दिष्ट समयमें, अथवा अपने रजिस्टर और शेष धनको लेकर हिसाब दिखानेके लिये उपस्थित न होवे, तो उसको जितना देना हो, उससे दसगुना जुरमाना उसपर किया जाय ॥ २२ ॥

कार्मिके चोपस्थिते कारणिकस्याप्रतिबध्नतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ २३ ॥ विपर्यये कार्मिकस्य द्विगुणः ॥ २४ ॥ प्रचारसमं महामात्राः समग्राः श्रावयेयुरविषममात्राः ॥ २५ ॥ पृथग्भूतो मिथ्यावादी चैषामुत्तमदण्डं दद्यात् ॥ २६ ॥

हिसाब देखनेके लिये, प्रधान अध्यक्षके ठीक समय पर उपस्थित हो जाने पर, जो अध्यक्ष अपना हिसाब न दिखावे, तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ २३ ॥ यदि प्रधान अध्यक्ष, ठीक समय पर आकर हिसाब न देखे, तो उसे दुगना प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ २४ ॥ राजाके प्रधान कर्मचारी महामात्र आदि, आय व्यय तथा नीवी सम्बन्धी अथवा परस्परकी सम्पूर्ण अनुकूल प्रवृत्तियोंका, जनपदके साथ २ (अर्थात् जनपद निवासी पुरुषोंको भी अपनी सभामें मिलाकर उनके साथ २) अच्छी तरह समझावें। ॥ २५ ॥ जो इनमें (महामात्रोंमें) से प्रतिकूल अथवा मिथ्या बोले, उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ २६ ॥

अकृताहोरूपहरं मासमाकाङ्क्षेत ॥ २७ ॥ मासादूर्ध्वं मासद्विशतोत्तरं दण्डं दद्यात् ॥ २८ ॥ अल्पशेषनीविकं पञ्चरात्रमाकाङ्क्षेत ततः परम् ॥ २९ ॥

द्रव्य एकत्रित करनेका जो नियत समय है, यदि संग्रहकर्त्ता उस समय तक न करे, तो एक महीना और भी उसकी प्रतीक्षा करे, अर्थात् एक महीनेका अवसर, संग्रह करनेके लिये और दिया जाय ॥ २७ ॥ यदि फिर भी वह द्रव्य संग्रह करके न देवे, तो उसपर प्रतिमासके हिसाबसे दोसौ मुद्रा जुरमाना किया जावे ॥ २८ ॥ जिस अध्यक्षके पास राजदेय धन थोड़ा

ही शेप रह गया हो, उसकी केवल पांच दिन तक प्रतीक्षा करे। तदनन्तर उसे भी दण्डनीय समझा जावे ॥ २९ ॥

कोशपूर्वमहोरूपहरं धर्मव्यवहारचरित्रसंस्थानसंकलननिर्वर्तनानुमानचारप्रयोगैरवेक्षेत ॥ ३० ॥

कोशधनके साथ २ रजिस्टर आदि लाने वाले अध्यक्षको निम्नलिखित आठ बातोंसे परीक्षा किया जावे, प्रथम धर्म, अर्थात् यह देखा जावे कि यह वस्तुतः ही ऐसा धर्मात्मा है, या दम्भी है; उसके व्यवहारको देखाजावे; आचार विचारको देखा जावे, उसकी पहिली स्थितिको देखा जावे; उसके हिसाब तथा किये हुए कार्योंको देखा जावे, उसके एक कार्यको देखकर दूसरेका अनुमान किया जावे, और गुप्तचरोंके द्वारा भी उसका परीक्षण किया जावे ॥ ३० ॥

दिवसपञ्चरात्रपक्षमासचातुर्मास्यसंवत्सरैश्च प्रतिसमानयेत् ॥ ३१ ॥

दिन, पांच दिन, पक्ष (पन्द्रह दिन), महीना, चार महीना और साल, इस प्रकार विभाग करके आय व्यय तथा नीवी का लेखा करे तात्पर्य यह है:—जब वर्ष प्रारम्भ हो, एक २ दिन की अलहदा २ आय आदि जोड़ता रहे, जब पांच दिन हो जांय तो उसे इकट्ठा जोड़कर रक्खे, इसी तरह पांच पांच दिन तक के अङ्कोंको इकट्ठा जोड़कर रखता रहे, जब पन्द्रह दिन हो जांय, तो उन पांच २ दिनके तीन अङ्कोंको फिर इकट्ठा जोड़ ले, इसी तरह महीनेके बाद दो पक्षके दो अङ्कोंको, चार महीनेके बाद एक २ महीनेके चारों अङ्कोंको, और सालके बाद चार २ महीनेके तीन अङ्कोंको आपसमें जोड़कर इकट्ठा कर लेवे। इस प्रकार सब हिसाब साफ रक्खे ॥ ३१ ॥

व्युष्टदेशकालमुखोत्पत्त्यनुवृत्तिप्रमाणदायकदापकनिबन्धकप्रतिग्राहकैश्चायं समानयेत् ॥ ३२ ॥

आयके लिखनेके साथ २ इन बातोंको रजिस्टरमें और दर्ज करे:— व्युष्ट (राजाका वर्ष, मास, पक्ष और दिन, देखो अधि० २, अध्याय ६, सूत्र १२), देश, काल, मुख (आयमुख और आयशरीर), उत्पत्ति (आय आदिसे उत्पन्न हुई वृद्धि), अनुवृत्ति (एक स्थानसे दूसरे स्थानमें लेजाना), प्रमाण, कर देनेवालेका नाम, दिलानेवाले अधिकारीका नाम, लेखक और लेनेवालेका नाम। इन बातोंके लिखनेके साथ २ ही आयका लेखा करे ॥ ३२ ॥

व्युष्टदेशकालमुखलाभकारणदेययोगपरिमाणाज्ञापकोद्धारकनिधातृकप्रतिग्राहकैश्च व्ययं समानयेत् ॥ ३३ ॥

तथा व्ययके साथ इन बातोंको लिखे:—व्युष्ट, देश, काल, मुख लाभ (पक्ष, मास, या वर्षमें जो प्राप्ति होवे), कारण (किस निमित्तसे व्यय हुआ है, यह कारण), देय (जो चीज दी जावे उसका नाम), योग (मिले हुए द्रव्यमें कितना अच्छा और कितना बुरा है), परिमाण, आज्ञापक (व्यय के लिए आज्ञा देनेवालेका नाम), उद्धारक (द्रव्य ग्रहण करनेवाला), निधातृक (भाण्डागारिक) प्रतिग्राहक (लेनेवाला ब्राह्मण आदि, अर्थात् वह ब्राह्मण है या अन्य क्षत्रियादि, यह भी लिखा जावे), इन सब बातोंके साथ२ व्ययका लेखा किया जावे ॥ ३३ ॥

व्युष्टदेशकालमुखानुवर्तनरूपलक्षणपरिमाणनिक्षेपभाजनगोदायकैश्च नीवीं समानयेत् ॥ ३४ ॥

नीवीके साथ इन बातोंको लिखे:—व्युष्ट, देश, काल, मुख, अनुवर्त्तन रूप (उस द्रव्यका स्वरूप), लक्षण (उस द्रव्यके विशेष चिन्ह आदि), परिमाण, निक्षेपभाजन (जिस पात्रमें वह द्रव्य रक्खा जावे), गोपायक (उसका रक्षक पुरुष), इन सबको लिखकर ही नीवीका लेखा किया जावे ॥३४॥

राजार्थे ऽर्थकारणिकस्याप्रतिबध्नतः प्रतिषेधयतो वाज्ञां निबन्धादायव्ययमन्यथा वा विकल्पयतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३५ ॥

जो कारणिक (गणना कार्यपर नियुक्त हुआ २ पुरुष, क्लर्क आदि), राजाके हिरण्य आदि लाभको पुस्तकमें नहीं लिखता, अथवा उसकी आज्ञाका उल्लंघन करता है, तथा अन्य व्ययके सम्बन्धमें नियमसे विपरीत कल्पना करता है, उसको प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ३५ ॥

क्रमावहीनमुत्क्रममविज्ञातं पुनरुक्तं वा वस्तुकमवलिखतो द्वादशपणो दण्डः ॥ ३६ ॥

क्रमविरुद्ध (जहां जिस वस्तुके लिखनेका क्रम है, उसको छोड़कर इधर उधर लिख देना), उत्क्रम (उलट पुलट लिख देना, दो वस्तुओंको एक दूसरेके स्थानपर लिख देना), अविज्ञात (किसी वस्तुको विना समझे जाने लिख देना), तथा पुनरुक्त (एक वस्तुको बार २ लिख देना, इत्यादि), लिखने वाले लेखकको १२ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३६ ॥

नीवीमवलिखतो द्विगुणः ॥३७॥ भक्षयतो ऽष्टगुणः ॥३८॥ नाशयतः पञ्चबन्धः प्रतिदानं च ॥ ३९ ॥

यदि नीवीको इस प्रकार लिखे, तो द्विगुण अर्थात् २४ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३७ ॥ यदि उलट पुलट लिखकर नीवीको खा जावे (अर्थात् गबन

करले), तो आठ गुना अर्थात् ९६ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३८ ॥ यदि नीवी का नाश कर दे, अर्थात् नटनर्त्तक आदिको देकर अपव्यय करदे तो पांचगुना (अर्थात् ६० पण) दण्ड दिया जावे, और वह वस्तु वापस ली जावे ॥३९॥

मिथ्यावादे स्तेयदण्डः ॥ ४० ॥ पश्चात्प्रतिज्ञाते द्विगुणः प्रस्मृतोत्पन्ने च ॥ ४१ ॥

मिथ्या बोलनेमें चोरीका दण्ड दिया जावे ॥ ४० ॥ हिसाबके विषयमें पहिले किसी बातको स्वीकार न करके, पीछे स्वीकार कर लेनेपर अर्थात् हिसाबकी जांच के समयमें मान लेनेपर चोरीसे दुगुना दण्ड दिया जावे। पूछे जानेपर पहिले किसी बातको भूलकर, फिर पीछे सोचकर कहनेमें भी चोरीसे दुगुना दण्ड ही दिया जावे ॥ ४१ ॥

अपराधं सहेताल्पं तुष्येदल्पेऽपि चोदये ।
महोपकारं चाध्यक्षं प्रग्रहेणाभिपूजयेत् ॥ ४२ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे अक्षपटले गाणनिक्याधिकारः सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ आदितोऽष्टाविंशः ॥ २८ ॥

राजाको चाहिए कि वह अध्यक्षके थोड़ेसे अपराधको सहन करले, और यदि वह आमदनीको पहिलेकी अपेक्षा थोड़ा भी बढ़ावे तो उसपर अवश्य प्रसन्न अथवा सन्तुष्ट होवे। महान उपकार करनेवाले अध्यक्षका जीवन पर्यन्त, हर तरहसे सत्कार करता रहे ॥ ४२ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें सातवां अध्याय समाप्त।

आठवां अध्याय।

२६ प्रकरण

अध्यक्षोंके द्वारा अपहृत धनका प्रत्यानयन।

कोशपूर्वाः सर्वारम्भाः ॥१॥ तस्मात्पूर्वं कोशमवेक्षेत ॥ २ ॥

सम्पूर्ण कार्योंका निर्भर कोशपर है ॥ १ ॥ इसलिये राजाको उचित है, कि सबसे प्रथम वह कोशके विषयमें विचार करे, अर्थात् कोश सदा वृद्धिको ही प्राप्त होता रहे, उसका क्षय कदापि न हो, इस बातका ध्यान रक्खे ॥२॥

प्रचारसमृद्धिश्चरित्रानुग्रहश्चोरनिग्रहो युक्तप्रतिषेधः सस्यसंपत्पण्यबाहुल्यमुपसर्गप्रमोक्षः परिहारक्षयो हिरण्योपायनमिति कोशवृद्धिः ॥ ३ ॥

जनपद्की सम्पत्तिका बढ़ाना, जनपद्के पुराने आचार व्यवहारका खयाल रखना, चोरोंका निग्रह करना, अध्यक्षोंको धनापहरण करनेसे रोकना, (अथवा प्रजासे रिश्वत आदि लेकर प्रजाको कष्ट पहुचाने वाले अध्यक्षोंसे उसकी रक्षा करना) छोटे बड़े सब तरहके अन्नोंकी उपज करवाना, जल स्थल में उत्पन्न होने वाली विक्रेय वस्तुओंको खूब बढ़ाना, अग्नि आदिके उपद्रवोंसे स्वयं तथा जनपद्को बचाना, कर आदिका ठीक समय पर वसूल करना, (अथवा कर आदिसे किसीको माफ न करना, अर्थात् सबसे ही कर आदि लेना), और हिरण्य आदिकी भेंट लेना, ये सब कोशवृद्धिके उपाय हैं, ऐसा करनेसे कोश सदा बढ़ता ही रहता है ॥ ३ ॥

प्रतिबन्धः प्रयोगो व्यवहारोऽवस्तारः परिहापणमुपभोगः परिवर्तनमपहारश्चेति कोशक्षयः ॥ ४ ॥ सिद्धीनामसाधनमनवतारणमप्रवेशनं वा प्रतिबन्धः ॥५॥ तत्र दशबन्धो दण्डः ॥६॥

कोशके क्षयके कारण भी आठ होते है,:—प्रतिबन्ध, प्रयोग, व्यवहार अवस्तार, परिहापण, उपभोग, परिवर्तन, और अपहार। अगले सूत्रोंसे क्रमशः इन सबके लक्षण बताते हैं:—॥४॥ राजग्राह्य कर आदिका संग्रह करना, संग्रह करके भी उसे अपने अधिकारमें न करना, तथा अधिकारमें करके भी उसे खजानेमें न पहुंचाना, यह तीन प्रकारका 'प्रतिबन्ध' होता है ॥ ५ ॥ प्रतिबन्धके द्वारा जो अध्यक्ष, कोशका क्षय करे, उसके ऊपर उस कोशसे दसगुना जुरमाना किया जावे ॥ ६ ॥

कोशद्रव्याणां वृद्धिप्रयोगाः प्रयोगः पण्यव्यवहारो व्यवहारः ॥ ७ ॥ तत्र फलद्विगुणो दण्डः ॥ ८ ॥

कोशद्रव्योंसे अपने आपही लेन देन करने लग जाना 'प्रयोग' कहाता है। तात्पर्य यह है,—अध्यक्ष, कर आदि वसूल करके अपने पास रख लेता है, उस धनको किसी पुरुषको सूद पर दे देता है, जब वह धन व्याज सहित उससे वसूल हो जाता है, तो व्याज अपने पास रख लेता है, और मूलधन खजानेमें भेज देता है, इसको 'प्रयोग' कहते हैं। तथा कोश द्रव्योंका व्यापार करने लग जाना 'व्यवहार' कहाता है ॥ ७ ॥ प्रयोग तथा व्यवहारके द्वारा जो अध्यक्ष कोशका क्षय करे, उसे उस कोशधनसे दुगना जुरमाना किया जावे ॥ ८ ॥

सिद्धं कालमप्राप्तं करोत्यप्राप्तं प्राप्तं वेत्यवस्तारः ॥ ९ ॥ तत्र पञ्चबन्धो दण्डः ॥ १० ॥

जो अध्यक्ष, राजग्राह्य धनका प्रजाओंसे ग्रहण करनेका जो समय नियत है, उसे तो टाल देता है, और उत्कोच (रिश्वत) लेनेकी इच्छासे, दूसरे समयमें प्रजाको तंग करके उस धनको एकत्रित करता है, इसको 'अवस्तार' कहते हैं ॥ ९ ॥ अवस्तारके द्वारा जो कोशका क्षय करे, उसे क्षयसे पांचगुना दण्ड दिया जावे ॥ १० ॥

क्लृप्तमायं परिहापयति व्ययं वा विवर्धयतीति परिहापणम् ॥ ११ ॥ तत्र हीनचतुर्गुणो दण्डः ॥ १२ ॥

जो अध्यक्ष अपने कुप्रबन्धके कारण नियत आयको कम कर देता है, और व्ययको बढ़ा देता है, इस प्रकारके कोशक्षयका नाम 'परिहापण' है। ॥ ११ ॥ परिहापण द्वारा जो कोशका क्षय करे, उसे क्षयसे चौगुना दण्ड दिया जावे ॥ १२ ॥

स्वयमन्यैर्वा राजद्रव्याणामुपभोजनमुपभोगः ॥ १३ ॥ तत्र रत्नोपभोगे घातः सारोपभोगे मध्यमः साहसदण्डः फल्गुकुप्योपभोगे तच्च तावच्च दण्डः ॥ १४ ॥

रत्न सार फल्गु कुप्य आदि राजद्रव्योंका अपने आप भोग करना, तथा अपने इष्ट मित्रोंसे इन वस्तुओंका भोग कराना 'उपभोग' कहाता है ॥ १३ ॥ जो उपभोगके द्वारा कोशका क्षय करे, उसे रत्नोंका उपभोग करने पर प्राण दण्ड, सार द्रव्योंका उपभोग करने पर मध्यम साहस दण्ड, तथा फल्गु और कुप्य द्रव्योंका उपभोग करने पर वे द्रव्य वापस लिये जावें और उतना ही दण्ड दिया जावे ॥ १४ ॥

राजद्रव्याणामन्यद्रव्येणादानं परिवर्तनम् ॥ १५ ॥ तदुपभोगेन व्याख्यातम् ॥ १६ ॥

राजद्रव्योंको दूसरे द्रव्योंसे बदल देना 'परिवर्तन' कहाता है। अर्थात् अच्छेसे किसी राजद्रव्यको अपने पास रख लेना, और उसकी जगह उस तरह का दूसरा घटिया द्रव्य रख देना 'परिवर्तन' होता है ॥ १५ ॥ परिवर्तनके द्वारा कोशका क्षय करने पर 'उपभोग' के समान ही दण्ड समझना चाहिये। अर्थात् जो रत्नका परिवर्तन करे, उसे प्राण दण्ड जो सार द्रव्यका परिवर्तन करे, उसे मध्यम साहस दण्ड आदि ॥ १६ ॥

सिद्धमायं न प्रवेशयति निबद्धं व्ययं न प्रयच्छति प्राप्तां नीवीं विप्रतिजानीत इत्यपहारः ॥१७॥ तत्र द्वादशगुणो दण्डः ॥१८॥

प्राप्त हुए २ आयको जो पुस्तकमें नहीं लिखता, तथा नियमित व्यय को पुस्तकमें लिखकर भी व्यय नहीं करता, और प्राप्त हुई नीवी का अपलाप करता है, अर्थात् अपने हाथमें होने पर भी कहता है कि मेरे पास नहीं है; यह तीन प्रकारका 'अपहार कहाता है ॥ १७ ॥ अपहारके द्वारा जो अध्यक्ष कोशक्षय करे, उसे क्षयसे बारहगुना दण्ड दिया जावे ॥ १८ ॥

तेषां हरणोपायाश्चत्वारिंशत् ॥ १९ ॥ पूर्वं सिद्धं पश्चादवतारितम् ॥ २० ॥ पश्चात्सिद्धं पूर्वमवतारितम् ॥ २१ ॥ साध्यं न सिद्धम् ॥ २२ ॥ असाध्यं सिद्धम् ॥ २३ ॥ सिद्धमसिद्धं कृतम् ॥ २४ ॥ असिद्धं सिद्धं कृतम् ॥ २५ ॥ अल्पसिद्धं बहुकृतम् ॥ २६ ॥ बहुसिद्धमल्पं कृतम् ॥ २७ ॥ अन्यत्सिद्धमन्यत्कृतम् ॥ २८ ॥ अन्यतः सिद्धमन्यतः ॥ २९ ॥

अध्यक्ष, चालीस प्रकारसे राजद्रव्यका अपहरण कर सकते हैं। उन चालीस उपायोंका यहां इसीलिये निरूपण किया जाता है, कि राजा इन सबको जानकर, अध्यक्षोंको अपहरण करनेसे रोके, और अपहृत धनको वापस लेसके॥१९॥ वे उपाय ये हैं:—पहिली फसलमें प्राप्त हुए द्रव्यको, दूसरी फसल आने पर पुस्तकमें चढ़ाना ॥ २० ॥ दूसरी फसलमें प्राप्त होने वाले राजद्रव्यकी कुछ प्राप्तिको, पाहिली ही फसलमें, किताबमें लिख लेना, (यह कार्य राजाको धोका देनेके लिये किया जाता है, जिससे कि राजा उसे बड़ा कार्य कुशल और अपना विश्वासपात्र समझले ॥ २१ ॥ राजग्राह्य करको रिश्वत आदि लेकर छोड़ देना, अर्थात् उसे वसूल न करना ॥ २२ ॥ और जिनको राजकर माफ है, अर्थात् देवालय, और विद्वान् ब्राह्मण आदि जिनको राजकर नहीं देना पड़ता, उनसे लुक छिपकर तथा डरा धमकाकर, कर वसूल कर लेना ॥ २३ ॥ कर देने वाले पुरुषके कर देदेने पर भी, इसने नहीं दिया, यह कह देना, अथवा रजिस्टरमें लिख देना ॥ २४ ॥ कर देने वाले पुरुषके कर न देने पर भी रिश्वत आदि लेकर पुस्तकमें यह लिख देना, कि इसने कर देदिया है ॥ २५ ॥ थोड़े प्राप्त हुए धनको भी, रिश्वत आदि लेकर, पूरा प्राप्त होगया है, यह किताबमें लिख देना ॥ २६ पूरे प्राप्त हुए धनको भी, थोड़ा प्राप्त हुआ है, इसप्रकार पुस्तकमें लिखदेना ॥ २७ ॥ जो द्रव्य मिला है, उसकी जगह दूसरा लिखदेना, (गेंहूं मिला है, जौ लिखदेना) ॥ २८ ॥ एक पुरुषसे प्राप्त हुआ है, दूसरे पुरुषके नाम लिखदेना, (देवदत्तसे धन प्राप्त हुआ है, परन्तु यज्ञदत्तसे रिश्वत लेकर उसके नाम लिखदेना) ॥ २९ ॥

देयं न दत्तम् ॥ ३० ॥ अदेयं दत्तम् ॥ ३१ ॥ काले न दत्तम् ॥ ३२ ॥ अकाले दत्तम् ॥ ३३ ॥ अल्पं दत्तं बहुकृतम् ॥ ३४ ॥ बहु दत्तमल्पं कृतम् ॥ ३५ ॥ अन्यद्दत्तमन्यत्कृतम् ॥ ३६ ॥ अन्यतो दत्तमन्यतः कृतम् ॥ ३७ ॥

देय वस्तुको न देना. (राजाने किसीको स्वर्ण या रजत देनेकी आज्ञा दी है, उसे स्वर्ण आदि न देना); ॥ ३० ॥ तथा कालान्तरमें अदेय (फल्गु कुप्य आदि) वस्तु किसी तरहसे देदेना ॥ ३१ ॥ समयपर किसीको न देना (राजाने यज्ञादि करनेके लिये किसीको धन देनेकी आज्ञा दी है, उसे उस समयपर न देना) ॥ ३२ ॥ तथा रिश्वत आदि लेकर फिर पीछेसे देना ॥ ३३ ॥ फिर भी थोड़ा देकर बहुत लिख देना; (अथवा राजाने किसीको सौ मुद्रा देनेको कहा, अध्यक्षने सौकी जगह डेढ़सौ लिखकर सौ उसे देदेना, और पचास अपनेपास रख लेना) ॥ ३४ ॥ तथा बहुत देकर थोड़ा लिखना; (अथवा राजाने किसीको सौ मुद्रा देनेको कहा, किताबमें सौ लिख लेना, किन्तु उसे अस्सीही देना) ॥ ३५ ॥ और कोई द्रव्य देनेको कहा गया, तथा उसकी जगह और कुछ देदिया (राजाने किसीको सोना दे देनेकी आज्ञा दी, उसे उसकी जगह चांदी देदी गई) ॥ ३६ ॥ दूसरेको देनेके लिये कहे जानेपर, उससे दूसरेको दे देना (देवदत्तको देनेके लिये कहे जानेपर, यज्ञदत्तको रिश्वत लेकर दे देना) ॥ ३७ ॥

प्रविष्टमप्रविष्टं कृतम् ॥३८॥ अप्रविष्टं प्रविष्टं कृतम् ॥३९॥ कुप्यमदत्तमूल्यं प्रविष्टम् ॥ ४० ॥ दत्तमूल्यं न प्रविष्टम् ॥४१॥

राजग्राह्य धन वसूल करके, तथा अपने अधिकारमें करके भी उससे इन्कार करदेना अर्थात् उसे खजानेमें जमा न करना; (अथवा किसी विशेष आवश्यकताके बहानेसे प्रजाओंसे धन वसूल करके भी, उसे कोशमें जमा न करना) ॥ ३८ ॥ कर न लेकरही अर्थात् कोशमें धन न जमा किये जानेपर भी, रिश्वत लेकर जमा हो गया है, इस प्रकार पुस्तकमें लिख देना ॥ ३९ ॥ वस्त्र आदि कुप्य द्रव्य, राजाकी आज्ञासे उस समय मूल्य न देकरही लेकर, फिर पीछेसे उनका थोड़ासा मूल्य कपड़ेवालेको देदेना ॥ ४० ॥ बहुतसा मूल्य देकर खरीदा हुआ कुप्य द्रव्य, उसका उतना मूल्य किताबमें न लिखना ॥ ४१ ॥

संक्षेपो विक्षेपः कृतः ॥ ४२ ॥ विक्षेपः संक्षेपो वा ॥४३॥ महार्घमल्पार्घेण परिवर्तितम् ॥ ४४ ॥ अल्पार्घं महार्घेण वा

॥ ४५ ॥ समारोपितोऽर्घः ॥ ४६ ॥ प्रत्यवरोपितो वा ॥४७॥ रात्रयः समारोपिता वा ॥ ४८ ॥ प्रत्यवरोपिता वा ॥ ४९ ॥

बहुतसे मनुष्योंसे मिलकर इकट्ठा लिया जानेवाला 'कर' पृथक् २ सबसे बांट २ कर लेना ॥ ४२ ॥ जो पृथक् २ लेना हो, उसे सबसे इकट्ठा मिलकर लेना ॥ ४३ ॥ बहुमूल्य वस्तुको अल्प मूल्यकी वस्तुके साथ परिवर्त्तन कर लेना ॥ ४४ ॥ अथवा अल्पमूल्यकी वस्तुको बहुमूल्य वस्तुके साथ परिवर्त्तन करलेना ॥४५॥ बाज़ारमें वस्तुओंका भाव बढ़ा देना ॥४६॥ तथा इसीप्रकार वस्तुओं का भाव घटा देना; (इस तरह पण्याध्यक्ष धन अपहरण करता है) ॥ ४७ ॥ वेतनके दिन बढ़ाकर लिख देना, (अर्थात् पांच दिनका वेतन देकर सात दिन-का वेतन दिया गया है, इसप्रकार लिख देना) ॥ ४८ ॥ अथवा वेतनके दिन घटाकर देना, (अर्थात् दस दिनके वेतनकी स्वीकृति होनेपर, भृत्यको आठ दिनकाही वेतन देना) ॥ ४९ ॥

संवत्सरो मासविषमः कृतः ॥ ५० ॥ मासो दिवसविषमो वा ॥ ५१ ॥ समागमविषमः ॥ ५२ ॥ मुखविषमः ॥ ५३ ॥ धार्मिकविषमः ॥ ५४ ॥ निर्वर्तनविषमः ॥ ५५ ॥ पिण्डविषमः ॥ ५६ ॥ वर्णविषमः ॥ ५७ ॥ अर्घविषमः ॥ ५८ ॥ मान-विषमः ॥ ५९ ॥ मापनविषमः ॥ ६० ॥ भाजनविषमः ॥६१॥ इति हरणोपायाः ॥ ६२ ॥

अधिक मास रहित संवत्सरको अधिक मास वाला बताकर, उस मास-के लाभको स्वयं लेलेना ॥ ५० ॥ अथवा महीनेके दिन घटा बढ़ाकर, (उसके अधिक लाभको स्वयं लेलेना ॥ ५१ ॥ नौकरोंमें गड़बड़ करके धन लेना, (बहु-तसे कार्य करने वाले नौकरोंमेंसे दो एकके नाम वैसेही लिखे हुए हों, उनके नामका वेतन और भत्ता स्वयं लेलेना) ॥ ५२ ॥ एक आयमुखसे हुई २ आम-दनीको, दूसरे आयमुखसे प्रसिद्ध करदेना ॥ ५३ ॥ ब्राह्मणादिको धर्मार्थ दिये जाने वाले धनमेंसे, कुछ उन्हें देकर शेष स्वयं लेलेना ॥ ५४ ॥ किसी कार्यके करनेमें कुटिल उपायसे अतिरिक्त धन वसूल करलेना, (जैसे कर उघरानेके समयमें, आज सबको करदेना पड़ेगा, ऐसी आज्ञा देकर, किन्हींसे रिश्वत लेकर उन्हें छोड़ देना, अर्थात् उसदिन उनसे कर न उघराना) ॥ ५५ ॥ बहुतसे मनुष्योंसे इकट्ठा मिलकर लिये जाने वाले करमें, किसीसे रिश्वत लेकर उसे छोड़ देना, तथा बाकी मनुष्योंसे पूरा धन वसूल करलेना ॥ ५६ ॥ ब्राह्मण आदि वर्णोंकी विषमतासे धनका अपहरण करना, (जैसे—आज नावसे केवल

ब्राह्मणही पार हुए हैं, उनसे शुल्क नहीं लिया गया, यह कहकर नावध्यक्ष उस दिनकी आयको अपहरण कर सकता है ॥ ५७ ॥ छावनियोंमें मूल्य आदिके व्यवस्थित न रहनेसे, उसको कुछ अधिक बढ़ाकर लाभ उठाना ॥ ५८ ॥ तोल आदिमें फ़र्क डालकर फ़ायदा उठाना ॥ ५९ ॥ नापनेमें विषमता उत्पन्न करके लाभ उठाना ॥ ६० ॥ पात्र विषयक विषमतासे लाभ उठाना, (जैसे--घृतसे भरे हुए सौ घड़े देदो, इसप्रकार मालिकके कहनेपर छोटे २ सौ घड़े देदेना, और बड़े २ सौ घड़े दिये हैं, यह पुस्तकमें लिख देना) ॥ ६१ ॥ यहांतक अपहरण करनेके चालीस उपायोंका निरूपण किया गया ॥ ६२ ॥

तत्रोपयुक्तनिधायकनिबन्धकप्रतिग्राहकदायकदापकमन्त्रिवैयावृत्यकरानेकैकशो ऽनुयुञ्जीत ॥ ६३ ॥ मिथ्यावादे चैषां युक्तसमो दण्डः ॥ ६४ ॥

यदि किसी अध्यक्षके विषयमें, राजाको धन अपहरण करनेका सन्देह होजावे, तो राजा, उसके (उस अध्यक्षके) प्रधान निरीक्षक अधिकारी पुरुषको, भाण्डागारिक (खज़ानची) को, लेखकको, लेने वालेको, कर दिलाने वाले राजपुरुषको, अपराधीके सलाहकारको, तथा उस मन्त्रीके नौकरोंको पृथक् २ बुलाकर यह पूछे, कि इस अध्यक्षने धनका अपहरण किया है या नहीं ॥६३॥ यदि इनमेंसे कोई झूंठ बोले, तो उसे अपराधीके समानही दण्ड दिया जावे ॥ ६४ ॥

प्रचारे चावघोषयेत् अमुना प्रकृतेनोपहताः प्रज्ञापयन्त्विति ॥ ६५ ॥ प्रज्ञापयतो यथोपघातं दापयेत् ॥ ६६ ॥

और राजा सम्पूर्ण जनपदमें घोषणा करवादेवे, कि अमुक अध्यक्ष यदि किसीको पीड़ा देकर धन अपहरण करे, तो वे यहां आकर सूचना देवें ॥ ६५॥ अपहरणकी सूचना दिये जानेपर, उस पुरुषको अध्यक्षसे उतनाही धन दिलवाया जावे ॥ ६६ ॥

अनेकेषु चाभियोगेष्वपव्ययमानः सकृदेव परोक्तः सर्वं भजेत ॥ ६७ ॥ वैषम्ये सर्वत्रानुयोगं दद्यात् ॥ ६८ ॥

अनेक अभियोगोंके होनेपर, (अर्थात् एकही समयमें यदि बहुतसे पुरुष अपना धन अपहरण किये जानेकी सूचना देवें,) यदि अभियुक्त सब अभियोगोंको स्वीकार न करे, तो एकही अभियोगसें पूरी गवाही, तथा अन्य पूरे सबूत मिलनेपर सब अभियोगोंका अपराधी उसे समझा जावे ॥ ६७ ॥ यदि अभियुक्त अनेक अभियोगोंमेंसे कुछ अभियोगोंको स्वीकार करले, और

कुछ न करे; तो जिनको स्वीकार न करे, उनके लिये अपनी सफाईके गवाह, तथा अन्य सबूतोंको भी उपस्थित करे ॥ ६८ ॥

महत्यर्थापहारे चाल्पेनापि सिद्धः सर्वं भजेत ॥६९॥ कृतप्रतिघातावस्थः सूचको निष्पन्नार्थः षष्ठमंशं लभेत ॥ ७० ॥ द्वादशमंशं भृतकः ॥ ७१ ॥

बहुत अधिक अर्थका अपहरण करनेपर, यदि थोड़ेसे धनके भी गवाह मिल जावें, तो सम्पूर्ण धनका अपहरण करनेका अपराध, उसपर सिद्ध समझा जावे ॥ ६९ ॥ यदि धनका अपहरण करने वाले अध्यक्षकी सूचना, कोई व्यक्ति राजाके हितकी कामनासेही देता है, (अर्थात् किसीको नुक्सान पहुंचाने या द्वेषादिके कारण नहीं देता); ऐसे व्यक्तिको, अपहृत धनका ठीक पता लगजानेपर, धनका छठा हिस्सा देदिया जावे ॥ ७० ॥ यदि सूचना देने वाला व्यक्ति, उसका भृत्य हो, तो उसे उस धनका बारहवां हिस्सा देना चाहिये ॥ ७१ ॥

प्रभूताभियोगादल्पनिष्पत्तौ निष्पन्नस्यांशं लभेत ॥ ७२ ॥ अनिष्पन्ने शारीरं हैरण्यं वा दण्डं लभेत ॥७३॥ न चानुग्राह्यः ॥७४॥

यदि बहुतसे धनके अपहरणका अभियोग हो, अभियोगके सिद्ध होनेपर उसमेंसे थोड़ाही धन वसूल होवे, तो सूचना देने वाले व्यक्तिको उतनेही धनमेंसे हिस्सा दिया जावे ॥ ७२ ॥ यदि अभियुक्तपर अपराध सिद्ध न हो सके, तो सूचना देने वाले पुरुषको शरीर दण्ड दिया जावे, अथवा उचित आर्थिक दण्ड दिया जावे ॥ ७३ ॥ इसप्रकारके अपराधी पर अनुग्रह कदापि न करना चाहिये ॥ ७४ ॥

निष्पत्तौ निक्षिपेद्वादमात्मानं वापवाहयेत् ।
अभियुक्तोपजापात्तु सूचको वधमाप्नुयात् ॥ ७५ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे समुदयस्य युक्तापहृतस्य प्रत्यानयनमष्टमो ऽध्यायः ॥ ८ ॥ आदितः एकोनत्रिंशः ॥ २९ ॥

यदि अभियोग सच्चा सिद्ध होजावे, तो सूचना देनेवाला पुरुष, अपने आपको उस अभियोगके सम्बन्धसे अलहदा कर सकता है, अर्थात् फिर सरकारही अपनी ओरसे उस मुकद्दमेको चला सकती है। यदि अभियुक्त सूचना देने वाले पुरुषको रिश्वत आदि देकर फुसला लेवे, और राजाके सामने वह सच्ची २ बात न कहे, तो उसे (सूचकको) प्राण दण्ड देना चाहिये ॥ ७५ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें आठवां अध्याय समाप्त।

नौवां अध्याय ।

२७ प्रकरण ।

उपयुक्तपरीक्षा ।

प्रत्येक कार्योंपर नियुक्त किये गये छोटे २ अधिकारियोंको 'युक्त' कहाजाता है; जो इनके भी ऊपर निरीक्षक अधिकारी नियुक्त हों, उन्हें 'उपयुक्त' कहते हैं । 'युक्त' कर्मचारियोंके सम्बन्धमें पिछले अध्यायमें कहा जा चुका है; अब 'उपयुक्त' कर्मचारियोंके सम्बन्धमें निरूपण किया जायगा ।

अमात्यसंपदोपेताः सर्वाध्यक्षाः शक्तितः कर्मसु नियोज्याः ॥ १ ॥ कर्मसु चैषां नित्यं परीक्षां कारयेत् ॥ २ ॥ चित्तानित्यत्वान्मनुष्याणाम् ॥ ३ ॥

सबही अध्यक्षोंको अमात्यके गुणोंसे युक्त होना चाहिये (अर्थात् अमात्योंके जो गुण पीछे कहे गये हैं, अध्यक्षोंमें भी वे गुण यथावश्यक अवश्य होने चाहियें । देखोः—अधि १, अध्या. ९ सू. १); तथा इनको (अध्यक्षोंको) इनकी शक्तिके अनुसार उन २ कार्योंपर नियुक्त किया जावे ॥ १ ॥ कार्योंपर नियुक्त किये जानेपर, राजा इनकी सदाही परीक्षा करवाता रहे ॥ २ ॥ क्योंकि मनुष्योंके चित्त सदा एकसे नहीं रहते ॥ ३ ॥

अश्वसधर्माणो हि मनुष्या नियुक्ताः कर्मसु विकुर्वते ॥४॥ तस्मात्कर्तारं कारणं देशं कालं कार्यं प्रक्षेपमुदयं चैषु विद्यात् ॥५॥

देखा जाता है, कि आदमियोंकी भी घोड़ोंकी तरह आदत होती है; जबतक घोड़ा अपने थानपर बंधा रहता है, बड़ा शान्त मालूम होता है, परन्तु जब वह रथ आदिमें जोड़ा जाता है, तो बिगड़ जाता है बड़ी उछल कूद मचाता है; इसीप्रकार प्रथम शान्त दीखने वाला पुरुष भी कार्यपर नियुक्त होजानेपर कभी २ विकारको प्राप्त होजाता है ॥ ४ ॥ इसलिये राजाको चाहिये, कि वह कर्ता (अध्यक्ष), कारण (नीचे कार्य करने वाले कर्मचारी), देश, काल, कार्य, नौकरोंका वेतन, और उदय अर्थात् लाभ, इनको अध्यक्षोंके विषयमें अवश्य जानता रहे ॥ ५ ॥

ते यथासंदेशमसंहता अविगृहीताः कर्माणि कुर्युः ॥ ६ ॥ संहता भक्षयेयुः ॥ ७ ॥ विगृहीता विनाशयेयुः ॥ ८ ॥

वे अध्यक्ष, अपने मालिककी आज्ञानुसार, एक दूसरे अध्यक्षके साथ न मिलते हुए, तथा एक दूसरेके साथ विरोध न करते हुए, अपने २ कार्योंमें तत्पर रहें ॥ ६ ॥ क्योंकि यदि वे आपसमें मिल जायेंगे, तो गुट्ट करके राजाके धनको खायेंगे ॥ ७ ॥ और यदि आपसमें विरोध करेंगे, तो राजाके कार्यको नष्ट करेंगे। क्योंकि वे अपनेही झगड़ोंमें लगे रहेंगे, राजाका कार्य नष्ट होगा। इसलिये राजाको ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये, जिससे कि वे न आपसमें गुट्ट बना सकें, और न उनका आपसमें कोई राजकार्यका हानिकर विरोध हो ॥ ८ ॥

न चानिवेद्य भर्तुः किंचिदारम्भं कुर्युरन्यत्रापत्प्रतीकारेभ्यः ॥९॥ प्रमादस्थानेषु चैषामत्ययं स्थापयेद्दिवसवेतनव्ययद्विगुणम् ॥ १० ॥

मालिकको विना निवेदन किये, किसी नये कार्यका वे (अध्यक्ष) प्रारम्भ करें; परन्तु जो कार्य किसी आपत्तिको प्रतीकार करनेके लिये किये जारहे हों, उनको करनेके लिये, उसी समय राजाकी अनुमतिकी आवश्यकता नहीं, वे राजाको निवेदन किये विना भी, किये जासकते हैं ॥ ९ ॥ यदि वे (अध्यक्ष) अपने किसी कार्यमें प्रमाद करें, तो इनके लिये दण्डकी व्यवस्था होनी चाहिये; साधारण दण्ड, इनके दैनिक वेतन व्ययसे दुगना होना चाहिये। (अर्थात् एक दिनका जितना वेतन हो, उससे दुगना दण्ड दिया जावे ॥ १० ॥

यश्चैषां यथादिष्टमर्थं सविशेषं वा करोति स स्थानमानौ लभेत ॥ ११ ॥

जो इन अध्यक्षोंमेंसे, अपने मालिककी आज्ञानुसार ठीक काम करता है, तथा उससे भी अधिक और विशेष काम (जिन कार्योंके लिये मालिकने नहीं भी कहा है, ऐसे उसके हितकर कार्य) करता है, उसको विशेष उन्नति दीजावे, (अर्थात् पदके खयालसे उसकी तरक्की करदी जावे) और अन्य प्रकारसे (धनादि द्वारा) भी उसका उचित सत्कार किया जावे ॥ ११ ॥

अल्पायतिश्चेन्महाव्ययो भक्षयति ॥ १२ ॥ विपर्यये यथायतिव्ययश्च न भक्षयतीत्याचार्याः ॥ १३ ॥

किन्हीं प्राचीन आचार्योंने बेईमान और ईमानदार अध्यक्षोंके निम्न लिखित उपाय बताये हैं। वे कहते हैं, कि जिस अध्यक्षकी आमदनी थोड़ी होती हो, तथा वह खर्च बहुत अधिक करता हो, तो समझना चाहिये कि यह अवश्यही राजाके धनका अपहरण करता है ॥ १२ ॥ इससे विपरीत होनेपर अथवा आमदनीके अनुसार खर्च करने वाले अध्यक्षको ईमानदार समझना चाहिये, वह राजाके धनको नहीं खाता ॥ १३ ॥

अपसर्पेणैवोपलभ्यत इति कौटल्यः ॥ १४ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य इस मतको स्वीकार नहीं करता। वह कहता है कि अध्यक्षोंकी ईमानदारी और बेईमानीका पता गुप्तचरोंके द्वाराही लगाना चाहिये। क्योंकि एक बड़े परिवार वाला अध्यक्ष, स्वयं थोड़ा खर्च करता हुआभी परिवार पोषणके लिये धन अपहरण करसकता है। तथा अत्यधिक धन अपहरण करता हुआभी कंजूस आदमी कभी अधिक खर्च नहीं करता। इसलिये आचार्योंके कथनानुसार अध्यक्षोंकी दुष्टताका ठीक पता नहीं लगसकता। अतः यह कार्य गुप्तचरोंके द्वाराही कराना चाहिए ॥ १४ ॥

यः समुदयं परिहापयति स राजार्थं भक्षयति ॥ १५ ॥ स चेदज्ञानादिभिः परिहापयति तदेनं यथागुणं दापयेत् ॥ १६ ॥

जो अध्यक्ष समुदय (द्रव्योंका आमद=नियमित आय) में न्यूनता करता है अर्थात् राजाको नियमानुसार जितनी आय होनी चाहिये, उसमें यह कमी करदेता है, तो समझना चाहिये कि वह अध्यक्ष उस राजाके धनमें से अवश्य कुछ न कुछ खाता है ॥ १५ ॥ यदि वह अपने अज्ञान अर्थात् प्रमाद आलस्य आदिके कारण, इसप्रकार आमदनीमें कमी करता है, तो वह कम हुआ २ धन उससे अपराधके अनुसार दुगना तिगना करके लिया जावे ॥ १६ ॥

यः समुदयं द्विगुणमुद्भावयति स जनपदं भक्षयति ॥ १७ ॥ स चेद्राजार्थमुपनयत्यल्पापराधं वारयितव्यः ॥ १८ ॥ महति यथापराधं दण्डयितव्यः ॥ १९ ॥

जो अध्यक्ष, समुदय दुगना इकट्ठा करता है, अर्थात् जितनी नियत आय है, उससे दुगना वसूल करता है; समझना चाहिए, यह जनपदको खाता है, अर्थात् प्रजाको पीड़ा पहुंचाकरही इतना धन वसूल करता है, अन्यथा नियत आयसे अधिक कैसे प्राप्त करसकता है ॥ १७ ॥ यदि वह उस अधिक संग्रह कियेहुए धनको राजाके लिये भेजदेता है, तो उसे प्रजाको पीड़ा पहुंचानेके थोड़ेसे अपराधकाही दण्ड दियाजावे, जिससे कि वह फिर आगे इसप्रकार प्रजाको पीड़ा पहुंचाकर धन संग्रह न करे ॥ १८ ॥ यदि वह अधिक अपराध करता है, अर्थात् उस धनको राजाके पास न भेजकर स्वयं अपहरण करलेता है, तो प्रजापीड़न और धनापहरण दोनों अपराधोंका उसे उचित दण्ड दियाजावे ॥ १९ ॥

यः समुदयं व्ययमुपनयति स पुरुषकर्माणि भक्षयति ॥२०॥ स कर्मदिवसद्रव्यमूलपुरुषवेतनापहारेषु यथापराधं दण्डयितव्यः ॥ २१ ॥

जो अध्यक्ष, व्ययके लिये नियत किएहुए धनको व्यय न करके लाभमें शामिल करदेता है, वह पुरुषों (काम करनेवाले मजदूरों) तथा राजकार्यको खाता अर्थात् नष्ट करता है यह समझना चाहिए। तात्पर्य यह है, कि किसी कार्यको करनेके लिये नियत कियहुए धनको व्यय न करनेसे, एक तो मजदूरोंका पालन नहीं होता, मजदूरी न मिलनेसे वे कष्ट उठाते हैं, दूसरे वह राजकार्य नहीं होता, जिसके लिये वह बजट पास किया गया है। उसका जो रु० बचता है, उसे अध्यक्ष आयकी ओर करके नियमित आयसे अधिक आयको अपनेघर रखलेता है ॥ २० ॥ ऐसा करनेवाले अध्यक्षको, उस कार्यकी हानि (कार्य करनेपर उस दिनमें जितना काम होजाय, उसके मूल्यकी कल्पना करके हानिका निर्णय कियाजाय); और पुरुषोंके वेतनका अपहरण करनेके सम्बन्धमें, अपराधके अनुसार उचित दण्ड दियाजावे ॥ २१ ॥

तस्मादस्य यो यस्मिन्नाधिकरणे शासनस्थः स तस्य कर्मणो याथातथ्यमायव्ययौ च व्याससमासाभ्यामाचक्षीत ॥ २२ ॥ मूलहरतादात्विककदर्यांश्च प्रतिषेधयेत् ॥ २३ ॥

इसलिये राजाका, जो जिस स्थानमें शासन करनेवाला अधिकारी अध्यक्ष नियुक्त हो, वह उस कार्यकी यथार्थताको और उसके आय व्ययको आवश्यकतानुसार संक्षेप और विस्तारके साथ, राजासे निवेदन करे ॥ २२ ॥ और जो मूलहर, तादात्विक तथा कदर्य पुरुष हों, उनकोभी उनके अपने कार्यसे सदा रोकता रहे ॥ २३ ॥

यः पितृपैतामहमर्थमन्यायेन भक्षयति स मूलहरः ॥ २४ ॥ यो यद्यदुत्पद्यते तत्तद्भक्षयति स तादात्विकः ॥ २५ ॥ यो भृत्यात्मपीडाभ्यामुपचिनोत्यर्थं स कदर्यः ॥ २६ ॥

जो पुरुष अपनी पितृपितामह परम्परासे प्राप्त हुई सम्पत्तिको अन्याय पूर्वक खाता, अर्थात् उपभोग करता है, उसे 'मूलहर' कहते हैं। ऐसे पुरुषोंको इन कार्योंके करनेसे रोकते रहना चाहिये, जिससे कि ये अपनी पुरानी सम्पत्तिको नष्ट न करडालें ॥ २४ ॥ जो पुरुष जितना उत्पन्न करता है, उतनाही उस समय खालेता है, अर्थात् व्यय कर देता है, शेष कुछ नहीं बचाता, उसे 'तादात्विक' कहते है ॥ २५ ॥ तथा जो पुरुष अपने भृत्यों और अपने आपको कष्ट देकर धनका संग्रह करता है वह 'कदर्य' कहाता है ॥ २६ ॥

स पक्षवांश्चेदनादेयः ॥२७॥ विपर्यये पर्यादातव्यः ॥२८॥

यदि निषेध करने परभी मूलहर आदि अपने कामोंको करते ही चले जाते हैं, तो उन्हें अपने बन्धु बान्धवोंकी सम्पत्ति पर दायभागका अधिकार नहीं रहता। अथवा ऐसे पुरुषोंको (जिनकेकि बन्धु बान्धव हैं। इस सूत्रमें 'पक्ष' शब्दका अर्थ बन्धु बान्धव है) आर्थिक दण्ड न दिया जाय (क्योंकि आर्थिक दण्ड देनेसे उनके बन्धु बान्धव आदि कुपित हो सकते हैं), किन्तु उनको केवल पदच्युत कर दिया जाय ॥ २७ ॥ यदि उनके बन्धु बान्धव आदि नहीं, तो उनकी सम्पत्तिको जब्त कर लिया जावे ॥ २८ ॥

यो महत्यर्थसमुदये स्थितः कदर्यः संनिधत्ते ऽवनिधत्ते ऽवस्रावयति वा संनिधत्ते स्ववेश्मन्यवनिधत्ते पौरजानपदेष्ववस्रावयति परविषये तस्य सत्री मन्त्रिमित्रभृत्यबन्धुपक्षमागतिं गतिं च द्रव्याणामुपलभेत ॥ २९ ॥

जो कदर्य (कंजूस) अध्यक्ष, महान अर्थ लाभ करता हुआ, धनको अपने घरमें भूमि आदिमें गाड़ देता है, नगरनिवासी या जनपदनिवासी पुरुषोंके समीप रक्षाके लिये रख देता है, अथवा शत्रुके देशमें अपने धनको भेजकर वहीं कहीं पर जमा करता जाता है; उस अध्यक्षके मन्त्री (सलाहकार), मित्र, भृत्य तथा बन्धु बान्धवोंको, और द्रव्योंके आय व्ययको, सत्री (गुप्त पुरुष) अवश्य देखे ॥२९॥

यश्चास्य परविषयतया संचारं कुर्यात्तमनुप्रविश्य मन्त्रं विद्यात् ॥ ३० ॥ सुविदिते शत्रुशासनापदेशेनैनं घातयेत् ॥३१॥

तथा इस कदर्य अध्यक्षके धनको जो पुरुष शत्रुके देशमें भिजवानेका प्रबन्ध करता हो, उसके साथ मिलकर अर्थात् उसका मित्र या भृत्य बनकर सत्री इस गुप्तरहस्यको अच्छी तरह जान लेवे ॥ ३० ॥ जब सत्रीके द्वारा इसका यह गुप्तरहस्य अच्छी तरह मालूम होजावे, तो राजा शत्रुकी आज्ञाके बहानेसे इस कदर्यको मरवा देवे। (तात्पर्य यह है:—एक बनावटी चिट्ठी लिखवाकर, जोकि शत्रुकी ओरसे इस कदर्यको लिखी गई हो, उस शत्रुके देशसे अपने देशमें आते हुए किसी आदमीके हाथमें देवे, उस पुरुषको राज्यकी सीमापर अन्तपाल गिरफ्तार करके राजाके पास उपस्थित करे, तदनन्तर राजा उस चिट्ठीके आधार पर, यह कदर्य अध्यक्ष शत्रुसे पत्र व्यवहार रखता है, तथा वहां धन आदि भेजता है, इस प्रकार प्रसिद्ध करके उसको मरवा देवे ॥ ३१ ॥

तस्मादस्याध्यक्षाः संख्यायकलेखकरूपदर्शकनीवीग्राहकोत्तराध्यक्षसखाः कर्माणि कुर्युः ॥ ३२ ॥

इस लिये सब अध्यक्षोंको चाहिये कि वे संख्यायक (गणक=आयव्ययका लेखा करने वाला), लेखक, रूपदर्शक (राजकीय मुद्रा तथा अन्य मणिमुक्ता स्वर्ण आदिके खरे खोटेपनको पहचानने वाला कर्मचारी), तथा नीवीग्राहक (आय व्ययसे शेष बचे हुए धनको संभालने वाला अधिकारी , तथा उत्तराध्यक्ष (बड़ा, अध्यक्षोंके ऊपर निरीक्षण करने वाला, प्रधानाधिकारी) इनके साथ मिलकरही राजाके सब कार्योंको करें ॥ ३२ ॥

उत्तराध्यक्षाः हस्त्यश्वरथारोहाः ॥ ३३ ॥ तेषामन्तेवासिनश्शिल्पशौचयुक्तास्सङ्ख्यायकादीनामपसर्पाः ॥ ३४ ॥

हाथी घोड़े तथा रथों पर सवार होने वालेही उत्तराध्यक्ष बनने चाहियें। (तात्पर्य यह है:—जो पुरुष वृद्ध तथा अत्यन्त अनुभवी हैं, वृद्ध होनेके कारण युद्ध आदिमें जानेका सामर्थ्य नहीं रखते, साधारणतया चलने फिरनेमेंभी सवारियोंका ही सहारा लेते हैं, ऐसे विशेष व्यक्तियोंको उत्तराध्यक्ष अर्थात् अन्य अध्यक्षोंका निरीक्षण करने वाला प्रधानाध्यक्ष बनाया जावे) ॥ ३३ ॥ इन उत्तराध्यक्षोंके पास कुछ ऐसे शिष्य रहने चाहियें, जोकि आज्ञा पालन करनेमें बड़े चतुर, तथा हृदयके पवित्र हों; वे संख्यायक गणक आदि कर्मचारियोंकी प्रत्येक प्रवृत्तिको जाननेके लिये गुप्तपुरुषका कार्य करें ॥३४॥

बहुमुख्यमनित्यं चाधिकरणं स्थापयेत् ॥ ३५ ॥

प्रत्येक अधिकरण अर्थात् कार्यस्थानमें अनेक मुख्य पुरुषोंको रक्खाजावे। जिससे कि वे एक दूसरेका भय रखते हुए राजकार्यको अच्छी तरहसे करें। तथा इन मुख्य पुरुषोंकी स्थिति चिरस्थायी नहीं होनी चाहिये; क्योंकि ऐसी अवस्थामें वे कर्मचारियोंसे मित्रताकर अपने दोषोंको छिपा सकते हैं, और जनता भी उनके दोषोंको इस भयसे प्रकट नहीं करती, कि ये आगे हमारा कोई अपकार कर सकते हैं ॥ ३५ ॥

यथा ह्यनास्वादयितुं न शक्यं
जिह्वातलस्थं मधु वा विषं वा ।
अर्थस्तथा ह्यर्थचरेण राज्ञः
स्वल्पोऽप्यनास्वादयितुं न शक्यः ॥ ३६ ॥

जिस प्रकार जीभ पर रक्खे हुए शहद या जहरके सम्बन्धमें कोई यह चाहे कि मैं इसका स्वाद न लूं, यह नहीं हो सकता, जीभ पर रक्खी हुई चीजका इच्छा न होने परभी स्वाद आही जाता है; ठीक इसी प्रकार राजाके अर्थ सम्बन्धी कार्यों पर नियुक्त हुए २ कर्मचारी, उस अर्थका थोड़ाभी स्वाद न लें, यह

कदापि नहीं हो सकता, वे थोड़ा बहुत कुछ न कुछ धन आदिका अपहरण अवश्य करते ही हैं ॥ ३६ ॥

मत्स्या यथान्तः सलिले चरन्तो
ज्ञातुं न शक्याः सलिलं पिबन्तः ।
युक्तास्तथा कार्यविधौ नियुक्ताः
ज्ञातुं न शक्या धनमाददानाः ॥ ३७ ॥

तथा जिस प्रकार पानीमें रहती हुई मछलियां पानी पीती हुई नहीं मालूम होतीं, इसीप्रकार अर्थकार्योंपर नियुक्त हुए २ राज कर्मचारी, अर्थोंका अपहरण करते हुए मालूम नहीं होते ॥ ३७ ॥

अपि शक्या गतिर्ज्ञातुं पततां खे पतत्रिणाम् ।
न तु प्रच्छन्नभावानां युक्तानां चरतां गतिः ॥ ३८ ॥

आकाशमें उड़ते हुए पक्षीकी गतिको जाना जासकता है, परन्तु गुप्त रूपसे कार्य करते हुए अध्यक्षोंकी गतिको पहिचानना बड़ा कठिन काम है। इन दोनों श्लोकोंका तात्पर्य यही है कि जलमें मछलीके पानी पीनेके समान तथा आकाशमें उड़ते हुए पक्षीकी गतिके समान अध्यक्षोंके द्वारा अपहरण किया जाता हुआ धन, राजाके लिये जानना दुष्कर कार्य है ॥ ३८ ॥

आस्रावयेच्चोपचितान्विपर्यस्येच्च कर्मसु ।
यथा न भक्षयन्त्यर्थं भक्षितं निर्वमन्ति वा ॥ ३९ ॥

इसलिये इसप्रकारके अध्यक्षोंके विषयमें राजाको उचित है, कि वह पहिले, धनोंको अपहरण कर २ के समृद्ध हुए २ अध्यक्षोंके धनको, उनकी समृद्धिसे अथवा गुप्तचरोंके द्वारा अच्छी तरह जानकर, उनसे छीन लेवे। और उन कर्मचारियोंको उच्च पदसे पदच्युत करके नीचकार्योंपर नियुक्त करे। जिससे कि वे फिर अर्थका अपहरण न करें, तथा अपहरण किये हुए धनको स्वयं ही उगल देवें ॥ ३९ ॥

न भक्षयन्ति ये त्वर्थान्न्यायतो वर्धयन्ति च ।
नित्याधिकाराः कार्यास्ते राज्ञः प्रियहिते रताः ॥ ४० ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे उपयुक्तपरीक्षा नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

आदितस्त्रिंशः ॥ ३० ॥

जो अध्यक्ष कभी अर्थका अपहरण नहीं करते, तथा सदा न्यायपूर्वक उसकी वृद्धिमें ही तत्पर रहते हैं; और राजाका प्रिय तथा हित करनेमें ही लगे रहते हैं; राजाको चाहिये, कि वह इसप्रकारके अध्यक्षोंको सदा उनके अधिकारपदपर बनाये रक्खे ॥ ४० ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें नौवां अध्याय समाप्त ।

दसवां अध्याय ।

२८ प्रकरण ।

शासनाधिकार ।

{ लिखित आज्ञा तथा संदेश आदिको ही 'शासन' कहते हैं । इस प्रकरणमें उसहीका निरूपण किया जायगा ।

शासने शासनमित्याचक्षते ॥१॥ शासनप्रधाना हि राजानः ॥ २ ॥ तन्मूलत्वात्संधिविग्रहयोः ॥ ३ ॥

पत्र आदिपर लिखित अर्थको ही, विद्वान् आचार्य 'शासन' कहते हैं । अर्थात् वाचानिक अर्थको कभी 'शासन' नहीं कहा जासकता ॥ १ ॥ राजाजन शासनका ही विशेष आदर करते हैं, वाचानिकका नहीं ॥ २ ॥ क्योंकि सन्धि और विग्रह आदि सम्बन्धी कार्य शासन मूलकही होते हैं । (इस सूत्रमें सन्धि विग्रह पदोंको छओं गुणोंका उपलक्षण मानकर, सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव इन छओं गुणोंका ग्रहण कर लेना चाहिये । अर्थात् षाड्गुण्य सम्बन्धी सबही कार्य लेखद्वारा होनेपरही ठीक समझे जाते हैं) ॥ ३ ॥

तस्मादमात्यसंपदोपेतः सर्वसमयविदाशुग्रन्थश्चार्वक्षरो लेखवाचनसमर्थो लेखकः स्यात् ॥ ४ ॥ सोऽव्यग्रमना राज्ञः संदेशं श्रुत्वा निश्चितार्थं लेखं विदध्यात् ॥ ५ ॥

इसलिये अमात्यके गुणोंसे युक्त, हर तरहके (वर्णाश्रम सम्बन्धी) आचार विचारोंको जानने वाला, शीघ्रताके साथ सुन्दर वाक्य योजना करने वाला, सुन्दर अक्षर लिखने वाला, सब तरहके लेख लिखने और पढ़नेमें समर्थ लेखक होना चाहिये । (अर्थात् षड्गुण्य सम्बन्धी शासन आदि लिखने पढ़नेके लिये इसप्रकारके लेखकको राजा नियुक्त करे) ॥ ४ ॥ वह लेखक सावधान होकर, राजाके सन्देशको अच्छी तरह सुनकर, दूसरेके लेखके पूर्वापर अर्थोंपर विचार कर उसके अनुसार, निश्चित अर्थ वाले लेखको लिखे ॥ ५ ॥

देशैश्वर्यवंशनामधेयोपचारमीश्वरस्य देशनामधेयोपचारमनीश्वरस्य ॥ ६ ॥

वह लेखपत्र यदि किसी राजाके सम्बन्धमें अर्थात् राजाके लिये लिखा जाता हो, तो उसमें उसके देश, ऐश्वर्य, वंश और नामका पूर्ण कथन होना चाहिये। यदि किसी अमात्य आदिके नाम लिखा जावे, तो उसमें केवल उसके देश और नामकाही पूर्ण निर्देश होना चाहिये ॥ ६ ॥

जातिं कुलं स्थानवयः श्रुतानि
कर्मर्द्धिशीलान्यथ देशकालौ ।
यौनानुबन्धं च समीक्ष्य कार्ये
लेखं विदध्यात्पुरुषानुरूपम् ॥ ७ ॥

इसके अतिरिक्त प्रत्येक राजकार्य सम्बन्धी लेखपत्रमें जाति (ब्राह्मण आदि), कुल, स्थान (अधिकारस्थान), आयु, विद्वत्ता (शास्त्रज्ञान), कार्य, धन सम्पत्ति, सदाचार, देश (निवास स्थान), काल, विवाहसम्बन्ध (विवाह आदि सम्बन्ध किन वंशोंके साथ होते हैं, इत्यादि; इसीका नाम 'यौनानुबन्ध' है), आदि इन सब बातोंको अच्छी तरह सोचकर, उन २ पुरुषों (उत्तम, मध्यम, नीच पुरुषों) के अनुकूल अवश्य लिखे ॥ ७ ॥

अर्थक्रमः संबन्धः परिपूर्णता माधुर्यमौदार्यं स्पष्टत्वमिति लेखसंपत् ॥ ८ ॥ तत्र यथावदनुपूर्वक्रियाप्रधानस्यार्थस्य पूर्वमभिनिवेश इत्यर्थस्य क्रमः ॥ ९ ॥ प्रस्तुतस्याथस्यानुरोधादुत्तरस्य विधानमासमाप्तेरिति संबन्धः ॥ १० ॥

अर्थक्रम, सम्बन्ध, परिपूर्णता, माधुर्य, औदार्य, और स्पष्टता, ये छः गुण लेखके होते हैं ॥ ८ ॥ अर्थानुसार ठीक २ आनुपूर्वीका रखना, अर्थात् सबसे प्रधान अर्थको पहिले रखना, फिर इसीके अनुसार सब बातोंका निरूपण करते जाना, 'अर्थक्रम' कहाता है ॥ ९ ॥ प्रस्तुत अर्थकी बाधा न करते हुए अगले अर्थका निरूपण करना, इसीप्रकार समाप्ति पर्यन्त करते चले जाना 'सम्बन्ध' कहाता है। तात्पर्य यह है कि अगला अर्थ पहिले अर्थका बाधक न होना चाहिये, ऐसा होनेपर ही वह अर्थ सम्बद्ध कहा जासकता है ॥ १० ॥

अर्थपदाक्षराणामन्यूनातिरिक्तता हेतूदाहरणदृष्टान्तैरर्थोपवर्णनाश्रान्तपदतेति परिपूर्णता ॥ ११ ॥ सुखोपनीतचार्वर्थशब्दा-

भिधानं माधुर्यम् ॥ १२ ॥ अग्राम्यशब्दाभिधानमौदार्यम् ॥ १३ ॥ प्रतीतशब्दप्रयोगः स्पष्टत्वमिति ॥ १४ ॥

अर्थपद तथा अक्षरोंका न्यून अधिक न होना; हेतु (कारण), उदाहरण (शास्त्रीय संवाद आदिका कथन), तथा दृष्टान्त (लौकिक अर्थात् लोक प्रसिद्ध अर्थका निदर्शन) पूर्वक अर्थका निरूपण करना; और शब्द कार्पण्य या ढीले शब्दोंका प्रयोग न करना 'परिपूर्णता' कहाता है ॥ ११ ॥ सुखपूर्वक अर्थात् सरलतासे अर्थका बोधन करने वाले सुन्दर २ शब्दोंका प्रयोग करना 'माधुर्य' कहाता है ॥ १२ ॥ अग्राम्य (सभ्यतासे भरे हुए) शब्दोंके प्रयोग करनेको ही 'औदार्य' कहते हैं ॥ १३ ॥ तथा सुप्रसिद्ध शब्दोंके प्रयोग करने का नाम 'स्पष्टता' है ॥ १४ ॥

अकारादयो वर्णाः त्रिषष्टिः ॥ १५ ॥ वर्णसंघातः पदम् ॥ १६ ॥ तच्चतुर्विधं नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्चेति ॥ १७ ॥ तत्र नाम सत्त्वाभिधायि ॥ १८ ॥ अविशिष्टलिङ्गमाख्यातं क्रियावाचि ॥ १९ ॥ क्रियाविशेषकाः प्रादय उपसर्गाः ॥ २० ॥ अव्ययाश्चादयो निपाताः ॥ २१ ॥

अकार आदि वर्ण त्रेसठ (६३) होते हैं ॥ १५ ॥ वर्णोंके समुदायको 'पद' कहते हैं ॥ १६ ॥ वह पद चार प्रकारका होता है:—नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात ॥ १७ ॥ सत्त्वको कहने वाला अर्थात् जाति गुण तथा द्रव्यका वाचक पद 'नाम' कहाता है ॥ १८ ॥ स्त्री पुरुष आदि विशेष लिङ्गोंसे रहित, क्रियावाचक पदको 'आख्यात' कहते हैं ॥ १९ ॥ क्रियाओंके विशेष अर्थोंका द्योतन करने वाले, क्रियाओंके साथ लगे हुए प्र आदि पद 'उपसर्ग' कहाते हैं ॥ २० ॥ च आदि अव्ययोंको 'निपात' कहते हैं ॥ २१ ॥

पदसमूहो वाक्यमर्थपरिसमाप्तौ ॥ २२ ॥ एकपदावरस्त्रिपदपरः परपदार्थानुरोधेन वर्गः कार्यः ॥ २३ ॥

पूर्ण अर्थको (अर्थात् निराकांक्ष अर्थको=जिस पदसमूहके उच्चारण करदेनेपर तत्सम्बन्धी अर्थकी आकांक्षा न रहे, ऐसे अर्थको) कहने वाले पदसमूहका नाम 'वाक्य' है ॥ २२ ॥ कमसे कम एक पदपर और अधिकसे अधिक तीन पदपर, मुख्य पदके अनुसार विराम करना चाहिये ॥ २३ ॥

लेखकपरिसंहरणार्थ इतिशब्दो वाचिकमस्येति च ॥ २४ ॥

लेखकी परिसमाप्ति द्योतन करनेके लिये 'इति' शब्दका प्रयोग किया जाता है; यदि लेखमें पूरी बात न लिखी जावे, या लिखनी उचित न समझी जावे, तो अन्तमें 'वाचिकमस्य (लेखहरमुखाच्छ्रोतव्यम्)' ऐसा लिखदेना चाहिये; अर्थात् 'इस लेखका शेष अंश, इस पत्रको लाने वाले पुरुषके मुंहसे सुन लेना' इसप्रकार लिख दिया जावे ॥ २४ ॥

निन्दा प्रशंसा पृच्छा च तथाख्यानमथार्थना ।
प्रत्याख्यानमुपालम्भः प्रतिषेधोऽथ चोदना ॥ २५ ॥
सान्त्वमभ्यवपत्तिश्च भर्त्सनानुनयौ तथा ।
एतेष्वर्थाः प्रवर्तन्ते त्रयोदशसु लेखजाः ॥ २६ ॥

निन्दा, प्रशंसा, पृच्छा, आख्यान, अर्थना, प्रत्याख्यान, उपालम्भ, प्रतिषेध, चोदना, सान्त्व (सान्त्वना) अभ्यवपत्ति, भर्त्सना और अनुनय इन तेरह बातोंमें ही पत्रसे प्रकट होने वाले अर्थ, प्रवृत्त होते हैं; अर्थात् पत्रमें इन तेरह बातोंमेंसे ही किसी न किसीके सम्बन्धमें लिखा जाता है ॥ २५-२६ ॥

तत्राभिजनशरीरकर्मणां दोषवचनं निन्दा ॥ २७ ॥ गुणवचनमेतेषामेव प्रशंसा ॥ २८ ॥ कथमेतदिति पृच्छा ॥ २९ ॥ एवमित्याख्यानम् ॥ ३० ॥ देहीत्यर्थना ॥ ३१ ॥ न प्रयच्छामीति प्रत्याख्यानम् ॥ ३२ ॥

किसीके अभिजन (वंश), शरीर तथा कार्यमें दोषारोपण करना अथात् इनके सम्बन्धमें बुरा कहना 'निन्दा' कहाता है ॥ २७ ॥ और इन्हींके (वंश आदिके) सम्बन्धमें गुणोंका कथन करना 'प्रशंसा' कहाता है ॥ २८ ॥ यह बात कैसे हुई ?, इसप्रकार पूछनेको ही 'पृच्छा' कहते हैं ॥ २९ ॥ यह इस तरह करना चाहिये' यह कहना आख्यान कहाता है ॥ ३० ॥ 'दो' इसप्रकार कहकर मांगनेका नामही 'अर्थना' है ॥ ३१ ॥ 'नहीं देता हूं' इसप्रकार निषेध करदेना ही 'प्रत्याख्यान' कहाता है ॥ ३२ ॥

अननुरूपं भवत इत्युपालम्भः ॥ ३३ ॥ मा कार्षीरिति प्रतिषेधः ॥ ३४ ॥ इदं क्रियतामिति चोदना ॥ ३५ ॥ योऽहं स भवान्यन्मम द्रव्यं तद्भवत इत्युपग्रहः सान्त्वम् ॥ ३६ ॥

'यह आपने अपने अनुरूप (सदृश) नहीं किया' इसप्रकार साभिप्राय वचन कहना 'उपालम्भ' कहाता है ॥ ३३ ॥ 'ऐसा मत करो' इसप्रकार

आज्ञा पूर्वक रोकना 'प्रतिषेध' कहाता है ॥ ३४ ॥ 'यह करना चाहिये' इस-प्रकारकी प्रेरणाकोही 'चोदना' कहते हैं ॥ ३५ ॥ जो मैं हूं वही आप हैं, जो मेरा द्रव्य है वह आपकाही है, इसप्रकार कहकर किसीको तसल्ली देना, तथा अपने अनुकूल बनाना 'सान्त्व' या 'सान्त्वना' कहाता है ॥ ३६ ॥

व्यसनसाहाय्यमभ्यवपत्तिः ॥ ३७ ॥ सदोषमायतिप्रदर्शन-मभिभर्त्सनम् ॥ ३८ ॥ अनुनयस्त्रिविधोऽर्थकृतावतिक्रमे पुरुषा-दिव्यसने चेति ॥ ३९ ॥

व्यसन (आपत्ति) के समयमें सहायता करना 'अभ्यवपत्ति' कहाता है ॥ ३७ ॥ दोष सहित भविष्यका दिखलाना, अर्थात् 'यदि तुम जल्दीही इस प्रकार न करदोगे, तो मैं तुम्हें मरवा डालूंगा या कारागारमें बन्द करदूंगा' इस तरह कहना 'भर्त्सन' (घुड़कना) कहाता है ॥ ३८ ॥ अनुनय तीन प्रका-रका होता है,:—अर्थकरण निमित्तक, अतिक्रम निमित्तक तथा पुरुषादिव्यस-ननिमित्तक; किसी अवश्यमेव करने योग्य कार्यको करनेके लिये जो मित्रकी ओरसे अनुनय हो वह पहिला है। किसी तरह कुपित हुए २ पुरुषको शान्त करनेके लिये जो अनुनय किया जाय वह दूसरा है। तथा पिता भाई पुत्र मित्र आदिके मरनेके कारण आई हुई विपत्तिमें जो अनुनय किया जावे, वह तीसरा अनुनय है। अनुनय शब्दका अर्थ अनुग्रह है ॥ ३९

प्रज्ञापनाज्ञापरिदानलेखास्तथा परीहारनिसृष्टिलेखौ ।
प्रावृत्तिकश्च प्रतिलेख एव सर्वत्रगश्चेति हि शासनानि ॥४०॥

शासन अर्थात् लेखके, ये और भी निम्नलिखित आठ भेद हैं:—प्रज्ञा-पन, आज्ञा परिदान, परिहार, निसृष्टि, प्रावृत्तिक, प्रतिलेख और सर्वत्रग। इन आठोंका क्रमशः लक्षण करते हैं ॥ ४० ॥

अनेन विज्ञापितमेवमाह तद्दीयतां चेद्यदि तत्त्वमस्ति ।
राज्ञः समीपे वरकारमाह प्रज्ञापनैषा विविधोपदिष्टा ॥४१॥

गुप्त राजपुरुषके द्वारा राजाको बताये जानेपर (अर्थात् किसी महामा-त्रको कहींसे धन मिलगया, और उसने वह अपनेही पास रखलिया; एक गुप्त पुरुषने आकर राजाको खबर देदी, तब) राजा महामात्र आदिसे कहता है,कि यदि वह बात ठीक है, तो तुम वह धन देदो; वह राजाके सामने धन देदेनेकी स्वीकृति करलेता है; इसप्रकारके लेखपत्रका नाम 'प्रज्ञापना' है। यह प्रज्ञापना नामक लेखपत्र अनेक प्रकारका होता है ॥ ४१ ॥

भर्तुराज्ञा भवेद्यत्र निग्रहानुग्रहौ प्रति ।
विशेषेण तु भृत्येषु तदाज्ञालेखलक्षणम् ॥ ४२ ॥

जिस लेखपत्रमें, राजाकी निग्रह या अनुग्रह रूप आज्ञा होवे । विशेष कर जो लेखपत्र भृत्योंके सम्बन्धमें लिखा जावे, वह 'आज्ञा' कहाता है ॥ ४२ ॥

यथार्हगुणसंयुक्ता पूजा यत्रोपलक्ष्यते ।
अप्याधौ परिदाने वा भवतस्तावुपग्रहौ ॥ ४३ ॥

जिस लेखपत्रमें उचित गुणोंसे युक्त सत्कारके भाव प्रगट किये जावें, वह 'परिदान' कहाता है । यह दो अवस्थाओंमें लिखा जाता है, एक तो उस समय जब कि अपने भृत्यों का कोई बन्धु बान्धव आदि मर गया हो, और उसके कारण उन्हें व्यथा हो, दूसरा उनकी रक्षाके लिये राजा जब कभी विशेष दयाभाव प्रगट करे । ऐसी अवस्थाओंमें राजाकी ओरसे भृत्योंको लिखा हुआ इस प्रकार का लेख, उन्हें राजाके अनुकूल बना देता है ॥ ४३ ॥

जातेर्विशेषेषु पुरेषु चैव ग्रामेषु देशेषु च तेषु तेषु ।
अनुग्रहो यो नृपतेर्निदेशात्तज्ज्ञः परीहार इति व्यवस्येत् ॥४४॥

विशेष २ जातियों, उन २ नगरों, ग्रामों तथा देशोंपर, राजाकी आज्ञानुसार जो अनुग्रह किया जावे, विशेष पुरुष इसीको 'परीहार' कहते हैं ॥ ४४ ॥

निसृष्टिस्थापना कार्या करणे वचने तथा ।
एषा वाचिकलेखः स्याद्भवेन्नैसृष्टिकोऽपि वा ॥ ४५ ॥

किसी कार्यके करने तथा कहनेमें, किसी आप्त पुरुषके प्रामाण्यका कथन करना 'निसृष्टि' कहाता है । अर्थात् अमुकका जो काम है, वही मेरा काम है, अमुकका जो वचन है वही मेरा वचन है, इसप्रकार अपने कार्य तथा वचनमें किसी आप्त प्रामाणिक पुरुषका कथन करना 'निसृष्टि' है । यह दो प्रकारका है, एक वाचिक (जिसमें वचनके प्रामाण्यका कथन हो), और दूसरा नैसृष्टिक (जिसमें कार्यके प्रामाण्यका कथन किया जाय) ॥ ४५ ॥

विविधां दैवसंयुक्तां तत्त्वजां चैव मानुषीम् ।
द्विविधां तां व्यवस्यन्ति प्रवृत्तिं शासनं प्रति ॥ ४६ ॥

अनेक प्रकारकी दैवी (सुभिक्ष दुर्भिक्ष अतिवृष्टि सुवृष्टि अवृष्टि अग्निका उत्पात आदि अनेक प्रकारकी दैव सम्बन्धी), परमार्थभूत (ठीक २ हालत बताने वाली) तथा मानुषी (चोर आदिके द्वारा होने वाले उपद्रव), लेखविषयक प्रवृत्ति दो प्रकारकी होती है । तात्पर्य यह है, कि प्रावृत्तिक (प्रवृत्ति=समाचार

अर्थात् जिसके द्वारा केवल परिस्थितिकी सूचना दूसरेको दी जावे, ऐसे) लेख में अनुकूल प्रतिकूल आपातका, चाहे वे दैवसे हों या मनुष्योंके द्वारा, तथा आपातशून्य वास्तविक अवस्थाकाही उल्लेख किया जाता है; ये सब प्रकारकी प्रवृत्ति दो भागोंमें विभक्त हैं, एक शुभ और दूसरी अशुभ। इसलिये प्रावृत्तिक लेखभी शुभ अशुभ रूपसे दो प्रकारकाही समझना चाहिये ॥ ४६ ॥

दृष्ट्वा लेखं यथातत्त्वं ततः प्रत्यनुभाष्य च ।
प्रतिलेखो भवेत्कार्यो यथा राजवचस्तथा ॥ ४७ ॥

दूसरेके भेजे हुए लेखको अच्छी तरह देखकर अर्थात् ठीक तौरपर पहिले स्वयं उसको बांचकर, फिर राजाके सामने बांचकर, राजाकी आज्ञाके अनुसार जो उसका उत्तर लिखाजावे, उसीको 'प्रतिलेख' कहते हैं। ॥ ४८ ॥

यत्रेश्वरांश्चाधिकृतांश्च राजा रक्षोपकारौ पथिकार्थमाह ।
सर्वत्रगो नाम भवेत्स मार्गे देशे च सर्वत्र च वेदितव्यः ॥४८॥

जिस लेखपत्रमें राजा, पथिकोंकी रक्षा और उपकार करनेके लिये दुर्गपाल राष्ट्रपाल अन्तपाल आदिको तथा अन्य समाहर्त्ता प्रशास्ता आदि अधिकारियोंको लिखता है; उस लेखका नाम 'सर्वत्रग' है; क्योंकि वह मार्ग देश तथा राष्ट्र आदि सबही जगहोंपर लिखा जाता है ॥ ४८ ॥

उपायाः सामोपप्रदानभेददण्डाः ॥ ४९ ॥

उपाय चार हैं, :-साम दान दण्ड भेद। (इस बातको पहिले कहा जाचुका है कि सन्धिविग्रह आदि लेखकेही अधीन हैं, इसलिये लेखकको उनका ज्ञान अवश्य होना चाहिये। अब साम दान आदि उपायोंकाभी ज्ञान लेखकको होना आवश्यक है, यह बताया जायगा) ॥ ४९ ॥

तत्र साम पञ्चविधम्-गुणसंकीर्तनं संबन्धोपाख्यानं परस्परोपकारसंदर्शनमायतिप्रदर्शनमात्मोपनिधानमिति ॥ ५० ॥

उनमें साम पांच प्रकारका होता है:—गुणसंकीर्तन, सम्बन्धोपाख्यान, परस्परोपकारसंदर्शन, आयतिप्रदर्शन, तथा आत्मोपनिधान। इनका क्रमशः पृथक् २ लक्षण करते हैं:— ॥ ५० ॥

तत्राभिजनशरीरकर्मप्रकृतिश्रुतद्रव्यादीनां गुणागुणग्रहणं प्रशंसास्तुतिर्गुणसंकीर्तनम् ॥ ५१ ॥

अभिजन (वंश), शरीर, कार्य, स्वभाव, विद्वत्ता, तथा अन्य हाथी घोड़े रथ आदि द्रव्योंके गुण और अगुणोंको जानकर उनकी प्रशंसा या स्तुति करना 'गुणसंकीर्तन' कहाता है ॥ ५१ ॥

ज्ञातियौनमौखस्रौवकुलहृदयमित्रसंकीर्तनं संबन्धोपाख्यानम् ॥ ५२ ॥

ज्ञाति (समान कुलमें उत्पन्न होना), यौनिकृतसम्बन्ध (विवाह आदि), मुखकृतसम्बन्ध (गुरु शिष्य आदि, मुखके द्वारा अध्ययनाध्यापनसे उत्पन्न हुआ २ सम्बन्ध), स्रुवाकृत सम्बन्ध (स्रुवा यज्ञके एक पात्रविशेषका नाम है, उसके द्वारा जो सम्बन्ध हो, याज्ययाजक आदि), कुलकृत सम्बन्ध (कुलपरम्परासे चला आया हुआ सम्बन्ध), हार्दिक सम्बध (स्वयं अपने हृदयके द्वारा किया हुआ सम्बन्ध), तथा मित्रसम्बन्ध (उपकार आदिके द्वारा हुआ २ सम्बन्ध), इन सात प्रकारके सम्बन्धोंमेंसे किसीका कथन करना 'सम्बन्धोपाख्यान' कहाता है ॥ ५२ ॥

स्वपक्षपरपक्षयोरन्योन्योपकारसंकीर्तनं परस्परोपकारसंदर्शनम् ॥ ५३ ॥ अस्मिन्नेवं कृत इदमावयोर्भवतीत्याशाजननमायतिप्रदर्शनम् ॥ ५४ ॥

अपने और पराये पक्षमें, एक दूसरेका एक दूसरेके द्वारा किए हुए उपकारका कथन करना 'परस्परोपकारसंदर्शन' कहाता है ॥५३॥ इस कार्यके ऐसा करनेपर, हम दोनोंको यह फल होगा, इसप्रकार आशाका उत्पन्न करना 'आयतिप्रदर्शन' कहाता है ॥ ५४ ॥

यो ऽहं स भवान्यन्मम द्रव्यं तद्भवता स्वकृत्येषु प्रयोज्यतामित्यात्मोपनिधानमिति ॥ ५५ ॥

जो मैं हूं वही आप हैं, मेरा धन आपकाही धन है, आप उसे इच्छानुसार अपने कार्योंमें लगा सकते हैं, इसप्रकार अपने आपको समर्पण करदेना 'आत्मोपनिधान' कहाता है ॥ ५५ ॥

उपप्रदानमर्थोपकारः ॥ ५६ ॥ शङ्काजननं निर्भर्त्सनं च भेदः ॥ ५७ ॥ वधः परिक्लेशो ऽर्थहरणं दण्ड इति ॥ ५८ ॥

धन आदिके द्वारा उपकार करना 'उपप्रदान' या 'दान' कहाता है ॥ ५६ ॥ शत्रुके हृदयमें शङ्का उत्पन्न करदेना या धमकाना 'भेद' कहाता है ॥ ५७ ॥ उसे मारदेना, तथा अन्यप्रकारसे पीड़ा पहुंचाना, या उसके धन आदिका अपहरण करलेना 'दण्ड' कहा जाता है ॥ ५८ ॥

अकान्तिर्व्याघातः पुनरुक्तमपशब्दः संप्लव इति लेखदोषाः ॥५९॥ तत्र कालपत्त्रकमचारुविषमविरागाक्षरत्वमकान्तिः ॥६०॥

अकान्ति, व्याघात, पुनरुक्त, अपशब्द और संप्लव ये पांच लेखके दोष होते हैं ॥ ५९ ॥ उनमेंसे स्याही पड़े हुए कागज़पर अथवा स्वभावसेही मलिन कागज़पर लिखना, असुन्दर अक्षर बनाना, छोटे बड़े अक्षरोंका होजाना, और फीकी स्याहीसे लिखना, यह लेखका 'अकान्ति' नामक दोष कहाता है ॥६०॥

पूर्वेण पश्चिमस्यानुपपत्तिर्व्याघातः ॥ ६१ ॥ उक्तस्याविशेषेण द्वितीमुच्चारणं पुनरुक्तम् ॥ ६२ ॥

पहिले लेखके साथ अगले लेखका विरोध होजाना, अथवा पहिले लेखसे अगले लेखकी बाधा होजाना 'व्याघात' कहाता है ॥ ६१ ॥ जो बात पहिले कहदीगई है, उसके समानही फिर दुबारा कहदेना 'पुनरुक्त' दोष कहाता है ॥६२॥

लिङ्गवचनकालकारकाणामन्यथाप्रयोगो ऽपशब्दः ॥ ६३ ॥ अवर्गे वर्गकरणं वर्गे चावर्गक्रिया गुणविपर्यासः संप्लव इति ॥६४॥

लिङ्ग (स्त्रीलिङ्ग पुल्लिङ्ग आदि), वचन (एकवचन द्विवचन आदि), काल (भूत भविष्यत् आदि), तथा कारक (कर्त्ता कर्म आदि), का अन्यथा प्रयोग करदेना, अर्थात् स्त्रीलिंगकी जगह पुल्लिग, एकवचनकी जगह बहुवचन आदि विपरीत प्रयोगोंका करना 'अपशब्द' कहाता है ॥ ६३ ॥ जहां लेखमें विराम करना चाहिये वहां विराम न करना, तथा जहां न करना चाहिये वहां करदेना, और गुणोंका विपर्यास अर्थात् अर्थक्रम आदिके अनुसार लेखका न लिखना 'संप्लव' नामक पांचवां दोष होता है ॥ ६४ ॥

सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च ।
कौटल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः ॥ ६५ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे शासनाधिकारः दशमो ऽध्यायः ॥ १० ॥
आदित एकत्रिंशः ॥ ३१ ॥

कौटल्यने सब शास्त्रोंको अच्छी तरह जानकर, और उनके प्रयोगोंको अच्छी तरह समझकर फिर राजाके लिये इस शासनविधिका उपदेश किया है ॥ ६५ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें दशवां अध्याय समाप्त ।

ग्यारहवां अध्याय ।

२९ प्रकरण

कोशमें प्रवेश करने योग्य रत्नोंकी परीक्षा ।

{ भाण्डागारका नाम कोश है, मणि मुक्ता आदि रत्नोंकी तथा सार फल्गु और कुप्य आदि अन्य संग्राह्य द्रव्योंकी परीक्षाकाभी इस प्रकरणमें निर्देश किया जावेगा ।

कोशाध्यक्षः कोशप्रवेश्यं रत्नं सारं फल्गु कुप्यं वा तज्जातकरणाधिष्ठितः प्रतिगृह्णीयात् ॥ १ ॥

कोशाध्यक्षको उचित है, कि वह कोशमें रखने योग्य रत्न, सार, फल्गु, तथा कुप्य द्रव्योंको, उन २ द्रव्योंका सदा व्यापार करनेवाले अच्छे जानकार पुरुषोंसे युक्त हुआ २ ही ग्रहण करे । तात्पर्य यह है कि ये पुरुष जब रत्नादिकी परीक्षा करके उसे ठीक बतावें, तब ही उसे कोशमें जमा करनेकेलिये लेवे ॥ १ ॥

ताम्रपार्णिकं पाण्ड्यकवाटकं पाशिक्यं कौलेयं चार्णेयं माहेन्द्रं कार्दमिकं स्रौतसीयं ह्रादीयं हैमवतं च मौक्तिकम् ॥ २ ॥

सबसे प्रथम मोतीकी परीक्षा बताते हैं:-मोतीके दश उत्पत्ति स्थान हैं, उन स्थानोंके नामसे दश प्रकारका मोती होता है,-ताम्रपार्णिक (पाण्ड्य देशगत ताम्रपर्णी नदी है, उसके समुद्र-संगममें होनेवाला मोती 'ताम्रपार्णिक' कहाता है), पाण्ड्यकवाटक (मलयकोटि नामक पहाड़पर उत्पन्न होनेवाला), पाशिक्य पाटलिपुत्रके समीपकी पाशिका नामक नदीमें उत्पन्न हुआ २), कौलेय (सिंहलद्वीपकी कुला नामक नदीमें उत्पन्न होनेवाला), चौर्णेय (केरल देश के मुरचि नामके नगर के समीप चूर्णी नदी में उत्पन्न होने वाले) माहेन्द्र (महेन्द्र पहाड़के पास समुद्रमें उत्पन्न होनेवाला), कार्दमिक (फारस देशकी कर्दमा नामक नदीमें उत्पन्न होनेवाला), स्रौतसीय (बर्बरके किनारे स्रोतसी नामक नदीमें उत्पन्न होनेवाला), ह्रादीय (बर्बरके किनारे समुद्रके पास लगेहुए श्रीघण्ट नामक झीलमें उत्पन्न होनेवाला), हैमवत (हिमालय पहाड़पर उत्पन्न होनेवाला), ये दश तरहके मोती होते हैं ॥ २ ॥

शुक्तिः शङ्खः प्रकीर्णकं च योनयः ॥ ३ ॥

मोतियोंकी उत्पत्तिके तीन कारण होते हैं-शुक्ति, शंख और प्रकीर्णक, (हाथी सांप आदिके मस्तक तथा अन्य साधनोंसे उत्पन्न हुए २ मोती प्रकीर्णक शब्दसे यहां कहे गये हैं) ॥ ३ ॥

मसूरकं त्रिपुटकं कूर्मकमर्धचन्द्रकं कञ्चुकितं यमकं कर्तकं खरकं सिक्थकं कामण्डलुकं श्यावं नीलं दुर्विद्धं चाप्रशस्तम् ॥४॥

मसूरक (मसूरकी तरह आकारवाला), त्रिपुटक (तीन खूंटवाला, अथवा छोटी इलायचीके समान आकारवाला), कूर्मक (कछुएके समान आकारवाला), अर्द्धचन्द्रक (आधे चांदके समान) कञ्चुकित (ऊपर मोटे छिलकेवाला), यमक (जुड़ा हुआ), कर्तक (कटाहुआ), खरक (खरखरा) सिक्थक (दागवाला), कामण्डलुक (कमण्डलुके समान आकारवाला), श्याव (बन्दरके समान रंगवाला), नील (नीले रंगका), तथा दुर्विद्ध (बेमौके विंधाहुआ, अर्थात् जिस जगहसे विंधना चाहिये, उस जगहसे न विंधाहुआ), ये तेरह प्रकारके मोती दूषित समझे जाते हैं ॥ ४ ॥

स्थूलं वृत्तं निस्तलं भ्राजिष्णु श्वेतं गुरु स्निग्धं देशविद्धं च प्रशस्तम् ॥ ५ ॥

मोटा, गोलाकार, निस्तल (तल रहित=चिकनी जगहपर न ठहरनेवाला अर्थात् झट लुढ़कजानेवाला), दीप्तियुक्त, सफ़ेद, भारी, चिकना तथा ठीक मौकेपर विंधा मोती उत्तम समझा जाता है ॥ ५ ॥

शीर्षकमुपशीर्षकं प्रकाण्डकमवघाटकं तरलप्रतिबन्धं चेति यष्टिप्रदेशाः ॥ ६ ॥

यष्टि अर्थात् लड़ (जंजीरी=पिरोएहुए मोतियोंकी एक लम्बी शृंखला) के पांच भेद हैं,—शीर्षक (जिसके बीचमें एक मोती बड़ा हो, तथा उसके दोनों ओर बराबर २ के छोटे मोती लगे हुए हों), उपशीर्षक (एक मोती बड़ा बीचमें, और उसके दोनों ओर छोटे २ बराबरके दो मोती हों, इसीतरहके तीन २ मोतियोंके समूहसे बनी हुई, अर्थात् एक बड़े मोतीके बाद बराबर २ के दो छोटे मोती, फिर एक बड़ा मोती, फिर दो बराबर २ के छोटे, इसी क्रमसे बनी हुई मालाको 'उपशीर्षक' कहते हैं), प्रकाण्डक (एक बीचमें बड़ा और उसके दोनों ओर छोटे बराबर २ के दो दो मोती हों, इसी तरहके पांच २ के समूहसे बनी हुई, अर्थात् एक मोतीके बाद चार छोटे २ बराबरके, फिर एक बड़ा, फिर उसके बाद चार छोटे बराबर २ के, इसी क्रमसे बनी हुई मालाका नाम प्रकाण्ड है), अवघाटक (एक बड़ा मोती बीचमें लगाकर और उसके दोनों ओर उत्तरोत्तर छोटे २ मोती लगाते हुए जो माला तैयार कीजावे, उसे अवघाटक कहते हैं), और तरलप्रतिबन्ध (सब बराबर २ के मोतियोंकी माला का नाम तरलप्रतिबन्ध है) ॥ ६ ॥

यष्टीनामष्टसहस्रमिन्द्रच्छन्दः ॥ ७ ॥ ततो ऽर्धं विजयच्छन्दः ॥ ८ ॥ शतं देवच्छन्दः ॥ ९ ॥ चतुष्षष्टिरर्धहारः ॥१०॥ चतुष्पञ्चाशद्रश्मिकलापः ॥ ११ ॥ द्वात्रिंशद्गुच्छः ॥ १२ ॥ सप्तविंशतिर्नक्षत्रमाला ॥ १३ ॥ चतुर्विंशतिरर्धगुच्छः ॥१४॥ विंशतिर्माणवकः ॥ १५ ॥ ततो ऽर्धमर्धमाणवकः ॥ १६ ॥

एक हजार आठ (१००८) यष्टि अर्थात् लड़ोंकी माला (आभूषण विशेष) को 'इन्द्रच्छन्द' कहते हैं ॥ ७ ॥ जो इससे आधी अर्थात् पांचसौ चार (५०४) यष्टियोंकी हो, उसका नाम 'विजयच्छन्द' है ॥ ८ ॥ सौ (१००) यष्टिका नाम 'देवच्छन्द' है ॥ ९ ॥ चौंसठ (६४) का 'अर्धहार' ॥ १० ॥ चौवन (५४) का 'रश्मिकलाप' ॥ ११ ॥ बत्तीस (३२) का 'गुच्छ' ॥१२॥ सत्ताईस (२७) की 'नक्षत्रमाला' ॥ १३ ॥ चौबीस (२४) का 'अर्धगुच्छ' ॥ १४ ॥ बीस (२०) का 'माणवक' ॥ १५ ॥ और उससे आधा अर्थात् दस (१०) का 'अर्धमाणवक' नाम कहा जाताहै ॥ १६ ॥

एत एव मणिमध्यास्तन्माणवका भवन्ति ॥ १७ ॥ एकशीर्षकः शुद्धो हारः ॥ १८ ॥

इन्हीं इन्द्रच्छन्द आदिके बीचमें यदि मणि लगादी जावे, तो उसका 'इन्द्रच्छन्दमाणवक' आदि नाम होजाता है। इसी तरह 'विजयच्छन्दमाणवक' आदि समझना चाहिये ॥ १७ ॥ यदि इन्द्रच्छन्द आदि किसी हारमें शीर्षक नामक यष्टिके ढंगसेही सम्पूर्ण मोती पिरोये हुए होवें तो वह इन्द्रच्छन्द और शीर्षकको जोड़कर शुद्धहार कहाता है, अर्थात् उसका नाम 'इन्द्रच्छन्दशीर्षक शुद्धहार' यह होता है। इसीप्रकार यदि विजयच्छन्दमें सम्पूर्ण मोती शीर्षकके समान पिरोये हुए होंगे, तो उसे 'विजयच्छन्दशीर्षकशुद्धहार' कहा जायगा। इसीतरह आगेभी 'देवच्छन्दशीर्षकशुद्धहार' आदि नाम समझने चाहियें ॥१८॥

तद्वच्छेषाः ॥ १९ ॥

ऊपरके सूत्र (१८) में केवल शीर्षक नामक यष्टिको लेकर कहागया। इसीतरह उपशीर्षक आदि यष्टियोंके सम्बन्धमेंभी समझना चाहिये। अर्थात् इन्द्रच्छन्द आदिमें यदि उपशीर्षकके समान मोती पिरोये हुए होवें, तो वह 'इन्द्रच्छन्दोपशीर्षक शुद्धहार' कहलावेगा। इसीतरह विजयच्छन्दोपशीर्षक शुद्धहार, देवच्छन्दोपशीर्षक शुद्धहार, अर्धहारोपशीर्षक शुद्धहार आदि नाम समझने चाहियें। इसीतरह यदि एक प्रकाण्डकेही समान सम्पूर्ण मोती पिरोये होवें,

तो इन्द्रच्छन्दप्रकाण्डक शुद्धहार आदि नाम होंगे। इसके अनुसारही एकही अवघाटक या तरलप्रतिबन्ध यष्टिके समान मोती पिरोये जानेपर नामोंकी कल्पना करलेनी चाहिये। अर्थात् इन्द्रच्छन्दावघाटक शुद्धहार और इन्द्रच्छन्द तरलप्रतिबन्धशुद्धहार आदि नाम समझलेने चाहियें ॥ १९ ॥

मणिमध्यो ऽर्धमाणवकः ॥ २० ॥

यदि इन शुद्धहारोंके बीचमें मणि लगादी जावे, तो वह बजाय शुद्धहारके अर्धमाणवक कहाता है, उसका नाम इन्द्रच्छन्दशीर्षकार्धमाणवक होगा। इसीतरह उपशीर्षक आदिको लेकरभी नाम समझलेने चाहियें। (पहिले जो माणवकको लेकर इन्द्रच्छन्दमाणवक आदि भेद बतलाये हैं, उनमें एक शीर्षक आदिका नियम नहीं है, वे संकीर्ण हैं शुद्ध नहीं; अर्थात् उनमें शीर्षक उपशीर्षक प्रकाण्डक आदि हरतरहसे मोती पिरोयेजाकरही इन्द्रच्छन्द आदिको तैयार करालिया जाता है, उनमें यदि बीचमें मणि डालदी जावे तो वह इन्द्रच्छन्द माणवक आदि नामोंसे पुकारा जायगा। यदि शुद्ध अर्थात् जिसमें एक शीर्षक आदिका नियम है, उसमें मोतियोंके बीच में मणि लगादी जावे तो, वह न माणवक और न शुद्ध कहलावेगा, प्रत्युत उसमें शीर्षक आदिके साथही अर्धमाणवक विशेषण लगेगा। उसका पूरा नाम इन्द्रच्छन्दशीर्षकार्धमाणवक, इन्द्रच्छन्दोपशीर्षकार्धमाणवक, इन्द्रच्छन्दप्रकाण्डकार्धमाणवक, इत्यादि रूपसे कल्पना करना चाहिये। इसीतरह आगे विजयच्छन्द आदिको लेकर विजयच्छन्दशीर्षकार्धमाणवक, विजयच्छन्दोपशीर्षकार्धमाणवक आदि नाम समझलेने चाहियें) ॥ २० ॥

त्रिफलकः फलकहारः पञ्चफलको वा ॥ २१ ॥

यदि किसीभी मोतीकी मालामें सोनेके तीन या पांच दाने लगेहुए होंगे, तो उसका नाम 'फलकहार' होगा। (महामहोपाध्याय गणपति शास्त्रीने २० और २१ दोनों सूत्रोंको इकट्ठा करदिया है। और उसका अर्थ इसप्रकार किया है,—'अर्धमाणवक अर्थात् दश यष्टिकी (जिसका कि वर्णन १६ वें सूत्रमें होचुका है) मालामें यदि सोनेके तीन या पांच दाने हों तो उसे 'फलकहार' कहाजाता है। हमारे विचारसें यदि कौटल्यको अर्धमाणवककाही विशेष अवस्थामें 'फलकहार' नाम रखना था, तो २० वें सूत्रमें उसे 'मणिमध्य' पद देनेकी कोई आवश्यकता न थी, क्योंकि अर्धमाणवक होताही मणिमध्य है, उसका लक्षण १६ वें सूत्रमें करादिया गया है, फिर मणिमध्य विशेषण देना व्यर्थ था। इसलिये ये दो सूत्र पृथक् २ ही ठीक मालूम होते हैं; इनका अर्थ ऊपर करादिया गया है) ॥ २१ ॥

सूत्रमेकावली शुद्धा ॥ २२ ॥ सैव मणिमध्या यष्टिः ॥२३॥ हेममणिचित्रा रत्नावली ॥ २४ ॥ हेममणिमुक्तान्तरो ऽपवर्तकः ॥ २५ ॥ सुवर्णसूत्रान्तरं सोपानकम् ॥ २६ ॥

शुद्ध अर्थात् एकशीर्षक आदि क्रमसे बनीहुई एकावली अर्थात् एकही लड़की मालाको 'सूत्र' कहाजाता है ॥ २२ ॥ यदि उसहीके बीचमें मणि लगादी जावे, तो उसका नाम 'यष्टि' होजायगा ॥ २३ ॥ सोनेके दाने और मणियोंसे बनीहुई चित्र मालाका नाम 'रत्नावली' होगा ॥ २४ ॥ यदि सोनेके दाने, मणि और मोती ये एक २ के बाद सिलसिलेवार गुथे हुए होवें, तो उसका नाम 'अपवर्तक' होगा ॥ २५ ॥ यदि बीचमें मणि लगीहुई न होवे, मोतियोंके साथ केवल सोनेकेही दाने लगे होवें, तो उसका नाम 'सोपानक' होता है ॥ २६ ॥

मणिमध्यं वा मणिसोपानकम् ॥२७॥ तेन शिरोहस्तपादकटीकलापजालकविकल्पा व्याख्याताः ॥ २८ ॥

यदि बीचमें मणि लगादी जावे, तो उसे 'मणिसोपानक' कहते हैं ॥ २७ ॥ इससे सिर हाथ पैर और कमरकी, भिन्न २ प्रकारकी मालाओंका व्याख्यान समझलेना चाहिये। इन्हींके अनुसार उनकीभी कल्पना करलेनी चाहिये। यहांतक मोतियोंके सम्बन्धमें निरूपण कियागया। अब मणिके सम्बन्धमें कहा जायगा ॥ २८ ॥

मणिः कौटो मौलेयकः पारसमुद्रकश्च ॥ २९ ॥

मणियोंके तीन मुख्य उत्पत्ति स्थान हैं, इसलिये मणि तीन प्रकारकी कहीजाती हैं;—कौट (मलयसागरके समीप कोटि नामक स्थान है, वहांपर उत्पन्न होनेवाली) मौलेयक (मलय देशके एक हिस्सेमें कर्णीवन नामक पर्वत माला है, वहांपर उत्पन्न होनेवाली मणि) और पारसमुद्रक (समुद्रके पार सिंहल आदि द्वीपोंमें उत्पन्न होनेवाली मणि) ये मणियोंके तीन भेद हैं ॥२९॥

सौगन्धिकः पद्मरागोऽनवद्यरागः पारिजातपुष्पको बालसूर्यकः ॥ ३० ॥

मणियोंमें पांच प्रकारका माणिक्य समझा जाता है,—सौगन्धिक (सौगन्धिक नामक कमलके समान रंगवाला; यह कमल साधारणतया सायंकाल के समय खिलता है इसका रंग कुछ नीलपनको लिएहुए लाल होता है), पद्मराग (पद्मके समान रंगवाला), अनवद्यराग (अनवद्य केसरको कहते हैं, केसरकी तरह रंगवाला), पारिजातपुष्पक (पारिजातके फूलके समान रंगवाला), तथा

बालसूर्यक (उदय होतेहुए सूर्यके समान अरुण रंगवाला) ये पांच भेद माणिकके हैं ॥ ३० ॥

वैडूर्य उत्पलवर्णः शिरीषपुष्पक उदकवर्णो वंशरागः शुकपत्त्रवर्णः पुष्यरागो गोमूत्रको गोमेदकः ॥ ३१ ॥

वैदूर्य जातिकी मणि आठ प्रकारकी होती है,—उत्पलवर्ण (लाल कमलके समान रंगवाली), शिरीषपुष्पक (सिरसके फूलके रंगवाली), उदक वर्ण (जलके समान स्वच्छ रंगवाली), वंशराग (बांसके पत्तेके समान रंग वाली), शुकपत्त्रवर्ण (तोतेके पंखोंकी तरह हरे रंगवाली), पुष्यराग (हलदीके समान पीले रंगवाली), गोमूत्रक (गोमूत्रके समान रंगवाली), गोमेदक (गोरोचनाके समान रंगवाली) ये आठ भेद वैदूर्य जातिकी मणिके हैं ॥३१॥

नीलावलीय इन्द्रनीलः कलायपुष्पको महानीलो जाम्बवाभो जीमूतप्रभो नन्दकः स्रवन्मध्यः ॥ ३२ ॥

इन्द्रनील जातिकी मणिभी आठ प्रकारकी होती है;—नीलावलीय (रंग सफेद होनेपरभी जिस मणिमें नीले रंगकी धारायें हों), इन्द्रनील (मोरके पंचकी तरह नीले रंगवाली), कलायपुष्पक (कलाय मटरको कहते हैं, मटरके फूलके समान रंगवाली), महानील (भौरेके समान गहरे काले रंगकी), जाम्बवाभ (जामुनके समान रंगकी), जीमूतप्रभ (मेघके समान वर्णकी), नन्दक (भीतरसे सफेद और बाहरसे नीला), तथा स्रवन्मध्य (जिसमेंसे जल प्रवाहके समान किरणें बहती हों), ये आठ भेद नीलम मणिके हैं ॥ ३२ ॥

शुद्धस्फटिकः मूलाटवर्णः शीतवृष्टिः सूर्यकान्तश्चेति मणयः ॥ ३३ ॥

स्फटिक (बिल्लौर) जातिकी मणि चार प्रकारकी होता है,—शुद्धस्फटिक (अत्यन्त शुक्ल वर्णकी), मूलाटवर्ण (मक्खन निकाले हुए दही अर्थात् तक्र=मठाके समान रंगवाली), शीतवृष्टि (चन्द्रकान्त=चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे पिघल जानेवाली), और सूर्यकान्त (सूर्यकी किरणोंका स्पर्श होनेपर आग उगलनेवाली मणि) ये चार भेद स्फटिक मणिके हैं। यहांतक भिन्न २ मणियोंके भेदोंका निरूपण कियागया ॥ ३३ ॥

षडश्रश्चतुरश्रो वृत्तो वा तीव्ररागसंस्थानवानच्छः स्निग्धो गुरुरर्चिष्मानन्तर्गतप्रभः प्रभानुलेपी चेति मणिगुणाः ॥ ३४ ॥

अब मणिके गुणोंका कथन करते हैं,—षडश्र (छः कोनोंवाली), चतुरश्र (चार कोनोंवाली), वृत्त (गोलाकार), गहरे रंगवाला अथवा बहुत चमकदार, जिसकी बनावट भूषण आदिमें लगानेके योग्य हो, निर्मल, चिकना, भारी, दीप्तिवाला, बीचमेंही चंचल प्रभावाला, तथा जो अपनी प्रभासे पास रक्खी हुई वस्तुको प्रभायुक्त या प्रकाशित करनेवाला हो; ये ग्यारह प्रकारके गुण मणियोंमें समझेजाते हैं ॥ ३४ ॥

मन्दरागप्रभः सशर्करः पुष्पच्छिद्रः खण्डो दुर्विद्धो लेखाकीर्ण इति दोषाः ॥ ३५ ॥

निम्न लिखित सात प्रकारके दोषभी मणियोंमें होते हैं,—हलके रंगवाली, हलकी कान्तिवाली, खरखरी (जिसके ऊपर छोटे २ दानेसे उठे हुए हों), जिसमें छोटे २ छेद या, कटीहुई हो, अनुपयुक्त स्थानपर या बेमौके जिसमें छेद होगया हो, तथा भिन्न प्रकारकी रेखाओंसे घिरीहुई हो; ये सात तरहके दोष मणियोंमें होते हैं ॥ ३५ ॥

विमलकः सस्यकोऽञ्जनमूलकः पित्तकः सुलभको लोहिताक्षो मृगाश्मको ज्योतीरसको मैलेयक आहिच्छत्रकः कूर्पः प्रतिकूर्पः सुगन्धिकूर्पः क्षीरपकः शुक्तिचूर्णकः शिलाप्रवालकः पुलकः शुक्रपुलक इत्यन्तरजातयः ॥ ३६ ॥

इन मणियोंकी अठारह अवान्तर जातियां और हैं,—विमलक (सफ़ेद और हरे रंगसे मिश्रित), सस्यक (नीला), अञ्जनमूलक (नीला और काला मिश्रित), पित्तक (गौके पित्ताके समान रंगवाला), सुलभक (सफ़ेद) लोहिताक्ष (किनारोंकी ओर लाल रंगवाला और बीचमें काला), मृगाश्मक (सफ़ेद और काला मिलाहुआ), किसी २ पुस्तकमें 'लोहिताक्ष'के स्थानपर 'लोहितक और 'मृगाश्मक' के स्थानपर 'अमृतांशुक' पाठ है; लोहितकका अर्थ लाल और अमृतांशुकका ज़र्दी माइल सफ़ेद करना चाहिये), ज्योतीरसक (सफ़ेद और लाल मिलाहुआ), मैलेयक (शिंगरफ़के समान रंगवाला), आहिच्छत्रक (फीके रंगवाला), कूर्प (खुरदरा, जिसके ऊपर छोटी २ बूंदसी उठीहुई हों), प्रतिकूर्प (दाग़ी, जिसपर धब्बे लगेहुए हों), सुगन्धिकूर्प (मूंगके समान वर्णवाला), क्षीरपक (दूधके समान वर्णवाला), शुक्तिचूर्णक (चित्रित, मिलेहुए कई रंगवाला), शिलाप्रवालक (प्रवालक, अर्थात् मूंगेके समान रंगवाला), पुलक (जो बीचमें काला हो), तथा शुक्रपुलक (जो बीचमेंसे सफ़ेद हो) ये मणियोंके अठारह अवान्तर भेद हैं ॥ ३६ ॥

शेषाः काचमणयः ॥ ३७ ॥

इनके अतिरिक्त जो और मणि हों, उन्हें काचमणि अर्थात् काचके समान अधम जातिकीही समझना चाहिये, वे निकृष्ट मणि होती हैं ॥ ३७ ॥

सभाराष्ट्रकं मध्यमराष्ट्रकं काश्मीरराष्ट्रकं श्रीकटनकं मणिमन्तकमिन्द्रवानकं च वज्रम् ॥ ३८ ॥

अब वज्रमणि अर्थात् हीरेका निरूपण कियाजाता है, - सभाराष्ट्रक (विदर्भ=बरार देशमें उत्पन्न होनेवाला), मध्यमराष्ट्रक (कोसल देशमें उत्पन्न होनेवाला), कास्तीरराष्ट्रक (कास्तीरराष्ट्रमें पैदा होनेवाला), (किसी २ पुस्तकमें 'कास्तीरराष्ट्रक' के स्थानपर 'काश्मीरराष्ट्रक' पाठ है; अर्थ स्पष्ट है), श्रीकटनक (श्रीकटननामक पर्वतपर उत्पन्न होनेवाला), मणिमन्तक (उत्तरकी ओरके मणिमन्तक नामक पर्वतपर उत्पन्न होनेवाला) तथा इन्द्रवानक (कलिङ्ग देशमें उत्पन्न होनेवाला), इन निर्दिष्ट छः स्थानोंसे उत्पन्न होनेके कारण छः प्रकारका हीरा समझना चाहिये । वस्तुतः हीरेकी उत्पत्तिके और भी अनेक स्थान हैं, इसलिये इन्हें दिग्दर्शन मात्रही समझना चाहिये ॥ ३८ ॥

खनिः स्रोतः प्रकीर्णकं च योनयः ॥ ३९ ॥

खान, कोई २ विशेष जलप्रवाह और हाथीदांतकी जड़ आदि, ये हीरेके उत्पत्ति स्थान समझने चाहियें । (खान और जल प्रवाहके अतिरिक्त जहांकहींसे भी हीरा पैदा हो, उसका नाम प्रकीर्णक होगा) ॥ ३९ ॥

मार्जाराक्षकं च शिरीषपुष्पकं गोमूत्रकं गोमेदकं शुद्धस्फटिकं मूलाटीपुष्पकवर्णं मणिवर्णानामन्यतमवर्णमिति वज्रवर्णाः ॥ ४० ॥

अब हीरेके रंगोंको बतलाते हैं,—मार्जाराक्षक (मार्जार=बिलावकी आंखके समान), शिरीषपुष्पक (सिरसके फूलके समान), गोमूत्रक (गोमूत्रके समान), गोमेदक (गोरोचनाके समान), शुद्धस्फटिक (अत्यन्त श्वेतवर्ण स्फटिकके समान), मूलाटीपुष्पकवर्ण (मूलाटीके फूलके समान), तथा मणियोंके बतलायेहुए रंगोंमेंसे किसीके समान रंगवाला हीरा होता है । ये ही हीरेके रंग होते हैं ॥ ४० ॥

स्थूलं गुरु प्रहारसहं समकोटिकं भाजनलेखितं कुभ्रामि भ्राजिष्णु च प्रशस्तम् ॥ ४१ ॥

मोटा, चिकना, भारी चोटको सहने वाला, बराबर कोनोंवाला, पानीसे भरेहुए पीतल आदिके वर्तनमें हीरा डालकर उस बर्तनके हिलाये जानेपर

वर्तनमें लकीर डालदेनेवाला, तकवेकी तरह घूमनेवाला (तकवा चर्खामें लगी हुई उस लोहेकी शलाकाका नाम है, जिसपर सूत लपेटा जाता है), और चमकदार हीरा प्रशस्त अर्थात् उत्तम समझा जाता है ॥ ४१ ॥

नष्टकोणं निरश्रि पार्श्वापवृत्तं चाप्रशस्तम् ॥ ४२ ॥

नष्टकोण अर्थात् शिखर रहित (कोनों से रहित), अश्रि रहित (तीक्ष्ण कोने से रहित), तथा एक ओर को अधिक निकले हुए कोनोंवाला हीरा अप्रशस्त अर्थात् दूषित समझा जाता है ॥ ४२ ॥

प्रवालकमालकन्दकं वैवर्णिकं च रक्तं पद्मरागं च करटं गर्भिणिकावर्जमिति ॥ ४३ ॥

प्रवाल अर्थात् मूंगा के दो उत्पत्तिस्थान हैं, इसलिये दो प्रकारका मूंगा समझना चाहिये,—आलकन्दक (अलकन्द नामका, म्लेच्छ देशोंमें समुद्रके किनारे एक स्थान है, वहांपर उत्पन्न होनेवाला) वैवर्णिक (यूनान देशके समीप त्रिवर्ण नामक समुद्रका एक भाग है, वहांपर उत्पन्न होनेवाला) । लाल तथा पद्मके समान रंग, यह दो प्रकारका मूंगेका रंग होता है । यह कीड़ेका खायाहुआ न होना चाहिये, तथा बीचमेंसे मोटा या उठाहुआ न होना चाहिये; अर्थात् इन दो प्रकारके दोषोंसे रहित होना चाहिये । यहांतक रत्नोंकी परीक्षाके सम्बन्धमें निरूपण कियागया । अब इसके आगे चन्दन आदि सार पदार्थोंका निरूपण किया जायगा ॥ ४३ ॥

चन्दनं सातनं रक्तं भूमिगन्धि ॥ ४४ ॥ गोशीर्षकं कालताम्रं मत्स्यगन्धि ॥ ४५ ॥ हरिचन्दनं शुकपत्त्रवर्णमाम्रगन्धि ॥ ४६ ॥ तार्णसं च ॥ ४७ ॥

चन्दनके सातन आदि सोलह उत्पत्तिके स्थान है, लाल आदि नौ रंग, और भूमिगन्ध आदि छः प्रकारके गन्ध हैं, चन्दनमें गुण ग्यारह होते हैं, इन्हीं सब बातोंका यथाक्रम निरूपण कियाजाता है:—सातन देशमें उत्पन्न होनेवाला चन्दन लाल रंगका तथा भूमिके गंधके समान गंधवाला होता है, (भूमिगान्ध= भूमिपर पहिलेही जल डालनेपर जैसा गन्ध मालूम होता है, उसके समान) ॥ ४४ ॥ गोशीर्ष देशमें उत्पन्न होनेवाला चन्दन कुछ काला और लाल मिले हुए रंगका होता है, तथा इसका गन्ध, मछलीके गन्धके समान होता है । (भट्टस्वामीने 'मत्स्यगन्धि' शब्दका अर्थ 'लाल करोंदेके गन्धके समान गन्धवाला' किया है) ॥ ४५ ॥ हरिचन्दन अर्थात् हरि नामक देशमें उत्पन्न होनेवाला चन्दन, तोतेके पंखके समान हरे रंगका, आमके गंधके समान गंध

वाला होता है ॥ ४६ ॥ और तृणसा नामक नदीके किनारेपर होनेवाला चन्दनभी हरिचन्दनके समानही होता है ॥ ४७ ॥

ग्रामेरुकं रक्तं रक्तकालं वा बस्तमूत्रगन्धि ॥ ४८ ॥ दैवसभेयं रक्तं पद्मगन्धि ॥ ४९ ॥ जावकं च ॥ ५० ॥

ग्रामेरु प्रदेशमें होनेवाला चन्दन लाल रंगका अथवा लाल और काले मिलेहुए रंगका होता है; इसका गन्ध, बकरेके पेशाबके समान होता है। (किसी २ व्याख्याकारने 'बस्त' शब्दका अर्थ कस्तूरीहिरणभी किया है, तब इसके पेशाबके समान गन्ध समझना चाहिये ॥ ४८ ॥ देवसभा नामक स्थान में होनेवाला चन्दन लाल रंगका, तथा पद्मके समान गन्धवाला होता हैं ॥४९॥ तथा जावक देशमें उत्पन्न होनेवाला चन्दनभी लाल रंग तथा पद्मके समान गन्धवाला होता है ॥ ५० ॥

जोङ्गकं रक्तं रक्तकालं वा स्निग्धम् ॥ ५१ ॥ तौरूपं च ॥ ५२ ॥ मालेयकं पाण्डुरक्तम् ॥ ५३ ॥ कुचन्दनं कालवर्णकं गोमूत्रगन्धि ॥ ५४ ॥

जोंग देशमें उत्पन्न होनेवाला चन्दन लाल रंगका अथवा लाल और काले मिलेहुए रंगका तथा चिकना होता है। इसका गन्ध पद्मके समानही होता है ॥ ५१ ॥ तुरूप देशका चन्दनभी जोङ्गक (जोंग देशके चन्दन) के सर्वथा समानही होता है ॥ ५२ ॥ माला स्थानके चन्दनका रंग कुछ पीला और लाल मिलाहुआ होता है। इसका गन्धभी पद्मके समान समझना चाहिये ॥ ५३ ॥ कुचन्दन काले रंगका तथा गोमूत्रके समान गन्धवाला होता है। (किसी २ व्याख्याकारने गोमूत्र शब्दका अर्थ नीला कमलभी किया है ॥५४॥

कालपर्वतकं रूक्षमगुरुकालं रक्तं रक्तकालं वा ॥ ५५ ॥ कोशकारपर्वतकं कालं कालचित्रं वा ॥ ५६ ॥

कालपर्वत देशमें पैदा होनेवाला चन्दन रूक्ष (अर्थात् कुछ रूखा सा= खरखरा), तथा अगरके समान काला, अथवा लाल या लाल और काले मिलेहुए रंगका होता है। इसका गन्ध गोमूत्रके समानही समझना चाहिये। (५४ और ५५ मूल सूत्रोंके स्थानपर किसी २ पुस्तक में "कुचन्दनं कालरूक्षमगरुकालं रक्तं रक्तकालं वा । कालपर्वतकमनवद्यवर्णं वा" ऐसा पाठ है। इस पाठमें कुछ शब्द इधर उधर होगये हैं, गन्ध बतलाने वाला कोई शब्द नहीं आया, जो अवश्य आना चाहिये; और कोई विशेष अर्थ–भेद नहीं है। 'अनवद्यवर्ण' शब्दका अर्थ केसरके समान रंग वाला करना चाहिए) ॥ ५५ ॥ कोशकारपर्वत नामके देशमें होनेवाला चन्दन, काला अथवा चितकबरा होता है ॥५६॥

शीतोदकीयं पद्माभं कालस्निग्धं वा ॥ ५७ ॥ नागपर्वतकं रुक्षं शैवलवर्णं वा ॥ ५८ ॥ शाकलं कपिलमिति ॥ ५९ ॥

शीतोदक देशमें होनेवाला चन्दन पद्मके समान रंगका अथवा काला तथा स्निग्ध होता है ॥ ५७ ॥ नागपर्वत प्रदेशमें उत्पन्न हुआ २ चन्दन रूखा और जलकी काई या सिरवालके समान रंगवाला होता है ॥ ५८ ॥ शाकल देशमें उत्पन्न होनेवाला चन्दन कपिल (कुछ पीला और कुछ लाल मिलेहुए) रंगका होता है । इन (५६ वें सूत्र से यहांतक बताए हुए सबही) चन्दनोंका गन्ध गोमूत्रके समान ही समझना चाहिये ॥ ५९ ॥

लघु स्निग्धमश्यानं सर्पिःस्नेहलेपि गन्धसुखं त्वगनुसार्यनुल्बणमविराग्युष्णसहं दाहग्राहि सुखस्पर्शनमिति चन्दनगुणाः ॥६०॥

चन्दनमें निम्नलिखित ये ग्यारह गुण होते हैं;:-लघु (हलका होना), चिकना, बहुत दिनमें सूखनेवाला, घृतके समान देहमें लगने वाला, मनोहर गन्धवाला, खालके भीतर प्रविष्ट होकर सुख देनेवाला, अनुल्बण अर्थात् फटाहुआ सा न दीखनेवाला, शरीरपर लेप करलेनेपर जिसके वर्ण या गन्धमें कोई भी विकार न हो. गरमीको सहन करनेवाला (अर्थात् देहपर लेप करनेसे देहकी गरमीको शान्त करने वाला, सन्तापको हरण करने वाला, तथा स्पर्श करनेमें अत्यन्त सुखकर प्रतीत होना, ये ग्यारह चन्दन के गुण होते हैं ॥६०॥

अगुरु जोङ्गकं कालं कालचित्रं मण्डलचित्रं वा ॥ ६१ ॥ श्यामं दोङ्गकम् ॥ ६२ ॥ पारसमुद्रकं चित्ररूपमुशीरगन्धि नवमालिकागन्धि वेति ॥ ६३ ॥

अब अगरके विषयमें निरूपण किया जायगा,:—जोङ्गक नामक अगर तीन तरह का होता है, काला, चितकबरा (जिसमें सफेद और काले रंगकी रेखायें सी हों), तथा जिसमें काली और सफेद बूंदसी पड़ी हों । अर्थात् सफेद और काले दागों से युक्त हो ॥ ६१ ॥ इसी तरह दोङ्गक नाम का अगर काला होता है । यह दोनों ही जोङ्गक और दोङ्गक आसाम देशमें उत्पन्न होते हैं ॥ ६२ ॥ समुद्र के पारका अर्थात् सिंहल द्वीप आदिमें उत्पन्न होने वाला अगर चित्र रूपका होता है, इनका गन्ध उशीर (खस) तथा नई चमेलीके समान होता है ॥ ६३ ॥

गुरु स्निग्धं पेशलगन्धि निर्हार्यग्निसहमसंप्लुतधूमं समगन्धं विमर्दसहमित्यगुरुगुणाः ॥ ६४ ॥

भारी, चिकना, मनोहर गन्धवाला, दूर तक फैल जाने वाली गन्धसे युक्त, अग्नि को सहन करने वाला, जिसका धुआं व्याकुलता उत्पन्न करने वाला न हो, जलाते समय आगे पीछे एक जैसी गन्ध का निकलना, तथा वस्त्र आदि पूंछ देनेपर भी गन्ध का उसी तरह बने रहना, ये अगरके गुण होते हैं ॥ ६४ ॥

तैलपर्णिकमशोकग्रामिकं मांसवर्णं पद्मगन्धि ॥६५॥ जोङ्गकं रक्तपीतकमुत्पलगन्धि गोमूत्रगन्धि वा ॥ ६६ ॥

अशोकग्राम (आसाम) में होने वाला तैलपर्णिक (एक प्रकारका चन्दन) मांसके समान वर्णवाला तथा पद्मके समान गन्ध वाला होता है। (व्याख्याकार भट्ट स्वामीने, 'मांसवर्ण' शब्दका अर्थ 'हरिणकी मांसपेशी के वर्णके समान; यह किया है) ॥ ६५ ॥ जोङ्गक (अर्थात् जोङ्ग नामक, आसाम के एक आवान्तर प्रदेशमें उत्पन्न होने वाला) तैलपर्णिक लाल तथा पीले मिले हुए से रङ्ग का होता है, इसका गन्ध कमल के समान अथवा गो-मूत्रके समान होता है ॥ ६६ ॥

ग्रामेरुकं स्निग्धं गोमूत्रगन्धि ॥ ६७ ॥ सौवर्णकुड्यकं रक्त-पीतं मातुलुङ्गगन्धि ॥ ६८ ॥ पूर्णकद्वीपकं पद्मगन्धि नवनीत-गन्धि वेति ॥ ६९ ॥

ग्रामेरु प्रदेशमें होने वाला तैलपर्णिक चिकना तथा गोमूत्र के समान गन्ध वाला होता है ॥ ६७ ॥ आसाम के सुवर्णकुड्य नामक स्थानमें होने वाला तैलपर्णिक कुछ लाल और कुछ पीले मिले हुएसे रङ्ग का होता है; तथा इसका गन्ध मातुलुङ्ग (एक तरह का नींबू) के समान होता है ॥ ६८ ॥ पूर्णक द्वीपमें उत्पन्न होने वाला तैलपर्णिक पद्मके समान अथवा मक्खनके समान गन्ध वाला होता है ॥ ६९ ॥

भद्रश्रीयं पारलौहित्यकं जातीवर्णम् ॥ ७० ॥ आन्तरवत्य-मुशीरवर्णम् ॥ ७१ ॥ उभयं कुष्ठगन्धि चेति ॥ ७२ ॥

भद्रश्रीय (एक प्रकारका चन्दन । कोई २ व्याख्याकार इसको कपूर भी कहते हैं) दो प्रकारका होता है, एक पारलौहित्यक और दूसरा आन्तर-वत्य, आसाम प्रान्तके लौहित्य नामक नदके पार होने वाला पारलौहित्यक कहाता है, इसका रङ्ग चमेलीके फूलके समान होता है ॥ ७० ॥ दूसरा आन्तर वत्य भी आसाम की अन्तरवती नदीके तटपर उत्पन्न होता है, तथा इसका रङ्ग खसके रङ्गके समान होता है ॥ ७१ ॥ इन दोनों का ही गन्ध कुष्ठ (कूट-एक औषधि का नाम है) के समान होता है ॥ ७२ ॥

कालेयकः स्वर्णभूमिजः स्निग्धपीतकः ॥ ७३ ॥ औत्तरपर्वतको रक्तपीतक इति साराः ॥ ७४ ॥ पिण्डक्वाथधूमसहमविरागि योगानुविधायि च ॥ ७५ ॥

कालेयक (दारु हल्दी या पीले चन्दन को कहते हैं), स्वर्ण भूमि (स्थान विशेष) में उत्पन्न होने वाला, तथा चिकना और पीले रङ्ग का होता है ॥ ७३ ॥ उत्तर पर्वत अर्थात् हिमालय पर होने वाला कालेयक लाल और पीले मिले हुए से रङ्ग का होता है। यहां तक सार वस्तुओंकी परीक्षा का कथन किया गया ॥ ७४ ॥ तैलपर्णिक, भद्रश्रीय और कालेयक, इन तीनोंके गुण निम्न लिखित हैं:—पीसने पर, पकाने पर, तथा आगमें जलाने पर, गन्धमें किसी प्रकारका विकार न होना, तथा दूसरी वस्तुके साथ मिलाने पर और देरतक रक्खे रहने पर भी इनके गन्ध आदिमें किसी तरहका भेद न आना ॥ ७५ ॥

चन्दनागरुवच्च तेषां गुणाः ॥ ७६ ॥ कान्तनावकं प्रैयकं चौत्तरपर्वतकं चर्म ॥ ७७ ॥

इसके अतिरिक्त, चन्दन और अगरके जो गुण, पीछे बताये गये हैं, वह भी इसमें समझने चाहियें ॥ ७६ ॥ अब फल्गु पदार्थों का निरूपण किया जाता है। उनमें सबसे प्रथम चमड़ा है, चमड़ा पन्द्रह तरह की जातियोंमें विभक्त है। सौ (१००)वें सूत्र तक इन्हींका क्रमशः वर्णन किया जायगा। उनमें से दो भेद यह हैं–कान्तनावक और प्रैयक, कान्तनाव और प्रैय देशोंमें जो चमड़ा पैदा होता है, उसीके ये नाम हैं, यह दोनों प्रकारका चमड़ा औत्तर-पर्वतक अर्थात् हिमालय में उत्पन्न हुआ २ कहा जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि ये दोनों ही देश हिमालय के ही अवान्तर प्रदेश हैं ॥ ७७ ॥

कान्तनावकं मयूरग्रीवाभम् ॥ ७८ ॥ प्रैयकं नीलपीतं श्वेतं लेखि बिन्दुचित्रम् ॥ ७९ ॥ तदुभयमष्टाङ्गुलायामम् ॥ ८० ॥

इन दोनों प्रकारके चमड़ोंमें से पहिला कान्तनावक, मोरकी गर्दनके समान कान्ति वाला होता है ॥ ७८ ॥ और दूसरा प्रैयक नीले पीले रङ्गका मिला हुआ तथा सफेद रङ्गका, रेखाओं वाला या बूंदोंसे विचित्रसा होता है। ॥ ७९ ॥ यह दोनों ही प्रकारका कान्तनावक और प्रैयक नामक चमड़ा आठ अंगुल विस्तार वाला होता है ॥ ८० ॥

बिसी महाबिसी च द्वादशग्रामीये ॥ ८१ ॥ अव्यक्तरूपा दुहिलितिका चित्रा वा बिसी ॥ ८२ ॥ परुषा श्वेतप्राया महाबिसी ॥ ८३ ॥ द्वादशाङ्गुलायाममुभयम् ॥ ८४ ॥

द्वादश ग्राम (हिमालयमें म्लेच्छों के बारह गांव प्रसिद्ध हैं, उन) में उत्पन्न होने वाला चमड़ा बिसी और महाबिसी नामसे कहा जाता है ॥ ८१ ॥ इन दोनोंमें से जिसका रूप (बहुत रङ्गोंके मिलनेके कारण) स्पष्टतया प्रतीत न हो, बालों वाला तथा चितकबरा सा हो, वह बिसी होता है ॥ ८२ ॥ कठोर तथा प्रायः सफेद रङ्गका चमड़ा महाबिसी कहाता है ॥ ८३ ॥ इन दोनों का विस्तार बारह २ अंगुल का माना गया है ॥ ८४ ॥

श्यामिका कालिका कदली चन्द्रोत्तरा शाकुला चारोहजाः ॥ ८५ ॥ कपिला बिन्दुचित्रा वा श्यामिका ॥८५॥ कालिका कपिला कपोतवर्णा वा ॥ ८७ ॥ तदुभयमष्टाङ्गुलायामम् ॥८८॥

हिमालयके आरोह नामक स्थानमें उत्पन्न होनेवाला चमड़ा पांच प्रकारका होता है:—श्यामिका, कालिका, कदली, चन्द्रोत्तरा और शाकुला ॥ ८५ ॥ कपिल रंग (सन्ध्याके समय जैसा पश्चिमकी ओर रंग दिखाई देता है), तथा बूंदोंसे चितकबरेसे रंगका चमड़ा 'श्यामिका' कहाता है ॥ ८६ ॥ 'कालिका' नामका चमड़ाभी कपिल रंगका अथवा कबूतरके समान रंगका होता है ॥८७॥ ये दोनों प्रकारके चमड़े आठ अंगुल विस्तारके समझे जाते हैं॥८८॥

परुषा कदली हस्तायता ॥ ८९ ॥ सैव चन्द्रचित्रा चन्द्रोत्तरा ॥ ९० ॥ कदलीत्रिभागा शाकुला कोठमण्डलचित्रा कृतकर्णिकाजिनचित्रा चेति ॥ ९१ ॥

'कदली' नामका चमड़ा कठोर खुरदरा होता है, इसकी लम्बाई एक हाथ समझी जाती है ॥ ८९ ॥ वह कदली नामक चमड़ाही यदि चांदके समान बूंदोंसे युक्त होवे, तो उसे 'चन्द्रोत्तरा' कहा जाता है। इन दोनोंका रंग कालिकाके समानही समझना चाहिये ॥ ९० ॥ कदलीसे तीन गुना बड़ा (अर्थात् तीन हाथका) अथवा कदलीका तीसरा हिस्सा (अर्थात् आठ अंगुल परिमाण का) 'शाकुला' नामक चमड़ा होता है, वह लाल धब्बोंसे युक्त होता है, तथा इसमें स्वभावतः ही कुछ गांठसी पड़ी होती हैं ॥ ९१ ॥

सामूरं चीनसी सामूली च बाह्लवेयाः ॥ ९२ ॥ षट्त्रिंशदङ्गुलमञ्जनवर्णं सामूरम् ॥ ९३ ॥ चीनसी रक्तकाली पाण्डुकाली वा ॥ ९४ ॥ सामूली गोधूमवर्णेति ॥ ९५ ॥

हिमालयके बाल्हव नामक प्रदेशमें तीन प्रकारका चमड़ा होता है, सामूर, चीनसी और सामूली ॥ ९२ ॥ छत्तीस अंगुल परिमाण वाला तथा अञ्जनके समान काले रंगका चमड़ा 'सामूर कहाता है ॥ ९३ ॥ लाल काले अथवा पीले और काले मिलेहुए रंगका चमड़ा 'चीनसी' होता है ॥ ९४ ॥ गेंहुए रंगका चमड़ा 'सामूली' कहाता है । इन दोनोंका परिमाण सामूरके समान छत्तीस अंगुल ही समझना चाहिये ॥ ९५ ॥

सातिना नलतूला वृत्तपुच्छा चौद्राः ॥ ९६ ॥ सातिना कृष्णा ॥ ९७ ॥ नलतूला नलतूलवर्णा ॥ ९८ ॥ कपिला वृत्त-पुच्छा च ॥ ९९ ॥ इति चर्मजातयः ॥ १०० ॥ चर्मणां मृदु स्निग्धं बहुलरोम च श्रेष्ठम् ॥ १०१ ॥

उद्र नामके जलचर प्राणीकी खाल तीन प्रकारकी होती है,–सातिना, नलतूला और वृत्तपुच्छा ॥ ९६ ॥ इनमेंसे 'सातिना' खाल काले रंगकी होती है ॥ ९७ ॥ नरसलकी बालके समान सफेद रंगकी खाल 'नलतूला' कहाती है ॥ ९८ ॥ तथा 'वृत्तपुच्छा' नामकी खाल कपिल (लाल और पीले मिलेहुएसे) रंगकी होती है ॥ ९९ ॥ यहांतक चमड़ेकी भिन्न २ जातियोंका निरूपण किया गया ॥ १०० ॥ चमड़ोंमेंसे मुलायम चिकना तथा अधिक बालों वाला चमड़ा उत्तम समझा जाता है ॥ १०१ ॥

शुद्धं शुद्धरक्तं पक्षरक्तं चाविकम् ॥ १०२ ॥ खचितं वान-चित्रं खण्डसङ्घात्यं तन्तुविच्छिन्नं च ॥ १०३ ॥ कम्बलः कौचपकः कुलमितिका सौमितिका तुरगास्तरणं वर्णकं तालिच्छकं वारवाणः परिस्तोमः समन्तभद्रकं चाविकम् ॥ १०४ ॥

भेड़की ऊनसे बुनेहुए कपड़े प्रायः, सफ़ेद, लाल, और कुछ लाल रंगके (अर्थात् जिनमें कुछ तन्तु लाल रंगके हों, और कुछ उनके साथ अन्य किसी रंगके मिले हों), होते हैं ॥ १०२ ॥ ये कपड़े बनावटके भेदसे चार प्रकारके होते हैं,–खचित (जिनपर कसीदेका काम कियाहुआ हो), वानचित्र (बुना-वटमेंही जिनमें तरह २ के फूल वगैरह डालदिये गये हों), खण्डसंघात्य (तरह २ की बुनावटके छोटे २ टुकड़ोंको जोड़कर जो कपड़ा बनाया गया हो) और तन्तुविच्छिन्न (बुननेके समय कुछ तन्तुओंको छोड़कर जालीकी तरह बुनाहुआ कपड़ा), ॥ १०३ ॥ बनकर तैयार हुए २ ऊनके कपड़ोंके साधारण-तया दस भेद हैं;–कम्बल, कौचपक अथवा केचलक (जंगलमें काम आने वाला शिरस्त्राण), कुलमितिका अथवा कलमितिका (हाथीके ऊपर डालने-

वाला झूल, अथवा हाथीपर अम्बारी रखते समय उसके नीचे पीठपर बिछानेका कपड़ा), सौमितिका (अम्बारीके ऊपर डालनेका काले रंगका कपड़ा), तुरगास्तरण (घोड़ेकी पीठपर डालनेका कपड़ा), वर्णक (रंगाहुआ कम्बल), तलिच्छक (यहभी एक तरहका कम्बल होता है, जो बिस्तरपर नीचे बिछानेके काममें आता है) वारवाण (कोट कुर्त्ता, या चोला आदि) परिस्तोम (धारीदार इस प्रकारका बनाहुआ कम्बल जो कुछ, बनावटकी विशेषता के कारण बड़ा सा मालूम पड़े), और समन्तभद्रक (चार खानेका कम्बल), ये सब कपड़े भेड़की ऊनसे तैयार कियेहुए होते हैं ॥ १०४ ॥

पिच्छलमार्द्रमिव च सूक्ष्मं मृदु च श्रेष्ठम् ॥ १०५ ॥ अष्टप्रोतिसंङ्घात्या कृष्णा भिङ्गिसी वर्षवारणमपसारक इति नैपालकम् ॥ १०६ ॥

चिकना, चमकदार, बारीक डोरेका, मुलायम कम्बल उत्तम समझा जाता है ॥ १०५ ॥ आठ टुकड़ोंको जोड़कर बनाई हुई, काले रंगकी 'भिङ्गिसी' होती है, यह वर्षासे बचनेके काममें लाई जाती है । इसी प्रकारके एक ही सीधे (अर्थात् टुकड़ोंसे न बनेहुए) कपड़ेका नाम 'अपतारक' है । यह कपड़े नेपाल देशमें बनाए जाते हैं ॥ १०६ ॥

संपुटिका चतुरश्रिका लम्बरा कटवानकं प्रावरकः सत्तलिकेति मृगरोम ॥ १०७ ॥

छः प्रकारका कपड़ा मृगके बालोंसे बनाया जाता है,:—संपुटिका (जांघिया, अथवा सुथन), चतुरश्रिका (किनारोंसे रहित, तथा कोनोंमें नौ अंगुल परिमाणमें बेल बूटोंसे युक्त), लम्बरा (ऊपर ओढ़नेका कपड़ा) कटवानक (मोटे सूत अर्थात् डोरेका बना हुआ कपड़ा), प्रावरक (ओढ़नेका कपड़ा, जिसके दोनों ओर किनारे हों), और सत्तलिका (नीचे बिछानेका कपड़ा), ये कपड़े, मृग अर्थात् भिन्न २ जंगली जानवरों की ऊनसे बनाये जाते हैं ॥ १०७ ॥

वाङ्गकं श्वेतं स्निग्धं दुकूलं पौण्ड्रकं श्यामं मणिस्निग्धं सौवर्णकुड्यकं सूर्यवर्णम् ॥ १०८ ॥

दुकूल अर्थात् दुशाला, देश भेदसे तीन प्रकारका होता है,—वाङ्गक, पौण्ड्रक, और सौवर्णकुड्यक । इनमें से वाङ्गक अर्थात् बंगालमें बना हुआ दुशाला सफेद तथा चिकना होता है । पौण्ड्रक अर्थात् पुण्ड्र देशमें बनाया

हुआ दुशाला काला तथा मणिके समान स्निग्ध होता है, और सौवर्णकुड्यक अर्थात् आसामके सुवर्णकुड्य नामक स्थानमें बनाया जानेवाला, सूर्यके समान चमकते हुए रंगका होता है ॥ १०८ ॥

मणिस्निग्धोदकवानं चतुरश्रवानं व्यामिश्रवानं च ॥१०९॥ एतेषामेकांशुकमर्धद्वित्रिचतुरंशुकमिति ॥ ११० ॥ तेन काशिकं पौण्ड्रकं च क्षौमं व्याख्यातम् ॥ १११ ॥

इन सबही दुशालों की बुनावट तीन प्रकारकी हो सकती है,–(१) पहिले दुशालेके साधन भूत तन्तु आदि द्रव्यों को जलसे भिगोकर, फिर उन्हें मणिबन्धसे रगड़ कर तन्तुओं को दृढ़ बनाकर, फिर बुनावट करना; (२) ताने और बाने में दोनों ओरसे ही बराबर एकसे बारीक तन्तुओं से बुनावट करना; (३) मिले हुए तन्तुओंसे (कपास, ऊन या रेशम आदि भिन्न २ जातियोंके, अथवा सफेद नीले पीले आदि भिन्न २ रंगोंके तन्तुओंसे) बुनावट करना ॥ १०९ ॥ इन सब दुशालोंमें वही उत्तम होता है, जिसके ताने और बानेमें एकसे ही सूक्ष्म तन्तु हों; इनसे ड्योढ़े दुगने तिगुने तथा चौगने मोटे तन्तुओंके होनेपर, उत्तरोत्तर वह दुशाला कम कीमतका समझा जाता है। यहांतक दुशालोंका निरूपण किया गया ॥ ११० ॥ इससे काशी प्रान्तमें तथा पुण्ड्र देशमें उत्पन्न होने वाले अर्थात् बनाये जाने वाले क्षौम (रेशमी वस्त्रों) का भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये। (अर्थात् जो सूक्ष्म इकहरे तन्तुओंका बना हो, वह उत्तम, और इसके आगे उत्तरोत्तर स्थूल तन्तुओंके होनेसे वह कम कीमतका समझा जाता है) ॥१११॥

मागधिका पौण्ड्रिका सौवर्णकुड्यका च पत्त्रोर्णाः ॥११२॥ नागवृक्षो लिकुचो वकुलो वटश्च योनयः ॥ ११३ ॥

मगध, पुण्ड्रक तथा सुवर्ण कुड्यक, इन तीन देशोंमें उत्पन्न होनेवाली 'पत्रोर्णा' होती है। ('पत्रोर्णा' ऊनके सदृश उन तन्तुओंका नाम है, जो भिन्न २ वृक्षोंके पत्तों आदि पर कीड़ोंके द्वारा उनकी लारसे बनाये जाते हैं। किसी २ व्याख्याकारने इसका अर्थ पत्ते आदिके रेशे, जो उन्हें कूटकर निकाले जाते हैं किया है) ॥ ११२ ॥ यह पत्रोर्णा निम्नलिखित चार वृक्षोंपर ही प्रायः अधिकतासे उत्पन्न होती है,–नागवृक्ष (नागकेसर अथवा पानबेल आदि) लिकुच (बड़हर) वकुल (मौलसरी), तथा वट (बड़) ॥ ११३ ॥

पीतिका नागवृक्षिका ॥ ११४ ॥ गोधूमवर्णा लैकुची ॥ ११५ ॥ श्वेता वाकुली ॥११६॥ शेषा नवनीतवर्णा ॥११७॥

नागवृक्ष पर होने वाली पत्रोर्णा पीले रंगकी होती है ॥ ११४ ॥ लिकुच अर्थात् बड़हर पर होनेवाली गेहुंए रंगकी होती है ॥ ११५ ॥ वकुल पर उत्पन्न होने वाली सफेद ॥ ११६ ॥ और शेष बड़ आदि वृक्षोंपर होने वाली पत्रोर्णा मक्खनके समान रंगवाली होती है ॥ ११७ ॥

तासां सौवर्णकुड्यका श्रेष्ठा ॥ ११८ ॥ तया कौशेयं चीन-पट्टाश्च चीनभूमिजा व्याख्याताः ॥ ११९ ॥

इन सबमें से सुवर्णकुड्य नामक देशमें उत्पन्न होनेवाली पत्रोर्णा सबसे उत्तम समझी जाती है ॥११८॥ इसके समानही अन्य रेशम, तथा चीन देशमें उत्पन्न होने वाले चीनपट्ट (चीन देशमें बने हुए रेशमी वस्त्र) भी समझ लेने चाहियें। (अर्थात् उनके भी नागवृक्ष आदि उत्पत्ति स्थान तथा पीले आदि रंग होते हैं) ॥ ११९ ॥

माधुरमापरान्तकं कालिङ्गकं काशिकं वाङ्गकं वात्सकं माहिषकं च कार्पासिकं श्रेष्ठमिति ॥ १२० ॥

मधुरा (पाण्ड्य देशकी राजधानी, इससे सम्पूर्ण देशका ग्रहण करना चाहिये), अपरान्तक (कोङ्कण देश), कलिङ्ग, काशी, वङ्ग, वत्स, और महिषक (मैसूर), इन देशोंमें उत्पन्न होने वाली कपासके कपड़े सब से उत्तम समझे जाते हैं। यहां तक फल्गु पदार्थोंका निरूपण किया गया। ॥ १२० ॥

अतः परेषां रत्नानां प्रमाणं मूल्यलक्षणम् ।
जातिं रूपं च जानीयान्निधानं नवकर्म च ॥ १२१ ॥

मौक्तिक से लगाकर कार्पासिक पर्यन्त जिन रत्न आदिका निरूपण इस प्रकरणमें कर दिया गया है, तथा जिनका निरूपण अगले प्रकरणों में किया जानेवाला है, उनसे अतिरिक्त रत्नोंके भी प्रमाण, मूल्य, लक्षण, जाति, रूप, निधान (उनके उपयोगका प्रकार), तथा नवकर्म (खान से निकलने पर उनके शोधन बेधन तथा घर्षण आदि का प्रकार) आदि सबके विषयमें अवश्य ही कोशाध्यक्ष को जानकारी प्राप्त करनी चाहिये ॥ १२१ ॥

पुराणप्रतिसंस्कारं कर्मगुह्यमुपस्करान् ।
देशकालपरीभोगं हिंस्राणां च प्रतिक्रियाम् ॥ १२२ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे कोशप्रवेश्यरत्नपरीक्षा एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥
आदितो द्वात्रिंशः ॥ ३२ ॥

तथा इसके अतिरिक्त पुराने रत्नोंका पुनः संस्कार, कर्मगुह्य (रत्नोंका छीलना, तथा उनका रंग आदि बदलना), उपस्कर (रत्नोंके साफ करनेके लिये अन्य उपयोगी साधन), देश कालके अनुसार उनके उपयोग तथा उनमें लगने वाले कीड़े या चूहे आदिका प्रतीकार भी कोशाध्यक्षको अवश्य जानना चाहिये ॥ १११ ॥

अध्यक्ष प्रचार द्वितीय अधिकरणमें ग्यारहवां अध्याय समाप्त ।

बारहवां अध्याय ।

३० प्रकरण ।

खानके कार्योंका संचालन ।

आकराध्यक्षः शुल्बधातुशास्त्ररसपाकमणिरागज्ञस्तज्ज्ञसखो वा तज्जातकर्मकरोपकरणसंपन्नः किट्टमूषाङ्गारभस्मालिङ्गं वाकरं भूतपूर्वमभूतपूर्वं वा भूमिप्रस्तररसधातुमत्यर्थवर्णगौरवमुग्रगन्धरसं परीक्षेत ॥ १ ॥

आकराध्यक्ष अर्थात् खानोंके अध्यक्षको चाहिये, कि वह शुल्ब शास्त्र (जिसमें तांबा आदिके सोना बनाने की विधि बतलाई गई हो, ऐसा शास्त्र), धातु शास्त्र (किसी धातुमें उचित उपायोंसे अधिक शक्ति उत्पन्न करदेनेकी विधि बताने वाला शास्त्र), रस (गुप्त रसायन आदि), पाक (सुवर्ण आदिको अग्निमें तपानेसे उनके रूपमें उत्कृष्टता उत्पन्न करदेना आदि), और मणिराग (मणियोंके वर्ण आदि बदलने) आदि के विषयमें अच्छी जानकारी प्राप्त करे। अथवा इन सब विषयोंको जानने वाले पुरुषोंके साथ रहकर, और इन चीजोंका लगातार व्यापार करने वाले पुरुषों, तथा अन्य कसी कुल्हाड़े, धौंकनी संडासी आदि आवश्यक साधनोंको साथमें लेकर; किट्ट (लोहेका मैल), मूषा (वह वस्तु, जिसके पात्रमें सुवर्ण आदिको रखकर तपाया जाता है), और अंगारभस्म (राख) आदि चिन्होंको देखकर पुरानी खानकी परीक्षा करे। तथा मट्टी, पत्थर, रस (जल आदि) आदिमें जहां धातु मिली हुई मालूम हो, या उसका रङ्ग बहुत चमकता हो, या वह मट्टी आदि बहुत भारी, अथवा तीव्र गन्धसे या तीव्र रससे युक्त हो, तो इन सब चिन्होंको

देखकर मौजूदा खानकी जांच करनी चाहिये; अर्थात् यह समझना चाहिये; कि यहांपर खान विद्यमान है ॥ १ ॥

पर्वतानामभिज्ञातोद्देशानां बिलगुहोपत्यकालयनिगूढखातेष्वन्तः प्रस्यन्दिनो जम्बूचूततालफलपक्वहरिद्राभेदहरितालमनःशिलाक्षौद्रहिङ्गुलुकपुण्डरीकशुकमयूरपत्त्रवर्णाः सवर्णोदकौषधीपर्यन्ताश्चिक्कणा विशदा भारिकाश्च रसाः काञ्चनिकाः ॥ २ ॥

पहिले पहिचाने हुए पहाड़ोंके गढ़ों गुफाओं, तराइयों, पथरीले स्थानों तथा बड़ी २ शिलाओंसे ढके हुए छिपे छेदोंमें बहने वाले; जामुन आम तथा ताड़के फलके समान, पकी हलदी हरताल मनसिल शहद शिंगरफ़ कमल, और तोते तथा मोरके पङ्खोंके समान रङ्ग वाले; अपने समान वर्णके जल तथा औषधि तक फैलने वाले, चिकने पवित्र तथा भारी जलोंको देखकर यह अनुमान करना चाहिये, कि जहांसे ये इसप्रकारके जल निकलकर बहरहे हैं, वहां अवश्यही सुवर्णकी खान है, अर्थात् सोनेकी खानके ये चिन्ह होते हैं ॥ २ ॥

अप्सु निष्ठ्यतास्तैलवद्विसर्पिणः पङ्कमलग्राहिणश्च ताम्ररूप्ययोः शतादुपरि वेद्धारः ॥ ३ ॥

इसप्रकारके जलोंको यदि दूसरे साधारण जलमें मिलाया जाय, और वे उसमें तेलकी तरह फैल जावें, अथवा कतक (जलको स्वच्छ करने वाला एक फल=निरबसी) के फलके समान जलको स्वच्छ करता हुआ नीचे बैठ जावे; अथवा सौ पल तांबे या चांदीको, उसके ऊपर डाला हुआ वह एक पल जल सुनहरा बनादेवे, तो भी समझना चाहिये कि इस जलके निकासके नीचे अवश्य सोनेकी खान है ॥ ३ ॥

तत्प्रतिरूपकमुग्रगन्धरसं शिलाजतु विद्यात् ॥ ४ ॥

यदि किसी स्थानपर उसके समान केवल उग्रगन्ध या उग्ररस हो, तो समझना चाहिये कि यहांपर शिलाजतुका उत्पत्ति स्थान है, सुवर्ण आदिका नहीं ॥ ४ ॥

पीतकास्ताम्रकास्ताम्रपीतका वा भूमिप्रस्तरधातवः प्रभिन्ना नीलराजीवन्तो मुद्गमाषकृसरवर्णा वा दधिबिन्दुपिण्डचित्रा हरिद्राहरीतकीपद्मपत्त्रशैवलयकृत्प्लीहानवद्यवर्णा भिन्नाश्चुञ्चुवालुकालेखाबिन्दुस्वस्तिकवन्तः सगुलिका अर्चिष्मन्तस्ताप्यमाना न

भिद्यन्ते बहुफेनधूमाश्च सुवर्णधातवः प्रतीवापार्थास्ताम्ररूप्यवेधनाः ॥ ५ ॥

पीले रङ्गकी, तांबेके रङ्गकी अथवा दोनों मिले हुए रङ्गकी भूमिधातु (मट्टी) और प्रस्तरधातु (पत्थर आदि), तोड़नेपर बीचमें नीली रेखाओंसे युक्त, अथवा मूंग उड़द या तिलोंके समान वर्णके दानोंसे युक्त; अथवा दहीके कणोंके समान छोटी २ बूंदोंसे घिरी हुई, या दही के समान बड़ी २ बूंदोंसे युक्त, हलदी, हरड़, कमलका पत्ता, सिरवाल, यकृत् प्लीहा तथा केसरके समान वर्णसे युक्त, तथा तोड़नेपर बारीक रेतके समान रेखाओं, बूदों या स्वस्तिकों (त्रिकोण रूपकी विशेष रेखाओं) से युक्त; छोटी २ गोलियों जैसे मोटे रेतसे युक्त; कान्ति युक्त; तपाये जानेपर न फटने वालीं तथा बहुत झाग और धुआं देनेवालीं, सुवर्णधातु होती हैं; अर्थात् इसप्रकारकी भूमिधातु और प्रस्तरधातु, तांबे तथा चांदीको सोना बनादेने वाली होती हैं। इनके मेलसे तांबा और चांदी भी सोना बन जाते हैं ॥ ५ ॥

शङ्खकर्पूरस्फटिकनवनीतकपोतपारावतविमलकमयूरग्रीवावर्णाः सस्यकगोमेदकगुडमत्स्यण्डिकावर्णाः कोविदारपद्मपाटलीकलायक्षौमातसीपुष्पवर्णाः ससीसाः साञ्जनाः विस्रा भिन्नाः श्वेताभाः कृष्णाः कृष्णाभाः श्वेताः सर्वे वा लेखाबिन्दुचित्रा मृदवो ध्मायमाना न स्फुटन्ति बहुफेनधूमाश्च रूप्यधातवः ॥ ६ ॥

शंख, कपूर, स्फटिक (बिल्लौर), नवनीत (मक्खन), कपोत (जङ्गली कबूतर), पारावत (ग्रामीण कबूतर), विमलक (सफेद तथा लाल रङ्गका मणि), और मोरकी गर्दनके समान रङ्ग वाले; सस्यक (नीले रङ्गकी मणि), गोमेदक (गौका पित्ता), गुड़, तथा मत्स्यण्डिका (शक्कर डलीदार) के समान रंग वाले; कचनार, कमल, पाटली, मटर, क्षुमा (एक तरहकी अलसी) तथा अलसीके समान वर्ण वाले; सीसेसे युक्त, अञ्जनसे युक्त, दुर्गन्धसे पूर्ण; तोड़े जानेपर बाहरसे सफेद मालूम होने वाले भीतरसे काले निकलें, तथा जो बाहरसे काले हों, वे भीतरसे सफेद निकलें; अथवा सबही तरह २ की रेखा तथा बूदोंसे चित्रितसे हों, मृदु, तथा तपाये जानेपर जो फटें नहीं, किन्तु बहुत झाग और धुआं उगलें; इसप्रकारके धातु रूप्यधातु कहे जाते हैं ॥ ६ ॥

सर्वधातूनां गौरववृद्धौ सत्त्ववृद्धिः ॥ ७ ॥

सबही कहे हुए अथवा आगे कहे जाने वाले धातुओंके सम्बन्धमें यह नियम समझना चाहिये, कि उनमें जितनी गुरुता अर्थात् भारीपन अधिक होगा, उतनेही वे अधिक सारवान समझे जावेंगे ॥ ७ ॥

तेषामशुद्धा मूढगर्भा वा तीक्ष्णमूत्रक्षारभाविता राजवृक्षवट-पीलुगोपित्तरोचना महिषखरकरभमूत्रलण्डपिण्डबद्धास्तत्प्रतीवा-पास्तदवलेपा वा विशुद्धाः स्रवन्ति ॥ ८ ॥

इन धातुओंमेंसे जो अशुद्ध हो, अथवा अपने मल आदि दोषोंसे ही जिनका सत्त्व यथार्थ प्रकट न होरहा हो, उनका शोधन करलिया जावे। शोधन के प्रकार ये हैं:—तीक्ष्ण मूत्र (मनुष्यका मूत्र अथवा हाथी घोड़ा गाय, गधा या बकरेका मूत्र), या तीक्ष्ण क्षार (अपामार्ग क्षार आदि) में इन धातुओंको कई बार भावना दीजावे। अमलतास, बड़, पीलु (विशेष वृक्ष), गौका पित्ता, गोरोचना; और भैंसा, तथा बालक ऊँट, इनके मूत्र और पुरीषके पिण्डके साथ मलिन धातुओंको भावना देकर शुद्ध किया जावे। अमलतास आदिके चूर्णके साथ अथवा उनसे लेप किये हुए धातु मलको नष्ट करके अपने असली रूपको प्रकट कर देते हैं। अर्थात् शुद्ध होजाते हैं ॥ ८ ॥

यवमाषतिलपलाशपीलुक्षारैर्गोक्षीराजक्षीरैर्वा कदली वज्र-कन्दप्रतीवापो मार्दवकरः ॥ ९ ॥

जौ उड़द, तिल, ढाक, और पीलुके क्षार; गाय तथा बकरीके दूधके साथ कदली तथा सूरण कन्दका योग करनेसे उनमें सोने और चांदीकी भावना दिये जानेपर ये सोने और चांदीको मृदु बनादेते हैं ॥ ९ ॥

मधुमधुकमजापयः सतैलं
घृतगुडकिण्वयुतं सकन्दलीकं ।
यदपि शतसहस्रधा विभिन्नं
भवति मृदु त्रिभिरेव तन्निषेकैः ॥ १० ॥

शहद, मुलहटी, बकरीका दूध, तेल, घृत, गुड़की शराब तथा खादरमें उत्पन्न होने वाले झाड़से युक्त इन सब वस्तुओं को मिलाकर यदि तीन वारभी सोने और चांदीमें भावना दी जावे, तो चाहे वह सोना आदि सैकड़ों हजारों तरह कटाफटा या खरखरा हो, अवश्य ही मृदु होजाता है ॥ १० ॥

गोदन्तशृङ्गप्रतीवापो मृदुस्तम्भनः ॥ ११ ॥ भारिकः स्निग्धो मृदुश्च प्रस्तरधातुर्भूमिभागो वा पिङ्गलो हरितः पाटलो लोहितो वा ताम्रधातुः ॥ १२ ॥

यदि गायके दांत और सींगको चूर्ण करके, पिघले हुए सुवर्णके ऊपर बुरक दिया जावे, तो उस सुवर्णकी मृदुताका लोप होजाता है। यहांतक सुवर्ण और रूप्य धातुके सम्बन्धमें निरूपण किया गया ॥ ११ ॥ भारी, चिकना तथा मृदु प्रस्तरधातु (पाषाणधातु) अथवा भूमिभाग (अर्थात् भूमिधातु), ताम्रधातु अर्थात् ताम्रके कारण होते हैं। (तात्पर्य यह है कि जिस स्थानपर इसतरहके पत्थर तथा भूभाग हों, वहां तांबेका उत्पत्ति स्थान समझना चाहिये। उसके रङ्ग चार प्रकारके बताये गये हैं,—पिङ्गल (पीला और लाल मिला हुआ, संध्याकालके समान), हरित (नीला), पाटल (कुछ २ लालसा), और लोहित (अर्थात् लाल) ॥ १२ ॥

काकमेचकः कपोतरोचनावर्णः श्वेतराजिनद्धो वा विस्रः सीसधातुः ॥१३॥ ऊषरकर्बुरः पक्वलोष्ठवर्णो वा त्रपुधातुः ॥१४॥

जो भूमिस्थान कौएके समान काला, कबूतर या गोरोचनाके समान वर्ण वाला, अथवा सफेद रेखाओंसे युक्त और दुर्गन्ध पूर्ण हो, वह सीसा नामक धातुका उत्पत्ति स्थान समझना चाहिये। अर्थात् ऐसे स्थानोंमें सीसेकी खान निकलती है ॥ १३ ॥ जो भूमिभाग, ऊसर भूमिके समान कुछ २ सफेद रङ्गका हो; अथवा पके हुए ढेलेके समान रङ्गवाला हो, वह त्रपु अर्थात् सफेद रङ्गके सीसेका उत्पत्ति स्थान समझना चाहिये ॥ १४ ॥

कुरुम्बः पाण्डुरोहितः सिन्दुवारपुष्पवर्णो वा तीक्ष्णधातुः ॥ १५ ॥ काकाण्डभुजपत्त्रवर्णो वा वैकृन्तकधातुः ॥ १६ ॥

प्रायः चिकने पत्थरोंसे युक्त, कुछ सफेद तथा लाल मिले हुएसे रङ्ग वाला, अथवा निर्गुण्डीके फूलके समान रङ्गवाला भूमिभाग, तीक्ष्णधातु अर्थात् लोहेका उत्पत्ति स्थान होता है ॥ १५ ॥ कौएके अण्डे तथा भोजपत्रके समान वर्ण वाला भूभाग, वैकृन्तक अर्थात् इस्पाती लोहेका उत्पत्ति स्थान होता है। यहांतक सात प्रकारकी लोहधातुओंका निरूपण कर दिया गया ॥ १६ ॥

अच्छः स्निग्धः सप्रभो घोषवान् शीतस्तीव्रस्तनुरागश्च मणिधातुः ॥१७॥ धातुसमुत्थितं तज्जातकर्मान्तेषु प्रयोजयेत् ॥१८॥

स्वच्छ, (ऐसा चमकता हुआ स्थान, जिसमें प्रतिबिम्ब दीखे), स्निग्ध (चिकना), प्रभायुक्त, अग्नि जलाने या चोट देनेपर बड़ा शब्द करने वाला, अत्यन्त शीतल, फीके रङ्गवाला, भूमिभाग, मणिधातु अर्थात् मणियोंका उत्पत्ति स्थान होता है ॥ १७ ॥ थोड़ेसे धनव्यय तथा यत्नसे जो सुवर्ण आदि भूमिसे प्राप्त होवे, उसे फिर अन्य अधिक खानके ही काममें लगा देवे; जिससे कि उत्तरोत्तर सुवर्ण आदिकी प्राप्ति होती रहे ॥ १८ ॥

कृतभाण्डव्यवहारमेकमुखमत्ययं चान्यत्र कर्तृक्रेतृविक्रेतॄणां स्थापयेत् ॥ १९ ॥

जो सुवर्ण आदि धातु विक्रीके लिये तैयार होजावें, उनका किसी एक ही नियत स्थानसे विक्रय कराना चाहिये। (इसका यही तात्पर्य मालूम होता है, कि राज्यकी ओरसे सुवर्ण आदि खनिज पदार्थों का भिन्न २ किसी एक व्यक्तिको ही ठेका दे देना चाहिए, उसही के द्वारा उन वस्तुओंका विक्रय करना उचित है)। यदि कोई व्यक्ति राजाज्ञाके बिना ही किसी स्थानमें सुवर्ण आदिकी उत्पत्ति करके क्रय विक्रय करने लगे तो उसे राजाकी ओरसे दण्ड मिलना चाहिये। अर्थात् राजाकी ओरसे जिन व्यक्तियों को इस कार्यके लिये आज्ञा मिल चुकी है, उनसे अतिरिक्त जो भी इस कार्यको करे, वह दण्डनीय समझा जावे ॥ १९ ॥

आकरिकमपहरन्तमष्टगुणं दापयेदन्यत्र रत्नेभ्यः ॥ २० ॥ स्तेनमनिसृष्टोपजीविनं च बद्धं कर्म कारयेत् ॥ २१ ॥ दण्डोपकारिणश्च ॥ २२ ॥

खनिज पदार्थोंका अपहरण करने वाले कार्यकर्त्ता पुरुषको, उस वस्तु से आठ गुना दण्ड, देना चाहिये। परन्तु रत्नोंकी चोरीके लिये यह दण्ड नहीं है, आगे उसका दण्ड, वध बतलाया जावेगा ॥ २० ॥ जो पुरुष चोरी करे, अथवा राजाकी अनुमतिके बिना ही खनिज पदार्थोंका व्यापार करे, उसे पकड़ कर खानके काममें लगा दिया जावे ॥ २१ ॥ और जिस पुरुषको अदालतमें किसी अपराधमें शारीरिक दण्ड दिया गया हो, परन्तु किसी विशेष कारणवश उसे यदि वह दण्ड न दिया जाता हो, तो इसके बदलेमें उस पुरुषको भी खानके कार्य करनेमें लगा दिया जावे ॥ २२ ॥

व्ययक्रियाभारिकमाकरं भागेन प्रक्रयेण वा दद्यात् ॥२३॥ लाघविकमात्मना कारयेत् ॥ २४ ॥

खानके ऊपर यदि और लोगोंका बहुत धन देना होगया हो, उस को चुकाकर ही खानकी आमदनी हो सकती हो, अथवा यह कार्य अत्यधिक यत्न से साध्य हो, तो आकराध्यक्षको चाहिए, कि वह थोड़ा २ करके, लोगोंके धन को धीरे २ चुका देवे। अथवा सुवर्णका कुछ भाग एक साथ राजाको देकर, उसके बदलेमें खजानेसे रुपया लेकर, लोगोंके धनको चूकता करदेवे ॥ २३ ॥ यदि थोड़े ही धन और परिश्रमसे यह कार्य सिद्ध होने वाला हो, तो स्वयं ही इस कार्यको पूरा करदेवे ॥ २४ ॥

लोहाध्यक्षस्ताम्रसीसत्रपुवैकृन्तकारकूटवृत्तकंसताललोहकर्मान्तान्कारयेत् ॥ २५ ॥ लोहभाण्डव्यवहारं च ॥ २६ ॥

लोहाध्यक्षको चाहिये कि वह अपने निरीक्षणमें तांबा, सीसा, त्रपु, वैकृन्तक, आरकूट, वृत्त, कंस, ताल तथा अन्य प्रकारके लोहेके सब कार्योंको करावे ॥ २५ ॥ तथा लोहेसे बनने वाले जितने भी पदार्थ हों, उन सबके व्यवहारको भी लोहाध्यक्ष करवावे ॥ २६ ॥

लक्षणाध्यक्षश्चतुर्भागताम्रं रूप्यरूपं तीक्ष्णत्रपुसीसाञ्जनानामन्यतमं माषबीजयुक्तं कारयेत् पणमर्धपणं पादमष्टभागमिति ॥ २७ ॥

लक्षणाध्यक्ष अर्थात् टकसालके अध्यक्षको चाहिये कि चांदी तथा तांबे के सिक्कोंको निम्न रीतिसे बनवावे । पहिले चांदी के सिक्केका निरूपण किया जाता है, वह चार प्रकारका होता है, पण अर्धपण पादपण, तथा अष्टभागपण। १६ माष प्रमाणका एक पण होता है, उसका चौथा भाग अर्थात् चार माष उसमें तांबा होना चाहिये, एक माप, लोहा रांग सीसा तथा अंजन इन चारों मेंसे कोई एक चीज होनी चाहिये । बाकी ग्यारह माष चांदी होनी चाहिये । इस परिमाणसे सोलह माषका एक पण तैयार होता है । इसी हिसाबसे अर्ध पण, पादपण, तथा अष्टभागपण तयार करावे ॥ २७ ॥

पादाजीवं ताम्ररूपं माषकमर्धमाषकं काकणीमर्धकाकणीमिति ॥ २८ ॥ रूपदर्शकः पणयात्रां व्यावहारिकीं कोशप्रवेश्यां च स्थापयेत् ॥ २९ ॥ रूपिकमष्टकं शतम् ॥ ३० ॥

पणके चौथे हिस्सेका व्यवहार करनेके लिये तांबेका एक अलहदा सिक्का बनाया जावे, इसका नाम माषक होता है । इसमें चौथाई हिस्सा चांदी, एक हिस्सा लोहे आदि चारोंमें से किसीका होना चाहिये, तथा ग्यारह माष तांबा होना चाहिये । इस प्रकार चांदीके पणकी तरह, यह तांबेका माषक भी सोलह माष परिमाणका होता है । इसी तरह इसके अर्धमाषकभी तयार करावे । पादमाषक और अष्टभागमाषकके लिये काकणी और अर्धकाकणी नामक सिक्कोंको बनवावे । इस तरह चार चांदीके तथा चार तांबेके सिक्के बनाये जाते हैं ॥२८॥ सिक्कोंकी परीक्षा करने वाला अधिकारी इस बातकी व्यवस्था करदेवे कि कौनसा सिक्का चलने अर्थात् व्यवहार करनेके योग्य है, और कौनसा खज़ाने में जमा करदेनेके योग्य है ॥ २९ ॥ सौ पणपर, जो आठपण राज्यभाग, जनता से लिया जाता है, उसका नाम 'रूपिक' है ॥ ३० ॥

पञ्चकं शतं व्याजीम् ॥ ३१ ॥ पारीक्षिकमष्टभागिकं शतम् ॥ ३२ ॥ पञ्चविंशतिपणमत्ययं चान्यत्र कर्तृक्रेतृविक्रेतृपरीक्षितृभ्यः ॥ ३३ ॥

सौ पणपर, पांचपण राज्यभाग 'व्याजी' कहाता है ॥ ३१ ॥ तथा सौ पणके आठवें हिस्से राज्यभाग को 'पारीक्षिक' कहा जाता है ॥ ३२ ॥ यदि कोई व्यक्ति इस आठवें हिस्से राज्यभागका अपहरण करे, तो उसे २५ पण दण्ड दिया जावे, यदि अधिक अपहरण करे, तो इसी ही हिसाबसे दुगना चौगना दण्ड दिया जावे, परन्तु सिक्कोंको बनाने वाले, खरीदने बेचने वाले, तथा परीक्षा करने वाले अधिकारी पुरुषोंके लिये यह दण्ड नहीं है। उनके लिये, द्रव्यकी सारासारताको देखकर पहिलेही दण्डका विधान कर दिया गया है ॥ ३३ ॥

खन्यध्यक्षः शङ्खवज्रमणिमुक्ताप्रवालक्षारकर्मान्तान्कारयेत् ॥ ३४ ॥ पणनव्यवहारं च ॥ ३५ ॥

आकराध्यक्ष (खानोंके अध्यक्ष) को चाहिये कि वह शंख, वज्र, मणि, मुक्ता, प्रवाल तथा सब तरहके क्षारों (यवक्षार आदि) की उत्पत्तिका प्रबन्ध करे ॥३४॥ तथा शंख आदिके क्रय विक्रय व्यवहारका भी प्रबन्ध करे ॥३५॥

लवणाध्यक्षः पाकमुक्तं लवणभागं प्रक्रयं च यथाकालं संगृह्णीयात् ॥ ३६ ॥ विक्रयाच्च मूल्यं रूपं व्याजीम् ॥ ३७ ॥

लवणाध्यक्षको चाहिये, कि वह तैयार किये हुए लवणको (अर्थात् खानमेंसे निकालकर बिक्री आदिके लिये तय्यार हुए २ लवणको), और किसी खानसे नियमित मात्रामें शर्तके तौरपर प्राप्त होने वाले लवणको ठीक २ समयपर संगृहीत करले ॥३६॥ और व्यापारियोंके द्वारा उसके बिक्रीका प्रबन्ध करे, विक्रयसे जो मूल्य प्राप्त होवे, उसे, तथा रूप और व्याजीको भी संगृहीत करे ॥ ३७ ॥

आगन्तुलवणं षड्भागं दद्यात् ॥ ३८ ॥ दत्तभागविभागस्य विक्रयः पञ्चकं शतं व्याजीं रूपं रूपिकं च ॥ ३९ ॥

परदेशसे आये हुए नमकपर, उसको बेचने वाला पुरुष, उसके मूल्यका छठा हिस्सा, राजाको करके तौरपर देवे। अर्थात् छठा हिस्सा राजाको टैक्स देवे ॥ ३८ ॥ जो बेचने वाला पुरुष, राजाके लिये छठा भाग देदेता है, तथा तोल का भी टैक्स देदेता है, वही अपने मालको बेच सकता है। और उस पुरुषको, प्रतिशत पांच, व्याजी, रूप (पारीक्षिक=सौका आठवां हिस्सा), और रूपिक भी राजाके लिये देना चाहिये ॥ ३९ ॥

क्रेता शुल्कं राजपण्याच्छेदानुरूपं च वैधरणं दद्यात् ॥४०॥ अन्यत्र क्रेता षट्छतमत्ययं च ॥ ४१ ॥

उस मालको खरीदने वाला व्यापारी नियमानुसार शुल्क (टैक्स) देवे; तथा राजाके बाज़ारमें बेचे जानेके कारण, उसकी छीजनके अनुसार ही उसकी पूर्त्ति करे। तात्पर्य यह है कि बाज़ारका टैक्स भी अलहदा देवे ॥ ४० ॥ राजकीय बाज़ारके रहते हुए जो व्यापारी, नमकको किसी अन्य स्थानमें खरीदता है, उससे प्रतिशत छः पण लिया जावे; तथा इससे अतिरिक्त दण्ड और दिया जावे ॥ ४१ ॥

विलवणमुत्तमं दण्डं दद्यात् ॥ ४२ ॥ अनिसृष्टोपजीवी च ॥ ४३ ॥ अन्यत्र वानप्रस्थेभ्यः ॥ ४४ ॥

घटिया या मिलावटी नमक बेचने वाले व्यापारीको उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ४२ ॥ तथा जो पुरुष राजाकी अनुमति लिये विना ही, नमकको उत्पन्न करता, तथा उसका व्यापार करता है, उसको भी उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ४३ ॥ परन्तु यह नियम वानप्रस्थ अर्थात् वनमें रहने वाले आश्रमी पुरुषोंके लिये नहीं है, अर्थात् राजाकी विना अनुमतिके भी वे स्वयं नमकको लेकर उसका उपयोग करसकते हैं ॥ ४४ ॥

श्रोत्रियास्तपस्विनो विष्टयश्च भक्तलवणं हरेयुः ॥ ४५ ॥ अतोऽन्यो लवणक्षारवर्गः शुल्कं दद्यात् ॥ ४६ ॥

श्रोत्रिय (वेदोंका अध्ययन करने वाले), तपस्वी, तथा बलात्कार कार्य करने वाले (अर्थात् अपनी इच्छा न होनेपर भी राजाकी इच्छानुसार कार्य करने वाले=बेगारी) पुरुष, विना शुल्कके भी, अपने उपयोग मात्रके लिये नमक लेजा सकते हैं ॥ ४५ ॥ इससे अन्य, लवण और क्षार वर्गका उपयोग करने वाले पुरुष, लवणाध्यक्ष या कोष्ठागाराध्यक्षको शुल्क देवें ॥ ४६ ॥

एवं मूल्यं विभागं च व्याजीं परिघमत्ययम् ।
शुल्कं वैधरणं दण्डं रूपं रूपिकमेव च ॥ ४७ ॥

इसप्रकार मूल्य, विभाग, व्याजी, परिघ (पारीक्षिक), अत्यय, शुल्क, वैधरण, दण्ड, रूप (चांदी तथा तांबेके सिक्के), और रूपिक ॥ ४७ ॥

खनिभ्यो द्वादशविधं धातुं पण्यं च संहरेत् ।
एवं सर्वेषु पण्येषु स्थापयेन्मुखसंग्रहम् ॥ ४८ ॥

तथा खानोंसे निकाले हुए बारह प्रकारके धातु, और भिन्न २ प्रकारके अन्य विक्रेय पदार्थोंका संग्रह करे। इसप्रकार सबही व्यापारी स्थानोंमें प्रधान प्रधान विक्रेय वस्तुओंका संग्रह अवश्य स्थापित करे ॥ ४८ ॥

आकरप्रभवः कोशः कोशाद्दण्डः प्रजायते ।
पृथिवी कोशदण्डाभ्यां प्राप्यते कोशभूषणा ॥ ४९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे आकरकर्मान्तप्रवर्तनं द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥
आदितः त्रयस्त्रिंशः ॥३३॥

कोशकी उन्नति खानोंपर निर्भर है, कोशके उन्नत होनेपर सेना भी तैयार कीजासकती है, कोशसे भूषित पृथिवी, कोश और दण्ड (सेना) के द्वाराही प्राप्त कीजासकती है ॥ ४९ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें बारहवां अध्याय समाप्त ।

तेरहवां अध्याय

३१ प्रकरण

अक्षशालामें सुवर्णाध्यक्ष का कार्य

खानसे निकाले हुए सोने चांदी आदि धातुओंको जिस स्थानमें संशोधन करके तयार किया जाय, उसे 'अक्षशाला' कहते हैं। इस कार्यका निरीक्षण करनेवाला जो अधिकारी पुरुष होता है, उसका नाम सुवर्णाध्यक्ष है। उसके कार्यों का इस प्रकरणमें निरूपण किया जायगा। जिसमें सुवर्णकी जाति, वर्ण, गुण, शोधन, दोषोंकी परीक्षा, अर्जन और रक्षाकरना आदि सबहीका समावेश है।

सुवर्णाध्यक्षः सुवर्णरजतकर्मान्तानामसंबन्धावेशनचतुःशालामेकद्वारामक्षशालां कारयेत् ॥ १ ॥ विशिखामध्ये सौवर्णिकं शिल्पवन्तमभिजातं प्रात्ययिकं च स्थापयेत् ॥ २ ॥

सुवर्णाध्यक्षको चाहिये, कि वह सोने चांदीके हरएक कामको करवानेके लिये, एकही प्रधान द्वारसे युक्त अक्षशालाका निर्माण करवावे। इसमें चारों ओर बड़े २ चार मकान हों, जिनका आपसमें एक दूसरेके साथ कोई सम्बन्ध हो ॥ १ ॥ विशिखामें (सुवर्णका व्यापार करनेवाले व्यापारियोंके बाज़ारका नाम 'विशिखा' है), बड़े कारीगर अर्थात् चतुर, कुलीन तथा विश्वस्त सौवर्णिक (सुवर्णका व्यापार करनेवाले पुरुष) की स्थापना करे। (सौवर्णिकके

कार्योंका निरूपण अगले प्रकरणमें किया जायगा। यह सुवर्णाध्यक्षके अधीन रहकरही अपना कार्य करता है, इसी बातको यहां बताया गया है) ॥ २ ॥

जाम्बूनदं शातकुम्भं हाटकं वैणवं शृङ्गशुक्तिजं, जातरूपं रसविद्धमाकरोद्गतं च सुवर्णम् ॥ ३ ॥

पांच प्रकारका, पांच वर्णोंसे युक्त सोना होता है; उसके तीन उत्पत्ति स्थान हैं, अर्थात् सुवर्ण तीन तरहसे उत्पन्न होसकता है। जाम्बूनद (मेरु पर्वतसे निकलनेवाली जम्बू नदीसे उत्पन्न होनेवाला सुवर्ण जामुन फलके रसके समान वर्णवाला होता है), शातकुम्भ (शतकुम्भ नामक पर्वतमें उत्पन्न होनेवाला सुवर्ण, कमलके रजके समान वर्णसे युक्त होता है), हाटक (सोनेकी खानसे उत्पन्न हुआ २ सोना, कांटेदार सेवतीके फूलके समान रंगवाला होता है), वैणव (वेणु पर्वतपर उत्पन्न होनेवाले सुवर्णका रंग कर्णिकार वृक्षके फूलके समान होता है), और शृङ्गिशुक्तिज (अर्थात् स्वर्ण भूमिसे उत्पन्न होनेवाला, मनसिलके समान रंगवाला होता है), यह वर्ण भेदसे पांच प्रकारका सोना होता है। इसके तीन उत्पत्ति प्रकार हैं: जातरूप (स्वयं शुद्ध, सुवर्ण रूपमें उत्पन्न हुआ २), रसविद्ध (रसोंके योगसे सोना बनाया हुआ), तथा आकरोद्गत (अशुद्ध रूपमें खानोंसे निकलनेवाला) ॥ ३ ॥

किञ्जल्कवर्णं मृदु स्निग्धमनादि भ्राजिष्णु च श्रेष्ठम् ॥ ४ ॥ रक्तपीतकं मध्यमम् ॥ ५ ॥ रक्तमवरम् ॥ ६ ॥

कमलके रजके समान वर्णवाला, मृदु, स्निग्ध, शब्द रहित, (किसी २ पुस्तकमें 'अनादि' शब्दके स्थानपर 'अनुनादि' पाठ है, उसका अर्थ 'लम्बा शब्द करनेवाला, करना चाहिये) और चमकदार सोना सबमें श्रेष्ठ समझा जाता है ॥ ४ ॥ लाल और पीले मिले हुए रंगका सोना मध्यम, ॥ ५ ॥ तथा लाल रंगका अवर अर्थात् निकृष्ट समझा जाता है ॥ ६ ॥

श्रेष्ठानां पाण्डु श्वेतं चाप्राप्तकम् ॥ ७ ॥ तद्येनाप्राप्तकं तच्चतुर्गुणेन सीसेन शोधयेत् ॥ ८ ॥

उत्तम जातिके सुवर्णोंमेंसे, जो सोना कुछ पीलासा अर्थात् भुरभुरा और सफेद रहगया हो वह 'अप्राप्तक' कहाता है। तात्पर्य यह है. कि संशोधन आदिके समयमें वह ठीक २ शुद्ध नहीं होता, उसमें कुछ मल आदि मिले रहते हैं, इसलिये उसे अपनी ठीक हालत तक प्राप्त न होनेके कारण अप्राप्तक कहाजाता है ॥ ७ ॥ उस सोनेमें जितना मैल मिलाहुआ हो, उससे चौगुना सीसा डालकर उसे शुद्ध करना चाहिये ॥ ८ ॥

सीसान्वयेन भिद्यमानं शुष्कपटलैर्ध्मापयेत् ॥ ९ ॥ रूक्षत्वाद्भिद्यमानं तैलगोमये निषेचयेत् ॥ १० ॥

यदि वह सीसाके मेलसे फटने लगे, तो जंगली कंडोंकी आगमें उसे तपाया जावे ॥ ९ ॥ यदि शोधन कालमें सुवर्णके अन्दर कुछ रूक्षता अर्थात् खरखरापन आजानेसेही वह फटता हो, तो तेल और गोबर दोनोंको मिलाकर उसमें भावना देवे । अथवा जबतक ठीक न होजाय, तबतक बार २ इन दोनों चीजोंमें सोनेको भिगो २ कर निकालता जावे ॥ १० ॥

आकरोद्गतं सीसान्वयेन भिद्यमानं पाकपत्त्राणि कृत्वा गण्डिकासु कुट्टयेत् ॥ ११ ॥ कन्दलीवज्रकन्दकल्के वा निषेचयेत् ॥ १२ ॥

खानसे निकालेहुए सोनेकोभी सीसा मिलाकर शुद्ध किया जावे; यदि सीसेके मेलसे वह फटने लगे, तो पके हुए पत्ते उसके साथ मिलाकर किसी लकड़ीके तख्तेपर रखकर उसे खूब कूटे ॥ ११ ॥ अथवा कन्दली लता, श्रीबेर, और कमलकी जड़का क्वाथ बनाकर उसमें उस सोनेको खूब भिगोवे, जबतक कि उसका फटना बिल्कुल दूर न होजाय ॥ १२ ॥

तुत्थोद्गतं गौडिकं काम्बुकं चाक्रवालिकं च रूप्यम् ॥१३॥ श्वेतं स्निग्धं मृदु च श्रेष्ठम् ॥ १४ ॥

चांदी चार प्रकारकी होती है,—तुत्थोद्गत (तुत्थ नामक पर्वतपर उत्पन्न होने वाली, इसका रंग चमेलीके फूलके समान होता है), गौडिक (आसाम देशमें उत्पन्न होने वाली, इसका रंग तगरके फूलके समान होता है), काम्बुक (काम्बु नामक पर्वतपर होने वाली, चांदीका०), तथा चाक्रवालिक (अर्थात् चक्रवाल खानसे पैदा होने वाली चांदीका रंग कुन्दके फूलके समान सफेद होता है । यह कुन्दका फूल माघके महीनेमें खिलता है) ॥ १३ ॥ सफेद, स्निग्ध तथा मृदु चांदी सबसे उत्तम समझी जाती है ॥ १४ ॥

विपर्यये स्फोटनं च दुष्टम् ॥ १५ ॥ तत्सीसचतुर्भागेन शोधयेत् ॥ १६ ॥ उद्गतचूलिकमच्छं भ्राजिष्णु दाधिवर्णं च शुद्धम् ॥ १७ ॥

इन गुणोंसे विपरीत अर्थात् कालापन, रुखाई, तथा खरखरापन, और फटे हुएसे होना, ये चांदीके दोष होते हैं ॥ १५ ॥ दूषित चांदीको, उससे चौथाई सीसा डालकर शुद्ध करे ॥ १६ ॥ जिसमें बुद्बुदेसे उठे हुए हों, तथा

जो स्वच्छ, चमकदार और दहीके समान सफ़ेद हो, वह चांदी शुद्ध होती है ॥ १७ ॥

शुद्धस्यैको हारिद्रस्य सुवर्णो वर्णकः ॥ १८ ॥ ततः शुल्बकाकण्युत्तरापसारिता आचतुःसीमान्तादिति षोडशवर्णकाः ॥१९॥

हलदीके समान स्वच्छ रंग वाले, शुद्ध सुवर्णका एक सोलह माषका वर्णक होता है; यह शुद्ध वर्णक कहा जाता है ॥ १८ ॥ फिर उसमें एक तांबेकी काकणी (माषका चौथा हिस्सा) मिलादी जावे, तथा उसकी बराबरका सोनेका हिस्सा उसमेंसे कम करदिया जावे, इसीतरह तांबेका हिस्सा मिलाने और सोनेका हिस्सा कम करनेसे सोलह वर्णक बन जाते हैं। क्योंकि यह एक एक काकणीका मेल चार माषतक ही होता है, और एक काकणी, एक माषका चौथा हिस्सा होता है, इसतरह चार माषमें सोलह काकणी होनेसे सोलह वर्णक बन जाते हैं। ये सोलहों मिश्रवर्णक कहाते हैं, एक पहिला शुद्ध वर्णक इनमें मिलानेसे सब वर्णक मिलकर सत्रह होजाते हैं ॥ १९ ॥

सुवर्णं पूर्वं निकष्य पश्चाद्वर्णिकां निकषयेत् ॥ २० ॥ समरागलेखमनिम्नोन्नते देशे निकषितम् ॥ २१ ॥ परिमृदितं परिलीढं नखान्तराद्वा गैरिकेणावचूर्णितमुपधिं विद्यात् ॥ २२ ॥

वर्णककी परीक्षा करनेके लिये, पहिले सुवर्णकी परीक्षा करे, अर्थात् उसे कसौटीपर घिसकर जांचे कि यह ठीक है, पश्चात् वर्णिकाको कसौटीपर घिसे ॥ २० ॥ घिसनेपर यदि समानही वर्ण और रेखा होवे, तथा घिसनेके स्थान ऊँचे नीचे नहों, तो वह कसौटीपरका परखना न्याय्य अर्थात् ठीक समझा जाता है ॥ २१ ॥ यदि बेचने वाला वर्णककी उत्कर्षता बतलानेके लिये कसौटीको उसपर ज़ोरसे रगड़ देवे, या ख़रीदने वाला, उसकी निकृष्टता बतलानेके विचारसे कसौटीको बहुत धीरेसे रगड़े; अथवा नाखूनके बीचमें कोई दूसरी गैरिक आदि पीतधातु रखकर उससे सोनेके साथ २ कसौटीपर रेखा करदे; तो इसप्रकार यह तीन प्रकारका कपट पूर्ण घिसना कहा जाता है। अर्थात् इसतरह कसौटीपर परखना कपट पूर्ण होनेसे उचित नहीं होता ॥ २२ ॥

जातिहिङ्गुलकेन पुष्पकासीसेन वा गोमूत्रभावितेन दिग्धेनाग्रहस्तेन संस्पृष्टं सुवर्णं श्वेतीभवति ॥ २३ ॥ सकेसरस्निग्धो मृदुर्भ्राजिष्णुश्च निकषरागः श्रेष्ठः ॥ २४ ॥

गोमूत्रमें भावना दिये हुए एक विशेष प्रकारके शिंगरफ़के साथ, तथा कुछ २ पीले रंगके हरतालके साथ लिपटे हुए हाथके अग्रभागसे सोनेका स्पर्श

करदेनेपर वह सोना सफ़ेद रंगकासा होजाता है, अर्थात् उसका चमकता हुआ रंग कुछ फीकासा पड़ जाता है। सोना खरीदने वाले व्यापारी प्रायः ऐसा करते हैं ॥ २३ ॥ बहुतसी केसरके समान रंग वाली, स्निग्ध (चिकनी), मृदु तथा चमकदार, कसौटीपर खिंची हुई रेखा सबसे उत्तम समझी जाती है। अर्थात् कसौटीकी रेखाका यदि ऐसा ऐसा रंग हो तो वह श्रेष्ठ समझनी चाहिये ॥ २४ ॥

कालिङ्गकस्तापी पाषाणो वा मुद्गवर्णो निकषः श्रेष्ठः ॥२५॥ समरागी विक्रयक्रयहितः ॥ २६ ॥

कलिङ्ग देशमें महेन्द्र पर्वतसे उत्पन्न होने वाली, अथवा तापी नामक नदीमें उत्पन्न होने वाली, मूंगके समान वर्णसे युक्त, कसौटी सबसे उत्तम होती है ॥ २५ ॥ सुवर्णके ठीक २ वर्णको ग्रहण करने वाली कसौटी, क्रय तथा विक्रय करने वाले दोनों ही व्यापारियोंके लिये अनुकूल होती है ॥ २६ ॥

हस्तिच्छविकः सहरितः प्रतिरागी विक्रयहितः ॥ २७ ॥ स्थिरः परुषो विषमवर्णश्चाप्रतिरागी क्रयहितः ॥ २८ ॥

हाथीके चमड़ेके समान खरखरी तथा सूखी हुईसी, कुछ २ हरे रंगसे युक्त, मामूली सोनेके रंगको भी बढ़ाकर दिखलाने वाली, कसौटी सुवर्ण बेचने वाले व्यापारियोंके लिये हितकर होती है ॥ २७ ॥ दृढ, परुष अर्थात् कठोर या खरखरी, विषमवर्ण अर्थात् तरह २ के रंगोंसे युक्त, उत्कृष्ट सुवर्णके भी उसके असली रंगोंको न दिखाने वाली कसौटी सुवर्ण आदि खरीदने वाले व्यापारियोंके लिये हितकर होती है ॥ २८ ॥

भेदश्चिक्कणः समवर्णः श्लक्ष्णो मृदुर्भ्राजिष्णुश्च श्रेष्ठः ॥२९॥ तापे बहिरन्तरश्च समः किञ्जल्कवर्णः कुरण्डकपुष्पवर्णो वा श्रेष्ठः ॥ ३० ॥

छेद अर्थात् सोनेका कटा हुआ छोटासा टुकड़ा, चिकना, अन्दर बाहरसे एकसे रंग वाला, स्निग्ध मृदु तथा चमकदार हो, तो वह सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है ॥ २९ ॥ उस सोनेके टुकड़े को अग्निमें तपाये जानेपर यदि वह बाहर और अन्दरसे एकसे ही रंगवाला रहे, अथवा कमल रजके समान रंगवाला, या कुरण्डक के फूलके समान रंग वाला हो, तो वह श्रेष्ठ समझा जाता है ॥ ३० ॥

श्यावो नीलश्चाप्राप्तकः ॥ ३१ ॥ तुलाप्रतिमानं पौतवाध्यक्षे वक्ष्यामः ॥३२॥ तेनोपदेशेन रूप्यसुवर्णं दद्यादाददीत च ॥३३॥

यदि तपाने पर उसके रंगमें कुछ फर्क पड़ जावे, वह कुछ २ बन्दरकेसे रंगका या नीलासा होजावे, तो समझना चाहिये कि वह सोना अप्रासक अशुद्ध या खोटा है ॥३१॥ सोना चांदी आदि तोलनेके प्रकारका निरूपण पौतवाध्यक्ष नामक प्रकरणमें किया जायगा ॥ ३२ ॥ उस प्रकरणमें बतलाये हुए तोलके अनुसार ही सुवर्ण लेना और देना चाहिये ॥ ३३ ॥

अक्षशालामनायुक्तो नोपगच्छेत् ॥ ३४ ॥ अभिगच्छन्नुच्छेद्यः ॥ ३५ ॥ आयुक्तो वा सरूप्यसुवर्णस्तेनैव जीयेत ॥३६॥

अक्षशालामें वह ही पुरुष जावें, जो वहां कार्य करते हैं, बाहरका अन्य कोई पुरुष वहां न जाने पाये। (यह सब सुवर्ण आदिके रक्षा करनेका विधान है) ॥ ३४ ॥ यदि निषेध करनेपर भी कोई पुरुष जाता हुआ पकड़ा जावे, तो उसका सर्वस्व अपहरण कर लिया जावे ॥ ३५ ॥ अक्षशालामें कार्य करने वाला पुरुषभी यदि अपने साथ सोना चांदी लेकर जावे, तो उसके अनुसारही उसे दण्डित किया जावे ॥ ३६ ॥

विचितवस्त्रहस्तगुह्याः काञ्चनपृषतत्वष्टृतपनीयकारवो ध्मायकचरकपांसुधावकाः प्रविशेयुः निष्कसेयुश्च ॥ ३७ ॥

रस आदिके योगसे सुवर्ण बनाने वाले शिल्पी, छोटी २ गोली आदि बनाने वाले, बड़े २ पात्र आदि बनाने वाले कारीगर, तथा तरह २ के आभूषण आदि बनाने वाले शिल्पी, और धौंकनी देने वाले, झाडू आदि लगा कर साफ करने वाले तथा अन्य परिचारक जनभी; अपने पहने हुए वस्त्र, हाथ तथा गुह्य स्थानों (जेब आदि, अथवा धोती आदि) की जांच कराकर ही अक्षशाला में भीतर प्रवेश करें और बाहर निकलें ॥ ३७ ॥

सर्वं चैषामुपकरणमनिष्ठिताश्च प्रयोगास्तत्रैवावतिष्ठेरन् ॥३८॥ गृहीतं सुवर्णं धृतं च प्रयोगं करणमध्ये दद्यात् ॥ ३९ ॥ सायं प्रातश्च लक्षितं कर्तृकारयितृमुद्राभ्यां निदध्यात् ॥ ४० ॥

इन शिल्पियोंके उपकरण अर्थात् काम करनेके औजार आदि, तथा आधे बनाये हुए अन्य आभूषण आदि कार्य, अक्षशालामें ही रक्खे रहें, उन्हें वहांसे बाहर कदापि न लेजाया जावे॥ ३८ ॥ भाण्डागारसे तोलकर लिया हुआ सोना तथा उससे बनाई हुई जो चीज होवे, उसे कार्य करनेके अन्तमें, भंडार के राजकीय लेखक को उसी प्रकार ठीक २ तोलकर सुपुर्द करदेवे, और उस सब काम को राजकीय पुस्तकमें लिखवा देवे, यह सब काम सुवर्णध्यक्ष को अवश्य करना चाहिये ॥ ३९ ॥ तथा सायंकाल और प्रातः काल, प्रति दिनके

कार्यकी समाप्ति तथा प्रारम्भमें, काम करने वाले सौवर्णिक, और कराने वाले सुवर्णाध्यक्ष की मुद्रा (मुहर=सील) से चिन्हित करके, भंडारका लेखक, उस सुवर्णको भण्डारमें रक्खे तथा देवे ॥ ४० ॥

क्षेपणो गुणः क्षुद्रकमिति कर्माणि ॥ ४१ ॥ क्षेपणः काचार्पणादीनि ॥ ४२ ॥ गुणः सूत्रवानादीनि ॥ ४३ ॥ घनं सुषिरं पृषतादियुक्तं क्षुद्रकमिति ॥ ४४ ॥

कर्म तीन प्रकारके होते हैं, क्षेपण, गुण तथा क्षुद्रक। (यहांपर यहअक्षशालाके कुछ आभूषण सम्बन्धी मुख्य कार्योंका ही कथन किया गया है) ॥ ४१ ॥ काचार्पण अर्थात् मणि आदिका जोड़ना (आभूषणों आदिपर जड़ाई का काम करना) 'क्षेपण' कहाता है ॥ ४२ ॥ सोनेके बनाये हुए बारीक सूत्र आदि का ग्रथन करना 'गुण' कहाता है ॥ ४३ ॥ ठोस तथा पोला, और छोटी २ बूंदों या गोलियोंसे युक्त आभूषण आदिका तयार करना 'क्षुद्रक' कर्म कहा जाता है ॥ ४४ ॥

अर्पयेत्काचकर्मणः पञ्चभागं काञ्चनं दशभागं कटुमानम् ॥ ४५ ॥ ताम्रपादयुक्तं रूप्यं रूप्यपादयुक्तं वा सुवर्णं संस्कृतं तस्माद्रक्षेत् ॥ ४६ ॥

काचकर्म अर्थात् मणिके जोड़ने की विधिका निरूपण किया जाता है:—मणिके पांचवें हिस्से नीचेके भागको, आधारभूत सुवर्णमें प्रवेश करदे। मणि को दृढ़ करनेके लिये उसके चारों ओर सोनेकी जो एक पट्टीसी लगाई जाती है, उस को कटुमान कहते हैं। मणिका जितना भाग सुवर्णके भीतर प्रवेश कर दिया गया है, उसमें आधा भाग अर्थात् दसवां हिस्सा कटुमान का होना चाहिये ॥ ४५ ॥ सुवर्णकार, संस्कृत किये जाते हुए सोने या चांदीमें कुछ मिलावट कर सकते हैं। चांदीके स्थानपर तांबेसे मिली हुई चांदी का, तथा सुवर्णके स्थानपर चांदीसे मिले हुए सुवर्णका वे लोग उपयोग करके उतने अंशका स्वयं अपहरण करसकते हैं, और वह मिश्रित सोना चांदी, शुद्ध सोना चांदीके समान ही प्रतीत होता है। इसलिये अध्यक्षको चाहिये कि वह इसप्रकारकी मिलावट की सदा निगरानी रक्खे, और यत्नपूर्वक असली चीजों की रक्षा करे ॥ ४६ ॥

पृषतकाचकर्मणस्त्रयो हि भागाः परिभाण्डं द्वौ वास्तुकम् ॥ ४७ ॥ चत्वारो वा वास्तुकं त्रयः परिभाण्डम् ॥ ४८ ॥

इसके पहिले शुद्ध काचकर्मका विधान करके, अब मिश्र काचकर्मकी विधि बताते हैं:—पृषत काचकर्म अर्थात् गुटिका आदिसे मिश्रत काचकर्मके किये जानेपर, उसके लिये जितना सुवर्ण लिया जावे, उसके पांच विभाग किये जावें, जिनमेंसे तीन भाग परिभाण्ड अर्थात् पद्म स्वस्तिक आदिका आकार बनानेके लिये होते हैं, और दो भाग उसका आधारपीठ अर्थात् उस बने हुए आकारको टिकानेके लिये होते हैं ॥ ४७ ॥ यदि मणि बड़ी २ होवें, तो उस सुवर्णके सात भाग किये जावें, जिनमेंसे चार भाग वास्तुक (आधारपीठ), और तीन भाग परिभाण्डके लिये काममें लाये जावें ॥ ४८ ॥

त्वष्टृकर्मणः शुल्बभाण्डं समसुवर्णेन संयूहयेत् ॥ ४९ ॥ रूप्यभाण्डं घनं घनसुषिरं वा सुवर्णार्धेनावलेपयेत् ॥ ५० ॥ चतुर्भागसुवर्णं वा वालुकाहिंगुलकस्य रसेन चूर्णेन वा वासयेत् ॥ ५१ ॥

अब त्वष्टृकर्म अर्थात् तांबे चांदी आदिके बनाये जाने वाले घन पत्र आदि कार्योंका प्रकार बताया जाता है:—तांबेके पात्रके साथ समान भाग सुवर्णका पत्र चढ़ावे। अर्थात् जितने तांबेका पात्र बना हुआ हो, उसके ऊपर उतने ही सोनेका पत्र चढ़वा देवे ॥ ४९ ॥ चांदीके पात्रपर (अर्थात् आभूषण आदिपर), चाहे वह ठोस हो या पोला, चांदीके भारसे आधे सुवर्णका उसपर पानी चढ़वादे। यदि पचास पल चांदीका आभूषण बना हुआ हो, तो उसपर पच्चीस पल सोनेका पत्र या पानी चढ़वादे ॥ ५० ॥ अथवा चौथा हिस्सा सोना लेकर, उसे बालू और शिंगरफके चूर्ण तथा रसके साथ मिलाकर, तुषकी अग्निपर पिघलाकर वसा देवे, अर्थात् चांदीके उस आभूषण आदिपर पानीकी तरह चढ़ादेवे। इसप्रकार यहांतक बराबर आधे तथा चौथाई सुवर्णके पत्र आदिके द्वारा तीन प्रकारके त्वष्टृकर्मका निरूपण किया गया ॥ ५१ ॥

तपनीयं ज्येष्ठं सुवर्णं सुरागं समसीसातिक्रान्तं पाकपत्त्रपक्वं सैन्धविकयोज्ज्वालितं नीलपीतश्वेतहरितशुकपोतवर्णानां प्रकृतिर्भवति ॥ ५२ ॥

अब तपनीय कर्मका निरूपण करते हैं:—आभूषण आदिके लिये तैयार किया हुआ, कमलरज आदिके समान स्वच्छ वर्ण वाला, तथा स्निग्ध और चमकदार सुवर्ण ज्येष्ठ अर्थात् उत्तम समझा जाता है। वह सोना शुद्ध होनेके कारण, नील पीत, श्वेत हरित तथा शुकपोत (तोतेका बच्चा) के वर्णके आभूषण आदिका प्रकृति अर्थात् कारण होता है। जो सुवर्ण अशुद्ध हो, उसे बरा-

बरका सीसा डालकर शुद्ध किया जावे; अथवा उसके पतले २ पत्रसे बनाकर, अरणे कंडोंकी आगमें तपाकर शुद्ध किया जावे। या सुराष्ट्र देश (सिन्धुदेश) की मट्टीके साथ रगड़कर साफ़ किया जावे। इसप्रकार शुद्ध करलेनेपर ही वह नील पीत आदि आभूषणोंका प्रकृति अर्थात् कारण होसकता है ॥ ५२ ॥

तीक्ष्णं चास्य मयूरग्रीवाभं श्वेतभङ्गं चिमिचिमायितं पीतचूर्णितं काकणिकः सुवर्णरागः ॥ ५३ ॥

इस सुवर्णके साथ फौलादी लोहा भी, नील पीत आदिका कारण होता है। वह लोहा मोर की गर्दनके समान आभा वाला होना चाहिये। तथा काटनेपर सफ़ेद निकले, और अत्यधिक चमकने वाला हो, उसे गरम करके चूर्ण बनाकर एक काकणी परिमाण (माषका चौथा हिस्सा) सुवर्णमें मिलादेवे, यह सुवर्णके रंगको अच्छी तरह चमका देता है ॥ ५३ ॥

तारमुपशुद्धं वास्थितुत्थे चतुः समसीसे चतुः शुष्कतुत्थे चतुः कपाले त्रिर्गोमये द्विरेवं सप्तदशतुत्थातिक्रान्तं सैन्धविकयोज्ज्वालितम् ॥ ५४ ॥

अथवा लोहेके स्थानपर अत्यन्त शुद्ध चांदीको उसमें मिलावे, वहभी इस प्रकार नील आदिकी प्रकृति हो जाती है। हड्डीके चूरेके साथ मिली हुई मट्टीसे बनी हुई मूषा (सोना आदि पिघलानेका पात्र विशेष) में चार बार; मट्टीके बराबर मिले हुए सीसेके चूरेकी बनी हुई मूषामें चार बार, कटुशर्कराकी मूषामें चार बार; शुद्ध मट्टी की मूषामें तीन वार, गोबरमें दो बार, इस तरह कुल सत्रह बार मूषाओंमें आवर्त्तित करके और फिर खारी सुराष्ट्र देशकी मट्टीसे रगड़कर उज्वलवर्ण किया हुआ, तथा संस्कृत किया हुआ रूप्यधातु शुद्ध हो जाता है ॥ ५४ ॥

एतस्मात्काकण्युत्तरापसारिता, आद्विमाषादिति सुवर्णे देयं पश्चाद्रागयोगः, श्वेततारं भवति ॥ ५५ ॥

इसमें से काकणी परिमाण (माषका चौथा हिस्सा) चांदी लेकर सोने में मिलादी जावे, तथा उसमें से इतना ही सोना निकाल दिया जावे। इस तरह क्रमपूर्वक दो माषतक चांदी मिलाई जासकती है, तथा उतना ही सोना उसमें से कम किया जासकता है। इस प्रकार सुवर्णमें चांदीका प्रक्षेप करनेसे तथा पीछेसे रंगको चमकाने वाली चीजोंका योग करनेसे वह सुवर्ण, चांदीके समान अत्यधिक चमक वाला होजाता है॥ ५५ ॥

त्रयोऽशास्तपनीयस्य द्वात्रिंशद्भागश्वेततारमूर्छितं तत् श्वेत-लोहितकं भवति ॥ ५६ ॥ ताम्रं पीतकं करोति ॥ ५७ ॥

बत्तीस विभागोंमें विभक्त किये हुए साधारण सोनेमें से तीन हिस्से निकालकर, उनकी जगह उक्त प्रकारसे शुद्ध किये हुए उतने ही सुवर्ण को मिला दिया जावे; फिर उसमें बत्तीसवां हिस्सा शुद्ध की हुई चांदी मिलाकर भावना दी जावे, तो वह सुवर्ण सफ़ेद और लाल मिले हुए रंगका होजाता है। (किसी २ व्याख्याकारने इसका अर्थ इस प्रकार किया है:—बत्तीस भागोंमें से तीन भाग शुद्ध सुवर्णके और बाकी चांदीके होने चाहियें, इनको मिलाकर आवर्त्तन करनेपर, उसका रंग सफ़ेद और लाल मिला हुआ हो जाता है) ॥ ५६ ॥ यदि पूर्वोक्त रीतिसे ही चांदीके स्थानपर तांबेको सोनेमें मिला दिया जावे, तो वह उसके रंगको पीला बना देता है। (किसी २ व्याख्याकारने इस सूत्रका अर्थ इस प्रकार किया है:—बत्तीस भाग चांदीके स्थानपर तांबे का उपयोग करके, अर्थात् चांदीके बजाय तांबा बत्तीस भाग लेकर उसमें तीन भाग शुद्ध सोना मिला दिया जावे, तो उसका रंग पीला होजाता है ॥५७॥

तपनीयमुज्ज्वाल्य रागत्रिभागं दद्यात् ॥ ५८ ॥ पीतरागं भवति ॥ ५९ ॥

साधारण सोनेको, सुराष्ट्र देशकी खारी मिट्टीके द्वारा चमकाकर, उसमें शुद्ध हुए २ सोनेका तीसरा हिस्सा मिलादेवे ॥ ५८ ॥ ऐसा करनेसे उसका रंग पीला और लाल मिला हुआ सा हो जाता है। (किसी २ व्याख्याकार ने इन दो सूत्रोंका अर्थ इस प्रकार किया है:—शुद्ध हुए २ सुवर्ण को खारी सेन्धा मट्टीसे चमकाकर, उसमें तीसरा हिस्सा तांबा मिला दिया जावे, ऐसा करनेसे उसका रंग लाल पीला होजाता है) ॥ ५९ ॥

श्वेततारभागौ द्वावेकस्तपनीयस्य मुद्गवर्णं करोति ॥ ६० ॥

शुद्ध चांदीके दो भाग और एक भाग सोनेका मिलाकर भावना देनेसे उसका रंग मूंगके रंगके समान होजाता है ॥ ६० ॥

कालायसस्यार्धभागाभ्यक्तं कृष्णं भवति ॥ ६१ ॥ प्रति-लेपिना रसेन द्विगुणाभ्यक्तं तपनीयं शुकपत्त्रवर्णं भवति ॥६२॥ तस्यारम्भे रागविशेषेषु प्रतिवर्णिकां गृह्णीयात् ॥ ६३ ॥

लोहेके आधे भागसे मिला हुआ (रंग बदलनेके लिये, जितना सोना हो उसका तीसरा हिस्सा लोहा पीछे कहा गया है, उसका आधा अर्थात् छटा हिस्सा लोहेका मिला हुआ) सोना कालेसे रंगका होजाता है ॥ ६१ ॥ पिघले

हुए लोहे तथा शुद्ध चांदीसे मिला हुआ दुगना सोना, तोतेके पंखोंके समान वर्ण वाला होजाता है ॥ ६२ ॥ पहिले कहे हुए नील पीत आदिके प्रारम्भमें, विशेष २ रंगोंके विषयमें, न्यूनाधिकताके भेदको जाननेके लिये, प्रत्येक वर्णक का ग्रहण करलेवे ॥ ६३ ॥

तीक्ष्णताम्रसंस्कारं च बुद्ध्येत ॥ ६४ ॥ तस्माद्वज्रमणिमुक्ताप्रवालरूपाणामपनेयिमानं च रूप्यसुवर्णभाण्डबन्धप्रमाणानि चेति ॥ ६५ ॥

सोनेके रंग बदलनेमें काम आने वाले लोहे और तांबेका शुद्ध करना अत्यन्त आवश्यक है; इस लिये उनके शुद्ध करने की विधि अच्छी तरह जान लेनी चाहिये ॥ ६४ ॥ उत्तम प्रकारके वज्र मणि मुक्ता प्रवाल आदिमें, असार (घटिया) वज्र मणि आदि मिलाकर कोई उनका अपहरण न करसके, तथा सोने चांदी आदिकी बननेवाली चीजोंमें कोई न्यूनाधिक मेल करके गड़बड़ न कर सके; इसलिये वज्र मणि मुक्ता आदिके सम्बन्धमें, और सोने चांदीके आभूषणों तथा पात्रों आदिके बन्ध (सोने चांदी आदिका नियमित मात्रामें मिलाना) और प्रमाणके सम्बन्धमें अच्छी तरह जानकारी प्राप्त करनी चाहिये ॥ ६५ ॥

समरागं समद्वन्द्वमशक्तं पृषतं स्थिरम् ।
सुविमृष्टमसंवीतं विभक्तं धारणे सुखम् ॥ ६६ ॥
अभिनीतं प्रभायुक्तं संस्थानमधुरं समम् ।
मनोनेत्राभिरामं च तपनीयगुणाः स्मृताः ॥ ६७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे अक्षशालायां सुवर्णाध्यक्षस्त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

आदितश्चतुस्त्रिंशः ॥ ३४ ॥

सुवर्णके बने हुए आभूषणोंमें निम्न लिखित चौदह गुण होते हैं:— एकसा रंग होना, भार तथा रूप आदिमें एक दूसरेके समान होना, बीचमें कहीं गांठ आदिका न होना, टिकाऊ (स्थिर होना, बहुत दिनों तक नष्ट न होना), अच्छी तरह साफ़ करके चमकाया हुआ, ठीक ढंगपर बना हुआ, विभक्त अवयवों वाला, धारण करनेमें सुखकर होना ॥ ६६ ॥ साफ़ सुथरा, कान्तियुक्त, मनोहर आकृतिसे युक्त होना, एकसा होना, मन तथा नेत्रोंको सुन्दर लगने वाला होना, ये चौदह गुण सुवर्णके बने हुए आभूषणोंमें हुआ करते हैं ॥ ६७ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें तेरहवां अध्याय समाप्त ।

चौदहवां अध्याय

३२ प्रकरण

विशिखामें सौवर्णिकका व्यापार।

सुवर्ण का व्यापार करने वाले व्यापारियोंके बाजारका नाम विशिखा है। उसमें, सोनेका व्यापार (कार्य) करनेके लिये नियुक्त हुए २ पुरुषोंके कार्यों का इस प्रकरण में निरूपण किया जायगा।

सौवर्णिकः पौरजानपदानां रूप्यसुवर्णमावेशनिभिः कारयेत् ॥ १ ॥ निर्दिष्टकालकार्यं च कर्म कुर्युः, अनिर्दिष्टकालं कार्योपदेशम् ॥ २ ॥

सौवर्णिक (आभूषण आदिका बड़ा व्यापारी पुरुष), नगर निवासी तथा जनपद निवासी पुरुषोंके सोने चांदीके आभूषणों को, शिल्पशालामें काम करने वाले, सुनारोंके द्वारा तैयार करावे ॥ १ ॥ शिल्पियोंको चाहिये कि वे अपने नियत समय तथा वेतन आदिका निर्णय करके कार्य करें। कार्यकी गुरुता अर्थात् कार्य की अधिकता होनेपर नियत समय आदिका निर्देश किये बिनाभी वे लोग कार्य कर सकते हैं। तात्पर्य यह है कि कार्य यथावश्यक ठीक वादेके अनुसार ही कर देना चाहिये ॥ २ ॥

कार्यस्यान्यथाकरणे वेतननाशः तद्द्विगुणश्च दण्डः ॥ ३ ॥ कालातिपातेन पादहीनं वेतनं तद्द्विगुणश्च दण्डः ॥ ४ ॥

यदि कोई शिल्पी कार्यको अन्यथा करदेवे, अर्थात् उसे कुण्डल बनाने को दिये जावें; और रुचक बनादेवे, तो उसके वेतन (मजदूरी) को जब्त कर लिया जावे, तथा नियत वेतनसे दुगना दण्ड दिया जावे ॥ ३ ॥ यदि कोई कारीगर ठीक वादेपर काम करके न देवे, तो उसे नियत वेतनमेंसे पौना वेतन दिया जावे, अर्थात् वेतन का चौथाई हिस्सा जब्त कर लिया जावे। और जितना वेतन उसको दिया जावे, उससे दुगना दण्ड और अतिरिक्त दिया जावे ॥ ४ ॥

यथावर्णप्रमाणं निक्षेपं गृह्णीयुस्तथाविधमेवार्पयेयुः ॥ ५ ॥

कारीगर लोग जिस तरह का तथा जितना सोना चांदी आदि, आभूषण बनाने के लिये लेवें, उसी तरहका (यहांपर सुवर्णके रूप आदिकी समानता अपेक्षित है) तथा उतने ही वजनका आभूषण बनाकर देदेवें ॥ ५ ॥

कालान्तरादपि च तथाविधमेव प्रतिगृह्णीयुरन्यत्र क्षीण-परिशीर्णाभ्याम् ॥ ६ ॥

सोना आदि देनेवाले पुरुष, कालान्तरमें भी (अर्थात् जिस सुनारको उन्होंने सोना, आभूषण आदि बनानेके लिये दिया है, उसके परदेस चले जानेपर या अकस्मात् मरजानेपर, उसके पुत्रादि से) उसही प्रकारके सोनेको वापस लेवें) । यदि उनका वह सोना आदि नष्ट होगया हो, या कुछ छीज गया है, तो उसके लिये शिल्पी अवश्यही दण्डभागी होगा । तात्पर्य यह है कि परदेस जाने आदि की बाधासे यदि वादेमें कुछ विलम्ब होजाय, तो कारीगरकी वेतन हानि न कीजाय, और न उसे कोई दण्ड दिया जावे । परन्तु सुवर्ण आदिके नष्ट होजानेपर या कुछ न्यून हो जानेपर दण्ड होना आवश्यक है ॥ ६ ॥

आवेशनिभिः सुवर्णपुद्गललक्षणप्रयोगेषु तत्तज्जानीयात् ॥७॥ तप्तकलधौतकयोः काकणिकः सुवर्णे क्षयो देयः ॥ ८ ॥

शिल्पियोंके द्वारा किये जानेवाले सुवर्ण (उनको संस्कृत करके कमल-रजके समान बना देना , पुद्गल (आभूषण आदिका भृङ्गार=सुवर्णसे बना हुआ पात्रविशेष), तथा लक्षण (मुद्राचिन्ह) आदिके प्रयोगोंमें, उनकी विधि तथा अन्य सबही बातोंको सौवर्णिक पुरुष अच्छी तरह जाने । अर्थात् इन सबही विषयोंमें सौवर्णिक पुरुषको अच्छी जानकारी प्राप्त करनी चाहिये; जिससे कि उनकी देखरेखमें कार्य करते हुए शिल्पीजन, सुवर्णादिका अपहरण न कर सकें ॥ ७ ॥ अशुद्ध चांदी तथा सोनेको यदि आभूषण बनानेके लिये दिया जावे, तो सुवर्णकारको सुवर्णमें एक काकणी छीजन देनी चाहिये । अर्थात् सोलह माषक सुवर्णके पीछे एक काकणी (एक माषकका चौथा हिस्सा) सोना, आभूषण बनवाने वाले पुरुषको सुनारसे कम लेना चाहिये । क्योंकि इतना सोना, शुद्ध करते समय छीजनमें निकल जाता है ॥ ८ ॥

तीक्ष्णकाकणीरूप्यद्विगुणो रागप्रक्षेपस्तस्य षड्भागः क्षयः ॥ ९ ॥ वर्णहीने माषावरे पूर्वः साहसदण्डः ॥ १० ॥

सोनेका रङ्ग बदलनेके लिये, एक काकणी लोहा और उससे दुगनी चांदी उसमें मिलादी जावे; इतने लोहे और चांदीकी मिलावट सोलह माषक सुवर्णमें करनी चाहिये, इतने सुवर्णमें, मिलावट (एक काकणी लोहा और दो काकणी चांदी) का छठा हिस्सा अर्थात् आधी काकणी छीजनके लिये निकाल देनी चाहिये ॥ ९ ॥ न्यूनसे न्यून यदि एक माष सुवर्णको, सुवर्णकार वर्णहीन

(अर्थात् अपनी अज्ञानतासे कान्ति रहित) बनादेवे, तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ १० ॥

प्रमाणहीने मध्यमः तुलाप्रतिमानोपधावुत्तमः कृतभाण्डोपधौ च ॥ ११ ॥ सौवर्णिकेनादृष्टमन्यत्र वा प्रयोगं कारयतो द्वादशपणो दण्डः ॥ १२ ॥ कर्तुर्द्विगुणः सापसारश्चेत् ॥ १३ ॥

तोलमें एक माष सोना कम होनेपर शिल्पीको मध्यम साहस दण्ड दिया जावे। तराजू बाटमें यदि कोई कपट करे, तो उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जावे। इसी प्रकार जो पुरुष, बनकर तैयार हुए २ पात्र आदिके इधर उधर परिवर्त्तन करनेमें छल कपट करे, उसे भी उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ११ ॥ सौवर्णिककी अनुमतिके विना ही अथवा अनुमति लेकर भी विशिखासे बाहर जाकर यदि कोई पुरुष अलङ्कार आदिका निर्माण किसी शिल्पीसे करवावे, तो उसको बारह पण दण्ड दिया जावे ॥ १२ ॥ और कार्य करने वाले कारीगर पुरुषको कराने वालेसे दुगना दण्ड दिया जावे। परन्तु यह दण्ड कार्य करने और कराने वालेको उसी समय समझना चाहिये, जब कि उनके विषयमें चोरी आदिकी आशङ्का कुछ भी न हो ॥ १३ ॥

अनपसारः कण्टकशोधनाय नीयेत ॥१४॥ कर्तुश्च द्विशतो दण्डः पणच्छेदनं वा ॥ १५ ॥

यदि उनपर चोरी आदिकी आशङ्काहोवे, तो कार्य करानेवाले पुरुषको कण्टकशोधनाधिकारी (प्रदेष्टा) के समीप उसके अपराधका यथार्थ निर्णय करानेके लिये लेजाया जावे॥१४॥ और कार्य करने वाले कारीगर व्यक्तिको दोसौ पण दण्ड दिया जावे; यदि वह इतना धन देनेमें असमर्थ हो, तो उसकी अंगुलियां काटदी जावें ॥ १५ ॥

तुलाप्रतिमानभाण्डं पौतवहस्तात्क्रीणीयुः ॥१६॥ अन्यथा द्वादशपणो दण्डः ॥ १७ ॥

सुवर्णकारोंको चाहिये, कि वे सोना आदि तोलनेके लिये कांटा और उसके छोटे बड़े सब तरहके बाट आदि, पौतवाध्यक्षके पाससे खरीद लेवें; और उन्हींके अनुसार तोलने आदिका व्यवहार करें ॥ १६ ॥ यदि वे स्वयंही कांटा आदि बनाकर उसका उपयोग करें, या पौतवाध्यक्षसे न लेकर और कहींसे लेलेवें, तो उन्हें बारह पण दण्ड दिया जावे ॥ १७ ॥

घनः घनसुषिरं संयूह्यमवलेप्यं संघात्यं वासितकं च कारुकर्म ॥ १८ ॥

घन (अर्थात् अंगूठी आदि ठोस आभूषण), घनसुषिर (ऊपरसे ठोस मालूम होने वाले, पर भीतरसे पोले कड़े आदि आभूषण), संयूह्य (जिनके ऊपर मोटा पत्र चढ़ा दिया जावे, ऐसे आभूषण आदि) अवलेप्य (जिनके ऊपर पतला पत्र चढ़ाया जावे), संघात्य (जिस आभूषणको थोड़ा २ जोड़कर बनाया जावे, जैसे तगड़ी जंजीरी आदि) तथा वासितक (जिन आभूषणोंको रस आदिसे वासित किया जावे); ये छः प्रकारके शिल्पियोंके कार्य होते हैं ॥ १८ ॥

तुलाविषममपसारणं विस्रावणं पेटको पिङ्कश्चेति हरणोपायाः ॥ १९ ॥

इन कार्योंको करते हुए सुवर्णकार निम्नलिखित रीतिसे सुवर्ण आदिका अपहरण कर सकते हैं:—तुलाविषम, अपहरण, विस्रावण, पेटक और पिङ्क ये पांच अपहरणके उपाय हैं। अगले सूत्रोंमें इन्हींका यथाक्रम विस्तार पूर्वक निरूपण किया जाता है:—॥ १९ ॥

संनामिन्युत्कीर्णिका भिन्नमस्तकोपकण्ठी कुशिक्या सकटुकक्ष्या पारिवेल्ययस्कान्ता च दुष्टतुलाः ॥ २० ॥

पहला उपाय है—तुलाविषम, अर्थात् तराजू या कांटेका ठीक न होना; निम्नलिखित आठ प्रकारकी तुला विषम (अर्थात् ठीक २ न तोलने वाली, जिनके द्वारा तोलनेमें झट बेईमानी कीजासके, ऐसी) होती हैं,:—सन्नामिनी (हलके लोहेसे बनाई हुई, जो अंगुली लगानेसे यथेच्छ चाहे जिधरको झुकाई जासके), उत्कीर्णिका (जिसके भीतर छेदोंमें लोहे आदिका चूरा भरा हुआ हो), भिन्नमस्तका (जिसके आगेके हिस्सेमें छेद हुए २ हों, उन छेदोंको वायुकी ओर करके यदि तोला जावे, तो आगेकी ओरसे वायु, उस तराजूको नीचेकी ओर झुका देती है), उपकण्ठी (जिसमें बहुत गांठेंसी पड़रही हों,), कुशिक्या (जिसका शिक्य अर्थात् पलड़ा बहुत ही खराब हो), जिसकी डोरी आदि अच्छी न हों, लगातार हिलने वाली, ऊपर डण्डीमें अयस्कान्त मणि लगाकर बनाई हुई, ये आठ प्रकारकी तराजू दुष्ट होती हैं, इनके द्वारा सुवर्ण आदिका अपहरण किया जासकता है। इसीका नाम तुलाविषम है ॥ २० ॥

रूप्यस्य द्वौ भागावेकं शुल्बस्य त्रिपुटकम् ॥ २१ ॥ तेनाकरोद्गतमपसार्यते तत्त्रिपुटकापसारितम् ॥ २२ ॥

असार द्रव्यको मिलाकर सारद्रव्यका अपहरण करलेना; इस तरहका अपसार चार प्रकारका होता है:—त्रिपुटकापसारित, शुल्बापसारित, वेल्लका-

पसारित और हेमापसारित। इनका यथाक्रम निरूपण किया जाता है:—दो हिस्सा चांदी और एक हिस्सा तांबा मिलाकर जो मेल तैयार किया जावे, उसका नाम 'त्रिपुटक' है ॥ २१ ॥ शुद्ध सुवर्णमें यह त्रिपुटक मिलाकर उस-मेंसे उतनाही सोना निकाल लिया जावे, और उस सोनेको किसीके खोटा बतलानेपर कह दिया जावे, कि यह तो खानसेही इस तरहका अशुद्ध सोना निकला है। इसप्रकार त्रिपुटकके द्वारा जो अपहरण किया जावे, उसका नाम त्रिपुटकापसारित है ॥ २२ ॥

शुल्बेन शुल्बापसारितम् ॥ २३ ॥ वेल्लकेन वेल्लकापसारितम् ॥ २४ ॥ शुल्बार्धसारेण हेम्ना हेमापसारितम् ॥ २५ ॥

जो केवल तांबा मिलाकर अपहरण किया जावे, उसे शुल्बापसारित कहते हैं ॥ २३ ॥ लोहा और चांदी मिलाकर जो मेल तैयार किया जावे, उसे 'वेल्लक' कहते हैं। फिर उस वेल्लकको सुवर्णमें मिलाकर जो सुवर्णका अपहरण किया जाता है, उसे 'वेल्लकापसारित' कहते हैं ॥ २४ ॥ तांबेके साथ आधा सोना मिलाकर, उस मेलको फिर सोनेमें मिलाकर जो सोनेका अपहरण किया जाता है, उसे हेमापसारित कहते हैं ॥ २५ ॥

मूकमूषा पूतिकिट्टः करटकमुखं नाली संदंशो जोङ्गनी सुवर्चिकालवणम् ॥२६॥ तदेव सुवर्णमित्यपसरणमार्गाः ॥२७॥

असार द्रव्यको मिलाने और सार द्रव्यके अपहरण करनेका ढङ्ग यह है:—मूकमूषा, पूतिकिट्ट (लोहे का मैल), करटकमुख (सोना आदि कतरनेकी कैंची, कतरनी या कतनी), नाली (नाल प्रसिद्ध है), संदंश (संडासी), जोङ्गनी (लोहेकी छड़सी जिससे आग आदि कुरेदी जाय), सुवर्चिका (शोरा क्षार) तथा नमक। तात्पर्य यह है—जब शुद्ध सुवर्णको बन्द मूषामें डालकर तपाया जाता है, तब उसके मलको निकालनेके बहानेसे, शोरा या नमक आदि क्षारोंकी जगहपर, पहिलेसे तयार किये हुए त्रिपुटक आदिके चूरेको उस तपते हुए शुद्ध सुवर्णमें डाल दिया जाता है। और फिर कतनी या संडासी आदि औजारोंके द्वारा उसमेंसे उतनाही शुद्ध सोना निकाल लिया जाता है। इस तरह सुनार, लोगोंके देखते हुए भी सोने आदिका अपहरण कर लेते हैं ॥ २६ ॥ जब कहा जाय कि तुमने यह सोना खोटा कर दिया, तो कहदेते हैं कि यह वही सोना है जो हमने आपसे लिया था, यह खानसे इसी प्रकार-का निकला मालूम देता है। ये अपसरणके मार्ग हैं ॥ २७ ॥

पूर्वप्रणिहिता वा पिण्डवालुका मूषाभेदादग्निष्ठा उद्ध्रियन्ते ॥ २८ ॥

अथवा पहिलेसेही उस आगमें भिन्न धातुओंकी बारीक बालुकासी डालदी जाती है, और फिर मूषाको जब अग्निमें रक्खा जाता है, तो यह बहाना करके कि मूषा टूटगई है, और उसमेंसे यह पिघली हुई धातुकी बालुकासी निकलपड़ी है, उस सबको अग्निमेंसे उठाकर मालिकके सामनेही सोनेमें मिला दिया जाता है, और उपर्युक्त रीतिसे उतनाही सोना उसमेंसे निकाल लिया जाता है। यहभी अपसारणका एक उपाय है ॥ २८ ॥

पश्चाद्बन्धने आचितकपत्त्रपरीक्षायां वा रूप्यरूपेण परिवर्तनं विस्रावणम् ॥२९॥ पिण्डवालुकानां लोहपिण्डवालुकाभिर्वा ॥३०॥

पहिले बनाईहुई चीजके पीछेसे जोड़नेमें, अथवा बहुतसे पत्रोंकी परीक्षाके समयमें, चांदीसे सोनेका बदल लेना, अर्थात् खरे सोनेको निकाल कर खोटा सोना लगादेना 'विस्रावण' कहाता है। यह विस्रावणका एक प्रकार है ॥ २९ ॥ सोनेकी खानसे पैदा हुई २ बालुकाको, लोहेकी खानमें पैदाहुई बालुकाओंके साथ बदल देनाभी विस्रावण कहाता है। यह विस्रावण का दूसरा प्रकार है ॥ ३० ॥

गाढश्चाभ्युद्धार्यश्च पेटकः संयूह्यावलेप्यसंघात्येषु क्रियते ॥ ३१ ॥ सीसरूपं सुवर्णपत्त्रेणावलिप्तमभ्यन्तरमष्टकेन बद्धं गाढपेटकः ॥ ३२ ॥ स एव पटलसंपुटेष्वभ्युद्धार्यः ॥ ३३ ॥

पेटक दो प्रकारका होता है, एक गाढ और दूसरा अभ्युद्धार्य। इस उपायका प्रयोग संयूह्य अवलेप्य तथा संघात्य कर्मोंमें किया जाता है ॥३१॥ सीसेके पत्रको सुवर्णके पत्रसे मढ़कर, तथा बीचमें अष्टक अर्थात् लाख आदिके रससे अच्छीतरह दृढ़ताके साथ जोड़कर जो बन्धन किया जावे, उसे 'गाढ़-पेटक' कहते हैं ॥ ३२ ॥ वही बन्धन, यदि उसमें लाख आदिका रस, जोड़की दृढ़ताके लिये न लगाया जावे, और इसीलिये जो सरलतासे उखड़सकने योग्य हो; अभ्युद्धार्यपेटक कहाता है। इस प्रकार सारासार द्रव्योंके बराबरके संयूहनमें सुवर्ण आदिका अपहरण करालिया जाता है ॥ ३३ ॥

पत्त्रमाश्लिष्टं यमकपत्त्रं वावलेप्येषु क्रियते ॥ ३४ ॥ शुल्बं तारं वा गर्भः पत्त्राणाम् ॥ ३५ ॥

अवलेप्य कर्मोंमें एक ओर या दोनों ओर पतलासा सोनेका पत्र जोड़कर, उसमेंसे कुछ शुद्ध सुवर्णका अंश अपहरण करालिया जाता है ॥३४॥ तथा अवलेप्य कर्मोंमेंही बाहर पत्र लगानेके बजाय, सुवर्ण पत्रोंके बीचमें

तांबे या चांदीका पत्र लगाकर उसके बराबर सोनेका अपहरण करलिया जाता है ॥ ३५ ॥

संघात्येषु क्रियते शुल्बरूपसुवर्णपत्त्रसंहतं प्रमृष्टं सुपार्श्वम् ॥ ३६ ॥ तदेव यमकपत्त्रसंहतं प्रमृष्टं ताम्रताररूपं चोत्तरवर्णकः ॥ ३७ ॥

संघात्य कर्मोंमें, तांबे की चीजको एक ओर सोनेके पत्रोंसे मढ़कर, उसे खूब चमकाकर, एक ओरके हिस्सेको खूब सुन्दर बना दिया जाता है ॥३६॥ उस ही तांबेकी चीजके दोनों ओर सोनेके पत्र चढ़ा दिये जाते हैं, तथा उसे अच्छी तरह साफ करके चमका दिया जाता है। ऐसा करके उसमेंसे कुछ अंश सोनेका निकाल लिया जाता है। (कोई व्याख्याकार पहिले सूत्रमें बताये कार्य को 'सुपार्श्व' और इस सूत्रमें बताये हुए को 'प्रमृष्ट' नाम देते हैं) ॥ ३७ ॥

तदुभयं तापनिकषाभ्यां निःशब्दोल्लेखनाभ्यां वा विद्यात् ॥३८॥ अभ्युद्धार्यं बदराम्ले लवणोदके वा साधयन्तीति पेटकः ॥ ३९ ॥

अब पेटककी परीक्षा का प्रकार बतलाते हैं:—गाढपेटक तथा अभ्युद्धार्यपेटक इन दोनों की ही अग्निमें तपाने और कसौटी पर घिसनेसे परीक्षा करे। अथवा हलकीसी चोट देकर (जिस चोटके देनेपर शब्द न हो), या किसी तीक्ष्ण वस्तुसे निशान देकर या रेखासी खींचकर इनकी परीक्षा करे ॥ ३८ ॥ अभ्युद्धार्य पेटकको बेरीके अम्ल रसमें तथा नमकके पानीमें डालकर भी परीक्षा किया जाता है। ऐसा करनेसे उसका रङ्ग कुछ लालसा होजाता है। यहां तक अपहरणके 'पेटक' नामक उपायका निरूपण किया गया॥ ३९ ॥

घनसुषिरे वा रूपे सुवर्णमृन्मालुकाहिङ्गुलुककल्को वा तप्तो ऽवतिष्ठते ॥ ४० ॥ दृढवास्तुके वा रूपे वालुकामिश्रजतुगान्धारपङ्को वा तप्तो ऽवतिष्ठते ॥ ४१ ॥

अब पांच प्रकारके पिङ्कका, तथा उसकी परीक्षाका यथाक्रम निरूपण किया जायगा:—ठोस अथवा पोले कड़े आदि आभूषणोंमें, सुवर्णमृत्, सुवर्णमालुका और शिंगरफका कल्क अग्निमें तपाकर लगा दिया जाता है। यह एक अपद्रव्य या असारद्रव्य है, इसको आभूषणोंमें मिलाकर, उतनाही शुद्ध सोना उसमेंसे निकाल लिया जाता है। (सुवर्णमृत् और सुवर्णमालुका, ये दोनों भी कोई विशेष धातु ही हैं) ॥ ४० ॥ जिस आभूषणका वास्तुक (अर्थात्

पीठबन्ध=आधारभूत भाग) अच्छी तरह दृढ़ हो, उसमें, साधारण धातुओं-की बालुकाकी लाख और सिन्दूरके पङ्क (कीचड़=दोनोंका एक साथ घुले हुए होना) में मिलाकर तथा उन्हें अग्निमें तपाकर लगा दिया जाता है। और उसकी बराबरका सोना उसमेंसे निकाल लिया जाता है ॥ ४१ ॥

तयोस्तापनमवध्वंसनं वा शुद्धिः ॥ ४२ ॥ सपरिभाण्डे वा रूपे लवणमुल्कया कटुशर्करया तप्तमवतिष्ठते ॥ ४३ ॥ तस्य क्वाथनं शुद्धिः ॥ ४४ ॥

ठोस पोले तथा दृढवास्तुक अलङ्कारों को अग्निमें तपाना, तथा उनपर यथावश्यक चोट देना, उनके शोधनका उपाय है ॥ ४२ ॥ बूंददार मणिबन्ध आदि आभूषणोंमें, नमक को छोटी २ कंकड़ियोंके साथ लपटों वाली आगमें तपाकर रख लिया जाता है ॥ ४३ ॥ बेरीके अम्ल रसमें उबाल कर उसकी शुद्धि होजाती है ॥ ४४ ॥

अभ्रपटलमष्टकेन द्विगुणवास्तुके वा रूपे बध्यते, तस्य पिहितकाचकस्योदके निमज्जत एकदेशः सीदति, पटलान्तरेषु वा सूच्या भिद्यते ॥ ४५ ॥

अभ्रपटल (अभ्रक), अपनेसे दुगने वास्तुक (आभूषणोंके लिये तैयार किये हुए सुवर्ण आदि) में लाख आदिके द्वारा जोड़कर रख लिया जाता है। उसकी परीक्षा का प्रकार यह है:—उस सुवर्णके आभूषणों को, जिसमें अभ्रक मिला हुआ होवे, बेरीके अम्ल जलमें छोड़ दिया जावे, उस आभूषण का थोड़ा सा हिस्सा ही पानीमें डूबेगा, जिस ओर अभ्रक होगा वह नहीं डूबेगा। यदि अभ्रपटल के स्थान पर ताम्रपटल का ही आभरण आदि में मेल किया गया हो, तो उसकी परीक्षा किसी सूई से निशान करके ही ठीक तौरपर हो सकती है ॥ ४५ ॥

मणयो रूप्यं सुवर्णं वा घनसुषिराणां पिङ्कः ॥ ४६ ॥ तस्य तापनमवध्वंसनं वा शुद्धिरिति पिङ्कः ॥ ४७ ॥

ठोस तथा पोले आभूषणोंमें मणि (काच मणि आदि), चांदी तथा अशुद्ध सुवर्ण का मेल करके पिङ्क नामक उपाय द्वारा शुद्ध सुवर्ण का अपहरण किया जासकता है ॥ ४६ ॥ उसको अग्निमें तपाना तथा उसपर चोट देना ही उसके शोधन का प्रकार है। ऐसा करनेसे उसकी वास्तविकता की परीक्षा हो जाती है। यहांतक पिङ्कका निरूपण किया गया ॥ ४७ ॥

तस्माद्वज्रमणिमुक्ताप्रवालरूपाणां जातिरूपवर्णप्रमाणपुद्गल-लक्षणान्युपलभेत ॥ ४८ ॥

इसलिये सौवर्णिक को चाहिये कि वह वज्र मणि मुक्ता तथा प्रवाल इन चारोंके जाति (उत्पत्ति), रूप (आकार), वर्ण (रंग), प्रमाण (माषक आदि परिमाण), पुद्गल (आभरण), और लक्षण अर्थात् चिन्हों को अच्छी तरह जाने । जिससे कोई भी व्यक्ति, किसी उत्तम वस्तुका अपहरण न कर सके ॥ ४८ ॥

कृतभाण्डपरीक्षायां पुराणभाण्डप्रतिसंस्कारे वा चत्वारो हरणोपायाः ॥ ४९ ॥ परिकुट्टनमवच्छेदनमुल्लेखनं परिमर्दनं वा ॥ ५० ॥

पात्र तथा आभरण आदिके निर्माणके अनन्तर परीक्षा समयमें, उसमें से सुवर्ण आदिका अपहरण करनेके चार उपाय होते हैं:—॥ ४९ ॥ परिकुट्टन अवच्छेदन, उल्लेखन और परिमर्दन ॥ ५० ॥

पेटकापदेशेन पृषतं गुणं पिटकां वा यत्परिशातयन्ति तत्परिकुट्टनम् ॥ ५१ ॥ यद्द्विगुणवास्तुकानां वा रूपे सीसरूपं प्रक्षिप्याभ्यन्तरमवच्छिन्दन्ति तदवच्छेदनम् ॥ ५२ ॥

पूर्वोक्त पेटक उपायकी परीक्षा करनेके बहानेसे, छोटी २ गोली, कड़े आदिका थोड़ासा हिस्सा या कुछ अधिक हिस्सा, जो किसी आभूषण आदिसे सुनार काट लेते हैं, उसका नाम 'परिकुट्टन' है ॥ ५१ ॥ बहुतसे पत्र आदि को जोड़कर बनाये हुये आभूषणों में, तथा सोनेसे मढ़े हुए कुछ सीसे के पत्रों को मिलाकर, फिर भीतरसे काटकर सुवर्ण निकाल लेना 'अवच्छेदन' कहाता है ॥ ५२ ॥

यद्घनानां तीक्ष्णेनोल्लिखन्ति तदुल्लेखनम् ॥ ५३ ॥ हरितालमनःशिलाहिङ्गुलकचूर्णानामन्यतमेन कुरुविन्दचूर्णेन वा वस्त्रं संयूह्य यत्परिमृद्नन्ति तत्परिमर्दनम् ॥ ५४ ॥

जो सुनार ठोस आभूषणोंको तीक्ष्ण औजार आदिसे खोद देते हैं, उसे 'उल्लेखन' कहते हैं ॥ ५३ ॥ हरताल, मनसिल तथा शिंगरफके चूरेके साथ तथा कुरुबिक (एक तरहका पत्थर) के चूरेके साथ कपड़े को सानकर उससे जो आभूषण आदिको रगड़ा जाता है, उसका नाम 'परिमर्दन' होता है ॥ ५४ ॥

तेन सौवर्णराजतानि भाण्डानि क्षीयन्ते ॥ ५५ ॥ न चैषां किंचिदवरुग्णं भवति ॥ ५६ ॥

ऐसा करनेसे सोने तथा चांदीके आभरण आदि घिस जाते हैं ॥ ५५ ॥ परन्तु इनमें किसी तरहकी चोट या विकारकी प्रतीति नहीं होती। इस प्रकार आभूषण आदिको काटे बिना ही सुवर्णके अपहरण करनेका यह एक उपाय है ॥ ५६ ॥

भग्नखण्डघृष्टानां संयूह्यानां सदृशेनानुमानं कुर्यात् ॥ ५७ ॥ अवलेप्यानां यावदुत्पाटितं तावदुत्पाट्यानुमानं कुर्यात् ॥ ५८ ॥

दृढ़ पत्रोंसे बने हुए आभूषणोंके, परिकुट्टन अवच्छेदन तथा घिसनेसे जितने हिस्से का अपहरण किया गया हो, उसका अनुमान, उसके समान-जातीय शेष अवयवोंसे करे ॥ ५७ ॥ अवलेप्य अर्थात् जिन आभूषण आदिपर सोनेका पतला पत्र ऊपर चढ़ा हुआ हो, उनपरसे काटे हुए सोनेके हिस्से को उतनी ही दू के दूसरे हिस्सेको काटकर जाने। अर्थात् उस टे हुए हिस्सेके परिमाणका उतने ही दूसरे हिस्सेसे अनुमान करे ॥ ५८ ॥

विरूपाणां वा तापनमुदकपेषणं च बहुशः कुर्यात् ॥ ५९ ॥

जिन आभूषण आदिमें बहुत अधिक अपद्रव्य मिलाकर उन्हें विरूप बना दिया गया हो, उनकी हानिके परिमाणका अनुमान, उनके सदृश अन्य आभूषणोंके द्वारा किया जावे। उनको अग्निमें खूब तपाकर तथा फिर जलमें फैंककर उनपर बार २ चोट देना ही उनके शोधन का उपाय है। अपहरणके परिमाणको जाननेका प्रयोजन यही है, कि उसके अनुसार अपहरण करनेवाले पुरुषको, पूर्वोक्त प्रथमसाहस आदि दण्ड दिये जावें ॥ ५९ ॥

अवक्षेपः प्रतिमानमग्निर्गण्डिका भण्डिकाधिकरणी पिञ्छः सूत्रं चेल्लं बोल्लनं शिर उत्सङ्गो मक्षिका स्वकायेक्षादृतिरुदकशरावमग्निष्ठमिति काचं विद्यात् ॥ ६० ॥

पूर्वोक्त अपहरणके उपायोंके अतिरिक्त, अवक्षेप आदि अन्य उपायोंका भी निरूपण करते हैं:—अवक्षेप (अपने हस्तलाघव अर्थात् चतुराई से देखते हुए आदमीके सामने भी सार द्रव्य का अपहरण करके उसमें असारद्रव्य का मिला देना), प्रतिमान (बदला करनेके द्वारा अपहरण करना), अग्नि (अग्नि के बीचमें हरण करना), गण्डिका (जिसपर रखकर सोने को चोट लगाई जावे), भण्डिका (सोनेका मैल आदि रखने का पात्र, अथवा पिघले हुए सोनेकैं रखने का पात्र), अधिकरणी (लोहेका बना हुआ साधारण सुवर्णके

रखनेका पात्र), पिंछ (मोर पंच), सूत्र (सुवर्णकी तराजू की रस्सी), चेल्ल (वस्त्र), बोल्लन (कहानीके बहानेसे देखने वालेका ध्यान बटाना), शिर (सिरका खुजाना आदि), उत्संग (गोद या अन्य गुह्य स्थान), मक्षिका (मक्खीके उड़ानेके बहानेसे द्रव धातु को अपने अंगसे लगा लेना , पसीना आदि दिखानेका बहाना, धौंकनी, जलका शकोरा, अग्निमें डाला हुआ अपद्रव्य; ये सब अपहरणके उपाय जानने चाहियें ॥ ६० ॥

राजतानां विस्रं मलग्राहि परुषं प्रस्तीनं विवर्णं वा दुष्टमिति विद्यात् ॥ ६१ ॥

जो आभूषण चांदीके बने हुए हों, उनमें पांच प्रकारके दोषके चिन्ह होते हैं:—विस्र (मांसा आदिके संसर्गमे दुर्गन्धका आने लगना), मलिन हो जाना, कठोर (अर्थात् स्पर्श करते समय खरखरा मालूम होना), कठिन होजाना (अर्थात् मृदुताका न रहना), और विवर्ण अर्थात् अपद्रव्यके मिलने से कान्तिहीन होजाना, ये पांच प्रकारके दोष चांदीके बने आभूषणोंमें अपद्रव्य मिलानेसे होजाते हैं। (इसके शोधनका प्रकार, पूर्व अध्यायमें (अस्थितुत्थे चतुः समसीसे चतुः ' इत्यादि सूत्रसे बता दिया गया है। ॥ ६१ ॥

एवं नवं च जीर्णं च विरूपं च विभाण्डकम् ।
परीक्षेतात्ययं चेषां यथोद्दिष्टं प्रकल्पयेत् ॥ ६२ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे विशिखायां सौवर्णिकप्रचारः चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥
आदितः पञ्चत्रिंशः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार नये और पुराने, विरूप या विकृत किये हुए पात्रों आभूषण आदि को अच्छी तरह परीक्षा करके जाने। और फिर उस मिलावटके अनुसार अपराधियोंके दण्डकी व्यवस्था करे। (जैसा कि ' वर्णहीने माषकावरे ' इत्यादि सूत्रोंसे प्रतिपादन कर दिया गया है) ॥ ६२ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें चौदहवां अध्याय समाप्त।

पन्द्रहवा अध्याय

३३ प्रकरण

कोष्ठागाराध्यक्ष ।

['कोष्ठ' पेटको कहते हैं । उसके लिये जो धान्य, तेल, घी, नमक आदि खाने योग्य पदार्थ होते हैं, उनका भी नाम कोष्ठ है । उन पदार्थोंके संग्रह तथा रक्षाके लिये जो स्थान बनाये जावें, उन्हें 'कोष्ठागार' कहते हैं । और उनके अध्यक्ष का नाम कोष्ठागाराध्यक्ष होता है, उसके कार्योंका विस्तृत निरूपण इस प्रकरणमें किया जायगा ।]

कोष्ठागाराध्यक्षः सीताराष्ट्रक्रयिमपरिवर्तकप्रामित्यकापमित्यकसिंहानिकान्यजातव्ययप्रत्यायोपस्थानान्युपलभेत ॥ १ ॥ सीताध्यक्षोपनीतः सस्यवर्णकः सीता ॥ २ ॥

कोष्ठागाराध्यक्ष को चाहिये, कि वह सीता, राष्ट्र, क्रयिम, परिवर्त्तक, प्रामित्यक, आपमित्यक, सिंहनिका, अन्यजात, व्ययप्रत्याय और उपस्थान इन दस बातोंका अच्छी तरह चिन्तन करे। इन सबका यथाक्रम विवरण दिया जाता है:—॥ १ ॥ सीताध्यक्ष (धान्य आदि राजकीय करका ग्रहण करने वाला अधिकारी) के द्वारा कोष्ठागारमें पहुंचाये हुए प्रत्येक जातिके धान्यका नाम 'सीता' है । कोष्ठागाराध्यक्षको चाहिये कि वह शुद्ध और पूर्ण सीताको लेकर यथोचित कोष्ठागारमें रक्खे ॥ २ ॥

पिण्डकरः षड्भागः सेनाभक्तं बलिः कर उत्सङ्गः पार्श्वं पारिहीणिकमौपायनिकं कौष्ठेयकं च राष्ट्रम् ॥ ३ ॥

पिण्डकर (उन २ गावोंसे दिया जाने वाला नियत राजकीय कर), षड्भाग (राजदेय, अन्नादिका छठा हिस्सा), सेनाभक्त (सेनाके आक्रमण करनेके समयमें तेल घृत चावल नमक आदि विशेष राजदेय भाग । किसी २ व्याख्याकारने 'सैनिकों को चावल तथा अन्य हिरण्य आदि देनेके समयमें उनके द्वारा दिये जाने वाले धनादिके कुछ अंश' ऐसा अर्थ किया है), बलि (छठे हिस्सेसे अतिरिक्त राजदेय अंश), कर (जल तथा वृक्ष आदिके सम्बन्धका राजदेय अंश), उत्सङ्ग (राजाके पुत्र जन्मादि उत्सव होनेपर पौर जानपदोंके द्वारा दिया हुआ विशेष धन), पार्श्व (उचित करसे अधिक ग्रहण करना; योगवृत्त पञ्चम अधिकरणके, दूसरे अध्यायमें इसका निरूपण किया गया

है), पारिहीणिक (चौपायोंसे बिगाड़े हुए धान्य आदिके दण्ड रूपमें प्राप्त हुआ २ धन), औपायनिक (भेटमें प्राप्त हुआ २ धन), और कौष्ठेयक (राजाके द्वारा बनवाये हुए तालाब और बगीचोंसे प्राप्त होने वाला), यह दस प्रकार का राष्ट्र होता है ॥ ३ ॥

धान्यमूल्यं कोशनिर्हारः प्रयोगप्रत्यादानं च क्रयिमम् ॥४॥ सस्यवर्णानामर्घान्तरेण विनिमयः परिवर्तकः ॥ ५ ॥ सस्ययाचनमन्यतः प्रामित्यकम् ॥ ६ ॥

धान्यमूल्य (धान्य आदिको बेचकर मूल्य रूपमें प्राप्त हुआ २ हिरण्य आदि), कोशनिर्हार (हिरण्य आदि देकर खरीदा हुआ धान्य आदि), तथा प्रयोगप्रत्यादान (ब्याज आदिसे प्राप्त हुए अधिक धान्यका कोष्ठागारमें जमा करना), यह तीन प्रकारका क्रयिम होता है ॥ ४ ॥ भिन्न २ जातिके धान्योंसे अन्य भिन्न जातिके धान्योंका न्यूनाधिक परिमाणमें बदला करना; जैसे एक प्रस्थ चावल देकर चार प्रस्थ कोदों बदलेमें लेलेना, यह 'परिवर्त्तक' कहा जाता है ॥ ५ ॥ अन्य मित्र आदिसे, सस्य (अन्न=अनाज) का मांगना, जो कि फिर लौटाया न जावे, उसे 'प्रामित्यक' कहते हैं ॥ ६ ॥

तदेव प्रतिदानार्थमापमित्यकम् ॥ ७ ॥ कुट्टकरोचकसक्तुशुक्तपिष्टकर्म तज्जीवनेषु तैलपीडनमौरभ्रचाक्रिकेष्विक्षूणां च क्षारकर्म सिंहनिका ॥ ८ ॥

जो धान्य आदि, ब्याज सहित लौटा देनेके वादेपर दूसरेसे मांगा जावे, उसे 'आपमित्यक' कहते हैं ॥ ७ ॥ कूटनेका कार्य करने वाले, मूंग उड़द आदिके छड़ने, जौ आदिका सत्तू पीसने, गन्ने आदिके रससे सिरका या आसव बनाने, तथा गेहूं आदिका आटा पीसनेका कार्य करने वाले, अर्थात् इन कार्योंको करके अपनी जीविका करने वाले पुरुषोंसे; और तिलोंसे तेल निकालकर तथा भेड़ोंके बाल आदि काटकर उनसे जीविका करने वाले पुरुषोंसे; और गन्नोंके रससे गुड़ राव शक्कर आदि बनाकर अपनी जीविका करने वाले पुरुषोंसे जो राजदेय अंश लिया जावे उसे 'सिंहनिका' कहते हैं। किसी २ प्राचीन व्याख्यामें 'संहनिका' पाठ है। यह पाठ अच्छा मालूम होता है ॥ ८ ॥

नष्टप्रस्मृतादिरन्यजातः ॥ ९ ॥ विक्षेपव्याधितान्तरारम्भशेषं च व्ययप्रत्यायः ॥ १० ॥

नष्ट हुए २ तथा भूले हुएका नाम 'अन्यजात है ॥ ९ ॥ विक्षेपशेष (किसी कार्यको सिद्ध करनेके लिये भेजी हुई सेनाके व्ययसे बचा हुआ),

व्याधितशेष (औषधालय आदिके व्ययसे बचा हुआ), तथा अन्तरारम्भशेष (भीतर दुर्ग आदिकी मरम्मतसे बचा हुआ धन), यह तीन प्रकारका 'व्यय प्रत्याय' होता है ॥ १० ॥

तुलामानान्तरं हस्तपूरणमुत्करो व्याजी पर्युषितं प्रार्जितं चोपस्थानमिति ॥ ११ ॥

तराजू या बाटोंके भेदसे अधिक प्राप्त हुआ २ (अर्थात् भारी बाटोंसे लेकर, और हलके बाटोंसे देकर अधिक पैदा किया हुआ), अन्न आदि तोलने के बाद मुट्ठी भरकर और अधिक डाला हुआ अन्न, उत्कर(धान्य आदिके ढेर-से, तुली हुई या गिनी हुई चीज़में और वस्तु उठाकर डाल देना), व्याजी (सोलहवां या बीसवां अधिक लिया हुआ हिस्सा, जिससे कि फिर तोलनेमें किसी तरहकी कमी न होजाय), पर्युषित (पिछले सालका शेष) और प्रार्जित (अपनी चतुराईसे इकट्ठा किया हुआ), यह 'उपस्थान' कहाता है। यहांतक सीता आदि पदार्थोंका विवरण किया गया ॥ ११ ॥

धान्यस्नेहक्षारलवणानाम् ॥ १२ ॥ धान्यकल्पं सीताध्यक्षे वक्ष्यामः ॥ १३ ॥ सर्पिस्तैलवसामज्जानः स्नेहाः ॥ १४ ॥ फाणितगुडमत्स्यण्डिकाखण्डशर्कराः क्षारवर्गः ॥ १५ ॥

अब इसके आगे धान्य, स्नेह (घी तेल आदि), क्षार तथा लवण; इन पदार्थोंका निरूपण किया जावेगा ॥ १२ ॥ इन पदार्थोंमेंसे धान्यवर्गका विस्तृत विवरण, सीताध्यक्ष नामक प्रकरणमें कहा जायगा ॥ १३ ॥ घी, तेल, वसा और मज्जा ये चार प्रकारके स्नेह होते हैं ॥ १४ ॥ गन्नेसे बने हुए फाणित (राब), गुड़, मत्स्यण्डिका (गुड़ और खांडके बीचका विकार), खांड तथा शक्कर आदि ये सब क्षारवर्ग हैं ॥ १५ ॥

सैन्धवसामुद्रबिडयवक्षारसौवर्चलोद्भेदजा लवणवर्गः ॥ १६ ॥ क्षौद्रं मार्द्वीकं च मधु ॥ १७ ॥

छः प्रकारका लवण होता है,—सैन्धव (सैंधा नमक), सामुद्र (समुद्रके पानीसे बना हुआ), बिड (एक प्रकारका नमक), यवक्षार (जवाखार आदि), सौवर्चल (सज्जीखार आदि), और उद्भेदज (ऊषरकी मट्टीसे बनाया हुआ नमक), यह लवणवर्ग है ॥ १६ ॥ मधु दो प्रकारका होता है;—क्षौद्र (मक्खियोंके द्वारा इकट्ठा किया हुआ), तथा मार्द्वीक (मुनक्का तथा दाखके रससे बनाया हुआ) ॥ १७ ॥

इक्षुरसगुडमधुफाणितजाम्बवपनसानामन्यतमो मेषशृङ्गीपिप्पलीक्काथाभिषुतो मासिकः षाण्मासिकः सांवत्सरिको वा चिद्भिटोर्वारुकेक्षुकाण्डाम्रफलामलकावसुतः शुद्धो वा शुक्तवर्गः ॥१८॥

इक्षुरस (ईखका रस), गुल (गुड़), मधु (शहद), फाणित (राब), जाम्बव (जामुन फलका रस), पनस (पनस=कटहल फलका रस), इन छःओंमेंसे किसी एकको मेषशृङ्गी (मेढ़ासींगी) तथा पिप्पली (पीपल) के क्काथके साथ मिलाकर, एक महीना, छः महीना तथा एक वर्षतक बन्द करके रक्खा जावे; चिद्भिट (मीठी ककड़ी), उर्वारुक (कड़वी ककड़ी), इक्षुकाण्ड (ईख) आम्रफल (आमका फल), तथा आमलक (आंवला) इन पांचों चीजोंको भी उसमें डाले, अथवा न डाले; ऐसा करनेसे जो रस तयार हो, उसे सिरका कहते हैं। यह एक महीना छः महीना तथा सालभर समयके भेदसे यथाक्रम अधम, मध्यम तथा उत्तम होता है। यह शुक्तवर्ग है ॥ १८ ॥

वृक्षाम्लकरमर्दाम्रविदलामलकमातुलुङ्गकोलबदरसौवीरकपरूषकादिः फलाम्लवर्गः ॥ १९ ॥

इमली (किसी २ ने तिन्तिडीक शब्दका अर्थ केवल खटाई या अमल बेंत भी किया है), करौंदा, आम, अनार, आंवला, खट्टा (एक प्रकारका नींबू), झरबेरीका बेर, पेमदी बेर, उन्नाव, फालसा आदि खट्टे रसके फल होते हैं। यह फलाम्लवर्ग है ॥ १९ ॥

दधिधान्याम्लादिः द्रवाम्लवर्गः ॥ २० ॥ पिप्पलीमरीचशृङ्गिबेराजाजिकिराततिक्तगौरसर्षपकुस्तुम्बुरुचोरकदमनकमरुवकशिग्रकाण्डादिः कटुकवर्गः ॥ २१ ॥ शुष्कमत्स्यमांसकन्दमूलफलशाकादि च शाकवर्गः ॥ २२ ॥

दही, कांजी तथा आदि पदसे मठा (तक्र=छाछ) आदि ये पनीली खट्टी चीजें होती हैं। यह द्रववर्ग है ॥ २० ॥ पीपल, मिरच, अदरख, जीरा, चिरायता, बंगा सरसों, धनियां, चोरक (चोरपेल) दमनक (कान्ता नामक औषधि), मरुवक (मनफल), सैंजना आदि ये सब कटु (कड़वे) पदार्थ हैं। यह कटुकवर्ग है ॥ २१ ॥ सूखी मछली, सूखा मांस, कन्द (सूरण, विदारी आदि), मूल (मूली, गाजर आदि) फल, शाक (बथुआ, मेथी आदि), यह सब शाकवर्ग हैं ॥ २२ ॥

ततो ऽर्धमापदर्थं जानपदानां स्थापयेत् ॥ २३ ॥ अर्धमुपयुञ्जीत ॥ २४ ॥ नवेन चानवं शोधयेत् ॥ २५ ॥

स्नेहवर्गसे लगाकर यहां तक जितने पदार्थ बतलाये गये हैं, उन सबकी उत्पत्तिमेंसे आधा, जन पदपर आपत्ति आनेके समयमें उपयोगमें लानेके लिये रखलेवे ॥ २३ ॥ और आधे सामानका भोजन आदिमें उपयोग करलेवे ॥२४॥ जब नई फसलका नया सामान आवे, तो पुराने सामानकी जगह नया भरलेवे, और पुराने सामनको उपयोगमें लेआवे ॥ २५ ॥

क्षुण्णघृष्टपिष्टभृष्टानामार्द्रशुष्कसिद्धानां च धान्यानां वृद्धिक्षयप्रमाणानि प्रत्यक्षीकुर्वीत ॥ २६ ॥

बार २ कूटा हुआ, साफ किया हुआ, पीसा हुआ, भाड़ आदिमें भूना हुआ, गीला, सुखाया हुआ, तथा पकाकर तैयार किया हुआ, जितना भी धान्य आदि सामान हो, उसके वृद्धि क्षय तथा वर्त्तमान प्रमाण (तोल आदि) को, कोष्ठागाराध्यक्ष स्वयं प्रत्यक्ष करे, अर्थात् सब चीजोंको अपने सन्मुख तुलवाकर उनके परिमाण आदिकी जांच करे ॥ २६ ॥

कोद्रवव्रीहीणामर्धं सारः ॥ २७ ॥ शालीनामर्धभागोनः ॥ २८ ॥ त्रिभागोनो वरकाणाम् ॥ २९ ॥ प्रियङ्गूणामर्धं सारः नवभागवृद्धिश्च ॥ ३० ॥ उदारकस्तुल्यः ॥ ३१ ॥

कोदों और धानमेंसे आधा माल बचता है, आधा चोकर आदिका निकल जाता है ॥ २७ ॥ बढ़िया धानकाभी आधा हिस्सा सारभूत निकलता है, बाकी आधा छिलके आदिमें चला जाता है ॥ २८ ॥ वरक अर्थात् लोभिया आदि अन्नोंका तीसरा हिस्सा चोकरका निकलता है, बाकी दो हिस्से असली माल निकल आता है ॥ २९ ॥ कांगनीका आधा हिस्सा सारभूत निकल आता है । कभी २ नौवां हिस्सा इसका अधिक भी होजाता है ॥ ३० ॥ उदारक (एक प्रकार का मोटा चावल) का कांगनीके समान ही सारभूत भाग निकलता है ॥ ३१ ॥

यवा गोधूमाश्च क्षुण्णाः ॥ ३२ ॥ तिला यवा मुद्गमाषाश्च घृष्टाः ॥ ३३ ॥ पञ्चभागवृद्धिर्गोधूमः सक्तवश्च ॥३४॥ पादोना कलायचमसी ॥ ३५ ॥

जौ और गेहूं भी कूटनेपर समान भाग ही तैयार होजाते हैं । अर्थात् इनके कूटने आदिमें कोई विशेष छीजन नहीं होती ॥ ३२ ॥ तिल, जौ, मूंग

तथा उड़द दलनेपर बराबर ही रहते हैं ॥ ३३ ॥ गेहूं और भुनेहुए जौ, पीसने पर पांचवां हिस्सा बढ़ जाते हैं ॥ ३४ ॥ मटर पीसने पर चौथाई हिस्सा कम होजाता है ॥ ३५ ॥

मुद्गमाषाणामर्धपादोनः ॥३६॥ शैम्बानामर्धं सारः ॥३७॥ त्रिभागोनः मसूराणाम् ॥ ३८ ॥

मूंग और उड़द पीसे जानेपर आठवां हिस्सा कम होजाते हैं ॥३६॥ शैंब (ग्वार की फली=खुरती अथवा सेम) का आधा हिस्सा सारभूत निकलता है। आधा चोकर निकल जाता है ॥३७॥ मसूरका तीसरा हिस्सा कम हो जाता है, बाकी दो हिस्से ठीक माल निकलता है। दलने आदिके समय यह तीसरा हिस्सा कम होता है ॥ ३८ ॥

पिष्टमामं कुल्माषाश्चाध्यर्धगुणाः ॥ ३९ ॥ द्विगुणो यावकः ॥ ४० ॥ पुलाकः पिष्टं च सिद्धम् ॥ ४१ ॥

पिसे हुए कच्चे गेहूं तथा मूंग उड़द आदि पकाये जानेपर ड्योढ़े हो जाते हैं ॥ ३९ ॥ कूट छड़कर पीसे हुए जौ, पकाये जानेपर दुगने होजाते हैं ॥ ४० ॥ आधे पकाये हुए चावल और सूजी आदि भी पकाये जानेपर दुगने होजाते हैं ॥ ४१ ॥

कोद्रववरकोदारकप्रियङ्गूणां त्रिगुणमन्नम् ॥ ४२ ॥ चतुर्गुणं व्रीहीणाम् ॥ ४३ ॥ पञ्चगुणं शालीनाम् ॥ ४४ ॥

कोदों, वरक अर्थात् लोभिया आदि, उदारक और कांगनीका भात आदि अन्न पकाया जानेपर तिगुना होजाता है ॥४२॥ व्रीही (विशेष चावल) चौगुने ॥४३॥ और शाली (बासमती आदि चावल) पांच गुने हो जाते हैं ॥४४॥

तिमितमपरान्नं द्विगुणमर्धाधिकं विरूढानाम् ॥४५॥ पञ्च-भागवृद्धिः भृष्टानाम् ॥ ४६ ॥ कलायो द्विगुणः ॥ ४७ ॥ लाजा भरुजाश्च ॥ ४८ ॥

काटनेके समयमें खेतसे जो गीलाही लिया गया हो, ऐसा अन्न; तथा कच्चेही काटे हुए व्रीही आदि दुगनेही बढ़ते हैं। यदि और कुछ अच्छी अव-स्थामें काटे जावें, तो ढाई गुने बढ़ जाते हैं। (किसी २ व्याख्याकारने इसका यह भी अर्थ किया है:—गीले किये हुए चने आदि अन्न दुगने होजाते हैं, यदि चने आदिको गीलाही काट दिया जावे, तो वे ढाई गुना बढ़ जाते हैं) ॥ ४५ ॥ यदि इनको भाड़ आदिमें भूना जावे, तो इनकी पांचवां हिस्सा वृद्धि

होजाती है ॥ ४६ ॥ भुना हुआ मटर दुगना होजाता है ॥ ४७ ॥ धानोंकी खील और भुने हुए जौ भी दुगने होजाते हैं ॥ ४८ ॥

षट्कं तैलमतसीनाम् ॥४९॥ निम्बकुशाम्रकपित्थादीनां पञ्च-भागः ॥५०॥ चतुर्भागिकास्तिलकुसुम्भमधूकेङ्गुदीस्नेहाः ॥५१॥

अलसीका तेल छठा हिस्सा तैयार होता है। अर्थात् जितनी अलसी हो, उसका छठा हिस्सा उसमेंसे तेल निकलता है ॥ ४९ ॥ नींम (निंबौरी), कुशा (घासकी जड़), आम (की गुठली), और कैथमेंसे पांचवां हिस्सा तेल निकलता है ॥ ५० ॥ तिल, कुसुम्भ (कसूम), महुआ, तथा इंगुदी (गोंदा =एक पेड़का नाम है) मेंसे चौथा हिस्सा तेल निकलता है ॥ ५१ ॥

कार्पासक्षौमाणां पञ्चपले पलसूत्रम् ॥ ५२ ॥ पञ्चद्रोणे शालीनां च द्वादशाढकं तण्डुलानां कलभभोजनम् ॥ ५३ ॥

कपास तथा रेशममेंसे, पांच पलमेंसे एक पल सूत्र निकलता है। इस सूत्रमें 'क्षौम' शब्दका अर्थ—'एक विशेष वृक्षकी छाल भी किया गया है'। तात्पर्य यह है, कि कपास और क्षौम जितना हो, उसमें उसका पांचवां हिस्सा सूत तैयार होता है) ॥ ५२ ॥ पांच द्रोण अर्थात् बीस आढक धानोंमें-से, जब छड़ कूटकर, बारह आढक तण्डुल अर्थात् चावल रह जावें, तब वह हाथीके बच्चोंके खाने योग्य अन्न होता है ॥ ५३ ॥

एकादशकं व्यालानाम् ॥५४॥ दशकमौपवाह्यानाम् ॥५५॥ नवकं सान्नाह्यानाम् ॥ ५६ ॥ अष्टकं पत्तीनाम् ॥ ५७ ॥ सप्तकं मुख्यानाम् ॥ ५८ ॥ षट्कं देवीकुमाराणाम् ॥ ५९ ॥ पञ्चकं राज्ञाम् ॥ ६० ॥

जब, थोड़ा और साफ़ करके बीस आढकमेंसे ग्यारह आढक रह जावें, तो उसे दुष्ट हाथियों (मस्त हाथियों) के खानेके लिये उपयोग करना चाहिये ॥ ५४ ॥ इसी प्रकार दसवां हिस्सा रहनेपर उसे, राजाकी सवारीके हाथियोंके भोजनमें लगाना चाहिये ॥ ५५ ॥ और नौवां हिस्सा रहनेपर, युद्धमें काम आने वाले हाथियोंके भोजनमें उसका उपयोग करना चाहिये ॥ ५६ ॥ आठवां हिस्सा रहनेपर, पैदल सेनाओंके भोजनके लिये उसका उपयोग करना चाहिये ॥ ५७ ॥ सातवां हिस्सा रहनेपर, उसे प्रधान सेनापतियोंके भोजनके लिये उप-युक्त करना चाहिये ॥ ५८ ॥ छठा हिस्सा रहनेपर, वह रानियों तथा राजकु-मारोंके भोजनके काममें आता है ॥ ५९ ॥ तथा पांचवां हिस्सा रहनेपर, उस-का राजाओंके लिये उपयोग करना चाहिये। इसप्रकार बीस आढकमेंसे, जब

साफ़ करते २ पांच आढक अर्थात् चौथाई हिस्सा रह जावे, तब वह राजाके लिये उपयोगमें लानेके योग्य होता है। ऊपर बताये हुए हिस्सोंमें भी इसी तरह समझना चाहिये ॥ ६० ॥

अखण्डपरिशुद्धानां वा तण्डुलानां प्रस्थः ॥ ६१ ॥ चतुर्भागः सूपः सूपषोडशो लवणस्यांशः चतुर्भागः सर्पिषस्तैलस्य वा एकमार्यभक्तम् ॥ ६२ ॥

अथवा राजाके भोजनके लिये, और भी अधिक साफ़ करके, जब बीस आढकमेंसे एक प्रस्थ चावल रह जावें, तब उनका उपयोग करना चाहिये। उन साफ़ किये हुए चावलोंमें एक भी दाना टूटा हुआ न होना चाहिये। साफ़ विना टूटा एक २ दाना चुनकर बीस आढकमेंसे एक प्रस्थ निकाल लेना चाहिये। (चार प्रस्थका एक आढक होता है, इसतरह बीस आढकके अस्सी प्रस्थ हुए, अस्सीमेंसे एक प्रस्थ चावल छांटने चाहिये) ॥ ६१ ॥ प्रस्थका चौथा हिस्सा सूप (अर्थात् दाल ¼ प्रस्थ होनी चाहिये), सूपका सोलहवां हिस्सा नमक, तथा सूपका ही चौथा हिस्सा घी अथवा तेल; मध्यमस्थितिके एक पुरुषका भोजन होता है। (राजाकी रसोईसे जिन परिचारक आदिको भत्ता दिया जाता है, उसका ही यह परिमाण बताया गया है) ॥ ६२ ॥

प्रस्थषड्भागः सूपः, अर्धस्नेहमवराणाम् ॥ ६३ ॥ पादोनं स्त्रीणाम् ॥ ६४ ॥ अर्धं बालानाम् ॥ ६५ ॥

जो अधमस्थितिके परिचारक हों, उनके लिए प्रस्थका छठा हिस्सा दाल, और पहिलेसे आधा घी अथवा तेल होना चाहिये, शेप सामान पहिलेके बराबर ही होना चाहिये॥ ६३ ॥ इसमें चौथाई हिस्सा कम भोजन स्त्रियोंके लिये होना चाहिए ॥ ६४ ॥ तथा आधा हिस्सा बालकोंके लिये होना चाहिये ॥ ६५ ॥

मांसपलविंशत्या स्नेहार्धकुडुबः पलिको लवणस्यांशः क्षारपलयोगो द्विधरणिकः कटुकयोगो दध्नश्चार्धप्रस्थः ॥ ६६ ॥

मांसके पकानेमें कौन २ सी चीज़ कितनी २ पड़नी चाहिये, अब इसका निरूपण किया जाता है:--बीस पल मांसके साथ, आधी कुडुब चिकनाई (घी या तेल) डालना चाहिये; (चार कुडुबका एक प्रस्थ होता है, प्रस्थका आठवां हिस्सा आधा कुडुब हुआ); एक पल नमक डालना चाहिये, यदि नमक न हो तो एक पलही सज्जीखार या जवाखार आदि डालदेना चाहिये, पीपल, मिरच आदि मसाला दो धरण डालना चाहिये; (अस्सी बंगा सरसोंका एक रूप्यमाषक, और सोलह माषकका एक धरण होता है। सब परिमाणोंके जाननेके

लिये पौतवाध्यक्ष प्रकरण देखना चाहिये); और आधा प्रस्थ दो कुडुब, उतने मांसमें दही डालना चाहिये ॥ ६६ ॥

तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ६७ ॥ शाकानामध्यर्धगुणः ॥ ६८ ॥ शुष्काणां द्विगुणः स चैव योगः ॥ ६९ ॥

इससे अधिक मांस पकाना हो, तो इसी हिसाबसे, सब चीजें उसमें, उचित मात्रामें डाल देनी चाहियें ॥ ६७ ॥ हरे शाक बनानेके लिये यही सब मसाला (जो मांसके लिये बताया गया है) ड्योढ़ी मात्रामें डालना चाहिये । अर्थात् बीस पल हरे शाकमें डेढ़ गुना उपर्युक्त मसाला डालना चाहिये ॥ ६८ ॥ सूखे शाक अथवा मांसमें वही मसाला दुगना डाला जावे ॥ ६९ ॥

हस्त्यश्वयोस्तदध्यक्षे विधाप्रमाणं वक्ष्यामः ॥ ७० ॥ बलीवर्दानां माषद्रोणं यवानां वा पुलाकः शेषमश्वविधानम् ॥ ७१ ॥

हाथी और घोड़के लिये, चावल आदिका प्रमाण, उनके अध्यक्षके प्रकरणमें, अर्थात् हस्त्यध्यक्ष तथा अश्वाध्यक्ष प्रकरणमें निरूपण किया जायगा ॥ ७० ॥ बैलोंके लिये एक द्रोण परिमाण उड़द, तथा इतनेही, आधे उबले हुए जौ जानने चाहियें, शेष सब घोड़ोंके समान ही समझना चाहिये ॥ ७१ ॥

विशेषो—घाणपिण्याकतुला कणकुण्डकं दशाढकं वा ॥ ७२ ॥

घोड़ोंकी अपेक्षा बैलोंके लिये जो विशेष है, वह भी बताते हैं:—सूखे हुए तिलोंके कल्कके सौ पल, अथवा टूटे हुए चावलोंसे मिश्रित अनाजकी भूसी आदि, दश आढक होने चाहियें ॥ ७२ ॥

द्विगुणं महिषोष्ट्राणाम् ॥ ७३ ॥ अर्धद्रोणं खरपृषतरोहितानाम् ॥ ७४ ॥ आढकमेणकुरङ्गाणाम् ॥ ७५ ॥ अर्धाढकमजैलकवराहाणां द्विगुणं वा कणकुण्डकम् ॥ ७६ ॥

इससे दुगना सामान भैंसा और ऊँटोंके लिये होना चाहिये ॥७३॥ यही सब सामान, गदहा और चीतल हिरणोंको, आधा द्रोण अर्थात् दो आढक देना चाहिये ॥ ७४ ॥ एण और कुरङ्ग जातिके हिरणोंको (एण और कुरङ्ग ये हिरणोंकी विशेष जातियां हैं), यही सामान एक आढक परिमाणमें देना चाहिये ॥ ७५ ॥ बकरी भेड़ तथा सूअरोंको आधा आढक देना चाहिये । चावल आदिकी कनकी और भूसी मिलाकर, इससे दुगनी अर्थात् पूरी एक आढक देनी चाहिये ॥ ७६ ॥

प्रस्थौदनः शुनाम् ॥ ७७ ॥ हंसक्रौञ्चमयूराणामर्धप्रस्थः ॥ ७८ ॥ शेषाणामतो मृगपशुपक्षिव्यालानामेकभक्तादनुमानं ग्राहयेत् ॥ ७९ ॥

कुत्तोंको एक प्रस्थ परिमित खाना देना चाहिये ॥ ७७ ॥ हंस क्रौञ्च और मोरोंको आधा प्रस्थ देना चाहिये ॥ ७८ ॥ इनसे अतिरिक्त जितने भी जंगली या ग्राम्य पशु, पक्षी, तथा सिंह आदि हिंसक प्राणी हों, उन सबके लिये; एक दिन खिलाकर, जितना वे खासकें, उसीके अनुसार अनुमानसे खानेके परिमाण आदिका निर्णय करा देवें ॥ ७९ ॥

अङ्गारांस्तुषांल्लोहकर्मान्तभित्तिलेप्यानां हारयेत् ॥ ८० ॥ कणिका दासकर्मकरसूपकाराणामतो ऽन्यदौदनिकापूपिकेभ्यः प्रयच्छेत् ॥ ८१ ॥

कोयले और चोकर या भूसीको, लुहारों तथा मकान लीपने वाले पुरुषोंको देदेवे ॥ ८० ॥ चावल आदि नाजोंमेंसे छड़ फटककर निकली हुई बारीक कनकीको, दास (क्रीत सेवक), कर्मकर (अन्य गृह कार्य करने वाले सेवक), तथा सूपकार (रसोईया) को देदेवे । वे उसको अपने खाने आदिके काममें ले आवें । इससे अतिरिक्त और जो कुछ बचे, उसको साधारण अन्न पकाने वाले तथा पकवान आदि बनाने वाले परिचारकके लिये देदेवे ॥ ८१ ॥

तुलामानभाण्डं रोचनी दृषन्मुसलोलूखलकुट्टकरोचकयन्त्रपत्त्रकशूर्पचालनिकाकण्डोलीपिटकसंमार्जन्यश्चोपकरणानि ॥८२॥

पाकशालाके विशेष उपकरण (साधन=जो रसोईके कार्योंमें काम आते हैं), निम्नलिखित हैं:—तुला (तराजू), मानभण्ड (बाट आदि; इनका परिमाण पौतवाध्यक्ष प्रकरणमें बताया जायगा), रोचनी (दाल आदि दलनेका चकला), दृषत् (दाल या मसाला आदि पीसनेकी सिल), मूसल, ओखली, कुट्टक यन्त्र (धान आदि कूटनेका यन्त्र विशेष), रोचक यन्त्र (आटा आदि पीसनेका यन्त्र=चक्की, इसके तीन प्रकार हैं:—मनुष्यके द्वारा चलाई जाने वाली, और बैलों तथा पानीसे चलाई जाने वाली; पहिलीको साधारणतया, चक्की, और आगेकी दोनोंको घराट कहते हैं; पानीसे चलाई जाने वालीका नाम पनचक्की भी है); पत्रक (लकड़ीका बना हुआ; छिलका आदि साफ़ करने वाला); शूर्प (सूप=छाज), चालनिका (चलनी=छलनी) कण्डोली (बांसकी पतली खपच्चोंसे बनी हुई छोटीसी टोकरी, जिसमें बाज़ारसे शाक

आदि लाया जासके), पिटक (पिटारी, ऐसी चीजें रखनेके लिये, जिनमें हवा लगती रहनी आवश्यक हो), और संमार्जनी (झाड़ू=बुहारी) ॥ ८२ ॥

मार्जकरक्षकधरकमायककापकदायकदापकशलाकाप्रतिग्राहकदासकर्मकरवर्गश्च विष्टिः ॥ ८३ ॥

झाड़ू लगाने वाला, कोष्ठागारकी रक्षा करने वाला, तराजू आदि उठाकर तोलने वाला, तुलवाने वाला, इनका अधिष्ठाता, देने वाला, इसका अधिष्ठाता, बोझ आदिको उठाने वाला, दास (क्रीत दास), और कर्मकर, ये सब लोग विष्टि कहाते हैं ॥ ८३ ॥

उच्चैर्धान्यस्य निक्षेपो मूताः क्षारस्य संहताः ।
मृत्काष्ठकोष्ठाः स्नेहस्य पृथिवी लवणस्य च ॥ ८४ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे कोष्ठागाराध्यक्षः पञ्चदशो ऽध्यायः ॥ १५ ॥
आदितः षट्त्रिंशः ॥ ३६ ॥

धान्य आदिको ऊँचे स्थानमें रखना चाहिये, जहां भूमिके साथ स्पर्श न होसके, क्षार अर्थात् गुड़ राब आदिके रखनेके लिये खूब घना फूंस आदि लगाकर स्थान बनाना चाहिये; (अर्थात् ऐसा स्थान होना चाहिये, जहांपर गुड़ राब आदिमें सील न पहुंच सके; चारों ओर फूंस लगानेसे अच्छी गरमी बनी रहती है), स्नेह अर्थात् घृत तैल आदिके रखनेके लिये, मट्टीके (मृद्बान आदि) या लकड़ीके पात्र आदि बनाने चाहियें । नमक आदिको पृथिवीपर ही रखदेना चाहिये । जिन पदार्थोंके रखनेका निर्देश नहीं किया गया है, कोष्ठागाराध्यक्षको चाहिये, कि उनके रखनेका भी यथायोग्य प्रबन्ध करे ॥ ८४ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें पन्द्रहवां अध्याय समाप्त ।

सोलहवां अध्याय

३४ प्रकरण

पण्याध्यक्ष ।

विक्रीके योग्य राजद्रव्यको 'पण्य' कहते हैं, उसके क्रय विक्रय के लिये जो पुरुष नियुक्त किया जावे, उसका नाम 'पण्याध्यक्ष' है । इस प्रकरणमें राजकीय पण्यके क्रय-विक्रय व्यवहारका निरूपण किया जायगा ।

पण्याध्यक्षः स्थलजलजानां नानाविधानां पण्यानां स्थलपथ-वारिपथोपयातानां सारफल्ग्वर्धान्तरं प्रियाप्रियतां च विद्यात्॥ ॥ १ ॥ तथा विक्षेपसंक्षेपक्रयविक्रयप्रयोगकालान् ॥ २ ॥

पण्याध्यक्षको चाहिये कि वह स्थल और जलमें उत्पन्न होने वाले, स्थलमार्ग तथा जलमार्गसे आये हुए नाना प्रकारके पण्योंके सार तथा फल्गु मूल्यके तारतम्य को, और उनकी लोकप्रियता तथा अप्रियताको अच्छी तरह जाने। (सार और फल्गुसे तात्पर्य-बहुमूल्य और अल्पमूल्य वस्तुओंसे है, उन के मूल्यकी न्यूनाधिकताके क्रमको अवश्य जाने। जिस पदार्थका विक्रय अति शीघ्र होजावे, वह लोकप्रिय, और दूसरा अप्रिय समझना चाहिये) ॥ १ ॥ इसी तरह पण्याध्यक्षको यहभी आवश्यक है, कि वह विक्षेप (संक्षिप्त द्रव्यका विस्तार), संक्षेप (विस्तृत द्रव्यका संक्षेप), क्रय (पण्यका संग्रह=खरीदना) और विक्रय (संगृहीत पण्यका व्यय करदेना=अर्थात् बेचदेना) के उचित प्रयोग कालको अच्छी तरह पहिचाने ॥ २ ॥

यच्च पण्यं प्रचुरं स्यात्तदेकीकृत्यार्धमारोपयेत् ॥ ३ ॥ प्राप्ते ऽर्घे वार्घान्तरं कारयेत् ॥ ४ ॥

जो केसर आदि पण्य अधिक मात्रामें हो, उस सबको इकट्ठा करके अधिक मूल्यपर चढ़ा देवे ॥ ३ ॥ जब उसका उचित मूल्य प्राप्त होजावे, तो फिर उसे हलके दामोंमें ही बेचदेवे ॥ ४ ॥

स्वभूमिजानां राजपण्यानामेकमुखं व्यवहारं स्थापयेत् ॥५॥ परभूमिजानामनेकमुखम् ॥ ६ ॥

अपनी भूमिमें उत्पन्न हुए राजपण्योंके विक्रय आदि व्यवहारोंकी स्थापना, राजा एक ही नियत स्थानसे करवाये। तात्पर्य यह है कि जो पण्य अपने ही देशमें उत्पन्न हो, उसका किसी एक व्यक्तिको ठेका आदि देदेवे, और उसी के द्वारा उसका विक्रय करावे ॥ ५ ॥ जो दूसरे देशमें उत्पन्न हुआ २ पण्य हो उसका अनेक स्थानोंसे विक्रय करावे ॥ ६ ॥

उभयं च प्रजानामनुग्रहेण विक्रापयेत् ॥ ७ ॥ स्थूलमपि च लाभं प्रजानामौपघातिकं वारयेत् ॥ ८ ॥

अपने देश तथा परदेशमें उत्पन्न हुए २ दोनों प्रकार के पण्यों का विक्रय आदि, राजा को इस प्रकार कराना चाहिये, जिससे कि प्रजाको किसी प्रकारका कष्ट न पहुंचे ॥ ७ ॥ यदि किसी कार्यमें बहुत अधिक भी लाभ

होता हो, परन्तु उस कार्यके करनेसे प्रजाको कष्ट पहुंचता हो, तो राजा उस कार्य को तत्क्षण रोक देवे ॥ ८ ॥

अजस्रपण्यानां कालोपरोधं संकुलदोषं वा नोत्पादयेत् ॥९॥

जल्दी ही बिक जाने योग्य, शाक तथा दूध आदि पण्योंका अधिक समय तक रोके रहना तथा शाक आदि बेचने का पहिले किन्हीं व्यक्तियोंको ठेका देकर, उनका माल न बिकनेपर ही दूसरोंको, लोभके कारण ठेका देदेना, यह सर्वथा अनुचित है ॥ ९ ॥

बहुमुखं वा राजपण्यं वैदेहकाः कृतार्घं विक्रीणीरन् ॥१०॥ भेदानुरूपं च वैधरणं दद्युः ॥ ११ ॥

बहुत स्थानोंसे, अर्थात् बहुतसे व्यक्तियोंके द्वारा बेचे जाने वाले राजपण्यको, व्यापारी लोग मूल्य निश्चय करके बेचें; अर्थात् नियत मूल्यपर बेचें ॥ १० ॥ यदि विक्रय होनेपर मूल्यमें कुछ कमी होजावे, तो उसके अनुसारही व्यापारी लोग उस सारी कमीको पूरा करें। (इस पूर्त्ति करनेका नाम 'वैधरण' है) ॥ ११ ॥

षोडशभागो मानव्याजी ॥ १२ ॥ विंशतिभागस्तुलामानम् ॥ १३ ॥ गण्यपण्यानामेकादशभागः ॥ १४ ॥

व्यापारियोंसे कितना २ राजकीय अंश लेना चाहिये, इसका निरूपण किया जाता है:—जितना द्रव्य व्यापारियोंके यहां मापा जावे, उसका सोलहवां हिस्सा राजाको देना चाहिये; इसका नाम व्याजी या मानव्याजी होता है। ॥ १२ ॥ जो द्रव्य तोला जावे, उसका बीसवां हिस्सा राजाको देना चाहिये ॥ १३ ॥ जो पण्य द्रव्य गिने जावें, उनका ग्यारहवां हिस्सा राजाके लिए देना चाहिये ॥ १४ ॥

परभूमिजं पण्यमनुग्रहेणावाहयेत् ॥ १५ ॥ नाविकसार्थवाहेभ्यश्च परिहारमायतिक्षमं दद्यात् ॥ १६ ॥ अनभियोगश्चार्थेष्वागन्तूनामन्यत्र सभ्योपकारिभ्यः ॥ १७ ॥

परदेश में उत्पन्न हुए २ पण्यको, अन्तपाल तथा आटविक आदिके उपद्रवोंसे बचाकर, और व्याजी आदि छोड़ देनेका वादाकरके मंगवाये ॥ १५ ॥ नाव तथा जहाज आदिके द्वारा माल लाने लेजाने वाले व्यापारियोंसे भी राजा, अपना आदेय अंश न लेवे, अर्थात् उन्हें कुछ टैक्स माफ करदेवे। और भविष्यत् में भी किसी प्रकारकी बाधा न पहुंचानेका वचन देदेवे ॥ १६ ॥ विदेशसे आने वाले व्यपारियों पर, उत्तमर्ण की ओरसे अर्थ अर्थात् ऋण

सबन्धी अभियोग नहीं चलाया जाना चाहिये। अर्थात् राजा उनके सम्बन्ध में विना ही अभियोगके ऋण आदि देनेकी व्यवस्था करदेवे। परन्तु जो पुरुष विदेशी व्यापारी का उपकार करने वाले, अर्थात् कार्यमें सहयोग देने वाले तथा अन्य कर्मचारी पुरुष हों, उनका परस्पर अभियोग अवश्य हो सकता है ॥ १७ ॥

पण्याधिष्ठातारः पण्यमूल्यमेकमुखं काष्ठद्रोण्यामेकच्छिद्रापिधानायां निदध्युः ॥ १८ ॥ अह्नश्चाष्टमे भागे पण्याध्यक्षस्यार्पयेयुः, इदं विक्रीतमिदं शेषमिति ॥ १९ ॥ तुलामानभाण्डकं चार्पयेयुः ॥ २० ॥ इति स्वविषये व्याख्यातम् ॥ २१ ॥

सरकारी माल को बेचने वाले पुरुष, बिके हुए मालकी, इकट्ठी हुई २ कीमत को, एक छेद वाली लकड़ी की बन्द सन्दूकचीमें डालदेवें ॥ १८ ॥ और दिनके आठवें भागमें, (अर्थात् सायं कालके समय, जब कि क्रय और विक्रय आदि का दैनिक व्यवहार बन्द किया जाता हो) 'इतना बेच दिया है और इतना शेष रहा है' ऐसा कहकर वह सब धन और माल पण्याध्यक्ष के सुपुर्द करदेवें ॥ १९ ॥ तराजू तथा बाट आदि आवश्यक उपकरणों को भी उसी तरह पण्याध्यक्षके सुपुर्द करदेवें ॥ २० ॥ यहांतक अपने देशमें, पण्य द्रव्योंके बेचने आदिकी विधिका विवरण किया गया ॥ २१ ॥

परविषये तु पण्यप्रतिपण्ययोरर्घमूल्यं चागमय्य शुल्कवर्तन्यातिवाहिकगुल्मतरदेयभक्तभाटकव्ययशुद्धमुदयं पश्येत् ॥२२॥

अब परदेशमें किस तरह व्यापार करना चाहिये, इसका निरूपण किया जाता है:—अपने देशके तथा परदेशके पण्य द्रव्योंके न्यून अधिक तथा समान मूल्यको और उनके पैक आदि करानेकी कीमत को अच्छी तरह जानकर, और शुल्क (शुल्काध्यक्ष प्रकरणमें कहे हुए टैक्स आदि), वर्त्तनीदेय (अन्तपालको दिया जाने वाला), आतिवाहिकदेय (मार्गमें सहायता करने वाली पुलिस का देय अंश), गुल्मदेय (जंगलके रक्षकका देय अंश), तरदेय (नदी आदि पारकराने वाले नाविकका देय अंश), भक्त (भोजनका व्यय) तथा भाटक (भाड़ा) आदि इन सब तरहके खर्चों को निकालकर शुद्ध आमदनी देखे। तात्पर्य यह है कि सब तरहके व्ययको निकालकर फिर जो कुछ बचता हो, उसपर विचार करे कि इतनी आयपर हम अपने मालको विदेश में लेजाकर, वहांके मालके मुकाबलेमें बेच सकते हैं, या नहीं ॥ २२ ॥

असत्युदये भाण्डनिर्वहणेन पण्यप्रतिपण्यार्घेण वा लाभं पश्येत् ॥ २३ ॥ ततः सारपादेन स्थलव्यवहारमध्वना क्षेमेण प्रयोजयेत् ॥ २४ ॥

यदि इसमें कुछ लाभ न दीखता हो, तो अपने मालको विदेशमें भी लेजाकर भविष्यमें लाभकी प्रतीक्षा करते हुए, उसीके अनुसार विक्रयके द्वारा अपने लाभका विचार करे; अथवा अपने मालसे वहां के लोकप्रिय मालको बदलकर फिर अपने लाभको देखे ॥ २३ ॥ तदनन्तर विचारे हुए लाभका चौथा हिस्सा व्यय करके, उपद्रव रहित स्थलमार्गसे भी कुछ व्यापार करना आरम्भ करदे ॥ २४ ॥

अटव्यन्तपालपुरराष्ट्रमुख्यैश्च प्रतिसंसर्गं गच्छेदनुग्रहार्थम् ॥ २५ ॥ आपदि सारमात्मानं वा मोक्षयेत् ॥ २६ ॥

अटवीपाल (जंगलका रक्षक), अन्तपाल (सीमारक्षक), नगर के मुख्य पुरुष और राष्ट्रके भी मुख्य २ पुरुषोंके साथ संगत करे, अर्थात् उनसे अच्छी तरह अपनी जान पहचान बढ़ावे; जिससे कि वे अपनेसे अनुकूल रहकर अपने व्यापारमें लाभ पहुंचा सकें ॥ २५ ॥ यदि मार्गमें अथवा रहने के स्थानमें ही कोई चोर आदि का उपद्रव होजावे तो सबसे प्रथम सार अर्थात् रत्न आदि द्रव्यों को और अपने शरीर को छुड़ावे, अर्थात् इनकी रक्षा करे । यदि दोनों की रक्षा सम्भव न हो, तो रत्न आदिका भी परित्याग कर अपने आपको ही बचावे ॥ २६ ॥

आत्मनो वा भूमिमप्राप्तः सर्वदेयविशुद्धं व्यवहरेत् ॥२७॥

परदेशमें व्यापार करता हुआ पुरुष जब तक अपने देशमें न लौट आवे, तब तक (अर्थात् जितनी देर परदेशमें व्यापार करता रहे उस समयमें) वहांके राजाके जितने भी देयअंश हों (सरकारी टैक्स हों), उन सबको नियम पूर्वक अदा करता हुआ ही अपने व्यापारको चलावे; क्योंकि कहीं ऐसा न होजाय, कि थोड़ासा टैक्स न देनेके लोभमें अपना सर्वनाश होजाय ॥ २७ ॥

वारिपथे च यानभाटकपथ्यदनपण्यप्रतिपण्यार्घप्रमाणयात्राकालभयप्रतीकारपण्यपत्तनचारित्राण्युपलभेत ॥ २८ ॥

जलमार्गसे व्यापार करने वाले व्यापारीको, यानभाटक (नाव तथा जहाज आदिके भाड़े), पथ्यदन (मार्गमें खाने पीने का व्यय), पण्य और प्रतिपण्यके मूल्यका प्रमाण (अर्थात् अपना विक्रेय द्रव्य और पराये विक्रेय द्रव्यके मूल्यकी न्यूनाधिकता=तारतम्य), यात्राकाल (कौनसी ऋतु आदिमें

यात्रा करना ठीक रहेगा, अथवा कितने दिन में यात्रा समाप्त हो सकेगी, यह बात), भयप्रतीकार (मार्गमें होने वाले चोर आदिके भयका प्रतीकार) और जिस दूसरे देशके नगरमें जाकर अपने विक्रेय माल को बेचना है, वहांके आचार व्यवहार; इत्यादि सब ही बातोंके सम्बन्धमें अच्छी तरह विचार करना चाहिये। सब बातों को अनुकूल समझ कर ही ऐसा व्यवहार करे ॥ २८ ॥

नदीपथे च विज्ञाय व्यवहारं चारित्रतः ।
यतो लाभस्ततो गच्छेदलाभं परिवर्जयेत् ॥ २९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे पण्याध्यक्षः षोडशो ऽध्यायः ॥ १६ ॥
आदितः सप्तत्रिंशः ॥ ३७ ॥

इसी प्रकार न केवल समुद्रमार्गमें ही, किन्तु नदीमार्गमें भी, उन २ देशोंके चरित्र अर्थात् आचार और बनिज व्यापारको अच्छी तरह जानकर ही जिस मार्गसे लाभ हो, उसीका अनुसरण करे, थोड़ेमे लाभ या अलाभ को, तथा जिसमें प्रवास आदि का महान क्लेश हो, ऐसे मार्ग को सर्वथा छोड़देवे ॥ २९ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें सोलहवां अध्याय समाप्त।

सत्रहवां अध्याय।

३७ प्रकरण।

कुप्याध्यक्ष ।

चन्दन आदिकी बढ़िया लकड़ी, बांस तथा छाल आदि सब ‘कुप्य’ कहाते हैं। इन पदार्थोंपर जो राजकीय अधिकारी पुरुष नियुक्त किया गया हो उसका नाम ‘कुप्याध्यक्ष’ है। इस प्रकरणमें उसकेही कार्योंका निरूपण किया जायगा।

कुप्याध्यक्षो द्रव्यवनपालैः कुप्यमानाययेत् ॥ १ ॥ द्रव्यवनकर्मान्तांश्च प्रयोजयेत् ॥ २ ॥ द्रव्यवनच्छिदां च देयमत्ययं च स्थापयेदन्यत्रापद्भ्यः ॥ ३ ॥

कुप्याध्यक्षको चाहिये कि वह, भिन्न २ स्थानोंके वृक्षों तथा जंगलोंकी रक्षा करने वाले पुरुषोंके द्वारा कुप्य अर्थात् बढ़िया लकड़ी मंगवावे ॥ १ ॥ और लकड़ीसे बनने वाले अन्य कार्योंको भी करवावे। अर्थात् लकड़ीसे जो

और चीजें बनाई जाती हैं उनको भी बनवावे ॥ २ ॥ जो पुरुष, जंगल या वृक्ष आदिको काटने वाले हों, अर्थात् यही कार्य करके अपनी आजीविका करने वाले हों, उनको वृक्ष आदि काटनेके लिये जो कुछ वेतन देना हो, वह पहिले हीसे नियत करलेना चाहिये; और आज्ञासे अन्यथा कार्य करनेपर दण्ड आदि भी नियत करदेना चाहिये । परन्तु यदि किसी आपत्तिके कारण, कार्य अन्यथा होगया हो, तो दण्ड न देना चाहिये ॥ ३ ॥

कुप्यवर्गः-शाकतिनिशधन्वनार्जुनमधूकतिलकसालशिंशपारिमेदराजादनशिरीषखदिरसरलतालसर्जाश्वकर्णसोमवल्ककशाम्र-प्रियकधवादिः सारदारुवर्गः ॥ ४ ॥

अब इसके आगे कुप्य वर्गका निरूपण किया जाता है; कुप्य वर्गमें अनेक आवान्तर भेद हैं; उनमें सबसे प्रथम सारदारुवर्ग (सबसे बढ़िया लकड़ी कौन कौनसी है, इस बात) को बताते हैं:—शाक (सागून), तिनिश (तुन=तिनस= तेंदुआ), धन्वन (पीपलका वृक्ष), अर्जुन, (यह वृक्ष इसी नामसे प्रसिद्ध है), मधूक (महुआ), तिलक (फरास, इसको तालमखाना भी कहते हैं; यह वृक्ष झाऊके ढङ्गका होता है, पर उससे काफी बड़ा होता है), साल (यह वृक्ष इसी नामसे प्रसिद्ध है), शिंशपा (शीशम=टाली), अरिमेद (एक प्रकारके खैर वृक्षका नाम है, इसमेंसे कुछ २ दुर्गन्ध आती है), राजादन (खिरनी), शिरीष (सिरस), खदिर (खैर), सरल (एक प्रकार देवदार; सम्भवतः यह सीधा जाने वाले यूक्लिप्टिसका नाम हो), ताल (ताड़), सर्ज (पीले रङ्गका साल), अश्वकर्ण (यह भी साल वृक्षकाही एक भेद है, सम्भवतः यह बड़ा सरू हो), सोमवल्क (सफेद खैर), कश (कीकर=बबूर), आम, प्रियक (कदंब), धव (गूलर); इन सबकी लकड़ी बहुत बढ़िया मजबूत होती है । आदि शब्दसे, अन्य इमली आदि सबही मज़बूत लकड़ी वाले वृक्षोंका ग्रहण करलेना चाहिये । यह सब सारदारुवर्ग है ॥ ४ ॥

उटजचिमियचापवेणुवंशसातीनकण्टकभाल्लूकादिर्वेणुवर्गः ॥ ५ ॥ वेत्रशीकवल्लीवाशीश्यामलतानागलतादिर्वल्लीवर्गः ॥६॥

उटज (जो बहुत खोखला हो, और जिसकी गांठोंपर कांटेसे हों), चिमिय (ठोस तथा मुलायम छाल वाला), चाप (थोड़ासा पोला और ऊपरसे बहुत खरखरासा), वेणु (चिकना, धनुष बनाने योग्य), वंश (लम्बी पोरियों वाला), सातीन, कण्टक (ये भी बांसोंके भेद हैं), भाल्लूक (बहुत मोटा और लम्बा तथा कांटोंसे रहित); इत्यादि ये सब बांसोंके भेद हैं ॥ ५ ॥ वेत्र (बेंत), शीकवल्ली (हंस वल्ली=एक प्रकारकी लता), वाशी (अर्जुनके

फूलोंके समान फूल वाली एक लता), श्यामलता (काली निसोत अथवा सरयाई), नागलता (नागवल्ली=नागर पानकी बेल); आदि ये सब लताओंके भेद हैं ॥ ६ ॥

मालतीमूर्वार्कशणगवेधुकातस्यादिर्वल्कवर्गः ॥ ७ ॥

मालती (चमेली), मूर्वा (मरोर फली), अर्क (आख=आक), शण (सन), गवेधुका (नागबला), अतसी (अलसी), आदि यह वल्कवर्ग है । अर्थात् इनकी छाल काममें आती है ॥ ७ ॥

मुञ्जबल्बजादि रज्जुभाण्डम् ॥८॥ तालीतालभूर्जानां पत्त्रम् ॥ ९ ॥ किंशुककुसुम्भकुङ्कुमानां पुष्पम् ॥ १० ॥

मुञ्ज (मूंज), बल्बज (लवा=एक प्रकारकी घास), ये रज्जु अर्थात् रस्सी बनानेके साधन हैं ॥ ८ ॥ ताली (ताड़का एक भेद), ताल (ताड़), भूर्ज (भोजपत्र), इनका पत्ता कागज आदि की तरह लिखने के काम में आता है ॥ ९ ॥ किंशुक (ढाक), कुसुम्भ (कसूम), कुंकुम (केसर), ये सब वस्त्रादिके रंगनेके साधन हैं ॥ १० ॥

कन्दमूलफलादिरौषधवर्गः ॥ ११ ॥

कन्द (बिदारी सूरण आदि), मूल (जड़=खस आदि), फल (आंवला, हरीतकी आदि), ये सब औषधिवर्ग है ॥ ११ ॥

कालकूटवत्सनाभहालाहलमेषशृङ्गमुस्ताकुष्ठमहाविषवेल्लितक-गौरार्द्रबालकमार्कटहैमवतकालिङ्गकदारदकांकोलसारक्रोष्ट्रकादीनि विषाणि ॥ १२ ॥

कालकूट, वत्सनाभ, हालाहल, मेषशृङ्ग, मुस्ता (मोथे की तरह आकार वाला), कुष्ठ (कूटके समान), महाविष, वेल्लितक (मूलसे पैदा हुआ, काला और लाल रंगका), गौरार्द्र (कन्दसे पैदा हुआ, काले रंगका), बालक (पीपलके आकारका), मार्कट (बन्दरके समान रंगका), हैमवत (हिमालय में उत्पन्न हुआ २) कालिङ्गक (कलिङ्ग देशमें उत्पन्न हुआ २, जौ की आकृतिके समान), दारदक (दरदसे उत्पन्न होने वाला पत्रविष), अङ्कोलसारक (अङ्कोल वृक्षमे उत्पन्न हुआ २), उष्ट्रक (ऊंटके मेदके समान आकार वाला) इत्यादि ये सब विष होते हैं ॥ १२ ॥

सर्पाः कीटाश्च त एव कुम्भगता विषवर्गः ॥ १३ ॥

सर्प (सांप), कीट (धारी वाले मेंडक, छपकी आदि) आदि जब औपनिषदिक प्रकरणमें बताई हुई विधिके अनुसार ही सीसे आदि के

घड़ेमें बन्द करके संस्कृत किये जायें, तो विष होजाते हैं। यह विषवर्ग है ॥ १३ ॥

गोधासेरकद्वीपिशिंशुमारसिंहव्याघ्रहस्तिमहिषचमरसृमरखड्गगोमृगगवयानां चर्मास्थिपित्तस्नाय्वस्थिदन्तशृङ्गखुरपुच्छान्यन्येषां वापि मृगपशुपक्षिव्यालानाम् ॥ १४ ॥

गोह, सेरक (चन्दन गोह, सफेद खालकी गोह का नाम है, जो प्रायः स्थलमें रहती है), द्वीपी (बघेरा), शिंशुमार (एक प्रकारकी बड़ी मछली), सिंह, व्याघ्र, हाथी, भैंसा, चमर (चंवरी गाय), सृमर (जंगली पशु जाति), खड्ग (गेंडा), गाय, हरिण और नीलगाय; इनकी खाल हड्डी पित्ता स्नायु (जिससे तांत बनती है, स्नायु शब्दके आगे फिर दुबारा अस्थि शब्द आगया है। यहांपर इस शब्दका पाठ अनावश्यक होनेसे संदिग्ध है), दांत, सींग, खुर, पूंछ, आदि चीजें काममें आती हैं; अर्थात् गोह आदि पशुओं की खाल आदि चीजोंको कुप्यके अन्तर्गत होनेसे अवश्य सगृहीत करे। इनके अतिरिक्त और भी जो मृग, पशु पक्षी तथा जंगली हिंसक जानवर हों उनके चर्म आदि का भी संग्रह करे ॥ १४ ॥

कालायसताम्रवृत्तकांस्यसीसत्रपुवैकृन्तकारकूटानि लोहानि ॥ १५ ॥

कालायस (काला लोहा), ताम्रवृत्त (तांबा), कांस्य (कांसा), सीस (सीसा), त्रपु (रांग), वैकृन्तक (एक प्रकार का लोहा), आरकूट (पीतल), ये सब लोहेके ही भेद कहाते हैं। ये सभी आकरकर्मान्त प्रकरणमें कहे जाकर भी, यहां कुप्यमें गणना करनेके लिये फिर कहे गये हैं॥ १५॥

विदलमृत्तिकामयं भाण्डम् ॥ १६ ॥

भाण्ड अर्थात् पात्र दो प्रकारके होते हैं, एक विदलमय, दूसरे मृत्तिकामय। जो बांसकी खपच्च या इसी प्रकारकी दूसरी बारीक लकड़ियों से ही बनाये जावें, वे पिटारी टोकरी आदि पहिले; और मिट्टीसे बनाये जाने वाले घड़े शकोरे आदि दूसरे होते हैं। ये भी संग्राह्य होते हैं ॥ १६ ॥

अङ्गारतुषभस्मानि मृगपशुपक्षिव्यालवाटाः काष्ठतृणवाटाश्चेति ॥ १७ ॥

कोयले और राख आदि; मृग पशु पक्षी तथा अन्य हिंसक जंगली जानवरोंके समूह, तथा लकड़ी और घास फूंसके ढेरोंका भी कुप्य होनेके कारण संग्रह करना अत्यन्त आवश्यक है ॥ १७ ॥

बहिरन्तरश्च कर्मान्ता विभक्ताः सर्वभाण्डिकाः ।
आजीवपुररक्षार्थाः कार्याः कुप्योपजीविना ॥ १८ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे कुप्याध्यक्षः सप्तदशो ऽध्यायः ॥ १७ ॥
आदितो ऽष्टात्रिंशः ॥ ३८ ॥

बाहर जंगलोंके समीप तथा जनपदमें, और अन्दर दुर्ग आदिमें, पृथक् २ गाड़ी तथा लकड़ी आदिसे बनी हुई अन्य चीजें या सवारियां; सब तरहके भाण्ड (पात्र) आदिके समूह, इत्यादि सब ही आवश्यक पदार्थों का और अपनी आजीविका, तथा नगर आदिकी रक्षाके लिये अन्य आवश्यक पदार्थोंका भी; कुप्योपजीवी (कुप्यसे अपनी आजीविका करने वाले कुप्याध्यक्ष आदि) पुरुष अच्छी तरह संग्रह करें ॥ १८ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें सत्रहवां अध्याय समाप्त ।

अठारहवां अध्याय

३६ प्रकरण

आयुधागाराध्यक्ष ।

आयुधागाराध्यक्षः सांग्रामिकं दौर्गकर्मिकं परपुराभिघातिकं चक्रयन्त्रमायुधमावरणमुपकरणं च तज्जातकारुशिल्पिभिः कृतकर्मप्रमाणकालवेतनफलनिष्पत्तिभिः कारयेत् ॥ १ ॥

आयुधागाराध्यक्ष, संग्राममें काम आनेवाले, दुर्ग की रक्षा के काममें आनेवाले, तथा शत्रुके नगरका विध्वंस करनेमें काम आनेवाले, सर्वतोभद्र (मैशीनगन), जामदग्न्य आदि यन्त्रोंका; (किसी २ पुस्तकमें 'यन्त्रम्' के स्थानपर 'चक्रयन्त्रम्' पाठ है), शक्ति चाप आदि अन्य हथियारोंका, तथा आवरण कवच आदि और सवारी आदि अन्य साधनोंका ; उन २ कार्योंको जाननेवाले कारु (मोटा काम करनेवाले कारीगर) और शिल्पी (बारीक काम करनेवाले कारीगर) पुरुषोंके द्वारा निर्माण करावें । उन कारीगरोंसे प्रतिदिन कितना काम कराना चाहिये, अर्थात् यन्त्र आयुध आदि कितने तैयार कराने चाहियें, और कितने समय काम कराना चाहिये (अर्थात् कार्य करनेका समय कितना होना चाहिये); तथा उनका वेतन आदि कितना होना चाहिये, इन सब बातोंका पहिलेहीसे निश्चय करके फिर उन (कारीगरों) से काम कराना चाहिये ॥ १ ॥

स्वभूमिषु च स्थापयेत् ॥ २ ॥ स्थानपरिवर्तनमातपप्रवात-प्रदानं च बहुशः कुर्यात् ॥ ३ ॥

जो सामान बनकर तैयार होताजावे, उसको उसके अपने स्थानमें रखवा दियाजावे । अथवा, उस सबको अपनेही आधीन स्थानोंमें सुरक्षित रखवाया जावे ॥२॥ तथा अध्यक्ष उनका स्थान परिवर्त्तन करवाता रहे, जिससे कि वे एकही स्थानमें रक्खे २ खराब न होजावें, और बार २ उनको धूप तथा हवा देनेकाभी पूरा प्रबन्ध रक्खा जावे ॥ ३ ॥

ऊष्मोपस्नेहक्रिमिभिरुपहन्यमानमन्यथा स्थापयेत् ॥ ४ ॥ जातिरूपलक्षणप्रमाणागममूल्यनिक्षेपैश्चोपलभेत ॥ ५ ॥

जो हथियार आदि गरमी, नमी, तथा कीड़े (घुन) आदिके कारण ख़राब होरहे हों, उन्हें वहांसे उठवाकर इसप्रकार रखवावे, जिससे कि वे फिर ख़राब न होसकें ॥ ४ ॥ उनकी जाति (स्वभाव). उनका रूप (सीधा या टेढ़ा आदि), लक्षण (शास्त्रोंमें कहेहुए उत्तम मध्यम आदि चिन्ह), प्रमाण (लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई आदि), आगम (जहांसे उसकी प्राप्ति हुई है), मूल्य, तथा निक्षेप आदिके सम्बन्धमें अध्यक्ष अच्छीतरह ज्ञान प्राप्त करे ॥५॥

सर्वतोभद्रजामदग्न्यबहुमुखविश्वासघातिसङ्घाटीयानकपर्जन्य-कार्धबाहूर्ध्वबाह्वर्ध्वबाहूनि स्थितयन्त्राणि ॥ ६ ॥

अब यन्त्रोंके विषयमें निरूपण किया जाता है;—सर्वतोभद्र (वह यन्त्र होता है जो एक जगह रक्खा हुआ, चारों ओरको गोली की मार करे), जामदग्न्य (जिसके बीचमें एक छेदमेंसे ही बहुत बड़े२ गोले निकलें), बहुमुख (किले की ऊंची दीवारोंपर बनाये हुए उस स्थान विशेष का नाम है, जिसमें बैठकर अनेक योद्धा पुरुष चारों ओरको बाणवृष्टि करसकें), विश्वास घाती (नगरके बाहर तिरछा बना हुआ यन्त्रविशेष, जो कि स्पर्श करनेपर मार डाले, इसका यह अन्वर्थनाम इसी लिये है, किजो पहलेसे कुछ न मालूम पड़े, और स्पर्श करनेपर प्राणघात करदेवे), सङ्घाटि (लम्बे २ बांसोंसे बनाये हुए, ऊंचे अट्टालक आदि को प्रदीप्त करनेके लिये अग्नियन्त्रविशेष), यानक (पहियोंके ऊपर रक्खा जाने वाला लम्बासा यन्त्र, जो बीचमें से कुछ चौड़ा हो, अथवा रथ आदि सवारीपर रखकर जो चलाया जावे), पर्जन्यक (अग्नि को शान्त करनेके लिये काममें आने वाला, वरुणास्त्र), बाहुयन्त्र (पर्जन्यक के समान ही उससे आधा छोटा यन्त्र), ऊर्ध्वबाहु (ऊपर बना हुआ पर्जन्यकके बराबर बड़ाभारी स्तम्भ, जो समीप आने वालों को मारदेवे), अर्धबाहु (ऊर्ध्वबाहुसे आधे परिमाण वाला), यह दश प्रकारके यन्त्र, स्थितयंत्र कहाते हैं॥६॥

पञ्चालिकदेवदण्डसूकरिकामुसलयष्टिहस्तिवारकतालवृन्तमुद्गरगदास्पृक्तलाकुद्दालास्फोटिमोद्घाटिमोत्पाटिमशतघ्नीत्रिशूलचक्राणि चलयन्त्राणि ॥ ७ ॥

पञ्चालिक (तीक्ष्ण मुख वाला बढ़िया लकड़ी का बना हुआ, जो परकोटेके बाहर जलके बीचमें शत्रुको रोकनेके लिये काममें लाया जाता है), देवदण्ड (कील रहित बड़ा भारी स्तम्भ, जो कि किलेके परकोटेके ऊपर रक्खा जाता है), सूकरिका (सूत और चमड़ेकी बनीहुई एक बहुत बड़ी मशकसी, जो कि बाहरसे आनेवाले बाण आदिको रोकनेके लिये गोपुर या अट्टालक आदिपर ढकदी जाती है; किसी २ ने इसका अर्थ किया है–बांससे बनीहुई तथा चमड़ेसे ढकीहुई सूकरके समान आकारवाली बहुत बड़ी मशकसी, जो कि दुर्गकी रक्षामें काम आती है), मुसलयष्टि (खैरका बनाहुआ, मूसल के समान मजबूत डंडा जिसके आगे एक शूल हो), हस्तिवारक (दो मुख या तीन मुखवाला डंडा अर्थात् द्विशूल या त्रिशूल, किसी २ ने इसका अर्थ 'हाथीको मारनेके लिये एक खास तरह का डंडा' यह किया है), तालवृन्त (चारों ओरको घूमनेवाला यन्त्र विशेष), मुद्गर, द्रुघण (मुद्गरके समानही एक अस्त्र विशेष), गदा, स्पृक्तला (कांटोंवाली गदा), कुद्दाल (कसी=फावड़ा) आस्फोटिम (चमड़ेसे ढकाहुआ, चार कोनोंवाला, मट्टीके ढेले या पत्थर आदि फेंकनेका यन्त्र), उद्घाटिम (मुद्गरके समान आकृतिवालाही एक यन्त्र विशेष), उत्पाटिम (खम्बे आदिको उखाड़नेवाला श्येन यन्त्र), शतघ्नी (मोटी और लम्बी २ कीलोंसे युक्त, बहुत बड़ा स्तम्भसा, जो कि किलेकी दीवारके ऊपर रक्खा जाता है), त्रिशूल और चक्र; ये सब यन्त्र चलयन्त्र कहेजाते हैं ॥७॥

शक्तिप्रासकुन्तहाटकभिण्डिपालशूलतोमरवराहकर्णकणयकर्पणत्रासिकादीनि च हलमुखानि ॥ ८ ॥

शक्ति (सम्पूर्ण लोहेका बनाहुआ, कनेरके पत्तेके समान मुखवाला), प्रास (चौबीस अंगुल लम्बा दुधारा, सम्पूर्ण लोहेका बनाहुआ तथा जिसके बीचमें लकड़ी लगी हुई हो), कुन्त (सात हाथका उत्तम छः हाथका मध्यम तथा पांच हाथका निकृष्ट कुन्त होता है), हाटक (कुन्तके समान तीन कांटोंवाला हथियार), भिण्डिपाल (मोटे फलेवाले कुन्तकाही यह नाम है), शूल (तीक्ष्ण एक मुखवाला, इसका प्रमाण नियत नहीं है), तोमर (चार हाथका अधम, साढ़े चार हाथका मध्यम और पांच हाथका उत्तम होता है, इसका अगला हिस्सा बाणके समान तीक्ष्ण होता है)। वराहकर्ण (सूअरके कानके समान मुखाकृति वाले प्रासकाही नाम है), कणय (सम्पूर्ण लोहेका बना

हुआ, दोनों ओरसे तीब २ कांटोंसे युक्त, बीचमें मूंठवाला, यह बीस अंगुल का अधम, बाईस अंगुल का मध्यम और चौबीस अंगुलका उत्तम होता है), कर्पण (तोमरके समान, हाथसे फेंकेजाने वाला एक बाण विशेष), त्रासिका (सम्पूर्ण लोहेसे बनीहुई प्रासके बराबर होती है), इत्यादि ये सब हथियार हलमुख कहाते हैं, क्योंकि इनका अग्रभाग खूब तीक्ष्ण होता है। लगभग ये सब, भालोंकेही भेद हैं ॥ ८ ॥

तालचापदारवशार्ङ्गाणि कार्मुककोदण्डद्रूणा धनूंषि ॥ ९ ॥ मूर्वार्कशणगवेधुवेणुस्नायूनि ज्याः ॥ १० ॥

ताल (ताड़का बनाहुआ), चाप (विशेष प्रकारके बांसका बना हुआ), दारव (किसी मजबूत लकड़ीका बनाहुआ), और शार्ङ्ग सींगोंका बनाहुआ), ये चार प्रकृतियोंसे धनुष बनाये जाते हैं। आकृति तथा क्रिया भेदसे इनके पृथक् पृथक् नाम कार्मुक कोदण्ड और द्रूण हैं ॥ ९ ॥ मूर्वा, आख, सन, गवेधुका, वेणु (बांस जो केतकीके समान होता है, इसको कूटकर जो इसके रेशे निकलते हैं, उनकी रस्सी बहुत मजबूत बनती है), और स्नायु (जिसकी तांत बनती है), इन चीजोंसे धनुषकी डोरी बनानी चाहिये ॥ १० ॥

वेणुशरशलाकादण्डासननाराचाश्च इषवः ॥ ११ ॥ तेषां मुखानि छेदनभेदनताडनान्यायसास्थिदारवानि ॥ १२ ॥

वेणु (बांस, उटज चिमिय इत्यादि), शर (नरसल आदि), शलाका (किसी मजबूत लकड़ीकी बनाई हुई), दण्डासन (आधा लोहा और आधा बांस आदिका बना हुआ), नाराच (सम्पूर्ण लोहेका बनाहुआ), ये भिन्न २ प्रकारके बाण होते हैं ॥ ११ ॥ उन बाणोंके अग्रभाग (मुख=अगले हिस्से) छेदने काटनेके लिये, रक्त सहित आघात पहुंचानेके लिये, तथा रक्त रहित चोट पहुंचानेके लिये होते हैं। वे लोहे हड्डी तथा मजबूत लकड़ीके बनाये हुए होते हैं ॥ १२ ॥

निस्त्रिंशमण्डलाग्रासियष्टय खड्गाः ॥ १३ ॥ खड्गमहिषवारणविषाणदारुवेणुमूलानि त्सरवः ॥ १४ ॥

खड्ग (तलवार) तीन प्रकारके होते हैं—निस्त्रिंश (जिसका अगला हिस्सा काफी टेढ़ा हो), मण्डलाग्र (जिसका अगला हिस्सा कुछ २ गोलाकार हो), तथा असियष्टि (जिसका पतला और लम्बा आकार हो) ॥ १३ ॥ तलवारकी मूंठ भिन्न, भिन्न चीजोंकी होनी चाहिये—खड्ग (गेंडा) और भैंसे के सींग, हाथीदांत, मजबूत लकड़ियां और बांसकी जड़ ॥ १४ ॥

परशुकुठारपट्टसखनित्रकुद्दालक्रकचकाण्डच्छेदनाः क्षुरकल्पाः ॥ १५ ॥ यन्त्रगोष्पणमुष्टिपाषाणरोचनीदृषदश्चायुधानि ॥ १६ ॥

परशु (फरसा), कुठार (कुल्हाड़ा), पट्टस (दोनों किनारोंपर जिसके त्रिशूल हों) खनित्र (फावड़ा=कसी), कुद्दाल (कुदाली=वैसाखी यह सम्पूर्ण लोहेकी बनीहुई सामनेसे चौड़े मुंहकी होती है), क्रकच (आरा), काण्डच्छेदन (काण्डासिका=गंडासी), यह सब क्षुरकल्प या क्षुरवर्ग कहाता है। छुरेके समान सीधी धार होनेके कारण इनको यह नाम दिया गया है ॥ १५ ॥ यन्त्रपाषाण (किसी यन्त्रविशेषसे फैंकाहुआ पाषाण आदि), गोष्पणपाषाण (गोफियोंसे फैंकाहुआ पाषाण आदि । गोफिया=सूत आदिके बनेहुए एक यन्त्र विशेषका नाम है, जिसमें पत्थर आदि रखकर फिर उसे घुमाकर खेतों और बागीचोंमें पक्षियोंको उड़ाया जाता है), मुष्टिपाषाण मुट्ठीसे फैंकाहुआ पाषाण आदि), रोचनी (दलनेकी यन्त्र शिला=चक्कीके पाट आदि) और दृषद् (बड़े २ पत्थर=महाशिला), आदि ये सब आयुध कहाते हैं ॥ १६ ॥

लोहजालजालिकापट्टकवचसूत्रकंकटशिंशुमारकखड्गिधेनुकहस्तिगोचर्मखुरशृङ्गसंघातं वर्माणि ॥ १७ ॥

लोहजाल (सिरके सहित सम्पूर्ण शरीरको ढकनेवाला आवरण), लोहजालिका (सिरको छोड़कर बाकी शरीर को ढकने वाला आवरण), लोह पट्ट (बाहोंको छोड़कर बाकी देहपर आजानेवाला आवरण), लोहकवच (केवल पीठ और छातीको ढकनेवाला आवरण), सूत्रकङ्कग (कपासके सूत आदिका बना हुआ कवच), और शिंशुमारक (एक प्रकारकी मछली ; किसीने इसका अर्थ ऊदबिलाव भी किया है), खड्गि (गेंडा), धेनुक (गवय=नीलगाय), हाथी तथा बैल इन पांचोंके चमड़े, खुर और सींगोंको, बड़े चातुर्यसे आपसमें मिलाकर भी कवच तैयार किया जाता है । इस प्रकार ये छः तरहके कवच तैयार किये जाते हैं ॥ १७ ॥

शिरस्त्राणकण्ठत्राणकूर्पासकञ्चुकवारवाणपट्टनागोदरिकाः; पेटीचर्महस्तिकर्णतालमूलधमनिकाकपाटकिटिकाप्रतिहतवलाहकान्ताश्च आवरणानि ॥ १८ ॥

शिरस्त्राण (केवल सिरकी रक्षा करनेवाला), कण्ठत्राण (कण्ठकी रक्षा करनेवाला), कूर्पास (आधी बांहोंको आवरण करनेवाला), कञ्चुक (घोंटुओं तक शरीरको ढकनेवाला), वारवाण (पैरोंके टखने तक सारी देहको ढकनेवाला)

पट्ट (जिसमें बांहें बिलकुल न हों, तथा जो लोहेका बनाया हुआ न हो), नागोदरिका (केवल हाथकी अंगुलियोंकी रक्षा करनेवाला), ये देहपर धारण किये जानेवाले सात आवरण और होते हैं । पेटी, चर्म (चमड़ेकी बनी हुई पेटी), हस्तिकर्ण (मुंह ढकनेका आवरण), तालमूल (लकड़ीकी बनी हुई पेटी), धमनिका (सूतकी बनी हुई पेटी), कवाट (लकड़ीका बना हुआ एक विशेष पट्टा), किटिका (चमड़े और बांसको कूटकर बनाई हुई पेटी), अप्रतिहत (सम्पूर्ण हाथको ढकने वाला आवरण), बलाहकान्त (किनारोंपर लोहेके पत्तर-से बन्धा हुआ अप्रतिहत ही बलाहकान्त कहाता है), और इसी तरहके अन्य भी शरीरको ढकने वाले आवरण होते हैं ॥ १८ ॥

हस्तिरथवाजिनां योग्यभाण्डमालंकारिकं संनाहकल्पना-श्चोपकरणानि ॥१९॥ ऐन्द्रजालिकमौपनिषदिकं च कर्म ॥२०॥

हाथी, रथ तथा घोड़ोंकी शिक्षा आदिके साधन, अङ्कुश कोड़े आदि; तथा सजानेके लिये अन्य पताका आदि साधन; और कवच तथा शरीरकी रक्षा करने वाले अन्य आवरण, ये सब उपकरण कहाते हैं ॥ १९ ॥ ऐन्द्रजा-लिक कर्म तथा औपनिषदिक कर्मको भी उपकरण कहते हैं । (ऐन्द्रजालिक= थोड़ीसी सेनाको बहुत सेनाके समान दिखा देना, अग्निके न होनेपर ही प्रचण्ड अग्निकी ज्वाला दिखा देना आदि । औपनिषदिक=औपनिषदक अधिकरणमें बताये हुए विषैले धुएं तथा दूषित जल आदिका प्रयोगकर उनका प्रभाव दिखा देना) ॥ २० ॥

कर्मान्तानां च—॥ २१ ॥
इच्छामारम्भनिष्पत्तिं प्रयोगं व्याजमुद्यम् ।
क्षयव्ययौ च जानीयात्कुप्यानामायुधेश्वरः ॥ २२ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे आयुधागाराध्यक्षः अष्टादशो ऽध्यायः ॥१८॥
आदित एकोनचत्वारिंशः ॥ ३९ ॥

पिछले दो अध्यायोंमें बताये हुए द्रव्योंके व्यापार आदिके विषयमें= (कर्मान्तानां कुप्यानाम्); राजाकी रुचिको, और रुचिके अनुसार कार्यके प्रार-म्भ और पर्यवसान (समाप्ति) को; उपयोग, दोष तथा लाभको; उनके क्षय और व्ययको, आयुधागाराध्यक्ष अच्छी तरह समझे, कुप्याध्यक्षके लिये भी ये सब बातें जाननी आवश्यक हैं ॥ २१–२२ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें अठारहवां अध्याय समाप्त ।

उन्नीसवां अध्याय

३७ प्रकरण

तोल मापका संशोधन

पौतवाध्यक्षः पौतवकर्मान्तान्कारयेत् ॥ १ ॥ धान्यमाषा दश सुवर्णमाषकः पञ्च वा गुञ्जाः ॥ २ ॥ ते षोडश सुवर्णः कर्षो वा ॥ ३ ॥ चतुःकर्षं पलम् ॥ ४ ॥

पौतवाध्यक्ष (तोल मापका संशोधन करनेवाला राजकीय अधिकारी), पौतवकर्मान्त अर्थात् तुला और कुडुब आदि बाटोंको बनवावे ॥ १ ॥ दस धान्यमाष (उड़दके दाने) का एक सुवर्णमाष होता है; और इतने ही पांच गुञ्जा (चौंटली=रत्ती) ॥ २ ॥ सोलह माषका एक सुवर्ण अथवा एक कर्ष होता है ॥ ३ ॥ चार कर्षका एक पल होता है ॥ ४ ॥ यह सुवर्ण तोलनेके बाटों का कथन किया गया है, इसको निम्न निर्दिष्ट रीतिसे दिखाया जासकता है:—॥ ४ ॥

१० उर्दके दाने=१ एक सुवर्णमाषक अथवा ५ रत्ती
१६ माषक =१ सुवर्ण अथवा १ कर्ष
४ कर्ष =१ पल

अष्टाशीतिगौरसर्षपा रूप्यमाषकः ॥ ५ ॥ ते षोडश धरणम् ॥ ६ ॥ शैम्ब्यानि वा विंशतिः ॥ ७ ॥

सफ़ेद सरसों (बंगा सरसों) के अठासी दाने की बराबर एक रूप्यमाषक होता है ॥ ५ ॥ सोलह रूप्यमाषक का एक धरण होता है ॥ ६ ॥ उसके बराबर ही बीस शम्ब्य होते हैं । शिम्बि फलका नाम शैम्ब्य है, हिन्दी में सेंगरी कहते हैं, यह मूली की फलीका नाम है) । यह चांदीकी तोलका कथन किया गया । इसको इस प्रकार लिखाया जासकता है ॥ ७ ॥

८८ सफ़ेद सरसों=१ रूप्यमाषक
१६ रूप्यमाषक =१ धरण=अथवा २० शैम्ब्य (मूलीके बीज)

विंशतितण्डुलं वज्रधरणम् ॥ ८ ॥

बीस चावल का एक वज्रधरण होता है । यह हीरे की तोल है ॥ ८ ॥

२० चावल=१ वज्रधरण ।

अर्धमाषकः माषकः द्वौ चत्वारःअष्टौ माषकाः सुवर्णौ द्वौ चत्वारः अष्टौ सुवर्णाः दश विंशतिः त्रिंशत् चत्वारिंशत् शतमिति ॥ ९

तोलनेके लिये बाटोंकी संख्या निम्न लिखित रीतिसे होनी चाहियेः—अर्धमाषक (आधा माषक), माषक, दो माषक, चार माषक, आठ माषक। सुवर्ण, दोसुवर्ण, चार सुवर्ण, आठ सुवर्ण, दस सुवर्ण, बीस सुवर्ण, तीस सुवर्ण चालीस सुवर्ण, सौ सुवर्ण, इस प्रकारसे सोने आदिकी तोलके लिये ये कुल मिलाकर चौदह बाट होने चाहियें। छोटेसे छोटे अर्धमाषकसे लगाकर, सौ सुवर्णके बड़े बाट तक चौदह बाट आवश्यक हैं ॥ ९ ॥

तेन धरणानि व्याख्यातानि ॥ १० ॥

इसी तरह धरणके बाटों की कल्पना भी करलेनी चाहिये। अर्थात् धरण, दोधरण, चार धरण, आठ धरण, दस धरण, बीस धरण, तीस धरण, चालीस धरण, और सौ धरण। रूप्यमाषक की भी उपर्युक्त रीतिसे कल्पना करनी चाहियेः—अर्ध माषक, माषक, दो माषक, चार माषक, आठ माषक, ये बाट चांदी आदिकी तोलके लिये उपयुक्त होते हैं ॥ १० ॥

प्रतिमानान्ययोमयानि मागधमेकलशैलमयानि यानि वा नोदकप्रदेहाभ्यां वृद्धिं गच्छेयुरुष्णेन वा ह्रासम् ॥ ११ ॥

तोलनेके सब ही बाट लोहेके बनाये जावें, मगध या मेकल देशमें उत्पन्न होने वाले पत्थरके बनाये जावें। अथवा ऐसी चीजोंके बनाये जावें, जो पानी या और किसी लेपकी वस्तुके लगनेसे वृद्धिको प्राप्त न होवें, तथा गरमी पहुंचनेसे कम न होजावें ॥ ११ ॥

षडङ्गुलादूर्ध्वमष्टाङ्गुलोत्तरा दश तुलाः कारयेल्लोहपलादूर्ध्वमेकपलोत्तरा यन्त्रमुभयतः शिक्यं वा ॥ १२ ॥

सोना और चांदी तोलनेके लिये निम्नलिखित सब प्रकारकी तुलाओं का निर्माण कराया जावे, कमसे कम छः अंगुल की तुलासे लगाकर, फिर प्रत्येकमें आठ २ अंगुल बढ़ाते चले जावें। तात्पर्य यह हैः—पहिले सबसे छोटी तुला छः अंगुलकी होनी चाहिये। उसके बाद दूसरी चौदह अंगुलकी, फिर बाईस अंगुलकी, और फिर उसके बाद चौथी तीस अंगुलकी। इसी प्रकार प्रत्येकमें आठ २ अंगुल बढ़ाते हुए, अन्तिम दसवीं तुला अठत्तर (७८) अंगुल की होगी। इनका वज़न एक पल लोहेसे लगाकर प्रत्येक तुलामें एक पल बढ़ता जाना चाहिये। पहिली छः अंगुलकी तुला एक पलकी, दूसरी चौदह

अंगुलकी दो पलकी होनी चाहिये। इसी प्रकार प्रत्येकमें एक २ पल बढ़ाते हुए अन्तिम अठत्तर अंगुलकी तुला दस पलकी होनी चाहिये। इसके दोनों ओर शिक्य अर्थात् पलड़े लगे हुऐ होने चाहिये ॥ १२ ॥

पञ्चत्रिंशत्पललोहां द्विसप्तत्यङ्गुलायामां समवृत्तां कारयेत् ॥१३॥ तस्याः पञ्चपलिकं मण्डलं बद्ध्वा समकरणं कारयेत्॥१४॥

सोना चांदी तोलनेके लिये पिछली दस तुलाओंका निरूपण किया गया है, अब और पदार्थोंको तोलनेके लिये दूसरी तुलाका निरूपण करते हैं:—पेंतीस पल लोहेकी बनी हुई, बहत्तर अंगुल अर्थात् तीन हाथ लम्बी समवृत्ता नामक, गोलाकार तुला, अन्य पदार्थोंको तोलनेके लिये होनी चाहिये ॥१३॥ उसके बीचमें पांच पलका कांटा लगवाकर, ठीक मध्यमें एक चिन्ह करवावे ॥१४॥

ततः कर्षोत्तरं पलं पलोत्तरं दशपलं द्वादश पञ्चदश विंशतिरिति पदानि कारयेत् ॥ १५ ॥

उसके बाद, उस बीचके चिन्हसे लगाकर एक कर्ष, दो कर्ष तीन कर्ष तथा एक पलके चिन्ह लगवावें; और एक पलके आगे दस पल तक (अर्थात् एक पल दो पल तीन पल इत्यादि); फिर उसके बाद बारह पल पन्द्रह पल और बीस पलका चिन्ह लगवावे। तात्पर्य यह है, उस केन्द्रस्थित कांटेकी गोलाकार परिधिमें यथाक्रम ये सब चिन्ह लगे होने चाहियें ॥ १५ ॥

तत आशताद्दशोत्तरं कारयेत् ॥ १६ ॥ अक्षेषु नान्दीपिनद्धं कारयेत् ॥ १७ ॥

फिर बीस पलके आगे सौ पल तक दस दसके अन्तरसे चिन्ह लगे रहने चाहियें, अर्थात् बीस पलके बाद तीस पल, चालीस पल, पचास पल इत्यादि प्रकारसे सौ पल तक चिन्ह लगवावें ॥ १६ ॥ प्रत्येक अक्ष अर्थात् पांच पल अन्तरके चिन्हपर, पहचानके लिये नान्दीपिनद्ध अर्थात् स्वस्तिकका चिन्ह बनवा देना चाहिये। (किसी २ पुस्तकमें 'नान्दीपिनद्धं' के स्थानपर 'नध्द्रीपिनद्धं' पाठ है। नध्द्री रज्जुका नाम है, प्रत्येक पांचवें अङ्कके साथ २ एक रज्जुके समान रेखा बनवा दीजावे; यही इसका अर्थ करना चाहिये), तात्पर्य यह है, कि पांचवें, दसवें तथा पन्द्रहवें आदि अङ्कोंपर पहचानके लिए एक विशेष चिन्ह लगवा देना चाहिये ॥ १७ ॥

द्विगुणलोहां तुलामतः षण्णवत्यङ्गुलायामां परिमाणीं कारयेत् ॥१८॥ तस्याः शतपदादूर्ध्वं विंशतिः पञ्चाशत् शतमिति पदानि कारयेत् ॥ १९ ॥

जिस तुलाका अभीतक वर्णन किया गया है, इसको 'समवृत्ता' कहते हैं। इसमें जितना लोहा लगाया जाता है, उससे दुगने लोहेसे बनी हुई (अर्थात् सत्तर पल लोहेसे बनी हुई) और छयानवें (९६) अंगुल अर्थात् चार हाथ लम्बी, 'परिमाणी' नामक तुलाका निर्माण करावे ॥ १८ ॥ उसके ऊपर समवृत्ता नामक तुलाके अनुसार कर्षसे लगाकर सौ पल पर्यन्त चिन्ह करके, फिर उसके आगे, बीस, पचास तथा सौके चिन्ह और बनाने चाहियें। अर्थात् सौके आगे एकसौ बीस, एकसौ पचास और दोसौ पलके चिन्ह और बनाये जावें ॥ १९ ॥

विंशतितौलिको भारः ॥ २० ॥

सौ पलका नाम एक तुला है, बीस तुला परिमाणका एक भार होता है ॥ २० ॥

१०० पल=१ तुला
२० तुला=१ भार

दशधरणिकं पलम् ॥ २१ ॥ तत्पलशतमायमानी ॥२२॥

सोने चांदीके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंको सौ पलसे अधिक तोलनेके लिये एक विशेष परिमाण बताते हैं:—पहिले बतलाये दस धरणिकका एक पल होता है ॥ २१ ॥ और उन सौ पलोंकी एक आयमानी नामक तुला होती है, (आय अर्थात् आमदनीको तोलने वाली तुलाका नाम ही आयमानी होता है) ॥ २२ ॥

१० धरण=१ पल
१०० पल=१ आयमानी

पञ्चपलावरा व्यवहारिकी भाजन्यन्तःपुरभाजनी च ॥२३॥

पांच पांच पल उत्तरोत्तर कम होने वाली तुला यथासंख्य 'व्यावहारिकी' 'भाजनी' और 'अन्तःपुरभाजनी' कहाती है। तात्पर्य यह है,—इन तीनों तुलाओंमेंसे पहिली तुला, आयमानीसे पांच पल कम अर्थात् पिचानवें (९५) पलकी ही होती है, इसका नाम 'व्यावहारिकी' है। दूसरी 'भाजनी' नामक तुला व्यावहारिकीसे पांच पल कम अर्थात् नव्वे (९०) पलकी होती है। इसी तरह तीसरी 'अन्तःपुरभाजनी' और पांच पल कम करके पिच्यासी (८५) पलकी ही रहजाती है। इनमेंसे पहिली क्रय विक्रय व्यवहारमें, दूसरी भृत्योंको द्रव्य देने और तीसरी रानी तथा राजकुमार आदिके द्रव्यदेनेमें काममें आती है ॥ २३ ॥

तासामर्धधरणावरं पलम् ॥२४॥ द्विपलावरमुत्तरलोहम् ॥२५॥ षडङ्गुलावराश्चायामाः ॥ २६ ॥

इन व्यावहारिकी आदि तीनों तुलाओंके प्रत्येक पलमें उत्तरोत्तर आधा आधा धरण कम होता है। तात्पर्य यह है, आयमानी तुलामें दस धरणका एक पल होता है; उसमें आधा धरण कम करके साढ़ेनौ धरण (९½) का एक पल व्यावहारिकी तुलामें होना चाहिये; उसमे भी आधा कम करके अर्थात् नौ (९) धरणका एक पल भाजनी नामक तुलामें होना चाहिये; इसी तरह अन्तःपुर-भाजनी नामक तुलामें साढ़े आठ (८½) धरणका एक पल होता है ॥ २४ ॥ इसी तरह इन तुलाओंके बनानेके लिये लोहा भी; उत्तरोत्तर तुलामें पहिलीसे दो दो पल कम होना चाहिये। अर्थात् आयमानी तुला यदि पैंतीस पल लोहेकी बनाई जावे, तो व्यावहारिकी तुला तेंतीस पलकी, भाजनी इकत्तीस पलकी और अन्तःपुरभाजनी उन्तीस पलकी बनाई जानी चाहिये ॥ २५ ॥ इनकी लम्बाई भी उत्तरोत्तर तुलामें पहिली तुलासे छः २ अंगुल कम होनी चाहिये। अर्थात् यदि आयमानी तुला बहत्तर अंगुलकी बनाई जावे, तो व्यावहारिकी छयासठ (६६) अंगुलकी; भाजनी साठ (६०) अंगुलकी और अन्तःपुरभाजनी चौवन (५४) अंगुलकी बनाई जावे ॥ २६ ॥

पूर्वयोः पञ्चपलिकः प्रयामो मांसलोहलवणमणिवर्जम् ॥२७॥ काष्ठतुला अष्टहस्ता पदवती प्रतिमानवती मयूरपदाधिष्ठिता ॥२८॥

पहिली दो तुलाओंमें अर्थात् परिमाणी और आयमानीमें, मांस लोहा नमक और मणियोंके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंको तोलनेपर पांच पल अधिक तोला जाता है; इसीको 'प्रयाम' कहा जाता है ॥ २७ ॥ अब लकड़ीकी बनी हुई तुलाका निरूपण किया जाता है,—यह तुला आठ हाथकी होनी चाहिये; इसपर एक दो तीन आदि चिन्होंकी रेखाएं भी अवश्य होनी चाहियें। इसके बाट आदि पत्थरके बने हुए होवें। मोरके पैरों के समान जिसके पैर अर्थात् आधार हों। ('मयूरपदाधिष्ठिता' के स्थानपर किसी २ पुस्तकमें 'मयूरपदाधिष्ठाना' भी पाठ है। अर्थमें कोई भेद नहीं) ॥ २८ ॥

काष्ठपञ्चविंशतिपलं तण्डुलप्रस्थसाधनम् ॥ २९ ॥ एष प्रदेशो बह्वल्पयोः ॥३०॥ इति तुलाप्रतिमानं व्याख्यातम् ॥३१॥

पच्चीस पल ईंधन, एक प्रस्थ चावलोंको पकानेके लिये पर्याप्त होता है ॥ २९ ॥ इसी हिसाबसे अधिक और न्यून चावल पकानेके लिये, ईंधन उपयोगमें लाना चाहिये। (यद्यपि यह बात कोष्ठागाराध्यक्ष प्रकरणमें कहनी

उचित थी, परन्तु असार वस्तुओंकाभी बहुत परिमित व्यय करना चाहिये, फिर सार वस्तुओंकातो कहनाही क्या ? यह प्रकट करनेके लियेही इसका यहां कथन किया गया है ॥ ३० ॥ यहांतक सोलह प्रकारका तुला और चौदह प्रकारके बांटोंका निरूपण किया गया ॥ ३१ ॥

अथ धान्यमाषद्विपलशतं द्रोणमायमानम् ॥ ३२ ॥ सप्ताशीतिपलशतमर्धपलं च व्यावहारिकम् ॥ ३३ ॥

अब इसके आगे द्रोण आढक आदि परिमाणोंका निरूपण किया जायगा—धान्यमाषके दो सौ पलका एक आयमान द्रोण होता है; अर्थात् यह द्रोण केवल राजकीय आयको तोलनेकेही काममें लाया जाता है, (आयमानी तुलाके साथ सम्बन्ध होनेसे इसका नाम आयमान है) ॥ ३२ ॥ एकसौ साढ़े सतासी (१८७½) पलका एक व्यावहारिक द्रोण होता है, यह क्रय विक्रय व्यवहारके समय तोलनेके काम आता है, (व्यावहारिकी तुलाके साथ सम्बन्ध होनेसे इसका नाम व्यावहारिक है ॥ ३३ ॥

पञ्चसप्ततिपलशतं भाजनीयम् ॥ ३४ ॥ द्विषष्टिपलशतमर्धपलं चान्तःपुरभाजनीयम् ॥ ३५ ॥

एकसौ पिछहत्तर (१७५) पलका एक भाजनीय द्रोण होता है, यह भृत्योंके लिये द्रव्य आदि तोलनेमें काम आता है । (भाजनी नामक तुलाके साथ इसका सम्बन्ध होनेसे इसको भाजनीय द्रोण कहा जाता है) ॥ ३४ ॥ एकसौ साढ़े बासठ (१६२½) पलका एक अन्तःपुरभाजनीय द्रोण होता है । इसका उपयोग, अन्तःपुरके लिये सामान आदि तोलनेमें होता है । अन्तःपुरभाजनी नामक तुलाके साथ सम्बन्ध होनेसे इस द्रोणका नाम 'अन्तःपुरभाजनीय' होता है ॥ ३५ ॥

तेषामाढकप्रस्थकुडुबाश्चतुर्भागावराः ॥ ३६ ॥

इन चार प्रकारके द्रोणोंका उत्तरोत्तर चतुर्थांश कम होकर आढक प्रस्थ और कुडुबका परिमाण निश्चित होता है । तात्पर्य यह है कि द्रोणका जितना परिमाण होता है, उससे चौथा हिस्सा कम आढकका; और आढकसे चौथा हिस्सा कम प्रस्थका; तथा प्रस्थसे चौथा हिस्सा कम कुडुबका परिमाण होता है ॥ ३६ ॥

षोडशद्रोणा खारी ॥३७॥ विंशतिद्रोणिकः कुम्भः ॥३८॥ कुम्भैर्दशभिर्वहः ॥ ३९ ॥

सोलह द्रोणकी एक खारी होती है ॥ ३७ ॥ बीस द्रोणका एक कुम्भ होता है ॥ ३८ ॥ दस कुम्भका एक 'वह' होता है ॥ ३९ ॥

१६ द्रोण	=१ खारी
२० द्रोण (१$\frac{१}{४}$ खारी)	=१ कुम्भ
१० कुम्भ	=१ वह

शुष्कसारदारुमयं समं चतुर्भागशिखं मानं कारयेत् ॥४०॥ अन्तःशिखं वा ॥ ४१ ॥ रसस्य तु ॥ ४२ ॥

सूखी बढ़िया लकड़ीका बनाहुआ, नीचे ऊपरसे बराबर, शिखरमें चतुर्थांशसे युक्त (तात्पर्य यह है, नीचेके हिस्सेको तयार करके जब उसके उपर उसका मुंह या गर्दन बनाई जावे, तो वह इस तरहकी बनीहुई होनी चाहिये, जिसमें कि नीचे असली भागमें आनेवाले मालका चौथाई हिस्सा समाजावे । अर्थात् यदि उस सारे मानमें बीस प्रस्थ धान आसकते हैं, तो पांच प्रस्थ उसकी गर्दनमें आने चाहियें, पन्द्रह प्रस्थ उसके नीचेके हिस्सेमें ऐसा) मान अर्थात् अनाज आदि मापनेके लिये एक बर्तन तयार कराया जावे ॥ ४० ॥ अथवा उसकी गर्दनके हिस्सेको नीचेके भागमेंही मिला दिया जावे; (नीचेके भागसे पृथक् गर्दनको न बनाया जावे, पेटके समान नीचेके हिस्सेको ही इस प्रकार बना दिया जावे, कि उतना सम्पूर्ण अनाज उसीमें समाजावे । केवल अनाज आदिके भरने निकालनेके लिये एक मुंह रखना चाहिये ॥ ४१ ॥ रस अर्थात् घी तैल आदिके मापनेका वर्तनभी इसीतरहका (अलहदा गर्दनसे रहित) होना चाहिये ॥ ४२ ॥

सुरायाः पुष्पफलयोस्तुषाङ्गाराणां सुधायाश्च शिखामानं द्विगुणोत्तरा वृद्धिः ॥ ४३ ॥

सुरा (शराब आदि), फल, फूल, तुष (तूड़ी भुस आदि), अङ्गार (कोयला), सुधा (चूना कलई आदि), इन छः पदार्थोंको मापनेके लिये जो वर्तन बनाये जावें, उनका ऊपरका हिस्सा नीचेके हिस्सेसे दुगना बड़ा होना चाहिये । और इन वर्तनोंकी गर्दनभी नीचेके हिस्सेसे अलहदा बनीहुई होनी चाहिये ॥ ४३ ॥

सपादपणो द्रोणमूल्यम् ॥४४॥ आढकस्य पादोनः ॥४५॥ षण्माषकाः प्रस्थस्य ॥ ४६ ॥ माषकः कुडुम्बस्य ॥ ४७ ॥

एक द्रोणका मूल्य सवा पण होता है । (अर्थात् जिस बर्त्तन आदिमें एक द्रोण माल आजावे, उस बर्त्तनकी कीमत सवा पण होनी चाहिये) ॥४४॥ इसीतरह एक आढकका मूल्य पौन पण होता है ॥ ४५ ॥ एक प्रस्थका छः

माषक ॥ ४६ ॥ और एक कुडुबका एक माषक मूल्य होता है ॥ ४७ ॥

द्विगुणं रसादीनां मानमूल्यम् ॥ ४८ ॥ विंशतिपणाः प्रतिमानस्य ॥ ४९ ॥ तुलामूल्यं त्रिभागः ॥ ५० ॥

रस अर्थात् घी तैल आदिके मापनेके बर्त्तनोंका मूल्य, उपर्युक्त मूल्यसे दुगना होता है। एक द्रोण घी मापनेके बर्त्तनका ढाई पण मूल्य होगा; इसी तरह आढकका डेढ़, प्रस्थका बारह माषक और कुडुबका दो माषक समझना चाहिये ॥ ४८ ॥ चौदह प्रकारके सम्पूर्ण बाटोंका मूल्य बीस पण होता है। ॥ ४९ ॥ और तुलाका मूल्य इससे तिहाई अर्थात् ६$\frac{2}{3}$ पण होता है ॥ ५० ॥

चतुर्मासिकं प्रातिवेधनिकं कारयेत् ॥ ५१ ॥ अप्रतिविद्धस्यात्ययः सपादः सप्तविंशतिपणः ॥ ५२ ॥ प्रातिवेधनिकं काकणीकमहरहः पौतवाध्यक्षाय दद्युः ॥ ५३ ॥

प्रत्येक चार चार महीनेके बाद, तुला और बाट आदिका परिशोधन कराना चाहिये ॥ ५१ ॥ जो ठीक समयपर परिशोधन न करावे, उसको सवा सत्ताईस पण दण्ड देना चाहिये ॥ ५२ ॥ व्यापारियोंको चाहिये कि वे परिशोधन के निमित्त, प्रतिदिन एक काकणी के हिसाबसे, चार महीनेकी एकसौ बीस (१२०) काकणी, पौतवाध्यक्षको देवें। यह बाट आदिके परिशोधनका राजकीय टैक्स होता है ॥ ५३ ॥

द्वात्रिंशद्भागस्तप्तव्याजी सर्पिषश्चतुःषष्टिभागस्तैलस्य ॥५४॥ पञ्चाशद्भागो मानस्रावो द्रवाणाम् ॥ ५५ ॥ कुडुबार्धचतुरष्टभागानि मानानि कारयेत् ॥ ५६ ॥

यदि गरम किया हुआ घी खरीदा जावे, तो उसका बत्तीसवां हिस्सा, व्याजी अर्थात् अधिक लेना चाहिये। और तेलके ऊपर चौंसठवां हिस्सा व्याजी लेना चाहिये। अर्थात् इतना भाग अधिक लेना चाहिये ॥ ५४ ॥ द्रव पदार्थों का पचासवां हिस्सा, तोलनेके समय छीजनका समझना चाहिये ॥ ५५ ॥ कुडुब आदि छोटी तोलके लिये एक कुडुब, आधा कुडुब, चौथाई कुडुब और आठवां हिस्सा कुडुब, ये चार बाट, और मापनेके लिये इतने २ ही के बर्त्तन बनाये जावें ॥ ५६ ॥

कुडुबाश्चतुराशीतिः वारकः सर्पिषो मतः।
चतुःषष्टिस्तु तैलस्य पादश्च घटिकानयोः ॥ ५७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे तुलामानपौतवं एकोनविंशो ऽध्यायः ॥ १२ ॥

आदितश्चत्वारिंशः ॥ ४० ॥

घी के तोलने के लिये चौरासी कुडुबका एक 'वारक' होता है। और तेलके तोलने के लिये चौंसठ कुडुबका ही एक वारक माना गया है। इनके चौथाई हिस्सेका नाम 'घटिका' होता है। अर्थात् इक्कीस कुडुबका एक घृत घटिका, और सोलह कुडुबकी एक तैलघटिका समझनी चाहिये ॥ ५७ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरण में उन्नीसवां अध्याय समाप्त।

बीसवां अध्याय।

३८ प्रकरण

देश तथा कालका मान।

मानाध्यक्षो देशकालमानं विद्यात् ॥ १ ॥ अष्टौ परमाणवो रथचक्रविप्रुट् ॥ २ ॥ ता अष्टौ लिक्षा ॥ ३ ॥ ता अष्टौ यूकामध्यः ॥ ४ ॥ ते अष्टौ यवमध्यः ॥५॥ अष्टौ यवमध्या अङ्गुलम् ॥६॥ मध्यमस्य पुरुषस्य मध्यमाया अङ्गुल्या मध्यप्रकर्षो वाङ्गुलम् ॥ ७ ॥

मानाध्यक्ष (पौतवाध्यक्ष) को चाहिये कि वह देश और कालके मान को अच्छी तरह जाने ॥ १ ॥ आठ परमाणुओं का मिलकर, रथके पहिये से उड़ाई हुई धूलका एक कण होता है ॥ २ ॥ आठ धूलकण मिलाकर एक लिक्षा होती है; ॥ ३ ॥ आठ लिक्षाका एक यूकामध्य, ॥ ४ ॥ आठ यूकामध्यका एक यवमध्य, ॥ ५ ॥ और आठ यवमध्यका एक अंगुल होता है ॥ ६ ॥ अथवा मध्यम पुरुष (जो न बहुत मोटा हो, और न बहुत पतला; किन्तु इकहरे बदनका आदमी हो, उस) की बीचकी अंगुलीके बीचके ही पोरुएकी मोटाई जितनी हो, उतना ही एक अंगुल समझना चाहिये ॥ ७ ॥

८ परमाणु =१ धूलकण
८ धूलकण =१ लिक्षा
८ लिक्षा =१ यूकामध्य
८ यूकामध्य=१ यवमध्य
८ यवमध्य =१ अंगुल

चतुरङ्गुलो धनुर्ग्रहः ॥ ८ ॥ अष्टाङ्गुला धनुर्मुष्टिः ॥ ९ ॥ द्वादशाङ्गुला वितस्तिः ॥ १० ॥ छायापौरुषं च ॥ ११ ॥ चतु-

देशाङ्गुलं शमः शलः परिरयः पदं च ॥ १२ ॥ द्विवितस्तिररात्निः प्राजापत्यो हस्तः ॥ १३ ॥

चार अगुंलका एक धनुर्ग्रह होता है ॥ ८ ॥ और आठ अगुंल अथवा दो धनुर्ग्रह की एक अनुर्मुष्टि होती है ॥ ९ ॥ बारह अगुंलकी एक वितस्ति (बीता=बिलांयद्) होती है ॥ १० ॥ छायापौरुष भी बारह अंगुलका ही होता है। अर्थात् वितस्तिको छायापुरुष भी कह सकते हैं ॥ ११ ॥ चौदह अंगुल परिमाणका नाम शम, शल, परिरय, और पद है। अर्थात् चौदह अंगुल परिमाणके लिये ये चार नाम प्रयुक्त होते हैं ॥ १२ ॥ दो वितस्तिकी एक अरत्नि, या प्रजापत्य (प्रजापति अर्थात् विश्वकर्माको सम्मत) हाथ होता है। अर्थात् इसको एक हाथ भी कहाजाता है ॥ १३ ॥

४ अंगुल	=१ अनुर्ग्रह
८ अंगुल अथवा २ धनुर्ग्रह	=१धनुर्मुष्टि
१२ अंगुल, या ३ धनुर्ग्रह अथवा $1\frac{1}{2}$ धनुर्मुष्टि	=१ वितस्ति या छायापौरुष
१४ अंगुल	=१शम=शल=परिरय=पद(पैर)
२ वितस्ति	=१अरत्नि=(प्राजापत्य) १ हाथ।

सधनुर्ग्रहः पौतवविवीतमानम् ॥ १४ ॥ सधनुर्मुष्टिः किष्कुः कंसो वा ॥ १५ ॥

एक हाथके साथ धनुर्ग्रहको मिलाकर (एक हाथ=२४ अंगुल+एक धनुर्ग्रह=४ अंगुल=) २८ अंगुलका बना हुआ एक हाथ, पौतव (लकड़ीकी तुला आदि) और विवीत (चरागाह) के मापनेके काममें आता है। अर्थात् पौतव और विवीतको २८ अंगुलके हाथसे नापना चाहिये ॥ १४ ॥ एक धनुर्मुष्टि अर्थात् आठ अंगुल सहित एक प्राजापत्य हस्त, किष्कु या कंस कहा जाता है ॥ १५ ॥

२८ अंगुल=१ हाथ (विवीत और पौतवके नापनेमें काम आने वाला)।

३२ अंगुल=१ किष्कु अथवा कंस।

द्विचत्वारिंशदङ्गुलस्तक्ष्णः क्राकचिककिष्कुः स्कन्धावारदुर्गराजपरिग्रहमानम् ॥१६॥ चतुःपञ्चाशदङ्गुलः कुप्यवनहस्तः ॥१७॥

बयालीस अंगुलके एक हाथका उपयोग, बढ़ईके कामोंमें होता है, आरेसे चीरनेके कार्योंमें इसके स्थानपर किष्कु परिमाणका प्रयोग किया जाता है। प.न्यु ये

कार्य छावनी किले या राजमहलके होने चाहियें। अर्थात् छावनी आदिमें होने वाले बढ़ईके कार्योंमें बयालीस अंगुलका एक हाथ, और लकड़ी चीरने आदिमें बत्तीस अंगुलका एक किष्कु प्रयुक्त होता है ॥ १६ ॥ कुप्य और वन (जंगल या उसकी लकड़ी आदि) के नापनेके लिये चौअन अंगुलका एक हाथ मानना चाहिये ॥ १७ ॥

४२ अंगुल=१ हाथ (छावनी आदिमें बढ़ईके कामके लिये),
३२ ,, =१ किष्कु (छावनी आदिमें लकड़ी चीरनेके लिये)
५४ अंगुल=१ हाथ (कुप्य द्रव्य और जंगल सम्बन्धी कार्योंमें काम आनेके लिये)।

चतुरशीत्यङ्गुलो व्यामो रज्जुमानं खातपौरुषं च ॥ १८ ॥

चौरासी अंगुलका एक हाथ, 'व्याम' कहा जाता है। यह रस्सीके नापने और खोदे हुए कुए या खाई आदिके नापनेमें काम आता है ॥ १८ ॥

८४ अंगुलका एक हाथ=१ व्याम (रस्सी, तथा कुए खाई आदिके नापनेके लिये)।

चतुररत्निर्दण्डो धनुर्नालिकापौरुषं च ॥ १९ ॥ गार्हपत्यमष्टशताङ्गुलं धनुः पथिप्राकारमानं पौरुषं चाग्निचित्यानाम् ॥२०॥

चार अरत्निका एक 'दण्ड' होता है। इसीको धनु नालिका और पौरुष भी कहते हैं ॥ १९ ॥ एकसौ आठ अंगुलका एक गार्हपत्य (गृहपति अर्थात् विश्वकर्माका देखा हुआ, या निश्चय किया हुआ) धनु होता है; यह सड़क और किले या शहरके परकोटेके नापनेमें काम आता है। तथा अग्निचयन अर्थात् यज्ञसम्बन्धी विशेष कार्योंमें भी एकसौ आठ अंगुलका एक 'पौरुष' माना जाता है ॥ २० ॥

४ अरत्नि=१ दण्ड-धनु-नालिका-पौरुष।
१०८ अंगुल=१ गार्हपत्यधनु (सड़क और परकोटा आदि नापनेके लिये)।
,, =१ पौरुष (यज्ञसम्बन्धी कार्योंके लिये)।

षट्कंसो दण्डो ब्रह्मदेयातिथ्यमानम् ॥ २१ ॥ दशदण्डो रज्जुः ॥ २२ ॥ द्विरज्जुकः परिदेशः ॥ २३ ॥ त्रिरज्जुकं निवर्तनम् ॥ २४ ॥

छः कंस अर्थात् आठ प्राजापत्य हाथका एक दण्ड होता है; वह ऋत्विक् आदि ब्राह्मणोंको दिये जाने वाले भूमि पदार्थों, तथा अतिथियोंके हितकर पदार्थोंके नापनेमें काम आता है ॥ २१ ॥ दश दण्डका एक रज्जु होता है। (यहां

पर दण्ड साधारण, चार हाथका ही लेना चाहिये) ॥ २२ ॥ दो रज्जुका एक 'परिदेश' होता है ॥ २३ ॥ और तीन रज्जुका अर्थात् डेढ़ परिदेशका एक 'निवर्त्तन' होता है ॥ २४ ॥

६ कंस या आठ हाथ=१ दण्ड (ब्राह्मण आदिको भूमि देनेके कार्यमें उपयुक्त होने वाला) ।

१० दण्ड=(यहां एक दण्ड साधारण ४ अरत्निका ही लेना चाहिये) । } =१ रज्जु

२ रज्जु =१ परिदेश

३ रज्जु या १½ परिदेश=१ निवर्त्तन

एकतो द्विदण्डाधिको बाहुः ॥ २५ ॥ द्विधनुःसहस्रं गोरुतम् ॥ २६ ॥ चतुर्गोरुतं योजनम् ॥ २७ ॥ इति देशमानं व्याख्यातम् ॥ २८ ॥

तीस दण्डका एक निवर्त्तन होता है, उसके एक ओरको यदि दो दण्ड बढ़ा दिये जावें, अर्थात् जिस परिमाणमें लम्बाई चौड़ाई एकसी न होकर एक ओर तीस दण्ड और एक ओर बत्तीस दण्ड हो, उस परिमाणका नाम 'बाहु' होता है ॥ २५ ॥ दो हज़ार धनुका एक गोरुत होता है; इसको एक क्रोश या कोस भी कहते हैं ॥ २६ ॥ चार गोरुतका एक योजन होता है ॥ २७ ॥ यहां तक देश मानका निरूपण किया गया ॥ २८ ॥

इस सम्पूर्ण देश मानका, बीचकी अवान्तर नापों को छोड़कर, निम्न लिखित रीतिसे निर्देश किया जासकता है:—

८ परमाणु =१ धूलीकण

८ धूलीकण =१ लिक्षा

८ लिक्षा =१ यूकामध्य

८ यूकामध्य =१ यवमध्य

८ यवमध्य =१ अंगुल

४ अंगुल =१ धनुर्ग्रह

२ धनुर्ग्रह =१ धनुर्मुष्टि

१½ धनुर्मुष्टि =१ वितस्ति=(१ बिलांयद)

२ वितस्ति =१ अरत्नि=(१ हाथ)

४ अरत्नि =१ दण्ड

१० दण्ड	=१ रज्जु
२ रज्जु	=१ परिदेश
$1\frac{1}{2}$ परिदेश	= १ निवर्त्तन
$66\frac{2}{3}$ निवर्त्तन, या २००० धनु (दण्ड)	=१ गोरुत (क्रोश=कोश)
४ गोरुत	=१ योजन

कालमानमत ऊर्ध्वम् ॥ २९ ॥ तुटो लवो निमेषः काष्ठा कला नालिका मुहूर्तः पूर्वापरभागौ दिवसो रात्रिः पक्षो मास ऋतुरयनं संवत्सरो युगमिति कालाः ॥ ३० ॥

अब इसके आगे कालमानका निरूपण किया जायगा ॥ २९ ॥ तुट (त्रुटि), लव, निमेष, काष्ठा, कला, नालिका, महूर्त, पूर्वभाग (पूर्वाह्ण), अपरभाग (अपराह्ण), दिवस (दिन), रात्रि, पक्ष (पखवाड़ा), मास, ऋतु, अयन (उत्तरायण, दक्षिणायन; छः महीनेका एक अयन होता है) संवत्सर और युग; ये कालके साधारणतया सत्रह विभाग किये जाते हैं ॥ ३० ॥

निमेषचतुर्भागस्तुटः, द्वौ तुटौ लवः ॥ ३१ ॥ द्वौ लवौ निमेषः ॥ ३२ ॥ पञ्च निमेषाः काष्ठा ॥ ३३ ॥ त्रिंशत्काष्ठाः कला ॥ ३४ ॥

निमेष (आंखका पलक मारनेमे जितना समय लगता है, उसे निमेष कहते हैं) का चौथा हिस्सा, अर्थात् कालका सबसे छोटा परिमाण तुट या त्रुटि होता है । दो तुटका एक लव होता है ॥ ३१ ॥ दो लवका एक निमेष होता है ॥ ३२ ॥ पांच निमेषकी एक काष्ठा होती है ॥ ३३ ॥ तीस काष्ठाकी एक कला होती है ॥ ३४ ॥

चत्वारिंशत्कलाः नालिका ॥ ३५ ॥ सुवर्णमाषकाश्चत्वारश्चतुरङ्गुलायामाः कुम्भच्छिद्रमाढकमम्भसो वा नालिका ॥ ३६ ॥

चालीस कलाकी एक नालिका होती है ॥ ३५ ॥ अथवा एक घड़ेमें चार सुवर्ण मापककी बराबर चौड़ा और चार अंगुल लम्बा एक छेद बनाया जावे; अर्थात् इतने परिमाणकी एक नलीसी घड़ेमें लगादी जावे; और उस घड़ेमें एक आढक जल भर दिया जावे, उतना जल उस नलीसे जितने समयमें निकले, उतने कालको भी नालिका कहते हैं । (किसी २ पुस्तकमें इस एक सूत्र-

के स्थानपर दो सूत्र दिये गये हैं। जिसमें 'सुवर्णमाषकाश्चत्वारश्चतुरङ्गुलायामाः' यहां तक एक सूत्र माना है; इसमें कोई पाठ भेद नहीं; परन्तु सूत्रके अगले भागके स्थानपर सर्वथा पाठान्तररूप एक दूसराही सूत्र इस प्रकारका है—'तत्प्रमाणकुम्भाच्छिद्रेण जलाढकस्य यावता कालेन स्रुतिः स कालो वा नालिका'। दोनों पाठोंमें अर्थ समान ही है ॥ ३६ ॥

द्विनालिको मुहूर्तः ॥ ३७ ॥ पञ्चदशमुहूर्तो दिवसो रात्रिश्च चैत्रे मास्याश्वयुजे च मासि भवतः ॥ ३८ ॥ ततः परं त्रिभिर्मुहूर्तैरन्यतरः षण्मासं वर्धते ह्रसते चेति ॥ ३९ ॥

दो नालिकाका एक मुहूर्त होता है ॥ ३७ ॥ पन्द्रह मुहूर्त्तका एक दिन और एक रात होते हैं। परन्तु ये इस परिमाणके दिन रात चैतके महीनेमें और आश्विनके महीनेमें ही होते हैं। क्योंकि इन महीनोंमें दिन और रात बराबर २ होते हैं ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर छः महीनेतक दिन बढ़ता जाता है, और रात्रि घटती जाती है, फिर दूसरे छः महीने तक, रात्रि बढ़ती जाती है, और दिन घटता जाता है। यह घटना और बढ़ना तीन मुहूर्त्त तक होता है। अर्थात् दिन और रातमें अधिकसे अधिक तीन मुहूर्त्तकी न्यूनाधिकताका भेद पड़ जाता है ॥ ३९ ॥

छायायामष्टपौरुष्यामष्टादशभागश्छेदः ॥ ४० ॥ षट्पौरुष्यां चतुर्दशभागः ॥ ४१ ॥ चतुष्पौरुष्यामष्टभागः ॥ ४२ ॥ द्विपौरुष्यां षड्भागः ॥ ४३ ॥ पौरुष्यां चतुर्भागः ॥ ४४ ॥ अष्टाङ्गुलायां त्रयो दशभागाः ॥ ४५ ॥ चतुरङ्गुलायां त्रयोऽष्टभागाः ॥ ४६ ॥ अच्छायो मध्याह्न इति ॥ ४७ ॥

जब धूप घड़ीमें छाया आठ छायापौरुष लम्बी हो (बारह अंगुलका एक पौरुष होता है, आठ छायापौरुषमें छ्यानवें अंगुल हुए, इसलिये जब धूप घड़ीकी छाया ९६ अंगुल लम्बी हो), तो समझना चाहिये कि सम्पूर्ण दिनका अठारहवां हिस्सा समाप्त होचुका है (एक पूरा दिन तीस नाडिकाका होता है, उसका अठारहवां हिस्सा पौने दो नाडिका हुई, इतना समय बीत चुकता है, और सवा अट्ठाईस नाडिका उस समय तक दिनकी बाकी रहती हैं) ॥ ४० ॥ इसी तरह बहत्तर अंगुल छाया रहनेपर दिनका चौदहवां हिस्सा ॥ ४१ ॥ अड़तालीस अंगुल छाया रहनेपर दिनका आठवां हिस्सा ॥ ४२ ॥ चौबीस अंगुल छाया रहनेपर दिनका छठा हिस्सा ॥ ४३ ॥ एक छायापौरुष अर्थात् बारह अंगुल छाया रहनेपर दिनका चौथा हिस्सा ॥ ४४ ॥ आठ अंगुल छाया रहनेपर

दिनके दस भागोंमेंसे तीन हिस्सा; (दिनके दस भाग कल्पना करके, फिर उनका तीसरा हिस्सा) ॥ ४५ ॥ चार अंगुल छाया रहनेपर, दिनके आठ हिस्सोंमेंसे तीन हिस्सा दिन समाप्त हुआ २ समझना चाहिये ॥ ४६ ॥ जब छाया बिल्कुल न रहे, तो पूरा मध्यान्ह समझना चाहिये ॥ ४७ ॥

परावृत्ते दिवसे शेषमेवं विद्यात् ॥ ४८ ॥

मध्यान्ह अर्थात् बारह बजेके बाद, उपर्युक्त छायाके अनुसार दिनका शेष समझना चाहिये । अर्थात् चार अंगुल छाया होनेपर, दिनके आठ हिस्सोंमेंसे तीन हिस्सा दिन शेष समझना चाहिये । इसी प्रकार आठ अंगुल छाया होनेपर, दिनके दस हिस्सोंमेंसे तीन हिस्सा दिन शेष समझना चाहिये । बारह अंगुल रहनेपर दिनका चौथा हिस्सा, चौबीस अंगुल होनेपर छठा, अड़तालीस अंगुल होनेपर आठवां, बहत्तर अंगुल होनेपर चौदहवां, छियानवें अंगुल होनेपर अठारहवां हिस्सा दिनका शेष समझना चाहिये । तदनन्तर दिन समाप्त हो-जाता है, और रात्रिका प्रारम्भ होता है ॥ ४८ ॥

आषाढे मासि नष्टच्छायो मध्याह्नो भवति ॥ ४९ ॥ अतः परं श्रावणादीनां षण्मासानां द्व्यङ्गुलोत्तरा माघादीनां द्व्यङ्गुलावरा छाया इति ॥ ५० ॥

आषाढके महीनेमें मध्यान्ह छाया रहित होता है ॥ ४९ ॥ इसके अनन्तर, श्रावणके महीनेसे लगाकर छः महीनेमें मध्यान्हके समय भी दो अंगुल छाया अधिक होती है, और फिर माघ आदि छः महीनोंमें दो अंगुल न्यून होजाती है ॥ ५० ॥

पञ्चदशाहोरात्राः पक्षः ॥५१॥ सोमाप्यायनः शुक्लः ॥५२॥ सोमावच्छेदनो बहुलः ॥ ५३ ॥

पन्द्रह दिन रातका एक पक्ष होता है ॥५१॥ चन्द्रमा जिस पक्षमें बढ़ता चला जाय उसे शुक्लपक्ष कहते हैं ॥ ५२ ॥ और जिस पक्षमें चन्द्रमा घटता जावे, उसे बहुल अर्थात् कृष्णपक्ष कहते हैं ॥ ५३ ॥

द्विपक्षो मासः ॥ ५४ ॥ त्रिंशदहोरात्रः प्रकर्ममासः ॥५५॥ सार्धः सौरः ॥ ५६ ॥ अर्धन्यूनश्चान्द्रमासः ॥ ५७ ॥ सप्तविंशतिर्नाक्षत्रमासः ॥ ५८ ॥ द्वात्रिंशत् मलमासः ॥ ५९ ॥ पञ्चत्रिंशदश्ववाहायाः ॥ ६० ॥ चत्वारिंशद्धस्तिवाहायाः ॥ ६१ ॥

दो पक्षका एक महीना होता है ॥ ५४ ॥ तीस दिन रात का एक महीना, नौकरों को वेतन आदि देनेके लिये काममें लाया जाता है ॥ ५५ ॥ साढ़े तीस (३०½) दिनका, एक सौर (सूर्य की गतिके अनुसार की हुई गणनाके द्वारा बना हुआ) मास होता है । (इसलिये ५४ सूत्रमें जो दो पक्ष का महीना बताया है, वहां चान्द्रमास ही समझना चाहिये, दो पक्षकी कल्पना चन्द्रमाके अनुसार ही की जाती है । इसके अतिरिक्त ५७ सूत्रमें चान्द्रमास की ठीक २ गणना बताई गई है) ॥५६॥ साढ़े उन्तीस (२९½) दिन का एक चान्द्रमास होता है ॥ ५७ ॥ सत्ताईस (२७) दिनका नाक्षत्रमास होता है ॥ ५८ ॥ बत्तीस (३२) दिन रातका एक मलमास होता है ॥ ५९ ॥ पैंतीस दिन रातका एक महीना, घोड़ोंपर काम करनेवाले सईस आदि नौकरों को वेतन देनेके लिये काममें लाया जाता है । अर्थात् इन भृत्योंका महीना ३५ दिनका समझना चाहिये ॥ ६० ॥ इसी प्रकार जो सेवक हाथियों पर काम करने वाले हों, उनका महीना चालीस दिनका समझना चाहिये । अर्थात् इतने दिनों का एक महीना मानकर उन्हें वेतन दिया जावे ॥ ६१ ॥

द्वौ मासावृतुः ॥ ६२ ॥ श्रावणः प्रोष्ठपदश्च वर्षाः ॥६३॥ आश्वयुजः कार्तिकश्च शरत् ॥ ६४ ॥ मार्गशीर्षः पौषश्च हेमन्तः ॥ ६५ ॥ माघः फाल्गुनश्च शिशिरः ॥ ६६ ॥ चैत्रो वैशाखश्च वसन्तः ॥ ६७ ॥ ज्येष्ठामूलीय आषाढश्च ग्रीष्मः ॥ ६८ ॥

दो महीनेका एक ऋतु होता है ॥ ६२ ॥ श्रावण और प्रोष्टपद (अर्थात् भाद्रपद), इन दो महीनों की वर्षाऋतु होती है ॥ ६३ ॥ आश्विन और कार्त्तिक इन दो महीनों की शरद् ऋतु होती है ॥ ६४ ॥ मार्गशीर्ष (अगहन—मंगसिर) और पौष, इन दो महीनों की हेमन्त ऋतु होती है ॥ ६५ ॥ माघ और फाल्गुन इन दो महीनों की शिशिर ऋतु होती है ॥ ६७ ॥ चैत्र और बैशाख ये दो महीने बसन्त ऋतुके होते हैं ॥ ६७ ॥ ज्येष्ठामूलीय (ज्येष्ठ-जेठ) और आषाढ़ महीनेमें ग्रीष्म ऋतु होती है ॥ ६८ ॥

शिशिराद्युत्तरायणम् ॥ ६९ ॥ वर्षादि दक्षिणायनम् ॥७०॥ द्व्ययनः संवत्सरः ॥ ७१ ॥ पञ्चसंवत्सरो युगमिति ॥ ७२ ॥

शिशिर वसन्त और ग्रीष्म ऋतु उत्तरायण कहाती हैं ॥ ६९ ॥ और वर्षा शरद् तथा हेमन्त ये तीनों ऋतु दक्षिणायन कही जाती हैं ॥ ७० ॥ दो अयन (दक्षिणायन और उत्तरायण) का एक संवत्सर होता है ॥ ७१ ॥

पांच संवत्सर का एक युग होता है। यहां तक कालमानका निरूपण किया गया ॥ ७२ ॥

कालके अवान्तर विभागों को छोड़कर, शेष सम्पूर्ण कालमानका निम्न-लिखित रीतिसे निर्देश किया जासकता है:—

२	तुट	=	१ लव
२	लव	=	१ निमेष
५	निमेष	=	१ काष्ठा
३०	काष्ठा	=	१ कला
४०	कला	=	१ नाडिका
२	नाडिका	=	१ मुहूर्त्त
१५	मुहूर्त्त	=	१ दिन और रात
१५	दिन रात	=	१ पक्ष
२	पक्ष	=	१ महीना
२	महीना	=	१ ऋतु
३	ऋतु	=	१ अयन
२	अयन	=	१ संवत्सर
५	संवत्सर	=	१ युग

दिवसस्य हरत्येकं षष्टिभागमृतौ ततः ।
करोत्येकमहश्छेदं तथैवैकं च चन्द्रमाः ॥ ७३ ॥
एवमर्धतृतीयानामब्दानामधिमासकम् ।
ग्रीष्मे जनयतः पूर्वं पश्चाब्दान्ते च पश्चिमम् ॥ ७४ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे देशकालमानं विंशो ऽध्यायः ॥ २० ॥
आदित एकचत्वारिंशः ॥ ४१ ॥

अब दो श्लोकोंसे मलमास या अधिमास का निरूपण करते हैं:—सूर्य प्रतिदिन, दिनके साठवें हिस्से अर्थात् एक घटिका का छेद कर लेता है, इस तरह एक ऋतु में साठ घटिका=एक दिन, अधिक बना देता है। (इस प्रकार एक सालमें छः दिन, दो सालमें १२ दिन, और ढाई सालमें पन्द्रह दिन अधिक बना देता है) । इसी तरह चन्द्रमा भी प्रत्येक ऋतुमें एक २ दिन कम करता चला जाता है, और ढाई सालके बाद पन्द्रह दिनकी कमी होजाती है। इस प्रकार ढाई सालमें, सौर और चान्द्र गणनाके अनुसार दोनोंमें एक महीने की न्यूनाधिकता का भेद पड़ जाता है। उस समय ढाई सालके तीस महीनेके बाद, ग्रीष्म ऋतुमें प्रथम मलमास या अधिक मासको; और पांच

सालके बाद हेमन्त ऋतुमें एक अधिमास को, सूर्य और चन्द्रमा उत्पन्न करते हैं। अर्थात् ढाई सालमें इनकी गणनामें जो एक महीनेका भेद पड़जाता है। उसे एक महीना और अधिक बढ़ाकर पूरा कर दिया जाता है ॥७३,७४॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें बीसवां अध्याय समाप्त ।

इक्कीसवां अध्याय

३९ प्रकरण

शुल्काध्यक्ष

[राजाको दिये जाने वाले अंश का नाम शुल्क (चुंगी टैक्स) है, इस कार्यपर नियुक्त हुए प्रधान राज्याधिकारी को शुल्काध्यक्ष कहा जाता है। उसके कार्यों का निरूपण इस प्रकरण में किया जायगा।]

शुल्काध्यक्षः शुल्कशालां ध्वजं च प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा महाद्वाराभ्याशे निवेशयेत् ॥ १ ॥

शुल्काध्यक्ष को चाहिये कि वह शुल्कशालाकी स्थापना करावे, और उसके पूर्व तथा उत्तरकी ओर, प्रधान द्वारके समीप एक ध्वजा (पताका) लगवावे, जो कि शुल्कशालाकी चिन्हभूत हो ॥ १ ॥

शुल्कादायिनश्चत्वारः पञ्च वा सार्थोपयातान्वणिजो लिखेयुः ॥ २ ॥ के कुतस्त्याः कियत्पण्याः क चाभिज्ञानमुद्रा वा कृता इति ॥ ३ ॥

शुल्काध्यक्ष, शुल्कशालामें चार या पांच पुरुषों को नियुक्त करे, जोकि लोगोंसे शुल्क (चुंगी) ग्रहण करते रहें, और जो व्यापारी आदि अपने माल को लेकर उधरसे निकलें, उनके सम्बन्धमें निम्न लिखित बातोंको लिखें:—॥ २ ॥ उनके नाम जाति आदि, उनका निवास स्थान (अर्थात् वे व्यापारी कहांके रहने वाले हैं); उनके पासकी विक्रेय वस्तुका परिमाण, और किस स्थानमें उन्होंने अपने मालपर यहांकी विशेष मुहर लगवाई है। (अर्थात् किस अन्तपाल आदिने उनके मालको देखकर उसपर अपनी मुहरकी है, अथवा की है या नहीं ?) ॥ ३ ॥

अमुद्राणामत्ययो देयद्विगुणः ॥ ४ ॥ कूटमुद्राणां शुल्काष्टगुणो दण्डः ॥ ५ ॥

जिन व्यापारियोंके मालपर वह मुहर न लगी हुई हो, उनको उस देय अंशसे दुगना दण्ड दिया जावे (जो अंश, उसे अन्तपालके पास देना चाहिये था, उसीका दुगना दण्ड देना चाहिये) ॥४॥ तथा जिन व्यापारियोंने अपने मालपर नकली मुहर लगाई हो, उनको उस शुल्कसे आठ गुणा दण्ड दिया जावे ॥ ५ ॥

भिन्नमुद्राणामत्ययो घटिकाः स्थाने स्थानम् ॥ ६ ॥ राजमुद्रापरिवर्तने नामकृते वा सपादपणिकं वहनं दापयेत् ॥ ७ ॥

जो व्यापारी मुद्रा लेकर उसे नष्ट करदें; उन्हें तीन घटिका तक शुल्कशालाके ऐसे हिस्सेमें बैठाया जावे, जहांपर आने जाने वाले अन्य सब व्यापारी उनको देखें, कि इन्होंने अमुक अपराध किया है। यही उनका दण्ड है ॥ ६ ॥ राजकीय मुद्राके बदल देनेपर, अथवा विक्रेय वस्तुका नाम बदलदेनेपर, पण्यको लेजाने वाले पुरुषको (अर्थात् जो पुरुष विक्रेय वस्तुको लेजावे, उसे) सवा (१¼) पण दण्ड दिया जावे ॥ ७ ॥

ध्वजमूलोपस्थितस्य प्रमाणमर्घं च वैदेहकाः पण्यस्य ब्रूयुः ॥ ८ ॥ एतत्प्रमाणेनार्घेण पण्यमिदं कः क्रेतेति ॥ ९ ॥

व्यापारी पुरुष शुल्कशालाके आंगनमें उपस्थित हुए पण्यके परिमाणको और मूल्यको इसप्रकार कहें अर्थात् आवाज़ लगावें ॥ ८ ॥ इस मालका इतना परिमाण और इतना मूल्य है, इसका कोई खरीदने वाला है ? (अर्थात् जो इसको खरीदने वाला हो, वह बोलदे) ॥ ९ ॥

त्रिरुद्घोषितमर्थिभ्यो दद्यात् ॥ १० ॥ क्रेतृसंघर्षे मूल्यवृद्धिः सशुल्का कोशं गच्छेत् ॥ ११ ॥

इसप्रकार तीनवार आवाज़ देनेपर जो खरीदना चाहे, उसे उतनेही मूल्यपर माल दिलवा दिया जावे ॥ १० ॥ यदि खरीदने वालोंमें आपसमें संघर्ष होजावे (अर्थात् खरीदने वाले, एक दूसरेसे बढ़कर उस मालका मूल्य लगाते जावें), तो उस मालके बोले हुए मूल्यसे जितनी अधिक आमदनी हो, वह शुल्क सहित (चुंगीके साथ २) राजकीय कोशमें भेजदी जावे ॥ ११ ॥

शुल्कभयात्पण्यप्रमाणं मूल्यं वा हीनं ब्रुवतस्तदतिरिक्तं राजा हरेत् ॥ १२ ॥ शुल्कमष्टगुणं वा दद्यात् ॥ १३ ॥

शुल्क अधिक देनेके डरसे जो व्यापारी, अपने मालके परिमाणको और मूल्यको कम करके बोले; तो उसके बोले हुए परिमाणसे अधिक मालको राजा लेलेवे ॥ १२ ॥ अथवा उस व्यापारीसे इस अपराधमें आठ गुना शुल्क वसूल किया जावे ॥ १३ ॥

तदेव निविष्टपण्यस्य भाण्डस्य हीनप्रतिवर्णकेनार्घापकर्षणे सारभाण्डस्य फल्गुभाण्डेन प्रतिच्छादने च कुर्यात् ॥ १४ ॥

यही दण्ड उस समय होना चाहिये, जब कि व्यापारी शुल्कसे बचने के लिये, पेटीमें बन्द हुए २ बढ़िया मालके स्थानपर उसी तरहकी पेटीमें बंद हुए घटिया मालको दिखाकर मूल्य कम करे, और नीचे बोरी आदिमें बढ़िया चीज भरकर ऊपरसे उसे घटिया चीजोंसे भरदे, तथा उसे ही दिखाकर थोड़े मूल्यके अनुसार थोड़ी चुंगी देवे ॥ १४ ॥

प्रतिक्रेतृभयाद्वा पण्यमूल्यादुपरि मूल्यं वर्धयतो मूल्यवृद्धिं राजा हरेत् ॥ १५ ॥ द्विगुणं वा शुल्कं कुर्यात् ॥ १६ ॥

दूसरे खरीदारके डरसे जो पुरुष (खरीदार), किसी वस्तुके उचित मूल्यसे अधिक मूल्य बढ़ाता जावे, उस बढ़े हुए मूल्यको राजा ले लेवे ॥ १५ ॥ अथवा उस पुरुषसे (मूल्य बढ़ाने वाले पुरुषसे) दुगनी चुंगी वसूल की जावे ॥ १६ ॥

तदेवाष्टगुणमध्यक्षस्य छादयतः ॥ १७ ॥ तस्माद्विक्रयः पण्यानां धृतो मितो गणितो वा कार्यः ॥ १८ ॥

यदि यही अपराध अध्यक्ष करे अर्थात् मित्रताके कारण या रिश्वत आदि लेकर यदि अध्यक्ष किसी व्यापारीके उपर्युक्त अपराध को छिपा लेवे तो उसे आठ गुणा दण्ड दिया जावे। अर्थात् जिस २ अपराधमें व्यापारी को जो २ दण्ड बताया गया है, उस अपराधके छिपानेपर अध्यक्ष को उससे आठ गुना दण्ड दिया जाय ॥ १७ ॥ इस लिये पण्य द्रव्यों का विक्रय, तराजू पर रखकर, बाटोंसे तोलकर, तथा गिनकर करना चाहिये, जिससे कि कोई झूठा व्यवहार न करसके ॥ १८ ॥

तर्कः फल्गुभाण्डानामानुग्राहिकाणां च ॥ १९ ॥ ध्वजमूलमतिक्रान्तानां चाकृतशुल्कानां शुल्कादष्टगुणो दण्डः ॥ २० ॥ पथिकोत्पथिकास्तद्विद्युः ॥ २१ ॥

कोयले आदि कम कीमत की चीजोंपर, तथा जिन वस्तुओंपर चुंगी आदि थोड़ी लीजाय, ऐसे नमक आदि पदार्थोंपर अन्दाज़ करके ही शुल्क ले लेना चाहिये, इनको तोलने आदिकी आवश्यकता नहीं ॥ १९ ॥ जो व्यापारी लुक छिपकर या और किसी ढंगसे, शुल्क दिये बिना ही शुल्कशालाको लांघ जावें, उन्हें नियत शुल्कसे आठ गुना दण्ड देना चाहिये ॥ २० ॥ जंगलोंसे लकड़ी आदि लाने वाले (जिनको असली रास्ता छोड़कर जानेकी आज्ञा होती

है, ऐसे लकड़हारे आदि), तथा पशुओंको चरानेवाले ग्वाले, ऐसे व्यापारियों का (जो कि असली रास्ता छोड़कर चुंगीके डरसे इधर उधरसे निकल कर जाते हैं, उनका) ध्यान रक्खें; जिससे कि वह अभियोग आदि चलनेपर साक्षी देसकें ॥ २१ ॥

वैवाहिकमन्वायनमौपायनिकं यज्ञकृत्यप्रसवनैमित्तिकं देवेज्याचौलोपनयनगोदानव्रतदीक्षणादिषु क्रियाविशेषेषु भाण्डमुच्छुल्कं गच्छेत् ॥ २२ ॥ अन्यथावादिनः स्तेयदण्डः ॥ २३ ॥

निम्न लिखित मालपर चुंगी न लीजायः—जो माल विवाह सम्बन्धी हो (अर्थात् विवाहके लिये लाया गया हो); विवाहके अनन्तर जो विवाहिता अपने पतिगृह को जावे उसके साथ जो माल लेजाया जावे; अन्नसत्र आदिके लिये जो भेंट किया हुआ हो, यज्ञकार्य तथा प्रसव (अर्थात् जातकर्म और सूतक) आदिके लिये हों, देवपूजा तथा चौल उपनयन गोदान और विशेष व्रत आदि धार्मिक कार्योंके निमित्त जो द्रव्य होवे, ऐसा माल विना चुंगी लाया लेजाया जासकता है ॥ २२ ॥ उपर्युक्त कार्योंमें उपयोग न आने वाले द्रव्यको भी चुंगीसे बचनेके लिये जो झूट बोलकर इसी सम्बन्धका बतादे, उसे चोरीका दण्ड दिया जावे ॥ २३ ॥

कृतशुल्केनाकृतशुल्कं निर्वाहयतो द्वितीयमेकमुद्रया भित्त्वा पण्यपुटमपहरतो वैदेहकस्य तच्च तावच्च दण्डः ॥ २४ ॥ शुल्कस्थानाद्गोमयपलालं प्रमाणं कृत्वापहरत उत्तमः साहसदण्डः॥२५॥

चुंगी दिये हुए मालके साथ २, बिना चुंगी दिये मालको भी धोखेके साथ निकाल लेजाने वाले, तथा एक मालकी चुंगी की मुहरसे, ठीक उसी तरहके दूसरे मालको भी निकालकर लेजाने वाले, और चुंगी दियेहुए मालके भीतर विना चुंगीके माल को भरकर लेजाने वाले, व्यापारी का वह द्रव्य (जिसपर चुंगी नहीं लीगई) छीन लिया जावे, और उसको उतना ही दण्ड दिया जावे ॥ २४ ॥ तथा जो व्यापारी शुल्कशालासे अपने बढ़िया कीमती मालको भी, विश्वास पूर्वक गोबर या भुस आदि अत्यन्त घटिया माल कहकर, धोखेसे निकाल लेजाने का यत्न करे, उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥२५॥

शस्त्रवर्मकवचलोहरथरत्नधान्यपशूनामन्यतममनिर्वाह्यं निर्वाहयतो यथावघुषितो दण्डः पण्यनाशश्च ॥ २६ ॥ तेषामन्यतमस्यानयने बहिरेवोच्छुल्को विक्रयः ॥ २७ ॥

शस्त्र (हथियार), वर्म (साधारण कवच आदि आवरण), कवच (बाहु सिर आदि सम्पूर्ण अवयवोंसे युक्त विशेष कवच), लोहा, रथ, रत्न, धान्य (अन्न आदि), तथा पशु इन आठ वस्तुओंमें से किसी एकको भी, जिसके सम्बन्धमें राजाने लाना लेजाना बन्द कर दिया हो, कोई लावे लेजावे, उसकी वही चीज़ ज़ब्त करली जावे, और पहिले की हुई घोषणाके अनुसार उसे दण्ड दिया जाय। अर्थात् राजासे प्रतिषिद्ध इन वस्तुओंको लाने लेजाने वाला पुरुष इस प्रकार दण्डित किया जावे ॥ २६ ॥ यदि उपर्युक्त शस्त्र आदि आठ वस्तुओंमें से कोई भी वस्तु बाहरसे लाई जावे, तो वह चुंगीके बिना ही बाहर (अर्थात् नगरकी अवधि के बाहर) ही बेची जा सकती है ॥ २७ ॥

अन्तपालः सपादपणिकां वर्तनीं गृह्णीयात्पण्यवहनस्य ॥२८॥ पणिकामेकखुरस्य पशूनामर्धपणिकां क्षुद्रपशूनां पादिकामंसभारस्य माषिकाम् ॥ २९ ॥ नष्टापहृतं च प्रतिविदध्यात् ॥ ३० ॥

अन्तपाल, बिक्रीका माल ढोने वाली गाड़ी आदिसे सवा पण (१¼पण) वर्त्तनी (मार्गमें रक्षा आदि करनेका टैक्स) लेवे ॥ २८ ॥ घोड़े खच्चर गधे आदि एक खुर वाले पशुओंकी एक पण वर्त्तनी लेवे। तथा इनसे अतिरिक्त बैल आदि पशुओंकी आधा पण, बकरी भेड़ आदि क्षुद्र पशुओंकी चौथाई पण, और कंधेपर भार ढोने वालोंकी एक माष (तांबेका एक सिक्का) वर्त्तनी लेवे ॥ २९ ॥ यदि किसी व्यापारीकी कोई चीज़ नष्ट होजावे, या चोरोंके द्वारा चुराली जावे, तो अन्तपालही उसका प्रबन्ध करे। खोई हुई चीज़को ढूंढकर, तथा चुराई हुई चीज़को चोरोंको पकड़कर वापस लेकर देवे, अन्यथा अपने पाससे देवे ॥ ३० ॥

वैदेश्यं सार्थं कृतसारफल्गुभाण्डविचयनमभिज्ञानं मुद्रां च दत्त्वा प्रेषयेदध्यक्षस्य ॥ ३१ ॥ वैदेहकव्यञ्जनो वा सार्थप्रमाणं राज्ञः प्रेषयेत् ॥ ३२ ॥

विदेशसे आनेवाले व्यापारी समूहको, अन्तपाल, उनके सब तरहके बढ़िया और घटिया मालको जांचकर, उसपर मुहर लगाकर तथा उन्हें रमन्ना (पास) देकर, अध्यक्ष (शुल्काध्यक्ष) के पास भेज देवे ॥ ३१ ॥ व्यापारियोंके साथ, छिपे वेशमें रहने वाला, राजासे नियुक्त किया हुआ गूढ़पुरुष, राजाको उन सब व्यापारियोंके सम्बन्धमें पहिलेही गुप्तरूपसे सूचना देवे ॥ ३२ ॥

तेन प्रदेशेन राजा शुल्काध्यक्षस्य सार्थप्रमाणमुपदिशेत्सर्वज्ञत्वख्यापनार्थम् ॥ ३३ ॥ ततः सार्थमध्यक्षो ऽभिगम्य ब्रूयात्

॥ ३४ ॥ इदममुष्यामुष्य च सारभाण्डं फल्गुभाण्डं च न निगूहितव्यम् ॥ ३५ ॥ एष राज्ञः प्रभाव इति ॥ ३६ ॥

इसी सूचनाके द्वारा, राजा शुल्काध्यक्षके पास, उन व्यापारियोंके सम्बन्धमें उपयोगी सब बात लिख भेजे, जिससे कि शुल्काध्यक्षको राजाकी सर्वज्ञतापर विश्वास होजावे, तथा वह राजाकी इस बातको विश्वास-पूर्वक कह सके ॥ ३३ ॥ तदनन्तर इसीके अनुसार, शुल्काध्यक्ष व्यापारियोंसे जाकर कहे ॥ ३४ ॥ आप लोगोंमेंसे अमुक २ व्यापारीका इतना २ बढ़िया माल तथा इतना घटिया माल है, इसमेंसे आपको कुछ भी छिपाना न चाहिये ॥ ३५ ॥ देखिये राजाका इतना प्रभाव है, कि वह इस प्रकार परोक्ष वस्तुओंके सम्बन्धमें भी अपना निश्चय देसकता है । (इसप्रकार राजाकी महिमाको उनपर प्रकट करे) ॥ ३६ ॥

निगूहतः फल्गुभाण्डं शुल्काष्टगुणो दण्डः ॥ ३७ ॥ सारभाण्डं सर्वापहारः ॥ ३८ ॥

जो व्यापारी घटिया मालको छिपावे, उसे शुल्कसे आठ गुना दण्ड दिया जावे ॥ ३७ ॥ तथा जो सारभाण्ड अर्थात् बढ़िया मालको छिपावे, उसके उस सम्पूर्ण मालका अपहरण कर लिया जावे; अर्थात् उसे ज़ब्त कर लिया जावे ॥ ३८ ॥

राष्ट्रपीडाकरं भाण्डमुच्छिन्द्यादफलं च यत् ।
महोपकारमुच्छुल्कं कुर्याद्बीजं तु दुर्लभम् ॥ ३९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे शुल्काध्यक्ष एकविंशो ऽध्यायः ॥ २१ ॥

आदितो द्विचत्वारिंशः ॥ ४२ ॥

राष्ट्रको पीड़ा पहुंचाने वाले (विष या मादक द्रव्य आदि), तथा कोई अन्य अच्छा फल न देने वाले मालको राजा नष्ट करवा देवे । और जो प्रजाको उपकार करने वाला, तथा अपने देशमें कठिनतासे मिलने वाला, धान्य आदि या अन्य प्रकारका माल हो, उसे शुल्क रहित कर लिया जावे; अर्थात् उसपर चुंगी न लीजावे, जिससे कि ऐसा माल अधिक मात्रामें अपने देशके अन्दर आसके ॥ ३९ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें इक्कीसवां अध्याय समाप्त ।

बाईसवां अध्याय ।

३९ प्रकरण ।

शुल्कव्यवहार ।

{ अमुक द्रव्यपर इतना शुल्क लेना चाहिये, इसप्रकारकी व्यवस्थाका करना ' शुल्कव्यवहार ' कहाता है । इस अध्यायमें इसीका निरूपण किया जायगा ।

शुल्कव्यवहारो बाह्यमाभ्यन्तरं चातिथ्यम् ॥१॥ निष्क्राम्यं प्रवेश्यं च शुल्कम् ॥ २ ॥

इस शुल्क व्यवहारमें, शुल्क तीन प्रकारका होता है,—बाह्य, आभ्यन्तर, और आतिथ्य ॥ १ ॥ यह तीनों प्रकारकाही शुल्क, निष्क्राम्य और प्रवेश्य इन दो भागोंमें विभक्त होता है । (अपने देशमें उत्पन्न हुई वस्तुओंपर जो चुंगी लीजाय, वह ' बाह्य ' कहाती है; दुर्ग तथा राजधानी आदिके भीतर उत्पन्न हुई वस्तुओंके शुल्कको ' आभ्यन्तर ' कहते हैं; तथा विदेशसे आने वाले मालकी चुंगीको ' आतिथ्य ' कहा जाता है । ये तीनोंही दो भागोंमें विभक्त होते हैं—निष्क्राम्य और प्रवेश्य । बाहर जाने वाले मालकी चुंगीको ' निष्क्राम्य ' और भीतर देशमें आने वाले मालकी चुंगीको ' प्रवेश्य ' कहा जाता है) ॥२॥

प्रवेश्यानां मूल्यपञ्चभागः ॥ ३ ॥ पुष्पफलशाकमूलकन्द-वाल्लिक्यबीजशुष्कमत्स्यमांसानां षड्भागं गृह्णीयात् ॥ ४ ॥

बाहरसे आने वाले पदार्थोंपर उनके मूल्यका पांचवां हिस्सा चुंगी लीजावे । यह चुंगी का साधारण नियम है ॥ ३ ॥ फूल, फल, शाक, (बथुआ मेथी आदि), मूल (जड़) कन्द (सूरण विदारी आदि), 'वाल्लिक्य' (बेलोंपर लगने वाले फल–कद्दू पेठा आदि । किसी २ पुस्तकमें 'वाल्लिक्य' के स्थानपर 'वाल्लिक्य' पाठ भी है), बीज (धान्य आदि), और सूखी मछली तथा मांस; इन वस्तुओंपर इनके मूल्यका छठा हिस्सा चुंगी लीजावे ॥ ४ ॥

शङ्खवज्रमणिमुक्ताप्रवालहाराणां तज्जातपुरुषैः कारयेत्कृत-कर्मप्रमाणकालवेतनफलनिष्पत्तिभिः ॥ ५ ॥

शंख, वज्र, (हीरा), मणि, मुक्ता, प्रवाल (मूंगा), हार; इन छः पदार्थोंपर चुंगी, इन वस्तुओंके लक्षणोंको जाननेवाले, तथा फलसिद्धिके अनुसार जिनके साथ, नियत कार्य, काल और वेतन आदिका निश्चय किया जा चुका है ऐसे पुरुषोंके द्वारा नियत कराई जावे । क्योंकि ऐसे पुरुष शंख,

वस्त्र आदिके ठीक मूल्यको जानकर उनपर चुंगीका उचित निर्णय कर सकते हैं ॥ ५ ॥

क्षौमदुकूलक्रिमितानकङ्कटहरितालमनःशिलाहिङ्गुलुकलोहवर्णधातूनां चन्दनागरुकटुककिण्वावराणां सुरादन्ताजिनक्षौमदुकूलनिकरास्तरणप्रावरणक्रिमिजातानामजैलकस्य च दशभागः पञ्चदशभागो वा ॥ ६ ॥

क्षौम (मोटे रेशमका कपड़ा), दुकूल (पतले रेशमका कपड़ा), क्रिमितान (चीनपट्ट=चीनका बनाहुआ रेशमी कपड़ा), कङ्कट (सूतका कवच), हरताल, मनसिल, हिङ्गुल, लोह, वर्णधातु (गेरू आदि); चन्दन, अगर, कटुक, (पीपल, मिरच आदि), किण्वावट (मादक बीजोंमेंसे निकलनेवाला तेलके समान एक द्रव्य); शराब, दांत (हाथी दांत आदि), चमड़ा (हरिण आदिका), क्षौम और दुकूल बनानेके तन्तुसमूह, आस्तरण (बिछौना आदि), प्रावरण (ओढ़नेका कपड़ा), अन्य रेशमी वस्त्र; तथा बकरी और भेड़ की ऊनके कपड़ोंपर इनके मूल्यका दशवां हिस्सा, या पन्द्रहवां हिस्सा चुंगी होनी चाहिये ॥ ६ ॥

वस्त्रचतुष्पदद्विपदसूत्रकार्पासगन्धभैषज्यकाष्ठवेणुवल्कलचर्ममृद्भाण्डानां धान्यस्नेहक्षारलवणमद्यपक्वान्नादीनां च विंशतिभागः पञ्चविंशतिभागो वा ॥ ७ ॥

साधारण वस्त्र, चौपाये, दुपाये, सूत, कपास, गन्ध, ओषधि, लकड़ी, बांस, छाल, चमड़ा (बैल आदिका), मट्टीके बर्त्तन; धान्य, घी तेल आदि, खार, नमक, मद्य, तथा पकेहुए अन्न आदि पदार्थोंकी चुंगी, इनके मूल्य का बीसवां या पच्चीसवां भाग होनी चाहिये ॥ ७ ॥

द्वारादेयं शुल्कपञ्चभागम्, आनुग्राहिकं वा यथादेशोपकारं स्थापयेत् ॥ ८ ॥ जातिभूमिषु च पण्यानामविक्रयः ॥ ९ ॥ खनिभ्यो धातुपण्यादानेषु षट्छतमत्ययः ॥ १० ॥

नगरके प्रधान द्वारके प्रवेशका टैक्स, उन २ पदार्थोंके नियत शुल्कका पांचवां हिस्सा होना चाहिये। इस टैक्सको द्वाराध्यक्ष वसूल करे। सब तरह की चुंगी, और द्वार आदिके टैक्सको इस प्रकार नियुक्त किया जावे, जिससे कि अपने देशका सदा उपकार होता रहे ॥८॥ जिन प्रदेशोंमें जो वस्तु उत्पन्न होती हो, उन्हीं प्रदेशोंमें उन वस्तुओंका विक्रय नहीं किया जासकता ॥ ९ ॥ खानों

से विना तैयार कियाहुआ माल (अर्थात् कच्चा माल), खरीदनेपर खरीदने और बेचने वालेको ६०० पण दण्ड दिया जावे ॥ १० ॥

पुष्पफलवाटेभ्यः पुष्पफलादाने चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ ११ ॥ षण्डेभ्यः शाकमूलकन्दादाने पादोनं द्विपञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ १२ ॥ क्षेत्रेभ्यः सर्वसस्यादाने त्रिपञ्चाशत्पणः ॥१३॥ पणो ऽध्यर्धपणश्च सीतात्ययः ॥ १४ ॥

फूल और फलके बगीचोंसेही फूल फल खरीदनेपर, खरीदने और बेचने वालेको ५४ पण दण्ड दियाजावे ॥ ११ ॥ तथा इसी प्रकार बारी ('बारी' उन खेतों को कहते हैं, जिनमें केवल शाक आदि बोये जाते हैं) मेंसेही शाक मूल और कन्द आदि खरीदनेपर ५१¾ पण दण्ड दिया जावे ॥ १२ ॥ और अन्नके खेतोंमेंसेही हर तरहका अन्न खरीदनेपर ५३ पण दण्ड होना चाहिये ॥ १३ ॥ इसके अतिरिक्त, अनाजको खेतसेही मोललेने और बेचनेवालेको यथासंख्य एक पण तथा डेढ़ पण दण्ड और होना चाहिये । (इस बातका तात्पर्य यही है, कि हर एक माल बाज़ारमेंही लाकर बेचना चाहिये, जहां पैदा हो, वहीं न बेचना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे राजाको शुल्क आदि न मिलनेके कारण हानि होती है) ॥ १४ ॥

अतो नवपुराणानां देशजातिचरित्रतः ।
पण्यानां स्थापयेच्छुल्कमत्ययं चापकारतः ॥ १५ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे शुल्कव्यवहारो द्वाविंशो ऽध्यायः ॥ २२ ॥
आदितस्त्रिचत्वारिंशः ॥ ४३ ॥

इसलिये राजाको चाहिये, कि वह नये और पुराने हरतरहके विक्रेय पदार्थोंके शुल्ककी, भिन्न २ देश तथा जातिके आचारोंके अनुसार स्थापना करे । और इनमें जहांसे हानिकी संभावना हो, उसके अनुसार उचित दण्डकी स्थापना भी करे ॥ १५ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें बाईसवां अध्याय समाप्त ।

तेईसवां अध्याय

४० प्रकरण

सूत्राध्यक्ष

[ऊन और कपास आदिसे जो सूत तैयार किया जाता है, उसका नाम 'सूत्र' कहा जाता है। उसको कतवाने या बुनवाने वाला, जो प्रधान अधिकारी राजा की ओरसे नियुक्त किया जावे, उसे 'सूत्राध्यक्ष' कहते हैं। इस प्रकरणमें उसीके कार्योंका निरूपण किया जायगा।]

सूत्राध्यक्षः सूत्रवर्मवस्त्ररज्जुव्यवहारं तज्जातपुरुषैः कारयेत् ॥ १ ॥

सूत्राध्यक्षको चाहिये कि वह सूत, कवच, वस्त्र, और रज्जु (रस्सी) आदि पदार्थोंके कातने बुनने और बटने आदि व्यवहारको, उन २ पदार्थोंके जानने वाले होशियार कारीगरोंके द्वारा करवावे ॥ १ ॥

ऊर्णावल्ककार्पासतूलशणक्षौमाणि च विधवान्यङ्गाकन्याप्रव्रजितादण्डप्रतिकारिणीभी रूपाजीवामातृकाभिर्वृद्धराजदासीभिर्व्युपरतोपस्थानदेवदासीभिश्च कर्तयेत् ॥ २ ॥

तथा ऊन, वल्क (छालको कूटकर जो रेशे निकलते हैं, उनका नाम वल्क है), कपास, सिंभल आदिकी रूई (तूल), सन, और जूट आदिको; विधवा, अंगविकल, कन्या, सन्यासिन, अपराधिन (किसी अपराध में प्राप्त हुए दण्डको काम करके भुगताने वाली); वेश्याओंकी वृद्धा माता, बूढी राजदासी, और बूढ़ी हुई २ (जिनकी कि उपस्थिति अब देवालयमें आवश्यक नहीं है; ऐसी) देवालयकी परिचारिकाओंसे कतवावे ॥ २ ॥

श्लक्ष्णस्थूलमध्यतां च सूत्रस्य विदित्वा वेतनं कल्पयेत् ॥ ३ ॥ बह्वल्पतां च ॥ ४ ॥ सूत्रप्रमाणं ज्ञात्वा तैलामलकोद्वर्तनैरेता अनुगृह्णीयात् ॥ ५ ॥

सूत की चिकनाई (समानता, सूतका एकसा होना), मोटाई और मध्यमताको अच्छीतरह जांचकर, फिर उनके वेतनका निर्णय करे ॥ ३ ॥ तथा एकही समयमें कातेहुए सूतकी अधिकता और न्यूनताको जानकरभी वेतनका निर्णय करना चाहिये ॥ ४ ॥ सूतके प्रमाण (वजन अथवा लम्बाई) को

जानकर, उसीके अनुसार उन्हें (विधवा आदि सूत कातने वाली स्त्रियोंको) तैल, आंवला और उबटना पारितोषिक रूपमें देकर उन्हें अनुगृहीत करे। जिससे कि वे प्रसन्न होकर और अधिक कार्य करने के लिये प्रोत्साहित होवें ॥ ५ ॥

तिथिषु प्रतिपादनमानैश्च कर्म कारयितव्याः ॥ ६ ॥ सूत्रह्रासे वेतनह्रासः द्रव्यसारात् ॥ ७ ॥

कार्य करनेके दिनोंमें, दिये जाने वाले वेतनका विभाग करके कार्य करवाया जावे। अर्थात् अमुक कार्य, इतना करनेपर इतना वेतन मिलेगा; और इतना कार्य करनेपर इतना। अथवा इस सूत्रका यह अर्थ करना चाहिये; तिथियों अर्थात् पर्वों या छुट्टियोंके दिनोंमें भी भोजन दान या सत्कार आदिके द्वारा उनसे कार्य करवाया जावे ॥ ६ ॥ सूत यदि उचित प्रमाणसे कम होवे, तो उस द्रव्यके मूल्यके अनुसारही वेतन कम दिया जावे। (अर्थात् सूत यदि अधिक कीमती हो तो वेतन अधिक काटा जावे, और कम कीमत होनेपर कम ॥ ७ ॥

कृतकर्मप्रमाणकालवेतनफलनिष्पत्तिभिः कारुभिश्च कर्म कारयेत्प्रतिसंसर्गं च गच्छेत् ॥ ८ ॥

कार्य सिद्धिके अनुसार जिनके साथ, नियत कार्य, काल और वेतन आदिका निश्चय किया जाचुका है ऐसे पुरुषोंके द्वारा, तथा अन्य कारीगरोंके द्वारा, कार्य करवाया जावे। और उनसे मेल पैदा किया जावे, जिससे कि वे काम में कोई बेईमानी न करसकें, यदि करें भी, तो सरलतासे सबकुछ मालूम होजाय ॥ ८ ॥

क्षौमदुकूलक्रिमितानराङ्कवकार्पाससूत्रवानकर्मान्तांश्च प्रयुञ्जानो गन्धमाल्यदानैरन्यैश्चौपग्राहिकैराराधयेत् ॥ ९ ॥ वस्त्रास्तरणप्रावरणविकल्पानुत्थापयेत् ॥ १० ॥

क्षौम, दुकूल, क्रिमितान, राङ्कव (रंकु एक प्रकारका मृग होता है, उसके बाल बड़े २ होते हैं, जिनका कपड़ा आदि बनाया जाता है; उसीकी उस ऊनके लिये यहां 'राङ्कव' शब्दका प्रयोग किया गया है), और कपास इन पांचों चीजोंका सूत कतवाने और बुनवानेके कार्योंको कराता हुआ अध्यक्ष, कारीगरोंको गन्ध माल्य आदि देकर तथा अन्य प्रकारके पारितोषिक देकर सदा प्रसन्न करता रहे ॥ ९ ॥ और फिर उनसे भिन्न २ प्रकारके वस्त्र आस्तरण तथा प्रावरण आदि बनवावे ॥ १० ॥

कङ्कटकर्मान्तांश्च तज्जातकारुशिल्पिभिः कारयेत् ॥ ११ ॥

सूतके कवच आदिके कार्योंको; उन २ कार्योंमें निपुण कारीगरोंसे करवावे। (इस सूत्रमें कारु और शिल्पी दोनों पद हैं। मोटा काम करने वाले कारीगरोंको 'कारु' और बारीक काम करने वाले कारीगरोंको 'शिल्पी' कहते हैं ॥ ११ ॥

याश्चानिष्कासिन्यः प्रोषितविधवा न्यङ्गा कन्यका वात्मानं बिभृयुस्ताः स्वदासीभिरनुसार्य सोपग्रहं कर्म कारयितव्याः ॥ १२ ॥

जो स्त्रियां परदेमें रहकरही काम करना चाहें, जिनके पति परदेश में गये हुए हों, तथा अङ्गविकल और अविवाहिता स्त्रियें, जो कि स्वयं अपना पेट पालन करना चाहें; अध्यक्षको चाहिये कि वह दासियोंके द्वारा उनसे सूत कतवाने आदिका काम करवावे, और उनके साथ अच्छीतरह सत्कार पूर्वक व्यवहार करे ॥ १२ ॥

स्वयमागच्छन्तीनां वा सूत्रशालां प्रत्युषसि भाण्डवेतन-विनिमयं कारयेत् ॥ १३ ॥ सूत्रपरीक्षार्थमात्रः प्रदीपः ॥ १४ ॥

जो स्त्रियां प्रातःकालही स्वयं या दासियोंके साथ सूत्रशालामें पहुंचें; उनके घरपर कियेहुए कार्य (अर्थात् कातेहुए सूत्र आदि) को लेकर, उनका उचित वेतन देदिया जावे ॥ १३ ॥ और वहांपर (सूत्रशालामें, यदि अधिक सवेरा होनेके कारण कुछ अन्धेरासा हो, तो) प्रदीप आदिके द्वारा केवल इतना प्रकाश किया जावे, जिस से कि सूतकी अच्छी तरह परीक्षा कीजासके ॥ १४ ॥

स्त्रिया मुखसंदर्शने ऽन्यकार्यसंभाषायां वा पूर्वः साहस-दण्डः ॥ १५ ॥ वेतनकालातिपातने मध्यमः ॥ १६ ॥ अकृत-कर्मवेतनप्रदाने च ॥ १७ ॥

स्त्रीका मुख देखने, अथवा कार्यके अतिरिक्त और इधर उधरकी बातचीत करनेपर प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ १५ ॥ वेतन देनेके समयका अतिक्रमण करनेपर मध्यम साहस दण्ड दिया जावे ॥ १६ ॥ तथा काम न करनेपरभी (रिश्वत आदि लेकर या अन्य किसी विशेष कारणसे) वेतन देदेनेपर मध्यम साहस दण्डही दिया जावे ॥ १७ ॥

गृहीत्वा वेतनं कर्माकुर्वन्त्याः अङ्गुष्ठसंदंशं दापयेत् ॥ १८ ॥ भक्षितापहृतावस्कन्दितानां च ॥ १९ ॥ वेतनेषु च कर्मकराणा-मपराधतो दण्डः ॥ २० ॥

जो स्त्री वेतन लेकरभी काम न करे, उसका अंगूठा कटवा दिया जाय; ॥ १८ ॥ और यही दण्ड उनकोभी दिया जाय, जो कि मालको खाजायें, चुरालें, अथवा छिपाकर भागजायं ॥ १९ ॥ अथवा सबही कार्य करने वाले कर्मचारियोंको अपराधके अनुसार वेतन सम्बन्धी दण्ड दियाजावे । तात्पर्य यह है, कि यह आवश्यक नहीं, कि कर्मचारियोंको देहदण्डही दिया जावे, किन्तु उसके स्थान पर अपराधानुसार केवल वेतन दण्डभी दिया जा सकता है ॥२०॥

रज्जुवर्तकैश्चर्मकारैश्च स्वयं संसृज्येत ॥ २१ ॥ भाण्डानि च वरत्रादीनि वर्तयेत् ॥ २२ ॥

रस्सी आदि बटकर जीविका करने वाले, तथा चमड़ेका काम करने वाले कारीगरोंके साथ, स्वयं सूत्राध्यक्ष मेल जोल रक्खे ॥ २१ ॥ और उनसे हर तहरके चमड़े आदिके सामान तथा गाय आदि बांधनेकी और अन्य प्रकारकी हरतरहकी रास्सियां आदि बनवावे ॥ २२ ॥

सूत्रवल्कमयी रज्जूः वरत्राः वैत्रवैणवीः ।
सांनाह्या बन्धनीयाश्च यानयुग्यस्य कारयेत् ॥ २३ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे सूत्राध्यक्षस्त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥
आदितश्चतुश्चत्वारिंशः ॥ ४४ ॥

सूत तथा सन आदिसे बनाई जानेवाली रास्सियां; और बेंत तथा बांसोंसे उन्हें कूटकर बनाई जानेवाली वरत्रा (बरत=मोटा रस्सा), जिस का कि उपयोग कवच आदिके बनानेमें तथा घोड़े और रथ आदिके बांधनेमें होता है, तैयार करवावे । अर्थात् सूत्राध्यक्ष, इन सब वस्तुओंको आवश्ययता-नुसार बनवावे ॥ २३ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें तेईसवां अध्याय समाप्त ।

चौबीसवां अध्याय

४१ प्रकरण

सीताध्यक्ष

{ कृषिकर्म अर्थात् खेतोंके हर तरहके कामोंको ‘ सीता ’ कहाजाता है । इसके निरीक्षणके लिये जो राजकीय अधिकारी नियुक्त किया जावे, उसका नाम ‘ सीताध्यक्ष ’ है । उसीके कार्योंका निरूपण इस प्रकरणमें किया जायगा ।

सीताध्यक्षः कृषितन्त्रशुल्बवृक्षायुर्वेदज्ञस्तज्ज्ञसखो वा सर्वधान्यपुष्पफलशाककन्दमूलवाल्लिक्यक्षौमकार्पासबीजानि यथाकालं गृह्णीयात् ॥ १ ॥

सीताध्यक्ष (कृषि–विभागका प्रबन्धकर्त्ता=प्रधान अधिकारी) को यह आवश्यक है, कि वह कृषिशास्त्र, शुल्बशास्त्र (जिसमें भूमि आदिके पहिचानने और नापने आदिका निरूपण हो । किसी २ पुस्तकमें 'शुल्ब' के स्थानपर 'गुल्म' भी पाठ है), तथा वृक्षायुर्वेद (वह शास्त्र, जिससे वृक्ष आदिके सम्बन्धमें हर तरहका ज्ञान प्राप्त किया जासके) को अच्छी तरह जाने; अथवा इन सब विद्याओंको जानने वाले पुरुषोंको अपना सहायक बनावे; और फिर ठीक समयपर सब तरहके अन्न, फूल, फल, शाक, कन्द, मूल, वाल्लिक्य (बेलपर लगने वाले कद्दू पेठा आदि); क्षौम (सन जूट आदि) और कपास आदिके बीजोंका संग्रह करें ॥ १ ॥

बहुहलपरिकृष्टायां स्वभूमौ दासकर्मकरदण्डप्रतिकर्तृभिर्वापयेत् ॥ २ ॥ कर्षणयन्त्रोपकरणबलीवर्दैश्चैषामसङ्गं कारयेत् ॥३॥ कारुभिश्च कर्मारकुट्टाकमेदकरज्जुवर्तकसर्पग्राहादिभिश्च ॥ ४ ॥ तेषां कर्मफलविनिपाते तत्फलहानं दण्डः ॥ ५ ॥

तदनन्तर उन बीजोंको अपने २ ठीक समयपर बहुतवार हलोंसे जोतीहुई अपनी भूमिमें; दास (उदरदास क्रीतदास आदि), कर्मकर (वेतन आदि लेकर काम करने वाले नौकर), और कार्य करके दण्डको भुगताने वाले अपराधी पुरुषोंके द्वारा बुवावे ॥ २ ॥ खेत जोतनेके हल, तथा अन्य साधन और बैल आदिके साथ, इन कर्मचारी पुरुषोंका संसर्ग न होने दिया जावे । तात्पर्य यह है, कि इन साधनोंको ये कर्मचारी पुरुष, कार्यके समयमें ही लेवें, और उनका उपयोग करें, अनन्तर इनका उनसे कोई सम्बन्ध न रहे, उनकी रक्षाका प्रबन्ध करनेवाले पुरुष दूसरे होने चाहियें ॥ ३ ॥ इसी प्रकार कारु, और लुहार, बढ़ई, खोदनेवाले (किसी २ पुस्तकमें 'मेदक' के स्थानपर 'भेदक' पाठ भी है), रस्सी आदि बनानेवाले तथा सपेरोंसेभी इन कर्मचारी पुरुषोंका सदा संसर्ग न होने देवें; उनके सम्बन्धका जब कोई काम पड़े, तबही उनसे मिलें मिलावें ॥ ४ ॥ कारु आदिके किसी कार्यको ठीक न करनेके कारण यदि खेतोंमें कुछ नुकसान होजावे, तो उतनाही दण्ड उसको दिया जावे; अर्थात् वह नुकसानका माल उससे वसूल किया जावे ॥ ५ ॥

षोडशद्रोणं जाङ्गलानां वर्षप्रमाणमध्यर्धमानूपानाम् ॥ ६ ॥ देशवापानामर्धत्रयोदशाश्मकानां त्रयोविंशतिरवन्तीनानाममितमपरान्तानां हैमन्यानां च कुल्यावापानां च कालतः ॥ ७ ॥

किन २ प्रदेशोंमें कितनी वर्षासे फ़सल ठीक होसकती है, इसका निरूपण करते हैं:–सोलह द्रोण (वृष्टिके जलको मापनेके लिये बनायेहुए एक हाथ मुंहवाले कुण्डमें; वर्षाका सोलह द्रोण) जल इकट्ठा होनेपर समझना चाहिये, कि इतनी वर्षा मरुप्राय प्रदेशोंमें अच्छी फ़सल होनेके लिये पर्याप्त है। इसीप्रकार जलप्राय प्रदेशोंमें चौबीस द्रोण (अध्यर्ध=सोलह द्रोणसे, उसका आधा और अधिक=२४ द्रोण), वर्षा पर्याप्त समझनी चाहिये ॥ ६ ॥ अब देश भेदसे इस बातका निरूपण किया जाता है, कि किन २ देशोंमें कितनी २ वर्षा अच्छी फसलके लिये पर्याप्त है:–अश्मक देशोंमें साढे तेरह (१३½) द्रोण, मालवा प्रान्तमें तेईस (२३) द्रोण, अपरान्त अर्थात् पश्चिमके राजपूताना प्रान्तमें अपरिमित; हिमालयके प्रदेशोंमें तथा उन प्रान्तोंमें जहांपर नहर आदि बनीहुई हैं, समय समयपर उचित वर्षा होने से फ़सल ठीक होजाती हैं ॥ ७ ॥

वर्षात्रिभागः पूर्वपश्चिममासयोर्द्वौ त्रिभागौ मध्यमयोः सुषमारूपम् ॥ ८ ॥

भिन्न २ देशोंमें होने वाली वर्षाके तीन भाग करने चाहियें, उनमें से पहिला एक हिस्सा श्रावण और कार्त्तिकके महीनेमें बरसना चाहिये, बाकी दोनों हिस्से भादों और क्वार (आश्विन) में बरसने चाहियें । तात्पर्य यह है, वर्षाके दिनोंमें जितनी बारिश पड़े, उसके तीन हिस्से करके, एक हिस्सा श्रावण और कार्त्तिकमें, और बाकी दो हिस्से भादों क्वार में बरसें, तो वह संवत्सर बहुत अच्छा होता है,और इस प्रकारकी वर्षा होना फसलके लिये बहुत लाभदायक है ॥ ८ ॥

तस्योपलब्धिर्बृहस्पतेः स्थानगमनगर्भाधानेभ्यः शुक्रोदयास्तमयचारेभ्यः सूर्यस्य प्रकृतिवैकृताच्च ॥ ९ ॥

इस अच्छे सालका अनुमान निम्नलिखित रीतिसे होता है:—बृहस्पतिके स्थान, गमन और गर्भाधानसे, शुक्रके उदय, अस्त और चारसे, सूर्यके कुण्डल आदि विकारसे । तात्पर्य यह है—जब बृहस्पति मेष आदि राशियोंपर स्थित हो, और फिर मेष आदि राशियोंसे वृष आदि राशियोंपर संक्रमण करे, (ऐसा होना वृष्टिका कारण होता है यह बात ज्योतिश्शास्त्रमें प्रसिद्ध है);

तथा गर्भाधान अर्थात् मंगसिर आदि छः महीनोंमें तुषार आदि देखा जावे*। इसी प्रकार शुक्रका उदय और अस्त, तथा आषाढ़ महीने की पंचमी आदि नौ तिथियोंमें उसका संचार होना। और सूर्य के चारों ओर मण्डल होना, ये सब अच्छी तरह वर्षा होनेके चिन्ह हैं ॥ ९ ॥

सूर्याद्बीजसिद्धिः ॥ १० ॥ बृहस्पतेः सस्यानां स्तम्बकारिता ॥ ११ ॥ शुक्राद्वृष्टिरिति ॥ १२ ॥

इनमें से सूर्यपर विकार होनेपर अर्थात् सूर्यके चारों ओर मण्डलाकार घेरा सा होनेपर बीजसिद्धि अर्थात् अनाज आदिका अच्छा दाना पड़नेका अनुमान करना चाहिये ॥१०॥ तथा बृहस्पतिसे अनाजके बढ़नेका अनुमान किया जाता है ॥ ११ ॥ और शुक्र के उदय आदिसे वृष्टिके होनेका अनुमान किया जाता है ॥ १२ ॥

त्रयः सप्ताहिका मेघा अशीतिः कणशीकराः ।
षष्टिरातपमेघानामेषा वृष्टिः समाहिता ॥ १३ ॥

अच्छी वर्षाका होना इस प्रकार समझना चाहियेः—तीन मेघ (बादल; यहांपर मेघ शब्दका अर्थ वर्षा मालूम होता है) लगातार सात सात दिन तक बरसते रहें, अर्थात् यदि लगातार सात २ दिन तक तीनवार बारिश पड़े; और अस्सीवार बूंद २ करके बारिश पड़े; तथा साठवार धूपसे युक्त वृष्टि पड़े, अर्थात् बीचमें धूप हो २ कर फिर वृष्टि पड़े; तो यह इस प्रकारकी वृष्टि उचित तथा अत्यन्त लाभदायक होती है ॥ १३ ॥

वातमातपयोगं च विभजन्यत्र वर्षति ।
त्रीन्करीषांश्च जनयंस्तत्र सस्यागमो ध्रुवः ॥ १४ ॥

---

* मार्गशिराः सतुषारः सहिमः पौषः समारुतो माघः ।
साभ्रः फाल्गुनमासः सपवनवृष्टिश्च यदि चैत्रः ॥
तडिदभ्रानिलविद्युज्जलवृष्टिमान् भवति यदि च वैशाखः ।
सम्यग् वर्षति मघवान् धारणदिवसेषु वर्षति चेत् ॥

मंगसिरमें तुषार अर्थात् कोहरेका होना, पौषमें बरफ़का पड़ना, माघमें हवा चलना, फाल्गुनमें बादलोंका आना, और चैत्रमें हवाके साथ २ वृष्टिका होना, तथा वैशाखमें बिजली चमकना बादल आना हवा चलना बिजलीका गिरना बादलोंका बरसना देखकर; तथा इसीप्रकार धारणके दिनोंमें (वैशाख कृष्णपक्षकी प्रतिपदा आदि चार तिथियोंका नाम धारण होता है) वर्षा होना देखकर यह समझना चाहिये कि इस फ़सलमें बारिश बहुत अच्छीहोगी।

वायु और धूपको अवसर देता हुआ, अर्थात् इनको पृथक् २ विभक्त करके अपना काम करता हुआ, और बीच २ में तीनवार खेत जोतने का अवसर देता हुआ, मेघ जिस देशमें बरसता है, वहांपर निश्चय ही फसल का अच्छा होना समझना चाहिये ॥ १४ ॥

ततः प्रभूतोदकमल्पोदकं वा सस्यं वापयेत् ॥१५॥ शालिव्रीहिकोद्रवतिलप्रियङ्गूदारकवराकाः पूर्ववापाः ॥ १६ ॥ मुद्गमाषशैम्बया मध्यवापाः ॥ १७ ॥

इस प्रकार वृष्टिके परिमाणको अच्छी तरह जाननेके बाद, फिर अधिक जलसे अथवा थोड़े जलसे उत्पन्न होने वाले अन्नोंको बीजा जाय। अर्थात् वृष्टि आदिके अनुसार ही खेतोंमें नाज बोया जाना चाहिये ॥ १५ ॥ शाली (साठी धान), ब्रीहि (गेंहू जो आदि धान्य) कोदों, तिल, कंगनी, और लोभिया आदि, वर्षाके पहले दिनोंमें ही बोदेने चाहियें ॥ १६ ॥ मूंग, उड़द, और छींमी आदिको बीचमें बोना चाहिये ॥ १७ ॥

कुसुम्भमसूरकुलुत्थयवगोधूमकलायातसीसर्षपाः पश्चाद्वापाः ॥ १८ ॥ यथर्तुवशेन वा बीजावापाः ॥ १९ ॥

कुसुम्भ (कुसुंबा), मसूर, कुलथी, जौ, गेहूं, मटर, अतसी तथा सरसों आदि अन्नों को वर्षाके अन्तमें बोया जावे ॥ १८ ॥ अथवा इन सबही अन्नोंको ऋतु अनुसार जैसा उचित समझें, बोना चाहिये ॥ १९ ॥

वापातिरिक्तमर्धसीतिकाः कुर्युः ॥ २० ॥ स्ववीर्योपजीविनो वा चतुर्थपञ्चभागिका यथेष्टमनवसितं भागं दद्युरन्यत्र कृच्छ्रेभ्यः ॥ २१ ॥

इस तरह जिन खेतोंमें बीज न बोया जासके, उनमें अधबटाईपर काम करनेवाले किसान बीज बोवें ॥ २० ॥ अथवा जो पुरुष केवल अपना शारीरिक श्रम करके जीविका करनेवाले हों, ऐसे पुरुष उन जमीनोंमें खेती करें, और फसलका चौथा या पांचवां हिस्सा उनको दियाजावे। तथा अधबटाईपर खेतोंको जोतनेवाले किसान, उन खेतोंमें उत्पन्न हुए २ अन्नमेंसे, स्वामीकी इच्छाके अनुसारही उसको देवें; परन्तु उनपर (किसानोंपर) कोई कष्ट हो, तो ऐसा न करें॥ २१ ॥

स्वसेतुभ्यः हस्तप्रावर्तिममुदकभागं पञ्चमं दद्युः ॥ २२ ॥ स्कन्धप्रावर्तिमं चतुर्थम् ॥ २३ ॥ स्रोतोयन्त्रप्रावर्तिमं च तृतीयम् ॥ २४ ॥

अपनाही धनलगाकर स्वयं परिश्रम करके बनाये हुए तालाब आदिसे, हाथसे जल ढोकर खेत सींचनेपर, किसानोंको अपनी उपजका पांचवां हिस्सा राजाके लिये देना चाहिये ॥ २२ ॥ इसी प्रकारके तालाबोंसे, यदि कन्धेसे पानी ढोकर खेतोंको सींचाजावे, तो किसान अपनी उपजका चौथा हिस्सा राजाको देवें ॥ २३ ॥ यदि छोटी २ नहर या नालियां बनाकर उनके द्वारा खेतोंको सींचाजावे, तो उपजका तीसरा हिस्सा राजाके लिये देना चाहिये। (भूमिके करके समानही यह जलकाभी कर समझना चाहिये; क्योंकि इन दोनोंपर राजाका समानही अधिकार शास्त्रकारोंने बतलाया है) ॥ २४ ॥

चतुर्थं नदीसरस्तटाककूपोद्घाटम् ॥२५॥ कर्मोदकप्रमाणेन केदारं हैमनं ग्रैष्मिकं वा सस्यं स्थापयेत् ॥ २६ ॥

अपना धन व्यय करके अपनेही परिश्रमसे बनाये हुए तालाबोंके अतिरिक्त दूसरे नदी, सर (झील), तालाब और कुओंसे हरट आदि लगाकर यदि खेत सींचेजावें, तो उन खेतोंका चौथा हिस्सा राजाकेलिये देना चाहिये ॥ २५ ॥ खेतोंके अनुसार जलकी न्यूनाधिकताको देखकरही, खेतोंमें बोये जाने वाले, हेमन्त ऋतुके (शीत ऋतुके गेहूं जौ आदि) और ग्रीष्म ऋतुके (गरमीके कपास तथा मक्का ज्वार आदि) अनाजोंको बुवावे । अर्थात् ऋतु के अनुसार तथा जल के सुभीतेके अनुसार ही खेतोंमें बीज डाला जावे ॥ २६ ॥

शाल्यादि ज्येष्ठम् ॥ २७ ॥ षण्डो मध्यमः ॥ २८ ॥ इक्षुः प्रत्यवरः ॥ २९ ॥ इक्षवो हि बह्वाबाधा व्ययग्राहिणश्च ॥ ३० ॥

धान गेहू आदि, सब फसलोंमें उत्तम समझेजाते हैं, क्योंकि इनके बोने आदिमें परिश्रम थोड़ा, और फल अधिक मिलता है ॥ २७ ॥ इसीप्रकार कदली आदि, मध्यम होते हैं; क्योंकि इनके बोने आदिमें थोड़े परिश्रमके अनुसार फलभी थोड़ा ही मिलता है ॥ २८ ॥ ईख, सबसे ओछी फसल समझी जाती है ॥ २९ ॥ क्योंकि इसके बोने आदिमें बड़ा श्रम; उसके बाद मनुष्य, चूहे और अन्य कीड़े आदिका बड़ा उपद्रव; तथा काटना पीड़ना और पकाना; फिर कहीं फलकी प्राप्ति होती है ॥ ३० ॥

फेनाघातो वल्लीफलानां परीवाहान्ताः मृद्वीकेक्षूणां कूपपर्यन्ताः शाकमूलानां हरिणपर्यन्ताः हरितकानां पाल्यो लवानां गन्धभैषज्योशीरह्रीबेरपिण्डालुकादीनाम् ॥ ३१ ॥

जलके किनारेका स्थान पेठा कद्दू ककड़ी तरबूज आदि बोनेके लिये उपयुक्त होता है। पीपल, अंगूर तथा ईख आदि बोनेके लिये वह प्रदेश अच्छा होता है, जहांपर नदीका जल एक बार घूम गया हो। शाक मूल आदि बोनेके लिये कूएके पासके स्थान, जई आदि हरे गौत बोनेके लिये झील तालाब आदिके किनारेके गीले प्रदेश, और काटे जाने वाले गन्ध, भैषज्य (औषधि धनिया सौंफ आदि), उशीर (खस), ह्रीबेर (नेत्रबाला) पिण्डालुक (कचालू या शकरकन्दी आदि) आदि चीजोंको बोनेके लिये वे खेत, जिनके बीचमें तालाब बने हों, उपयुक्त होते हैं ॥ ३१ ॥

यथास्वं भूमिषु च स्थल्याश्चानूप्याश्चौषधीः स्थापयेत् ॥३२॥

सूखी ज़मीनोंमें तथा जलमय प्रदेशोंमें होने वाले अनाज आदि पदार्थोंका उन २ के अपने योग्य प्रदेशोंमें ही बोया जावे। अर्थात् जो चीजें जैसी भूमिमें अच्छी पैदा हो सकती हों, उनको वैसे ही स्थानोंमें बोना चाहिये ॥ ३२ ॥

तुषारपायनमुष्णशोषणं चासप्तरात्रादिति धान्यबीजानां त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा कोशीधान्यानां मधुघृतसूकरवसाभिः शकृद्युक्ताभिः कांडबीजानां छेदलेपो मधुघृतेन कन्दानाम्, अस्थिबीजानां शकृदालेपः, शाखिनां गर्तदाहो गोस्थिशकृद्भिः काले दौहृदं च ॥ ३३ ॥

अब खेतमें बोयेजाने वाले बीजका संस्कार कैसे करना चाहिये, इसका निरूपण किया जाता है:-धानके बीजोंको रातके समय ओसमें, और दिनके समय धूपमें सात दिन तक रक्खा जावे। कोशीधान अर्थात् मूंग उड़द आदिके बीजको, इसीप्रकार तीन दिनरात या पांच दिनरात तक ओस और धूपमें रक्खा जावे। काण्डबीज अर्थात् ईख आदिके बीजको (काण्डबीज=जो टुकड़ेके रूपमें रखकर बोयाजावे ईख आदि) कटी हुई जगहोंमें शहद घी अथवा सूअरकी चरबीके साथ गोबर मिलाकर लगादेना चाहिये। तथा सूरण आदि कन्दोंके कटेहुए स्थानोंपर गोबर मिलेहुए शहद अथवा घी से ही लेप करना चाहिये। अस्थिबीजों (अर्थात् फलके भीतरसे निकलने वाले बीज= कपास आदिके बीजों) को गोबर आदिमें लपेटकर (अर्थात् गोबरके बीचमें उनको अच्छीतरह मलकर) रक्खा जावे, फिर उनको बोयाजावे। आम कटहल आदि वृक्षोंके बीजको एक गढ़ेमें डालकर कुछ गरमी दी जावे, फिर ठीक समयपर उनको गायकी हड्डी और गोबरके साथ मिलाकर रक्खा जावे।

इसप्रकारसे इन सब बीजोंका संस्कार करके फिर इनको खेतमें बोना चाहिये ॥ ३३ ॥

प्ररूढांश्चाशुष्ककटुमत्स्यांश्च स्नुहिक्षीरेण वापयेत् ॥ ३४ ॥

उपर्युक्त इन सब बीजोंके बोयेजानेके बाद, जब इनमें अङ्कुर निकल आवे, तब इनमें गीली छोटी मछलियोंका खात लगाकर, सैंढके दूधसे इन्हें सींचे। ऐसा करने से इन पौधों को कोई कीड़ा आदि नुक्सान नहीं पहुंचाता ॥ ३४ ॥

कार्पाससारं निर्मोकं सर्पस्य च समाहरेत् ।
न सर्पास्तत्र तिष्ठन्ति धूमो यत्रैष तिष्ठति ॥ ३५ ॥

कपासके बीज अर्थात् बिनौले और सांपकी कैंचुली (निर्मोक=सांपके ऊपरकी झिल्लीसी, जो उतरकर अलहदा होजाती है) को आपसमें मिलाकर जला दिया जावे, जहांतक इसका धुआं फैल जाता है, वहांतक कोईभी सांप ठहर नहीं सकता। यह सर्पके प्रतीकारका उपाय है ॥ ३५ ॥

सर्वबीजानां तु प्रथमवापे सुवर्णोदकसंप्लुतां पूर्वमुष्टिं वापयेदमुं च मन्त्रं ब्रूयात् ॥ ३६ ॥

हर एक बीजके पहिलेही बोनेके समयमें, सुवर्णके जलसे (जिस जलमें सुवर्णका संयोग करादिया गया हो) भीगीहुई पहिली बीजकी मुट्ठी को बोयाजावे : तात्पर्य यह है, कि बीजकी जो पहिली मुट्ठी भरकर बोई जावे, उसको सुवर्णके जलसे भिगोकरही बोयाजावे, और उसके साथ इस मन्त्रको पढ़ाजावे:— ॥ ३६ ॥

प्रजापतये काश्यपाय देवाय च नमः सदा ।
सीता मे ऋध्यतां देवी बीजेषु च धनेषु च ॥ ३७ ॥

प्रजापति (प्रजाओंके मालिक=प्रजाओंको जीवन देनेवाले), कश्यपके पुत्र (सूर्यके पुत्र), देव (पर्जन्य=मेघ) के लिये हमारा सदा नमस्कार हो। और 'सीता' देवी (सीता यह कृषिका ही नाम है, इस बातको पहिले लिखा जाचुका है, उसीको देवीका रूप देकर यह प्रार्थना की गई है) हमारे बीजों तथा धनोंमें सदा वृद्धिको करती रहे ॥ ३७ ॥

षण्डवाटगोपालकदासकर्मकरेभ्यो यथापुरुषपरिवापं भक्तं कुर्यात् ॥ ३८ ॥ सपादपणिकं मासं दद्यात् ॥ ३९ ॥ कर्मानुरूपं कारुभ्यो भक्तवेतनम् ॥ ४० ॥

खेतोंकी रखवाली करनेवाले, ग्वाले, दास, तथा अन्य काम करनेवाले नौकरों के लिये, प्रत्येक पुरुषके परिश्रमके अनुसार ही भोजन आदिका प्रबन्ध किया जावे ॥ ३८ ॥ इस के अतिरिक्त इनको प्रतिमास सवापण नियत वेतन दिया जावे ॥ ३९ ॥ इसीप्रकार अन्य कारीगर लोगोंके लियेभी उनके परिश्रम के अनुसार ही भोजन और वेतन दिया जावे ॥ ४० ॥

प्रशीर्णं च पुष्पफलं देवकार्यार्थं व्रीहियवमाग्रयणार्थं श्रोत्रियास्तपस्विनश्चाहरेयुः ॥ ४१ ॥ राशिमूलमुञ्छवृत्तयः ॥ ४२ ॥

वृक्ष आदिसे स्वयं ही गिरेहुए फूल और फलोंको देवकार्यके लिये तथा गेहूं जो आदि अन्नोंको आग्रयण (यह एक इष्टिका नाम है, जिसको नई फ़सल आनेपर किया जाता हैं; इसको 'नवसस्येष्टि' भी कहते हैं) इष्टिके लिये, श्रोत्रिय तथा तपस्वी जन उठा लेवें ॥ ४१ ॥ खल्यानमें पड़ेहुए अन्नके ढेरको उठा लेनेके बाद, जो थोड़े बहुत दाने पीछे पड़े रह जायें, उनको वे लोग उठालेवें, जो सिला चुगकर अपना निर्वाह करनेवाले हों ॥ ४२ ॥

यथाकालं च सस्यादि जातं जातं प्रवेशयेत् ।
न क्षेत्रे स्थापयेत्किंचित्पलालमपि पण्डितः ॥ ४३ ॥

समयेके अनुसार तैयार हुए २ अन्नोंको, चतुर पुरुष ठीक २ सुरक्षित स्थानोंमें रखवा देवे; खेतमें पुराल तथा भुस आदि असार वस्तुओंको भी न छोड़े ॥ ४३ ॥

प्रकराणां समुच्छ्रायान्वलभीर्वा तथाविधाः ।
न संहतानि कुर्वीत न तुच्छानि शिरांसि च ॥ ४४ ॥

धान्य आदिके रखनेके स्थानको 'प्रकर' कहते हैं (किसी २ पुस्तकमें 'प्रकराणां' के स्थानपर 'प्रकाराणां' भी पाठ है), ऐसे स्थानोंको कुछ ऊंची जगहमें बनवाना चाहिये। अथवा उसी तरहके मज़बूत तथा चारों ओरसे घिरेहुए अन्नागारों को बनवावे। इनके ऊपरके हिस्सोंको आपसमें मिला हुआ न रक्खे, और खाली भी न रक्खे; तथा अच्छी तरह दृढ़ बनवावे जिस से कि वर्षा या आंधी आदिमें अन्नको किसी तरहकी हानि न पहुंचसके ॥ ४४ ॥

खलस्य प्रकरान्कुर्यान्मण्डलान्ते समाश्रितान् ।
अनग्निकाः सोदकाश्च खले स्युः परिकर्मिणः ॥ ४५ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे सीताध्यक्षः चतुर्विंशो ऽध्यायः ॥ २४ ॥
आदितः पञ्चचत्वारिंशः ॥ ४५ ॥

मण्डल (अन्न और भुस आदिको अलहदा करनेके लिये जहांपर, बैलोंकी पंक्ति उनके ऊपर गोलाकार घुमाई जावे, उसको यहां 'मण्डल' शब्दसे कहागया है। 'खल' शब्द केवल उस स्थानके लिये यहां प्रयुक्त हुआ है, जिसमें कटे हुए अनाजोंका ढेर लग रहा हो। तात्पर्य यही है, कि ये दोनों स्थान समीप ही होने चाहियें। हिन्दीमें दोनोंके ही लिये खलयान शब्दका प्रयोग होता है) के समीप ही बहुतसे खल्यानोंको बनाया जावे। खल्यानमें काम करनेवाले आदमी, अपने पास आग न रखसकें, फिर भी उनके पास जलका प्रबन्ध अवश्य होना चाहिये। जिससे कि समयपर अग्निको सरलतासे शान्त किया जासके ॥ ४५ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें चौबीसवां अध्याय समाप्त।

पच्चीसवां अध्याय।

४२ प्रकरण।

सुराध्यक्ष।

गुड़, मधु, तथा पिष्टी; इन तीन पदार्थोंसे बननेके कारण 'सुरा' तीन प्रकारकी होती है। उनके बनवाने तथा व्यापार आदि करानेके लिये जो राजकीय पुरुष नियुक्त किया जाता है, उसे 'सुराध्यक्ष' कहते हैं। उसीके कार्योंका इस प्रकरणमें निरूपण किया जायगा।

सुराध्यक्षः सुराकिण्वव्यवहारान्दुर्गे जनपदे स्कन्धावारे वा तज्जातसुराकिण्वव्यवहारिभिः कारयेत् एकमुखमनेकमुखं वा विक्रयक्रयवशेन वा ॥ १ ॥

सुराध्यक्षका कार्य है, कि वह शराबके बनवाने और उसके विक्रय आदिके व्यवहारको, दुर्ग, जनपद अथवा छावनी में, शराबके बनाने, तथा उसके व्यापार आदिको अच्छी तरह जानने वाले पुरुषोंके द्वारा करवावे। सुभीतेके अनुसार एकही बड़े ठेकेदारके द्वारा अथवा छोटे २ अनेक ठेकेदारोंके द्वारा; तथा क्रय विक्रयके भी सुभीतेको देखकर यह व्यापार करावे ॥ १ ॥

षट्छतमत्ययमन्यत्र कर्तृक्रेतृविक्रेतॄणां स्थापयेत् ॥ २ ॥
ग्रामादनिर्णयनमसंपातं च सुरायाः, प्रमादभयात्कर्मसु निर्दि-

ष्टानां, मर्यादातिक्रमभयादार्याणामुत्साहभयाच्च तीक्ष्णानाम् ॥ ३ ॥

नियत स्थानोंसे अतिरिक्त स्थानोंमें शराब बनाने खरीदने और बेचने वालोंको ६०० पण दण्ड दिया जावे ॥ २ ॥ शराबको, तथा उसे पीकर मत्त हुए २ पुरुषोंको, गांवसे बाहर तथा एक घरसे दूसरे घरमें या भीड़में न जाने दिया जावे । क्योंकि जो अध्यक्ष आदि कर्मचारी पुरुष हैं, वे ऐसा करनेसे कार्योंमें प्रमाद कर सकते हैं, आर्य-पुरुष अपनी मर्यादा भंग, और तीक्ष्ण अर्थात् कठोर प्रकृतिके, शूर, सैनिक आदि पुरुष, हथियारोंका अनुचित प्रयोग कर सकते हैं ॥ ३ ॥

लक्षितमल्पं वा चतुर्भागमर्धकुडुबं कुडुबमर्धप्रस्थं प्रस्थं वेति ज्ञातशौचा निर्हरेयुः ॥४॥ पानागारेषु वा पिबेयुरसंचारिणः ॥५॥

अथवा राजकीय मुहरसे युक्त थोड़ेही परिमाणमें–कुडुबका चौथा भाग, आधा कुडुब, एक कुडुब, आधा प्रस्थ, या एक प्रस्थ, शराब वे लोग लेजा सकते हैं जिनके आचार व्यवहारके सम्बन्धमें निश्चय रूपसे मालूम होचुका हो ॥ ४ ॥ जिन पुरुषोंको शराब लेकर बाहर जानेकी आज्ञा न हो, वे शराबखानोंमें जाकर ही पीवें ॥ ५ ॥

निक्षेपोपनिधिप्रयोगापहृतादीनामनिष्टोपगतानां च द्रव्याणां ज्ञानार्थमस्वामिकं कुप्यं हिरण्यं चोपलभ्य निक्षेप्तारमन्यत्र व्यपदेशेन ग्राहयेत् ॥ ६ ॥ अतिव्ययकर्तारमनायतिव्ययं च ॥ ७ ॥

निक्षेप, उपनिधि (पेटी आदिमें बन्द या खुला हुआ ही गिरवी रक्खा हुआ धन), प्रयोग (अमानत=आधि), चोरी किया हुआ धन तथा इसीप्रकार अन्य अनिष्ट (डाका आदि) उपायोंसे प्राप्त किये हुए द्रव्योंके जाननेके लिये स्वामीरहित कुप्य (खड्ग आदि पदार्थ) और हिरण्य आदिको पाकर, निक्षेप्ता (जिसने कि निक्षेप आदिके द्वारा कुछ धन लेकर शराबखानेंमे आकर खर्च किया है, ऐसे पुरुष) को, शराबखानेसे दूसरी जगहमें किसी बहानेसे नगराध्यक्षके द्वारा पकड़वा देवे । (दूसरी जगह और बहानेसे पकड़वाना, इसी लिये कहा गया है, कि यदि शराबखानेमें ही विना किसी बहानेके उन पुरुषोंको पकड़ लिया जावे, तो दूसरे चोर डाकू आदि अपहृत धनको वहां न लावेंगे) ॥ ६ ॥ इसीप्रकार जो पुरुष आयसे अधिक व्यय करने वाला, तथा विनाही आमदनी के फिजूल खर्च करने वाला हो, उसे भी उपर्युक्त रीतिसे पकड़वा देवे ॥ ७ ॥

न चानर्घेण कालिकां वा सुरां दद्यादन्यत्र दुष्टसुरायाः ॥ ८ ॥ तामन्यत्र विक्रापयेत् ॥ ९ ॥ दासकर्मकरेभ्यो वा वेतनं दद्यात् ॥ १० ॥ वाहनप्रतिपानं सूकरपोषणं वा दद्यात् ॥ ११ ॥

थोड़े मूल्यसे, कालान्तरमें प्राप्त होने वाले मूल्यसे अथवा कुछ कालके बाद किसी नियत समयमें ब्याज सहित मिल जाने वाले मूल्यसे भी, बढ़िया शराबको न बेचे। किन्तु इन शर्तोंपर ख़रीदारोंको सदा घटिया शराबही देवे ॥ ८ ॥ तथा उस घटिया शराबको भी, बढ़िया शराबकी दूकानसे न बिकवावे, किन्तु किसी दूसरेही स्थानसे उसकी विक्रीका प्रबन्ध करे ॥ ९ ॥ अथवा दास या अन्य छोटे कर्मचारियोंको वेतन-रूपमें वह घटिया शराब देदी जावे ॥ १० ॥ परन्तु यह, ऊँट बैल आदि सवारियोंके पालन करने, या सूअर आदिके पालन पोषण करने आदि तुच्छ कार्योंके बदलेमें ही देनी चाहिये। (अर्थात् अन्य कार्योंका वेतन मुद्राके ही रूपमें अतिरिक्त दिया जावे) ॥ ११ ॥

पानागाराण्यनेककक्ष्याणि विभक्तशयनासनवन्ति पानोद्देशानि गन्धमाल्योदकवन्त्यृतुसुखानि कारयेत् ॥ १२ ॥ तत्रस्थाः प्रकृत्यौत्पत्तिकौ व्ययौ गूढा विद्युरागन्तूंश्च ॥ १३ ॥

शराबखानोंको निम्नलिखित रीतिसे बनवाया जावेः—उनमें अनेक कक्ष्या अर्थात् ड्योढ़ियां होनी चाहियें; सोने और बैठनेके लिये अलहदा २ कमरे बने हुए हों, तथा शराब पीनेके स्थान भी पृथक् २ हों, इनमें गन्ध माला तथा जल आदिका पूरा प्रबन्ध हो, और इस ढंगके बने हुए होने चाहियें, जिससे कि प्रत्येक ऋतुमें सुखकर होसकें ॥ १२ ॥ शराबखानेमें रहने वाले राजकीय गुप्तपुरुष; नित्य नियमसे होने वाले शराबके खर्चको, तथा किसी दिन बाहरके मनुष्य अधिक आजानेके कारण अधिक हुए २ शराबके खर्चको जानें; (तात्पर्य यह है कि स्थानीय पुरुषोंके लिये, तथा बाहरके पुरुषोंके लिये पृथक् २ शराबका कितना खर्च है, इस बातका ठीक २ पता रक्खा जावे)। और यह भी जानें कि बाहरसे आने वाले पुरुष कौन २ हैं ॥ १३ ॥

क्रेतॄणां मत्तसुप्तानामलंकाराच्छादनहिरण्यानि च विद्युः ॥ १४ ॥ तन्नाशे वणिजस्तच्च तावच्च दण्डं दद्युः ॥ १५ ॥

तथा गुप्तपुरुष ही, शराब खरीद पीकर उन्मत्त होकर सोजानेवाले शराबियोंके आभूषण वस्त्र और नक़द मालका ध्यान रक्खें; तथा यह भी मालूम

करें कि यह कितना है ॥ १४ ॥ यदि उनके आभूषण आदि नष्ट हो जांय, अर्थात् उसी अवस्थामें चोर आदि चुरा लेवें, तो शराबके व्यापारी उतना माल (जितना चोरी गया है) शराबियोंको दें, और उतना ही दण्ड राजाको देवें, अर्थात् राजाकी ओरसे उनपर उतना ही जुरमाना किया जाय ॥ १५ ॥

वणिजस्तु संवृतेषु कक्ष्याविभागेषु स्वदासीभिः पेशलरूपाभिरागन्तूनां वास्तव्यानां चार्यरूपाणां मत्तसुप्तानां भावं विद्युः ॥ १६ ॥

शराबके व्यापारी; पृथक् २ एकान्त कमरोंमें भेजी हुई सुन्दर सुचतुर दासियों के द्वारा उन्मत्त होकर सोये हुए बाहरसे आनेवाले तथा, नगर निवासी, ऊपरसे आर्योंके समान रहनेवाले पुरुषोंके आन्तरिक भावोंका पता लगावें ॥१६॥

मेदकप्रसन्नासवारिष्टमैरेयमधूनामुदकद्रोणं तण्डुलानामर्धाढकं त्रयः प्रस्थाः किण्वस्येति मेदकयोगः ॥ १७ ॥

मेदक, प्रसन्ना, आसव, अरिष्ट, मैरेय और मधु ये छः शराबके भेद हैं, इनका क्रमशः निरूपण किया जाता है:—एक द्रोण जल आधे आढक चावल और तीन प्रस्थ किण्व अर्थात् सुराबीज, (देखो इसी अध्याय का २६ सूत्र) इनको मिलाकर जो शराब बनाई जाती है, उसका नाम मेदक है ॥ १७ ॥

द्वादशाढकं पिष्टस्य पञ्च प्रस्थाः किण्वस्य पुत्रकत्वक्फलयुक्तो वा जातिसंभारः प्रसन्नायोगः ॥ १८ ॥

बारह आढक चावलकी पिट्ठी और पांच प्रस्थ किण्व (सुराबीज; देखो=इसी अध्यायका २६ वां सूत्र), अथवा किण्वके स्थानपर इतना ही, पुत्रक (एक वृक्षका नाम है) की छाल और फलोंके सहित जाति-सम्भार (अच्छा सम्भार योग, यह कई चीजोंसे मिलाकर बनाया जाता है, देखो=इसी अध्यायका सत्ताईसवां सूत्र), मिलाकर प्रसन्ना योग तैयार किया जाता है, अर्थात् इन वस्तुओंसे प्रसन्ना नामक शराब तैयार होती है ॥ १८ ॥

कपित्थतुला फाणितं पञ्चतौलिकं प्रस्थो मधुन इत्यासवयोगः ॥ १९ ॥ पादाधिको ज्येष्ठः पादहीनः कनिष्ठः ॥२०॥ चिकित्सकप्रमाणाः प्रत्येकशो विकाराणामरिष्टाः ॥ २१ ॥

कैथके फलका सार सौ पल, और राब पांचसौ पल, मधु एक प्रस्थ इनको मिलाकर आसव योग तैयार किया जाता है ॥ १९ ॥ इसमें यदि कैथ आदिको सवाया कर दिया जाय, तो ज्येष्ठ अर्थात् बढ़िया आसव योग होता है,

और पौना करदेनेसे कनिष्ठ अर्थात् घटिया आसव समझा जाता है। इसलिये जो परिमाण आसवका पहिले बताया गया है, वह मध्यम योग समझना चाहिये ॥ २० ॥ प्रत्येक वस्तुका अरिष्ट उसी प्रकारसे बनाना चाहिये, जो प्रकार चिकित्सकोंने उन २ रोगोंको नष्ट करनेके लिये बनाये जाने वाले अरिष्टोंका बताया हुआ है ॥ २१ ॥

मेषशृङ्गित्वक्काथाभिषुतो गुडप्रतीवापः पिप्पलीमरिचसंभारस्त्रिफलायुक्तो वा मैरेयः ॥ २२ ॥ गुडयुक्तानां वा सर्वेषां त्रिफलासंभारः ॥ २३ ॥

मेंढासींगीकी छालका क्काथ बनाकर उसमें गुड़का योग देकर पीपल और मिर्चके चूर्णको मिलाया जावे, अथवा पीपल मिर्चकी जगहपर त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला) का चूर्ण मिलाया जावे, इससे जो शराब तैयार कीजाती है, उसका नाम मैरेय है ॥ २२ ॥ अथवा जिन शराबोंमें गुड़ मिलाया जावे, उन सबमें ही त्रिफलाका योग अवश्य होना चाहिये ॥ २३ ॥

मृद्वीकारसो मधु ॥ २४ ॥ तस्य स्वदेशो व्याख्यानं कापिशायनं हारहूरकमिति ॥ २५ ॥

मुनक्का दाख आदिके रससे जो शराब बनाई जाती है, उसका नाम मधु है, (अंगूरी शराब) ॥ २४ ॥ उसके अपने देशमें बनाये जानेके कारण दो नाम हैं—'कापिशायन' और हारहूरक। (कपिशा नामक नदीके किनारेपर बसे हुए नगरमें बनाये जानेसे 'कापिशायन' और हरहूर नामक नगरमें बनाये जानेसे 'हारहूरक' नाम पड़ा है। किसी २ पुस्तकमें इस सूत्रके 'व्याख्यानं' पदके स्थानपर 'द्व्याख्यानं' ऐसा स्पष्ट अर्थवाला पाठ है) ॥ २५ ॥

माषकलनीद्रोणमामं सिद्धं वा त्रिभागाधिकतण्डुलं मोरटादीनां कार्षिकभागयुक्तः किण्वबन्धः ॥ २६ ॥

उड़दका कल्क (जलमें अथवा सूखी ही पिसी हुई चीज़ोंका नाम कल्क है) एक द्रोण, कच्चे अथवा पके हुए, तीन भाग अधिक (अर्थात् $1\frac{1}{3}$ द्रोण) चावल, और मोरटा आदि वस्तुओंका (देखो-इसी अध्यायका तेतीसवां सूत्र) एक एक कर्ष; इन सब वस्तुओंको मिलाकर किण्व नामक योग तैयार किया जाता है। इसीको मद्यबीज या सुराबीज कहते हैं ॥ २६ ॥

पाठालोध्रतेजोवत्येलावालुकमधुमधुरसाप्रियङ्गुदारुहरिद्रा-मरिचपिप्पलीनां च पञ्चकार्षिकः संभारयोगो मेदकस्य प्रसन्ना-

याश्च ॥ २७ ॥ मधुकनिर्यूहयुक्ता कटशर्करा वर्णप्रसादिनी च ॥ २८ ॥

पाठा, लोध, गजपीपल, इलायची, वालुक (सुगन्धि=किसी तरहके इतर आदिकी सुगन्धि), मुलहटी, दूर्वा (दूब), केसर, दारु हल्दी, मिरच और पीपल; इन सब चीजोंका पांच २ कर्ष लेकर मिला लिया जावे; यह मेदक और प्रसन्ना नामक शराबमें डालनेके लिये मसाला होता है ॥ २७ ॥ मुलहटी-का काढ़ा करके उसमें रबादार शक्कर मिलाकर, यदि इसको मेदक और प्रसन्ना शराबमें डाल दिया जावे, तो इनका (मेदक और प्रसन्नाका) रंग बहुत अच्छा निखर जाता है ॥ २८ ॥

चोचचित्रकविलङ्गगजपिप्पलीनां च पञ्चकर्षिकः क्रमुकमधुकमुस्तालोध्राणां द्विकार्षिकश्चासवसंभारः ॥ २९ ॥ दशभागश्चैषां बीजबन्धः ॥ ३० ॥

दालचीनी, चीता, बायविडङ्ग, और गजपीपल इन सबका एक एक कर्ष लेकर; सुपारी, मुलहटी, मोथा और लोध, इन चीजोंका दो दो कर्ष लेकर, सबको आपसमें मिला लिया जावे; यह आसव नामक शराबका मसाला समझना चाहिये ॥ २९ ॥ दालचीनी आदि वस्तुओंका दसवां हिस्सा बीजबन्ध होता है । बीजबन्धका तात्पर्य यह है, कि जिस किसी द्रव्यका भी आसव बनाया जावे, उसमें इसको अवश्य मिलाना चाहिये ॥ ३० ॥

प्रसन्नायोगः श्वेतसुरायाः ॥ ३१ ॥ सहकारसुरा रसोत्तरा बीजोत्तरा वा महासुरा संभारिकी वा ॥ ३२ ॥

प्रसन्ना नामक शराबका जो योग बताया गया है, वही योग श्वेतसुरा-का भी समझना चाहिये । (किन्तु प्रसन्नाका जो पाठा लोध आदि मसाला बताया गया है, वह इसमें नहीं डाला जाता । किसी २ व्याख्याकारने यह भी लिखा है, कि मसालेकी तरह बीजबन्ध भी इसमें न डालना चाहिये ॥ ३१ ॥ सुराओंके निम्न लिखित भेद भी हैं:—सहकारसुरा (साधरण सुरामें आमका रस या तेल आदि मिलाकर जो तैयार की जाय), रसोत्तरा (गुड़का सांदा डालकर जो तैयार कीजाय), बीजोत्तरा (जिसमें बीजबन्ध द्रव्योंकी अधिक मात्रा हो; इसीका नाम महासुरा भी है), और सम्भारिकी (जिस सुरामें मसालेकी मात्रा अधिक पड़ी हुई हो) ॥ ३२ ॥

तासां मोरटापलाशपत्तूरमेषशृङ्गीकरञ्जक्षीरवृक्षकषायभावितं दग्धकटशर्कराचूर्णं लोध्रचित्रकविलङ्गपाठामुस्ताकलिंगयवदारुह-

रिद्रेन्दीवरशतपुष्पापामार्गसप्तपर्णनिम्बास्फोतकल्कार्धयुक्तमन्तर्नखो मुष्टिः कुम्भीं राजपेयां प्रसादयति ॥ ३३ ॥ फाणितः पञ्चपलिकश्चात्र रसवृद्धिर्देयः ॥ ३४ ॥

इन सब प्रकारकी शराबोंको निम्न लिखित रीतिसे निखारा जासकता है:—मरोरफली, पलाश (ढाक), पत्तूर (लोहमारक, औषध विशेष), मेंढासींगी, करंजवा, और क्षीरवृक्ष (=दूधिया पेड़, बट गूलर पिलखन आदि) इसके काढ़ेमें भावना दियाहुआ गरम रवादार शक्करका चूरा; तथा इसमें आधा—लोध, चीता, वायविडङ्ग, पाठा, मोथा, कलिङ्गयव (कलिङ्ग देशमें उत्पन्न हुए २ जौ), दारुहल्दी, कमल, सौंफ, अपामार्ग (चिरचिड़ा), सप्तपर्ण (एक वृक्ष, जिसके पत्तोंमें प्रायः सात पंखड़ियांसी होती हैं, इसको हिन्दीमें सातविण या सतविन कहते हैं), नींब, और आस्फोत (आस्फोट आखेका नाम है, सम्भव है इसी अर्थमें यह आस्फोत शब्द भी प्रयुक्त हुआ हो; 'आस्फोटा' विष्णुक्रान्ता और मोगरेको भी कहते हैं। साधारणतया शराबमें आखेके फूल डालनेका कहीं २ रिवाज भी है), आदि वस्तुओंका कल्क (पिसा हुआ चूरा) लेकर इन सबको मिला लिया जावे; और इस मसालेकी एक बन्द मुट्ठी भरकर एक खारी परिमाण शराबमें डालदी जावे; इसके डालनेसे उस शराबका रंग इतना निखरता है, कि वह राजाओंके पीने योग्य होजाती है ॥ ३३ ॥ यदि उसमें पांच पल राब और मिलादी जावे, तो उसका स्वाद भी खूब बढ़जाता है ॥ ३४ ॥

कुटुम्बिनः कृत्येषु श्वेतसुरामौषधार्थं वारिष्टमन्यद्वा कर्तुं लभेरन् ॥ ३५ ॥ उत्सवसमाजयात्रासु चतुरहःसौरिको देयः ॥ ३६ ॥ तेष्वननुज्ञातानां प्रहवणान्तं दैवसिकमत्ययं गृह्णीयात् ॥ ३७ ॥

नगर निवासी तथा जनपद निवासी पारिवारिक जन, विवाह आदि कार्योंमें श्वेतसुरा (सफेद रंगकी शराब) को, और औषधके लिये अरिष्टको अथवा अन्य मेदक आदि सुराको उपयोग करनेके लिये प्राप्त कर सकते हैं। (अथवा अपने घरमें भी इन सुराओंको बना सकते हैं, यह अर्थ करना चाहिये) ॥३५॥ बसन्त आदि उत्सवोंमें, अपने बन्धुजनोंके मिलनेपर, तथा देवयात्रा अर्थात् इष्टदेव आदिकी पूजाके समयमें, सुराध्यक्ष, चार दिनतक सुरा पीनेकी आज्ञा देदेवे ॥ ३६ ॥ उन उत्सव आदिके दिनोंमें जो पुरुष सुराध्यक्षकी अनुमति लिये विनाही सुरा पीवें, उनको उत्सवके अन्तमें प्रति दिनके हिसाबसे कुछ दण्ड दिया जावे। (किसी २ व्याख्याकारने इस सूत्रका यह भी अर्थ किया

हैं:—जो कर्मचारी उत्सव आदिके दिनोंमें विनाही अनुमतिके शराब पीकर उन्मत्त होजावें, और उससे राजकीय कार्यकी हानि होवे, तो उस दैनिक हानिके अनुसारही उनको दण्ड दिया जावे) ॥ ३७ ॥

सुराकिण्वविचयं स्त्रियो बालाश्च कुर्युः ॥ ३८ ॥ अराजपण्याः शतं शुल्कं दद्युः सुरकामेदकारिष्टमधुफलाम्लाम्लशीधूनां च ॥ ३९ ॥

सुराको पकाने तथा उसके मसाले आदिको तैयार करनेके कामपर सुरासे अनभिज्ञ स्त्रियों और बालकोंको नियुक्त किया जावे ॥ ३८ ॥ जो पुरुष स्वयं शराब बनाकर बेचें (अर्थात् उत्सव आदि विशेष अवसरोंपर जो स्वयं शराब बेचते हैं, जिनको सरकारकी ओरसे शराबका कोई ठेका नहीं मिला हुआ है; तात्पर्य यह है कि जो सरकारी शराब नहीं बेचते, अपनी ही बनाकर बेचते हैं। यह उत्सव आदिके समयमेंही होसकता है क्योंकि अन्य समयमें कोई भी पुरुष, ठेकेदारके सिवाय शराब नहीं बेच सकता) वे, सुरा (साधारण शराब, श्वेत सुरा आदि), मेदक, अरिष्ट, मधु, फलाम्ल (ताड़ी; या नारियलके रससे बनाई हुई शराब), और अम्लशीधु (रसोत्तरा, जो कि गुड़के सांदेसे तैयार कीजाती है, देखो इसी अध्यायका बत्तीसवां सूत्र) आदि शराबोंका, पांच प्रतिशतक शुल्क देवें ॥ ३९ ॥

अह्नश्च विक्रयं व्याजीं ज्ञात्वा मानहिरण्ययोः ।
तथा वैधरणं कुर्यादुचितं चानुवर्तयेत् ॥ ४० ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे सुराध्यक्षः पञ्चविंशो ऽध्यायः ॥ २४ ॥
आदितः षट्चत्वारिंशः ॥ ४६ ॥

इस शुल्कके अतिरिक्त, दैनिक विक्रय तथा वैधरण (तोल मापका आवश्यक टैक्स) को अच्छी तरह जानकर, सुराध्यक्ष तोल मापके ऊपर सोलहवां हिस्सा और नकद आमदनीपर बीसवां हिस्सा व्याजी लगावे। अर्थात् अपनी बनाई शराब बेचनेपर उनसे ये टैक्स और वसूल किये जावें; परन्तु सुराध्यक्षको चाहिये कि वह इनके साथ सदा उचित बर्त्ताव ही रक्खे ॥ ४० ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें पच्चीसवां अध्याय समाप्त ।

छब्बीसवां अध्याय।

४३ प्रकरण

सूनाध्यक्ष।

भक्ष्य प्राणियोंके वधस्थानको 'सूना' कहते हैं; उस पर नियुक्त किये गये राजकर्मचारीका नाम 'सूनाध्यक्ष' है। उत्तम मध्यम और अधम कार्यों के अनुसारही उसके अध्यक्षोंकी नियुक्तिके सम्बन्धमें पीछे कहा जा चुका है; समाहर्त्ता सन्निधाता आदि उत्तम अध्यक्ष, पौतवाध्यक्ष आदि मध्यम, तथा सुराध्यक्ष सूनाध्यक्ष आदि अधम हैं। इस अध्यायमें प्रकरणानुसार सूनाध्यक्षके कार्यों का निरूपण किया जायगा।

सूनाध्यक्षः प्रदिष्टाभयानामभयवनवासिनां च मृगपशुपक्षिमत्स्यानां बन्धवधहिंसायामुत्तमं दण्डं कारयेत् ॥ १ ॥ कुटुम्बिनामभयवनपरिग्रहेषु मध्यमम् ॥ २ ॥

सरकारकी ओरसे जिनके न मारे जानेकी घोषणा करदी गई है, और जो सरकारी बन्द जंगलोंमें अथवा ऋषियोंके निवास स्थानके जंगलोंमें रहते हैं, ऐसे मृग (हरिण आदि), पशु (गेंडा अरना भैंसा आदि) पक्षी (मोर आदि) और मछलियोंको जो पुरुष पकड़े, या उन पर प्रहार करे, अथवा उन्हें मार डाले; सूनाध्यक्ष उसको उत्तम साहस दण्ड दिलवावे ॥१॥ यदि कुटुम्बी पुरुष, अभय जंगलोंमें (जो सरकारकी ओरसे बन्द या सुरक्षित हैं, अथवा जिनमें ऋषियों आदिके आश्रम हैं, ऐसे जंगलोंमें) इस प्रकार मृग आदिको पकड़ें उन पर प्रहार करें या उन्हें मारें, तो उनको मध्यम साहस दण्ड दिया जाय ॥ २ ॥

अप्रवृत्तवधानां मत्स्यपक्षिणां बन्धवधहिंसायां पादोनसप्तविंशतिपणमत्ययं कुर्यात् ॥ ३ ॥ मृगपशूनां द्विगुणम् ॥ ४ ॥

जो कभी भी घातक आक्रमण न करें, अथवा जिनका चिरकालसे वध आदि न हो रहा हो, ऐसे मत्स्य तथा पक्षियोंको जो पुरुष पकड़े, प्रहार करे या मारे, उसे पौने सत्ताईस पण (२६¾ पण) दण्ड दिया जावे ॥ ३ ॥ तथा जो पुरुष, इसी प्रकारके मृग या पशुओंका वध आदि करे, उस इससे दुगना अर्थात् साढे त्रेपन (५३½) पण दण्ड दिया जावे ॥ ४ ॥

प्रवृत्तहिंसानामपरिगृहीतानां षड्भागं गृह्णीयात् ॥ ५ ॥ मत्स्यपक्षिणां दशभागं वाधिकं मृगपशूनां शुल्कं वाधिकम् ॥ ६ ॥ पक्षिमृगाणां जीवत्षड्भागमभयवनेषु प्रमुञ्चेत् ॥ ७ ॥

जो पशु आदि घातक आक्रमण करने वाले हों, जिनका कोई मालिक न हो, अथवा जो सरकारी या अन्य सुरक्षित जंगलके भी न हों, उन्हें जो मारें, उनसे उसका (मारे हुए पशु आदिका) छठा हिस्सा राजकीय अंश सूनाध्यक्षको लेलेना चाहिये ॥ ५ ॥ मछली और पक्षियोंका दसवां हिस्सा, अथवा उससे कुछ अधिक लेना चाहिये । इसी प्रकार मृग तथा अन्य पशुओंकाभी दसवां हिस्सा, अथवा उससे कुछ और अधिक राजकीय अंश शुल्क रूपमें, सूनाध्यक्ष को उन पुरुषोंसे लेना चाहिये, जो इन मृग आदिका वध करें ॥ ६ ॥ साधारण जंगलोंमेंसे पकड़े हुए पक्षी और मृगोंके जीवित छटे हिस्सेको अभय वनोंमें (सुरक्षित जंगलोंमें) छोड़ देवें ॥ ७ ॥

सामुद्रहस्त्यश्वपुरुषवृषगर्दभाकृतयो मत्स्याः सारसा नादेयास्तटाककुल्योद्भवा वा क्रौञ्चोत्क्रोशकदात्यूहहंसचक्रवाकजीवञ्जीवकभृङ्गराजचकोरमत्तकोकिलमयूरशुकमदनशारिका विहारपक्षिणो मङ्गल्याश्चान्येऽपि प्राणिनः पक्षिमृगा हिंसाबाधेभ्यो रक्ष्याः ॥ ८ ॥ रक्षातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥ ९ ॥

किन २ प्राणियोंकी रक्षा करनी चाहिये, अब यह निरूपण किया जाता है:—समुद्रमें उत्पन्न होनेवाले, तथा हाथी घोड़े पुरुष बैल गधा आदि की आकृतिवाले भिन्न२ प्रकारके मत्स्य (जलचर प्राणी) तथा सारस (सर अर्थात् झीलोंमें होनेवाले), नदियों, तालावों और छोटी २ नहरोंमें होनेवाले मत्स्य; (यहां तक जलचर मत्स्य आदि प्राणियोंको बताया गया), और क्रौञ्च (कुंज, जो शरद् ऋतुमें पंक्ति बांध कर आकाशमें उड़ते हुए देखे जाते हैं), उत्क्रोशक (कुरर, लम्बी चोंचवाला कुछ २ काले रंगका बड़ा पक्षी), दात्यूह, (जल कौआ), हंस, चक्रवाक (चकवा), जीवंजीवक (मोरके पंखोंके समान पंखोंवाला एक पक्षी), भृङ्गराज (मुर्गेके समान एक पक्षी जिसके सिरपर कलगी सी होती है), चकोर, मत्तकोकिल, मोर, तोता, मदन (एक तरहका पक्षी), मैना; इनसे अतिरिक्त और क्रीड़ाके लिए कुक्कुट (मुर्गा) आदि प्राणियोंकी रक्षा करनी चाहिए । अर्थात् इन उपर्युक्त प्राणियोंको न कोई मार सके, और न इनपर प्रहार आदि कर सके ॥ ८ ॥ यदि सूनाध्यक्ष इनकी रक्षा करनेमें कुछ असावधानता करे, तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ९ ॥

मृगपशूनामनस्थिमांसं सद्योहतं विक्रीणीरन् ॥ १० ॥ अस्थिमतः प्रतिपातं दद्युः ॥११॥ तुलाहीने हीनाष्टगुणम् ॥१२॥

मृग और पशुओंका हड्डी रहित ताज़ा मांस ही बाज़ारमें बेचा जावे ॥ १० ॥ हड्डी सहित मांस देनेमें, हड्डीके बदलेका मांस और दिया जाय। अर्थात् मांसके साथ जितनी हड्डी जा रही हो, उतने अंशको पूरा करनेके लिये, उतना ही मांस खरीदारको और दिया जावे ॥ ११ ॥ यदि तोलनेमें मांस कम दिया जावे, अर्थात् मांस बेचनेवाला धोखेसे थोड़ा मांस तोले, तो जितना थोड़ा तोले, उससे आठगुना मांस वह दण्डरूपमें और देवे। उसमेंसे आठवां हिस्सा खरीदारको दे दिया जावे, और बाकी सात हिस्से सूनाध्यक्ष ले लेवे ॥ १२ ॥

वत्सो वृषो धेनुश्चैषामवध्याः ॥ १३ ॥ घ्नतः पञ्चाशत्को दण्डः ॥ १४ ॥ क्लिष्टघातं घातयतश्च ॥ १५ ॥

मृग और पशुओंमेंसे बछड़ा, सांड (बिजार), और गाय, ये पशु कभी न मारने चाहियें ॥ १३ ॥ जो पुरुष इनमेंसे किसीको मारे, उसे पचास (५०) पण दण्ड दिया जावे ॥ १४ ॥ अन्य पशुओंको अत्यन्त कष्ट पहुंचा कर मारनेवाले पुरुषोंके लिये भी यही (५० पण) दण्ड दिया जावे ॥ १५ ॥

परिसूनमशिरःपादास्थि विगन्धं स्वयंमृतं च न विक्रीणीरन् ॥ १६ ॥ अन्यथा द्वादशपणो दण्डः ॥ १७ ॥

न बेचने योग्य मांसोंकी गणना इस प्रकार है:—सूनासे अतिरिक्त स्थानमें मारे हुए प्राणी का मांस, शिर, पैर तथा हड्डी रहित मांस (अर्थात् जंगल में स्वयं मर कर अन्य प्राणियों से खाये हुए जानवर का मांस), दुर्गन्धसे युक्त मांस, रोग आदिके कारण स्वयं मरे हुए जानवरका मांस, बाजारों में न बेचा जावे ॥ १६ ॥ जो इस नियमको न माने, उसे बारह (१२) पण दण्ड दिया जावे ॥ १७ ॥

दुष्टाः पशुमृगव्याला मत्स्याश्चाभयचारिणः ।
अन्यत्र गुप्तिस्थानेभ्यो वधबन्धमवाप्नुयुः ॥ १८ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे सूनाध्यक्षः षड्विंशो ऽध्यायः ॥ २६ ॥

आदितः सप्तचत्वारिंशः ॥ ४७ ॥

अभय वनोंमें रक्षा किये जाते हुए हिंसक जानवर, नीलगाय आदि पशु, मृग और व्याघ्र तथा मत्स्य आदि प्राणी, यदि उन सुरक्षित जंगलोंसे बाहर चले जावें, तो उनको मारा या बांधा जासकता है; अर्थात् उनको फिर मारने या बांधने में कोई अपराध नहीं ॥ १८ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरण में छब्बीसवां अध्याय समाप्त।

सत्ताईसवां अध्याय

४४ प्रकरण

गणिकाध्यक्ष।

अपने रूप सौन्दर्यसे जीविका करने वाली स्त्रियों को 'गणिका' कहते हैं। उनकी व्यवस्था करनेके लिये नियुक्त हुए राजकीय अधिकारी का नाम 'गणिकाध्यक्ष' है। इस प्रकरण में उसीके कार्योंका निरूपण किया जायगा।

गणिकाध्यक्षो गणिकान्वयामगणिकान्वयां वा रूपयौवनशिल्पसंपन्नां सहस्रेण गणिकां कारयेत् ॥ १ ॥ कुटुम्बार्धेन प्रतिगणिकाम् ॥ २ ॥

गणिकाध्यक्ष, रूप यौवन तथा गाने बजाने आदिकी कलाओंसे युक्त लड़कीको, चाहे वह गणिका (वेश्या) के वंश, में उत्पन्नहुई हो, या न उत्पन्न हुई हो, एक हज़ार (१०००) पण देकर, गणिकाके कार्य पर नियुक्त करे। ॥ १ ॥ इसी प्रकार दूसरी गणिकाको भी आधा धन उसके कुटुम्बको और आधा उसको देकर उसके कार्य पर नियुक्त करे। (पहिले सहस्र में भी आधा २ बांट कर ही गणिका और उसके कुटुम्ब को दे दिया जावे) अथवा इस सूत्र का यह अर्थ करना चाहिये—राजाकी परिचर्या करना ही गणिका कुटुम्ब का कार्य है, वह कार्य आधा २ बांट कर प्रतिगणिकाकी नियुक्ति कीजावे। अर्थात् राजपरिचर्याका आधा कार्य पहिली गणिका करे और आधा दूसरी ॥२॥

निष्पतितापतयोर्दुहिता भगिनी वा कुटुम्बं भरेत ॥ ३ ॥ तन्माता वा प्रतिगणिकां स्थापयेत् ॥ ४ ॥ तासामभावे राजा हरेत् ॥ ५ ॥

यदि कोई गणिका अपने स्थानको छोड़कर दूसरी जगह चली जावे, अथवा मर जावे तो उसके स्थान पर उसकी लड़की या बहिन, उन २ कार्यों को करती हुई उसकी सम्पत्ति की मालिक बन जावे ॥ ३ ॥ अथवा बाहर गई हुई या मरी हुई गणिका की माता, उसके स्थान पर किसी दूसरी गणिका को नियुक्त करले; वही उन २ कार्योंको करती हुई, उसकी शेष सम्पत्तिकी मालिक बने ॥ ४ ॥ यदि इनमेंसे कोई भी न रहे, तो उस सम्पत्तिका मालिक राजा ही समझा जावे ॥ ५ ॥

सौभाग्यालंकारवृद्धया सहस्रेण वारं कनिष्ठं मध्यममुत्तमं वारोपयेत् ॥ ६ ॥ छत्रभृङ्गारव्यजनशिबिकापीठिकारथेषु च विशेषार्थम् ॥ ७ ॥

सौभाग्य और अलङ्कारकी अधिकताके अनुसार ही एक हज़ार पण देनेके क्रमसे वाराङ्गनाओंके तीन विभाग किये जावें,—कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम। अर्थात् जो वाराङ्गना (वेश्या=गणिका) सौन्दर्य आदि सजावटमें सबसे कम हो वह कनिष्ठ समझी जावे, उसको एक हजार पण वेतन दिया जावे; इसी प्रकार जो सौन्दर्य आदिमें उससे अधिक हो वह मध्यम, उसको दो हजार पण वेतन दिया जावे; और जो सबसे अधिक हो, वह उत्तम, उसको तीन हज़ार पण वेतन दिया जावे। इस तरहसे कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम तीन भेद बनाये जावें ॥ ६ ॥ इन भेदोंका प्रयोजन यही है, कि वे गणिका अपने २ पदके अनुसार, राजाके छत्र, भृङ्गार (इतरदान या अन्य महर्घ वस्तुकी छोटीसी पेटी, जो राजाके साथ २ रहती है), व्यजन, (पंखा), पालकी, पीठिका, (राजाके बैठनेका विशेष स्थान), और रथ सम्बन्धी कार्योंमें नियमानुसार उपस्थित रहें, अर्थात् भिन्न २ अवसरोंपर भिन्न २ विधिसे राजाकी उपचर्या करें। इसका विवेक इस तरह करना चाहिए:— जो कनिष्ठ वारवनिता हो, वह छत्र और भृङ्गार लेकर राजाकी उपचर्या करे; मध्यम, व्यजन और पालकीके साथ रहकर राजाकी सेवा करे, तथा उत्तम राजाके विशेष सिंहासन और रथ आदिमें साथ २ रहकर उसकी परिचर्या करे ॥ ७ ॥

सौभाग्यभङ्गे मातृकां कुर्यात् ॥ ८ ॥ निष्क्रयश्चतुर्विंशतिसाहस्रो गणिकायाः ॥९॥ द्वादशसाहस्रो गणिकापुत्रस्य ॥१०॥ अष्टवर्षात्प्रभृति राज्ञः कुशीलवकर्म कुर्यात् ॥ ११ ॥

जब इनका रूप और यौवन ढल जाय, तब इनको नई नियुक्त की हुई गणिकाओंके मातृस्थानमें समझा जावे। अर्थात् नई गणिकाओंकी माता बनकर ये उन्हें हर तरहकी शिक्षा देवें, और उनको सदा राजाके अनुकूल बनाये रक्खें ॥ ८ ॥ जो गणिका अपने आपको राजाकी सेवासे मुक्त करना चाहे, वह उसको चौबीस हजार पण (२४०००) निष्क्रय (सेवासे मुक्त होनेका मूल्य) देवे। अर्थात् वह राजाको २४००० पण देकर उसकी सेवासे मुक्त होसकती है ॥ १० ॥ यदि गणिकाका पुत्र अपने आपको राजाकी सेवासे मुक्त करना चाहे, तो उसका निष्क्रय बारह हज़ार (१२०००) पण है ॥१०॥ यदि वह निष्क्रय देनेमें समर्थ नहीं है, तो राजाके पास आठ वर्षतक कुशीलव (चारण) का काम करके, फिर अपने आपको मुक्त कर सकता है ॥ ११ ॥

गणिकादासी भग्नभोगा कोष्ठागारे महानसे वा कर्म कुर्यात् ॥१२॥ अविशन्ती सपादपणमवरुद्धा मासवेतनं दद्यात् ॥ १३ ॥

गणिकाकी दासी जब भोग योग्य उमरको लांघ जावे, अर्थात् बूढ़ी होजावे, तब उसको कोष्ठागार या महानस (रसोई) में काम करनेके लिये नियुक्त कर दिया जावे ॥ १२ ॥ यदि वह काम न करे, और किसी एकही पुरुषकी भोग्य स्त्री बनकर उसके घरमें रहने लगे, तो वह प्रतिमास उस गणिकाको सवा (१¼) पण वेतन देवे ॥ १३ ॥

भोगं दायमायं व्ययमायतिं च गणिकायाः निबन्धयेत्॥१४॥ अतिव्ययकर्म च वारयेत् ॥ १५ ॥

गणिकाध्यक्षको चाहिये, कि वह गणिकाके भोगधन (गणिकाको भोग करने वाले पुरुषसे प्राप्त हुआ २ धन), दायभाग (मातृकुलक्रमसे प्राप्त हुआ २ धन), आय (भोगसे अतिरिक्त प्राप्त होने वाला धन), व्यय और आयति (प्रभाव=आगे होने वाले असर) को बराबर अपनी पुस्तकमें लिखता रहे ॥ १४ ॥ और गणिकाओंको अत्यधिक व्यय करनेसे सदा रोकता रहे ॥१५॥

मातृहस्तादन्यत्राभरणन्यासे सपादचतुष्पणो दण्डः ॥१६॥ स्वापतेयं विक्रयमाधानं वा नयन्त्याः सपादपञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ १७ ॥

यदि गणिका, अपनी माताके सिवाय और किसीके हाथमें अपने आभरण आदि सौंपे, तो उसे सवा चार (४¼) पण दण्ड दिया जावे ॥१६॥ यदि वह (गणिका) अपने कपड़े बर्तन पारिवारिक परिच्छदको बेचे या गिरवी रक्खे, तो उसे सवा पचास (५०¼) पण दण्ड दिया जावे ॥ १७ ॥

चतुर्विंशतिपणो वाक्पारुष्ये ॥ १८ ॥ द्विगुणो दण्डपारुष्ये ॥ १९ ॥ सपादपञ्चाशत्पणः पणोऽर्धपणश्च कर्णच्छेदने ॥२०॥

यदि वह किसीके साथ वाचिक कठोरताका वर्त्ताव करे, तो उसे चौबीस (२४) पण दण्ड दिया जावे ॥ १८ ॥ यदि हाथ पैर या लाठी आदिसे मारकर किसीके साथ कठोरता करे, तो पहिलेसे दुगना अर्थात् अड़तालीस (४८) पण दण्ड दिया जावे ॥ १९ ॥ यदि वह किसीका कान आदि काटलेवे, तो पौने बावन (५१$\frac{3}{4}$) पण दण्ड दिया जावे ॥ २० ॥

अकामायाः कुमार्या वा साहसे उत्तमो दण्डः ॥ २१ ॥ सकामायाः पूर्वः साहसदण्डः ॥ २२ ॥

यदि कोई पुरुष, कामनारहित कुमारीपर बलात्कार करे, तो उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ २१ ॥ तथा जो कामना करने वालीही कुमारीके साथ ऐसा व्यवहार करे, उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ २२ ॥

गणिकामकामां रुन्धतो निष्पातयतो वा व्रणविदारणेन वा रूपमुपघ्नतः सहस्रदण्डः ॥ २३ ॥

जो पुरुष, किसी कामनारहित गणिकाको बलपूर्वक रोककर अपने घर-में रक्खे, अथवा उसको मुक्त न करना चाहे, या कोई चोट अथवा घाव लगाकर उसके रूपको नष्ट करना चाहे, उस पुरुषको एक हज़ार (१०००) पण दण्ड दिया जावे ॥ २३ ॥

स्थानविशेषेण वा दण्डवृद्धिरानिष्क्रयाद्विगुणात्पणसहस्रं वा दण्डः ॥ २४ ॥

शरीरके भिन्न २ स्थानोंपर चोट पहुंचानेसे उन २ स्थान विशेषोंके अनुसार ही इस दण्डमें (१००० पण दण्डमें) वृद्धि की जावे। यह वृद्धि निष्क्रयकी दुगनी रकम तक होजानी चाहिये। (वाराङ्गनाका निष्क्रय चौबीस हज़ार पण बताया गया है, उसका दुगना अड़तालीस हज़ार पण हुए; शरीर के किसी अवयवका उपघात करनेपर अधिकसे अधिक इतना दण्ड होसकता है। किसी व्याख्याकारने इसका यह भी अर्थ किया है, कि दण्डवृद्धि उत्तम आदि वाराङ्गनाओंके विचारसे करनी चाहिये। प्राचीन व्याख्याकारोंने इस सूत्रके 'पणसहस्रं वा दण्डः' इस अंशका व्याख्यान नहीं किया, यह अंश मूल पुस्तकोंमें बराबर देखा जाता है; परन्तु पूर्वापरके साथ इसकी संगति मालूम नहीं होती, इसलिये यह पाठ प्रक्षिप्त ही मालूम होता है) ॥ २४ ॥

प्राप्ताधिकारां गणिकां घातयतो निष्क्रयत्रिगुणो दण्डः ॥ २५ ॥ मातृकादुहितृकारूपदासीनां घात उत्तमः साहसदण्डः ॥ २६ ॥

जिन गणिकाओंको राजाके समीप छत्र भृङ्गार आदिका अधिकार प्राप्त हो, अर्थात् जो राजकीय वाराङ्गनायें होवें, उनको मारने धाड़ने वाले पुरुषको निष्क्रयसे तीन गुना अर्थात् बहत्तर हज़ार (७२०००) पण दण्ड दिया जावे ॥ २५ ॥ माता, लड़की, तथा रूपदासी (रूपसे आजीविका करनेके लिये दासी बनी हुई स्त्री) को मारने पीटनेपर उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ २६ ॥

सर्वत्र प्रथमे ऽपराधे प्रथमः ॥ २७ ॥ द्वितीये द्विगुणः ॥ २८ ॥ तृतीये त्रिगुणः ॥ २९ ॥ चतुर्थे यथाकामी स्यात् ॥ ३० ॥

सबही स्थलोंमें जो अपराध पहिलेही पहिले किया जाय, उसीके लिये निर्दिष्ट दण्डोंका विधान है। इसलिये दिखलाये हुए ये सब दण्ड, प्रथम दण्ड अर्थात् पहिले अपराधके लिये दण्ड समझने चाहियें ॥ २७ ॥ यदि कोई पुरुष उसी अपराधको फिर दुबारा करे, तो उसको निर्दिष्ट दण्डसे दुगना दण्ड दिया जाय ॥ २८ ॥ इसी प्रकार तीसरी वार वही अपराध करनेपर, तिगुना दण्ड ॥ २९ ॥ और चौथी वार उसी अपराधके करनेपर, चौगुना अथवा सर्व-स्वका अपहरण, या देशसे ही प्रवासित करदेना, आदि दण्डोंमेंसे कोईसा दण्ड इच्छानुसार दिया जावे ॥ ३० ॥

राजाज्ञया पुरुषमनभिगच्छन्ती गणिका शिफासहस्रं लभेत ॥ ३१ ॥ पञ्चसहस्रं वा दण्डः ॥ ३२ ॥

जो गणिका, राजाकी आज्ञा होनेपर भी, किसी पुरुष विशेषके पास न जावे, उसको एक हज़ार कोड़े लगवाये जावें ॥ ३१ ॥ अथवा यह शारीरिक दण्ड न देकर, उसपर पांच हज़ार (५०००) पण जुरमाना किया जाय ॥ ३२ ॥

भोगं गृहीत्वा द्विषत्या भोगाद्विगुणो दण्डः ॥ ३३ ॥ वसतिभोगापहारे भोगमष्टगुणं दद्यादन्यत्र व्याधिपुरुषदोषेभ्यः ॥ ३४ ॥

यदि कोई गणिका, किसी पुरुषसे अपने भोगका वेतन लेकर फिर उस-के साथ द्वेष करे, अर्थात् उसके पास न जावे, तो उस लिये हुए भोगवेतनसे दुगना दण्ड उसको दिया जाय ॥ ३३ ॥ यदि रात्रिसम्भोगका वेतन लेकर, गणिका उस रातको कथा, तथा अन्य बातके बहानेसे ही बिता देवे, तो उसको उस वेतनका आठगुना दण्ड दिया जावे। परन्तु यदि उस पुरुषको कोई ऐसा

संक्रामक रोग हो, या अन्य किसी प्रकारका उसमें दोष हो, तो सम्भोग न करनेपर भी गणिका अपराधिनी न होगी ॥ ३४ ॥

पुरुषं घ्नत्याश्चिताप्रतापो ऽप्सु प्रवेशनं वा ॥ ३५ ॥ गणिकाभरणार्थं भोगं वापहरतो ऽष्टगुणो दण्डः ॥ ३६ ॥ गणिका भोगमायतिं पुरुषं च निवेदयेत् ॥ ३७ ॥

जो गणिका इसप्रकार वेतन लेकर पुरुषको मारडाले, उसको उस पुरुषके साथही चितामें रखकर जीतेजी जला दिया जावे, अथवा गलेमें शिला बांधकर जलमें डुबो दिया जावे ॥ ३५ ॥ गणिकाके आभरण, अन्य पदार्थ तथा सम्भोगके वेतनको जो पुरुष अपहरण करे, उसे अपहृत धनसे आठगुना दण्ड दिया जावे ॥ ३६ ॥ गणिका अपने भोग, आमदनी तथा अपने साथ सहवास करने वाले पुरुषकी सूचना गणिकाध्यक्षको बराबर देवे ॥ ३७ ॥

एतेन नटनर्तकगायकवादकवाग्जीवनकुशीलवप्लवकसौभिकचारणानां स्त्रीव्यवहारिणां स्त्रियो गूढाजीवाश्च व्याख्याताः ॥ ३८ ॥

नट (अभिनय करने वाले) नर्त्तक, गायक, वादक, वाग्जीवन (कथा करके जीविका करने वाले) कुशीलव (मुख्यतया नृत्य आदि दिखाकर गाने वाले), प्लवक (रस्सीपर चढ़कर खेल दिखाने वाले), सौभिक (ऐन्द्रजालिक=जादूगर), चारण (भांड मल्ल आदि) तथा और भी जो कोई स्त्रियोंके द्वारा अपनी जीविका कमाते हों, उनकी स्त्रियां; और छिपकर व्यभिचार आदिसे जीविका कमाने वाली स्त्रियोंके सम्बन्धमें भी गणिकाओंके समानही सब यथोचित नियम बर्त्ते जावें । अर्थात् नट आदिकी स्त्रियोंके विषयमें जो नियम जहां सम्भव हो, उसके अनुसार ही इनके साथ वर्त्ताव किया जावे ॥ ३८ ॥

तेषां तूर्यमागन्तुकं पञ्चपणं प्रेक्षावेतनं दद्यात् ॥ ३९ ॥ रूपाजीवा भोगद्वयगुणं मासं दद्युः ॥ ४० ॥

यदि नट आदिकी कोई कम्पनी किसी दूसरे देशसे तमाशा दिखानेके लिये आवे, तो प्रत्येक तमाशा दिखानेका पांच पण टैक्स राजाको देवे ॥ ३९ ॥ रूपसे आजीविका करने वाली गणिका, अपनी मासिक आमदनीकी औसतमेंसे दो दिनकी आमदनी, राजाको कर रूपमें देवें । तात्पर्य यह है, कि महीने भरमें जितनी भी आमदनी हो, उसको प्रत्येक दिन पर बराबर २ बांटकर, दो दिनका जो कुछ बने, उतनाही टैक्स राजाको दिया जावे ॥ ४० ॥

गीतवाद्यपाठ्यनृत्तनाट्याक्षरचित्रवीणावेणुमृदङ्गपरचित्तज्ञान-गन्धमाल्यसंयूहनसंपादनसंवाहनवैशिककलाज्ञानानि गणिका दासी रङ्गोपजीविनीश्च ग्राहयतो राजमण्डलादाजीवं कुर्यात् ॥४१॥

गाना, बजाना, नाचना, अभिनय करना, लिखना, चित्रकारी करना, वीणा वेणु तथा मृदङ्गको विशेष रीतिसे बजाना, दूसरेके चित्तको पहचानना, गन्धोंका बनाना, मालाओंका गूंथना, (गन्धसंयूहनं, माल्यसम्पादनं), पैर आदि अंगोंका दबाना (संवाहन) शरीरकी हर तरहसे वेशभूषा आदि करना, तथा चौंसठ कलाओंमेंसे अन्य आवश्यक कलाओंको; गणिका, दासी (गणिकाओंसे अतिरिक्त अन्य साधारण वेश्यायें), तथा रङ्गमञ्च (स्टेज) पर अभिनय करके जीविका करने वाली स्त्रियोंके लिये सिखाने वाले आचार्यकी वृत्ति (निर्वाह) का प्रबन्ध, राजा, राजमण्डल (नगर तथा ग्रामोंसे आने वाली आय) से करे ॥ ४१ ॥

गणिकापुत्रान्रङ्गोपजीविनश्च मुख्यान्निष्पादयेयुः सर्वतालावचाराणां च ॥ ४२ ॥

गणिकाओंके पुत्रों तथा मुख्य रङ्गोपजीवियों (रंग मंचपर अभिनय आदि करके जीविका करने वाले मुख्य नटों) को अन्य सब रंगोपजीवियोंका (सर्वतालावचाराणां) प्रधान बनाया जावे । अर्थात् ये, सबके आचार्यस्थानीय रहकर कार्योंको करें ॥ ४२ ॥

संज्ञाभाषान्तरज्ञाश्च स्त्रियस्तेषामनात्मसु ।
चारघातप्रमादार्थं प्रयोज्या बन्धुवाहनाः ॥ ४३ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे गणिकाध्यक्षः सप्तविंशो ऽध्यायः ॥ २७ ॥
आदितो ऽष्टचत्वारिंशः ॥ ४८ ॥

तरह २ के इशारे और भिन्न २ भाषाओंको जानने वाली, उन रंगोपजीवियोंकी स्त्रियां, राजाके द्वारा धन आदि देकर वशमें किये हुए, उनके (उन स्त्रियोंके) बन्धु बान्धवोंसे राजाकी आज्ञानुसार कार्योंमें प्रवृत्त कीहुई; अजितेन्द्रिय दूष्य पुरुषोंमें शत्रुओंके द्वारा भेजे हुए गुप्तचरोंके मारनेके लिये अथवा उनको विषयोंमें आसक्तकर प्रमादी बनानेके लिये प्रयुक्त की जावें । तात्पर्य यह है कि राजा, रङ्गोपजीवियोंको यथेच्छ धन आदि देकर उनको वशमें करके, उनकी स्त्रियोंको, शत्रुके गुप्तचरोंके वध करने तथा उनको प्रमादी बनानेके कामपर नियुक्त करे, जिससे कि वे अपने कार्यको यथाविधि न कर सकें ॥४३॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें सत्ताईसवां अध्याय समाप्त ।

अट्ठाईसवां अध्याय।

४५ प्रकरण।

नावध्यक्ष।

नौकाओंके टैक्स आदिको वसूल करने वाला, राजकीय पुरुष 'नावध्यक्ष' कहाता है। उसके सब कार्योंका इस प्रकरणमें निरूपण किया जायगा।

नावध्यक्षः समुद्रसंयाननदीमुखतरप्रचारान्देवसरोविसरोनदीतरांश्च स्थानीयादिष्ववेक्षेत ॥ १ ॥ तद्वेलाकूलग्रामाः क्लृप्तं दद्युः ॥ २ ॥

नावध्यक्षको चाहिये, कि वह समुद्र तटके समीपके, नदी और समुद्रके संगमके नौमार्गोंको; तथा बड़ी २ झील, तालाब और नदियोंके नौमार्गोंको (नाव चलानेके मार्गोंको), स्थानीय, द्रोणमुख आदि स्थानोंमें अच्छीतरह देखता रहे, (स्थानीय तथा द्रोण-मुख आदिका विवरण, देखो तीसरे अधिकरणका पहिला सूत्र); अर्थात् इन मार्गोंका प्रबन्ध और निरीक्षण बराबर करता रहे ॥ १ ॥ समुद्र, झील या नदी आदिके किनारेपर बसे हुए गांव, राजाको कुछ नियत टैक्स देवें। (क्योंकि यहांके लोग नाव आदिसे निरन्तर व्यापार कर सकते हैं; यदि ये लोग कुछ न देंगे, तो जनपदके अन्य नाविक व्यापारी किस प्रकार देनेको तैयार होसकेंगे; इसलिये किनारेके गांव सदाही कुछ नियतकर देते रहें ॥ २ ॥

मत्स्यबन्धका नौकाभाटकं षड्भागं दद्युः ॥ ३ ॥ पत्तनानुवृत्तं शुल्कभागं वणिजो दद्युः ॥ ४ ॥ यात्रावेतनं राजनौभिः संपतन्तः ॥ ५ ॥ शङ्खमुक्ताग्राहिणो नौभाटकं दद्युः ॥ ६ ॥ स्वनौभिर्वा तरेयुः ॥ ७ ॥

मछियारे (मछली मारने वाले), अपनी आमदनी(मछली आदि जो कुछ पकड़ें, उस) का छठा हिस्सा, सरकारी नावपर आने जानेका भाड़ा देवें ॥ ३ ॥ समुद्र आदिके तटपर बसे हुए व्यापारी नगरोंके (अथवा बन्दरगाहोंके) नियमके अनुसार ही, बनिये अपने मालके मूल्यका पांचवां या छठा हिस्सा राजकीय शुल्क (सरकारी टैक्स) देवें॥४॥ सरकारी नावोंसे अपना माल लाने लेजानेपर, उसका भाड़ा अलहदा नियमानुसार देवें ॥५॥ इसी प्रकार शंख और मोती आदिको समुद्रसे

निकालने वाले व्यापारी, नावका भाड़ा देवें; (यहांपर कितना भाड़ा देवें, इसका कोई निर्देश नहीं है, इस लिये उनके मालके मूल्यका पांचवां या छठा हिस्साही भाड़ा समझना चाहिये) ॥ ६ ॥ अथवा अपनी नावोंसे ही तरें; अर्थात् सरकारी नावोंका उपयोग न कर अपना नावोंसे ही सब काम लेवें॥७॥

अध्यक्षश्चैषां खन्यध्यक्षेण व्याख्यातः ॥ ८ ॥ पत्तनाध्यक्षनिबन्धं पण्यपत्तनचारित्रं नावध्यक्षः पालयेत् ॥ ९ ॥

शंख तथा मोती आदिके विषयमें, खन्यध्यक्षके समान ही नावध्यक्षका कार्य समझना चाहिये । अर्थात् जिस प्रकार खन्यध्यक्ष, खानमें उत्पन्न होने वाली वस्तुओंके व्यापार आदिका पूरा प्रबन्ध करता है, इसी प्रकार नावध्यक्ष भी मछली, शंख, मोती आदि सामुद्रिक वस्तुओंके व्यापार आदिका पूरा प्रबंध करे ॥ ८ ॥ पत्तनाध्यक्ष (नगराध्यक्ष) के नियत किये हुए, व्यापारी नगरके नियमोंको (अथवा बन्दरगाह सम्बन्धी नियमोंको) नावध्यक्ष पूरे तौरपर पालन करे । अर्थात नगरमें आकर नागरिक नियमोंका उल्लंघन कदापि न करे ॥ ९ ॥

मूढवाताहतानां पितेवानुगृह्णीयात् ॥ १० ॥ उदकप्राप्तं पण्यमशुल्कमर्धशुल्कं वा कुर्यात् ॥ ११ ॥

दिग्भ्रम होजानेसे अथवा तूफान आदिके कारण, नष्ट होती हुई नावको, पिताके समान अनुग्रह करके बचावे ॥ १० ॥ जलके कारण खराब हुए २ मालपर (अर्थात् जिस मालमें जलके कारण व्यापारीका नुक्सान होगया हो, ऐसे मालपर) शुल्क (सरकारी टैक्स) न लेवे; अर्थात् उसका शुल्क माफ़ करदेवे । अथवा हानिके अनुसार, उस मालपर आधा ही शुल्क लेवे ॥ ११ ॥

यथानिर्दिष्टाश्चैताः पण्यपत्तनयात्राकालेषु प्रेषयेत् ॥ १२ ॥ संयान्तीर्नावः क्षेत्रानुगताः शुल्कं याचेत ॥ १३ ॥ हिंस्रिका निर्घातयेत् ॥ १४ ॥ अमित्रविषयातिगाः पण्यपत्तनचारित्रोपघातिकाश्च ॥ १५ ॥

सर्वथा शुल्क रहित तथा आधे शुल्क वाली इन नावोंको, व्यापारिक नगरोंकी ओर यात्रा करनेके समयोंमें भेज देवे या छोड़देवे ॥ १२ ॥ चलती हुई नावोंको जब वे शुल्क स्थानसें पहुंचें, शुल्क मांगे । अर्थात् नावके चुंगीघरके पास पहुंचनेपर उनसे सरकारी चुंगी लेली जावे । तात्पर्य यह है, कि जो नाव बन्दरगाहसे गुज़र कर किसी अन्य स्थानपर जाने वाली है, उससे बन्दरगाहपर ठहरने या गुज़रनेकी चुंगी लेली जावे ॥ १३ ॥ जो नावें चोर और डाकुओंकी हों, उनको नष्ट करदिया जावे ॥ १४ ॥ तथा जो नाव, शत्रुके देशको जाने वाली हो, और व्यापारी नगरों या बन्दरगाहोंके नियमोंको उल्लंघन करने वाली हों, उनको भी नष्ट करदिया जावे ॥ १५ ॥

शासकनियामकदात्ररश्मिग्राहकोत्सेचकाधिष्ठिताश्च महानावो हेमन्तग्रीष्मतार्यासु महानदीषु प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥ क्षुद्रकाः क्षुद्रिकासु वर्षास्राविणीषु ॥ १७ ॥

शासक (नाव चलाने वालों में सब से बड़ा अधिकारी, जिसकी आज्ञा के अनुसार नाव चलाई जावे), नियामक (नाव चलाने वाला), दात्रग्राहक (दांती=रस्सी तथा लकड़ी आदि काटने के लिये आवश्यकतानुसार कोई साधन=हाथ में लेने वाला; नावों में इसकी भी काफी ज़रूरत पड़ती रहती है) रश्मिग्राहक (रस्सी या पतवार आदि पकड़ने वाला), और उत्सेचक (भीतर भरे पानी को बाहर उलीचने वाला), इन पांच कर्मचारियोंसे युक्त बड़ी २ नावों को ही, गर्मी और सरदी में एकरूप से बहने वाली गहरी और बहुत बड़ी २ सिन्धु आदि नदियों में प्रयुक्त किया जावे। अर्थात् बड़ी नदियों में बड़ी नावों के चलने की ही आज्ञा दी जावे ॥ १६ ॥ केवल बरसात में बहने वाली (अर्थात् बरसाती) छोटी २ नदियों के लिये छोटी नावों का पृथक् प्रबन्ध किया जावे ॥ १७ ॥

बद्धतीर्थाश्चैताः कार्या राजद्विष्टकारिणां तरणभयात् ॥१८॥ अकालेऽतीर्थे च तरतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ १९ ॥ काले तीर्थे चानिसृष्टतारिणः पादोनसप्तविंशतिपणः तरात्ययः ॥ २० ॥

इन नावों के बन्दरगाहों की बहुत सावधानता से निगरानी रक्खी जावे। तात्पर्य यह है, कि प्रथम तो हर एक नावके ठहरने के स्थान (स्टेशन) नियत होवें, और दूसरे जब नाव वहां ठहरे तब उनपर पूरा ध्यान रक्खा जावे; जिससे कि कोई भी राजा के साथ द्वेष करने वाला, अथवा शत्रु के भेजे हुए तीक्ष्ण और रसद आदि पुरुष, नावों से इधर उधर पार न आ जा सकें ॥ १८ ॥ इसीलिये यदि कोई नाव वाला असमय (नाव के आने जानेके नियत समयके अतिरिक्त समयमें) या बिना ही घाट (बन्दरगाह) के नदी आदि को पार कर रहा हो, तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ १९ ॥ और ठीक समय में तथा घाट पर भी, बिना आज्ञा के नाव को पार लेजाने वाले व्यक्ति को पौने सत्ताईस २६¾ पण दण्ड दिया जावे ॥ २० ॥

कैवर्तकाष्ठतृणभारपुष्पफलवाटषण्डगोपालकानामनत्ययः सम्भाव्यदूतानुपातिनां च सेनाभाण्डप्रचारप्रयोगाणां च ॥ २१ ॥ स्वतरणैस्तरताम् ॥ २२ ॥ बीजभक्तद्रव्योपस्करांश्चानूपग्रामाणां तारयताम् ॥ २३ ॥

धींवर (मछली आदि मारने वाले), लकड़हारे, घसियारे, माली, कूंजड़े, खेतों की रखवाली करने वाले, ग्वाले; चोर आदिकी शंका से किसीके पीछे जाने वाले (सम्भाव्यानुपातिनां), राजदूत के पीछे शेष कार्य को पूरा करने के लिये जाने वाले (दूतानुपातिनां), सेना, सैनिकसामग्री, तथा गुप्तचर पुरुषोंको, असमय में या बिना घाट के ही नदी पार करनेपर भी कोई दण्ड न दिया जावे ॥ २१ ॥ इसीप्रकार जो अपनी ही नावों से नदी आदि पार करें, उनसे भी किसी तरहका दण्ड न लिया जाय ॥ २२ ॥ तथा जलमय प्रदेशों में बसे हुए गावों के; बीज (बोनेके लिये धान आदि के बीज), भक्त (कर्मचारी पुरुषोंके खाने के लिये भक्ष्य द्रव्य), अन्य द्रव्य (फूल, फल शाक आदि), और उपस्कर (मसाला आदि), इत्यादि पदार्थों को पार लेजाने वाले पुरुषोंको भी किसी प्रकारका दण्ड न दिया जाय। अर्थात् ऐसे गावों में इन उपर्युक्त पदार्थोंको असमय तथा बिना घाटके भी लेजाया जासकता है ॥ २३ ॥

ब्राह्मणप्रव्राजितबालवृद्धव्याधितशासनहरगार्भिण्यो नावध्यक्षमुद्राभिस्तरेयुः ॥ २४ ॥ कृतप्रवेशाः पारविषयिकाः सार्थप्रमाणाः प्रविशेयुः ॥ २५ ॥

ब्राह्मण, संन्यासी, बालक, वृद्ध, बीमार, शासनहर (राजाका एलची, राजाकी आज्ञाको दूसरी जगह लेजाने वाला), तथा गर्भवती स्त्री, इनको नावध्यक्षकी मुहर देखकर ही पार कर दिया जावे। अर्थात् नदी आदि पार करनेका भाड़ा इनसे न लिया जाय ॥ २४ ॥ परदेश से आनेवाले जिन लोगों ने, देशमें आनेकी अनुमति प्राप्त करली है, अथवा जो अनुमति प्राप्त कियेहुए व्यापारी पुरुषोंके साथ हैं, वे ही लोग देशमें प्रवेश कर सकते हैं ॥ २५ ॥

परस्य भार्यां कन्यां वित्तं वापहरन्तं शङ्कितमाविग्नमुद्भाण्डीकृतं महाभाण्डेन मूर्ध्नि भारेणावच्छादयन्तं सद्योगृहीतलिङ्गिनमलिङ्गिनं वा प्रव्राजितमलक्ष्यव्याधितं भयविकारिणं गूढसारभाण्डशासनशस्त्राग्नियोगं विषहस्तं दीर्घपथिकममुद्रं चोपग्राहयेत् ॥२६॥

किसीकी स्त्री, कन्या तथा धनका अपहरण करने वाले पुरुषको, आगे कहे हुए शङ्कित आदि चिन्होंसे पहिचानकर गिरफ्तार करलिया जावे; वे चिन्ह इस प्रकार हैं:—शङ्कित अर्थात् उस आदमीका चौकन्ना सा होना, घबराया हुआ होना, शक्तिसे बहुत अधिक बोझा उठायेहुए होना, सिरपर बहुत फैलेहुए पुराल या घास आदिके बोझसे मुंह आदिको ढकेहुए होना, जल्दी

संन्यासीका वेश बनालेना, या तत्काल ही संन्यासी वेशको छोड़कर सादा वेश करलेना, बीमारीके चिन्ह मालूम न होनेपर भी बीमार होनेका बहाना करना, भयके कारण मुख आदिका विकृत होना, बहुमूल्य रत्न आदि द्रव्योंका बहुत छिपाना, किसी गुप्त लेख आदिका रखना, छिपे तौरपर हथियार रखना, छिपे तौरपर ही अग्नियोग (औपनिषदिक प्रकरणमें बताया हुआ ऐसा प्रयोग, जिसका कि कोई प्रतीकार नहीं किया जासकता) आदिका रखना, हाथ में जहरका रखना, बहुत दूरका सफर करना तथा अन्तपाल से पास लिये बिना ही सफर करना, इत्यादि चिन्होंसे अनुमान करके, स्त्री आदिके अपहरण करने वाले पुरुषको गिरफ्तार करलिया जावे ॥ २६ ॥

क्षुद्रपशुर्मनुष्यश्च सभारो माषकं दद्यात् ॥ २७ ॥ शिरोभारः कायभारो गवाश्वं च द्वौ ॥ २८ ॥ उष्ट्रमहिषं चतुरः ॥ २९ ॥ पञ्च लघुयानम् ॥ ३० ॥ षड् गोलिङ्गम् ॥ ३१ ॥ सप्त शकटम् ॥ ३२ ॥ पण्यभारः पादम् ॥ ३३ ॥

अब नदी आदि पार करनेका कितना भाड़ा होना चाहिये, यह बताया जाता है:—भेड़ बकरी आदि छोटे जानवर और मनुष्यका जिसके पास केवल हाथमें उठाने योग्य बोझा हो, एक माषक भाड़ा दिया जावे ॥ २७ ॥ सिरसे तथा पीठ आदिसे उठाने योग्य बोझा से युक्त पुरुषका, और गाय घोड़ा आदि पशुओंका दो माषक भाड़ा दिया जावे ॥२८॥ ऊंट और भैंसका चार माषक ॥२९॥ छोटीसी गाड़ी आदिका पांच माषक ॥३०॥ मध्यम दरजेकी गाड़ीका छः माषक ॥ ३१ ॥ बड़ी बैलगाड़ीका सात माषक ॥ ३२ ॥ बीस तुला बोझका ¼ पण भाड़ा दिया जावे ॥ ३३ ॥

तेन भाण्डभारो व्याख्यातः ॥ ३४ ॥ द्विगुणो महानदीषु तरः ॥ ३५ ॥ क्लृप्तमानूपग्रामा भक्तवेतनं दद्युः ॥ ३६ ॥

इसीके अनुसार, भैंसे ऊंट आदिपर ढोये जाने वाले बोझका भी भाड़ा समझ लेना चाहिये; अर्थात् प्रत्येक भारका एक एक माषक भाड़ा दिया जावे ॥ ३४ ॥ बहुत बड़ी २ नदियों में, इससे दुगना भाड़ा होना चाहिये; अर्थात् जिसका जितना भाड़ा बताया गया है वह उससे दुगना भाड़ा देवे ॥ ३५ ॥ जलमय प्रदेशोंमें बसेहुए गावोंके लोग; सरकारी टैक्सके अलावा कुछ नियत भत्ता और वेतन नाविक पुरुषोंको भी देवें ॥ ३६ ॥

प्रत्यन्तेषु तराः शुल्कमातिवाहिकं वर्तनीं च गृह्णीयुः ॥३७॥ निर्गच्छतश्चामुद्रद्रव्यस्य भाण्डं हरेयुः ॥ ३८ ॥ अतिभारेणावेलायामतीर्थे तरतश्च ॥ ३९ ॥

पार कराने वाले राजकर्मचारी पुरुष, सीमा प्रदेशोंमें, व्यापारियोंसे, मार्ग आदिका शुल्क तथा अन्तपालको दिये जाने वाला शुल्क ग्रहण करें ॥ ३७ ॥ जो व्यापारी मालपर विना ही मुहर लगवाये निकल जावे, उसका सम्पूर्ण माल ज़ब्त करलिया जावे ॥ ३८ ॥ तथा जो अत्यधिक बोझके साथ (एक आदमीको जितना बोझा लेजानेका नियम है, उससे बहुत अधिक बोझा लेकर) असमयमें और विनाही घाटके नदीको पार करे, उसका भी सम्पूर्ण माल ज़ब्त करलिया जावे ॥ ३९ ॥

पुरुषोपकरणहीनायामसंस्कृतायां वा नावि विपन्नायां नावध्यक्षो नष्टं विनष्टं वाभ्यावहेत् ॥ ४० ॥

पुरुष (शासक, नियामक आदि), तथा अन्य आवश्यक साधनोंसे हीन, और असंस्कृत (मरम्मत आदि न कराई हुई) सरकारी नावके डूब जाने या नष्ट होजानेपर, नावध्यक्षको चाहिये, कि वह नष्ट हुए २ या जल आदिसे बिगड़े हुए मालको अपनी ओरसे देकर नुक्सानको पूरा करे ॥ ४० ॥

सप्ताहवृत्तामाषाढीं कार्तिकीं चान्तरा तरन् ।
कार्मिकप्रत्ययं दद्यान्नित्यं चाह्निकमावहेत् ॥ ४१ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे नावध्यक्ष अष्टाविंशो ऽध्यायः ॥ २८ ॥

आदितः एकोनपञ्चाशः ॥ ४९ ॥

आषाढ़ पूर्णमासीके एक सप्ताह बादसे लगाकर कार्तिक पूर्णमासीके एक सप्ताह बाद तक, अर्थात् इतने समयके बीचमें नावोंके तरनेका टैक्स लिया जाय, (यह समय वर्षा ऋतुका बताया गया है, इसलिये यह केवल बरसाती नदियोंके लिये ही समझना चाहिये । सदा बहने वाली नदियोंमें तो टैक्स हमेशा ही लेना चाहिये) । प्रत्येक नाविक (नौकाका प्रधान संचालक=शासक पुरुष) को चाहिये, कि वह प्रतिदिनके कार्यकी सूचना नावध्यक्षको देवे, और जो कुछ नावका दैनिक भाड़ा आवे, वह भी नावध्यक्षको देवे ॥ ४१ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त ।

उन्तीसवां अध्याय।

४८ प्रकरण।

गोऽध्यक्ष।

[गो शब्दसे यहांपर भैंस आदिका भी ग्रहण करलेना चाहिये; इनका निरीक्षण तथा पालन आदिका प्रबन्ध करने वाले प्रधान राजकर्मचारीका नाम 'गोऽध्यक्ष' है। इस प्रकरणमें इसहीके कार्योंका निरूपण किया जायगा।

गोऽध्यक्षो वेतनोपग्राहिकं करप्रतिकरं भग्नोत्सृष्टकं भागानुप्रविष्टकं व्रजपर्यग्रं नष्टं विनष्टं क्षीरघृतसंजातं चोपलभेत ॥ १ ॥

गोध्यक्षको चाहिये कि वह वेतनोपग्राहिक, करप्रतिकर, भग्नोत्सृष्टक, भागानुप्रविष्टक, व्रजपर्यग्र, नष्ट, विनष्ट, और क्षीरघृतसञ्जात, इन आठोंको प्राप्त करे, अर्थात इनको अपने अधीन करे। अगले सूत्रोंमें इन आठोंका क्रमपूर्वक विधान किया जाता है:—॥ १ ॥

गोपालकपिण्डारकदोहकमन्थकलुब्धकाः शतं शतं धेनूनां हिरण्यभृताः पालयेयुः ॥ २ ॥ क्षीरघृतभृता हि वत्सानुपहन्युरिति वेतनोपग्राहिकम् ॥ ३ ॥

गोपालक (गौओं को पालनेवाले), पिण्डारक (भैंसोंको पालनेवाले), दोहक (गाय आदिको दुहनेवाले), मन्थक (दही आदि मथन करनेवाले), और लुब्धक (जंगलोंमें हिंसक प्राणियोंसे गाय आदिकी रक्षा करने वाले), ये पांच २ आदमी मिलकर सौ सौ गाय आदिको पालन करें। अर्थात् प्रत्येक सौ गाय या भैंसोंकी रक्षा आदिके लिए ये उपर्युक्त पांच २ आदमी नियुक्त किए जावें। इनको वेतन नकद या अन्न वस्त्रादिके रूपमें दिया जावे, गायोंके घी, दूध दही आदिमें इनका कोई हिस्सा न रहे ॥ २ ॥ क्योंकि दूध घी आदिमें इनका हिस्सा होनेपर, ये लोग बछड़े आदिको मारडालें, (तात्पर्य यह है, कि ऐसी अवस्थामें ये लोग दूध और घीके लोभसे बछड़ोंको न देकर स्वयं सब दूध लेलें, और इसप्रकार बछड़ोंको कृश करके नष्ट करदें)। गाय आदिकी रक्षाके इस उपायका नाम 'वेतनोपग्राहिक' है। (क्योंकि इसमें कर्मचारियोंको केवल शुष्क वेतन देकर ही गाय आदिकी रक्षा कराई जाती है) ॥ ३ ॥

जरद्दुधेनुगर्भिणीप्रष्ठौहीवत्सतरीणां समविभागं रूपशतमेकः पालयेत् ॥ ४ ॥ घृतस्याष्टौ वारकान्पणिकं पुच्छमङ्कचर्म च वार्षिकं दद्यादिति करप्रतिकरः ॥ ५ ॥

बूढ़ी, दूध देने वाली, ग्याभन, पठोरी, वत्सतरी (जिसने अभी २ दूध चोंखना छोड़ा है), इन पांच प्रकारकी गायोंको बराबर २ मिलाकर पूरा सौ करदिया जावे; अर्थात् हर तरहकी बीस २ गायोंको इकट्ठा करदिया जावे, और उनका पालन किसी एक व्यक्तिसे कराया जावे । तात्पर्य यह है, कि इसप्रकार सौ सौ गायोंका, एक २ आदमीको एक प्रकारसे ठेका देदिया जावे ॥ ४ ॥ और इसके बदलेमें वह आदमी, गौओंके मालिकको प्रतिवर्ष आठ वारक घी, (घी के तोलनेमें चौरासी कुडुवका एक वारक होता है; देखो अधि. २, अध्या. १९, सूत्र ५७); प्रत्येक पशुके लिये एक एक पण ('पणिकं पुच्छम्' इसका तात्पर्य यही है, कि एक पूंछके पीछे एक पण वार्षिक; अर्थात् एक पशुका एक पण वार्षिक; इसप्रकार सौ गायोंके सौ पण वार्षिक होगये); और राजकीय मुद्रासे मुद्रित मरे हुए पशुका एक अदद चमड़ा देवे । अर्थात् आठ वारक घी, सौ पण और एक चमड़ा मालिकको देवे । शेष सब आमदनी उसकी अपनी समझी जावे । गौओंकी रक्षाके इस उपायको 'करप्रतिकर' कहते हैं ॥ ५ ॥

व्याधितान्यङ्गानन्यदोहीदुर्दोहापुत्रघ्नीनां च समविभागं रूपशतं पालयन्तस्तज्जातिकं भागं दद्युरिति भग्नोत्सृष्टकम् ॥ ६ ॥

बीमार, अङ्गविकल (कानी, बूची, लंगड़ी आदि), अनन्यदोही (अन्य किसीसे न दुही जाने वाली, अर्थात् जिनको एकही आदमी दुह सके), दुर्दोहा (जो पैर आदि बांधकर मुश्किलसे दुही जावें), और पुत्रघ्नी (जिनका बछड़ा आदि मर जावे, या जो तूपड़े); इन पांच प्रकारकी गायोंको भी पहिलेकी तरह बराबर २ मिलाकर पूरा सौ करदिया जावे, और उनको भी उसी प्रकार किसी व्यक्तिको पालनेके लिये देदिया जावे, उनको पालने वाले पुरुष पहिलेकी तरह ही, उन गायोंकी हैसियतके अनुसार पूर्वोक्त घी आदिका आधा हिस्सा अथवा तिहाई हिस्सा जितना भी उचित हो, उतना ही राजकीय अंश अपने अध्यक्ष को देवें । गाय आदिकी रक्षाके इस उपायका नाम 'भग्नोत्सृष्टक' है ॥ ६ ॥

परचक्राटवीभयादनुप्रविष्टानां पशूनां पालनधर्मेण दशभागं दद्युरिति भागानुप्रविष्टकम् ॥ ७ ॥

शत्रुओंके छल करनेके तथा आटविकों (वनचरों=जङ्गली पुरुषों) के अपहरण करनेके भयसे, जो गोपालक अपनी गायोंको सरकारी बाड़ेमें प्रविष्ट

करदें; उन प्रविष्ट हुई २ गायोंके पालनेके अनुसार ही वे गोपालक दसवां हिस्सा राजाको देवें तात्पर्य यह है, कि जब किसी बाहरी डरसे गोपालक अपनी गायोंको सरकारी चरागाहमें ही रक्खें, तो वे उन गायोंकी आमदनीका दसवां हिस्सा राजाको अवश्य देवें। गाय आदिकी रक्षाके इस उपायको 'भागानुप्रविष्टक' कहते हैं ॥ ७ ॥

वत्सा वत्सतरा दम्या वहिनो वृषा उक्षाणश्च पुङ्गवाः, युगवाहनशकटवहा वृषभाः सूना महिषाः पृष्ठस्कन्धवाहिनश्च महिषाः वत्सिका वत्सतरी प्रष्ठौही गर्भिणी धेनुश्चाप्रजाता वन्ध्याश्च गावो महिष्यश्च, मासद्विमासजातास्तासामुपजा वत्सा वत्सिकाश्च, मासद्विमासजातानङ्कयेत् ॥ ८ ॥ मासद्विमासपर्युषितमङ्कयेत् ॥ ९ ॥ अङ्कं चिह्नं वर्णं शृङ्गान्तरं च लक्षणमेवमुपजा निबन्धयेदिति व्रजपर्यग्रम् ॥ १० ॥

बछड़ा (छोटा बछड़ा=दूध चोंखने वाला), वत्सतर (बड़ा बछड़ा=जिसने दूध चूंखना छोड़ दिया हो), दम्य (खेलटा=जो कृषि आदिमें काम सीखने योग्य हो), बोझ ढोने वाले सांड (बिजार), और हल आदि चलानेके कामों पके हुए, ये छः प्रकारके पुङ्गव (अर्थात् पुरुष रूप गाय=बैल) होते हैं। जुआ, हल तथा गाड़ी आदिमें चलाने वाले, सांड (जो भैंसा दाग लगाकर अच्छी नसल बनानेके लिये छोड़ दिये जाते हैं, बैलोंकी तरह उन भैंसाओंको भी सांड या भैंसा सांड कहा जाता है), केवल मांसके लिये उपयोगमें आने वाले (सूना महिषाः), और अपनी पीठ तथा कन्धेपर बोझ ढोने वाले, ये चार प्रकारके भैंसे होते हैं। बछड़ी (छोटी बछड़ी=दूध चूंखने वाली), वत्सतरी (बड़ी बछड़ी=जिसने दूध चूंखना अभी छोड़ा हो), पठोरी (जो ग्याभन होनेकी अभिलाषा करती हो), ग्याभन, दूध देने वाली, अधेड़ उमरकी (अप्रजाता=अभी तक जिन गायोंकी प्रजनन शक्ति नष्ट न हुई हो, ऐसी), और बांझ, ये सात प्रकारकी गायें और भैंसें होती हैं। उनके दो महीने या एक महीनेके लगभग पैदा हुए २ वत्स और वत्सिकाओं (बछड़ा, बछड़ी या कटड़ा, कटियाओं) को 'उपजा' (अर्थात् लवारा) कहते हैं। महीने या दो महीनेके लवारोंको ही, तपे हुए लोहे आदिके छल्लेसे दाग दिया जावे ॥८॥ तथा जो गाय आदि सरकारी चरागाहमें महीना दो महीना तक रहें (जिनका कथन पिछले सातवें सूत्रमें किया गया है) चाहे उनके मालिकोंका पता लगे या न लगे, उनको भी गोध्यक्ष दगवा देवे ॥ ९ ॥ स्वाभाविक स्वस्तिक आदिका चिह्न

(बछड़ा बछड़ीके माथे आदिपर जो स्वाभाविक टीकासा हो, उसके लिये यहां 'अङ्क' शब्दका प्रयोग हुआ है), छले आदिके दागनेका बनावटी चिन्ह, रंग और सींगोंकी विशेषता; इसप्रकार लवारोंके इन विशेष चिन्होंको गोध्यक्ष अपनी पुस्तकमें लिख लेवे। तात्पर्य यह है कि पैदा होनेके बाद दो महीने तक बछड़े आदि सब लवारोंका पूरा हुलिया सरकारी किताबोंमें दर्ज करादिया जावे। गाय आदिकी रक्षाके इस उपायको 'व्रजपर्य्यग्र' कहते हैं ॥ १० ॥

चोरहृतमन्ययूथप्रविष्टमवलीनं वा नष्टम् ॥ ११ ॥ पङ्कविषमव्याधिजरातोयाधारावसन्नं वृक्षतटकाष्ठशिलाभिहतमीशानव्यालसर्पग्राहदावाग्निविपन्नं विनष्टं प्रमादादभ्यावहेयुः ॥१२॥ एवं रूपाग्रं विद्यात् ॥ १३ ॥

नष्ट गोधन तीन प्रकारका होता है, चोरोंसे अपहरण किया हुआ, दूसरे गिरोहमें मिल गया हुआ, और जंगलमें अपने गिरोहसे भटका हुआ। गाय आदिकी इस अवस्थाको 'नष्ट' कहते हैं। (गोध्यक्षको ऐसे पशुओंका भी प्रबन्ध करना चाहिए) ॥ ११ ॥ कीचड़में फंसने, ढांग आदिसे या गढ़ेमें गिरने, बीमारी, बुढ़ापा, जल प्रवाह और आहार आदिके ठीक न होनेसे नष्ट हुई २; ऊपरसे वृक्ष गिर जानेसे, ढांगके खिसक जानेसे, बहुत बड़े शहतीर या शिला आदिके गिर जानेसे चोट खाई हुई या नष्ट हुई २; इसी प्रकार बिजली आदिके गिरनेसे, हिंसक व्याघ्र आदि प्राणियोंसे आक्रान्त, सांप, जल के जानवर नाकू आदि तथा जंगलकी आगसे नष्ट हुई २ गाय आदि को 'विनष्ट' कहा जाता है। यदि इस प्रकार गाय आदि का विनाश, ग्वालोंकी असावधानता के कारण होवे, तो वे लोग इस हानिको पूरा करें ॥ १२ ॥ गोध्यक्ष, इस रीतिसे गाय आदिके विषय में पूरी जानकारी रक्खे ॥ १३ ॥

स्वयं हन्ता घातयिता हर्ता हारयिता च वध्यः ॥ १४ ॥ परपशूनां राजाङ्केन परिवर्तयिता रूपस्य पूर्वं साहसदण्डं दद्यात् ॥ १५ ॥

जो ग्वाला आदि, स्वयं गाय आदिको मारे या किसीसे मरवावे, अथवा स्वयं हरण करे, या किसीसे हरण करवावे, तो उसे प्राण दण्ड दिया जावे ॥ १४ ॥ जो गाय आदि पशु सरकारी नहीं हैं; उनपरभी यदि कोई कर्मचारी सरकारी चिन्ह लगाकर उनके रूपको बदल देवे; तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ १५ ॥

स्वदेशीयानां चोरहृतं प्रत्यानीय पणिकं रूपं हरेत् ॥ १६ ॥ परदेशीयानां मोक्षयितार्धं हरेत् ॥ १७ ॥ बालवृद्धव्याधितानां गोपालकाः प्रतिकुर्युः ॥ १८ ॥

चोरों से अपहरण किये हुए अपने ही देशके पशुओंको, जो पुरुष उनसे वापस लाकर मालिक को देवे, वह प्रति पशुके पीछे एक पण, मालिकसे ले लेवे ॥ १६ ॥ इसी प्रकार परदेशके पशुओंको चोरोंसे छुड़ाकर लानेपर, उनको छुड़वाने वाला मालिक पशुओंका आधा हिस्सा ही ले सकता है; और आधा हिस्सा वह ले लेवे जो पशुओंको चोरोंसे छुड़ाकर लाया है ॥ १७ ॥ गोपालोंको चाहिये, कि वे बालपशु (छोटे २ बछड़े आदि पशु), बीमार, और बूढ़े पशुओंको (जिनमें कि थोड़ी भी विपद् सहनेकी शक्ति नहीं रहती, ऐसे बाल आदि जानवरोंकी) विपत्तिका बराबर प्रतीकार करते रहें । अर्थात् उनको छोटेसे छोटे भी हर एक कष्टसे बचाते रहें ॥ १८ ॥

लुब्धकश्वगणिभिरपास्तस्तेनव्यालपरबाधभयमृतुविभक्तमरण्यं चारयेयुः ॥ १९ ॥ सर्पव्यालत्रासनार्थं गोचरानुपातज्ञानार्थं च त्रस्नूनां घण्टातूर्यं च बध्नीयुः ॥ २० ॥

शिकारियों, और कुत्तोंको रखने वाले बहेलियों के द्वारा, चोर, हिंसक प्राणी तथा शत्रुकी ओरसे होनेवाली बाधाओंके भयको सर्वथा दूर करके, ऋतु के अनुसार सुरक्षित जंगलोंमें ही, सब गोपाल अपनी २ गाओंको चरावें ॥ १९ ॥ सांप और हिंस्र प्राणियोंको डरानेके लिये, तथा गायोंके चरनेकी जगहको पहिचाननेके लिये, शब्द सुनकर ही घबड़ा जाने वाले पशुओंके गले में, एक लोहेका घण्टा या टल्ली सी बांध देवें । शब्दसे ही घबड़ाने वाले पशुओंके गले में यह इसीलिये बांधा जाता है, जिससे कि उनको शब्द सुननेकी आदत पड़जाय, और फिर वे घबड़ाकर इधर उधर न भागें) ॥२०॥

समव्यूढतीर्थमकर्दमग्राहमुदकमवतारयेयुः पालयेयुश्च ॥२१॥ स्तेनव्यालसर्पग्राहगृहीतं व्याधिजरावसन्नं चावेदयेयुरन्यथा रूपमूल्यं भजेरन् ॥ २२ ॥

जब पशुओंको कहीं पानी पीने और नहाने आदिके लियेपानीमें उतारना होवे, तो ऐसे ही स्थानोंपर उतारें, जहां बराबर तथा चौड़े घाट बने हों, दलदल न हो, तथा नाके आदि जलजन्तुओंका भय न हो । जब तक पशु पानी पीवें, या नहावें तब तक वहांपर गोपाल, उन पशुओंकी बड़ी

सावधानतापूर्वक जलजन्तु आदिसे रक्षा करें ॥ २१॥ गोपालोंको चाहिये, कि वे चोर, व्याघ्र, सांप और नाकू आदिसे पकड़े हुए पशुकी, तथा बीमारी और बुढ़ापेके कारण मरेहुए पशुकी तत्काल ही गोध्यक्षको सूचना दे देवें। अन्यथा नष्ट हुए २ प्रत्येक पशुकी पूरी कीमत देवें ॥ २२ ॥

कारणमृतस्याङ्कचर्म गोमहिषस्य कर्णलक्षणमजाविकानां पुच्छमङ्कचर्म चाश्वखरोष्ट्राणां वालचर्मवस्तिपित्तस्नायुदन्तखुरशृङ्गास्थीनि चाहरेयुः ॥ २३ ॥

वस्तुतः पशु मरगया है, इस बातका विश्वास दिलाने के लिये गोपाल, गोध्यक्षके पास लाकर गाय और भैंसका पहिले दागा हुआ चमड़ा दिखावें; इसी प्रकार बकरी और भेड़ों के चिन्हित कान लाकर दिखावें, घोड़ा गधा और ऊंटोंकी पूंछ तथा दागा हुआ चमड़ा दिखावें। मरेहुए पशुके बाल चमड़ा, वस्ति (मूत्राशय), पित्ता, स्नायु (आंत), दांत खुर, सींग और हड्डी, इन सब चीजोंका संग्रह करलें। (इनका संग्रह कुप्यागारके लिये होता है, वहांपर संगृहीत हुई २ ये चीजें यथावसर फिर काम आती रहती हैं ॥ २३ ॥

मांसमार्द्रं शुल्कं वा विक्रीणीयुः ॥ २४ ॥ उदश्विच्छ्ववराहेभ्यो दद्युः ॥ २५ ॥ कूर्चिकां सेनाभक्तार्थमाहरेयुः ॥ २६ ॥ किलाटो घाणापिण्याकक्लेदार्थः ॥ २७ ॥ पशुविक्रेता पादिकं रूपं दद्यात् ॥ २८ ॥

गीले अथवा सूखे कच्चे मांसको बेचदेवें ॥ २४ ॥ मठे (छाछ) को कुत्ते और सूअरोंके लिये देदिया जावे ॥ २५ ॥ कांजी (दूध या दहीको विकृत करके बनाई हुई एक विशेष खाद्य वस्तु) को सेनामें खानेके लिये लेआवें ॥ २६ ॥ किलाट अर्थात् फटेहुए दूधको, गाय भैंसोंकी सानी (गुतावा) को गीला करनेके काममें लायाजावे ॥ २७ ॥ पशुओंको बेचने वाला व्यापारी प्रत्येक पशुके पीछे ¼ पण अध्यक्षको देवे ॥ २८ ॥

वर्षाशरद्धेमन्तानुभयतः कालं दुह्युः ॥२९॥ शिशिरवसन्तग्रीष्मानेककालम् ॥ ३० ॥ द्वितीयकालदोग्धुरङ्गुष्ठच्छेदो दण्डः ॥ ३१ ॥

वर्षा (सावन, भादों), शरत (क्वार, कार्त्तिक), और हेमन्त (अगहन, पौष) ऋतुमें गाय और भैंसों को, सायं प्रातः दोनों समय दुहाजावे ॥ २९ ॥ तथा शिशिर (माघ, फाल्गुन), वसन्त (चैत, वैशाख),

और ग्रीष्म (जेठ असाढ़) ऋतुमें केवल एक समय ही (रात्रिमें ही) दुहा जावे ॥ ३० ॥ इन ऋतुओंमें जो पुरुष गाय आदिको दोनों समय दुहे उसका अंगूठा काट दिया जावे, यही उसका दण्ड है । (किसी २ प्राचीन व्याख्याकार ने लिखा है कि यह एक समयका दुहना किसी विशेष देशके लिये ही समझना चाहिये, क्योंकि अनेक देशोंमें, ग्रीष्म ऋतुमें भी दो २ तीन ३ बार गायोंका दुहाजाना देखा जाता है) ॥ ३१ ॥

दोहकालमतिक्रामतस्तत्फलहानं दण्डः ॥ ३२ ॥ एतेन नस्यदम्ययुगापिङ्गनवर्तनकाला व्याख्याताः ॥ ३३ ॥

जो पुरुष गाय आदिके दुहनेके समयका अतिक्रमण करे, अर्थात् ठीक समयपर आकर उन्हें न दुहे; तो उसे उस दिनका वेतन न दिया जावे ॥३२॥ इसी तरह बैलोंके नाथ डालनेवाले जो पुरुष ठीक समयपर आकर नाथ न डालें, नये बैलोंको सिखानेवाले उन्हें ठीक समयपर आकर न सिखावें, नये और पुराने बैलोंको एक साथ जुए आदिमें जोड़नेवाले ठीक समयपर आकर उन्हें न जोड़ें, और उन्हें एकसाथ मिलाकर चलाना सिखानेवाले, ठीक समयपर आकर चलाना न सिखावें, तो उन्हें भी उस दिनका वेतन न दिया जावे ॥३३॥

क्षीरद्रोणे गवां घृतप्रस्थः ॥ ३४ ॥ पञ्चभागाधिको महिषीणाम् ॥ ३५ ॥ द्विभागाधिकोऽजावीनाम् ॥ ३६ ॥ मन्थो वा सर्वेषां प्रमाणम् ॥ ३७ ॥ भूमितृणोदकविशेषाद्धि क्षीरघृतवृद्धिर्भवति ॥ ३८ ॥

एक द्रोण परिमाण गायके दूधमें से, एक प्रस्थ घी निकलता है ॥ ३४ ॥ भैंसके दूधमें से, इससे पांचवां हिस्सा अधिक निकलता है ॥ ३५ ॥ बकरी और भेड़के एक द्रोण परिमाण दूधमें से पांचके दो हिस्से अधिक एक प्रस्थ घी निकलता है ॥ ३६ ॥ वस्तुतः दहीको मथकर घी निकालने परही घीके ठीक परिमाणका निश्चय होता है । इसलिये ऊपर बताया हुआ परिमाण प्रायिकही समझना चाहिये ॥ ३७ ॥ क्योंकि विशेष २ भूमियोंमें, गाय आदिको खास तरहकी घास या पानी खिलाने पिलानेसे दूध और घीकी वृद्धि होजाती है; अथवा दूधमें घीकी वृद्धि होजाती है । (पहिले सूत्रमें गोध्यक्षके लिये आठ बातोंको बताया गया है, जिनपर वह अध्यक्षता करे । इनमें से आठवीं बात "क्षीरघृतसञ्जात" है । वेतनोपग्राहिक आदिकी तरह, नाम लेकर इसका पहिले किन्हीं सूत्रोंमें भी निरूपण नहीं किया गया । हमारे विचारमें चौंतीसवें सूत्रसे लगाकर यहां तक जो कुछ दूध और घीके

सम्बन्धमें कहा गया है, वह इसीका निरूपण समझना चाहिये ; अर्थात् उपर्युक्त परिमाणोंके अनुसार दूध घीको उत्पन्न करके अपने अधीन करना ; इसीका नाम "क्षीरघृतसञ्जत" समझना चाहिये । शब्दोंसे भी यही भाव प्रतीत होता है) ॥ ३८ ॥

यूथवृषं वृषेणावपातयतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३९ ॥ घातयत उत्तमः ॥ ४० ॥ वर्णावरोधेन दशतीरक्षा ॥ ४१ ॥

गाय आदि पशुओंके झुण्डमें रहनेवाले सांडको जो पुरुष किसी दूसरे सांडके साथ लड़ावे, तो उस पुरुषको प्रथमसाहस दण्ड दिया जावे ॥ ३९ ॥ जो उस सांडको मारे, उसे उत्तमसाहस दण्ड देना चाहिये ॥ ४० ॥ वर्णके अनुसार दस २ गाय आदिकी गणनासे भी सौ गायोंके झुण्डकी रक्षा की जावे । तात्पर्य यह है, कि एक २ वर्णकी दस २ गाय इकट्ठी कीजावें, इसी प्रकारके दस वर्गोंको मिलाकर सौ संख्या पूरी करके, उनको पहिलेकी तरह किन्हीं व्यक्तियोंको, रक्षाके लिये देदिया जावे ॥ ४१ ॥

उपनिवेशदिग्विभागे गोप्रचारान्बलान्वयतो वा गवां रक्षासामर्थ्याच्च ॥४२॥ अजादीनां षाण्मासिकीमूर्णां ग्राहयेत् ॥४३॥ तेनाश्वखरोष्ट्रवराहव्रजा व्याख्याताः ॥ ४४ ॥

गाय आदिके जंगलोंमें रहने और चरनेके लिये नियमित स्थानोंकी व्यवस्था, उनके चरनेके सुभीते, उनके गोलकी तादाद और उनकी रक्षाके सौकर्यको देखकरही होनी चाहिये ॥ ४२ ॥ बकरी और भेड़ आदिकी ऊन छः महीनेके बाद उतारली जावे ॥ ४३ ॥ गाय भैंसोंके अनुसारही घोड़े, गधे, ऊँट और सूअरोंके लिये भी उचित स्थानोंकी व्यवस्था कीजावे । तथा इनकी रक्षाके लिये भी यथासम्भव उपर्युक्त उपायोंकाही अवलम्बन किया जावे ॥४४॥

बलीवर्दानां नस्याश्वभद्रगतिवाहिनां यवसस्यार्धभारस्तृणस्य द्विगुणं तुला घाणपिण्याकस्य दशाढकं कणकुण्डकस्य पञ्चपलिकं मुखलवणं तैलकुडुबो नस्यं प्रस्थः पानं मांसतुला दध्नश्चाढकं यवद्रोणं माषाणां वा पुलाकः क्षीरद्रोणमर्धाढकं वा सुरायाः स्नेहप्रस्थः क्षारदशफलं शृङ्गिबेरपलं च प्रतिपानम् ॥ ४५ ॥

अब इस बातको निरूपण किया जाता है, कि किस तरहके बैल आदिको कितना २ खाना देना चाहिये । बैलोंमें से जो नथे हुए हों (अर्थात् जिनकी नाक बींधकर उसमें नाथ डालदी गई हो) और जो श्रेष्ठ घोड़ोंके

समान रथ आदिमें चलनेवाले हों, उनको आधा भार (दस तुला) हरेका (अर्थात् हरांघास आदिका), साधारण घास या भुस आदि इससे दुगना (अर्थात् बीस तुला), सानी (दाना, चोकर या अन्नसे युक्त भुस आदिक दस आढक, पांच पल नमक, तेलका एक कुडुब नाकमें औषधिरूपसे, तथा पीनेके लिये तैलका एक प्रस्थ, इतना सामान आहारके लिये दिया जाना चाहिये। मांसकी एक तुला (अर्थात् १०० पल), एक आढक दहीका, एक द्रोण जौओंका अथवा इसकी जगह इतनेही उड़द, इन सब चीजोंको मिलाकर इसका सांदा (आधा पकाकर ही बीचमेंही छोड़ा हुआ) बनाकर दिया जावे। दूध एक द्रोण, अथवा दूधके अभावमें आधा आढ़क सुरा, तैल अथवा घीका एक प्रस्थ, गुड़ दश पल, और सौंठ एक पल, इन चारों चीजोंको मिलाकर अग्निदीपन करनेके लिये बैलोंको पिलाया जावे ॥ ४५ ॥

पादोनमश्वतरगोखराणां द्विगुणं महिषोष्ट्राणां कर्मकरबलीवर्दानां पायनार्थानां च ॥ ४६ ॥ धेनूनां कर्मकालतः फलतश्च विधादानम् ॥ ४७ ॥ सर्वेषां तृणोदकप्राकाम्यमिति गोमण्डलं व्याख्यातम् ॥ ४८ ॥

इन सब चीजों में से चौथाई हिस्सा कम करके जितनी खुराक बने, वह खच्चर तथा बड़े गधों की समझनी चाहिये। अर्थात् खच्चरों और बड़े गधों को उतनी खुराक दी जावे। और उनसे (४५ वें सूत्र में बताये बैलों से) दुगनी खुराक भैंसों की, ऊंटों की, और खेतों में काम करने वाले बैलों की समझनी चाहिये। तथा दूध देने वाली गायों को भी खाने तथा पीने की दोनों तरह की खुराक दुगनी ही देनी चाहिये ॥ ४६ ॥ इसके अतिरिक्त काम करने वाले बैलों तथा दूध देने वाली गायों की खुराक के सम्बन्ध में बैलों के कार्य करने के समय और गायों के दूध आदि की अवस्था को जानकर उसके अनुसार ही इनकी खुराक दुगनी अथवा उससे भी अधिक समझनी चाहिये ॥४७॥ सब ही पशुओं को घास तथा जल आदि इच्छानुसार (जिसमें उनकी सर्वथा तृप्ति होसके इतना) देना चाहिये। यहां तक गाय आदि के सम्बन्ध में निरूपण कर दिया गया ॥ ४८ ॥

पञ्चर्षभं खराश्वानामजावीनां दशर्षभम् ।
शत्यं गोमहिषोष्ट्राणां यूथं कुर्याच्चतुर्वृषम् ॥ ४९ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे गोध्यक्ष एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥
आदितः पञ्चाशः ॥ ५० ॥

गधे और घोड़ों के सौके झुंड में पांच सांड छोड़ने चाहियें। भेड़ और बकरियों के सौके रेवड़ में दस सांडबकरे या मेंढे छोड़े जावें। गाय भैंस तथा ऊंटों के सौ के झुण्ड में चार २ सांड छोड़े जावें। अर्थात् गायों के सौके गोल में चार सांड बैल, इसी तरह भैंसों के सौ के झुण्ड में चार सांड भैंसा, और ऊंटों में भी चार ही सांड ऊंट छोड़ने चाहियें ॥ ४९ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें उन्तीसवां अध्याय समाप्त।

तीसवां अध्याय

४७ प्रकरण

अश्वाध्यक्ष

(राजकीय सब घोड़ोंके निरीक्षण करनेवाले अधिकारीका नाम 'अश्वाध्यक्ष' है। इसहीके कार्योंका इस प्रकरणमें निरूपण किया जायगा।)

अश्वाध्यक्षः पण्यागारिकं क्रयोपागतमाहवलब्धमाजातं साहाय्यकागतकं पणास्थितं यावत्कालिकं वाश्वपर्यग्रं कुलवयोवर्णचिह्नवर्गागमैर्लेखयेत् ॥ १ ॥

अश्वाध्यक्षको चाहिये, कि वह पण्यागारिक (भेटमें आये हुए जो विक्रयार्थ पण्यागार में रक्खे जावें), खरीदे हुए, युद्धमें प्राप्त किये हुए, अपने यहांपरही पैदा हुए २, किसी दूसरेकी सहायता करनेपर उसके बदलेमें आये हुए, आधिरूपसे प्राप्त हुए २ (अर्थात् किसीने नकद रुपया लेकर गिरवी रूपमें रक्खे हुए=पणास्थितम्), और थोड़े समयके लिये किसीके द्वारा सहायता पहुंचानेके लिये, आये हुए, इन सात प्रकारके प्राप्त हुए घोड़ोंके समूहको, उनके कुल (अर्थात् वह घोड़ा फारस काबुल अरब आदिमेंसे किस वंशमें उत्पन्न हुआ २ है), उमर, वर्ण, चिन्ह, कर्म, वर्ग (गोल) और उनके प्राप्तिस्थान के साथ २ अपनी पुस्तकमें लिख लेवे ॥ १ ॥

अप्रशस्तन्यङ्गव्याधितांश्चावेदयेत् ॥ २ ॥ कोशकोष्ठागाराभ्यां च गृहीत्वा मासलाभमश्ववाहश्चिन्तयेत् ॥ ३ ॥

जो घोड़े अप्रशस्त (अच्छे वंशमें पैदा न होनेके कारण स्वभावसे ही जिनकी चाल आदि ठीक नहीं है), अङ्गविकल और व्याधियुक्त घोड़ों को यथासमय बदलने या चिकित्सा कराने के लिये कहदेवे। अर्थात् इनका उचित रीतिसे कोई प्रबन्ध करवावे ॥ २ ॥ कोश और कोष्ठागारसे एक महीने

का खर्च (एक महीने का जितना नकद रुपया खर्च होता हो वह कोशसे और जितना घोड़ेके खानेके लिये सामान पर्याप्त हो वह कोष्ठागारसे) लेकर, साईस सावधानतापूर्वक घोड़ की परिचर्या में लग जावे ॥ ३ ॥

अश्वविभवेनायतामश्वायामद्विगुणविस्तारां चतुर्द्वारोपावर्तनमध्यां सप्रग्रीवां प्रद्वारासनफलकयुक्तां वानरमयूरपृषतनकुलचकोरशुकशारिकाभिराकीर्णां शालां निवेशयेत् ॥ ४ ॥

घोड़ों की संख्या के अनुसार लम्बी (तात्पर्य यह है कि जितने भी घोड़े हों, वे जितने स्थानमें बंध सकें उतनी लम्बी), और घोड़ों की लम्बाई से दुगनी चौड़ी, और चार द्वारोंसे युक्त, घोड़ोंके लेटने या घूमनेके लिये भी पर्याप्त स्थान वाली, बरांडेसे युक्त, दरवाजोंके दोनों ओर बैठने के लिये बनाई हुई चौकियोंसे युक्त, बन्दर, मोर, हिरण, नेवला, चकोर, तोता और मैना इन सात जानवरोंसे घिरी हुई (इनका वहां विद्यमान होना इसी लिये आवश्यक है, कि इनसे विष प्रयोगोंका तत्क्षण पता लगजाता है, और फिर उसका प्रतीकार किया जासकता है) घुड़साल बनवाई जावे ॥ ४ ॥

अश्वायामचतुरश्रश्लक्ष्णफलकास्तारं सखादनकोष्ठकं समूत्रपुरीषोत्सर्गमेकैकशः प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा स्थानं निवेशयेत्॥५॥

घोड़े की लम्बाई चौड़ाईके अनुसार चौकोर चिकना फट्टा जिसमें नीचे बिछा हुआ हो, घास आदि खानेके लिये भी लकड़ी आदि की नांद बनी हुई हों, पेशाब और लीदके करनेके लिये भी जिसमें सुखकर प्रबन्ध हो, जिनके द्वार पूरब और उत्तर की ओर हों, ऐसे स्थानकी, प्रत्येक घोड़ेके लिये पृथक् २ व्यवस्था करे। अर्थात् एक २ घोड़े को बांधनेके लिये उसके हरएक सुभीते को देखकर इतना २ स्थान नियत किया जावे ॥ ५ ॥

शालावशेन वा दिग्विभागं कल्पयेत् ॥ ६ ॥ वडवावृषकिशोराणामेकान्तेषु ॥ ७ ॥

अथवा घुड़सालके अनुसार ही उत्तर पूरब आदि दिशाओंके विभागकी कल्पना की जावे। तात्पर्य यह है कि घुड़साल, राजमहलके उत्तर पूरबकी ओर होनी चाहियें, यह प्रथम बताया गया है, घोड़ों की अधिकता के कारण यदि उधर पर्याप्त स्थान न हो, तो जहां भी बड़ी घुड़साल बनाई जावे; उस ही के अनुसार, द्वार आदिके लिये उचित दिशाओं की कल्पना करली जावे ॥ ६ ॥ प्रसव करने वाली घोड़ियां, सांड घोड़ों (वीर्य सेचन करने वाले घोड़ों) और

किशोर (छः महीनेकी आयुसे लगाकर तीन वर्ष तककी आयु वाले) बछेड़ोंको एक दूसरेसे पृथक् २ एकान्त स्थानोंमें रक्खा जावे ॥ ७ ॥

बडवायाः प्रजातायास्त्रिरात्रं घृतप्रस्थः पानम् ॥ ८ ॥ अत ऊर्ध्वं सक्तुप्रस्थः स्नेहभैषज्यप्रतिपानं दशरात्रम् ॥ ९ ॥ ततः पुलाको यवसमार्तवश्चाहारः ॥ १० ॥

जब कोई घोड़ी प्रसव करे, तब उसे तीन दिनतक एक प्रस्थ घी पीनेको दिया जावे ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर दस दिनतक, प्रतिदिन एक प्रस्थ सत्तू और कुछ चिकनाई मिली हुई औषधि (काढ़ा आदि), पीनेके लिये दिये जावें ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर आधे पकेहुए जौ आदिका मांड़ा, घास तथा ऋतुके अनुसार अन्य आवश्यक हरा आदि आहार खाने को दिया जावे ॥ १० ॥

दशरात्रादूर्ध्वं किशोरस्य घृतचतुर्भागः सक्तुकुडुबः ॥ ११ ॥ क्षीरप्रस्थश्चाहार आषण्मासादिति ॥ १२ ॥ ततः परं मासोत्तरमर्धवृद्धिर्यवप्रस्थ आत्रिवर्षात् ॥ १३ ॥ द्रोण आचतुर्वर्षादिति ॥ १४ ॥ अत ऊर्ध्वं चतुर्वर्षः पञ्चवर्षो वा कर्मण्यः पूर्णप्रमाणः ॥ १५ ॥

दस दिनके बाद उस बच्चे को (बछेड़ी या बछेड़े को सत्तू) का एक कुडुब जिसमें चौथाई घी मिला हुआ हो दिया जावे ॥ ११ ॥ और फिर छः महीने तक एक प्रस्थ दूध, आहारके लिये दिया जावे ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर जौका एक प्रस्थ, आवश्यकतानुसार उसमें उत्तरोत्तर प्रतिमास आधा प्रस्थ बढ़ाकर तीन वर्षकी आयु तक दिया जावे ॥ १३ ॥ इसके बाद चार वर्षकी आयु तक प्रतिदिन एक द्रोण आहार दिया जावे ॥ १४ ॥ इसके बाद चार वर्ष या पांच वर्षका घोड़ा पूरे कदवाला, तथा हरतरहका कार्य करने के योग्य होजाता है ॥ १५ ॥

द्वात्रिंशदङ्गुलं मुखमुत्तमाश्वस्य पञ्चमुखान्यायामो विंशत्यङ्गुला जङ्घा चतुर्जङ्घ उत्सेधः ॥ १६ ॥ त्र्यङ्गुलावरं मध्यमावरयोः ॥ १७ ॥

उत्तम घोड़े का मुख बत्तीस अंगुलका होना चाहिये, और पांच मुखकी बराबर अर्थात् एकसौ साठ (१६०) अंगुलकी उसकी लम्बाई होनी चाहिये, बीस अंगुल की जांघ, और अस्सी अंगुल उनकी ऊंचाई होनी चाहिये ॥ १६ ॥

उत्तम घोड़े का जो परिमाण बताया गया है, उस से तीन अंगुल कम परिमाण मध्यम घोड़े का और उस से भी तीन अंगुल कम अधम घोड़ेका परिमाण समझना चाहिये ॥ १७ ॥

शताङ्गुलः परिणाहः ॥ १८ ॥ पञ्चभागावरं मध्यमावरयोः ॥ १९ ॥

उत्तम घोड़े की मोटाई सौ अंगुल होती है; ॥ १८ ॥ इसका पांचवां हिस्सा कम (अर्थात् सौ का पांचवां हिस्सा बीस अंगुल, सौ में से कम करके शेष अस्सी अंगुल) मोटाई का परिमाण मध्यम घोड़े का समझना चाहिये, और इसका पांचवां हिस्सा कम करके (अर्थात् अस्सी का पांचवां हिस्सा सोलह अंगुल, अस्सी में से सोलह कम करके शेष चौंसठ अंगुल) मोटाई अधम घोड़े की समझनी चाहिये ॥ १९ ॥

उत्तमाश्वस्य द्विद्रोणं शालिव्रीहियवप्रियङ्गूणामर्धशुष्कमर्धसिद्धं वा मुद्गमाषाणां वा पुलाकः ॥ २० ॥

उत्तम घोड़े को, शाली (साठी चावल), व्रीहि (अन्य साधारण चावल), प्रियंगु (कंगनी या कांगनी) इनमेंसे कोई सी एक चीज़ दो द्रोण परिमाण में, आधी सूखी या आधी पकी हुई भोजन के लिये दीजावे; अथवा इतना ही मूंग या उड़द का मांदा बनाकर दिया जावे ॥ २० ॥

स्नेहप्रस्थश्च, पञ्चपलं लवणस्य, मांसं पञ्चाशत्पलिकं, रसस्याढकं द्विगुणं वा दध्नः पिण्डक्लेदनार्थं; क्षारपञ्चपलिकः सुरायाः प्रस्थः पयसो वा द्विगुणः प्रतिपानम् ॥ २१ ॥

चिकनाई (तेल अथवा घी) का एक प्रस्थ देना चाहिये; नमक के पांच पल देने चाहियें; पचास पल मांस देना चाहिये; खाने की चीज़ (सांदा आदि) को गीला करने के लिये मांस आदिका रस (अर्थात् शोरवा आदि; मूल पुस्तक में केवल 'रसस्य' इतना ही पाठ है, परन्तु प्रकरण से यही अर्थ प्रतीत होता है) एक आढक, अथवा उससे दूना अर्थात् दो आढक दही देना चाहिये । पांच पल गुड़के साथ २ सुरा (शराब) का एक प्रस्थ, अथवा इस से दूना अर्थात् दो प्रस्थ दूध प्रतिदिन मध्याह्नोत्तर पीने के लिये दिया जावे ॥ २१ ॥

दीर्घपथभारक्लान्तानां च खादनार्थं स्नेहप्रस्थोऽनुवासनं कुडुबो नस्यकर्मणः, यवसस्यार्धभारस्तृणस्य द्विगुणः षडरत्निः परिक्षेपः पुञ्जीलग्राहो वा ॥ २२ ॥

लम्बा सफ़र करने और अधिक भार उठाने के कारण थकेहुए घोड़ोंके खानेके लिये, एक प्रस्थ चिकनाई (घी अथवा तेल) के साथ २ उतना ही अनुवासन (थकावटको दूर करने के लिये अनेक औषधियोंका मिश्रण; इसके दो भेद हैं, १ अनुवासन, २ निरूहः; जो कसैले रस या क्षीर आदिके साथ दिया जाय, वह निरूहः और जो किसी चिकनाईके साथ दिया जावे, वह अनुवासन कहाता है); दिया जावे। तथा चिकनाई का ही एक कुडुब (प्रस्थ का चौथाई हिस्सा), नासिका में डाला जावे; हरे का आधा भार (अर्थात् दस तुला) तृण अर्थात् भुस आदि उस से दुगना (अर्थात् बीस तुला), अथवा एक जेट भर के (कौली भर के=दोनों बाहोंको फैलाकर जितना उसमें आजावे उतना) हरी घास या जई आदिका गट्ठा दिया जावे ॥ २२ ॥

पादावमेतन्मध्यमावरयोः ॥२३॥ उत्तमसमो रथ्यो वृषश्च मध्यमः ॥ २४ ॥ मध्यमसमश्चावरः ॥ २५ ॥

यह ऊपर बताया हुआ आहार उत्तम घोड़े का समझना चाहिये; इस आहार में से चौथाई हिस्सा कम करके मध्यम घोड़े को; और उसमेंसे भी चौथाई हिस्सा कम करके अधम घोड़े को आहार दिया जावे ॥ २३ ॥ जो मध्यम घोड़ा रथ में जोता जावे, और जो सांड छोड़ा हुआ होवे, उनको उत्तम घोड़े के समान ही आहार दिया जावे ॥ २४ ॥ तथा जो अधम घोड़े रथ में जोते जावें, या सांड छोड़े जावें, उन्हें मध्यम घोड़े के समान आहार देना चाहिये; (मध्यम घोड़े का वह आहार जो तेईसवें सूत्र में बताया गया है) ॥ २५ ॥

पादहीनं बडवानां पारशमानां च ॥ २६ ॥ अतोऽर्धं किशोराणां च ॥ २७ ॥ इति विधायोगः ॥ २८ ॥

घोड़ी तथा खच्चर और खच्चरियोंकोभी उपर्युक्त आहारोंमें से चौथाई हिस्सा कम करके आहार दिया जावे। (तात्पर्य यह है, कि उत्तम मध्यम आदि क्रम से घोड़ों के जो आहार २४, २५ सूत्र में बताये गये हैं, उसी क्रम के अनुसार घोड़ी और खच्चरोंकोभी आहार दिये जावें) ॥ २६ ॥ इससे आधा (अर्थात् जो आहार घोड़ियोंको बताया गया है, उससे आधा) आहार बछेड़ोंको दिया जावे ॥ २७ ॥ इस प्रकार यहां तक घोड़ों के लिये भोजन आदिके प्रकारका निरूपण किया गया ॥ २८ ॥

विधापाचकसूत्रग्राहकचिकित्सकाः प्रतिस्वादभाजः ॥२९॥

घोड़ोंके आहारको पकाने वाले, घोड़ोंके परिचारक (साईस आदि), और घोड़ोंकी चिकित्सा करने वाले व्यक्तियोंको, घोड़ोंके आहारमेंसे कुछ हिस्सा

दिया जावे। (तात्पर्य यह है, कि जो मासिक व्यय कोष्ठागारसे घोड़ोंके लिये लिया जाता है, उसमेंसे कुछ हिस्सा इन उपर्युक्त पुरुषोंको भी दिया जावे ॥२९॥

युद्धव्याधिजराकर्मक्षीणाः पिण्डगोचरिकाः स्युः ॥ ३० ॥ असमरप्रयोग्याः पौरजानपदानामर्थेन वृषा वडवास्वायोज्याः ॥ ३१ ॥

जो घोड़े युद्धके कारण क्षीणशक्ति होचुके हैं, तथा जो बीमारी और बुढ़ापेके कारण क्षीणसामर्थ्य होगये हैं, और भार आदि ढोनेका काम करनेमें भी असमर्थ हैं, उन घोड़ोंको केवल उदरपूर्त्तिके लिये ही आहार दिया जावे, अर्थात् उन्हें केवल इतना ही आहार दिया जावे, जिससे कि वे भूखे न मरसकें ॥३०॥ जो घोड़े शक्ति-शाली होते हुए भी युद्धमें प्रयोग करनेके योग्य न हों, उन घोड़ोंको नगर तथा जनपद निवासी पुरुषोंकी घोड़ियोंमें सन्ततिके लिये सांड बनाकर रक्खा जावे ॥ ३१ ॥

प्रयोग्यानामुत्तमाः काम्बोजकसैन्धवारट्टजवनायुजाः॥३२॥ मध्यमा बाह्लीकपापेयकसौवीरकतैतलाः ॥ ३३ ॥ शेषाः प्रत्यवराः ॥ ३४ ॥

विशेष चाल आदिको सीखे हुए संग्रामयोग्य घोड़ोंमें काम्बोजक (काबुल देशमें उत्पन्न हुए २), सैन्धव (सिन्ध देशमें उत्पन्न हुए २), आरट्टज + (आरट्ट देशमें उत्पन्न हुए २) तथा वनायुज * (अरब देशमें उत्पन्न हुए हुए) ये चार प्रकारके घोड़े सबसे उत्तम होते हैं ॥ ३२ ॥ इसी प्रकार बाल्हीक×

+ 'आरट्ट' यह पञ्जाबके एक अवान्तर प्रदेशका नाम ह, ऐसा टी० आर० कृष्णाचार्यने महाभारतमें आये हुए मुख्य नामोंकी सूचीमें लिखा है। हमारा विचार है, 'आरट्ट' देश वर्त्तमान काठियाबाड़ होना चाहिये।

* 'वनायु' यह अरबका प्राचीन नाम है; महाभारतमें इसका कई स्थानोंपर उल्लेख है।

× बाल्हीक किस देशका नाम है ! इस सम्बन्धमें दो विचार हैं:—

(१) टी० आर० कृष्णाचार्यने महाभारतकी सूचीमें बाल्हीक शब्दपर निम्न निर्दिष्ट पंक्ति लिखी है:—'विपाशाशतद्र्वोर्नद्योर्मध्ये केकयदेशस्य पूर्वभागे विद्यमानो देशः, अर्थात् व्यास और सतलज नदीके मध्यमें केकय देशसे पूर्वकी ओर जो देश है, उसीका नाम बाल्हीक है। (वर्त्तमान गुरदासपुर और होशियारपुरके उत्तरीय भाग तथा कांगड़के जिलेको केकय देश कहते हैं)।

(वाल्हीक नामक देशमें उत्पन्न हुए २), पापेयक † (पापेयक नामक देशमें उत्पन्न हुए २), सौवीरक (सुवीर अर्थात् राजपूतानामें उत्पन्न हुए २), और तैतल (तितल देशमें उत्पन्न हुए २), ये चार प्रकारके घोड़े मध्यम समझे जाते हैं ॥ ३३ ॥ इनसे अतिरिक्त सब जगहोंके घोड़े अधम समझे जाते हैं ॥ ३४ ॥

तेषां तीक्ष्णभद्रमन्दवशेन सांनाह्यमौपवाह्यकं वा कर्म प्रयोजयेत् ॥ ३५ ॥ चतुरश्रं कर्माश्वस्य सांनाह्यम् ॥ ३६ ॥

अब घोड़ोंके कार्य और उनकी गति आदिका निरूपण किया जायगा:— उन घोड़ोंकी तीक्ष्ण (तीव्र गति, थोड़ीसी चोटको भी न सहन करना), भद्र (मध्यम गति, जितनी चोट लगे उसके ही अनुसार चलना) और मन्द (निकृष्ट गति, बहुत पीटे जानेपर भी धीरे २ ही चलना), गतिके अनुसार ही; उनको सान्नाह्य (युद्ध सम्बन्धी कार्यों) और औपवाह्य (साधारण सवारी

---

(२) परन्तु महाभारतमें लिखा है:—

पञ्चानां सिन्धुषष्ठानां नदीनां येऽन्तराश्रिताः ।
तान्धर्मबाह्यानशुचीन् बाल्हीकानपि वर्जयेत् ॥
क. प. , अ. ३७, श्लो. १७ ॥

सतलज, व्यास, रावी, झेलम, चुनाव ये पांच और छठी सिन्धु; इन छः नदियोंके बीचमें जो देश हैं, उन्हींका नाम बाल्हीक है। ये देश धर्मबाह्य और अशुचि होनेके कारण वर्ज्य हैं।

इसी श्लोकको कर्ण पर्वके ही नामसे, महाभाष्य कैय्यटके व्याख्याकर नागोजी भट्टने 'एङ् प्राचां देशे' पाणि. , अ. १, पा. १, सू. ७४, की व्याख्या करते हुए इसप्रकार लिखा है:—

पञ्चानां सिन्धुषष्ठानामन्तरं ये समाश्रिताः ।
वाहीका नाम ते देशा न तत्र दिवसं वसेत् ॥

नागोजी भट्टने इस श्लोककी व्याख्या भी वही की है, जो हम पहिले श्लोकके नीचे लिख चुके हैं। टी. आर. कृष्णाचार्यके लेखानुसार तो वर्त्तमान जलन्धरका ज़िला ही बाल्हीक होसकता है; हमारे विचारमें महाभारतको ही अधिक प्रामाणिक समझना चाहिये।

† 'पापेय' नामक देश कौनसा है, इसका ठीक २ पता नहीं लगता, हमारे विचारमें यह देश वर्त्तमान पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त होना चाहिये, क्योंकि इधरके घोड़े कुछ अच्छे भी समझे जाते हैं।

या खेल कूदके) कार्योंमें प्रयुक्त किया जावे ॥ ३५ ॥ विशेषज्ञ पुरुषोंके द्वारा सिखलाये जानेपर, युद्धसम्बन्धी प्रत्येक कार्यको अच्छी तरह करलेना घोड़ेका साम्नाह्य कर्म कहाता है । तात्पर्य यह है, कि जो घोड़े युद्धके लिये उपयोगमें लाये जाते हैं, उनको उन सब चालोंकी शिक्षा दीजावे, जिनकी कि युद्धमें आवश्यकता होती है । इन्हींका नाम साम्नाह्य कर्म है ॥ ३६ ॥

वल्गनो नीचैर्गतो लङ्घनो धोरणो नारोष्ट्रश्चौपवाह्याः ॥३७॥ तत्रोपवेणुको वर्धमानको यमक आलीढप्लुतः (वृथाह ? पृथ ? पूर्व) गस्त्रिकचाली च वल्गनः ॥ ३८ ॥

औपवाह्य अर्थात् सवारी या खेलमें काम आने वाले घोड़ोंकी चालके पांच भेद हैं:—वल्गन, नीचैर्गत, लङ्घन, धोरण और नारोष्ट्र ॥३७॥ इन सबका क्रमपूर्वक निरूपण किया जाता है: गोलमण्डलाकार घूमनेको वल्गन कहते हैं, यह छः प्रकारका है:—औपवेणुक (एक ही हाथके गोल घेरेमें घूमना), वर्धमानक (उतने ही घेरेमें कई वार घूमजाना), यमक (बराबर २ के दो घेरोंमें एक साथ ही घूमजाना), आलीढप्लुत (एक पैरको सकोड़कर और दूसरेको फैलाकर छलांग मारनेके साथ ही साथ घूमजाना), पूर्वग (शरीरके अगले भागके आधारपर घूमजाना), और त्रिकचाली (त्रिक अर्थात् पृष्ठवंश और पिछली दो टांगें; इनके आधारपर घूमजाना); इस तरह यह छः प्रकारका वल्गन होता है ॥ ३८ ॥

स एव शिरःकर्णविशुद्धो नीचैर्गतः षोडशमार्गो वा ॥३९॥ प्रकीर्णकः प्रकीर्णोत्तरो निषण्णः पार्श्वानुवृत्त ऊर्मिमार्गः शरभक्रीडितः शरभप्लुतः त्रितालो बाह्यानुवृत्तः पञ्चपाणिः सिंहायतः स्वाधूतः क्लिष्टः श्लिगितो बृंहितः पुष्पाभिकीर्णश्चेति नीचैर्गतमार्गाः ॥ ४० ॥

जब कि सिर और कान में किसी प्रकारका कम्पन आदि का विकार न होने पावे तो उस वल्गन गति विशेषको ही 'नीचैर्गत' नाम से कहा जाता है । अथवा नीचैर्गत नामक गति को भी निम्नलिखित सोलह भागों में विभक्त समझना चाहिये ॥ ३९ ॥ वे सोलह प्रकार ये हैं:—प्रकीर्णक (सब चालों का एकमें ही संकर अर्थात् मिला हुआ होना), प्रकीर्णोत्तर (सब चालों के मिले हुए होनेपर भी एक चालका मुख्य होना), निषण्ण (पृष्ठ भाग को निश्चेष्ट करके किसी विशेष चाल का निकालना, अर्थात् उस चाल के होनेपर पीठपर किसी प्रकार का कम्पन आदि विकार न हो), पार्श्वानुवृत्त (एक ओर को

तिरछी चाल चलना), ऊर्मिमार्ग (लहरों की तरह ऊंचा नीचा होकर चलना), शरभक्रीडित (शरभ [एक जवान हाथी] की तरह क्रीडा करते हुए चलना), शरभप्लुत (शरभ की तरह कूदकर चलना), त्रिताल (तीन पैरोंसे चलना), बाह्यानुवृत्त (दायें बायें दोनों ओर को मण्डलाकार चलना), पञ्चपाणि (तीन पैरों को पहिले एक साथ रखकर फिर एक पैर को दो वार रखकर चलना), सिंहायत (सिंह के समान लम्बी डग भरके चलना), स्वाधूत (एक साथ बहुत लम्बे कूदकर चलना), क्लिष्ट (बिना सवारके ही विश्वास पूर्वक चलना) श्लिङ्गित (शरीरके अगले हिस्से को झुकाकर चलना), बृंहित (शरीरके अगले हिस्से को ऊंचा करके चलना), और पुष्पाभिकीर्ण (गोमूत्र के समान इधर उधर को होकर चलना) ये सब सोलह प्रकार के नीचैर्गत मार्ग अर्थात् घोड़ों की 'नीचैर्गत' नामक गति कही जाती हैं ॥ ४० ॥

कपिप्लुतो भेकप्लुत एकप्लुत एकपादप्लुतः कोकिलसंचार्युरस्यो बकचारी च लङ्घनः ॥ ४१ ॥

कूदनेका नाम लङ्घन है; यह भी सात प्रकारका होता है:—कपिप्लुत (बन्दर की तरह कूदना), भेकप्लुत (मेंडक की तरह कूदना) एणप्लुत (हरिण की तरह कूदना), एकपादप्लुत (तीन पैरों को सकोड़कर केवल एक ही पैरके सहारे कूदना), कोकिलसंचारी (कोयल की तरह फुदककर कूदना), उरस्य (सब पैरों को सकोड़कर केवल छातीके सहारे ही कूदना), और बकचारी (बगुले की तरह बीच में धीरे चलकर फिर एकसाथ अचानक कूदना), ये सात प्रकारके लंघन हैं ॥ ४१ ॥

काङ्को वारिकाङ्को मायूरोऽर्धमायूरो नाकुलोऽर्धनाकुलो वाराहोऽर्धवाराहश्चेति धोरगः ॥ ४२ ॥ संज्ञाप्रतिकारो नारोष्ट्र इति ॥ ४३ ॥

धीरे २ चली जाने वाली, दुलकी सरपट आदि चालों का नाम धोरण है। इसके निम्नलिखित आठ भेद हैं:—काङ्क (कङ्क अर्थात् बगुले की तरह चलना), वारिकाङ्क (बत्तख़ या हंस आदि की तरह चलना), मायूर (मयूरकी तरह चलना), अर्ध-मायूर (कुछ कुछ मोर की तरह चलना), नाकुल (नकुल अर्थात् नेवले की तरह चलना), अर्धनाकुल (कुछ कुछ नेवले की तरह चलना), वाराह (वराह अर्थात् सूअर की तरह चलना), और अर्धवाराह (कुछ कुछ सूअर की तरह चलना); इन आठ प्रकार की चालोंकी

धोरण कहते हैं ॥ ४२ ॥ सिखलाए हुए इशारोंके अनुसार घोडे का चलना 'नारोष्ट्र' कहाता है । यहां तक औपवाह्य गतियों का निरूपण कर दिया गया ॥ ४३ ॥

षण्णव द्वादशेति योजनान्यध्वा रथ्यानां, पञ्चयोजनान्यर्धाष्टमानि दशेति पृष्ठवाह्यानामश्वानामध्वा ॥ ४४ ॥

रथ आदिमें जोते जाने वाले अधम मध्यम तथा उत्तम घोड़ों को यथासंख्य छः नौ तथा बारह योजन चलाया जावे; अर्थात् रथ आदि में एक बार जोतने के बाद अधिक से अधिक इतना चलाया जावे, और फिर उनको विश्राम करने का अवसर दिया जावे । (त० गणपति शास्त्री ने इस सूत्रमें छः योजन उत्तम और बारह योजन अधम घोड़े के चलने के लिये मार्ग बतलाया है; परन्तु यह संगत नहीं मालूम होता; क्योंकि उत्तम घोड़ा तीव्रगति होनेके कारण अधिक चल सकता है; इसलिये हमारा निर्देश किया हुआ क्रम ही युक्त प्रतीत होता है) । इसी प्रकार जो पीठपर भार ढोने वाले घोड़े हों; उनका भी इसी क्रमसे पांच साढे सात और दस योजन चलने का मार्ग होना चाहिये । अर्थात् अधम घोड़ा पांच, मध्यम साढ़े सात और उत्तम दस योजन चलकर पुनः विश्राम लेवे ॥ ४४ ॥

विक्रमो भद्राश्वासो भारवाह्य इति मार्गाः ॥ ४५ ॥ विक्रमो वल्गितमुपकण्ठमुपजवो जवश्च धाराः ॥ ४६ ॥

इन तीनों तरहके घोड़ों की गति भी तीन प्रकार की होती हैं,—विक्रम (मन्दगति), भद्राश्वास (मध्यम गति), और भारवाह्य (तीव्रगति; जिस प्रकार कोई पुरुष कन्धे पर भार रखकर तेज जाता है) ॥ ४५ ॥ भिन्न २ घोड़ों के चलने का क्रम भी भिन्न २ ही होता है;—कोई २ घोड़ा लगातार धीरे ही धीरे चलता है, कोई २ चौकन्ना सा होकर इधर उधर को फिरता हुआ सा चलता है, कोई २ कूद २ कर और कोई पहिले तेज़ तथा कोई पीछे तेज़ चलता है; इन सब तरह की चालों का नाम 'धारा' है । इनको धारा इसी लिये कहते हैं, कि ये घोड़ों के चलने के अपने २ ढंग (=क्रम=धारा=) हैं ॥ ४६ ॥

तेषां बन्धनोपकरणं योग्याचार्याः प्रतिदिशेयुः ॥ ४७ ॥ सांग्रामिकं रथाश्वालंकारं च सूताः ॥ ४८ ॥ अश्वानां चिकित्सकाः शरीरह्रासवृद्धिप्रतीकारमृतुविभक्तं चाहारम् ॥ ४९ ॥

रथ में जोते जाने वाले या भार आदि ढोने वाले सब तरह के घोड़ोंके हर तरह के साजों को पहनाये जाने के सम्बन्ध में, घोड़ों के योग्य शिक्षक ही सब कुछ बतलावें। तात्पर्य यह है, कि घोड़ोंके मुख आदि किन २ अवयवोंपर कौन २ सा साज रखना चाहिये, और किस ढंग से रखना चाहिये इत्यादि सब ही बातों का उपदेश, घोड़ोंपर काम करने वाले कर्मचारियोंको, अश्वशिक्षक ही देवें ॥ ४७ ॥ और संग्राम सम्बन्धी, घोड़ों तथा रथों की सजावटके सामान को, सूत अर्थात् रथ आदि को चलाने वाले सारथि ही बतलावें ॥ ४८ ॥ तथा घोड़ों की चिकित्सा करने वाले वैद्य, उनके शरीर की घटती बढ़ती के प्रतीकार और ऋतुओं के अनुसार उचित आहारके सम्बन्धमें सब कुछ बतावें ॥ ४९ ॥

सूत्रग्राहकाश्वबन्धकयावसिकविधापाचकस्थानपालकेशकार-जाङ्गलीविदश्च स्वकर्मभिरश्वानाराधयेयुः ॥ ५० ॥

सूत्रग्राहक (लगाम आदि पकड़कर घोड़ों को फिराने घुमाने वाला कर्मचारी), अश्वबन्धक (चलने के लिये तय्यार होते समय लगाम जीन आदि साजों को पहिनाने वाला कर्मचारी), यावसिक (ऋतुओं के अनुसार उचित घास आदि आहार देने वाला), विधापाचक (घोड़ों के लिये चावल मूंग उड़द आदि पकाने वाला), स्थानपाल (घोड़े के रहने की जगह को साफ करने वाला कर्मचारी), केशकार (घोड़े के बालों को यथासमय काटकर अथवा खुररा आदि फेरकर ठीक करने वाला) और जाङ्गलीविद् (जंगली जड़ी बूटियों को जानकर घोड़ों की चिकित्सा करने वाले=विषवैद्य) ये सब ही कर्मचारी अपने २ नियत कार्योंको करते हुए घोड़ों की परिचर्या करें ॥ ५० ॥

कर्मातिक्रमे चैषां दिवसवेतनच्छेदनं कुर्यात् ॥ ५१ ॥ नीराजनोपरुद्धं वाहयतश्चिकित्सकोपरुद्धं वा द्वादशपणो दण्डः ॥५२॥

इनमें से जो कर्मचारी जिस दिन अपने काम को ठीक २ न करे, उसका उसी दिन का वेतन काट लिया जावे ॥ ५१ ॥ नीराजना (यह घोड़ों का एक संस्कार विशेष है, जो कि घोड़ों में उत्पन्न हुए २ उपद्रवों को शान्त करने के लिए और उनके बल की वृद्धि के लिये किया जाता है) के कारण रुके हुए अथवा चिकित्सा के लिये रुके हुए घोड़ों को जो पुरुष काम पर ले जावे, उसे बारह पण दण्ड दिया जावे ॥ ५२ ॥

क्रियाभैषज्यसङ्गेन व्याधिवृद्धौ प्रतीकारद्विगुणो दण्डः ॥५३॥ तदपराधेन वैलोम्ये पत्रमूल्यं दण्डः ॥ ५४ ॥

यदि ठीक समयपर घोड़ों की चिकित्सा न करने, और उनको दवाई आदि न देने के कारण उनकी बीमारी बढ़ जावे, तो उस समय उसका इलाज कराने में जितना व्यय हो, उससे दुगना दण्ड अश्वाध्यक्ष को दिया जावे ॥ ५३ ॥ यदि चिकित्सा और दवाई के ही दोष से घोड़ा मर जावे (तात्पर्य यह है, कि चाहे चिकित्सा ठीक समयपर हुई या बीमारीके बढ़नेपर हुई, पर घोड़े की मौत चिकित्सा या दवा के विरुद्ध होने के कारण ही हुई हो, तो अश्वाध्यक्ष को निम्न लिखित दण्ड दिया जायगा। यदि चिकित्सा देर से हुई, पर ठीक हुई है; उस हालत में अगर घोड़ा मर जावे, तो चिकित्सा के खर्च से दुगना ही दण्ड होगा, जैसा कि ५३ वें सूत्र में कहा गया है। यदि ठीक समयपर ही चिकित्सा प्रारम्भ हो, और वह चिकित्सा रोग के अनुसार ही बिल्कुल ठीक की जा रही हो, फिर भी यदि घोड़ा मर जावे, तो अश्वाध्यक्ष को कोई दण्ड नहीं होगा), तो जितने मूल्यका वह घोड़ा हो, उतना ही दण्ड अश्वाध्यक्ष को दिया जावे ॥ ५४ ॥

तेन गोमण्डलं खरोष्ट्रमहिषमजाविकं च व्याख्यातम् ॥ ५५ ॥

घोड़ों की परिचर्या और चिकित्सा के लिये जो नियम बताये गए हैं वे ही नियम, गोमण्डल (गाय बैल आदि), गधा, ऊंट भैंसा, और भेड़ बकरियों की परिचर्या तथा चिकित्सा आदि के सम्बन्ध में समझने चाहियें। तात्पर्य यह है, कि गौ आदि की ठीक २ परिचर्या और चिकित्सा आदि न की जानेपर भी उन के परिचारकों तथा गवाध्यक्ष को उसी रीति से दण्ड आदि दिये जावें ॥ ५५ ॥

द्विरह्नः स्नानमश्वानां गन्धमाल्यं च दापयेत् ।
कृष्णसंधिषु भूतेज्याः शुक्लेषु स्वस्तिवाचनम् ॥ ५६ ॥
नीराजनामाश्वयुजे कारयेन्नवमे ऽहनि ।
यात्रादाववसाने वा व्याधौ वा शान्तिके रतः ॥ ५७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे अश्वाध्यक्षः त्रिंशो ऽध्यायः ॥ ३० ॥

आदित एकपञ्चाशः ॥ ५१ ॥

शरद् और ग्रीष्म ऋतु में घोड़ों को दोवार स्नान कराया जावे। गन्ध और माला नित्य दी जावे। अमावास्या पर्वों में घोड़ों के निमित्त से भूतों को बलि दी जावें, और शुक्लपर्व अर्थात् पूर्णमासी में स्वस्तिवाचन पढ़ा जावे ॥ ५६ ॥ आश्विन महीने की नवमी तिथि में, घोड़ों के नीराजना नामक संस्कार विशेष को करवाया जावे। इसी प्रकार यात्रा के प्रारम्भ में और यात्रा की

समाप्ति पर; तथा घोड़ों में कोई संक्रामक रोग फैलने पर अर्थात् मरी फैलने पर, उसको शान्त करनेमें तत्पर हुआ २ अश्वाध्यक्ष, नीराजना नामक कर्म को करवावे ॥ ५७ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरण में तीसवां अध्याय समाप्त ।

इकत्तीसवां अध्याय

४८ प्रकरण

हस्त्यध्यक्ष

{ राजकीय हाथियोंका प्रबन्ध करने वाले प्रधान अधिकारी को 'हस्त्यध्यक्ष' कहते हैं। उस ही के कार्यों का इस प्रकरण में निरूपण किया जायगा । }

हस्त्यध्यक्षो हस्तिवनरक्षां दम्यकर्मक्षान्तानां हस्तिहस्तिनीकलभानां शालास्थानशय्याकर्मविधायवसप्रमाणं कर्मस्वायोगं बन्धनोपकरणं सांग्रामिकमलंकारं चिकित्सकानीकस्थोपस्थयुक्तवर्गं चानुतिष्ठेत् ॥ १ ॥

हस्त्यध्यक्ष को चाहिये, कि वह हाथियों के जंगल की रक्षा करे; सिखाये जाने योग्य हाथी हथिनी और उनके बच्चों के लिये शाला (गजशाला, जिसमें हाथी आदि बांधे जाते हैं), स्थान (बाहर खुले हुए में हाथी के बांधने की जगह), शय्या (उनके बैठनेका स्थान), कर्म (युद्ध सम्बन्धी आदि कार्य), विधा (पकाकर दिये जाने वाले आहार), और यवस (हरे गन्ने टहनी घास फूस आदि; 'यवस' शब्द हरे के लिये आता है, इसलिये जो चीजें हरे के तौरपर हाथियोंको दी जावे, उन सब का ही यहां ग्रहण करलेना चाहिये), इन छः चीजों के प्रमाण (परिमाण) का निर्णय करे । उन हाथी आदि को हर तरह की चाल आदि (इनका निरूपण आगे किया जायगा) सिखलाने में लगावे । उनके अम्बारी अंकुश आदि प्रत्येक साजों और संग्राम सम्बन्धी अलङ्कारों का प्रबन्ध करे । तथा हाथियों की चिकित्सा करने वाले गजवैद्य, उनको हरतरह की शिक्षा देने वाले और अन्य टहल टकोरी करने वाले कर्मचारियोंका सदा निरीक्षण करता रहे ॥ १ ॥

हस्त्यायामद्विगुणोत्सेधविष्कम्भायामां हस्तिनीस्थानाधिकां सप्रग्रीवां कुमारीसंग्रहां प्राङ्मुखीमुदङ्मुखीं वा शालां निवेशयेत् ॥ २ ॥

हाथीकी लम्बाई से दुगनी ऊंची, चौड़ी तथा लम्बी (हाथीकी लम्बाई नौ हाथ मानी गई है, देखो इसी अध्याय का नौवां सूत्र; उसका दुगना अठारह हाथ की ऊंचाई आदि होनी चाहिये), और हथिनी के लिये उससे छः हाथ और अधिक लम्बी, अर्थात् चौबीस हाथ लम्बी (ऊंची और चौड़ी उतनी ही) आगे बरांडे से युक्त, (हाथियों के बांधने के लिये जो खूंट गाड़े जावें, उनके ऊपर एक लकड़ी तराजू के समान रक्खी जावे, इससे हाथी सुख पूर्वक बांधे जा सकते हैं, इस का नाम 'कुमारी' होता है) इस तरह की कुमारियों का जिसमें पर्याप्त संग्रह हो, तथा पूरब या उत्तर की ओर दरवाजों वाली शाला (गजशाला) बनवाई जावे ॥ २ ॥

हस्त्यायामचतुरश्रश्लक्ष्णालानस्तम्भफलकान्तरकं मूत्रपुरीपोत्सर्गस्थानं निवेशयेत् ॥ ३ ॥

हाथीकी लम्बाई की बराबर लम्बा चौकोर (अर्थात् गोल नहीं होना चाहिये), तथा चिकना एक आलानस्तम्भ (हाथी के बांधने का खूंटा) वहांपर गाड़ा जावे, उसके, चारों ओर एक तख्ता सा ज़मीन को ढकने के लिये लगा रहना चाहिये, (तात्पर्य यह है, कि उस खूंटे को एक तख्ते के बीचमें लगाकर फिर गाड़ा जावे, जिससे वह तख्ता ज़मीनपर ऊपर रहे, और खूंटे की जड़ में से मट्टी आदि उखाड़कर कोई उसे ढीला न कर सके) । और पेशाब तथा पखाने के लिये आगे से कुछ उठा हुआ, स्थान बनाया जावे; जिस से कि वह स्वयं पीछे की ओर को बह जावे या सरक जावे ॥ ३ ॥

स्थानसमशय्यामर्धापाश्रयां दुर्गे सांनाह्योपवाह्यानां बहिर्दम्यव्यालानाम् ॥ ४ ॥

उपर्युक्त स्थान के समान ही शय्या अर्थात् बैठने सोने के लिये एक चबूतरा सा बनवाया जावे, जिसकी ऊंचाई साढ़े चार हाथ होनी चाहिये; जो हाथी युद्ध तथा सवारी आदि के काम में आते वाले हों उनकी शय्या दुर्ग के भीतर ही बनवाई जावे, और जो अभी चाल आदि सीख रहे हों, अर्थात् जिनको कवायद आदि सिखाई जा रही हो, और जो हिंसक वृत्ति के हों, उनका निवास दुर्ग से बाहर ही कराया जावे ॥ ४ ॥

प्रथमसप्तमावष्टमभागावह्नः स्नानकालौ तदनन्तरं विधायाः पूर्वाह्णे व्यायामकालः पश्चाह्नः प्रतिपानकालः ॥ ५ ॥ रात्रिभागौ द्वौ स्वप्नकालौ त्रिभागः संवेशनोत्थानिकः ॥ ६ ॥

बराबर विभक्त किये हुए दिन के आठ भागों में से पहिला और सातवां भाग हाथी के स्नानका उचित समय समझना चाहिये। (इससे यह बात प्रकट है, कि हाथीको दिनमें दो बार स्नान कराया जावे) दोनों बार स्नान के अनन्तर पका आहार खाने को देना चाहिये, अर्थात् दिनके दूसरे और आठवें भागमें खानेको दिया जावे। पूर्वाह्णमें अर्थात् दोपहरसे पहिले समयमें ही व्यायाम (कवायद) आदि का अभ्यास करावे; और मध्याह्नोत्तर प्रतिदिन कुछ पीनेके लिये दिया जावे ॥ ५ ॥ रात्रिके कल्पित तीन भागोंमें से दो भाग, हाथीके सोनेका समय समझना चाहिये, और शेष तीसरा भाग उठने बैठनेके लिये समझा जावे ॥ ६ ॥

ग्रीष्मे ग्रहणकालः, विंशतिवर्षो ग्राह्यः ॥ ७ ॥ विक्को मूढो मत्कुणो व्याधितो गर्भिणी धेनुका हस्तिनी चाग्राह्याः ॥ ८ ॥

गरमी की मौसम में ही हाथियोंको पकड़ना चाहिए; क्योंकि उस ऋतु में गरमी अधिक होने के कारण हाथी क्षीणबल हो जाते हैं, और बड़ी सुकरता से पकड़े जा सकते हैं। बीस वर्ष या उससे अधिक आयु का ही हाथी पकड़ने योग्य होता है ॥ ७ ॥ दूध पीनेवाला बच्चा (विक्क), मूढ (हथिनीके समान दांतोंवाला; अर्थात जिसको दांत देखकर 'यह हाथी है' इस प्रकार न पहचाना जा सके, इसीलिए इसका नाम 'मूढ' है) मत्कुण (दांतोंसे रहित, अर्थात् जिसके दांत अभी तक न निकले हों), बीमार हाथी; और गर्भिणी, तथा दूध चुखानेवाली हथिनीको न पकड़ा जावे ॥ ८ ॥

सप्तारत्निरुत्सेधो नवायामो दश परिणाहः प्रमाणतश्चत्वारिंशद्वर्षो भवत्युत्तमः ॥ ९ ॥ त्रिंशद्वर्षो मध्यमः ॥ १० ॥ पञ्चविंशतिवर्षो ऽवरः ॥११॥ तयोः पादावरो विधाविधिः ॥१२॥

सात हाथ ऊंचा, नौ हाथ लम्बा और दस हाथ मोटा परिमाणवाला तथा चालीस वर्षकी उमरवाला हाथी सबसे उत्तम होता है ॥ ९ ॥ तीस वर्षकी उमरका हाथी मध्यम; (इसका लम्बाई चौड़ाई आदि परिमाण इसी अध्यायके १५वें सूत्रमें देखें); ॥ १० ॥ और पच्चीस वर्षकी उमरका अधम समझना चाहिये। (इसका परिमाण भी पन्द्रहवें सूत्रमें देखें) ॥ ११ ॥ मध्यम और अधमको उत्तमकी अपेक्षा यथाक्रम चौथाई हिस्सा कम आहार

दिया जावे अर्थात् उत्तमको जितना आहार दिया जावे, उसमेंसे चौथाई हिस्सा कम करके मध्यमको, और मध्यमके आहारमेंसे भी चौथाई हिस्सा कम करके अधम हाथीको आहार दिया जावे ॥ १२ ॥

अरत्नौ तण्डुलद्रोणोऽर्धाढकं तैलस्य सर्पिषस्त्रयः प्रस्थाः दशपलं लवणस्य मांसं पञ्चाशत्पालिकं रसस्याढकं द्विगुणं वा दध्नः पिण्डक्लेदनार्थं क्षारं दशपालिकं मद्यस्य आढकं द्विगुणं वा पयसः प्रतिपानं गात्रावसेकस्तैलप्रस्थः शिरसो ऽष्टभागः प्रादीपिकश्च यवसस्य द्वौ भारौ सपादौ शष्पस्य शुष्कस्यार्धतृतीयो भारः कडङ्करस्यानियमः ॥ १३ ॥

उत्तम हाथीका क्या आहार होना चाहिये, यह इस सूत्रमें बताया जाता है:—जो हाथी अन्य साधारण हाथियोंसे एक हाथही अधिक ऊँचा हो, अर्थात् पूरे सात हाथका ऊँचा हो (इससे अधिक नहीं) उसे एक द्रोण चावल, आधा आढक तेलका, तीन प्रस्थ घीके, दस पल नमकके, पचास पल मांस, सूखे दाने आदिको भिगोनेके लिये एक आढक शोरवा (मांसका पका हुआ रस), अथवा उसके न होनेपर उससे दुगना दही, दस पल क्षार अर्थात् गुड़ आदि, मध्यान्होत्तर पीनेके लिये एक आढक मद्य अथवा मद्यके न होनेपर उससे दुगना दूध, शरीरपर लगानेके लिये तेलका एक प्रस्थ, शिरपर लगानेके लिये एक प्रस्थका आठवां हिस्सा अर्थात् आधा कुडुब, और इतना ही तेल रातको दिया जलानेके लिये, हरेके दो भार अर्थात् चालीस तुला, हरी घासके सवा दो भार अर्थात् पचास तुला; और सूखी घासके ढाई भार अर्थात् साठ तुला, भुस और पत्ते आदिका कोई नियम नहीं, वह जितने भी खाये जावें, उतने ही देने चाहियें। यह सब आहार उत्तम हाथीका है ॥ १३ ॥

सप्तारत्निना तुल्यभोजनो ऽष्टारत्निरत्यरालः ॥ १४ ॥ यथाहस्तमवशेषः षडरत्निः पञ्चारत्निश्च ॥ १५ ॥

आठ हाथ ऊँचे ' अत्यराल ' नामक (सात हाथ ऊँचे उत्तम हाथीसे भी जो हाथी ऊंचा हो, उसको ' अत्यराल ' कहा जाता है, उस) हाथीको भी सात हाथ ऊँचे उत्तम हाथीकी बराबर ही आहार दिया जावे। अर्थात् इससे अधिक न दिया जावे ॥ १४ ॥ इसप्रकार ऊँचाईके हिसाबसे जो हाथी छः हाथ ही ऊँचे हों, वे मध्यम होते हैं, उनको उपर्युक्त उत्तम हाथीके आहारसे चौथाई हिस्सा कम करके दिया जावे। इसी प्रकार जो हाथी पांच ही हाथके ऊँचे होते

हैं, वे अधम कहाते हैं, उनको मध्यम हाथियोंके आहारसे भी चौथाई हिस्सा कम करके दिया जावे। (म. म. गणपति शास्त्रीने, तेरहवें सूत्रमें बतलाये हुए आहारको, एक हाथकी ऊंचाईके हिसाबसे मानकर सात हाथ ऊँचे हाथीके लिये उस बताये हुए आहारसे सात गुना आहार कहा है; अर्थात् तेरहवें सूत्रमें जितनी तादाद आहारकी बतलाई गई है, उससे सात गुना आहार उत्तम हाथीको देना चाहिये। इसी प्रकार जो हाथी छः हाथ ऊँचा होनेके कारण मध्यम है, उसे तेरहवें सूत्रमें बताये आहारसे छः गुना आहार दिया जावे, और पांच हाथके ऊँचे अधम हाथीको पांच गुना, यह व्याख्या उक्त शास्त्रीजीने पन्द्रहवें सूत्रकी की है। परन्तु ऐसा अर्थ करनेपर बारहवें सूत्रके साथ इसका विरोध होता है। क्योंकि वहांपर उत्तम हाथीके आहारसे चतुर्थांश कम करके मध्यम हाथीका आहार बताया गया है, और उससे चतुर्थांश कम करके अधमका। इसलिये शास्त्रीजीका लेख चिन्त्य मालूम होता है) ॥ १५ ॥

क्षीरयावसिको विक्कः क्रीडार्थं ग्राह्यः ॥ १६ ॥ संजातलोहिता प्रतिच्छन्ना संलिप्तपक्षा समकक्ष्याप्यतिकीर्णमांसा समतल्पतला जातद्रोणिकेति शोभाः ॥ १७ ॥

दूध पीने वाले छोटे बच्चेको केवल क्रीड़ा अर्थात् कौतुकके लिये पकड़ना चाहिये, ऐसी अवस्थामें उसको दूध और हरी २ घास या जई आदिके छोटे २ कवल (गसा) देकर उसका पालन पोषण किया जाय ॥ १६ ॥ हाथियोंकी सात अवस्थाओंके अनुसार उनकी सात प्रकारकी शोभा समझी जाती है। जब हाथीके शरीरमें हड्डी चमड़ा ही रहजावें, और फिर थोड़ा २ रुधिर उत्पन्न होने लगे, यह प्रथम अवस्था है इसके कारण जो शोभा हो उसको 'सञ्जातलोहिता' नामसे कहते हैं। जिस अवस्थामें कुछ २ मांस बढ़ने लगे, उसके कारण होनेवाली शोभाको 'प्रतिच्छन्ना' कहते हैं। जब मांस दोनों ओर चढ़ जाता है, तब उसे 'संलिप्तपक्षा' कहा जाता है। जब सब अवयवोंपर बराबर मांस चढ़ जाय, तो उस अवस्थाकी शोभाको 'समकक्ष्या' कहते हैं। जब शरीरपर कहीं नीचा और कहीं ऊंचा मांस होजावे, तो उस अवस्थाकी शोभाका नाम 'व्यतिकीर्णमांसा' है। जब पीठकी हड्डीके बराबर २ पीठपर मांस चढ़जाय, तो उस अवस्थाकी शोभाको 'समतल्पतला' कहा जाता है। तथा जब रीढ़की हड्डीसे इधर उधरका मांस ऊँचा होजावे, तो उस अवस्थाकी शोभाको 'जातिद्रोणिका' कहते हैं। इस तरह ये हाथियोंकी सात प्रकारकी शोभा समझी जाती है ॥ १७ ॥

शोभावशेन व्यायामं भद्रं मन्दं च कारयेत् ।
मृगसंकीर्णलिङ्गं च कर्मस्वृतुवशेन वा ॥ १८ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे हस्त्यध्यक्ष एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

आदितो द्विपञ्चाशः ॥ ५२ ॥

इसीके अनुसार सब हाथियोंको व्यायाम कराना चाहिये, अर्थात् उत्तम, मध्यम और अधम हाथियोंको जब परिश्रम (कवायद) कराया जावे, तब उनकी इन उपर्युक्त अवस्थाओंपर अवश्य ध्यान रक्खा जावे । तथा इसी प्रकार जिन हाथियोंके अन्दर उत्तम मध्यम आदिके साङ्कर्यके चिन्ह विद्यमान हों, उनको भी सान्नाह्य और औपवाह्य आदि कार्योंमें, पूर्वोक्त अवस्थाओंके अनुसार ही परिश्रम कराया जावे । अथवा सबही हाथियोंको ऋतुओंके अनुसार सान्नाह्य आदि कार्योंमें लगाया जावे ॥ १८ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें इकत्तीसवां अध्याय समाप्त ।

बत्तीसवां अध्याय ।

४८ प्रकरण

हस्तिप्रचार ।

इस अधिकरणमें दो अध्याय हैं, पिछले इकत्तीसवें अध्यायमें हस्त्यध्यक्षके कार्योंका निरूपण किया गया । अब इस अध्यायमें हाथियोंके भेद और उनकी गतियोंके सम्बन्धमें विशेष निरूपण किया जायगा ।

कर्मस्कन्धाः चत्वारो दम्यः सांनाह्य औपवाह्यो व्यालश्च ॥ १ ॥ तत्र दम्यः पञ्चविधः ॥ २ ॥

कार्य भेदसे हाथी चार प्रकारका होता है, दम्य (दमन करने योग्य, अर्थात् शिक्षा देने योग्य), सान्नाह्य (युद्धके काममें आने वाला), औपवाह्य (सवारीका), और व्याल (अर्थात् घातक वृत्ति वाला) ॥ १ ॥ इनमेंसे दम्य हाथी पांच प्रकारका होता है । तात्पर्य यह है कि दम्य हाथीके पांच कार्य होते हैं, उन्हींके कारण उसके पांच भेद समझे जाते हैं ॥ २ ॥

स्कन्धगतः स्तम्भगतो वारिगतो ऽवपातगतो यूथगतश्चेति ॥ ३ ॥ तस्योपविचारो बिक्कर्म ॥ ४ ॥

वे भेद इस प्रकार हैं:—स्कन्धगत (जो अपने कन्धेपर किसी मनुष्यको चढ़ासके; तात्पर्य यह है, कि जब कोई पुरुष उसके कन्धेपर चढ़े उस समय वह किसी तरहका उपद्रव न करे, यह उसका एक काम है, ऐसा करनेपर समझना चाहिये, कि यह हाथी दम्य अर्थात् कुछ सिखलाये जाने योग्य है, क्योंकि वह फिर सरलतासे ही वश में किया जा सकता है), स्तम्भगत (जो हाथी खूंटेपर बंधना सहन करसके; यह दूसरा काम है, जब हाथी को यह सह्य होजाय, तब उसे दम्य समझकर आगे कवायद आदि सिखानी चाहिये), वारिगत (हाथियोंके पकड़नेकी भूमि का नाम 'वारि' है, उसमें जो हाथी पहुंच जाय, वह भी सरलतासे वशमें होने योग्य हो जाता है इसलिये वह भी दम्य कहाता है), अवपातगत (हाथियोंके पकड़नेके लिये जंगलों में जो घास फूंस से ढकेहुए गड्ढे बनाये जाते हैं, उनका नाम 'अवपात' है, जो हाथी उनमें पहुंच जाते हैं, वे भी दम्य कहाते हैं, क्योंकि उनको फिर पकड़कर इच्छानुसार वशमें किया जा सकता है), और यूथगत (जो हथिनियोंके साथ विहार करने के व्यसनी होते हैं, वे हथिनियों के झुंड में आये हुए पकड़े जाते हैं, इसलिये उनको भी दम्य कहा गया है। इसप्रकार पांच उपायोंसे दम्य होने के कारण, दम्य हाथियोंके ही पांच भेद कल्पित करलिये गये हैं) ॥ ३ ॥ दम्य हाथीकी परिचर्या हाथीके बच्चेके समान ही करनी चाहिये। अर्थात् जिसप्रकार हाथीके छोटे बच्चेको दूध, हरी २ घास और गन्ने आदि देकर पालन पोषण किया जाता है, उसीप्रकार दम्य हाथीका भी पालन पोषण करना चाहिये ॥ ४ ॥

सांनाह्यः सप्तक्रियापथः ॥ ५ ॥ उपस्थानं संवर्तनं संयानं वधावधो हस्तियुद्धं नागरायणं सांग्रामिकं च ॥ ६ ॥ तस्योपविचारः कक्ष्याकर्म ग्रैवेयकर्म यूथकर्म च ॥ ७ ॥

सान्नाह्य हाथी के कार्य करनेके सात मार्ग हैं, इसीलिये सान्नाह्य हाथी के सात भेद समझे जाते हैं ॥ ५ ॥ वे भेद इस प्रकार हैं:—उपस्थान (आगे पीछे के अवयवोंको ऊंचा नीचा करना, तथा ध्वजा, उल्का, बांस और रस्सी आदिका लांघना), संवर्त्तन (सोजाना, बैठजाना, तथा भिन्न २ चीजोंका लांघना आदि भूमि सम्बन्धी कार्य), संयान (सीधा तिरछा, गोमूत्रिकाकार अथवा गोलाकार आदि चातुर्यपूर्ण गतिविशेष), वधावध (सूंड, दांत, तथा शरीरके अन्य किसी अवयवसे रथ घोड़ा या आदमी आदिका मारना या पकड़ना), हस्तियुद्ध (न्यून अधिक तथा समान शक्ति वाले हाथियोंके साथ युद्ध करना), नागरायण (नगरके दरवाजों, दीवारों या अर्गला आदि

का तोड़ना), और सांग्रामिक (प्रकट रूपमें युद्ध करना) । सान्नाह्य हाथियों के ये सात काम बताये गये हैं, इन्हींके कारण उन हाथियोंके भी सात भेद कल्पना कर लिये गये हैं ॥ ६ ॥ सान्नाह्य हाथीको शिक्षा देनेके समयमें यह ध्यान रखना चाहिये, कि रस्सी आदि बांधने, गलेमें बन्धन डालने, तथा उसके झुंडके अनुकूल कार्योंके करनेमें उसे अत्यन्त निपुण बनादिया जाय। (प्रत्येक हाथीके अपने झुंड अर्थात् यूथका पता उनके अंगोंकी बनावटसे मालूम होसकता है) ॥ ७ ॥

औपवाह्यो ऽष्टविधः ॥ ८ ॥ आचरणः कुञ्जरौपवाह्यः धोरण आधानगतिको यष्ट्युपवाह्यस्तोत्रोपवाह्यः शुद्धोपवाह्यो मार्गायुकश्चेति ॥ ९ ॥

औपवाह्य हाथी आठ प्रकारके होते हैं । (ये भेद भी उनके कार्योंके अनुसार ही कल्पना किये गये हैं) ॥८॥ वे भेद इस प्रकार हैं:—आचरण (अगले तथा पिछले हिस्सेको इच्छानुसार ऊंचा नीचा करना, इसप्रकार सब तरहके हाथियोंकी गतिके अनुसार कार्य करलेना; यह भी एक प्रकारकी विशेष कवायद है), कुञ्जरौपवाह्य (दूसरे हाथीके साथ २ गति करने वाला), धोरण (एक ही ओरसे सब तरहके कार्य करने वाला), आधानगतिक (दो तीन तरहकी चाल चलने वाला), यष्ट्युपवाह्य (ताड़ना करनेपर ही काम करने वाला), तोत्रोपवाह्य (कांटेदार लकड़ीसे ताड़ना किये जानेपर ही कार्य करने वाला), शुद्धोपवाह्य (लकड़ी आदिके आघातके बिनाही केवल पैर आदिके इशारेसे सब कामों को करने वाला), और मार्गायुक (शिकारके सम्बन्धमें हरतरहका काम करने की शिक्षा पाया हुआ), ये आठ प्रकारके औपवाह्य हाथी कहाते हैं ॥ ९ ॥

तस्योपविचारः शारदकर्म हीनकर्म नारोष्ट्रकर्म च ॥१०॥

इनको शिक्षा देनेके समयमें यह ध्यान रखना चाहिये, कि जो हाथी मोटे (आवश्यकतासे अधिक मोटे) हों उनको कृश बनाया जाय; जो मन्दाग्नि हों उनके अग्निदीपनका उपाय किया जाय; तथा जो ठीक स्वास्थ्य की अवस्थामें हों उनके स्वास्थ्य की रक्षा कीजाय, (यह सब व्याख्या 'शारदकर्म' शब्दकी है) । तथा जो हाथी परिश्रम न करता हो उससे परिश्रम कराया जाय, (हीनकर्म) । इसी प्रकार प्रत्येक हाथीको हरतरहके इशारोंकी भी शिक्षा दीजाय, (नारोष्ट्रकर्म) ॥ १० ॥

व्याल एकक्रियापथः ॥ ११ ॥ तस्योपविचार आयम्यैकरक्षः कर्मशङ्कितो ऽवरुद्धो विषमः प्रभिन्नः प्रभिन्नविनिश्चयो मदहेतुविनिश्चयश्च ॥ १२ ॥

व्याल अर्थात् घातक हाथीके कार्य करनेका एक ही मार्ग है ॥ ११ ॥ उसको शिक्षा देनेके निम्नलिखित उपाय हैं:—उसको कोई एक ही व्यक्ति बांधकर नियममें रक्खे, अथवा डण्डेके जोर पर ही उसे रक्खा जावे। शिक्षाके समय भिन्न २ रीतिसे उपद्रव करनेके कारण इसके निम्नलिखित भेद समझने चाहियें:—कर्मशङ्कित (शिक्षाके समय प्रतिकूल हो जाना), अवरुद्ध (कार्य में उपयोगी न होनेके कारण उपेक्षा किया हुआ), विषम (अपनी इच्छानुसार काम करनेवाला), प्रभिन्न (मदके दोष से दुष्ट अर्थात् विचलित हुआ २), प्रभिन्नविनिश्चय (मद तथा आहार आदिके दोषसे बेचैन हुआ २) और मदहेतुविनिश्चय (सदा ही मद रहनेके कारण जिसके बिगड़नेमें मदकी हेतुताका पता न लगे) ॥ १२ ॥

क्रियाविपन्नो व्यालः ॥ १३ ॥ शुद्धः सुव्रतो विषमः सर्वदोषप्रदुष्टश्च ॥ १४ ॥

साधारणतया कार्य बिगाड़नेवाले हाथीको ही व्याल कहते हैं ॥ १३ ॥ इनके निम्नलिखित विशेष भेद हैं:—शुद्ध (जो केवल मारनेवाला हो, यह अठारह दोषोंसे युक्त होता है), सुव्रत (केवल चलने में गड़बड़ करनेवाला, इसमें पन्द्रह दोष होते हैं), विषम (शुद्ध और सुव्रत दोनोंके दोषोंसे युक्त), सर्वदोषप्रदुष्ट (पूर्वोक्त तेतीस दोषों, और उनसे अतिरिक्त अपने उन्नीस दोषोंसे युक्त, अर्थात् जो सब तरहके दोषोंसे युक्त हो। इन सब दोषोंका परिज्ञान 'हस्तिशास्त्र' से ही हो सकता है) ॥ १४ ॥

तेषां बन्धनोपकरणमनीकस्थप्रमाणम् ॥ १५ ॥ आलानग्रैवेयकक्ष्यापारायणपरिक्षेपोत्तरादिकं बन्धनम् ॥ १६ ॥

हाथियोंको बांधने तथा अन्य आवश्यक सब (उपकरण), सामानका संग्रह, हाथियोंके चतुर शिक्षकोंके कथनानुसार ही करना चाहिए ॥ १५ ॥ आलान (स्तम्भ अर्थात् हाथीके बांधनेका खूंटा), ग्रैवेयक (गलेमें बांधनेकी जंजीर आदि), कक्ष्या (कांखके नीचेसे बांधनेकी रस्सी आदि), परायण (हाथी पर चढ़ते समय सहारा लेने की रस्सी), परिक्षेप (हाथीके पैरमें बांधनेकी जंज़ीर आदि), और उत्तर (गलेमें बांधनेकी दूसरी रस्सी), इत्यादि वस्तुयें बन्धन कहाती हैं, अर्थात् ये हाथियोंके बांधनेके काममें आती हैं ॥ १६ ॥

अङ्कुशवेणुयन्त्रादिकमुपकरणम् ॥ १७ ॥ वैजयन्तीक्षुरप्रमालास्तरणकुथादिकं भूषणम् ॥ १८ ॥ वर्मतोमरशरावापयन्त्रादिकः सांग्रामिकालंकारः ॥ १९ ॥

अंकुश, वेणु (बांस या डंडा), और यन्त्र (अम्बारी आदि) आदि सब उपकरण कहाते हैं ॥ १७ ॥ वैजयन्ती (हाथीके ऊपर लगानेकी पताका) क्षुरप्रमाला (नक्षत्रमाला, एक प्रकारकी विशेष माला; देखो—अधि० २, अध्याय ११, सूत्र १३), आस्तरण (नमदा, जो अम्बारीके नीचे हाथीकी पीठपर रक्खा जाता है), और कुथ (झूल) आदि पदार्थ हाथियोंके सजानेके लिए होते हैं ॥ १८ ॥ वर्म (कवच) तोमर (चार हाथका एक हथियार विशेष), शरावाप (तूणीर, तरकश जिसमें बाण रक्खे जाते हैं), और यन्त्र (भिन्न २ प्रकारके हथियार आदि) आदि, हाथियोंके संग्राम सम्बन्धी अलङ्कार समझे जाते हैं ॥ १९ ॥

चिकित्सकानीकस्थारोहकाधोरणहस्तिपकौपचारिकविधापाचकयावसिकपादपाशिककुटीरक्षकौपशायिकादिरौपस्थायिकवर्गः ॥ २० ॥

चिकित्सक (हाथियोंकी चिकित्सा करनेवाला=गजवैद्य), अनीकस्थ (हाथियोंका शिक्षक), आरोहक (गज विषयक शास्त्रोंको जाननेवाला गजारोही), आधोरण (शास्त्र ज्ञानपूर्वक, गज विषयक कार्योंको करनेमें कुशल), हस्तिपक (हाथीकी रक्षा करनेवाला), औपचारिक (हाथीको न्हलाने धुलानेवाला), विधापाचक (हाथीके आहारको पकानेवाला), यावसिक (हाथीके लिए हरा आदि लानेवाला), पादपाशक (हाथीके पैरको बांधनेवाला अर्थात् हाथीको उसके थानपर बांधनेवाला), कुटीरक्षक गजशालाकी रक्षा करनेवाला), और औपशायिक (हाथीकी शयनशालाका निरीक्षण करनेवाला), आदि गज परिचारक होते हैं। अर्थात् ये ग्यारह, हाथीकी परिचर्या करनेवाले कर्मचारी होते हैं ॥ २० ॥

चिकित्सककुटीरक्षविधापाचकाः प्रस्थौदनं स्नेहप्रसृतिं क्षारलवणयोश्च द्विपलिकं हरेयुः ॥ २१ ॥ दशपलं मांसस्यान्यत्र चिकित्सकेभ्यः ॥ २२ ॥ पथि व्याधिकर्ममदजराभितप्तानां चिकित्सकाः प्रतिकुर्युः ॥ २३ ॥

चिकित्सक, कुटीरक्षक, और विधापाचक, इन तीनों में से प्रत्येक, हाथीके आहारमें से एक प्रस्थ अन्न, तैल या घृत आदिकी आधी अञ्जली, गुड़ और नमकके दो पल लेलेवें ॥ २१ ॥ तथा चिकित्सकोंको छोड़कर बाकी दोनों (कुटीरक्षक और विधापाचक), मांसके दस २ पल लेलेवें ॥ २२ ॥ मार्ग चलनेसे, व्याधिसे, कार्य करनेसे, मदके कारण, तथा बुढ़ापेके कारण जो कोई भी कष्ट हाथियोंको होजावे, चिकित्सक बड़ी सावधानतापूर्वक उसका प्रतीकार करें ॥ २३ ॥

स्थानस्याशुद्धिर्यवसस्याग्रहणं स्थले शायनमभागे घातः परारोहणमकाले यानमभूमावतीर्थे ऽवतारणं तरुषण्ड इत्यत्ययस्थानानि ॥ २४ ॥ तमेषां भक्तवेतनादाददीत ॥ २५ ॥

हाथीके स्थानको साफ न करना, उसे खानेको न देना, खाली भूमि पर सुलाना, चोट न पहुंचाने योग्य मर्म स्थलों पर चोट पहुंचाना, दूसरे अनधिकारी पुरुषको हाथी पर चढ़ाना, नियत समयसे अतिरिक्त समयमें हाथीको चलाना, दुर्गम स्थानोंमें चलाना, विना घाटके ही जलाशयमें उतार देना, तथा पेड़ोंके झुण्डोंमें हाथीको लेजाना; ये सब, कर्मचारियोंके अत्ययस्थान अर्थात् दण्डके स्थान होते हैं। तात्पर्य यह है, कि हाथीके साथ इस प्रकारका व्यवहार करनेमें जिन कर्मचारियों या अध्यक्षका दोष हो, उन्हें उचित दण्ड दिया जावे ॥ २४ ॥ यह दण्ड उनके भत्ते और वेतनसे काट लिया जावे ॥ २५ ॥

तिस्रो नीराजनाः कार्याश्चातुर्मास्यर्तुसंधिषु ।
भूतानां कृष्णसंधीज्याः सेनान्यः शुक्लसंधिषु ॥ २६ ॥

बलकी वृद्धि और विघ्नोंकी शान्तिके लिये, वर्षमें तीन वार नीराजना कर्म कराया जावे, यह चार महीनेके बाद ऋतु संधिकी तिथि में कराना चाहिये; (यह तिथि आषाढ़ कार्तिक तथा फाल्गुनकी पूर्णमासी होगी), और कृष्ण सन्धियों में अर्थात् अमावास्या तिथियों में भूतों का बलिकर्म कराया जावे । तथा स्कन्द की पूजा भी पूर्णमासी तिथियों में कराई जावे ॥ २६ ॥

दन्तमूलपरीणाहाद्द्विगुणं प्रोज्झ्य कल्पयेत् ।
अब्दे द्व्यर्धे नदीजानां पञ्चाब्दे पर्वतौकसाम् ॥ २७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे हस्तिप्रचारो द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥
आदितः त्रिपञ्चाशः ॥ ५३ ॥

हाथी दांतकी जड़में जितनी मोटाई हो, उससे दुगना दांतका हिस्सा छोड़कर, बाकी अगले हिस्सेको काट लियाजावे। इसके काटनेका समय इस प्रकार समझना चाहिये;—जो हाथी नदीचर हों, उनके दांत ढाई साल के बाद काटे जावें, और जो हाथी पर्वतोंमें रहने वाले हों, उनके दांत पांच सालके बाद काटे जावें ॥ २७ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें बत्तीसवां अध्याय समाप्त

तेतीसवां अध्याय

४९-५१ प्रकरण

रथाध्यक्ष पत्यध्यक्ष, तथा सेनापतिप्रचार

सेनामें काम आने वाले रथोंका अध्यक्ष 'रथाध्यक्ष' और पैदल सेनाका प्रधान अधिकारी 'पत्यध्यक्ष' तथा सम्पूर्ण सेनाका प्रधान अधिकारी 'सेनापति' कहाता है; इनके कार्योंका इस अध्यायमें यथाक्रम निरूपण किया जायगा।

अश्वाध्यक्षेण रथाध्यक्षो व्याख्यातः ॥ १ ॥ स रथकर्मान्तान्कारयेत् ॥ २ ॥

अश्वाध्यक्षके समान ही रथाध्यक्षके भी नियम समझने चाहियें; तात्पर्य यह है, कि जिस प्रकार अश्वाध्यक्ष, शालानिर्माण आहार आदिका प्रबन्ध और उपकरणोंका संग्रह तथा कर्मचारियोंकी नियुक्ति कराता है, इसी प्रकार रथोंके सम्बन्धमें रथाध्यक्ष भी करे ॥ १ ॥ इसके अतिरिक्त रथाध्यक्ष, नये रथ बनवाने और पुराने रथों को मरम्मत कराने के कार्यों को भी करवावे ॥ २ ॥

दशपुरुषो द्वादशान्तरो रथः ॥ ३ ॥ तस्मादेकान्तरावरा आषडन्तरादिति सप्तरथाः ॥ ४ ॥

दश पुरुषकी बराबर (एक पुरुष परिमाण १२ अंगुलका होता है, देखो, अधि २, अध्या, २०, सू, १०, ११), ऊंचाई और बारह पुरुषकी बराबर लम्बाई एकरथ की होनी चाहिये। इतने परिमाणका रथ उत्तम रथ कहाता है ॥ ३ ॥ बारह पुरुष अर्थात् बारह बिलांयद लम्बाईमें से एक २ बिलांयदकी लम्बाई कम करके कमसे कम छः बिलांयदकी लम्बाई तक के सात प्रकारके रथ होते हैं। अर्थात् सबसे बड़ा रथ बारह बिलांयद लम्बा,

फिर एक २ कम करके, ग्यारह, दस, नौ, आठ, सात तथा छः बिलांयद तक का लम्बा, ये सात प्रकारके रथ होते हैं, इनकी ऊंचाई भी लम्बाईके अनुसार ही कम करदेनी चाहिये ॥ ४ ॥

देवरथपुष्यरथसांग्रामिकपारियाणिकपरपुराभियानिकवैनयिकांश्च रथान्कारयेत् ॥ ५ ॥

भिन्न २ कार्योंमें उपयोग होनेके कारण, रथोंके निम्नलिखित नाम या भेद समझने चाहियें,: – देवरथ (यात्रा तथा उत्सव आदिमें देवप्रतिमाओं की सवारीके लिये काम में आने वाला रथ), पुष्यरथ (विवाह आदि माङ्गलिक कार्योंमें उपयुक्त होने वाला), सांग्रामिक (युद्धमें काम आने वाला), पारियाणिक (साधारण यात्रा करनेके काममें आने वाला) परपुराभियानिक (शत्रुके दुर्ग आदिको तोड़नेके समय उपयोगमें आने वाला), और वैनयिक (घोड़े आदिको चलाना सिखलानेके काममें आने वाला), आदि रथोंका भी रक्षाध्यक्ष निर्माण करावे ॥ ५ ॥

इष्वस्त्रप्रहरणावरणोपकरणकल्पनाः सारथिरथिकरथ्यानां च कर्मस्वायोगं विद्यात् ॥ ६ ॥ आकर्मभ्यश्च भक्तवेतनं भृतानामभृतानां च योग्यारक्षानुष्ठानमर्थमानकर्म च ॥ ७ ॥

रथाध्यक्षको चाहिये कि वह बाण, तूणीर, धनुष आदि अस्त्र, तोमर गदा आदि प्रहरण, रथ आदिके ऊपर डालनेके आवरण, और लगाम बागडोर आदि उपकरणोंके बनाये जानेके सम्बन्धमें, तथा सारथि (रथ आदिको चलाने वाला), रथिक (रथ आदिको जानने वाला), और रथ्य (रथमें जोते जाने वाले घोड़ों) आदिके अपने २ कार्योंमें नियुक्तिके सम्बन्धमें पूरी २ जानकारी रक्खे ॥ ६ ॥ और कार्यके समाप्त होनेतक, नियमित रूपसे कार्य करने वाले शिल्पियोंके भत्ता और वेतनका; अनियमित रूपसे कार्य करने वाले, अर्थात् थोड़े ही समयके लिये नियुक्त किये हुए शिल्पियोंके निर्वाह और कार्यके योग्य धन तथा सत्कार आदिका सुव्यवस्थित प्रबन्ध करे ॥ ७ ॥

एतेन पत्त्यध्यक्षो व्याख्यातः ॥ ८ ॥ स मौलभृतश्रेणिमित्रामित्राटवीबलानां सारफल्गुतां विद्यात् ॥ ९ ॥

रथाध्यक्षके व्यापारके समान ही पत्त्यध्यक्षका भी व्यापार समझलेना चाहिये ॥ ८ ॥ तथा इसके अतिरिक्त पत्त्यध्यक्षको चाहिये, कि वह मौल बल (मूलस्थान अर्थात् राजधानीमें होने वाली, या उसकी रक्षा करने वाली सेना) भृतबल (मौलसे अन्य वेतन भोगी सेना), श्रेणिबल (प्रान्तमें

भिन्न २ स्थानोंपर रहने वाली सेना), मित्रबल (मित्र राजाकी सेना), अमित्रबल (अपने शत्रु राजाकी सेना), और अटवीबल (जंगलमें रहने वाली सेना, अथवा जंगलकी रक्षा करने वाले अधिकारियोंके उपयोगमें आने वाली सेना), इन छः प्रकारकी सेनाओंकी सारता तथा फल्गुताको अच्छी तरह जाने। अर्थात् इनके सामर्थ्य या असामर्थ्य से अच्छी तरह परिचित रहे ॥ ९ ॥

निम्नस्थलप्रकाशकूटखनकाकाशदिवारात्रियुद्धव्यायामं च विद्यात् ॥ १० ॥ आयोगमयोगं च कर्मसु ॥ ११ ॥

और निम्नयुद्ध (जंगल तथा नीचे स्थानोंमें युद्ध करना), स्थलयुद्ध (मैदानमें होनेवाली लड़ाई), प्रकाशयुद्ध (आमने सामने भिड़कर होने वाली लड़ाई), कूटयुद्ध (कपट पूर्वक होने वाली लड़ाई), खनकयुद्ध (खाई खोदकर होनेवाली लड़ाई), आकाशयुद्ध (हवाई जहाजोंसे होने वाली लड़ाई), दिवायुद्ध (दिनमें होने वाली लड़ाई), और रात्रियुद्ध (रातमें होने वाली लड़ाई), इन आठ प्रकारके युद्धोंमें पत्त्यध्यक्षको अत्यन्त निपुण होना चाहिये ॥ १० ॥ देशकालके अनुसार सेनाओंके कार्योंमें उपयोग और अनुपयोग के सम्बन्ध में भी पत्त्यध्यक्ष को पूरी जानकारी रखनी चाहिये ॥ ११ ॥

तदेव सेनापतिः सर्वयुद्धप्रहरणविद्याविनीतो हस्त्यश्वरथचर्यासंघुष्टश्चतुरङ्गस्य बलस्यानुष्ठानाधिष्ठानं विद्यात् ॥ १२ ॥

अश्वाध्यक्षसे लगाकर पत्त्यध्यक्ष पर्यन्त, सेनाके चार अङ्गोंका जो कुछ कार्य बताया गया है, उस सब कार्यको सेनापति जाने। सेनापतिको हर तरहके युद्ध और हथियार आदिके चलाने तथा आन्वीक्षिकी आदि शास्त्रोंमें पूर्ण शिक्षित होना चाहिये, हाथी घोड़े रथ आदिके चलानेमें भी अत्यन्त निपुण होना चाहिये। और अपनी चतुरंग सेनाके कार्य तथा स्थानके सम्बन्ध में पूरी जानकारी रखनी चाहिये ॥ १२ ॥

स्वभूमिं युद्धकालं प्रत्यनीकमभिन्नभेदनं भिन्नसंधानं संहतभेदनं भिन्नवधं दुर्गवधं यात्राकालं च पश्येत् ॥ १३ ॥

इसके अतिरिक्त सेनापतिके ये आवश्यक कार्य हैं, कि वह अपनी भूमि, युद्धका समय, शत्रुकी सेना, शत्रुके व्यूहका तोड़ना, बिखरी हुई अपनी सेनाका इकटठा करना, एक दूसरेकी रक्षाके लिये इकट्ठे हुए शत्रु बलको फोड़ना बिखरे हुए शत्रु बलका मारना, शत्रुके दुर्गका तोड़ना, और यात्रा

का समय; इन बातोंपर अच्छी तरह विचार करे; और उसके अनुसार कार्य करे ॥ १३ ॥

तूर्यध्वजपताकाभिर्व्यूहसंज्ञाः प्रकल्पयेत् ।
स्थाने याने प्रहरणे सैन्यानां विनये रतः ॥ १४ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे रथाध्यक्षः पत्त्यध्यक्षः सेनापतिप्रचारश्च त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥ आदितः चतुष्पञ्चाशः ॥५४॥

सेनाओंकी शिक्षामें तत्पर हुआ २ सेनापति, स्थान, गमन और प्रहरण के सम्बन्धमें, बाजे, ध्वजा और झंडियोंके द्वारा अपनी सेनाके लिये इशारोंकी व्यवस्था करे। तात्पर्य यह है, कि युद्धके समयमें, सेनापति अपनी सेनाका संचालन करनेके लिये इस प्रकारके संकेतोंका प्रयोग करे, जिसेकि शत्रु, किसी तरहभी न समझ सके। ये संकेत बाजे या झंडियोंके द्वारा होने चाहियें ॥१४॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें तेतीसवां अध्याय समाप्त।

चौंतीसवां अध्याय

५२-५३ प्रकरण

मुद्राध्यक्ष और विवीताध्यक्ष

व्यावहारिक लेख आदिमें जो राजकीय चिन्ह किया जाता है, उसीका नाम 'मुद्रा' है। उसका जो प्रधान राजकीय अधिकारी हो उसको 'मुद्राध्यक्ष' कहते हैं। चरागाहका नाम विवीत है, उसके प्रधान व्यवस्थापक राजकर्मचारीको 'विवीताध्यक्ष' कहते हैं। इन दो प्रकरणोंमें दोनों अध्यक्षोंके कार्योंका निरूपण किया जायगा।

मुद्राध्यक्षो मुद्रां माषकेण दद्यात् ॥ १ ॥ समुद्रो जनपदं प्रवेष्टुं निष्क्रमितुं वा लभेत ॥ २ ॥

मुद्राध्यक्ष, एक माषक लेकर आने जानेवाले व्यक्तिको मुद्रा देदेवे; तात्पर्य यह है, कि जो पुरुष नगरमें आवें, अथवा वहांसे बाहर जावें, उनको राजकीय मुहर लगा हुआ परवाना देनेके बदलेमें उनसे एक माषक लिया जावे। (यह इसीलिये होता है कि जिससे आने जानेवाले पुरुषोंपर चोर, या शत्रुके चर आदि होनेकी शङ्का न की जा सके। एक माषक टैक्स सरकारी खजानेके लिए लिया जाता है) ॥ १ ॥ जिस आदमीके पास राज-

कीय मुद्रा हो, वही जनपदमें प्रवेश कर सकता है, और वही वहांसे बाहर जा सकता है ॥ २ ॥

द्वादशपणममुद्रो जानपदो दद्यात् ॥ ३ ॥ कूटमुद्रायां पूर्वः साहसदण्डः ॥ ४ ॥ तिरोजनपदस्योत्तमः ॥ ५ ॥

राजाके अपने ही जनपदमें रहनेवाला यदि कोई पुरुष राजकीय मुद्रा न लेवे तो उसे बारह पण दण्ड दिया जावे ॥ ३ ॥ यदि कपटमुद्रा (टैक्स से बचनेके लिए बनावटी मुहर) लेकर आना जाना चाहे, तो उस पुरुषको (यदि वह अपनेही जनपदका हो, तो) प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥४॥ यदि वह अन्य किसी प्रदेशका हो, तो उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५ ॥

विवीताध्यक्षो मुद्रां पश्येत् ॥ ६ ॥ भयान्तरेषु च विवीतं स्थापयेत् ॥ ७ ॥

विवीताध्यक्षका कार्य है, कि जो पुरुष मुद्रा न लेकर या कपटमुद्रा लेकर, ठीक मार्गोंसे न जाकर छिप २ कर जंगलोंमें होकर सफर करते हैं, ऐसे पुरुषोंके समीप मुद्रा की जांच करे, अर्थात् यह देखे कि इन लोगोंके पास मुद्रा है या नहीं ? यदि है तो कैसी है ? ॥ ६ ॥ जिन स्थानोंमें चोर या शत्रु और उसके चर आदि पुरुषोंके आने जानेकी अधिक शंका या सम्भावना हो, ऐसे ही स्थानोंमें चरागाहकी स्थापना कीजावे ॥ ७ ॥

चोरव्यालभयान्निम्नारण्यानि शोधयेत् ॥ ८ ॥ अनुदके कूपसेतुबन्धोत्सान्स्थापयेत्पुष्पफलवाटांश्च ॥ ९ ॥ लुब्धकश्वगणिनः परिव्रजेयुररण्यानि ॥ १० ॥

चोर और हिंसक जानवरोंके डरसे, गहरी खाइयों और घने जंगलोंका परिशोध करावें, अर्थात् इन स्थानोंमें चोर या हिंसक जानवर तो नहीं रहते ? इस बातकी बराबर परीक्षा करवाता रहे ॥ ९ ॥ जिन स्थानोंमें जलका अच्छा प्रबन्ध न हो, वहां पक्के कुए, पक्के तालाब तथा थोड़े समयके लिये कच्चे कुओंका भी प्रबन्ध करे । इसीप्रकार फूल तथा फलोंके बगीचे और प्याऊ आदिकी भी स्थापना कीजावे; अर्थात् स्थानोंकी आवश्यकताके अनुसार इनका भी प्रबन्ध किया जावे । शिकारी और बहेलिये जंगलोंमें बराबर घूमते रहें । (इनके घूमनेका मुख्य प्रयोजन, चोर तथा शत्रुओंके आने जानेका मालूम करना ही समझना चाहिये) ॥ १० ॥

तस्करामित्राभ्यागमे शङ्खदुन्दुभिशब्दमग्राह्याः कुर्युः शैलवृक्षविरूढा वा शीघ्रवाहना वा ॥ ११ ॥

चोर या शत्रुओंके आजानेपर, अन्तपालको उनकी सूचना देनेके लिये, पहाड़ अथवा वृक्ष आदिपर चढ़कर शङ्ख या दुन्दुभिको इसप्रकार बजावे, जिससे कि शत्रु या चोरोंको उस संकेतका कुछ पता न लगे, और अन्तपालको सब तरहकी सूचना मिलजाय। अथवा शीघ्रगामी घोड़ोंपर चढ़कर, अन्तपालके पास जाकर ही, उन सबकी उसे सूचना देवें ॥ ११ ॥

अमित्राटवीसंचारं च राज्ञो गृहकपोतैर्मुद्रायुक्तैर्हारयेयुः, धूमाग्निपरंपरया वा ॥ १२ ॥

अपने जगलमें आये हुए शत्रुओंकी, राजाको सूचना देनेके लिये, राजाकी मुहर लगे हुए, घरके पालतू कबूतरोंके द्वारा समाचार भिजवावें। तात्पर्य यह है कि उन सब खबरोंको चिट्ठीपर लिखकर और उसपर राजाकी मुहर लगाकर उन्हें, पालतू कबूतरोंके द्वारा राजाके पास भिजवा देवें। अथवा धूम और अग्निकी परम्परासे उस समाचारको राजातक पहुंचावें। इसका तात्पर्य यह है, कि जहां जंगलमें शत्रु आदि आये हुए हों वहां पासमें ही जो विवीताध्यक्ष आदि राजकर्मचारी हों, वे यदि रातका समय हो तो आग जलादें, और दिनका समय हो तो धुआं करदें। तदनन्तर इस संकेतको देखकर वहांसे राजधानीकी ओरको कोसभरके फासलेपर जो कर्मचारी हो वह भी इसीप्रकार अग्नि या धुऐंका संकेत करे; और इसी संकेतके अनुसार परम्परासे, राजधानी तक वह समाचार पहुंचा दिया जावे ॥ १२ ॥

द्रव्यहस्तिवनाजीवं वर्तिनीं चोररक्षणम् ।
सार्थातिवाह्यं गोरक्ष्यं व्यवहारं च कारयेत् ॥ १३ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीयेऽधिकरणे मुद्राध्यक्षो विवीताध्यक्षः चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥
आदितः पञ्चपञ्चाशः ॥ ५५ ॥

विवीताध्यक्षका यह भी कार्य है कि वह द्रव्यवन और हस्तिवनोंमें जो आजीव अर्थात् घास ईंधन और कोयले आदि हों, उनका प्रबन्ध करे। तथा वर्त्तनी (दुर्गके मार्गसे यात्रा करनेका टैक्स), चोरोंसे कीहुई रक्षाका टैक्स (अर्थात् चोरोंके उपद्रवसे, व्यापारियोंकी रक्षा करनेपर, उसके बदलेमें उनसे लिया हुआ टैक्स,) भयके स्थानमें होकर व्यापारियोंके सुखपूर्वक यात्रा करवा देनेका टैक्स, गोरक्षाका टैक्स, तथा इन पदार्थोंके क्रय विक्रयके व्यवहारका भी प्रबन्ध करावे ॥ १३ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें चौंतीसवां अध्याय समाप्त।

पैंतीसवां अध्याय ।

५४–५५ प्रकरण ।

समाहर्त्ताका कार्य; गृह-पति वैदेहक तथा तापसके वेशमें गुप्तचर ।

दुर्ग, जनपद, खान, जंगल, व्रज, व्यापारी मार्ग आदि सम्पूर्ण आयस्थानोंसे सब तरहकी आयको इकट्ठा करने वाले प्रधान राजकर्मचारीका नाम 'समाहर्त्ता' है । उसहीके कार्योंका पहले प्रकरणमें निरूपण किया जायगा । दूसरे प्रकरणमें गृहपति आदिके वेशमें रहने वाले गुप्तचरोंके कार्योंका निरूपण होगा ।

समाहर्ता चतुर्धा जनपदं विभज्य ज्येष्ठमध्यमकनिष्ठविभागेन ग्रामाग्रं परिहारकमायुधीयं धान्यपशुहिरण्यकुप्यविष्टिकरप्रतिकरमिदमेतावदिति निबन्धयेत् ॥ १ ॥ तत्प्रदिष्टः पञ्चग्रामीं दशग्रामीं वा गोपश्चिन्तयेत् ॥ २ ॥

समाहर्त्ताको चाहिये, कि वह जनपदको चार भागोंमें विभक्त करके, फिर उनमें भी ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठकी कल्पना करके (ज्येष्ठ कनिष्ठ विभाग, गांवोंकी मनुष्य–गणना और उपजके आधारपर होना चाहिये) ग्रामोंको (ग्रामोंकी पृथक् २ मनुष्य–गणना, और सामूहिक गणना; प्रत्येक गांवका पृथक् २ रक़बा, और सम्पूर्ण एक वर्गका रक़बा [चित्र-सहित] तथा उनकी भौगोलिक परिस्थितिको) 'यह इतना है' इसप्रकार अपनी पुस्तकमें लिख लेवे। जो गांव दानमें देदिये हों, अर्थात् जिनसे किसी प्रकारकी आमदनी न हो, उन गांवोंको अलहदा लिखलेवे । इसी प्रकार जो गांव, सैनिक पुरुषोंको देवें (अर्थात् सेनामें भरती होनेके लिये प्रतिवर्ष नियत संख्यक पुरुष देवें), तथा जो धान्य (अन्न आदि), पशु (गाय घोड़ा आदि), हिरण्य (सोना चांदी या उसके सिक्के आदि), कुप्य (सोने चांदीको छोड़कर अन्य वस्तु), और विष्टि (नौकर चाकर), आदिके रूपमें प्रतिवर्ष नियत कर देवें, उनको भी पृथक् २ अपनी पुस्तकमें लिखलेवे ॥ १ ॥ समाहर्त्ताकी आज्ञानुसार, पांच २ अथवा दस २ गांवोंका एक २ वर्ग बनाकर 'गोप' नामक अधिकारी उनका प्रबन्ध करे । (जनपदके चार विभागोंमेंसे एक २ विभागका प्रबन्ध करने वाला अधिकारी 'स्थानिक' कहाता है । यह 'गोप' नामक अधिकारी, उसके भी नीचे काम करने वाला होता है) ॥ २ ॥

सीमावरोधेन ग्रामाग्रं कृष्टाकृष्टस्थलकेदारारामषण्डवाटवन-वास्तुचैत्यदेवगृहसेतुबन्धश्मशानसत्रप्रपापुण्यस्थानाविवीतपथिसंख्यानेन क्षेत्राग्रं, तेन सीम्नां क्षेत्राणां च मर्यादारण्यपथिप्रमाण-सम्प्रदानविक्रयानुग्रहपरिहारनिबन्धान्कारयेत् ॥ ३ ॥ गृहाणाञ्च करदाकरदसंख्यानेन ॥ ४ ॥

ग्रामोंके परिमाणको नदी पहाड़ आदिकी सीमाका निर्देश करके लिखे; अर्थात् नदी पहाड़ आदिके द्वारा उनकी सीमाका निश्चय करके फिर उनके परिमाणको किताबमें लिखे इसी प्रकार खेतोंके परिमाणको भी निम्नलिखित कृष्ट आदि अठारह वस्तुओंके साथ २ लिखे; अर्थात् खेत आदिके परिमाणका निश्चय करके, जब किताबमें उसे लिखे, तो साथ ही साथ उससे सम्बन्ध रखने वाली कृष्ट आदि वस्तुओंका भी निर्देश करे । वे इस प्रकार हैं:—कृष्ट (जो ज़मीन खेती करनेके काममें आती हो, अर्थात् जिन ज़मीनोंमें खेती होती हो, उनमें बने हुए खेतोंके साथ लिखदिया जाय कि इनमें खेती होती है), अकृष्ट (जहां खेती न होती हो । अथवा 'कृष्ट' का अर्थ कृष्टपच्य [कठिनतासे पकने वाले] गेहूं आदिके खेत, और 'अकृष्ट' का अर्थ अकृष्टपच्य [थोड़ी मिहनतसे ही पक जाने वाले] धान आदिके खेत, करना चाहिये), स्थल (इधर उधरकी भूमिसे कुछ ऊँची भूमि जो ज्वार बाजरा आदिके लिये उपयोगी हो), केदार (साठी आदि धानोंके खेत), आराम (बागीचोंके खेत), षण्ड (केले आदिके खेत), वाट (ईख आदिके खेत), वन (ग्रामवासी पुरुषोंके लिये लकड़ीके जंगल), वास्तु (आबादीकी ज़मीन), चैत्य (संकेतके वृक्ष), देवगृह (देवालय आदिकी भूमि), सेतुबन्ध (जिसमें तालाब आदि हों), श्मशान, सत्र (अन्न देनेका स्थान), प्रपा (प्याऊ), पुण्यस्थान (तीर्थ आदि पवित्र स्थान), विवीत (चारागाह), और रथ गाड़ी तथा पैदल आने जानेके मार्ग । इसप्रकार पुस्तकमें जिस खेतके परिमाणका उल्लेख किया जावे, उसके साथही इन चीजोंमेंसे जो वहां हो उसका भी निर्देश करदिया जावे । इसीके अनुसार नदी पहाड़ आदि सीमाओंकी और खेतोंकी मर्यादा (अवधि, अर्थात् इनके चारों ओर क्या क्या चिन्ह हैं, इसबात) का भी पुस्तकमें उल्लेख करदिया जावे, इसी प्रकार अरण्य (ऐसे जंगल जो ग्रामवासियोंके किसी काममें न आते हों), खेतोंमें आने जानेके मार्ग, उनका अपना २ पृथक् परिमाण, सम्प्रदान (किस पुरुषने किसको अपना खेत जोतने आदिके लिये दिया हुआ है), विक्रय, अनुग्रह (आवश्यकता होनेपर किसान आदिको ऋण देकर उसकी सहायता करना),

और परिहार (कर आदिका छोड़ना), आदिके सम्बन्धकी भी सब बातोंका उल्लेख करदिया जावे ॥ ३ ॥ और आबादीके घरोंका भी, कर देने वाले तथा कर न देनेवालोंके विचारसे उल्लेख किया जावे। अर्थात् कितने घरोंमें कर देने-वाले ('कर' का अर्थ यहां, मकानका किराया, और भूमिका कर दोनों प्रकारसे करना चाहिये) पुरुष रहते हैं, और कितने घरोंमें कर न देनेवाले ॥ ४ ॥

तेषु चैतावच्चातुर्वर्ण्यमेतावन्तः कर्षकगोरक्षकवैदेहककारुकर्मकरदासाश्चैतावच्च द्विपदचतुष्पदमिदं च हिरण्यविष्टिशुल्कदण्डं समुत्तिष्ठतीति ॥ ५ ॥

पुस्तकमें इसबातका भी उल्लेख किया जावे, कि उन घरोंमें इतने ब्राह्मण, इतने क्षत्रिय, इतने वैश्य और इतने शूद्र रहते हैं; इसीतरह किसान, गोपालक (ग्वाले) व्यापारी, शिल्पी, कर्मकर (मज़दूर) और दासोंकी संख्याको भी पुस्तकमें लिखा जावे। फिर सम्पूर्ण मनुष्य, और पशुओंके जोड़को पृथक् २ लिखा जाय, अर्थात् सब मिलाकर इतने मनुष्य और इतने पशु हैं। और इनसे इतना हिरण्य, इतने नौकर चाकर, इतना टैक्स और इतना दण्ड प्राप्त हुआ है। अर्थात् इन चारों प्रकारोंसे इतनी आमदनी हुई है, यह भी पुस्तकमें लिख लिया जावे ॥ ५ ॥

कुलानां च स्त्रीपुरुषाणां बालवृद्धकर्मचरित्राजीवव्ययपरिमाणं विद्यात् ॥ ६ ॥

ग्रामके गोप नामक अधिकारीको चाहिये, कि वह परिवारके साथ सम्बन्ध रखने वाले स्त्री पुरुषोंके परिमाणको (अर्थात् एक परिवारमें कितने पुरुष और कितनी स्त्री हैं, उनकी तादादको), तथा बालक वृद्ध (अर्थात् उस परिवारमें कितने बालक और कितने बूढ़े हैं), उन सब पुरुषोंके वर्ण आदिके अनुसार कार्य, उनके चरित्र, उनकी आजीविका और व्ययके सम्बन्धमें पूरी २ जानकारी रक्खे। अर्थात् प्रत्येक परिवारकी उपर्युक्त परिस्थितियोंसे पूर्ण परिचित रहे ॥ ६ ॥

एवं च जनपदचतुर्भागं स्थानिकः चिन्तयेत् ॥ ७ ॥ गोपस्थानिकस्थानेषु प्रदेष्टारः कार्यकरणं बलिप्रग्रहं च कुर्युः ॥ ८ ॥

इसी प्रकार जनपदके चौथे हिस्सेका प्रबन्ध स्थानिक (इस नामका अधिकारी) करे ॥ ७ ॥ गोप और स्थानिकके कार्य्य करनेके स्थानोंमें, प्रदेष्टा (इस नामका कण्टक शोधनाधिकारी; देखो कण्टकशोधन, चतुर्थ अधिकरण) भी राज्य कण्टकोंके उखाड़नेका अपना कार्य करें; और गोप तथा

स्थानिकको स्वयम् ही टैक्स आदि न देनेवाले पुरुषोंसे, टैक्स आदि भी वसूल करें। अथवा राष्ट्रमें जो बलवान् होकर राज्य प्रबन्धमें विघ्न उपस्थित करते हैं उनका दमन करें, अर्थात् उनको इस प्रकार सीधा करें, जिससे कि वे गोप और स्थानिक अधिकारियोंके भी आज्ञाकारी होजावें ॥ ८ ॥

समाहर्तृप्रदिष्टाश्च गृहपतिकव्यञ्जना येषु ग्रामेषु प्रणिहिता-स्तेषां ग्रामाणां क्षेत्रगृहकुलाग्रं विद्युः ॥ ९ ॥ मानसंजाताभ्यां क्षेत्राणि भोगपरिहाराभ्यां गृहाणि वर्णकर्मभ्यां कुलानि च ॥ १० ॥

समाहर्त्ताकी आज्ञानुसार गृहपति (गृहस्थ) के वेशमें रहनेवाले गुप्तचर जिन ग्रामोंमें नियुक्त किये जावें, उन ग्रामोंके क्षेत्र (रकबा अथवा खेत आदि), घर और परिवारोंके परिमाणको अच्छी तरह जानें ॥ ९ ॥ वे गुप्तचर पुरुष, गांवके रकबे या खेत आदिकोंको उनके माप और उनकी उपजके साथ जानें; अर्थात् खेतोंके सम्बन्धमें जाननेकी यही बात है, कि उनका ठीक परिमाण कितना है और उनमें क्या २ उपज होती है। इसी प्रकार घरोंके सम्बन्धमें यह जानें, कि कौनसे घरोंसे कर वसूल किया जाता है, और कौनसे घरोंपर कर छोड़ा हुआ है। तथा कुलोंके (परिवारों के) सम्बन्धमें जानने की यह बात है, कि वे कौन वर्ण हैं (ब्राह्मण, क्षत्रिय आदिमें से), और क्या कार्य करते हैं ॥ १० ॥

तेषां जंघाग्रमायव्ययौ च विद्युः ॥ ११ ॥ प्रस्थितागतानां च प्रवासावासकारणमनर्थ्यानां च स्त्रीपुरुषाणां चारप्रचारं च विद्युः ॥ १२ ॥

उन परिवारोंके सब प्राणियों की संख्या (सूत्रमें 'जंघाग्रं' शब्द है, जंघा शब्द चलने फिरनेवालोंका उपलक्षण है, इसलिये यहां पर परिवारके मनुष्य और पशु आदि सबकी ही गणना अपेक्षित है) और उनके सम्बन्धसे होनेवाले आय-व्ययको भी जानें ॥ ११ ॥ अपने निवास स्थानको छोड़कर दूसरी जगह बसनेके लिए जानेवाले, दूसरे प्रदेश से उठकर यहां बसनेके लिये आनेवाले, पहिले यहांसे उठकर और कहीं जाकर फिर उसी स्थानपर लौटकर आनेवाले पुरुषोंके प्रवास (अपने निवास-स्थानको छोड़कर जाना) और आवास (दूसरी जगह जाकर बसना) के कारणको जानें। राजोपयोगी कुछ भी कार्य न करनेवाले स्त्री (नर्त्तकी कुट्टनी आदि) पुरुषों (भांड, जुआरी आदि) के प्रवास और आवासको भी जानें। तथा यह भी जानें, कि शत्रुके द्वारा प्रयुक्त हुए २ गुप्तचर कहां २ पर अपना कार्य कररहे हैं ॥ १२ ॥

एवं वैदेहकव्यञ्जनाः स्वभूमिजानां राजपण्यानां खनिसेतुवनकर्मान्तक्षेत्रजानां परिमाणमर्घं च विद्युः ॥ १३ ॥ परभूमिजातानां वारिस्थलपथोपयातानां सारफल्गुपण्यानां कर्मसु च शुल्कवर्तन्यातिवाहिकगुल्मतरदेयभागभक्तपण्यागारप्रमाणं विद्युः ॥ १४ ॥

इसी प्रकार व्यापारीके वेशमें रहने वाले गुप्तचर, अपने प्रान्तमें उत्पन्न हुई राजकीय विक्रेय खनिज (खानसे उत्पन्न होने वाली), सेतुज (तालाब आदिमें उत्पन्न होने वाली) वनज (जंगलोंमें उत्पन्न होने वाली), कर्मान्तज (कारखाने आदिसे उत्पन्न होने वाली), और क्षेत्रज (खेतोंसे उत्पन्न होने वाली) वस्तुओंके परिमाण और मूल्यको अच्छी तरह जानें ॥ १३ दूसरे प्रदेशोंमें उत्पन्न हुई २, जलमार्ग तथा स्थलमार्गसे अपने देशमें आई हुई, साररूप अथवा फल्गुरूप विक्रेय वस्तुके क्रय विक्रय व्यवहारमें होने वाले परिमाण और मूल्यको जानें । तथा यह भी जानें, कि इन विदेशी वस्तुके व्यापारियोंने शुल्क (शुल्काध्यक्षको दिया जानेवाला टैक्स=चुंगी), वर्त्तनी (अन्तपालको दिया जानेवाला टैक्स), गुल्मदेय (मार्ग रक्षक पुलिसका टैक्स), तरदेय (नाव आदिसे पार होनेका टैक्स), भाग (साझियोंको दिया जानेवाला हिस्सा), भक्त (व्यवहारी पुरुषके बैल आदिके भोजनका व्यय), और पण्यागार (बाज़ारका टैक्स) कितना २ दिया है ॥ १४ ॥

एवं समाहर्तृप्रदिष्टास्तापसव्यञ्जनाः कर्षकगोरक्षकवैदेहकानामध्यक्षाणां च शौचाशौचं विद्युः ॥ १५ ॥ पुराणचोरव्यञ्जनाश्चान्तेवासिनश्चैत्यचतुष्पथशून्यपदोदपाननदीनिपानतीर्थायतनाश्रमारण्यशैलवनगहनेषु स्तेनामित्रप्रवीरपुरुषाणां च प्रवेशनस्थानगमनप्रयोजनान्युपलभेरन् ॥ १६ ॥

इसी तरह समाहर्त्ताकी आज्ञानुसार, तपस्वीके वेशमें रहने वाले गुप्तचर, किसान ग्वाले व्यापारी और अध्यक्षोंकी ईमानदारी या बेईमानीकी जांच रक्खें ॥ १५ ॥ पुराने चोरोंके वेषमें रहने वाले, उन तापस वेषधारी गुप्तचरोंके शिष्य; देवालय, चौराहा, निर्जन स्थान (शून्य स्थान), तालाब, नदी, कुओंके समीपके जलाशय, तीर्थस्थान, मुनियोंके आश्रम, अरण्य पहाड़ तथा घने जंगलोंमें ठहरकर; चोर शत्रु तथा शत्रुसे प्रयुक्त किये हुए तीक्ष्ण और रसद आदि पुरुषोंके, वहां आने ठहरने और जानेके कारणोंका अच्छीतरह पता लगावें ॥ १६ ॥

समाहर्ता जनपदं चिन्तयेदेवमुत्थितः ।
चिन्तयेयुश्च संस्थास्ताः संस्थाश्चान्याः स्वयोनयः ॥ १७ ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे समाहर्तृप्रचारो गृहपतिवैदेहकतापसव्यञ्जनप्रणिधयश्च पञ्चत्रिंशो ऽध्यायः ॥ ३५ ॥

आदितः षट्पञ्चाशः ॥ ५६ ॥

इसप्रकार अपने कार्योंमें तत्पर हुआ २ समाहर्त्ता, जनपदका सुप्रबन्ध करे। और समाहर्त्ताकी आज्ञानुसार कार्य करते हुए, गृहपति आदिके वेषमें रहने वाले गुप्तचरोंके संघ, तथा राज्य रक्षाके निमित्त इसी प्रकारके बनाये हुए और भी संघ, सदा जनपदके सुप्रबन्धकी चिन्तामें रहें ॥ १७ ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें पैंतीसवां अध्याय समाप्त ।

छत्तीसवां अध्याय ।

५६ प्रकरण ।

नागरिकका कार्य ।

नगरका प्रबन्ध करनेके लिये नियुक्त हुए अधिकारीका नाम 'नागरिक' है। इस प्रकरणमें उसहीके कार्योंका निरूपण किया जायगा ।

समाहर्तृवन्नागरिको नगरं चिन्तयेत् ॥ १ ॥ दशकुलीं गोपो विंशतिकुलीं चत्वारिंशत्कुलीं वा ॥ २ ॥ स तस्यां स्त्रीपुरुषाणां जातिगोत्रनामकर्मभिः जंघाग्रमायव्ययौ च विद्यात् ॥ ३ ॥

जिस प्रकार समाहर्त्ता, जनपदके कार्यकी चिन्ता करता है, इसीप्रकार नागरिक नगरके प्रबन्धकी चिन्ता करे। अर्थात् समाहर्त्ता जिस प्रकार जनपदके चार विभाग करके गोप और स्थानिककी सहायतासे उसका प्रबन्ध करता है, इसी तरह नागरिक भी करे ॥ १ ॥ उत्तम हों तो दसकुल, मध्यम बीसकुल और अधम चालीस कुलोंका, गोप नामक अधिकारी प्रबन्ध करे ॥ २ ॥ वह उन कुलोंमें विद्यमान स्त्री पुरुषोंके वर्ण, गोत्र, नाम और कार्योंके साथ २, उनकी संख्या और उनके आय व्ययको भी जाने ॥ ३ ॥

एवं दुर्गचतुर्भागं स्थानिकश्चिन्तयेत् ॥ ४ ॥ धर्मावसथिनः पाषण्डिपथिकानावेद्य वासयेयुः ॥ ५ ॥ स्वप्रत्ययांश्च तपस्विनः श्रोत्रियांश्च ॥ ६ ॥

इसी प्रकार दुर्गके चौथे हिस्सेका प्रबन्ध स्थानिक करे। अर्थात् वहांपर रहने वाले स्त्री पुरुषोंके वर्ण आदिके साथ २, उनकी संख्या और आय व्ययको भी जाने ॥ ४ ॥ धर्मावसथ अर्थात् धर्मशालाओंके अधिकारी निरीक्षक पुरुष पाखण्डी पथिकोंको, गोपको, निवेदन करकेही (अर्थात् गोपकी अनुमति लेकरही) धर्मशालाओंमें ठहरने देवें ॥ ५ ॥ तथा जिन तपस्वी या श्रोत्रियोंको, धर्मशालाके अधिकारी स्वयं जानते हैं, उनके ठहरनेका प्रबन्ध धर्मशालाओंमें अपने जिम्मेवारीपर ही करें ॥ ६ ॥

कारुशिल्पिनः स्वकर्मस्थानेषु स्वजनं वासयेयुः ॥ ७ ॥ वैदेहकाश्चान्योन्यं स्वकर्मस्थानेषु पण्यानामदेशकालविक्रेतारमस्वकरणं च निवेदयेयुः ॥ ८ ॥

कारु अथवा शिल्पी अपने विश्वस्त यात्री पुरुषोंको, अपने कार्य करनेके स्थानोंमें ठहरालेवें ॥ ७ ॥ व्यापारी, अपने विश्वस्त यात्रियोंको, परस्पर एक दूसरेकी दुकानोंपर ठहरालेवें। परन्तु जो पुरुष देशकालके विपरीत विक्रय करने वाला हो, या पराई चीजका व्यवहार करता हो, उसकी सूचना नागरिकको देदेवें ॥ ८ ॥

शौण्डिकपाक्वमांसिकौदनिकरूपाजीवाः परिज्ञातमावासयेयुः ॥ ९ ॥ अतिव्ययकर्तारमत्याहितकर्माणं च निवेदयेयुः ॥ १० ॥

मद्य बेचने वाले, पका मांस बेचने वाले, पका हुआ अन्न बेचने वाले (अर्थात् होटल वाले), और वेश्यायें; ये सब अपने परिचित आदमीको (अर्थात् अपने कार्य या शील आदिकी समानतासे परिचित हुए २ पुरुषको) अपने यहां ठहरा सकते हैं ॥ ९ ॥ जो पुरुष अत्यधिक व्यय करने वाला हो, अथवा अत्यधिक मात्रामें मद्य आदि पीवें: उसकी सूचना गोप अथवा स्थानिकको देदीजावे ॥ १० ॥

चिकित्सकः प्रच्छन्नव्रणप्रतीकारकारयितारमपथ्यकारिणं च गृहस्वामी च निवेद्य गोपस्थानिकयोर्मुच्येतान्यथा तुल्यदोषः स्यात् ॥ ११ ॥

जो पुरुष हथियार आदिसे लगे हुए घावोंकी छिपे तौरपर चिकित्सा कराता है, और रोग या मरी आदिको फैलाने वाले द्रव्योंको छिपे तौरपर ही उपयोग करता है, उसकी चिकित्सा करने वाला चिकित्सक, यदि गोप या स्थानिकको उसके सम्बन्धमें सूचना देदेता है, तो वह अपराधी नहीं समझा जासकता। यदि चिकित्सक सूचना न देवे, तो अपराधीके समान ही उसको

भी दण्ड दिया जाय। इसी प्रकार जिस घरमें यह कार्य हो, उस घरका मालिक भी इस तरहके पुरुषोंकी, गोप या स्थानिकको सूचना देकर अपराधसे मुक्त होसकता है; यदि वह सूचना न देवे, तो उसे भी अपराधीके समान ही दण्ड दिया जावे ॥ ११ ॥

प्रस्थितागतौ च निवेदयेत् ॥ १२ ॥ अन्यथा रात्रिदोषं भजेत ॥ १३ ॥ क्षेमरात्रिषु त्रिपणं दद्यात् ॥ १४ ॥

घरके मालिकको चाहिये, कि वह घरसे जानेवाले या घरमें आने वाले पुरुषकी सूचना गोप आदिको देवे ॥ १२ ॥ सूचना न देनेपर, यदि वे लोग रात्रिमें कोई चोरी आदिका अपराध करें, तो उसका भागी गृहस्वामीको होना पड़ेगा; अर्थात् गृहस्वामी उसका उत्तरदाता होगा ॥ १३ ॥ यदि वे लोग चोरी आदिका कोई अपराध न करें, तो भी जाने आनेकी सूचना न देनेके कारण गृहस्वामीको प्रतिरात्रि तीन पण दण्ड दिया जावे ॥ १४ ॥

पथिकोत्पथिकाश्च बहिरन्तश्च नगरस्य देवगृहपुण्यस्थानवनश्मशानेषु सव्रणमनिष्टोपकरणमुद्भाण्डीकृतमाविग्नमतिस्वप्नमध्वक्लान्तमपूर्वं वा गृह्णीयुः ॥ १५ ॥

व्यापारी आदिके वेषमें बड़े २ मार्गोंपर घूमने वाले चर, तथा ग्वाले लकड़हारे आदिके वेषमें रास्तोंको छोड़कर जंगलोंमें घूमने वाले चर; नगरके भीतर या बाहर बने हुए देवालयों, तीर्थस्थानों, जंगलों या श्मशानोंमें यदि किसी हथियार आदिके घाव लगे हुए, निषिद्ध (हथियार या विष आदि) वस्तुओंको पास रखने वाले, शक्तिसे अधिक भार उठाये हुए, डरे या घबड़ाये हुए, घोर निद्रामें सोये हुए, लम्बा सफ़र करनेके कारण थके हुए, या अन्य किसी अजनबी आदमीको देखें, तो उसे पकड़ लेवें; अर्थात पकड़कर नागरिक आदि किसी अधिकारीके सुपुर्द करदेवें ॥ १५ ॥

एवमभ्यन्तरे शून्यनिवेशावेशनशौण्डिकौदनिकपाक्कमांसिकद्यूतपाषण्डावासेषु विचयं कुर्युः ॥ १६ ॥

इसी प्रकार नगरके अन्दर, शून्य स्थानमें (अर्थात् खाली पड़े हुए मकानोंमें), शिल्पशालामें (आवेशन), मद्यकी दूकानों, होटलों, पका मांस बेचने वालोंकी दूकानों, जुआरियोंके स्थानों तथा पाखण्डियोंके रहनेके स्थानोंमें भी, उपर्युक्त हथियारके घाव वाले पुरुषों आदि का अन्वेषण किया जावे। अर्थात् गुप्त पुरुष उक्त स्थानों में उनको ढूंढकर नागरिक आदि के सुपुर्द करदें ॥ १६ ॥

अग्निप्रतीकारं च ग्रीष्मे मध्यमयोरह्नश्चतुर्भागयोः ॥ १७ ॥ अष्टभागो ऽग्निदण्डः ॥१८॥ बहिराधिश्रयणं वा कुर्युः ॥१९॥

गरमी की मौसम में, दिनके बीचके चार भागोंमें अग्निका प्रतीकार किया जावे, अर्थात् अग्नि जलानेका निषेध किया जावे। (यह निषेध फूंस आदिके बनेहुए मकानोंके लिये ही समझना चाहिये) ॥ १७ ॥ जो पुरुष इस आज्ञाका उल्लंघन करे; अर्थात् गरमीकी मौसममें दिनके दूसरे तीसरे पहर मध्यान्हके समयमें, फूंसके मकानोंके अन्दर आग जलावें, उन्हें एक पणका आठवां हिस्सा दण्ड दिया जावे ॥ १८ ॥ अथवा अग्नि सम्बन्धी कार्य को बाहर करें अर्थात् फूंस के मकानों से बाहर खुली जगह में करें ॥ १९ ॥

पादः पञ्चघटीनां, कुम्भद्रोणीनिश्रेणीपरशुशूर्पाङ्कुशकचग्रहणीदृतीनां चाकरणे ॥ २० ॥

यदि कोई पुरुष निषिद्ध समयमें पांच घटिका पर्यन्त अग्निका कार्य करे, तो उसे चौथाई पण दण्ड दिया जावे। और उस पुरुषको भी चौथाई पण दण्ड दिया जावे, जोकि गरमीकी मौसममें अपने घरके दरवाजेके सामने, पानीसे भरे हुए घड़े, पानीसे भरी हुई द्रोणी (लकड़ीकी बनी हुई बहुत बड़ी नांदसी), नसेनी (लकड़ी आदिकी सीढ़ी) कुल्हाड़ा (आग लगनेपर रस्सी आदि काटनेके लिये), सूप छाज, सामनेसे फैलते हुए धुंएंको रोकनेके लिये), अंकुश (कांचा, लम्बे बांस आदिमें आगे लगा हुआ लोहेका हुक; यह आग लगनेपर भीतरसे सामान निकालनेके काममें आता है), कचग्रहणी (छप्परके ऊपरके फूंसको उतारनेके लिये एक विशेष साधन), और चमड़ेकी मशकका इन्तजाम न रक्खें। क्योंकि गरमीमें आगसे बचनेके लिये इन चीजोंका संग्रह करना अत्यन्त आवश्यक है ॥ २० ॥

तृणकटच्छन्नान्यपनयेत् ॥ २१ ॥ अग्निजीविन एकस्थान् वासयेत् ॥ २२ ॥ स्वगृहप्रद्वारेषु गृहस्वामिनो वसेयुरसंपातिनो रात्रौ ॥ २३ ॥ रथ्यासु कटव्रजाः सहस्रं तिष्ठेयुः ॥ २४ ॥ चतुष्पथद्वारराजपरिग्रहेषु च ॥ २५ ॥

फूंस और चटाईके मकानोंको गरमीके मौसममें उठा दिया जावे ॥ २१ ॥ अग्निके द्वारा जीविका करने वाले लुहार बढ़ई आदिको, नगरके एक ओर इकट्ठाही बसाया जावे ॥ २२ ॥ घरोंके मालिक लोग रात्रिमें इधर उधर न जाकर अपने घरके दरवाजोंपर ही निवास करें ॥ २३ ॥ गलियों या बाज़ारोंमें एक

हजार जलके भरे हुए घड़ोंका सदा प्रबन्ध रहे ॥ २४ ॥ और इसी प्रकार चौराहे, नगरके प्रधान द्वार, राजपरिग्रहों (खजाना, कुप्यागार, कोष्ठागार पण्यागार, गजशाला, अश्वशाला आदि) में भी जलके भरे हुए हज़ार २ घड़ोंका प्रबन्ध करना चाहिये ॥ २५ ॥

प्रदीप्तमनभिधावतो गृहस्वामिनो द्वादशपणो दण्डः ॥२६॥ षट्पणोऽवक्रयिणः ॥ २७ ॥ प्रमादाद्दीप्तेषु चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ २८ ॥ प्रादीपिकोऽग्निना वध्यः ॥ २९ ॥

यदि घरमें लगी हुई आगको देखकरभी कोई गृहस्वामी उसका प्रबन्ध न करे, तो उसे बारह पण दण्ड दिया जावे ॥ २६ ॥ और ऐसा ही करनेपर छः पण दण्ड उसको दिया जावे, जो पुरुष भाड़ा देकर उस घरमें रहता हो ॥ २७ ॥ यदि असावधानीसे अपने ही घरमें आग लग जावे, तो घरके मालिकोंको चौवन (५४) पण दण्ड दिया जावे । (किसी २ व्याख्याकारने लिखा है कि यह दण्ड उन मकानोंके रक्षकोंको होना चाहिये) ॥ २८ ॥ मकान आदिमें आग लगाने वाले पुरुषको, यदि वह उसी समय पकड़ा जाय तो उसे प्राण दण्ड देना चाहिये । (कालान्तरमें पकड़े जानेपर भी उसे अग्निदाह द्वारा प्राण दण्ड देनेका विधान 'कण्टकशोधन' अधिकरणमें किया जायगा (देखो:— अधि. ४, अध्या ११. सू. २९) ॥ २९ ॥

पांसुन्यासे रथ्यायामष्टभागो दण्डः ॥ ३० ॥ पङ्कोदकसंनिरोधे पादः ॥ ३१ ॥ राजमार्गे द्विगुणः ॥ ३२ ॥

सड़कपर, मट्टी या कूड़ा करकट डालनेवाले पुरुषको $\frac{१}{८}$ (एक पणका आठवां हिस्सा) पण दण्ड दिया जावे ॥ ३० ॥ तथा जो पुरुष, गारा कीचड़ या पानीसे सड़कको रोके, उसे $\frac{१}{४}$ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३१ ॥ जो पुरुष राजमार्गको इसप्रकार रोके, उसे इससे दुगना अर्थात् पहिले अपराधमें $\frac{१}{४}$, और दूसरे अपराधमें $\frac{१}{२}$ पण दण्ड दियाजावे ॥ ३२ ॥

पुण्यस्थानोदकस्थानदेवगृहराजपरिग्रहेषु पणोत्तरा विष्ठादण्डाः ॥ ३३ ॥ मूत्रेष्वर्धदण्डाः ॥ ३४ ॥ भैषज्यव्याधिभयनिमित्तमदण्ड्याः ॥ ३५ ॥

पहिले सूत्रसे, इस सूत्रमें 'राजमार्ग' पदकी अनुवृत्ति करलेनी चाहिये; इसलिये राजमार्ग, पुण्यस्थान (पवित्र तीर्थस्थान) उदकस्थान (कुआं तालाब आदि), देवगृह (देवालय), और राजपरिग्रह (खजाना कोष्ठागार आदि), इन स्थानोंमें जो पुरुष विष्ठा डाले, अर्थात् मलका परित्याग करे, उसे उत्तरो-

सर एक पण अधिक दण्ड देना चाहिये, तात्पर्य यह है, कि राजमार्गपर मल त्याग करने वालेको एक पण, पुण्यस्थानमें त्यागने वालेको दो पण, उदकस्थानमें त्यागनेपर तीन पण, इत्यादि रूपसे दण्ड दिया जावे ॥ ३३ ॥ इन्हीं उपर्युक्त स्थानोंमें मूत्र-त्याग करनेपर, आधा दण्ड दिया जावे। अर्थात् राजमार्गपर मूत्र-त्यागनेपर ½ पण, पुण्यस्थानमें त्यागनेपर एक पण, उदकस्थानमें मूत्र त्यागनेपर डेढ़ (१½) पण, देवालयमें त्यागनेपर दो पण और राजपरिग्रहमें मूत्र-त्याग करनेपर ढाई (२½) पण दण्ड दिया जावे ॥ ३४ ॥ यदि विरेचनकी औषधका सेवन करनेके कारण, या अतीसार तथा प्रमेह आदि बीमारीके कारण, अथवा किसी विशेष भयसे, इसप्रकार उक्त स्थानोंमें मल-मूत्रका त्याग होजावे; तो उस पुरुषको दण्ड न दिया जावे ॥ ३५ ॥

मार्जारश्वनकुलसर्पप्रेतानां नगरस्यान्तरुत्सर्गे त्रिपणो दण्डः ॥ ३६ ॥ खरोष्ट्राश्वतराश्वपशुप्रेतानां षट्पणः ॥ ३७ ॥ मनुष्यप्रेतानां पञ्चाशत्पणः ॥ ३८ ॥

बिलाव, कुत्ता, नेवला, और सांप, इनके मरजानेपर, इनको यदि नगरके समीप या नगरके बीचमें ही छोड़ दिया जावे, तो छोड़ने वाले व्यक्तिको तीन पण दण्ड दिया जावे ॥ ३६ ॥ और यदि गधा, ऊँट, खच्चर तथा घोड़ा आदि पशुओंके मृत-शरीरोंको इस तरह छोड़ दिया जावे, तो छोड़ने वाले पुरुषको छः पण दण्ड दिया जाय ॥ ३७ ॥ इसी प्रकार यदि मनुष्यके मृत शरीरको छोड़ा जाय, तो छोड़ने वालेको पचास पण दण्ड दिया जावे ॥ ३८ ॥

मार्गविपर्यासे शवद्वारादन्यतः शवनिर्णयने पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३९ ॥ द्वाःस्थानां द्विशतम् ॥ ४० ॥ श्मशानादन्यत्र न्यासे दहने च द्वादशपणो दण्डः ॥ ४१ ॥

मुर्दोंके लेजानेके लिये जो मार्ग नियत हैं, उनसे भिन्न मार्गोंसे मुर्दोंको लेजानेपर, तथा नियत द्वारको छोड़कर, दूसरे द्वारसे नगरके बाहर मुर्देको निकालनेपर, प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ३९ ॥ और द्वारके रक्षक पुरुषको जोकि इसप्रकार मुर्देको लेजानेपर न रोके, दोसौ पण दण्ड दिया जावे ॥ ४० ॥ श्मशानके लिये नियत भूमिको छोड़कर, जो पुरुष मुर्दोंको दूसरी जगह गाड़ें या जलावें, उन्हें बारह पण दण्ड दिया जावे ॥ ४१ ॥

त्रिपणनालिकमुभयतोरात्रं यामतूर्यम् ॥ ४२ ॥ तूर्यशब्दे राज्ञो गृहाभ्याशे सपादपणमक्षणताडनं प्रथमपश्चिमयामिकम् ॥ ४३ ॥ मध्यमयामिकं द्विगुणं, बहिश्चतुर्गुणम् ॥ ४४ ॥

रात्रिके प्रथम भाग और अन्तिम भागकी छः २ घड़ियोंको छोड़कर दोनों वार रात्रिमें बाजेका बहुत ऊंचा शब्द किया जावे । इसका तात्पर्य यह है, कि रात्रिको प्रथम छः घड़ी व्यतीत होजानेसे लगाकर अन्तिम रात्रि की जब छः घड़ी शेष रहजावें, तो इस बीच समयमें कोई भी आदमी सड़कोंपर न आवे जावे । इस बातकी सूचनाके लिये रातकी पहिली छः घड़ी बीतनेपर बाजेका ऊंचा शब्द किया जावे, इसी प्रकार जब छः घड़ी रात शेष रहजावे, तब भी उस बाजेके शब्दसे ही, उस समयके बीतनेकी सूचना देदी जावे ॥ ४२ ॥ उस रात्रिघोषणाके बाद जो आदमी, राजाके घरके पाससे गुजरता हुआ देखा जावे, उसे असमय चलनेके अपराधमें सवा (१¼) पण दण्ड दिया जावे, परन्तु यह इतना दण्ड निषिद्ध समयकी प्रथम और अन्तिम घड़ीके लिये ही समझना चाहिये ॥ ४३ ॥ जो पुरुष निषिद्ध समयके मध्य प्रहरोंमें ही आवे जावे, उसे इसका दुगना अर्थात् ढाई (२½) पण दण्ड दिया जावे । ये दण्ड नगरके भीतर ही निषिद्ध समयमें चलने फिरनेके हैं । जो पुरुष नगरके बाहर ऐसे समयमें आवे जावे; उसे उक्त दण्डका चौगुना अर्थात् पांच पण दण्ड दिया जावे ॥ ४४ ॥

शङ्कनीये देशे लिङ्गे पूर्वापदाने च गृहीतमनुयुञ्जीत ॥ ४५ ॥ राजपरिग्रहोपगमने नगररक्षारोहणे च मध्यमः साहसदण्डः ॥ ४६ ॥ सूतिकाचिकित्सकप्रेतप्रदीपयाननागरिकतूर्यप्रेक्षाग्निनिमित्तं मुद्राभिश्चाग्राह्याः ॥ ४७ ॥

उक्त निषिद्ध समयमें जो पुरुष शङ्कनीय स्थानों (जहांपर रहनेसे उनके ऊपर चोर आदिकी शङ्का कीजासके, घरके बागीचों आदिमें छिपे हुए, अथवा ऐसे ही अन्य स्थानों) में पाये जावें; या जिनके पास इसी तरहकी शङ्का होजानेके चिन्ह विद्यमान हों, तथा जिनकी चोरी आदिका वृत्तान्त पहिले मालूम होचुका हो, ऐसे पुरुषोंको पकड़कर उनसे पूछा जावे, कि तुम कौन हो ? कहांसे आये हो ? किसके हो ? और यहां तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है ? इत्यादि । इन बातोंका उत्तर मिलनेपर उसकी उचित व्यवस्था कीजावे ॥ ४५ ॥ यदि कोई इसप्रकारका मनुष्य सरकारी निवास आदिके स्थानोंमें प्रविष्ट होजावे, अथवा नगर रक्षाके लिये बनेहुए सफ़ील या बुर्ज आदिके ऊपर चढ़जावे, तो उसे मध्यम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ४६ ॥ यदि कोई पुरुष, निषिद्ध समयमें भी सूतिका (प्रसूता स्त्री), चिकित्सक, प्रेत (शव आदिके उठाने), प्रदीपयान (हाथमें प्रकाश लेकर जाने), नागरिकतूर्य (नागरिक पुरुषोंको सूचनाके लिये बाजा बजाने), प्रेक्षा (राजासे अनुमत

नाटक आदि देखने), तथा अग्नि (आग आदिके लग जाने) के कारण इधर उधर आवें जावें, तथा जिनके पास मन्त्री या 'नागरिक' आदिकी सरकारी मुहर हो, उनको न पकड़ा जावे ॥ ४७ ॥

चाररात्रिषु प्रच्छन्नविपरीतवेषाः प्रव्रजिता दण्डशस्त्रहस्ताश्च मनुष्या दोषतो दण्ड्याः ॥ ४८ ॥ रक्षिणामवार्यं वारयतां वार्यं चावारयतामक्षणद्विगुणो दण्डः ॥ ४९ ॥

जिन रात्रियोंमें प्रत्येक पुरुषको, हरजगह घूमने फिरनेकी आज्ञा हो, ऐसी महोत्सव आदि सम्बन्धी रात्रियोंमें, जो पुरुष प्रच्छन्नवेषमें (अर्थात् मुंह आदिको ढककर), अथवा विपरीत वेषमें (स्त्री पुरुषोंके वेषमें और पुरुष स्त्रियोंके वेषमें), घूमते हुए देखे जावें; तथा जो मनुष्य सन्यासीके वेषमें, अथवा हाथमें दण्ड या और कोई हथियार लियेहुए देखेजावें; उन्हें पकड़कर उनके अपराधके अनुसार उनको दण्ड दिया जावे ॥ ४८ ॥ जो नगररक्षक पुरुष, न रोकने योग्य आदमीको आने जानेसे रोकें, और रोकने योग्य आदमीको न रोकें, उनको असमय जाने वाले पुरुषोंके दण्डसे (देखो, इसी अध्यायका तेतालीसवां सूत्र) दुगना अर्थात् ढाई (२½) पण दण्ड दिया जावे ॥ ४९ ॥

स्त्रियं दासीमधिमेहयतां पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५० ॥ अदासीं मध्यमः ॥ ५१ ॥ कृतावरोधामुत्तमः ॥ ५२ ॥ कुलस्त्रियं वधः ॥ ५३ ॥

जो पुरुष, दूसरेकी स्त्री दासीके साथ बलात्कार गमन करें, उनको प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५० ॥ दासीसे भिन्न गणिका आदिके साथ जो बलात्कार गमन करें, उनको मध्यम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५१ ॥ जो किसीके द्वारा भार्या रूपसे स्वीकार कीहुई दासी या अदासी स्त्रीके साथ इस प्रकारका व्यवहार करें, उनको उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५२ ॥ तथा जो कुलीन स्त्रियोंके साथ इसप्रकारका वर्त्ताव करें, उनको प्राणदण्ड दिया जावे ॥ ५३ ॥

चेतनाचेतनिकं रात्रिदोषमशंसतो नागरिकस्य दोषानुरूपो दण्डः ॥ ५४ ॥ प्रमादस्थाने च ॥ ५५ ॥

चेतन सम्बन्धी तथा अचेतन सम्बन्धी, रात्रिमें किये अपराधकी सूचना, यदि कोई नगरनिवासी पुरुष, अध्यक्षको न देवे, तो उसे उसके अपराधके अनुसार दण्ड दिया जावे ॥ ५४ ॥ और उन रक्षक पुरुषोंको भी

उनके अपराधके अनुसार ही दण्ड दिया जावे, जो कि मद्यपान आदि करके नगरकी रक्षा करनेमें प्रमाद करते हों ॥ ५५ ॥

नित्यमुदकस्थानमार्गभूमिच्छन्नपथवप्रप्राकाररक्षावेक्षणं नष्टप्रस्मृतापसृतानां च रक्षणम् ॥ ५६ ॥

नागरिक अर्थात् नगरके प्रधान अधिकारीका यह कर्तव्य है, कि वह सदा उदकस्थान (नदी कूए तालाब आदि), मार्ग, भूमि (स्थल प्रदेश), छन्नपथ (सुरङ्ग आदिके मार्ग), वप्र (सफील), प्राकार (परकोटा), और रक्षा (बुर्ज खाई) आदि पदार्थोंकी अच्छी तरह देख भाल करता रहे । और खोए हुए भूलेहुए तथा कहींपर स्वयं छूटे हुए भूषण, अन्य सामान, या प्राणियोंको भी उस समय तक सुरक्षित रक्खे, जब तक कि उसके मालिक का ठीक २ पता न लगजाय ॥ ५६ ॥

बन्धनागारे च बालवृद्धव्याधितानाथानां च जातनक्षत्रपौर्णमासीषु विसर्गः ॥ ५७ ॥ पुण्यशीलाः समयानुबद्धा वा दोषनिष्क्रयं दद्युः ॥ ५८ ॥

तथा कारागृह (जेलखाने) में बन्द हुए २ बालक वृद्ध बीमार और अनाथोंको, राजाकी जन्मगांठ आदिके शुभ नक्षत्रों या पूर्णमासी पर्वों में कारागृहसे मुक्त करदिया जावे ॥ ५७ ॥ अथवा धर्मपूर्वक आचरण करनेवाले (अर्थात् अकस्मात् ही किसी अपराधके वश कारागारमें आएहुए) अपनी प्रतिज्ञाओंसे बंधेहुए (हम भविष्यमें फिर कभी ऐसा न करेंगे, इसप्रकारकी प्रतिज्ञा कियेहुए), लोग अपने अपराधका निष्क्रय (बदला; अर्थात हिरण्यके रूपमें दण्ड आदि) देकर निर्दोष होसकते हैं । फिर उनको कारागृहमें लेजानेकी आवश्यकता नहीं ॥ ५८ ॥

दिवसे पञ्चरात्रे वा बन्धनस्थान् विशोधयेत् ।
कर्मणा कायदण्डेन हिरण्यानुग्रहेण वा ॥ ५९ ॥
अपूर्वदेशाधिगमे युवराजाभिषेचने ।
पुत्रजन्मनि वा मोक्षो बन्धनस्य विधीयते ॥ ६० ॥

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये ऽधिकरणे नागरिकप्रणिधिः षट्त्रिंशो ऽध्यायः ॥ ३६ ॥
आदितः सप्तपञ्चाशः ॥ ५७ ॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य अध्यक्षप्रचारो द्वितीयमधिकरणं समाप्तम् ॥ २ ॥

प्रतिदिन अथवा प्रति पांचवें दिन, कारागारमें आयेहुए पुरुषोंका, अपराधका निष्क्रय लेकर संशोधन कियाजावे। तात्पर्य यह है कि प्रतिदिन या पांचवें दिन ऐसा नियम रक्खाजावे, कि उस दिन निष्क्रय लेकर कुछ कैदी छोड़दिये जायाकरें। निष्क्रय तीन तरहसे होसकता है—कार्य कराकर शारीरिक दण्ड देकर और हिरण्य (सोने आदिका सिक्का) लेकर। इन तीनोंमेंसे जिस कैदीके लिये जो योग्य समझाजावे, या जिसको वह आसानीसे भुगता सके उसी निष्क्रयके द्वारा उसका छुटकारा होसकता है ॥ ५९ ॥ किसी नए देशके जीत लेनेपर, युवराजका अभिषेक होनेपर, अथवा पुत्रका जन्म होनेपर कैदियोंको छोड़ा जाता है ॥ ६० ॥

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरणमें छत्तीसवां अध्याय समाप्त।

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरण समाप्त।
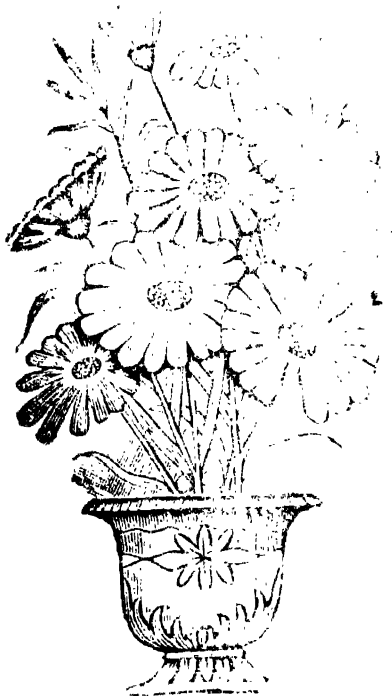
कौटलीय अर्थशास्त्र

द्वितीय भाग ।

तृतीय-अधिकरण ।

धर्मस्थीय ।

प्रथम अध्याय ।

५७—५८ प्रकरण ।

व्यवहार की स्थापना और विवाद का लेखन ।

धर्मस्थास्त्रयस्त्रयोऽमात्या जनपदसंधिसंग्रहद्रोणमुखस्थानीयेषु व्यावहारिकानर्थान्कुर्युः ॥ १ ॥ तिरोहितान्तरगारनक्तारण्योपध्युपह्वरकृतांश्च व्यवहारान्प्रतिषेधयेयुः ॥ २ ॥

जनपद सन्धि=सीमाप्रान्त, (जहां पर दो राज्यों की अथवा गांवों की सीमा मिलती हो), संग्रहण (दस गांवों का प्रधानभूत केन्द्रस्थान), द्रोण मुख (चार सौ गांवों का प्रधानभूत स्थान), और स्थानीय (आठ सौ गांवों का प्रधानभूत), में तीन तीन धर्मस्थ (न्यायाधीश=जज) साथ २ रहते हुए, व्यवहार (इकरारनामा, शर्त आदि) सम्बन्धी कार्यों का प्रबन्ध करें ॥ १ ॥ छिपा कर, घर के अन्दर, रात्रि में, जङ्गल में, छल कपट पूर्वक तथा एकान्त में किये गये व्यवहारों को राजकीय नियम के विरुद्ध समझा जावे ॥ २ ॥

कर्तुः कारयितुश्च पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३ ॥ श्रोतॄणामेकैकं प्रत्यर्धदण्डाः ॥ ४ ॥ श्रद्धेयानां तु द्रव्यव्यपनयः ॥ ५ ॥

इस प्रकार के व्यवहार करने कराने वालों को प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ३ ॥ सुनने वालों (सुन कर साक्षी देने वालों) में से प्रत्येक को आधा दण्ड ॥ ४ ॥ और श्रद्धेयों (श्रद्धा करने वालों) को द्रव्य दण्ड (जुर्माना आदि) दिया जावे ॥ ५)

परोक्षेणाधिकर्णग्रहणमवक्तव्यकरा वा तिरोहिताः सिद्ध्येयुः ॥ ६ ॥ दायनिक्षेपोपनिधिविवाहयुक्ताः स्त्रीणामनिष्कासिनीनां

व्याधितानां चामूढसंज्ञानामन्तरगारकृताः सिद्ध्येयुः ॥ ७ ॥

जिस व्यवहार को खुफिया तौर पर दूसरों ने सुन लिया हो, तथा जिस पर कोई आक्षेप भी न किया जा सके, ऐसा व्यवहार छिपा कर किया हुआ भी नियम के विरुद्ध न समझा जावे ॥ ६ ॥ पर्देनशीन स्त्रियों तथा संज्ञाहीन (बेहोश) न हुए २ रोगी पुरुषों के द्वारा दायभाग, अमानत, धरोहर (गिरवी आदि रखना) तथा विवाह सम्बन्धी व्यवहार घर के अन्दर किए हुए भी नियम विरुद्ध न समझे जावें ॥ ७ ॥

साहसानुप्रवेशकलहविवाहराजनियोगयुक्ताः पूर्वरात्रव्यवहारिणां च रात्रिकृताः सिद्ध्येयुः ॥ ८ ॥ सार्थव्रजाश्रमव्याधचारणां मध्येष्वरण्यचराणामरण्यकृताः सिद्ध्येयुः ॥ ९ ॥

साहस (डाका आदि), घर में दूसरे की वस्तु लाना, झगड़ा, विवाह, तथा राजाज्ञा आदि कार्य और रात्रि के प्रथम भाग में व्यवहार करने वाले वेश्या आदि के कार्य, रात्रि में किये गये भी उचित समझे जावें ॥ ८ ॥ व्यापारी, गोपाल, आश्रमवासी, वानप्रस्थी आदि, शिकारी और गुप्तचर जबकि ये जङ्गलों में ही घूमते फिरते या प्रायः निवास करते हों, इनके द्वारा जंगल में किए गए कार्य भी राजकीय नियम के अनुकूल समझे जावें ॥ ९ ॥

गूढाजीविषु चोपधिकृताः सिद्ध्येयुः ॥ १० ॥ मिथः समवाये चोपह्वरकृताः सिद्ध्येयुः ॥ ११ ॥ अतोऽन्यथा न सिद्ध्येयुः ॥ १२ ॥

गुप्तरूप से आजीविका करने वालों में छल कपट पूर्वक भी व्यवहार हो सकते हैं ॥ १० ॥ आपस में समझौता होने पर एकान्त में किये गये व्यवहार भी उचित हैं ॥ ११ ॥ इनसे अतिरिक्त अवसरों पर किये व्यवहार राजनियम के अनुकूल न समझे जावें ॥ १२ ॥

अपाश्रयवद्भिश्च कृताः पितृमता पुत्रेण पित्रा पुत्रवता निष्कुलेन भ्रात्रा कनिष्ठेनाविभक्तांशेन पतिमत्या पुत्रवत्या च स्त्रिया दासाहितकाभ्यामप्राप्तातीतव्यवहाराभ्यामभिशस्तप्रव्रजितन्यङ्गव्यसनिभिश्चान्यत्र निसृष्टव्यवहारेभ्यः ॥ १३ ॥

निराश्रय पुरुष, पुत्र—जिसका पिता जीता हो, पिता—जिसका पुत्र मौजूद हो, कुलहीन (बिरादरी से अलहदा किया हुआ) भाई, सब से छोटा भाई जिसकी सम्पत्ति का विभाग न हुआ हो, पति अथवा पुत्र वाली

स्त्री, दास, गवज़ में रक्खा हुआ आदमी, नाबालिग, अतिवृद्ध, लोक में निन्दित, संन्यासी, लंगडे, लूले आदि तथा बीमार इनके द्वारा किये गये व्यवहार भी जायज न समझे जावें, उन व्यवहारों के अतिरिक्त कि जो राजा की ओर से इनकी इच्छा पर छोड़ दिये गये हैं ॥ १३ ॥

तत्रापि क्रुद्धेनार्तेन मत्तेनोन्मत्तेनापगृहीतेन वा कृता व्यवहारा न सिद्ध्येयुः ॥ १४ ॥ कर्तृकारयितृश्रोतॄणां पृथग्यथोक्ता दण्डाः ॥ १५ ॥

क्रोधी, दुःखी, मत्त, उन्मत्त (उन्माद रोग से रोगी) अपगृहीत (पागल, जनूनी अथवा अपराधी) इनके द्वारा किये गये वे व्यवहार भी जिनको राजा ने जनता की इच्छा पर छोड़ दिया है, जायज नहीं समझे जा सकते ॥ १४ ॥ करने, कराने तथा सुनने वालों के लिए पृथक् २ पूर्वोक्त दण्ड समझने चाहियें॥ १५ ॥

स्वे स्वे तु वर्गे देशे काले च स्वकरणकृताः संपूर्णचाराः शुद्धदेशा दृष्टरूपलक्षणप्रमाणगुणाः सर्वव्यवहाराः सिद्ध्येयुः॥१६॥ पश्चिमं त्वेषां करणमादेशाधिवर्जं श्रद्धेयम् ॥ १७ ॥ इति व्यवहारस्थापना ॥ १८ ॥

अपनी २ जात में उचित देश वा काल में अपनी प्रकृति के अनुसार किये गये, दोष रहित सम्पूर्ण व्यवहार नियमानुकूल समझे जावें। बशर्ते कि उसकी सब को सूचना दे दी गई हो, और उनके रूप, लक्षण, प्रमाण तथा गुण सब अच्छी तरह देख लिये गये हों ॥ १६ ॥ अन्ततः बलात्कार किये गये व्यवहारों को छोड़ कर इनके सब ही व्यवहारों को ठीक माना जाय ॥ १७ ॥ व्यवहार की स्थापना यहां तक समाप्त हुई ॥ १८ ॥

संवत्सरमृतुं मासं पक्षं दिवसं करणमधिकरणमृणं वेदकावेदकयोः कृतसमर्थावस्थयोर्देशग्रामजातिगोत्रनामकर्माणि चाभिलिख्य वादिप्रतिवादिप्रश्नानर्थानुपूर्व्यान्निवेशयेत् ॥ १९ ॥ निविष्टांश्चावेक्षेत ॥ २० ॥

अपने २ पक्ष को समर्थन करने के लिए उपस्थित हुए २ अभियोक्ता और अभियुक्त के देश, ग्राम, जाति, गोत्र, नाम और काम को लिख कर, ऋण के देने लेने या चुकाने का साल, ऋतु, महीना, पक्ष, दिन, स्थान और साक्षी आदि को लिखे, तदनन्तर वादी और प्रतिवादी के प्रश्नों को अर्था-

नुसार क्रम से लिखा जाय ॥ १९ ॥ फिर उनको अच्छी तरह विचार-पूर्वक देखे ॥ २० ॥

निबद्धं पादमुत्सृज्यान्यं पादं संक्रामति ॥ २१ ॥ पूर्वोक्तं पश्चिमेनार्थेन नाभिसंधत्ते ॥ २२ ॥ परवाक्यमनभिग्राह्यमभिग्राह्यावतिष्ठते ॥ २३ ॥ प्रतिज्ञाय देशं निर्दिशेत्युक्ते न निर्दिशति ॥ २४ ॥ हीनदेशमदेशं वा निर्दिशति॥ २५ ॥ निर्दिष्टाद्देशादन्यं देशमुपस्थापयति ॥ २६ ॥ उपस्थिते देशे ऽर्थवचनं नैवमित्यपव्ययते ॥ २७ ॥ साक्षिभिरवधृतं नेच्छति ॥ २८ ॥ असंभाष्ये देशे साक्षिभिर्मिथः संभाषते ॥ २९ ॥ इति परोक्तहेतवः ॥३०॥

जो व्यक्ति प्रकरण में आये हुए बात चीत के सिलसिले को छोड़ कर दूसरी ओर जाने लगता है ॥ २१ ॥ जिसकी बातों में पूर्वापर सम्बन्ध कुछ नहीं रहता ॥ २२ ॥ दूसरे के अनभिमत कथन को मानकर उस पर डट जाता है ॥ २३ ॥ ऋण लेने आदि के स्थान को बतलाने की प्रतिज्ञा करके, पूछने पर फिर नहीं बतलाता ॥ २४ ॥ किसी मामूली स्थान का नाम ले देता है, या नहीं लेता ॥ २५ ॥ अथवा उसके बजाय किसी अन्य देश का नाम ले देता है ॥ २६ ॥ स्थान ठीक बतलाने पर ऋण लेने की बात से मुकर जाता है ॥ २७ ॥ साक्षियों से कही गई बात को नहीं चाहता ॥ २८ ॥ और अनुचित स्थान में साक्षियों के साथ मिल कर बात चीत करता है ॥ २९ ॥ वह पराजय को प्राप्त हो जाता है । अर्थात अपने पक्ष का समर्थन न कर सकने के कारण, ये सब पराजय के हेतु हैं ॥ ३० ॥

परोक्तदण्डः पञ्चबन्धः ॥ ३१ ॥ स्वयंवादिदण्डो दशबन्धः ॥ ३२ ॥ पुरुषभृतिरष्टाङ्गः ॥ ३३ ॥ पथि भक्तमर्घविशेषतः ॥ ३४ ॥ तदुभयं नियम्यो दद्यात् ॥ ३५ ॥

परोक्त (पराजित) अपराधी को पञ्चबन्ध (देय धन का पांचवां हिस्सा) दण्ड दिया जावे ॥ ३१ ॥ तथा स्वयंवादि (जो अपने आप ही अपनी बात को बिना साक्षी के बार २ ठीक कहता चला जाय) अपराधी को दशबन्ध (देय धन का दसवां हिस्सा) दण्ड दिया जाय ॥ ३२ ॥ कर्मचारियों का वेतन आठवां हिस्सा ॥ ३३ ॥ और रास्ते में रोजाना खर्च से ज्यादह पैसे देकर किये गए भोजन का खर्च ॥ ३४ ॥ इन दोनों तरह के खर्चों को अपराधी अदा करे ॥ ३५ ॥

अभियुक्तो न प्रत्यभियुञ्जीत ॥ ३६ ॥ अन्यत्र कलहसाहससार्थसमवायेभ्यः ॥३७॥ न चाभियुक्ते ऽभियोगो ऽस्ति ॥३८॥

कलह—फौजदारी, डाका, व्यापारियों तथा कम्पनियों के झगड़ों को छोड़ कर अभियुक्त अन्य किसी बात को लेकर अभियोक्ता पर उलटा मुकदमा नहीं चला सकता ॥ ३६—३७ ॥ अभियुक्त पर भी उस ही बात को लेकर दूसरी बार मुकदमा नहीं चलाया जा सकता ॥ ३८ ॥

अभियोक्ता चेत्प्रत्युक्तस्तदहरेव न प्रतिब्रूयात्परोक्तः स्यात् ॥ ३९ ॥ कृतकार्यविनिश्चयो ह्यभियोक्ता नाभियुक्तः ॥ ४० ॥ तस्याप्रतिब्रुवतस्त्रिरात्रं सप्तरात्रमिति ॥ ४१ ॥

अभियोक्ता, यदि किसी बात का जवाब तलब किये जाने पर, उस ही दिन उत्तर न दे देवे तो वह पराजित समझा जाय ॥ ३९ ॥ क्योंकि अभियोक्ता अपने प्रत्येक कार्य का पहिले ही निश्चय कर के दावा दायर करता है, परन्तु अभियुक्त ऐसा नहीं कर सकता ॥ ४० ॥ इसलिए यदि वह (अभियुक्त) फ़ौरन जवाब न दे सके तो उसको तीन रात से लगा कर सात रात तक की मोहलत दी जावे ॥ ४१ ॥

अत ऊर्ध्वं त्रिपणावरार्ध्यं द्वादशपणपरं दण्डं कुर्यात् ॥४२॥ त्रिपक्षादूर्ध्वमप्रतिब्रुवतः परोक्तदण्डं कृत्वा यान्यस्य द्रव्याणि स्युस्ततोऽभियोक्तारं प्रतिपादयेदन्यत्र प्रत्युपकरणेभ्यः ॥ ४३ ॥

इसके बाद भी उत्तर न मिलने पर, तीन पण से लगा कर बारह पण तक दण्ड दिया जावे ॥ ४२ ॥ डेढ़ महीने तक भी उत्तर न देने पर, अभियुक्त को पराजित दण्ड (पञ्चबन्ध रूप दण्ड) दिया जाय, और जितनी इसकी सम्पत्ति हो उसमें से न्यायानुसार भाग अभियोक्ता को दे दिया जावे, यदि ऋण चुकता होने में कुछ कमी रह जाय तो भी अभियुक्त के जीवन निर्वाह के लिए अत्यावश्यक उपकरण (अन्न, वस्त्र, पात्र आदि सामान) अभियोक्ता को नहीं दिये जा सकते ॥ ४३ ॥

तदेव निष्पततो ऽभियुक्तस्य कुर्यात् ॥ ४४ ॥ अभियोक्तुर्निष्पातसमकालः परोक्तभावः ॥ ४५ ॥

अभियोक्ता के अपराधी सिद्ध होने पर ये ही अधिकार अभियुक्त को दिये जायं ॥ ४४ ॥ परन्तु अभियुक्त के समान, अभियोक्ता को मोहलत नहीं मिल सकती । उसको फ़ौरन ही परोक्त दण्ड दिया जाय ॥ ४५ ॥

प्रेतस्य व्यसनिनो वा साक्षिवचनमसारमभियोक्तारं दण्डयित्वा कर्म कारयेत् ॥ ४६ ॥ अधिवासकामं प्रवेशयेत् ॥ ४७ ॥ रक्षोघ्नरक्षितं वा कर्मणा प्रतिपादयेत् ॥ ४८ ॥ अन्यत्र ब्राह्मणादिति ॥ ४९ ॥

अभियुक्त के मर जाने या आपद्ग्रस्त हो जाने पर, अपने पक्ष को समर्थन न करने वाले अभियोक्ता को, (अभियुक्त के) साक्षियों के कहने के अनुसार दण्ड देकर अदालत उससे उचित कार्य करावे ॥ ४६ ॥ और नियमित समय तक अपने अधिकार में रक्खे ॥ ४७ ॥ अथवा उससे राक्षसों के विघ्नों का शान्त करने वाले यज्ञादिकों को करवाये ॥ ४८ ॥ यदि अभियोक्ता ब्राह्मण हो तो उससे यह कार्य न करवाये ॥ ४९ ॥

चतुर्वर्णाश्रमस्यायं लोकस्याचाररक्षणात् ।
नश्यतां सर्वधर्माणां राजा धर्मप्रवर्तकः ॥ ५० ॥

चारों वर्ण, चारों आश्रम, लोकाचार, तथा नष्ट होते हुए सब धर्मों का रक्षक होने से राजा धर्म का प्रवर्त्तक समझा जाता है ॥ ५० ॥

धर्मश्च व्यवहारश्च चरित्रं राजशासनम् ।
विवादार्थश्चतुष्पादः पश्चिमः पूर्वबाधकः ॥ ५१ ॥

धर्म, व्यवहार, चरित्र और राजाज्ञा ये विवाद के निर्णायक होने से राष्ट्र के चार पैर समझे जाते हैं, इन्हीं पर राष्ट्र का निर्भर है । इनमें से सबसे अगला पिछलों का बाधक है ॥ ५१ ॥

तत्र सत्ये स्थितो धर्मो व्यवहारस्तु साक्षिषु ।
चरित्रं संग्रहे पुंसां राज्ञामाज्ञा तु शासनम् ॥ ५२ ॥

उनमें से धर्म सत्य में, व्यवहार साक्षियों में, चरित्र पुरुषों (दशग्रामी आदि में रहने वाले) की जीवन घटनाओं में, और राजाज्ञा राजकीय शासन में स्थित रहते हैं ॥ ५२ ॥

राज्ञः स्वधर्मः स्वर्गाय प्रजा धर्मेण रक्षितुः ।
अरक्षितुर्वा क्षेप्तुर्वा मिथ्यादण्डमतोऽन्यथा ॥ ५३ ॥

धर्म पूर्वक प्रजा की रक्षा करने वाले राजा का अपना धर्म स्वर्ग प्राप्ति का साधन होता है । इसके विपरीत प्रजा की रक्षा न करने वाले तथा अनुचित पीड़ा पहुंचाने वाले राजा को कभी सुख नहीं होता ॥ ५३ ॥

दण्डो हि केवलो लोकं परं चेमं च रक्षति ।
राज्ञा पुत्रे च शत्रौ च यथादोषं समं धृतः ॥ ५४ ॥

पुत्र और शत्रु को उनके अपराध के अनुसार, राजा के द्वारा बराबर दिया हुआ, केवल दण्ड ही इस लोक और परलोक की रक्षा करता है ॥ ५४ ॥

अनुशासद्धि धर्मेण व्यवहारेण संस्थया ।
न्यायेन च चतुर्थेन चतुरन्तां महीं जयेत् ॥ ५५ ॥

धर्म, व्यवहार, चरित्र तथा न्यायपूर्वक शासन करता हुआ राजा सम्पूर्ण पृथ्वी को जीते ॥ ५५ ॥

संस्थया धर्मशास्त्रेण शास्त्रं वा व्यावहारिकम् ।
यस्मिन्नर्थे विरुध्येत धर्मेणार्थं विनिर्णयेत् ॥ ५६ ॥

चरित्र तथा लोकाचार का धर्मशास्त्र के साथ जिस विषय में विरोध हो, वहां धर्मशास्त्र को ही प्रमाण मानना चाहिए । अर्थात ऐसे अवसर पर उस ही के द्वारा अर्थ का निश्चय करे ॥ ५६ ॥

शास्त्रं विप्रतिपद्येत धर्मन्यायेन केनचित् ।
न्यायस्तत्र प्रमाणं स्यात्तत्र पाठो हि नश्यति ॥ ५७ ॥

परन्तु यदि कहीं धर्मशास्त्र का धर्मानुकूल राजकीय शासन के साथ विरोध हो, तो वहां राजकीय शासन को ही प्रमाण मानना चाहिये । क्योंकि ऐसा करने में (धर्मशास्त्र का) पाठ ही नष्ट होता है ॥ ५७ ॥

दृष्टदोषः स्वयंवादः स्वपक्षपरपक्षयोः ।
अनुयोगार्जवं हेतुः शपथश्चार्थसाधकः ॥ ५८ ॥

मुकद्दमे में प्रायः वादी प्रतिवादी दोनों ही अपने २ पक्ष को सच्चा कहते हैं, परन्तु उनमें से सच्चा एक ही होता है । ऐसी अवस्था में दोनों पक्षों को ठीक २ निर्णय करने वाले निम्न-लिखित हेतु हो सकते हैं—सब से प्रथम दृष्ट दोष, अर्थात जिसके अपराध को देख लिया गया हो, (२) जो स्वयं अपने अपराध को स्वीकार कर ले, (३) सरलता पूर्वक जिरह, (४) हेतु (कारणों का उपस्थित कर देना), (५) शपथ-कसम दिलाना, ये पांचों यथावश्यक अर्थ को सिद्ध करने वाले होते हैं ॥ ५८ ॥

पूर्वोत्तरार्थव्याघाते साक्षिवक्तव्यकारणे ।
चारहस्ताच्च निष्पाते प्रदेष्टव्यः पराजयः ॥ ५९ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे विवादपदनिबन्धः प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥
आदितो ऽष्टपञ्चाशः ॥ ५८ ॥

वादी प्रतिवादियों के परस्पर विरुद्ध कथन का यदि उपर्युक्त हेतुओं से निर्णय न हो सके तो साक्षियों के और खुफिया पुलिस के द्वारा इसका अनुसंधान कर अपराधी का निर्णय करे ॥ ५९ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरण में पहिला अध्याय समाप्त ।

द्वितीय अध्याय।

विवाह धर्म, स्त्रीधन और आधिवेदनिक।

५९ प्रकरण।

विवाह।

विवाहपूर्वो व्यवहारः ॥ १ ॥ कन्यादानं कन्यामलंकृत्य ब्राह्मो विवाहः ॥ २ ॥ सहधर्मचर्या प्राजापत्यः ॥ ३ ॥ गोमिथुनादानादार्षः ॥ ४ ॥

सांसारिक व्यवहार विवाह होने पर ही प्रारम्भ होते हैं ॥ १ ॥ कन्या को अच्छी तरह सजा कर उसे दे देना (विवाह कर देना) ब्राह्म विवाह कहाता है ॥ २ ॥ कन्या और वर का परस्पर यह नियम कराकर, कि हम दोनों मिल कर धर्म का आचरण करेंगे, विवाह कर देना प्राजापत्य विवाह कहाता है ॥ ३ ॥ वर से धर्म-पूर्वक (अथवा कन्या के लिए) गऊ का जोड़ा लेकर कन्या देदेना आर्ष विवाह होता है ॥ ४ ॥

अन्तर्वेद्यामृत्विजे दानाद्दैवः ॥ ५ ॥ मिथःसमवायाद्गान्धर्वः ॥ ६ ॥ शुल्कादानादासुरः ॥ ७ ॥ प्रसह्यादानाद्राक्षसः ॥ ८ ॥ सुप्तमत्तादानात्पैशाचः ॥ ९ ॥

वेदि के समीप बैठ कर ऋत्विज को कन्या देदेने से दैव विवाह होता है ॥ ५ ॥ गान्धर्व विवाह वह है जिसमें कन्या और वर आपस में ही (माता पिता आदि की सलाह के बिना ही) मिल कर विवाह कर लें ॥ ६ ॥

धन देकर (कन्याके पिता आदिको) किया हुआ विवाह आसुर कहाता है ॥ ७ ॥ बलात्कार कन्याको लेलेना राक्षस विवाह होता है ॥ ८ ॥ सोती हुई कन्याको उठा लेजानेसे पैशाच विवाह होता है ॥ ९ ॥

पितृप्रमाणाश्चत्वारः पूर्वे धर्म्याः ॥ १० ॥ मातापितृप्रमाणाः शेषाः ॥ ११ ॥ तौ हि शुल्कहरौ दुहितुः ॥ १२ ॥

पहिले चार विवाह धर्मानुकूल हैं, ये पिताकी सलाह से किये जाते हैं ॥ १० ॥ बाकी चार विवाह माता और पिता दोनों की सलाह से होते हैं ॥ ११ ॥ क्यों कि वह दोनों ही लड़की को देकर बदले में धन (शुल्क) लेते हैं ॥ १२ ॥

अन्यतराभावेऽन्यतरो वा ॥ १३ ॥ अद्वितीयं शुल्कं स्त्री हरेत ॥ १४ ॥ सर्वेषां प्रीत्यारोपणमप्रतिषिद्धम् ॥ १५ ॥

यदि उन दोनों (माता पिता) में से कोई एक न हो, तो दूसरा (माता या पिता) उस धन को ले सकता है ॥ १३ ॥ यदि दूसरा भी न हो, तो उस धन की अधिकारिणी वह स्त्री (जिसके साथ विवाह किया गया है) ही होवे ॥ १४ ॥ सब विवाहोंमें स्त्री पुरुष की परस्पर प्रीति का होना अत्यन्त आवश्यक है ॥ १५ ॥

स्त्रीधन ।

वृत्तिराबध्यं वा स्त्रीधनम् ॥ १६ ॥ परद्विसाहस्रा स्थाप्या वृत्तिः ॥ १७ ॥ आबध्यानियमः ॥१८॥

स्त्रीधन दो प्रकार का होता है—एक वृत्ति, दूसरा आबध्य (गहना आभूषण आदि) ॥ १६ ॥ वृत्ति वह स्त्रीधन कहाता है जो स्त्री के नाम से कहीं (बैंक आदि में) जमा किया हुआ हो, उसकी तादाद कम से कम दो हजार होनी आवश्यक है ॥ १७ ॥ आबध्य स्त्रीधनके लिये तादाद का कोई नियम नहीं है ॥ १८ ॥

तदात्मपुत्रस्नुषाभर्मणि प्रवासाप्रतिविधाने च भार्याया भोक्तुमदोषः ॥ १९ ॥ प्रतिरोधकव्याधिदुर्भिक्षभयप्रतीकारे धर्मकार्ये च पत्युः ॥ २० ॥

पतिके विदेश चले जानेपर, पीछे कोई प्रबन्ध न होनेपर, स्त्री अपने, अपने पुत्र, और पुत्रवधू के जीवन निर्वाहके लिये उस धन (स्त्रीधन) में से खर्च कर सकती है ॥ १९ ॥ परिवारमें आईहुई किसी विपत्ति या बीमारीके प्रतीकार

में, दुर्भिक्ष तथा अन्य किसी प्रकारके उपस्थित हुए भयके प्रतीकार करनेमें, और धर्म कार्यमें, पतिभी उस धन (स्त्रीधन)को खर्चकर सकता है, इसमें कोई दोष नहीं ॥ २० ॥

संभूय वा दंपत्योर्मिथुनं प्रजातयोस्त्रिवर्षोपभुक्तं च धर्मिष्ठेषु विवाहेषु नानुयुञ्जीत ॥ २१ ॥

दो बच्चे पैदा होनेपर, स्त्री पुरुष दोनों मिल कर (अर्थात् एक दूसरे की सलाह से) यदि उस धन में से खर्च करें तो कोई दोष नहीं। और बच्चा न पैदा होनेपर भी वे स्त्री पुरुष तीन वर्ष तक उसमेंसे खर्चकर सकते हैं, जिनका विवाह धर्मानुकूल पहिले चार विवाहोंमें से कोई हुआ हो ॥ २१ ॥

गान्धर्वासुरोपभुक्तं सवृद्धिकमुभयं दाप्येत ॥ २२ ॥ राक्षस-पैशाचोपभुक्तं स्तेयं दद्यात् ॥ २३ ॥ इति विवाहधर्मः ॥ २४ ॥

जिन्होंने गान्धर्व या असुर विवाह किया है, वे यदि स्त्रीधनको खर्च कर डालें, तो उनमे व्याज सहित मूलधन जमा कराया जावे ॥ २२ ॥ और जिन्होंने राक्षस तथा पैशाच विवाह किया हो वे यदि उस धनका उपभोग कर डालें, तो उनको (जमाके अतिरिक्त) चोरीका दण्ड भी दियाजावे ॥ २३ ॥ यहांतक विवाह धर्मका निरूपण किया गया ॥ २४ ॥

मृते भर्तरि धर्मकामा तदानीमेवास्थाप्याभरणं शुल्कशेषं च लभेत ॥ २५ ॥

पतिके मरजानेपर धर्म-पूर्वक रहनेकी इच्छा रखनेवाली स्त्री उसी समय अपने स्त्रीधन (बैंक आदि में नियत संख्यक जमा किया हुआ धन तथा आभूषण आदि) और अवशिष्ट शुल्क (विवाहके समय प्राप्त हुआ धन) को ले लेवे ॥ २५ ॥

लब्ध्वा वा विन्दमाना सवृद्धिकमुभयं दाप्येत ॥ २६ ॥ कुटुम्बकामा तु श्वशुरपतिदत्तं निवेशकाले लभेत ॥ २७ ॥ निवेशकालं हि दीर्घप्रवासे व्याख्यास्यामः ॥ २८ ॥

इस धन को प्राप्त कर यदि वह दूसरा विवाह करे, तो उसे व्याज सहित सम्पूर्ण मूल धन वापस देना पड़े ॥ २६ ॥ और यदि वह कुटुम्ब की कामना रखती है, अर्थात् दूसरा विवाह करना चाहती है, तो अपने श्वसुर और मृत पतिके दिये हुए धन को उस विवाहके समय में ही पा सकती है,

पहिले नहीं ॥ २७ ॥ दूसरे विवाहका समय दीर्घ-प्रवास प्रकरणमें खोल कर लिखा जायगा ॥ २८ ॥

श्वशुरप्रातिलोम्येन वा निविष्टा श्वशुरपतिदत्तं जीयेत ॥२९॥ ज्ञातिहस्तादभिमृष्टाया ज्ञातयो यथागृहीतं दद्युः ॥३०॥ न्यायोपगतायाः प्रतिपत्ता स्त्रीधनं गोपायेत् ॥ ३१ ॥

यदि वह स्त्री अपने श्वशुर की इच्छा के प्रतिकूल दूसरा विवाह करना चाहती है, तो श्वशुर और मृत पति का दिया हुआ धन वह नहीं पा सकती ॥२९॥ यदि बन्धु बान्धवोंके हाथसे उसके विवाहका प्रबन्ध किया जावे तो वे (बन्धु बान्धव) उसके लिये हुए धनको उसी तरह वापस करदें ॥ ३० ॥ क्योंकि न्याय पूर्वक रक्षार्थ प्राप्त हुई स्त्रीकी रक्षा करनेवाला पुरुष उसके धनकी भी रक्षाकरे ॥ ३१ ॥

पतिदायं विन्दमाना जीयेत ॥३२॥ धर्मकामा भुञ्जीत ॥३३॥

दूसरे पतिकी कामना करनेवाली स्त्री अपने पूर्व पतिके दायभागको नहीं पासकती ॥ ३२ ॥ यदि वह धर्म-पूर्वक जीवन निर्वाह करनेकी इच्छा रखती है, तो उस पतिके दायभागको भोग सकती है ॥ ३३ ॥

पुत्रवती विन्दमाना स्त्रीधनं जीयेत ॥ ३४ ॥ तत्तु स्त्रीधनं पुत्रा हरेयुः ॥ ३५ ॥ पुत्रभरणार्थं वा विन्दमाना पुत्रार्थं स्फातीकुर्यात् ॥ ३६ ॥

जिस स्त्रीके पुत्र हैं, वह यदि दूसरा पति करना चाहती है, तो स्त्रीधन को नहीं पासकती ॥ ३४ ॥ उस स्त्रीधनके अधिकारी उसके पुत्रही होवें ॥३५॥ यदि कोई स्त्री दूसरा विवाह इसलिये करना चाहती है, कि वह इससे अपने पुत्रोंका भरण पोषणकर सकेगी, तो उसको यह आवश्यक है कि अपनी सम्पत्ति उन लड़कोंके लिये नामजद करादे ॥ ३६ ॥

बहुपुरुषप्रजानां पुत्राणां यथापितृदत्तं स्त्रीधनमवस्थापयेत् ॥ ३७ ॥ कामकारणीयमपि स्त्रीधनं विन्दमाना पुत्रसंस्थं कुर्यात् ॥ ३८ ॥

यदि किसी स्त्रीके लड़के बहुतसे आदमियों से उत्पन्न हुए २ हों, तो उसको उचित है कि वह अपनी सम्पत्तिकी व्यवस्था, जैसे २ उन लड़कोंके पिताओंने दिया है, उसहीके अनुसार करदेवे ॥ ३७ ॥ अपनी इच्छानुसार खर्च करनेके लिए प्राप्त हुए धनको भी, दूसरा विवाह करनेवाली स्त्री, अपने पुत्रोंके अधीन करदेवे ॥ ३८ ॥

अपुत्रा पतिशयनं पालयन्ती गुरुसमीपे स्त्रीधनमायुः क्षयाद्-भुञ्जीत ॥ ३९ ॥ आपदर्थं हि स्त्रीधनम् ॥ ४० ॥ ऊर्ध्वं दायादं गच्छेत् ॥ ४१ ॥

जिस स्त्रीके पुत्र नहीं है, वह अपने पतिव्रत धर्मका पालन करती हुई गुरु (धर्म शिक्षक पुरोहित आदि) के समीप रहकर जीवन पर्यन्त स्त्रीधनका उपभोग कर सकती है ॥ ३९ ॥ क्योंकि स्त्रीधन आपत्तिमें उपयोग करनेके लिए ही होता है ॥ ४० ॥ उसके मरनेके बाद बचा हुआ धन दायभागके अधिकारियोंको मिलजावे ॥ ४१ ॥

जीवति भर्तरि मृतायाः पुत्रा दुहितरश्च स्त्रीधनं विभजेरन् ॥ ४२ ॥ अपुत्राया दुहितरः ॥ ४३ ॥

पतिके जीवित रहते हुए, यदि कोई स्त्री मरजाय, तो उसके धनको लड़के और लड़कियां आपसमें बांट लेवें ॥ ४२ ॥ यदि उसके कोई लड़का न हो तो लड़कियां ही उस धनको लेसकती हैं ॥ ४३ ॥

तदभावे भर्ता ॥ ४४ ॥ शुल्कमन्वाधेयमन्यद्वा बन्धुभिर्दत्तं बान्धवा हरेयुः ॥ ४५ ॥ इति स्त्रीधनकल्पः ॥ ४६ ॥

लड़कियोंके भी न होनेपर पति उस धनका अधिकारी होवे ॥ ४४ ॥ और उस स्त्रीके बन्धु बान्धवोंने जो धन उसको विवाहमें शुल्क रूपमें या इससे अतिरिक्त दिया हो, वे उसे वापस लौटा सकते हैं ॥ ४५ ॥ यहांतक स्त्रीधन विषयक विचार समाप्त हुआ ॥ ४६ ॥

वर्षाण्यष्टावप्रजायमानामपुत्रां वन्ध्यां चाकांक्षेत ॥४७॥ दश निन्दुं द्वादश कन्याप्रसविनीम् ॥ ४८ ॥ ततः पुत्रार्थी द्वितीयां विन्देत ॥ ४९ ॥

यदि किसी स्त्रीके बच्चा पैदा न हो, या उसके अन्दर बच्चा पैदा करनेकी शक्ति ही न हो, तो उसका पति आठ वर्ष तक प्रतीक्षा करे ॥ ४७ ॥ यदि कोई मरा हुआ बच्चा पैदा हो, तो दशवर्ष और, यदि कन्या ही उत्पन्न हो तो बारह वर्षतक इन्तजार करे ॥ ४८ ॥ इसके बाद पुत्रकी कामना करनेवाला पुरुष दूसरा विवाह करलेवे ॥ ४९ ॥

तस्यातिक्रमे शुल्कं स्त्रीधनमर्धं चाधिवेदनिकं दद्यात् ॥५०॥ विंशतिपणपरं च दण्डम् ॥ ५१ ॥

जो पुरुष इस उपर्युक्त नियम का उल्लङ्घन करे (अर्थात् निर्दिष्ट अवधि से पहिले ही विवाह करना चाहे) तो उसको आयश्यक है कि वह शुल्क, (विवाह में प्राप्त हुआ धन दहेज आदि) स्त्रीधन तथा इसके अतिरिक्त और धन अपनी पहिली स्त्री को देवे ॥ ५० ॥ तथा २४ पण तक जुर्माना सरकार को देवे ॥ ५१ ॥

शुल्कस्त्रीधनमशुल्कस्त्रीधनायांतत्प्रमाणमाधिवेदनिकमनुरूपां च वृत्तिं दत्त्वा बह्वीरपि विन्देत ॥५२॥ पुत्रार्था हि स्त्रियः ॥५३॥

इस प्रकार शुल्क और स्त्रीधन देकर, तथा जिस स्त्री को शुल्क नहीं मिला, और उसके पास स्त्रीधनभी नहीं है, उसको उसके (शुल्क और स्त्रीधन के) बराबरही और धन देकर, तथा उसके जीवन निर्वाहके लिये पर्याप्त सम्पत्ति देकर कोई भी पुरुष अनेक स्त्रियोंके साथ विवाह कर सकता है ॥५२॥ क्योंकि स्त्रियोंकी सृष्टि पुत्रोत्पत्तिके लिये ही है ॥ ५३ ॥

तीर्थसमवाये चासां यथाविवाहं पूर्वोढ़ां जीवत्पुत्रां वा पूर्वं गच्छेत् ॥ ५४ ॥ तीर्थगूहनागमने पणवतिर्दण्डः ॥ ५५ ॥

यदि इन स्त्रिओंका ऋतुकाल एक ही साथ आजावे, तो पुरुष सबसे पहिले प्रथम विवाहित स्त्रीके पास जावे, अथवा उसके पास जावे जिसका कोई पहिला पुत्र जीता हो, ॥ ५४ ॥ यदि कोई पुरुष ऋतुकाल को छिपाता है, या जानेमें आनाकानी करता है (स्त्रीसंसर्ग की इच्छा न होने के कारण) तो उसको राज्य की ओर से ९६ पण जुर्माने का दण्ड दिया जावे ॥ ५५ ॥

पुत्रवतीं धर्मकामां वन्ध्यां विन्दुं नीरजस्कां वा नाकामा-मुपेयात् ॥ ५६ ॥ न चाकामः पुरुषः कुष्ठिनीमुन्मत्तां वा गच्छेत् ॥ ५७ ॥ स्त्री तु पुत्रार्थमेवंभूतं वोपगच्छेत् ॥ ५८ ॥

पुत्र वाली, पवित्र जीवन वाली, वन्ध्या, जिसके मरा हुआ बच्चा पैदा हुआ हो, और जिसको मासिक धर्म होना बन्द हो गया हो, ऐसी स्त्री के साथ पुरुष तब तक संसर्ग न करे, जब तक कि वह स्त्री स्वयं पुरुषसंसर्ग की कामना न करे ॥ ५६ ॥ पुरुष भी, कामना न होते हुए, कोढ़ी अथवा उन्मत्त स्त्री से संसर्ग न करे ॥ ५७ ॥ परन्तु स्त्री, पुत्रकी इच्छा रखती हुई इस प्रकार के कोढ़ी अथवा उन्मत्त पुरुष के साथ संसर्ग कर सकती है ॥५८॥

नीचत्वं परदेशं वा प्रस्थितो राजकिल्बिषी ।
प्राणाभिहन्ता पतितस्त्याज्यः क्लीबोऽपि वा पतिः ॥५९॥

इति धर्मस्थीये तृतीयेऽधिकरणे विवाहसंयुक्ते विवाहधर्मः स्त्रीधनकल्प आधिवेदनिकं द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥
आदितः एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

नीच, प्रवासी (परदेशमें गए हुए), राजद्रोही, घातक, जाति तथा धर्मसे पतित और नपुंसक पतिको स्त्री छोड़ सकती है ॥ ५९ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त ।

तृतीय अध्याय ।

५९ प्रकरण

विवाहित के विषय में—शुश्रूषा, भर्म, पारुष्य, द्वेष, अतिचार और उपकारव्यवहार प्रतिषेध ।

द्वादशवर्षा स्त्री प्राप्तव्यवहारा भवति ॥ १ ॥ षोडशवर्षः पुमान् ॥ २ ॥ अत ऊर्ध्वमशुश्रूषायां द्वादशपणः स्त्रिया दण्डः पुंसो द्विगुणः ॥ ३ ॥

बारह वर्षकी लड़की कानूनके अन्दर आजाती है ॥ १ ॥ और १६ वर्ष का लड़का ॥ २ ॥ इससे ऊपर होनेपर, यदि वे किसी राजकीय नियम का उल्लङ्घन (अशुश्रूषा) करते हैं, तो स्त्रीको बारह पण, और पुरुषको उससे द्विगुण दण्ड दियाजावे ॥ ३ ॥

भर्मण्यायामनिर्दिष्टकालायां ग्रासाच्छादनं वाधिकं यथापुरुषपरिवापं सविशेषं दद्यात् ॥ ४ ॥ निर्दिष्टकालायां तदेव संख्याय बन्धं च दद्यात् ॥ ५ ॥ शुल्कस्त्रीधनाधिवेदनिकानामनादाने च ॥ ६ ॥

यदि किसी स्त्रीके भरण पोषण का सीमाकाल नियत नहीं है, तो पति को आवश्यक है कि वह आवश्यकतानुसार उसके भोजन वस्त्र का उचित प्रबन्ध करे । अथवा अपनी आमदनी या सम्पत्ति के अनुसार और

कुछ अधिक भी देवे ॥ ४ ॥ परन्तु जिस स्त्री के भरण पोषण का समय नियत है उसको, और जिसने शुल्क, स्त्रीधन, तथा आधिवेदनिक (अतिरिक्त) धन लेना स्वीकार नहीं किया, उसको बन्धी हुई रकम अपनी आमदनी के अनुसार पति दे देवे ॥ ५–६ ॥

श्वशुरकुलप्रविष्टायां विभक्तायां वा नाभियोज्यः पतिः ॥ ७ ॥ इति भर्म ॥ ८ ॥

यदि स्त्री अपने पति की सुसराल (अर्थात् अपने पितृ-गृह=पीहर=मायके) में रहती है, अथवा बिल्कुल अलहदा स्वतन्त्र होकर रहती है, तो उसके भरण पोषण के लिए पति को बाधित नहीं किया जा सकता ॥ ७ ॥ यहां तक स्त्री के भरण पोषण (भर्म) का विचार समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

नष्टे विनष्टे न्यङ्गे ऽपितृके ऽमातृक इत्यनिर्देशेन विनयग्राहणम् ॥ ९ ॥ वेणुदलरज्जुहस्तानामन्यतमेन वा पृष्ठे त्रिराघातः ॥ १० ॥ तस्यातिक्रमे वाग्दण्डपारुष्यदण्डाभ्यामर्धदण्डाः ॥ ११ ॥

पहिले नंगी, अधनंगी, लूली, लंगडी, बापमरी, मांमरी, इत्यादि गालियां देने के बिना ही विनय अर्थात् अच्छे रहन सहन का ढंग सिखाया जाय ॥ ९ ॥ यदि ऐसे काम न चले तो बांस की खपच, रस्सी या थप्पड़ से तीन बार पीठ पर आघात (चोट) करे ॥ १० ॥ फिर भी नियम का उल्लङ्घन करने पर वाक्पारुष्य (७२ प्रकरण) और दण्डपारुष्य (७३ प्रकरण) में कहे गये दण्डों में से यथोचित आधा दण्ड दिया जावे ॥ ११ ॥

तदेव स्त्रिया भर्तरि प्रसिद्धदोषायामीर्ष्यया बाह्यविहारेषु द्वारेष्वत्ययो यथानिर्दिष्टः ॥ १२ ॥ इति पारुष्यम् ॥ १३ ॥

यही दण्ड उस स्त्री को भी दिया जावे, जो और कोई दोष न होने पर भी ईर्ष्या से पति के साथ दुर्व्यवहार करती हो। पति के घर के दरवाजे पर या घर से बाहर किये हुए विहारों (अन्य पुरुष के साथ इशारेबाजी आदि करना, तथा अन्य प्रकार की क्रीड़ा करना) में होनेवाले व्यतिक्रम (अत्यय-नियम विरुद्धता) का दण्ड इसी प्रकरण में आगे निर्देश कर दिया गया है ॥ १२ ॥ यहां तक पारुष्य (कठोरता) सम्बन्धी विचार समाप्त हुआ ॥ १३ ॥

भर्तारं द्विषती स्त्री सप्तार्तवान्यमण्डयमाना तदानीमेव स्थाप्याभरणं निधाय भर्तारमन्यया सह शयानमनुशयीत ॥ १४ ॥

भिक्षुक्यन्वाधिज्ञातिलानामन्यतमे वा भर्ता द्विषन्स्त्रियमेकाम-नुशयीत ॥ १५ ॥

अपने पति के साथ द्वेष रखती हुई जो स्त्री सात ऋतु (मासिक धर्म) पर्यन्त दूसरे पुरुष की कामना करती रहे, उसको चाहिए कि वह फौरन सम्पूर्ण स्त्रीधन, (उसके नाम से जमा हुई २ पूंजी और आभूषण) पति को देकर उसको दूसरी स्त्री के साथ सोने की अनुमति दे देवे ॥ १४ ॥ यदि पति स्त्री के साथ द्वेष रखता हो तो पति को उचित है कि वह भिक्षुकी (संन्यासिनी) और स्त्रीधन के निरीक्षक उसके (स्त्रीके) भाई बन्धुओं के समीप अकेली रहने से उसे न रोके । अर्थात् इस प्रकार उपर्युक्त अवसरों पर वहां रहने के लिए अनुमति दे देवे ॥ १५ ॥

दृष्टलिङ्गे मैथुनापहारे सवर्णापसर्पोपगमे वा मिथ्यावादी द्वादशपणं दद्यात् ॥ १६ ॥ अमोक्ष्या भर्तुरकामस्य द्विषती भार्या ॥ १७ ॥ भार्यायाश्च भर्ता ॥ १८ ॥

अन्य स्त्री के साथ मैथुन करने के चिन्ह देख जाने पर, मैथुन करके 'मैंने नहीं किया' इस प्रकार झूठ बोलने पर अथवा अपनी किसी सखी के साथ संगम करके उसका अपलाप करने पर (मुकर जाने पर) मिथ्यावादी को १२ पण दण्ड दिया जावे ॥ १६ ॥ पति की इच्छा न होने पर, उसके साथ द्वेष रखती हुई भी स्त्री, उसका परित्याग नहीं कर सकती ॥ १७ ॥ इसी प्रकार ऐसी अवस्था में पति भी अपनी स्त्री का परित्याग नहीं कर सकता ॥ १८ ॥

परस्परं द्वेषान्मोक्षः ॥ १९ ॥ स्त्रीविप्रकाराद्वा पुरुषश्चेन्मो-क्षमिच्छेद्यथागृहीतमस्यै दद्यात् ॥ २० ॥ पुरुषविप्रकाराद्वा स्त्री चेन्मोक्षमिच्छेन्नास्यै यथा गृहीतं दद्यात् ॥ २१ ॥

क्योंकि दोनों का एक दूसरे के साथ द्वेष होनेसे ही परित्याग सम्भव है ॥ १९ ॥ स्त्रीके किसी अपकार (बुराई) के कारण यदि पुरुष उसको छोड़ना चाहे, तो जो सम्पत्ति उसको स्त्रीकी ओरसे प्राप्त हुई है, उसे वह स्त्रीको लौटा देवे ॥ २० ॥ यदि पुरुषके किसी अपकारके कारण स्त्री उसको छोड़ना चाहती है, तो स्त्रीसे लिया हुआ धन उसको न दिया जावे ॥ २१ ॥

अमोक्षो धर्मविवाहानामिति ॥ २२ ॥ प्रतिषिद्धा स्त्री दर्प-मद्यक्रीडायां त्रिपणं दण्डं दद्यात् ॥ २३ ॥ दिवा स्त्रीप्रेक्षाविहार-गमने षट्पणो दण्डः ॥ २४ ॥

धर्म विवाहोंमें (धर्मविवाह-पहिले चार विवाह) परित्याग नहीं हो सकता ॥ २२ ॥ यदि कोई स्त्री निषेध कियेजानेपर भी गर्वके साथ मद्य आदि पीवे और काम क्रीडा करे, तो वह जुरमानेके तौरपर ३ पण दण्ड देवे ॥ २३ ॥ दिनमें किसी स्त्रीके साथ थियेटर आदिमें जानेपर (स्त्रीप्रेक्षाविहारगमने, प्रेक्षाविहार=नाट्यगृह=थियेटर हाल) ६ पण दण्ड देवे ॥ २४ ॥

पुरुषप्रेक्षाविहारगमने द्वादशपणः ॥२५॥ रात्रौ द्विगुणः॥२६॥

यदि किसी पुरुष के साथ थियेटर आदि में जावे, तो १२ पण दण्ड देवे ॥ २५ ॥ यदि यही अपराध (२४ और २५ सूत्र में कहा हुआ) रात्रि में किया जावे, तो स्त्री को दुगना दण्ड दिया जाय। (२३ वें सूत्र से 'प्रतिषिद्धा' पद की यहां तक अनुवृत्ति समझनी चाहिए। अतएव जो स्त्री अपने पति तथा अन्य अभिभावक की आज्ञा के बिना इन उपर्युक्त कार्यों को करती है, वह अपराधिनी समझी जाती है। आज्ञा लेकर करने पर कोई दोष नहीं। तथा कामोत्पादक तमाशे आदि के अलावा, अपने पड़ौस में केवल मिलने मिलाने के लिए पति आदि की आज्ञा बिना भी जा सकती है ॥२६॥

सुप्तमत्तप्रव्रजने भर्तुरदाने च द्वारस्य द्वादशपणः ॥ २७ ॥ रात्रौ निष्कासने द्विगुणः ॥ २८ ॥

यदि कोई स्त्री सोते हुए या उन्मत्त हुए २ (शराब आदि पीने के कारण या अन्य किसी कारण से), अपने पति को छोड़ कर घर से बाहर चली जावे, अथवा पति की इच्छा के विरुद्ध घर का दरवाजा बन्द कर लेवे, तो उसको १२ पण दण्ड होना चाहिए ॥ २७ ॥ यदि कोई स्त्री अपने पति को रात्रि में घर नहीं आने देती, अर्थात् उसको घर से बाहर निकाले रखती है तो उस स्त्री को २४ पण दण्ड दिया जावे ॥ २८ ॥

स्त्रीपुंसयोर्मैथुनार्थेनाङ्गविचेष्टायां रहोऽश्लीलसंभाषायां वा चतुर्विंशतिपणः स्त्रिया दण्डः ॥ २९ ॥ पुंसो द्विगुणः ॥ ३० ॥ केशनीवीदन्तनखावलम्बनेषु पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३१ ॥ पुंसो द्विगुणः ॥ ३२ ॥

दूसरे स्त्री पुरुषों के परस्पर मैथुन के लिए इशारेबाज़ी करने पर, अथवा एकान्त में इसी विषय की बात चीत करने पर, स्त्री को २४ पण दण्ड ॥ २९ ॥ और पुरुष को इससे दुगुना अर्थात् ४८ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३० ॥ बाल और कमरबन्द के पकड़ने पर, तथा दांत और नख के

चिन्ह करने पर स्त्री को पूर्वसाहसदण्ड ॥ ३१ ॥ और पुरुष को उससे द्विगुण दण्ड देना चाहिए ॥ ३२ ॥

शङ्कितस्थाने संभाषायां च पणस्थाने शिफादण्डः ॥ ३३ ॥ स्त्रीणां ग्राममध्ये चण्डालः पक्षान्तरं पञ्चशिफा दद्यात् ॥ ३४ ॥ पणिकं वा प्रहारं मोक्षयेत् ॥ ३५ ॥ इत्यतिचाराः ॥ ३६ ॥

शङ्कित स्थान में बातचीत करने पर पण के बजाय कोड़े आदि मार कर दण्ड दिया जावे ॥ ३३ ॥ गांव में कोई चण्डाल, अपराधी औरत को उसके एक बाजू की ओर पांच कोड़े लगावे (तात्पर्य यह है कि एक ही ओर या एक ही स्थान पर पांच कोड़े से अधिक नहीं लगाये जा सकते) ॥ ३४ ॥ पण देने पर (उसकी संख्या के अनुसार) प्रहार कम कर दिए जायं । अर्थात एक पण देने पर एक प्रहार कम कर देवे । दो देने पर दो, इत्यादि ॥ ३५ ॥ यहां तक अतिचार के विषय में कहा गया ॥ ३६ ॥

प्रतिषिद्धयोः स्त्रीपुंसयोरन्योन्योपकारे क्षुद्रकद्रव्याणां द्वादशपणो दण्डः ॥ ३७ ॥ स्थूलकद्रव्याणां चतुर्विंशतिपणः ॥ ३८ ॥ हिरण्यसुवर्णयोश्चतुष्पञ्चाशत्पणः स्त्रिया दण्डः ॥ ३९ ॥ पुंसो द्विगुणः ॥ ४० ॥

यदि कोई स्त्री तथा पुरुष, रोके जाने पर भी, छोटी मोटी चीजें देकर परस्पर एक दूसरे का उपकार करें, तो उनमें स्त्री को, १२ पण, ॥ ३७ ॥ बड़ी २ चीजों के लेने देने पर २४ पण, ॥ ३८ ॥ और सोना अथवा सोने का सिक्का (या सोने से बनी हुई कोई चीज़ आभूषण आदि) लेने देने पर ५४ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३९ ॥ और (इन्हीं सब उपर्युक्त अपराधों में) पुरुष को स्त्री से दुगना दण्ड दिया जावे ॥ ४० ॥

त एवागम्ययोरर्धदण्डाः ॥ ४१ ॥ तथा प्रतिषिद्धपुरुषव्यवहारेषु च ॥ ४२ ॥ इति प्रतिषेधः ॥ ४३ ॥

यदि वे स्त्री पुरुष आपस में न मिलते हुए ही इन चीज़ों को लेते देते हैं, तो पूर्वोक्त दण्ड से आधा दण्ड उनको दिया जाय ॥ ४१ ॥ इसी प्रकार प्रतिषिद्ध पुरुषों के व्यवहार में भी, दण्ड आदि का यही नियम समझना चाहिए ॥ ४२ ॥ यहां तक उपकार और व्यवहार प्रतिषेध के विषय में कहा गया ॥ ४३ ॥

राजद्विष्टातिचाराभ्यामात्मापक्रमणेन च ।
स्त्रीधनानीतशुल्कानामस्वाम्यं जायते स्त्रियाः ॥ ४४ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीयेऽधिकरणे विवाहसंयुक्ते शुश्रूषाभर्मपारुष्यद्वेषातिचारा उपकारव्यवहारप्रतिषेधाश्च तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥
आदितः षष्टितमः ॥ ६० ॥

राजा के साथ द्वेष करने पर (बागी हो जाने पर), आचार का उल्लङ्घन करने पर, आवारागर्द होने पर, कोई भी स्त्री अपने स्त्रीधन, (२०००) रु० जमा किया हुआ तथा आभूषण आदि) आनीत, (पति के दूसरी शादी करने पर, उससे निर्वाहार्थ प्राप्त हुआ धन) और शुल्क (अपने विवाह के समय पति से अथवा बन्धु बान्धवों से प्राप्त हुआ धन) की अधिकारिणी नहीं हो सकती ॥ ४४ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरण में तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय

५९ प्रकरण

विवाह संयुक्त में निष्पतन, पथ्यनुसरण ह्रस्व प्रवास और दीर्घ प्रवास

पतिकुलान्निष्पतितायाः स्त्रियाः षट्पणो दण्डोऽन्यत्र विप्रकारात् ॥ १ ॥ प्रतिषिद्धायां द्वादशपणः ॥ २ ॥ प्रतिवेशगृहातिगतायाः षट्पणः ॥ ३ ॥ प्रातिवेशिकभिक्षुकवैदेहकानामवकाशभिक्षापण्यादाने द्वादशपणो दण्डः ॥ ४ ॥

पति कुल से भागी हुई स्त्री को ६ पण दण्ड दिया जावे । यदि वह किसी भय के कारण भागी हो तो कोई दोष नहीं ॥ १ ॥ रोकने पर भी यदि कोई स्त्री (पति की आज्ञा के विरुद्ध) घर से चली जावे तो उसे १२ पण दण्ड देना चाहिए ॥ २ ॥ यदि पड़ोसी के ही घर में जाय, तो ६ पण दण्ड दिया जाय ॥ ३ ॥ विना आज्ञा अपने पड़ोसी को अपने घर में स्थान देने पर, भिखारी को भीख देने पर, व्यापारी को किसी तरह का माल देने पर, स्त्री को १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४ ॥

प्रतिषिद्धानां पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५ ॥ परगृहातिगतायां

चतुर्विंशतिपणः ॥ ६ ॥ परभार्यावकाशदाने शत्यो दण्डो ऽन्यत्रापद्भ्यः ॥ ७ ॥

यदि कोई स्त्री प्रतिषिद्ध व्यक्तियों के साथ यहीं व्यवहार करे तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ५ ॥ यदि वह बतलाये हुए परिमित अपने समीप के घरों से बाहर अतिरिक्त स्थानों में जाती है, तो उसे २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ ६ ॥ किसी दूसरे पुरुष की स्त्री को, यदि उस पर कोई आपत्ति नहीं है, अपने घर में ठहरा लेने पर १०० पण दण्ड दिया जावे ॥ ७ ॥

वारणाज्ञानयोर्निर्दोषः ॥ ८ ॥ पतिविप्रकारात् पतिज्ञातिसुखावस्थग्रामिकान्वाधिभिक्षुकीज्ञातिकुलानामन्यतममपुरुषं गन्तुमदोष इत्याचार्याः ॥ ९ ॥

परन्तु उस हालत में यह अपराध न होगा, जबकि आने वाली स्त्री, उसके (गृह स्वामी के) रोकने पर भी उसकी आज्ञा के विरुद्ध, अथवा उसको न मालूम होने पर ही, घर में चली आती है ॥ ८ ॥ आचार्यों का मत है कि पति के द्वारा धिक्कारे जाने पर कोई भी स्त्री, अपने पति के सम्बन्धी, सुखी, गांव के मुखिया, अपने धन आदि के निरीक्षक, भिक्षुकी, तथा अपने सम्बन्धियों में से किसी के, पुरुष रहित घर में जाने पर दोषी नहीं होती ॥ ९ ॥

सपुरुषं वा ज्ञातिकुलं कुतो हि साध्वीजनस्य छलं सुखमेतदवबोद्धुमिति कौटल्यः ॥ १० ॥ प्रेतव्याधिव्यसनगर्भनिमित्तमप्रतिषिद्धमेव ज्ञातिकुलगमनम् ॥ ११ ॥

कौटल्य का मत है कि कोई भी साध्वी स्त्री, उपर्युक्त अवस्था होने पर अपने सम्बन्धियों या पारिवारिक जनों के पुरुष युक्त (जहां पुरुष विद्यमान हों) घरों में भी जा सकती है, क्योंकि वह अपने छलपूर्ण व्यवहार को छिपा नहीं सकती, अर्थात् उसके इस प्रकार आने के सब कारण उसके पति या सम्बन्धियों को बड़ी सरलता से मालूम हो सकते हैं ॥ १० ॥ मृत्यु, बीमारी, आपत्ति, और गर्भ (प्रसव–बच्चा होना) आदि अवसरोंपर, सम्बन्धियोंके यहां जानेमें कोई रोक टोक नहीं ॥ ११ ॥

तन्निमित्तं वारयतो द्वादशपणो दण्डः ॥ १२ ॥ तत्रापि गूहमाना स्त्रीधनं जीयेत ॥ १३ ॥ ज्ञातयो वा छादयन्तः शुल्कशेषम् ॥ १४ ॥ इति निष्पतनम् ॥ १५ ॥

यदि कोई पुरुष, उपर्युक्त अवसरोंपर स्त्री को सम्बन्धियों के यहां जाने से रोके, तो उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ १२ ॥ यदि स्त्री स्वयं कोई बहाना बनाकर, वहां जाने में अपने आपको छिपाले, तो उसका स्त्रीधन ज़ब्त कर लिया जाय ॥ १३ ॥ यदि सम्बन्धी जन ऐसे अवसर की सूचना न देवें, अर्थात् लेन देन के भयसे ऐसे अवसर को छिपा लेवें, तो उनको शुल्क शेष (विवाह के समय प्रतिज्ञात, वरकी ओरसे कन्या के सम्बन्धियों को अवशिष्ट देय धन) न दिया जावे ॥ १४ ॥ यहां तक स्त्रियों के निष्पतन (घर से बाहर जाने) का विचार हुआ ॥ १५ ॥

पतिकुलान्निष्पत्य ग्रामान्तरगमने द्वादशपणो दण्डः स्थाप्याभरणलोपश्च ॥ १६ ॥ गम्येन वा पुंसा सहप्रस्थाने चतुर्विंशतिपणः सर्वधर्मलोपश्चान्यत्र भर्मदानतीर्थगमनाभ्याम् ॥ १७॥

पति के घरसे भागकर दूसरे गांवमें जानेपर स्त्रीको १२ पण दण्ड दिया जावे, और उसके नामसे जमा की हुई पूंजी, तथा आभूषण भी ज़ब्त कर लिये जांय ॥ १६ ॥ गमन योग्य पुरुषके साथ जानेपर २४ पण दण्ड दिया जाय, और पतिके साथ होने वाले यज्ञ आदि सब धर्मोंसे उसे बहिष्कृत कर दिया जाय । परन्तु यदि वह अपने घरके भरण पोषण, या अन्यत्र विद्यमान पतिके ही समीप अनुगमन के लिये जावे, तो उसे अपराधी न समझा जाय ॥ १७ ॥

पुंसः पूर्वः साहसदण्डस्तुल्यश्रेयसः ॥ १८ ॥ पापीयसो मध्यमः ॥१९॥ बन्धुरदण्ड्यः ॥२०॥ प्रतिषेधे ऽर्धदण्डः ॥२१॥

तथा इस उपर्युक्त अपराध में स्त्री के समान श्रेष्ठ जाति वाले पुरुषको प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ १८ ॥ और नीच जाति वाले पुरुष को मध्यम साहस दण्ड ॥ १९ ॥ उपर्युक्त अवस्था में बन्धु दण्डनीय नहीं होता ॥ २० ॥ निषेध किये जानेपर यदि वह इस व्यवहार को करे, तो उसे आधा दण्ड दिया जावे ॥ २१ ॥

पथि व्यन्तरे गूढदेशाभिगमने मैथुनार्थेन शङ्कितप्रतिषिद्धाभ्यां वा पथ्यनुसारेण संग्रहणं विद्यात् ॥ २२ ॥ तालापचारचारणमत्स्यबन्धकलुब्धकगोपालकशौण्डिकानामन्येषां च प्रसृष्टस्त्रीकाणां पथ्यनुसरणमदोषः ॥ २३ ॥

मार्ग, जंगल अथवा गुप्तस्थान में मैथुन के लिये जाती हुई, अथवा किसी सन्देह युक्त (जिसपर कुछ सन्देह हो) या प्रतिषिद्ध (जिसके साथ जाने

को मना किया गया हो) व्यक्ति के साथ जाती हुई स्त्री को भागने के अपराध में गिरफ्तार किया जावे, और उसी के अनुसार दण्ड की व्यवस्था की जावे ॥ २२ ॥ गाने बजाने वाले कत्थक, भाट, मछियारे, व्याध (शिकारी छोटे २ पक्षी या पशु मारकर या पकड़कर उनसे जीविका करनेवाले), ग्वाले और कलवार तथा इसी प्रकार के अन्य पुरुष जोकि अपने साथ ही साथ अपनी स्त्रियों को रखते हैं, इनके साथ जाने में स्त्री को कोई दोष नहीं ॥ २३ ॥

प्रतिषिद्धे वा नयतः पुंसः स्त्रियो वा गच्छन्त्यास्त एवार्धदण्डाः ॥ २४ ॥ इति पथ्यनुसरणम् ॥ २५ ॥

निषेध किये जानेपर यदि कोई पुरुष स्त्रीको ले जावे, या स्त्री स्वयं किसी पुरुषके साथ जावे, तो उनको नियमानुसार आधा दण्ड दिया जावे ॥ २४॥ यहां तक पथ्यनुसरण (रास्ते में स्त्री का किसीके साथ जाना) के सम्बन्धमें विचार किया गया ॥ २५ ॥

ह्रस्वप्रवासिनां शूद्रवैश्यक्षत्रियब्राह्मणानां भार्याः संवत्सरोत्तरं कालमाकांक्षेरन्नप्रजाताः संवत्सराधिकं प्रजाताः ॥ २६ ॥ प्रतिविहिता द्विगुणं कालम् ॥ २७ ॥

थोड़े समयके लिये बाहर जाने वाले शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मणों की पुत्रहीन स्त्रियां एक वर्ष, तथा पुत्रवती इससे अधिक समय तक उनके आने की प्रतीक्षा करें ॥ २६ ॥ यदि पति उनकी आजीविका का प्रबन्ध कर गये हों तो वे दुगने समय तक उनकी प्रतीक्षा करें ॥ २७ ॥

अप्रतिविहिताः सुखावस्था बिभृयुः परं चत्वारि वर्षाण्यष्टौ वा ज्ञातयः ॥ २८ ॥ ततो यथादत्तमादाय प्रमुञ्चेयुः ॥ २९ ॥

और जिनके भोजनाच्छादन का प्रबन्ध न हो, उनका, उनके समृद्ध बन्धु-बान्धव चार वर्ष, या अधिक से अधिक आठ वर्ष तक पालन पोषण करें ॥ २८ ॥ इसके बाद, प्रथम विवाह में दिये धनको वापस लेकर दूसरी शादीके लिये आज्ञा दे देवें ॥ २९ ॥

ब्राह्मणमधीयानं दशवर्षाण्यप्रजाता द्वादश प्रजाता राजपुरुषमायुःक्षयादाकाङ्क्षेत ॥ ३० ॥ सवर्णतश्च प्रजाता नापवादं लभेत ॥ ३१ ॥

पढ़ने के लिये बाहर गये हुए ब्राह्मणों की पुत्ररहित स्त्रियां दश वर्ष और पुत्रवती बारह वर्ष तक उनकी प्रतीक्षा करें ॥ ३० ॥ यदि कोई व्यक्ति राजाके

किसी कार्य से बाहर गये हों, तो उनकी स्त्रियां आयु पर्यन्त उनकी प्रतीक्षा करें ॥ ३० ॥ यदि किसी समानवर्ण (ब्राह्मणादि) पुरुषसे किसी स्त्री के बच्चा पैदा हो जाय तो वह निन्दनीय नहीं ॥ ३१ ॥

कुटुम्बर्द्धिलोपे वा सुखावस्थैर्विमुक्ता यथेष्टं विन्देत जीवितार्थम् ॥३२॥ आपद्गता वा धर्मविवाहात्कुमारी परिगृहीतारमनाख्याय प्रोषितं श्रूयमाणं सप्ततीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥ ३३ ॥

कुटुम्बकी सम्पत्ति का नाश होनेपर (या कुटुम्ब की बढ़ती नष्ट हो जानेपर अर्थात कोई बच्चा आदि न रहनेपर) अथवा समृद्ध बन्धु बान्धवों से छोड़े जानेपर कोई स्त्री जीवन निर्वाह के लिए अपनी इच्छा के अनुसार अन्य विवाह कर सकती है ॥ ३२ ॥ तथा धनादि न रहने के कारण आपद्ग्रस्त वह युवती स्त्री (अक्षतयोनि) जिसका विवाह पहिले चार प्रकार के धर्म विवाहों के अनुसार हुआ हो, और उसका पति बिना कहे विदेश को चला गया हो, सात मासिकधर्म पर्यन्त अपने पतिकी प्रतीक्षा करे ॥ ३३ ॥

संवत्सरं श्रूयमाणमाख्याय ॥ ३४ ॥ प्रोषितमश्रूयमाणं पञ्चतीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥ ३५ ॥ दश श्रूयमाणम् ॥ ३६ ॥

यदि वह पुरुष कहकर गया हो, तो उसकी एक वर्ष तक प्रतीक्षा करे ॥ ३४ ॥ पतिके विदेश चले जानेपर यदि उसकी कुछ खबर न मिले, तो पांच, ॥३५॥ और खबर मिलने पर दस मासिक धर्म पर्यन्त प्रतीक्षा करे ॥३६॥

एकदेशदत्तशुल्कं त्रीणि तीर्थान्यश्रूयमाणम् ॥ ३७ ॥ श्रूयमाणं सप्ततीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥ ३८ ॥

विवाह के समय प्रतिज्ञात धनमें से कुछ थोड़ा ही भाग जिसने स्त्री को दिया हो, और विदेश चले जानेपर उसकी (पति की) खबर भी कुछ न मिली हो, तो तीन मासिक धर्म पर्यन्त ॥ ३७ ॥ तथा खबर मिलनेपर सात मासिक धर्म पर्यन्त, उसकी प्रतीक्षा करे ॥ ३८ ॥

दत्तशुल्कं पञ्चतीर्थान्यश्रूयमाणम् ॥ ३९ ॥ दश श्रूयमाणम् ॥ ४० ॥ ततः परं धर्मस्थैर्विसृष्टा यथेष्टं विन्देत ॥ ४१ ॥

जिसने विवाह के समय प्रतिज्ञात सम्पूर्ण धन दे दिया हो, और विदेश चले जाने पर उसकी कुछ खबर न मिले तो पांच ॥ ३९ ॥ तथा खबर मिलने पर दस मासिक धर्म पर्यन्त उस की प्रतीक्षा करे ॥ ४० ॥ इसके (उपर्युक्त नियत समय के) बाद प्रत्येक स्त्री धर्माधिकारी से आज्ञा पाकर अपनी इच्छानुसार दूसरा विवाह कर सकती है ॥ ४१ ॥

तीर्थोपरोधो हि धर्मवध इति कौटल्यः ॥ ४२ ॥ दीर्घप्रवासिनः प्रव्राजितस्य प्रेतस्य वा भार्या सप्ततीर्थान्याकाङ्क्षेत ॥ ४३ ॥

क्योंकि ऋतुकाल का उपरोध होना (ऋतुकालमें पुरुष संगम न होना) धर्म के नाश हो जाने के बराबर है, यह कौटल्य आचार्य का मत है ॥४२॥ जो पुरुष सदा के लिये स्त्री से वियुक्त हो गया हो, अर्थात् संन्यासी होगया हो, या मर गया हो, तो उसकी भार्या सात मासिक धर्म पर्यन्त उसकी आकाङ्क्षा रक्खे (अर्थात् इतने समय तक दूसरा विवाह न करे)॥ ४३ ॥

संवत्सरं प्रजाता ॥ ४४ ॥ ततः पतिसोदर्यं गच्छेत् ॥४५॥ बहुषु प्रत्यासन्नं धार्मिकं भर्मसमर्थं कनिष्ठमभार्यं वा ॥ ४६ ॥

यदि उसके कोई बच्चा हो, तो एक वर्ष तक प्रतीक्षा कर लेवे ॥ ४४ ॥ उसके बाद अपने पतिके सगे भाई के साथ विवाह कर लेवे ॥ ४५ ॥ यदि पति के सगे भाई बहुतसे हों, तो उनमें जो नजदीकी छोटा भाई हो, (अर्थात् पतिके और उसके बीचमें और कोई भाई न हो) तथा वह धार्मिक और भरण-पोषण करने में समर्थ हो, उसके साथ विवाह कर लेवे । अथवा जिस भाई के स्त्री न हो उसके साथ विवाह कर लेवे ॥ ४६ ॥

तदभावेऽप्यसोदर्यं सपिण्डं कुल्यं वासन्नम् ॥ ४७ ॥ एतेषां एष एव क्रमः ॥ ४८ ॥

यदि पति का सगाभाई कोई न हो, तो समान गोत्रवाले उसही के किसी पारिवारिक भाई के साथ विवाह कर लेवे ॥ ४७ ॥ तात्पर्य यह है कि पतिका जो समीप से समीप सम्बन्धी भाई हो उसके साथ विवाह कर लेवे, इनका ऐसा ही क्रम है ॥ ४८ ॥

एतानुत्क्रम्य दायादान्वेदने जातकर्मणि ।
जारस्त्रीदातृवेत्तारः संप्राप्ताः संग्रहात्ययम् ॥ ४९ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीयेऽधिकरणे विवाहसंयुक्ते निष्पतनं पथ्यनुसरणं ह्रस्वप्रवासः दीर्घप्रवासश्च चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ विवाहसंयुक्तं समाप्तम् ॥
आदितः एकषष्टितमः ॥ ६१ ॥

इन दायभागी (अपने पति की संपत्ति के हकदार) पुरुषों को छोड़कर यदि और किसी पुरुष के साथ स्त्री विवाह करे, तो वह विवाह करने वाला पुरुष, वह स्त्री, और उस स्त्री को देने वाला, तथा उस विवाह में शामिल होनेवाले, ये सब ही पुरुष, स्त्री को बहकाने या अनुचित ढंगसे अपने काबू कर

लेने के अपराधमें अपराधी समझे जावें । और उनको यथोचित दण्ड दिया जावे ॥ ४१ ॥

॥ धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें चतुर्थाध्याय समाप्त ॥

पांचवां अध्याय

६० प्रकरण

दाय विभाग ।

अनीश्वराः पितृमन्तः स्थितपितृमातृकाः पुत्राः ॥ १ ॥ तेषामूर्ध्वं पितृतो दायविभागः पितृद्रव्याणां स्वयमार्जितमविभज्यमन्यत्र पितृद्रव्यादुत्थितेभ्यः ॥ २ ॥

माता पिता दोनों या केवल पिताके रहते हुए, पुत्र सम्पत्तिके अधिकारी नहीं होते ॥१॥ उनके बाद पिताकी सम्पत्तिका वे आपसमें बंटवारा कर सकते हैं। परन्तु जो सम्पत्ति किसीने स्वयं कमाई हो, उसका विभाग नहीं होसकता। यदि वह पिताका धन खर्च करके ही कमाई गई हो, तो उसका भी बांट होसकता है ॥२॥

पितृद्रव्यादविभक्तोपगतानां पुत्राः पौत्रा वा चतुर्थादित्यंशभाजः ॥ ३ ॥ तावदविच्छिन्नः पिण्डो भवति ॥ ४ ॥

पिताकी सम्पत्तिको न बांटकर, इकट्ठे रहने वालोंके पुत्र पौत्र आदि चौथी पीढ़ीतक उस सम्पत्तिके बराबरके अधिकारी होते हैं। (इसका तात्पर्य यह है कि जिन दो भाइयोंने अपनी जायदाद न बांटी हो, उनकी चौथी पीढ़ीतक यदि एककी सन्तान पांच, और एक की दो हों, तो वे उस सम्पत्तिको दो भागोंमें विभक्त करा सकते हैं, अर्थात् आधी सम्पत्ति दोके पास और आधी पांचके पास जावेगी। परन्तु चौथी पीढ़ीके आगे फिर इस तरह विभाग नहीं होसकता। वह उस समय विद्यमान व्यक्तियोंकी संख्याके अनुसार ही होगा।) परन्तु यह आवश्यक है कि उनके वंशमें किसी तरहका विच्छेद न हुआ हो। (विच्छेद न होनेका तात्पर्य यह है कि कोई भी व्यक्ति चौथी पीढ़ीतक उनमें से अलहदा न हुआ हो) ॥३॥ ॥४॥

विच्छिन्नपिण्डाः सर्वे समं विभजेरन् ॥ ५ ॥ अपितृद्रव्या विभक्तपितृद्रव्या वा सहजीवन्तः पुनर्विभजेरन् ॥ ६ ॥ यतश्चोत्तिष्ठेत स द्व्यंशं लभेत ॥ ७ ॥

विच्छेद होनेपर तो विद्यमान सब भाई संख्याके अनुसार बराबर २ सम्पत्ति को बांट लेवें ॥५॥ पितासे सम्पत्ति प्राप्त न होनेपर, अथवा पिताकी सम्पत्तिको बांटकर भी जो भाई इकट्ठे रहते और कमाते हैं, वे फिर भी संपत्तिका विभाग कर सकते हैं ॥६॥ जिसके कारण सम्पत्तिकी अधिक वृद्धि हो, वह सम्पत्तिका उचित अधिक भाग बांटके समय ले लेवे ॥७॥

द्रव्यमपुत्रस्य सोदर्या भ्रातरः सहजीविनो वा हरेयुः कन्याश्च रिक्थम् ॥ ८ ॥ पुत्रवतः पुत्राः दुहितरो वा धर्मिष्ठेषु विवाहेषु जाताः ॥ ९ ॥ तदभावे पिता धरमाणः ॥ १० ॥

जिसके कोई पुत्र न हो, उसकी सम्पत्तिको उसके सगे भाई तथा अन्य साथी ले लेवें। और सुवर्ण आदिके आभूषण तथा नकदी कन्या ले लेवें ॥८॥ जिसके पुत्र हों, उसकी सम्पत्तिके अधिकारी उसके पुत्र होवें, अथवा वे लड़कियां जो धार्मिक विवाहों (पहिले चार विवाहों) से उत्पन्न हुई हों ॥९॥ इनके (उक्त पुत्र पुत्रियोंके) न होनेपर उस मृतपुरुषका जीवित पिता ही सम्पत्तिका अधिकारी रहे ॥१०॥

पित्रभावे भ्रातरो भ्रातृपुत्राश्च ॥ ११ ॥ अपितृका बहवोऽपि च भ्रातरो भ्रातृपुत्राश्च पितुरेकमंशं हरेयुः ॥ १२ ॥

पिताके न रहनेपर, पिताके भाई तथा उनके पुत्र सम्पत्तिके अधिकारी समझे जावें ॥११॥ यदि पिताके न होनेपर, उसके बहुतसे भाई और भाईयोंके पुत्र हों, तो वे पिताकी सम्पत्तिको बराबर बांट लेवें ॥१२॥

सोदर्याणामनेकपितृकाणां पितृतो दायविभागः पितृभ्रातृपुत्राणां पूर्वे विद्यमाने नापरमवलम्बन्ते ॥ १३ ॥ ज्येष्ठे च कनिष्ठमर्धग्राहिणम् ॥ १४ ॥

एकही मातासे अनेक पिताओंके द्वारा उत्पन्न हुए लड़कोंका दायविभाग पिताकी ओरसे होजाना चाहिये। क्योंकि फिर पिताके भाईयों (उपपिताओं) के बड़े लड़के, पिताकी अनुपस्थितिमें छोटोंको दायभाग देनेमें गड़बड़ करते हैं ॥१३॥ इसलिये बड़के रहनेपर छोटेको आधा हिस्सा मिल जाना चाहिये ॥१४॥

जीवद्विभागे पिता नैकं विशेषयेत् ॥ १५ ॥ न चैकमकारणान्निर्विभजेत ॥ १६ ॥ पितुरसत्यर्थे ज्येष्ठाः कनिष्ठाननुगृह्णीयुरन्यत्र मिथ्यावृत्तेभ्यः ॥ १७ ॥

यदि पिता जीवित रहता हुआ ही अपनी सम्पत्तिका विभाग करना

चाहे, तो किसीको अधिक न देवे; अर्थात् सबको बराबर बांट देवे ॥१५॥ और विनाही किसी कारणके अपने अनेक लड़कोंमेंसे किसी एक कोही अलहदा न करे ॥१६॥ पिताकी सम्पत्ति न होनेपर, बड़े भाई छोटोंकी रक्षा करें। यदि वे आचार सद्व्यवहार से भ्रष्ट हो जांय तो उनकी रक्षा न करें ॥१७॥

प्राप्तव्यवहाराणां विभागः ॥ १८ ॥ अप्राप्तव्यवहाराणां देयविशुद्धं मातृबन्धुषु ग्रामवृद्धेषु वा स्थापयेयुर्व्यवहारप्रापणात्प्रोषितस्य वा ॥१९॥ संनिविष्टसममसंनिविष्टेभ्यो नैवेशनिकं दद्युः२०।

पुत्रोंके प्राप्तव्यवहार (बालिग) होजाने परही सम्पत्तिका विभाग किया जाता है ॥१८॥ नाबालिगोंकी सम्पत्ति, ठीक २ हिसाबके साथ उनके मामा अथवा गांवके वृद्ध विश्वासी पुरुषोंके पास रखदी जाये, जबतक कि वे बालिग होजावें। विदेशमें गये हुए पुरुषकी सम्पत्तिका भी इसी तरह प्रबन्ध होना चाहिये ॥१९॥ विवाहित बड़े भाई, अपने छोटे अविवाहित भाईयोंको विवाहके लिये खर्च देवें ॥२०॥

कन्याभ्यश्च प्रादानिकम् ॥ २१ ॥ ऋणरिक्थयोः समो विभागः ॥ २२ ॥ उदपात्राण्यपि निष्किंचना विभजेरन्नित्याचार्याः ॥ २३ ॥

और कन्याओंके लिये उनके विवाह कालमें देनेको दहेज आदिका धन देवें ॥२१॥ ऋण और आभूषण तथा नकद धनको बराबर २ बांट लेवें ॥२२॥ प्राचीन आचार्योंका मत है कि दरिद्र जन अपने पानी आदिके बर्तनोंको भी आपसमें बांट लेवें ॥ २३ ॥

छलमेतदिति कौटल्यः ॥ २४ ॥ सतोऽर्थस्य विभागो नासत एतावानर्थः सामान्यस्तस्यैतावान्प्रत्यंश इत्यनुभाष्य ब्रुवन्साक्षिषु विभागं कारयेत् ॥ २५ ॥

परन्तु कौटल्यका मत है कि ऐसा करना छल है ॥ २४ ॥ क्योंकि विद्यमान सबही सम्पत्तिका विभाग किया जाता है, अविद्यमानका नहीं। 'इतनी सम्पूर्ण सम्पत्ति है, इसमें इतना २ हिस्सा प्रत्येक व्यक्तिका है' यह बात साक्षियोंके सामने कहकर बंटवारा करवाया जाये ॥ २५ ॥

दुर्विभक्तमन्योन्यापहृतमन्तर्हितमविज्ञातोत्पन्नं वा पुनर्विभजेरन् ॥ २६ ॥ अदायादकं राजा हरेत्स्त्रीवृत्तिप्रेतकार्यवर्जमन्यत्र श्रोत्रियद्रव्यात् ॥ २७॥ तत्त्रैविद्येभ्यः प्रयच्छेत् ॥ २८ ॥

यदि विभाग ठीक न हुआ हो, या उस सम्पत्तिमें से किसी हिस्सेदारने कुछ अपहरण करलिया हो, या कोई चीज छिपी रह गई हो, अथवा बंटवारेके बाद कोई चीज अकस्मात् और मिलजाय, तो उस सम्पत्तिका फिर बांट कर लिया जाय ॥ २६ ॥ जिस सम्पत्तिका कोई अधिकारी न हो उसे राजा ले लेवे। परन्तु स्त्रीके जीवन निर्वाह और औध्र्वदेहिक (श्राद्ध आदि) आदि कार्योंके लिये जितना धन आवश्यक होवे, वह छोड़ देवे। तथा श्रोत्रियके धनको कदापि न लेवे ॥ २७ ॥ प्रत्युत उस धनको वेदोंके जानने वाले विद्वानों को दे देवे ॥२८॥

पतितः पतिताज्जातः क्लीबश्चानंशाः ॥ २९ ॥ जडोन्मत्तान्धकुष्ठिनश्च ॥ ३० ॥ सति भार्यार्थे तेषामपत्यमतद्विधं भागं हरेत् ॥ ३१ ॥ ग्रासाच्छादनमितरे पतितवर्जाः ॥ ३२ ॥

पतित, तथा पतितसे पैदा हुए २, और नपुंसकोंको दाय भाग नहीं मिलता ॥ २९ ॥ सर्वथामूर्ख, उन्मत्त, अन्धे और कोढ़ी भी सम्पत्तिके अधिकारी नहीं होते ॥ ३० ॥ भार्या की सम्पत्ति होने पर, यदि उनके (मूर्ख आदि जनों-के) लड़के उनके समान (मूर्ख आदि) नहीं होते, तो वे (लड़के) सम्पत्तिमें दायभागी हो सकते हैं ॥ ३१ ॥ पतितोंको छोड़कर अन्य सभी (मूर्ख आदि) उस सम्पत्तिमें से केवल, अपने लिये भोजन वस्त्र पासकते हैं ॥ ३२ ॥

तेषां च कृतदाराणां लुप्ते प्रजनने सति ।
सृजेयुः बान्धवाः पुत्रांस्तेषामंशान् प्रकल्पयेत् ॥३३॥

इति धर्मस्थीये तृतीये अधिकरणे दायविभागे दायक्रमः पञ्चमो अध्यायः ॥५॥
आदितो द्विषष्टितमः ॥६२॥

यदि इन उपर्युक्त पुरुषोंकी स्त्रियां हों, परन्तु अपनी अशक्तिसे ये उनसे बच्चे पैदा न करसकें, तो इन पुरुषोंके बन्धु बान्धव उनमें जिन पुत्रोंको उत्पन्न करें, वे अपनी पुरानी सम्पत्तिके दायभागी हो सकते हैं ॥ ३३ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरण में पांचवां अध्याय समाप्त।

छठा अध्याय।

६० प्रकरण।

अंश विभाग।

एकस्त्रीपुत्राणां ज्येष्ठांशः ॥ १ ॥ ब्राह्मणानामजाः क्षत्रियाणामश्वा वैश्यानां गावः शूद्राणामवयः ॥ २ ॥ काणलिङ्गास्तेषां मध्यमांशः ॥ ३ ॥ भिन्नवर्णाः कनिष्ठांशः ॥ ४ ॥

एक स्त्रीके जब बहुतसे लड़के हों, तो उनमें से सबसे बड़े लड़केका हिस्सा निम्न-प्रकार होना चाहिये ॥ १ ॥ ब्राह्मणोंकी बकरी, क्षत्रियोंके घोड़े, वैश्योंकी गाय, और शूद्रोंकी भेड़। (अर्थात् वर्णोंके अनुसार बड़े लड़केको सम्पत्तिका यह प्रधान भाग मिलना चाहिये) ॥ २ ॥ उन पशुओंमें जो काणे हों, वे मध्यम अर्थात् मंझले लड़केका (वर्णोंके अनुसार)हिस्सा समझा जावे ॥ ३ ॥ और वेही रंगबिरंगे पशु, सबसे छोटे भाईका हिस्सा ॥ ४ ॥

चतुष्पदाभावे रत्नवर्जानां दशानां भागं द्रव्याणामेकं ज्येष्ठो हरेत् ॥ ५ ॥ प्रतिमुक्तस्वधापाशो हि भवति ॥ ६ ॥ इत्यौशनसो विभागः ॥ ७ ॥

पशुओंके न होनेपर, हीरे जवाहरातको छोड़कर बाकी सब सम्पत्तिका दसवां हिस्सा बड़े लड़केको अधिक मिले ॥ ५ ॥ क्योंकि इससे वह पितृदेय अन्नादिके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। (इसका तात्पर्य यह है कि बड़े लड़केको अपने पूर्वज पितरोंके लिये स्वधा=पिण्डदान आदि देना पड़ता है, अतः उसपर अधिक भार न पड़े, इसलिये सम्पत्तिका दसवां हिस्सा उसे अधिक मिल जाना चाहिये) ॥ ६ ॥ दायक अंश-विभागके सम्बन्धमें यह उशना (शुक्र) आचार्य का मत है ॥ ७ ॥

पितुः परिवापाद्यानमाभरणं च ज्येष्ठांशः ॥ ८ ॥ शयनासनं भुक्तकांस्यं च मध्यमांशः ॥ ९ ॥ कृष्णं धान्यायसं गृहपरिवापो गोशकटं च कनिष्ठांशः ॥ १० ॥ शेषाणां द्रव्याणामेकद्रव्यस्य वा समो विभागः ॥ ११ ॥

पिताकी सम्पत्तिसे सवारी और आभूषण बड़े लड़केका हिस्सा ॥ ८ ॥ सोने बिछानेका सामान तथा पुराने बर्तन मंझले लड़केका ॥ ९ ॥ और काला अन्न, लोहा, अन्य घरेलू सामान तथा बैलगाड़ी छोटे लड़केका हिस्सा समझना चाहिये ॥ १० ॥ बाकी बचे हुए, सब द्रव्योंका, या एक द्रव्यका बराबर २ बांट हो जाना चाहिये ॥ ११ ॥

अदायादा भगिन्यः मातुः परिवापाद्भुक्तकांस्याभरण-भागिन्यः ॥ १२ ॥ मानुषहीनो ज्येष्ठस्तृतीयमंशं ज्येष्ठांशाल्लभेत ॥ १३ ॥ चतुर्थमन्यायवृत्तिः ॥ १४ ॥ निवृत्तधर्मकार्यो वा कामाचारः सर्वं जीयेत ॥ १५ ॥

दायभाग न लेनेवाली बहिनें, माताकी सम्पत्तिसे पुराने बर्तन तथा आभू-

पण ले लेवें ॥ १२ ॥ बड़ा लड़का यदि नपुंसक हो, तो उसको उसके निश्चित हिस्सेमेंसे तीसरा हिस्सा मिले ॥ १३ ॥ यदि वह कुछ अन्याय आचरण करता हो तो चौथा मिले ॥ १४ ॥ और यदि धर्म-कार्योंसे सदा पृथक् रहता हो तथा सब कुछ अपनी इच्छाके ही अनुसार करता हो तो उसे सम्पत्तिका कुछ भी हिस्सा न दिया जाय ॥ १५ ॥

तेन मध्यमकनिष्ठौ व्याख्यातौ ॥ १६ ॥ तयोर्मानुषोपेतो ज्येष्ठांशादर्धं लभेत ॥ १७ ॥ नानास्त्रीपुत्राणां तु संस्कृतासंस्कृतयोः कन्याकृतक्रियाभावे चैकस्याः पुत्रयोर्यमयोर्वा पूर्वजन्मना ज्येष्ठभावः ॥ १८ ॥

मध्यम और छोटे लड़केके सम्बन्धमें भी ऐसे अवसरोंपर यही नियम समझना चाहिये ॥ १६ ॥ यदि इन दोनोंमेंसे कोई एक पुंस्त्वधर्मसे युक्त (मानुषोपेतः) हो (अर्थात् नपुंसक न हो) तो वह बड़े भाईके हिस्सेमेंसे आधा ले लेवे ॥ १७ ॥ अनेक स्त्रियोंके पुत्रोंमें उसहीको बड़ा समझना चाहिये, जो अविवाहित स्त्रीके मुकाबलेमें विधि पूर्वक विवाहित स्त्रीसे उत्पन्न हुआ हो, चाहे वह पीछे ही उत्पन्न हो । अथवा एक स्त्री कन्या अवस्थामें भार्या बनी है, और दूसरी अन्यभुक्ता, उनमेंसे पहिलीका लड़का ज्येष्ठ समझा जावे । यदि किसीके दो जुड़ले पैदा हो जांय, तो उनमेंसे वही ज्येष्ठ होगा जो पहिले पैदा हुआ है ॥१८॥

सूतमागधव्रात्यरथकाराणामैश्वर्यतो विभागः शेषास्तमुपजीवेयुः ॥ १९ ॥ अनीश्वराः समविभागा इति ॥ २० ॥

सूत, मागध, व्रात्य और रथकारोंकी सम्पत्तिका, उनके ऐश्वर्यके अनुसार विभाग करना चाहिये । अर्थात् जो लड़का उनमें प्रभावशाली हो वह सम्पत्ति ले लेवे, और बाकी लड़के उसीके भरोसेपर जीवन निर्वाहका प्रबन्ध रक्खें ॥ १९ ॥ यदि उनमें कोई विशेष प्रभावशाली न हो तो वे अपनी सम्पत्तिको बराबर २ बांट लेवें ॥ २० ॥

चातुर्वर्ण्यपुत्राणां ब्राह्मणीपुत्रश्चतुरोऽशान्हरेत् ॥ २१ ॥ क्षत्रियापुत्रस्त्रीनंशान् ॥ २२ ॥ वैश्यापुत्रो द्वावंशौ ॥ २३ ॥ एकं शूद्रापुत्रः ॥ २४ ॥ तेन त्रिवर्णाद्विवर्णपुत्रविभागः क्षत्रियवैश्ययोर्व्याख्यातः ॥ २५ ॥

यदि किसी ब्राह्मणके चारों वर्णोंकी स्त्रियां हों तो उनमेंसे ब्राह्मणीके लड़केको सम्पत्तिके चार भाग मिलें ॥२१॥ क्षत्रियाके लड़केको तीन भाग ॥२२॥

वैश्याके लड़केको दो ॥ २३ ॥ और शूद्राके लड़केको एक हिस्सा मिले ॥ २४ ॥ इसी प्रकार जहांपर क्षत्रियके घरमें तीन वर्णोंकी (क्षत्रिय, वैश्य शूद्र), और वैश्यके घरमें दो वर्णोंकी (वैश्य शूद्र) स्त्रियां हों, उनके पुत्रोंके लिये भी सम्पत्ति विभागका यही उपर्युक्त नियम समझना चाहिये ॥ २५ ॥

ब्राह्मणस्यानन्तरापुत्रस्तुल्यांशः क्षत्रियवैश्ययोरर्धांशः ॥२६॥ तुल्यांशो वा मानुषोपेतः ॥ २७ ॥

यदि ब्राह्मणके घरमें ब्राह्मणी और क्षत्रिया दोनोंके पुत्र हों तो वे सम्पत्तिका बराबर २ हिस्सा बांट लेवें । अर्थात् ब्राह्मणके घरमें उससे अव्यवहित नीच-जातिकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ लड़का सम्पूर्ण सम्पत्तिके आधेका हिस्सेदार होगा । इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्यके घरमें उनसे अव्यवहित नीची-जातिकी स्त्रीसे उत्पन्न हुए लड़के (समान वर्णकी स्त्रीसे उत्पन्न हुए लड़केके हिस्सेसे) आधा हिस्सा पावें ॥ २६ ॥ जो पुंस्त्वसे युक्त (मानुषोपेत) हो, वह बराबरका ही हिस्सा लेवे ॥ २७ ॥

तुल्यातुल्ययोरेकपुत्रः सर्वं हरेत् ॥ २८ ॥ बन्धूंश्च बिभृयात् ॥ २९ ॥ ब्राह्मणानां तु पारशवस्तृतीयमंशं लभेत ॥ ३० ॥

समान या असमान वर्णकी स्त्रियोंमेंसे किसी एकके, एकही लड़का उत्पन्न हुआ हो, तो वह पिताकी सम्पूर्ण सम्पत्तिका मालिक होवे ॥ २८ ॥ और अपने बन्धु बान्धवोंका भरण पोषण करे ॥ २९ ॥ पारशव (ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न हुआ) ब्राह्मणोंकी सम्पत्तिके तीसरे हिस्सेका मालिक होवे ॥ ३० ॥

द्व्यंशं सपिण्डः कुल्यो वासन्नः स्वधादानहेतोः ॥ ३१ ॥ तदभावे पितुराचार्योऽन्तेवासी वा ॥ ३२ ॥

सपिण्ड (मातृकुलकी किसी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ २) अथवा नजदीकी खानदानकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ लड़का सम्पत्तिके दो भाग ले सकता है । जिससे कि वह अपने पिता आदिका पिण्डदान कर सके ॥ ३१ ॥ इन सबके न होनेपर पिताका आचार्य अथवा अन्तेवासी (शिष्य) उसकी सम्पत्तिका अधिकारी होवे ॥ ३२ ॥

क्षेत्रे वा जनयेदस्य नियुक्तः क्षेत्रजं सुतम् ।
मातृबन्धुः सगोत्रो वा तस्मै तत्प्रदिशेद्धनम् ॥ ३३ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे दायविभागेंऽशविभागः
षष्ठो ऽध्यायः ॥ ६ ॥ आदितस्त्रिषष्टितमः ॥ ६३ ॥

अथवा उसकी स्त्रीसे नियोगके द्वारा उत्पन्न हुआ लड़का, या उसकी माताके बन्धु-बान्धव या कोई सगोत्र (अत्यधिक समीपका रिश्तेदार) उसकी सम्पत्तिका अधिकारी समझा जावे ॥ ३३ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरण में छठा अध्याय समाप्त ।

सातवां अध्याय ।

६० प्रकरण ।

पुत्र विभाग ।

परपरिग्रहे बीजमुत्सृष्टं क्षेत्रिण इत्याचार्याः ॥ १ ॥ माता भस्त्रा यस्य रेतस्तस्यापत्यमित्यपरे ॥ २ ॥ विद्यमानमुभयमिति कौटल्यः ॥ ३ ॥

आचार्यका मत है कि दूसरेके क्षेत्रमें डालेहुए बीजका मालिक क्षेत्रपति ही होता है । अर्थात किसी पुरुषसे अन्यकी स्त्रीमें उत्पन्न किया हुआ बच्चा, उस स्त्रीके पतिकी ही सम्पत्ति होती है ॥ १ ॥ परन्तु दूसरे विद्वानोंका मत है कि जो बच्चा जिसके वीर्यसे पैदा हो, वह उसीका समझा जावे ॥ २ ॥ कौटल्य कहता है कि ये दोनोंही उस बालकके पिता समझे जाने चाहियें ॥ ३ ॥

स्वयंजातः कृतक्रियायामौरसः ॥ ४ ॥ तेन तुल्यः पुत्रिका-पुत्रः ॥ ५ ॥ सगोत्रेणान्यगोत्रेण वा नियुक्तेन क्षेत्रजातः क्षेत्रजः पुत्रः ॥ ६ ॥

विधिपूर्वक विवाहित स्त्रीमें, स्वयं उत्पन्न किया हुआ पुत्र औरस कहाता है ॥ ४ ॥ लड़कीका लड़का भी इसीके समान समझा जाता है ॥ ५ ॥ समान गोत्रवाले, अथवा भिन्न गोत्रवाले किसी पुरुषसे अपनी स्त्रीके साथ नियोग कराकर जो बच्चा पैदा किया जाता है, वह क्षेत्रज कहलाता है ॥ ६ ॥

जनयितुरसत्यन्यस्मिन्पुत्रे स एव द्विपितृको द्विगोत्रो वा द्वयोरपि स्वधारिक्थभाग्भवति ॥ ७ ॥ तत्सधर्मा बन्धूनां गृहे गूढजातस्तु गूढजः ॥ ८ ॥ बन्धुनोत्सृष्टोऽपविद्धः संस्कर्तुः पुत्रः ॥ ९ ॥

यदि उत्पन्न करनेवाले पुरुषके और कोई लड़का नहीं है, तो वही दो पिता (द्वि पितृक) अथवा दो गोत्रवाला (द्विगोत्र) लड़का उन दोनोंके पिण्ड-दान और सम्पत्तिका अधिकारी होता है, ॥ ७ ॥ उसीके समान जो बच्चा स्त्रीके

बन्धु-बान्धवोंके घर रहते हुए छिपे तौरपर पैदा होता है वह गूढज कहाता है ॥ ८ ॥ यदि बन्धु-बान्धव उसको अपने यहां न रक्खें, और कहीं बाहर उस को डालदें, या फेंकदें, तो जो कोई उस बच्चेका पालन पोषण करले, उसहीका (संस्कर्तुः) वह लड़का समझा जाता है ॥ ९ ॥

कन्यागर्भः कानीनः ॥ १० ॥ सगर्भोढायाः सहोढः ॥ ११ ॥ पुनर्भूतायाः पौनर्भवः ॥ १२ ॥ स्वयंजातः पितृबन्धूनां च दायादः ॥ १३ ॥

कन्याके गर्भसे जो बच्चा पैदा हो उसे कानीन कहते हैं ॥ १० ॥ गर्भवती स्त्रीका विवाह होनेपर जो बच्चा पैदा हो उसे सहोढ कहते हैं ॥ ११ ॥ दूसरीवार विवाहित हुई २ स्त्रीसे जो बच्चा पैदा होता है, उसे पौनर्भव कहा जाता है ॥ १२ ॥ पिता या बन्धुओंसे स्वयं उत्पन्न किया हुआ बालक उनकी सम्पत्तिका दायभागी होता है ॥ १३ ॥

परजातः संस्कर्तुरेव न बन्धूनाम् ॥ १४ ॥ तत्सधर्मा मातापितृभ्यामद्भिर्मुक्तो दत्तः ॥ १५ ॥

जो दूसरेके द्वारा उत्पन्न हुआ हो (इसका तात्पर्य 'गूढज' पुत्रसे मालूम होता है) वह संस्कर्त्ता (पालन पोषण करनेवाले) कीही सम्पत्तिका अधिकारी होता है, बन्धु-बान्धवोंकी नहीं ॥ १४ ॥ उसहीके समान जो, माता पिताओं के द्वारा, हाथमें जल लेकर किसी दूसरेको देदिया गया हो, वह दत्त, जिसको दिया गया हो, उसीकी सम्पत्तिका अधिकारी होता है ॥ १५ ॥

स्वयं बन्धुभिर्वा पुत्रभावोपगत उपगतः ॥ १६ ॥ पुत्रत्वेनाङ्गीकृतः कृतकः ॥ १७ ॥ परिक्रीतः क्रीत इति ॥ १८ ॥

जो स्वयं या बन्धुओंके द्वारा पुत्रभावसे प्राप्त हुआ है, वह उपगत ॥ १६ ॥ जिसको पुत्रभावसे स्वीकारकर लिया गया है, वह कृतक ॥ १७ ॥ और जो खरीदकर पुत्र बनाया गया हो, वह क्रीत कहाता है ॥ १८ ॥

औरसे तूत्पन्ने सवर्णास्तृतीयांशहराः ॥ १९ ॥ असवर्णा ग्रासाच्छादनभागिनः ॥ २० ॥ ब्राह्मणक्षत्रिययोरनन्तरापुत्राः सवर्णा एकान्तरा असवर्णाः ॥ २१ ॥

औरस पुत्रके उत्पन्न होनेपर, अन्य सवर्ण स्त्रियोंसे उत्पन्न हुए लड़के, पिताकी जायदादके तीसरे हिस्सेके मालिक होते हैं ॥ १९ ॥ और जो असवर्ण स्त्रियोंसे उत्पन्न हों, वे केवल भोजन-वस्त्र पासकते हैं ॥ २० ॥ ब्राह्मण और

क्षत्रियके अनन्तर (ब्राह्मणके लिये क्षत्रिया और क्षत्रियके लिये वैश्या) जातिकी स्त्रीसे उत्पन्न हुए पुत्र सवर्ण ही समझे जाते हैं। जो एक जातिके व्यवधानसे उत्पन्न हों, अर्थात् ब्राह्मणसे वैश्यामें क्षत्रियसे शूद्रामें, वे असवर्ण समझे जावें ॥ २१ ॥

ब्राह्मणस्य वैश्यायामम्बष्ठः ॥ २२ ॥ शूद्रायां निषादः पारशवो वा ॥ २३ ॥ क्षत्रियस्य शूद्रायामुग्रः ॥ २४ ॥ शूद्र एव वैश्यस्य ॥ २५ ॥

ब्राह्मणका वैश्यामें उत्पन्न हुआ पुत्र अम्बष्ठ कहाता है ॥ २२ ॥ ब्राह्मणसे जो शूद्रामें उत्पन्न होता है, उसे निषाद या पारशव कहते हैं ॥ २३ ॥ क्षत्रियसे शूद्रामें उत्पन्न हुआ २ उग्र कहाता है ॥ २४ ॥ वैश्यका और शूद्रामें उत्पन्न हो वह शूद्र ही रहेगा ॥ २५ ॥

सवर्णासु चैषामचरितव्रतेभ्यो जाता व्रात्याः ॥ २६ ॥ इत्यनुलोमः ॥ २७ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकेही सवर्णा स्त्रियोंमें उत्पन्न हुए २ लड़के समयपर विधिपूर्वक उपनयन और ब्रह्मचर्य आदि व्रतोंका अनुष्ठान न करनेके कारण व्रात्य हो जाते हैं ॥ २६ ॥ ये सब अनुलोम (उच्चवर्ण पुरुषसे नीचवर्ण स्त्रीमें) विवाहोंसे उत्पन्न होते हैं ॥ २७ ॥

शूद्रादायोगवक्षत्तचण्डालाः ॥ २८ ॥ वैश्यान्मागधवैदेहकौ ॥ २९ ॥ क्षत्रियात्सूतः ॥ ३० ॥

शूद्रसे, वैश्या क्षत्रिया और ब्राह्मणीमें उत्पन्न हुए पुत्र यथासंख्य आयोगव, क्षत्ता और चण्डाल कहाते हैं ॥ २८ ॥ इसी प्रकार वैश्यसे, क्षत्रिया और ब्राह्मणीमें उत्पन्न हुए मागध और वैदेहक ॥ २९ ॥ तथा क्षत्रियसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न हुआ सूत कहाता है ॥ ३० ॥

पौराणिकस्त्वन्यः सूतो मागधश्च ब्रह्मक्षत्राद्विशेषः ॥ ३१ ॥ त एते प्रतिलोमाः स्वधर्मातिक्रमाद्राज्ञः संभवन्ति ॥ ३२ ॥

परन्तु जो सूत और मागध नामके पुरुष पुराणोंमें वर्णित किये गये हैं वे इनसे बिल्कुल भिन्न हैं, तथा ब्राह्मण और क्षत्रियोंसे भी श्रेष्ठ हैं ॥३१॥ राजा जब अपने धर्मका पालन नहीं करता तभी ये प्रतिलोम (नीचवर्ण पुरुषसे उच्चवर्ण स्त्रीमें उत्पन्न हुए) वर्णसंकर पैदा होते हैं ॥ ३२ ॥

उग्रान्नैषाद्यां कुक्कुटः ॥ ३३ ॥ विपर्यये पुल्कसः ॥ ३४ ॥ वैदेहिकायामम्बष्ठाद्वैणः ॥ ३५ ॥ विपर्यये कुशीलवः ॥ ३६ ॥ क्षत्तायामुग्राच्छ्वपाक इत्येते चान्तरालाः ॥ ३७ ॥

जो उग्र (नामक संकर जातिके) पुरुषसे निषाद स्त्रीमें उत्पन्न होता है, उसे कुक्कुट या कुटक कहते हैं ॥ ३३ ॥ जो निषाद पुरुषसे उग्रा स्त्रीमें हो उसे पुल्कस कहते हैं ॥ ३४ ॥ अम्बष्ठसे वैदेहिकामें वेण उत्पन्न होता है ॥३५॥ और विदेहकसे अम्बष्ठामें कुशीलव ॥ ३६ ॥ उग्रसे क्षत्तामें श्वपाक, इसी प्रकार और भी अवान्तर संकर जातियां समझनी चाहियें ॥ ३७ ॥

कर्मणा वैण्यो रथकारः ॥ ३८ ॥ तेषां स्वयोनौ विवाहः ॥ ३९ ॥ पूर्वापरगामित्वं वृत्तानुवृत्तं च स्वधर्मं स्थापयेत् ॥४०॥ शूद्रसधर्माणो वा ॥ ४१ ॥ अन्यत्र चण्डालेभ्यः ॥ ४२ ॥

वैण्य कर्म करनेसे रथकार होजाता है ॥ ३८ ॥ इनका अपनीही जातिमें विवाह होता है ॥ ३९ ॥ ऊपर नीचे जाने, और धर्मका निर्णय करनेमें ये अपने पूर्वजोंका ही अनुगमन करें ॥ ४० ॥ अथवा चण्डालोंको छोड़कर सभी संकर जातियोंके धर्म शूद्रोंके समान ही समझने चाहियें ॥ ४१ ॥ ॥ ४२ ॥

केवलमेवं वर्तमानः स्वर्गमाप्नोति राजा नरकमन्यथा ॥४३॥ सर्वेषामन्तरालानां समोविभागः ॥ ४४ ॥

केवल इस प्रकारसे अपनी प्रजाकी व्यवस्था करता हुआ राजा स्वर्गको प्राप्त होता है, अन्यथा नरक पाता है ॥ ४३ ॥ सब संकर जातियोंमें, जायदाद का बराबर २ हिस्सा ही होना चाहिये ॥ ४४ ॥

देशस्य जात्या संघस्य धर्मो ग्रामस्य वापि यः ।
उचितस्तस्य तेनैव दायधर्मं प्रकल्पयेत् ॥ ४५ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीयेऽधिकरणे दायविभागे पुत्रविभागः सप्तमोऽध्यायः ॥७॥
दायविभागः समाप्तः । आदितश्चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

देशका जातिका सङ्घका तथा गांवका जो उचित धर्म हो, उसीके अनुसार वहांके दायभागका नियम होना चाहिये ॥ ४५ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरण में सातवां अध्याय समाप्त ।

अथवा पास २ के मकानोंके मालिक आपसमें मिलकर इच्छानुसार मकान बनवालें, और एक दूसरेको कष्ट न होने दें ॥ १९ ॥ छतके ऊपर अस्थायी तौरपर दीवारोंके सहारे एक फूंसका छप्पर डलवा देवे, जिससे कि छतपर सोते समय वर्षा ऋतुमें वृष्टिके द्वारा कोई कष्ट न हो ॥ २० ॥

तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥ २१ ॥ प्रतिलोमद्वारवातायनबाधायां च ॥ २२ ॥ अन्यत्र राजमार्गरथ्याभ्यः ॥ २३ ॥

ऐसा न करनेपर प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ २१ ॥ जो पुरुष बाहर की ओर दरवाजा या खिड़की बनाकर पड़ोसियोंको कष्ट पहुंचावे उसे भी प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ २२ ॥ यदि वे दरवाजे या खिड़कियां शाही सड़क या बाजारकी ओरको हों तो कोई हानि नहीं ॥ २३ ॥

खातसोपानप्रणालीनिश्रेण्यवस्करभागैर्बहिर्बाधायां भोगनिग्रहे च परकुड्यमुदकेनोपघ्नतो द्वादशपणो दण्डः ॥ २४ ॥ मूत्रपुरीषोपघाते द्विगुणः ॥ २५ ॥

गड्ढा, सीढ़ी (जीना) नाली, लकड़ीकी सीढ़ी (नसेनी) और पाखाना आदिसे जो बाहरके पड़ोसियों को कष्ट पहुंचावे, सहन को रोके, तथा पानी निकलनेका ठीक प्रबन्ध न करनेके कारण दूसरेकी दीवारको हानि पहुंचावे, उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ २४ ॥ मूत्र और पाखानेकी रुकावट करनेपर २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ २५ ॥

प्रणालीमोक्षो वर्षति ॥ २६ ॥ अन्यथा द्वादशपणो दण्डः ॥ २७ ॥ प्रतिषिद्धस्य च वसतो निरस्यतश्चावक्रयिणम् ॥ २८ ॥ अन्यत्र पारुष्यस्तेयसाहससंग्रहणमिथ्याभोगेभ्यः ॥ २९ ॥

वर्षा ऋतुमें हर एक नाली खुली रहनी चाहिये। (ताकि कूड़ा करकट इकट्ठा होजाने से नाली बन्द न हो जाय) ॥ २६ ॥ ऐसा न करनेपर १२ पण दण्ड दिया जावे ॥ २७ ॥ मालिकके द्वारा मना किये जानेपर भी जो किरायेदार मकान न छोड़े; तथा किराया दे देनेपरभी जो मालिक, किरायेदारको मकानसे निकाले, उन्हें १२ पण दण्ड होना चाहिये ॥ २८ ॥ परन्तु उनमेंसे किसीका भी कठोर भाषण, चोरी, डाका, व्यभिचार तथा मिथ्याव्यवहारका कोई मामला न हो ॥ २९ ॥

स्वयमभिप्रस्थितो वर्षावक्रयशेषं दद्यात् ॥ ३० ॥ सामान्ये वेश्मनि साहाय्यमप्रयच्छतः सामान्यमुपरुन्धतो भोगनिग्रहे द्वादशपणो दण्डः ॥ ३१ ॥ विनाशयतस्तद्द्विगुणः ॥ ३२ ॥

यदि किरायेदार अपने आप मकान को छोड़े, तो सालभर का बाकी किराया मालिक को अदा करे ॥ ३० ॥ पञ्चायती मकानोंमें (धर्मशाला आदिमें) सहायता न देने वालेको, तथा उसे कार्यमें लानेके लिये रुकावट करने वालेको १२ पण जुरमाना किया जाय ॥ ३१ ॥ ऐसे मकानोंको जो खराब करे उसे २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ ३२ ॥

कोष्ठकाङ्गणवर्चानामग्निकुट्टनशालयोः ।
विवृत्तानां च सर्वेषां सामान्ये भोग इष्यते ॥ ३३ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे वास्तुके गृहवास्तुकमष्टमो अध्यायः ॥८॥
आदितः पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

कोठे और आंगन को छोड़कर अग्निशाला तथा कुट्टनशाला, और अन्य सब ही खुले स्थानोंका उपयोग सब लोग कर सकते हैं ॥ ३३ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें आठवां अध्याय समाप्त ।

नौवां अध्याय ।

६१ प्रकरण ।

वास्तु-विक्रय ।

ज्ञातिसामन्तधनिकाः क्रमेण भूमिपरिग्रहान्क्रेतुमभ्याभवेयुः ॥ १ ॥ ततो ऽन्ये बाह्याः सामन्तचत्वारिंशत्कुल्या गृहप्रतिमुखे वेश्म श्रावयेयुः ॥ २ ॥

अपने कुटुम्बी, गांवका मुखिया तथा धनीलोग ही क्रमशः मकान या जमीन आदि खरीद सकते हैं ॥ १ ॥ यदि वे खरीदना न चाहें तो दूसरे, गांवसे बाहरके सामन्त तथा उनके चालीस कुलोंतकके पुरुषोंको, मकानके सामनेही मकानका दाम सुनाया जाय ॥ २ ॥

सामन्तग्रामवृद्धेषु क्षेत्रमारामं सेतुबन्धं तटाकमाधारं वा मर्यादासु यथासेतुभोगमनेनार्घेण कः क्रेता इति त्रिराघुषितमव्याहतं क्रेता क्रेतुं लभेत ॥ ३ ॥

गांवके मुखिया तथा अन्य वृद्ध पुरुषोंके सामनेही खेत, बाग, सीमाबन्ध, तालाब, और हौज आदिके, उनकी हैसियतके मुताबिक नियमपूर्वक मूल्यकी, 'इतने दामपर कौन खरीदेगा' इस प्रकार तीनबार आवाज़

लगाई जावे, जो खरीदनेवाला बोलीबोले, वह बिना किसी रोकटोकके मकान आदिको खरीद लेवे । ॥ ३ ॥

स्पर्धितयोर्वा मूल्यवर्धने मूल्यवृद्धिः सशुल्का कोशं गच्छेत् ॥ ४ ॥ विक्रयप्रतिक्रोष्टा शुल्कं दद्यात् ॥ ५ ॥ अस्वामिप्रतिक्रोशे चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ६ ॥

बोलीमें स्पर्धापूर्वक मूल्य बढ़ानेपर, शुल्क सहित बढ़ाया हुआ मूल्य सरकारी कोषमें जमा किया जावे ॥ ४ ॥ बेचनेकी बोली बोलनेवाला शुल्क देवे ॥ ५ ॥ मकान मालिककी अनुपस्थितिमें नीलामीके लिये उसके मकानकी बोली बोलदेनेपर २४ पण दण्ड दिया जावे ॥ ६ ॥

सप्तरात्रादूर्ध्वमनभिसरतः प्रतिक्रुष्टो विक्रीणीत ॥ ७ ॥ प्रतिक्रुष्टातिक्रमे वास्तुनि द्विशतो दण्डः ॥ ८ ॥ अन्यत्र चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ९ ॥ इति वास्तुविक्रयः ॥ १० ॥

सूचना देनेपर सात दिनतक यदि मालिक न आवे तो बोली बोलनेवाला पुरुष उसकी अनुपस्थितिमें ही मकान बेच देवे ॥ ७ ॥ कोई पुरुष बोली देनेपर यदि मकान आदि लेनेसे इन्कार करे, तो उसपर २०० पण दण्ड किया जाय ॥ ८ ॥ मकान आदिके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंके मामलेमें २४ पण दण्ड देना चाहिये ॥ ९ ॥ यहांतक मकान आदिके बेचनेका विषय कहा गया है ॥ १० ॥

सीमविवादं ग्रामयोरुभयोः सामन्ताः पञ्चग्रामी दशग्रामी वा सेतुभिः स्थावरैः कृत्रिमैर्वा कुर्यात् ॥ ११ ॥

दो गांवोंकी सीमाके झगड़ोंका, उन दोनों गांवोंके मुखिया, या आसपासके पांच गांव अथवा दस गांवके मुखिया, आपसमें मिलकर, स्थायी या बनावटी हदबन्दियोंके द्वारा, निर्णय करें ॥ ११ ॥

कर्षकगोपालवृद्धकाः पूर्वभुक्तिका वा बाह्याः सेतूनामनभिज्ञा बहव एको वा निर्दिश्य सीमसेतून्विपरीतवेषाः सीमानं नयेयुः ॥ १२ ॥

गांवके किसान, ग्वाले, वृद्ध, तथा अन्य बाहरके अनुभवी पुरुष बहुत या एक, जोकि हदकी ठिएबन्दीसे परिचित नहीं, अपने वेषमें परिवर्तन करके (देखो मनु. ८, २५६; याज्ञ० २,१५२) सीमाके चिन्होंको लक्ष्यकर, गांवोंकी सीमाका निर्णय करें, अथवा उसको बनावें ॥ १२ ॥

उद्दिष्टानां सेतूनामदर्शने सहस्रं दण्डः ॥ १३ ॥ तदेव नीते सीमापहारिणां सेतुच्छिदां च कुर्यात् ॥ १४ ॥ प्रनष्टसेतुभोगं वा सीमानं राजा यथोपकारं विभजेत् ॥ १५ ॥

निर्णय किये हुए या बनाये हुए सीमाके चिन्होंके न देखे जानेपर अपराधीको १००० पण दण्ड दिया जाय ॥ १३ ॥ यही दण्ड उस पुरुषको दिया जाय, कि जो सीमाकी भूमिका अपहरण करे या सीमाके चिन्होंको काटे ॥ १४ ॥ जहांपर सीमाके चिन्ह नष्ट होगये हों, कोई निर्णयका साधन न मिले, वहांपर राजा स्वयं इस प्रकार सीमाका विभाग करे कि जिससे किसीको हानि नहो, अर्थात सबही ग्राम-निवासियोंका यथावत् उपकार हो ॥ १५ ॥

क्षेत्रविवादं सामन्तग्रामवृद्धाः कुर्युः ॥ १६ ॥ तेषां द्वैधीभावे यतो बहवः शुचयो ऽनुमता वा ततो नियच्छेयुः ॥ १७ ॥ मध्यं वा गृह्णीयुः ॥ १८ ॥

खेतोंके झगड़ोंका निर्णय गांवके मुखिया वृद्ध पुरुष करें ॥ १६ ॥ यदि उनका आपसमें एकमत न हो तो बहुतसे धार्मिक, जिनको प्रजा स्वीकार करे, वेही इनका निर्णय कर देवें ॥ १७ ॥ या किसीको मध्यस्थ (पञ्च) बनालें, उसहीके निर्णयानुसार कार्य करें ॥ १८ ॥

तदुभयं परोक्तं वास्तु राजा हरेत् ॥ १९ ॥ प्रनष्टस्वामिकं च यथोपकारं वा विभजेत् ॥ २० ॥ प्रसह्यादाने वास्तुनि स्तेयदण्डः ॥ २१ ॥

यदि इन दोनोंसे भी निर्णय न हो, तो राजा स्वयं उन खेत आदिको ले लेवे ॥ १९ ॥ और उस सम्पत्तिको भी ले लेवे, जिसका कोई मालिक नहीं। अथवा इनका इस प्रकार विभाग कर देवे, जिससे कि जनताका अधिकाधिक लाभ हो ॥ २० ॥ जो पुरुष, मकान भूमि आदि स्थायी सम्पत्तिपर बलात्कार अपना अधिकार जमावे, उसे चोरीका दण्ड दिया जाय ॥ २१ ॥

कारणादाने प्रयासमाजीवं च परिसंख्याय बन्धं दद्यात् ॥ २२ ॥ मर्यादापहरणे पूर्वः साहसदण्डः ॥ २३ ॥ मर्यादाभेदे चतुर्विंशतिपणः ॥ २४ ॥

परन्तु जो किसी ऋण आदिके कारण लेवे, तो भूस्वामीके शारीरिकश्रम का फल, तथा सम्पत्तिका ऋणसे अधिक मूल्य होनेपर वह अधिक धन, उसको ठीक २ हिसाब करके देदेवे ॥ २२ ॥ सीमाके सरकाने, अर्थात् अपनी ओर

मिलानेपर प्रथम साहस दण्ड ॥ २३ ॥ और सीमा चिन्होंके तोड़नेपर २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ २४ ॥

तेन तपोवनविवीतमहापथश्मशानदेवकुलयजनपुण्यस्थान-विवादा व्याख्याताः ॥ २५ ॥ इति मर्यादास्थापनम् ॥ २६ ॥

इससे तपोवन, चरागाह, बड़ी सड़कें, श्मशान, देवालय, यज्ञस्थान, तथा अन्य पुण्यस्थान आदिके विवादोंका निर्णय भी समझ लेना चाहिये ॥२५॥ यहांतक सीमा-विषयक विचार किया गया ॥ २६ ॥

सर्व एव विवादाः सामन्तप्रत्ययाः ॥२७॥ विवीतस्थलकेदार षण्डखलवेश्मवाहनकोष्ठानां पूर्वं पूर्वमाबाधं सहेत ॥ २८ ॥

सब तरहके विवादोंका निर्णय सामन्त लोग करें ॥ २७ ॥ चरागाह, क्यारियां (जोते जानेवाली भूमि) खलिहान, मकान और घुड़साल इनके सम्बन्धमें झगड़ा होनेपर इस प्रकार निर्णय किया जाय, जिसमेंकि अगलेकी अपेक्षा पहिलेमें किसी प्रकारकी बाधा न पड़े। अर्थात् निर्णयमें उत्तरकी अपेक्षा पूर्वको प्रधानता दी जावे ॥ २८ ॥

ब्रह्मसोमारण्यदेवयजनपुण्यस्थानवर्जाः स्थलप्रदेशाः ॥ २९ ॥ आधारपरिवाहकेदारोपभोगैः परक्षेत्रकृष्टबीजहिंसायां यथोपघातं मूल्यं दद्युः ॥ ३० ॥ केदारारामसेतुबन्धानां परस्परहिंसायां हिंसाद्विगुणो दण्डः ॥ ३१ ॥

ब्रह्मारण्य, सोमारण्य, देवस्थान, यज्ञस्थान और अन्य पुण्यस्थानोंको छोड़कर शेष सब ही प्रदेश क्षेत्रके योग्य समझने चाहियें । अर्थात् आवश्यकता होनेपर उपर्युक्त स्थानोंको छोड़, अन्य सभी स्थानोंमें खेती कराई जा सकती है ॥ २९ ॥ जलाशय, नाली, या क्यारी बनाते हुए यदि किसीके खेतमें बोये हुए बीजका नुक्सान होजाय, तो उस हानिके अनुसारही उसका मूल्य चुका देना चाहिये ॥ ३० ॥ यदि कोई पुरुष खेत, बागबगीचे, और सीमा बन्ध आदिको एक दूसरेके बदले आपसमें नुक्सान पहुँचावे, तो नुक्सानका दुगना दण्ड उन्हें भुगताना चाहिये ॥ ३१ ॥

पश्चान्निविष्टमधरतटाकं नोपरितटाकस्य केदारमुदकेनाप्लाव-येत् ॥ ३२ ॥ उपरिनिविष्टं नाधरतटाकस्य पूरास्रावं कारयेद-न्यत्र त्रिवर्षोपरतकर्मणः ॥ ३३ ॥

पीछे बने हुए नीचेके तालाबसे सींचे जानेवाले खेतको ऊपरके तालाब के पानीसे न सींचे ॥ ३२ ॥ नीचेके तालाबमें ऊपरके तालाबसे आते हुए पानी-को न रोके, बशर्त्तेकि नीचेका तालाब तीनवर्ष तक बेकार न पड़ा रहा हो ॥३३॥

तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३४ ॥ तटाकवामनं च ॥ ३५ ॥ पञ्चवर्षोपरतकर्मणः सेतुबन्धस्य स्वाम्यं लुप्येतान्यत्रापद्भ्यः ॥ ३६ ॥

इस नियमका उल्लङ्घन करनेपर प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ३४ ॥ और तालाबके पानीको निकलवा दिया जाय ॥ ३५ ॥ पांच वर्षतक यदि कोई जलादिका सीमाबन्ध बेकार रहे, तो फिर उसपर उसके स्वामीका स्वत्व नहीं रहता । यदि किन्हीं आपत्तियोंके कारण काममें न लाया जासका हो तो कोई हानि नहीं ॥ ३६ ॥

तटाकसेतुबन्धानां नवप्रवर्तने पाञ्चवार्षिकः परिहारः ॥३७॥ भग्नोत्सृष्टानां चातुर्वर्षिकः ॥ ३८ ॥ समुपारूढानां त्रैवर्षिकः ॥ ३९ ॥ स्थलस्य द्वैवर्षिकः स्वात्माधाने विक्रये च ॥ ४० ॥

यदि कोई पुरुष, तालाब और सीमाबन्ध बिल्कुल नये बनवावे, तो उसपर पांच वर्षतक सरकारी टैक्स न लगाया जाय ॥ ३७ ॥ यदि टूटेफूटे हुओं को ठीक करवावे तो चार वर्ष ॥ ३८ ॥ बने हुएके ऊपर और बनवावे तो तीन वर्ष ॥ ३९ ॥ तथा भूमिको गिरवी रखनेपर और बेचदेनेपर दो वर्षतक इस मदमें सरकारी टैक्स न लिया जावे ॥ ४० ॥

वातप्रावृत्तिमनदीनिबन्धायतनतटाककेदारारामषण्डवपानां सस्यवर्णभागोत्तरिकमन्येभ्यो वा यथोपकारं दद्युः ॥ ४१ ॥

ऐसे तालाबोंमें, जिनमें नदीका पानी न आता हो, वायुसे चलनेवाले रहट आदि लगाकर जो किसान अपने खेतोंमें, बगीचोंमें, फुलवाड़ियोंमें पानी देते हैं, उनकी उपजपर सरकार उतनाही टैक्स लगावे, जिसमें उनको किसी प्रकारका कष्ट न हो ॥ ४१ ॥

प्रक्रयावक्रयाधिभागभोगनिसृष्टोपभोक्तारश्चैषां प्रतिकुर्युः॥४२॥ अप्रतीकारे हीनद्विगुणो दण्डः ॥ ४३ ॥

जो किसान तालाबोंके मालिक नहीं हैं, वे भी निम्नलिखित शर्त्तोंपर पानी ले सकते हैं । मालिकको पानीके अनुसार कीमत देकर, कुछ सालाना बंधा हुआ किराया देकर, अपनी उपजका कुछ हिस्सा देकर, अथवा जिनको

मालिकोंने खुली आज्ञा देदी हुई है । परन्तु यह आवश्यक है कि ये चारों उस तालाब और रहट आदिकी बराबर मरम्मत कराते रहें ॥ ४२ ॥ मरम्मत न करानेपर नुक्सानसे दुगना दण्ड उनको दिया जावे ॥ ४३ ॥

सेतुभ्यो मुञ्चतस्तोयमपारे षट्पणो दमः ।
पारे वा तोयमन्येषां प्रमादेनोपरुन्धतः ॥ ४४ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे वास्तुके वास्तुविक्रयः सीमाविवादः क्षेत्रविवादः मर्यादास्थापनं बाधाबाधिकं नवमो ऽध्यायः ॥ ९ ॥

आदितः षट्षष्टितमो ऽध्यायः ॥ ६६ ॥

अपनी बारी न होनेपर जो पानी लेवे, उसे ६ पण दण्ड दिया जाय, और उसको भी यही दण्ड दिया जाय, जो प्रमादसे, अपनी बारीपर पानी लेतेहुए का पानी रोकदे ॥ ४४ ॥

॥ धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें नौवां अध्याय समाप्त ॥

दसवां अध्याय ।

६१, ६२ प्रकरण ।

चरागाह और खेतके मार्गोंका रोकना, तथा नियमका उल्लङ्घन ।

कर्मोदकमार्गमुचितं रुन्धतः कुर्वतो ऽनुचितं वा पूर्वः साहसदण्डः ॥ १ ॥

साधारण कार्य और जलके उचित रास्तोंको रोकनेवाले, तथा अनुचित रास्तोंके करनेवाले पुरुषको प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ १ ॥

सेतुकूपपुण्यस्थानचैत्यदेवायतनानि च परभूमौ निवेशयतः पूर्वानुवृत्तं धर्मसेतुमाधानं विक्रयं वा नयतो नाययतो वा मध्यमः साहसदण्डः श्रोतॄणामुत्तमः ॥ २ ॥ अन्यत्र भग्नोत्सृष्टात् ॥ ३ ॥

जो पुरुष दूसरेकी भूमिमें सेतु, पुण्यस्थान, (धर्मशाला आदि) चैत्य (अग्निस्थान) और देवालय बनवावे, अथवा जो पहिलेसे धर्मार्थ बने हुए मकान को गिरवी रक्खे, बेचे, या बिकवावे, उन्हें मध्यमसाहस दण्ड दिया जावे । और जो पुरुष उसके सहायक या साक्षी हों, उनको उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ २ ॥ परन्तु यदि वह मकान टूटाफूटा होनेके कारण मालिकने छोड दिया हो तो ऐसा करनेमें कोई हानि नहीं ॥ ३ ॥

स्वाम्यभावे ग्रामाः पुण्यशीला वा प्रतिकुर्युः ॥ ४ ॥ पथिप्रमाणं दुर्गनिवेशे व्याख्यातम् ॥ ५ ॥ क्षुद्रपशुमनुष्यपथं रुन्धतो द्वादशपणो दण्डः ॥ ६ ॥

मकान मालिकके न होनेपर, ग्रामनिवासी तथा अन्य धार्मिकजन उस टूटेफूटे धर्मार्थ मकानकी मरम्मत करवावें ॥ ४ ॥ रास्ता कितना चौड़ा होना चाहिये, इस बातका निरूपण 'दुर्गनिवेश' (२अधि., ४ अध्या,,१–८ सूत्र) नामक प्रकरणमें कर दिया गया है ॥ ५ ॥ छोटे २ जानवर और मनुष्योंके मार्गको रोकने वाले पुरुषको १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ६ ॥

महापशुपथं चतुर्विंशतिपणः ॥ ७ ॥ हस्तिक्षेत्रपथं चतुष्पञ्चाशत्पणः ॥ ८ ॥ सेतुवनपथं षट्शतः ॥ ९ ॥ श्मशानग्रामपथं द्विशतः ॥ १० ॥ द्रोणमुखपथं पञ्चशतः ॥ ११ ॥ स्थानीयराष्ट्रविवीतपथं साहस्रः ॥ १२ ॥

बड़े २ पशुओंके मार्गको रोकनेपर २४ पण, ॥७॥ हाथी और खेतोंके रास्ते रोकनेपर ५४ पण ॥ ८ ॥ सेतु और वनके रास्तोंको रोकनेपर ६०० पण ॥९॥ श्मशान और गांवके रास्ते रोकनेपर २०० पण ॥ १० ॥ द्रोणमुखका मार्ग रोकनेपर ५०० पण ॥ ११ ॥ स्थानीय राष्ट्र तथा चरागाहके मार्ग रोकनेपर १००० पण दण्ड होना चाहिये ॥ १२ ॥

अतिकर्षणे चैषां दण्डचतुर्था दण्डाः ॥ १३ ॥ कर्षणे पूर्वोक्ताः ॥ १४ ॥ क्षेत्रिकस्याक्षिपतः क्षेत्रमुपवासस्य वा त्यजतो बीजकाले द्वादशपणो दण्डः ॥ १५ ॥

जो पुरुष इन मार्गोंको, खोदने या जोतने आदिके अतिरिक्त और कोई हानि पहुंचावे, तो उसे उपर्युक्त दण्डोंका चौथाई दण्ड दिया जावे ॥ १३ ॥ खोदने या जोतनेपर तो पूर्वोक्त यथोचित सब ही दण्ड होने चाहियें ॥ १४ ॥ गांवमें रहनेवाला किसान यदि बीज बोनेके समयमें, खेतमें बीज नहीं बोता, या खेतको छोड़ता है, तो उसे १२ पण दण्ड होना चाहिये ॥ १५ ॥

अन्यत्र दोषोपनिपाताविषह्येभ्यः ॥ १६ ॥ करदाः करदेष्वाधानं विक्रयं वा कुर्युः ॥ १७ ॥ ब्रह्मदेयिका ब्रह्मदेयिकेषु ॥१८॥

यदि खेतमें कोई दोष होनेके कारण, अथवा किसी बाह्य आकास्मिक आपत्तिके कारण, या असामर्थ्यके कारण ऐसा नहीं करता, तो कोई दोष

नहीं ॥ १६ ॥ लगान देनेवाले पुरुष लगान देनेवालोंके यहां ही अपनी भूमि सम्पत्तिको गिरवी रख या बेच सकते हैं ॥ १७ ॥ जो भूमिका लगान नहीं देते अर्थात् जिनको धर्मार्थ भूमि दी हुई है, वे अपने जैसेही पुरुषोंके पास अपनी भूमि गिरवी रख, या बेच सकते हैं ॥ १८ ॥

अन्यथा पूर्वः साहसदण्डः ॥ १९ ॥ करदस्य वाऽकरदग्रामं प्रविशतः ॥ २० ॥ करदं तु प्रविशतः सर्वद्रव्येषु प्राकाम्यं स्यात् ॥ २१ ॥ अन्यत्रागारात् ॥ २२ ॥

इन नियमोंका उल्लङ्घन करनेपर उनको प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ १९ ॥ यही दण्ड उस पुरुषको भी दिया जाय जो लगान देनेवाले गांवके निवासको छोड़कर, लगान न देनेवाले गांवमें (निवास करनेके विचारसे) प्रवेश करे ॥ २० ॥ यदि वह फिर भी लगान देनेवालेही गांवमें निवास करने लगता है, तो उसे रहनेके मकानको छोड़कर बाकी सब बातोंमें स्वतन्त्रता देदी जावे ॥ २१, २२ ॥

तदप्यस्मै दद्यात् ॥ २३ ॥ अनादेयमकृषतोऽन्यः पञ्चवर्षाण्युपभुज्यप्रयासनिष्क्रयेण दद्यात् ॥ २४ ॥

अथवा उचित समझनेपर मकान भी उसको देदिया जावे ॥ २३ ॥ जो पुरुष अपनी भूमिको नहीं जोतता, उसको दूसरा पुरुष बिना लगान दिये ही जोत लेवे, और पांचवर्ष तक उसका उपभोगकर मालिकको वापस कर देवे। परन्तु जो खर्चा या मेहनत उस भूमिको ठीक करनेमें लगा है, उसका मूल्य मालिकसे वसूलकर लेवे ॥ २४ ॥

अकरदाः परत्र वसन्तो भोगमुपजीवेयुः ॥ २५ ॥ ग्रामार्थेन ग्रामिकं व्रजन्तमुपवासाः पर्यायेणानुगच्छेयुरननुगच्छन्तः पणार्धपणिकं योजनं दद्युः ॥ २६ ॥

जो लोग लगान नहीं देते, अर्थात् जिनके पास धर्मार्थ भूसम्पत्ति है, वे दूसरे स्थानोंमें रहते हुए भी अपनी सम्पत्तिके पूर्ण अधिकारी हैं ॥ २५ ॥ जब गांवका मुखिया गांवके किसी कामके लिये बाहर जावे, तो ग्रामनिवासी नम्बरवार उसके साथ जावें। न जानेपर १½ पण, योजनके हिसाबसे जुरमाना देवें (१ योजन=५⅝ मील) ॥ २६ ॥

ग्रामिकस्य ग्रामादस्तेनपारदारिकं निरस्यश्चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ २७ ॥ ग्रामस्योत्तमः ॥ २८ ॥

यदि गांवका मुखिया, चोर और व्यभिचारीके अतिरिक्त अन्य किसीको गांवसे बाहर निकाले, तो उसे (मुखियाको) २४ पण दण्ड दिया जाय ॥२७॥ यदि सारा गांव मिलकर ऐसे व्यक्तिको (चोर और व्यभिचारीसे अतिरिक्त) गांवसे बाहर निकालना चाहे, तो उसे (गांवको) उत्तम साहस दण्ड दिया जाय॥२८॥

निरस्तस्य प्रवेशो ह्यधिगमन व्याख्यातः ॥ २९ ॥ स्तम्भैः समन्ततो ग्रामाद्धनुःशतापकृष्टमुपशालं कारयेत् ॥ ३० ॥

इस कथनसे, गांवसे बाहर हुए पुरुषका फिर गांवमें बसना भी समझ लेना चाहिये। (इसका तात्पर्य यह है, कि बसनेके लिये कहीं बाहरसे आये हुए पुरुषको, यदि गांवका मुखिया गांवमें न बसने दे, तो उस (मुखियाको) २४ पण दण्ड, और इसी अपराधमें गांवको उत्तम सहास दण्ड दिया जाय) ॥ २९ ॥ चारों ओर रुकावटके लिये खम्भे लगाकर, गांवसे ४००हाथकी दूरीपर एक बाड़ा (जो जोता बोया न जावे) बनवावे, जहां पशु आदि बैठ सकें ॥ ३० ॥

पशुप्रचारार्थं विवीतमालवनेनोपजीवेयुः ॥ ३१ ॥ विवीतं भक्षयित्वावसृतानामुष्ट्रमहिषाणां पादिकं रूपं गृह्णीयुः ॥ ३२ ॥ गवाश्वखराणां चार्धपादिकम् ॥ ३३ ॥ क्षुद्रपशूनां षोडशभागिकम् ॥ ३४ ॥

पशुओंके घूमने और चरने बैठनेके लिये जंगलोंमें चरागाह बनवावे ॥ ३१ ॥ चरागाहमें चरकर यदि ऊंट और भैंस आदि बड़े २ पशु अपने घर चले जाते हैं (अर्थात् वे चरागाहमें नहीं बैठते या रहते, उनके मालिक उनको सिर्फ चराकर ले जाते हैं) तो उनके मालिकोंसे, प्रति पशुके चरनेके बदलेमें ¼ पणके हिसाबसे कर लिया जाय ॥ ३२ ॥ इसी प्रकार गाय, घोड़े, गधे आदि जो मध्यम श्रेणीके पशु हैं, उनके चरानेके लिये ⅛ पण कर लिया जाय ॥३३॥ छोटे पशु भेड़ बकरी आदिके लिये ¹⁄₁₆ पण लिया जाय ॥ ३४ ॥

भक्षयित्वा निषण्णानामेत एव द्विगुणा दण्डाः ॥ ३५ ॥ परिवसतां चतुर्गुणाः ॥ ३६ ॥ ग्रामदेववृषा वा अनिर्दशाहा वा धेनुरुक्षाणो गोवृषाश्चादण्ड्याः ॥ ३७ ॥

जो जानवर चरकर बैठते भी वहीं पर हैं, उनके लिये, पहिलेके अनुसार दुगना कर लिया जावे ॥ ३५ ॥ और जो बराबर रहते भी वहीं पर हैं, उनके

लिये चौगुना ॥ ३६ ॥ ग्राम देवताके नामसे छुटे हुए सांडों, दस दिनकी ब्याही हुई गाय, तथा गौओंमें रहनेवाले बिजारोंका कोई कर न लिया जाय ॥ ३७ ॥

सस्यभक्षणे सस्योपघातं निष्पत्तितः परिसंख्याय द्विगुणं दापयेत् ॥ ३८ ॥ स्वामिनश्चानिवेद्य चारयतो द्वादशपणो दण्डः ॥ ३९ ॥ प्रमुञ्चतश्चतुर्विंशतिपणः ॥ ४० ॥

यदि किसीका जानवर, किसीके खेतमें खड़े अन्नको खाजावे, तो अन्नके नुक्सानकी गणना करके, उससे दुगना दाम अन्नके मालिक को दिलाया जावे ॥३८॥ खेतके मालिकसे छिपाकर, जो अपने पशुको उसके खेतमें चराता है, उसको १२ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३९ ॥ जो अपने पशुको किसीके खेतमें चरनेके लिये खुला छोड़ देता है, उसे २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४० ॥

पालिनामर्धदण्डाः ॥ ४१ ॥ तदेव षण्डभक्षणे कुर्यात् ॥ ४२ ॥ वाटभेदे द्विगुणः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार खेतोंका नुक्सान होनेपर, खेतोंकी रखवाली करनेके लिये नियुक्त किये गये पुरुषपर, ऊपर कहे गये दण्डोंका आधा दण्ड होना चाहिये ॥४१॥ यदि खेतमें आकर सांड खावे, तो भी रखवाली करने वालेको इतना ही दण्ड दिया जावे ॥ ४२ ॥ खेतकी बाड़ टूट जानेपर, रखवाली करने वालेको दुगना दण्ड दिया जावे ॥ ४३ ॥

वेश्मखलवलयगतानां च धान्यानां भक्षणे हिंसाप्रतीकारं कुर्यात् ॥ ४४ ॥ अभयवनमृगाः परिगृहीता भक्षयन्तः स्वामिनो निवेद्य यथावध्यास्तथा प्रतिषेद्धव्याः ॥ ४५ ॥

घर, खलिहान, और कहीं घिरी जगहों में रक्खे हुए अन्नको यदि पशु खालेवें, तो हानिके बराबर मूल्य देदेना चाहिये ॥ ४४ ॥ आश्रमवासी मृग यदि खेतोंमें चरते हुए पकड़े जावें, तो रखवालेको चाहिये कि वह इस बातकी खबर अपने मालिक को दे देवे, और उन मृगों को वहां से इस प्रकार हटावे, जिससे कि वे मरें नहीं, या उनके कोई गहरी चोट न आवे ॥ ४५ ॥

पशवो रश्मिप्रतोदाभ्यां वारयितव्याः ॥ ४६ ॥ तेषामन्यथा हिंसायां दण्डपारुष्यदण्डाः ॥ ४७ ॥ प्रार्थयमाना दृष्टापराधा वा सर्वोपायैर्नियन्तव्याः ॥ ४८ ॥ इति क्षेत्रपथहिंसाः ॥ ४९ ॥

पशुओंको रस्सी या कोड़ेसे हटाना चाहिये ॥ ४६ ॥ उनको और किसी रीतिसे मारने या हटाने पर 'दण्ड पारुष्य' प्रकरण स्थित उचित दण्ड दिये

जाय ॥ ४७ ॥ परन्तु जो पशु, हटाने वाले पुरुष का मुकाबला करें, तथा पहिले भी किसी को मारते हुए देखे गये हों, उन्हें सब ही उपायोंसे दमन करना चाहिये ॥ ४८ ॥ यहां तक खेत और मार्गोंकी हानि के विषयमें निरूपण किया गया ॥ ४९ ॥

कर्षकस्य ग्राममभ्युपेत्याकुर्वतो ग्राम एवात्ययं हरेत् ॥५०॥ कर्माकरणे कर्मवेतनाद्द्विगुणं हिरण्यदानं प्रत्यंशद्द्विगुणं भक्ष्यपेयदाने च प्रवहणेषु द्विगुणमंशं दद्यात् ॥ ५१ ॥

यदि कोई किसान गांवमें आकर, पंचायती या खेती आदिका काम न करे, तो उसपर किये गये जुर्मानेको गांव ले लेवे । अर्थात् राजा नहीं लेसकता ॥ ५० ॥ काम न करनेपर कार्यके वेतनसे दुगना, समुदाय कार्योंमें अपने हिस्सेका चन्दा आदि न देने पर उसका दुगना, और गोट तथा पंचायती पांत (भोजन) आदिके अवसर पर अपने हिस्सेका खाने पीनेका खर्च न देने पर भी उसका दुगना ही दण्ड दिया जावे ॥ ५१ ॥

प्रेक्षायामनंशदः स्वस्वजनो न प्रेक्षेत ॥ ५२ ॥ प्रच्छन्नश्रवणेक्षणे च सर्वहिते च कर्मणि निग्रहेण द्विगुणमंशं दद्यात् ॥५३॥

यदि कोई व्यक्ति गांवके सार्वजनिक खेल तमाशोंमें व्यय करनेके लिये अपना हिस्सा न देवे, तो वह और उसके घरके सब लोग तमाशा न देखने पावें॥५२॥ यदि छिपकर वे तमाशा देखें या सुनें, और जो गांवके सर्वहितकारी कामोंमें हिस्सा लेनेमें अपने आपको छिपावें, तो वे अपने हिस्सेका दुगना उन कार्योंमें व्यय करनेके लिये देवें ॥ ५३ ॥

सर्वहितमेकस्य ब्रुवतः कुर्युराज्ञाम् ॥ ५४ ॥ अकरणे द्वादशपणो दण्डः ॥ ५५ ॥ तं चेत्संभूय वा हन्युः पृथगेषामपराधद्विगुणो दण्डः ॥ ५६ ॥

जो कोई एक पुरुष, सबके कल्याणकी बात कहे, उसकी आज्ञाको गांवके सबही लोग मानें ॥ ५४ ॥ आज्ञा न माननेपर सबको १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ५५ ॥ यदि गांवके सब लोग मिलकर उस एक व्यक्तिको मारें, तो मारने वालोंमें हर एकको अलहदा २ अपराधसे दूना दण्ड दिया जावे॥५६॥

उपहन्तृषु विशिष्टः ब्राह्मणतश्चैषां ज्येष्ठं नियम्येत ॥ ५७ ॥ प्रवहणेषु चैषां ब्राह्मणा नाकामाः कुर्युः ॥ ५८ ॥

यदि मारनेवालोंमें कोई ब्राह्मण हो, या ब्राह्मणसे भी कोई श्रेष्ठ व्यक्ति हो, उसको सबसे अधिक दण्ड दिया जाय ॥ ५७ ॥ यदि सार्वजनिक कार्योंमें कोई ब्राह्मण काम करनेकी अभिलाषा न रखता हो, तो गांवके अन्य पुरुषही मिलकर उस कार्यको करलें ॥ ५८ ॥

अंशं च लभेरन् ॥ ५९ ॥ तेन देशजातिकुलसंघानां समयस्यानपाकर्म व्याख्यातम् ॥ ६० ॥

परन्तु व्ययके लिये जो भाग ब्राह्मणकी ओर आवे, उसे वे अवश्य लेवें ॥ ५९ ॥ इससे देश, जाति, कुल और अन्य समूहोंके नियमोल्लङ्घनकी व्यवस्थाको भी समझ लेना चाहिये ॥ ६० ॥

राजा देशहितान्सेतून्कुर्वतां पथि संक्रमात् ।
ग्रामशोभाश्च रक्षाश्च तेषां प्रियहितं चरेत् ॥ ६१ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीयेऽधिकरणे वास्तुके विवीतक्षेत्रपथहिंसा दशमोऽध्यायः ॥१०॥

वास्तुकं समाप्तम्

समयस्यानपाकर्म च । आदितः सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

जो पुरुष मिलकर जनताके आरामके लिये सड़कोंपर मकान बनाते हैं, हर तरहसे गांवोंकी शोभाको बढ़ाते और उनकी रक्षा करते हैं, राजाको चाहिये कि उनकी अनुकूलता और कल्याणका सदा ध्यान रक्खे ॥ ६१ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें दसवां अध्याय समाप्त ।

ग्यारहवां अध्याय ।

६३ प्रकरण ।

ऋण लेना ।

सपादपणा धर्म्या मासवृद्धिः पणशतस्य ॥ १ ॥ पञ्चपणा व्यावहारिकी ॥ २ ॥ दशपणा कान्तारकाणाम् ॥ ३ ॥ विंशतिपणा सामुद्राणाम् ॥ ४ ॥

१०० पणपर एक महीनेमें १¼ पण व्याज लेनाही ठीक है ॥ १ ॥ व्यापारी लोगोंसे ५ पण व्याज लेना चाहिये ॥ २ ॥ जंगलमें रहनेवालों या वहां व्यापार करनेवालोंसे १० पण ॥ ३ ॥ और समुद्रमें आनेजाने वाले या वहां व्यापार करनेवालोंसे २० पण व्याज लेना चाहिये ॥ ४ ॥

ततः परं कर्तुः कारयितुश्च पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५ ॥ श्रोतृणामेकैकं प्रत्यर्धदण्डः ॥ ६ ॥ राजन्ययोगक्षेमवहे तु धनिकधारणिकयोश्चरित्रमपेक्षेत ॥ ७ ॥

इससे अधिक लेने देनेवालोंको प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५ ॥ और इनके साक्षियोंमेंसे प्रत्येकको आधा दण्ड दिया जाय ॥ ६ ॥ यदि ऋण देने और लेनेवालेके आपसके सौदेपर राज्यकी कुछ सुख समृद्धि या कल्याणका निर्भर हो, तो सरकारको चाहिये कि वह उनके चरित्रकी बराबर निगरानी रक्खे ॥ ७ ॥

धान्यवृद्धिः सस्यनिष्पत्तावुपार्धावरं मूल्यकृता वर्धेत ॥ ८ ॥ प्रक्षेपवृद्धिरुदयादर्धं संनिधानसन्ना वार्षिकी देया ॥ ९ ॥

यदि अन्न सम्बन्धी ब्याज फसलके मौकेपर चुकता करना हो, तो उस समयतक ब्याजकी संख्या मूलधनकी आधी रकमसे अधिक न होनी चाहिये ॥ ८ ॥ गोदामके इकट्ठे बेचे हुए मालपर (उसी समय मूल्य न मिलनेपर) लाभका आधा ब्याज होना चाहिये । और उसका हिसाबकिताब कमसे कम वर्षमें एकबार अवश्य हो जाय (तात्पर्य यह है देवदत्तके पास गोदाममें१०००) का माल भरा हुआ है, यज्ञदत्तने उसको खरीद लिया, परन्तु उसके पास फौरन दे देनेके लिये रुपया नहीं है, ऐसी दशामें देवदत्त रुपयोंका सूद मांगगा, जैसे २ यज्ञदत्त उस मालको बेचता रहेगा, देवदत्तका धन और सूद चुकाता रहेगा, उस ब्याजकी तादात यज्ञदत्तको होनेवाले नफ़ेसे आधी होनी चाहिये । अर्थात् नफ़ेका आधा यज्ञदत्त और सूदकी शकलमें आधा देवदत्त ले लेवे । इस प्रकारके लेनेदेनका हिसाब वर्षमें एकबार अवश्य हो जाना चाहिये) ॥ ९ ॥

चिरप्रवासस्तम्भप्रविष्टो वा मूल्यद्विगुणं दद्यात् ॥ १० ॥ अकृत्वा वृद्धिं साधयतो वर्धयतो वा मूल्यं वा वृद्धिमारोप्य श्रावयतो बन्धश्चतुर्गुणो दण्डः ॥ ११ ॥

यदि देरतक विदेशमें चले जानेके कारण, या अन्य किसी कारणसे जानबूझकर माल खरीदनेवाला उसे नहीं निकालता, तो वह मालके असली मूल्यका दुगना (जिससे माल खरीदा है उसको) देवे ॥ १० ॥ ब्याज पूरा न होनेपर, पहिलेही ब्याज लेनेके लिये जो अधमर्णको तंग करे, अथवा ब्याजको मूलधनमें जोड़कर मूलधनके नामसेही उतना रुपया मांगे, उसे मांगे हुए धनका चौगुना दण्ड होना चाहिये ॥ ११ ॥

तुच्छचतुरश्रावणायामभूतचतुर्गुणः ॥ १२ ॥ तस्य त्रिभागमादाता दद्यात् ॥ १३ ॥ शेषं प्रदाता ॥ १४ ॥

थोड़ा धन देकर 'बहुत दिया है' इस प्रकार साक्षियोंके सुनानेपर, जितना साक्षी सुनावें, उससे चौगुना दण्ड उन्हें (अधमर्ण और उत्तमर्ण दोनों को) दिया जाय ॥ १२ ॥ उसके तीन भाग, ऋण लेनेवाला अर्थात् अधमर्ण अदा करे ॥ १३ ॥ और बाकी हिस्सा उत्तमर्ण ॥ १४ ॥

दीर्घसत्त्रव्याधिगुरुकुलोपरुद्धं बालमसारं वा नर्णमनुवर्धेत ॥ १५ ॥ मुच्यमानमृणमप्रतिगृह्णतो द्वादशपणो दण्डः ॥१६॥

बहुत कालतक होनेवाले यज्ञमें घिरे हुए, व्याधिग्रस्त, तथा गुरुकुलमें अध्ययन करते हुए व्यक्तिपर, इसी प्रकार बालक या शक्तिहीन पुरुषपर जो ऋण हो, उसपर ब्याज नहीं लगाया जा सकता ॥ १५ ॥ यदि अधमर्णके द्वारा ऋणकी अन्तिम रकम अदा करनेपर उत्तमर्ण उसे नहीं लेता, तो उस (उत्तमर्ण) पर १२ पण दण्ड किया जाय ॥ १६ ॥

कारणापदेशेन निवृत्तवृद्धिकमन्यत्र तिष्ठेत् ॥ १७ ॥ दशवर्षोपेक्षितमृणमप्रतिग्राह्यमन्यत्र बालवृद्धव्याधितव्यसनिप्रोषितदेशत्यागराज्यविभ्रमेभ्यः ॥ १८ ॥

यदि न लेनेमें कोई विशेष कारण हो, तो वह रकम बिना ही सूद के और कहीं जमा करदी जावे ॥ १७ ॥ यदि कोई उत्तमर्ण दस बरसके भीतर २ अपना ऋण वसूल नहीं कर लेता, तो फिर उस धनके ऊपर उसको कोई अधिकार नहीं रहता । परन्तु यदि वह धन बालक, वृद्ध, बीमार, आपद्ग्रस्त, विदेशमें गये हुए, देशत्यागी या राजकीय कार्यों के कारण बाहर गये हुए व्यक्तिका हो, तो वे दस बरसके बाद भी बराबर उस धनके अधिकारी रहते हैं ॥ १८ ॥

प्रेतस्य पुत्राः कुसीदं दद्युः ॥ १९ ॥ दायादा वा रिक्थहराः सहग्राहिणः प्रतिभुवो वा ॥ २० ॥ न प्रातिभाव्यमन्यदसारं बालप्रातिभाव्यम् ॥ २१ ॥

मृत अधमर्ण व्यक्तिके पुत्र उसके ऋणको चुकावें ॥ १९ ॥ अथवा उसकी स्थायी सम्पत्तिको लेनेवाले दायभागी, या साथ २ काम करने वाले उसके जामिन हिस्सेदार, उस ऋणको चुकावें ॥ २० ॥ इनके अतिरिक्त और कोई उस (मृत) के ऋण का जामिन नहीं हो सकता । बालक का जामिन होना तो सर्वथा अयुक्त है ॥ २१ ॥

असंख्यातदेशकालं तु पुत्राः पौत्रा दायादा वा रिक्थं हरमाणा दद्युः ॥ २२ ॥ जीवितविवाहभूमिप्रातिभाव्यमसंख्यात देशकालं तु पुत्राः पौत्रा वा वहेयुः ॥ २३ ॥

ऐसे ऋणको, जिसका स्थान और समय निश्चित नहीं, स्थायी सम्पत्ति को लेनेवाले पुत्र, पौत्र या अन्य दायभागी अदा करें ॥ २२ ॥ आजीविका, विवाह, और भूमिके लिये, लिये हुए धनको; तथा किसी का जामिन होने के कारण अदा किये जाने वाले धनको (इसका तात्पर्य यह है कि किसी ने किसी का जामिन बनकर उसको कहीं से ऋण दिला दिया, ऋण लेने वाले ने फिर उसे अदा करनेका नामही न लिया, तब वह धन उस जामिन को अदा करना पड़ेगा, यदि वह भी मर जावे तो) उसके पुत्र पौत्र ही चुकावें ॥ २३ ॥

नानर्णसमवाये तु नैकं द्वौ युगपदभिवदेयातामन्यत्र प्रतिष्ठमानात् ॥ २४ ॥ तत्रापि गृहीतानुपूर्व्या राजश्रोत्रियद्रव्यं वा पूर्वं प्रतिपादयेत् ॥ २५ ॥

अनेक व्यक्तियोंके ऋणी किसी एक अधमर्ण पर एकही साथ अनेक उत्तमर्ण मुकदमा नहीं चला सकते। परन्तु यदि वह अधमर्ण कहीं विदेशको जा रहा हो, तो उसपर एक साथ मुकदमा चलाया जा सकता है ॥ २४ ॥ मुकदमा चलाने पर फैसलेके बाद, ऋणकी चुकाई, ऋण लिये जानेके क्रमके अनुसार ही होनी चाहिये। यदि उसके पास राजा या किसी ब्राह्मणका भी ऋण हो, तो उसे सबसे पहिले चुकता करलेना चाहिये ॥ २५ ॥

दम्पत्योः पितापुत्रयोः भ्रातॄणां चाविभक्तानां परस्परकृतमृणमसाध्यम् ॥ २६ ॥ अग्राह्याः कर्मकालेषु कर्षका राजपुरुषाश्च ॥ २७ ॥

भार्या पति, पिता पुत्र, इकट्ठे रहने वाले भाई, इनके परस्पर एक दूसरे से लिये हुए ऋणका निर्णय नहीं किया जासकता ॥ २६ ॥ कार्य करनेके समय में, किसान और राजकर्मचारियों को ऋण के लिये गिरफ्तार नहीं किया जा सकता ॥ २७ ॥

स्त्री चाप्रतिश्राविणी पतिकृतमृणमन्यत्र गोपालकार्द्धसीतिकेभ्यः ॥ २८ ॥ पतिस्तु ग्राह्यः ॥ २९ ॥

पतिके लिये हुए ऋणके सम्बन्धमें स्त्रीको दबाव नहीं डाला जासकता, जबकि वह उस ऋणको चुकाना मंजूर नहीं करती। परन्तु ग्वालों और इसी

प्रकार के उन पुरुषों, जिनकी कि जीविका कुछ न कुछ स्त्रियों पर निर्भर है (अर्द्धसीतिक) के लिये हुए ऋणको उनकी स्त्रियां भी (पतिकी अनुपस्थितिमें) अदा करनेकी जिम्मेदार हैं। अर्थात् वे उसे चुकानेसे इन्कार नहीं कर सकतीं ॥ २८ ॥ परन्तु स्त्रीके लिये हुए ऋणके सम्बन्धमें पतिको बराबर पकड़ा जासकता है ॥ २९ ॥

स्त्रीकृतमृणमप्रतिविधाय प्रोषित इति संप्रतिपत्तावुत्तमः ॥ ३० ॥ असंप्रतिपत्तौ तु साक्षिणः प्रमाणम् ॥ ३१ ॥

स्त्रीके ऋणको न चुकानेपर, यदि कोई पुरुष उससे बचनेके खयालसे बहाना करके विदेश चला जाय, तो इस बातके सिद्ध होने पर उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जाय ॥३० ॥ यदि विदेश जानेमें यह कारण सिद्ध न होसके, तो जैसा साक्षी कहें उसके अनुसार कार्य किया जाय ॥ ३१ ॥

प्रात्ययिकाः शुचयोऽनुमता वा त्र्यवरा अर्घ्याः ॥ ३२ ॥ पक्षानुमतौ वा द्वौ ॥ ३३ ॥ ऋणं प्रति न त्वेवैकः ॥ ३४ ॥

विश्वासी, पवित्र चरित्र, तथा दोनों पक्षोंके अनुमत, कमसे कम तीन साक्षी होने चाहियें ॥ ३२ ॥ अथवा दोनों पक्षोंके अनुमत दो साक्षी भी हो सकते हैं ॥ ३३ ॥ ऋणके मामलोंमें तो एक साक्षी कदापि न होना चाहिये। अर्थात् दो या दो से अधिक ही साक्षी होने आवश्यक हैं ॥ ३४ ॥

प्रतिषिद्धाः स्यालसहायाबद्धधनिकधारणिकवैरिन्यङ्गधृतदण्डाः ॥ ३५ ॥ पूर्वे चाव्यवहार्याः ॥ ३६ ॥

साला, सहायक, आबद्ध (जिसका जीवन किसी एक व्यक्ति पर सर्वथा निर्भर है, गर्भदास क्रीतदास आदि) धनिक (उत्तमर्ण) धारणिक (अधमर्ण) शत्रु, अङ्गहीन तथा राज्यसे दण्डित पुरुष साक्षी नहीं होसकते ॥ ३५ ॥ पहिले जो साक्षी बतलाये हैं, (३२ सूत्रमें) वे भी, यदि व्यवहारको जानने वाले नहीं तो साक्षी नहीं होसकते ॥ ३६ ॥

राजश्रोत्रियग्रामभृतकुष्ठिव्रणिनः पतितचण्डालकुत्सितकर्माणोऽन्धबधिरमूकाहंवादिनः स्त्रीराजपुरुषाश्चान्यत्र स्ववर्गेभ्यः ॥३७॥

राजा, वेदवक्ता ब्राह्मण, गांवका मुखिया, कोढ़ी, जिसके शरीर पर बहुत फोड़े फुन्सी या घाव हैं; पतित, चण्डाल, नीचकर्म करने वाले, अन्धे, बहरे, गूंगे, घमण्डी; स्त्री और राजकर्मचारी ये अपने वर्गोंको छोड़कर अन्यत्र साक्षी नहीं होसकते ॥ ३७ ॥

पारुष्यस्तेयसंग्रहणेषु तु वैरिस्यालसहायवर्जाः ॥ ३८ ॥ रहस्यव्यवहारेष्वेका स्त्री पुरुष उपश्रोता उपद्रष्टा वा साक्षी स्याद्राजतापसवर्जम् ॥ ३९ ॥

परन्तु पारुष्य, चोरी और व्यभिचारके मामलोंमें शत्रु, साले और सहायक को छोड़कर, बाकी ये सब ही साक्षी होसकते हैं ॥ ३८ ॥ छिपे हुए गुप्त मामलोंमें अकेली स्त्री; और राजा तथा तपस्वीको छोड़कर, सुनने या देखने वाला अकेला पुरुष साक्षी होसकता है ॥ ३९ ॥

स्वामिनो भृत्यानामृत्विगाचार्याः शिष्याणां मातापितरौ पुत्राणां चानिग्रहेण साक्ष्यं कुर्युः ॥ ४० ॥ तेषामितरे वा ॥ ४१ ॥

मालिक नौकरोंके, ऋत्विक् या आचार्य शिष्योंके, माता और पिता पुत्रोंके; तथा इसी प्रकार नौकर आदि मालिक आदिके परस्पर खुले तौर पर साक्षी हो सकते हैं ॥ ४० ॥ ॥ ४१ ॥

परस्पराभियोगे चैषामुत्तमाः परोक्ता दशबन्धं दद्युरवराः पञ्चबन्धम् ॥ ४२ ॥ इति साक्ष्यधिकारः ॥ ४३ ॥

इनका आपसमें ही झगड़ा होनेपर, यदि उत्तम अर्थात् मालिक, आचार्य, माता पिता आदि, अभियोगमें पराजित हो जावें, तो अवर अर्थात् अपनेसे नीचे नौकर, शिष्य आदिको, पराजित धनका दसवां भाग देवें । और यदि नौकर आदि हार जावें, तो अपने स्वामी आदिको हारे हुए धनका पांचवां हिस्सा देवें ॥ ४२ ॥ यहां तक साक्षी के सम्बन्धमें निरूपण किया गया ॥ ४३ ॥

ब्राह्मणोदकुम्भाग्निसकाशे साक्षिणः परिगृह्णीयात् ॥ ४४ ॥ तत्र ब्राह्मणं ब्रूयात्सत्यं ब्रूहीति ॥ ४५ ॥

ब्राह्मण, जलसे भरा हुआ घड़ा, अथवा अग्निके पास साक्षीको ले जाया जाय ॥ ४४ ॥ यदि साक्षी ब्राह्मण हो तो वहां पर उससे "सच बोलो" यह कहा जाय ॥ ४५ ॥

राजन्यं वैश्यं वा मा तवेष्टापूर्तफलं कपालहस्तः शत्रुबलं भिक्षार्थी गच्छेरिति ॥ ४६ ॥

यदि क्षत्रिय और वैश्य हो, तो उनसे "तुमको इष्ट (यज्ञ आदि) और पूर्त (धर्मशाला, कुआं, बगीचे आदि जनताके हितके लिये बनवाने) का कोई फल न मिले, तुम अपनी शत्रु सेनाको जीतकर हाथमें खप्पर लेकर भिक्षा मांगते फिरो, (यदि सत्य न बोलो)" इस प्रकार कहा जाय ॥ ४६ ॥

शूद्रं जन्ममरणान्तरे यद्वः पुण्यफलं तद्राजानं गच्छेत् ॥ ४७ ॥ राज्ञश्च किल्बिषं युष्मान् ॥ ४८ ॥ अन्यथावादे दण्डश्चानुबन्धः ॥ ४९ ॥ पश्चादपि ज्ञायेत यथादृष्टश्रुतम् ॥ ५० ॥ एकमन्त्राः सत्यमवहरतेत्यनवहरतां सप्तरात्रादूर्ध्वं द्वादशपणो दण्डः ॥ ५१ ॥

यदि साक्षी शूद्र हो तो उससे "जन्मान्तरमें जो तुम्हारा पुण्य हो वह राजाको पहुंचे ॥ ४७ ॥ और राजाका पाप तुमको प्राप्त होवे ॥ ४८ ॥ और याद रक्खो झूंठ बोलनेपर अवश्यही दण्ड दिया जावेगा ॥ ४९ ॥ बादमें भी सुनने या देखनेके अनुसार मामलेकी जांच की जावेगी ॥५०॥ इसलिये तुम सब लोगोंको मिलकर सत्यकाही व्यवहार करना चाहिये" इस प्रकार कहा जाय, यदि फिर भी वे सात दिनतक सत्य २ बात न बतावें, तो उनको १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ५१ ॥

त्रिपक्षादूर्ध्वमभियोगं दद्युः ॥ ५२ ॥ साक्षिभेदे यतो बहवः शुचयोऽनुमता वा ततो नियच्छेयुः ॥ ५३ ॥ मध्यं वा गृह्णीयुः ॥ ५४ ॥

यदि १॥ महीने तक भी न बतावें, तो उनके विरुद्ध मुकदमेका फैसला कर दिया जाय ॥ ५२ ॥ यदि किसी मुकदमेमें गवाहोंका आपसमें मतभेद हो जाय तो उनमेंसे जिस बातको बहुसंख्यक, पवित्र चरित्र तथा अनुमत गवाह कहें, उसीके आधारपर फैसला कर दिया जाय ॥ ५३ ॥ अथवा किसीको मध्यस्थ बना लिया जाय ॥ ५४ ॥

तद्वा द्रव्यं राजा हरेत् ॥ ५५ ॥ साक्षिणश्चेदभियोगादूनं ब्रूयुरतिरिक्तस्याभियोक्ता बन्धं दद्यात् ॥ ५६ ॥ अतिरिक्तं वा ब्रूयुस्तदतिरिक्तं राजा हरेत् ॥ ५७ ॥

फिर भी फैसला न होनेपर उस सम्पत्तिको (जिसपर झगड़ा हो) राजा ले लेवे ॥ ५५ ॥ ऋणकी जो रकम अभियोक्ताने अदालतमें बताई है, साक्षी यदि उससे न्यून बतावें, तो अभियोक्ताको चाहिये कि वह उस अधिक, बताये हुए धनका पांचवां हिस्सा राजाको देवे ॥ ५६ ॥ यदि साक्षी अधिक बतावें तो उस अधिक धनको राजा ले लेवे ॥ ५७ ॥

बालिश्यादभियोक्तुर्वा दुःश्रुतं दुर्लिखितं प्रेताभिनिवेशं वा समीक्ष्य साक्षिप्रत्ययमेव स्यात् ॥ ५८ ॥ साक्षिबालिश्येष्वेव

पृथगनुपयोगे देशकालकार्याणां पूर्वमध्यमोत्तमा दण्डा इत्यौशनसाः ॥ ५९ ॥

अभियोक्ताके मूर्ख होनेके कारण, उसके ठीक न सुने जाने और ठीक न लिखे जानेका ध्यान करके, अथवा उसका दिमाग़ ठीक नहीं है, ऐसा ध्यान करके, साक्षियोंके भरोसेपरही उसका फैसला किया जाय ॥ ५८ ॥ उशना (शुक्र) आचार्यके अनुयायी इस बातको कहते हैं, कि जब देश, काल, और कार्यौंके ठीक २ न बतलाये जानेपर अदालतमें साक्षियोंकी मूर्खता सिद्ध होजावे, तो उनको अवश्यही यथोचित प्रथम साहस दण्ड, मध्यम साहस दण्ड, तथा उत्तम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ५९ ॥

कूटसाक्षिणो यमर्थमभूतं वा नाशयेयुस्तद्दशगुणं दण्डं दद्युरिति मानवाः ॥ ६० ॥ बालिश्याद्वा विसंवादयतां चित्रो घात इति बार्हस्पत्याः ॥ ६१ ॥

इसी प्रकार मनु आचार्यके अनुयायी कहते हैं, कि जो छली कपटी साक्षी, कुछ बात न होनेपर भी झूंठा मुकदमा खड़ा करवाके धनका नाश करावें, वे नाश हुए धनका दसगुना दण्ड देवें ॥ ६० ॥ बृहस्पतिके अनुयायी कहते हैं, कि अपनी मूर्खतासे परस्पर विरुद्ध बोलनेवाले साक्षियोंका कष्टपूर्वक वध करा दिया जाय ॥ ६१ ॥

नेति कौटल्यः ॥६२॥ ध्रुवं हि साक्षिभिः श्रोतव्यम् ॥६३॥

परन्तु कौटल्यका यह मत नहीं है ॥ ६२ ॥ क्योंकि वह समझता है कि साक्षी निश्चित बातकोही सुन सकते हैं। अर्थात् साक्षीरूपसे वे जो कुछ सुनते हैं, वह ठीकही होता है ॥ ६३ ॥

अशृण्वतां चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ६४ ॥ ततोऽर्धमब्रुवाणाम् ॥ ६५ ॥

निश्चित न सुननेवाले साक्षियोंको २४ पण दण्ड दिया जाय। अर्थात् जो साक्षी किसी बातका ठीक निश्चय न करकेही गवाही देनेको खड़े हो जाते हैं, उनको यह दण्ड दिया जाय ॥ ६४ ॥ और इससे आधा अर्थात् १२ पण दण्ड उनको दिया जाय, जो साक्षी होकर बातको ठीक २ नहीं बतलाते ॥६५॥

देशकालाविदूरस्थान्साक्षिणः प्रतिपादयेत् ।
दूरस्थानप्रसारान्वा स्वामिवाक्येन साधयेत् ॥ ६६ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे ऋणादानं एकादशो ऽध्यायः ॥६६॥

आदितोऽष्टषष्टितमः ॥ ६८ ॥

अभियोक्ताको चाहिये कि देशकालके अनुसार समीप रहनेवालेको ही साक्षी बनावे। अथवा न्यायाधीशके कहनेपर, दूरदेशमें स्थित होनेके कारण सुगमतासे न आ सकने वाले साक्षियोंको भी बुलावे ॥ ६६ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें ग्यारहवां अध्याय समाप्त।

बारहवां अध्याय।

६४ प्रकरण।

औपनिधिक।

उपनिधिर्ऋणेन व्याख्यातः ॥ १ ॥

(उपनिधि उस धरोहरका नाम है, जो कोई वस्तु बिना दिखाये पेटी या कपड़े आदिमें बन्द करके उसपर मोहर आदि लगाकर किसीके पास रखदी जावे) ऋण सम्बन्धी नियमोंके अनुसार उपनिधिका भी नियम समझना चाहिये ॥ १ ॥

परचक्राटविकाभ्यां दुर्गराष्ट्रविलोपे वा प्रतिरोधकैर्वा ग्राम सार्थव्रजविलोपे चक्रयुक्ते नाशे वा ग्राममध्याग्न्युदकाबाधे वा किंचिदमोक्षयमाणे कुप्यमनिर्हार्यवर्जमेकदेशमुक्तद्रव्ये वा ज्वाला-वेगोपरुद्धे वा नावि निमग्नायां मुषितायां स्वयमुपरूढो नोपनिधि-मभ्याभवेत् ॥ २ ॥

शत्रुके षड्यन्त्र और जङ्गलनिवासियोंके आक्रमणसे, दुर्ग और राष्ट्रका नाश हो जानेपर, अथवा डाकू या चोरोंके द्वारा, गांव व्यापारी कम्पनियों, और पशुओंके झुण्डोंका नाश हो जानेपर, अथवा आभ्यन्तारिक षड्यन्त्रोंके कारण नाश होनेपर, गांवके बीचमें आग लगने या जलकी बाढ़ आदिसे धनके सर्वथा नष्ट हो जानेपर, अग्नि या बाढ़ आदिसे न नष्ट होने योग्य कुप्य अर्थात् तांबा लोहा आदिके कुछ थोड़ा बहुत बचाये जानेपर भी, प्रचण्ड अग्निके बीच में घिर जानेपर, नावके डूब जानेपर, या उसमें मालकी चोरी हो जानेपर, अपना बचाव हो जानेपर भी उपनिधि पानेके लिये कोई व्यक्ति किसीपर मुकदमा नहीं चला सकता ॥ २ ॥

उपनिधिभोक्ता देशकालानुरूपं भोगवेतनं दद्यात् ॥ ३ ॥ द्वादशपणं च दण्डम् ॥ ४ ॥ उपभोगनिमित्तं नष्टं वाभ्याभवे-च्चतुर्विंशतिपणश्च दण्डः ॥ ५ ॥ अन्यथा वा निष्पतने ॥ ६ ॥

उपनिधिको अपने काममें लानेवाला पुरुप, देशकालके अनुसार उसे काममें लानेका बदला चुका देवे ॥ ३ ॥ और १२ पण दण्डके देवे ॥ ४ ॥ उपभोगके कारण उपनिधिको नष्टकर देने वाले पुरुषपर अभियोग चलाया जावे, और २४ पण दण्ड किया जाय ॥ ५ ॥ यही नियम, अन्य किसी प्रकारसे उपनिधिके नष्ट हो जानेमें भी समझना चाहिये ॥ ६ ॥

प्रेतं व्यसनगतं वा नोपनिधिमभ्याभवेत् ॥ ७ ॥ आधान-विक्रयापव्ययनेषु चास्य चतुर्गुणपञ्चबन्धो दण्डः ॥ ८ ॥ परिवर्तने निष्पतने वा मूल्यसमः ॥ ९ ॥

यदि उपनिधि लेकर कोई पुरुप मर जावे. या आपद्ग्रस्त होजावे, तो उसपर आगे कोई अभियोग या दण्ड नहीं होसकता ॥ ७ ॥ यदि कोई व्यक्ति उपनिधिको कहीं गिरवी रखदे, बेचदे, या और किसी तरहसे उसका अपव्यय करदे, उसका चौगुना पञ्चबन्ध दण्ड दिया जाय ॥ ८ ॥ उपनिधिको बदलने या अन्य किसी प्रकारसे नष्ट करनेवाले पुरुपसे उसके बराबर मूल्य वसूल किया जाय ॥ ९ ॥

तेन आधिप्रणाशोपभोगविक्रयाधानापहारा व्याख्याताः ॥ १० ॥ नाधिः सोपकारः सीदेन्न चास्य मूल्यं वर्धेत ॥ ११ ॥

इस हीसे गिरवी रक्खी हुई वस्तु (आधि) के नाश करने, अपने काममें लाने, बेचने, गिरवी रख देने और बदलनेमें नियमोंका कथन किया गया। अर्थात् उपनिधि और आधिके विषयमें उपर्युक्त नियमोंको समान ही समझना चाहिये ॥ १० ॥ यदि गिरवी रक्खी जानेवाली वस्तु सोने चांदीके आभूषण (सोपकार, उपकार=आभूषण) हैं, तो वे नष्ट न होवें (अर्थात् उनको उसी दशामें रक्खा रहने दिया जावे) और उनपर व्याज नहीं लिया जावे ॥ ११ ॥

निरुपकारः सीदेन्मूल्यं चास्य वर्धेत ॥ १२ ॥ उपस्थितस्याधिमप्रयच्छतो द्वादशपणो दण्डः ॥ १३ ॥ प्रयोजकासंनिधाने वा ग्रामवृद्धेषु स्थापयित्वा निष्क्रयमाधिं प्रतिपद्येत ॥१४॥

इनसे अतिरिक्त आधिके नष्ट हो जानेका भय रहता है, इस लिये उनके बदलेमें दिये ऋणपर सूद लेना चाहिये ॥ १२ ॥ अपनी गिरवी रक्खी हुई वस्तु वापस लेनेके लिये आये हुए पुरुषको यदि उत्तमर्ण (व्याज आदिके लोभसे) न देवे, तो उसको १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ १३ ॥ यदि अधमर्णको उत्तमर्ण (कहीं बाहर चले जाने आदिके कारण) अपने स्थानपर न मिले, तो

वह आधिके धनको, गांवके बूढ़े आप्त पुरुषोंके पास रखकर, अपनी आधिको वापस ले लेवे ॥ १४ ॥

निवृत्तवृद्धिको वाधिस्तत्कालकृतमूल्यस्तत्रैवावतिष्ठेत ॥१५॥ अनाशविनाशकरणाधिष्ठितो वा धारणकसंनिधाने वा विनाशभयादुद्गतार्घं धर्मस्थानुज्ञातो विक्रीणीत ॥ १६ ॥

यदि अधमर्ण अपनी आधिको बेचकर ऋण चुकाना चाहता है, तो उसी समय उसका मूल्य निश्चय करके, उत्तमर्णके पासही रहने दे, परन्तु उसके बाद फिर उस आधिपर उत्तमर्ण सूद नहीं ले सकता ॥ १५ ॥ आधिसे वर्त्तमानमें चाहे लाभ होरहा हो, या हानि, परन्तु आगे आसन्न भविष्यमें यदि उसके नाशको सम्भावना हो या उसके मूल्यसे ऋणकी संख्या अधिक होनेपर अधमर्णकी अनुपस्थितिमें भी, न्यायाधीशकी आज्ञानुसार उत्तमर्ण उस आधिको बेच देवे ॥ १६ ॥

आधिपालप्रत्ययो वा ॥१७॥ स्थावरस्तु प्रयासभोग्यः फलभोग्यो वा प्रक्षेपवृद्धिमूल्यं शुद्धमाजीवं मूल्यक्षयेणोपनयेत् ॥१८॥

न्यायाधीशकी अनुपस्थितिमें आधिपाल (इस विभागका राजकीय कर्मचारी) की आज्ञानुसार इस कार्यका सम्पादन करे ॥ १७ ॥ जो स्थायी सम्पत्ति परिश्रमपूर्वक या बिना ही परिश्रमके फल देनेवाली अथवा भोगनेके योग्य हो, उसे बेचा नहीं जा सकता । जिस आधिको उत्तमर्ण व्यापारमें लगा देवे, उसके अनुकूल हुए २ लाभके सहित आधिका असली धन उसके मालिक को लौटावे ॥ १८ ॥

अनिसृष्टोपभोक्ता मूल्यशुद्धमाजीवं बन्धं च दद्यात् ॥१९॥ शेषमुपनिधिना व्याख्यातम् ॥ २० ॥ एतेनादेशोऽन्वाधिश्च व्याख्यातौ ॥ २१ ॥

बिनाही आज्ञाके आधिको उपभोग करनेवाला पुरुष, उसके अच्छी हालतके शुद्ध मूल्यको अदा करे, और जुरमाना भी देवे ॥ १९ ॥ शेष सब उपनिधिके समानही आधिमें भी समझना चाहिये ॥ २० ॥ इसीके अनुसार आदेश (आज्ञा) और अन्वाधि (कहीं गिरवी रक्खी हुई वस्तुको किसी अन्य पुरुषके द्वारा वापस मँगवाना) के नियम भी समझने चाहियें ॥ २१ ॥

सार्थेनान्वाधिहस्तो वा प्रदिष्टां भूमिमप्राप्तश्चोरैर्भग्नोत्सृष्टो वा नान्वाधिमभ्याभवेत् ॥ २२ ॥ अन्तरे वा मृतस्य दायादो

ऽपि नाभ्याभवेत् ॥ २३ ॥ शेषमुपनिधिना व्याख्यातम् ॥२४॥

व्यापारी, यदि किसीके हाथमें गिरवी रक्खी हुई वस्तुको सौंपकर उसे कहींपर भेजे, परन्तु बीचमेंही चोरोंसे लूटे जानेके कारण वह निर्दिष्ट स्थानपर न पहुंच सके, तो उसपर आधि विषयक अभियोग नहीं लगाया जा सकता ॥ २२ ॥ यदि रास्तेमेंही वह किसी तरह मर जावे, तो उसके पीछे दायभागियों पर भी अभियोग नहीं चलाया जा सकता ॥ २३ ॥ शेष सब नियम उपनिधिके समानही समझने चाहियें ॥ २४ ॥

याचितकमवक्रीतकं वा यथाविधं गृह्णीयुस्तथाविधमेवार्पयेयुः ॥ २५ ॥ भ्रेषोपनिपाताभ्यां देशकालोपरोधि दत्तं नष्टं विनष्टं वा नाभ्याभवेयुः ॥ २६ ॥ शेषमुपनिधिना व्याख्यातम् ॥ २७ ॥

उधार मांगी हुई, या किरायेपर ली हुई वस्तु जिस दशामें लीजाय ठीक उसी हालतमें वापिस करदी जाये ॥ २५ ॥ यदि देश या कालके अनुसार किसी दोष या विशेष आपत्तिसे वह दीहुई वस्तु कुछ खराब हो जाय, या बिल्कुल नष्ट हो जाय, तो उन लोगोंपर अभियोग नहीं चलाया जा सकता ॥ २६ ॥ शेष नियम उपनिधिके समानही समझने चाहिये ॥ २७ ॥

वैय्यावृत्यविक्रयस्तु ॥ २८ ॥ वैय्यावृत्यकरा यथादेशकालं विक्रीणानाः पण्यं यथाजातमूल्यमुदयं च दद्युः ॥ २९ ॥ शेषमुपनिधिना व्याख्यातम् ॥ ३० ॥

अब फुटकर बिक्रीका निरूपण किया जायगा ॥ २८ ॥ फुटकर बेचने वाले व्यापारियोंको चाहिये, कि वे देशकालके अनुसार अपनी वस्तुको बेचते हुए, यथोचित मूल्य और व्याज (उन थोक व्यापारियोंको, जिनसे इकट्ठी वस्तु खरीद लाकर बेचते हैं) देवें ॥ २९ ॥ शेष नियम उपनिधिके समानही समझने चाहिये ॥ ३० ॥

देशकालातिपातने वा परिहीणं संप्रदानकालिकेनार्घेण मूल्यमुदयं च दद्युः ॥ ३१ ॥ यथासंभाषितं वा विक्रीणाना नोदयमधिगच्छेयुः ॥ ३२ ॥ मूल्यमेव दद्युः ॥ ३३ ॥

यदि देशकालके अनुसार पहिले खरीदी हुई चीजों का मूल्य गिर जाय, तो वर्त्तमान दिये जानेवाले मूल्यके अनुसार मूल्य और व्याज (थोक व्यापारियों को) देवें ॥ ३१ ॥ यदि छोटे फुटकर बेचने वाले व्यापारियों का बड़े व्यापा-

रियोंके साथ यह तै होचुका है कि वे किसी नियत मूल्य पर ही माल बेचेंगे, तब उसी मूल्यपर बेचते हुए छोटे, बड़ों को केवल मूल्य देवें, ब्याज न देवें ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥

अर्घपतने वा परिहीणं यथापरिहीणमूल्यमूनं दद्युः ॥३४॥ सांव्यवहारिकेषु वा प्रात्ययिकेष्वराजवाच्येषु भ्रेषोपनिपाताभ्यां नष्टं विनष्टं वा मूल्यमपि न दद्युः ॥ ३५ ॥ देशकालान्तरितानां तु पण्यानां क्षयव्ययशुद्धं मूल्यमुदयं च दद्युः ॥ ३६ ॥

यदि कीमत गिरजाय, तो गिरी हुई कीमत के अनुसार थोड़ा मूल्य देवें ॥ ३४ ॥ व्यावहारिक विश्वास पर होने वाले सौदोंमें, जिनमें कि कानूनी कार्रवाई कोई नहीं की गई है, यदि किसी प्रकार के दोष या आकस्मिक आपत्ति के कारण माल कुछ खराब होजावे, या बिल्कुल नष्ट होजावे, तो उसका मूल्य भी छोटे व्यापारी न देवें ॥ ३५ ॥ परन्तु दूसरे स्थान, या दूसरे समयमें बेची जाने वाली चीजोंका, छीजन (क्षय) और खर्चे (व्यय) का ठीक हिसाब करके, फिर उचित मूल्य और ब्याज दिया जावे ॥ ३६ ॥

पण्यसमवायानां च प्रत्यंशम् ॥३७॥ शेषमुपनिधिना व्याख्यातम् ॥३८॥ एतेन वैय्यावृत्यविक्रयो व्याख्यातः ॥३९॥ निक्षेपश्चोपनिधिना ॥ ४० ॥

स्टेशनरी सामान की प्रत्येक वस्तुका कुछ अंश छीजनमें निकाल दिया जावे ॥ ३७ ॥ बाकी नियम उपनिधिके समान ही समझने चाहियें ॥ ३८ ॥ इसीके अनुसार फुटकर बिक्रीके भी नियम समझने चाहियें ॥ ३९॥ निक्षेप (रूप और संख्याको दिखलाकर खुली अवस्थामें दिया हुआ धन) और उपनिधि (१ सूत्र-देखो) के नियम समान ही हैं ॥ ४० ॥

तमन्येन निक्षिप्तमन्यस्यार्पयतो हीयेत ॥ ४१ ॥ निक्षेपापहारे पूर्वापदानं निक्षेप्तारश्च प्रमाणम् ॥ ४२ ॥ अशुचयो हि कारवः ॥ ४३ ॥

कोई व्यक्ति किसी दूसरेके निक्षेप को, और किसीको देदेवे, तो उसे नियमानुसार यथोचित दण्ड दिया जाय ॥ ४१ ॥ जिसके पास निक्षेप रक्खा गया है, वह यदि उसे दबाले, या नष्ट करदे, तो उसकी प्रथम परिस्थिति (हैसियत आदि) की जांच की जाय, और इस बातमें निक्षप्ता (धरोहर रखने वाले) को ही प्रमाण माना जाय, अर्थात् उस ही के कथनानुसार इस मामले का फैसला किया जाय ॥ ४२ ॥ शिल्पी लोग प्रायः ईमानदार नहीं होते ॥ ४३ ॥

नैषां करणपूर्वो निक्षेपधर्मः ॥ ४४ ॥ करणहीनं निक्षेपमपव्ययमानं गूढभित्तिन्यस्तान्साक्षिणो निक्षेप्ता रहस्यप्रणिपातेन प्रज्ञापयेत् ॥ ४५ ॥

इनके यहां जो निक्षेप रक्खा जाता है, ये लोग उसका कोई प्रमाण स्वरूप कागज आदि लिखकर (करणपूर्वः) नहीं देते ॥ ४४ ॥ प्रमाण रूप कागज आदि लिखे हुए बिना ही (करणहीनम्) जो निक्षेप इनके यहां रक्खा गया हो, यदि ये लोग उसका अपव्यय करें, तो निक्षेप्ता को चाहिये कि वह, छिपे तौरपर दीवारोंकी ओटमें बैठे हुए साक्षियों को, इनके गुप्त भेदोंको सामने रखकर बतलादे ॥ ४५ ॥

वनान्ते वा मध्यप्रवहणे विश्वासेन रहसि वृद्धो व्याधितो वैदेहकः कश्चित्कृतलक्षणं द्रव्यमस्य हस्ते निक्षिप्यापगच्छेत् ॥४६॥ तस्य प्रतिदेशेन पुत्रो भ्राता वाभिगम्य निक्षेपं याचेत ॥ ४७ ॥ दाने शुद्धिरन्यथा निक्षेपं स्तेयदण्डं च दद्यात् ॥ ४८ ॥

अथवा जंगलमें, नावमें, (या अपने कार्योंमें व्यग्र होनेकी हालतमें) या एकान्तमें विश्वास पूर्वक, कोई बूढ़ा, बीमार, या वैदेहक (क्रय विक्रय करने वाला व्यक्ति, अथवा संकर जाति विशेष) खास निशान किये हुए द्रव्यको इसके (शिल्पीके) हाथमें सौंपकर चला जावे ॥ ४६ ॥ पीछे से उसके (निक्षेप्ताके) कहने पर, उसका लड़का या भाई शिल्पी के पास आकर उस निक्षेप को मांगे ॥ ४७ ॥ यदि वह दे देवे तो शुद्ध (ईमानदार) समझा जावे, न देने पर निक्षेप उससे वसूल किया जावे, और उसको चोरी का दण्ड दिया जावे ॥ ४८ ॥

प्रव्रज्याभिमुखो वा श्रद्धेयः कश्चित्कृतलक्षणं द्रव्यमस्य हस्ते निक्षिप्य प्रतिष्ठेत ॥ ४९ ॥ ततः कालान्तरागतो याचेत ॥ ५० ॥ दाने शुचिरन्यथा निक्षेपं स्तेयदण्डं च दद्यात् ॥५१॥

अथवा कोई विश्वासी पुरुष, संन्यासी का वेष बनाकर, चिन्हित द्रव्य को इसके हाथमें सौंपकर चला जावे ॥ ४९ ॥ फिर कुछ समय के बाद आकर मांगे ॥ ५० देदेने पर ईमानदार, अन्यथा उससे निक्षेप वसूल किया जाय, और चोरीका दण्ड दिया जाय ॥ ५१ ॥

कृतलक्षणेन वा द्रव्येण प्रत्यानयेदेनम् ॥ ५२ ॥ बालि-

शजातीयो वा रात्रौ राजदायिकाङ्क्षणभीतः सारमस्य हस्ते निक्षिप्यापगच्छेत् ॥५३॥ स एनं बन्धुना अगारगतो याचेत ॥५४॥ दाने शुचिरन्यथा निक्षेपं स्तेयदण्डं च दद्यात् ॥ ५५ ॥

अथवा चिन्ह किये हुए द्रव्यके द्वारा इसको गिरफ्तार किया जाय ॥५२॥ अथवा कोई पुरुष मूर्खसा बनकर रातमें पुलिस के देख लेने से डरा हुआ सा, इसके हाथमें द्रव्यको सौंपकर चला जावे ॥ ५३ ॥ वह फिर अपने भाईके साथ इसके घर आकर इससे वह धन मांगे *॥ ५४ ॥ दे देने पर ईमानदार अन्यथा इससे निक्षेप वसूल किया जाय, और इसे चोरी के दण्ड मे दण्डित किया जाय ॥ ५५ ॥

अभिज्ञानेन चास्य गृहे जनमुभयं याचेत ॥ ५६ ॥ अन्यतरादाने यथोक्तं पुरस्तात् ॥ ५७ ॥ द्रव्यभोगानामागमं चास्यानुयुञ्जीत ॥ ५८ ॥

इसके घरमें मालके पहिचान लेनेसे, धरके दो आदमियोंसे अलहदा २ वह माल मांगा जाय ॥ ५६ ॥ यदि उन दोनोंमें से कोई एक देनेसे इन्कार करे, तो पूर्वोक्त नियम का ही पालन किया जाय ॥ ५७ ॥ तथा अदालतमें इस से पूछा जाय कि 'यह जो तुम धनके कारण मौज उड़ा रहे हो, यह तुम्हें कहां से प्राप्त हुआ है ॥ ५८ ॥

तस्य चार्थस्य व्यवहारोपलिङ्गनमभियोक्तुश्चार्थसामर्थ्यम् ॥ ५९ ॥ एतेन मिथः समवायो व्याख्यातः ॥ ६० ॥

और उस अर्थके व्यवहार एवं चिन्होंके सम्बन्धमें, तथा अभियोक्ता की आर्थिक दशाके सम्बन्धमें भी अच्छी तरह पूछताछ कीजाय ॥ ५९ ॥ इतने से, आपसमें मिलकर व्यवहार करने वाले सब ही पुरुषों के मामलों को समझना चाहिये ॥ ६० ॥

तस्मात्साक्षिमदच्छन्नं कुर्यात्सम्यग्विभाषितम् ।
स्वे परे वा जने कार्यं देशकालाग्रवर्णतः ॥ ६१ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे औपनिधिकं द्वादशो ऽध्यायः ॥ १२ ॥

आदितः एकोनसप्ततिः ॥ ६९ ॥

---

* इस सूत्रमें 'बन्धुना अगार गतः' के स्थानपर किन्हीं पुस्तकों में 'बन्धनागारगतः' पाठ है। शामशास्त्री और प्राणनाथ विद्यालङ्कार ने इस हीके अनुसार अर्थ किया है, परन्तु यह पाठ कुछ अच्छा नहीं मालूम होता। क्योंकि जेलमें जाकर पूछना कुछ अस्वाभाविक सा मालूम होता है।

इस लिये प्रत्येक व्यक्ति, अपने या पराये पुरुषके साथ व्यवहारमें, साक्षीके सामने ही लेन देनके सब कार्यों की कहा सुनी या लिखा पढ़ी करे, और उसके साथ ही स्थान तथा समय का भी खास तौर पर जिक्र जरूर करदे ॥ ६१ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें बारहवां अध्याय समाप्त।

तेरहवां अध्याय

६५ प्रकरण

दास कल्प

उदरदासवर्जमार्यप्राणमप्राप्तव्यवहारं शूद्रं विक्रयाधानं नयतः स्वजनस्य द्वादशपणो दण्डः ॥ १ ॥ वैश्यं द्विगुणः ॥ २ ॥ क्षत्रियं त्रिगुणः ॥ ३ ॥ ब्राह्मणं चतुर्गुणः ॥ ४ ॥

आर्यों के प्राणभूत, उदर दासको छोड़कर, यदि नाबालिग शूद्रको कोई उसका ही अपना आदमी बेचे या गिरवी रक्खे, तो उसको १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ १ ॥ यदि नाबालिग वैश्यको कोई उसका अपना सम्बन्धी ही बेचे या गिरवी रक्खे, तो उसको २४ पण ॥ २ ॥ इसी प्रकार क्षत्रिय को ३६ ॥ ३ ॥ और ब्राह्मण को ४८ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४ ॥

परजनस्य पूर्वमध्यमोत्तमवधा दण्डाः क्रेतृश्रोतॄणां च ॥५॥ म्लेच्छानामदोषः प्रजां विक्रेतुमाधातुं वा ॥ ६ ॥ न त्वेवार्यस्य दासभावः ॥ ७ ॥

यदि इन नाबालिग शूद्र आदिको कोई दूसरा आदमी बेचे, या गिरवी रक्खे, तो उनको प्रथम, मध्यम, उत्तम साहस दण्ड तथा बध दण्ड क्रमपूर्वक दिये जावें। खरीदनेवाले और गवाहोंके लिये भी यही दण्ड है ॥५॥ म्लेच्छ अपनी सन्तानको बेच या गिरवी रख सकते हैं, इसमें कोई दोष नहीं ॥ ६ ॥ परन्तु आर्य किसी हालतमें भी दास नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

अथ वार्यमाधाय कुलबन्धन आर्याणामापदि निष्क्रयं चाधिगम्य बालं साहाय्यदातारं वा पूर्वं निष्क्रीणीरन् ॥ ८ ॥ सकृदात्माधाता निष्पतितः सीदेत् ॥ ९ ॥ द्विरन्येनाहितकः ॥ १० ॥

अथवा सम्पूर्ण कुलके बन्धनमें पड़ जानेपर, या बहुतसे आर्योंपर

कष्ट आ पड़नेपर, आर्यको भी गिरवी रखदे, और उसके छुड़ाने योग्य धन प्राप्त करके प्रथम बालकको अथवा अपने कार्योंमें सहायता देनेवाले को छुड़ावे ॥ ८ ॥ जो पुरुष स्वयं अपने आपको गिरवी रख चुका हो, वह यदि एक वार भी वहांसे भाग जावे, तो उसे जीवन पर्यन्त दास बनाया जावे ॥ ९ ॥ जिसको अन्य लोगोंने गिरवी रक्खा हो, वह दो वार भागनेपर सदा के लिये दास बनाया जावे ॥ १० ॥

सकृदुभौ परविषयाभिमुखौ ॥ ११ ॥ वित्तापहारिणो वा दासस्यार्यभावमपहरतो ऽर्धदण्डः ॥ १२ ॥ निष्पातितप्रेतव्यसनिनामाधाता मूल्यं भजेत ॥ १३ ॥

ये दोनोंही यदि एकवार भी दूसरे देशमें चले जानेका इरादा करें, तो जीवन पर्यन्त दास बनाये जावें ॥ ११ ॥ धन चुराने वाले अथवा किसीके आर्यत्वको अपहरण करनेवाले (अर्थात् आर्यको दास बनानेवाले) दासको आधा दण्ड दिया जाये ॥ १२ ॥ भागे हुए, मरे हुए, तथा बीमारका मूल्य, गिरवी रखनेवालेको ही भुगतना पड़े। (अर्थात् ऐसे व्यक्तियोंको गिरवी रखनेवाला पुरुष उनके मूल्यको अवश्य लौटा दे) ॥ १३ ॥

प्रेतविण्मूत्रोच्छिष्टग्राहणमाहितस्य नग्नस्तापनं दण्डप्रेषणमतिक्रमणं च स्त्रीणां मूल्यनाशकरम् ॥ १४ ॥ धात्रीपरिचारिकार्धसीतिकोपचारिकाणां च मोक्षकरम् ॥ १५ ॥

जो व्यक्ति पुरुष दाससे मुर्दा, मलमूत्र, या झूठन उठवावे और स्त्री दासको अनुचित दण्ड दे, उसके सतीत्वको नष्ट करे, या अपनी अथवा उसकी नग्न अवस्थामें उसे उपस्थित करे या स्वयं उपस्थित हो, तो उसके (गिरवी रखने के बदलेमें दिये हुए) धनको ज़ब्त कर लिया जावे ॥ १४ ॥ यदि यही व्यवहार दाई, बाहरीदासी, अर्द्धसीतिका (गिरवी रक्खी हुई, उस जातिकी स्त्री, जिस जातिमें पुरुषोंका जीवन निर्वाह विशेषकर स्त्रियोंके कार्योंपर ही निर्भर हो) और भीतरी दासीके साथ किया जावे, तो उन्हें दासीपनेसे छुड़ा दिया जावे। (अर्थात् वे छूटकर सदाके लिये अपने घर जा सकती हैं) ॥ १५ ॥

सिद्धमुपचारकस्याभिप्रजातस्यापक्रमणम् ॥ १६ ॥ धात्रीमाहितिकां वाकामां स्ववशामधिगच्छतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ १७ ॥ परवशां मध्यमः ॥ १८ ॥

यदि उच्चकुलमें उत्पन्न हुए दाससे उपर्युक्त (१४वें सूत्रमें वर्णित)

कार्य कराया जावे, तो वह वहांसे दासपनेको छोड़कर चला जा सकता है ॥ १६ ॥ अपनी दाई या गिरवी रक्खी हुए किसी अन्य स्त्रीको उनकी इच्छाके विरुद्ध जो व्यक्ति स्वयं उनको अपने वशमें लानेकी चेष्टा करे, तो उसको प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ १७ ॥ यदि उपर्युक्त अवस्थामें किसी दूसरे व्यक्तिके वशमें लानेके लिये चेष्टा करे, तब उसे मध्यम साहस दण्ड दिया जाय ॥ १८ ॥

कन्यामाहितकां वा स्वयमन्येन वा दूषयतः मूल्यनाशः शुल्कं तद्द्विगुणश्च दण्डः ॥ १९ ॥ आत्मविक्रयिणः प्रजामार्यां विद्यात् ॥ २० ॥

और गिरवी रक्खी हुई कन्याको जो पुरुष स्वयं या किसी दूसरेके द्वारा दूषित करे, उसका (बदलेमें दिया हुआ) धन जब्तकर लिया जावे, और कन्याको कुछ धन जुरमानेके तौरपर उससे दिलाया जाय। तथा इससे दुगना दण्ड सरकारको देवे ॥ १९ ॥ अपने आपको बेच देनेवाले (आर्य) पुरुषकी सन्तानको आर्यही समझा जावे ॥ २० ॥

आत्माधिगतं स्वामिकर्माविरुद्धं लभेत पित्र्यं च दायम् ॥ २१ ॥ मूल्येन चार्यत्वं गच्छेत् ॥ २२ ॥ तेनोदरदासाहितकौ व्याख्यातौ ॥ २३ ॥

अपने मालिककी आज्ञानुसार वह स्वयं कमाये हुए धनको अपने पास रख सकता है, और पिताकी सम्पत्तिका भी दायभागी हो सकता है ॥ २१ ॥ तथा अपनी कीमत चुकाकर फिर वह आर्य भावको प्राप्त हो सकता है। (अर्थात् दासताको छोड़कर आर्य बन सकता है) इसी प्रकार उदरदास और आहितकके विषयमें नियम समझने चाहियें ॥ २३ ॥

प्रक्षेपानुरूपश्चास्य निष्क्रयः ॥ २४ ॥ दण्डप्रणीतः कर्मणा दण्डमुपनयेत् ॥ २५ ॥ आर्यप्राणो ध्वजाहृतः कर्मकालानुरूपेण मूल्यार्धेन वा विमुच्येत ॥ २६ ॥

गिरवी रखनेके अनुसार ही इनके छुड़ानेका मूल्य होना चाहिये ॥२४॥ जिस पुरुषको दण्डका धन न भुगतानेके कारण दासता स्वीकार करनी पड़ी है, वह किसी तरहका काम करके उस धनको भुगता देवे, और स्वतन्त्रता प्राप्त करलेवे ॥ २५ ॥ आर्यदास (आर्योंका प्राणसम कोई दास व्यक्ति) यदि कहीं युद्धमें पराधीन होकर दूसरोंसे दास बना लिया गया हो, तो वह अपने

क्रय या समयके अनुसार, अथवा आधा मूल्य (अपने पकड़े जाने आदिके व्ययका) देकर छुटकारा पासकता है ॥ २६ ॥

गृहेजातदायागतलब्धक्रीतानामन्यतमं दासमूनाष्टवर्षं विबंधुमकामं नीचे कर्माणि विदेशे दासीं वा सगर्भामप्रतिविहितगर्भभर्मण्यां विक्रयाधानं नयतः पूर्वः साहसदण्डः क्रेतृश्रोतॄणां च ॥ २७

घरमें उत्पन्न हुए, दायभाग बांटते समय अपने हिस्सेमें प्राप्त हुए, या खरीदे हुए, बन्धुबान्धवोंसे रहित आठ वर्षसे कम उमरके दासको उसकी इच्छाके विरुद्ध जो व्यक्ति कोई नीच काम करनेके लिये विदेशमें बेचे या गिरवी रक्खे, और इसी प्रकार जो गर्भिणी दासीको, उसके गर्भकी रक्षाका कोई प्रबन्ध न करता हुआ, बेचे या गिरवी रक्खे, उन्हें प्रथम साहस दण्ड दिया जाय, और यही दण्ड उनके खरीदनेवालों तथा गवाहोंको दिया जाय ॥ २७ ॥

दासमनुरूपेण निष्क्रयेणार्यमकुर्वतो द्वादशपणो दण्डः ॥ २८ ॥ संरोधश्चाकारणात् ॥ २९ ॥ दासद्रव्यस्य ज्ञातयो दायादाः ॥ ३० ॥ तेषामभावे स्वामी ॥ ३१ ॥

जो व्यक्ति उचित मूल्य पानेपर भी किसी दासको आर्य नहीं बनाता, अर्थात् उसको दासतासे नहीं छोड़ता, उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ २८ ॥ यदि न छोड़नेमें कोई कारण भी न हो, तो उसे कारावासका दण्ड दिया जाय ॥ २९ दासकी सम्पत्तिके अधिकारी, उसके बन्धुबान्धव कुटुम्बी लोग होते हैं ॥ ३० ॥ उनके न होनेपर, दासका मालिक ही उसकी सम्पत्तिका अधिकारी होता है ॥ ३१ ॥

स्वामिनोऽस्यां दास्यां जातं समातृकमदासं विद्यात् ॥ ३२ ॥ गृह्या चेत्कुटुम्बार्थचिन्तनी माता भ्राता भगिनी चास्या अदासाः स्युः ॥ ३३ ॥ दासं दासीं वा निष्क्रीय पुनर्विक्रयाधानं नयतो द्वादशपणो दण्डः ॥ ३४ ॥

यदि मालिकसे उसकी दासीमें सन्तान उत्पन्न होजाय तो वह सन्तान और उसकी माता दोनों ही दासतासे मुक्त कर दिये जावें ॥ ३२ ॥ यदि वह स्त्री कुटुम्बके सब कार्योंका चिन्तन करती हुई, मालिकके घरमें ही भार्याके समान रहना चाहती है, तो उसकी माता, बहिन और भाइयोंको भी दासतासे मुक्त

कर दिया जावे ॥ ३३ ॥ दास और दासीको एकवार छुड़ाकर यदि फिर दुबारा कोई बेचे या गिरवी रक्खे, तो उसको १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ३४ ॥

अन्यत्र स्वयंवादिभ्यः ॥ ३५ ॥ इति दासकल्पः ॥ ३६ ॥ कर्मकरस्य कर्मसंबन्धमासन्ना विद्युः ॥ ३७ ॥ यथा संभाषितं वेतनं लभेत ॥ ३८ ॥ कर्मकालानुरूपमसंभाषितवेतनः ॥ ३९ ॥

परन्तु यदि दास और दासी बिकने या गिरवी रक्खे जानेके लिये स्वयं कहदें, तो कोई दोष नहीं ॥ ३५ ॥ यहांतक दासोंके सम्बन्धमें निरूपण किया गया ॥ ३६ ॥ नौकरकी नियुक्तिको पड़ोसीलोग जानें ॥ ३७ ॥ प्रत्येक नौकर, जैसा तै होगया हो उसीके अनुसार नौकरी लेवे ॥ ३८ ॥ परन्तु जिसका वेतन पहिलेसे तै नहीं हुआ है, वह अपने कार्य और समयके अनुसार वेतन लेवे ॥ ३९ ॥

कर्षकः सस्यानां गोपालकः सर्पिषां वैदेहकः पण्यानामात्मना व्यवहृतानां दशभागमसंभाषितवेतनो लभेत ॥ ४० ॥ संभाषितवेतनस्तु यथासंभाषितम् ॥ ४१ ॥

किसान (खेती करने पर नौकर हुआ व्यक्ति) अनाजका, ग्वाला घी का, और खरीद फरोख्त करने वाला अपने द्वारा व्यवहृत हुई चीजोंका दसवां हिस्सा लेवे, बशर्ते कि वेतन पहिलेसे तै न हुआ हो ॥ ४० ॥ पहिलेसे तै होनेपर तो, उसहीके अनुसार लेवे ॥ ४१ ॥

कारुशिल्पिकुशीलवचिकित्सकवाग्जीवनपरिचारकादिराशाकारिकवर्गस्तु यथान्यस्तद्विधः कुर्याद्यथा वा कुशलाः कल्पयेयुस्तथा वेतनं लभेत ॥ ४२ ॥

कारीगर, गाने बजानेका व्यवसाय करनेवाले नट आदि, चिकित्सक, वकील (वाग्जीवन) परिचारक (नौकर चाकर) आदि आशाकारिक वर्ग (मेहनतानेकी आशासेही काम करनेवाले) को यथार्ह वेतन दिया जावे, जैसा अन्य स्थानोंमें दिया जाता हो । अथवा जिस प्रकार चतुर पुरुष नियत करदें, उसीके अनुसार दिया जावे ॥ ४२ ॥

साक्षिप्रत्ययमेव स्यात् ॥ ४३ ॥ साक्षिणामभावे यतः कर्म ततोऽनुयुञ्जीत ॥ ४४ ॥ वेतनादाने दशबन्धो दण्डः षट्पणो वा ॥४५॥ अपव्ययमाने द्वादशपणो दण्डः पञ्चबन्धो वा ॥४६॥

विवाद होनेपर, साक्षियोंके कथनानुसारही वेतनका निर्णय किया जाय ॥ ४३ ॥ यदि साक्षी भी न हों, तो जैसा काम किया हो, उसीके अनुसार फैसला करदिया जाय ॥ ४४ ॥ वेतन न देनेपर उसका दसवां हिस्सा दण्ड, अथवा ६ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४५ ॥ और अपव्यय करनेपर, उसका पांचवां हिस्सा, अथवा १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४६ ॥

नदीवेगज्वालास्तेनव्यालोपरुद्धः सर्वस्वपुत्रदारात्मदानेनार्तस्त्रातारमाहूय निस्तीर्णः कुशलप्रदिष्टं वेतनं दद्यात् ॥ ४७ ॥ तेन सर्वत्रार्तदानानुशया व्याख्याताः ॥ ४८ ॥

नदीके प्रवाहमें बहता हुआ, अग्नि, चोर या सिंह बघेरा आदि हिंस्र जन्तुओंसे घिरा हुआ, दुःखी पुरुष यदि अपना सर्वस्व, पुत्र, स्त्री या स्वयं अपने आपको देदेनेका वादा करके किसी रक्षा करनेवालेको बुलाकर उस आपत्तिसे पार हो जावे, तो फिर तत्कालीन चतुर नेता जैसा कहें, उसीके अनुसार उस रक्षकको वेतन देवे ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार सबही अवसरोंपर दुःखी पुरुषके देनेके प्रणका नियम समझना चाहिए ॥ ४८ ॥

लभेत पुंश्चली भोगं संगमस्योपलिङ्गनात् ।
अतियाञ्चा तु जीयेत दौर्मत्याविनयेन वा ॥ ४९ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे दासकर्मकरकल्पे दासकल्पः कर्मकरकल्पे स्वाम्यधिकारः त्रयोदशो ऽध्यायः ॥ १३ ॥ आदितः सप्ततिरध्यायः ॥ ७० ॥

वेश्या, पुरुषको तृप्त करनेके पहिलेही अपने संगमके लिए किए हुए धनको लेलेवे । यदि वह दुष्ट बुद्धिसे, अथवा डरा धमकाकर अनुचित रूपसे अधिक धन लेना चाहती है, तो उसे वह न दिया जावे ॥ ४९ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरण में तेरहवां अध्याय समाप्त ।

चौदहवां अध्याय ।

६३ प्रकरण

कर्मकर कल्प, सम्भूय समुत्थान ।

गृहीत्वा वेतनं कर्माकुर्वतो भृतकस्य द्वादशपणो दण्डः ॥ १ ॥ संरोधश्चाकारणात् ॥ २ ॥ अशक्तः कुत्सिते कर्मणि व्याधौ व्यसने वानुशयं लभेत ॥ ३ ॥ परेण वा कारयितुम् ॥ ४ ॥

वेतन लेकर जो नौकर काम न करे उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ १ ॥ यदि बिना ही कारण काम न करे, तो कारावासका दण्ड दिया जाय ॥२॥ किसी नीच कर्ममें, बीमारीमें, तथा आकस्मिक आपत्तिमें ग्रस्त होनेके कारण कार्य करनेमें असमर्थ हुआ २ नौकर छुट्टी ले सकता है ॥ ३ ॥ अथवा अपने कार्यको किसी दूसरे आदमीसे करवानेका प्रबन्ध करके भी छुट्टी ले सकता है ॥ ४ ॥

तस्य व्ययं कर्मणा लभेत ॥ ५ ॥ भर्ता वा कारयितुं नान्यस्त्वया कारयितव्यो मया वा नान्यस्य कर्तव्यमित्यविरोधे भर्तुर कारयतो भृतकस्याकुर्वतो वा द्वादशपणो दण्डः ॥ ६ ॥ कर्मनिष्ठापने भर्तुरन्यत्र गृहीतवेतनो नासकामः कुर्यात् ॥ ७ ॥

जो उसका खर्च हो, वह उसके कामसे लेवे ॥ ५ ॥ यदि मालिकही अपना काम किसीसे करावे, तो उनका आपसमें 'तुम्हें और किसीसे काम नहीं कराना चाहिए तथा मैं और किसीका काम नहीं करूंगा' इस प्रकारका समझौता होनेपर, मालिक उसहीसे न करावे तो १२ पण दण्ड, और नौकर न करे तो उसको भी १२ पण दण्ड दिया जावे ॥ ६ ॥ यदि किसी मजदूरने दूसरी जगह काम करनेका वेतन लेलिया हो, तो वह अपने पहिले मालिकके कामको समाप्त करनेपरही, इच्छानुसार दूसरा काम प्रारम्भ करे ॥ ७ ॥

उपस्थितमकारयतःकृतमेव विद्यादित्याचार्याः ॥ ८ ॥ नेति कौटल्यः ॥ ९ ॥ कृतस्य वेतनं नाकृतस्यास्ति ॥ १० ॥

आचार्योंका मत है कि उपस्थित हुए मजदूरसे यदि काम न भी लिया जावे, तो भी (उसकी उपस्थिति=हाज़िरी ठीक होनेके कारण) उसने काम करही लिया है, ऐसा समझा जावे ॥ ८ ॥ परन्तु कौटल्यका यह मत नहीं है ॥ ९ ॥ वह कहता है, कि वेतन काम करनेकाही होता है, काम न करते हुए ठाली बैठनेका नहीं होता ॥ १० ॥

स चेदल्पमपि कारयित्वा न कारयेत्कृतमेवास्य विद्यात् ॥११॥ देशकालातिपातनेन कर्मणामन्यथाकरणे वा नासकामः कृतमनुमन्येत ॥ १२ ॥ संभाषितादधिकक्रियायां प्रयासं मोघं कुर्यात् ॥ १३ ॥ तेन संघभृता व्याख्याताः ॥ १४ ॥

यदि मालिक थोड़ासा भी काम कराके फिर न करावे, तो अवश्य नौकरका किया हुआ काम समझा जावे ॥ ११ ॥ मालिककी आज्ञानुसार ठीक

स्थान और समयपर काम न करनेसे, अथवा कामोंको उलटा कर देनेपर, नौकरने वस्तुतः काम किया है, ऐसा न समझा जावे ॥ १२ ॥ मालिकके कहनेसे अधिक काम करनेपर, उतनी मेहनत व्यर्थ ही समझनी चाहिए ॥ १३ ॥ संघ (व्यापारियोंकी कम्पनी आदि) से मज़दूरी पानेवालोंके भी यही नियम हैं ॥ १४ ॥

तेषामाधिः सप्तरात्रमासीत ॥ १५ ॥ ततो ऽन्यमुपस्थापयेत ॥ १६ ॥ कर्मनिष्पाकं च ॥ १७ ॥ न चानिवेद्य भर्तुः संघः किंचित्परिहरेदपनयेद्वा ॥ १८ ॥ तस्यातिक्रमे चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ १९ ॥ संघेन परिहृतस्यार्धदण्डः ॥ २० ॥ इति भृतकाधिकारः ॥ २१ ॥

काम ठीक न करनेपर उनकी सात दिनकी मज़दूरी दबाए रखनी चाहिए ॥ १५ ॥ फिर भी ठीक न करें तो काम दूसरेको देदिया जावे ॥ १६ ॥ और उस कामको ठीक २ करा लिया जावे, तथा उचित मज़दूरी देदी जावे ॥ १७ ॥ मालिकको बिना कहे, मज़दूर न कोई वस्तु नष्ट करें, और न ले जावें ॥ १८ ॥ इस नियमका उल्लङ्घन करनेपर २४ पण दण्ड दिया जावे ॥ १९ ॥ यदि सबही मज़दूर मिलकर ऐसा करें, तो उनको आधा दण्ड दिया जाय ॥ २० ॥ यहां तक मज़दूरों (भृतक=कर्मकर=मज़दूर) के विषयमें कहा गया ॥ २१ ॥

संघभृताः संभूयसमुत्थातारो वा यथासंभाषितं वेतनं समं वा विभजेरन् ॥ २२ ॥ कर्षकवैदेहका वा सस्यपण्यारम्भपर्यवसानान्तरे सन्नस्य यथाकृतस्य कर्मणः प्रत्यंशं दद्युः ॥ २३ ॥ पुरुषोपस्थाने समग्रमंशं दद्युः ॥ २४ ॥

संघसे इकट्ठी नौकरी पानेवाले, अथवा आपसमें मिलकर ठेके आदिके द्वारा काम करनेवाले, पहिलेसे तै किए हुएके अनुसार या बराबर २ आपसमें वेतन बांट लेवें ॥ २२ ॥ किसान फसलके आरम्भसे अन्त तक, अथवा क्रय-विक्रय करने वाला व्यापारी चीज़के खरीदनेसे लेकर बिक जाने तकके साथीको उनके किये हुए कामके अनुसार हिस्सा देवें ॥ २३ ॥ यदि कोई साझी व्यक्ति अपने स्थानपर काम करनेके लिए किसी दूसरे व्यक्तिको नियत करदे, तो भी उसको उसका पूरा हिस्सा दिया जावे ॥ २४ ॥

संसिद्धे तूद्धृतपण्ये सन्नस्य तदानीमेव प्रत्यंशं दद्युः ॥ २५ ॥

सामान्या हि पथि सिद्धिश्चासिद्धिश्च ॥२६॥ प्रक्रान्ते तु कर्मणि स्वस्थस्यापक्रमतो द्वादशपणो दण्डः ॥ २७ ॥

माल बिक जानेपर जब दूकान उठा दी जानेवाली हो, तो साझीको फ़ौरन ही उसका हिस्सा दे दिया जावे ॥ २५ ॥ क्योंकि आगे काम करनेमें सफलता और असफलता दोनोंही समान हैं (इसलिए जो चाहे साझेमें करे, न चाहे न करे, पहिला हिसाब साफ़ कर दिया जावे ।) ॥ २६ ॥ कामके होते रहते हुएही, यदि कोई तन्दुरुस्त व्यक्ति काम छोड़ कर चला जावे, तो उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ २७ ॥

न च प्राकाम्यमपक्रमणे ॥ २८ ॥ चोरं त्वभयपूर्वं कर्मणः प्रत्यंशेन ग्राहयेद्दद्यात्प्रत्यंशमभयं च ॥ २९ ॥ पुनः स्तेये प्रवासनमन्यत्र गमनं च ॥ ३० ॥

क्योंकि इस प्रकार काम छोड़कर चलेजाना, किसीकी इच्छापर निर्भर नहीं है ॥ २८ ॥ यदि कोई आपसका काम करनेवाला व्यक्ति चोरी करले, तो उसको अभयदान पूर्वक कहा जाय कि हम तुम्हारा हिस्सा भी देदेंगे, बात ठीक २ बतलादो; ठीक बतलानेपर अभय और उसका हिस्सा देदिया जावे ॥ २९ ॥ और यदि वह फिरभी चोरी करलेवे तो उसको साझेसे पृथक् कर दिया जावे ॥ ३० ॥

महापराधे तु दूष्यवदाचरेत् ॥ ३१ ॥ याजकाः स्वप्रचार द्रव्यवर्जं यथासंभाषितं वेतनं समं वा विभजेरन् ॥ ३२ ॥ अग्निष्टोमादिषु च क्रतुषु दीक्षणादूर्ध्वं याजकः सन्नः पञ्चममंशं लभेत ३३

किसी प्रकारका बड़ा अपराध कर देनेपर तो उसके साथ राज्यापराधीके समान व्यवहार किया जावे ॥ ३१ ॥ यज्ञ करानेवाले (याजक) अपने निजी काममें आनेवाली वस्तुओंको छोड़कर शेष सम्पूर्ण वेतनको, प्रथम निर्णयके अनुसार, अथवा बराबर २ आपसमें बांट लेवें ॥ ३२ ॥ अग्निष्टोम आदि यज्ञोंमें दीक्षाके बादही याजकके अकस्मात् बीमार होजानेपर प्रथम निश्चित की हुई समग्र दक्षिणाका पांचवां हिस्सा वह ले लेवे ॥ ३३ ॥

सोमविक्रयादूर्ध्वं चतुर्थमंशम् ॥ ३४ ॥ मध्यमोपसदः प्रवर्ग्योद्वासनादूर्ध्वं द्वितीयमंशं लभेत ॥ ३५ ॥ मायादूर्ध्वमर्धमंशम् ॥ ३६ ॥ सुत्ये प्रातः सवनादूर्ध्वं पादोनमंशम् ॥ ३७ ॥ मध्य-

न्दिनात्सवनादूर्ध्वं समग्रमंशं लभेत ॥ ३८ ॥ नीता हि दक्षिणा भवन्ति ॥ ३९ ॥

इसी प्रकार सोमविक्रयके बाद चौथा हिस्सा ॥ ३४ ॥ मध्योपसत् सम्बन्धी प्रवर्ग्योद्वासन (सोम तैयार करनेके लिये एक कर्म विशेषका अङ्गभूत, जिसमें सोमका काटना कूटना होता है) के बाद, दूसरा हिस्सा ॥ ३५ ॥ मध्योपसदनके बाद आधा हिस्सा ॥ ३६ ॥ और सामके अभिषव कालमें प्रातः सवनके बाद, तीन हिस्से ॥३७॥ तथा माध्यन्दिन सवनके अनन्तर सम्पूर्ण दक्षिणा ले लेवे ॥ ३८ ॥ क्योंकि यज्ञकी समाप्तिपर दक्षिणा पूर्ण हो जाती है ॥ ३९ ॥

बृहस्पतिसवनवर्जं प्रतिसवनं हि दक्षिणा दीयन्ते ॥ ४० ॥ तेनाहर्गणदक्षिणा व्याख्याताः ॥ ४१ ॥ सन्नानामादशाहोरात्राच्छेषभृताः कर्म कुर्युः ॥ ४२ ॥ अन्ये वा स्वप्रत्ययाः ॥ ४३ ॥

बृहस्पति सवनको छोड़कर शेष सबही सवनोंमें दक्षिणा दीजाती है ॥ ४० ॥ इससे अहर्गण दक्षिणाओंके नियम भी समझने चाहियें ॥ ४१ ॥ बीमार हुए याजकों की शेष दक्षिणा लेकर कार्य पूरा करनेवाले याजक दस दिन पर्यन्त कार्य करें ॥ ४२ ॥ अथवा अन्य याजक अपनी स्वतन्त्र दक्षिणा लेकर शेष कार्यको पूरा करें ॥ ४३ ॥

कर्मण्यसमाप्ते तु यजमानः सीदेत् ॥ ४४ ॥ ऋत्विजः कर्म समापय्य दक्षिणां हरेयुः ॥ ४५ ॥ असमाप्ते तु कर्माणि याज्यं याजकं वा त्यजतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ४६ ॥

प्रारम्भ किये कर्मके समाप्त न होनेपर ही यदि यजमान बीमार हो जावे, तो ऋत्विजोंको चाहिये कि वे यज्ञको समाप्त कराके दक्षिणा लेवें ॥ ४४, ४५ ॥ कर्मके समाप्त न होनेपर यदि यजमान, याजकको छोड़े, अथवा याजक यजमानको छोड़े, तो छोड़नेवालेको प्रथम साहस दण्ड दिया जावे॥४६॥

अनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः ।
सुरापो वृषलीभर्ता ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ ४७ ॥

सौ गाय रखते हुए भी अग्न्याधान न करनेवाला, सहस्र गाय रखते हुए भी यजन न करनेवाला, शराब पीनेवाला, शूद्राको घरमें रखनेवाला, ब्राह्मणके मारनेवाला, गुरुकी स्त्रीके साथ व्यभिचार करनेवाला ॥ ४७ ॥

असत्प्रतिग्रहे युक्तः स्तेनः कुत्सितयाजकः ।
अदोषस्त्यक्तुमन्योन्यं कर्मसंकरनिश्चयात् ॥ ४८ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे दासकर्मकरकल्पे भृतकाधिकारः संभूयसमुत्थानं चतुर्दशो ऽध्यायः ॥ १४ ॥
आदित एकसप्ततिः ॥ ७१ ॥

कुत्सित दान लेनेवाला, चोर, और निन्दित व्यक्तियोंका याजक, कर्मोंके दूषित हो जानेके भयसे, परस्पर एक दूसरेके द्वारा छोड़ा जासकता है, इसमें कोई दोष नहीं। अर्थात् उपर्युक्त प्रकारके यजमान या याजक एक दूसरेको, कर्म समाप्त न होनेपर भी छोड़ सकते हैं ॥ ४८ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें चौदहवां अध्याय समाप्त ।

पन्द्रहवां अध्याय ।

६७ प्रकरण ।

क्रय विक्रय तथा अनुशय ।

विक्रीय पण्यमप्रयच्छतो द्वादशपणो दण्डः ॥ १ ॥ अन्यत्र दोषोपनिपाताविषह्येभ्यः ॥ २ ॥ पण्यदोषो दोषः ॥ ३ ॥ राजचोराग्न्युदकबाध उपनिपातः ॥ ४ ॥ बहुगुणहीनमार्तकृतं वाविषह्यम् ॥ ५ ॥

सौदा बेचकर जो फिर न देवे, उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ १ ॥ यदि वह, सौदेमें कुछ दोष होनेके कारण, या किसी बाह्य आकस्मिक आपत्तिके कारण, अथवा किसी तरहके वस्तुगत असामर्थ्यके कारण, ऐसा करता है तो कोई दोष नहीं ॥ २ ॥ सौदे (बेची हुई वस्तु) में किसी तरहकी खराबीका होना ही 'दोष' है ॥ ३ ॥ राजा, चोर, अग्नि या जलके द्वारा बाधा पहुँचना 'उपनिपात' कहाता है ॥ ४ ॥ उस वस्तुका अत्यधिक गुणहीन होना, अथवा दुःखदायी होना 'अविषह्य' कहा जाता है ॥ ५ ॥

वैदेहकानामेकरात्रमनुशयः ॥ ६ ॥ कर्षकाणां त्रिरात्रम् ॥ ७ ॥ गोरक्षकाणां पञ्चरात्रम् ॥ ८ ॥ व्यामिश्राणामुत्तमानां च वर्णानां विवृत्तिविक्रये सप्तरात्रम् ॥ ९ ॥ आतिपातिकानां पण्यानामन्यत्राविक्रेयमित्यविरोधेनानुशयो देयः ॥ १० ॥

क्रय विक्रय करनेवाले व्यापारियोंका सौदा एक दिनके अन्दर रद्द हो सकता है। (अर्थात् सौदेके रद्द होनेकी मियाद सिर्फ एक दिन है, एक दिन तक बयाना आदि लौटाया जासकता है।) किसानोंका तीन दिन तक ॥ ७ ॥ ग्वालोंका ५ दिन तक ॥ ८ ॥ और सङ्कर जाति तथा उत्तम वर्णोंका उनके जीवन निर्वाह के साधनभूत भूमि आदिके विक्रयमें सात दिनतक ॥ ९ ॥ जल्दीही बेची जानेवाली वस्तुओंको 'देरतक रक्खे रहनेपर दूसरी जगह बेचनेके योग्य यह न रहेगी' यह खयाल करके, वह वस्तु बेचनेतक सुरक्षित जैसे रहसके, उस प्रकार बयाना (अनुशय) देना चाहिये ॥ १० ॥

तस्यातिक्रमे चतुर्विंशतिपणो दण्डः पण्यदशभागो वा ॥ ११ ॥ क्रीत्वा पण्यमप्रतिगृह्णतो द्वादशपणो दण्डः ॥ १२ ॥ अन्यत्र दोषोपनिपाताविषह्येभ्यः ॥ १३ ॥ समानश्चानुशयो विक्रेतुरनुशयेन ॥ १४ ॥

इस नियमका उल्लङ्घन करनेवालोंको २४ पण, अथवा विक्रय वस्तु का दसवां हिस्सा दण्ड दिया जाय ॥ ११ वस्तुको खरीदकर जो फिर न लेवे, उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ १२ ॥ परन्तु यदि कोई व्यक्ति दोष, उपनिपात और अविषह्यके कारण ऐसा करता है, तो कोई हानि नहीं ॥ १३ ॥ खरीदने वालेके लिये भी बयानेका वही नियम है, जो बेचने वालेके लिये ॥ १४ ॥

विवाहानां तु त्रयाणां पूर्वेषां वर्णानां पाणिग्रहणात्सिद्धमुपावर्तनम् ॥ १५ ॥ शूद्राणां च प्रकर्मणः ॥ १६ ॥ वृत्तपाणिग्रहणयोरपि दोषमौपशायिकं दृष्ट्वा सिद्धमुपावर्तनम् ॥ १७ ॥ न त्वेवाभिप्रजातयोः ॥ १८ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णोंके विवाहोंमें पाणिग्रहणके बाद उलट फेर नहीं होसकती। अर्थात् स्त्री-पुरुष एक दूसरेको नहीं छोड़ सकते हैं ॥ १५ ॥ और शूद्रोंमें प्रथम सम्भोगतक छोड़ा जासकता है, इसके आगे नहीं ॥ १६ ॥ प्रथम तीन वर्णोंमें पाणिग्रहण हो जानेपर भी, यदि स्त्री-पुरुषके एक साथ प्रथम शयनकालमें, किसीमें (स्त्री या पुरुषमें) कोई दोष मालूम पड़े, तो विवाह-सम्बन्ध तोड़ा जासकता है ॥ १७ ॥ सन्तान होजानेपर किसी तरह भी नहीं तोड़ा जासकता ॥ १८ ॥

कन्यादोषमौपशायिकमनाख्याय प्रयच्छतः कन्यां षण्णवतिर्दण्डः शुल्कस्त्रीधनप्रतिदानं च ॥ १९ ॥ वरयितुर्वा वरदोषमना-

ख्याय विन्दतो द्विगुणः ॥ २० ॥ शुल्कस्त्रीधननाशश्च ॥ २१ ॥

कन्याके किसी गुप्त दोषको छिपाकरही जो पुरुष उसे ब्याह देता है, उसको ९६ पण दण्ड दिया जाय और शुल्क तथा स्त्रीधन उससे वापस लिया जाय ॥ १९ ॥ इसी प्रकार जो वरके दोषोंको छिपाकर विवाह करता है, तो उसे दुगना अर्थात् १९२ पण दण्ड दिया जावे ॥ २० ॥ और उसका दिया हुआ शुल्क तथा स्त्रीधन भी जब्त कर लिया जावे ॥ २१ ॥

द्विपदचतुष्पदानां तु कुष्ठव्याधितानामशुचीनामुत्साहस्वास्थ्य-शुचीनामाख्याने द्वादशपणो दण्डः ॥ २२ ॥ आत्रिपक्षादिति चतुष्पदानामुपावर्तनम् ॥ २३ ॥ आसंवत्सरादिति मनुष्याणाम् ॥ २४ ॥ तावता हि कालेन शक्यं शौचाशौचे ज्ञातुमिति ॥२५

मनुष्य और चौपायोंके, कोढ़, बीमारी तथा दुष्टता आदि दोषोंके स्थान में, उन्हें उत्साही नीरोग और अच्छा बतलानेवाले व्यक्तिको १२ पण दण्ड दिया जावे ॥ २२ ॥ चौपाये डेढ़ महीनेतक लौटाये जासकते हैं ॥ २३ ॥ और मनुष्य सालभर तक ॥ २४ ॥ क्योंकि इतने समयमें इनकी दुष्टता या सरलता अच्छी तरह मालूम हो सकती है ॥ २५ ॥

दाता प्रतिगृहीता च स्यातां नोपहतौ यथा ।
दाने क्रये वानुशयं तथा कुर्युः सभासदः ॥ २६ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीयेऽधिकरणे विक्रीतक्रीतानुशयः पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥
आदितो द्विसप्ततितमः ॥ ७२ ॥

धर्मस्थ पुरुषोंको उचित है कि वे देने लेने वालों तथा क्रय विक्रय करने वालोंके दान या क्रयमें अनुशयकी इस प्रकार व्यवस्था करें, जिससे किसीको कोई हानि न उठानी पड़े ॥ २६ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें पन्द्रहवां अध्याय समाप्त ।

सोलहवां अध्याय ।

६८—७२ प्रकरण ।

प्रतिज्ञात धनका अप्रदान, अस्वामिविक्रय, स्वस्वामिसम्बन्ध ।

दत्तस्याप्रदानमृणादानेन व्याख्यातम् ॥ १ ॥ दत्तमप्यपहा-

येमेकत्रानुशये वर्तेत ॥ २ ॥ सर्वस्वं पुत्रदारमात्मानं वा प्रदायानुशयिनः प्रयच्छेत ॥ ३ ॥

दान किये प्रतिज्ञात धनको न देना, ऋणके न देनेके समानही समझना चाहिये । अर्थात् इन दोनोंके लिये एकसेही नियम हैं ॥ १ ॥ दिया हुआ धन यदि काममें लाने योग्य न होवे, तो वह केवल अमानतके तौरपरही (अनुशय) रक्खा जावे ॥ २ ॥ और दाता, अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति, स्त्री पुत्र तथा अपने आपको भी किसीको देकर, अनुशयी (दानका प्रतिगृहीता) के धनको चुकावे ॥ ३ ॥

धर्मदानमसाधुषु कर्मसु चौपघातिकेषु वार्थदानमनुपकारिष्वपकारिषु वा कामदानमनर्हेषु च यथा च दाता प्रतिगृहीता च नोपहतौ स्यातां तथानुशयं कुशलाः कल्पयेयुः ॥ ४ ॥

असाधुओंमें धर्मबुद्धिसे दिया हुआ प्रतिज्ञात दान (ये साधु हैं, ऐसा समझकर दान देनेकी प्रतिज्ञा की, फिर उनकी असाधुता मालूम हो जानेपर वह प्रतिज्ञात धन न दिया हुआ) अथवा अच्छे कामोंके लिये, चोरजार आदि पुरुषोंमें धार्मिक बुद्धिसे दिया हुआ प्रतिज्ञातधन, उपकार न करने वाले अथवा अपकार करनेवाले पुरुषोंमें दिया हुआ प्रतिज्ञातधन, काम अभिलाषा पूर्ण करने के लिये वेश्या आदिमें दिया हुआ प्रतिज्ञातधन, अनुशयमें रक्खा जावे । चतुर धर्मस्थ पुरुषोंको उचित है कि वे अनुशयका इस प्रकार निर्णय करें, जिसमें दाता और प्रतिगृहीताको किसी प्रकारकी हानि न पहुंचे ॥ ४ ॥

दण्डभयादाक्रोशभयादनर्थभयाद्वा भयदानं प्रतिगृह्णतः स्तेयदण्डः प्रयच्छतश्च ॥ ५ ॥ रोषदानं परहिंसायाम् ॥ ६ ॥ राज्ञामुपरि दर्पदानं च ॥ ७ ॥ तत्रोत्तमो दण्डः ॥ ८ ॥

दण्डके भयसे, निन्दाके भयसे, अथवा रोग आदिके भयसे, दान देने वाले या लेनेवालेको चोरीका दण्ड दिया जावे ॥ ५ ॥ दूसरेको मारनेके लिये क्रोधसे दान देने या लेनेवालेको भी यही पूर्वोक्त दण्ड दिया जावे ॥ ६ ॥ किसी कार्यमें अभिमानके साथ राजासे अधिक यदि कोई व्यक्ति दान देवे, तो उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ७-८ ॥

प्रातिभाव्यं दण्डशुल्कशेषमाक्षिकं सौरिकं कामदानं च नाकामः पुत्रो दायादो वा रिक्थहरो दद्यात् ॥ ९ ॥ इति दत्तस्यानपाकर्म ॥ १० ॥

वृथा लिया हुआ ऋण, दण्ड (जुरमाना) शेष, शुल्कशेष, जुएमें हारा धन, सुरापानमें किये गये ऋण, तथा वेश्या आदिको दिये जाने वाले धन को, मृत पुरुष का कोई दाय भागी, या उस की सम्पत्ति को लेने वाला, अदा न करना चाहे, तो न करे। इस में उसे बाधित नहीं किया जा सकता ॥ ९ ॥ यहां तक देने की प्रतिज्ञा की हुई वस्तुके न देनेके सम्बन्ध में कहा गया ॥ १० ॥

अस्वामिविक्रयस्तु ॥ ११ ॥ नष्टापहृतमासाद्य स्वामी धर्मस्थेन ग्राहयेत् ॥ १२ ॥ देशकालातिपत्तौ वा स्वयं गृहीत्वोपहरेत् ॥१३॥ धर्मस्थश्च स्वामिनमनुयुञ्जीत कुतस्ते लब्धमिति ॥१४॥

जो पुरुष किसी वस्तुका स्वामी न होता हुआ उसे बेच दे, उसके दण्ड आदिका विधान अब करते हैं ॥ ११ ॥ खोये अथवा अपहरण किए हुए पदार्थको, मालिक यदि किसीके पास देखे, तो उस पुरुषको धर्मस्थसे कह कर पकड़वा देवे ॥ १२ ॥ यदि देश या काल इसमें बाधक हो, तो स्वयं पकड़कर धर्मस्थके पास ले जावे ॥ १३ ॥ धर्मस्थ उससे पूछे, कि तुमने यह माल कहांसे पाया ? ॥ १४ ॥

स चेदाचारक्रमं दर्शयेत न विक्रेतारं तस्य द्रव्यस्यातिसर्गेण मुच्येत ॥१५॥ विक्रेता चेद्दर्शयेत मूल्यं स्तेयदण्डं च ॥१६॥

यदि वह सब ठीक २ सिलसिलेवार बता दे, कि वह वस्तु मुझे इस प्रकार मिली है, तथा बेचनेवालेको न कहे (अर्थात् यह चीज़ मुझे किसीने बेची नहीं है, स्वयं ही मुझे कहीं पड़ी हुई, या अन्य किसी प्रकारसे मिल गई है,) और उस वस्तुको उसके असली मालिकको सौंप देवे, तो वह छोड़ दिया जावे ॥ १५ ॥ यदि वह किसी बेचनेवालेको बतलावे (अर्थात् यह कहे कि मैंने यह वस्तु फलानेसे खरीदी है) तो उस विक्रेतासे उस वस्तुका मूल्य खरीदनेवालेको दिला दिया जावे, वह वस्तु उसके असली मालिकको दे दी जावे। और विक्रेताको चोरीका दण्ड दिया जाय ॥ १६ ॥

स चेदपसारमधिगच्छेदपसरेदापसारक्षयादिति क्षये मूल्यं स्तेयदण्डं च दद्यात् ॥ १७ ॥ नाष्टिकं च स्वकरणं कृत्वा नष्टप्रत्याहृतं लभेत ॥ १८ ॥

यदि वह भी किसी दूसरे विक्रेताका नाम लेवे, तो छुटकारा पा जावे। इसी प्रकार होते २ जो सबका जड़में विक्रेता निकले (अर्थात् सबसे पहिला

विक्रेता, जिसने पहिले पहिल उस चीज़को बेचा था) उसीसे उसका मूल्य और जुरमाना वसूल किया जावे ॥ १७ ॥ खोई हुई वस्तुको, उसका असली मालिक, वस्तु विषयक लेख और साक्षी दिखलाकरही प्राप्त कर सकता है ॥१८॥

स्वकरणाभावे पञ्चबन्धो दण्डः ॥ १९ ॥ तच्च द्रव्यं राजधर्म्यं स्यात् ॥ २० ॥ नष्टापहृतमनिवेद्योत्कर्षतः स्वामिनः पूर्वः साहस दण्डः ॥ २१ ॥

यदि वह पुरुष उस वस्तुपर अपना स्वत्व सिद्ध न कर सके, तो उसके मूल्यका पांचवां हिस्सा जुरमाना भरे ॥ १९ ॥ और उस वस्तुपर राजाकाही धर्मपूर्वक अधिकार होवे ॥ २० ॥ खोई हुई वस्तुको किसीके पास देखकर, उसका मालिक यदि धर्मस्थको न कहे, अपने आपही छीनने लग जावे, तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ २१ ॥

शुल्कस्थाने नष्टापहृतोत्पन्नं तिष्ठेत् ॥ २२ ॥ त्रिपक्षादूर्ध्व-मनभिसारं राजा हरेत्स्वामी वा ॥ २३ ॥

किसीका खोया हुआ या अपहरण किया हुआ माल चुंगीघर (शुल्क-स्थान) में रख दिया जावे ॥ २२ ॥ डेढ़ महीने तक यदि उसका मालिक न मिले, तो वह सरकारी माल समझा जावे । अथवा साक्षी आदिके द्वारा अपना स्वत्व उसपर सिद्ध करके मालिक उस वस्तुको लेलेवे ॥ २३ ॥

स्वकरणेन पञ्चपणिकं द्विपदरूपस्य निष्क्रयं दद्यात् ॥२४॥ चतुष्पणिकमेकखुरस्य द्विपणिकं गोमहिषस्य पादिकं क्षुद्रपशूनां रत्नसारफल्गुकुप्यानां पञ्चकं शतं दद्यात् ॥ २५ ॥

दास दासी आदिको छुड़ानेके लिए (प्रति व्यक्तिके हिसाबसे) ५ पण ॥ २४ ॥ एक खुरवाले घोड़े गधे आदिके लिए ४ पण, गाय भैंस आदिके लिए २ पण, और छोटे २ पशुओंके लिए १/४ पण, तथा रत्न, बहुमूल्य, टिकाऊ चीज़ों रस हीन वस्तुओं (फल्गु) और तांबे आदि धातुओंके लिए प्रतिशतक ५ पण निष्क्रय, (छुड़ानेका सरकारी टैक्स) छुड़ानेवाला देवे ॥ २५ ॥

परचक्राटवीभृतं तु प्रत्यानीय राजा यथास्वं प्रयच्छेत् ॥२६॥ चोरहृतमविद्यमानं स्वद्रव्येभ्यः प्रयच्छेत् ॥ २७ ॥ प्रत्यानेतुम-शक्तो वा स्वयंग्राहेणाहृतं प्रत्यानीय तन्निष्क्रयं वा प्रयच्छेत् ॥२८॥

दूसरे राजा या जंगलियोंसे अपहरण किए हुए, दास, दासी या चौपा-योंको, राजा स्वयं लाकर, जिनके हों उनको देदेवे ॥ २६ ॥ चोरोंसे अपहरण

की हुई वस्तु यदि लुप्त हो जाय, अथवा राजा भी उसे लौटाकर न ला सके, तो अपनी चीज़ोंमेंसे उसी जातिकी चीज़, अपहृत वस्तुके स्वामीको देवे ॥२७॥ चोरोंको पकड़नेके लिए नियुक्त हुए पुरुषोंके द्वारा लाई हुई चीज़ उसके मालिक को देदेवे। यदि ऐसा सम्भव न हो तो खोई हुई वस्तुका मूल्य उसको देदिया जावे ॥ २८ ॥

परविषयाद्वा विक्रमेणानीतं यथाप्रदिष्टं राज्ञा भुञ्जीतान्यत्रार्यप्राणेभ्यो देवब्राह्मणतपस्विद्रव्येभ्यश्च ॥२९॥ इत्यस्वामिविक्रयः ॥ ३० ॥

दूसरे देशसे जीतमें लाये हुए धनको, राजाकी आज्ञानुसार भोग करे, परन्तु यदि वह धन आर्यों, देवताओं, ब्राह्मणों और तपस्वियोंका हो, तो उसे भोग न करे, प्रत्युत उन्हें वापिस लौटा दे ॥ २९ ॥ यहांतक अस्वामिविक्रयके सम्बन्धमें कहा गया ॥ ३० ॥

स्वस्वामिसंबन्धस्तु ॥ ३१ ॥ भोगानुवृत्तिरुच्छिन्नदेशानां यथास्वद्रव्याणाम् ॥ ३२ ॥ यत्स्वं द्रव्यमन्यैर्भुज्यमानं दशवर्षाण्युपेक्षेत हीयेतास्य ॥ ३३ ॥

अब स्वस्वामिसम्बन्ध (सम्पत्तिपर पुरुषका अधिकार, धन और मालिकका सम्बन्ध) का निरूपण करते हैं ॥ ३१ ॥ जिस पुरुषकी सम्पत्तिके लिए साक्षी नहीं मिलते, परन्तु वह लगातार उसको भोगता चला आ रहा है तो यही बात उस सम्पत्तिपर उसका स्वत्व बतलानेके लिए पर्याप्त प्रमाण है ॥ ३२ ॥ जो पुरुष, दूसरोंसे भोगी जाती हुई अपनी सम्पत्तिकी दस वर्ष तक परवाह नहीं करता, तो फिर उस सम्पत्तिपर उसका अधिकार नहीं रहता ॥३३॥

अन्यत्र बालवृद्धव्याधितव्यसनिप्रोषितदेशत्यागराज्यविभ्रमेभ्यः ॥ ३४ ॥ विंशतिवर्षोपेक्षितमनवसितं वास्तु नानुयुञ्जीत ॥ ३५ ॥

परन्तु यदि वह सम्पत्ति बालक, बूढ़े, बीमार, आपद्ग्रस्त, परदेशको गये हुए, देशत्यागी, और राजकीय कार्यके कारण बाहर घूमने वाले पुरुषोंकी हो, तो उनका दस वर्षके बाद भी बराबर उसपर अधिकार बना रहता है ॥ ३४ ॥ इसी प्रकार जो पुरुष, मालिकसे बिल्कुल बाधा न डाले जाने पर, २० वर्ष तक लगातार किसी मकानमें रहे, तो उसपर, उसी पुरुषका अधिकार हो जाता है ॥ ३५ ॥

ज्ञातयः श्रोत्रियाः पाषण्डा वा राज्ञामसंनिधौ परवास्तुषु विवसन्तो न भोगेन हरेयुः ॥ ३६ ॥ उपनिधिमाधिं निधिं निक्षेपं स्त्रियं सीमानं राजश्रोत्रियद्रव्याणि च ॥ ३७ ॥

ज्ञाति (भाई बन्धु सम्बन्धी लोग) श्रोत्रिय, और पाषण्ड व्यक्ति, राजाओंके समीप न होनेपर, दूसरोंके मकानोंमें रहते हुए भी उसपर अपना अधिकार नहीं जमा सकते ॥ ३६ ॥ उपनिधि, आधि, निधि (खजाना) निक्षेप, स्त्री, सीमा तथा राजा या श्रोत्रियकी वस्तुओं पर कोई व्यक्ति अधिकार नहीं करसकता ॥ ३७ ॥

आश्रमिणः पाषण्डा वा महत्यवकाशे परस्परमबाधमाना वसेयुः ॥ ३८ ॥ अल्पां बाधां सहेरन् ॥ ३९ ॥ पूर्वागतो वा वासपर्यायं दद्यात् ॥ ४० ॥

आश्रमी और पाषण्ड (वेद बाह्य, लाल कपड़े पहिनने, व्रत उपवास आदि करने वाले) खुली जगहमें एक दूसरेको किसी प्रकारकी हानि न पहुंचाते हुए निवास करें ॥ ३८ ॥ यदि थोड़ी सी हानि किसीको एक दूसरेसे पहुंचे, तो उसे सहन करले ॥ ३९ ॥ प्रथम आया हुआ व्यक्ति, पीछे आने वालेको, निवास के लिये स्थान देदेवे ॥ ४० ॥

अप्रदाता निरस्येत ॥ ४१ ॥ वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणामाचार्यशिष्यधर्मभ्रातृसमानतीर्थ्या रिक्थभाजः ॥ ४२ ॥ क्रमेण विवादपदेषु चैषां यावन्तः पणाः दण्डास्तावती रात्रीः क्षपणाभिषेकाग्निकार्यमहाकच्छवर्धनानि राज्ञश्चरेयुः ॥ ४३ ॥

यदि न देवे, तो उसे बाहर निकाल दिया जाय ॥ ४१ ॥ वानप्रस्थी, सन्यासी और ब्रह्मचारियोंकी सम्पत्तिके भागी, क्रमसे उनके आचार्य, शिष्य, धर्म भाई या सहाध्यायी होते हैं। (पहिलेके न होने पर दूसरा अधिकारी होता है) ॥ ४२ ॥ यदि इन लोगोंका परस्पर कोई झगड़ा होजाय, तो उसमें जितने पण किसीके ऊपर जुरमाना हो, उतनी ही रात्रि पर्यन्त वह राजाके कल्याणके लिये, उपवास, स्नान, अग्निहोत्र, तथा कठिन चान्द्रायण आदि व्रतोंका अनुष्ठान करे ॥ ४३ ॥

अहिरण्यसुवर्णाः पाषण्डाः साधवस्ते यथास्वमुपवासव्रतैराराधयेयुः ॥ ४४ ॥ अन्यत्र पारुष्यस्तेयसाहससंग्रहणेभ्यः ॥ ४५ ॥ तेषु यथोक्ता दण्डाः कार्याः ॥ ४६ ॥

हिरण्य सुवर्ण आदि न रखने वाले पाषण्ड धर्मशील व्यक्ति भी दण्ड होनेपर, अपने उचित उपवास व्रत आदिके द्वारा राजाके कल्याणकी प्रार्थना करें ॥ ४४ ॥ परन्तु पारुष्य, (मारपीट आदि) चोरी, डाका और व्यभिचारके मामलोंमें इतने मात्रसे छुटकारा नहीं होसकता ॥ ४५ ॥ इनमें पूर्वोक्त सब दण्ड नियमानुसार होने चाहियें ॥ ४६ ॥

प्रव्रज्यासु वृथाचाराद्राजा दण्डेन वारयेत् ।
धर्मो ह्यधर्मोपहतः शास्तारं हन्त्युपेक्षितः ॥ ४७ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे अस्वामिविक्रयः स्वस्वामिसम्बन्धः
षोडशो ऽध्यायः ॥१६॥ आदितस्त्रिसप्ततिः ॥७३॥

संन्यासियोंमें भी होनेवाले मिथ्या आचारोंको, राजा दण्ड द्वारा हटावे । क्योंकि अधर्मसे दबाया हुआ, तथा उपेक्षा किया हुआ धर्म, शासन करने वाले राजाको नष्ट करदेता है ॥ ४७ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें सोलहवां अध्याय समाप्त ।

सत्रहवां अध्याय ।

७१ प्रकरण ।

साहस ।

साहसमन्वयवत्प्रसभकर्म ॥ १ ॥ निरन्वये स्तेयमपव्ययने च ॥ २ ॥ रत्नसारफल्गुकुप्यानां साहसे मूल्यसमो दण्ड इति मानवाः ॥ ३ ॥

खुले तौरपर बलात्कार धन आदिका अपहरण करना साहस (डाका मारधाड़ आदि) कहाता है ॥ १ ॥ छिपकर किसी वस्तुका अपहरण करना, या लेकर फिर मुकर जाना, चोरी कहा जाता है ॥ २ ॥ रत्न, बहुमूल्य टिकाऊ चीजें, नीरस अन्य वस्तु तथा तांबे आदि पदार्थोंपर डाका डालने वालेको, उनकी कीमतके बराबर दण्ड दिया जाय, ऐसा मनुको मानने वाले आचार्योंका मत है ॥ ३ ॥

मूल्यद्विगुण इत्यौशनसाः ॥ ४ ॥ यथापराधमिति कौटल्यः ॥ ५ ॥ पुष्पफलशाकमूलकन्दपक्वान्नचर्मवेणुमृद्भाण्डादीनां क्षुद्रकद्रव्याणां द्वादशपणावरश्चतुर्विंशतिपणपरो दण्डः ॥ ६ ॥

औशनस सम्प्रदायके विद्वान् कहते हैं, कि मूल्यसे दुगना दण्ड दिया जाय ॥ ४ ॥ परन्तु कौटल्यका मत है कि अपराधके अनुसार ही दण्ड देना चाहिये ॥ ५ ॥ फूल, फल, शाक, मूल, कन्द, पका हुआ अन्न, चमड़ा, बांस, मट्टीके बर्त्तन आदि छोटी २ चीजों पर डाका डालने वालेको १२ पणसे लगाकर २४ पण तक दण्ड देना चाहिये ॥ ६ ॥

कालायसकाष्ठरज्जुद्रव्यक्षुद्रपशुपटादीनां स्थूलकद्रव्याणां चतुर्विंशतिपणावरोऽष्टचत्वारिंशत्पणपरो दण्डः ॥ ७ ॥ ताम्रवृत्तकंसकाचदन्तभाण्डादीनां स्थूलद्रव्याणामष्टचत्वारिंशत्पणावरं षण्णवतिपरं पूर्वः साहसदण्डः ॥ ८ ॥

इसी प्रकार लोहा, लकड़ी, रस्सी आदि चीजों, छोटे २ पशु, तथा वस्त्र आदि, स्थूल द्रव्योंके डाके आदिमें २४ से लगाकर ४८ पण तक ॥ ७ ॥ और तांबा, पीतल, कांसा, कांच तथा हाथी दांत, आदि चीजोंके बने हुए बर्तनों तथा अन्य वस्तुओंपर डाका आदि डालने वालेको ४८ पणसे लगाकर ९६ पण तक दण्ड दिया जावे, इसीको प्रथम साहस दण्ड कहते हैं ॥ ८ ॥

महापशुमनुष्यक्षेत्रगृहहिरण्यसुवर्णसूक्ष्मवस्त्रादीनां स्थूलकद्रव्याणां द्विशतावरः पञ्चशतपरः मध्यमः साहसदण्डः ॥ ९ ॥ स्त्रियं पुरुषं वाभिपद्य बध्नतो बन्धयतो बन्धं वा मोक्षयतः पञ्चशतावरः सहस्रपर उत्तमः साहसदण्ड इत्याचार्याः ॥ १० ॥

बड़े २ पशु, मनुष्य, खेत, मकान, हिरण्य, सुवर्ण, तथा महान वस्त्र आदि बड़े द्रव्योंपर, २०० पणसे लगाकर ५०० पण तक दण्ड दिया जावे। इसीका नाम मध्यमसाहस दण्ड है ॥ ९ ॥ स्त्री या पुरुषको बलात्कार बांधने या बंधवाने वाले तथा (राजाज्ञाके अनुसार) बंधे हुए पुरुषको मुक्त करदेने वाले पर ५०० पणसे लगाकर १००० पण तक जुरमाना किया जाय। यही उत्तमसाहसदण्ड कहाता है, ऐसा आचार्योंका मत है ॥ १० ॥

यः साहसं प्रतिपत्तेति कारयति स द्विगुणं दद्यात् ॥ ११ ॥ यावद्धिरण्यमुपयोक्ष्यते तावद्दास्यामीति स चतुर्गुणं दण्डं दद्यात् ॥ १२ ॥

जो जानबूझकर अथवा कहकर साहस कर्म कराता है उसे दुगना दण्ड दिया जावे ॥ ११ ॥ तथा जो पुरुष 'जितना धन व्यय होगा लगाऊंगा (तुम

बिलकुल पर्वाह मत करो)' ऐसा कहकर साहस कर्म कराता है, उसे चौगुना दण्ड दिया जावे ॥ १२ ॥

य एतावद्धिरण्यं दास्यामीति प्रमाणमुद्दिश्य कारयति स यथोक्तं हिरण्यं दण्डं च दद्यादिति बार्हस्पत्याः ॥ १३ ॥ स चेत्कोपं मदं मोहं वापदिशेद्यथोक्तवद्दण्डमेनं कुर्यादिति कौटल्यः ॥ १४ ॥

बृहस्पतिके अनुयायी आचार्योंका मत है कि—जो पुरुष 'इतना सुवर्ण दूंगा' इस प्रकार धनकी तादाद को कहकर किसीसे साहस कर्म कराता है, वह उतना ही सुवर्ण देवे, और दण्ड अतिरिक्त देवे ॥ १३ ॥ परन्तु कौटल्यका मत है कि इसप्रकार साहस करानेवाले पुरुषको, यदि वह इसका कारण, अपने क्रोध, तबियतके ठीक ठिकाने पर न रहने और अज्ञानको बतावे तो वही दण्ड दिया जाय जो साहस आदि कर्म करने वालेके लिये बताया गया है ॥ १४ ॥

दण्डकर्मसु सर्वेषु रूपमष्टपणं शतम् ।
शतात्परं तु व्याजीं च विद्यात्पञ्चपणं शतम् ॥ १५ ॥
प्रजानां दोषबाहुल्याद्राज्ञां वा भावदोषतः ।
रूपव्याज्यावधर्मिष्ठ धर्म्यानुप्रकृतिः स्मृता ॥ १६ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये अधिकरणे साहसं सप्तदशो ऽध्यायः ॥१७॥

आदितश्चतुःसप्ततिः ॥७४॥

सब दण्डोंमें प्रति सैकड़ा ८ पण रूप (इस नामका सरकारी टैक्स) और दण्डकी रकम १०० से कम होनेपर, (उसपर प्रति सैकड़ा ५ पण व्याजी (यह भी सरकारी टैक्स है) समझनी चाहिये ॥ १५ ॥ प्रजामें दोषोंकी अधिकता होनेसे अथवा राजाके दिलमें बेईमानी आजानेसे रूप और व्याजी धर्मानुकूल नहीं समझे जाते। इसलिये शास्त्रोंमें विधान किये गये दण्ड ही धर्मानुकूल माने गये हैं ॥ १६ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें सत्रहवां अध्याय समाप्त ।

अठारहवां अध्याय ।

७२ प्रकरण ।

वाक्पारुष्य ।

वाक्पारुष्यमुपवादः कुत्सनमभिभर्त्सनमिति ॥ १ ॥ शरीर-

प्रकृतिश्रुतवृत्तिजनपदानां शरीरोपवादेन काणखञ्जादिभिः सत्ये त्रिपणो दण्डः ॥ २ ॥

गालीगलौच, निन्दा और घुड़कना यह वाक्पारुष्य कहाता है ॥ १ ॥ शरीर, प्रकृति (ब्राह्मण क्षत्रियादिरूप) श्रुत (जानकारी) वृत्ति (जीविका निर्वाह का उपाय) और देश ये पांच वाक्पारुष्यके विषय हैं, इनमेंसे शरीरको लेकर यदि कोई पुरुष, काणे, गंजे, लंगड़े, लूलेको काणा आदि कहे, तो उसे ३ पण दण्ड दिया जाय ॥ २ ॥

मिथ्योपवादे षट्पणो दण्डः ॥ ३ ॥ शोभनाक्षिमन्त इति काणखञ्जादीनां स्तुतिनिन्दायां द्वादशपणो दण्डः ॥ ४ ॥ कुष्ठोन्मादक्लैब्यादिभिः कुत्सायां च ॥ ५ ॥

यदि झूठी निन्दा करे तो उसे ६ पण दण्ड दिया जाय ॥ ३ ॥ यदि कोई पुरुष, काणे आदिकी व्याजस्तुतिसे निन्दा करे कि तुम्हारी आंखें आदि बड़ी अच्छी हैं, तो उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४ ॥ और कोढी, उन्मत्त या नपुंसक आदि कहकर निन्दा करनेपर भी १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ५ ॥

सत्यामिथ्यास्तुतिनिन्दासु द्वादशपणोत्तरा दण्डास्तुल्येषु ॥ ६ ॥ विशिष्टेषु द्विगुणः ॥ ७ ॥ हीनेष्वर्धदण्डः ॥ ८ ॥ परस्त्रीषु द्विगुणः ॥ ९ ॥ प्रमादमदमोहादिभिरर्धदण्डाः ॥ १० ॥

यदि कोई व्यक्ति अपने बराबरवालोंकी, सच्ची झूठी, या व्याजस्तुतिके द्वारा निन्दा करे, तो उसे यथाक्रम १२, २४ और ३६ पण दण्ड दिया जाय ॥ ६ ॥ यदि अपनेसे बड़ोंके साथ ऐसा करे तो दुगना दण्ड दिया जाय ॥ ७ ॥ अपनेसे छोटोंके साथ करनेपर आधा दण्ड ॥ ८ ॥ दूसरोंकी स्त्रियोंके साथ ऐसा व्यवहार करनेपर भी दण्ड दुगनाही दिया जावे ॥ ९ ॥ यदि इस प्रकार निन्दा करनेका कारण प्रमाद, मद या मोह आदि हो, तो आधा ही दण्ड दिया जाय ॥ १० ॥

कुष्ठोन्मादयोश्चिकित्सकाः संनिकृष्टाः पुमांसश्च प्रमाणम् ॥ ११ ॥ क्लीबभावे स्त्रियो मूत्रफेनमप्सु विष्ठानिमज्जनं च ॥ १२ ॥

किसीके कोढी या उन्मत्त होनेमें, उसकी चिकित्सा करनेवाले और समीप रहनेवाले पुरुषही प्रमाण हैं ॥ ११ ॥ तथा नपुंसक होनेमें स्त्रियां, पेशाबमें झाग न उठना, और पानीमें विष्ठाका डूबजाना प्रमाण है ॥ १२ ॥

प्रकृत्युपवादे ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रान्तावसायिनामपरेण

पूर्वस्य त्रिपणोत्तराः दण्डाः ॥ १३ ॥ पूर्वेणापरस्य द्विपणाधराः ॥ १४ ॥

ब्राह्मण क्षत्रियादि प्रकृतिको लेकर जो एक दूसरेकी निन्दा करे, उसके लिये निम्नलिखित दण्ड हैं:—यदि चाण्डाल शूद्रकी निन्दा करे तो ३ पण, वैश्यकी करे तो ६ पण, क्षत्रियकी करे तो ९ पण, और ब्राह्मणकी करे तो १२ पण दण्ड दिया जाय। इसी प्रकार ब्राह्मण यदि चाण्डालकी निन्दा करे तो २ पण, शूद्रकी करे तो ४ पण, वैश्यकी करे तो ६ पण, और क्षत्रियकी करे तो ८ पण उसपर दण्ड किया जाय ॥ १३-१४ ॥

कुब्राह्मणादिभिश्च कुत्सायाम् ॥ १५ ॥ तेन श्रुतोपवादो वाग्जीवनानां कारुकुशीलवानां वृत्त्युपवादः प्राज्जूणकगान्धारादीनां च जनपदोपवादा व्याख्याताः ॥ १६ ॥

इसी प्रकार वाग्जीवी पुरुषोंकी एक दूसरेकी पढ़ाई लिखाई या जानकारीकी निन्दा करनेपर, शिल्पी और गवैयों आदिकी एक दूसरेके जीवन निर्वाह के उपायोंकी निन्दा करनेपर, तथा भिन्न २ देशोंके रहनेवालोंको, एक दूसरेके देशको लेकर निन्दा करनेपर, उपर्युक्त दण्ड ही दिया जावे ॥ १५-१६ ॥

यः परमेवं त्वां करिष्यामीति करणेनाभिभर्त्सयेदकरणे यस्तस्य करणे दण्डस्ततोऽर्धदण्डं दद्यात् ॥ १७ ॥ अशक्तः कोपं मदं मोहं वापदिशेद्द्वादशपणं दण्डं दद्यात् ॥ १८ ॥

जो पुरुष दूसरेको 'मैं तुझको इस प्रकार बनाऊंगा' अर्थात् तेरेहाथ पैर तोडूंगा, 'तुझे खूब ठोकूंगा' इस प्रकार केवल धमकावे, पर कुछ करे नहीं, उसे उससे आधा दण्ड मिलना चाहिये, जोकि इस प्रकार कहकर कर भी डाले, (दण्ड पारुष्यमें यह दण्ड कहा जायगा) ॥१७॥ यदि हाथपैर आदि तोड़नेमें असमर्थ कोई पुरुष, इस तरहके वर्त्तावका कारण क्रोध, उन्माद या अज्ञान बतावे, तो उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ १८ ॥

जातवैराशयः शक्तश्चापकर्तुं यावज्जीविकावस्थं दद्यात् ॥ १९ ॥

इस बातके मालूम हो जानेपर कि किसीने शत्रुताके कारण दूसरेको हाथपैर तोड़नेकी धमकी दी है, और वह ऐसा करनेमें समर्थ भी है, तो उसे अपनी आयके अनुसार दण्ड देना चाहिये। (अर्थात् समर्थ पुरुषका क्रोध आदिका बहाना न सुना जाय, प्रत्युत उसकी हैसियतके मुताबिक उससे पूरा दण्ड वसूल किया जाय) ॥ १९ ॥

स्वदेशग्रामयोः पूर्वं मध्यमं जातिसंघयोः ।
आक्रोशाद्देवचैत्यानामुत्तमं दण्डमर्हति ॥ २० ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे वाक्पारुष्यं अष्टादशो ऽध्यायः ॥१८॥
आदितः पञ्चसप्ततिः ॥७५॥

यदि कोई पुरुष अपने देश व गांवके विषयमें निन्दा करे, तो उसे प्रथम साहस दण्ड, अपनी जाति तथा समाजकी निन्दा करनेवालेको मध्यम साहस दण्ड और देव-मन्दिरोंकी निन्दा करने वालोंको उत्तम साहस दण्ड दिया जाय ॥ २० ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें अठारहवां अध्याय समाप्त ।

उन्नीसवां अध्याय ।

७३ प्रकरण ।

दण्ड पारुष्य ।

दण्डपारुष्यं स्पर्शनमवगूर्णं प्रहतमिति ॥ १ ॥ नाभेरधः कायं हस्तपङ्कभस्मपांसुभिरिति स्पृशतस्त्रिपणो दण्डः ॥ २ ॥ तैरेवामेध्यैः पादष्ठीवनिकाभ्यां च षट्पणः छर्दिमूत्रपुरीषादिभिर्द्वादशपणः ॥३॥

किसीको छूना, किसीपर डण्डा या हाथ आदिका उठाना, और चोट करदेना ये तीनों दण्ड पारुष्य कहाते हैं ॥१॥ नाभिके नीचे शरीर भागपर हाथ, कीचड़, राख और धूल डालनेवालेको ३ पण दण्ड दिया जाय ॥२॥ यदि अपवित्र हाथ आदिसे स्पर्श किया जाय, अथवा पैरसे छूदिया जाय, या किसीपर थूक दिया जाय, तो ६ पण दण्ड देना चाहिये । वमन, मूत्र और मल आदि छुआ देनेवालेको १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ३ ॥

नाभेरुपरि द्विगुणाः ॥ ४ ॥ शिरसि चतुर्गुणाः समेषु ॥ ५ ॥ विशिष्टेषु द्विगुणाः ॥ ६ ॥ हीनेष्वर्धदण्डाः ॥ ७ ॥ परस्त्रीषु द्विगुणाः ॥ ८ ॥ प्रमादमदमोहादिभिरर्धदण्डाः ॥ ९ ॥

येही बातें यदि नाभिसे ऊपरके शरीर भागपर की जावें, तो दुगना दण्ड होना चाहिये ॥ ४ ॥ और सिरपर चौगुना । ये दण्ड बराबर वालोंके साथ ऐसा व्यवहार करनेपर बतलाये गये हैं ॥ ५ ॥ यदि अपनेसे बड़े पुरुषोंके साथ यह व्यवहार किया जाय, तो दुगुना दण्ड देना चाहिये ॥६॥ छोटोंके साथ किये जानेपर आधा दण्ड ॥७॥ और दूसरोंकी स्त्रियोंके साथ किये जानेपर दुगना दण्ड

होना चाहिये ॥ ८ ॥ यदि किसी पुरुषसे यह कार्य प्रमाद, उन्माद या अज्ञानवश हुआ हो, तो उसे आधा दण्ड दिया जावे ॥ ९ ॥

पादवस्त्रहस्तकेशावलम्बनेषु षट्पणोत्तरा दण्डाः ॥ १० ॥ पीडनावेष्टनाञ्जनप्रकर्षणाध्यासनेषु पूर्वः साहसदण्डः ॥ ११ ॥ पातयित्वापक्रमतोऽर्धदण्डाः ॥ १२ ॥ शूद्रो येनाङ्गेन ब्राह्मणमभिहन्यात्तदस्य च्छेदयेत् ॥ १३ ॥

पैर, वस्त्र, हाथ और केशोंके पकड़नेपर यथाक्रम ६, १२, १८ और २४ पण दण्ड होना चाहिये ॥ १० ॥ किसीको पकड़कर मसलनेपर बाहोंमें लपेटकर रगड़नेपर, मुंह आदि काला करनेपर, जमीनपर घसीटनेपर और नीचे डालकर ऊपर चढ़ बैठनेपर, प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ११ ॥ भूमिपर गिराकर भाग जानेवालेको प्रथम साहस दण्डका आधा दण्ड दिया जावे ॥ १२ ॥ शूद्र जिस अङ्गसे ब्राह्मणको मारे, उसका वही अङ्ग काट दिया जाय ॥ १३ ॥

अवगूर्णे निष्क्रयः स्पर्शेऽर्धदण्डः ॥ १४ ॥ तेन चण्डालाशुचयो व्याख्याताः ॥ १५ ॥

यदि शूद्र, ब्राह्मणके किसी हाथ या पैर आदि अवयवको पकड़कर झटक दे, तो उससे उचित दण्ड वसूल किया जाय और केवल छू देनेपर उपर्युक्त दण्डका आधा वसूल किया जाय ॥ १४ ॥ इसी प्रकार चाण्डाल और अन्य नीच जातियोंके सम्बन्धमें नियम समझने चाहियें ॥ १५ ॥

हस्तेनावगूर्णे त्रिपणावरो द्वादशपणपरो दण्डः ॥ १६ ॥ पादेन द्विगुणः ॥ १७ ॥ दुःखोत्पादनेन द्रव्येण पूर्वः साहसदण्डः ॥ १८ ॥ प्राणाबाधिकेन मध्यमः ॥ १९ ॥

हाथसे धकेलने या झटकनेपर ३ पणसे लेकर १२ पणतक दण्ड होना चाहिये ॥ १६ ॥ पैरसे करनेपर दुगना ॥ १७ ॥ तथा किसी दुःखोत्पादक वस्तु (कांटा सुई आदि) के द्वारा करनेपर प्रथम साहस दण्ड ॥ १८ ॥ और प्राणोंको भयमें डालनेवाली वस्तुके द्वारा ऐसा करनेपर मध्यम साहस दण्ड होना चाहिये ॥ १९ ॥

काष्ठलोष्टपाषाणलोहदण्डरज्जुद्रव्याणामन्यतमेन दुःखमशोणितमुत्पादयतश्चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ २० ॥ शोणितोत्पादने द्विगुणः ॥ २१ ॥ अन्यत्र दुष्टशोणितात् ॥ २२ ॥

लकड़ी, ढेला, पत्थर, लोहेकी छड़, रस्सी आदि द्रव्योंमेंसे किसी एकसे मारनेपर, यदि खून न निकले, तो २४ पण दण्ड दिया जावे ॥ २० ॥ खून निकल आनेपर ४८ पण दण्ड दिया जाय ॥ २१ ॥ यदि वह खून कोढ़ या फोड़ा आदि होनेके कारण निकल आया हो, तो दुगना दण्ड न होना चाहिये ॥ २२ ॥

मृतकल्पमशोणितं घ्नतो हस्तपादपारंचिकं वा कुर्वतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ २३ ॥ पाणिपाददन्तभङ्गे कर्णनासाच्छेदने व्रणविदारणे च ॥ २४ ॥ अन्यत्र दुष्टव्रणेभ्यः ॥ २५ ॥

यदि बिनाही खून निकाले हुए किसीको मारते २ अधमरा कर दिया जाय, या उसके हाथपैरोंके जोड़ोंको तोड़ दिया जाय, तो मारनेवालेको प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ २३ ॥ हाथपैर या दांतोंके तोड़ देनेपर, कान या नाकके काट देनेपर और घावोंके फाड़ देनेपर भी प्रथम साहस दण्ड होना चाहिये। परन्तु वे घाव कोढ़ आदिके कारण हुए २ न हों ॥ २४-२५ ॥

सक्थिग्रीवाभञ्जने नेत्रभेदने वा वाक्यचेष्टाभोजनोपरोधेषु च मध्यमः साहसदण्डः समुत्थानव्ययश्च देशकालातिपत्तौ कण्टकशोधनाय नीयेत ॥ २६ ॥

गोडा वा गर्दन तोड़नेवाले, आंख फोड़नेवाले, बोलने घूमने फिरने, तथा खाने-पीनेके शारीरिक साधनोंको नष्ट करनेवाले पुरुषोंको मध्यम साहस दण्ड दिया जावे। तथा अपराधीही उस पुरुषके खाने-पीने दवादारू, तथा अन्य आवश्यक व्ययके लिये धन भी देवे, जबतक वह ठीक न हो जाय। यदि अपराधीको इस प्रकार दण्ड देनेमें देशकाल बाधक हो, तो उसे कण्टकशोधन (कण्टक-शोधन अधिकरणमें बतलाये हुए दण्ड विधान) के लिये ले जाया जावे। (गणपतिशास्त्रीने 'विपत्तौ कण्टकशोधनाय नीयेत' केवल इतना सूत्र मानकर विपत्तिका अर्थ मरण किया है, अर्थात् उस पीटे हुए व्यक्तिके मर जानेपर, अपराधीको कण्टक-शोधनके लिये लेजाया जावे) ॥ २६ ॥

महाजनस्यैकं घ्नतो प्रत्येकं द्विगुणो दण्डः ॥ २७ ॥ पर्युषितः कलहे ऽनुप्रवेशो वा नाभियोज्य इत्याचार्याः ॥ २८ ॥ नास्त्यपकारिणो मोक्ष इति कौटल्यः ॥ २९ ॥

यदि बहुतसे आदमी मिलकर एकको मारें, तो प्रत्येकको दुगना दण्ड दिया जावे। अर्थात् उससे दुगना, जो अकेला आदमी एकको मारनेपर पाता

है ॥ २७ ॥ बहुत पुराने झगड़े और चोरियोंपर मुकदमा न चलाया जाय, ऐसा आचार्योंका मत है ॥ २८ ॥ परन्तु कौटल्य कहता है कि अपकारीको कभी न छोड़ना चाहिये ॥ २९ ॥

कलहे पूर्वागतो जयत्यक्षममाणो हि प्रधावतीत्याचार्याः ॥३०॥ नेति कौटल्यः ॥ ३१ ॥ पूर्वं पश्चाद्वाभिगतस्य साक्षिणः प्रमाणम् ॥ ३२ ॥

आचार्योंका कहना है कि झगड़ा (फौजदारी) होनेपर जो पहिलेही अदालतमें आ जाता है, उसकी जीत समझनी चाहिये, क्योंकि वह दूसरेसे दुःख दिये जानेपर उसे सहन न करता हुआ, धर्मस्थसे कहनेके लिये पहिलेही दौड़ा २ आता है ॥ ३० ॥ परन्तु कौटल्य ऐसा नहीं मानता ॥ ३१ ॥ वह कहता है कि चाहे कोई अदालतमें पहिले आवे या पीछे, विवादका निर्णय साक्षियोंके कथनानुसारही होना चाहिये ॥ ३२ ॥

असाक्षिके घातः कलहोपलिङ्गनं वा ॥ ३३ ॥ घाताभियोगमप्रतिब्रुवतस्तदहरेव पश्चात्कारः ॥ ३४ ॥ कलहे द्रव्यमपहरतो दशपणो दण्डः ॥ ३५ ॥

साक्षियोंके न होनेपर चोट आदिसे, अथवा चोट आदिके भी मालूम न होनेपर, अन्य लक्षणोंसे कलहका स्वरूप जानकर निर्णय किया जावे ॥३३॥ फौजदारीके मामलोंमें यदि प्रतिवादी उसी दिन जवाब न देदेवे तो वह हारा हुआ समझा जाय ॥ ३४ ॥ दो आदमियोंके आपसमें झगड़ते हुए यदि उनकी वस्तुओंको कोई अन्य पुरुष उठाकर लेजाय, तो उसे १० पण दण्ड देना चाहिये ॥ ३५ ॥

क्षुद्रकद्रव्यहिंसायां तच्च तावच्च दण्डः ॥ ३६ ॥ स्थूलकद्रव्यहिंसायां तच्च द्विगुणश्च दण्डः ॥ ३७ ॥

यदि आपसके झगडेमें कोई किसीकी छोटी २ वस्तुओंको नष्ट करदे तो वह उनका मूल्य मालिकको देवे और उतनाही दण्ड राजकोशमें जमा करे ॥३६॥ यदि झगड़ेमें बड़ी २ वस्तुयें नष्ट होजायं, तो नष्ट करनेवाला, उनका मूल्य मालिकको और दुगना दण्ड सरकारको देवे ॥ ३७ ॥

वस्त्राभरणहिरण्यसुवर्णभाण्डहिंसायां तच्च पूर्वश्च साहसदण्डः ॥ ३८ ॥ परकुड्यमभिघातेन क्षोभयतस्त्रिपणो दण्डः ॥ ३९ ॥

यदि कोई वस्त्रों, आभूषणों, हिरण्य और सोनेके बर्त्तनोंको नष्ट करे,

तो वह मालिकको उनका पूरा मूल्य देवे और उसे नियमानुसार प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ३८ ॥ दूसरेकी दीवारको धक्के या चोटसे हिलानेवाले पुरुषको ३ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३९ ।

छेदनभेदने षट्पणः प्रतीकारश्च ॥ ४० ॥ दुःखोत्पादनं द्रव्यमस्य वेश्मनि प्रक्षिपतो द्वादशपणो दण्डः ॥ ४१ ॥ प्राणाबाधिकं पूर्वः साहसदण्डः ॥ ४२ ॥

दीवारके तोड़फोड़ देनेपर ६ पण दण्ड और नुक्सानका एवज़ लिया जाय ॥ ४० ॥ यदि किसीके घरमें चोट पहुँचानेवाली या अन्य किसी प्रकारका दुःख देनेवाली वस्तुको कोई फेंके, तो उसको १२ पण दण्ड दिया जाय ॥४१॥ यदि कोई ऐसी वस्तु फेंके, जिससे प्राणोंका भी भय हो, तो फेंकनेवालेको प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ४२ ॥

क्षुद्रपशूनां काष्ठादिभिर्दुःखोत्पादने पणो द्विपणो वा दण्डः ॥ ४३ ॥ शोणितोत्पादने द्विगुणः ॥ ४४ ॥ महापशूनामेतेष्वेव स्थानेषु द्विगुणो दण्डः समुत्थानव्ययश्च ॥ ४५ ॥

छोटे २ जानवरोंको लकड़ी आदिसे मारनेपर १ या २ पण दण्ड दिया जावे ॥ ४३ ॥ यदि जानवरके खून निकल आवे तो दुगना दण्ड दिया जावे ॥ ४४ ॥ गाय भैंस आदि बड़े २ पशुओंको इसी प्रकार तकलीफ़ देनेवाले पुरुषपर दुगना जुरमाना किया जाय, और वह अपराधीही उसकी दवादारूका खर्च भी देवे ॥४५ ॥

पुरोपवनवनस्पतीनां पुष्पफलच्छायावतां प्ररोहच्छेदने षट्पणः ॥ ४६ ॥ क्षुद्रशाखाच्छेदने द्वादशपणः ॥ ४७ ॥ पीनशाखाच्छेदने चतुर्विंशतिपणः ॥ ४८ ॥ स्कन्धवधे पूर्वः साहसदण्डः ॥ ४९ ॥ समुच्छित्तौ मध्यमः ॥ ५० ॥

नगरके उपवनों (बाग बगीचों) में लगे हुए, फल फूल तथा छायावाले वृक्षोंके पत्ते तोड़नेपर ६ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४६ ॥ छोटी २ शाखाओंके (टहनियोंके) तोड़नेपर १२ पण ॥ ४७ ॥ मोटी २ शाखाओंके काटनेपर २४ पण ॥ ४८ ॥ तनेके ठीक ऊपरके मोटे २ गुद्दोंके काटनेपर प्रथम साहस दण्ड ॥ ४९ ॥ और पेड़को जड़से काट डालनेपर मध्यम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५० ॥

पुष्पफलच्छायावद्गुल्मलतास्वर्धदण्डः ॥ ५१ ॥ पुण्यस्थान-तपोवनश्मशानद्रुमेषु च ॥ ५२ ॥

फल, फूल और छायावाली झाड़ियों तथा बेलोंको नष्ट करनेपर, उपर्युक्त दण्डका आधा दण्ड दिया जावे ॥ ५१ ॥ किन्हीं पवित्र स्थानों, तपोवनों, और श्मशानोंमें होनेवाले वृक्षोंको नष्ट करनेपर भी आधा दण्ड दिया जावे ॥ ५२ ॥

सीमवृक्षेषु चैत्येषु द्रुमेष्वालक्षितेषु च ।
त एव द्विगुणा दण्डाः कार्या राजवनेषु च ॥ ५३ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे दण्डपारुष्यमेकोनविंशो ऽध्यायः ॥१९॥
आदितः षट्सप्ततिः ॥७६॥

सीमाके वृक्षों, मन्दिरोंमें खड़े हुए वृक्षों, राजाकी ओरसे निशान किये हुए वृक्षों, तथा सरकारी वनोंमें होनेवाले वृक्षोंको नष्ट करनेपर दुगना दण्ड दिया जावे ॥ ५३ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें उन्नीसवां अध्याय समाप्त ।

बीसवां अध्याय ।

७४-७५ प्रकरण ।

द्यूतसमाह्वय और प्रकीर्णक ।

द्यूताध्यक्षो द्यूतमेकमुखं कारयेत् ॥ १ ॥ अन्यत्र दीव्यतो द्वादशपणो दण्डो गूढाजीविज्ञापनार्थम् ॥ २ ॥

द्यूताध्यक्ष, किसी एक नियत स्थानमें जूआ खेलनेका प्रबन्ध करे ॥१॥ निश्चित स्थानको छोड़कर अन्य किसी जगह जुआ खेलनेवालेको १२ दण्ड किया जाय । नियत स्थानपर जुआ खेलनेका प्रबन्ध इसलिये किया जाता है कि जिससे, लुकछिपकर जनताको धोखा देकर, ठगईसे जीविका चलानेवाले लोगोंका पता लग जाय ॥ २ ॥

द्यूताभियोगे जेतुः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३ ॥ पराजितस्य मध्यमः ॥ ४ ॥ बालिशजातीयो ह्येष जेतुकामः पराजयं न क्षमत इत्याचार्याः ॥ ५ ॥

जुएके मुकदमोंमें (जुएमें) जीतनेवालेको प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ३ ॥ और हारनेवालेको मध्यम साहस दण्ड ॥ ४ ॥ क्योंकि यह मूर्ख

जीतकी कामनासे जुआ खेलता हुआ, अब अपनी हारको सहन नहीं करता, और जीतनेवालेसे झगड़ा करता है। ऐसा आचार्योंका मत है ॥ ५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६ ॥ पराजितश्चेद्विगुणदण्डः क्रियेत न कश्चन राजानमभिसरिष्यति ॥ ७ ॥ प्रायशो हि कितवाः कूटदेविनः ॥ ८ ॥

परन्तु कौटल्य इस बातको नहीं मानता ॥ ६ ॥ वह कहता है कि यदि हारजाने वालेको जीतने वालेसे दुगना दण्ड दिया जावे, तो फिर कोई भी हारनेवाला जुआरी अपने झगड़ेको लेकर राजाके सामने न आवेगा ॥ ७ ॥ और फिर आम तौरपर ये धूर्त्त, जुआरी, कपटपूर्वक, लुकछिपकर जुआ खेलतेही रहेंगे। (जिससे कि हारनेवाले कभी इनके पंजेसे बाहर नहीं होसकते) ॥ ८ ॥

तेषामध्यक्षाः शुद्धाः काकण्यक्षांश्च स्थापयेयुः ॥ ९ ॥ काकण्यक्षाणामन्योपधाने द्वादशपणो दण्डः ॥ १० ॥ कूटकर्मणि पूर्वः साहसदण्डो जितप्रत्यादानमुपधास्तेयदण्डश्च ॥ ११ ॥

जुआरियोंका निरीक्षण करनेवाले राजकीयपुरुष, जुआ खेलनेके नियत स्थानपर साफ कौड़ी और पासे रखवादें ॥ ९ ॥ यदि कोई जुआरी उन कौड़ी और पासोंको बदले, तो उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ १० ॥ यदि कोई कपटपूर्वक जुआ खेले, तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाय, और उसके जीते हुए धनको छीनलिया जाय, तथा रखवाये हुए पासोंमें कुछ तब्दीली करके दूसरेको धोखा देनेके कारण चोरीका दण्ड दिया जाय ॥ ११ ॥

जितद्रव्यादध्यक्षः पञ्चकं शतमाददीत काकण्यक्षारलाशलाकावक्रयमुदकभूमिकर्मक्रयं च ॥ १२ ॥ द्रव्याणामाधानं विक्रयं च कुर्यात् ॥ १३ ॥ अक्षभूमिहस्तदोषाणां चाप्रतिषेधने द्विगुणो दण्डः ॥ १४ ॥

जीतने वालेसे, अध्यक्ष पांच प्रति सैकड़ा लेलेवे। तथा कौड़ी, पासे, अरल (चमड़े की बनाई हुई चौकड़ी, जिसपर पासे आदि डालकर खेला जाता है), शलाका, जल, जमीन का किराया और सरकारी टैक्स भी वसूल कर लेवे ॥ १२ ॥ जुआरियों को चीजें बेचने और गिरवी रखने की इजाजत भी देदेवे ॥ १३ ॥ यदि अध्यक्ष, जुआरियों को, पासे जमीन और हाथकी बुराइयों से नहीं रोकता, तो उसे दुगना दण्ड दिया जाय। (उससे दुगना, जितना कि धन उसने जीते हुए जुआरीसे वसूल करना है ॥ १४ ॥

तेन समाह्वयो व्याख्यातः ॥ १५ ॥ अन्यत्र विद्याशिल्पसमाह्वयादिति ॥ १६ ॥ प्रकीर्णकं तु ॥ १७ ॥

मुर्गा, मेंढे, तीतर आदि जानवरों का आपसमें मुकाबला कराकर जुआ खेलनेमें भी इसी प्रकार नियम समझने चाहियें ॥ १५ ॥ परन्तु विद्या और और शिल्प का मुकाबला करके जुआ खेलमें यह नियम लागू नहीं होते ॥ १६ ॥ अब प्रकीर्णक यानी परिशिष्ट का निरूपण करते हैं। अर्थात् इस अधिकरणके जिन विषयोंमें कुछ वक्तव्य शेष है, वह कहते हैं ॥ १७ ॥

याचितकावक्रीतकाहितकनिक्षेपकाणां यथादेशकालमदाने यामच्छायासमुपवेशसंस्थितीनां वा देशकालातिपातने गुल्मतरदेयं ब्राह्मणं साधयतः प्रतिवेशानुप्रवेशयोरुपरि निमन्त्रणे च द्वादशपणो दण्डः ॥ १८ ॥

यदि कोई पुरुष मांगी हुई, किराये पर ली हुई, अपने यहां धरोहर आदिके तौरपर रक्खी हुई, और आभूषण बनानेके लिये, सुवर्ण आदि दी हुई वस्तुओं को ठीक स्थान तथा समय पर न लौटावे; दिन या रातके किसी समय और किसी स्थान का संकेत करके फिर ठीक स्थान तथा समयमें जाकर न मिले; (यह समयानपाकर्म का शेष है) बेड़े आदिके द्वारा नदी पार कराके ब्राह्मण से किराया मांगे; अपने घरके अड़ोस पड़ोसके श्रोत्रिय को छोड़कर बाहर और किसीको निमन्त्रण देवे, तो उसे १२ पण दण्ड दिया जाय। (उपर्युक्त सब अपराधोंमें बारह २ पण दण्ड है) ॥ १८ ॥

संदिष्टमर्थमप्रयच्छतो भ्रातृभार्यां हस्तेन लंघयतो रूपाजीवामन्योपरुद्धां गच्छतः परवक्तव्यं पण्यं क्रीणानस्य समुद्रं गृहमुद्भिन्दतः सामन्तचत्वारिंशत्कुल्याबाधामाचरतश्चाष्टचत्वारिंशत्पणो दण्डः ॥ १९ ॥

प्रतिज्ञात धनको न देनेवाले; भाई की स्त्रीको हाथसे पकड़नेवाले; दूसरेके यहां रुकी हुई वेश्याके पास जाने वाले; (यहां तक यह साहसका परिशिष्ट है) दूसरेसे (खरीदनेके लिये) कहे हुए द्रव्यको खरीदने वाले (यह अस्वामि विक्रय का शेष है); राजकीय चिन्होंसे युक्त मकानों को गिराने वाले (यह साहस का शेष है); और सामन्तों के चालीस कुलों तक बाधा पहुंचाने वाले (यह वास्तुका शेष है) पुरुष को ४८ पण दण्ड दिया जाय ॥ १९ ॥

कुलनीवीग्राहकस्यापव्ययने विधवां छन्दवासिनीं प्रसह्याति-चरतश्चण्डालस्यार्यां स्पृशतः प्रत्यासन्नमापद्यनभिधावतो निष्कारण-मभिधावनं कुर्वतः शाक्याजीवकादीन्वृषलप्रव्रजितान्देवपितृकार्येषु भोजयतः शत्यो दण्डः ॥ २० ॥

जो पुरुष, वंशपरम्परागत सर्व साधारण सम्पत्ति का अपव्यय करे, स्वतन्त्र रहने वाली विधवाके साथ बलात्कार करे, चण्डाल होकर आर्या स्त्री का स्पर्श करे, पड़ोसीके ऊपर आपत्ति आनेपर उसकी सहायता न करे, विना ही कारण पड़ोसी के यहां आवे जावे, बौद्ध भिक्षुकों को तथा शूद्रा सन्यासिनियों को देव-कार्य (यज्ञादि) और पितृ कार्यों (श्राद्धादि) में भोजन करावे, उसे १०० पण दण्ड दिया जावे ॥ २० ॥

शपथवाक्यानुयोगमनिसृष्टं कुर्वतः युक्तकर्म चायुक्तस्य क्षुद्र-पशुवृषाणां पुंस्त्वोपघातिनो दास्या गर्भमौषधेन पातयतश्च पूर्वः साहसदण्डः ॥ २१ ॥

धर्मस्थ की आज्ञा के विना ही, साक्षी के तौर पर शपथ ले २ कर झगड़ों का फैसला करने वाले; अनधिकारी को अधिकार देने वाले; छोटे २ पशुओं के पुंस्त्व को नष्ट कर उन्हें वधिया बनाने वाले; और दासी के गर्भ को दवा देकर गिराने वाले पुरुष को प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ २१ ॥

पितापुत्रयोर्दम्पत्योर्भ्रातृभगिन्योर्मातुलभागिनेययोः शिष्या-चार्ययोर्वा परस्परमपतितं त्यजतः स्वार्थाभिप्रयातं ग्राममध्ये वा त्यजतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ २२ ॥

पिता-पुत्र, स्त्री-पुरुष, भाई-बहिन, मामा-भांजा, और गुरु-शिष्य, इन में से कोई एक, यदि न पतित हुए २ दूसरेका परित्याग करे; अथवा कोई व्यापारियोंके संघका मुखिया किसी व्यक्तिको बीमार आदि हो जाने के कारण रास्ते के कहीं गांवमें ही परित्याग कर दे तो उनको प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ २२ ॥

कान्तारे मध्यमः ॥ २३ ॥ तन्निमित्तं भ्रेषयत उत्तमः सह-प्रस्थायिष्वन्येष्वर्धदण्डाः ॥ २४ ॥ पुरुषमबन्धनीयं बध्नतो बन्ध-

यतो बन्धं वा मोक्षयतो बालमप्राप्तव्यवहारं बध्नतो बन्धयतो वा सहस्रदण्डः ॥ २५ ॥

यदि कहीं दुर्गम जंगल आदिमें छोड़ देवे, तो मध्यम साहस दण्ड ॥२३॥ और इसी कारण मार डाले, तो उत्तम साहस दण्ड दिया जावे । तथा उसके साथ २ जाने वाले अन्य पुरुषों पर, इसी अपराध में आधा दण्ड दिया जावे ॥२४॥ जो व्यक्ति, निरपराध पुरुष को बांधे या बंधवावे, अथवा कैदीको छोड़ देवे, और नाबालिग बच्चे को बांधे या बंधवावे, उसे १००० पण दण्ड दिया जाय ॥ २५ ॥

पुरुषापराधविशेषेण दण्डविशेषः कार्यः ॥ २६ ॥ तीर्थकरस्तपस्वी व्याधितः क्षुत्पिपासाध्वक्लान्तस्तिरोजानपदो दण्डखेदी निष्किंचनश्चानुग्राह्याः ॥ २७ ॥

किसी पुरुष के अपराधके अनुसार ही उसके दण्ड का विधान होना चाहिये ॥ २६ ॥ दानी, तपस्वी, बीमार, भूखा, प्यासा, रास्ता चलनेसे थका हुआ, परदेसी, बहुत वार दण्ड भुगता हुआ, तथा जो अकिञ्चन (निर्धन) हो, ऐसे व्यक्तियों पर सदा अनुग्रह करना चाहिये ॥ २७ ॥

देवब्राह्मणतपस्विस्त्रीबालवृद्धव्याधितानामनाथानामनभिसरतां धर्मस्थाः कार्याणि कुर्युः ॥ २८ ॥ न च देशकालभोगच्छलेनातिहरेयुः ॥ २९ ॥ पूज्या विद्याबुद्धिपौरुषाभिजनकर्मातिशयतश्च पुरुषाः ॥ ३० ॥

धर्मस्थ अधिकारियों का कर्त्तव्य है कि वे देव, ब्राह्मण, तपस्वी, स्त्री, बालक, बूढ़े, बीमार तथा अपने दुःखों को कहने के लिये न जाने वाले अनाथों के कार्यों को स्वयं करदें ॥ २८ ॥ देश काल आदिका बहाना करके उनके धन का अपहरण न करें । अथवा उनको देश, काल या कार्य का बहाना करके तंग न करें ॥ २९ ॥ तथा जो पुरुष, विद्या, बुद्धि, पौरुष, कुल और कार्योंके कारण बढ़े हुए हों, उनकी सदा प्रतिष्ठा करें ॥ ३० ॥

एवं कार्याणि धर्मस्थाः कुर्युरच्छलदर्शिनः ।
समाः सर्वेषु भावेषु विश्वास्या लोकसंप्रियाः ॥ ३१ ॥

इति धर्मस्थीये तृतीये ऽधिकरणे द्यूतसमाह्वयं प्रकीर्णकानि विंशो ऽध्यायः ॥२०॥
आदितः सप्तसप्ततिरध्यायः ॥७७॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य धर्मस्थीयं तृतीयमधिकरणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

इस प्रकार धर्मस्थ, छल कपट रहित होकर अपने सब कार्योंको करें। और सबका बराबर निरीक्षण करते हुए, जनताके विश्वास पात्र तथा लोक प्रिय बनें ॥ ३१ ॥

धर्मस्थीय तृतीय अधिकरणमें बीसवां अध्याय समाप्त।

धर्मस्थीय तृती अधिकरण समाप्त।

कण्टकशोधन-चौथा अधिकरण

प्रथम अध्याय।

७३ प्रकरण।

कारुक रक्षण (शिल्पियों से प्रजाकी रक्षा)

प्रदेष्टारस्त्रयस्त्रयो वामात्याः कण्टकशोधनं कुर्युः ॥ १ ॥ अर्थ्यप्रतीकाराः कारुशासितारः संनिक्षेप्तारः स्ववित्तकारवः श्रेणीप्रमाणा निक्षेपं गृह्णीयुः ॥ २ ॥

मन्त्रियोंके गुणोंसे युक्त, तीन तीन प्रदेष्टा (कण्टकशोधनके लिये नियुक्त हुए अधिकारीका नाम) प्रजापीडक व्यक्तियोंसे प्रजाकी रक्षा करें। ॥ १ ॥ अच्छे स्वभाववाले, शिल्पियोंके मुखिया अर्थात् उनको भी कार्य सिखानेवाले, सबके सन्मुख लेनदेनका काम करनेवाले, अपने ही धनसे गहने आदि बनानेवाले, तथा साक्षियोंमें विश्वासपात्र शिल्पीलोग ही किसीका निक्षेप (धन गिरवी) रख सकते हैं ॥ २ ॥

विपत्तौ श्रेणी निक्षेपं भजेत ॥ ३ ॥ निर्दिष्टदेशकालकार्यं च कर्म कुर्युः ॥ ४ ॥ अनिर्दिष्टदेशकालकार्यापदेशं कालातिपातने पादहीनं वेतनं तद्द्विगुणश्च दण्डः ॥ ५ ॥

निक्षेप लेनेवालेके मरजाने या चिरकालके लिये विदेश चले जानेपर साझीही उस निक्षेपके धनको हिस्सेवार अदा करें ॥ ३ ॥ स्थान, समय तथा कार्यका प्रथम निश्चय करके ही शिल्पीलोग काम करें ॥ ४ ॥ जो शिल्पी स्थान, समय तथा कार्यका निश्चय न करनेका कुछ बहाना निकालें, और काम करनेके लिये ठीक समयपर उपस्थित न होवें, उनका चौथाई वेतन काट लिया जाय और उससे दुगना उनको दण्ड दिया जाय ॥ ५ ॥

अन्यत्र भ्रेषोपनिपाताभ्याम् ॥ ६ ॥ नष्टं विनष्टं वाभ्याभवेयुः ॥ ७ ॥

परन्तु यदि किसी हिंसक प्राणीके द्वारा कोई बाधा उपस्थित होनेपर (भ्रेष) अथवा किसी दैवी आपत्तिके अचानक आ जानेपर ऐसा हुआ हो, तो

कोई अपराध नहीं ॥ ६ ॥ यदि कारीगरसे कोई वस्तु सर्वथा नष्ट हो जाय या बिगड़ जाय, तो कारीगर उसका नुक्सान भरे । परन्तु भ्रेष और उपनिपातके कारण ऐसा होनेपर, कोई अपराध नहीं । (६ठे सूत्रका अन्वय इस सूत्रमें भी समझना चाहिये) ॥ ७ ॥

कार्यस्यान्यथाकरणे वेतननाशस्तद्द्विगुणश्च दण्डः ॥ ८ ॥ तन्तुवाया दशैकादशिकं सूत्रं वर्धयेयुः ॥ ९ ॥ वृद्धिच्छेदे छेदद्विगुणो दण्डः ॥ १० ॥

यदि वे कामको बिगाड़ देवें, तो उन्हें वेतन बिल्कुल न दिया जाय, और वेतनसे दुगना जुरमाना उनपर किया जाय ॥ ८ ॥ जुलाहेको चाहिये कि वह १० पल कपड़ा बुननेके लिये ११ पल सूत लेवे, (अर्थात् १० पल कपड़ेके लिये १ पल अधिक सूत लेवे, तात्पर्य यह है कि १० पलके ऊपर १ पल सूत छीजनमें खराब किया जासकता है, इससे अधिक नहीं) ॥ ९ ॥ यदि जुलाहा इससे अधिक छीजन निकाले, तो उसपर छीजनका दुगना दण्ड किया जाय ॥ १० ॥

सूत्रमूल्यं वानवेतनं क्षौमकौशेयानामध्यर्धगुणम् ॥ ११ ॥ पत्त्रोर्णाकम्बलतूलानां द्विगुणम् ॥ १२ ॥ मानहीने हीनापहीनं वेतनं तद्द्विगुणश्च दण्डः ॥ १३ ॥

सूतके कपड़ेकी बुनाई (बुनाईकी मजदूरी) सूतकी कीमतके बराबर देनी चाहिये । तथा जूट (पाट) और रेशमी कपड़ोंकी बुनाई सूतसे ड्योढ़ी ॥ ११ ॥ धुले हुए रेशमके कपड़े (पत्रोर्ण), ऊनी कम्बल तथा दुशालोंकी बुनाई सूतसे दुगनी होनी चाहिये ॥ १२ ॥ जितने नापका कपड़ा बुननेको कहा गया हो, यदि उससे कम बुने, तो उसी हिसाबसे वेतन भी उसे कम देना चाहिये, और कम बुनाईका दुगना जुरमाना उसपर किया जाय ॥ १३ ॥

तुलाहीने हीनचतुर्गुणो दण्डः ॥ १४ ॥ सूत्रपरिवर्तने मूल्यद्विगुणः ॥ १५ ॥ तेन द्विपटवानं व्याख्यातम् ॥ १६ ॥ ऊर्णातूलायाः पञ्चपालिको विहननच्छेदो रोमच्छेदश्च ॥ १७ ॥

यदि सूत तोलकर दिया गया हो, तो बुने हुए कपड़ेमें जितनी कमी हो उससे चौगुना दण्ड दिया जाय ॥ १४ ॥ अगर जुलाहा सूतको बदल ले, तो उसे मूल्यसे दुगना दण्ड दिया जावे ॥ १५ ॥ इसीसे दुसूती आदिकी बुनाई भी समझ लेनी चाहिये ॥ १६ ॥ १०० पल ऊनमेंसे ५ पल, पिंजाई (धुनाई=साफ कराई) में कम हो जाता है, और ५ पल बुनाईके समय रूआं

उड़ जाता है। (तात्पर्य यह है कि धुनाई बुनाईमें प्रति सैकड़ा १० पलके हिसाबसे ऊन कम होसकती है, इससे अधिक नहीं) ॥ १७ ॥

रजकाः काष्ठफलकश्लक्ष्णशिलासु वस्त्राणि नेनिज्युः ॥१८॥ अन्यत्र नेनिजन्तो वस्त्रोपघातं षट्पणं च दण्डं दद्युः ॥ १९ ॥ मुद्राङ्कादन्यद्वासः परिदधानास्त्रिपणं दण्डं दद्युः ॥ २० ॥

धोबियोंको चाहिये कि वे लकड़ीके फट्टेपर तथा चिकने साफ पत्थर पर कपड़ोंको धोवें ॥ १८ ॥ दूसरी जगह धोनेपर यदि कपड़ा फट जावे, तो वे उसका नुकसान भरें, और ६ पण दण्ड देवें ॥ १९ ॥ धोबियोंके अपने पहिननेके कपड़ोंपर मुद्रका चिन्ह होना चाहिये। जो धोबी इस प्रकार चिन्ह युक्त कपड़े न पहिनें, वे सरकारको ३ पण दण्ड देवें ॥ २० ॥

परवस्त्रविक्रयावक्रयाधानेषु च द्वादशपणो दण्डः ॥ २१ ॥ परिवर्तने मूल्यद्विगुणो वस्त्रदानं च ॥ २२ ॥ मुकुलावदातं शिलापट्टशुद्धं धौतसूत्रवर्णं प्रमृष्टश्वेतं चैकरात्रोत्तरं दद्युः ॥२३॥

धुलनेके लिये आये हुए, दूसरोंके कपड़ोंको बेचने किरायेपर देने या गिरवी रख देनेपर १२ पण दण्ड दिया जावे ॥ २१ ॥ कपड़ा बदल देनेपर कपड़ेके मूल्यसे दुगना दण्ड देवे, तथा कपड़ा वापस करे ॥ २२ ॥ धोबीको चाहिये कि वह फूलकी कलीके समान सफेद कपड़ेको एक दिनमें ही धोकर देदेवे, शिलापट्टके समान स्वच्छ कपड़ेको दो दिनमें, धुले हुए सूतकी तरह सफेद कपड़ेको ३ दिनमें, और अत्यन्त सफेद कपड़ेको ४ दिनमें धोकर दे देवे ॥ २३ ॥

पञ्चरात्रिकं तनुरागम् ॥ २४ ॥ षड्रात्रिकं नीलं पुष्पलाक्षामञ्जिष्ठारक्तम् ॥ २५ ॥ गुरुपरिकर्मयत्नोपचार्यं जात्यं वासः सप्तरात्रिकम् ॥ २६ ॥

हलके रंगवाले कपड़ोंको ५ दिनमें ॥ २४ ॥ नीले, गाढ़े रंगवाले तथा हारसिंगार, लाख और मंजीठ आदिमें रंगे हुए कपड़ोंको ६ दिनमें ॥२५॥ इसी प्रकार जो कपड़े बड़ी मेहनतसे बुने हुए हों (अर्थात् जिनमें बहुत तरहके काम होरहे हों) अतः जिनके धोनेमें कुछ कठिनता हो जो रेशम, पशम आदि उत्तम जातिके या बढ़िया कपड़े हों, उन्हें ७ दिनतक धोकर दे देवे ॥ २६ ॥

ततः परं वेतनहानिं प्राप्नुयुः ॥ २७ ॥ श्रद्धेया रागविवादेषु वेतनं कुशलाः कल्पयेयुः ॥ २८ ॥ पराघ्यानां पणो वेतनम्

॥ २९ ॥ मध्यमानामर्धपणः ॥ ३० ॥ प्रत्यवराणां पादः ॥३१॥

इसके बाद धोनेपर धोनेकी मजदूरी न दी जावे ॥ २७ ॥ रंगीन कपड़ोंकी मज़दूरीमें झगड़ा होनेपर, रंगोंको ठीक २ समझनेवाले चतुर पुरुष मज़दूरीका फ़ैसला करें ॥ १८ ॥ बढ़िया रंगोंका एक पण वेतन ॥ २९ ॥ मध्यम=औसत दर्जेके रंगोंका आधा पण ॥ ३० ॥ और मामूली रंगोंका चौथाई पण वेतन देना चाहिये ॥ ३१ ॥

स्थूलकानां माषद्विमाषकम् ॥ ३२ ॥ द्विगुणं रक्तकानाम् ॥ ३३ ॥ प्रथमनेजने चतुर्भागः क्षयः ॥ ३४ ॥ द्वितीये पञ्चभागः ॥ ३५ ॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ३६ ॥ रजकैस्तुन्नवाया व्याख्याताः ॥ ३७ ॥

मोटे कपड़ोंकी धुलाई एक माष (तत्कालीन कोई सिक्का) या दो माष ॥ ३२ ॥ तथा रंगे हुए कपड़ोंकी, इससे दुगनी होनी चाहिये ॥ ३३ ॥ कपड़ेकी पहिली धुलाईमें उसकी चौथाई कीमत कम हो जाती है ॥ ३४ ॥ और दूसरी धुलाईमें पांचवां हिस्सा (अर्थात् शेष मूल्यका पांचवां हिस्सा) ॥ ३५ ॥ इसी तरह आगे भी समझना चाहिये । (अर्थात् तीसरी धुलाईमें दूसरी धुलाईके बादकी कीमतका छठा हिस्सा कम होजाता है, इत्यादि) ॥ ३६ ॥ धोबियोंके अनुसार दर्जियोंके नियम भी जान लेने चाहिये ॥ ३७ ॥

सुवर्णकाराणामशुचिहस्ताद्रूप्यं सुवर्णमनाख्याय सरूपं क्रीणतां द्वादशपणो दण्डः ॥ ३८ ॥ विरूपं चतुर्विंशतिपणः ॥ ३९ ॥ चोरहस्तादष्टचत्वारिंशत्पणः ॥ ४० ॥ प्रच्छन्नविरूपं मूल्यहीनक्रयेषु स्तेयदण्डः ॥ ४१ ॥

दास तथा नीच नौकर चाकरोंसे (अशुचिहस्तात्) सुवर्णाध्यक्ष (अथवा सरकार) को सूचना दिये बिनाही, यदि सुनार सोने चांदी आदिके बने हुए गहने (सरूपं) खरीदें, तो उन्हें १२ पण दण्ड दिया जाय ॥३८॥ बिना गहनेके सोने चांदी आदिको खरीदनेवाले सुनारोंको २४ पण ॥३९॥ चोरके हाथसे खरीदनेवालोंको ४८ पण दण्ड दिया जावे ॥ ४० ॥ दूसरोंसे छिपाकर, गहने आदिको तोड़मोड़कर, थोड़े मूल्यमें खरीद लेनेपर, सुनारको चोरीका दण्ड दिया जावे ॥ ४१ ॥

कृतभाण्डोपधौ च ॥ ४२ ॥ सुवर्णान्माषकमपहरतो द्विशतो

दण्डः ॥ ४३ ॥ रूप्यधरणान्माषकमपहरतो द्वादशपणः ॥४४॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ४५ ॥

बनाये हुए मालके बदल लेनेपर भी चोरीकाही दण्ड दिया जावे॥४२॥ यदि सुनार सोनेमेंसे १ माष (तत्कालीन सोनेके सिक्केका सोलहवां हिस्सा) सोना चुरा लेवे, तो उसे २०० पण दण्ड दिया जाय ॥ ४३ ॥ यदि एक धरण (प्रमाण विशेष) चांदीमेंसे एक माष चुरावे, तो उसे १२ पंण दण्ड दिया जाय ॥ ४४ ॥ इसी प्रकार अधिककी चोरीमें, अधिक दण्डकी कल्पना भी इसीके अनुसार करलेनी चाहिये ॥ ४५ ॥

वर्णोत्कर्षमपसाराणां योगं वा साधयतः पञ्चशतो दण्डः ॥ ४६ ॥ तयोरपचरणे रागस्यापहारं विद्यात् ॥ ४७ ॥

यदि कोई सुनार खोटे सोने चांदी पर नकली बढ़िया रंग कर देवे, तथा खरे सोने चांदीमें कुछ खोट मिला देवे, अर्थात् दूसरी धातुकी मिलावट कर देवे, तो उसे ५०० पण दण्ड दिया जाय ॥ ४६ ॥ उन दोनों (नकली रंग और मिलावट) की असलियत को, उन्हें (सोने चांदी को) अग्निमें डालने पर रंग के उड़ जाने से पहिचाने ॥ ४७ ॥

माषको वेतनं रूप्यधरणस्य ॥४८॥ सुवर्णस्याष्टभागः ॥४९॥ शिक्षाविशेषेण द्विगुणा वेतनवृद्धिः ॥५०॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ५१ ॥

एक धरण चांदी की कोई वस्तु बनाने पर, एक माषक वेतन दिया जावे ॥ ४८ ॥ सोने की बनवाईके लिये, उतने सोनेका आठवां हिस्सा वेतन दिया जावे ॥ ४९ विशेष कारीगरी करने पर दुगनी मजदूरी देदी जावे ॥ ५० ॥ इसी के अनुसार अधिक काम करानेपर अधिक मजदूरी देदी जावे ॥ ५१ ॥

ताम्रवृत्तकंसवैकृन्तकारकूटकानां पञ्चकं शतं वेतनम् ॥५२॥ ताम्रपिण्डो दशभागः क्षयः ॥ ५३ ॥ पलहीने हीनद्विगुणो दण्डः ॥ ५४ ॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ५५ ॥

तांबा, सीसा, कांसा, लोहा, (अथवा रांग) पीतल इनकी बनवाईके लिये पांच प्रति सैकड़ा मजदूरी दी जावे ॥ ५२ ॥ तांबे का दसवां हिस्सा, बनाते समय छीजनमें छोड़ा जासकता है ॥ ५३ ॥ इतने से एक पल कम होने पर भी नुक्सानका दण्ड दिया जावे ॥ ५४ ॥ इसी प्रकार अधिक हानि होने पर, दण्ड का विधान समझ लेना चाहिये ॥ ५५ ॥

सीसत्रपुपिण्डो विंशतिभागः क्षयः ॥ ५६ ॥ काकणी चास्य पलवेतनम् ॥ ५७ ॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ५८ ॥

सीसे और रांगकी चीजें बनानेमें बीसवां हिस्सा छीजनमें निकल जाता है ॥ ५६ ॥ इसके एक पलकी बनवाईके लिये एक काकणी वेतन होता है ॥५७ ॥ इस से अधिक बनवाईका इसी हिसाब से वेतन देना चाहिये॥५८॥

रूपदर्शकस्य स्थितां पणयात्रामकोप्यां कोपयतः कोप्याम-कोपयतो द्वादशपणो दण्डः ॥ ५९ ॥ तेनोत्तरं व्याख्यातम् ॥ ६० ॥ कूटरूपं कारयतः प्रतिगृह्णतो निर्यापयतो वा सहस्रं दण्डः ॥ ६१ ॥

यदि सिक्कों की परीक्षा करने वाला अधिकारी, चलते हुए खरे पणों का खोटा बतावे, और खोटे पणों को खरा कह कर चलने दे, तो उसपर बारह पण जुरमाना किया जाय ॥ ५९ ॥ बड़े सिक्कों के लिये ऐसा करने पर, इसी के अनुसार अधिक दण्ड दिया जावे ॥ ६० ॥ *यदि कोई छिपकर जाली सिक्के बनवावे, बने हुओं को जान बूझ कर स्वीकार करें, अथवा बिना रोकटोक चलने देवे, तो उसे एक सहस्र पण दण्ड दिया जावे ॥ ६१ ॥

कोशे प्रक्षिपतो वधः ॥ ६२ ॥ अधरकपांसुधावकाः सार-त्रिभागं लभेरन् ॥ ६३ ॥ द्वौ राजा रत्नं च ॥ ६४ ॥ रत्नापहार उत्तमो दण्डः ॥ ६५ ॥ खनिरत्ननिधिनिवेदनेषु षष्ठमंशं निवेत्ता लभेत ॥ ६६ ॥

अच्छे सिक्कों की जगह जाली सिक्कों को, सरकारी खजानेमें रखने वाले पुरुषको मृत्यु दण्ड दिया जाय ॥ ६२ ॥ खानमें निकले हुए रत्नों को साफ करने वाले कर्मचारी, टूटे फूटे सारभूत मालका तीसरा हिस्सा ले लेवें ॥ ६३ ॥ बाकी दो हिस्से और रत्नों को राजा लेवे ॥ ६४ ॥ रत्न चुराने वाले नौकर को उत्तम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ६५ ॥ जो पुरुष, रत्नोंकी खान, तथा कहीं गढ़े हुए खजानेका, राजा को पता देवे, तो उसका छठा हिस्सा उस पुरुष को दिया जावे ॥ ६६ ॥

---

* इसके आगे त. गणपति शास्त्री सम्पादित पुस्तक में दो सूत्र अधिक हैं:—"व्याजी परिशुद्धा पणयात्रा। पणान्मापकमुपजीवतो द्वादशपणो दण्डः"। इनका अर्थ इस प्रकार है—पांच प्रति सैकड़ा टैक्स (व्याजी) सरकार को देकर पण चलाया जासकता है। एक पणके चलानेके लिये माषक रिश्वत लेलेने पर लक्षणाध्यक्ष को १२ पण दण्ड दिया जावे।

द्वादशमंशं भृतकः ॥ ६७ ॥ शतसहस्रादूर्ध्वं राजगामी निधिः ॥ ६८ ॥ ऊने षष्ठमंशं दद्यात् ॥ ६९ ॥ पौर्वपौरुषिकं निधिं जानपदः शुचिः स्वकरणेन समग्रं लभेत ॥ ७० ॥

यदि वह इसी कार्यके लिये राजाकी ओरसे नौकर हो, तो उसे बारहवां हिस्सा दिया जावे ॥ ६७ ॥ यदि एक लाख पणसे अधिक खजाना हो, तो राजा उसका मालिक होता है । इतनेसे कम होनेपर, पाने वाला ही मालिक समझा जावे ॥ ६८ ॥ परन्तु उसमेंसे छठा हिस्सा वह राजाको अवश्य देवे ॥ ६५ ॥ साक्षी और लेख आदि से यदि इस बातका निश्चय हो जावे कि पाया हुआ खजाना पानेवालेके पिता पितामह आदिका ही स्थापित किया हुआ है, तो ठीक आचारसे रहता हुआ वह पुरुष सम्पूर्ण खजानेका मालिक समझा जावे ॥ ७० ॥

स्वकरणाभावे पञ्चशतो दण्डः ॥७१॥ प्रच्छन्नादाने सहस्रम् ॥ ७२ ॥ भिषजः प्राणाबाधिकमनाख्यायोपक्रममाणस्य विपत्तौ पूर्वः साहसदण्डः ॥ ७३ ॥ कर्मापराधेन विपत्तौ मध्यमः ॥७४॥ मर्मवधवैगुण्यकरणे दण्डपारुष्यं विद्यात् ॥७५॥

यदि वह साक्षी और लेख आदिके बिना ही उस सम्पत्ति पर अपना प्रभुत्व जमाना चाहता है, तो उसे ५०० पण दण्ड दिया जावे ॥ ७१ ॥ छिप कर चुपचाप ही अपना कब्जा करलेने पर १००० पण दण्ड दिया जावे ॥७२॥ यदि वैद्य, राजाको विना सूचना दिये ही ऐसे रोगीकी चिकित्सा करे जिनमें रोगी की मृत्यु का भय हो, तथा चिकित्सा करते २ रोगी मर भी जावे, तो वैद्यको प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ७३ ॥ यदि चिकित्सा के ही दोषके कारण मृत्यु हुई हो तो मध्यम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ७४ ॥ शरीरके किसी विशेष अङ्ग का गलत ऑपरेशन करने पर यदि रोगी का वह अङ्ग नष्ट हो जावे, या और किसी तरह की हानि हो जावे, तो वैद्यको 'दण्ड पारुष्य प्रकरणमें कहा हुआ उचित दण्ड दिया जावे ॥ ७५ ॥

कुशीलवा वर्षारात्रमेकस्था वसेयुः ॥ ७६ ॥ कामदानमतिमात्रमेकस्यातिपातं च वर्जयेयुः ॥ ७७ ॥ तस्यातिक्रमे द्वादशपणो दण्डः ॥ ७८ ॥ कामं देशजातिगोत्रचरणमैथुनापहाने नर्मयेयुः ॥ ७९ ॥

वर्षा ऋतुमें नट आदि एक ही स्थानपर निवास करें ॥ ७६ ॥ तमाशा

देखनेसे अत्यन्त प्रसन्न होकर, यदि कोई पुरुष उचित मात्रासे अधिक धन उन को देवे, अथवा उनकी कोई अत्यधिक स्तुति करे, तो उसे स्वीकार न करें। अर्थात् ऐसा करनेसे उन्हें रोकदें ॥ ७७ ॥ इस नियमको उल्लङ्घन करनेपर १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ७८ ॥ किसी खास देश, जाति, गोत्र, या चरण (किसी विशेष शाखा को पढ़ने वाले) की मजाक अथवा निन्दा और मैथुन को छोड़कर नट लोग बाकी सब कुछ अपनी इच्छाके अनुसार खेल दिखाकर दर्शकों को खुश करसकते हैं ॥ ७९ ॥

कुशीलवैश्चारणा भिक्षुकाश्च व्याख्याताः ॥ ८० ॥ तेषामयः शूलेन यावतः पणानभिवदेयुस्तावन्तः शिफाप्रहारा दण्डाः ॥८१॥ शेषाणां कर्मणां निष्पत्तिवेतनं शिल्पिनां कल्पयेत् ॥ ८२ ॥

नटोंके ही अनुसार गाने नाचने वाले तथा भिक्षुकोंके नियम समझने चाहियें ॥ ८० ॥ दूसरों के मर्म स्थलोंपर पीड़ा पहुंचाने पर इन लोगोंको जितने पण दण्ड दिया जाय, पण अदा न कर सकनेपर उतने ही कोड़े लगाये जावें। ॥ ८१ ॥ जो काम पहिले कह दिये गये हैं उनसे अतिरिक्त काम करनेपर भी कारीगरोंका वेतन कल्पना करके नियत करलेना चाहिये ॥ ८२ ॥

एवं चोरानचोराख्यान्वणिक्कारुकुशीलवान् ।
भिक्षुकान्कुहकांश्चान्यान्वारयेद्देशपीडनात् ॥ ८३ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थेऽधिकरणे कारुकरक्षणं प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
आदितोऽष्टसप्ततिरध्यायः ॥ ७८ ॥

इस प्रकार नामके साधु बने हुए, बनिये, कारीगर, नट, भिखारी और ऐन्द्रजालिक आदि चोरोंको, तथा इसी प्रकारके अन्य पुरुषों को, देशमें पीड़ा पहुंचानेसे रोकें ॥ ८३ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरण में पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

७७ प्रकरण

व्यापारियों से रक्षा ।

संस्थाध्यक्षः पण्यसंस्थायां पुराणभाण्डानां स्वकरणविशुद्धानामाधानं विक्रयं वा स्थापयेत् ॥ १ ॥ तुलामानभाण्डानि चावेक्षेत पौतवापचारात् ॥ २ ॥

बाजार का अध्यक्ष, दूकानों में, दूकानदारों के स्वाधिकृत (जिस माल पर दूकानदारों का स्वत्व निश्चित है, यानी वह माल चोरी वगैरह का नहीं है=स्वकरणविशुद्धानां) पुराने अन्न आदि मालके प्रवेश और निकासी का प्रबन्ध करे ॥ १ ॥ तराजू, बट्टे और नापके बर्त्तनों का अच्छी तरह निरीक्षण करे, जिससे कि तोल आदिमें कोई दोष न होवे ॥ २ ॥

परिमाणीद्रोणयोरर्धपलहीनातिरिक्तमदोषः ॥ ३ ॥ पलहीनातिरिक्ते द्वादशपणो दण्डः ॥ ४ ॥ तेन पलोत्तरा दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ॥ ५ ॥ तुलायाः कर्षहीनातिरिक्तमदोषः ॥ ६ ॥

परिमाणी और द्रोणमें (ये दोनों विशेष तोल हैं) आधा पल न्यून हो या अधिक हो तो कोई दोष नहीं ॥ ३ ॥ एक पल न्यून या अधिक होने में १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४ ॥ पलकी न्यूनता या अधिकताके बढ़नेपर उसीके अनुसार दण्ड भी बढ़ता जाय ॥ ५ ॥ तुला यदि एक कर्ष कम या ज्यादा हो तो कोई दोष नहीं ॥ ६ ॥

द्विकर्षहीनातिरिक्ते षट्पणो दण्डः ॥ ७ ॥ तेन कर्षोत्तरा दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ॥ ८ ॥ आढकस्यार्धकर्षहीनातिरिक्तमदोषः ॥ ९ ॥ कर्षहीनातिरिक्ते त्रिपणो दण्डः ॥ १० ॥

यदि दो कर्ष कम या अधिक हो तो ६ पण दण्ड दिया जाय ॥ ७ ॥ इसी प्रकार कर्षकी न्यूनता या अधिकताके अधिक होनेपर दण्डकी भी वृद्धि समझ लेनी चाहिये ॥ ८ ॥ आढ़क (तोल विशेष) में आधे कर्षकी न्यूनता या अधिकताका होना कोई दोष नहीं ॥ ९ ॥ यदि एक कर्षकी न्यूनता या अधिकता हो तो ३ पण दण्ड दिया जाय ॥ १० ॥

तेन कर्षोत्तरा दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ॥ ११ ॥ तुलामानविशेषाणामतोऽन्येषामनुमानं कुर्यात् ॥ १२ ॥ तुलामानाभ्यामतिरिक्ताभ्यां क्रीत्वा हीनाभ्यां विक्रीणानस्य त एव द्विगुणा दण्डाः ॥ १३ ॥

कर्षकी न्यूनता या अधिकताके अधिक होनेपर, उसीके अनुसार दण्ड भी बढ़ा दिया जाय ॥ ११ ॥ जिन तुला और मानकी न्यूनाधिकताके विषयमें कुछ नहीं कहा गया है, उनको भी इतनेसे अनुमान करलेना चाहिये ॥ १२ ॥ जो बनिया, अधिक (भारी) तराजू या बट्टेसे खरीदकर हलकेसे बेचे, उसे पूर्वोक्त (चौथे सूत्रसे लगाकर कहे हुए १२ आदि पण) दण्डोंसे दुगना दण्ड दिया जावे ॥ १३ ॥

गण्यपण्येष्वष्टभागं पण्यमूल्येष्वपहरतः षण्णवतिर्दण्डः ॥ १४॥ काष्ठलोहमणिमयं रज्जुचर्ममृण्मयं सूत्रवल्करोममयं वा जात्यमित्य जात्यं विक्रयाधानं नयतो मूल्याष्टगुणो दण्डः ॥ १५ ॥

गिनकर बेची जानेवाली चीज़ोंमें, चीज़की कीमतमेंसे आठवां हिस्सा अपहरण करनेवाले बनियेपर ९६ पण जुरमाना किया जाय ॥ १४ ॥ जो पुरुष लकड़ी, लोहा, या मणिसे बने हुए, रस्सी, चमड़े या मट्टीसे बने हुए, सूत, छाल या ऊनसे बने हुए; घटिया मालको बढ़िया कहकर रखता या बेचता है, उसे वस्तुकी कीमतसे आठगुना दण्ड दिया जाय ॥ १५ ॥

सारभाण्डारमित्यसारभाण्डं तज्जातमित्यतज्जातं राधायुक्त-मुपधियुक्तं समुद्रपरिवर्तिमं वा विक्रयाधानं नयतो हीनमूल्यं चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ १६ ॥

बनावटी (कपूर, कस्तूरी आदि) कम मूल्यकी वस्तुओंको असली (अधिक मूल्यकी) कहकर, उस देशमें पैदा न हुई २ कम मूल्यकी वस्तुको उसही देशमें पैदा हुई २ बताकर, शोभायुक्त (कम मूल्यके) बनावटी मोती आदिको, (कम कीमतकी) मिलावटी वस्तुको, एक पेटीमेंसे अच्छा माल ग्राहक को दिखाकर दूसरी पेटीमेंसे उसी तरहका कम कीमतका माल बेचने या रखने-वाले व्यापारीको ५४ पण दण्ड दिया जाय ॥ १६ ॥

पणमूल्यं द्विगुणो द्विपणमूल्यं द्विशतः ॥ १७ ॥ तेनार्घवृद्धौ दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ॥ १८ ॥ कारुशिल्पिनां कर्मगुणापकर्षमा-जीवं विक्रयं क्रयोपघातं वा संभूय समुत्थापयतां सहस्रं दण्डः ॥१९

यदि यह उपर्युक्त माल एक पण कीमतका हो तो पहिलेसे दुगना दण्ड, और दो पण कीमतका हो तो २०० पण दिया जाय ॥ १७ ॥ इसी प्रकार अधिक मूल्यका माल होनेपर अधिक दण्डकी व्यवस्था की जाय ॥ १८ ॥ जो लुहार, बढ़ई तथा अन्य कारीगरलोग, आपसमें मिलकर, जैसा काम करनेको उन्हें कहा जाय, वैसा न करें, (कर्मगुणापकर्षम्) अधिक (एक पणकी जगह दो पण) मज़दूरी लेवें (आजीवम्) तथा किसी वस्तुको बेचनेके समय अधिक दाम कहकर और खरीदनेके समय बहुत थोड़ा दाम कहकर खरीद फ़रोख्तमें नुक्सान पहुँचावें, उनमेंसे प्रत्येकको एक एक सहस्र पण दण्ड दिया जाय॥१९॥

वैदेहकानां वा संभूय पण्यमारुन्धतामनर्घेण विक्रीणतां वा सहस्रं दण्डः ॥ २० ॥ तुलानामानान्तरमर्घवर्णान्तरं वा धरकस्य

मापकस्य वा पणमूल्यादष्टभागं हस्तदोषेणाचरतो द्विशतो दण्डः ॥ २१ ॥

जो व्यापारी आपसमें मिलकर किसी वस्तुको बिकनेसे एकदम रोक लेवें और फिर उसे अनुचित मूल्यपर बेचें या खरीदें, तो उन्हें प्रत्येकको १००० पण दण्ड दिया जाय ॥ २० ॥ तुलाके कारण बट्टोंके कारण तथा मूल्य में अन्तर हो जानेके कारण जो लाभ होवे, उसे बहीमें अवश्य लिख देवें। तोलनेवाला या नापनेवाला अपने हाथकी चालाकीसे यदि एक पण मूल्यकी वस्तुमेंसे आठवां हिस्सा कम करदेवे, तो उसको २०० पण दण्ड दिया जाना चाहिये ॥ २१ ॥

तेन द्विशतोत्तरा दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ॥ २२ ॥ धान्यस्नेहक्षारलवणगन्धभैषज्यद्रव्याणां समवर्णोपधाने द्वादशपणो दण्डः ॥ २३ ॥ यान्निसृष्टमुपजीवेयुस्तदेषां दिवससंजातं संख्याय वणिक् स्थापयेत् ॥ २४ ॥

इसी प्रकार अधिक भाग कम देनेपर अधिक दण्डकी व्यवस्था की जाय, (अर्थात् चौथा हिस्सा कम देवे, तो ४०० पण दण्ड दिया इत्यादि) ॥ २२ ॥ धान्य (अन्न) स्नेह, (तेल घृत आदि) खार (जवाखार आदि) नमक गन्ध और औषधियोंमें उसी तरहकी कम कीमतकी वस्तुओंको मिलाकर बेचनेपर १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ २३ ॥ दूकानदारोंको प्रतिदिन जितना लाभ होवे, उसे संस्थाध्यक्ष (बाज़ारका निरीक्षक=चौधरी=वणिक्) अपनी बहीमें ठीक २ गिनकर लिख लेवे ॥ २४ ॥

क्रेतृविक्रेत्रोरन्तरपतितमादायादन्यद्भवति ॥ २५ ॥ तेन धान्यपण्यनिचयांश्चानुज्ञाताः कुर्युः ॥ २६ ॥ अन्यथा निचितमेषां पण्याध्यक्षो गृह्णीयात् ॥ २७ ॥ तेन धान्यपण्यविक्रये व्यवहरेतानुग्रहेण प्रजानाम् ॥ २८ ॥

जिस वस्तुकी खरीद फरोख्त संस्थाध्यक्ष स्वयं करता है, उसके लाभ में कोई हिस्सेदार नहीं होसकता, अर्थात् वह राजकीय होता है ॥ २५ ॥ अतः अन्य व्यापारियोंको उचित है कि वे संस्थाध्यक्षकी अनुमतिको लेकर ही धान्य आदि किसी विक्रेय वस्तुका सञ्चय करें ॥ २६ ॥ अनुमति न लेनेपर संस्थाध्यक्षको अधिकार है कि वह उनकी सङ्गृहीत विक्रेय वस्तुओंको उनसे ले लेवे ॥ २७ ॥ संस्थाध्यक्षको चाहिये कि वह उन धान्य आदि सङ्गृहीत वस्तुओंके विक्रयमें इस प्रकारका व्यवहार करे, जिसमें प्रजाओंका उपकार हो ॥ २८ ॥

अनुज्ञातक्रयादुपरि चैषां स्वदेशीयानां पण्यानां पञ्चकं शतमाजीवं स्थापयेत् ॥ २९ ॥ परदेशीयानां दशकम् ॥३०॥ ततः परमर्घं वर्धयतां क्रये विक्रये वा भावयता पणशते पञ्चपणाद्द्विशतो दण्डः ॥ ३१ ॥ तेनार्घवृद्धौ दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ॥ ३२ ॥

संस्थाध्यक्ष जिन वस्तुओंके बेचनेकी अनुमति दे देवे, यदि वे अपने ही देशमें बनी हों तो उनपर व्यापारी नियत मूल्यसे अधिक ५ पण प्रति सैकड़ा लाभ लेसकता है ॥ २९ ॥ यदि वे विदेशकी हों तो १० पण प्रति सैकड़ा लाभ लेवे ॥ ३० ॥ इससे अधिक मूल्य बढ़ानेपर और क्रय अथवा विक्रयमें ५ प्रति सैकड़ा और अधिक लाभ लेनेपर २०० पण दण्ड दिया जाय ॥ ३१ ॥ इसी प्रकार और मूल्य बढ़ाकर लाभ उठानेमें इसी क्रमसे अधिक दण्ड दिया जाय ॥ ३२ ॥

संभूयक्रये चैषामविक्रीतेतान्यं संभूयक्रयं दद्यात् ॥ ३३ ॥ पण्योपघाते चैषामनुग्रहं कुर्यात् ॥ ३४ ॥ पण्यबाहुल्यात्पण्याध्यक्षः सर्वपण्यान्येकमुखानि विक्रीणीत ॥ ३५ ॥

यदि व्यापारी मिलकर संस्थाध्यक्षसे कोई थोकमाल खरीद लेवें, और वह बिक न सके, तो अन्य व्यापारियोंको थोकमाल न देवे ॥ ३३ ॥ यदि व्यापारीका माल जल या अग्नि आदिके द्वारा नष्ट होजाय, तो संस्थाध्यक्ष उनको और माल देकर उनकी सहायता करे ॥ ३४ ॥ संस्थाध्यक्षको चाहिये कि वह सम्पूर्ण विक्रेय वस्तुओंको किसी एक व्यापारीके द्वारा ही बेचे ॥ ३५ ॥

तेष्वविक्रीतेषु नान्ये विक्रीणीरन् ॥ ३६ ॥ तानि दिवसवेतनेन विक्रीणीरन्ननुग्रहेण प्रजानाम् ॥ ३७ ॥ देशकालान्तरितानां तु पण्यानां ॥ ३८ ॥

यदि वे सरकारी माल उसके द्वारा भी न बिकसकें, तो और व्यापारी भी मालको न बेचें ॥ ३६ ॥ और उन सम्पूर्ण वस्तुओंको दैनिक वेतन देकर इस प्रकार बिकवाया जावे, जिससे प्रजाका कल्याण हो ॥ ३७ ॥ संस्थाध्यक्षका यह कर्तव्य है कि वह दूसरे देश और दूसरे समयमें होनेवाली वस्तुओंके॥३८॥

प्रक्षेपं पण्यनिष्पत्तिं शुल्कं वृद्धिमवक्रयम् ।
व्ययानन्यांश्च संख्याय स्थापयेदर्घमर्घवित् ॥ ३९ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थेऽधिकरणे वैदेहकरक्षणं द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥
आदित एकोनाशीतिः ॥ ७९ ॥

मूल्य, बनवाईका समय, वेतन, ब्याज, भाड़ा और इसी तरहके अन्य सब खर्चोंको लगाकर वस्तुके विक्रेय मूल्यका निश्चय करे ॥ ३९ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त ।

तीसरा अध्याय ।

७८ प्रकरण ।

दैवी आपत्तियोंका प्रतीकार ।

दैवान्यष्टौ महाभयानि ॥ १ ॥ अग्निरुदकं व्याधिर्दुर्भिक्षं मूषिका व्यालाः सर्पा रक्षांसीति ॥ २ ॥ तेभ्यो जनपदं रक्षेत् ॥ ३ ॥ ग्रीष्मे बहिरधिश्रयणं ग्रामाः कुर्युः ॥ ४ ॥ दशमूलीसंग्रहेणाधिष्ठिता वा ॥ ५ ॥

दैववश होनेवाले आठ महाभय हैं ॥ १ ॥ अग्नि, जल, बीमारी, दुर्भिक्ष चूहे, व्याघ्र, सांप और राक्षस ॥ २ ॥ राजा इन सबसे जनपदकी रक्षा करे ॥ ३ ॥ गरमीकी ऋतुमें ग्रामीणजन घरसे बाहर भोजन आदि पकावें ॥ ४ ॥ अथवा दशकुली (दस घरों) का रक्षक गोप (यह राजाकी ओरसे नियुक्त जमादारका नाम है, देखो अधि. २ अध्या. ३६) जहां आज्ञा देवे, उसी जगहपर भोजन आदि बनावे ॥ ५ ॥

नागरिकप्रणिधावग्निप्रतिषेधो व्याख्यातः ॥ ६ ॥ निशान्त प्रणिधौ राजपरिग्रहे च ॥ ७ ॥ बलिहोमस्वस्तिवाचनैः पर्वसु चाग्निपूजाः कारयेत् ॥ ८ ॥

नागरिक प्रणिधि (अधि. २, अध्या. ३६) नामक प्रकरणमें अग्निसे बचनेके उपाय बतला दिये गये हैं ॥ ६ ॥ निशान्त प्रणिधि (अधि. १ अध्या. २०) नामक प्रकरणके अन्तर्गत राजपरिग्रहमें भी अग्निसे बचनेके उपाय बताये हैं ॥ ७ ॥ पूर्णमासी आदि पर्व तिथियोंमें बलिहोम और स्वस्ति वचनोंसे अग्निकी पूजा करवावे ॥ ८ ॥

वर्षारात्रमनूपग्रामाः पूरवेलामुत्सृज्य वसेयुः ॥ ९ ॥ काष्ठवेणुनावश्चापगृह्णीयुः ॥ १० ॥ उह्यमानमलाबुदृतिप्लवगण्डिकावेणिकाभिस्तारयेयुः ॥ ११ ॥

वर्षा ऋतुकी रातोंमें, नदीके पासके गांव, नदीके किनारोंको छोड़कर

दूर जाकर निवास करें ॥ ९ ॥ लकड़ी, बांसके बेड़े तथा नाव आदि तैरनेके साधनोंका सदा संग्रह रक्खें ॥ १० ॥ नदीके प्रवाहके साथ बहते हुए या डूबते हुए आदमीको तूंबी, मशक, तमेड़, लक्कड़ या बेड़के सहारे तैरावें अर्थात् बचावें ॥ ११ ॥

अनभिसरतां द्वादशपणो दण्डः ॥ १२ ॥ अन्यत्र प्लवहीनेभ्यः ॥ १३ ॥ पर्वसु च नदीपूजाः कारयेत् ॥ १४ ॥ मायायोगविदो वेदविदो वा वर्षमभिचरेयुः ॥ १५ ॥

जो पुरुष, डूबते हुए आदमी को देखकर बचानेका यत्न न करें, उन्हें १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ १२ ॥ परन्तु यदि उनके पास तैरनेका कोई साधन न हो, तो वे अपराधी नहीं ॥ १३ ॥ और पूर्णमासी आदि पर्व तिथियों में नदीकी पूजा करवावे ॥ १४ ॥ तथा मान्त्रिक एवं अथर्ववेद आदिके जाननेवाले पुरुषोंसे अति वृष्टिको शान्त करनेके लिए जप होम आदि करवावे ॥ १५ ॥

वर्षावग्रहे शचीनाथगङ्गापर्वतमहाकच्छपूजाः कारयेत् ॥ १६ व्याधिभयमौपनिषदिकैः प्रतीकारैः प्रतिकुर्युः ॥ १७ ॥ औषधैश्चिकित्सकाः शान्तिप्रायश्चित्तैर्वा सिद्धतापसाः ॥ १८ ॥

वर्षाके बन्द हो जानेपर इन्द्र, गंगा, पहाड़ और समुद्रकी पूजा करवावे ॥ १६ ॥ औपनिषदिक (१४ वां) अधिकरणमें कहे हुए उपायोंके द्वारा कृत्रिम व्याधि, भयका प्रतीकार करें ॥ १७ ॥ तथा अकृत्रिम व्याधि भयको वैद्य लोग चिकित्साके द्वारा और सिद्ध तथा तपस्वी जन शान्तिकर्म और प्रायश्चित्त (व्रत उपवासादि) आदिके द्वारा दूर करें ॥ १८ ॥

तेन मरको व्याख्यातः ॥ १९ ॥ तीर्थाभिषेचनं महाकच्छवर्धनं गवां श्मशानावदोहनं कबन्धदहनं देवरात्रिं च कारयेत् ॥ २०

संक्रामक (फैलनेवाली) महाव्याधियोंके दूर करनेके लिए भी इसी प्रकारके उपाय काममें लाने चाहियें ॥ १९ ॥ गङ्गा आदि तीर्थोंमें स्नान, समुद्रकी पूजा, श्मशानमें गौओंका दोहन (दूध दुहना), चावल और सत्तूसे बने हुए कबन्ध (सिर रहित शरीर) का श्मशानमें दाह, और किसी स्थानपर देवकी पूजा करके रात्रि जागरण करवावे ॥ २० ॥

पशुव्याधिमरके स्थानान्यर्धनीराजनं स्वदैवतपूजनं च कारयेत् ॥ २१ ॥ दुर्भिक्षे राजा बीजभक्तोपग्रहं कृत्वानुग्रहं कुर्यात् ॥ २२ ॥

यदि पशुओंमें बीमारी या महामारी फैल जावे, तो स्थान २ पर रोगको दूर करनेके लिए शान्तिकर्म करवावे, और उन २ पशुओंके देवताओंकी पूजा

करवावे। (पशुओंके देवता निम्न प्रकार हैं—हाथी=सुब्रह्मण्य, घोड़ा=अश्विनी, गौ=पशुपति, भैंस=वरुण, बकरा=अग्नि इत्यादि) ॥ २१ ॥ दुर्भिक्ष हो जानेपर राजाको चाहिए कि वह बीज तथा अन्न आदि देकर प्रजाओंके ऊपर अनुग्रह करे ॥ २२ ॥

दुर्गसेतुकर्म वा भक्तानुग्रहेण भक्तसंविभागं वा देशनिक्षेपं वा ॥ २३ ॥ मित्राणि वाप्यपाश्रयेत ॥ २४ ॥ कर्शनं वमनं वा कुर्यात् ॥ २५ ॥

अथवा क्षुत्पीडितोंको उचित वेतन देकर उनसे दुर्ग या सेतु आदिका निर्माण करवावे। जो कार्य करनेमें असमर्थ होवें, उन्हें केवल अन्न देवे अथवा समीपके दूसरे देशमें कष्ट समय तक उन लोगोंके जानेका प्रबन्ध करदे ॥२३॥ अथवा प्रजाकी रक्षाके लिए, अपने मित्र राजाओंसे सहायता लेवे ॥ २४ ॥ और अपने देशके धनवान आदमियोंपर कर लगावे, तथा उनसे अधिक मात्रामें एकमुश्त धन भी लेवे ॥ २५ ॥

निष्पन्नसस्यमन्यविषयं वा सजनपदो यायात् ॥ २६ ॥ समुद्रसरस्तटाकानि वा संश्रयेत ॥ २७ ॥ धान्यशाकमूलफलावापान्सेतुषु कुर्वीत ॥२८॥ मृगपशुपक्षिव्यालमत्स्यारम्भान्वा ॥२९॥

अथवा जिस देशमें अन्नकी खूब अधिकता हो, वहांपरही जनपदके सहित चला जावे ॥ २६ ॥ अथवा समुद्रके किनारे या बड़े २ तालाबोंके किनारेपर जाकर बसे ॥ २७ ॥ जहांपर धान्य, शाक, मूल, फल आदिकी खेती भी करवा सके ॥ २८ ॥ अथवा मृग, पशु, पक्षी, व्याघ्र, मछली आदिका शिकार करके जीवन निर्वाह करे ॥ २९ ॥

मूषिकभये मार्जारनकुलोत्सर्गः ॥ ३० ॥ तेषां ग्रहणहिंसायां द्वादशपणो दण्डः ॥ ३१ ॥ शुनामनिग्रहे च ॥ ३२ ॥ अन्यत्रारण्यचरेभ्यः ॥ ३३ ॥

चूहोंका भय होनेपर बिल्ली और नेवलोंको जगह २ पर छुड़वा देवे ॥ ३० ॥ जो उनको पकड़ें या मार देवें उनको १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ३१ ॥ उनको भी १२ पण दण्ड दिया जाय, जो दूसरोंका नुकसान कर देनेपर भी अपने पालतू कुत्तोंको न पकड़े ॥ ३२ ॥ जंगली कुत्तोंके न पकड़ने में कोई अपराध नहीं ॥ ३३ ॥

स्नुहिक्षारलिप्तानि धान्यानि विसृजेदुपनिषद्योगयुक्तानि वा मूषिककरं वा प्रयुञ्जीत ॥ ३४ ॥ शान्तिं वा सिद्धतापसाः कुर्युः

॥ ३५ ॥ पर्वसु च मूषिकपूजां कारयेत् ॥ ३६ ॥ तेन शलभपक्षिक्रिमिभयप्रतीकारा व्याख्याताः ॥ ३७ ॥

सेंढके दूधमें भीगे हुए धान्यको या औपनिषदिक प्रकरणमें बतलाई हुई औषधियोंसे मिले हुए धान्यको इधर उधर बखेर देवे । (जिससे कि उसे खाकर चूहे मर जावें) । अथवा चूहोंको पकड़नेका कोई प्रबन्ध करें ॥ ३४ ॥ सिद्ध व तपस्वीजन चूहोंको नष्ट करनेके लिये शान्तिकर्म करें ॥ ३५ ॥ पर्व तिथियोंमें मूषकोंकी पूजा करवावे ॥ ३६ ॥ इससे पतङ्गे, पक्षी और छोटे २ कीड़ोंसे होनेवाले भयोंका भी प्रतीकार समझ लेना चाहिये ॥ ३७ ॥

व्यालभये मदनरसयुक्तानि पशुशवानि विसृजेत् ॥ ३८ ॥ मदनकोद्रवपूर्णान्यौदर्याणि वा ॥ ३९ ॥ लुब्धकाः श्वगणिनो वा कूटपञ्जरावपातैश्चरेयुः ॥ ४० ॥

हिंसक व्याघ्र आदि पशुओंका भय होनेपर औपानिषदिक अधिकरणमें बताये हुए मदनरस आदि युक्त, पशुओंको लाशोंको जंगलमें छुड़वा देवे । (ताकि उसे खाकर व्याघ्रादि मर जावें) ॥ ३८ ॥ अथवा धतूरा और जंगली कोदोंको मिलाकर लाशोंके पेटमें भर दिया जाय, और उन्हें जंगलमें छोड़ दिया जाय ॥ ३९ ॥ शिकारी और बहेलिये (कुत्तोंके द्वारा शिकार करनेवाली जाति विशेष) छिपे हुए गढ़ोंका उपयोग करें ॥ ४० ॥

आवरणिनः शस्त्रपाणयो व्यालानभिहन्युः ॥ ४१ ॥ अनभिसर्तुर्द्वादशपणो दण्डः ॥ ४२ ॥ स एव लाभो व्यालघातिनः ॥ ४३ ॥ पर्वसु च पर्वतपूजां कारयेत् ॥ ४४ ॥ तेन मृगपशुपक्षिसंघग्राहप्रतीकारा व्याख्याताः ॥ ४५ ॥

कवच धारणकर हथियारोंसे सिंह आदिको मारें ॥४१॥ व्याघ्र आदिसे घिरे हुए मनुष्यको जो न बचावे, उसे १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४२ ॥ जो व्याघ्रादि को मार देवे, उसे इतनाही (१२ पण) इनाम दिया जाय ॥ ४३ ॥ और पर्व तिथियोंमें पर्वतोंकी पूजा करावे ॥ ४४ ॥ इसी प्रकार अन्य जंगली पशु और पक्षियोंके झुण्डोंके आक्रमण आदिसे बचनेके उपाय समझने चाहियें ॥ ४५ ॥

सर्पभये मन्त्रौषधिभिश्च जाङ्गलीविदश्चरेयुः ॥ ४६ ॥ संभूय वोपसर्पान्हन्युः ॥४७॥ अथर्ववेदविदो वाभिचरेयुः ॥४८॥ पर्वसु नागपूजां कारयेत् ॥ ४९ ॥ तेनोदकप्राणिभयप्रतीकारा व्याख्याताः ॥ ५० ॥

सर्पका भय होनेपर मन्त्र और औषधियोंके द्वारा, विषवैद्य उनका प्रतीकार करें ॥ ४६ ॥ अथवा नगरनिवासी जनभी जिस सांपको देखें, मिलकर मार देवें ॥ ४७ ॥ अथवा अथर्ववेद (अथर्ववेदमें प्रतिपादित अभिचार कर्मों)को जाननेवाले पुरुष अभिचार क्रियाओंसे सर्पोंको मारें ॥ ४८ ॥ पर्व तिथियोंमें सर्पोंकी पूजा करावे ॥ ४९ ॥ जलचर प्राणियोंसे होनेवाले भयोंका प्रतीकार भी इसी प्रकार समझना चाहिये ॥ ५० ॥

रक्षोभये रक्षोघ्नान्यथर्ववेदविदो मायायोगविदो वा कर्माणि कुर्युः ॥ ५१ ॥ पर्वसु च वितर्दिछत्रोल्लोपिकाहस्तपताकाच्छागोपहारैश्चैत्यपूजाः कारयेत् ॥ ५२ ॥

राक्षसोंका भय होनेपर, आभिचारिक (अथर्व प्रतिपादित अभिचार कर्मको जाननेवाले, तथा मायायोग (शबादि तन्त्र प्रतिपादित मारण उच्चाटन आदि क्रियाओं) को जाननेवाले पुरुष, राक्षसोंके नाशक कर्मोंका अनुष्ठान करें ॥ ५१ ॥ और कृष्ण चतुर्दशी अष्टमी आदि पर्व तिथियोंमें वेदी, छाता, कुछ खानेका सामान, हाथमें छोटी झण्डी और बकरा भेटके लिये लेकर श्मशान भूमियोंमें राक्षसोंकी पूजा करवावे ॥ ५२ ॥

चरुं वश्चरामीत्येवं सर्वभयेष्वहोरात्रं चरेयुः ॥ ५३ ॥ सर्वत्र चोपहतान्पितेवानुगृह्णीयात् ॥ ५४ ॥

प्रत्येक भयके उपस्थित होनेपर "हम तुम्हारे लिये हवि पकाते हैं" इस प्रकार कहते हुए पुरुष दिन और रातमें घूमें ॥ ५३ ॥ उपर्युक्त भयोंसे ग्रस्त हुए प्रजा-जनोंकी सब जगह राजा इस प्रकार रक्षा करे, जैसे पिता पुत्रकी रक्षा करता है ॥ ५४ ॥

मायायोगविदस्तस्माद्विषये सिद्धतापसाः ।
वसेयुः पूजिता राज्ञा दैवापत्प्रतिकारिणः ॥ ५५ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे उपनिपातप्रतीकारस्तृतीयो ऽध्यायः ॥३॥
आदितो ऽशीतितमः ॥८०॥

इस लिये राजाको उचित है कि वह, दैवी आपत्तियोंका प्रतीकार करने वाले, मायायोगवित् और सिद्ध तपस्वियोंको सत्कार पूर्वक अपने देशमें अवश्य रक्खे ॥ ५५ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय ।

७९ प्रकरण ।

गूढ़ाजीवियोंका प्रतीकार ।

समाहर्तृप्रणिधौ जनपदरक्षणमुक्तम् ॥ १ ॥ तस्य कण्टकशोधनं वक्ष्यामः ॥ २ ॥

जनपदकी रक्षाके उपाय समाहर्तृ-प्रचार (अधि. २ अध्या. ३५। समाहर्त्ता=राजकीय कर वसूल करनेवाले अधिकारीका, प्रचार=व्यवहार जिस प्रकरण में बतलाया गया है, उस) प्रकरणमें कह दिये हैं ॥१॥ अब इस बातको कहा जायगा कि जनपदके प्रच्छन्नकण्टकोंका प्रतीकार किस प्रकार करना चाहिये ॥२॥

समाहर्ता जनपदे सिद्धतापसप्रव्रजितचक्रचरचारणकुहकप्रच्छन्दककार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकचिकित्सकोन्मत्तमूकबधिरजडान्धवैदेहककारुशिल्पिकुशीलववेशशौण्डिकापूपिकपाक्वमांसिकौदनिकव्यञ्जनान्प्रणिदध्यात् ॥ ३ ॥

समाहर्त्ताको उचित है कि गूढ़कण्टकों (छिपे हुए प्रजापीड़कों) को जाननेके लिये सम्पूर्ण जनपदमें, सिद्ध, तपस्वी, संन्यासी, निरन्तर घूमनेवाले, भाट, ऐन्द्रजालिक, अपनी इच्छानुसार घूमनेवाले, यमपटको फैलाकर जीविका करनेवाले, शकुन बतानेवाले, ज्योतिषी, वैद्य, उन्मत्त, गूंगे, बधिर, मूर्ख, अन्य व्यापारी, कारीगर, नट भांड, कलवार, हलवाई, पकामांस बेचनेवाले और रसोइये आदिके वेशमें गुप्तचरोंको नियुक्त करे ॥ ३ ॥

ते ग्रामाणामध्यक्षाणां च शौचाशौचं विद्युः ॥ ४ ॥ यं चात्र गूढ़जीविनं विशङ्केत तं सत्त्रिसवर्णेनापसर्पयेत् ॥ ५ ॥

वे गुप्तचर ग्रामीणों तथा गांवके मुखियाओंकी ईमानदारी और बेईमानीका पता लगावें ॥ ४ ॥ गुप्तचर इनमेंसे जिसको गूढ़कण्टक समझें, उसे सत्री (देखो अधि १ अध्या. १२ सूत्र १) के साथ धर्मस्थ (न्यायाधीश) के पास भेज देवें ॥ ५ ॥

धर्मस्थं विश्वासोपगतं सत्त्री ब्रूयात् ॥ ६ ॥ असौ मे बन्धुरभियुक्तः ॥ ७ ॥ तस्यायमनर्थः प्रतिक्रियतामयं चार्थः प्रतिगृह्यतामिति ॥ ८ ॥

विश्वस्त धर्मस्थको सत्री कहे किः—॥ ६ ॥ "यह मेरा बन्धु है, इसने

अमुक अपराध किया है ॥ ७ ॥ इसके इस अपराधको माफ कर देना चाहिये, और इसके बदलेमें यह धनराशि ले लीजिये" ॥ ८ ॥

स चेत्तथा कुर्यादुपदाग्राहक इति प्रवासयेत ॥ ९ ॥ तेन प्रदेष्टारो व्याख्याताः ॥ १० ॥

यदि वह न्यायाधीश धनराशि लेकर उसे छोड़ देवे, तो उसे (न्यायाधीशको) घूसखोर समझकर उस पदसे हटा दिया जावे ॥ ९ ॥ यही नियम प्रदेष्टा (कण्टकशोधनके अधिकारी, के लिये भी समझने चाहियें ॥१०॥

ग्रामकूटमध्यक्षं वा सत्त्री ब्रूयात् ॥ ११ ॥ असौ जाल्मः प्रभूतद्रव्यस्तस्यायमनर्थः ॥ १२ ॥ तेनैनमाहारयस्वेति ॥ १३ ॥ स चेत्तथा कुर्यादुत्कोचक इति प्रवासयेत ॥ १४ ॥

गांवकी जनता या गांवके मुखियासे सत्री कहे कि ॥ ११ ॥ "यह पापी बड़ा सम्पत्तिशाली है, इसके ऊपर सम्प्रति अमुक आपत्ति आई हुई है ॥ १२ ॥ इसलिये चलो आपत्तिके बहानेसे सर्वस्व लूट लेवें" ॥ १३ ॥ यदि इसके अनुसार वह जनता या अध्यक्ष ऐसाही करें तो उन्हें उत्कोचक (प्रजाको कष्ट देकर माल मारनेवाले) समझकर प्रवासित करदिया जाय॥१४॥

कृतकाभियुक्तो वा कूटसाक्षिणोऽभिज्ञातानर्थवैपुल्येनारभेत ॥ १५ ॥ ते चेत्तथा कुर्युः कूटसाक्षिणः इति प्रवास्येरन् ॥ १६ ॥ तेन कूटश्रावणकारका व्याख्याताः ॥ १७ ॥

बनावटी तौरपर अभियुक्त बना हुआ सत्री, सन्दिग्ध (जिनपर झूंठेपने का सन्देह हो गया हो) कपटी साक्षियोंको बहुतसा धन दिखाकर अपनी झूंठी गवाही देनेके लिये फुसलावे ॥ १५ ॥ यदि वे लोभमें आ जावें, तो उन्हें झूंठा साक्षी समझकर प्रवासित किया जाय ॥ १६ ॥ यही नियम झूंठे दस्तावेज़ आदि बनानेवालोंके लिये भी समझने चाहियें ॥ १७ ॥

यं वा मन्त्रयोगमूलकर्मभिः श्माशानिकैर्वा संवननकारकं मन्येत तं सत्त्री ब्रूयात् ॥ १८ ॥ अमुष्यभार्यां स्नुषां दुहितरं वा कामये ॥ १९ ॥ सा मां प्रतिकामयताम् ॥ २० ॥ अयं चार्थः प्रतिगृह्यतामिति ॥ २१ ॥

जिसको, मन्त्रोंके द्वारा अथवा औषधियोंके द्वारा, या श्मशानमें किये जानेवाले तान्त्रिक उपायोंके द्वारा वशीकरण करनेवाला समझे, उससे सत्री यह

कहे किः—"मैं अमुक पुरुषकी स्त्री, पुत्रवधू या लड़की को चाहता हूँ ॥१९॥ इस लिये ऐसा उपाय करो, कि जिससे वह भी मुझे चाहने लगे ॥ २० ॥ लो यह इतना धन लेलो" ॥ २१ ॥

स चेत्तथा कुर्यात्संवननकारक इति प्रवास्येत ॥ २२ ॥ तेन कृत्याभिचारशीलौ व्याख्यातौ ॥ २३ ॥

यदि वह लोभमें आकर वैसा काम करनेके लिये तैयार होजाय, तो उसे वशीकरण कर्त्ता (संवनन कारक) समझकर प्रवासित कर दिया जाय ॥ २२ ॥ यही नियम उन पुरुषोंके लिये भी समझने चाहियें, जो अपने ऊपर भूत, प्रेत, पिशाच आदिको बुलाकर प्रजाको कष्ट देते हैं, और तान्त्रिक मन्त्र प्रयोगोंके द्वारा अभिचार कर्म (पुरुषोंको मारदेना) करते हैं ॥ २३ ॥

यं वा रसस्य कर्तारं क्रेतारं विक्रेतारं भैषज्याहारव्यवहारिणं वा रसदं मन्येत तं सत्त्री ब्रूयात् ॥ २४ ॥ असौ मे शत्रुस्तस्यो-पघातः क्रियतामयं चार्थः प्रतिगृह्यतामिति ॥ २५ ॥ स चेत्तथा कुर्याद्रसद इति प्रवास्येत ॥ २६ ॥ तेन मदनयोगव्यवहारी व्या-ख्यातः ॥ २७ ॥

विषके बनानेवाले, खरीदने या बेचनेवाले, तथा औषधियों और भो-जन आदिका व्यापार करनेवाले पुरुषपर यदि किसीको विष देनेका सन्देह हो, तो सत्री उससे कहे किः—"अमुक पुरुष मेरा शत्रु है, उसे आप विष देकर मार डालिये और इसके बदले यह इतना धन ले लीजिये" ॥ २५ ॥ यदि वह पुरुष ऐसाही करे तो उसे विषदेनेवाला समझकर प्रवासित कर दिया जाय ॥ २६ ॥ यही नियम मूर्च्छित करनेवाली औषधियोंके व्यापारीके लिये भी समझने चाहियें ॥ २७ ॥

यं वा नानालोहक्षाराणामङ्गारभस्त्रासंदंशमुष्टिकाधिकरणीबि-म्बटङ्कमूषाणामभीक्ष्णं क्रेतारं मूषीभस्मधूमादिग्धहस्तवस्त्रालिङ्गं कर्मारोपकरणसंसर्गं कूटरूपकारकं मन्येत तं सत्त्री शिष्यत्वेन संव्यवहारेण चानुप्रविश्य प्रज्ञापयेत् ॥ २८ ॥

जो पुरुष, विविध प्रकारके लोहे या खार, तथा कोयला, धौंकनी, संडासी, हथौड़ी, अधिकरणी (लोहेकी वह वस्तु जिसे भूमिमें गाड़कर उसपर गरम लोहा रखकर ऊपरसे चोट मारते हैं), तस्वीर, छैनी, और मूषा (सुनार जिसमें सोना चांदी आदि गरम करते हैं) आदि पदार्थोंको अधिक संख्यामें

खरीदे और जिसके हाथ या कपड़ोंपर स्याही, राख तथा धुएंके चिन्ह हों, जो लुहार आदिके सब औजारोंको रखता हो, उसके ऊपर यदि छिपकर जाली सिक्का बनानेका सन्देह हो जावे, तो सत्री उसका शिष्य बनकर और अच्छी तरह मेलजोल बढ़ाकर उसके भीतरकी सब बात जानले और राजाको भी खबर देवे ॥ २८ ॥

प्रज्ञातः कूटरूपकारक इति प्रवास्येत ॥ २९ ॥ तेन रागस्यापहर्ता कूटसुवर्णव्यवहारी च व्याख्यातः ॥ ३० ॥

इस बातका निश्चय हो जानेपर कि यह छिपकर जाली सिक्के बनाता है, उसे प्रवासित कर दिया जावे ॥ २९ ॥ सुवर्ण आदिके वर्णको उड़ा देनेवाले तथा जाली (बनावटी) सोनेका व्यापार करनेवाले पुरुषोंके लिये भी यही नियम समझना चाहिये ॥ ३० ॥

आरब्धारस्तु हिंसायां गूढाजीवास्त्रयोदश ।
प्रवास्या निष्क्रयार्थं वा दद्युर्दोषविशेषतः ॥ ३१ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे गूढाजीवानां रक्षा चतुर्थो ऽध्यायः ॥४॥
आदित एकाशीतिः ॥ ८१ ॥

लोकमें उपद्रव करनेवाले तेरह गूढाजीवी (प्रच्छन्न कण्टक) कहे गये हैं धर्मस्थ, प्रदेष्टा, ग्रामका मुखिया, ग्रामका अध्यक्ष, कूटसाक्षी, कूटश्रावक, वशीकरणकर्त्ता, कृत्याशील, अभिचारशील, विष देनेवाला, मदनयोग व्यापारी, कूट रूपकर्त्ता, और कूटसुवर्ण व्यापारी, इनको देशसे निकाल दिया जावे, अथवा अपराध न्यूनाधिक होनेपर इनको उसीके अनुसार दण्ड दिया जावे ॥ ३१ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवां अध्याय ।

८० प्रकरण ।

सिद्धवेषके द्वारा दुष्टोंका प्रकाशन ।

सत्त्रीप्रयोगादूर्ध्वं सिद्धव्यञ्जना माणवा माणवविद्याभिः प्रलोभयेयुः प्रस्वापनान्तर्धानद्वारापोहमन्त्रेण प्रतिरोधकान्संवननमन्त्रेण पारतल्पिकान् ॥ १ ॥

गुप्तचरोंके प्रयोगके बाद, सिद्धोंके वेषमें चोर और व्यभिचारियोंके समूहोंमें रहते हुए ही गुप्तपुरुष, उसी ढंगकी विद्याओं (संमोहिनी विद्याओं) से

प्रजाकण्टकोंको प्रलोभन देवें । सुलाने, छिपाने संकेतसे दरवाजा खोलने आदिके मायिक मन्त्रोंसे चोरोंको, तथा वशीकरण मन्त्रोंसे व्यभिचारियोंको काबूमें करे ॥ १ ॥

तेषां कृतोत्साहानां महान्तं संघमादाय रात्रावन्यं ग्राममुद्दिश्यान्यं ग्रामं कृतकाः स्त्रीपुरुषं गत्वा ब्रूयुः ॥ २ ॥ इहैव विद्याप्रभावो दृश्यताम् ॥ ३ ॥ कृच्छ्रः परग्रामो गन्तुमिति ॥ ४ ॥

उत्साहित किये हुए चोर और व्यभिचारियोंके बड़ेभारी समूहको लेकर रात्रिमें जिस गांवको पहिले जानेका इरादा करें, उससे दूसरे गांवमें, जहां पहिलेहीसे संकेत किये हुए स्त्रीपुरुष विद्यमान हों, जाकर सिद्धवेषधारी पुरुष चोर आदिको कहें कि:— ॥ २ ॥ "यहींपर हमारी विद्याके प्रभावको देखो॥३॥ अब दूसरे गांवमें जाना तो बड़ा कठिन है " ॥ ४ ॥

ततो द्वारापोहमन्त्रेण द्वाराण्यपोह्य प्रविश्यतामिति ब्रूयुः ॥५॥ अन्तर्धानमन्त्रेण जाग्रतामारक्षिणां मध्येन माणवानतिक्रामयेयुः ॥ ६ ॥ प्रस्वापनमन्त्रेण प्रस्वापयित्वा रक्षिणः शय्याभिर्माणवैः संचारयेयुः ॥ ७ ॥

इसके पश्चात् द्वारापोह (संकेतसे दरवाजा खोल देनेवाले) मन्त्रोंसे दरवाजोंको खोलकर, उनके भीतर प्रवेश कर जानेके लिये उन्हें कहें ॥ ५ ॥ अन्तर्धान मन्त्रके द्वारा जागते हुए रक्षक पुरुषोंके बीचमेंसे उनको निकाल देवें ॥ ६ ॥ और प्रस्वापन मन्त्रसे पहरेदारोंके सुलानेका अभिनय करके, चोर आदिके द्वाराही खाटोंके साथ २ उन्हें घुमवावें ॥ ७ ॥

संवननमन्त्रेण भार्याव्यञ्जनाः परेषां माणवैः संमोदयेयुः ॥ ८ ॥ उपलब्धविद्याप्रभावाणां पुरश्चरणाद्यादिशेयुरभिज्ञानार्थम् ॥ ९ ॥ कृतलक्षणद्रव्येषु वा वेश्मसु कर्म कारयेयुः ॥ १० ॥

वशीकरण मन्त्रोंके द्वारा, दूसरोंकी कृत्रिम भार्या बनी हुई स्त्रियोंको उनके साथ संग सुखका अनुभव करावें ॥ ८ ॥ जब उनको विद्याका प्रभाव अच्छी तरह मालूम हो जावे, तो स्मरणके लिये उनसे पुरश्चरण (मन्त्रसिद्धिके अङ्गभूत व्रत आदि कर्मविशेष) आदि करनेको कहें ॥ ९ ॥ और फिर जिन घरोंमें, मालिकके किसी विशेष चिन्हसे युक्त वस्तुयें रक्खी हुई हों, वहांपर इनसे चोरी करवावें ॥ १० ॥

अनुप्रविष्टान्वैकत्र ग्राहयेयुः ॥ ११ ॥ कृतलक्षणद्रव्यक्रयवि-

क्रयाधानेषु योगसुरामत्तान्वा ग्राहयेयुः ॥ १२ ॥ गृहीतान्पूर्वापदानसहायाननुयुञ्जीत ॥ १३ ॥ पुराणचोरव्यञ्जना वा चोराननुप्रविष्टास्तथैव कर्म कारयेयुर्ग्राहयेयुश्च ॥ १४ ॥

तथा किसी एक घरमें घुसे हुए इन सब चोरोंको पकड़वा देवें ॥ ११ ॥ चिन्हसे युक्त वस्तुओंको खरीदने या बेचने या गिरवी रखनेके समयमें अथवा मादक औषधि या मदिरासे उन्मत्त हुए २ इनको पकड़वा देवे ॥ १२ ॥ इन पकड़े हुए चोरोंसे, पहिले की हुई चोरियों और चोरीमें सहयता देनेवालोंके विषयमें पूछे ॥ १३ ॥ अथवा गुप्तचर, पुराने अनुभवी चोरोंका भेस बनाकर चोरोंमें ही बिल्कुल मिल जावें, और उनसे उसी तरह चोरी करवावें और फिर पकड़वा देवें ॥ १४ ॥

गृहीतान्समाहर्ता पौरजानपदानां दर्शयेत् ॥ १५ ॥ चोरग्रहणीं विद्यामधीते राजा ॥ १६ ॥ तस्योपदेशादिमे चोरा गृहीताः ॥ १७ ॥ भूयश्च ग्रहीष्यामि ॥ १८ ॥ वारयितव्यो वः स्वजनः पापाचार इति ॥ १९ ॥

अधिकारी पुरुषको चाहिये कि वह पकड़े हुए चोरोंको नगरनिवासी लोगोंको दिखला देवे ॥ १५ ॥ और उनसे यह कहे कि "राजा चोरोंको पकड़नेकी विद्याको बहुत अच्छी तरह जानता है ॥ १६ ॥ उसीकी आज्ञानुसार ये चोर पकड़े गये हैं ॥ १७ ॥ जो ऐसा काम करेंगे उनको फिर भी मैं पकडूँगा ॥ १८ ॥ इसलिये तुमलोग सब आदमियोंसे कहदो कि वे ऐसे पाप कर्मका आचरण कभी न करें ॥ १९ ॥

यं चात्रापसर्पोपदेशेन शम्याप्रतोदादीनामपहर्तारं जानीयात्तमेषां प्रत्यादिशेत् ॥ २० ॥ एष राज्ञः प्रभाव इति ॥ २१ ॥ पुराणचोरगोपालकव्याधश्वगणिनश्च वनचोराटविकाननुप्रविष्टाः प्रभूतकूटहिरण्यकुप्यभाण्डेषु सार्थव्रजग्रामेष्वेनानभियोजयेयुः ॥ २२ ॥

अधिकारी पुरुष गुप्तचरोंके कथनानुसार जिस पुरुषको सैल और पैनी जैसी छोटी वस्तुओंके चुरानेवाला भी समझे, उसे भी जनताके सामने दिखाकर यह कहें कि ॥ २० ॥ देखो राजाका यह प्रभाव है, जो इतनी छोटी २ वस्तुओंकी चोरीको भी अच्छी तरह समझता है ॥ २१ ॥ पुराने चोर, ग्वाले, शिकारी और बहेलियेके भेसमें, राजपुरुष जंगलीचोरों तथा कोल भीलोंमें बिल्कुल एकमिल जावें और जहां अधिक तादादमें बनावटी हिरण्य और तांबे

आदिके पात्र हों, ऐसे व्यापारियोंके पड़ाव या गांवोंमें चोरी करनेके लिये इनको तैयार करदेवें ॥ २२ ॥

अभियोगे गूढबलैर्घातयेयुः ॥ २३ ॥ मदनरसयुक्तेन वा पथ्यादनेनानुगृहीतलोप्त्रभारानायतगतपरिश्रान्तान्प्रस्वपतः प्रहवणेषु योगसुरामत्तान्वा ग्राहयेयुः ॥ २४ ॥

जब ये लोग चोरी करना आरम्भ करें, तो वहांपर छिपी हुई सेनासे इनको मरवा देवें ॥ २३ ॥ या रास्तेमें विषरस युक्त भोजन देकर इनको मार डालें। अथवा सिरपर चोरीके मालकी गठढ़ी उठाकर आनेजानेके कारण थककर सोये हुए, या आनन्दपूर्वक भोजन करनेके बाद बढ़िया मदिरा पीनेके कारण उन्मत्त हुए २ इनको गिरफ्तार करादेवें ॥ २४ ॥

पूर्ववच्च गृहीत्वैनान्समाहर्ता प्ररूपयेत् ।
सर्वज्ञख्यापनं राज्ञः कारयन्राष्ट्रवासिषु ॥ २५ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे सिद्धव्यञ्जनैर्माणवप्रकाशनं पञ्चमो ऽध्यायः ॥ ५ ॥ आदितो द्व्यशीतिः ॥ ८२ ॥

अधिकारी पुरुष, इनको पकड़कर समग्र जनताके सन्मुख, राजाकी सर्वज्ञताको प्रकट करता हुआ, पहिलेकी तरह इनको उपस्थित करे ॥ २५ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरणमें पांचवां अध्याय समाप्त।

छठा अध्याय।

८१ प्रकरण।

शङ्का, चोरीका माल, तथा सैंधसे चोरोंका पकड़ना।

सिद्धप्रयोगादूर्ध्वं शङ्कारूपकर्माभिग्रहः ॥ १ ॥

सिद्धभेस गुप्तचरोंके प्रयोगके बाद, अब शङ्का, रूप और कर्मसे चोरोंका पकड़ना बताया जाता है ॥ १ ॥

क्षीणदायकुटुम्बमल्पनिर्वेशं विपरीतदेशजातिगोत्रनामकर्मापदेशं प्रच्छन्नवृत्तिकर्माणं मांससुराभक्ष्यभोजनगन्धमाल्यवस्त्रविभूषणेषु प्रसक्तमतिव्ययकर्तारं पुंश्चलीद्यूतशौण्डिकेषु प्रसक्तमभीक्ष्णप्रवासिनमविज्ञातस्थानगमनपण्यमेकान्तारण्यनिष्कुटविकालचारिणं प्रच्छन्ने सामिषे वा देशे बहुमन्त्रसंनिपातं सद्यःक्षतव्र-

णानां गूढप्रतीकारयितारमन्तर्गृहनित्यमभ्याधिगन्तारं कान्तापरं परपरिग्रहाणां परस्त्रीद्रव्यवेश्मनामभीक्ष्णप्रष्टारं कुत्सितकर्मशास्त्रोपकरणसंसर्गं विरात्रे छन्नकुड्यच्छायासंचारिणं विरूपद्रव्याणामदेशकालविक्रेतारं जातवैराशयं हीनकर्मजातिं विगूहमानरूपं लिङ्गेन आलिङ्गिनं लिङ्गिनं वा भिन्नाचारं पूर्वकृतापदानं स्वकर्मभिरपदिष्टं नागरिकं महामात्रदर्शने गूहमानमपसरन्तमनुच्छ्वासोपवेशिनमाविग्नं शुष्कभिन्नस्वरमुखवर्णं शस्त्रहस्तं मनुष्यसंपातत्रासिनं हिंस्रस्तेननिधिनिक्षेपापहारप्रयोगगूढाजीविनामन्यतमं शङ्केतेति शङ्काभिग्रहः ॥ २ ॥

शङ्कासे पकड़े जानेवाले, अर्थात् जिनके ऊपर चोरी आदिकी शङ्का की जासकती है, ऐसे पुरुषोंको पहिले बताते हैं:—जिनकी कुलक्रमागत सम्पत्ति और कृषि आदिका कार्य क्षीण होता जाता हो, जिनको खाने और खर्चके लिये पर्याप्त वेतन न मिलता हो, जो अपने देश, जाति गोत्र नाम तथा कामको ठीक २ न बतावें, जीविकाके लिये छिपे तौरपर काम करें, मांस शराब आदिके खानेपीने और इत्र फुलेल वस्त्र तथा अन्य प्रकारकी सजावटमें आसक्ति रखने वाले, अत्यधिक व्यय करनेवाले, वेश्या जुआरी और शराबियोंमें रहनेवाले, जल्दी २ विदेशको जानेवाले, जिनका जानेके स्थानका कुछ पता न चले, जो एकान्त जंगलमें या घरके बागीचोंमें अनुचित समयमें जावें, छिपे तथा धनियोंके घरोंके निकट बार २ कुछ देखने या सोचनेवाले, ताजे लगे हुए घावोंको छिपकर इलाज करानेवाले, सदा घरके भीतर रहनेवाले, सामने आते हुए किसी पुरुषको देखकर तत्काल लौट जानेवाले, स्त्री परायण, दूसरेके परिजनों तथा स्त्री द्रव्य और घर आदिके विषयमें बार २ पूछनेवाले, चोरी आदि कुत्सित कर्मोंमें उपयोगी शस्त्रों तथा अन्य साधनोंको अच्छी तरह जाननेवाले, आधीरातमें छिपकर दीवारोंकी छायामें घूमनेवाले, गहने आदि वस्तुओंकी असली शकल बिगाड़कर अनुचित स्थान और समयमें बेचनेवाले, शत्रुताका भाव रखनेवाले, नीचकर्म करनेवाले, तथा नीचजातिमें उत्पन्न हुए २, अपनी असली सूरतको छिपाकर रखनेवाले, जो ब्रह्मचारी आदि न होकर भी ब्रह्मचारी आदिके वेषमें रहनेवाले, ब्रह्मचारी आदि होते हुए भी अपने नियमोंका ठीक २ पालन न करनेवाले, जिन्होंने पहिले भी कभी चोरीकी हो, जो अपने बुरे कामोंसे सब जगह प्रसिद्ध हों, नगरके पहरेदार तथा अन्य राजकर्मचारीके दीखनेपर छिपजाने तथा भाग जानेवाले, चुपचाप छिपकर बाहर एकान्तमें बैठनेवाले,

डरे हुए, सूखे हुए मुंह तथा भर्राई हुई आवाज़वाले, हाथमें हथियार लेकर आते हुए पुरुषको देखकर डर जानेवाले, इत्यादि पुरुषोंके ऊपर यह शङ्का की जासकती है कि या तो यह किसीका मारनेवाला है, या चौर है, या किसीकी निधि तथा निक्षेपका अपहरण करनेवाला है, या क्रोधमें किसीके ऊपर हथियार चलानेवाला है, या गूढाजीवी अर्थात् प्रजाको कष्ट देनेवाला प्रजाकण्टक है। यह शङ्कासे पकड़े जानेके विषयमें कहा गया ॥ २ ॥

रूपाभिग्रहस्तु ॥ ३ ॥ नष्टापहृतमविद्यमानं तज्जातव्यवहारिषु निवेदयेत् ॥ ४ ॥ तच्चेन्निवेदितमासाद्य प्रच्छादयेयुः साचिव्यकरदोषमाप्नुयुः ॥ ५ ॥ अजानन्तोऽस्य द्रव्यस्यातिसर्गेण मुच्येरन् ॥ ६ ॥

अब रूपके (चोरीका माल) द्वारा पकड़े जानेके विषयमें कहा जायगा ॥ ३ ॥ अपने प्रमादसे कहीं खोई हुई, या चोरी होगई हुई वस्तु जल्दीही न मिल जावे तो उस वस्तुके व्यापारीको इसकी सूचना देदी जावे (कि इस हुलियेकी वस्तु खोई हुई है यदि तुम्हारे पास आवे तो खयाल रखना) ॥ ४ ॥ यदि वे व्यापारी कही हुई वस्तुके आजानेपर भी उसे छिपा लेवें, तो चोरीमें सहायता देनेका जो दण्ड हो, वह उन्हें दिया जाय ॥ ५ ॥ यदि वे इस बातको न जानते हों, तो उस द्रव्यके दे देनेपर उसके अपराधसे छुटकारा पासकते हैं ॥ ६ ॥

न चानिवेद्य संस्थाध्यक्षस्य पुराणभाण्डानामाधानं विक्रयं वा कुर्युः ॥ ७ ॥ तच्चेन्निवेदितमासाद्येत रूपाभिगृहीतमागमं पृच्छेत् ॥ ८ ॥ कुतस्ते लब्धमिति ॥ ९ ॥ स चेद्ब्रूयाद्दायाद्यादवाप्तममुष्माल्लब्धं क्रीतं कारितमाधिप्रच्छन्नम् ॥ १० ॥

संस्थाध्यक्षको बिना सूचना दिये पुराने मालको न कहीं गिरवी रक्खें, और न बेचें ॥ ७ ॥ यदि वह खोई हुई वस्तु किसी व्यापारीके पास आजावे, तो उस वस्तुके लाने वालेको पूछा जावे, कि ॥ ८ ॥ तुमने यह वस्तु कहांसे ली है ? ॥ ९ ॥ यदि वह कहे कि मैंने यह अपनी जद्दी जायदादसे ली है, या और किसीसे (जिससे ली हो उसका नाम लेकर कहे) ली है, अथवा मैंने खरीदी या बनवाई है, या अभीतक रहन रक्खे रहनेके कारण यह वस्तु छिपी रही ॥ १० ॥

अयमस्य देशः कालश्चोपसंप्राप्तः ॥ ११ ॥ अयमस्यार्घः प्रमाणं लक्षणमूल्यं चेति तस्यागमसमाधौ मुच्येत ॥ १२ ॥ ना-

ष्टिकश्चेत्तदेव प्रतिसंदध्यात् ॥१३॥ यस्य पूर्वो दीर्घश्च परिभोगः शुचिर्वा देशस्तस्य द्रव्यमिति विद्यात् ॥ १४ ॥

यह अमुक स्थान और अमुक समयपर लीगई थी ॥ ११ ॥ यह इसका असली मूल्य है, इसमें यह प्रमाण है, यह लक्षण है, यह इसकी आजकलकी कीमत है, इस प्रकार उसका सब हाल ठीक २ बतला देनेपर उसे अपराधी न समझा जावे ॥ १२ ॥ यदि अभियोक्ता (जिसकी वस्तु खोई हुई या चोरी गई है, वह) भी उसी चीजको अपनी बतलाये, तो ॥ १३ ॥ उन दोनोंमेंसे उसी व्यक्तिको उस वस्तुका मालिक समझा जाय, जो पहिले और बहुत दिनोंसे उस वस्तुका उपभोगकर रहा हो, तथा जिसके साक्षी विश्वस्त और सच्चे हों ॥ १४ ॥

चतुष्पदद्विपदानामपि हि रूपलिङ्गसामान्यं भवति किमङ्ग पुनरेकयोनिद्रव्यकर्तृप्रसूतानां कुप्याभरणभाण्डानामिति ॥ १५ ॥

क्योंकि प्रायः यह देखा जाता है कि जब भिन्न २ योनियोंसे उत्पन्न होनेवाले चौपायोंमें भी आकृतिसादृश्य और चिन्हसादृश्य है, तो यह क्या अचम्भेकी बात है कि एकही कारीगरके द्वारा एकही द्रव्यसे बनी हुई आभूषण बर्तन आदि वस्तुओंमें परस्पर समानता हो । (अर्थात् समानता अवश्य हो सकती है, और इसलिये किसी वस्तुको देखकर आदमी उसपर अपनी वस्तुका धोका खासकता है ।) ॥ १५ ॥

स चेद्ब्रूयात् ॥ १६ ॥ याचितकमवक्रीतकमाहितकं निक्षेपमुपनिधिं वैय्यावृत्यकर्म वामुष्येति तस्यापसरप्रतिसंधानेन मुच्येत ॥ १७ ॥

यदि वह वस्तु लानेवाला पुरुष, पूछनेपर यह कहे कि:— ॥ १६ ॥ यह वस्तु मैं अमुक पुरुषसे मांगकर लाया हूँ, या किरायेपर लाया हूँ, या मेरे पास इसको किसी पुरुषने गिरवी रक्खा है, या कुछ वस्तु बनानेके लिये मेरे पास रख गया है, या रक्षाके लिये विश्वास करके मुझे दे गया है, या मैंने वेतनमें अमुक पुरुषसे इसे पाया है, इत्यादि । तो उस पुरुषको बुलाकर पूछनेपर वह यह कहदे कि जो कुछ इसने कहा है वह ठीक है, तो वह वस्तु लानेवाला पुरुष छोड़ दिया जावे ॥ १७ ॥

नैवमित्यपसारो वा ब्रूयात् ॥ १८ ॥ रूपाभिगृहीतः परस्य दानकारणमात्मनः प्रतिग्रहकारणमुपलिङ्गनं वा दायकदापकनिबन्धकप्रतिग्राहकोपदेष्टृभिरुपश्रोतृभिर्वा प्रतिसमानयेत् ॥ १९ ॥

यदि वह पुरुष कहदे कि इसने ठीक नहीं कहा है, मुझसे इसने कुछ नहीं मांगा, इत्यादि ॥ १८ ॥ तो वह वस्तु लानेवाला पुरुष, दूसरेके उस वस्तुको देनेके कारणको और अपने लेनेके कारणको अदालतमें उपस्थित करे, तथा युक्तियोंसे इस बातको सिद्ध करे कि मैंने यह वस्तु इससे ली है। उस वस्तुके देनेवाले, दिलानेवाले, लिखनेवाले, लेनेवाले, लिखानेवाले तथा साक्षी पुरुषोंको न्यायालयमें उपस्थित करे ॥ १९ ॥

उज्झितप्रनष्टनिष्पतितोपलब्धस्य देशकाललाभोपलिङ्गनेन शुद्धिः ॥ २० ॥ अशुद्धस्तच्च तावच्च दण्डं दद्यात् ॥ २१ ॥ अन्यथा स्तेयदण्डं भजेत ॥ २२ ॥ इति रूपाभिग्रहः ॥ २३ ॥

यदि अभियोक्ता, कहींपर भूली हुई, खोई हुई या लेजाई हुई वस्तुके प्राप्त होजानेपर उसके सम्बन्धमें देश, काल तथा अपने स्वत्वको ठीक २ सिद्ध कर देता है, तो समझना चाहिये, यह उसीकी वस्तु है ॥ २० ॥ यदि सिद्ध न करसके, तो उतनीही कीमतकी वैसी दूसरी वस्तु और उतना ही दण्ड देवे ॥ २१ ॥ अन्यथा उसको चोरीका दण्ड दिया जावे ॥ २२ ॥ यहांतक रूपके द्वारा पकड़नेके सम्बन्धमें कहा गया ॥ २३ ॥

कर्माभिग्रहस्तु ॥ २४ ॥

अब इसके आगे चौर्य कर्मके द्वारा पकड़े जानेके विषयमें कहा जाता है ॥ २४ ॥

[चोरी तीन प्रकारकी होती है:—१ भीतरसे की जानेवाली, २ बाहरसे ३ दोनों ओरसे। पहिले, पहिली चोरीके विषयमें कहा जाता है:-

मुषितवेश्मनः प्रवेशनिष्क्रमनमद्वारेण द्वारस्य संधिना बीजेन वा वेधमुत्तमागारस्य जालवातायननीप्रवेधमारोहणावतरणे च कुड्यस्य वेधमुपखननं वा गूढद्रव्यनिक्षेपणग्रहणोपायमुपदेशोपलभ्यमभ्यन्तरच्छेदोत्करपरिमर्दोपकरणमभ्यन्तरकृतं विद्यात् ॥२५॥ विपर्यये बाह्यकृतं उभयत उभयकृतम् ॥ २६ ॥

यदि चोरी किये हुए घरमें, पीछे के दरवाजे से आना जाना हुआ हो, अथवा दरवाजा जोड़ों से या नीचे से तोड़ दिया गया हो, मकान ऊँचा होने पर खिड़की या रोशनदानों को तोड़ दिया गया हो, चढ़ने और उतरने के लिये दीवार में ईंट निकालकर या खोदकर जगह बना ली गई हो, बतलाने परही मालूम होने वाली खूब छिपाकर रक्खी हुई वस्तुओं को लेने के लिये ठीक उसी

जगह से दीवार या जमीन खोदी गई हो, और मकान के भीतर खोदीहुई मट्टी बे मालूम करदी गई हो, तो समझना चाहिये कि इस चोरी में भीतर रहने वाले किसी आदमी का हाथ अवश्य है ॥ २५ ॥ यदि इससे विपरीत लक्षण मिलें, तो इसे बाहर वालों का ही काम समझें, और दोनों तरह के लक्षण मिलने पर दोनों का ॥ २६ ॥

अभ्यन्तरकृते पुरुषमासन्नं व्यसनिनं क्रूरसहायं तस्करोपकरणसंसर्गं स्त्रियं वा दरिद्रकुलामन्यप्रसक्तां वा परिचारकजनं वा तद्विधाचारमतिस्वप्नं निद्राक्लान्तमाविक्लान्तमाविग्नं शुष्कभिन्नस्वरमुखवर्णमनवस्थितमतिप्रलापिनमुच्चारोहणसंरब्धगात्रं विलूननिघृष्टभिन्नपाटितशरीरवस्त्रं जातकिणसंरब्धहस्तपादं पांसुपूर्णकेशनखं विलूनभुग्नकेशनखं वा सम्यक्स्नातानुलिप्तं तैलप्रमृष्टगात्रं सद्योधौतहस्तपादं वा पांसुपिच्छिलेषु तुल्यपादपदनिक्षेपं प्रवेशनिष्कसनयोर्वा तुल्यमाल्यमद्यगन्धवस्त्रच्छेदविलेपनस्वेदं परीक्षेत ॥२७॥ चोरं पारदारिकं वा विद्यात् ॥ २८ ॥

यदि यह सन्देह हो कि इस चोरी आदि में भीतर के आदमी का हाथ है, तो उसकी जांचके लिये भीतर या समीप रहने वाले निम्न प्रकार के आदमियों से पूछताछ करे, :—जो जुआरी हो या शराब पीता हो, क्रूर आदमियों की सहायता करने वाला हो, चोरों की संगत करने वाला, दरिद्री, अथवा अन्यासक्त स्त्री, या अन्य स्त्री पर आसक्त नौकर चाकर, बहुत सोनेवाला, निद्रा के कारण थका हुआ सा, मानसिक कष्टों से दुःखी, डरा हुआ, घबड़ाये हुए चेहरे और भर्राई हुई आवाज वाला, चञ्चल, बकवादी, ऊपर चढ़ने में दूसरे की सहायता लेने वाला, जिसके शरीरके वस्त्र कटे फटे और रगड़े हुए मालूम पड़ें, जिसके हाथ और पैरों में ठेक पड़ी हुई हों, जिसके बाल और नाखूनों में धूल भरी हुई हो, तथा कटे फटे और इधर उधर बिखरे हुए हों, जिसने अच्छी तरह स्नान करनेके बाद फिर शरीर पर चन्दन आदि कुछ लगा लिया हो, शरीर पर तेल की मालिश करली हो, फौरन ही हाथ पैर धो डाले हों, धूल या कीचड़ में जिसके पांव के सदृश चिन्ह मिल जांय, जिसके ऊपर ऐसा ही गन्ध आता हो जैसा कि चोरी किये हुए मकानमें रक्खी हुई माला और मद्य का गन्ध हो, उसी तरह कपड़े फटे हों तथा चन्दनादि लगाने पर पसीना भी वैसा ही हो ॥ २७ ॥ इस तरह के पुरुषों से अच्छी तरह पूछताछ करके फिर इस बात का निर्णय करे कि अमुक पुरुष चोर या व्यभिचारी है॥२८॥

सगोपस्थानिको बाह्यं प्रदेष्टा चोरमार्गणम् ।
कुर्यान्नागरिकश्चान्तर्दुर्गे निर्दिष्टहेतुभिः ॥ २९ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे शङ्कारूपकर्माभिग्रहः षष्ठो ऽध्यायः ॥ ६ ॥
आदितस्त्र्यशीतिः ॥ ८३ ॥

यदि चोरी आदि करने वाले बाहर के ही आदमी हों, तो गोप और स्थानिक को साथ लेकर प्रदेष्टा उनकी तालाश करे । तथा नागरिक बतलाये हुए उपायों के द्वारा नगरों में ही उनकी खोज करे ॥ २९ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरण में छठा अध्याय समाप्त ।

सातवां अध्याय

८२ प्रकरण

आशुमृतक परीक्षा

तैलाभ्यक्तमाशुमृतकं परीक्षेत ॥ १ ॥ निष्कीर्णमूत्रपुरीषं वातपूर्णकोष्ठत्वक्कं शूनपादपाणिमुन्मीलिताक्षं सव्यञ्जनकण्ठं पीडननिरुद्धोच्छ्वासहतं विद्यात् ॥ २ ॥

किसी भारी घाव या बीमारीके बिना ही जो पुरुष अचानक मर जावे उसे आशुमृतक कहते हैं । द्रव्यको अपहरण करने वाले कण्टकों के विषयमें कहा जा चुका है, अब प्राणापहारी कण्टकों को कहते हैं ।

आशुमृतक को तेलमें डालकर फिर परीक्षा करे ॥ १ ॥ जिसका पेशाब व पखाना निकल गया हो, पेट या खाल में हवा भरी हुई हो, हाथ पैरों पर सूजन आई हुई हो, आंखें फटी हुई हों, गलेमें निशान हो, तो समझना चाहिये कि इस आदमी का गला घोंटकर मारागया है ॥ २ ॥

तमेव संकुचितबाहुसक्थिमुद्बन्धहतं विद्यात् ॥ ३ ॥ शूनपाणिपादोदरमपगताक्षमुद्वृत्तनाभिमवरोपितं विद्यात् ॥ ४ ॥ निस्तब्धगुदाक्षं संदष्टजिह्वमाध्मातोदरमुदकहतं विद्यात् ॥ ५ ॥

यदि उसकी बांहें और टांगें सुकड़ी हुई हों, तो समझना चाहिये कि इसे लटकाकर फांसी लगाकर मारा गया है ॥ ३ ॥ यदि हाथ पैर और पेट फूले हुए हों, आंखें भीतर को गढ़ी हुई हों, नाभि ऊपर को उठी हुई हो, तो समझना चाहिये कि इसे शूली पर चढ़ाकर मारा गया है ॥ ४ ॥ जिसकी गुदा

और आंख बाहर निकल गई हों, जीभ कट सी गई हो, पेट फूला हुआ हो, उसे समझना चाहिये कि यह पानी में डुबाकर मारा गया है ॥ ५ ॥

शोणितानुसिक्तं भग्नभिन्नगात्रं काष्ठै रश्मिभिर्वा हतं विद्यात् ॥ ६ ॥ संभग्नस्फुटितगात्रमवक्षिप्तं विद्यात् ॥ ७ ॥ श्यावपाणि-पाददन्तनखं शिथिलमांसरोमचर्माणं फेनोपदिग्धमुखं विषहतं विद्यात् ॥ ८ ॥

जो खून से भीगा हुआ हो, शरीर के अवयव टूट फूट गये हों, उसे समझना चाहिये कि यह लाठियों और रस्सियों से मारा गया है ॥ ६ ॥ जिस का शरीर जगह २ से फट गया हो, उसे समझना चाहिये कि यह मकान आदि के ऊपर से गिराकर मारा गया है ॥ ७ ॥ जिसके हाथ, पैर, दांत, नाखून कुछ कुछ काले पड़ गये हों, मांस, रुएँ, और खाल ये ढीले पड़ गये हों, तथा, मुँहसे झाग आता हो, उसे समझना चाहिये कि यह जहर खिलाकर मारा गया है ॥ ८ ॥

तमेव सशोणितदंशं सर्पकीटहतं विद्यात् ॥ ९ ॥ विक्षिप्त वस्त्रगात्रमतिवांतविरिक्तं मदनयोगहतं विद्यात् ॥ १० ॥ अतोऽन्यतमेन कारणेन हतं हत्वा वा दण्डभयादुद्बन्धनिकृत्तकण्ठं विद्यात् ॥ ११ ॥

यदि हालत यही हो, और किसी काटे हुए स्थानसे रक्त निकल रहा हो, तो समझना चाहिये कि इसे सांपसे, अथवा अन्य किसी जहरीले कीड़े से कटवा कर मारा गया है ॥ ९ ॥ जिसने अपने वस्त्र तथा शरीर को इधर उधर बखेरसा रक्खा हो, तथा जिसको कै और दस्त बहुत आये हों, उसे समझना चाहिये कि यह धतूरा आदि उन्मादक औषधियें खिलाकर मारा गया है ॥ १० ॥ इन उपर्युक्त कारणोंमें से किसी एक कारणसे मरे हुए आदमी को पहिचाने। अथवा कोई व्यक्ति किसी को मारकर फिर यह विचार करके कि अब राजा बड़े कष्ट से मेरे प्राण लेगा, इस डरसे स्वयं ही गले में फांसी लगाकर लटक कर या अपनी गर्दन काटकर अपने आपही मर सकता है ॥ ११ ॥

विषहतस्य भोजनशेषं पयोभिः परीक्षेत ॥ १२ ॥ हृदयादु-द्धृत्याग्नौ प्रक्षिप्तं चिटचिटायदिन्द्रधनुर्वर्णं वा विषयुक्तं विद्यात् ॥ १३ ॥ दग्धस्य हृदयमदग्धं दृष्ट्वा वा तस्य परिचारकजनं वा दण्डपारुष्यातिलब्धं मार्गेत ॥ १४ ॥

विषसे मरे हुए व्यक्ति के पेटमेंसे शेष अन्न निकाल, उसे रस आदि (रासायनिक क्रिया) के द्वारा परीक्षा करवावे। (किसी पुस्तक में 'पयोभिः' की जगह 'वयोभिः' पाठ है। अर्थात् पक्षियों के द्वारा, उन्हें वह अन्न खिलाकर उसकी परीक्षा करावे) ॥१२॥ पेटमें सर्वथा अन्नका परिपाक हो जानेपर, हृदय का कुछ हिस्सा कटवाकर उसे अग्निमें डाले, उसमें से यदि 'चिट चिट' इस प्रकार जलने का शब्द निकले, और वर्षा कालिक इन्द्र धनुष के समान हरे नीले लाल रंग दीखें, तो उसे विषयुक्त समझा जावे ॥ १३ ॥ जलाये हुए पुरुषके अधजले हृदय प्रदेश को देखकर, अथवा मरे हुए व्यक्तिके नौकर चाकरों से जिन्हें, वाक्पारुष्य और दण्डपारुष्य से पीड़ित किया गया हो, विष देने वालेका पता लगावे ॥ १४ ॥

दुःखोपहतमन्यप्रसक्तं वा स्त्रीजनं दायानिवृत्तिस्त्रीजनाभिमन्तारं वा बन्धुम् ॥ १५ ॥ तदेव हतोद्बन्धस्य परीक्षेत ॥१६॥ स्वयमुद्बन्धस्य वा विप्रकारमयुक्तं मार्गेत ॥ १७ ॥

दुःखोंसे पीड़ित तथा अन्य पुरुषमें आसक्त स्त्रीको और इस प्रकार समझने वाले बान्धवको, कि अमुक व्यक्तिके मरजानेपर इसकी सम्पत्तिका दाय मुझे प्राप्त होगा, अथवा इसकी स्त्रियां मेरी भोग्य होजांयगी; मृत व्यक्तिके विषयमें पूछा जाय ॥ १५ ॥ इसी प्रकार मारकर मर जानेवालेके विषयमें पूछताछ कीजावे ॥ १६ ॥ यदि कोई व्यक्ति स्वयंही फांसी लगाकर मरगया हो, तो उसके विषयमें इस बातका पता लगाया जाय कि इसको क्या भयङ्कर कष्ट था जो इसने ऐसा किया ॥ १७ ॥

सर्वेषां वा स्त्रीदायाद्यदोषः कर्मस्पर्धा प्रतिपक्षद्वेषः पण्यसंस्थ समवायो वा विवादपदानामन्यतमद्वा रोषस्थानम् ॥ १८ ॥ रोषनिमित्तो घातः ॥ १९ ॥

साधारणतया सबही पुरुषोंके क्रोधके निम्नलिखित कारण होते हैं:— स्त्री, दायभाग, राजकुलोंमें हुकूमतका संघर्ष, शत्रुके साथ शत्रुता, व्यापार (एक दूसरेको नुक्सान पहुँचानेकी इच्छासे), संघ, (जब संघमें किसीकी प्रधानता नष्ट होजाय) साधारण जनताके परस्पर क्रोधके येही आधारभूत विषय हैं ॥ १८ ॥ क्रोधके बढ़ जानेपर ही एक पुरुष दूसरे पुरुषको मार डालता है ॥ १९ ॥

स्वयमादिष्टपुरुषैर्वा चोरैरर्थनिमित्त सादृश्यादन्यवैरिभिर्वा हतस्य घातमासन्नेभ्यः परीक्षेत ॥ २० ॥ येनाहूतः सहस्थितः

प्रस्थितो हतभूमिमानीतो वा तमनुयुञ्जीत ॥ २१ ॥

जिसने आत्मघात किया हो, या जिसको किसीने नौकरचाकरोंसे मर-वाया हो, या जिसको चोरोंने धनके कारण मार दिया हो, या शत्रुओंने शकल सूरत एकसा होनेसे किसी दूसरे आदमीके धोखेमें किसीको मार दिया हो, इन सब तरहकी मौतोंके विषयमें मृतव्यक्तियोंके समीप रहनेवालोंसे पूछताछ की जाय ॥ २० ॥ जिसने इसको बुलाया, जिसके साथ ठहरा, जिसके साथ गया, जो इसको मृत्युस्थानमें लाया, उससे पूछा जावे ॥ २१ ॥

ये चास्य हतभूमावासन्नचरास्तानेकैकशः पृच्छेत् ॥ २२ ॥ केनायमिहानीतो हतो वा ॥ २३ ॥ कः सशस्त्रः संगूहमान उद्विग्नो वा युष्माभिर्दृष्ट इति ॥ २४ ॥ ते यथा ब्रूयुस्तथानुयुञ्जीत ॥ २५ ॥

और जो पुरुष मृत्युस्थानमें इधर उधर घूमरहे हों, उन सबको एक २ करके पूछे ॥२२॥ इसे यहां कौन लाया था ? और किसने इसे मारा है ॥२३॥ कौन आदमी हथियारबन्द अपने आपको छिपाता हुआ, घबड़ाया हुआ, आप लोगोंने इधर आते जाते देखा है ॥ २४ ॥ वे जैसा कहें, उसीके अनुसार और भी आवश्यक बातोंका पता लगावे ॥ २५ ॥

अनाथस्य शरीरस्थमुपभोगं परिच्छदम् ।
वस्त्रं वेपं विभूषां वा दृष्ट्वा तद्व्यवहारिणः ॥२६॥
अनुयुञ्जीत संयोगं निवासं वासकारणम् ।
कर्म च व्यवहारं च ततो मार्गणमाचरेत् ॥ २७ ॥

मृतव्यक्तिके शरीरपर धारण किये हुए माला आदि (उपभोग) और छाता जूता आदि (परिच्छत), कपड़े, वेष (जटिल है या मुण्डी है, इत्यादि) तथा अलङ्कार आदिको अच्छी तरह देखकर, उनका (माला आदिका) व्यापार करनेवालोंसे पूछे कि यह पुरुष (मृतव्यक्ति) किनके साथ मित्रता रखता था, कहां उठता बैठता था, अमुक स्थानमें यह क्यों रहता था, यह क्या काम करता था, और इसका व्यवहार वर्त्ताव कैसा था, इत्यादि । इन सब बातोंका ठीक २ पता लगा लेनेपर फिर घातक पुरुषका अन्वेषण किया जावे ॥ २६-२७ ॥

रज्जुशस्त्रविषैर्वापि कामक्रोधवशेन यः ।
घातयेत्स्वयमात्मानं स्त्री वा पापेन मोहिता ॥ २८ ॥
रज्जुना राजमार्गे तां चण्डालेनापकर्षयेत् ।

न श्मशानविधिस्तेषां न संबन्धिक्रियास्तथा ॥ २९ ॥

जो पुरुष काम या क्रोधके वशीभूत होकर फांसी लगाकर, हथियारसे अथवा विषके द्वारा आत्महत्या करले, या कोई स्त्री पापसे मोहित हुई २ आत्महत्या करले, तो चण्डाल उन्हें रस्सीमें बांधकर बाज़ारमें घसीटता हुआ लेजावे। ऐसे व्यक्तियोंके दाहादि संस्कार सर्वथा वर्जित हैं, और न उनके लिये जलाञ्जलि आदि दीजावे ॥ २८-२९ ॥

बन्धुस्तेषां तु यः कुर्यात्प्रेतकार्यक्रियाविधिम्।
तद्गतिं स चरेत्पश्चात्स्वजनाद्वा प्रमुच्यते ॥ ३० ॥

जो बान्धव, आत्म-घातियोंके दाह आदि संस्कार और तर्पण आदि क्रियाओंको करे, वह अपनी मृत्युके अनन्तर आत्म-घातियोंकी गतिको प्राप्त होवे अथवा उसे जातिच्युत करदिया जावे ॥ ३० ॥

संवत्सरेण पतति पतितेन समाचरन्।
याजनाध्यापनाद्यौनात्तैश्चान्योऽपि समाचरन् ॥ ३१ ॥

इति कण्टकशोधनं चतुर्थे अधिकरणे आशुमृतकपरीक्षा सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥
आदितश्चतुरशीतिः ॥ ८४ ॥

पतित पुरुषके साथ यजन अध्ययन और विवाह आदि सम्बन्ध करता हुआ पुरुष, एक वर्षके अन्दर स्वयं पतित होजाता है। फिर उसके साथ उपर्युक्त व्यवहार करनेवाले अन्य पुरुष भी एक वर्षमें पतित होते चले जाते हैं ॥ ३१ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरणमें सातवां अध्याय समाप्त।

आठवां अध्याय।

८३ प्रकरण।

वाक्य कर्मानुयोग।

मुषितसंनिधौ बाह्यानामभ्यन्तराणां च साक्षिणामभिशस्तस्य देशजातिगोत्रनामकर्मसारसहायनिवासाननुयुञ्जीत ॥ १ ॥ तां-श्चापदेशैः प्रतिसमानयेत् ॥ २ ॥

जिसका माल चोरी गया है उसके सामने, तथा अन्य बाहर भीतरके पुरुषोंके सामने, साक्षीसे, सन्देह (चोरीके सन्देह) में पकड़े हुए आदमीके

देश, जाति, गोत्र, नाम, काम, सम्पत्ति, मित्र और निवासस्थानके विषयमें पूछा जावे ॥ १ ॥ और फिर युक्तिपूर्वक जिरह करके उसकी (जो कुछ साक्षीने कहा हो उसकी) अच्छी तरह आलोचना करे ॥ २ ॥

ततः पूर्वस्याह्नः प्रचारं रात्रौ निवासं चाग्रहणादित्यनुयुञ्जीत ॥ ३ ॥ तस्यापसारप्रतिसंधाने शुद्धः स्यात् ॥४॥ अन्यथा कर्मप्राप्तः ॥ ५ ॥

इसके बाद सन्देहमें पकड़े हुए आदमीसे, पिछले दिनके कार्य तथा रात्रिके निवास और जिस समय वह पकड़ा गया है, उस समयतकके सब कार्योंके सम्बन्धमें पूछताछ करे ॥ ३ ॥ यदि उसके निरपराध होनेमें पूरे सबूत मिल जांय, तो उसे छोड़ दिया जाय ॥ ४ ॥ अन्यथा वह अपराधी समझा जावे ॥ ५ ॥

त्रिरात्रादूर्ध्वमग्राह्यः शङ्कितकः पृच्छाभावादन्यत्रोपकरणदर्शनात् ॥६॥ अचोरं चोर इत्यभिव्याहरतश्चोरसमो दण्डः ॥७॥ चोरं प्रच्छादयतश्च ॥ ८ ॥

तीन दिन बीत जानेपर सन्दिग्ध (जिसपर चोरी आदिका सन्देह किया गया हो) पुरुषको गिरफ्तार न किया जावे। क्योंकि फिर चोरीके दिनसे पहिले दिनकी बातें, विस्मरण हो जानेके कारण उससे ठीक २ नहीं पूछी जासकतीं, परन्तु यदि किसीके चोरीके साधन (सबूत) मिलजांय, तो उसे तीन दिनके बाद भी अवश्य गिरफ्तार किया जासकता है ॥ ६ ॥ जो पुरुष साधको चोर बतावे, उसे चोरके समानही दण्ड दिया जाय ॥ ७ ॥ और यही दण्ड उसे भी दिया जाय जो चोरके छिपानेका यत्न करे ॥ ८ ॥

चोरेणाभिशस्तो वैरद्वेषाभ्यामपदिष्टकः शुद्धः स्यात् ॥ ९ ॥ शुद्धं परिवासयतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ १० ॥ शङ्कानिष्पन्नमुपकरणमन्त्रिसहायरूपवैयावृत्यकरान्निष्पादयेत् ॥ ११ ॥

यदि चोर किसी भलेमानसको शत्रुता और द्वेषके कारण पकड़वावे, तथा यह सिद्ध होजाय, तो उसे निरपराध समझा जावे ॥ ९ ॥ निरपराधको दण्ड देनेवाले अधिकारीको (प्रदेष्टा आदिको) प्रथमसाहस दण्ड दिया जावे ॥ १० ॥ सन्देहमें पकड़े हुए पुरुषसे, चोरी करनेके उपाय (साधन), सलाहकार, सहायक, चोरीके माल, और उसके अपने महनतानेके सम्बन्धमें अच्छी तरह पूछताछ करें ॥ ११ ॥

कर्मणश्च प्रदेशद्रव्यादानांशविभागैः प्रतिसमानयेत् ॥१२॥

एतेषां कारणानामनभिसंधाने विप्रलपन्तमचोरं विद्यात् ॥१३॥

और यह भी पूछे, कि चोरी करते समय मकानके भीतर किस २ ने प्रवेश किया, क्या २ माल हाथ लगा, तथा किस २ को कितना २ हिस्सा मिला, तथा इसपर खूब विचार करे ॥ १२ ॥ जो पुरुष, चोरी सिद्ध करनेवाले इन कारणोंके ऊपर कुछ भी खयाल न करता हुआ, इससे उलटा २ बोले, उसे चोर न समझा जाय ॥ १३ ॥

दृश्यते ह्यचोरो ऽपि चोरमार्गे यदृच्छया ॥ १४ ॥ संनिपाते चोरवेषशस्त्रभाण्डसामान्येन गृह्यमाणो दृष्टश्चोरभाण्डस्योपवासेन वा यथा हि माण्डव्यः कर्मक्लेशभयादचोरश्चोरो ऽस्मीति ब्रुवाणः ॥ १५ ॥

क्योंकि लोकमें यह देखा गया है कि जो चोर नहीं है, वह भी अचानक चोरोंके रास्तेपर जाता हुआ, चोरोंके समानही वेष, हथियार और माल अपने पास होनेके कारण गिरफ्तार किया जाता हुआ देखा गया है, तथा इसी प्रकार चोरीके मालके पास रहनेसे भी पकड़ा जाता हुआ देखा गया है। जैसा कि माण्डव्य मारके डरसे, अपने आपको चोर न होते हुए भी 'मैं चोर हूँ' इस प्रकार कहता हुआ पकड़ा गया। (इसकी कथा महाभारतमें आदि० ११६-११७ अध्याय; प० पु० ५,४८; मार्क० पु० १६; स्कान्द० पु० आवन्त्यखण्डान्तर्गत रेवाखण्ड १७०-१७२; नागरखण्ड १३६—१३८) ॥ १४-१५ ॥

तस्मात्समाप्तकरणं नियमयेत् ॥ १६ ॥ मन्दापराधं बालं वृद्धं व्याधितं मत्तमुन्मत्तं क्षुत्पिपासाध्वक्लान्तमत्याशितमात्मकाशितं दुर्बलं वा न कर्म कारयेत् ॥ १७ ॥ तुल्यशीलपुंश्चलीप्रापाविककथाविकाशभोजनदातृभिरपसर्पयेत् ॥ १८ ॥ एवमतिसंदध्यात् ॥ १९ ॥

इस लिये इस प्रकारके मामलोंमें खूब सोच विचारकर ही अपराधीको दण्ड दिया जावे ॥ १६ ॥ थोड़ा अपराध करने वालेको, बालक, बूढ़े, बीमार, पागल, उन्माद रोगके रोगी, भूखे, प्यासे, थके हुए, बहुत अधिक भोजन किये हुए, अजीर्णके रोगी, और बल हीनको शारीरिक दण्ड (कोड़े आदि मारना) न देवे ॥ १७ ॥ समान स्वभाव वाली वेश्याओं, दूतियों, कत्थकों, सराय और होटल वालोंके द्वारा खुफ़िया तौरपर दुष्टकर्म करने वालोंका पता लगावे ॥ १८ ॥ पीछे कही हुई रीतियोंसे उन्हें धोखा देवे ॥ १९ ॥

यथा वा निक्षेपापहारे व्याख्यातम् ॥ २० ॥ आप्तदोषं कर्म कारयेत् ॥ २१ ॥ न त्वेव स्त्रियं गर्भिणीं सूतिकां वा मासावरप्रजाताम् ॥ २२ ॥ स्त्रियास्त्वर्धकर्म वक्यानुयोगो वा ॥ २३ ॥

अथवा निक्षेपका अपहरण कर लेनेपर उसकी खोजके जो उपाय बताये गये हैं, उन्हींको काममें लावे ॥ २० ॥ जिसका अपराध निश्चित होजावे, उसी को दण्ड देवे ॥ २१ ॥ परन्तु गर्भिणी तथा एक महीनेसे कमकी प्रसूता स्त्रीको हर्गिज़ दण्ड न देवे ॥ २२ ॥ उन २ अपराधोंमें जो दण्ड पुरुषके लिये कहा गयाहै उससे आधादण्ड स्त्रीको दिया जावे अथवा केवल वाग्दण्ड दिया जावे ॥ २३ ॥

ब्राह्मणस्य सत्त्रिपरिग्रहः श्रुतवतस्तपस्विनश्च ॥ २४ ॥ तस्यातिक्रम उत्तमो दण्डः कर्तुः कारयितुश्च कर्मणा व्यापादनेन च ॥ २५ ॥ व्यावहारिकं कर्मचतुष्कम् ॥ २६ ॥ षड्दण्डाः सप्त कशा द्वावुपरिनिबन्धावुदकनालिका च ॥ २७ ॥

विद्वान् ब्राह्मण तथा तपस्वीको, सिपाहीसे पकड़वाकर इधर उधर घुमानेका ही दण्ड दिया जाय ॥ २४ ॥ जो अधिकारी काम कराने या मारने के द्वारा, इन उपर्युक्त दण्डके नियमों का उल्लङ्घन करे या करावे, तो उसे उत्तमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ २५ ॥ सर्वत्र लोक व्यवहार में प्रसिद्ध चार प्रकारके दण्ड हैं:— ॥२६॥ छः डण्डे मारना सात कोड़े मारना, हाथपैर बांधकर ऊपर को उलटा लटका देना, और नमकका पानी नाकमें डालना ॥ २७ ॥

परं पापकर्मणां नववेत्रलता द्वादशकं द्वावूरू अष्टौ विंशतिर्नक्तमाललता द्वात्रिंशत्तला द्वौ वृश्चिकबन्धावुल्लम्बने चले सूचीहस्तस्य यवागूपीतस्यैकपर्वदहनमङ्गुल्याः स्नेहपीतस्य प्रतापनमेकमहः शिशिररात्रौ बल्वजाग्रशय्या चेत्यष्टादशकं कर्म ॥ २८ ॥

उपर्युक्त चारके अतिरिक्त, पापाचरण करने वाले पुरुषोंको निम्न लिखित प्रकारोंसे भी दण्ड दिया जायः—९ हाथके लम्बे बेंतसे, बारह बेंत लगाना; २ रस्सियोंसे अलहदा २ टांगोंको लपेटना (यह दो प्रकारका लपेटना), करंजवे की छड़ीसे २० बार आघात करना, ३२ थप्पड़ मारना, बांए हाथको पीछेकी ओरसे बांए पैरके साथ बांधना और दांएं हाथको दांएं पैरके साथ (यह दो प्रकारका वृश्चिक बन्ध), दोनों हाथ आपसमें बांधकर लटका देना और दोनों पैर बांधकर लटका देना (ये दो प्रकारके लटकाने), हाथके नाखूनोंमें सुई

चुभोना, लप्सी पिलाकर पेशाब न करने देना, अंगुली का एक पोरुआ जला देना, घी पिलाकर एक दिनतक धूपमें या अग्निके सामने तपाना, जाड़ोंकी रातमें भीगी हुई खाटपर सुलाना। इस प्रकार १४ ये और ४ पहिले, कुल मिलकर १८. दण्ड देनेके प्रकार हैं ॥ २८ ॥

तस्योपकरणं प्रमाणं प्रहरणं प्रधारणमवधारणं च खरपट्टा-दागमयेत् ॥ २९ ॥ दिवसान्तरमेकैकं च कर्म कारयेत् ॥३०॥

इस दण्ड कर्मके लिये रस्सी आदि, डण्डे या कोड़े आदि की लम्बाई, बेंत या करंजवे की छड़ी आदि, दण्डनीय पुरुषके खड़ा आदि करने, और शरीर के अनुकूल दण्ड आदि निश्चय करनेके विषयमें खरपट्ट (ग्रन्थकर्त्ता का नाम) के बताये हुए शास्त्रका अध्ययन करना चाहिये ॥ २९ ॥ कठिन शारीरिक श्रम के कार्योंको बीचमें एक २ दिनका अन्तर देकर करवावे ॥ ३० ॥

पूर्वकृतापदानं प्रतिज्ञाया अपहरन्तमेकदेशमदृष्टद्रव्यं कर्मणा रूपेण वा गृहीतं राजकोशमपस्तृणन्तं कर्मवध्यं वा राजवचना-त्समस्तं व्यस्तमभ्यस्तं वा कर्म कारयेत् ॥ ३१ ॥

पहले चोरी करने वालेको, प्रतिज्ञा करके वस्तु अपहरण करने वाले को, चुराई हुई या खोई हुई चीजोंमें से किसी एक चीजके सहित मिले हुए पुरुषको, अथवा चोरी करते हुए और माल लेजाते हुए पकड़े जाने वाले पुरुष को, राजाकी सम्पत्ति हड़प करने वाले, तथा हत्या आदि महाअपराध करने वाले पुरुषको, राजाकी आज्ञानुसार, एक साथ अलहदा २ अथवा क्रमसे आजी-वन कठिन श्रमका दण्ड दिया जावे ॥ ३१ ॥

सर्वापराधेष्वपीडनीयो ब्राह्मणः ॥ ३२ ॥ तस्याभिशस्ताङ्को ललाटे स्याद्व्यवहारपतनाय ॥ ३३ ॥ स्तेये श्वा ॥ ३४ ॥ मनु-ष्यवधे कबन्धः ॥ ३५ ॥ गुरुतल्पे भगम् ॥ ३६ ॥ सुरापाने मद्यध्वजः ॥ ३७ ॥

ब्राह्मणको किसी अपराधमें भी मृत्युदण्ड या ताडन दण्ड न दिया जावे ॥ ३२ ॥ प्रत्युत भिन्न २ अपराधोंके अनुसार उसके मस्तक पर चिन्ह लगा दिया जावे, जिससे कि वह जातीय व्यवहारोंमें पतित समझा जाय ॥ ३३ ॥ चोरी करनेपर कुत्तेका चिन्ह, ॥ ३४ ॥ मनुष्य हत्या करनेपर कबन्ध (मनुष्यके धड़) का चिन्ह ॥ ३५ ॥ गुरु पत्नीके साथ पापाचरण करने पर भग (योनि का चिन्ह), ॥ ३६ ॥ सुरापान करने पर शराबकी झण्डी का चिन्ह कर दिया जावे ॥ ३७ ॥

ब्राह्मणं पापकर्माणमुद्घुष्याङ्ककृतव्रणम्।
कुर्यान्निर्विषयं राजा वासयेदाकरेषु वा ॥ ३८ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थेऽधिकरणे वाक्यकर्मानुयोगः अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥
आदितः पञ्चाशीतिः ॥ ८५ ॥

पापी ब्राह्मणके माथे पर उपर्युक्त चिन्ह लगाकर, और सम्पूर्ण जनतामें इस बातकी घोषणा करके, राजा उसे अपने देशसे निकाल देवे। अथवा खानों में रहनेके लिये आज्ञा देदेवे ॥ ३८ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरणमें आठवां अध्याय समाप्त।

नौवां अध्याय

८४ प्रकरण

सब अधिकारी तथा उनके स्थानोंकी देखभाल।

समाहर्तृप्रदेष्टारः पूर्वमध्यक्षाणामध्यक्षपुरुषाणां च नियमनं कुर्युः ॥ १ ॥ खनिसारकर्मान्तेभ्यः सारं रत्नं वापहरतः शुद्धवधः ॥ २ ॥ फल्गुद्रव्यकर्मान्तेभ्यः फल्गुद्रव्यमुपस्करं वा पूर्वः साहस-दण्डः ॥ ३ ॥

समाहर्त्ता और प्रदेष्टा पहिले अध्यक्ष और उनके सहकारी पुरुषोंकी नियुक्ति करें ॥ १ ॥ जो कर्मचारी खान आदिसे बहुमूल्य रत्न आदि तथा चन्दन अगर आदि के कारखानोंसे चन्दन आदिको चुरावें, उन्हें प्राण दण्ड दिया जावे ॥ २ ॥ जो पुरुष कपास या साधारण लकड़ी आदि के कारखानों से सारहीन वस्तु का अपहरण करें, तो उन्हें प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ३॥

पण्यभूमिभ्यो वा राजपण्यं माषमूल्यादूर्ध्वमापादमूल्यादित्य-पहरतो द्वादशपणो दण्डः, आद्विपादमूल्यादिति चतुर्विंशतिपणः ॥ ४ ॥

जीरा अजवायन आदिके राजकीय खेतोंमे जो कर्मचारी, एक माष कीमत से लगाकर ४ माष कीमत तककी इन चीजोंको चुरावे, उसे १२ पण दण्डदिया जाय, और उसके आगे १॥ पण (८ माष) तक कीमतकी वस्तु चुरानेपर २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४ ॥

आत्रिपादमूल्यादिति षट्त्रिंशत्पणः ॥ ५ ॥ आपणमूल्या-

दित्यष्टचत्वारिंशत्पणः ॥ ६ ॥ आद्विपणमूल्यादिति पूर्वः साहसदण्डः ॥ ७ ॥ आचतुष्पणमूल्यादिति मध्यमः ॥८॥ आष्टपणमूल्यादित्युत्तमः ॥ ९ ॥ आदशपणमूल्यादिति वधः ॥ १० ॥

$\frac{3}{4}$ पण (१२ माष) तककी चुरानेपर ३६ पण दण्ड, ॥ ५ ॥ और पूरे एक पण (१६ माष) तककी चुराने पर ४८ पण दण्ड दिया जाय ॥ ६ ॥ इसके आगे दो पण मूल्यतककी चुराने पर प्रथम साहस दण्ड ॥ ७८ ॥ चार पण मूल्य तककी चुराने पर मध्यम साहस दण्ड ॥ ८ ॥ आठ पण मूल्यतक की चुराने पर उत्तम साहस दण्ड ॥ ९ ॥ तथा दश पण मूल्य तककी चुराने पर प्राण दण्ड दिया जाय ॥ १० ॥

कोष्ठपण्यकुप्यायुधागारेभ्यः कुप्यभाण्डोपस्करापहारेष्वर्धमूल्येष्वेत एव दण्डाः ॥ ११ ॥ कोशभाण्डागाराक्षशालाभ्यश्चतुर्भागमूल्येष्वेत एव द्विगुणा दण्डाः ॥ १२ ॥

गोदाम, दुकान तांबे लोहे आदिके कारखाने तथा शस्त्रागारमें से जो कर्मचारी आध माष कीमतसे लगाकर दो माष कीमत तककी तांबे आदि धातुओं, उनसे बनी हुई चीजों तथा छीजन आदिका अपहरण करे, उसको भी उपर्युक्त १२ पण आदि दण्ड दिये जांय ॥ ११ ॥ कोश, भाण्डागार और अक्षशालासे $\frac{1}{4}$ माष (१ काकणी) मूल्यसे लगाकर १ माष मूल्य तककी वस्तु चुरानेपर, उपर्युक्त ये ही द्विगुण अर्थात् २४ पण आदि दण्ड दिये जांय ॥१२॥

चोराणामभिप्रधर्षणं चित्रो घात इति राजपरिग्रहेषु व्याख्यातम् ॥ १३ ॥ बाह्येषु तु प्रच्छन्नमहनि क्षेत्रखलवेश्मापणेभ्यः कुप्यभाण्डमुपस्करं वा माषमूल्यादूर्ध्वमापादमूल्यादित्यपहरतास्त्रिपणो दण्डः ॥ १४ ॥

जो राजकर्मचारी, वस्तुओं का स्वयं अपहरण करके चोरोंके द्वारा चुराये जानेका बहाना करें, उन्हें कष्ट पूर्वक प्राण दण्ड दिया जाय, इस बात को राजपरिग्रह प्रकरणमें कहा जाचुका है ॥ १३ ॥ राजकीय क्षेत्र आदिसे अतिरिक्त, जनताके खेतों, कल्याणों, घरों, और दूकानोंमें से यदि एकमाष मूल्यसे लगाकर चारमाष मूल्य तककी कुप्य, भाण्ड आदि वस्तुओंकी दिनमेंही चोरी होजावे तो चुराने वालेको ३ पण दण्ड दिया जाय। अथवा उसकी देहपर अच्छी तरह गोबर लपेट कर, ढिंढोरा पीटते हुए उसे सारे शहरमें घुमाया जाय ॥ १४ ॥

आद्विपादमूल्यादिति षट्पणः ॥ १५ ॥ गोमयभस्मना वा

प्रलिप्यावघोषणम् ॥१६॥ आत्रिपापमूल्यादिति नवपणः ॥१७॥ गोमयभस्मना वा प्रलिप्यावघोषणम् ॥ १८ ॥ शरावमेखलया वा ॥ १९ ॥

$\frac{1}{2}$ पण (८ माष) तक कीमतकी वस्तु चुरानेपर ६ पण दण्ड दिया जाय ॥ १५ ॥ अथवा गोबरकी राखसे उसका सारा शरीर लपेटकर (काला करके) ढिंढोरा पीटते हुए सारे शहरमें घुमाया जाय ॥ १६ ॥ $\frac{3}{4}$ पण (१२ माष मूल्य तककी वस्तु चुरानेपर ९ पण दण्ड दिया जाय ॥ १७ ॥ अथवा गोबरकी राखसे काला शरीर करके ढिंढोरेके साथ शहरमें घुमाना ॥१८॥ या एक रस्सीमें शकोरा (कटोरेकी शकलका मट्टीका छोटासा पात्र) पिरोकर, उसे चोरकी कमर अथवा गलेमें लटकाकर, चोरको ढिंढोरा पीटते हुए शहरमें घुमाया जाय ॥ १९ ॥

आपणमूल्यादिति द्वादशपणः ॥ २० ॥ मुण्डनं प्रव्राजनं वा ॥ २१ ॥ आद्विपणमूल्यादिति चतुर्विंशतिपणः ॥ २२ ॥ मुण्डनमिष्टकाशकलेन प्रव्राजनं वा ॥ २३ ॥ आचतुष्पणमूल्यादिति षट्त्रिंशत्पणः ॥ २४ ॥

१ पण (१६ माष) मूल्य तककी वस्तु चुरानेपर १२ पण दण्ड दिया जाय ॥ २० ॥ अथवा उसका सिर मूंडकर देशसे बाहर कर दिया जाय ॥२१॥ २ पण कीमत तककी वस्तु चुरानेपर २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ २२ ॥ अथवा सिर मुंडवाकर रोड़ोंके साथ देशसे निकाल दिया जाय ॥ २३ ॥ चारपण कीमत तककी वस्तु चुरानेपर ३६ पण दण्ड दिया जाय ॥ २४ ॥

आपञ्चपणमूल्यादित्यष्टचत्वारिंशत्पणः ॥ २५ ॥ आदशपणमूल्यादिति पूर्वः साहसदण्डः ॥ २६ ॥ आविंशतिपणमूल्यादिति द्विशतः ॥ २७ ॥ आत्रिंशत्पणमूल्यादिति पञ्चशतः ॥२८॥ आचत्वारिंशत्पणमूल्यादिति सहस्रः ॥ २९ ॥ आपञ्चाशत्पणमूल्यादिति वधः ॥ ३० ॥

५ पण कीमत तककी वस्तुके लिए ४८ पण दण्ड ॥ २५ ॥ १० पण कीमत तक प्रथम साहस दण्ड ॥ २६ ॥ २० पण तकके लिये २०० पण दण्ड ॥ २७ ॥ ३० पण तकके लिये ५०० पण दण्ड ॥ २८ ॥ ४० पण तकके लिये १००० पण दण्ड, ॥२९॥ और ५० पण मूल्य तककी वस्तु चुरानेपर प्राण दण्ड दिया जाय ॥ ३० ॥

प्रसह्य दिवा रात्रौ वान्तर्याममेव हरतोऽर्धमूल्येष्वेत एव द्विगुणा दण्डाः ॥ ३१ ॥ प्रसह्य दिवा रात्रौ वा सशस्त्रस्यापहरतश्चतुर्भागमूल्येष्वेत एव दण्डाः ॥ ३२ ॥

दिन अथवा रातमें रक्षा की जाती हुई वस्तुको बलात्कार अपहरण करनेपर, ½ माष मूल्यकी वस्तुओंसे लेकर २ माष मूल्य तककी चोरीमें पूर्वोक्त ३ पणसे दुगना) अर्थात् ६ पण आदि दण्ड दिया जाय ॥ ३१ ॥ यदि बलात्कार अपहरण करने वाला पुरुष हथियार बन्द हो, तो ¼ माष (१काकणी) मूल्यकी वस्तु चुरानेपर ही ६ पण दण्ड दिया जाय ॥ ३२ ॥

कुटुम्ब्यध्यक्षमुख्यस्वामिनां कूटशासनमुद्राकर्मसु पूर्वमध्यमोत्तमवधा दण्डाः ॥ ३३ ॥ यथापराधं वा ॥ ३४ ॥ धर्मस्थश्चेद्विवदमानं पुरुषं तर्जयति भर्त्सयत्यपसारयत्यभिग्रसते वा पूर्वमस्मै साहसदण्डं कुर्यात् ॥ ३५ ॥

यदि कुटुम्बी (साधारण प्रजाजन) जाली कागज या मुहर आदि बनावे तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ३३ ॥ अध्यक्ष (सुवर्णाध्यक्ष आदि) ऐसा काम करे, तो उसे मध्यम साहस दण्ड, गांवका मुखिया करे तो उसे उत्तम साहस दण्ड और समाहर्त्ता करे तो उसे प्राण दण्ड दिया जाय ॥ ३३ ॥ अथवा अपराधके अनुसार उचित दण्ड दिया जाय ॥ ३४ ॥ धर्मस्थ (न्यायाधीश), यदि अदालतमें मुकदमा पेश करते हुए या अभियोगके सम्बन्धमें कुछ कहते हुए पुरुषको, अंगुली दिखाकर डराता है, या धमकाता घुड़कता है, या बाहर निकलवा देता है, या उससे रिश्वत लेलेता है, तो उसे (धर्मस्थको) प्रथम साहसदण्ड दिया जाय ॥ ३५ ॥

वाक्पारुष्ये द्विगुणम् ॥ ३६ ॥ पृच्छ्यं न पृच्छत्यपृच्छ्यं पृच्छति पृष्ट्वा वा विसृजति शिक्षयति स्मारयति पूर्वं ददाति वेति मध्यममस्मै साहसदण्डं कुर्यात् ॥ ३७ ॥

यदि विवाद करते हुए पुरुषके प्रति धर्मस्थ कठोर वाक्योंका प्रयोग करे (अर्थात् गाली गलोच देवे), तो पूर्वोक्तसे दुगना दण्ड दिया जाय ॥३६॥ और पूछने योग्य बातोंमें साक्षीसे कुछ नहीं पूछता, न पूछने योग्य बातोंको पूछता है, या पूछकर (बिनाही उत्तरलिये) छोड़ देता है, गवाही देते समय गवाहको सिखलाता है, या उसे याद दिलवाता है, या साक्षीके द्वारा आधी

कही हुई बातको अपनी ओरसे पूरी कर देता है, इस प्रकार व्यवहार करने वाले धर्मस्थ को मध्यम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ३७ ॥

देयं देशं न पृच्छत्यदेयं देशं पृच्छति कार्यमदेशेनातिवाहयति छलेनातिहरति कालहरणेन श्रान्तमपवाहयति मार्गापन्नं वाक्यमुत्क्रमयति मतिसाहाय्यं साक्षिभ्यो ददाति तारितानुशिष्टं कार्यं पुनरपि गृह्णाति उत्तममस्मै साहसदण्डं कुर्यात् ॥ ३८ ॥

विचारणीय वस्तुके लिये अत्युपयोगी साक्षीसे तो कुछ नहीं पूछता और अनुपयुक्त साक्षीसे पूछता है, बिनाही साक्षीके किसी झगड़ेका निपटारा कर देता है, सत्यवादी साक्षीको भी कपटपूर्ण वाक्योंसे अपराधी बना देता है, व्यर्थ समय बितानेसे साक्षीको थकाकर हटा देता है, साक्षीके क्रमपूर्वक वाक्योंको भी उलटपुलट कहता है, साक्षियोंको बीच २ में सहायता देता है, विचारपूर्वक निर्णीत बातको फिर विचार करनेके लिये उपस्थित करता है, ऐसे न्यायाधीश को उत्तमसाहस दण्ड दिया जावे ॥ ३८ ॥

पुनरपराधे द्विगुणं स्थानाद्व्यपरोहणं च ॥ ३९ ॥ लेखकश्चेदुक्तं न लिखत्यनुक्तं लिखति दुरुक्तमुपलिखति सूक्तमुल्लिखत्यर्थोत्पत्तिं विकल्पयतीति पूर्वमस्मै साहसदण्डं कुर्यात् ॥ ४० ॥ यथापराधं वा ॥ ४१ ॥

दुबारा यही अपराध करनेपर दुगना दण्ड दिया जावे, और पदच्युत कर दिया जावे ॥ ३९ ॥ लेखक (मुहर्रिर) यदि कही हुई बातको नहीं लिखता, न कही हुई को लिख लेता है, बुरी तरह कही हुई को अच्छी तरह करके लिख लेता है, और अच्छी तरह कही हुई को बुरी तरह करके लिखता है, या बातके तात्पर्यको बदल देता है, उसे प्रथमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ ४० ॥ अथवा अपराधके अनुसार उचित दण्ड दिया जावे ॥ ४१ ॥

धर्मस्थः प्रदेष्टा वा हैरण्यमदण्ड्यं क्षिपति क्षेपद्विगुणमस्मै दण्डं कुर्यात् ॥ ४२ ॥ हीनातिरिक्ताष्टगुणं वा शरीरदण्डं क्षिपति शारीरमेव दण्डं भजेत ॥ ४३ ॥ निष्क्रयद्विगुणं वा ॥ ४४ ॥

धर्मस्थ अथवा प्रदेष्टा यदि किसी निरपराधीको सुवर्ण दण्ड देवें, तो उससे दुगना दण्ड इनको (धर्मस्थ और प्रदेष्टाको) दिया जावे ॥ ४२ ॥ यदि उचित दण्डसे कम या अधिक दण्ड अपराधीको देवें, तो उन्हें दिये हुए (कम या अधिक) दण्डका आठगुना दण्ड दिया जावे। और शारीरिक दण्ड देनेपर

उनको भी वही शारीरिक दण्ड दिया जावे ॥४३॥ यदि उस शारीरिक दण्डके बदलेमें कोई धनदण्ड देदेवे, तो उसका दुगना दण्ड (धर्मस्थ आदिको) होना चाहिये॥४४॥

यं वा भूतमर्थं नाशयत्यभूतमर्थं करोति तदष्टगुणं दण्डं दद्यात् ॥ ४५ ॥ धर्मस्थीयाच्चारकान्निस्सारयतो बन्धनागाराच्छय्यासनभोजनोच्चारसंचारं रोधबन्धनेषु त्रिपणोत्तरा दण्डाः कर्तुः कारयितुश्च ॥ ४६ ॥

न्याय्य (उचित) अर्थको (धनको) नाश करने, और अन्याय्यको संग्रह करनेपर, उस (नष्ट या संगृहीत) धन राशिसे आठ गुना दण्ड दिया जाय ॥ ४५ ॥ धर्मस्थके द्वारा निर्दिष्ट की हुई हवालातसे यदि कोई (निरीक्षक राजपुरुष) घूंस लेकर अपराधीको बाहर निकलनेकी आज्ञा (घूमने फिरनेके लिये) दे, या जल अथवा हवालातमें सोने, बैठने, खानेपीने और मलमूत्र त्यागका प्रबन्ध करे, या करावे, तो उसे उत्तरोत्तर ३ पण अधिक दण्ड दिया जावे ॥ ४६ ॥

चारकादभियुक्तं मुञ्चतो निष्पातयतो वा मध्यमः साहसदण्डोऽभियोगदानं च ॥ ४७ ॥ बन्धनागारात्सर्वस्वं वधश्च ॥४८॥ बन्धनागाराध्यक्षस्य संरुद्धकमनाख्याय चारयतश्चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ४९ ॥ कर्म कारयतो द्विगुणः ॥ ५० ॥

यदि कोई राजपुरुष किसी अपराधीको बन्धनागार (हवालात) से छोड़ देवे, अथवा चले जाने के लिये प्रेरणा करे, तो उसे मध्यमसाहस दण्ड दिया जाय। और उस अपराधीने जितना देना था, वह भी उसको अदा करना पड़े ॥ ४७ ॥ यदि कोई प्रदेष्टाके बन्धनागार (जेलखाने) से किसी अपराधीको छोड़ देवे, तो उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति जब्त करली जाय, और उसे प्राण दण्ड देदिया जावे ॥ ४८ ॥ कैदीको जेलरकी बिना आज्ञा बाहर घुमानेमें २४ पण दण्ड ॥४९॥ और यह काम करवानेवाले व्यक्तिको दुगना अर्थात् ४८ पण दण्ड दिया जावे ॥ ५० ॥

स्थानान्यत्वं गमयतोऽन्नपानं वा रुन्धतः षण्णवतिर्दण्डः ॥ ५१ ॥ परिक्लेशयत उत्कोटयतो वा मध्यमः साहसदण्डः ॥ ५२ ॥ घ्नतः साहस्रः ॥ ५३ ॥ परिगृहीतां दासीमाहितिकां वा संरुद्धिकामधिचरतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५४ ॥

यदि कैदीकी जगह बदले, या उसके खानेपीनेमें रुकावट डाले, तो उसे ९६ पण दण्ड ॥ ५१ ॥ और उसको कोड़े आदि मारकर दुःख देवे, या रिश्वत

दिलवावे तो उसे मध्यमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ ५२ ॥ कैदीका वध कर देनेपर १००० पण दण्ड दिया जाय ॥ ५३ ॥ खरीदी हुई या गिरवी रक्खी हुई दासी यदि किसी अपराधके कारण कैद होजावे, उसके साथ जेलमें दुराचार करनेपर (करनेवाले राजपुरुषको) प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५४ ॥

चोरडामरिकभार्यां मध्यमः ॥ ५५ ॥ संरुद्धिकामार्यामुत्तमः ॥ ५६ ॥ संरुद्धस्य वा तत्रैव घातः ॥ ५७ ॥ तदेवाक्षणगृहीतायामार्यायां विद्यात् ॥ ५८ ॥

चोर और डामरिक (अकस्मात् नष्ट हुआ २ पुरुष) की भार्याके साथ ऐसा करनेपर मध्यमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ ५५ ॥ कैद हुई २ कुलीन स्त्री (आर्या) के साथ ऐसा करनेपर उत्तमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ ५६ ॥ यदि जेलमें ही कोई कैदी ऐसा दुराचार करे, तो उसे प्राण दण्ड दिया जाय ॥५७॥ अध्यक्ष (सुवर्णाध्यक्ष आदि) यदि कुलीन स्त्रीके साथ ऐसा करे तो उसे भी प्राण दण्ड दिया जाय ॥ ५८ ॥

दास्यां पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५९ ॥ चारकमभित्वा निष्पातयतो मध्यमः ॥ ६० ॥ भित्वावधः ॥ ६१ ॥ वन्धनारागात्सर्वस्वं बधश्च ॥ ६२ ॥

दासीके साथ ऐसा करनेपर प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ५९ ॥ धर्मस्थके बन्धनागार (चारक) को बिनाही तोड़े, यदि कैदीको कोई बाहर निकाल देवे, तो उसे मध्यम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ६० ॥ यदि तोड़कर निकाले तो प्राण दण्ड ॥ ६१ ॥ यदि प्रदेष्टाके जेलखाने,से निकाले तो उसकी सारी जायदाद जब्त करके प्राण दण्ड दिया जाय ॥ ६२ ॥

एवमर्थचरान्पूर्वं राजा दण्डेन शोधयेत् ।
शोधयेयुश्च शुद्धार्थैः पौरजानपदान्दमैः ॥ ६३ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थेऽधिकरणे सर्वाधिकरणरक्षणं नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

आदितः षडशीतिः ॥ ८६ ॥

राजा इस प्रकार पहिले अपने कर्मचारियोंको दण्डके द्वारा ठीक २मार्ग पर चलावे । फिर नियमानुसार व्यवहार करनेवाले राजकीय-कर्मचारी दण्डके द्वारा नगर या प्रान्तमें रहनेवाली सम्पूर्ण प्रजाको ठीक २ रास्तेपर लावें॥६३ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरणमें नौवां अध्याय समाप्त ।

दसवां अध्याय ।

८१ प्रकरण ।

एकाङ्गवध और उसका निष्क्रय ।

तीर्थघातग्रन्थिभेदोर्ध्वकराणां प्रथमेऽपराधे संदंशच्छेदनं चतुष्पञ्चाशत्पणो वा दण्डः ॥ १ ॥ द्वितीये छेदनं पणस्य शत्यो दण्डः ॥ २ ॥

तीर्थोंपर वस्त्र आदि चुरानेवाले (उठाईगीर, उचक्के), गंठकटे, और छत फोड़नेवाले पुरुषोंका अंगूठा और कनी (कनिष्ठिका) अंगुली कटवादी जावे, अथवा ५४ पण दण्ड दिया जाय। (अंगुलीच्छेदनका ५४ पण निष्क्रय है, अर्थात् यातो अंगुली काटी जावे, या उसके बदलेमें ५४ पण दण्ड दिया जाय, इसी तरह आगे भी सब जगह समझना चाहिये।) ॥ १ ॥ दूसरीवार फिर अपराध करनेपर सब अंगुली कटवादी जावें, अथवा १०० पण दण्ड दिया जावे ॥ २ ॥

तृतीये दक्षिणहस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः ॥ ३ ॥ चतुर्थे यथाकामी वधः ॥ ४ ॥ पञ्चविंशतिपणावरेषु कुक्कुटनकुलमार्जारश्वसूकरस्तेयेषु हिंसायां वा चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ ५ ॥ नासाग्रच्छेदनं वा ॥ ६ ॥ चण्डालारण्यचराणामर्धदण्डाः ॥ ७ ॥

तीसरीवार अपराध करनेपर दहिना हाथ काट दिया जावे, अथवा ४०० पण दण्ड दिया जाय ॥ ३ ॥ चौथीवार फिर अपराध करनेपर इच्छानुसार (शुद्ध या चित्र) प्राण दण्ड दिया जावे ॥ ४ ॥ २५ पणसे कम कीमतके मुर्गे, नकुल, बिलाव, कुत्ते और सूअर चुरालेने तथा मार देनेपर ५४ पण दण्ड देना चाहिये, अथवा उसकी नाकका अगला हिस्सा काट देना चाहिये ॥ ५-६ ॥ यदि मुर्गे आदि किसी चण्डालके हों, अथवा जंगली हों, तो उपर्युक्त दण्डसे आधा दण्ड दिया जावे ॥ ७ ॥

पाशजालकूटावपातेषु बद्धानां मृगपशुपक्षिव्यालमत्स्यानामादाने तच्च तावच्च दण्डः ॥ ८ ॥ मृगद्रव्यवनान्मृगद्रव्यापहारे शत्यो दण्डः ॥९॥ बिम्बविहारमृगपक्षिस्तेये हिंसायां वा द्विगुणो दण्डः ॥ १० ॥

फंदा, जाल और गढ़े खोदकर उनपर घासफूस आदि बिछाकर उनके द्वारा पकड़े जाने वाले, राजकीय मृग, अन्य पशु, पक्षी, हिंस्रजीव और मछ-

लियोंको जो लेवे पकड़े वह उनकी कीमत भरे और उतनाही दण्ड देवे ॥ ८ ॥ सुरक्षित जंगलके जानवरोंको तथा लकड़ी आदिको जो चुरावे उसे १०० पण दण्ड दिया जावे ॥९॥ विचित्र रंगकी सुन्दर चिड़ियाओं, घरके सुन्दर हरिणों और तोते आदि पक्षियोंको जो चुरावे, या मारडाले उसे २०० पण दण्ड दिया जावे ॥ १० ॥

कारुशिल्पिकुशीलवतपस्विनां क्षुद्रकद्रव्यापहारे शत्यो दण्डः ॥ ११ ॥ स्थूलकद्रव्यापहारे द्विशतः ॥ १२ ॥ कृषिद्रव्यापहारे च ॥ १३ ॥

बढ़ई आदि मोटा काम करने वालों, होशियार कारीगरों, कत्थकों और तपस्वियोंकी कोई छोटी वस्तु चुरानेपर चोरको १०० पड़ दण्ड दिया जाय ॥ ११ और बड़ी चीजें चुराने पर २०० पण ॥ १२ ॥ खेती करनेके साधन हल आदि चुरानेपर भी २०० पण दण्ड देना चाहिए ॥ १३ ॥

दुर्गमकृतप्रवेशस्य प्रविशतः प्राकारच्छिद्राद्वा निक्षेपं गृहीत्वापसरतः कन्धरावधो द्विशतो वा दण्डः ॥ १४ ॥

जिसको किले में घुसने का अधिकार नहीं है यदि वह वहां प्रवेश करे अथवा परकोटे की दीवार तोड़कर माल लेकर भागे, उसके पैरके पीछेकी दो मुख्य नसें कटवादी जावें, अथवा २०० पण दण्ड दिया जावे ॥ १४ ॥

चक्रयुक्तं नावं क्षुद्रपशुं वापहरत एकपादवधः त्रिशतो वा दण्डः ॥ १५ ॥ कूटकाकण्यक्षारालाशलाकाहस्तविषमकारिण एकहस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः ॥ १६ ॥

चक्रयुक्त (धन शास्त्र अथवा यन्त्र विशेषसे युक्त) नावको, या छोटेसे पशुको जो चुरावे, उसका एकपैर काट दिया जावे, अथवा ३०० पण दण्ड दिया जावे ॥ १५ ॥ जाली कौड़ा, पासे, अरला (चमड़ेकी बनी हुई चौकड़ी) और शलाका (ये सब चीजें जुआ खेलनेमें काम आती हैं, द्यूत समाह्वय अध्याय देखो) बनाने वाले, तथा अन्य हाथकी बुराई करने वाले पुरुषका एक हाथ काट दिया जाये, अथवा ४०० पण दण्ड दिया जावे ॥ १६ ॥

स्तेनपारदारिकयोः साचिव्यकर्मणि स्त्रियाः संगृहीतायाश्च कर्णनासाच्छेदनं पञ्चशतो वा दण्डः ॥ १७ ॥ पुंसो द्विगुणः ॥ १८ ॥ महापशुमेकं दासं दासीं वापहरतः प्रेतभाण्डं वा विक्रीणानस्य द्विपादवधः षट्छतो वा दण्डः ॥ १९ ॥

चोर और व्यभिचारियोंके दूतपनेका काम करनेवाली स्त्रियोंके कान नाक काट लिये जावें, अथवा ५०० पण दण्ड दिया जाय ॥ १७ ॥ यदि पुरुष ऐसा करे तो उसे दुगना अर्थात् १००० पण दण्ड दिया जाय ॥ १८ ॥ गाय भैंस आदि बड़े पशुको, एक दास या दासीको जो चुरावे, अथवा मुर्देके वस्त्र आदिको(मृतभाण्डं) बेचे, उसके दोनों पैर काट दिये जांय, अथवा ६०० पण दण्ड दिया जाय ॥ १९ ॥

वर्णोत्तमानां गुरूणां च हस्तपादलङ्घने राजयानवाहनाद्यारोहणे चैकहस्तपादवधः सप्तशतो वा दण्डः ॥ २० ॥ शूद्रस्य ब्राह्मणवादिनो देवद्रव्यमवस्तृणतो राजद्विष्टमादिशतो द्विनेत्रभेदिनश्च योगाञ्जनेनान्धत्वमष्टशतो वा दण्डः ॥ २१ ॥

अपनेसे उत्तम वर्णके किसी व्यक्तिको तथा गुरुजनोंको जो हाथपैर आदिसे मारे, अथवा राजाकी सवारी या घोड़े आदिपर चढ़े, उसका एक हाथ और एक पैर काट दिया जावे, अथवा ७०० पण दण्ड दिया जाय ॥ २० ॥ जो शूद्र अपने आपको ब्राह्मण बतलावे, और देवताके उद्देश्यसे दिये हुए द्रव्यका अपहरण करे; तथा जो भविष्यमें राजाके अनिष्टको (ज्योतिषी बनकर) बतावे अथवा बगावत करे, या किसीकी दोनों आंख फोड़ देवे, ऐसे व्यक्तिको औषधियोंका सुरमा लगाकर अन्धा करदिया जावे, अथवा उसे ८०० पण दण्ड दिया जाय ॥ २१ ॥

चोरं पारदारिकं वा मोक्षयतो राजशासनमूनमतिरिक्तं वा लिखतः कन्यां दासीं वा सहिरण्यमपहरतः कूटव्यवहारिणो विमांसविक्रयिणश्च वामहस्तद्विपादवधो नवशतो वा दण्डः ॥२२॥

चोर या विभचारीको छोड़ देनेवाले, राजाकी आज्ञाको कम या अधिक करके लिखनेवाले, कन्या या दासीको आभूषण आदिके सहित चुरानेवाले, छलकपटका व्यवहार करनेवाले, अभक्ष्य पशुओंका मांस बेचनेवाले पुरुषका बायां हाथ और दोनों पैर काट दिये जावें, अथवा ९०० पण दण्ड दिया जावे ॥ २२ ॥

मानुषमांसविक्रये वधः ॥ २३ ॥ देवपशुप्रतिमामनुष्यक्षेत्रगृहहिरण्यसुवर्णरत्नसस्यापहारिण उत्तमो दण्डः शुद्धवधो वा ॥२४॥

आदमीका मांस बेचनेमें प्राण दण्ड दिया जाय ॥ २३ ॥ देव सम्बन्धी पशु, प्रतिमा, मनुष्य, खेत, घर, हिरण्य, सुवर्ण रत्न और अन्न इन चीजोंको

को जो व्यक्ति चुरावे, उसे उत्तमसाहस दण्ड दिया जाय, अथवा उसको बिना किसी अन्य क्लेशके प्राणदण्ड दिया जाय ॥ २४ ॥

पुरुषं चापराधं च कारणं गुरुलाघवम् ।
अनुबन्धं तदात्वं च देशकालौ समीक्ष्य च ॥ २५ ॥
उत्तमावरमध्यत्वं प्रदेष्टा दण्डकर्मणि ।
राज्ञश्च प्रकृतीनां च कल्पयेदन्तरास्थितः ॥ २६ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थेऽधिकरणे एकाङ्गवधनिष्क्रयो दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥
आदितः सप्ताशीतिः ॥ ८७ ॥

प्रदेष्टाको चाहिये कि वह, राजा और अमात्योंके मध्यमें रहता हुआ, दण्ड देनेके समयमें पुरुषको उसके अपराधको अपराधके कारणोंको, आदमीकी छोटी बड़ी हैसियतको, भविष्यमें तथा उस समयमें होनेवाले परिणामको, देश और कालको अच्छी तरह सोचविचार लेवे । फिर उत्तम, प्रथम तथा मध्यमसाहस आदि दण्डोंको न्यायानुसार देवे ॥ २५-२६ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरणमें दसवां अध्याय समाप्त ।

ग्यारहवां अध्याय ।

८६ प्रकरण ।

शुद्ध और चित्र दण्ड ।

कलहे घ्नतः पुरुषं चित्रो घातः ॥ १ ॥ सप्तरात्रस्यान्तर्मृते शुद्धवधः ॥ २ ॥ पक्षस्यान्तरुत्तमः ॥ ३ ॥ मासस्यान्तः पञ्चशतः समुत्थानव्ययश्च ॥ ४ ॥

लड़ाई झगड़ेमें जो पुरुष दूसरे आदमीको जानसे मारदे, उसको कष्टपूर्वक प्राण दण्ड दिया जाय । (अर्थात् उसे दुःख दे २ कर मारा जाय, यह चित्रवध कहाता है, जिस वधके पूर्व कोई अन्य कष्ट न दिया जाय उसे शुद्ध वध कहते हैं) ॥ १ ॥ झगड़ेमें मारते २ यदि इतनी चोट पहुंचावे कि वह पुरुष सात दिनतक मरजावे, तो मारनेवालेको शुद्ध प्राण दण्ड दिया जावे ॥२॥ यदि १५ दिनके बाद मरे तो उत्तमसाहस दण्ड दिया जाय ॥३॥ एक महीनेके बाद मरे, तो ५०० पण दण्ड, और उसकी चिकित्सा आदिका सम्पूर्ण व्यय देवे ॥ ४ ॥

शस्त्रेण प्रहरत उत्तमो दण्डः ॥ ५ ॥ मदेन हस्तवधः ॥६॥

मोहेन द्विशतः ॥ ७ ॥ वधे वधः ॥ ८ ॥ प्रहारेण गर्भं पातयत उत्तमो दण्डः ॥ ९ ॥ भैषज्येन मध्यमः ॥ १० ॥ परिक्लेशेन पूर्वः साहसदण्डः ॥ ११ ॥

यदि हथियारसे प्रहार करे, तो उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५ ॥ यदि अपने बलके घमण्डसे प्रहार करे, तो हाथ काट दिया जावे ॥ ६ ॥ क्रोधके कारण प्रहार करे तो उसे २०० पण दण्ड दिया जाय ॥ ७ ॥ जानसे मार देनेपर हत्यारेको प्राण दण्ड दिया जाय ॥ ८ ॥ चोट लगाकर गर्भ गिराने वाले, पुरुषको उत्तमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ ९ ॥ औषधिके द्वारा गर्भ गिरानेपर मध्यमसाहस दण्ड ॥ १० ॥ और कठोर काम करानेके द्वारा गर्भ गिरानेपर प्रथमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ ११ ॥

प्रसभस्त्रीपुरुषघातकाभीसारकानिग्राहकावघोषकावस्कन्दकोपवेधकान्पथि वेश्मप्रतिरोधकान्राजहस्त्यश्वरथानां हिंसकान्स्तेनान्वा शूलानारोहयेयुः ॥ १२ ॥ यश्चैनान्दहेदपनयेद्वा स तमेव दण्डं लभेत साहसमुत्तमं वा ॥ १३ ॥

बलात्कार स्त्री या पुरुषकी हत्या करनेवाले, बलात्कारसे स्त्रीको उठा ले जानेवाले, बलात्कार जनताके नाक या कान आदि काट देनेवाले, "मैं हत्या करूंगा, चोरी करूंगा" इस प्रकारकी घोषणा करनेवाले, बलात्कार नगर और ग्रामोंसे द्रव्यापहरण करनेवाले, तथा भींत आदि फोड़कर सेंध लगानेवाले, पुरुषोंको, और मार्गकी धर्मशालाओं तथा प्याऊओंमें चोरी करनेवाले, राजाके हाथी, घोड़े और रथोंको नष्ट करने मारने या चुरानेवाले पुरुषोंको, शूलीपर चढ़ाकर मार दिया जावे ॥ १२ ॥ शूलीपर चढ़ाकर मारे हुए इन पुरुषोंका जो दाहसंस्कार करे या उठाकर लेजावे, उसे भी यही दण्ड, अथवा उत्तमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ १३ ॥

हिंस्रस्तेनानां भक्तवासोपकरणाग्निमन्त्रदानवैयावृत्यकर्मसूत्तमो दण्डः ॥ १४ ॥ परिभाषणमविज्ञाने ॥ १५ ॥ हिंस्रस्तेनानां पुत्रदारमसमन्त्रं विसृजेत्समन्त्रमाददीत ॥ १६ ॥

जो पुरुष, घातक और चोरोंको अन्न, निवासस्थान, वस्त्र आदि अन्य सामान, अग्नि और सलाह देवें, तथा उनके पास नौकरी करें, तो उन्हें उत्तम साहस दण्ड दिया जाय ॥ १४ ॥ यदि यह मालूम न हो कि ये घातक या चोर हैं, तो केवल वाग्दण्ड दिया जावे। अर्थात् उलाहना आदि देकर उन्हें

समझा दिया जावे ॥ १५ ॥ घातक और चोरोंके लड़कों तथा स्त्रियोंको यदि वे चोरी और हत्याकी सलाहमें शामिल न हों, तो निरपराध समझकर छोड़ दिया जावे। यदि सलाहमें शामिल हों, तो गिरफ्तार करके उचित दण्ड दिया जावे ॥ १६ ॥

राज्यकामुकमन्तः पुरप्रधर्षकमटव्यमित्रोत्साहकं दुर्गराष्ट्रदण्डकोपकं वा शिरोहस्तप्रादीपिकं घातयेत् ॥ १७ ॥ ब्राह्मणं तमः प्रवेशयेत् ॥ १८ ॥

राज्यकी कामना करनेवाले, अन्तःपुरमें झमेला डालनेवाले, अटवीचर पुलिन्द आदिको तथा अन्य शत्रुओंको उभारनेवाले, किले तथा बाहरकी सेनाको राजासे कुपित करादेनेवाले, पुरुषोंको उनके सिर और हाथपर जलता हुआ अंगारा रखकर कत्ल करवा दिया जावे ॥ १७ ॥ यदि ऐसा काम करनेवाला कोई ब्राह्मण होवे, तो उसे आजीवन कालकोठरीमें बन्द करदे॥१८॥

मातृपितृपुत्रभ्रात्राचार्यतपस्विघातकं वा त्वक्छिरःप्रादीपिकं घातयेत् ॥ १९ ॥ तेषामाक्रोशे जिह्वाच्छेदः ॥ २० ॥ अङ्गाभिरदने तदङ्गान्मोच्यः ॥ २१ ॥

माता पिता, पुत्र, भाई, आचार्य और तपस्वीकी हत्या करनेवाले पुरुषको उसके सिरकी खाल उतरवाकर उसपर आग जलाकर कतल करवा देवे ॥ १९ ॥ माता पिता आदिको गाली देनेपर जीभ कटवा देवे ॥ २० ॥ और वह माता आदिके जिस किसी अङ्गको अपने नाखून आदिसे नूँचे खसोटे, वही अङ्ग उसका कटवा दिया जाय ॥ २१ ॥

यदृच्छाघाते पुंसः पशुयूथाऽश्वस्तेये च शुद्धवधः ॥ २२ ॥ दशावरं च यूथं विद्यात् ॥ २३ ॥ उदकधारणं सेतुं भिन्दतस्तत्रैवाप्सु निमज्जनम् ॥२४॥ अनुदकमुत्तमः साहसदण्डः ॥२५॥ भग्नोत्सृष्टकं मध्यमः ॥ २६ ॥

जो किसी पुरुषको अचानक मार देवे, अथवा पशुओंके झुण्ड या घोड़ोंको चुरालेवे, उसे शुद्ध प्राणदण्ड दिया जाय ॥ २२ ॥ कमसे कम दस पशुओंका एक झुण्ड यहां समझना चाहिये ॥ २३ ॥ जलको रोकनेवाले सेतु (बांध) को जो तोड़े, उसे वहीं जलमें डुबाकर मार दिया जाय ॥ २४ ॥ यदि बिनाही जलके सेतु बना हुआ हो, तो उसे तोड़नेवाले पुरुषको उत्तमसाहस दण्ड दिया जावे ॥ २५ ॥ यदि वह पहिलेसेही टूटाफूटा पड़ाहो और फिर उसे तोड़े तो मध्यमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ २६ ॥

विषदायकं पुरुषं स्त्रियं च पुरुषघ्नीमपः प्रवेशयेदगार्भिणीम् ॥ २७ ॥ गर्भिणीं मासावरप्रजातां पतिगुरुप्रजाघातिकामग्निविषदां संधिच्छेदिकां वा गोभिः पाटयेत् ॥ २८ ॥

किसीको बिष देकर मारनेवाले पुरुषको, और पुरुषकी हत्या करनेवाली स्त्रीको जलमें डुबाकर मार दिया जावे, परन्तु वह स्त्री गर्भिणी न हो ॥२७॥ अगर गर्भिणी हो, तो बच्चा होनेके कमसे कम एक महीने बाद डुबाकर मार दी जावे । और अपने पति, गुरु तथा बच्चेकी हत्या करनेवाली, आग लगानेवाली, विष देनेवाली, तथा सेंध लगाकर चोरी करनेवाली स्त्रीको गौओंके पैरोंके नीचे कुचलवाकर मार दिया जावे ॥ २८ ॥

विवीतक्षेत्रखलवेश्मद्रव्यहास्तिवनादीपिकमग्निना दाहयेत् ॥२९॥ राजाक्रोशकमन्त्रभेदकयोरनिष्टप्रवृत्तिकस्य ब्राह्मणमहानसावलेहिनश्चजिह्वामुत्पाटयेत् ॥३०॥ प्रहरणावरणस्तेनमनायुधीयमिषुभिर्घातयेत् ॥ ३१ ॥

चरागाह, खेत, खल्यान, घर, लकड़ियोंके, तथा हाथियोंके सुरक्षित जंगलोंमें आग लगाने वाले पुरुषको अग्निमें जला दिया जाय ॥ २९ ॥ राजाको गाली देनेवाले, गुप्त रहस्यको खोल देनेवाले, राजाके अनिष्टको फैलाने वाले, तथा ब्राह्मणकी पाकशालासे बलात्कार अन्न लेकर खानेवाले पुरुषकी जिह्वा कटवा दी जाय ॥ ३० ॥ जो हथियारसे अपनी आजीविका न करता हो, ऐसा पुरुष यदि हथियार और कवच आदि चुरावे, तो उसे सामने खड़ा करके बाणों से मरवा देना चाहिए ॥ ३१ ॥

आयुधीयस्योत्तमः ॥ ३२ ॥ मेढ्रफलोपघातिनस्तदेव छेदयेत् ॥ ३३ ॥ जिह्वानासोपघाते संदंशवधः ॥ ३४ ॥

यदि वह हथियारोंसे आजीविका करता हो, तो उसे उत्तम साहसदंड दिया जावे, ॥ ३२ ॥ यदि कोई किसीकी उपस्थ इन्द्रिय और अण्डकोश काट डाले, तो उसकेभी उपस्थ इन्द्रिय और अण्डकोश कटवा दिये जावें ॥ ३३ ॥ किसीकी जिह्वा और नासिका काट देने पर, काटने वाले पुरुषकी कनी (कनिष्ठिका) अंगुली और अंगूठा कटवा दिया जाय ॥ ३४ ॥

एते शास्त्रेष्वनुगताः क्लेशदण्डा महात्मनाम् ।
आक्लिष्टानां तु पापानां धर्म्यः शुद्धवधः स्मृतः ॥ ३५ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थेऽधिकरणे शुद्धश्चित्रश्च दण्डकल्प एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ आदितोऽष्टाशीतिः ॥ ८८ ॥

ये कठोर मृत्युदण्ड मनु आदि महात्माओंके धर्मशास्त्रों में विधान किये गये हैं। इनसे कुछ हलके पापोंका, शुद्धवध ही धर्मानुकूल दण्ड समझना चाहिये ॥ ३९ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरण में ग्यारहां अध्याय समाप्त।

बारहवां अध्याय।

८७ प्रकरण

कन्या प्रकर्म।

सवर्णामप्राप्तफलां कन्यां प्रकुर्वतो हस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः ॥ १ ॥ मृतायां वधः ॥ २ ॥ प्राप्तफलां प्रकुर्वतो मध्यमप्रदेशिनीवधो द्विशतो वा दण्डः पितुश्चावहीनं दद्यात् ॥ ३ ॥

जो पुरुष अपनी जातिकी अरजस्का (जो उस समय तक रजस्वला न हुई हो) कन्याको दूषित करे, उसका हाथ कटवा दिया जाय, अथवा ४०० पण दण्ड दिया जाय ॥१॥ यदि वह योनिक्षतके दुःखसे मरजावे, तो अपराधीको प्राणदण्ड दिया जावे ॥ २ ॥ यदि वह रजस्वला होचुकी हो, तो अपराधीकी मध्यमा (बीचकी) और तर्जनी (अंगूठेके पासकी) अंगुली कटवा दी जावे, अथवा २००पण दण्ड दिया जावे, और लड़कीका पिता जोकुछ हर्जाना बतावे, उसे दिलवाया जावे ॥ ३ ॥

न च प्राकाम्यमकामायां लभेत ॥ ४ ॥ सकामायां चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ ५ ॥ स्त्रियास्त्वर्धदण्डः ॥ ६ ॥

पुरुषकी कामना न करनेवाली कन्यामें संग करनेसे कभी इच्छा पूर्त्ति नहीं होती, अतः यह सर्वथा त्याज्य है (इसका फल सिवाय दण्ड भुगतनेके और कुछ नहीं होता) ॥ ४ ॥ जो पुरुषकी इच्छा करती है, उसके साथ संग करने पर पुरुषको ५४ पण दण्ड ॥ ५ ॥ और स्त्रीको २७ पण दण्ड दिया जाय ॥ ६ ॥

परशुल्कावरुद्धायां हस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः शुल्कदानं च ॥७॥ सप्तार्तवप्रजातां वरणादूर्ध्वमलभमानः प्रकृत्य प्राकामी स्यात् ॥ ८ ॥ न च पितुरपहीनं दद्यात् ॥९॥ ऋतुप्रतिरोधिभिः स्वाम्यादपक्रामति ॥ १० ॥

दूसरेके साथ सगाई हो जानेके कारण रुकी हुई कन्याको जो दूषित

करे, उसका हाथ काट दिया जाय, अथवा ४०० पण दण्ड दिया जाय, और सगाईका (शुल्क) धन उससे वसूल किया जावे ॥ ७ ॥ सात मासिक धर्म होने तकभी यदि सगाई कीहुई कन्याका विवाह न किया जावे, तो उसका भावी पति, उस कन्याको यथेच्छ भोग सकता है ॥ ८ ॥ और वह उस कन्या के पिताको हर्जानाभी न देवे ॥ ९ ॥ क्योंकि वह पिता मासिक ऋतु धर्मरूपी तस्करोंके कारण, लड़कीके स्वामित्वसे हटादिया गया है। अर्थात् ऐसी अवस्था में लड़कीपर उसका कोई स्वत्व नहीं रह जाता ॥ १० ॥

त्रिवर्षप्रजातार्तवायास्तुल्यो गन्तुमदोषः ॥ ११ ॥ ततः परमतुल्योऽप्यनलंकृतायाः ॥१२॥ पितृद्रव्यादाने स्तेयं भजेत ॥ १३ ॥

यदि तीन वर्षतक मासिक धर्म होनेपरभी कन्या न विवाही जावे, तो उसकी जातिका कोई भी पुरुष उसके साथ संग कर सकता है इसमें कोई दोष नहीं। (अर्थात् वह पुरुष उसको अपने पास रख सकता है) ॥ ११ ॥ यदि मासिक धर्म होतेहुए तीन वर्षसे अधिक गुजर जांय, तो भिन्न जातिका पुरुषभी उसको अपनी स्त्री बना सकता है, इसमें कोई दोष नहीं, परन्तु वह पुरुष, लड़कीके पिताके बनवाये हुए आभूषण आदि, तथा अन्य द्रव्य, उस लड़कीके साथ नहींले जासकता ॥१२॥ यदि वह उसके (कन्याके) पिताके द्रव्यको उसे (पिताको) न लौटावे तो चोरीका दण्ड पावे ॥ १३ ॥

परमुद्दिश्यान्यस्य विन्दतो द्विशतो दण्डः ॥ १४ ॥ न च प्राकाम्यमकामायां लभेत ॥ १५ ॥ कन्यामन्यां दर्शयित्वान्यां प्रयच्छतः शत्यो दण्डस्तुल्यायाम् ॥१६॥ हीनायां द्विगुणः ॥१७॥

दूसरेके लिये कही हुई कन्याको, 'वह पुरुष मैं ही हूं' ऐसा कहकर जो अन्य पुरुष विवाहता है, उसे २०० पण दण्ड दिया जाय ॥ १४ ॥ स्त्रीकी कामना न होनेपर कोई भी पुरुष यथेच्छ भोग न करे, ॥ १५ ॥ एक कन्याको पहिले दिखला कर विवाहके समय उसी जातिकी दूसरी कन्याको देवे, तो १०० पण दण्ड दिया जाय ॥१६॥ यदि हीन जातिकी कन्याको देवे तो २०० पण दण्ड दिया जाय ॥ १७ ॥

प्रकर्मण्यकुमार्याश्चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ १८ ॥ शुल्कव्ययकर्मणी च प्रतिदद्याद् अवस्थाय ॥१९॥ तज्जातं पश्चात्कृता द्विगुणं दद्यात् ॥ २० ॥

जो पुरुष क्षतयोनि स्त्रीका अक्षतयोनि कहकर दूसरी बार विवाह करदे,

उसे ५४ पण दण्ड दिया जाय ॥१८॥ और शुल्क तथा विवाहमें हुए खर्चको विवाह करने वाले पुरुषके पास लौटादे ॥ १९ ॥ यदि फिर तीसरी बारभी वह अक्षत योनि कहकर विवाह करे, तो पहलेसे दुगना अर्थात् १०८ पण उसे जुरमाना किया जाय ॥ २० ॥

अन्यशोणितोपधाने द्विशतो दण्डः ॥ २१ ॥ मिथ्याभिशंसिनश्च पुंसः ॥ २२ ॥ शुल्कव्ययकर्मणी च जीयेत ॥ २३ ॥

योनिक्षीणता दिखलानेके लिये, दूसरेका रुधिर अपने कपड़ोंपर लगाने वाली स्त्रीको २०० पण दण्ड दिया जाय ॥ २१ ॥ और झूठ बोलने वाले पुरुष कोभी (अर्थात् जो अक्षत योनि स्त्रीको क्षत योनी बताये) यही (२०० पण) दण्ड दिया जाय ॥ २२ ॥ तथा शुल्क और विवाहका खर्चभी उससे दिलवाया जाय ॥ २३ ॥

न च प्राकाम्यमकामायां लभेत ॥२४॥ स्त्री प्रकृता सकामा समाना द्वादशपणदण्डं दद्यात् ॥ २५ ॥ प्रकर्त्री द्विगुणम् ॥२६॥

स्त्रीकी इच्छाके विरुद्ध उसे कोई नहीं भोग सकता ॥ २४ ॥ कामना रखती हुई समान जातिकी स्त्रीको यदि कोई क्षतयोनी करदेवे, तो वह स्त्री १२ पण जुरमाना देवे ॥ २५ ॥ यदि वह स्त्री स्वयंही अपनी योनिको क्षीण कर लेवे, तो उसे दुगना अर्थात् २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ २६ ॥

अकामायाः शत्यो दण्ड आत्मरागार्थं शुल्कदानं च ॥२७॥ स्वयं प्रकृता राजदास्यं गच्छेत् ॥ २८ ॥ बहिर्ग्रामस्य प्रकृतायां मिथ्याभिशंसने च द्विगुणो दण्डः ॥ २९ ॥

पुरुषकी कामना न रखती हुई भी स्त्री केवल थोड़ी देरकी अपनी खुशीके लिये, किसी पुरुषसे अपनी योनि क्षीण कराती है, तो वह १०० पण दण्ड देवे, और उस पुरुषको फीस देवे ॥ २७ ॥ जो स्त्री अपनी इच्छासे संग करती है, वह राजदासियोंमें होजावे ॥ २८ ॥ गांवके बाहर विजन स्थानमें संग करनेपर स्त्रीको दुगना अर्थात् २४ पण, और पुरुषको 'मैंने संग नहीं किया' इस प्रकार झूठ बोलनेपर दुगना दण्ड दियाजाय ॥ २९ ॥

प्रसह्य कन्यामपहरतो द्विशतः ॥ ३० ॥ ससुवर्णामुत्तमः ॥ ३१ ॥ बहूनां कन्यापहारिणां पृथग्यथोक्ता दण्डाः ॥ ३२ ॥

बलात्कार कन्या अपहरण करने वाले पुरुषको २०० पण दण्ड दिया जाय ॥ ३० ॥ यदि वह स्वर्णके आभूषण आदिसे युक्त हो, तो अपहरण करने

वाले को उत्तम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ३१ ॥ कन्याको अपहरण करनेवाले यदि बहुतसे व्यक्ति होवें तो पृथक् २ यथोक्त दण्ड दिये जावें ॥ ३२ ॥

गणिकादुहितरं प्रकुर्वतश्चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डाः ॥ ३३ ॥ शुल्कं मातुर्भोगः षोडशगुणः ॥ ३४ ॥ दासस्य दास्या वा दुहितरमदासीं प्रकुर्वतश्चतुर्विंशतिपणो दण्डः शुल्काबध्यदानं च ॥३५॥

वैश्याकी लकड़ीके साथ बलात्संग करनेवाले पुरुषको ५४ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३३ ॥ और दण्डसे सोलहगुणी अर्थात् ८६४ पण फीस उसकी माताको देवे ॥ ३४ ॥ दास या दासीकी लड़कीको, जो कि स्वयं किसीकी दासी नहीं है, दूषित करे, उसे २४ पण दण्ड दिया जावे। और शुल्क तथा आभूषण आदि वह उस कन्याको देवे, ॥ ३५ ॥

निष्क्रयानुरूपां दासीं प्रकुर्वतो द्वादशपणो दण्डो वस्त्राबध्यदानं च ॥ ३६ ॥ साचिव्यावकाशदाने कर्तृसमो दण्डः ॥३७॥ प्रोषितपतिकामपचरन्तीं पतिबन्धुस्तत्पुरुषो वा संगृह्णीयात् ॥३८॥

दासता छुड़ानेके अनुरूप धन देकर जो पुरुष दासीको दूषित करे, वह १२ पण जुरमाना देवे, और स्त्रीको वस्त्र तथा आभूषण देवे ॥ ३६ ॥ कन्याको दूषित करनेमें जो सहायता देवे अथवा अवसर (मौका) या जगह देवे, उसे भी दूषित करने वालेके समान ही दण्ड दिया जाय ॥ ३७ ॥ जिसका पति विदेश चला गया हो, ऐसी स्त्री यदि व्यभिचार करे, तो पतिका भाई, या उसका कोई नौकर आदि उस (स्त्रीको) नियममें रक्खे ॥ ३८ ॥

संगृहीता पतिमाकांक्षेत ॥ ३९ ॥ पतिश्चेत्क्षमेत विसृज्येतोभयम् ॥ ४० ॥ अक्षमायाः स्त्रियाः कर्णनासाच्छेदनं वधं जारश्च प्राप्नुयात् ॥ ४१ ॥

नियममें रहती हुई वह पतिके आनेकी प्रतीक्षा करे ॥ ३९ ॥ यदि पति क्षमाकरदे, तो उन दोनों जार और जारिणीको छोड़दिया जाय अर्थात् उनको दण्ड न दिया जाय ॥ ४० ॥ क्षमा न करनेपर स्त्रीके कान नाक काट लिये जावें, और जार पुरुषको प्राण दण्ड दिया जावे ॥ ४१ ॥

जारं चोरं इत्यभिहरतः पञ्चशतो दण्डः ॥ ४२ ॥ हिरण्येन मुञ्चतस्तदष्टगुणः ॥ ४३ ॥

व्यभिचारको छिपानेके लिये यदि कोई रक्षक व्यक्ति जारको 'यह चोर जाता है' इस प्रकार कहे, तो उसे ५०० पण दण्ड दिया जावे ॥ ४२ ॥ यदि

रक्षापुरुष हिरण्यकी रिश्वत लेकर उस जार पुरुषको छोड़ देवे, तो उसे लिएहुए हिरण्यसे ८ गुणा दण्ड दिया जाय ॥४३॥

केशाकेशिकं संग्रहणमुपलिङ्गनाद्वा शरीरोपभोगानां तज्जातेभ्यः स्त्रीवचनाद्वा ॥ ४४ ॥

किसी स्त्रीका दूसरे पुरुष के साथ फंसा होना, निम्न लिखित रीतिसे जाना जासकता है:—एक दूसरेके केश आदि पकड़कर कीजाती हुई कामक्रीड़ाको देखनेसे, या कामके उद्दीपन चन्दन आदिका शरीरपर लेप करनेसे, या काम सम्बन्धी इशारोंको जानने वाले पुरुषोंके द्वारा, या स्त्री जब स्वयं कह देवे ॥ ४४ ॥

परचक्राटवीहृतामोघप्रव्यूढामरण्येषु दुर्भिक्षे वा त्यक्तां प्रेतभावोत्सृष्टां वा परस्त्रियं निस्तारयित्वा यथासंभाषितं समुपभुञ्जीत ॥ ४५ ॥

कोई पुरुष, शत्रुओं या जंगलियोंके द्वारा अपहरण की हुई, नदी प्रवाहमें बहती हुई, जंगलोंमें अथवा दुर्भिक्षके समयमें त्यागी हुई, रोग या मूर्च्छाके कारण मरी हुई समझ कर छोड़ी हुई पराई स्त्रीको भी इन सारी आपत्तियोंसे उद्धार करके, दोनोंकी सलाह होने पर अच्छी तरह भोग सकता है ॥ ४५ ॥

जातिविशिष्टामकामामपत्यवतीं निष्क्रयेण दद्यात् ॥ ४६ ॥

यदि वह स्त्री उच्च कुलकी हो, समान जाति होनेपर भी उद्धार कर्त्ता पुरुषकी कामना न करे, और बालबच्चों वालीहो, तो उसके पतिसे अपने परिश्रम (आपत्तिसे उद्धार करने)का उचित पुरस्कार लेकर उसे, उसके मालिकको देदेवे ॥ ४६ ॥

चोरहस्तान्नदीवेगाद्दुर्भिक्षाद्देशविभ्रमात् ।
निस्तारयित्वा कान्ताराऩ्नष्टां त्यक्तां मृतेति वा ॥४७॥
भुञ्जीत स्त्रियमन्येषां यथासंभाषितं नरः ।
न तु राजप्रतापेन प्रमुक्तां स्वजनेन वा ॥ ४८ ॥
न चोत्तमां न चाकामां पूर्वापत्यवतीं न च ।
ईदृशीं चानुरूपेण निष्क्रयेणापवाहयेत् ॥ ४९ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे कन्याप्रकर्म द्वादशो ऽध्यायः ॥ १२ ॥
आदितः एकोननवतिः ॥ ८९ ॥

चोरोंके हाथसे, नदी प्रवाहसे, दुर्भिक्षसे बचाकर और जंगलोंमें भटकती हुई 'तथा मरगईहै' ऐसा समझकर छोड़ी हुई पराई स्त्रीकोभी आपत्तिसे रक्षा करके दोनोंकी सलाह होनेपर कोई पुरुष भोग सकता है। परन्तु राजाके क्रोध अथवा अपने जनोंसे त्यागी हुई स्त्रीको; कुलीन, कामना रहित और बालबच्चों वाली स्त्रीको आपत्तिसे छुड़ानेपरभी कोई पुरुष उपभोग नहीं कर सकता, प्रत्युत अनुरूप पुरस्कार लेकर इस प्रकारकी स्त्रीको उनकेघर भिजवादें ॥४७-४९॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरणमें बारहवां अध्याय समाप्त

तेरहवां अध्याय

८८ प्रकरण

अतिचार दण्ड

ब्राह्मणमपेयमभक्ष्यं वा ग्रासयत उत्तमो दण्डः ॥ १ ॥ क्षत्रियं मध्यमः ॥ २ ॥ वैश्यं पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३ ॥

जो पुरुष, किसी ब्राह्मणको अभक्ष्य या अपेय वस्तु खिलावे पिलावे, उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जाय ॥ १ ॥ यदि क्षत्रियको खिलावे पिलावे तो मध्यम साहस दण्ड ॥२॥ और वैश्यको खिलाने पिलानेपर प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ३ ॥

शूद्रं चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ ४ ॥ स्वयंग्रसितारो निर्विषयाः कार्याः ॥ ५ ॥ परगृहाभिगमने दिवा पूर्वः साहसदण्डः ॥ ६ ॥ रात्रौ मध्यमः ॥७॥ दिवा रात्रौ वा सशस्त्रस्य प्रविशत उत्तमो दण्डः ॥ ८ ॥

तथा शूद्रको खिलाने पिलानेपर ५४ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४ ॥ यदि ब्राह्मण आदि स्वयंही अभक्ष्य अपेय खावें पीवें तो उन्हें देशसे बाहर करदिया जाय ॥ ५ ॥ जो पुरुष दिनमें ही किसी दूसरेके घरमें घुसे, उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ६ ॥ रात्रिमें प्रवेश करनेपर मध्यम साहस दण्ड ॥ ७ ॥ और रात अथवा दिनमें हथियार लेकर प्रवेश करनेपर उत्तम साहस दण्डदिया जाय ॥ ८ ॥

भिक्षुकवैदेहकौ मत्तोन्मत्तौ बलादापदि चातिसंनिकृष्टाः प्रवृत्त-प्रवेशाश्चादण्ड्या अन्यत्र प्रतिषेधात् ॥९॥ स्ववेश्मनो ऽपि रात्रा-दूर्ध्वं परिवार्यमारोहतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ १० ॥

भिखारी और फेरी लगानेवाले, मदिरा पीने और उन्माद रोगसे पागल हुए २ बलात्कार, बन्धुबान्धव और मित्र आदि आपत्तिमें, यदि दूसरेके घरमें प्रवेश करें, तो ये उस हालतमें दण्डनीय नहीं होते, जबकि घरके किसी आदमीने भीतर जानेसे इन्हें रोका न हो ॥ ९ ॥ यदि कोई पुरुष एक प्रहर रात्रि बीतजानेपर, अपनेही घरकी बाहरकी ओरकी दीवारोंपर चढ़े, तो उसे प्रथमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ १० ॥

परवेश्मनो मध्यमः ॥ ११ ॥ ग्रामारामवाटभेदिनश्च ॥१२॥ ग्रामेष्वन्यतः सार्थिका ज्ञातसारा वसेयुः ॥ १३ ॥ मुषितं प्रवासितं चैषामनिर्गतं रात्रौ ग्रामस्वामी दद्यात् ॥ १४ ॥ ग्रामान्तेषु वा मुषितं प्रवासितं विवीताध्यक्षो दद्यात् ॥ १५ ॥

यदि इसी हालतमें दूसरेके घरकी दीवारोंपर चढ़े ॥ ११ ॥ और ग्राम अथवा बागीचोंकी बाढ़को तोड़े, तो उसे मध्यमसाहस दण्ड दिया जाय ॥१२॥ यात्रा करते हुए व्यापारी लोग यदि किसी गांवमें ठहरें, तो अपने पासके सब माल असबाबकी सूचना ग्रामाध्यक्षको देकरही ठहरें ॥ १३ ॥ रातमें यदि यदि इनकी चोरी होजाय, या गांवमें कोई वस्तु छूट जाय, तो उस वस्तुको ग्रामाध्यक्ष देवे ॥ १४ ॥ अगर गांवके बाहर सरहद्में ही कोई वस्तु चुराई गई हो या छूट गई हो, तो उसे विवीताध्यक्ष (चरागाहका निरीक्षक) देवे ॥ १५ ॥

अविवीतानां चोररज्जुकः ॥ १६ ॥ तथाप्यगुप्तानां सीमावरोधेन विचयं दद्युः ॥ १७ ॥ असीमावरोधे पञ्चग्रामी दशग्रामी वा ॥ १८ ॥

यदि वहांपर चारागाह आदि भी न होवें, ऐसे स्थानोंपर चुराई हुई या छूटी हुई वस्तुको चोररज्जुक (चोरोंको पकड़नेवाले राजपुरुष) देवें ॥ १६ ॥ यदि फिरभी वस्तु सुरक्षित न रह सके तो जिसकी सीमामें वह चोरी आदि हुई हो, उस सीमाका मालिक वस्तु मिल जानेपर दे देवे ॥ १७ ॥ यदि फिर भी प्रबन्ध न हो सके, तो जहां चोरी आदि हुई हो उसके पासके पांच गांव या दसगांवकी पञ्चायत उस धनको ढूंढकर अदा करे ॥ १८ ॥

दुर्बलं वेश्म शकटमनुत्तब्धमूर्ध्वस्तम्भशस्त्रमनपाश्रयमप्रतिच्छन्नं श्वभ्रं कूपं कूटावपातं वा कृत्वा हिंसायां दण्डपारुष्यं विद्यात् ॥ १९ ॥

मकानकी दीवार आदिको कमजोर करके, गाड़ीकी छतरी आदि मजबूत न लगाकर, हथियारको ठीक तौरपर न रखकर, गड्ढेको न पूरकर, और कुएकी मन न बनाकर, अर्थात् इन बातोंकी वजहसे जो पुरुष किसीकी हत्यामें कारण बन जाय, तो उसे दण्डपारुष्यमें बतलाये हुए उचित दण्ड दिये जावें ॥ १९ ॥

वृक्षच्छेदने दम्यरश्मिहरणे चतुष्पदानामदान्तसेवने वा काष्ठलोष्टपाषाणदण्डबाणबाहुविक्षेपणेषु याने हस्तिना च ॥ २० ॥ संघट्टने चापेहीति प्रक्रोशन्नदण्ड्यः ॥ २१ ॥

वृक्ष काटते समय, मारनेवाले बैल आदिकी रस्सी खोलते समय, पहिले पहिले चौपायोंको सवारीमें चलानेका अभ्यास कराते समय, अथवा दोका आपसमें झगड़ा होनेपर लकड़ी, ढेला, पत्थर, डण्डे, बाण फेंकने और हाथापाई करते समय, तथा हाथीकी सवारी करते समय, और भीड़में हटजाओ २ इस प्रकार चिल्लानेपर भी यदि बीचमें आ जानेसे किसीके हाथ पांव टूट जावें, तो वृक्ष काटनेवाले आदि पुरुष दण्डनीय न समझे जावें ॥ २०-२१ ॥

हस्तिना रोषितेन हतो द्रोणान्नमद्यकुम्भं माल्यानुलेपनं दन्तप्रमार्जनं च पटं दद्यात् ॥ २२ ॥

यदि कोई पुरुष 'मैं हाथीके द्वारा मारा जाऊँ' ऐसा सोचकर सड़कपर उसके रास्तेमें आकर लेट जावे, और इस लिये गुस्सेमें आकर हाथी उसे मार देवे, तो उसके उत्तराधिकारी बन्धु बान्धवोंको उचित है कि वे द्रोणभर अन्न मद्यका एक घड़ा, माला, अनुलेपन (माथेपर लगानेके लिये सिन्दूर या चन्दन आदि) और दान्त साफ करनेका वस्त्र, हाथीके लिये देवें ॥ २२ ॥

अश्वमेधावभृथस्नानेन तुल्यो हस्तिना वध इति पादप्रक्षालनम् ॥ २३ ॥ उदासीनवधे यातुरुत्तमो दण्डः ॥२४॥ शृङ्गिणा दंष्ट्रिणा वा हिंस्यमानममोक्षयतः स्वामिनः पूर्वः साहसदण्डः ॥ २५ ॥

क्योंकि जितना पुण्य अश्वमेधके अनन्तर पवित्र स्नान करनेसे होता है, उतनाही पुण्य हाथीके द्वारा मारे जानेपर होता है, इसलिये द्रोणभर अन्न आदि देना, यह हाथीकी पूजा विशेष है ॥ २३ ॥ परन्तु यदि कोई पुरुष इस प्रकार मरना न चाहे, और वह सवारके प्रमादसे हाथीके द्वारा मारा जावे, तो सवारको उत्तम साहस दण्ड दियाजाय ॥ २४ ॥ यदि किसी पुरुषको, गौ

आदि सींगसे मारें, अथवा घोड़े आदि दांतसे काटें, और गौ आदिका मालिक उसको न छुड़ावे, तो मालिकको प्रथम साहस दण्ड दियाजाय ॥ २५ ॥

प्रतिक्रुष्टस्य द्विगुणः ॥ २६ ॥ शृङ्गिदंष्ट्रिभ्यामन्योन्यं घातयतस्तच्च तावच्च दण्डः ॥ २७ ॥ देवपशुमृषभमुक्षाणं गोकुमारीं वा वाहयतः पञ्चशतो दण्डः ॥ २८ ॥

मारे या काटे जाने वाले आदमीके 'मुझे छुड़ाओ २, इस प्रकार चिल्लानेपर भी यदि मालिक न छुड़ावे, तो पहिलेसे दुगना दण्ड दिया जावे ॥२६॥ यदि सींग वाले और दांतवाले जानवर आपसमें लड़कर एक दूसरेको मारदें, तो (मारने वाले पशुका) मालिक मरे हुए जानवरकी कीमत और उतनाही दण्ड देवे ॥२७॥ देव सम्बन्धी (देवताके नामपर छोड़े हुए) किसी पशुको, सांडको, बैलको या बछड़ीको जो कोई पुरुष जोते उसे ५०० पण दण्ड दियाजाय ॥ २८ ॥

प्रवासयत उत्तमः ॥ २९ ॥ लोमदोहवाहनप्रजननोपकारिणां क्षुद्रपशूनामादाने तच्च तावच्च दण्डः ॥ ३० ॥ प्रवासने च ॥ ३१ ॥ अन्यत्र देवपितृकार्येभ्यः ॥ ३२ ॥

यदि इनको कोई निकाले या दूर लेजावे, तो उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जाय ॥२९॥ ऊन, दूध, तथा सवारी देनेवाले, और बच्चा पैदा करने वाले छोटे २ पशुओंका जो अपहरण करे, वह उनकी कीमत और उतनाही दण्ड देवे ॥३०॥ इनका प्रवासन करनेपर भी यही दण्ड दिया जावे ॥ ३१ ॥ परन्तु यदि देवकार्यके लिये या पितृ-कार्यके लिये प्रवासन हो तो कोई दोष नहीं ॥ ३२ ॥

छिन्ननस्यं भग्नयुगं तिर्यक्प्रतिमुखागतं प्रत्यासरद्वा चक्रयुक्तं यातपशुमनुष्यसंबाधे वा हिंसायामदण्ड्यः ॥ ३३ ॥ अन्यथा यथोक्तं मानुषप्राणिहिंसायां दण्डमभ्याभवेत् ॥ ३४ ॥

यदि बैलकी नाथ टूट जाय, या जूआ टूट जाय, या जुता हुआही बैल तिरछा होजाय, या सामनेकी ओर बिलकुल उलटा होजाय, या अन्य गाड़ियों पशुओं तथा मनुष्योंकी भारी भीड़ हो, ऐसे समयमें यदि किसी मनुष्य या पशुको चोट पहुँच जाय, तो गाड़ी चलाने वालेको अपराधी न समझा जावे ॥ ३३ ॥ यदि ये सब बातें न हों तो मनुष्य या पशुको किसी तरहकी चोट पहुँचनेपर पहिले कहे हुए उचित दण्ड दिये जावें ॥ ३४ ॥

अमानुषप्राणिवधे प्राणिदानं च ॥ ३५ ॥ बाले यातरि यानस्थः स्वामी दण्ड्यः ॥ ३६ ॥ अस्वामिनि यानस्थः प्राप्तव्यवहारो

वा याता ॥३७॥ बालाधिष्ठितमपुरुषं वा यानं राजा हरेत् ॥३८॥

यदि मनुष्य या बड़े पशुके अतिरिक्त कोई छोटासा बकरी या मुर्गा आदि मर जाय, तो वह उसी तरहका दूसरा जानवर देवे ॥ ३५ ॥ यदि उस समय गाड़ी चलाने वाला नाबालिग हो, तो उसका मालिक इन सब दण्डों को भुगते ॥ ३६ ॥ यदि मालिक उपस्थित न हो, तो गाड़ीमें सवार होनेवाला पुरुष, अथवा दूसरा बालिग सारथि इस दण्डको भोगे ॥ ३७ ॥ यदि गाड़ीमें बालक के सिवाय कोई न हो, तो राजा उसे जब्त करले ॥३८॥

कृत्याभिचाराभ्यां यत्परमापादयेत्तदापादयितव्यः ॥३९॥ कामं भार्यायामनिच्छन्त्यां कन्यायां वा दारार्थिनां भर्तरि भार्याया वा संवननकरणम् ॥ ४० ॥ अन्यथा हिंसायां मध्यमः साहस-दण्डः ॥ ४१ ॥

कृत्या और अभिचार कर्मोंसे जो दूसरेको तंग करे, उसे गिरफ्तार कर लिया जाय ॥ ३९ ॥ जो स्त्री पतिको न चाहे, उस पर पति, कन्यापर स्त्रीको चाहनेवाले पुरुष, और अपने पतिपर भार्या, कृत्या वशीकरण आदि तान्त्रिक प्रयोगोंको कर सकते हैं। इतनेमें वे अपराधी न समझे जावें ॥ ४० ॥ इससे अतिरिक्त विषयमें तान्त्रिक प्रयोग करनेपर, करने वालोंको मध्यम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ४१ ॥

मातापित्रोर्भगिनीं मातुलानीमाचार्याणीं स्नुषां दुहितरं भगिनीं वाधिचरतः लिङ्गच्छेदनं वधश्च ॥ ४२ ॥ सकामा तदेव लभेत ॥ ४३ ॥

जो पुरुष, माता और पिताकी बहिन (मासी और बूआ), मामाकी स्त्री (मामी) गुरुमाता (गुरुकी स्त्री), पुत्रवधू, अपनी लड़की और अपनी बहिनके साथ व्यभिचार करे, उसकी उपस्थ इन्द्रिय और अण्डकोश काटकर प्राण दण्ड दिया जावे ॥४२॥ यदि मासी बूआ आदि स्वयं ऐसा करवावें, तो उन्हें भी दोनों स्तन और भगका छेदन करके प्राण दण्ड दिया जावे ॥ ४३ ॥

दासपरिचारकाहितकभुक्ता च ॥ ४४ ॥ ब्राह्मण्यामगुप्तायां क्षत्रियस्योत्तमः ॥ ४५ ॥ सर्वस्वं वैश्यस्य ॥ ४६ ॥ शूद्रः कटाग्निना दह्येत ॥४७॥ सर्वत्र राजभार्यागमने कुम्भीपाकः ॥ ४८ ॥

दास, परिचारक और बन्धुए यदि व्यभिचार करें, तो उन दोनोंको भी वही दण्ड दिया जावे ॥ ४४ ॥ स्वतन्त्र रहने वाली ब्राह्मणीके साथ यदि

क्षत्रिय व्यभिचार करे, तो उसे उत्तम साहसदण्ड दिया जावे ॥ ४५ ॥ यदि वैश्य करे तो उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति जब्त करली जावे ॥ ४६ ॥ यदि शूद्र करे, तो उसको तिनकोंकी आगमें जला देना चाहिए ॥ ४७ ॥ राजाकी स्त्रीके साथ जो कोई भी व्यभिचार करे, उसे तपे भाड़में भून दिया जावे ॥ ४८ ॥

श्वपाकीगमने कृतकबन्धाङ्कः परविषयं गच्छेच्छ्वपाकत्वं वा ॥ ४९ ॥ शूद्रश्वपाकस्यार्यागमने वधः स्त्रियाः कर्णनासाच्छेदनम् ॥ ५० ॥ प्रव्रजितागमने चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ५१ ॥ सकामा तदेव लभेत ॥ ५२ ॥

चण्डालीके साथ गमन करनेपर पुरुषके माथेपर छाप लगाकर उसे देश से बाहर निकाल दिया जावे । यदि गमन करने वाला पुरुष शूद्र हो, तो उसे चण्डालभी बनाया जा सकता है ॥ ४९ ॥ चण्डाल यदि किसी आर्या (ब्राह्मणी क्षत्रिया, वैश्या) के साथ गमन करे, तो उसे प्राण दिया जाय, और स्त्रीके कान तथा नाक काट दिये जावें ॥ ५० ॥ सन्यासिनीके साथ गमन करनेपर २४ पण दण्ड दिया जाय, ॥ ५१ ॥ यदि संन्यासिनी कामवश ऐसा करवावे तो उसेभी यही (२४पण) दण्ड दिया जाय ॥ ५२ ॥

रूपाजीवायाः प्रसह्योपभोगे द्वादशपणो दण्डः ॥ ५३ ॥ बहूनामेकाधिचरतां पृथक्चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ५४ ॥ स्त्रियमयोनौ गच्छतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५५ ॥ पुरुषमधिमेहतश्च ॥ ५६ ॥

वेश्याके साथ बलात्कार संभोग करनेपर १२ पण दण्ड दिया जावे, ॥५३॥ यदि बहुतसे आदमी किसी एक स्त्रीके साथ भोग करें, तो उन्हें पृथक् पृथक् २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ ५४ ॥ स्त्रीको यदि योनिके अतिरिक्त स्थान से (गुदा मुख आदिमें) कोई भोग करे, तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५५ ॥ पुरुषके साथ गमन (इग़लाम) करने परभी यही (प्रथम साहस) दण्ड दिया जावे ॥ ५६ ॥

मैथुने द्वादशपणः तिर्यग्योनिष्वनात्मनः ।
दैवतप्रतिमानां च गमने द्विगुणः स्मृतः ॥ ५७ ॥
अदण्ड्यदण्डने राज्ञो दण्डस्त्रिंशद्गुणोऽम्भसि ।
वरुणाय प्रदातव्यो ब्राह्मणेभ्यस्ततः परम् ॥ ५८ ॥

गौ आदि पशुयोनियोंमें गमन करनेवाले पापी पुरुषको १२ पण, और देव प्रतिमाओंके साथ गमन करनेपर २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ ५७ ॥ अद-

ण्डनीय व्यक्तिको दण्ड देनेपर, राजाको उस दण्डसे ३० गुणा दण्ड दिया जावे और वह दण्डका धन, वरुण देवताके उद्देश्यसे जलमें डाल दिया जावे, और फिर ब्राह्मणोंको देदिया जावे ॥ ५८ ॥

तेन तत्पूयते पापं राज्ञो दण्डापचारजम् ।
शास्ता हि वरुणो राजा मिथ्या व्याचरतां नृषु ॥ ५९ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे अतिचारदण्डः त्रयोदशो ऽध्यायः ॥ १३ ॥
आदितः नवतिः ॥ ९० ॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य कण्टकशोधनं
चतुर्थमधिकरणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

ऐसा करनेसे, ठीक दण्ड न देनेके कारण उत्पन्न हुआ हुआ राजा का पाप, शुद्ध हो जाता है । अर्थात् राजा उस पापसे छूट जाता है । क्योंकि मनुष्योंमें मिथ्या व्यवहार (अनुचित व्यवहार) करने वाले राजाओंका शासन वरुण ही करता है ॥ ५९ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरणमें तेरहवां अध्याय समाप्त ।

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरण समाप्त ॥

योगवृत्त पञ्चम अधिकरण

पहला अध्याय

८९. प्रकरण

दण्ड (उपांशुवध) प्रयोग ।

दुर्गराष्ट्रयोः कण्टकशोधनमुक्तम् ॥१॥ राजराज्ययोर्वक्ष्यामः ॥ २ ॥

दुर्ग और राष्ट्रके कण्टकोंका शोधन चतुर्थ अधिकरणमें कह दिया गया है ॥ १ ॥ अब राजा और उसके अमात्य आदिमें कण्टकोंका शोधन बताया जायगा ॥ २ ॥

राजानमवगृह्योपजीविनः शत्रुसाधारणा वा ये मुख्यास्तेषु गूढपुरुषप्रणिधिः कृत्यपक्षोपग्रहो वा सिद्धिर्यथोक्तं पुरस्तादपजापोपसर्पो वा यथा च पारग्रामिके वक्ष्यामः ॥ ३ ॥

राजाको नीचा करके रहने वाले, अथवा दुश्मनोंसे मिले हुए जो मुख्य पुरुष (प्रधान पुरुष=मन्त्री पुरोहित सेनापति युवराज आदि) होवें, उनके मुकाबलेमें सिद्धिलाभ करनेके लिये यह आवश्यक है कि राजा अत्युत्तम गुप्त पुरुषोंकी नियुक्ति करे, और जो व्यक्ति शत्रुओंसे खार खाए बैठे हों उनको अपनी ओर मिलावे । उनकी नियुक्ति और काम करानेका ढंग पहिले (१ अधि- १२ अध्यायमें) कह चुके हैं, और आगे पारग्रामिक (१३ अधि० १ अध्या०) प्रकरण में कहा जायगा ॥ ३ ॥

राज्योपघातिनस्तु वल्लभाः संहता वा ये मुख्याः प्रकाशमशक्याः प्रतिषेद्धुं दूष्यास्तेषु धर्मरुचिरुपांशुदण्डं प्रयुञ्जीत ॥ ४ ॥

जो अध्यक्ष अथवा आपसमें मिले हुए अमात्य आदि राज्यका नाश कर रहे हों, जिन दुष्टोंको कि खुले तौरपर कुछ न कहा जासके (क्योंकि ये बड़े २ अधिकारोंपर रहते हैं, इनको सीधा कहनेसे प्रजामें असन्तोष फैलनेकी सम्भावना रहती है), धर्मात्मा राजाको चाहियेकि उनमें उपांशुदण्ड (ऐसा वध आदि दण्ड जिसमें मारने का तथा मारने वाले आदिका कुछभी विशेष

पता न लगने पाय , अर्थात् छिपे २ चुपचाप वध आदि करा देने) का प्रयोग करे ॥ ४ ॥

दूष्यमहामात्रभ्रातरमसत्कृतं सत्त्री प्रोत्साह्य राजानं दर्शयेत् ॥५॥ तं राजा दूष्यद्रव्योपभोगातिसर्गेण दूष्ये विक्रमयेत् ॥६॥ शस्त्रेण रसेन वा विक्रान्तं तत्रैव घातयेद्भ्रातृघातकोऽयमिति ॥७॥

दूषणीय हस्त्यध्यक्ष आदिके भाईको, जिसको कि दायभाग न मिला हो, सत्कार पूर्वक उभार कर, सत्री राजाको दिखावे, अर्थात् उसे राजाके पास लावे ॥ ५ ॥ राजा उसको दूषणीयका निग्रह करनेके लिये हथियार आदि सामान देकर, झगड़ा करवा देवे ॥ ६ ॥ जब वह विष या शस्त्र आदिसे अपने भाईको मार देवे, तो इसी अपराधमें 'यह अपने भाईका घातक है' ऐसा कहकर राजा उसेभी मरवा देवे ॥ ७ ॥

तेन पारशवः परिचारिकापुत्रश्च व्याख्यातौ ॥ ८ ॥ दूष्यमहामात्रं वा सत्त्रिप्रोत्साहितो भ्राता दायं याचेत ॥ ९ ॥

यही ढंग पारशव महामात्र (महामात्रका, नीच वर्णकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ पुत्र) और परिचारिका पुत्र (दासीसे उत्पन्न हुए पुत्र) के सम्बन्धमें जानना चाहिये। अर्थात् सत्री इनको उभारकर लावे, ये अपने पिताको मारदें, और इन्हें पितृघातक कहकर इसी अपराधमें राजा मरवा देवे ॥ ८ ॥ अथवा सत्रीसे उभारा हुआ भाई, दूषणीय महामात्रसे अपना दाय भाग मांगे ॥ ९ ॥

तं दूष्यगृहप्रतिद्वारि रात्रावुपशयानमन्यत्र वा वसन्तं तीक्ष्णो हत्वा ब्रूयात् ॥ १० ॥ हतोऽयं दायकामुक इति ॥ ११ ॥ ततो हतपक्षं परिगृह्येतरं निगृह्णीयात् ॥ १२ ॥

फिर तीक्ष्ण पुरुष (घातक गुप्तचर व्यक्ति), दूषणीयके घरके दरवाजेके सामने सोते हुए अथवा अन्यत्र निवास करते हुए इसको रातमें मारकर कहे कि:—॥ १० ॥ यह अपना दायभाग मांगता था, इसलिए इसके महामात्र भाईने इसे मार डाला है ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर राजा हतव्यक्तिके बंधुबांधव लड़के मामा आदिको बुलवाकर, महामात्रको 'यह भाईका घातक है' ऐसा कहकर मरवा डाले ॥ १२ ॥

दूष्यसमीपस्था वा सत्त्रिणो भ्रातरं दायं याचमानं घातेन परिभर्त्सयेयुः ॥ १३ ॥ तं रात्राविति समानम् ॥ १४ ॥

अथवा दूषणीय (महामात्र आदि) के समीप रहते हुए सभी लोग

दायभाग मांगने वाले भाईको, 'हम तुझे मारडालेंगे' ऐसा कहकर धमकावें; फिर पूर्वोक्त रीतिसे रातमें स्वयं तीक्ष्ण उसे मारदेवे, आगे सब पूर्ववत् ही समझना चाहिए ॥ १३ ॥ १४ ॥

दूष्यमहामात्रयोर्वा यः पुत्रः पितुः पिता वा पुत्रस्य दारानधिचरति भ्राता वा भ्रातुस्तयोः कापाटिकमुखः कलहः पूर्वेण व्याख्यातः ॥ १५ ॥

दूष्य और महामात्रका पुत्र, अपने पिताकी स्त्रियोंके साथ, पिता पुत्रोंकी स्त्रियोंके साथ, और भाई भाईकी स्त्रीके साथ यदि व्यभिचार करें, तो उनका (पितापुत्र और भाई भाईका) आपसमें कापटिक गुप्तचर (देखो—१ अधि०, ११ अध्या० २—३ सूत्र) झगड़ा करवा देवे। एक दूसरेको मार देनेपर पहिलेकी तरह कार्य किया जाय ॥ १५ ॥

दूष्यमहामात्रपुत्रमात्मसंभावितं वा सत्त्री राजपुत्रस्त्वं शत्रुभयादिह न्यस्तोऽसीत्युपजपेत् ॥ १६ ॥ प्रतिपन्नं राजा रहसि पूजयेत् ॥ १७ ॥ प्राप्तयौवराज्यकालं त्वां महामात्रभयान्नाभिषिञ्चामीति ॥ १८ ॥

दूष्य और महामात्रके पुत्रके पास, जोकि अपने आपको बड़ा बहादुर और उदार समझता हो, सत्री जावे, और कहे कि तुम तो युवराज होसकते हो, शत्रुके भयसे यहां पड़े हुए हो इत्यादि ॥ १६ ॥ सत्रीके कथनको स्वीकार करके जब वह राजाके पास आवे, तो एकान्तमें राजा उसका अच्छी तरह सत्कार करे ॥ १७ ॥ और कहे कि तुम्हारे यौवराज्यका समय आगया है, मैं केवल महामात्र (राज्यकी कामना करनेवाला, उस लड़केका पिता) के भयसे तुम्हारा अभिषेक नहीं करता, इत्यादि ॥ १८ ॥

तं सत्त्री महामात्रवधे योजयेत् ॥ १९ ॥ विक्रान्तं तत्रैव घातयेत्पितृघातकोऽयमिति ॥ २० ॥ भिक्षुकी वा दूष्यभार्यां सांवननकीभिरौषधीभिः संवास्य रसेनातिसंदध्यात् ॥ २१ ॥ इत्याप्यः प्रयोगः ॥ २२ ॥

फिर सत्री उस लड़केको अपने पिता महामात्रके वध करनेके लिये तैयार करदेवे ॥ १९ ॥ जब वह महामात्रका वध करदेवे, तो इसी अपराधको सामने रखकर यह पितृघातक है, ऐसा कहकर राजा उसे भी मरवा डाले ॥ २० ॥ अथवा गुप्तचरका काम करती हुई भिक्षुकी, दूष्य (महामात्र आदि)

की भार्याको कहे कि मैं वशीकरणकी औषधि बहुत अच्छी तरह जानती हूँ, तुम यह औषधि अपने पतिको खिलाना, इस प्रकार वशीकरणकी जगह विष देकर मरवा देवे ॥ २१ ॥ इस प्रकार किये गये कार्यको 'आप्य प्रयोग' कहते हैं ॥ २२ ॥

दूष्यमहामात्रमटवीं परग्रामं वा हन्तुं कान्तारव्यवहिते वा देशे राष्ट्रपालमन्तपालं वा स्थापयितुं नागरस्थानं वा कुपितमवगृहीतुं सार्थातिवाह्यं प्रत्यन्ते वा सप्रत्यादेयमादातुं फल्गुबलं तीक्ष्णयुक्तं प्रेषयेत् ॥ २३ ॥

दूष्य महामात्र, जंगलके निरीक्षक और बागी गांवको मारनेके लिये, तीक्ष्ण पुरुषोंके साथ, राजा थोड़ीसी सेना यह बहाना करके भेजे कि इस जंगलके पार अमुक नगरमें राष्ट्रपाल या अन्तपालकी स्थापना करनी है, या अमुक नगरमें प्रजा विरुद्ध होगई है उसे वशमें करना है, या यह बहाना करे कि राज्यकी सीमापर दूसरे कृषक आदि पुरुषोंने हमारी भूमि दबाली है, उसे उनसे वापस लेना है इत्यादि ॥ २३ ॥

रात्रौ दिवा वा युद्धे प्रवृत्ते तीक्ष्णाः प्रतिरोधकव्यञ्जना वा हन्युरभियोगे हत इति ॥ २४ ॥ यात्राविहारगतो वा दूष्यमहामात्रान्दर्शनायाह्वयेत् ॥ २५ ॥ ते गूढशस्त्रैस्तीक्ष्णैः सह प्रविष्टा मध्यमकक्ष्यायामात्मविचयमन्तः प्रवेशनार्थं दद्युः ॥ २६ ॥

इसके बाद रातमें या दिनमें लड़ाई होनेपर तीक्ष्ण पुरुष चोर या डाकुओंका भेस बनाकर जिसको मारना हो मार डालें, और फिर कहदें कि यह लड़ाईमें मारा गया है ॥ २४ ॥ यात्रा या विहारके लिये तैयार हुआ २ राजा, दूष्य महामात्रोंको देखनेके लिये अपने पास बुलावे ॥ २५ ॥ अपने पास शस्त्र छिपाये हुए तीक्ष्ण पुरुष भी महामात्रोंके साथ २ राजाके पास भीतर आवें। दूसरी ड्योढ़ीपर, प्रवेश करनेके लिये अपनी तलाशी देवें ॥ २६ ॥

ततो दौवारिकाभिगृहीतास्तीक्ष्णा दूष्यप्रयुक्ताः स्म इति ब्रूयुः ॥ २७ ॥ ते तदभिविख्याप्य दूष्यान्हन्युः ॥ २८ ॥

जब द्वारपाल हथियारोंके साथ उन्हें (तीक्ष्ण पुरुषोंको) पकड़े, तो वे कहें कि हमको दूष्योंने राजाके मारनेको हथियार लानेके लिये कहा है। (यह बात उसी हालतमें समझनी चाहिये; जबकि भीतर सशस्त्र जानेकी किसीको भी आज्ञा न हो) ॥ २७ ॥ तब नगरमें यह प्रख्यात करके कि दूष्य महामात्र राजाको मारना चाहते थे, उन्हें (महामात्रोंको) मरवा दिया जावे ॥ २८ ॥

तीक्ष्णस्थाने चान्ये वध्याः ॥ २९ ॥ बहिर्विहारगतो वा दूष्यानासन्नावासान्पूजयेत् ॥ ३० ॥ तेषां देवीव्यञ्जना वा दुःस्त्री रात्रावावासेषु गृह्येतेति समानं पूर्वेण ॥ ३१ ॥

तथा तीक्ष्ण पुरुषोंके स्थानपर और किन्हींको मरवा दिया जावे ॥२९॥ अथवा बाहर विहारके लिये गया हुआ राजा, अपने पासमें ही ठहरे हुए दूष्यों का बहुत अच्छी तरह आदरसत्कार करे ॥ ३० ॥ फिर रातमें, किसी दुष्ट स्त्रीको महाराणीके भेसमें बनाकर, उनके शयन स्थानमें भेजदेवे, तदनन्तर सिपाहियों के द्वारा वहींपर उसे गिरफ्तार कराले, पुनः इसी अपराधमें दूष्योंको मरवा देवे, इत्यादि ॥ ३१ ॥

दूष्यमहामात्रं वा सूदो भक्षकारो वा ते शोभन इति स्तवेन भक्ष्यभोज्यं याचेत ॥ ३२ ॥ बहिर्वा क्वचिदध्वगतः पानीयं तदुभयं रसेन योजयित्वा प्रतिस्वादने तावेवोपयोजयेत् ॥ ३३ ॥ तदभिविख्याप्य रसदाविति घातयेत् ॥ ३४ ॥

अथवा राजा, दूष्य महामात्रसे "तुम्हारा रसोईया और पकवान बनानेवाला बड़ेही चतुर है' इस प्रकार उनकी स्तुति करके, कुछ खाद्य पदार्थ मांगे ॥ ३२ ॥ या कहीं बाहर रास्तेमें जाता हुआ जल मांगे, और उन दोनों वस्तुओंमें विष मिलाकर, लीजिये आपही पहिले खाईये या पीजिये, ऐसा कहकर दूष्य महामात्रको ही वह खाद्य या पेय लौटादे । वे खापीकर मर जावेंगे ॥ ३३ ॥ फिर भोजन बनानेवालेको ये दोनों विष देनेवाले हैं, ऐसा प्रसिद्ध करके मरवा देवें ॥ ३४ ॥

अभिचारशीलं वा सिद्धव्यञ्जनो गोधाकूर्मकर्कटकूटानां लक्षण्यानामन्यतमप्रकाशनेन मनोरथानवाप्स्यसीति ग्राहयेत् ॥ ३५ ॥ प्रतिपन्नं कर्माणि रसेन लोहमुसलैर्वा घातयेत्कर्मव्यापदा हत इति ॥ ३६ ॥

सिद्धके भेसमें कोई गुप्तचर, आभिचारिक कर्मोंमें श्रद्धा रखनेवाले दूष्य महामात्रको कहे कि, अच्छे लक्षणोंसे युक्त गोह, कछुवा, केंकड़ा और टूटे हुए सींगवाले हरिण, इन चारोंमेंसे किसीको आभिचारिक विधिसे श्मशानमें पकाकर खानेपर तुम अपने सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त करसकोगे ॥ ३५ ॥ जब दूष्य महामात्र इसपर विश्वास करके श्मशानमें अभिचार कर्मको प्रारम्भ करे तो उसे खानेमें विष देकर अथवा लोहेके मूसलोंसे कूटकर मार दिया जावे ।

और यह प्रसिद्ध करादिया जावे कि कर्मके विगुण होजानेके कारण पिशाच आदिने उसको मार दिया है ॥ ३६ ॥

चिकित्सकव्यञ्जनो वा दौरात्मिकमसाध्यं वा व्याधिं दूष्यस्य स्थापयित्वा भैषज्याहारयोगेषु रसेनातिसंदध्यात् ॥ ३७ ॥ सूदारालिकव्यञ्जना वा प्रणिहिता दूष्यं रसेनातिसंदध्युः ॥ ३८ ॥ इत्युपनिषत्प्रतिषेधः ॥ ३९ ॥

अथवा चर वैद्यका भेस बनाकर, दूष्यसे कहे कि दुराचारसे उत्पन्न, या अन्य कोई असाध्यरोग तुम्हें होगया है, इस प्रकार कहकर चिकित्सा करते समय औषधि या भोजनके द्वारा विष देकर मारडाले ॥ ३७ ॥ अथवा मांस पकानेवाले या चावल आदि पकानेवाले पाचकके भेसमें जाकर दूष्यके पास रहे और उसे विष देकर मार डाले ॥ ३८ ॥ यहांतक गुप्तरूपसे दूष्योंके निग्रहके ढंग बताये गये ॥ ३९ ॥

उभयदूष्यप्रतिषेधस्तु ॥ ४० ॥ यत्र दूष्यः प्रतिषेद्धव्यस्तत्र दूष्यमेव फल्गुबलतीक्ष्णयुक्तं प्रेषयेत् ॥ ४१ ॥ गच्छामुष्मिन्दुर्गे राष्ट्रे वा सैन्यमुत्थापय ॥ ४२ ॥

अब दो दूष्योंको एकही यत्नसे किस प्रकार नष्ट किया जाय, इसका उपाय बताते हैं ॥ ४० ॥ जहांपर एक दूष्यका निराकरण करना हो, वहां दूसरे दूष्यको ही थोड़ीसी सेना और तीक्ष्ण पुरुषोंके साथ भेजे ॥ ४१ ॥ उससे यह कहे कि अमुक किले या प्रान्तमें जाओ और वहां सेनाके योग्य आदमियोंको सेनामें भर्ती करो ॥ ४२ ॥

हिरण्यं वा ॥ ४३ ॥ वल्लभाद्वा हिरण्यमाहारय ॥ ४४ ॥ वल्लभकन्यां वा प्रसह्यानय ॥ ४५ ॥ दुर्गसेतुवणिक्पथशून्यानिवेशखानिद्रव्यहस्तिवनकर्मणामन्यतमद्वा कारय ॥ ४६ ॥ राष्ट्रपाल्यमन्तपाल्यं वा ॥ ४७ ॥

अथवा सुवर्ण आदि धन जमा करो ॥ ४३ ॥ या अमुक अध्यक्षसे धन आहरण करलाओ ॥ ४४ ॥ या अमुक अध्यक्षकी कन्याको बलात्कार लेआओ ॥ ४५ ॥ या अमुक स्थानपर दुर्ग, मकान बनवाओ, व्यापारियोंके मार्गको ठीक करवाओ, जंगलमें मकान बनवाओ, खानोंमें, लकड़ीके या हाथियोंके जंगलोंमें अमुक काम करवाओ ॥ ४६ ॥ या राष्ट्रपाल अथवा अन्तपालके कार्यों को करवाओ ॥ ४७ ॥

यश्च त्वा प्रतिषेधयेन्न वा ते साहाय्यं दद्यात्स बन्धव्यः स्यादिति ॥ ४८ ॥ तथैवेतरेषां प्रेषयेदमुष्याविनयः प्रतिषेद्धव्य इति ॥४९॥ तमेतेषु कलहस्थानेषु कर्मप्रतिघातेषु वा विवदमानं तीक्ष्णाः शस्त्रं पातयित्वा प्रच्छन्नं हन्युः ॥ ५० ॥ तेन दोषेणेतरे नियन्तव्याः ॥ ५१ ॥

यदि तुम्हारे इन कार्योंमें कोई रुकावट डाले, या सहायता न देवे, उसे गिरफ्तार करालिया जाय, इत्यादि ॥ ४८ ॥ और इसी प्रकार दूसरे दूष्योंको यह मौखिकसूचना भेजदेवे कि अमुक व्यक्तिकी उद्दण्डताओंको रोको, इत्यादि ॥ ४९ ॥ इस तरह एक दूसरेमें झगड़ा होनेपर या काममें रुकावट डालेजानेपर विवाद उपस्थित करनेवाले दूष्यको गुप्तरूपसे तीक्ष्ण पुरुष शस्त्रोंके द्वारा मार देवें ॥ ५० ॥ इस प्रकार दूसरे दूष्योंपर, राजाके द्वारा नियुक्त हुए पुरुषके वधका अपराध लगाकर, उनको भी मरवा दिया जावे ॥ ५१ ॥

पुराणां ग्रामाणां कुलानां वा दूष्याणां सीमाक्षेत्रखलवेश्म-मर्यादासु द्रव्योपकरणसस्यवाहनहिंसासु प्रेक्षाकृत्योत्सवेषु वा समुत्पन्ने कलहे तीक्ष्णैरुत्पादिते वा तीक्ष्णाः शस्त्रं पातयित्वा ब्रूयुः ॥ ५२ ॥

दूष्य नगर, ग्राम अथवा परिवारोंके, सीमा, खेत, खल्यान और मकानोंकी मर्यादाके विषयमें, सुवर्ण, वस्त्र, अन्न और सवारीका विनाश करदेनेसे तथा तमाशे और उत्सवोंमें परस्पर झगड़े होनेपर अथवा तीक्ष्ण पुरुषोंके द्वारा दूष्य-नगर आदिमें झगड़ा करादेनेपर, तीक्ष्ण पुरुषही छिपे तौरपर कुछ दूष्योंको हथियारोंसे मार डालें; और दूसरे दूष्योंपर उस हत्याको थोपते हुए कहें कि तुम्हीं अपराधी हो ॥ ५२ ॥

एवं क्रियन्ते ये ऽमुना कलहायन्त इति ॥ ५३ ॥ तेन दो-षेणेतरे नियन्तव्याः ॥ ५४ ॥ येषां वा दूष्याणां जातमूलाः कलहास्तेषां क्षेत्रखलवेश्मान्यादीपयित्वा बन्धुसंबन्धिषु वाहनेषु वा तीक्ष्णाः शस्त्रं पातयित्वा तथैव ब्रूयुः ॥ ५५ ॥

जो उनके साथ झगड़ा करते हैं उनका यही हाल किया जाता है ॥ ५३ ॥ इसी अपराध को सामने रखकर अन्य दूष्योंको भी मरवा दिया जावे ॥ ५४ ॥ जिन दूष्य पुरुषोंके आपसके झगड़े जड़ पकड़ गए हों, उनके खेत खल्यान और मकान आदिको जलाकर, तीक्ष्ण पुरुष उनके भाई बन्धुओं सम्ब-

न्धियों और घोड़े आदि सवारियोंको हथियारसे मारकर उसी प्रकार कहे कि:— ॥ ५५ ॥

अमुना प्रयुक्ताः स्म इति ॥ ५६ ॥ तेन दोषेणेतरे नियन्तव्याः ॥ ५७ ॥ दुर्गराष्ट्रदूष्यान्वा सत्त्रिणः परस्परस्यावेशनिकान्कारयेयुस्तत्र रसदा रसं दद्युस्तेन दोषेणेतरे नियन्तव्याः ॥ ५८ ॥

अमुक व्यक्तिने हमको यह काम करनेके लिए कहा, इत्यादि ॥ ५६ ॥ इसी अपराधमें उनको (अन्य दूष्योंको) गिरफ्तार करके प्राण दण्ड दे दिया जाय ॥ ५७ ॥ आपसमें दुश्मनी रखनेवाले, किलेमें और उसके बाहर रहते हुए दूष्योंको, सात्रिपुरुष परस्पर मेल कराकर, एक दूसरेके घरमें उनको निमन्त्रण दिलवावें, और विष देनेवाले तीक्ष्ण पुरुष वहांपर भोजनके साथ निमन्त्रित दूष्यको विष देदेवें। इसी (विष देनेके) अपराधमें राजा दूसरे दूष्यको प्राण दण्ड दे देवे ॥ ५८ ॥

भिक्षुकी वा दूष्यराष्ट्रमुख्यं दूष्यराष्ट्रमुख्यस्य भार्या स्नुषा दुहिता वा कामयत इत्युपजपेत् ॥५९॥ प्रतिपन्नस्याभरणमादाय स्वामिने दर्शयेत् ॥ ६० ॥

अथवा (चरका कार्य करती हुई) कोई भिक्षुकी, राष्ट्रके किसी उच्चपदाधिकारी दूष्यको जाकर झूठ मूठ कहे कि अमुक दूष्य उच्चपदाधिकारीकी भार्या, पुत्रवधू या लड़की आपको बहुत चाहती है ॥ ५९ ॥ यदि वह इस बातपर विश्वास करले, तो उससे भार्या आदिके नामपर उसका कोई आभूषण लेकर दूसरे दूष्यको आकर दिखला देवे ॥ ६० ॥

असौ ते मुख्यो यौवनोत्सिक्तो भार्यां स्नुषां दुहितरं वाभिमन्यत इति ॥ ६१ ॥ तयोः कलहो रात्राविति समानम् ॥६२॥

और कहे कि देखो यह पदाधिकारी जवानीके मदके गर्वमें आकर तुम्हारी भार्या, पुत्रवधू या कन्याकी कामना करता है, इत्यादि ॥ ६१ ॥ इस प्रकार जब उनका आपसमें अच्छी तरह झगड़ा हो जावे तो रातमें तीक्ष्ण पुरुष एक दूष्यको हथियारोंसे मार डालें, और प्रसिद्ध करदें कि अमुक दूष्यने इसको मारा है, राजा इसी अपराधमें उसको भी मरवा डाले ॥ ६२ ॥

दूष्यदण्डोपनतेषु तु युवराजः सेनापतिर्वा किंचिदुपकृत्यापक्रान्तो विक्रमेत ॥ ६३ ॥ ततो राजा दूष्यदण्डोपनतानेव प्रेषयेत्फल्गुबलतीक्ष्णयुक्तानिति समानाः सर्वे एव योगाः ॥ ६४ ॥

दण्डोपनत (सेनाके द्वारा वशमें किये हुए, देखो ७ अधि० १६ अध्या०) दूष्योंके सम्बन्धमें, युवराज या सेनापति उनका कुछ अपकार करके फिर अलहदा रहता हुआ ही झगड़ा करता रहे ॥६३॥ इसके बाद राजा दण्डोपनत दूष्योंको ही, थोड़ीसी सेना और तीक्ष्ण पुरुषोंको साथ देकर दूसरे दण्डोपनत दूष्योंको दबानेके लिये भेज देवे, इस प्रकार ये सबही उपाय प्रायः एकसमान हैं ॥ ६४ ॥

तेषां च पुत्रेष्वनुक्षिपत्सु यो निर्विकारः स पितृदायं लभेत ॥ ६५ ॥ एवमस्य पुत्रपौत्राननुवर्तते राज्यमपास्तपुरुषदोषमिति ॥ ६६ ॥

वध किये हुए दूष्य पुरुषोंके पुत्रोंमेंसे वही पुत्र अपने पिताकी सम्पत्ति का अधिकारी हो सकता है, जो राजाकी निन्दा करने वाला न हो, अपने पिता के मारे जानेपर भी द्रोह या बदलेका खयाल न करे ॥ ६५ ॥ यदि कोई पुरुष (राजाके विरुद्ध) अपने चित्तमें किसी प्रकारका विचार न आनेदे, तो उसके पुत्र पौत्र आदि बराबर बेखटके अपने पिताकी सम्पत्तिका भोग सकते हैं ॥ ६६ ॥

स्वपक्षे परपक्षे वा तूष्णीं दण्डं प्रयोजयेत् ।
आयत्यां च तदात्वे च क्षमावानविशङ्कितः ॥ ६७ ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमे ऽधिकरणे दाण्डकर्मिकं प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥
आदितः एकनवतिः ॥ ९१ ॥

इस प्रकार क्षमाशील राजा वर्त्तमान और भविष्यमें बिना किसी शङ्काके उचित रूपसे स्वपक्ष और परपक्षमें इस गूढ़ दण्डका प्रयोग करे ॥ ६७ ॥

योगवृत्त पञ्चम अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

९० प्रकरण

कोशका अधिक संग्रह ।

कोशमकोशः प्रत्युत्पन्नार्थकृच्छ्रः संगृह्णीयात् ॥ १ ॥ जनपदं महान्तमल्पप्रमाणं वा देवमातृकं प्रभूतधान्यं धान्यस्यांशं तृतीयं चतुर्थं वा याचेत ॥ २ ॥

खजाना थोड़ा होनेपर, या अचानक अर्थ कष्ट उपस्थित होनेपर राजा कोशका संचय करे । अर्थात् उसे बढ़ावे ॥१॥ बड़े या छोटे प्रान्तसे, जिसके जीवन

का निर्भर वृष्टि परही हो, तथा जहां अन्न खूबहो, अन्नका तीसरा या चौथा हिस्सा, राजा मांगकर प्रजाकी अनुमतिसे लेवे (अर्थात् प्रजापर बलात्कार करके न लेवे) ॥ २ ॥

यथासारं मध्यमवरं वा दुर्गसेतुकर्मवणिक्पथशून्यनिवेशखनिद्रव्यहस्तिवनकर्मोपकारिणं प्रत्यन्तमल्पप्राणं वा न याचेत ॥३॥ धान्यपशुहिरण्यादि निविशमानाय दद्यात् ॥ ४ ॥

इसी प्रकार मध्यम और छोटे २ प्रान्तोंसे भी, वहांपर उत्पन्न होने वाले अन्नके अनुसारही राजा हिस्सा लेवे । परन्तु जो प्रान्त किलों, मकानों, व्यपारी मार्गों, खाली मैदानों, खान, लकड़ी और हाथीके जंगलोंके द्वारा राजा या प्रजाका उपकार करने वाले हों; जो राज्यकी सीमापर हों, और जिनके पास अन्न आदि बहुत थोड़ा हो, उनसे राजा कुछ न मांगे ॥ ३ ॥ नये बसने वाले किसानको खेतीके लिये अन्न, बैल आदि पशु तथा सहायतार्थ धन, सरकारकी ओरसे दिया जावे, ॥ ४ ॥

चतुर्थमंशं धान्यानां बीजभक्तशुद्धं च हिरण्येन क्रीणीयात् ॥ ५ ॥ अरण्यजातं श्रोत्रियस्वं च परिहरेत् ॥ ६ ॥ तदप्यनुग्रहेण क्रीणीयात् ॥ ७ ॥

इस तरहके किसानोंसे, राजा उनके द्वारा पैदा किये हुए अन्नका चौथा हिस्सा खरीद लेवे, और फिर खेतके बीज, तथा उनके खाने योग्य अन्न छोड़ कर बाकीभी खरीद लेवे ॥ ५ ॥ जंगलमें स्वयं पैदा हुए तथा श्रोत्रियके द्वारा उत्पन्न किये अन्नमेंसे राजा हिस्सा न लेवे । खेतके बीज और खाने योग्य अन्न छोड़कर उसमेंसे भी राजा खरीद सकता है ॥ ७ ॥

तस्याकरणे वा समाहर्तृपुरुषा ग्रीष्मे कर्षकाणामुद्वापं कारयेयुः ॥ ८ ॥ प्रमादावस्कन्नस्यात्ययं द्विगुणमुदाहरन्तो बीजकाले बीजलेख्यं कुर्युः ॥ ९ ॥

यदि श्रोत्रिय खेती न करे, तो अधिकारियोंको चाहिए कि वे उस जमीनको अन्य किसानोंसे गरमीमें जुतवा बुवा देवें ॥ ८ ॥ यदि किसानके प्रमादसे खेतमें बोया बीज नष्ट होजाय, तो उससे उसपर दुगना जुरमाना करते हुए अधिकारी जन फिर बीज बोनेके समय, बीजके सम्बन्धकी किसानकी उक्त कारवाईको सरकारी पुस्तकमें लिखलेवें ॥ ९ ॥

निष्पन्ने हरितपक्कादानं वारयेयुः ॥ १० ॥ अन्यत्र शाककट

भङ्गमुष्टिभ्यां देवपितृपूजादानार्थं गवार्थं वा ॥ ११ ॥ भिक्षुकग्रामभृतकार्थं च राशिमूलं परिहरेयुः ॥ १२ ॥

जब फसल तैयार होनेवाली हो तो किसानोंको हरा या पक्का अन्न (खेतमेंसे) लेनेसे रोक देवें ॥ १० ॥ परन्तु वे (किसान) देवपूजा या पितृपूजा में देनेके लिये अथवा गायके लिये सागकी मुट्ठी और पुआल आदिकी मुट्ठी खेतसे ले सकते हैं ॥ ११ ॥ भिखारी और गांवके नाई धोबी माशकी आदि चाकरोंके लिये धान्य राशि (खल्यानमें साफ किये हुए नाजका ढेर) के नीचे का हिस्सा छोड़ देवें ॥ १२ ॥

स्वसस्यापहारिणः प्रतिपातोऽष्टगुणः ॥१३॥ परसस्यापहारिणः पञ्चाशद्गुणः सीतात्ययः स्ववर्गस्य ॥ १४ ॥

अपने ही खेतमेंसे जो धान्यकी चोरी करले (किसान ऐसी चोरी सरकारकी पैदावारकी कमी दिखानेके लिये कर सकता है), उसे चोरीके मालका आठगुणा दण्ड दिया जाय ॥ १३ ॥ जो दूसरेके सस्य (खड़ी फसल) अपहरण करे, तथा वह उसी ग्रामका रहने वाला हो तो उसे इस अपराधमें चोरीके मालका पचास गुणा दण्ड दिया जाय ॥ १४ ॥

बाह्यस्य तु वधः ॥१५॥ चतुर्थमंशं धान्यानां षष्ठं वन्यानां तूललाक्षाक्षौमवल्ककार्पासरौमकौशेयकौषधगन्धपुष्पफलशाकपण्यानां काष्ठवेणुमांसवल्लूराणां च गृह्णीयुः ॥ १६ ॥

यदि अपहरण करनेवाला बाहरके (दूसरे) किसी गांवका हो तो उसे प्राण दण्ड दिया जाय ॥ १५ ॥ धान्योंका चौथा हिस्सा, और बनमें होनेवाले अन्नादिका तथा रुई, लाख, पाट (जूट), छाल, कपास, ऊन, रेशम, औषधि, गन्ध, पुष्प, फल, शाक और लकड़ी, बांस, मांस तथा सूखे मांसका, छठा हिस्सा, राजालोग करके तौरपर ग्रहण करें ॥ १६ ॥

दन्ताजिनस्यार्धम् ॥ १७ ॥ तदनिसृष्टं विक्रीणानस्य पूर्वः साहसदण्डः ॥ १८ ॥ इति कर्षकेषु प्रणयः ॥ १९ ॥

हाथी दांत और गौ आदिके चमड़ेका आधा हिस्सा टैक्सके तौरपर राजा लेवे ॥ १७ ॥ जो पुरुष इन वस्तुओंको राजाकी आज्ञाके बिना बेचे, उसे प्रथम साहसदण्ड दिया जाय ॥ १८ ॥ यहां तक किसानोंके विषयमें प्रणय (प्रार्थना, राज्यकर लेनेके लिये कथन करना=राजाकी ओरसे करकी याचना) का निरूपण किया गया ॥ १९ ॥

सुवर्णरजतवज्रमणिमुक्ताप्रवालाश्वहस्तिपण्याः पञ्चाशत्कराः ॥२०॥ सूत्रवस्त्रताम्रवृत्तकंसगन्धभैषज्यशीधुपण्याश्चत्वारिंशत्कराः ॥ २१ ॥ धान्यरसलोहपण्याः शकटव्यवहारिणश्च त्रिंशत्कराः ॥ २२ ॥ काचव्यवहारिणो महाकारवश्च विंशतिकराः ॥ २३ ॥ क्षुद्रकारवो वर्धकिपोषकाश्च दशकराः ॥ २४ ॥ काष्ठवेणुपाषाण-मृद्भाण्डपक्वान्नहरितपण्याः पञ्चकराः ॥ २५ ॥

सोना, चांदी, हीरा, मणि, मोती, मूंगा, घोड़े और हाथी इन व्यापारिक द्रव्योंपर, मूल्यका पचासवां हिस्सा टैक्स लिया जाय ॥ २० ॥ सूत, कपड़ा, तांबा, पीतल, कांसा, गन्ध, जड़ीबूटी और शराबपर चालीसवां हिस्सा ॥२१॥ गेहूं, धान आदि अन्न, तेल घी आदि रस, और लोहेपर, तथा जो किराये पर गाड़ी चलाकर अपनी जीविका करते हैं उनसे ३०वां हिस्सा ॥ २२ ॥ कांचका व्यवहार करने वाले और बड़े २ कारीगरोंसे २०वां हिस्सा ॥ २३ ॥ छोटे २ कारीगरोंसे, और कुलटा स्त्रीको घरमें रखने वाले पुरुषसे दसवां हिस्सा ॥ २४ ॥ लकड़ी, बांस, पत्थर, मट्टीके बर्तन, पकवान और हरे शाक आदिपर पांचवां हिस्सा सरकारी टैक्स लिया जाय ॥ २५ ॥

कुशीलवा रूपाजीवाश्च वेतनार्धं दद्युः ॥ २६ ॥ हिरण्यकरम-कर्मण्यानाहारयेयुः ॥२७॥ न चैषां कंचिदपराधं परिहरेयुः ॥२८॥

नट आदि तथा वेश्यायें अपने वेतन (कमाई) में से आधा राज्यकर देवें ॥ २६ ॥ जो बनिये आदि व्यापारके काममें न लगे हुए हों, उनसे प्रति पुरुषके हिसाबसे कुछ नकदी (एक वण्टक=सिक्का विशेष) टैक्स लिया जाय ॥ २७ ॥ और इनके किसी अपराधकी उपेक्षा न कीजाय । अर्थात् उनका व्यापार न करनाही अपराध कोटिमें समझा जाय, और उसका दण्डरूप कर उनसे अवश्य लिया जाय ॥ २८ ॥

ते ह्यपरगृहीतमभिनीय विक्रीणीरन् ॥ २९ ॥ इति व्यव-हारिषु प्रणयः ॥ ३० ॥

क्योंकि ऐसे लोगोंसे यह भी सम्भव है कि वे अपनी वस्तुको दूसरेकी करके बेचें, जिससे सरकारको यह मालूम हो कि वे व्यापार नहीं करते, और इसलिये टैक्ससे बच जांय ॥ २९ ॥ व्यापारियोंसे राज्यकर लेनेके विषयमें यहां तक कहा गया है ॥ ३० ॥

कुक्कुटसूकरमर्धं दद्यात् ॥ ३१ ॥ क्षुद्रपशवः षड्भागम्

॥ ३२ ॥ गोमहिषाश्वतरखरोष्ट्राश्च दशभागम् ॥ ३३ ॥ बन्धकीपोषका राजप्रेष्याभिः परमरूपयौवनाभिः कोशं संहरेयुः ॥३४॥ इति योनिपोषकेषु प्रणयः ॥ ३५ ॥

मुर्गे और सूअर पालनेवाले, उनका (मुर्गे आदि की बढ़तीका) आधा ॥ ३१ ॥ भेड़बकरी पालनेवाले छठा, ॥ ३२ ॥ गाय, भैंस, खच्चर, गधे और ऊँट पालनेवाले दसवां हिस्सा सरकारी टैक्स देवें ॥ ३३ ॥ वेश्याओंके जमादार राजासे अनुमति पाई हुई, परमरूपवती युवती वेश्याओंके द्वारा राजकोषके लिये धन जमा करें ॥ ३४ ॥ यहांतक जानवर पालनेवालोंसे राज्यकर लेनेके विषयमें निरूपण किया गया ॥ ३५ ॥

सकृदेव न द्विः प्रयोज्यः ॥ ३६ ॥ तस्याकरणे वा समाहर्ता कार्यमपदिश्य पौरजानपदान्भिक्षेत ॥ ३७ ॥ योगपुरुषाश्चात्र पूर्वमतिमात्रं दद्युः ॥ ३८ ॥

राजाको चाहिये कि इस प्रकारका अधिक कर एकही वार लेवे, दूसरी वार कभी न लेवे। (क्योंकि इसमें प्रजाके असन्तोषका भय रहता है) ॥३६॥ यदि उपर्युक्त रीतियोंसे कोशका सञ्चय न किया जासके तो, समाहर्त्ताको चाहिये कि वह किसी कार्यका बहाना करके नगरनिवासी तथा प्रान्तनिवासी लोगोंसे धन मांगे ॥ ३७ ॥ संकेत किये हुए समाहर्त्ताके पुरुष पहिले उस कार्यमें अधिकसे अधिक धन देवें ॥ ३८ ॥

एतेन प्रदेशेन राजा पौरजानपदान्भिक्षेत ॥ ३९ ॥ कापटिकाश्चैनानल्पं प्रयच्छतः कुत्सयेयुः ॥ ४० ॥ सारतो वा हिरण्यमाढ्यान्याचेत ॥ ४१ ॥ यथोपकारं वा स्ववशा वा यदुपहरेयुः स्थानच्छत्रवेष्टनविभूषाश्चैषां हिरण्येन प्रयच्छेत् ॥ ४२ ॥

तदनन्तर इसी बहानेसे राजा, नगर तथा जनपदनिवासी जनोंसे धन मांगे ॥ ३९ ॥ यदि ये थोड़ा धन देवें, तो राजाके छिपे पुरुष (कापटिक) इनकी निन्दा करें ॥ ४० ॥ अथवा धनी पुरुषोंसे उनकी हैसियतके माफिक धन मांगे ॥ ४१ ॥ उपकारके अनुसार (सरकारने जिन व्यक्तियोंके लिये जितने न्यूनाधिक सुभीते किये हुए हों उनके अनुसार), अथवा जो धन अपने वशके आदमी देवें, उतनीही रकम धनिकोंसे लीजावे और इस प्रकार राजाको सहायता देनेवाले इन धनी पुरुषोंका, अधिकार स्थान देकर, छत्र आदि लगानेकी अनुमति देकर, खासतरहकी पगड़ी या आभूषण आदि देकर राजाकी ओरसे सत्कार किया जाय ॥ ४२ ॥

पाषण्डसङ्घद्रव्यमश्रोत्रियभोग्यं देवद्रव्यं वा कृत्यकराः प्रेतस्य दग्धहृदयस्य वा हस्ते न्यस्तमित्युपहरेयुः ॥ ४३ ॥ देवताध्यक्षो दुर्गराष्ट्रदेवतानां यथास्वमेकस्थं कोशं कुर्यात् ॥ ४४ ॥ तथैव चापहरेत् ॥ ४५ ॥

किसी पाखण्डी या समूहकी सम्पत्तिको, तथा जिसका कोई भाग श्रोत्रियके पास न जाता हो ऐसे किसी मन्दिरकी सम्पत्तिको, यह मरे हुएकी है, अथवा घर जले हुएको है ऐसा कहते हुए कृत्य करनेवाले पुरुष लेआवें, और राजाको अर्पण करदें ॥ ४३ ॥ देवताध्यक्ष, दुर्ग और राष्ट्रके देवताओं (देव-मन्दिरों) के आय धनको यथोचित रूपसे एक स्थानपर रक्खें ॥ ४४ ॥ और फिर राजाको देदिया करें ॥ ४५ ॥

दैवतचैत्यं सिद्धपुण्यस्थानमौपपादिकं वा रात्रावुत्थाप्य यात्रा-समाजाभ्यामाजीवेत् ॥ ४६ ॥ चैत्योपवनवृक्षेण वा देवताभिग-मनमनार्तवपुष्पफलयुक्तेन ख्यापयेत् ॥ ४७ ॥

किसी प्रसिद्ध पवित्रस्थानमें भूमिको फाड़कर देवता निकला है, ऐसी प्रसिद्धि कराकर रात्रिमें वहां एक देवताकी वेदी बनवादे, और मेला लगवाकर यात्रियों तथा अन्य पुरुषोंसे उसपर खूब भेंट चढ़वावे, और उसे राजाको अर्पण करदे ॥ ४६ ॥ बिनाही ऋतुके देवमन्दिरके उपवनमें प्रयत्नपूर्वक किसी वृक्षपर फल या फूल पैदा करवाके, प्रसिद्धि करादे कि यह देवताकी महिमा है ॥ ४७ ॥

मनुष्यकरं वा वृक्षे रक्षोभयं रूपयित्वा सिद्धव्यञ्जनाः पौरजानपदानां हिरण्येन प्रतिकुर्युः ॥ ४८ ॥

अथवा सिद्धोंके भेसमें घूमनेवाले गुप्तपुरुष, रातमें किसी वृक्षपर बैठकर, "मुझे प्रतिदिन एक २ मनुष्य देना चाहिये, नहीं तो सबको खाजाऊंगा" इस प्रकार मनुष्यकर मांगते हुए राक्षसका भय दिखलाकर, नगर तथा जनपदनिवासी पुरुषोंके धनसे इस भयका प्रतीकार करावे। और उस धनको राजाको देदेवे ॥ ४८ ॥

सुरङ्गायुक्ते वा कूपे नागमनियतशिरस्कं हिरण्योपहारेण दर्शयेत् नागप्रतिमायामन्तश्छिद्रायाम् ॥ ४९ ॥

अथवा किसी सुरङ्गवाले कुएमें तीन सिरवाले, या पांच सिरवाले बनावटी सांपको, इस प्रकारकी पोली सांपकी मूर्त्तिमें दिखलावे कि जिसमें कोई

असली सांप समा सकता हो। और दिखानेके बदले दर्शकोंसे धन ले लेवे। वह धन राजाको देदिया जावे ॥ ४९ ॥

चैत्यच्छिद्रे वल्मीकच्छिद्रे वा सर्पदर्शनमाहारेण प्रतिबन्धसंज्ञं कृत्वा श्रद्दधानानां दर्शयेत् ॥ ५० ॥

किसी मन्दिर या बमई (बम्बी) के छेदमें सांपको अचानक देखनेपर उसे मन्त्र या औषधिसे बांध लेवे, अर्थात् वशमें करलेवे, और यह कहते हुए श्रद्धालु पुरुषोंको दिखावे कि देखो देवताकी कैसी महिमा है ॥ ५० ॥

अश्रद्दधानानामाचमनप्रोक्षणेषु रसमुपचार्य देवताभिशापं ब्रूयात् ॥ ५१ ॥ अभित्यक्तं वा दंशयित्वा योगदर्शनप्रतीकारेण वा कोपाभिसंहरणं कुर्यात् ॥ ५२ ॥

जो पुरुष इसपर श्रद्धा न करे, उन्हें चरणामृतके साथ केवल इतना विष देवे, जिससे वे बेहोश होजांय और फिर कहे कि देखो यह नाग देवता का शाप है ॥ ५१ ॥ और देवताकी निन्दा करनेवाले पुरुषको सांपसे कटवा देवे। और कहे कि देखो यह देवताका शाप है, अथवा फिर औपनिषदिक प्रकरणमें बतलाई हुई विषचिकित्साके द्वारा उस विषका प्रतीकार करदेवे। इस प्रकार धनसञ्चय करके राजकोशको बढ़ाता जावे ॥ ५२ ॥

वैदेहकव्यञ्जनो वा प्रभूतपण्यान्तेवासी व्यवहरेत ॥ ५३ ॥ स यदा पण्यमूल्ये निक्षेपप्रयोगैरुपाचितः स्यात्तदैनं रात्रौ मोषयेत् ॥ ५४ ॥

अथवा व्यापारीके भेसमें गुप्त राजपुरुष, प्रचुर विक्रेय वस्तुएं और अनेक सहायकोंको लेकर व्यापार करना प्रारम्भ करदे ॥ ५३ ॥ जब इसके पास व्यापारका धन खूब होजावे, और अन्य पुरुष इसको अच्छा सेठ समझकर विश्वाससे इसके पास अमानत आदिका धन खूब जमा करदें, तथा ब्याज आदिके लिये भी लोग इसके पास काफी पूंजी जमा करदें, तब इसके यहां चोरी करवा देवे अर्थात् चोरीके बहानेसे वह सारा धन राजा ले लेवे ॥ ५४ ॥

एतेन रूपदर्शकः सुवर्णकारश्च व्याख्यातौ ॥ ५५ ॥

इसी प्रकार राजकीय सिक्कोंका निरीक्षक और सुवर्णकार भी छल करके राजकोषके लिये धन इकट्ठा करें। (अर्थात् निरीक्षक सिक्कोंको परीक्षाके लिये अपने घरमें इकट्ठा करावे, रातको वहां चोरी होजाय। इसी प्रकार सुवर्णकारके यहां जब आभूषण बनानेके लिये लोगोंका बहुत सोना इकट्ठा होजाय, वहां चोरी करवा दीजावे) ॥ ५५ ॥

वैदेहकव्यञ्जनो वा प्रख्यातव्यवहारः प्रवहणनिमित्तं याचितकमवक्रीतकं वा रूपसुवर्णभाण्डमनेकं गृह्णीयात् ॥ ५६ ॥ समाजे वा सर्वपण्यसंदोहेन प्रभूतं हिरण्यसुवर्णमृणं गृह्णीयात् ॥ ५७ ॥

अथवा व्यापारीका भेस बनाकर गुप्तराजपुरुष अपने क्रयविक्रय व्यवहारके खूब प्रसिद्ध होजानेपर, एक दिन जौनार (निमन्त्रण=पांत) के बहाने आसपासके सब लोगोंके यहांसे चांदी और सोनेके अनेक प्रकारके बर्त्तन, मांग कर या भाड़ेपर ले लेवे ॥ ५६ ॥ और अनेक पुरुषोंकी उपस्थितिमें अपने सम्पूर्ण मालकी ओटमें (के बदले) पर्याप्त हिरण्य सुवर्ण आदि धन ऋण ले लेवे ॥ ५७ ॥

प्रतिभाण्डमूल्यं च ॥ ५८ ॥ तदुभयं रात्रौ मोषयेत् ॥५९॥

और दूसरे दिन जिनको अपनी वस्तु बेचनी हों, उनसे प्रतिवस्तुका मूल्य भी ले लेवे ॥ ५८ ॥ इन दोनों वस्तुओं (नकदीमाल और सोने आदिके बर्त्तनों) को रातमें चोरी करवादे । अर्थात् चोरीके बहाने राजाके कोषमें यह धन भिजवा दिया जाय ॥ ५९ ॥

साध्वीव्यञ्जनाभिः स्त्रीभिर्दूष्यानुन्मादयित्वा तासामेव वेश्मस्वभिगृह्य सर्वस्वान्याहरेयुः ॥ ६० ॥

कुलीन स्त्रियोंके भेसमें रहनेवाली (राजकीय गुप्त) स्त्रियोंके द्वारा राजासे दुश्मनी रखनेवाले दूष्य पुरुषोंको उन्मत्त बनाकर, उन स्त्रियोंके घरमें ही उनको गिरफ्तार किया जाय, और उनका सर्वस्व अपहरण कर लिया जाय ॥ ६० ॥

दूष्यकुल्यानां वा विवादे प्रत्युत्पन्ने रसदाः प्रणिहिता रसं दद्युः ॥ ६१ ॥ तेन दोषेणेतरे पर्यादातव्याः ॥ ६२ ॥

दूष्य पुरुषोंका अपने खानदानी लोगोंके साथ कोई झगड़ा खड़ा होने पर, विष देनेवाले खुफिया रसोईये आदिके वेषमें उनके पास ही रहते हुए किसी एक पक्षवालेको विष देदेवें ॥ ६१ ॥ इसी अपराधमें दूसरे दूष्योंका सर्वस्व अपहरण कर लिया जावे ॥ ६२ ॥

दूष्यमभित्यक्तोवा श्रद्धयापदेशं पुण्यं हिरण्यनिक्षेपमृणप्रयोगं दायं वा याचेत ॥ ६३ ॥

कोई अभित्यक्त (बध्य=जिसको मारदेना चाहिये ऐसा व्यक्ति), माल, स्वर्ण आदिकी अमानत, ऋण अथवा दायभागको दूष्यके पास आकर इससे

इस प्रकार मांगे, जिससे कि लोगोंको विश्वास होजाय कि इन वस्तुओंसे इसका अवश्य कुछ न कुछ सम्बन्ध है ॥ ६३ ॥

दासशब्देन वा दूष्यमालम्बेत ॥ ६४ ॥ भार्यामस्य स्नुषां दुहितरं वा दासीशब्देन भार्याशब्देन वा ॥ ६५ ॥ तं दूष्यगृहप्रतिद्वारि रात्रावुपशयानमन्यत्र वा वसन्तं तीक्ष्णो हत्वा ब्रूयात् ॥ ६६ ॥

अथवा दूष्यको दास कहकर पुकारे ॥ ६४ ॥ या इसकी भार्या, पुत्रवधू और लड़कीको दासी शब्दसे या अपनी भार्या कहकर गाली देवे ॥ ६५ ॥ तब उसको रातमें दूष्यके सामने सोते हुए, अथवा और किसी जगह निवास करते हुएको, तीक्ष्ण पुरुष जाकर मार देवे, और कहे कि:— ॥ ६६ ॥

हतोऽयमित्थं कामुक इति ॥ ६७ ॥ तेन दोषेणेतरे पर्यादातव्याः ॥ ६८ ॥

यह कामी पुरुष इस प्रकार (दूष्यके साथ उक्त प्रकारसे झगड़ा करनेके कारण) मारा गया है ॥ ६७ ॥ इसी अपराधमें दूसरे दूष्योंका, राजा सर्वस्व अपहरण करले ॥ ६८ ॥

सिद्धव्यञ्जनो वा दूष्यं जम्भकविद्याभिः प्रलोभयित्वा ब्रूयात् ॥६९॥ अक्षयं हिरण्यं राजद्वारिकं स्त्रीहृदयमरिव्याधिकरमायुष्यं पुत्रीयं वा कर्म जानामीति ॥ ७० ॥

अथवा सिद्धके भेसमें गुप्तराजपुरुष दूष्यको छलविद्याओंसे प्रलोभन देकर कहे कि:—॥ ६९ ॥ "मैं अक्षय सुवर्णके खजानेको देखना, राजाको वशमें करना, स्त्रीके हृदयको अपनी ओर आकर्षित करना, दुश्मनको बीमार करदेना, आयुको बढ़ाना, और सन्तान उत्पन्न करना, आदि कामोंको अच्छी तरह जानता हूं" ॥ ७० ॥

प्रतिपन्नं चैत्यस्थाने रात्रौ प्रभूतसुरामांसगन्धमुपहारं कारयेत् ॥७१॥ एकरूपं चात्र हिरण्यं पूर्वनिखातं प्रेताङ्गं प्रेतशिशुर्वा यत्र निहितः स्यात्ततो हिरण्यमस्य दर्शयेदत्यल्पमिति च ब्रूयात् ॥ ७२ ॥

जब उसको विश्वास आ जाय, तो किसी देवस्थानमें जाकर रातमें उससे खूब मदिरा मांस और गन्ध आदि भेंट देवताको चढ़वावे ॥ ७१ ॥

पहिलेसेही गाड़े हुए (तत्कालीन) एक सिक्केकी बराबर सोनेको, जहांपर मुर्देका कोई अंग, या मरा हुआ बच्चा गड़रहा हो, वहांसे निकालकर इस दूष्यको दिखावे, और कहे कि यह बहुत थोड़ा है। (क्योंकि तुमने भेंट भी थोड़ीही चढ़ाई है) ॥ ७२ ॥

प्रभूतहिरण्यहेतोः पुनरुपहारः कर्तव्य इति स्वयमेवैतेन हिरण्येन श्वोभूते प्रभूतमौपहारिकं क्रीणीहीति ॥ ७३ ॥ तेन हिरण्येनौपहारिकक्रये गृह्येत ॥ ७४ ॥

यदि तुम बहुत अधिक हिरण्य चाहते हो तो तुमको देवतापर और अधिक भेंट चढ़ाना चाहिये, लो यह भी सोना लो, इस सोनेसे तुम कलको अपने आपही बाजारमें जाकर अधिक चढ़ावेका सामान खरीदना ॥ ७३ ॥ जब वह दूष्य उस सोनेसे चढ़ावेका सामान बाजारसे खरीदने लगे, तबही उसको गिरफ्तार करालिया जाय, और इस अपराधमें उसका सर्वस्व अपहरण करलिया जावे ॥ ७४ ॥

मातृव्यञ्जनाया वा पुत्रो मे त्वया हत इत्यवरूपितः स्यात् ॥ ७५ ॥ संसिद्धमेवास्य रात्रियागे वनयागे वनक्रीडायां वा प्रवृत्तायां तीक्ष्णा विशस्याभित्यक्तमतिनयेयुः ॥ ७६ ॥

अथवा कोई गुप्तराजस्त्री, माताके भेसमें जाकर दूष्यके ऊपर मिथ्या दोषारोपण करे कि तूने मेरे लड़केको मार डाला है ॥ ७५ ॥ दूष्यके रात्रियाग (रात्रिका हवन), वनयाग (जंगलमें किये जानेवाला होम), और वनक्रीड़ाके प्रारम्भ होनेपर, तीक्ष्णपुरुष पहिलेहीसे तयार किये हुए वध्य पुरुषको मारकर रात्रियाग आदिके समीपस्थानमें गाढ़ देवें। और इसी अपराधमें दूष्यको पकड़ उसका सर्वस्व अपहरण करालिया जाय ॥ ७६ ॥

दूष्यस्य वा भृतकव्यञ्जनो वेतनहिरण्ये कूटरूपं प्रक्षिप्य प्ररूपयेत् ॥ ७७ ॥ कर्मकारव्यञ्जनो वा गृहे कर्म कुर्वाणस्तेन कूटरूपकारकोपकरणमपानिदध्यात् चिकित्सकव्यञ्जनो वा गरमगरापदेशेन ॥ ७८ ॥

अथवा दूष्यके नौकरके रूपमें रहता हुआ कोई खुफिया नौकरीका धन पानेपर उसमें जाली सिक्का मिलाकर राजाको खबर देदेवे ॥ ७७ ॥ अथवा चाकरके भेसमें दूष्यके घर काम करता हुआ कोई खुफिया चोरी २ जालीसिक्के बनानेके सब साधनोंको वहां रखदे। अथवा वैद्यका भेस बनाकर विषनाशक औषधिके बहानेसे उसके (दूष्यके) हाथमें विष देदेवे। (सूत्रमें 'गरमगरापदे-

शेन' यह भी पाठान्तर है, उसका अर्थः—रोगनाशक औषधिके बहाने रोगवर्द्धक औषधि देकर' यह करना चाहिये) और इसी अपराधमें दूष्यको पकड़कर उसका सर्वस्व अपहरण करलेवे ॥ ७८ ॥

प्रत्यासन्नो वा दूष्यस्य सत्त्री प्रणिहितमभिषेकभाण्डममित्रशासनं च कापटिकमुखेन आचक्षीत कारणं च ब्रूयात् ॥ ७९ ॥

अथवा दूष्यके समीप रहता हुआ कोई सत्री (गुप्तचर विशेष), दूष्यके घरमें रक्खे हुए अभिषेकके सामानको और शत्रुके लेखको कापटिक (गुप्तचर विशेष) के द्वारा राजाको कहे। और इसका कारण यह बतावे कि दूष्य राजाको मारकर शत्रुको राज्यपर अभिषेक करनेका यत्न करता है, इत्यादि। इसी अपराधमें उसका सर्वस्व अपहरण करलिया जावे ॥ ७९ ॥

एवं दूष्येष्वधार्मिकेषु च वर्तेत ॥ ८० ॥ नेतरेषु ॥ ८१ ॥

अधिक कोश जमा करनेके लिये राजा ऐसे उपायोंका प्रयोग दूष्यों और अधार्मिक पुरुषोंपरही करे ॥ ८० ॥ अन्योंपर नहीं ॥ ८१ ॥

पक्वं पक्वमिवारामात्फलं राज्यादवाप्नुयात् ।
आमच्छेदभयादामं वर्जयेत्कोपकारकम् ॥ ८२ ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमे ऽधिकरणे कोशाभिसंहरणं द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥

आदितो द्विनवतिः ॥ ९२ ॥

राजा दुष्ट पुरुषोंके धनको इस प्रकार ले लेवे, जैसे पके हुए फलको वाटिकासे ले लिया जाता है, और धर्मात्माओंके धनको इस प्रकार छोड़ दिया जाय, जैसे कच्चे फलको छोड़ दिया जाता है। कच्चे फलकी तरह धर्मात्माओंसे लिया हुआ धन भी प्रकृतिके कोपका कारण होता है। अर्थात् जैसे कच्चा फल खाया हुआ देहकी पित्त कफ आदि प्रकृतिको कुपित करदेता है। ऐसेही धर्मात्माका लिया हुआ धन प्रकृति अर्थात् प्रजाको कुपित करदेता है ॥ ८२ ॥

योगवृत्त पञ्चम अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त।

तीसरा अध्याय।

९१ प्रकरण।

भृत्योंका भरण पोषण।

दुर्गजनपदशक्त्या भृत्यकर्म समुदयपादेन स्थापयेत् ॥ १ ॥
कार्यसाधनसहेन वा भृत्यलाभेन शरीरमवेक्षेत ॥ २ ॥

दुर्ग और जनपदकी शक्तिके अनुसार नौकरोंके लिये अपनी सम्पूर्ण

आयका चौथा भाग व्यय करके, उनकी स्थापना करे ॥ १ ॥ अथवा कार्य करनेमें समर्थ भृत्य, जितने धनसे मिल सकें, उतनाही धन देकर (चाहे वह सम्पूर्ण आयके चतुर्थांशसे अधिक भी हो) उनकी नियुक्ति करे । परन्तु आमदनीकी असली हालतको अवश्य देखता रहे, (शरीरमवेक्षेत)। कहीं ऐसा न हो कि आमदनीसे ज्यादा व्यय होजाय ॥ २ ॥

न धर्मार्थौ पीडयेत् ॥ ३ ॥ ऋत्विगाचार्यमन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजराजमातृराजमहिष्यो ऽष्टचत्वारिंशत्साहस्राः ॥४॥ एतावता भरणे नानास्वाद्यत्वमकोपकं चैषां भवति ॥ ५ ॥

ऐसा कोई भी काम न करे जिसमें धर्म और अर्थको पीड़ा पहुँचे। अर्थात् देवकार्य, पितृकार्य और दान आदि धर्मोंको, तथा दुर्ग, सेतु और व्यापारी मार्ग बनवाना आदि अर्थसाधक कार्योंको बराबर करता रहे ॥ ३ ॥ ऋत्विक्, आचार्य, मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, राजमाता और राजमहिषी (पटरानी) इनको प्रतिवर्ष ४८००० सहस्र पण वेतनरूपमें दिया जाय ॥ ४ ॥ क्योंकि भरणपोषणके लिये इतना वेतन मिलनेपर ये आरामसे रह सकते हैं । और राजाके प्रति कोपके कारण न बनेंगे ॥ ५ ॥

दौवारिकान्तर्वंशिकप्रशास्तृसमाहर्तृसंनिधातारश्चतुर्विंशतिसाहस्राः ॥ ६ ॥ एतावता कर्मण्या भवन्ति ॥ ७ ॥ कुमारकुमारमातृनायकाः पौरव्यावहारिककार्मान्तिकमन्त्रिपरिषद्राष्ट्रान्तपालाश्च द्वादशसाहस्राः ॥ ८ ॥

दौवारिक (द्वारपाल=द्वाररक्षकका मुख्य अधिकारी), अन्तर्वंशिक (अन्तःपुरका रक्षक), आयुधाध्यक्ष, समाहर्ता (धान्यकर आदि वसूल करने वाला प्रधान अध्यक्ष), और भाण्डागाराध्यक्षको २४ सहस्र पण वार्षिक दिया जावे ॥ ६ ॥ इतना वेतन मिलनेपरही ये कार्य करनेमें समर्थ हो सकते हैं ॥ ७ ॥ कुमार * (युवराजसे अतिरिक्त अन्य राजकुमार), कुमारमाता * (पटरानीसे अतिरिक्त अन्य रानियां अथवा राजकुमारोंका पालन करनेवाली धाय), नायक (पैदल सेनाओंका नेता=सूबेदार मेजर), नगर निरीक्षक, व्यापाराध्यक्ष, कृषि आदिका अध्यक्ष, मन्त्रिपरिषद्के १२ सदस्य, राष्ट्रपाल (सम्पूर्ण

* म० म० गणपति शास्त्रीने 'कुमार' का अर्थ 'अश्वानुचर' और 'कुमारमाता' का अर्थ 'अशीतिजननेता' किया है । यह अर्थ उनकी प्रान्तिक भाषामें उपलब्ध हुए, अर्थशास्त्रके किसी पुराने अनुवादके आधारपर किया गया है । परन्तु यह अर्थ कुछ संगत प्रतीत नहीं होता ।

पुलिसका मुख्य अधिकारी=पुलिस सुपरिन्टेण्डेण्ट), अन्तपाल, (सीमा निरीक्षक), इनको १२००० वार्षिक दिया जावे ॥ ८ ॥

स्वामिपरिबन्धबलसहाया ह्येतावता भवन्ति ॥ ९ ॥ श्रेणीमुख्या हस्त्यश्वरथमुख्याः प्रदेष्टारश्चाष्टसाहस्राः ॥१०॥ स्ववर्गानुकर्षिणो ह्येतावता भवन्ति ॥ ११ ॥

इतना वेतन देनेसे ये लोग सदा राजाके अनुकूल रहेंगे, और उसकी सहायता करनेके लिए हर समय तैयार रहेंगे ॥ ९ ॥ सजातीय शिल्पियोंके निरीक्षक, (इञ्जिनीयर) हाथी, घोड़े, और रथोंके निरीक्षक, तथा प्रदेष्टा (कण्टकशोधनाधिकारी), इनको ८००० वार्षिक दिया जावे ॥ १० ॥ इतना वेतन मिलनेपर ये लोग अपने वर्गके कर्मचारियोंको अनुकूल रक्खेंगे ॥ ११ ॥

पत्त्यश्वरथहस्त्यध्यक्षा द्रव्यहस्तिवनपालाश्चतुःसाहस्राः ॥ १२ ॥ रथिकानीकचिकित्सकाश्वदमकवर्धकयो योनिपोषकाश्च द्विसाहस्राः ॥ १३ ॥

पदाति सेनाका अध्यक्ष, अश्वारोही, रथारोही, गजारोही सेनाओंके अध्यक्ष, लकड़ी और हाथियोंके जंगलोंके निरीक्षक, इनको ४००० पण वार्षिक दिया जावे ॥ १२ ॥ रथका चलाना सिखानेवाले, गज शिक्षक, चिकित्सक, अश्वशिक्षक, तथा, मुर्ग, सूअर आदि पालनेवालोंका अध्यक्ष, इनको २००० पण वार्षिक वेतन दिया जाय ॥ १३ ॥

कार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकपौराणिकसूतमागधाः पुरोहितपुरुषाः सर्वाध्यक्षाश्च साहस्राः ॥ १४ ॥ शिल्पवन्तः पादाताः संख्यायकलेखकादिवर्गः पञ्चशताः ॥ १५ ॥

स्त्री या पुरुषोंके हाथ आदिमें लक्षण (चिन्ह) देखकर उनके भूत या भविष्यत् को बतानेवाले, शकुन बतानेवाले, ज्योतिषी, पुराणोंकी कथा कहनेवाले, सारथि, स्तुति पाठक, पुरोहितके भृत्य और सुत आदिके अध्यक्ष, इनको १००० वार्षिक दिया जावे ॥ १४ ॥ चित्रकार, पादात (गदका, बनेट, तलवार आदि खेलनेमें अत्यन्त चतुर), हिसाब करनेवाला तथा लेखक आदिको ५०० पण वार्षिक दिया जाय ॥ १५ ॥

कुशीलवास्त्वर्धतृतीयशताः ॥ १६ ॥ द्विगुणवेतनाश्चैषां तूर्यकराः ॥ १७ ॥ कारुशिल्पिनो विंशतिशतिकाः ॥१८॥ चतुष्पदद्विपदपरिचारकपारिकर्मिकौपस्थायिकपालकविष्टिबन्धकाः षष्ठिवेतनाः ॥ १९ ॥

कुशीलव (नट) आदिको २५० पण, और जो उनमें बढ़िया बाजे आदि भी बनाना जानते हों, उन्हें दुगना अर्थात् ५०० पण दिया जाय ॥१६॥१७॥ अन्य साधारण कारीगरोंको १२० पण दिया जाय ॥ १८ ॥ पशु तथा मनुष्योंके परिचारक और उनके मुखिया, शरीर परिचारक (स्नानादि करानेवाले) गौ आदिकी रक्षा करनेवाले, और बेगारियोंको ६० पण वार्षिक वेतन दिया जाय ॥ १९ ॥

कार्ययुक्तारोहकमाणवकशैलखनकाः सर्वोपस्थायिन आचार्या विद्यावन्तश्च पूजावेतनानि यथार्हं लभेरन्पञ्चशतावरं सहस्रपरम् ॥ २० ॥

आर्य (अच्छे स्वभाव वाला सत्पुरुष), युक्तारोहक (बिगड़े हुए घोड़े आदिपरभी जो अच्छीतरह सवारी करसके), माणवक (वेदादि पढ़नेवाला विद्यार्थी), पत्थर आदिपर खोदनेवाला (नक्काशी करनेवाला), गाने आदिमें अत्यन्त चतुर गान्धर्वाचार्य (सर्वोपस्थायिन आचार्याः), और अच्छे विद्वान् पुरुषोंको उनके सत्कारार्थ योग्यतानुसार ५०० पणसे १००० पण तक दिया जाय ॥ २० ॥

दशपणिको योजने दूतः मध्यमः ॥२१॥ दशोत्तरे द्विगुणवेतन आयोजनशतादिति ॥ २२ ॥ समानविद्येभ्यस्त्रिगुणवेतनो राजा राजसूयादिषु क्रतुषु राज्ञः सारथिः साहस्रः ॥ २३ ॥

एक योजन जानेवाले मध्यम (न बहुत तेज चलनेवाले न मन्द) दूत को १० पण दिये जांय ॥ २१ ॥ दस योजनसे अधिक सौ योजन तक चलने वालेको दुगना, अर्थात् प्रतियोजन २० पण दिये जांय ॥ २२ ॥ राजसूय आदि यज्ञोंके करनेपर राजा, मन्त्री पुरोहित आदिको उनके साधारण वेतनसे तिगुना देवे । और राजाको यज्ञ स्थानमें लानेवाले सारथिको १००० पण दिया जाय ॥ २३ ॥

कापटिकोदास्थितगृहपतिकवैदेहकतापसव्यञ्जनाः साहस्राः ॥२४॥ ग्रामभृतकसत्रितीक्ष्णरसदाभिक्षुक्यः पञ्चशताः ॥ २५ ॥ चारसंचारिणोऽर्धतृतीयशताः प्रयासवृद्धवेतना वा ॥ २६ ॥

कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक और तापस आदिके भेसमें काम करनेवाले गुप्तचरोंको (ये सब गुप्तचरोंके भेद हैं) १००० पण दिया जावे ॥ २४ ॥ गांवके नौकर (धोबी नाई आदि) अथवा गांवके मुखिया सत्री (गुप्त-

चर विशेष), तीक्ष्ण, विष आदि देनेवाले, तथा भिक्षुकीके वेषमें काम करने वाले गुप्तचरोंको ५०० पण दिया जाय ॥ २५ ॥ चरोंको इधर उधर भेजनेवाले कर्मचारियोंको २५० पण दिया जाय । अथवा मेहनतके अनुसार सबको अधिक वेतन मिले ॥ २६ ॥

शतवर्गसहस्रवर्गाणामध्यक्षा भक्तवेतनलाभमादेशं विक्षेपं च कुर्युः ॥ २७ ॥ अविक्षेपो राजपरिग्रहदुर्गराष्ट्ररक्षावेक्षणेषु च नित्यमुख्याः स्युरनेकमुख्याश्च ॥ २८ ॥

उपर्युक्त भृत्योंके शतवर्ग या सहस्रवर्गके अध्यक्ष, भृत्योंको भत्ता वेतन देवें और राजाकी आज्ञाका उनसे पालन करावें तथा उनको उचित स्थानोंपर नियुक्त अथवा तबदील करें ॥ २७ ॥ किसी वर्गमें ठीक कार्य न होनेपर, उसका अध्यक्ष, राजमहल, दुर्ग तथा राष्ट्रकी रक्षा और देखभालके लिए पुरुषोंको नियुक्त करे, प्रत्येक वर्गके कर्मचारी अपने अध्यक्षके अधीन रहकर अपने अपने कार्योंको ठीक ठीक करें । अध्यक्ष भी अनेक होने चाहियें ॥२८॥

कर्मसु मृतानां पुत्रदारा भक्तवेतनं लभेरन् ॥ २९ ॥ बालवृद्धव्याधिताश्चैषामनुग्राह्याः ॥ ३० ॥ प्रेतव्याधितसूतिकाकृत्येषु चैषामर्थमानकर्म कुर्यात् ॥ ३१ ॥ अल्पकोशः कुप्यपशुक्षेत्राणि दद्यात् ॥ ३२ ॥ अल्पं च हिरण्यम् ॥ ३३ ॥

राजकर्मचारियोंके काम करते हुए मरजानेपर उनके वेतन आदिको उनके लड़के या स्त्री लेवें ॥ २९ ॥ मृत राजकर्मचारियोंके बालक बूढ़े और बीमार सम्बन्धियोंपर राजा सदा अनुग्रह दृष्टि बनाये रक्खे ॥ ३० ॥ तथा इनके यहां मौत बीमारी या बच्चा आदि पैदा होनेपर, आर्थिक सहायता, और जाने आनेमें सत्कार आदि करता रहे ॥ ३१ ॥ खजानेमें कमी होनेपर राजा, सहायता देने योग्य पुरुषोंको कुप्य, पशु तथा जमीन आदि देवे ॥ ३२ ॥ सुवर्ण आदि बहुत थोड़ा देवे ॥ ३३ ॥

शून्यं वा निवेशयितुमभ्युत्थितो हिरण्यमेव दद्यात् ॥ ३४ ॥ न ग्रामं ग्रामसञ्जातव्यवहारस्थापनार्थम् ॥ ३५ ॥ एतेन भृतानामभृतानां च विद्याकर्मभ्यां भक्तवेतनविशेषं च कुर्यात् ॥ ३६ ॥

परन्तु यदि राजा निर्जन मैदानोंको बसाना चाहे, तो स्वर्णही अधिक देवे ॥ ३४ ॥ जमीन आदि न देवे । जिससे कि बसे हुए गांवके मूल्य आदिका निर्णय, व्यवहारकी स्थापनाके लिये ठीक तौर पर होसके । (अर्थात्

अमुक गांवमें इतना सुवर्ण व्यय होगया है, उससे इतनी आमदनी अवश्य होनी चाहिये, इस प्रकारके व्यवहारका निश्चय करनेके लिये) ॥ ३५ ॥ इसी प्रकार स्थायी या अस्थायी कर्मचारियोंके विद्या और कार्यकी न्यूनाधिकताके अनुसार, उन्हें न्यून या अधिक वेतन तथा भत्ता दिया जावे ॥ ३६ ॥

षष्टिवेतनस्याढकं कृत्वा हिरण्यानुरूपं भक्तं कुर्यात् ॥ ३७ ॥ पत्त्यश्वरथद्विपाः सूर्योदये बहिः संधिदिवसवर्जं शिल्पयोग्याः कुर्युः ॥ ३८ ॥ तेषु राजा नित्ययुक्तः स्यादभीक्ष्णं चैषां शिल्पदर्शनं कुर्यात् ॥ ३९ ॥

६० पणके पीछे एक आढकभर अन्न दिया जावे, इसीके अनुसार वेतन जैसे २ न्यून या अधिक हो, वैसेही वैसे अन्न (भक्त भत्ता) भी न्यून अथवा अधिक दिया जाय ॥ ३७ ॥ अमावस्या आदि छुट्टीके दिनोंको छोड़कर सूर्योदय होनेपर ही पदाति, अश्वारोही, रथारोही, और गजारोही सेनाओंको कवायद सिखलाई जावे ॥३८॥ राजाको चाहिए कि वह सेनाओंपर बराबर सदा ध्यान रक्खे । और जल्दी जल्दी उनकी कवायद आदि को देखता रहे ॥ ३९ ॥

कृतनरेन्द्राङ्कं शस्त्रावरणमायुधागारं प्रवेशयेत् ॥ ४० ॥ अशस्त्राश्चरेयुरन्यत्र मुद्रानुज्ञातात् ॥ ४१ ॥ नष्टं विनष्टं वा द्विगुणं दद्यात् ॥ ४२ ॥

और शस्त्रचर्या (कवायद) के बाद, राजाकी मुद्रा (मोहर) से चिन्हित फौजी हथियारों और कवच आदिको आयुधागारमें रखवा दिया जावे ॥ ४० ॥ जिनको हर समय हथियार रखनेका लैसन्स मिला हुआ है, उनको छोड़कर बाकी सब सिपाही आदि बिना ही हथियारोंके इधर उधर आवें जावें ॥ ४१ ॥ जो हथियार खोजाय या टूटफूट जाय, उसका दुगना मूल्य उससे वसूल किया जाय ॥ ४२ ॥

विध्वस्तगणनां च कुर्यात् ॥ ४३ ॥ सार्थिकानां शस्त्रावरणमन्तपाला गृह्णीयुः समुद्रमवचारयेयुर्वा ॥ ४४ ॥ यात्रामभ्युत्थितो वा सेनामुद्योजयेत् ॥ ४५ ॥

आयुधशाला आदिमें टूटे या नष्टहुए हथियारोंका बराबर गिनती करता रहे ॥ ४३ ॥ दूसरे देशसे आनेवाले व्यापारियोंके हथियारों और कवचोंको अन्तपाल (सीमा निरीक्षक अधिकारी) लेलेवें । जिनके पास लैसन्स होवे उन्हें छोड़देवें, अर्थात् उनसे हथियार न लेवे, उन्हें सशस्त्र ही देशमें आजानेदे ॥ ४४ ॥

किसीपर चढ़ाईकी तैयारी करनेवाला राजा अपनी सेनाको अच्छी तरह इकट्ठा करलेवे ॥ ४५ ॥

ततो वैदेहकव्यञ्जनाः सर्वपण्यान्यायुधीयेभ्यो यात्राकाले द्विगुणप्रत्यादेयानि दद्युः ॥ ४६ ॥ एवं राजपण्ययोगाविक्रयो वेतनप्रत्यादानं च भवति ॥ ४७ ॥

और फिर यात्राके समय, राजाके द्वारा नियुक्तहुए गुप्त पुरुष व्यपारियों के भेसमें युद्धकी सम्पूर्ण आवश्यक सामग्रीको सिपाहियोंके हाथ दुगने दामों पर बेचें ॥ ४६ ॥ इस प्रकार राजकीय पदार्थोंका विक्रयभी होजायगा, और सिपाहियोंको दिया हुआ वेतन, फिर शाही खजानेमें कुछ न कुछ लौट आयगा ॥ ४७ ॥

एवमवेक्षितायव्ययः कोशदण्डव्यसनं नावाप्नोति ॥ ४८ ॥ इति भक्तवेतनविकल्पः ॥ ४९ ॥

इसप्रकार आय व्ययकी अच्छी तरह देखभाल करनेवाला राजा, कभी-भी आर्थिक या सैनिक आपत्तिको प्राप्त नहीं होता ॥ ४८ ॥ यहांतक भत्ता व वेतनके विषयमें विविध विचार किया गया ॥ ४९ ॥

सत्त्रिणश्चायुधीयानां वेश्याः कारुकुशीलवाः ।
दण्डवृद्धाश्च जानीयुः शौचाशौचमतन्द्रिताः ॥ ५० ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमे ऽधिकरणे भृत्यभरणीयं तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥
आदितस्त्रिनवतिः ॥ ९३ ॥

सत्त्री, वेश्या, कारीगर और पुराने बुड्ढे सैनिक, बड़ी सावधानीके साथ सिपाहियोंकी ईमानदारी (सचाईसे काम करना=शौचम्) और बेईमानीको (अशौचम्) जानें। अर्थात् उनके काम करनेके ढंगका सदा निरीक्षण करते रहें ॥ ५० ॥

योगवृत्त पञ्चम अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त।

चौथा अध्याय

९२ प्रकरण

मन्त्री आदि राजकर्मचारियोंका राजाके प्रति व्यवहार।

लोकयात्राविद्राजानमात्मद्रव्यप्रकृतिसंपन्नं प्रियहितद्वारेणा-

श्रयेत ॥ १ ॥ यं वा मन्येत यथाहमाश्रयेप्सुरेवमसौ विनयेप्सुराभिगामिकगुणयुक्त इति ॥ २ ॥

सांसारिक व्यवहारोंमें चतुर पुरुष, आत्मसम्पन्न (महाकुलीन और दैवी बुद्धि आदिसे युक्त), तथा योग्य अमात्योंसे युक्त राजाका, राजाके प्रिय और हितैषी पुरुषोंके द्वारा आश्रय लेवे ॥ १ ॥ यदि ऐसा राजा न मिले, तो जिसको यह समझे कि–'जैसे मैं अच्छा आश्रय चाहता हूं, ऐसे ही यह विद्यावृद्ध अनुभवी पुरुषको चाहता है' ऐसे आत्मसम्पन्न राजाका आश्रय लेवे ॥ २ ॥

द्रव्यप्रकृतिहीनमप्येनमाश्रयेत ॥ ३ ॥ न त्वेवानात्मसंपन्नम् ॥ ४ ॥ अनात्मवान्हि नीतिशास्त्रद्वेषादानर्थ्यसंयोगाद्वा प्राप्यापि महदैश्वर्यं न भवति ॥ ५ ॥

चाहे वह द्रव्य प्रकृति हीनही हो, अर्थात् श्रेष्ठ गुणवाले अमात्य आदिसे युक्त न भी हो ॥ ३ ॥ परन्तु जो राजा आत्मसम्पन्न न होवे, चाहेवह अमात्यादि प्रकृतिसे युक्त हीहो, उसका आश्रय कदापि न लेवे ॥ ४ ॥ क्योंकि आत्मसम्पत्तिहीन राजा, नीतिशास्त्र आदिकी जानकारी न रखनेके कारण अथवा अनर्थकारी मृगया द्यूतआदि कार्योंके करने, या इस प्रकारके पुरुषोंकी संगति करने के कारण, महान् पितृ पैतामह ऐश्वर्यको प्राप्त करकेभी नष्ट होजाता है ॥ ५ ॥

आत्मवति लब्धावकाशः शास्त्रानुयोगं दद्यात् ॥ ६ ॥ अविसंवादाद्धि स्थानस्थैर्यमवाप्नोति ॥ ७ ॥ मतिकर्मसु पृष्टः तदात्वे चायत्यां च धर्मार्थसंयुक्तं समर्थं प्रवीणवदपरिषद्भीरुः कथयेत् ॥८॥

यदि राजा आत्मसम्पन्नहो तो अवसर आनेपर उसे शास्त्र नुकूल सम्मति देवे ॥ ६ ॥ शास्त्रके साथ उसकी सम्मतिका मिलान हो जानेपर राजाको यह निश्चित होजाता है कि यह नीतिशास्त्रके तत्त्वको जानने वाला है, और फिर उसकी किसी अधिकारी पदपर स्थायी नियुक्ति होजाती है ॥ ७ ॥ अति विचारणीय विषयोंके सम्बन्धमें उससे कुछ पूछे जानेपर, उस समय या भविष्यतमें धर्म और अर्थसे युक्त, शक्तिसम्पन्न चतुर पुरुषोंके समान, सभामें न डरता हुआ भाषण करे ॥ ८ ॥

ईप्सितः पणेत ॥ ९ ॥ धर्मार्थानुयोगमविशिष्टेषु बलवत्संयुक्तेषु दण्डधारणं बलवत्संयोगे तदात्वे च दण्डधारणमिति न कुर्याः ॥ १० ॥ पक्षं वृत्तिं गुह्यं च मे नोपहन्याः ॥ ११ ॥ संज्ञया च त्वां कामक्रोधदण्डनेषु वारयेयमिति ॥ १२ ॥

जब राजा उसको अमात्य बनाना चाहे, तो वह राजाके साथ इस प्रकार निम्नलिखित शर्त करे कि:—॥ ९ ॥ जो पुरुष साधारण बुद्धि वाले हैं और धर्म अर्थके तत्त्वोंको नहीं समझते, उनसे कभी जिज्ञासाके तौरपर धर्म अर्थके सम्बन्धमें प्रश्न न करना, तथा बलवान्, या बलवान् जिसके सहायक हों ऐसे शत्रुपर दण्ड न उठाना, और मेरे सम्बन्धमें भी किसी बातपर फौरन ही दण्ड न उठाना ॥ १० ॥ मेरे पक्ष, मेरे व्यवहार या जीविका तथा मेरे गुप्त रहस्योंको कभी न खोलना या नष्टकरना ॥ ११ ॥ काम या क्रोधके वशीभूत होकर अनुचित दण्ड देनेके लिए तैयार हुए २ तुमको, मैं बराबर इशारोंसे रोकूंगा। तुम इसका ध्यान रखना और बुरा न मानना ॥ १२ ॥

आदिष्टः प्रदिष्टायां भूमावनुज्ञातः प्रविशेत् ॥ १३ ॥ उपविशेच्च पार्श्वतः संनिकृष्टः विप्रकृष्टः परासनम् ॥ १४ ॥ विगृह्य कथनमसभ्यमप्रत्यक्षमश्रद्धेयमनृतं च वाक्यमुच्चैरनर्मणि हासं वातष्ठीवने च शब्दवती न कुर्यात् ॥ १५ ॥

राजाकी अनुमतिसे किसी अधिकार पदपर नियुक्त हुआ २ कार्य करे ॥ १३ ॥ तथा राजाके समीप इधर उधर (सामने नहीं) न बहुत दूर न अति समीप श्रेष्ठ उचित आसनपर बैठे ॥ १४ ॥ आक्षेप पूर्वक, असभ्य, परोक्षविषयक, अविश्वसनीय, तथा असत्य कथन कभी न करे; बेमौके ऊंचे कभी न हंसे, शब्दके साथ डकार या खकार कभी न लेवे ॥ १५ ॥

मिथः कथनमन्येन जनवादे द्वन्द्वकथनं राज्ञो वेषमुद्धतकुहकानां च रत्नातिशयप्रकाशाभ्यर्थनमेकाक्ष्योष्ठनिर्भोगं भ्रुकुटीकर्म वाक्यापक्षेपणं च ब्रुवति बलवत्संयुक्तविरोधं स्त्रीभिः स्त्रीदर्शिभिः सामन्तदूतैर्द्वेष्यपक्षावक्षिप्तानर्थ्यैश्च प्रतिसंसर्गमेकार्थचर्यां संघातं च वर्जयेत् ॥ १६ ॥

राजाकी उपस्थितिमें ही किसी दूसरेके साथ मिलकर बातचीत करना, किसी अफवाह (जनवाद) की बाबत निश्चित रूपमें हां या ना कहदेना, राजा के या उद्धत पाखण्डियोंके वेशको धारण करना, राजासे धारण करने योग्य रत्नोंकी अपने लिए खुले तौर पर प्रार्थना करना, एक आंख या एक होंठको टेढा करके बोलना, भौं चढ़ाना, राजाके बोलते हुए बीचमें बात काटना, बलवान्के सम्बन्धीसे झगड़ा करना, स्त्रियोंके साथ स्त्रियोंके देखनेवालोंके साथ दूसरे देशके दूतोंके साथ राजाके दुश्मन उदासीन और तिरस्कृत तथा अनर्थकारी कार्य

या पुरुषोंके साथ संसर्ग करना, एकही बातको करते चले जाना, और गुट्ट बनाकर रहना आदि सब कामोंको सर्वथा छोड़ देवे ॥ १६ ॥

अहीनकालं राजार्थं स्वार्थं प्रियहितैः सह ।
परार्थदेशकाले च ब्रूयाद्धर्मार्थसंहितम् ॥ १७ ॥
पृष्टः प्रियहितं ब्रूयान्न ब्रूयादहितं प्रियम् ।
अप्रियं वा हितं ब्रूयाच्छृण्वतोऽनुमतो मिथः ॥ १८ ॥

राजाके मतलबकी बातको उससे फौरन कह देवे, अपने मतलबकी बातको राजाके प्रिय और हितकारी पुरुषोंसे कहे, दूसरेके मतलबकी बातको स्थान और अवसर देखकर कहे, तथा जो कुछ कहे वह सब धर्म और अर्थसे युक्त होना चाहिए ॥ १७ ॥ राजा के पूछनेपर जबकि वह ध्यानपूर्वक सुन रहा हो, उसकी अनुमति लेकर प्रिय और हितकारी बातको कहे, अहितकारी प्रिय कभी न कहे, किन्तु अप्रिय हितकारी बातको अवश्य कह देवे ॥ १८ ॥

तूष्णीं वा प्रतिवाक्ये स्याद्द्वेष्यादींश्च न वर्जयेत् ।
अप्रिया अपि दक्षाः स्युः तद्भावाद्ये बहिष्कृताः ॥१९॥
अनर्थ्याश्च प्रिया दृष्टाश्चित्तज्ञानानुवर्तिनः ।
अभिहास्येष्वभिहसेद्धोरहासांश्च वर्जयेत् ॥ २० ॥

उत्तर देते समय यदि अप्रिय वाक्य सुनानेमें डर हो, तो चुप हो जावे । और राजाके द्वेष्य पुरुषोंका कथन न करे । क्योंकि ऐसा करनेसे राजा की इच्छानुसार न चलनेवाले चतुर पुरुष भी राजाके अप्रिय हो जाते हैं ॥१९॥ और राजाकी इच्छानुसार चलनेवाले अनर्थकारी पुरुष भी राजाके प्रिय देखे गये हैं । राजाके हंसनेपर हंसे, काठकी तरह खड़ा न रहे । और अट्टहासको सर्वथा छोड़ देवे ॥ २० ॥

परात्संक्रामयेद्धोरं न च घोरं परे वदेत् ।
तितिक्षेतात्मनश्चैव क्षमावान्पृथिवीसमः ॥ २१ ॥

किसी घोर भयावह संवादको दूसरेके द्वारा कहलावे, स्वयं कभी न न कहे । यदि अपने ही ऊपर कोई ऐसी बात आजावे, तो पृथिवीके समान क्षमाशील होकर उसका सहन करे ॥ २१ ॥

आत्मरक्षा हि सततं पूर्वं कार्या विजानता ।
अग्नाविव हि संप्रोक्ता वृत्ती राजोपजीविनाम् ॥ २२ ॥

एकदेशं दहेदग्निः शरीरं वा परं गतः ।
सपुत्रदारं राजा तु घातयेद्वर्धयेत वा ॥ २३ ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमे ऽधिकरणे अनुजीविवृत्तं चतुर्थो ऽध्यायः ॥ ४ ॥
आदितश्चतुर्नवतिः ॥ ९४ ॥

इस लिये समझदार कर्मचारीको सबसे पहिले बड़ी सावधानीके साथ अपनी रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि राजाके आश्रय रहने वाले पुरुषोंकी स्थिति अग्निमें खेल करने वालेके समान कही गई है ॥ २२ ॥ अग्नि तो शरीरके एक-देश, या अधिक से अधिक सारे शरीरको जला सकती है, परन्तु राजा पुत्र कलत्र सहित सम्पूर्ण परिवारको नष्ट कर सकता है। तथा अनुकूल होनेपर उन्नत भी कर सकता है ॥ २३ ॥

योगवृत्त पञ्चम अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त।

पांचवां अध्याय

९३ प्रकरण

व्यवस्था का पालन।

नियुक्तः कर्मसु व्ययविशुद्धमुदयं दर्शयेत् ॥१॥ आभ्यन्तरं बाह्यं गुह्यं प्रकाश्यमात्ययिकमुपेक्षितव्यं वा कार्यमिदमेवमिति विशेषयेच्च ॥ २ ॥

अपने कार्योंपर नियुक्त हुआ २ समाहर्त्ता आदि कर्मचारी पुरुष, खर्चको अलहदा दिखाकर शुद्ध आमदनी राजाको दिखावे ॥ १ ॥ दुर्ग में होने वाले और बाहर जनपदमें होने वाले कार्योंको, तथा छिपाकर खुलेतौरपर विघ्न-पूर्वक और उपेक्षा-पूर्वक किये जाने वाले कार्योंको—'यह इस प्रकार किया गया है' इसतरह राजाके सामने साफ २ कहे, और इन सब बातोंको राजकीय पुस्तकमें लिखदेवे ॥ २ ॥

मृगयाद्यूतमद्यस्त्रीषु प्रसक्तं चैनमनुवर्तेत ॥ ३ ॥ प्रशंसाभि-रासन्नश्चास्य व्यसनोपघाते प्रयतेत ॥ ४ ॥ परोपजापातिसंधानो-पाधिभ्यश्च रक्षेत् ॥ ५ ॥

राजा यदि मृगया द्यूत मद्य और स्त्रियोंमें आसक्त रहता हो, तो उसकी प्रशंसा करते हुए उसका अनुगामी बना रहे ॥ ३ ॥ और इसके पास रहता

हुआ इसे व्यसनोंसे छुड़ानेका यत्न करे ॥ ४ ॥ तथा शत्रुओंके द्वारा भेद डालने वाले, ठगने वाले, और विष आदि देनेवाले पुरुषोंसे राजाकी रक्षा करे ॥ ५ ॥

इङ्गिताकारौ चास्य लक्षयेत् ॥ ६ ॥ कामद्वेषहर्षदैन्यव्यवसायभयद्वन्द्वविपर्यासमिङ्गिताकाराभ्यां हि मन्त्रसंवरणार्थमाचरन्ति प्राज्ञाः ॥ ७ ॥

राजाकी चेष्टाओंको और आकारको बड़ी सूक्ष्म दृष्टिसे बार-बार देखता रहे ॥ ६ ॥ क्योंकि अपने गुप्त रहस्योंको छिपाये रखनेके लिये बुद्धिमान् पुरुष, काम, द्वेष, हर्ष, दैन्य, व्यवसाय (किसी कार्यके करनेका निश्चय), भय, द्वन्द्वों (सुख दुःख आदि) के विपर्यासको, चेष्टाओं तथा विशेष आकृतियोंके द्वारा ही बतलाते हैं । अतः चेष्टा आदिके जाननेमें बड़ा ध्यान रखना चाहिए ॥ ७ ॥

दर्शने प्रसीदति ॥ ८ ॥ वाक्यं प्रतिगृह्णाति ॥ ९ ॥ आसनं ददाति ॥ १० ॥ विविक्तो दर्शयते ॥ ११ ॥ शङ्कास्थाने नातिशङ्कते ॥ १२ ॥ कथायां रमते ॥ १३ ॥ परिज्ञाप्येष्ववेक्षते ॥ १४ ॥ पथ्यमुक्तं सहते ॥ १५ ॥ स्मयमानो नियुंक्ते ॥ १६ ॥ हस्तेन स्पृशति ॥ १७ ॥ श्लाघ्ये नोपहसति ॥ १८ ॥ परोक्षं गुणं ब्रवीति ॥ १९ ॥ भक्ष्येषु स्मरति ॥ २० ॥ सह विहारं याति ॥ २१ ॥ व्यसनेऽभ्यवपद्यते ॥ २२ ॥ तद्भक्तीन्पूजयति ॥ २३ ॥ गुह्यमाचष्टे ॥ २४ ॥ मानं वर्धयति ॥ २५ ॥ अर्थं करोति ॥२६॥ अनर्थं प्रतिहन्ति ॥२७॥ इति तुष्टज्ञानम् ॥२८॥

राजाकी प्रसन्नताको निम्नलिखित बातोंसे समझना चाहियेः—वह देखनेपरही प्रसन्न होजाता है ॥ ८ ॥ उसकी कही हुई बातको ध्यान पूर्वक आदरसे सुनता है ॥ ९ ॥ उसको बैठनेके लिये उचित आसन देता है ॥ १० ॥ विविक्त=एकान्त स्थान अथवा अन्तःपुर आदिमें भी उसे दर्शन देता है ॥ ११ ॥ शङ्काका अवसर होनेपर भी, विश्वासके कारण अधिक शङ्का नहीं करता ॥ १२ ॥ उसके साथ बातचीत करनेमें कुछ सुखका अनुभव करता है ॥ १३ ॥ दूसरोंके बताये हुए कार्योंमें भी अपने प्रिय पुरुषकी सलाहकी इच्छा रखता है ॥ १४ ॥ हितसे कही हुई कठोर बातको भी सहन करलेता है ॥ १५ ॥ मुस्कराता हुआ उसे किसी कामपर लगाता है ॥ १६ ॥ हाथसे छूता है, अथवा छूते हुए बात करता है ॥ १७ ॥ प्रशंसा योग्य किये गये कामपर उसके सामनेही हँसता है ॥ १८ ॥ उसके पीछे उसके गुणोंकी प्रशंसा करता है ॥ १९ ॥ भोजनोंके सम-

थमें याद करता है, अर्थात् विशेष भोजनोंमें उसेभी बुलाता है ॥ २० ॥ उसके साथ २ खेलने कूदने आदिके लिये जाता है ॥ २१ ॥ उसके ऊपर कोई दुःख आनेपर, उसे हटानेके लिये पूरी सहायता करता है ॥ २२ ॥ उसके साथ अनुराग रखने वालोंका खूब सत्कार करता है ॥ २३ ॥ अपने गुप्त रहस्योंको भी उसके सामने कहदेता है ॥ २४ ॥ उसके मान सत्कार आदिको खूब बढ़ाता है ॥ २५ ॥ उसकी इच्छानुसार आर्थिक सहायता देता है ॥ २६ ॥ और अनर्थका निवारण करता है ॥ २७ ॥ इन सब बातोंसे राजाकी प्रसन्नता जानी जाती है ॥ २८ ॥

एतदेव विपरीतमतुष्टस्य ॥ २९ ॥ भूयश्च वक्ष्यामः ॥३०॥ संदर्शने कोपः ॥ ३१ ॥ वाक्यस्याश्रवणप्रतिषेधौ ॥३२॥ आसनचक्षुषोरदानम् ॥ ३३ ॥ वर्णस्वरभेदः ॥३४॥ एकाक्षिभ्रुकुट्योष्ठनिर्भेदः ॥ ३५ ॥ स्वेदश्वासस्मितानमस्थानोत्पत्तिः ॥ ३६ ॥ परिमन्त्रणम् ॥ ३७ ॥ अकस्माद्व्रजनम् ॥ ३८ ॥ वर्धनमन्यस्य ॥ ३९ ॥ भूमिगात्रविलेखनम् ॥४०॥ अन्यस्योपतोदनम् ॥४१॥ विद्यावर्णदेशकुत्सा ॥ ४२ ॥ समदोषनिन्दा ॥ ४३ ॥ प्रतिदोषनिन्दा ॥ ४४ ॥ प्रतिलोमस्तवः ॥४५॥ सुकृतानपेक्षणम् ॥४६॥ दुष्कृतानुकीर्तनम् ॥ ४७ ॥ पृष्ठावधानम् ॥ ४८ ॥ अतित्यागः ॥ ४९ ॥ मिथ्याभिभाषणम् ॥ ५० ॥ राजदर्शिनां च तद्वृत्तान्यत्वम् ॥ ५१ ॥

जब राजा अप्रसन्न हो, तो येही सब बातें उल्टी होजाती हैं ॥ २९ ॥ और कुछ अधिक बातें भी अप्रसन्नता जाननेके लिये बताते हैं ॥ ३० ॥ जिसपर राजा अप्रसन्न हो उसे देखतेही कुपित होजाता है ॥ ३१ ॥ उसकी कही हुई बातको सुनताही नहीं, या रोक देता है ॥ ३२ ॥ बैठनेके लिये आसन नहीं देता और उसकी ओर आंख भी नहीं उठाता ॥ ३३ ॥ मुंह चढ़ाकर और आवाज़ बदलकर बोलता है ॥ ३४ ॥ एक आंखसे या भौंचढ़ाकर, अथवा होठ टेढ़ा करके बोलता है ॥ ३५ ॥ और बिनाही अवसर उसे पसीना आजाता है, लम्बा सांस चलने लगता है, तथा वह मुस्काने लगता है ॥ ३६ ॥ दूसरेके साथ बातचीत करने लगता है ॥ ३७ ॥ अचानक उठकर चला जाता है ॥३८॥ इसको छोड़कर दूसरेकी प्रशंसा करने लगता है ॥ ३९ ॥ भूमि अथवा अपने शरीरको नाखूनसे कुरेदने लगता है ॥ ४० ॥ दूसरे किसीको मारने लगता है

॥ ४१ ॥ उसकी विद्या उसके वर्ण और उसके देशकी निन्दा करने लगता है ॥ ४२ ॥ उसके किसी दोषकी ॥ ४३ ॥ या उसके समान किसी दूसरेके दोषकी निन्दा करने लगता है ॥ ४४ ॥ व्याजस्तुति करने लगता है ॥ ४५ ॥ उसके अच्छे किये हुए कामकी भी कुछ पर्वाह नहीं करता ॥ ४६ ॥ और बिगड़े हुए कामको सब जगह कह देता है ॥ ४७ ॥ उसके लौटनेपर पीछेसे उसे बड़े ध्यानसे देखता है ॥ ४८ ॥ समीप आनेपर तत्क्षण किसी कार्यके बहाने उसे वहांसे दूर हटा देता है ॥ ४९ ॥ और उसके साथ मिथ्या=भाव-शून्य अर्थात् सारहीन भाषण करता है ॥ ५० ॥ अन्य राजसेवकोंको उसके व्यवहारमें भेद डालता है ॥ ५१ ॥

वृत्तिविकारं चावेक्षेताप्यमानुषाणाम् ॥ ५२ ॥ अयमुच्चैः सिञ्चतीति कात्यायनः प्रवव्राज ॥ ५३ ॥

मनुष्योंसे अतिरिक्त पशु और पक्षियोंके भी वृत्तिविकारको (मानसिक नाना वृत्तियोंके अनुसार विकृत हुए २ मुखादि आकारोंको) अच्छी तरह ध्यानपूर्वक देखना चाहिये ॥ ५२ ॥ * यह जल सींचनेवाला आज ऊपरसे जल सींच रहा है, इस बातको देखकर मन्त्री कात्यायन राजाको छोड़कर चला गया ॥ ५३ ॥

क्रौञ्चो ऽपसव्यमिति कणिङ्को भारद्वाजः ॥ ५४ ॥

* इसका इतिहास इस प्रकार है:—पौण्ड्रदेशमें सोमदत्त नामका राजा रहता था। उसके पुत्रने कोई अपराध किया। राज-पुत्रको कैद करनेके लिये राजाने अपने मन्त्री कात्यायनके साथ इस विषयमें सलाह की। राज-पुत्रके पक्षके लोगोंको इस बातका पता लगगया, और उन्होंने राजकुमारको वहांसे किसी अन्य सुरक्षित स्थानपर पहुंचा दिया। राजाने समझा कि मन्त्री कात्यायनने ही हमारे भेदको खोल दिया है। उसका वध करनेके लिये अपने नौकरों को उसने आज्ञा देदी। किसी जल सींचनेवाले आदमीने राजाकी इस आज्ञाको किसी तरह सुन लिया। जब कि मन्त्री कात्यायन उधरको आरहा था, वह जलसेचक ऊपरसे ही जल डालकर सींचता रहा। यह देख मन्त्रीने अपने चित्तमें विचार किया, कि कलतक तो यह मेरे ऊपर छींट गिरजानेके डरसे धीरे २ नीचेसे सींचता था, पर आज इसने कुछ परवाह न की, मालूम होता है मेरे प्रति राजाका कोई महान कोप इसे मालूम होगया है, इसलिए इसके चित्तमें यह विकार हुआ है। यह निश्चय करके मन्त्री कात्यायन, तत्कालही राजाको छोड़ कर चला गया ॥ ५३ ॥

*क्रौञ्चपक्षी बाईं ओरको चला गया यह देखकर भारद्वाज गोत्रीय कणिङ्क नामका मन्त्री राजाको छोड़ गया ॥ ५४ ॥

तृणमितिदीर्घश्चारायणः ॥ ५५ ॥

† तृणको देखकर दीर्घ चारायण आचार्य, राजाको छोड़गया ॥ ५५ ॥

शीता शाटीति घोटमुखः ॥ ५६ ॥

‡ कपड़ा ठण्डा है, इस बातको सुनकर आचार्य घोटमुख राजाको छोड़कर चला गया ॥ ५६ ॥

हस्ती प्रत्यांक्षीदिति किञ्जल्कः ॥ ५७ ॥

---

* कोसल देशोंमें परन्तप नामक राजाका एक नीतिनिपुण भारद्वाज गोत्रीय कणिङ्क नामका मन्त्री था। वह जब राजाके पासजाता, तो उसकी दाहिनी ओर एक क्रौञ्च नामक पक्षी उड़कर निकला करता था। एक दिन राजाको मालूम हुआ कि मैं जब अन्तः पुरमें था, उस समय कणिङ्क यहां आया। राजा मन्त्रीको इसबातपर क्रुद्ध होगया, और उसकी बड़ी निन्दाकी। दूसरे दिन राजाके समीप जाते समय मन्त्रीके बाईं ओरसे होकर वह पक्षी उड़ा। इस विपर्ययसे उसने राजाके कोपका अनुमानकर उसे परित्याग कर दिया ॥५४॥

† मगध देशमें कोई बालक राजा होगया। चारायण गोत्रीय दीर्घ नामक, उसका एक आचार्य था। जब वह घरमें आता, राजमाता उसकी अत्यन्त सेवाशुश्रूषा करती। युवा होनेपर, आचार्यकी सेवा न सहन करते हुए राजाने एकदिन अपनी मातासे पूछा, तुम इस ब्राह्मणकी इतनी सेवा क्योंकरती हो? माताने उत्तर दिया, ये अत्यन्त विद्वान् और हमारे आचार्य हैं, तुमभी अन्न वस्त्र आदि देकर इनकी पूजाकरो। यह सुनकर तत्कालही उसने तिनकोंसे भरा हुआ अन्न, आचार्यके लिये दिया। आचार्य दीर्घ चारायण इससे अपने अनादरको जानकर वहांसे चले गये ॥ ५५ ॥

‡ अवन्ती नगरीमें अंशुमान् नामक राजाके पुत्रको नीतिशास्त्र पढ़ानेके लिये घोटमुख नामके एक आचार्य रहतेथे। राजा किसी बातपर उनसे अप्रसन्न होगया। गुरुभक्त राजकुमारने यहबात इशारेसे अपने गुरुको इस प्रकार बताई, वह नित्य प्रति स्नानके अनन्तर अपने वस्त्रको निचोड़कर कन्धेपर रखकर लेजाता था। परन्तु उसदिन यह कहते हुए कि 'यह कपड़ा ठण्डा है' उसे वहीं छोड़कर चला गया। घोटमुखने इस इशारेसे, राजाके चित्तमें कुछ विकार जानकर उसे छोड़ दिया ॥ ५६ ॥

*हाथीने ऊपर पानी डाल दिया यह देखकर किञ्जल्क नामका आचार्य राजाको छोड़कर चला गया ॥ ५७ ॥

रथाश्वं प्राशंसीदिति पिशुनः ॥ ५८ ॥

†रथके घोड़ेकी प्रसंशा सुनकर पिशुन नामका आचार्य अपने राजाको छोड़कर चला गया ॥ ५८ ॥

प्रतिरवणे शुनः पिशुनपुत्र इति ॥ ५९ ॥

‡ कुत्तेके भूकनेपर पिशुन आचार्यका पुत्र राजाको त्यागकर चला गया ॥ ५९ ॥

अर्थमानावक्षेपे च परित्यागः ॥ ६० ॥ स्वामिशीलमात्मनश्च किल्बिषमुपलभ्य वा प्रतिकुर्वीत मित्रमुपकृष्टं वास्य गच्छेत् ॥ ६१ ॥

---

* बङ्गालमें शतानन्द नामक राजाके यहां, एक किञ्जल्क नामका आचार्य रहता था। वह राजाकी सवारीके हाथीको नित्यप्रति पुचकारकर फिर राजकुलमें जाया करता था। किसी दिन हाथीके ऊपर चढ़े हुए राजाने आचार्यके सम्बन्धमें द्रोहपूर्वक मन्त्रणा की। इस बातको जानकर दूसरे दिन जब आचार्य हाथीके पास आया, तो उसने अपनी सूंडसे आचार्यके ऊपर जल फेंक दिया। इस चेष्टासे, राजाके चित्तमें अपनी ओरसे विकार जानकर, वह राजाको छोड़ चला गया ॥ ५७ ॥

† पिशुन नामका आचार्य उज्जयिनीमें प्रद्योत राजाके पुत्र पालकको राजनीति विद्या पढ़ाता था। पढ़ाई समाप्त होजानेपर, राजाने पिशुनके धनको अपहरण करनेके लिये अपने पुत्रसे मंत्रणा की। पुत्रने गुरुद्रोह न करते हुए अगले दिन जुते हुए रथको आचार्यके सामने खड़ा करके कहा कि ये घोड़े चलनेमें बहुत तेज हैं, एक दिनमें ३०० योजन जासकते हैं। आचार्य पिशुनने अपने चले जानेका यह इशारा जान कर तत्काल ही उस राजा को छोड़ दिया ॥ ५८ ॥

‡ पिशुन आचार्यका पुत्र बाल्यकालमेंही सम्पूर्ण राजनीति तत्त्वोंको जानकर राजाकी सेवा करता था। राजा उसको विद्वान् जानकर सदा उसका अनुसरण करता था। एकबार राजाने विचार किया कि अभी यह बालक होने से मन्त्री पदके योग्य तो है नहीं, इस लिए इसे युवा होनेतक बांधकर रखना चाहिये, नहीं तो यह दूसरे देशको चला जायगा। राजाकी इस सलाहको जान कर एक कुत्ता पिशुनपुत्रके आगे बार २ भौंकताथा। इससे पिशुनपुत्रने राजा के चित्तके विकारका अनुमान करके उसे छोड़ दिया ॥ ५९ ॥

सम्पत्ति और सत्कारका नाश करनेवाले राजाको भी त्याग देना चाहिए ॥ ६० ॥ अथवा राजाके स्वभाव और अपने अपराधपर विचार करके, राजाको न छोड़नेकी इच्छा होनेपर, उसका प्रतीकार करना चाहिए। अथवा राजाके किसी समीपके सम्बन्धी या मित्रका आश्रय लेना चाहिए, जिसके द्वारा राजा को प्रसन्न किया जा सके ॥ ६१ ॥

तत्रस्थो दोषनिर्घातं मित्रैर्भर्तरि चाचरेत् ।
ततो भर्तरि जीवेद् वा मृते वा पुनराव्रजेत् ॥ ६२ ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमे ऽधिकरणे समयाचारिकं पञ्चमो ऽध्यायः ॥ ५ ॥
आदितः पञ्चनवतिः ॥ ९५ ॥

राजाके पास रहता हुआ ही, मित्रोंके द्वारा अपने अपराधकी मफ़ाई करावे, और राजाके प्रसन्न होनेपर चाहे उसीके आश्रयमें रहे, या उसके मर जानेपर फिर आ जावे ॥ ६२ ॥

योगवृत्त पञ्चम अधिकरणमें पांचवां अध्याय समाप्त ।

छठा अध्याय

९४-९५ प्रकरण

राज्यका प्रतिसन्धान और एकैश्वर्य ।

राजव्यसनमेवममात्यः प्रतिकुर्वीत ॥ १ ॥ प्रागेव मरणाबाधभयाद्राज्ञः प्रियहितोपग्रहेण मासद्विमासान्तरं दर्शनं स्थापयेत् ॥ २ ॥ देशपीडापहममित्रापहमायुष्यं पुत्रीयं वा कर्म राजा साधयतीत्यपदेशेन राजव्यञ्जनमनुरूपवेलायां प्रकृतीनां दर्शयेत् ॥३॥

राजापर आई हुई आपत्तियोंका प्रतीकार, अमात्य इस प्रकार करे ॥१॥ राजाकी मृत्युके भयसे पूर्व ही, राजाके प्रिय और हितैषी पुरुषोंकी सलाह लेकर एक महीना या दो महीने बाद राजाके दर्शनकी तिथि नियुक्त करदे ॥२॥ और यह बहाना करे कि राजा आजकल, देशकी पीड़ाको दूर करनेवाले, शत्रुओंको नष्ट करनेवाले, आयु देनेवाले तथा पुत्र देनेवाले कर्मका अनुष्ठान कर रहा है, इत्यादि। जब राजाके दर्शनका ठीक समय आवे, तो राजाके भेस में किसी पुरुषको प्रजाके सामने दिखला देवे ॥ ३ ॥

मित्रामित्रदूतानां च ॥ ४ ॥ तैश्च यथोचितां संभाषाममात्यमुखो गच्छेत् ॥ ५ ॥ दौवारिकान्तर्वंशिकमुखश्च यथोक्तं राज-

प्रणिधिमनुवर्तयेत् ॥ ६ ॥ अपकारिषु च हेडं प्रसादं वा प्रकृतिकान्तं दर्शयेत् ॥ ७ ॥ प्रसादमेवोपकारिषु ॥ ८ ॥

मित्र, शत्रु, और दूतोंको (अथवा मित्रके दूत तथा शत्रुके दूतोंको) भी उसी बनावटी राजाको दिखा देवे ॥ ४ ॥ उन लोगोंके साथ वह राजा अमात्यके द्वाराही यथोचित सम्भाषण करे ॥ ५ ॥ पहिले प्रसिद्ध किये हुए राजाके कार्यके विषयमें द्वारपाल और अन्तःपुरके रक्षक पुरुषोंके द्वारा ही कहलवाये ॥ ६ ॥ अपकार करनेवाले लोगोंपर अमात्यकी सम्मतिसे कोप अथवा प्रसन्नता दिखावे ॥ ७ ॥ और उपकार करनेवालोंपर प्रसन्नता ही दिखावे, कोप नहीं ॥ ८ ॥

आप्तपुरुषाधिष्ठितौ दुर्गप्रत्यन्तस्थौ वा कोशदण्डावेकस्थौ कारयेत् ॥ ९ ॥ कुल्यकुमारमुख्यांश्चान्यापदेशेन ॥ १० ॥ यश्च मुख्यः पक्षवान्दुर्गाटवीस्थो वा वैगुण्यं भजेत तमुपग्राहयेत् ॥ ११ ॥

दुर्ग और सीमाप्रान्तके कोश तथा सेनाको किसी अत्यन्त विश्वस्त पुरुषकी देखरेखमें, किसी बहानेसे इकट्ठा कर देवे ॥ ९ ॥ तथा और किसी बहानेसे राजाके खानदानी, राजकुमार, और अन्य मुख्य पुरुषोंको भी एकत्रित कर देवे ॥ १० ॥ जो मुख्य (प्रधान कर्मचारी), किसीकी सहायता लेकर दुर्ग अथवा अटवीमें स्थित हुआ २ राजाके विरुद्ध हो जावे, तो उसे किसी उपायसे अपने अनुकूल बनाया जावे ॥ ११ ॥

बह्वाबाधां वा यात्रां प्रेषयेत् ॥ १२ ॥ मित्रकुलं वा ॥ १३ ॥ यस्माच्च सामन्तादाबाधां पश्येत्तमुत्सवविवाहहस्तिबन्धनाश्वपण्यभूमिप्रदानापदेशेनावग्राहयेत् ॥ १४ ॥

अथवा उसे बहुत बाधाओंसे युक्त यात्रा (आक्रमण, किसी देशपर चढ़ाई) पर भेज देवे ॥ १२ ॥ अथवा किसी मित्र राष्ट्रके पास उसकी सहायताका बहाना करके भेज देवे ॥ १३ ॥ जिस किसी सामन्त अर्थात् समीपके राजासे बाधा (कष्ट) का भय हो, उसे उत्सव, विवाह, हाथीके पकड़ने और घोड़ा, अन्य माल, तथा भूमि देनेके बहानेसे अपने पास बुलाकर अनुकूल बनावे ॥ १४ ॥

स्वामित्रेण वा ततः संधिमदूष्यं कारयेत् ॥ १५ ॥ आटविकामित्रैर्वा वैरं ग्राहयेत् ॥ १६ ॥ तत्कुलीनमवरुद्धं वा भूम्येकदेशेनोपग्राहयेत् ॥ १७ ॥

अथवा अपने मित्रके द्वारा उसे अनुकूल बना लेवे, और फिर उसीके द्वारा अपने साथ अकृत्य दूषित न होनेवाली) सन्धि करालेवे ॥ १५ ॥ अथवा आटविक, तथा अपने शत्रुके साथ इस सामन्तका वैर करादेवे ॥ १६ ॥ अथवा सामन्तके घरानेके किसी आदमीको भूमिका कुछ हिस्सा देकर अपने वशमें करलेवे और फिर उसीके द्वारा सामन्तका दमन करावे ॥ १७ ॥

कुल्यकुमारमुख्योपग्रहं कृत्वा वा कुमारमभिषिक्तमेव दर्शयेत् ॥ १८ ॥ दाण्डकर्मिकवद्वा राज्यकण्टकानुद्धृत्य राज्यं कारयेत् ॥ १९ ॥

राजाके मर जानेपर तो राजाके वंशज राजकुमार, तथा राष्ट्रके मुख्य कर्मचारियोंकी अनुकूलता देखकर, अभिषिक्त राजकुमारको ही प्रजाओंके सामने दिखलावे ॥ १८ ॥ और दाण्डकर्मिक प्रकरणमें बतलाई हुई रीतिसे, राज्य कण्टकोंको उखाड़कर निष्कण्टक राज्य करावे ॥ १९ ॥

यदि वा कश्चिन्मुख्यः सामन्तादीनामन्यतमः कोपं भजेत तमेहि राजानं त्वा करिष्यामीत्यावाहयित्वा घातयेत् ॥ २० ॥ आपत्प्रतीकारेण वा साधयेत् ॥ २१ ॥

यदि सामन्त आदिमेंसे कोई एक मुख्य इस बातसे कुपित होजावे, तो उससे कहे कि:—"यह बालक तो सर्वथा राज्यके अयोग्य है, तुम यहां आओ, मैं तुमको ही राजा बनाऊंगा" इस प्रकार बुलाकर उसे मरवा डाले ॥ २० ॥ यदि वह न आवे, तो आपत्प्रतीकार प्रकरणमें बताई हुई रीतिसे उसे सीधा करे ॥ २१ ॥

युवराजे वा क्रमेण राज्यभारमारोप्य राजव्यसनं ख्यापयेत् ॥ २२ ॥ परभूमौ राजव्यसने मित्रेणामित्रव्यञ्जनेन शत्रोः संधिमवस्थाप्यापगच्छेत् ॥ २३ ॥

युवराजपर धीरे २ सम्पूर्ण राज्यका भार सौंपकर फिर राजाकी विपत्तिको सबके सामने प्रकट करे ॥ २२ ॥ यदि राजा कहीं दूसरे देशमेंही मरजावे, तो बनावटी दुश्मन बने हुए मित्रके साथ शत्रुकी सन्धि कराकर वापस चला आवे ॥ २३ ॥

सामन्तादीनामन्यतमं वास्य दुर्गे स्थापयित्वापगच्छेत् ॥ २४ ॥ कुमारमभिषिच्य वा प्रतिव्यूहेत ॥ २५ ॥ परेणाभियुक्तो वा यथोक्तमापत्प्रतीकारं कुर्यात् ॥ २६ ॥ एवमेकैश्वर्यममात्यः कारयेदिति कौटल्यः ॥ २७ ॥

अथवा सामन्त आदिमेंसे किसी एकको इसके दुर्गमें स्थापित करके चला आवे ॥ २४ ॥ और राजकुमारका राज्याभिषेक करके फिर शत्रुके साथ युद्ध करे ॥ २५ ॥ यदि कोई अन्य शत्रुही इसके ऊपर चढ़ाई करदे, तो अभियास्यत्कर्म अधिकरणमें बतलाये हुए बाहर और भीतरकी आपत्तियोंसे बचनेके उपायोंके द्वारा उस आपत्तिका प्रतीकार करे ॥ २६ ॥ इस प्रकार अमात्य एकैश्वर्य राज्यका पालन करावे, यह कौटल्यका मत है ॥ २७ ॥

नैवमिति भारद्वाजः ॥ २८ ॥ प्रम्रियमाणे वा राजन्यमात्यः कुल्यकुमारमुख्यान्परस्परं मुख्येषु वा विक्रामयेत् ॥ २९ ॥ विक्रान्तं प्रकृतिकोपेन घातयेत् ॥ ३० ॥

परन्तु भारद्वाज आचार्यका मत है कि अमात्य इस प्रकार राजपुत्रका एकैश्वर्य (एकच्छत्र) राज्य न करवावे ॥ २८ ॥ किन्तु राजाके आसन्नमरण (मरनेवाले) होनेपर, अमात्य, राजाके वंशज, राजकुमार, तथा मुख्य व्यक्तियोंको परस्पर, या इनको अन्य मुख्योंके साथ लड़ा देवे ॥ २९ ॥ इनके लड़नेपर प्रजा या अमात्य आदिके कुपित होनेके कारण इनको मरवा देवे ॥ ३० ॥

कुल्यकुमारमुख्यानुपांशुदण्डेन वा साधयित्वा स्वयं राज्यं गृह्णीयात् ॥ ३१ ॥ राज्यकारणाद्धि पिता पुत्रान्पुत्राश्च पितरमभिद्रुह्यन्ति ॥३२॥ किमङ्ग पुनरमात्यप्रकृतिर्ह्येकप्रग्रहो राज्यस्य ॥३३॥

अथवा राजाके वंशज, राजकुमार, और मुख्य व्यक्तियोंको उपांशुदण्ड से (चुपचाप कोई षड्यन्त्र रचकर, विष आदि देनेसे) मरवा देवे । और अपने आपही सम्पूर्ण राज्यका मालिक बनजावे ॥ ३१ ॥ क्योंकि राज्यके लिये पिता पुत्रके साथ और पुत्र पिताके साथ अभिद्रोह करते देखे गये हैं ॥ ३२ ॥ फिर अमात्यका तो कहनाही क्या ? जोकि सम्पूर्ण राज्यकी एक बागडोर समझा जाता है ॥ ३३ ॥

तत्स्वयमुपस्थितं नावमन्येत ॥ ३४ ॥ स्वयमारूढा हि स्त्री त्यज्यमानाभिशपतीति लोकप्रवादः ॥ ३५ ॥

इस लिये स्वयं आये हुए इतने विशाल राज्यका कभी तिरस्कार न करे ॥ ३४ ॥ क्योंकि रमण करनेके लिये स्वयं आई हुई स्त्री (भी) यदि छोड़ दी जावे तो वह पुरुषको शाप देदेती है, यह बात लोक प्रसिद्ध है ॥ ३५ ॥

कालश्च सकृदभ्येति यं नरं कालकाङ्क्षिणम् ।
दुर्लभः स पुनस्तस्य कालः कर्मचिकीर्षतः ॥ ३६ ॥

काम करनेकी इच्छासे, पुरुष चिरकालसे जिस उचित समयकी प्रतीक्षा करता रहता है, ऐसा मौका कभी एकबारही उसके पास आता है। उसकी उपेक्षा करदेनेपर फिर अवसर दुर्लभ होता है। सांप निकल जानेपर लकीर पीटनेसे क्या फ़ायदा ॥ ३६ ॥

प्रकृतिकोपकमधर्मिष्ठमनैकान्तिकं चैतदिति कौटल्यः ॥३७॥ राजपुत्रमात्मसंपन्नं राज्ये स्थापयेत् ॥ ३८ ॥

परन्तु इसके विरुद्ध कौटल्यका मत है कि इस प्रकारकी कार्रवाई प्रजाको रुष्ट करनेवाली, अधर्मसे युक्त और सदा न होने वाली है ॥ ३७ ॥ अतः आत्मसम्पन्न राजपुत्रको ही राजसिंहासनपर अभिषिक्त करदे ॥ ३८ ॥

संपन्नाभावे व्यसनिनं कुमारं राजकन्यां गर्भिणीं देवीं वा पुरस्कृत्य महामात्रान्सन्निपात्य ब्रूयात् ॥ ३९ ॥

यदि कोई राजकुमार आत्मसम्पन्न न होवे, तो व्यसनी (स्त्री मद्य आदि में आसक्त) राजकुमारको, राज कन्याको, या गर्भिणी महारानीको, सामने कर के, राष्ट्रके सम्पूर्ण महान व्यक्तियोंको एकत्रित करके कहे, कि:—॥ ३९ ॥

अयं वो निक्षेपः ॥ ४० ॥ पितरमस्यावेक्षध्वं सत्त्वाभिजनमात्मनश्च ॥४१॥ ध्वजमात्रो ऽयं भवन्त एव स्वामिनः ॥४२॥ कथं वा क्रियतामिति ॥ ४३ ॥

यह आप लोगोंकी धरोहर है, इसकी रक्षा आप लोगोंको ही करनी है ॥ ४० ॥ इसके (राजकुमारके) पिताके पराक्रम और वंशकी ओर भी ध्यानदें और ज़रा अपनी ओर भी देखें ॥ ४१ ॥ यह (राजकुमार) केवल एक झण्डेके समान है, जो सबसे ऊंचा रहता हुआ फहराता रहता है, वस्तुतः इस राज्यके प्रबन्धकर्त्ता आपही लोग हैं ॥ ४२ ॥ अब बतलाइये इस विषयमें क्या किया जाय ? इत्यादि ॥ ४३ ॥

तथा ब्रुवाणं योगपुरुषा ब्रूयुः ॥ ४४ को ऽन्यो भवत्पुरोगादस्माद्राज्ञश्चातुर्वर्ण्यमर्हति पालयितुमिति ॥ ४५ ॥

इसप्रकार कहतेहुए अमात्यको, वे एकत्रित कियेहुए राष्ट्रके महान व्यक्ति कहें:—॥ ४४ ॥ आपके नेतृत्वमें अथवा आपकी देखरेखमें रहते हुए इसके (राजकुमारके) सिवाय और कौन है, जो राजाकी चातुर्वर्ण्य प्रजाका पालन करसके, इत्यादि ॥ ४५ ॥

तथेत्यमात्यः कुमारं राजकन्यां गर्भिणीं देवीं वाधिकुर्वीत

॥ ४६ ॥ बन्धुसंबन्धिनां मित्रामित्रदूतानां च दर्शयेत् ॥ ४७ ॥

'अच्छी बात है' कहकर अमात्य, उस राजकुमारको या राजकन्याको अथवा गर्भिणी महाराणीको राज्य सिंहासनपर अभिषिक्त कर दे ॥ ४६ ॥ और इसे, उसके भाई बन्धु तथा सम्बन्धियों, मित्र, शत्रु, तथा दूतोंको दिखला देवे, कि ये राजा हैं ॥ ४७ ॥

भक्तवेतनविशेषममात्यानामायुधीयानां च कारयेत् ॥४८॥ भूयश्चायं वृद्धः करिष्यतीति ब्रूयात् ॥ ४९ ॥ एवं दुर्गराष्ट्रमुख्या-नाभाषेत ॥ ५० ॥ यथार्हं च मित्रामित्रपक्षम् ॥ ५१ ॥ विनय-कर्मणि च कुमारस्य प्रयतेत ॥ ५२ ॥

अमात्य और सिपाहियोंके भत्ते और वेतनमें कुछ तरक्की करवा देवे ॥ ४८ ॥ और कहे कि यह बड़ा होकर और भी वेतनवृद्धि करेगा ॥ ४९ ॥ इसी प्रकार दुर्ग तथा राष्ट्रके मुख्य कर्मचारियोंको भी कहे ॥ ५० ॥ और मित्र तथा शत्रुपक्षके साथ भी यथोचित आभाषण करे ॥ ५१ ॥ तथा राज-कुमारको विद्या विनय और अन्य प्रकारकी शिक्षाके लिये पूरा प्रयत्न करे ॥५२॥

कन्यायां समानजातीयादपत्यमुत्पाद्य वाभिषिञ्चेत् ॥५३॥ मातुश्चित्तक्षोभभयात्कुल्यमल्पसत्त्वं छात्रं च लक्षण्यमुप निदध्यात् ॥ ५४ ॥ ऋतौ चैनां रक्षेत् ॥ ५५ ॥

अथवा किसी समानजातीय पुरुषसे राजकन्यामें पुत्र उत्पन्न कराके, उसे राज्यसिंहासनपर अभिषिक्त करे ॥ ५३ ॥ राजकुमारकी माता (महाराणी) का चित्त बेचैन न हो यह विचार करके किसी कुलीन, निर्बल, सौम्य वेदा-ध्येताको उसके पास रखदेवे, जिससे कि वह धर्मशास्त्र तथा पुराण आदि सुनाकर उसके चित्तको शान्त रक्खे ॥ ५४ ॥ और ऋतुकालमें इसकी अच्छी तरह रक्षा करे ॥ ५५ ॥

न चात्मार्थं कश्चिदुत्कृष्टमुपभोगं कारयेत् ॥ ५६ ॥ राजार्थं तु यानवाहनाभरणवस्त्रस्त्रीवेश्मपरिवापान्कारयेत् ॥ ५७ ॥

अपने लिये उपभोगका कोई बढ़ियापदार्थ सञ्चित न करे ॥ ५६ परन्तु राजाके लिये यान (रथ आदि सवारी) वाहन (घोड़े हाथी आदि) आभरण, वस्त्र, स्त्री, मकान, और बढ़िया शयनासन आदि तैयार करावे ॥ ५७ ॥

यौवनस्थं च याचेत विश्रमं चित्तकारणात् ।
परित्यजेदतुष्यन्तं तुष्यन्तं चानुपालयेत् ॥ ५८ ॥

जब राजकुमार युवा होजावे, राज्यभार संभाल सके, तो उसके चित्तके अभिप्रायको जाननेके लिये; स्वयं मन्त्रीका कार्य छोड़नेको उससे कहे। यदि वह 'चले जाओ' ऐसा कहदे, तो राजकुमारको छोड़कर वह चला जावे। यदि वह जानेको न कहे तो फिर उसीके आश्रयमें रहकर यथापूर्व कार्य करता रहे ॥ ५८ ॥

निवेद्य पुत्ररक्षार्थं गूढसारपरिग्रहान् ।
अरण्यं दीर्घसत्त्रं वा सेवेतारुच्यतां गतः ॥ ५९ ॥

अमात्य पदपर कार्य करनेकी रुचि न रहनेपर अथवा राजाकी ओरसे कुछ मनमुटाव होनेपर, पुत्रकी रक्षाके लिये पितृ (पितामह आदिके स्थापित किये हुए गूढ़पुरुष मूलबल और खजाने आदिको राजपुत्रको बताकर अरण्यमें तपस्याके लिये चला जावे। अथवा बहुत लम्बे समयतक होनेवाले यज्ञ आदि कर्मोंका अनुष्ठान करे ॥ ५९ ॥

मुख्यैरवगृहीतं वा राजानं तत्प्रियाश्रितः ।
इतिहासपुराणाभ्यां बोधयेदर्थशास्त्रवित् ॥ ६० ॥

अथवा मामा, फूफा आदि मुख्य व्यक्तियोंके अधीन हुए २ राजा (राजकुमार) को, उसके प्रिय पुरुषोंके आश्रित रहता हुआही, तत्त्वज्ञ अमात्य इतिहास और पुराणोंके द्वारा धर्म अर्थके तत्त्वोंको यथावत् समझाता रहे ॥ ६० ॥

सिद्धव्यञ्जनरूपो वा योगमास्थाय पार्थिवम् ।
लभेत लब्ध्वा दूष्येषु दाण्डकर्मिकमाचरेत् ॥ ६१ ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमे ऽधिकरणे राज्यप्रतिसंधानम्
एकैश्वर्यं षष्ठो ऽध्यायः ॥६॥
आदितः षण्णवतिः ॥९६॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य
योगवृत्तं पञ्चममधिकरणं समाप्तम् ॥५॥

यदि इस तरहसे भी राजाको यथावत् तत्त्व न समझा सके, तो सिद्ध पुरुषका भेस बनाकर कपटका आश्रय लेकर राजाको अपने वशमें करे। और फिर वशमें करके मातुल आदि दूष्य पुरुषोंमें दाण्डकर्मिक प्रकरणमें बताये उपयुक्त दण्डोंका प्रयोग करे ॥ ६१ ॥

योगवृत्त पञ्चम अधिकरणमें छठा अध्याय समाप्त।

योगवृत्त पञ्चम अधिकरण समाप्त।

मण्डलयोनि षष्ठ अधिकरण।

पहला अध्याय।

९६ प्रकरण।

प्रकृतियोंके गुण।

स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः ॥ १ ॥ तत्र स्वामिसंपत् ॥ २ ॥

स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड, (सेना) मित्र, ये सात प्रकृति कहलाते हैं ॥ १ । इनमें से सबसे पहिले स्वामी (राजा) के गुण बताते हैं:— ॥ २ ॥

महाकुलीनो दैवबुद्धिः सत्त्वसंपन्नो वृद्धदर्शी धार्मिकः सत्यवागविसंवादकः कृतज्ञः स्थूललक्षो महोत्साहो ऽदीर्घसूत्रः शक्यसामन्तो दृढबुद्धिरक्षुद्रपरिपत्को विनयकाम इत्याभिगामिका गुणाः ॥ ३ ॥

महाकुलीन (श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुआ २), भाग्यशाली, मेधावी, धैर्यशाली दूरदर्शी अथवा महाज्ञानी, धार्मिक, सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ, कृतज्ञ, महादानी, महाउत्साही, क्षिप्रकारी (किसी कार्यको तत्क्षण सोचकर करनेवाला) सामन्तों (समीपके पर राष्ट्रों) को वशमें करनेवाला, दृढनिश्चय अथवा दृढ भक्ति, गुणी परिवारवाला, शास्त्रमर्यादाको चाहनेवाला, ये राजाके १६ गुण आभिगामिक (राजाके गुण दो तरहके होते हैं, १ आभिगामिक २ आत्मसम्पत्तिरूप । ये उपर्युक्त १६ आभिगामिक गुण हैं ।) गुण कहाते हैं ॥ ३ ॥

शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणविज्ञानोहापोहतत्त्वाभिनिवेशाः प्रज्ञागुणाः ॥ ४ ॥ शौर्यममर्षः शीघ्रता दाक्ष्यं चोत्साहगुणाः ॥५॥

शुश्रूषा (शास्त्र सुननेकी इच्छा), श्रवण (शास्त्रज्ञान), प्रत्येक बातका समझना, समझी हुई बातको याद रखना, किसीके सम्बन्धमें विशेषज्ञान रखना, किसी बातकी वास्तविकता जाननेके लिये तर्क करना तथा दुष्ट पक्षको त्याग देना, गुणियोंका पक्ष करना, ये आठ राजाके प्रज्ञागुण कहाते हैं ॥ ४ ॥

शौर्य (निर्भीकता), अमर्ष (पापाचरणको क्षमा न करना), शीघ्रकारी होना, और प्रत्येक कार्य (लङ्घन प्लवन आरोहण आदि) में चतुर होना, ये चार गुण राजाके 'उत्साहगुण' कहलाते हैं ॥ ५ ॥

वाग्मी प्रगल्भः स्मृतिमतिबलवानुदग्रः स्ववग्रहः कृतशिल्पो-व्यसने दण्डनाय्युपकारापकारयोर्दृष्टप्रतीकारी ह्रीमानापत्प्रकृत्यो-र्विनियोक्ता दीर्घदूरदर्शी देशकालपुरुषकारकार्यप्रधानः संधिवि-क्रमत्यागसंयमपणपरच्छिद्रविभागी संवृतोऽदीनाभिहास्यजिह्मभ्रु-कुटीक्षणः कामक्रोधलोभस्तम्भचापलोपतापपैशुन्यहीनः शक्लः स्मितोदग्राभिभाषी वृद्धोपदेशाचार इत्यात्मसंपत् ॥ ६ ॥

वाग्मी (अर्थपूर्ण भाषण करनेमें समर्थ), प्रगल्भ (सभा आदिमें बोलते समय कम्परहित) स्मृति मति तथा बलसे युक्त, उन्नतचित्त, संयमी, हाथी घोड़े आदिके चलानेमें निपुण, शत्रुकी विपत्तिमें चढ़ाई करनेवाला, अपनी विपत्तिमें सेनाकी रक्षा करनेवाला, किसीके द्वारा उपकार या अपकार किये जानेपर उसका शास्त्रके अनुसार प्रतीकार करनेवाला, लज्जाशील, दुर्भिक्ष और सुभिक्षमें धान्य आदिका ठीक २ विनियोग करनेवाला, लम्बी और दूरकी सोचनेवाला, अपनी सेनाके युद्धोचित देशकाल उत्साहशक्ति तथा कार्यको प्रधानतया देखनेवाला, सन्धिके प्रयोगको समझनेवाला, प्रकाशयुद्ध आदि करनेमें चतुर, सुपात्रमें दान देनेवाला, प्रजाको कष्ट न पहुँचाकर ही गुप्तरूपसे कोशको बढ़ानेवाला, शत्रुके अन्दर मृगयाद्यूत आदि व्यसनोंको देखकर उसपर तीक्ष्ण रस आदिका प्रयोग करनेमें समर्थ, अपने मन्त्रको गुप्त रखनेवाला, दीन पुरुषोंकी हँसी न उड़ानेवाला, टेढ़ी भौं न करके देखनेवाला, काम, क्रोध, लोभ मोह, चपलता, उपताप और पैशुन्य (चुगलखोरी) से सदा अलग रहनेवाला, प्रिय बोलनेवाला, हँसमुख तथा उदार भाषण करनेवाला, और वृद्धोंके उपदेश तथा आचारका माननेवाला राजा होना चाहिये । ये राजाकी आत्मसम्पत् हैं । इनसे युक्त राजा आत्मसम्पन्न कहाता है ॥ ६ ॥

अमात्यसंपदुक्ता पुरस्तात् ॥ ७ ॥ मध्ये चान्ते च स्थानवा-नात्मधारणः परधारणश्चापदि स्वारक्षः स्वाजीवः शत्रुद्वेषी शक्य-सामन्तः पङ्कपाषाणोपरविषमकण्टकश्रेणीव्यालमृगाटवीहीनः का-न्तः सीताखनिद्रव्यहस्तिवनवान् गव्यः पौरुषेयो गुप्तगोचरः पशुमा-नदेवमातृको वारिस्थलपथाभ्यामुपेतः सारचित्रबहुपण्यो दण्डकर-

सहः कर्मशीलकर्षको ऽबालिशस्वाम्यवरवर्णप्रायो भक्तशुचिमनुष्य इति जनपदसंपत् ॥ ८ ॥

अमात्यसम्पत् पहिले वैनयिक अधिकरणमें कही जाचुकी है ॥ ७ ॥ अब जनपद सम्पत् बतलाते हैं:—मध्यमें तथा सीमाप्रान्तमें किले हों, जिस में स्वदेशनिवासी तथा परदेशसे आनेवाले जनोंके लिये पर्याप्त धान्य आदि पैदा हो सके, आपत्तिमें पहाड़ बन आदिके होनेसे देशवासियोंकी रक्षा करसके या पर्वत आदिके कारण सरलतासे जिसकी रक्षा कीजासके, जहां थोड़ेही परिश्रमसे धान्य आदि पैदा हो जांय, राजाके शत्रुसे दुश्मनी रखने वाले मनुष्यों से युक्त, जिसके आसपासके राजा दुर्बलहों, कीचड़ कङ्कड़ उसर विषम चोर उचारी (कण्टक), छोटे २ शत्रु (श्रेणि) हिंसक जानवर और घने जंगलोंसे रहित हो, नदी सर आदिके कारण रमणीय, खेती खान लकड़ियां तथा हाथियों के जंगलोंसे युक्त हो, गौओंके लिये हितकारी हो, पुरुषोंके लिये भी जहांका जलवायु अच्छा हो, लुब्धक आदिसे सुरक्षित, गाय भैंस आदि पशु जहां खूब हों, नदी नहरोंसे युक्त, जल थलके बहुमूल्य तरह २ के क्रय्य वस्तुओंसे युक्त, जो दण्ड और करको सहन कर सके, जहांके किसान बड़े मेहनती हों, जहांके मालिक समझदार हों, जहां नीच वर्णके मनुष्य अधिक हों, जहां अनुरक्त और शुद्ध हृदयके पुरुष हों, ऐसा जनपद होना चाहिये। ये सब बातें 'जनपद सम्पत्ति' के नामसे कही जाती हैं ॥ ८ ॥

दुर्गसंपदुक्ता पुरस्तात् ॥ ९ ॥ धर्माधिगतः पूर्वैः स्वयं वा हेमरूप्यप्रायश्चित्रस्थूलरत्नहिरण्यो दीर्घामप्यापदमनायतिं सहेतेति कोशसंपत् ॥ १० ॥

दुर्ग सम्पत पहिले ही दुर्ग विधान प्रकरणमें बतलाई जाचुकी है ॥९॥ कोशसम्पत् बताते हैं:—पहिले राजाओंके द्वारा या स्वयं धर्मपूर्वक सञ्चित किया हुआ धान्यका षड्भाग आदि, अत्यधिक सुवर्ण तथा रजतसे युक्त, बहुमूल्य बड़े २ और नाना प्रकारके रत्नों तथा हिरण्योंसे भराहुआ, जो चिर काल तक रहनेवाली दुर्भिक्ष आदि आपत्ति और धन व्ययको सहन कर सके, ऐसा कोश होना चाहिये। इनसब बातोंका होना 'कोशसम्पत' कहाता है ॥ १० ॥

पितृपैतामहो नित्यो वश्यस्तुष्टभृतपुत्रदारः प्रवासेष्वपि संपादितः सर्वत्राप्रतिहतो दुःखसहो बहुयुद्धः सर्वयुद्धप्रहरणविद्याविशारदः सहवृद्धिक्षयिकत्वादद्वैध्यः क्षत्रप्राय इति दण्डसंपत् ॥११॥

पितृपितामहके समयसे आया हुआ, इसी लिये स्थिरताके साथ सेवा करनेवाला, वशमें रहनेवाला, जिसके पुत्र और स्त्री राजाकी ओरसे भरण पोषण होनेके कारण सन्तुष्ट रहते हैं, चढ़ाईके समयमें भी जो उचित आवश्यक वस्तुओंसे युक्त करदिया जाता है, जो कहीं हार न खाना हो, दुःख सहनेवाला, युद्धकी चतुरताओंसे परिचित, हर तरहके युद्धके हथियारोंके चलानेमें सुचतुर, राजाके अनुकूल, हानि लाभ होनेके कारण भेद रहित, जिसमें क्षत्रियही प्रायः अधिक हों, ऐसा सैन्य होना चाहिये। दण्ड अर्थात् सेनाके अन्दर इन गुणोंका होना ही (दण्डसम्पत् कहाता) है ॥११॥

पितृपैतामहं नित्यं वश्यमद्वैध्यं महल्लघुसमुत्थमिति मित्रसंपत् ॥ १२ ॥

पितृपितामह क्रमसे आये हुए, जो बनावटी न हों, अपने वशमें रहें, जिनके साथ कभी भेद न हो, जो प्रभु मन्त्र तथा उत्साह आदि शक्तियोंसे युक्त हों, अवसर आनेपर झट सहायता करनेके लिये तैयार होजांय, इस प्रकारके मित्र होने चाहियें। मित्रोंमें इन गुणोंका होना ही 'मित्रसम्पत्' कहाता है ॥ १२ ॥

अराजबीजी लुब्धः क्षुद्रपरिषत्को विरक्तप्रकृतिरन्यायवृत्तिरयुक्तो व्यसनी निरुत्साहो दैवप्रमाणो यत्किंचनकार्यगतिरननुबन्धः क्लीबो नित्यापकारी चेत्यमित्रसंपत् ॥ १३ ॥ एवंभूतो हि शत्रुः सुखः समुच्छेत्तुं भवति ॥ १४ ॥

जो शत्रु राजवंशका न हो, लोभी, दुष्ट परिवार वाला, अमात्य आदि प्रकृति जिससे प्रसन्न न रहें, शास्त्रके प्रतिकूल आचरण करने वाला, अयुक्त, व्यसनी, उत्साह रहित, भाग्यको ही सबकुछ समझने वाला, बिना विचारे काम करनेवाला, अशरण, सहाय रहित, नपुंसक-धैर्यहीन, अपने तथा परायेकी सदा बुराई करनेवाला, शत्रु होना चाहिये, इन बातोंका शत्रुओंमें होना ही 'शत्रु सम्पत' कहाता है ॥ १३ ॥ इस प्रकारका शत्रु बड़ी आसानीसे उखाड़ दिया जाता है ॥ १४ ॥

अरिवर्जाः प्रकृतयः सप्तैताः स्वगुणोदयाः ।
उक्ताः प्रत्यङ्गभूतास्ताः प्रकृता राजसंपदः ॥ १५ ॥

शत्रुको छोड़कर (क्योंकि वह राजा होनेसे स्वामिप्रकृतिके अन्दर आजाता है) बाकी ये स्वामी आदि सात प्रकृतियां अपने २ गुणोंसे युक्त कहदी

गई। ये एक दूसरेकी सहायक होनेसे परस्पर अङ्गभूत हुई २ और अपने २ कार्योंमें लगीहुई, 'राजसम्पत्ति' नामसे कही जाती हैं ॥ १५ ॥

संपादयत्यसंपन्नाः प्रकृतीरात्मवान्नृपः ।
विवृद्धाश्चानुरक्ताश्च प्रकृतीर्हन्त्यनात्मवान् ॥ १६ ॥
ततः स दुष्टप्रकृतिश्चातुरन्तो ऽप्यनात्मवान् ।
हन्यते वा प्रकृतिभिर्याति वा द्विषतां वशम् ॥ १७ ॥

आत्मसम्पत्तिसे युक्त राजा, अपने २ गुणोंसे रहित प्रकृतियोंको भी गुणोंसे सम्पन्न बना लेता है। और आत्मसम्पत्तिसे रहित राजा गुणसमृद्ध तथा अनुरक्त प्रकृतियोंको भी नष्ट करदेता है ॥ १६ ॥ इसी कारण वह दुष्ट प्रकृति, आत्मसम्पत्ति रहित राजा चतुस्समुद्र पर्यन्त भूमिका अधिपति होता हुआ भी यातो अमात्य आदि प्रकृतियोंके द्वारा मारदिया जाता है, अथवा शत्रु के वशमें चला जाता है ॥ १७ ॥

आत्मवांस्त्वल्पदेशो ऽपि युक्तः प्रकृतिसंपदा ।
नयज्ञः पृथिवीं कृत्स्नां जयत्येव न हीयते ॥ १८ ॥

इति मण्डलयोनौ षष्ठे ऽधिकरणे प्रकृतिसंपदः प्रथमो ऽध्यायः ॥१॥
आदितः सप्तनवतः ॥९७॥

परन्तु आत्मसम्पन्न नीतिज्ञ राजा थोड़ी भूमिका मालिक होते हुए भी प्रकृति सम्पत्तिसे युक्त हुआ २ सम्पूर्ण पृथिवीको विजय करलेता है, और कभी क्षीणताको प्राप्त नहीं होता ॥ १८ ॥

मण्डलयोनि षष्ठ अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त।

दूसरा अध्याय

९७ प्रकरण

शांति और उद्योग।

शमव्यायामौ योगक्षेमयोर्योनिः ॥१॥ कर्मारम्भाणां योगाराधनो व्यायामः ॥ २ ॥

शान्ति क्षेमका तथा व्यायाम योगका कारण है ॥ १ ॥ अपने देशमें दुर्ग आदि तथा दूसरे देशमें सन्धि आदि कार्योंका, कार्य कुशल पुरुषोंके तथा आवश्यक उपकरणोंके साथ सम्बन्धका जो साधक है वही व्यायाम कहाता है। अर्थात दुर्ग तथा सन्धि आदि कार्योंपर उपकरण सहित कार्यकुशल पुरुषोंको नियुक्त करना ही व्यायाम शब्दका अर्थ है ॥ २ ॥

कर्मफलोपभोगानां क्षेमाराधनः शमः ॥ ३ ॥ शमव्यायाम-योर्योनिः षाड्गुण्यम् ॥ ४ ॥ क्षयस्थानं वृद्धिरित्युदयास्तस्य ॥५॥ मानुषं नयापनयौ दैवमयानयौ ॥ ६ ॥

दुर्ग तथा सन्धि आदि कर्मोंके फलोंके उपभोग करनेमें हर तरहके आनेवाले विघ्नोंके नाशका जो साधन है, वही शम कहाता है ॥ ३ ॥ शम और व्यायामके कारण सन्धि, विग्रह, यान आसन, संश्रय और द्वैधीभाव ये छः गुण हैं ॥ ४ ॥ उन्नति (वृद्धिः), अवनति (क्षयः), या उसी अवस्था में रहना (स्थानं), ये तीन, इन छः गुणोंके फल हैं ॥ ५ ॥ इन फलोंके प्राप्त करानेवाले दो प्रकारके कर्म हैं, एक मानुष और दूसरे दैव। नय और अपनय मानुषकर्म हैं। अय और अनय दैव कर्म हैं ॥ ६ ॥

दैवमानुषं हि कर्म लोकं यापयति ॥७॥ अदृष्टकारितं दैवम् तस्मिन्निष्टेन फलेन योगो ऽयः ॥ ९ ॥ अनिष्टेनानयः ॥ १० ॥

ये दैव और मानुषकर्म ही लोक यात्राको कराते हैं ॥ ७ ॥ धर्म और अधर्मरूप अदृष्टसे कराया हुआ कर्म दैव कहाता है ॥ ८ ॥ उसके होनेपर जब वाञ्छनीय फलके साथ सम्बन्ध होजाय तो वह अय कहा जाता है ॥ ९ ॥ और प्रतिकूल फलके साथ सम्बन्ध होनेपर अनय कहाता है ॥ १० ॥

दृष्टकारितं मानुषम् ॥ ११ ॥ तस्मिन्योगक्षेमनिष्पत्तिर्नयः विपत्तिरपनयः ॥ १३ ॥

प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति या उत्साहशक्ति आदिके कारण, सन्धि विग्रह आदि गुणोंके प्रयोगके द्वारा जो कराया जाय, वह मानुषकर्म कहाता है ॥ ११ ॥ उसके होनेपर यदि योग और क्षेमकी सिद्धि हो जाय तो वह नय कहाता है ॥ १२ ॥ यदि विपत्ति आजाय तो अपनय कहा जाता है ॥१३॥

तच्चिन्त्यम् ॥ १४ ॥ अचिन्त्यं दैवमिति ॥ १५ ॥

योग क्षेमकी सिद्धि और विपत्तिके प्रतीकारके लिए मानुषकर्मका ही यहांपर विचार करना चाहिए ॥ १४ ॥ दैव कर्म अचिन्त्य है, उसपर विचार करना हमारी शक्तिसे बाहर है, क्योंकि वह सर्वथा परोक्ष है ॥ १५ ॥

राजात्मद्रव्यप्रकृतिसंपन्नो नयस्याधिष्ठानं विजिगीषुः ॥१६॥ तस्य समन्ततो मण्डलीभूता भूम्यनन्तरा अरिप्रकृतिः ॥ १७ ॥ तथैव भूम्येकान्तरा मित्रप्रकृतिः ॥१८॥ अरिसंपद्युक्तः सामन्तः शत्रुः ॥ १९ ॥

आत्मसम्पन्न, अमात्य आदि द्रव्यप्रकृति सम्पन्न, और नीतिका आश्रयभूत राजा विजिगीषु कहाता है ॥ १३ ॥ विजिगीषुके राज्यके चारों ओर लगे हुए राज्योंके अधिपति 'अरि प्रकृति' कहाते हैं ॥ १७ ॥ इसी प्रकार एक राज्य से व्यवहित राज्योंके अधिपति 'मित्र प्रकृति' कहाते हैं ॥ १८ ॥ अरिसम्पत्ति (अहाजबाजी इत्यादि) से युक्त सामन्तभी शत्रु कहाता है ॥ १९ ॥

व्यसनी यातव्य अनपाश्रयो दुर्बलाश्रयो वोच्छेदनीयः ॥२०॥ विपर्यये पीडनीयः कर्शनीयो वा ॥ २१ ॥ इत्यरिविशेषाः ॥२२॥

जो शत्रु व्यसनी हो, उसपर आक्रमण करदेना चाहिए। आश्रयहीन अथवा दुर्बल आश्रयवाले शत्रुकाभी उच्छेद करदेना चाहिये ॥ २० ॥ यदि शत्रु आश्रयहीन या दुर्बल आश्रयवाला न हो, तो किसी अपकारके द्वारा उसे पीड़ा पहुंचाये, अथवा उसकी सेना व धनको किन्हीं उपायोंसे कम करनेका यत्न करे ॥ २१ ॥ ये शत्रुओंके चार भेद बतलाये गये ॥ २२ ॥

तस्मान्मित्रमरिमित्रं मित्रमित्रमरिमित्रमित्रं चानन्तर्येण भूमीनां प्रसज्यते पुरस्तात् ॥ २३ ॥

इसके बाद मित्र, अरिमित्र, मित्रमित्र और अरिमित्रमित्र, ये राजा राज्योंके क्रमसे विजिगीषुके सामने आते हैं। अर्थात् जब विजिगीषु शत्रुको विजय करनेके लिये प्रवृत्त होता है तब उसके सामने क्रमसे ये पांच राजा आते हैं—शत्रु, मित्र, अरिमित्र, मित्रमित्र और अरिमित्रमित्र। तात्पर्य यह है कि अपने देशसे लगेहुए देशका राजा शत्रु, उसके आगेका मित्र और उसके आगेका अरिमित्र, इसी प्रकार आगे समझिये ॥ २३ ॥

पश्चात्पार्ष्णिग्राह आक्रन्दः पार्ष्णिग्राहासार आक्रन्दासार इति ॥ २४ ॥ भूम्यनन्तरः प्रकृत्यमित्रः तुल्याभिजन सहजः ॥२५॥ विरुद्धो विरोधयिता वा कृत्रिमः ॥ २६ ॥

तथा विजिगीषुके पीछेके चार पार्ष्णिग्राह आक्रन्द पार्ष्णिग्राहासार और आक्रन्दसार कहाते हैं, इन दोनोंके बीचमें एक विजिगीषु, ये सब मिलाकर दशका 'राजमण्डल' कहाता है ॥ २४ ॥ अपने राज्यके समीपही राज्य करनेवाला स्वाभाविक शत्रु, तथा अपने वंशमें उत्पन्न हुआ दायभागी, ये दोनों 'सहजशत्रु' कहाते हैं ॥ २५ ॥ स्वयं विरुद्ध होजानेवाला, अथवा किसीको विरोधी करदेनेवाला 'कृत्रिमशत्रु' कहलाता है ॥ २६ ॥

भूम्येकान्तरं प्रकृतिमित्रं मातापितृसंबद्धं सहजम् ॥ २७ ॥ धनजीवितहेतोराश्रितं कृत्रिममिति ॥ २८ ॥ अरिविजिगीष्वो-

भूम्यनन्तरः संहतासंहतयोरनुग्रहसमर्थो निग्रहे चासंहतयोर्मध्यमः ॥ २९ ॥

एक राज्यके व्यवधानसे राज्य करनेवाला स्वभावतः मित्र, तथा ममेरा या फुफेरा भाई ये 'सहजमित्र' होते हैं ॥ २७ ॥ धन या जीविकाके लिये जो आश्रय ले, वह 'कृत्रिममित्र' कहाता है ॥ २८ ॥ अरि और विजिगीषु दोनोंके राज्योंसे मिला हुआ, उनके सन्धि और विग्रह करनेपर अनुग्रहमें समर्थ, और केवल विग्रह करनेपर विग्रहमें समर्थ राजा 'मध्यम' कहाता है ॥ २९ ॥

अरिविजिगीषुमध्यानां बहिः प्रकृतिभ्यो बलवत्तरः संहतासंहतानामरिविजिगीषुमध्यमानामनुग्रहे समर्थो निग्रहे चासंहतानामुदासीनः ॥ ३० ॥ इति प्रकृतयः ॥ ३१ ॥

अरि, विजिगीषु और मध्यम इनकी प्रकृतियोंसे बाहर, तथा शक्तिशाली मध्यमसे भी और अधिक बलवान्, अरि विजिगीषु और मध्यमके सन्धि तथा विग्रह होनेपर अनुग्रहमें समर्थ, और विग्रह होनेपर विग्रहमें समर्थ राजा उदासीन कहाता है ॥ ३० ॥ इस प्रकार इन बारह राजप्रकृतियोंका निरूपण किया गया ॥ ३१ ॥

विजिगीषुर्मित्रं मित्रमित्रं वास्य प्रकृतयस्तिस्रः ॥ ३२ ॥ ताः पञ्चभिरमात्यजनपददुर्गकोशदण्डप्रकृतिभिरेकैकशः संयुक्ता मण्डलमष्टादशकं भवति ॥ ३३ ॥

अब चार मण्डलोंका संक्षेपमें निरूपण करते हैं:—विजिगीषु, उसका मित्र और मित्रमित्र ये तीन प्रकृति हैं ॥ ३२ ॥ इनमेंसे एक २ अलहदा २ अमात्य जनपद दुर्ग कोश और दण्ड इन पांच प्रकृतियोंके साथ मिलकर (अर्थात् एक विजिगीषु और उसकी अमात्य आदि पांच प्रकृतियां=६ ये सब मिलकर) अठारह अवयव वाला एक मण्डल बन जाता है । इसे विजिगीषु सम्बन्धी मण्डल कहते हैं ॥ ३३ ॥

अनेन मण्डलपृथक्त्वं व्याख्यातमरिमध्यमोदासीनानाम् ॥ ३४ ॥ एवं चतुर्मण्डलसङ्क्षेपः ॥ ३५ ॥ द्वादश राजप्रकृतयः ॥ ३६ ॥ षष्टिर्द्रव्यप्रकृतयः ॥ ३७ ॥ संक्षेपेण द्विसप्ततिः ॥ ३८ ॥

ठीक इसी प्रकार अरिमण्डल, मध्यममण्डल, और उदासीनमण्डलकी भी पृथक् २ कल्पना करलेनी चाहिये ॥ ३४ ॥ इस प्रकार चार मण्डलोंका संक्षेपमें निरूपण कर दिया गया ॥ ३५ ॥ राज प्रकृति बारह ॥ ३६ ॥ और

साठ अमात्यादि द्रव्य प्रकृति ॥ ३७ ॥ इन सबको मिलाकर संक्षेपसे ७२प्रकृति कहीजाती हैं ॥ ३८ ॥

तासां यथास्वं संपदः शक्तिः सिद्धिश्च ॥ ३९ ॥ बलं शक्तिः ॥ ४० ॥ सुखं सिद्धिः ॥ ४१ ॥ शक्तिस्त्रिविधा ॥ ४२ ॥ ज्ञान-बलं मन्त्रशक्तिः ॥ ४३ ॥ कोशदण्डबलं प्रभुशक्तिः ॥ ४४ ॥ विक्रमबलमुत्साहशक्तिः ॥ ४५ ॥

इनकी सम्पत्ति यथायोग्य पहिले कही जाचुकी है। शक्ति और सिद्धि भी इसप्रकार समझनी चाहिये ॥ ३९ ॥ बल शक्ति है ॥ ४० ॥ और सुखही सिद्धि है ॥ ४१ ॥ शक्ति तीन प्रकारकी होती है ॥ ४२ ॥ ज्ञान बलही मन्त्र शक्ति है, यह शक्तिका एक प्रकार है ॥ ४३ ॥ कोश और दण्ड (सेना) का बल प्रभुशक्ति है, दूसरा प्रकार ॥ ४४ ॥ विक्रमबल उत्साह शक्ति है, तीसरा प्रकार। अर्थात् ज्ञानादिसे योगक्षेमका साधन करनेमें समर्थ पृथक् २ तीन शक्तियां हैं ॥ ४५ ॥

एवं सिद्धिस्त्रिविधैव ॥ ४६ ॥ मन्त्रशक्तिसाध्या मन्त्रसिद्धिः ॥ ४७ ॥ प्रभुशक्तिसाध्या प्रभुसिद्धिः ॥ ४८ ॥ उत्साहशक्ति-साध्या उत्साहसिद्धिरिति ॥ ४९ ॥

इसी तरह सिद्धिभी ३ प्रकारकी है ॥ ४६ ॥ मन्त्रशक्तिसे होनेवाली सिद्धि मन्त्रसिद्धि कहलाती है ॥ ४७ ॥इसी प्रकार प्रभुशक्तिसे होनेवाली सिद्धि को प्रभुसिद्धि ॥ ४८ ॥ और उत्साहशक्तिसे होनेवाली सिद्धिको उत्साहसिद्धि कहते हैं ॥ ४९ ॥

ताभिरभ्युच्चितो ज्यायान्भवति ॥ ५० ॥ अपचितो हीनः ॥ ५१ ॥ तुल्यशक्तिः समः ॥ ५२ ॥ तस्माच्छक्तिं सिद्धिं च घटेतात्मन्यावेशयितुम् ॥ ५३ ॥

इन शक्तियोंसे युक्त हुआ २ राजा बहुत बड़ा या श्रेष्ठ होजाता है ॥ ५० ॥ इन शक्तियोंसे रहित हुआ २ हीन या अधम होजाता है ॥ ५१ ॥ और बराबर शक्ति रखने वाला सम अर्थात मध्यम कहलाता है। ॥ ५२ ॥ इस लिये अपनी शक्ति और सिद्धिको बढ़ानेका सर्वदा पूरा प्रयत्न करे ॥ ५३ ॥

साधारणो वा द्रव्यप्रकृतिष्वानन्तर्येण शौचवशेन वा दूष्या-मित्राभ्यां वापकर्षुं यतेत ॥ ५४ ॥

जो राजा साधारण अर्थात् अपनी शक्ति व सिद्धिको न बढ़ासके, वह

अमात्य आदि द्रव्यप्रकृतियोंमें क्रमसे अथवा सुभीतेके अनुसार शक्ति व सिद्धि को बढावे। और दूष्य तथा शत्रुकी शक्ति व सिद्धिको घटाने या नष्ट करनेका यत्न करे ॥ ५४ ॥

यदि वा पश्येत् ॥ ५५ ॥ अमित्रो मे शक्तियुक्तो वाग्दण्डपारुष्यार्थदूषणैः प्रकृतीरुपहनिष्यति ॥ ५६ ॥ सिद्धियुक्तो वा मृगयाद्यूतमद्यस्त्रीभिः प्रमादं गमिष्यति ॥ ५७ ॥ स विरक्तप्रकृतिरुपक्षीणः प्रमत्तो वा साध्यो मे भविष्यति ॥ ५८ ॥

यदि वह राजा यह देखे कि ॥ ५५ ॥ यह शक्तिशाली मेरा शत्रु, वाक्पारुष्य दण्डपारुष्य और आर्थिकदोष लगाकर अपनी अमात्य आदि द्रव्य प्रकृतियोंको रुष्ट या विरक्त करदेगा ॥ ५६ ॥ अथवा सिद्धियुक्त हुआ २ मृगया द्यूत मद्य और स्त्रियोंमें आसक्त होनेके कारण प्रमादको प्राप्त होजायगा ॥ ५७ ॥ इस प्रकार अमात्य आदिके विरक्त होजानेपर असहाय हुआ २ और मृगया आदिमें आसक्त होनेके कारण प्रमत्त हुआ २ शत्रु अवश्यही मेरे वशमें होजायगा, अर्थात् मैं उसको आसानीसे जीत सकूंगा ॥ ५८ ॥

विग्रहाभियुक्तो वा सर्वसंदोहेनकस्थो दुर्गस्थो वा स्थास्यति ॥ ५९ ॥ स संहितसैन्यो मित्रदुर्गवियुक्तः साध्यो मे भविष्यति ॥ ६० ॥

अथवा जब मैं अपने सम्पूर्ण सेनासमूहको लेकर लड़नेके लिये उसपर चढाई करूंगा, तो वह अपनी शक्तिके गर्वमें किसी एक स्थानमें या दुर्गमेंही अकेला स्थित रहेगा ॥ ५९ ॥ ऐसी हालतमें उसकी सेना घिर जायगी, वह मित्र या दुर्गसे कोई सहायता न लेसकेगा, और फिर मैं उसे आसानीसे जीत सकूंगा ॥ ६० ॥

बलवान्वा राजा परतः शत्रुमुच्छेत्तुकामस्तमुच्छिद्यमानमुच्छिन्द्यादिति बलवता प्रार्थितस्य मे विपन्नकर्मारम्भस्य वा साहाय्यं दास्यति ॥ ६१ ॥ मध्यमलिप्सायां चेति ॥ ६२ ॥ एवमादिषु कारणेष्वमित्रस्यापि शक्तिं सिद्धिं चेच्छेत् ॥ ६३ ॥

अथवा यदि यह ऐसा समझे, कि:—वह बलवान् राजा दूसरे शत्रुका उच्छेद करनेकी अभिलाषा रखता हुआ, उसे उच्छेद करके मेरा उच्छेद नहीं करेगा, अथवा बलवान्के साथ युद्ध करनेके कारण मेरे क्षीणशक्ति होनेपर और मध्यमकी अपेक्षा करनेपर यह अवश्यही मेरी सहायता करेगा ॥ ६१,६२ ॥

तो इस प्रकारके विशेष कारण उपस्थित होनेपर शत्रुकी भी शक्ति और सिद्धिकी कामना करे ॥ ६३ ॥

नेमिमेकान्तरात् राज्ञः कृत्वा चानन्तरानरान् ।
नाभिमात्मानमायच्छेन्नेता प्रकृतिमण्डले ॥ ६४ ॥
मध्ये ऽभ्युपहितः शत्रुर्नेतुर्मित्रस्य चोभयोः ।
उच्छेद्यः पीडनीयो वा बलवानपि जायते ॥ ६५ ॥

इति मण्डलयोनौ षष्ठे ऽधिकरणे शमव्यायामिकं द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥
आदितो ऽष्टनवतिः ॥ ९८ ॥
एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य मण्डलयोनिः
षष्ठमधिकरणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

नेता विजिगीषु, राजमण्डलरूपी चक्रमें एक राज्यसे व्यवहित मित्र राजाओंको नेमि, समीपके राजाओंको अरा, और अपने आपको नाभिके स्थानमें समझे ॥ ६४ ॥ बलवान् भी शत्रु, विजिगीषु और मित्र इन दोनोंके बीचमें आजानेपर, या तो नष्ट करदिया जाता है, अथवा बहुत पीड़ित किया जाता है ॥ ६५ ॥

मण्डलयोनि षष्ठ अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त ।

मण्डलयोनि षष्ठ अधिकरण समाप्त ।
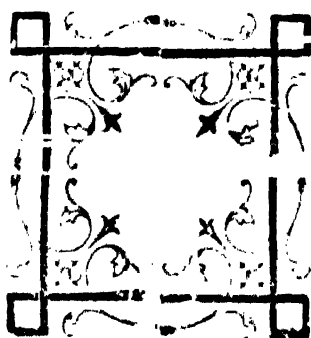
षाड्गुण्य सप्तम अधिकरण ।

पहिला अध्याय ।

९८, ९९ प्रकरण ।

छः गुणोंका उद्देश और क्षय, स्थान तथा वृद्धिका निश्चय

षाड्गुण्यस्य प्रकृतिमण्डलं योनिः ॥ १ ॥ संधिविग्रहासनयानसंश्रयद्वैधीभावाः षाड्गुण्यमित्याचार्याः ॥ २ ॥

स्वामी आदि सात प्रकृति और १२ राजमण्डल, सन्धि आदि छः गुणोंके कारण हैं ॥ १ ॥ आचार्य कहते हैं कि:—सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव ये छः गुण हैं ॥ २ ॥

द्वैगुण्यमिति वातव्याधिः ॥३॥ संधिविग्रहाभ्यां हि षाड्गुण्यं संपद्यत इति ॥ ४ ॥

वातव्याधि (उद्धव) आचार्यका सिद्धान्त है कि गुण दो ही हैं ॥ ३ ॥ सन्धि और विग्रह, शेष चार इन्हीं दोके अवान्तर भेद हैं । आसन और संश्रयका सन्धिमें, यानका विग्रहमें और द्वैधीभावका यथायोग्य दोनोंमें ही अन्तर्भाव होजाता है ॥ ४ ॥

षाड्गुण्यमेवैतदवस्थाभेदादिति कौटल्यः ॥ ५ ॥

सन्धि और विग्रहसे यान आदि चारोंका सर्वथा भेद होनेसे छः ही गुण हैं, यह कौटल्यका अपना मत है ॥ ५ ॥

तत्र पणबन्धः संधिः ॥ ६ ॥ अपकारो विग्रहः ॥ ७ ॥ उपेक्षणमासनम् ॥८॥ अभ्युच्चयो यानम् ॥ ९ ॥ परार्पणं संश्रयः ॥ १० ॥ संधिविग्रहोपादानं द्वैधीभाव इति षड्गुणाः ॥ ११ ॥

इनमेंसे, दो राजाओंका किन्हीं शर्तोंपर मेल होजाना, 'सन्धि' कहाता है ॥ ६ ॥ शत्रुका कोई अपकार करना विग्रह कहा जाता है ॥ ७ ॥ सन्धि आदिका प्रयोग न करके उपेक्षा करदेना आसन कहाता है ॥ ८ ॥ शक्ति आदिका अत्यधिक होजाना ही, यानका हेतु होनेसे यान कहाता है ॥ ९ ॥

दूसरे बलवान् राजाके सामने अपने पुत्र, स्त्री, आत्मा तथा सर्वस्वको अर्पण करदेना संश्रय कहाता है ॥ १० ॥ सन्धि और विग्रह दोनोंका उपयोग करना द्वैधीभाव कहाता है। इस प्रकार ये छः गुण हैं ॥ ११ ॥

परस्माद्धीयमानः संदधीत ॥ १२ ॥ अभ्युच्चीयमानो विगृह्णीयात् ॥१३॥ न मां परो नाहं परमुपहन्तुं शक्त इत्यासीत ॥१४॥

यदि शत्रुसे अपने आपको निर्बल समझे तो सन्धि करलेवे ॥ १२ ॥ यदि शक्ति आदिसे सम्पन्न होनेके कारण अपने आपको बलवान् समझे तो विग्रह करे ॥ १३ ॥ न शत्रु मुझे दबा सकता है, और न मैं ही शत्रुको दबा सकता हूँ, ऐसी अवस्थामें आसन गुणका प्रयोग करे ॥ १४ ॥

गुणातिशययुक्तो यायात् ॥१५॥ शक्तिहीनः संश्रयेत ॥१६॥ सहायसाध्ये कार्ये द्वैधीभावं गच्छेत् ॥ १७ ॥ इति गुणावस्थापनम् ॥ १८ ॥

अभियास्यत्कर्म अधिकरणमें कहे हुए शक्ति देश काल आदि गुणोंके अधिक या ठीक होनेपर यानका प्रयोग करे ॥ १५ ॥ शक्ति रहित हुआ २ राजा संश्रयसे काम निकाले ॥ १६ ॥ किसी कार्यमें सहायताकी अपेक्षा होनेपर द्वैधीभावका प्रयोग करे ॥ १७ ॥ इस प्रकार विषयभेदसे छः गुणोंका यहांतक निरूपण किया गया ॥ १८ ॥

तेषां यस्मिन्वा गुणे स्थितः पश्येत् ॥ १९ ॥ इहस्थः शक्ष्यामि दुर्गसेतुकर्मवणिक्पथशून्यनिवेशखनिद्रव्यहस्तिवनकर्माण्यात्मनः प्रवर्तयितुं परस्य चैतानि कर्माण्युपहन्तुमिति तमातिष्ठेत् ॥ २० ॥

उन गुणोंमेंसे जिस किसी (सन्धि आदि) गुणका आश्रयण करनेपर यह समझे कि:—॥ १९ ॥ मैं इस सन्धि आदि गुणका आश्रय लेता हुआ, अपने दुर्ग, सेतुकर्म, व्यापारीमार्ग, शून्यनिवेश (नई बस्ती बसाना), खान, लकड़ियों तथा हाथियोंके वन आदि कामोंके करनेमें समर्थ होसकूंगा, और शत्रुके दुर्ग आदि कार्योंको नष्ट कर सकूंगा, उसही का अवलम्बन करे ॥२०॥

सा वृद्धिराशुतरा ॥ २१ ॥ मे वृद्धिर्भूयस्तरा वृद्ध्युदयतरा वा भविष्यति विपरीता परस्येति ज्ञात्वा परवृद्धिमुपेक्षेत ॥ २२ ॥

इस प्रकारके गुणका अवलम्बन या अनुष्ठान वृद्धिका हेतु होनेसे वृद्धि कहलाता है ॥ २१ ॥ मेरी वृद्धि बहुत जल्दी होगी, और शत्रुकी देरसे, मेरी

वृद्धि बहुत अधिक होगी और शत्रुकी कम, शत्रुकी और मेरी एकही समयमें बराबर वृद्धि होनेपर भी उसकी ह्रासोन्मुख होगी और मेरी अभ्युदयोन्मुख, ऐसा जब देखे, तो शत्रुकी वृद्धिकी कुछ पर्वाह न करे ॥ २२ ॥

तुल्यकालफलोदयायां वा वृद्धौ संधिमुपेयात् ॥२३॥ यस्मिन्वा गुणे स्थितः स्वकर्मणामुपघातं पश्येन्नेतरस्य तस्मिन्न तिष्ठेत् ॥ २४ ॥ एष क्षयः ॥ २५ ॥

यदि शत्रुकी भी वृद्धि बराबर उतनेही समयमें उदयोन्मुखही होवे, तो उसके साथ सन्धि करलेवे ॥ २३ ॥ जिस गुणके अवलम्बनसे अपने दुर्ग आदि कर्मोंका नाश और शत्रुके कर्मोंका नाश न होना समझे, उस गुणका कदापि आश्रय न ले ॥ २४ ॥ इस प्रकारके गुणका अनुष्ठान क्षयका हेतु होनेसे क्षय कहाता है ॥ २५ ॥

चिरतरेणाल्पतरं वृद्ध्युदयतरं वा क्षेष्ये विपरीतं परं इति ज्ञात्वा क्षयमुपेक्षेत ॥ २६ ॥

मेरा क्षय बहुत दिनोंमें होगा, शत्रुका बहुत जल्दी; मेरा क्षय बहुत थोड़ा होगा शत्रुका बहुत अधिक; मेरा क्षय उदयोन्मुख होगा और शत्रुका क्षयोन्मुख, जब ऐसा समझे, तो अपने क्षयकी कुछ पर्वाह न करे, अर्थात् उस क्षयके प्रतीकारका कोई उपाय न करे ॥ २६ ॥

तुल्यकालफलोदये वा क्षये संधिमुपेयात् ॥२७॥ यस्मिन्वा गुणे स्थितः स्वकर्मवृद्धिं क्षयं वा नाभिपश्येदेतत्स्थानम् ॥ २८ ॥

यदि शत्रुका क्षय भी एकही समयमें बराबर और उदयोन्मुखही हो तो उसके साथ सन्धि करलेवे ॥ २७ ॥ जिस गुणका अवलम्बन करनेपर अपनी वृद्धि और क्षय कुछ भी न देखे, वह समान स्थितिमें रखनेके कारण 'स्थान' कहाता है ॥ २८ ॥

ह्रस्वतरं वृद्ध्युदयतरं वा स्थास्यामि विपरीतं पर इति ज्ञात्वा स्थानमुपेक्षेत ॥ २९ ॥

मेरी ऐसी स्थिति बहुत थोड़े दिनतक रहेगी, शत्रुकी बहुत दिनोंतक, मेरी स्थिति उदयोन्मुख होगी और शत्रुकी क्षयोन्मुख; जब ऐसा समझे तो अपनी उस स्थितिकी पर्वाह न करे, अर्थात् उसके सुधारनेका कोई उपाय न करे ॥ २९ ॥

तुल्यकालफलोदये वा स्थाने संधिमुपेयादित्याचार्याः ॥ ३० ॥

शत्रुका भी स्थान बराबर समयतक होनेवाला और उदयोन्मुखही हो

तो उसके साथ सन्धि करलेनी चाहिये, ऐसा आचार्योंका सिद्धान्त है ॥ ३० ॥

नैतद्विभाषितमिति कौटल्यः ॥३१॥ यदि वा पश्येत् ॥ ३२ ॥ संधौ स्थितो महाफलैः स्वकर्मभिः परकर्माण्युपहनिष्यामि ॥३३॥

परन्तु कौटल्य कहता है कि आचार्योंने यह बहुत साधारण बात बताई ॥ ३१ ॥ कुछ विशेष बात इस तरह समझनी चाहियें, यदि विजिगीषु इस बातको देखे कि:—॥ ३२ ॥ सन्धि करलेनेपर अत्यन्त लाभदायक दुर्ग आदि अपने कर्मोंसे शत्रुके कर्मोंका नाश करदूंगा, अर्थात् अपने देशमें तरह २ का अधिकाधिक माल तयार कराके, उसे शत्रुके देशमें भेजकर वहांके मालकी कीमत गिरादूंगा ॥ ३३ ॥

महाफलानि वा स्वकर्माण्युपभोक्ष्ये परकर्माणि वा ॥ ३४ ॥ संधिविश्वासेन वा योगोपनिषत्प्रणिधिभिः परकर्माण्युपहनिष्यामि ॥ ३५ ॥

अथवा यह समझे कि:—महाफलशाली अपने कर्मोंकी तरह शत्रुके कर्मोंका भी सन्धिके बहाने उपभोग करूंगा ॥ ३४ ॥ अथवा गूढपुरुष और तीक्ष्ण आदि प्रयोगोंके, तथा विष और जलदूषण आदि प्रयोगोंके द्वारा, सन्धि के बहाने शत्रुके कार्योंका नाश करूंगा ॥ ३५ ॥

सुखं वा सानुग्रहपरिहारमाकर्य फललाभभूयस्त्वेन स्वकर्मणा परकर्मयोगावहजनमास्रावयिष्यामि ॥ ३६ ॥

अथवा सन्धिके बहानेसे, शत्रुके कार्यकुशल पुरुषोंको, उनके सुभीते, अन्य प्रकारके उपकार और उनसे कर आदि न लेनेका वचन देकर अपने देशमें खींच लाऊंगा, जिससे मेरे कृष्यादि कार्योंमें सुभीता होनेसे अधिक लाभ होगा ॥ ३६ ॥

बलिनातिमात्रेण वा संहितः परः स्वकर्मोपघातं प्राप्स्यति ॥ ३७ ॥ येन वा विगृहीतो मया संधत्ते तेनास्य विग्रहं दीर्घं करिष्यामि ॥ ३८ ॥

अथवा अत्यधिक बलवान् शत्रुके साथ सन्धि करनेपर शत्रुको बहुत अधिक धन देना पड़ेगा और कोशको क्षीण करनेसे वह अपने कार्योंको क्षीण करलेगा ॥ ३७ ॥ अथवा जिसके साथ विग्रह रखके, यह मुझसे सन्धि करता है। उसके साथ इसका बहुत दिनोंतक विग्रह कराये रक्खूंगा ॥ ३८ ॥

मया वा संहितस्य मद्द्वेषिणो जनपदं पीडयिष्यति ॥३९॥

परोपहतो वास्य जनपदो मामागमिष्यति ॥ ४० ॥ ततः कर्मसु वृद्धिं प्राप्स्यामि ॥ ४१ ॥

अथवा मेरे साथ सन्धि करके, मेरे शत्रुके राष्ट्रको यह अवश्य पीड़ा पहुंचावेगा ॥ ३९ ॥ अथवा दूसरेसे सताया हुआ इसका राष्ट्र, अब सन्धि करलेनेपर मेरेही पास आजावेगा ॥ ४० ॥ इसके बाद मैं अपने दुर्ग आदि कर्मोंमें अत्यधिक वृद्धि करसकूंगा ॥ ४१ ॥

विपन्नकर्मारम्भो वा विषमस्थः परः कर्मसु न मे विक्रमेत ॥ ४२ ॥ परतः प्रवृत्तकर्मारम्भो वा ताभ्यां संहितः कर्मसु वृद्धिं प्राप्स्यामि ॥ ४३ ॥

अथवा दुर्ग आदि कार्योंके नष्ट होजानेपर आपद्ग्रस्त हुआ २ शत्रु मेरे कार्योंपर आक्रमण नहीं करसकेगा ॥ ४२ ॥ अथवा यदि दूसरे शत्रुकी सहायतासे उसने अपना कार्य प्रारम्भ भी किया, तो दोनोंके साथ सन्धि होनेसे मैं अपने कार्योंको अच्छी तरह उन्नत करसकूंगा ॥ ४३ ॥

शत्रुप्रतिबद्धं वा शत्रुणा संधिं कृत्वा मण्डलं भेत्स्यामि ॥४४॥ भिन्नमवाप्स्यामि ॥ ४५ ॥

अथवा शत्रुके साथ मिले हुए मण्डलको, शत्रुसे सन्धि करके दोनोंमें परस्पर भेद डालदूंगा ॥४४॥ और मण्डलसे भिन्न हुए २ शत्रुको अपने वशमें करसकूंगा ॥ ४५ ॥

दण्डानुग्रहेण वा शत्रुमुपगृह्य मण्डललिप्सायां विद्वेषं ग्राहयिष्यामि ॥ ४६ ॥ विद्विष्टं तेनैव घातयिष्यामीति संधिना वृद्धिमातिष्ठेत् ॥ ४७ ॥

अथवा सैनिक सहायता देकर शत्रुको वशमें करके, मण्डलके साथ मिलनेकी इसकी इच्छा होनेपर उलटा द्वेष करादूंगा ॥ ४६ ॥ और द्वेष हो जानेपर मण्डलके द्वाराही इसे मरवादूंगा। इस प्रकारके विषय उपस्थित होने पर सन्धिके द्वारा अपनी उन्नति करे ॥ ४७ ॥

यदि वा पश्येत् ॥ ४८ ॥ आयुधीयप्रायः श्रेणीप्रायो वा मे जनपदः शैलवननदीदुर्गैकद्वारारक्षो वा शक्ष्यति पराभियोगं प्रतिहन्तुमिति ॥ ४९ ॥

अब विग्रहसे किस प्रकार अपनी वृद्धि करे यह बताया जाता है, यदि विजिगीषु समझे कि:—॥ ४८ ॥ मेरे राज्यमें आयुधजीवी क्षत्रिय और खेती

करने करानेवाले पुरुषही अधिक रहते हैं; पहाड़, जङ्गल, नदी और किले बहुत हैं; राज्यमें बाहर आने जानेके लिये मार्ग भी एकही है; इसलिये शत्रुके किये हुए आक्रमणका प्रतीकार, मेरा प्रान्त बहुत अच्छी तरह करसकता है, तो शत्रुके साथ विग्रह करदेवे ॥ ४९ ॥

विषयान्ते दुर्गमविषह्यमपाश्रितो वा शक्ष्यामि परकर्माण्युपहन्तुमिति ॥५०॥ व्यसनपीडोपहतोत्साहो वा परः संप्राप्तकर्मोपघातकाल इति ॥ ५१ ॥ विगृहीतस्यान्यतो वा शक्ष्यामि जनपदमपवाहयितुमिति विग्रहे स्थितो वृद्धिमातिष्ठेत् ॥ ५२ ॥

अथवा राज्यकी सीमापर अति दुर्भेद्य दुर्गका आश्रय लेकर, मैं शत्रुके दुर्ग आदि कार्योंका अच्छी तरह नाश करसकूंगा, ऐसा जब समझे, तो भी विग्रह करदेवे ॥ ५० ॥ अथवा व्यसन और पीड़ाओंसे हतोत्साह हुए २ शत्रुके कर्मोंका अब विनाशकाल प्राप्त होगया है, जब ऐसा समझे तो भी विग्रह करदे ॥ ५१ ॥ अथवा विग्रह किये हुए शत्रुके जनपदको दूसरे किसी रास्तेसे भी पार सकूंगा; जब ऐसा समझे तो भी विग्रह करदे। इस प्रकार इन अवसरोंके आनेपर विग्रहके द्वारा अपनी उन्नति करे ॥ ५२ ॥

यदि वा मन्येत ॥ ५३ ॥ न मे शक्तः परः कर्माण्युपहन्तुम् ॥ ५४ ॥ नाहं तस्य कर्मोपघाती वा ॥ ५५ ॥ व्यसनमस्य श्ववराहयोरिव कलहे वा ॥ ५६ ॥ स्वकर्मानुष्ठानपरो वा वर्धिष्य इत्यासनेन वृद्धिमातिष्ठेत् ॥ ५७ ॥

अब आसनके द्वारा वृद्धि किस प्रकार करनी चाहिये यह बताते हैं, अथवा यदि विजिगीषु यह समझे, कि:—॥ ५३ ॥ शत्रु मेरे दुर्ग आदि कर्मोंका नाश नहीं करसकता ॥ ५४ ॥ और मैं भी उसके कर्मोंका नाश नहीं कर सकता ॥ ५५ ॥ इस समय इसपर विपत्ति आई है, समान शक्तिवाले कुत्ते और सूअरके समान हमारा विग्रह होजानेपर भी ॥५६॥ अपने कर्मोंका अनुष्ठान करता हुआ मैं अपनी वृद्धि करूंगा', इस प्रकार आसनके द्वारा राजा अपनी उन्नति करे ॥ ५७ ॥

यदि वा मन्येत ॥ ५८ ॥ यानसाध्यः कर्मोपघातः शत्रोः प्रतिविहितस्वकर्मारक्षश्चास्मीति यानेन वृद्धिमातिष्ठेत् ॥ ५९ ॥

अथवा यदि राजा यह समझे कि:—॥ ५८ ॥ शत्रुके कर्मोंका नाश यानसेही होसकता है, और मैंने अपने कर्मोंकी रक्षाका प्रबन्ध अच्छी तरह करादिया है, यह समझकर राजा यानके द्वारा अपनी उन्नति करे ॥ ५९ ॥

यदि वा मन्येत ॥ ६० ॥ नास्मि शक्तः परकर्माण्युपहन्तुं स्वकर्मोपघातं वा त्रातुमिति बलवन्तमाश्रितः स्वकर्मानुष्ठानेन क्षयात्स्थानं स्थानाद्वृद्धिं चाकाङ्क्षेत ॥ ६१ ॥

अथवा यदि राजा यह समझे कि:—॥ ६० ॥ मैं शत्रुके दुर्ग आदिके नाश करनेमें सर्वथा असमर्थ हूं और मेरे दुर्ग आदिपर आक्रमण होनेपर मैं उसकी रक्षाभी नहीं करसकता, इसलिये ऐसा समझनेपर बलवान्का आश्रय लेवे, और अपने कर्मोंका अनुष्ठान करता हुआ क्षयसे स्थानकी और स्थानसे वृद्धिकी आकाङ्क्षा करे ॥ ६१ ॥

यदि वा मन्येत ॥ ६२ ॥ संधिनैकतः स्वकर्माणि प्रवर्तयिष्यामि विग्रहेणैकतः परकर्माण्युपहनिष्यामीति द्वैधीभावेन वृद्धिमातिष्ठेत् ॥ ६३ ॥

अथवा यदि राजा यह समझे कि:—॥ ६२ ॥ एक शत्रुके साथ सन्धि करके अपने दुर्ग आदि कार्योंको यथावत् करता रहूंगा, और दूसरेके साथ विग्रह करके उसके कर्मोंका नाश करता रहूंगा, तो द्वैधीभाव गुणका प्रयोग करके अपनी उन्नतिका सम्पादन करे ॥ ६३ ॥

एवं षड्भिर्गुणैरेतैः स्थितः प्रकृतिमण्डले ।
पर्येषेत क्षयात्स्थानं स्थानाद्वृद्धिं च कर्मसु ॥ ६४ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे षाड्गुण्यसमुद्देशः

क्षयस्थानवृद्धिनिश्चयश्च प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥

आदितो नवनवतिः ॥ ९९ ॥

इस प्रकार अमात्य आदि प्रकृतिमण्डलमें स्थित हुआ २ राजा, सन्धि आदि छः गुणोंके प्रयोगोंसे, कर्मोंके सम्बन्धमें क्षयावस्थाको पार करके स्थान और स्थानावस्थाको पार करके वृद्धिकी आकाङ्क्षा करे ॥ ६४ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

१०७ प्रकरण

संश्रय वृत्ति।

किसी प्रबल राजाके आश्रयसे अपनी शक्तिको पूरा करना 'संश्रय-वृत्ति' कहाता है। पहिले अध्यायमें यह बताया गया है कि एक ही गुणसे किस प्रकार अपनी उन्नति करनी चाहिये। अब सबसे पहिले संश्रयवृत्तिके प्रसङ्गक-दो गुणोंसे एक समान ही लाभ होनेपर उन दोनोंमें से किस गुणका प्रयोग करना चाहिये, वह बताया जायगा।

संधिविग्रहयोस्तुल्यायां वृद्धौ संधिमुपेयात् ॥ १ ॥ विग्रहे हि क्षयव्ययप्रवासप्रत्यवाया भवन्ति ॥ २ ॥

सन्धि और विग्रह दोनोंसे जब एकही समान लाभ समझे, तो सन्धि का ही अवलम्बन करे ॥ १ ॥ क्योंकि विग्रह करनेपर प्राणियोंका नाश, धान्य आदिका व्यय, दूसरेके देशमें जाना, और शत्रुके द्वारा विष आदिके प्रयोग से कष्ट इत्यादि अनर्थ अवश्यम्भावी हैं ॥ २ ॥

तेनासनयानयोरासनं व्याख्यातम् ॥ ३ ॥ द्वैधीभावसंश्रययोर्द्वैधीभावं गच्छेत् ॥ ४ ॥ द्वैधीभूतो हि स्वकर्मप्रधान आत्मन एवोपकरोति ॥ ५ ॥ संश्रितस्तु परस्योपकरोति नात्मनः ॥ ६ ॥

इसी तरह आसन और यानसे समान लाभ देखनेपर आसनका ही आश्रय लेवे ॥ ३ ॥ द्वैधीभाव और संश्रयसे समान लाभ होनेपर द्वैधीभावका ग्रहण करे ॥ ४ ॥ क्योंकि द्वैधीभावका आश्रय लेनेपर राजा, मुख्यतया अपने ही कार्योंको करता हुआ, अपना ही उपकार करता है ॥ ५ ॥ परन्तु संश्रयका सहारा लेनेपर, अपने आश्रयभूत राजाकाही अधिक उपकार करता है, अपना नहीं ॥ ६ ॥

यद्बलः सामन्तस्तद्विशिष्टबलमाश्रयेत ॥ ७ ॥ तद्विशिष्टबलाभावे तमेवाश्रितः कोशदण्डभूमीनामन्यतमेनास्योपकर्तुमदृष्टः प्रयतेत ॥ ८ ॥ महादोषो हि विशिष्टबलसमागमो राज्ञामन्यत्रारिविगृहीतात् ॥ ९ ॥

सामन्त (अपना प्रतिद्वन्द्वी राजा) जितना बलवान् हो, उससेभी अत्यधिक बलशाली राजाका आश्रय लेवे ॥ ७ ॥ यदि इतना बलशाली कोई राजा

न मिले, तो अपने इस अभियोक्ता (प्रतिद्वन्द्वी) सामन्तका ही आश्रय लेलेवे और धन, सेना, तथा भूमि आदिमें से किसी चीजको देकर, दूर रहता हुआ ही इसके उपकार करनेका प्रयत्न करे, समीप न आवे ॥ ८ ॥ क्योंकि राजाओंका बलवान् के साथ समागम करना, कभी २ वध बन्धन आदि महान अनर्थोंका उत्पादक हो जाता है। परन्तु यदि वह बलवान्, शत्रुसे विग्रह किया हुआ हो, अर्थात् शत्रुने उससे विग्रह कर रक्खा हो, तो उसके साथ मिलनेमें कोई हानि नहीं ॥ ९ ॥

अशक्यो दण्डोपनतवद्वर्तेत ॥ १० ॥ यदा चास्य प्राणहरं व्याधिमन्तःकोपं शत्रुवृद्धिं मित्रव्यसनमुपस्थितं वा तन्निमित्तमात्मनश्च वृद्धिं पश्येत्तदा संभाव्य व्याधिधर्मकार्यापदेशेनापयायात् ॥ ११ ॥

यदि बलवान् राजाको, बिना उसके पास जाये प्रसन्न करना अशक्य हो, तो सेनार्पण द्वारा उसके साथ सन्धि करके नम्रता पूर्वक वहीं पर रहे ॥ १० ॥ और जब देखे कि इस (बलवान् आश्रयभूत राजा) को कोई प्राणान्त कारी व्याधि हुई है, अथवा पुरोहित आदि कुपित होगये हैं, अथवा शत्रु बहुत बढ़गये हैं, या मित्रके ऊपर कोई विपत्ति आखड़ी हुई है; और इन्हीं कारणोंसे अपनी उन्नति देखे, तब किसी सम्भावित व्याधि या धर्मकार्यका बहाना करके वहांसे अपने देशको चला जावे ॥ ११ ॥

स्वविषयस्थो वा नोपगच्छेत् ॥१२॥ आसन्नो वास्य च्छिद्रेषु प्रहरेत् ॥ १३ ॥ बलीयसोर्वा मध्यगतस्त्राणसमर्थमाश्रयेत् ॥१४॥

यदि बलवान्की उपर्युक्त हालतोंमें, यह अपनेही देशमें होवे, तो बुलाये जानेपर भी किसी व्याधि या धर्म कार्यका बहाना करके उसके पास न जावे ॥ १२ ॥ अथवा उसके समीप रहता हुआ ही, उसकी निर्बलताओंपर बराबर आघात करता रहे ॥ १३ ॥ अथवा दो बलवान् राजाओंके बीचमें रहता हुआ अपनी (आश्रितकी) रक्षा करनेमें समर्थ राजाकाही आश्रय लेवे ॥ १४ ॥

यस्य वान्तर्धिः स्यात् ॥१५॥ उभौ वा कपालसंश्रयस्तिष्ठेत् ॥ १६ ॥

अथवा जो अपने समीप होवे उसीका आश्रय लेवे ॥ १५ ॥ दोनोंके समीप होनेपर, कपाल सन्धिके द्वारा दोनोंका ही आश्रय लेवे, दोनोंसे जाकर अलहदा २ यह कहे कि आपही मेरे रक्षक हैं, यदि आप मेरी रक्षा न

करेंगे, तो दूसरा राजा मुझे उखाड़ कर फेंक देगा, इसका नामही कपाल सन्धि है ॥ १६ ॥

मूलहरामितरस्येतरमपादिशेत् ॥ १७ ॥ भेदमुभयोर्वा परस्परापदेशं प्रयुञ्जीत ॥ १८ ॥ भिन्नयोरुपांशुदण्डम् ॥ १९ ॥

दोनोंको एक दूसरेका अपकार करनेवाला बतलाता रहे ॥ १७ ॥ एक दूसरेके द्रव्यका परस्पर नाश करने वाला बताकर, उन दोनोंमें भेद डलवा देवे ॥ १८ ॥ इस प्रकार दोनोंमें भेद पड़जाने पर, उपांशुदण्डका प्रयोग करे, अर्थात् दोनोंको छिपकर किन्हीं उपायोंसे मरवा देवे ॥ १९ ॥

पार्श्वस्थो वा बलस्थयोरासन्नभयात्प्रतिकुर्वीत ॥ २० ॥ दुर्गापाश्रयो वा द्वैधीभूतस्तिष्ठेत् ॥ २१ ॥ संधिविग्रहक्रमहेतुभिर्वा चेष्टेत ॥ २२ ॥

अथवा उन दोनों बलवान् राजाओंमें से जिसकी ओरसे शीघ्र भयकी आशङ्का हो, उसके समीपही रहता हुआ भावी आपत्तिका प्रतीकार करे ॥२०॥ अथवा दुर्गका आश्रय लेकर द्वैधीभावका प्रयोग करे, अर्थात् एकके साथ सन्धिकर दूसरेके साथ विग्रह करदेवे ॥ २१ ॥ अथवा ७, १, ३३में, तथा ७, १, ४९ में कहे हुए सन्धि और विग्रहके निमित्तोंको लेकर कार्य करनेमें प्रवृत्त हो जावे ॥ २२ ॥

दूष्यामित्राटविकानुभयोरुपगृह्णीयात् ॥ २३ ॥ एतयोरन्यतरं गच्छंस्तैरेवान्यतरस्य व्यसने प्रहरेत् ॥ २४ ॥ द्वाभ्यामुपहितो वा मण्डलापाश्रयस्तिष्ठेत् ॥ २५ ॥

दोनोंही प्रतिद्वन्द्वियोंके दूष्य, शत्रु और आटविकोंको दान सत्कार आदिसे अपने वशमें करलेवे ॥ २३ ॥ दोनोंमें से किसी एक प्रतिद्वन्द्वीका मुकाबला करता हुआ जिस विषयमें वह निर्बल हो वहींपर दूष्य आदिके द्वारा ही प्रहार करवावे ॥ २४ ॥ यदि दोनोंही इसको पीड़ा पहुंचावें, तो मण्डलका आश्रय लेकर रहे ॥ २५ ॥

मध्यममुदासीनं वा संश्रयेत ॥ २६ ॥ तेन सहैकमुपगृह्येतरमुच्छिन्द्यादुभौ वा ॥ २७ ॥ द्वाभ्यामुच्छिन्नो वा मध्यमोदासीनयोस्तत्पक्षीयाणां वा राज्ञां न्यायवृत्तिमाश्रयेत ॥ २८ ॥

मध्यम अथवा उदासीनका आश्रय लेवे ॥ २६ ॥ मध्यम अथवा उदासीनके साथ रहता हुआ, एक (उभयोंका=प्रति- द्वन्द्वी) को दान आदिसे वशमें करके दूसरेका उच्छेद करदेवे, यदि होसके तो दोनोंका ही उच्छेद

करदेवे ॥ २७ ॥ अथवा दोनोंसे पीड़ित किया हुआ राजा मध्यम वा उदासीन, या उनके पक्षके अन्य राजाओंमें से जो न्यायवृत्ति अर्थात् न्यायानुकूल व्यवहार करनेवाला हो उसका आश्रय लेवे ॥ २८ ॥

तुल्यानां वा यस्य प्रकृतयः सुख्येयुरेनं यत्रस्थो वा शक्नुयादात्मानमुद्धर्तुं यत्र पूर्वपुरुषोचिता गतिरासन्नः संबन्धो वा मित्राणि भूयांसीति शक्तिमन्ति वा भवेयुः ॥ २९ ॥

यदि उनमेंसे कई राजा न्यायशील होवें, तो जिसकी अमात्य आदि प्रकृतियां अपने अनुकूल या प्रीति करनेवाली हों, उसीका आश्रय लेवे। अथवा जिसके साथ रहता हुआ अपना उद्धार कर सके, अथवा जिसके साथ अपने पूर्व पुरुषाओंका विवाह आदि अन्तरङ्ग सम्बन्ध रहा हो, अथवा जहां बहुतसे शक्तिशाली मित्र हों, उसका आश्रय लेवे ॥ २९ ॥

प्रियो यस्य भवेद्यो वा प्रियोऽस्य कतरस्तयोः।
प्रियो यस्य स तं गच्छेदित्याश्रयगतिः परा ॥ ३० ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे संश्रयवृत्तिः द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

आदितः शततमः ॥१००॥

जो जिसका प्रिय है, उन दोनोंमेंसे कौन किसका प्रिय नहीं होता ? अर्थात् दोनोंही दोनोंके प्रिय होते हैं। इसलिये जो जिसका प्रिय हो, वह उसीका आश्रय लेवे, यही आश्रयस्थान सबसे श्रेष्ठ बताया गया है ॥ ३० ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त।

तीसरा अध्याय

१०१, १०२ प्रकरण

सम, हीन तथा अधिकके गुणोंकी स्थापना और हीनके साथ सन्धि।

विजिगीषुः शक्त्यपेक्षः षाड्गुण्यमुपयुञ्जीत ॥१॥ समज्यायोभ्यां संधीयेत ॥ २ ॥ हीनेन विगृह्णीयात् ॥ ३ ॥

विजिगीषु अपनी शक्तिके अनुसार सन्धि आदि छः गुणोंका यथोचित प्रयोग करे ॥ १ ॥ बराबर तथा अधिक शक्ति वालेके साथ सन्धि करलेवे ॥२॥ हीन शक्तिके साथ विग्रहका प्रयोग करे ॥ ३ ॥

विगृहीतो हि ज्यायसा हस्तिना पादयुद्धमिवाभ्युपैति ॥४॥ समेन चामं पात्रमामेनाहतमिवोभयतः क्षयं करोति ॥ ५ ॥

क्योंकि अधिक शक्तिवाले के साथ विग्रह करनेपर हीनशक्ति राजाकी वही दुर्दशा होती है, जो कि गजारोहियोंके साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए २ पदातियों की ॥ ४ ॥ और समानके साथ विग्रह करनेपर, जैसे कच्चा घड़ा कच्चे घड़ेके साथ भिड़कर दोनों नष्ट होजाते हैं, इसी प्रकार उन दोनोंका ही नाश होजाता है ॥ ५ ॥

कुम्भेनेवाश्मा हीनेनैकान्तसिद्धिमवाप्नोति ॥ ६ ॥ ज्यायांश्चेन्न संधिमिच्छेद्दण्डोपनतवृत्तमाबलीयसं वा योगमातिष्ठेत् ॥७॥

हीनके साथ विग्रह करनेपर अवश्य ही सिद्धि होती है, जैसे घड़ेके साथ पत्थरकी चोट लगनेपर घड़ा अवश्य ही टूटफूट जाता है ॥ ६ ॥ अधिक शक्तिवाला राजा यदि सन्धि न करना चाहे, तो दण्डोपनतवृत्त (७ अधि०, १५ अध्याय) प्रकरणमें बतलाये हुए उपायों और आबलीयस (१२ अधि०) अधिकरणमें कहे हुए प्रयोगोंका अवलम्बन करे ॥ ७ ॥

समश्चेन्न संधिमिच्छेद्यावन्मात्रमपकुर्यात्तावन्मात्रमस्य प्रत्यपकुर्यात् ॥ ८ ॥ तेजो हि संधानकारणम् ॥ ९ ॥ नातप्तं लोहं लोहेन संधत्त इति ॥ १० ॥

बराबर शक्तिवाला राजा यदि सन्धि न करना चाहे, तो जितनी हानि वह पहुंचावे, उतनी ही उसकोभी हानि पहुंचा देवे ॥ ८ ॥ क्योंकि तेज ही सन्धिका कारण होता है ॥ ९ ॥ बिना तपा हुआ लोहा, दूसरे लोहेके साथ कभी नहीं मिल सकता ॥ १० ॥

हीनश्चेत्सर्वत्रानुप्रणतस्तिष्ठेत्संधिमुपेयात् ॥ ११ ॥ आरण्योऽग्निरिव हि दुःखामर्षजं तेजो विक्रमयति मण्डलस्य चानुग्राह्यो भवति ॥ १२ ॥

यदि हीनशक्ति राजा प्रत्येक विषयमें नम्रही बना रहे, तो उसके साथ सन्धि करलेवे ॥ ११ ॥ क्योंकि दुःख और अमर्षसे उत्पन्न हुआ २ तेज जंगल में लगी हुई अग्निके समान होता है; सन्धि न करनेपर सम्भवतः वह तेज हीनशक्ति राजाको विजिगीषुके विषयमें विक्रमशाली बना देता है । तो फिर वह हीन शक्तिराजा मण्डलका कृपापात्र बनजाता है ॥ १२ ॥

संहितश्चेत्परप्रकृतयो लुब्धक्षीणापचारिताः प्रत्यादानभयाद्वा

नोपगच्छन्तीति पश्येद्धीनो ऽपि विगृह्णीयात् ॥ १३ ॥ विगृहीतश्चेत्प्रकृतयो लुब्धक्षीणापचारिता विग्रहोद्विग्ना वा मां नोपगच्छन्तीति पश्येज्ज्यायानपि संधीयेत ॥ १४ ॥

हीनशक्ति विजिगीषु सन्धि करलेनेपर भी यदि यह देखे, कि शत्रुके अमात्य आदि प्रकृति जन लोभ, नीचता, या असन्तोषके कारण अथवा बदला लियेजानेके भयसे मुझे नहीं अपनाते, तो विग्रह करदेवे ॥ १३ ॥ अधिक शक्तिशाली विजिगीषु, हीन शक्ति राजाके साथ विग्रह करनेपर भी यह देखे कि—अमात्य आदि प्रकृति लोभी क्षीण तथा चरित्रहीन होनेके कारण, अथवा विग्रहसे उद्विग्न होनेके कारण मुझमे अनुराग नहीं रखते, तो सन्धि करलेवे ॥१४॥

विग्रहोद्वेगं वा शमयेत् ॥ १५ ॥ व्यसनयौगपद्येपि गुरुव्यसनो ऽस्मि लघुव्यसनः परः सुखेन प्रतिकृत्य व्यसनमात्मनो ऽभियुञ्ज्यादिति पश्येज्ज्यायानपि संधीयेत ॥ १६ ॥

अथवा विग्रहके कारण उत्पन्न हुई २ उद्विग्नताको शान्त करे ॥ १५ ॥ अथवा जब यह देखे, कि—मेरे ऊपरभी आपत्ति आई हुई है, और शत्रुके ऊपरभी, पर मेरी आपत्ति बहुत बड़ी तथा शत्रुकी बहुत थोड़ी है, वह आनन्द के साथ अपनी आपत्तिका प्रतीकार करके मेरा मुकाबला करनेके लिये तैयार होजावेगा; तो शक्तिहीनके साथभी सन्धि करलेवे ॥ १६ ॥

संधिविग्रहयोश्चेत्परकर्शनमात्मोपचयं वा नाभिपश्येज्ज्यायानप्यासीत ॥ १७ ॥ परव्यसनमप्रतिकार्यं चेत्पश्येद्धीनो ऽप्यभियायात् ॥ १८ ॥

यदि अधिक शक्तिशाली भी विजिगीषु यह समझे, कि—सन्धि या विग्रह करनेपर शत्रुके ह्रास और मेरी वृद्धिकी सम्भावना नहीं है, तो इनदोनों को छोड़कर आसनका अवलम्बन करे ॥ १७ ॥ यदि हीनशक्ति विजिगीषु भी यह देखे, कि—शत्रु अपनी आपत्तिका प्रतिकार नहीं करसकता, तो निःसन्देह उसपर चढ़ाई करदेवे ॥ १८ ॥

अप्रतिकार्यासन्नव्यसनो वा ज्यायानपि संश्रयेत ॥ १९ ॥ संधिनैकतो विग्रहेणैकतश्चेत्कार्यसिद्धिं पश्येज्ज्यायानपि द्वैधीभूतस्तिष्ठेदिति ॥ २० ॥

अप्रतीकार्य (प्रतीकार न की जासकनेवाली) आपत्तिको समीप आया देख अधिक शक्तिभी विजिगीषु, संश्रयका अवलम्बन करे ॥ १९ ॥ यदि एकके

साथ सन्धिके द्वारा, और एकके साथ विग्रहके द्वाराही अपनी कार्यसिद्धि समझे तो अधिक शक्तिमी विजिगीषु द्वैधीभावका अवलम्बन करे ॥ २० ॥

एवं समस्य षाड्गुण्योपयोगः ॥ २१ ॥ तत्र तु प्रतिविशेषः ॥ २२ ॥

इस प्रकार सम, हीन तथा अधिक शक्ति सबकेही प्रति सन्धि आदि छः गुणोंके उपयोगका निरूपण कर दिया ॥ २१ ॥ अब उनमेंसे हीनके प्रति कुछ विशेषतायें बतलाई जावेंगी ॥ २२ ॥

प्रवृत्तचक्रेणाक्रान्तो राज्ञा बलवताबलः ।
संधिनोपनमेत्तूर्णं कोशदण्डात्मभूमिभिः ॥ २३ ॥

सेना आदिके द्वारा बलवान् राजासे दबाया हुआ निर्बल राजा, जल्दी ही धन सेना आत्मा और भूमि समर्पण करके बलवान्से सन्धि करलेवे, अर्थात् उसके सामने झुक जाय ॥ २३ ॥

स्वयं संख्यातदण्डेन दण्डस्य विभवेन वा ।
उपस्थातव्यमित्येष संधिरामिषो मतः ॥ २४ ॥

विजेता जितना कहे उतनीही सेना लेकर और अपनी शक्तिके अनुसार धन लेकर जो विजित स्वयं शत्रुके पास जाकरही उसकी सेवा करता है, इस प्रकारकी सन्धि 'आमिषसन्धि' कहाती है, क्योंकि यह सन्धि अपने आपको भोग्यरूपसे उपस्थित किये जानेपरही होती है ॥ २४ ॥

सेनापतिकुमाराभ्यामुपस्थातव्यमित्ययम् ।
पुरुषान्तरसंधिः स्यान्नात्मनेत्यात्मरक्षणः ॥ २५ ॥

जो सन्धि, सेनापति और राजकुमारको शत्रुकी सेवामें उपस्थित करके कीजाती है, उसे 'पुरुषान्तरसन्धि' कहते हैं, क्योंकि वह सेनापति और राजकुमार रूप पुरुषविशेषको अर्पण करनेपरही होती है। इसीका नाम 'आत्मरक्षण सन्धि' भी है, क्योंकि इसमें स्वयं राजाकी रक्षा होजाती है, उसे शत्रुके दरबारमें नहीं जाना पड़ता ॥ २५ ॥

एकेनान्यत्र यातव्यं स्वयं दण्डेन वेत्ययम् ।
अदृष्टपुरुषः संधिर्दण्डमुख्यात्मरक्षणः ॥ २६ ॥

किसी दूसरे स्थानपर शत्रुके कार्यको सिद्ध करनेके लिये, मैं स्वयं अकेला ही जाऊंगा, अथवा मेरी सेनाही जायगी, इसप्रकार शर्त करके जो सन्धि कीजाती है, उसे 'अदृष्टपुरुष सन्धि' कहते हैं। क्योंकि इस सन्धिके होनेपर शत्रुकी सेवामें किसी पुरुषको उपस्थित नहीं होना पड़ता। इसी संधि

को 'दण्डमुख्यात्मरक्षण सन्धि' भी कहते हैं, क्योंकि इसमें सेनाके मुख्य व्यक्ति और स्वयं राजाकी रक्षा होजाती है ॥ २६ ॥

मुख्यस्त्रीबन्धनं कुर्यात्पूर्वयोः पश्चिमे त्वरिम् ।
साधयेद्गूढमित्येते दण्डोपनतसंधयः ॥ २७ ॥

उपर्युक्त तीन प्रकारकी सन्धियोंमेंसे पहिली आत्मामिष और आत्मरक्षण इन दो सन्धियोंमें, विश्वासके लिये अधिकशक्ति राजा मुख्य राजव्यक्तियोंकी कन्याओंका विवाह सम्बन्ध करे । तथा तीसरी अदृष्टपुरुष सन्धिमें शत्रुको विष आदि गूढ़ प्रयोगोंके द्वारा वशमें करे, ये तीनों सन्धि 'दण्डोपनतसन्धि' कहाती हैं ॥ २७ ॥

कोशदानेन शेषाणां प्रकृतीनां विमोक्षणम् ।
परिक्रयो भवेत्संधिः स एव च यथासुखम् ॥ २८ ॥

बलवान शत्रुसे युद्धमें गिरफ्तार किये हुए अमात्य आदि प्रकृतियोंको, जिस सन्धिमें धन देकर छुड़ाया जावे, उसे 'परिक्रयसन्धि' कहते हैं । और यही परिक्रयसन्धि, जब कि सुखपूर्वक ॥ २८ ॥

स्कन्धोपनेयो बहुधा ज्ञेयः संधिरुपग्रहः ।
निरुद्धो देशकालाभ्यां अत्ययः स्यादुपग्रहः ॥ २९ ॥

किश्तवार थोड़ा २ धन बहुत वारमें देना किया जावे, तो 'उपग्राहसन्धि' कहाती है । तथा जब देयधनके विषयमें यह नियम करदिया जावे कि अमुक स्थानमें अमुकसमयमें इतना धन अवश्य देना होगा, तब इसी 'उपग्रह' को 'अत्यय' कहा जाता है ॥ २९ ॥

विषह्यदानादायत्यां क्षमः स्त्रीबन्धनादपि ।
सुवर्णसंधिर्विश्वासादेकीभावगतो भवेत् ॥ ३० ॥

सुखपूर्वक नियत समयमें नियमित धनराशि दे देनेके कारण यह सन्धि, कन्यादान सन्धिसे भी कहीं प्रशस्त है, यह भविष्यमें अच्छा फल लानेवाला होता है, तपे हुए सुवर्णके आपसमें मिल जानेके समान, यह सन्धि शत्रु और विजिगीषुको आपसमें मिलानेका भी साधन हो जाती है, इसीलिये इसको 'सुवर्णसन्धि' भी कहते हैं ॥ ३० ॥

विपरीतः कपालः स्यादत्यादानाभिभाषितः ।
पूर्वयोः प्रणयेत्कुप्यं हस्त्यश्वं वागुरान्वितम् ॥ ३१ ॥

इस उपर्युक्त सन्धिसे विपरीत सन्धि, अर्थात् जिसमें सम्पूर्ण धनराशि तत्क्षण अदा करदेनी पड़े, 'कपालसन्धि' कहलाती है । दुष्टसन्धि होनेसे

इसको शास्त्रकारोंने उपादेय नहीं कहा है। परिक्रय आदि चार सन्धियोंमेंसे पहिली दो सन्धियोंमें, कपड़े कवच आदि तथा लोहे तांबेकी असार वस्तुओं को शत्रुको देवे, अथवा शत्रुकी इच्छा होनेपर बूढ़े हाथी घोड़ोंको देदेवे, परन्तु उनको ऐसा विष खिलादेवे, जिससे वे दो तीन महीनेतक मरजांय ॥ ३१ ॥

तृतीये प्रणयेदर्थं कथयन्कर्मणां क्षयम् ।
तिष्ठेच्चतुर्थ इत्येते कोशोपनतसंधयः ॥ ३२ ॥

और तीसरी सन्धिमें देयधनका कुछ हिस्सा देकर कह देवे कि आज-कल मेरे काम बहुत बिगड़ रहे हैं, इतनेपरही सन्तोष कीजिये। और चौथी कपालसन्धिमें मध्यम या उदासीनका आश्रय लेकर 'देता हूं, देता हूं' यह कहता हुआ समय टालता जावे। ये चारों सन्धियां कोश दिये जानेके कारण 'कोशोपनतसन्धि' कहाती हैं ॥ ३२ ॥

भूम्येकदेशत्यागेन शेषप्रकृतिरक्षणम् ।
आदिष्टसंधिस्तत्रेष्टो गूढस्तेनोपघातिनः ॥ ३३ ॥

देश और प्रकृतिकी रक्षाके लिये, भूमिका कुछ हिस्सा शत्रुको देकर जो सन्धिकी जाती है, उसे 'आदिष्टसन्धि' कहते हैं। दी हुई भूमिमें गूढ़पुरुष और चोरोंके द्वारा उपघात या उपद्रव करानेके लिये (जिससे कि फिर यह भूमि मेरेही पास आजाय) जो विजिगीषु समर्थ हो, उसके लिये यह सन्धि बड़े कामकी है ॥ ३३ ॥

भूमीनामात्तसाराणां मूलवर्जं प्रणामनम् ।
उच्छिन्नसंधिस्तत्रेष्टः परव्यसनकाङ्क्षिणः ॥ ३४ ॥

राजधानी और किलोंको छोड़कर, कर वसूलकी हुई अथवा सब सार पदार्थ ली हुई भूमियोंको शत्रुको देकर जो सन्धिकी जावे उसे 'उच्छिन्नसन्धि' कहते हैं। शत्रुके ऊपर व्यसन आनेपर फिर मैं अपनी भूमिको वापस लेलूंगा, इस प्रकारकी प्रतीक्षा करनेवाले राजाके लिये यह सन्धि अच्छी होती है॥३४॥

फलदानेन भूमीनां मोक्षणं स्यादवक्रयः ।
फलातिभुक्तो भूमिभ्यः संधिः स परिदूषणः ॥ ३५ ॥

भूमिमें उत्पन्न हुई वस्तुको देकर, जिस सन्धिमें भूमिको छुड़ा लिया जावे, उसे 'अवक्रयसन्धि' कहते हैं। परन्तु जिस सन्धिमें भूमिसे उत्पन्न हुई वस्तुओंके अतिरिक्त और भी कुछ दिया जावे, उसे 'परदूषणसन्धि' कहते हैं ॥ ३५ ॥

कुर्यादवेक्षणं पूर्वौ पश्चिमौ त्वाबलीयसम् ।
आदाय फलमित्येते देशोपनतसंधयः ॥ ३६ ॥

इन चारों सन्धियोंमेंसे पहिली दो आदिष्ट और उच्छिन्न सन्धियोंमें शत्रुकी विपत्तिकी प्रतीक्षा करे । तथा पिछली दो सन्धियोंमें भूमिसे उत्पन्न वस्तुओंको लेकर, आबलीयस (१२ अधि.) अधिकरणमें कहे हुए उपायोंके द्वारा शत्रुका प्रतीकार करे । इस प्रकार भूमि देनेके कारण ये चारों सन्धियां 'देशोपनतसन्धि' या 'भूम्युपनतसन्धि' कहाती हैं ॥ ३६ ॥

स्वकार्याणां वशेनैते देशे काले च भाषिताः ।
आबलीयसिकाः कार्यास्त्रिविधा हीनसंधयः ॥ ३७ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे समहीनज्यायसां गुणाभिनिवेशो हीनसंधयः तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥ आदित एकशतः ॥ १०१ ॥

इस प्रकार निरूपण की हुई इन तीन प्रकारकी (दण्डोपनत, कोशोपनत, देशोपनत) हीन सन्धियोंको निर्बल राजा अपने कार्य, देश और समयके अनुसार उपयोगमें लावे ॥ ३७ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरण में तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय ।

१०३-१०७ प्रकरण

विशेष आसन और यान ।

संधिविग्रहयोरासनं यानं च व्याख्यातम् ॥ १ ॥ स्थानमासनमुपेक्षणं चेत्यासनपर्यायाः ॥ २ ॥ विशेषस्तु ॥ ३ ॥ गुणैकदेशे स्थानम् ॥ ४ ॥

सन्धि और विग्रहमें ही आसन तथा यानको पूर्वाचार्योंने कहा है ॥ १ ॥ स्थान, आसन और उपेक्षण ये आसनके पर्यायवाची शब्द हैं ॥ २ ॥ परन्तु जो इनमें विशेषता है, उसे अब बताते हैं ॥ ३ ॥ आसनरूप गुणके एकदेशमें स्थानशब्द प्रयुक्त होता है । इसका तात्पर्य यह है कि:—शत्रुके बराबर शक्ति का होनाही आसन है, जब उसका एकदेश=शक्तिकी अल्पता हो, अर्थात् जिस अवस्थामें शत्रुके द्वारा कोई अपकार किये जानेपर भी उसका बदला न लिया जासके, ऐसी अल्पशक्तिकी अवस्थामें आसनके लिये 'स्थान' शब्दका प्रयोग होता है ॥ ४ ॥

स्ववृद्धिप्राप्त्यर्थमासनम् ॥ ५ ॥ उपायानामप्रयोग उपेक्षणमिति ॥ ६ ॥ संधानकामयोररिविजिगीष्वोरुपहन्तुमशक्तयोर्विगृह्यासनं संधाय वा ॥ ७ ॥

अपनी वृद्धिके लिये जब इस गुणका अवलम्बन किया जाय, तो इसे 'आसन' कहते हैं॥५॥ उपायोंका प्रयोग न करना अथवा थोड़ा करना 'उपेक्षण' कहाता है॥६॥ सन्धिकी इच्छा करनेवाला शत्रु और विजिगीषु, जबकि आपसमें एक दूसरेका कोई अपकार न कर सकते हों तो (अधिकशक्ति होनेपर) विग्रह करके आसनका अवलम्बन करें, अथवा (अल्पशक्ति होनेपर) सन्धि करकेही करें ॥ ७ ॥

यदा वा पश्येत्स्वदण्डैर्मित्राटवीदण्डैर्वा समं ज्यायांसं वा कर्शयितुमुत्सहे इति तदा कृतबाह्याभ्यन्तरकृत्यो विगृह्यासीत ॥८॥

अथवा जब विजिगीषु देखे, कि अपनी सेना और मित्र तथा आटविक की सेनाओंके द्वारा मैं बराबर या अधिक शक्तिवाले शत्रुको दबा सकता हूं, तो किले और बाहर जनपदके सब कृत्योंको ठीक २ कराकर विग्रह करकेही आसनका अवलम्बन करे ॥ ८ ॥

यदा वा पश्येदुत्साहयुक्ता मे प्रकृतयः संहता विवृद्धाः स्वकर्मण्यव्याहताश्चरिष्यन्ति परस्य वा कर्माण्युपहनिष्यन्तीति तदा विगृह्यासीत ॥ ९ ॥

अथवा जब देखे कि—मेरी अमात्य आदि प्रकृतियां उत्साहसे भरी हुई हैं, एक सलाहसे काम करनेवाली तथा उन्नत हैं, अपने दुर्ग आदि कार्यों को बिना किसी विरोधके पूर्णरूपसे करेंगी और शत्रुके कर्मोंका उपहनन करेंगी, तब ऐसी अवस्थामें भी विग्रह करकेही आसनका अवलम्बन करे ॥९॥

यदा वा पश्येत्परस्यापचरिताः क्षीणा लुब्धाः स्वचक्रस्तेनाटवीव्यथिता वा प्रकृतयः स्वयमुपजापेन वा मामेष्यन्तीति ॥१०॥

अथवा जब देखे कि:—शत्रुके अमात्य आदि प्रकृतिजन, राजासे तिरस्कृत, दुर्भिक्ष आदिके कारण क्षीण और लुब्ध हुए २, तथा अपनीही सेना, चोर और आटविकोंसे सताये हुए हैं, इसलिये अपनेही आप, अथवा मेरे द्वारा प्रयुक्त किये गये भेदके उपायोंसे वे मेरेही पास आजावेंगे ॥ १० ॥

संपन्ना मे वार्ता विपन्ना परस्य तस्य प्रकृतयो दुर्भिक्षोपहता मामेष्यन्ति ॥ ११ विपन्ना मे वार्ता संपन्ना परस्य ॥ १२ ॥ तं

मे प्रकृतयो न गमिष्यन्ति विगृह्य चास्य धान्यपशुहिरण्यान्याहरिष्यामि ॥ १३ ॥

मेरी वार्ता (कृषि वाणिज्य आदि) बनी हुई है और शत्रुकी बिगड़ गई है, उसके अमात्य आदि प्रकृतिजन दुर्भिक्षसे पीड़ित हुए २ मेरेही पास आवेंगे ॥ ११ ॥ शत्रुकी वार्ता बनी हुई है और मेरी बिगड़ गई है; फिरभी— ॥ १२ ॥ शत्रुके पास मेरे अमात्य आदि प्रकृतिजन नहीं जावेंगे, विग्रह करके मैं शत्रुके धान्य, पशु और हिरण्य आदिको छीन सकूंगा ॥ १३ ॥

स्वपण्योपघातीनि वा परपण्यानि निवर्तयिष्यामि ॥ १४ ॥ परवणिक्पथाद्वा सारवन्ति मामेष्यन्ति विगृहीते नेतरम् ॥ १५ ॥ दूष्यामित्राटवीनिग्रहं वा विगृहीतो न करिष्यति ॥ १६ ॥

परदेससे आया हुआ माल मेरे देशके विक्रेय मालको हानि पहुंचाता है, इसलिये बाहरसे आनेवाले मालको रोकदूंगा ॥ १४ ॥ अथवा शत्रुके व्यापारी मार्गोंसे सारवान् वस्तु (हाथी, घोड़े, हाथीदांत आदि) मेरे पास आजावेगी, विग्रह करनेपर शत्रुके पास न जासकेगी ॥ १५ ॥ अथवा इसके (शत्रुके) साथ विग्रह करनेपर, यह (शत्रु) अपने दूष्य, शत्रु और आटविकोंको वशमें नहीं करसकेगा ॥ १६ ॥

तैरेव वा विग्रहं प्राप्स्यति ॥ १७ ॥ मित्रं मे मित्रभाव्यभिप्रयातो बह्वल्पकालं तनुक्षयव्ययमर्थं प्राप्स्यति ॥ १८ ॥

अथवा दूष्य, शत्रु और आटविकोंके साथही इसे विग्रह करना पड़ेगा ॥ १७ ॥ अथवा मेरे मित्रभावि (देखो ७ अधि. ९ अध्या. ५५ सूत्र) मित्रपर हमला करके, यह (शत्रु) बहुत थोड़े समयमें, थोड़ीसी सेना और धन व्यय करकेही महान अर्थको प्राप्त करेगा, मैं इसके कार्यमें रुकावट डालूंगा ॥ १८ ॥

गुणवतीमादेयां वा भूमिं सर्वसंदोहेन वा मामनादृत्य प्रयातुकामः कथं न यायात् ॥ १९ ॥ इति परवृद्धिप्रतिघातार्थं प्रतापार्थं च विगृह्यासीत ॥ २० ॥ तमेव हि प्रत्यावृत्तो ग्रसत इत्याचार्याः ॥ २१ ॥

अथवा गुणवती अत्यन्त सुख देनेवाली उपादेय भूमिको लेनेके लिये, प्रयाण (आक्रमण) करनेकी इच्छा रखनेवाला यह शत्रु मेरा अनादर करकेही, कहीं अपनी सम्पूर्ण सेनाको लेकर चल न दे ॥ १९ ॥ इत्यादि अवस्थाओंके देखे जानेपर विजिगीषु, शत्रुकी उन्नतिका विघात करनेके लिये और अपने प्रताप

का विस्तार करनेके लिये विग्रह करकेही आसनका अवलम्बन करे ॥ २० ॥ आक्रमणकारी शत्रु, विजिगीषुके द्वारा उसके आक्रमणमें विघ्न कियेजानेपर कहीं कुपित हुआ २ इसीके ऊपर आक्रमण कर इसका उच्छेद करदे, तो अनर्थ ही होगा, इसलिये ऐसी अवस्थामें विग्रह करके आसनका अवलम्बन न करे यह प्राचीन अनेक आचार्योंका मत है ॥ २१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २२ ॥ कर्शनमात्रमस्य कुर्याद्व्यसनिनः ॥ २३ ॥ परवृद्ध्या तु वृद्धः समुच्छेदनम् ॥ २४ ॥

किन्तु कौटल्य इस बातको नहीं मानता ॥ २२ ॥ वह कहता है कि कुपित हुआ २ शत्रु, व्यसन रहित विजिगीषुको उखाड़ नहीं सकता, किन्तु थोड़ा बहुत कष्ट पहुंचा सकता है ॥ २३ ॥ परन्तु यदि विजिगीषु उसके आक्रमणमें विघ्न न डाले, तो वह निर्विघ्न अपने शत्रुको जीतकर और अधिक बलवान् होकर, फिर विजिगीषुका अवश्य ही उच्छेद कर सकता है ॥ २४ ॥

एवं परस्य यातव्योऽस्मै माहात्म्यमविनष्टः प्रयच्छेत् ॥ २५ ॥ तस्मात्सर्वसंदोहप्रकृतो विगृह्यासीत ॥ २६ ॥

इस प्रकार विग्रह करके आसनका अवलम्बन करनेपर तो, सुरक्षित हुआ २, शत्रुका यातव्य (यातव्य उस राजाको कहते हैं-जिसपर आक्रमण किया जाय), अपनी रक्षा करनेवाले विजिगीषुको अवश्यही सहायता पहुंचावेगा ॥ २५ ॥ इसलिये सम्पूर्ण सैन्यशक्ति को लेकर प्रयाण करनेवाले शत्रुके साथ अवश्यही विग्रह करके आसनका अवलम्बन करे ॥ २६ ॥

विगृह्यासनहेतु प्रातिलोम्ये संधायासीत ॥ २७ ॥ विगृह्यासनहेतुभिरभ्युच्चितः सर्वसंदोहवर्जं विगृह्य यायात् ॥ २८ ॥

विग्रह करके आसनके जो हेतु बतलाये गये हैं, यदि उनसे विपरीत देखे, तो सन्धि करकेही आसनका अवलम्बन करे ॥ २७ ॥ विग्रहके अनन्तर आसनके हेतुओंसे शक्तिका उपचय करके, शत्रुके साथ विग्रहकर यानका अवलम्बन करे। परन्तु जो शत्रु अपनी सम्पूर्ण सेनाको लेकर किसीपर आक्रमणकर रहा हो, उसकेप्रति यानका अवलम्बन न करे ॥ २८ ॥

यदा वा पश्येद्व्यसनी परः प्रकृतिव्यसनं वास्य शेषप्रकृतिभिरप्रतिकार्यं स्वचक्रपीडिता विरक्ता वास्य प्रकृतयः कर्शिता निरुत्साहाः परस्पराद्वा भिन्नाः शक्या लोभयितुमग्न्युदकव्याधिमरकदुर्भिक्षनिमित्तं क्षीणयुग्यपुरुषनिचयरक्षाविधानः पर इति तदा विगृह्य यायात् ॥ २९ ॥

अथवा जब देखे कि शत्रु व्यसनी होगया है, या इसके अमात्य आदि प्रकृतियोंका व्यसन, शेष प्रकृतियोंके द्वारा नहीं हटाया जासकता, अपनी सेनाओंसे पीड़ित (सताई हुई) प्रजा, राजाके प्रति विरक्त हो गई हैं, इसीलिए उत्साह हीन हैं, आपसमें मिलकर नहीं रह सकतीं, इनको लोभ दिया जासकता है; और शत्रु, अग्नि जल, व्याधि, संक्रामकरोग, तथा दुर्भिक्ष आदि उपद्रवोंके कारण, अपने वाहन, कर्मचारी पुरुष, और कोशकी रक्षा न कर सकनेसे क्षीण होचुका है, तो उसके साथ विग्रह करके यानका अवलम्बन करे ॥ २९ ॥

यदा वा पश्येन्मित्रमाक्रन्दश्च मे शूरवृद्धानुरक्तप्रकृतिर्विपरीतप्रकृतिः परः ॥ ३० ॥ पार्ष्णिग्राहश्चासारश्च ॥ ३१ ॥ शक्ष्यामि मित्रेणासारमाक्रन्देन पार्ष्णिग्राहं वा विगृह्य यातुमिति तदा विगृह्य यायात् ॥ ३२ ॥

अथवा जब देखे, कि—मेरे आगेका मित्रराजा और मेरे पीछेका मित्र राजा, दोनोंही शूर, अनुभवी एवं अनुरक्त अमात्योंसे युक्त हैं, और शत्रु इनसे विपरीत अमात्योंसे युक्त है, तथा ॥ ३० ॥ इसी प्रकार पार्ष्णिग्राह और आसार भी ॥ ३१ ॥ इसलिये मित्रके साथ आसारका, और आक्रन्दके साथ पार्ष्णिग्राह का विग्रह कराके मैं शत्रुके ऊपर आक्रमण कर सकूंगा इत्यादि, तो विग्रह करके यानका अवलम्बन करे ॥ ३२ ॥

यदा वा फलमेकहार्यमल्पकालं पश्येत्तदा पार्ष्णिग्राहासाराभ्यां विगृह्य यायात् ॥ ३३ ॥ विपर्यये संधाय यायात् ॥ ३४ ॥

अथवा जब किसी फलको अपने अकेले हीके द्वारा थोड़ेही समयमें सिद्ध होजाने वाला देखे, तो पार्ष्णिग्राह और आसारके साथभी विग्रह करके यातव्यके प्रति यानकरे ॥ ३३ ॥ यदि फल अकेलेहीके द्वारा थोड़े समयमें सिद्ध होनेवाला न दीखे, तो सन्धि करके यानका अवलम्बन करे ॥ ३४ ॥

यदा वा पश्येन्न शक्यमेकेन यातुमवश्यं च यातव्यमिति तदा समहीनज्यायोभिः सामवायिकैः संभूय यायादेकत्र निर्दिष्टेनांशेनानेकत्रानिर्दिष्टेनांशेन ॥ ३५ ॥

अथवा जब देखे, कि—मैं अकेला यान नहीं कर सकता, पर यान करना अवश्य चाहिये, तो उस समय समशक्ति हीनशक्ति तथा अधिकशक्ति इकट्ठे हुए २ राजाओंके साथ मिलकर यानका अवलम्बन करे। यदि एकही

देशपर धावा करना हो तो हिस्सेका निर्देश करके, और अधिक देशोंपर धावा करना हो तो हिस्सेका निर्देश किये बिनाही यानका आरम्भ करे ॥ ३५ ॥

तेषामसमवाये दण्डमन्यतमः सन्निविष्टांशेन याचेत ॥ ३६ ॥ संभूयाभिगमनेन वा निर्विश्येत ॥ ३७ ॥ ध्रुवे लाभे निर्दिष्टेनांशेनाध्रुवे लाभांशेन ॥ ३८ ॥

यदि समशक्ति आदि राजाओंमें से कोई राजा साथ चलना स्वीकार न करे तो उसको कुछ हिस्सा देना कहकर उससे सेना मांगे ॥ ३६ ॥ अथवा यह कहे कि यदि इस समय साथ चलकर तुम मेरी सहायता करोगे, तो मैं भी अवसर आनेपर साथ चलकरही तुम्हारी सहायता करूंगा ॥ ३७ ॥ यदि आक्रमण करनेपर भूमि मिले तो उसहीमेंसे निर्दिष्ट अंशदे, यदि अन्य सामान मिले तो उसमेंसे लाभके अनुसार हिस्सा देदेवे ॥ ३८ ॥

अंशो दण्डसमः पूर्वः प्रयाससम उत्तमः ।
विलोपो वा यथालाभं प्रक्षेपसम एव वा ॥ ३९ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे विगृह्यासनं संधायासनं विगृह्ययानं संधाययानं संभूयप्रयाणं चतुर्थो ऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदितो त्रिशतः ॥ १०२ ॥

मिलकर शत्रुको जीत लेनेपर वहांसे प्राप्त धनका विभाग इस प्रकार करना चाहिये:—सेनाओंकी न्यूनता या अधिकताके अनुसार राजाओंको धन दियेजावे, यह प्रथम पक्ष है । जिसने जितनी मेहनतकी है उसहीके अनुसार उसे धन दियाजावे, यह उत्तम पक्ष समझा जाता है । लूटमें जो जिसके पल्ले पड़जाय वह उसीका धन रहे, यहभी एक पक्ष है । अथवा आक्रमणके समयमें जितना जिसका धन व्यय हुआ हो, उसहीके अनुसार उसे हिस्सा दिया जाय ॥ ३९ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवा अध्याय

१०८—११० प्रकरण

यान विषयक विचार, प्रकृतियोंके क्षय, लोभ तथा विरागके हेतु, और विजिगीषुके अनुगामियोंका विचार

तुल्यसामन्तव्यसने यातव्यममित्रं वेत्यमित्रमभियायात् ॥१॥

तत्सिद्धौ यातव्यम् ॥ २ ॥ अमित्रसिद्धौ हि यातव्यः साहाय्यं दद्यान्नामित्रो यातव्यसिद्धौ ॥ ३ ॥

यातव्य और शत्रुके ऊपर सामन्तादि जनित तुल्य व्यसन होनेपर, पहिले शत्रुके प्रति ही प्रयाण करे ॥ १ ॥ उसके वशमें होजानेपर फिर यातव्य पर आक्रमण करे ॥ २ ॥ शत्रुके वशमें कर लेनेपर यातव्य अपना (विजिगीषुका) सहायक हो सकता है, परन्तु यातव्यके वशमें करलेने पर भी शत्रु कभी सहायक नहीं हो सकता, क्योंकि वह नित्यही अपकार करनेवाला होता है ॥ ३ ॥

गुरुव्यसनं यातव्यं लघुव्यसनममित्रं वेति ॥ ४ ॥ गुरुव्यसनं सौकर्यतो यायादित्याचार्याः ॥ ५ ॥

अधिक व्यसनमें फंसे हुए यातव्यपर पहिले चढ़ाई की जाय, या थोड़ेसे व्यसनमें फंसे हुए शत्रुपर ? ॥ ॥ ४ ॥ अधिक व्यसनी यातव्यपर ही पहिले आक्रमण किया जाय, क्योंकि उसका जीत लेना बहुत सुगम है, ऐसा आचार्योंका मत है ॥ ५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६ ॥ लघुव्यसनममित्रं यायात् ॥ ७ ॥ लघ्वपि हि व्यसनमभियुक्तस्य कृच्छ्रं भवति ॥ ८ ॥

परन्तु कौटल्य इस बातको नहीं मानता ॥ ६ ॥ वह कहता है कि पहिले शत्रुपर ही आक्रमण किया जाय, चाहे उसपर थोड़ी ही विपत्ति हो ॥ ७ ॥ क्योंकि आक्रमण किए जानेपर छोटेसे व्यसनका भी प्रतीकार करना कठिन हो जाता है ॥ ८ ॥

सत्यं गुर्वपि गुरुतरं भवति ॥ ९ ॥ अनभियुक्तस्तु लघुव्यसनः सुखेन व्यसनं प्रतिकृत्यामित्रो यातव्यमभिसरेत् ॥ १० ॥ पार्ष्णिं गृह्णीयात् ॥ ११ ॥

यद्यपि यातव्यका गुरु व्यसन, चढ़ाई कर देनेपर और भी गुरुतर हो जायगा, और उसका जीतना अत्यन्त सरल हो जायगा ॥ ९ ॥ तथापि पहिले लघु-व्यसन शत्रुपरही चढ़ाई करे, क्योंकि उसपर चढ़ाई न करनेपर, वह अपने छोटेसे व्यसनका सरलतासे प्रतीकार करके यातव्यकी सहायताके लिए तैयार हो जायगा ॥ १० ॥ या पार्ष्णिग्राह (युद्धके समय पीछेसे आक्रमण कर देने वाला) बन जायगा ॥ ११ ॥

यातव्ययौगपद्ये गुरुव्यसनं न्यायवृत्तिं लघुव्यसनमन्यायवृत्तिं विरक्तप्रकृतिं वेति ॥ १२ ॥ विरक्तप्रकृतिं यायात् ॥ १३ ॥

गुरु-व्यसन (जिसपर भारी विपत्ति आई हुई हो, और प्रजाका न्याय पूर्वक पालन करनेवाला यातव्य एक, लघु-व्यसन (जिसपर थोड़ीसी आपत्ति हो) और अन्याय-पूर्वक प्रजाका पालन करनेवाला यातव्य दूसरा, जिससे अमात्य आदि प्रकृति विरक्त हों ऐसा यातव्य तीसरा, इस प्रकार युगपत् प्राप्त इन तीनों यातव्योंमेंसे, सबसे प्रथम विरक्तप्रकृति यातव्यपरही आक्रमण किया जाय ॥ १२, १३ ॥

गुरुव्यसनं न्यायवृत्तिमभियुक्तं प्रकृतयोऽनुगृह्णन्ति ॥ १४ ॥ लघुव्यसनमन्यायवृत्तिमुपेक्षन्ते ॥ १५ ॥

गुरु-व्यसन, पर न्यायवृत्ति यातव्यपर आक्रमण किये जानेपर उसके अमात्य आदि प्रकृतिजन प्राणपणसे उसकी सहायता करते हैं ॥ १४ ॥ लघु-व्यसन अन्यायवृत्ति यातव्यपर आक्रमण किये जानेपर उसके अमात्य आदि प्रकृतिजन उपेक्षावृत्तिसे रहते हैं, अर्थात् न उसकी सहायता करते हैं, और न विरोध करते हैं ॥ १५ ॥

विरक्ता बलवन्तमप्युच्छिन्दन्ति ॥१६॥ तस्माद्विरक्तप्रकृतिमेव यायात् ॥१७॥ क्षीणलुब्धप्रकृतिमपचरितप्रकृतिं वेति ॥१८॥

परन्तु विरक्त हुए २ अमात्य आदि बलवान् राजाकाभी उच्छेद करदेते हैं ॥ १६ ॥ इसलिये विरक्तप्रकृति यातव्यपरही सबसे प्रथम आक्रमण किया जाय ॥ १७ ॥ दुर्भिक्ष आदि विपत्तियोंसे पीड़ित और लोभी अमात्य आदिसे युक्त यातव्यपर पहिले हमला करे, या तिरस्कृत अमात्य आदिसे युक्त यातव्यपर? ॥ १८ ॥

क्षीणलुब्धप्रकृतिं यायात् ॥ १९ ॥ क्षीणलुब्धा हि प्रकृतयः सुखेनोपजापं पीडां वोपगच्छन्ति ॥ २० ॥ नापचरिताः प्रधानावग्रहसाध्या इत्याचार्याः ॥ २१ ॥

प्रथम क्षीण और लोभी अमात्य आदिसे युक्त यातव्यपरही आक्रमण करे ॥ १९ ॥ क्योंकि पीड़ित और लोभी अमात्य वर्ग सुगमतासे बहकाये और सताये जासकते हैं ॥ २० ॥ परन्तु तिरस्कृत अमात्य आदिका बहकाना या सताना कठिन है, क्योंकि वे अपनी किसी बातको प्रधान पुरुषके स्वीकार करलेनेपरही फिर उसके वशीभूत होसकते हैं, यह आचार्योंका मत है ॥ २१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २२ ॥ क्षीणलुब्धा हि प्रकृतयो भर्तरि स्निग्धा भर्तृहिते तिष्ठन्ति ॥ २३ ॥

परन्तु कौटल्य इस बातको नहीं मानता ॥ २२ ॥ क्योंकि वह कहना

है, कि—पीड़ित लोभी अमात्य आदि प्रकृतिजन, अपने मालिक में बड़ा स्नेह रखते हैं, और उसके हितके लिये हरघड़ी तयार होसकते हैं ॥ २३ ॥

उपजापं वा विसंवादयन्ति ॥२४॥ अनुरागे सार्वगुण्यमिति ॥ २५ ॥ तस्मादपचरितप्रकृतिमेव यायात् ॥ २६ ॥

यहभी सम्भव है कि वे बहकाने में न आवें ॥ २४ ॥ वे इस बातको समझते हों कि अपने मालिकमें अनुराग रखनाही सब गुणोंका मूल है ॥२५॥ इसलिये तिरस्कृतप्रकृति (जिस यातव्य राजाने अपने अमात्य आदिका अनादर किया हुआहो) यातव्यपरही प्रथम आक्रमण कियाजाय ॥ २६ ॥

बलवन्तमन्यायवृत्तिं दुर्बलं वा न्यायवृत्तिमिति ॥ २७ ॥ बलवन्तमन्यायवृत्तिं यायात् ॥ २८ ॥ बलवन्तमन्यायवृत्तिमभियुक्तं प्रकृतयो नानुगृह्णन्ति निष्पातयन्त्यमित्रं वास्य भजन्ते ॥२९॥

अन्यायवृत्ति (अन्यायपूर्वक प्रजाका पालन करने वाले) बलवान् यातव्य पर पहिले आक्रमण कियाजाय, या न्यायवृत्ति दुर्बल यातव्यपर ? ॥ २७ ॥ पहिले अन्यायवृत्ति बलवान् यातव्य राजापरही आक्रमण करे ॥ २८ ॥ क्योंकि बलवान् भी अन्यायवृत्ति यातव्यपर आक्रमण कियेजानेपर उसके अमात्य आदि प्रकृतिजन उसकी सहायता नहीं करते, प्रत्युत दुर्ग आदिसे उसे निकाल देते हैं, अथवा इसके शत्रुके साथ जाकर मिल जाते हैं, इसे छोड़कर उसका आश्रय लेलेते हैं ॥ २९ ॥

दुर्बलं तु न्यायवृत्तिमभियुक्तं प्रकृतयः परिगृह्णन्त्यनुनिष्पतन्ति वा ॥ ३० ॥

परन्तु दुर्बलभी न्यायवृत्ति यातव्यके ऊपर हमला कियेजानेपर उसके अमात्य आदि प्रकृतिजन प्राणपणसे उसकी सहायता करते हैं, और उसके दुर्ग आदिसे बाहर निकल भागनेपरभी बराबर उसके अनुयायी बने रहते हैं ॥३०॥

अवक्षेपेण हि सतामसतां प्रग्रहेण च ।
अभूतानां च हिंसानामधर्म्याणां प्रवर्तनैः ॥ ३१ ॥
उचितानां चरित्राणां धर्मिष्ठानां निवर्तनैः ।
अधर्मस्य प्रसङ्गेन धर्मस्यावग्रहेण च ॥ ३२ ॥

सज्जन व्यक्तियोंका तिरस्कार और दुर्जनोंपर अनुग्रह करनेसे, अनुचित अधर्मयुक्त हिंसाओं का आरम्भ करनेसे ॥ ३१ ॥ धर्मात्माओंके उचित आचरणोंके छोड़ने, अधर्ममें आसक्त रहने और धर्मको छोड़ देनेसे ॥ ३२ ॥

अकार्याणां च करणैः कार्याणां च प्रणाशनैः ।
अप्रदानैश्च देयानामदेयानां च साधनैः ॥ ३३ ॥
अदण्डनैश्च दण्ड्यानामदण्ड्यानां च दण्डनैः ।
अग्राह्याणामुपग्राहैर्ग्राह्याणां चानभिग्रहैः ॥ ३४ ॥

अनुचित कार्योंके करने तथा उचित कार्योंके बिगाड़नेसे, सुपात्रोंमें दान नदेने और कुपात्रोंको हरतरह सहायता करनेसे ॥ ३३ ॥ अपराधी व्यक्तियोंको दण्ड न देने और सर्वथा निरपराध व्यक्तियोंको कठोर दण्ड देनेसे, चोर आदि त्याज्य पुरुषोंको सदा पास रखने और खान्दानी आये हुए सभ्य नागारिक पुरुषोंको दूर हटाने से ॥ ३४ ॥

अनर्थ्यानां च करणैरर्थ्यानां च विघातनैः ।
अरक्षणैश्च चोरेभ्यः स्वयं च परिमोषणैः ॥ ३५ ॥
पातैः पुरुषकाराणां कर्मणां गुणदूषणैः ।
उपघातैः प्रधानानां मान्यानां चावमाननैः ॥ ३६ ॥

अनर्थकारी कार्योंके करने और सुफलोत्पादक कार्योंके न करनेसे, चोरोंसे प्रजाकी रक्षा न करने और स्वयं चोरी करनेसे ॥ ३५ ॥ पुरुषार्थी व्यक्तियोंके छोड़ने और यथास्थान उचित रीतिपर प्रयुक्त किये गये सन्धि आदि गुणोंकी निन्दा करनेसे, अध्यक्ष आदि प्रधान पुरुषोंपर दोषारोपण करके उन्हें नीच काममें लगाने और माननीय आचार्य पुरोहित आदि व्यक्तियोंका तिरस्कार करनेसे ॥ ३६ ॥

विरोधनैश्च वृद्धानां वैषम्येणानृतेन च ।
कृतस्याप्रतिकारेण स्थितस्याकरणेन च ॥ ३७ ॥
राज्ञः प्रमादालस्याभ्यां योगक्षेमवधेन च ।
प्रकृतीनां क्षयो लोभो वैराग्यं चोपजायते ॥ ३८ ॥

किसीके विषयमें किसी दूसरेसे अनुचित ऊंचनीच या झूंठ कहकर वृद्ध पुरुषोंमें परस्पर विरोध करानेसे, किसीसे किये हुए उपकारको न मानने और स्थित अर्थात् नित्य कर्मोंके न करनेसे ॥ ३७ ॥ तथा राजाके प्रमाद और आलस्यके कारण, योग (किसी वस्तुकी प्राप्ति) तथा क्षेम (प्राप्त वस्तुकी रक्षा) का नाश होनेसे अमात्य आदि प्रकृतियोंका क्षय, उनमें लोभ, और राजाके प्रति वैराग्य उत्पन्न होजाता है ॥ ३८ ॥

क्षीणाः प्रकृतयो लोभं लुब्धा यान्ति विरागताम् ।

विरक्ता यान्त्यमित्रं वा भर्तारं घ्नन्ति वा स्वयम् ॥३९॥

क्षीण हुए २ अमात्य आदि प्रकृतिजन लोभग्रस्त होजाते हैं, लोभी होकर राजाकी ओरसे विरक्त होजाते हैं, और विरक्त होनेपर शत्रुसे जा मिलते हैं। अथवा अपने आपही अपने मालिकका हनन कर डालते हैं ॥ ३९ ॥

तस्मात्प्रकृतीनां क्षयलोभविरागकाराणानि नोत्पादयेत् ॥ ४० ॥ उत्पन्नानि वा सद्यः प्रतिकुर्वीत ॥ ४१ ॥

इसलिये राजाका कर्त्तव्य है कि वह अमात्य आदि प्रकृतियोंके क्षय, लोभ तथा विरागके कारणोंको उत्पन्न न होने दे ॥ ४० ॥ यदि वे उत्पन्न हो भी जांय, तो उनका तत्काल प्रतीकार करदिया जावे ॥ ४१ ॥

क्षीणा लुब्धा विरक्ता वा प्रकृतय इति ॥ ४२ ॥ क्षीणाः पीडनोच्छेदनभयात्सद्यः संधिं युद्धं निष्पतनं वा रोचयन्ते ॥४३॥

क्षीण, लुब्ध और विरक्त इन तीन प्रकारकी प्रकृतियोंमेंसे पूर्वकी अपेक्षा उत्तरको गुरु समझना चाहिए ॥ ४२ ॥ क्षीण हुए २ अमात्य आदि प्रकृतिजन पीडा और उच्छेदके भयसे, जल्दी ही सन्धि, युद्ध या दुर्ग आदि छोड़ जाना स्वीकार कर लेते हैं ॥ ४३ ॥

लुब्धा लोभेनासंतुष्टाः परोपजापं लिप्सन्ते ॥ ४४ ॥ विरक्ताः पराभियोगमभ्युत्तिष्ठन्ते ॥ ४५ ॥

लुब्ध अमात्यादि, लोभके कारण सन्तुष्ट न होनेसे, शत्रुके द्वारा प्रयुक्त हुए २ भेदको प्राप्त हो जाते हैं; अर्थात् शत्रु, उनको झट बहका सकते हैं ॥ ४४ ॥ विरक्त प्रकृति शत्रुके साथ मिलकर विजिगीषुपर आक्रमण करनेको तैयार होजाती हैं ॥ ४५ ॥

तासां हिरण्यधान्यक्षयः सर्वोपघाती कृच्छ्रप्रतीकारश्च ॥ ४६ ॥ युग्यपुरुषक्षयो हिरण्यधान्यसाध्यः ॥ ४७ ॥

इन प्रकृतियोंके हिरण्य और धान्यका क्षय होजाना, हाथी घोड़े आदि सबका नाशक होता है, और इसीलिये इसका प्रतीकार होना भी अत्यन्त कठिन है ॥ ४६ ॥ परन्तु हाथी घोड़े और पुरुषोंके क्षयका प्रतीकार हिरण्य तथा धान्य आदिके द्वारा सुगमतासे होसकता है ॥ ४७ ॥

लोभ ऐकदेशिको मुख्यायत्तः परार्थेषु शक्यः प्रतिहन्तु-मादातुं वा ॥ ४८ ॥ विरागः प्रधानावग्रहसाध्यः ॥ ४९ ॥

लोभ, प्रकृतियोंमेंसे किसी एकको होता है, उसका लेना न लेना भी

मुख्यके अधीन है, और शत्रु या यातव्य आदिके धनोंके द्वाराही उसका प्रतीघात या प्रतीकार भी होसकता है, अथवा मुख्य व्यक्तियोंके द्वारा वह स्वयं लिया भी जासकता है ॥ ४८ ॥ परन्तु विरागका प्रतीकार प्रधान पुरुषको वशमें किये बिना नहीं होसकता ॥ ४९ ॥

निष्प्रधानाहि प्रकृतयो भोग्या भवन्त्यनुपजाप्याश्चान्येषामनापत्सहास्तु प्रकृतिमुख्यप्रग्रहैस्तु बहुधा भिन्ना गुप्ता भवन्त्यापत्सहाश्च ॥ ५० ॥

प्रधान रहित प्रकृतिजन, विजिगीषुके वशमें होजाते हैं, वे दूसरेके द्वारा बहकाये भी नहीं जासकते ; परन्तु वे आपत्तियोंको नहीं सहसकते, किसी आपत्तिके आनेपर विजिगीषुको छोड़कर चले जाते हैं । प्रधान पुरुषके अधीन रहनेपर तो दूसरोंसे प्रायः अभेद्य सुरक्षित और शत्रुके द्वारा आक्रमण करदेनेपर विपत्तिको भी सहन करसकते हैं ॥ ५० ॥

समावायिकानामपि संधिविग्रहकारणान्यवेक्ष्य शक्तिशौचयुक्तौ संभूय यायात् ॥ ५१ ॥ शक्तिमान्हि पार्ष्णिग्रहणे यात्रासाहाय्यदाने वा शक्तः ॥ ५२ ॥

साथ २ चलनेवाले अनुगामियोंके भी सन्धि और विग्रहके कारणोंको अच्छी तरह सोच विचारकर, शक्ति और पवित्रताको देखकर उनके साथही आक्रमण करे ॥ ५१ ॥ क्योंकि शक्तिशाली अनुगामी, पार्ष्णिग्राहके रोकने और युद्धके लिये यात्रामें सेना आदि देनेसे सहायता करसकता है ॥ ५२ ॥

शुचिः सिद्धौ चासिद्धौ च यथास्थितकारीति ॥ ५३ ॥ तेषां ज्यायसैकेन द्वाभ्यां समाभ्यां वा संभूय यातव्यमिति । द्वाभ्यां समाभ्यां श्रेयः ॥ ५५ ॥

और शुचि अर्थात् पवित्र (निष्कपट), कार्यसिद्धि होने या न होनेपर दोनों अवस्थाओंमें न्याय्य मार्गकाही अनुसरण करता है ॥ ५३ ॥ उनमेंसे अधिक शक्तिवाले एकके साथ, या बराबर शक्तिवाले दोके साथ मिलकर यात्रा करे ? अर्थात् इन दोनोंमेंसे किसके साथ यात्रा करना अच्छा है ? ॥ ५४ ॥ बराबर शक्तिवाले दोके साथ यात्रा करना श्रेष्ठ है ॥ ५५ ॥

ज्यायसा ह्यवगृहीतश्चरति समाभ्यामतिसंधानाधिक्ये वा ॥ ५६ ॥ तौ हि सुखौ भेदयितुम् ॥ ५७ ॥ दुष्टश्चैको द्वाभ्यां नियन्तुं भेदोपगृहं चोपगन्तुमिति ॥ ५८ ॥

क्योंकि अधिक शक्तिवालेके साथ विजिगीषुका तिरस्कृत होकर या दबकरही चलना पड़ता है, बराबर शक्तिवालोंके साथ यह नहीं होता ॥ ५६ ॥ और उनमेंसे (बराबर शक्तिवालोंमेंसे) एकके साथ अधिक मेल करके उन दोनोंमें परस्पर भेद भी सुगमतासे डाला जासकता है ॥ ५७ ॥ यदि उन दोनोंमेंसे कोई दुष्ट हो तो दूसरेकी सहायतासे उसका दमन और दूष्य आदिके द्वारा भेद प्रयोगसे विग्रह भी किया जासकता है ॥ ५८ ॥

समेनैकेन द्वाभ्यां हीनाभ्यां वेति ॥ ५९ ॥ द्वाभ्यां हीनाभ्यां श्रेयः ॥ ६० ॥ तौ हि द्विकार्यसाधकौ वश्यौ च भवतः ॥ ६१ ॥

समशक्ति एकके साथ, या हीनशक्ति दोके साथ यात्रा करे ? अर्थात् इन दोनोंमेंसे किसके साथ यात्रा करना अच्छा है ? ॥ ५९ ॥ हीनशक्ति दोके साथ यात्रा करना श्रेष्ठ है ॥ ६० ॥ क्योंकि वे दोनों दो कार्योंको एक साथ करसकते हैं और विजिगीषुके वशमें भी रहते हैं ॥ ६१ ॥

कार्यसिद्धौ तु ॥ ६२ ॥

अबतक, मिलकर यात्रा करनेके लिये विजिगीषुसे अपेक्षित राजाओंके विषयमें निरूपण किया गया । अब दूसरे राजाओंसे अपेक्षित विजिगीषुके सम्बन्धमें बताया जाता है । कार्य सिद्धि होनेपर यदि—॥ ६२ ॥

कृतार्थाज्ज्यायसो गूढः सापदेशमपस्रवेत् ।
अशुचेः शुचिवृत्तात्तु प्रतीक्षेताविसर्जनात् ॥ ६३ ॥

कृतार्थ हुए २ अधिकशक्ति राजाके दिलमें बेईमानी आजावे, तो कुछ बहाना करके चुपचाप वहांसे चलदेवे । उसकी ईमानदारी-निष्कपटता जान लेनेपर तो, जबतक वह न छोड़े तबतक प्रतीक्षा करे ॥ ६३ ॥

सत्रादपसरेद्यत्तः कलत्रमपनीय वा
समादपि हि लब्धार्थाद्विश्वस्तस्य भयं भवेत् ॥ ६४ ॥

दुर्ग आदि सङ्कटमय प्रदेशसे, यत्नपूर्वक अपने कलत्र आदि अन्तरङ्ग पारिवारिक जनोंको कहीं दूसरी जगह भेजकर चला जावे । क्योंकि सफल हुए२ समशक्ति राजासे भी विजिगीषुका भयही होता है ॥ ६४ ॥

ज्यायस्त्वे चापि लब्धार्थः समो विपरिकल्पते
अभ्युच्चितश्चाविश्वास्यो वृद्धिश्चित्तविकारिणी ॥ ६५ ॥

सार यह है कि चाहे अधिक शक्ति हो या समशक्ति, कार्य सिद्धि हो जानेपर दिल बदलही जाता है । वृद्धिको प्राप्त हुए राजाका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये, यह वृद्धि चित्तको विकृत करदेनेवाली होती है ॥ ६५ ॥

विशिष्टादल्पमप्यंशं लब्ध्वा तुष्टमुखो व्रजेत्
अनंशो वा ततोऽस्याङ्के प्रहृत्य द्विगुणं हरेत् ॥ ६६ ॥

अधिकशक्ति राजासे थोड़ासा भी अंश प्राप्त करके प्रसन्नमुख होकर चला जावे, यदि वह उस समय कुछ भी न दे, तो भी प्रसन्नतापूर्वक लौट जावे और पीछेसे उसकी किसी निर्बलतापर प्रहार करके दुगना धन वसूल करलेवे ॥६६॥

कृतार्थस्तु स्वयं नेता विसृजेत्सामवायिकान्
अपि जीयेत न जयेन्मण्डलेष्टस्तथा भवेत् ॥ ६७ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे यातव्यामित्रयोरभिग्रहचिन्ता क्षयलोभविरागहेतवः प्रकृतीनां सामवायिकविपरिमर्शः पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

आदितस्त्रिशतः ॥ १०३ ॥

स्वतन्त्रतापूर्वक यात्रा करनेवाला विजिगीषु, सफल (कार्यसिद्धि) होनेपर, अपने साथी अनुगामी राजाओंको आदरपूर्वक विदा करे, चाहे उसे स्वयं थोड़ाही हिस्सा मिले। ऐसा करनेसे वह राजमण्डलका अतिप्रिय हो जाता है ॥ ६७ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें पांचवां अध्याय समाप्त।

छठा अध्याय।

१११, ११२ प्रकरण

एकसाथ प्रयाण, और परिपणित, अपरिपणित, तथा अपसृत सन्धि।

विजिगीषुर्द्वितीयां प्रकृतिमेवमतिसंदध्यात् ॥ १ ॥ सामन्तं संहितप्रयाणे योजयेत् ॥ २ ॥ त्वमितो याहि ॥ ३ ॥ अहमितो यास्यामि ॥ ४ ॥ समानो लाभ इति ॥ ५ ॥

विजिगीषु, द्वितीया प्रकृति अर्थात् शत्रुरूप प्रकृतिको वक्ष्यमाण प्रकारोंसे धोखा देवे ॥ १ ॥ एकसाथ भिन्न स्थानकी यात्राके लिये सामन्तको नियुक्त करे ॥ २ ॥ उससे कहे कि—तू इधरसे जा, ॥ ३ ॥ और मैं अपने यातव्यके प्रति इधरसे जाऊंगा ॥ ४ ॥ दोनों स्थानोंपर जो लाभ होगा, वह बराबर हम दोनोंकाही समझा जावेगा ॥ ५ ॥

लाभसाम्ये संधिः ॥ ६ ॥ वैषम्ये विक्रमः ॥ ७ ॥ संधिः परिपणितश्चापरिपणितश्च ॥ ८ ॥ त्वमेतं देशं याह्यहमिमं देशं यास्यामीति परिपणितदेशः ॥ ९ ॥

यदि दोनोंको समान लाभही होवे तो, विजिगीषु समशक्ति होनेके कारण उससे सन्धि करलेवे ॥ ६ ॥ यदि विजिगीषुको अधिक लाभ हो, तो उससे लड़ाई करदेवे ॥ ७ ॥ अब परिपणित (देश, काल, या कार्य किसीकी शर्त लगाकर कीजानेवाली) और अपरिपणित (इससे विपरीत) सन्धिका निरूपण करते हैं ॥ ८ ॥ तू उस अमुक देशको जा, और मैं इसको जाऊंगा, इस प्रकार देश विशेषका निर्देश करके जो सन्धि कीजाय वह पहिली परिपणित सन्धि है । इसको परिपणितदेशसन्धि भी कह सकते हैं ॥ ९ ॥

त्वमेतावन्तं कालं चेष्टस्वाहमेतावन्तं कालं चेष्टिष्य इति परिपणितकालः ॥ १० ॥ त्वमेतावत्कार्यं साधयाहमिदं कार्यं साधयिष्यामीति परिपणितार्थः ॥ ११ ॥

तुम इतने समय तक कार्य करते रहो, और मैं इतने समय तक करूंगा, इस प्रकार नियमित समयका निर्देश करके जो सन्धि की जाय, वह दूसरी परिपणितकालसन्धि कहाती है ॥ १० ॥ तुम इतने कार्यको पूरा करो, और मैं इतना कार्य पूरा करूंगा, इस प्रकार नियमित कार्यका निर्देश करके की हुई सन्धिको परिपणितकार्यसन्धि कहा जाता है ॥ ११ ॥

यदि वा मन्येत शैलवननदीदुर्गमटवीव्यवहितं छिन्नधान्यपुरुषवीवधासारमयवसेन्धनोदकमविज्ञातं प्रकृष्टमन्यभावदेशीयं वा सैन्यव्यायामानामलब्धभौमं वा देशं परो यास्यति विपरीतमहमित्येतस्मिन्विशेषे परिपणितदेशं संधिमुपेयात् ॥ १२ ॥

जब विजिगीषु यह समझे कि—जिस देशमें पहाड़ों, जंगलों और नदियोंके किनारेपर बड़े २ किले हों, वहां तक पहुंचनेमें भयानक जंगलोंको पार करना पड़े, जहां दूसरे देशसे धान्य, पुरुष, तेल, घृत आदि सामान और अपने मित्र बलको न लाया जा सके, जहां घास लकड़ी और जल न मिले, अपरिचित हो (जिसका पूर्णतया भौगोलिक ज्ञान न हो), दूर हो, जहांकी प्रजा स्वामी भक्त न हो, तथा जहां सेनाके आने जाने या कवायद आदिके लिए अच्छी भूमि न हो, इत्यादि कारणोंसे, कठिनतासे वशमें आनेवाले देशको दूसरा सामन्त यात्रा करेगा, और सुगमतासेही वशमें आजानेवाले देशपर मैं आक्रमण करूंगा तो इस विशेषताके होनेपर परिपणितदेशसन्धि करलेवे ॥ १२ ॥

यदि वा मन्येत प्रवर्षोष्णशीतमतिव्याधिप्रायमुपक्षीणाहारोपभोगं सैन्यव्यायामानां चौपरोधिकं कार्यसाधनानामूनमतिरिक्तं वा कालं परश्चेष्टिष्यते विपरीतमहमित्येतास्मिन्विशेषे परिपणितकालं संधिमुपेयात् ॥ १३ ॥

अथवा यदि विजिगीषु यह समझे कि—जब वर्षा गरमी और सरदी बहुत अधिक हो, जिन दिनों साधारणतया बीमारी होती हो, आहार आदिके लिये सामान अच्छी तरह न मिलता हो, सेनाकी कवायद आदि ठीक न होसकती हो, तथा जितने समयमें कार्य सिद्ध हो उतने, या उससेभी अधिक समयमें दूसरे सामन्तका कार्य करना पड़ेगा, और मैं अपने अनुकूल समयमें ही कार्य करूंगा, तब ऐसे विशेष कारणके उपस्थित होनेपर परिपणितकालसन्धि कर लेवे ॥ १३ ॥

यदि वा मन्येत प्रत्यादेयं प्रकृतिकोपकं दीर्घकालं महाक्षयव्ययमल्पमनर्थानुबन्धमकल्यमधर्म्यं मध्यमोदासीनाविरुद्धं मित्रोपघातकं वा कार्यं परः साधयिष्यष्याति विपरीतमहमित्येतास्मिन्विशेषे परिपणितार्थं संधिमुपेयात् ॥ १४ ॥

अथवा विजिगीषु जब यह समझे, कि—शत्रुसे उच्छेद करदेने योग्य अमात्य आदि प्रकृतियोंको कुपित करनेवाले, बहुत समयमें सिद्ध होनेवाले, तथा जिन कार्योंमें अत्यधिक पुरुषोंका नाश और धनका व्यय हो, थोड़े और भविष्यके अनर्थकारी, कार्यकालमें कष्टकर, अधर्मसे युक्त, मध्यम तथा उदासीन राजाके विरोधी, तथा मित्रोंको कष्ट पहुंचाने वाले, कार्यको दूसरा सामंत करेगा, और मैं इससे विपरीत कार्यको करूंगा, तब इस विषेश कारणके होने पर परिपणितार्थ सन्धिकरे ॥ १४ ॥

एवं देशकालयोः कालकार्ययोर्देशकार्ययोर्देशकालकार्याणां चावस्थापनात्सप्तविधः परिपणितः ॥ १५ ॥ तस्मिमन्प्रागेवारभ्य प्रतिष्ठाप्य च स्वकर्माणि परकर्मसु विक्रमेत ॥ १६ ॥

इसी प्रकार देश-काल, काल-कार्य, देश-कार्य, और देशकालकार्य इनके परस्पर अवस्थापन अर्थात् मिलानेसे, ४ ये और तीन पहिली, कुल मिलाकर सात प्रकारकी परिपणित सन्धि होती हैं ॥ १५ ॥ परिपणित सन्धि कर लेने पर पहिलेही अपने कार्योंको प्रारम्भ करे और उन्हें पूर्ण उद्देश्यपर पहुंचा देवे। तदनन्तर शत्रुके दुर्ग आदि कार्योंपर आक्रमणकरे ॥ १६ ॥

व्यसनत्वरावमानालस्ययुक्तमज्ञं वा शत्रुमतिसंधातुकामो देशकालकार्याणामनवस्थापनात्संहितौ स्व इति संधिविश्वासेन परच्छिद्रमासाद्य प्रहरेदित्यपरिपणितः ॥ १७ ॥

मद्य, द्यूत आदि व्यसनोंसे, शीघ्रतासे, तिरस्कारसे तथा आलस्यसे युक्त, अविचारशील मूर्ख शत्रुको विजय करनेकी इच्छा रखनेवाला राजा, देश, काल और कार्यकी व्यवस्था न करकेही 'हमदोनों आपसमें सन्धि करलेते हैं' ऐसा वाणीमात्रसे कहकर, सन्धिके बहाने उसपर अपना विश्वास जमाकर, तथा उसके दोषोंका पता लगाकर आक्रमण करदेवे, यह अपरिपणित सन्धि होती है ॥ १७ ॥

तत्रैतद्भवति—॥ १८ ॥

सामन्तेनैव सामन्तं विद्वानायोज्य विग्रहे ।
ततोऽन्यस्य हरेद्भूमिं छित्वा पक्षं समन्ततः ॥ १९ ॥

सन्धि कर लेनेपर यह करना चाहिये कि:—॥ १८ ॥ विद्वान् विचारशील विजिगीषु, एक सामन्तके साथही दूसरे सामन्तको लड़ादेवे । और फिर यातव्य मित्रके समग्र पक्षको नष्ट करके, अन्य=यातव्यकी भूमिको अपने वशमें कर लेवे ॥ १९ ॥

संधेरकृतचिकीर्षा कृतश्लेषणं कृतविदूषणमवशीर्णक्रिया च ॥ २० ॥ विक्रमस्य प्रकाशयुद्धं कूटयुद्धं तूष्णींयुद्धमिति संधिविक्रमौ ॥ २१ ॥ अपूर्वस्य संधेः सानुबन्धैः सामादिभिः पर्येषणं समहीनज्यायसां च यथाबलमवस्थापनमकृतचिकीर्षा ॥२२॥

सन्धिके चार धर्म समझे जाते हैं—अकृतचिकीर्षा, कृतश्लेषण, कृतविदूषण, और अवशीर्णक्रिया ॥ २० ॥ तथा विग्रहके प्रकाशयुद्ध, कूटयुद्ध और तूष्णींयुद्ध ये तीन धर्म हैं । इस प्रकार सन्धि और विग्रहका परस्पर विभाग है ॥ २१ ॥ किसी राजाके साथ पहिले ही पहिले, एक दूसरेके साथ मिलकर प्रयुक्त किये गये साम आदिके द्वारा सन्धिका करना, और अपनी शक्तिके अनुसार, समशक्ति, हीनशक्ति तथा अधिकशक्ति राजाओंकी, उचित साम आदि के द्वारा ही व्यवस्था करना 'अकृतचिकीर्षा' नामक सन्धि धर्म है ॥२२॥

कृतस्य प्रियहिताभ्यामुभयतः परिपालनं यथासंभाषितस्य च निबन्धनस्यानुवर्तनं रक्षणं च कथं परस्मान्न भिद्येत इति

कृतश्लेषणम् ॥ २३ ॥ परस्यापसंधेयतां दूष्यातिसंधानेन स्थापयित्वा व्यतिक्रमः कृतविदूषणम् ॥ २४ ॥

की हुई सन्धिको प्रिय तथा हित आचरणके द्वारा, दोनों पक्षोंकी ओर से बनाये रखना, और अपने पूर्व कथनके (समझौतेके) अनुसार शर्तोंका मानना तथा इसप्रकार उनकी रक्षाकरना, जिससे शत्रु भेद न डालसके, यह 'कृतश्लेषण' सन्धि धर्म कहाता है ॥ २३ ॥ इसने दूष्य (राजद्रोही) के साथ सन्धिकी है, इस बहानेसे शत्रुकी ओरसे सन्धिभङ्गको सिद्धकरके, विजिगीषु का पहिले कीहुई सन्धिको तोड़ देना, 'कृतविदूषण' सन्धि धर्म होता है ॥ २४ ॥

भृत्येन मित्रेण वा दोषापसृतेन प्रतिसंधानमवशीर्णक्रिया ॥ २५ ॥ तस्यां गतागतश्चतुर्विधः—॥ २६ ॥

किसी दोषसे विजिगीषुको छोड़कर गये हुए भृत्य या मित्रके साथ फिर सन्धिका होजाना 'अवशीर्णक्रिया' नामक सन्धि धर्म कहाता है ॥ २५ ॥ अवशीर्णक्रियामें पृथक् होकर फिर मिलजाना (गतागत) चार प्रकारका होता है ॥ २६ ॥

कारणाद्गतागतो विपरीतः कारणाद्गतो ऽकारणादागतो विपरीतश्चेति ॥ २७ ॥

किसी कारण विशेषसे ही पृथक् होना और फिर किसी कारण विशेषसे ही आकर मिलजाना, बिनाही कारणके पृथक् होना और बिना कारणही आकर फिर मिलजाना, किसी कारण विशेषसे पृथक् होनेपर बिना ही कारण आकर फिर मिलजाना, बिनाही कारणके पृथक् होना तथा किसी कारण विशेषसे पुनः आकर मिलजाना ॥ २७ ॥

स्वामिनो दोषेण गतो गुणेनागतः परस्य गुणेन गतो दोषेणागत इति कारणाद्गतागतः संधेयः ॥ २८ ॥

अपने मालिकके दोष (अप्रसन्नता आदि) से पृथक् हुआ २ तथा (प्रसन्नता आदि) गुणके कारण पुनः आया हुआ; शत्रुके गुणोंके कारण मालिकको छोड़कर गया हुआ तथा शत्रुके दोषोंको जानकर पुनः मालिकके पास आया हुआ। यह गमनागमन कारणपूर्वक होता है, इसलिये पुनः सन्धि करनेके योग्य है ॥ २८ ॥

स्वदोषेण गतागतो गुणमुभयोः परित्यज्याकारणाद्गतागतश्चलबुद्धिरसंधेयः ॥ २९ ॥

अपनेही दोषसे स्वामीको छोड़कर शत्रुके पास गया हुआ, तथा उसी दोषसे शत्रुको छोड़कर फिर स्वामीके पास आया हुआ, स्वामी और शत्रु दोनोंके गुणोंको न समझ सकनेके कारण, उन्हें बिना ही कारण छोड़कर जाता आता हुआ, चञ्चल बुद्धि पुनः सन्धि करने योग्य नहीं होता ॥ २९ ॥

स्वामिनो दोषेण गतः परस्मात्स्वदोषेणागत इति कारणाद्गतो ऽकारणादागतस्तर्कयितव्यः ॥ ३० ॥

स्वामीके दोषसे शत्रुके पास गया हुआ, तथा वहांसे अपने दोषसे लौटा हुआ, कारणसे गत और अकारणसे आयाहुआ समझाजावे, तथा इसकी जांच निम्नलिखित रीतिसे कीजावे ॥ ३० ॥

परप्रयुक्तः स्वेन वा दोषेणापकर्तुकामः परस्योच्छेत्तारमामित्रं मे ज्ञात्वा प्रतिघातभयादागतः परं वा मामुच्छेत्तुकामं परित्यज्यानृशंस्यादागत इति ज्ञात्वा कल्याणबुद्धिं पूजयेदन्यथाबुद्धिमपकृष्टं वासयेत् ॥ ३१ ॥

क्या यह शत्रुकी प्रेरणासे मेरा अपकार करनेके लिये आया है ? अथवा मेरे द्वारा कियेगये पहिले अपकारको याद करके स्वयंही उसका बदला निकालेने आया है ? वा शत्रुके आदमियोंका वध करनेकी इच्छा करनेवाले मेरे शत्रुको जानकर अपने वधके भयसे यहां चला आया है ? अथवा मेरे उच्छेदकी कामना करनेवाले शत्रुको छोड़कर पहिले स्नेहके कारण मेरे पास आगया है ? इत्यादि । इसको कल्याणबुद्धि जानकर सत्कारपूर्वक अपने पास रक्खे, यदि अन्यथाबुद्धि हो तो दूरही वास करावे ॥ ३१ ॥

स्वदोषेण गतः परदोषेणागत इत्यकारणाद्गतः कारणादागतस्तर्कयितव्यः ॥ ३२ ॥

अपने दोषसे मालिकको छोड़कर शत्रुके पास गया हुआ, तथा शत्रुके दोषके कारण उसे छोड़कर पुनः आया हुआ, अकारण गत और कारणसे आयाहुआ समझना चाहिये । इसकी भी निम्नरीतिसे जांच कीजावे ॥ ३२ ॥

छिद्रं मे पूरयिष्यत्युचितो ऽयमस्य वासः परत्रास्य जनो न रमते ॥ ३३ ॥ मित्रैर्मे संहितः शत्रुभिर्विगृहीतो लुब्धक्रूरादाविग्नः शत्रुसंहिताद्वा परस्मादिति ज्ञात्वा यथाबुद्ध्यवस्थापयितव्यः ॥ ३४ ॥

क्या यह अब यहां आकर मेरे दोषोंको फैलायेगा ? या इस प्रान्तका

निवास इसकेलिए अनुकूल है इसलिये आया है ? अथवा इसके स्त्रीपुत्र आदि परदेशमें रहना नहीं चाहते ? अथवा मेरे मित्रोंके साथ इसने सन्धि करली है ? या शत्रुओंने इसका कुछ अपकार किया है ? अथवा अपने शत्रुसे सन्धि कियेहुए लोभी तथा क्रूर शत्रुसे घबड़ा गया है ? इत्यादि । इन सब बातोंको जानकर कल्याणबुद्धि होनेपर उसे रक्खे, अन्यथा दूर करे ॥३३-३४॥

कृतप्रणाशः शक्तिहानिर्विद्यापण्यत्वमाशानिर्वेदो देशलौल्यमविश्वासो बलवद्विग्रहो वा परित्यागस्थानमित्याचार्याः ॥३५॥

आचार्योंका मत है कि—जो कृतज्ञ न हो, जिसकी शक्तियोंका क्षय होचुका हो, साधारण विक्रेय वस्तुओंके समान जिसके राज्यमें विद्या मूल्य लेकर बिकती हो, अर्थात् जो विद्याकी अवहेलना करनेवाला हो, देनेकी आशा दिलाकर न देनेपर दुःखदाई हो, जिसके देशमें उपद्रव रहता हो, जो भृत्योंपर विश्वास न करता हो, अथवा बलवान् राजाके साथ झगड़ा कर बैठे, ऐसे मालिक (राजा) का परित्याग करदेना चाहिये ॥ ३५ ॥

भयमवृत्तिरमर्ष इति कौटल्यः ॥ ३६ ॥ इहापकारी त्याज्यः परापकारी संधेयः ॥ ३७ ॥

परन्तु कौटल्यका मत है कि —भय, किसी कार्यको आरम्भ न करना तथा क्रोध, इन्हीं तीन कारणोंके होनेपर राजाका परित्याग करे ॥ ३६ ॥ गतागतके विषयमें इतनी बात और ध्यानमें रखनी चाहिये कि जो अपना अपकार करके जावे, और शत्रुका अपकार किये बिनाही वापस आवे उसे सर्वथा त्यागदेवे । और जो शत्रुकाही अपकार करने वाला हो, उसके साथ फिर मिलजावे ॥३७॥

उभयापकारी तर्कयितव्य इति समानम् ॥ ३८ ॥ असंधेयत्वेन त्ववश्यं संधातव्ये यतः प्रभावस्ततः प्रतिविदध्यात् ॥३९॥

जो दोनोंका अपकार करनेवाला हो उसकी अच्छी तरह परिक्षा करके कल्याण बुद्धि होनेपर रखलेवे, अन्यथा न रक्खे ॥ ३८ ॥ जो सन्धि करने योग्य नहीं है, ऐसे व्यक्तिके साथ यदि किन्हीं विशेष कारणोंसे अवश्य सन्धि करनी पड़जावे, तो शत्रुका जिन कारणोंसे उस (व्यक्ति) पर प्रभाव हो, उनका प्रतीकार करदेवे ॥ ३९ ॥

सोपकारं व्यवहितं गुप्तमायुः क्षयादिति ।
वासयेदरिपक्षीयमवशीर्णक्रियाविधौ ॥ ४० ॥

शत्रुपक्षका कोई व्यक्ति अपने आश्रित रहकर, किसी दोषसे फिर शत्रु के पास आकर पुनः वापस आये तो इस प्रकारके गतागत के विषयमें भी कुछ

सन्धिके नियम बतायेजाते हैं:—अवशीर्ण क्रिया विधिमें (टूटी हुई सन्धिको पुनः स्थापित करनेमें) अपना उपकार करनेवाले शत्रु पक्षके गतागत व्यक्तिको, एक विश्वस्त भृत्यकी देखरेखमें, छिपे तौर पर आयुपर्यन्त आश्रय दिया जावे ॥४०॥

विक्रामयेद्भर्तरि वा सिद्धं वा दण्डचारिणम् ।
कुर्यादमित्राटवीषु प्रत्यन्ते वान्यतः क्षिपेत् ॥ ४१ ॥

यदि वह निष्कपट सिद्ध हो तो स्वामीकी परिचर्यामें लगा लिया जावे, वहांभी निष्कपट सिद्ध होनेपर सेना विभागमें नियुक्त करके शत्रु अथवा आटविकोंके मुकाबलेमें भेज दियाजावे। अथवा अन्यत्र दूरदेशमें किसी कामपर नियुक्त कर दियाजावे ॥ ४१ ॥

पण्यं कुर्यादसिद्धं वा सिद्धं वा तेन संवृतम् ।
तस्यैव दोषेणादूष्य परसंधेयकारणात् ॥ ४२ ॥

यदि जिस कार्यपर वह लगाया गया है, उसके करनेमें असमर्थ हो, अर्थात् हृदयमें कपट होनेके कारण ठीक न करता हो, तो उसे माल बेचना कहकर शत्रुके देशमें भेज दियाजावे, और इस बहानेसे शत्रुके साथ सन्धि करनेका दोषारोपणकर, उसीके दोषसे उसे मार दियाजावे ॥ ४२ ॥

अथ वा शमयेदेनमायत्यर्थमुपांशुना ।
आयत्यां च वधप्रेप्सुं दृष्ट्वा हन्याद्गतागतम् ॥ ४३ ॥

अथवा भविष्यमें कुछ उपद्रव न हो, ऐसा विचारकर, उसका उपांशु-वध करा दियाजावे। भविष्यमें वध करनेकी इच्छा रखनेवाले गतागत व्यक्तिको तो देखतेही मरवा डाले ॥ ४३ ॥

अरितोऽभ्यागतो दोषः शत्रुसंवासकारितः ।
सर्पसंवासधर्मित्वान्नित्योद्वेगेन दूषितः ॥ ४४ ॥

शत्रुके पाससे आया हुआ पुरुष, शत्रुके साथ रहनेके कारण अवश्य ही दोषका हेतु होता है, क्योंकि शत्रुका सहवास सर्पके सहवासके समान है; इस लिये सदा ही भयका हेतु होनेसे इस प्रकारका व्यक्ति निन्दित कहा गया है ॥ ४४ ॥

जायते प्लक्षबीजाशात्कपोतादिव शाल्मलेः ।
उद्वेगजननो नित्यं पश्चादपि भयावहः ॥ ४५ ॥

पिलखनके बीज खानेवाला कबूतर जैसे सिंभलके उद्वेगका ही कारण होता है इसी प्रकार शत्रुपक्षका व्यक्तिभी विजिगीषुके लिये भयङ्कर और पीछेसे उद्वेग जनकही होता है ॥ ४५ ॥

प्रकाशयुद्धं निर्दिष्टो देशे काले च विक्रमः ।
विभीषणमवस्कन्दः प्रमादव्यसनार्दनम् ॥ ४६ ॥

अब युद्धधर्मोंके विषयमें दो श्लोकोंसे बतलाते हैं—अमुकदेश और अमुक समयमें हमारा तुम्हारा युद्ध होगा, इस प्रकार कहकर जो युद्ध किया जाता है, उसे 'प्रकाशयुद्ध' कहते हैं। थोड़ीसी सेनाको बहुत दिखलाकर भय उत्पन्न करदेना, किले आदिका जलाना और लूटना, प्रमाद तथा व्यसनके समय शत्रुको पीड़ा देना ॥ ४६ ॥

एकत्र त्यागघातौ च कूटयुद्धस्य मातृका ।
योगगूढोपजापार्थं तूष्णींयुद्धस्य लक्षणम् ॥ ४७ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे संहितप्रयाणिकं
परिपणितापरिपणितापसृताश्च संधयः षष्ठो ऽध्यायः ॥ ६ ॥
आदितश्चतुःशतः ॥ १०४ ॥

एक जगह युद्ध छोड़कर दूसरी जगह धावा करदेना, ये सब कूटयुद्धके लक्षण हैं। विष औषधि आदिके प्रयोग तथा गूढ़ पुरुषोंके द्वारा उपजाप (बहकाना, धोखादेना) आदिके प्रयोगोंसे शत्रुका नाश करना 'तूष्णींयुद्ध' का लक्षण है ॥ ४७ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें छठा अध्याय समाप्त ।

सातवां अध्याय

११३ प्रकरण

द्वैधीभाव सम्बन्धी सन्धि और विक्रम ।

विजिगीषुर्द्वितीयां प्रकृतिमेवमुपगृह्णीयात् ॥ १ ॥ सामन्तं सामन्तेन संभूय यायात् ॥ २ ॥ यदि वा मन्येत-पार्ष्णिं मे न ग्रहीष्यति ॥ ३ ॥

विजिगीषु अपने समीप देशमें स्थित शत्रुको, अपनी सहायताके लिये निम्न लिखित उपायोंसे तैयार करे ॥ १ ॥ पृष्ठ तथा पार्श्व देशस्थित सामन्तके साथ मिलकरही यातव्य सामन्तपर आक्रमण करे ॥ २ ॥ अथवा यदि समझे कि —अपने साथ मिलाया हुआ सामन्त पार्ष्णिग्राह नहीं बनेगा, अर्थात यातव्य पर आक्रमण करनेके लिये मेरे बाहरचले जानेपर, वह पीछेसे मेरेदेशपर आक्रमण नहीं करेगा ॥ ३ ॥

पार्ष्णिग्राहं वारयिष्यति ॥ ४ ॥ यातव्यं नाभिसरिष्यति ॥ ५ ॥ बलवद्द्वैगुण्यं मे भविष्यति ॥ ६ ॥ वीवधासारौ मे प्रवर्तयिष्यति ॥ ७ ॥ परस्य वारयिष्यति ॥ ८ ॥

दूसरे पार्ष्णिग्राह (पीछेसे आक्रमण करनेवाले) को रोकेगा ॥ ४ ॥ मेरे यातव्यका पक्ष ग्रहण न करेगा ॥ ५ ॥ मेरा बल दुगना होजावेगा ॥ ७ ॥ अपने देशमें उत्पन्न हुए २ धान्य, तथा मेरेमित्रकी सेनाको मेरी सहायताके लिये आनेदेगा, उसे बीचमें न रोकेगा ॥ ७ ॥ और शत्रुके लिये इन दोनों चीजोंको रोकेगा, अर्थात् धान्य और मित्र सेना को उस तक न पहुंचने देगा ॥ ८ ॥

बह्वाबाधे मे पथि कण्टकान्मर्दयिष्यति ॥ ९ ॥ दुर्गाटव्यपसारेषु दण्डेन चरिष्यति ॥ १० ॥ यातव्यमविषह्ये दोषे संधौ वा स्थापयिष्यति ॥ ११ ॥

मेरे यात्रा करनेपर, मार्गमें आई हुई विघ्न बाधाओंको नष्ट करेगा ॥९॥ दुर्ग तथा अटवियोंमें विजिगीषु सेनाके जानेपर, अपनी सेनासे बराबर उसकी सहायता करेगा ॥ १० ॥ कोई असह्य अनर्थ या आपत्ति आपड़नेपर, यातव्यके साथ सन्धिकी स्थापना करदेगा ॥ ११ ॥

लब्धलाभांशो वा शत्रूनन्यान्मे विश्वासयिष्यतीति ॥ १२ ॥ द्वैधीभूतो वा कोशेन दण्डं दण्डेन कोशं सामन्तानामन्यतमाल्लिप्सेत ॥ १३ ॥

और अपने प्रतिज्ञात धनको मुझसे प्राप्तकर, मेरे अन्य शत्रुओंको भी मेरा विश्वास उत्पन्न करावेगा, इत्यादि । सामन्तको साथ मिलाकर यात्रा करने पर, ये पार्ष्णिशुद्धि आदि १० प्रयोजन सिद्ध होते हैं । यह समझकर विजिगीषु सामन्तको साथ मिलावे ॥१२॥ यदि विजिगीषु सामन्तके मिलानेमें विश्वास न करे तो द्वैधीभावका अवलम्बनकर पृष्ठ तथा पार्श्ववर्त्ती सामन्तोंमेंसे किसी एकसे, कोशदेकर सेना (यदि सेना कमहोतो), और सेनादेकर कोश (यदि कोश कम होतो), लेनेकी इच्छाकरे ॥ १३ ॥

तेषां ज्यायसोऽधिकेनांशेन समात्समेन हीनाद्धीनेनेति समसंधिः ॥ १४ ॥ विपर्यये विषमसंधिः ॥ १५ ॥

अधिक शक्ति सामन्तको अधिक हिस्सादेकर सन्धिकरना, समशक्ति सामन्तको समभाग और हीनशक्ति सामन्तको थोड़ा हिस्सा देकर सन्धिकरना

ये ३ प्रकारकी समसन्धि कहाती हैं ॥ १४ ॥ इससे विपरीत विषम सन्धि होती है। अधिक शक्तिको सम तथा न्यून हिस्सा देकर दो प्रकार की, इसी प्रकार सम शक्तिको न्यून तथा अधिक, और हीन शक्तिको सम तथा अधिक हिस्सा देकर, दो २ प्रकारकी, कुल छः प्रकारकी विषम सन्धि होती है ॥ १५ ॥

तयोर्विशेषलाभादतिसंधिः ॥१६॥ व्यसनिनमपायस्थाने सक्तमनर्थिनं वा ज्यायांसं हीनो बलसमेन लाभेन पणेत ॥ १७ ॥

इन दोनोंमें जब प्रतिज्ञात धनसे अधिक धनका लाभ हो जावे, तो नौओं (=३ समसन्धि+६ विषमसन्धि) सन्धियां अतिसन्धि कहलाती हैं, अर्थात् इस अतिसन्धि भेदसे फिर वे १८ प्रकारकी हो जाती हैं ॥ १६ ॥ व्यसनी, शरीरादिके नाश करनेवाले कार्योंमें आसक्त, अनर्थसे युक्त अधिक शक्ति सामन्तके साथ, हीनशक्ति विजिगीषु सेनाके समान हिस्सा लेकर ही सन्धि करे ॥ १७ ॥

पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत ॥ १८ ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ १९ ॥

इस प्रकार सन्धि करनेपर यदि अधिक शक्ति सामन्त, अपना तिरस्कार करनेवाले विजिगीषुका अपकार करनेमें समर्थ हो, तो उसपर आक्रमण कर देवे ॥ १८ ॥ अन्यथा चुपचाप सन्धि कर लेवे ॥ १९ ॥

एवंभूतो हीनशक्तिप्रतापपूरणार्थं संभाव्यार्थाभिसारी मूलपार्ष्णित्राणार्थं वा ज्यायांसं हीनो बलसमाद्विशिष्टेन लाभेन पणेत ॥ २० ॥

इस प्रकार हीनकी अधिकशक्तिके साथ विषमसन्धि बताकर अब समसन्धि कहते हैं—इस तरह व्यसन आदिसे दबा हुआ हीन, अपने नष्ट हुए २ प्रताप और शक्तिको पूरा करनेके लिए, तथा अपने सम्भावित (निश्चितप्राय) अर्थके लेनेको, मूल (दुर्ग आदि) और पार्ष्णिकी रक्षा करनेके लिए सेनाकी अपेक्षा अधिक हिस्सा देकर, अधिकशक्ति सामन्तके साथ सन्धि कर लेवे ॥ २० ॥

पणितः कल्याणबुद्धिमनुगृह्णीयादन्यथा विक्रमेत ॥ २१ ॥

सन्धि करलेनेपर यदि हीन ईमानदारीसे रहे, तो अधिकशक्ति सामन्त सदा उसपर अनुग्रह बनाए रक्खे, अन्यथा उसपर आक्रमण करदेवे ॥ २१ ॥

जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रमुपस्थितानर्थं वा ज्यायांसं हीनो दुर्गमित्रप्रतिस्तब्धो वा ह्रस्वमध्वानं यातुकामः शत्रुमयुद्धमेकान्तसिद्धिं वा लाभमादातुकामो बलसमाद्धीनेन लाभेन पणेत पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत ॥ २२ ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ २३ ॥

मृगया आदि व्यसनोंमें आसक्त, कुपित लोभी, तथा भीत (डरपोक) अमात्य आदि प्रकृतिवाले, अनर्थयुक्त अधिकशक्ति सामन्तके साथ, हीनशक्ति राजा, अपने बढ़िया मजबूत किले तथा सहायक मित्रोंके कारण गर्वित हुआ २, अथवा थोड़ीही दूरपर किसी शत्रुकी ओर आक्रमण करनेवाला, बिनाही युद्धके अवश्य सिद्ध होनेवाले लाभको ग्रहण करनेकी कामना करता हुआ, सेनाकी अपेक्षा थोड़ा हिस्सा देकरही सन्धि करलेवे। यदि अधिकशक्ति सामन्त, इस प्रकार की सन्धि करलेनेपर, अपना तिरस्कार करनेवाले हीनका अपकार करनेमें समर्थ हो, तो उसपर आक्रमण करदेवे ॥ २२ ॥ अन्यथा चुपचाप उससे सन्धि करलेवे ॥ २३ ॥

अरन्ध्रव्यसनो वा ज्यायान्दुरारब्धकर्माणं भूयः क्षयव्ययाभ्यां योक्तुकामो दूष्यदण्डं प्रवासयितुकामो दूष्यदण्डमावाहयितुकामो वा पीडनीयमुच्छेदनीयं वा हीनेन व्यथयितुकामः संधिप्रधानो वा कल्याणबुद्धिर्हीनं लाभं प्रतिगृह्णीयात् ॥ २४ ॥

प्रकृतिकोप तथा मृगया आदि व्यसनोंसे पृथक् हुआ २, अपने विरुद्ध कार्य करनेवाले शत्रुको फिर अधिक क्षय (पुरुषोंका नाश) और व्यय (धनका नाश) के साथ युक्त करनेकी कामना रखनेवाला, तथा अपनी दूषित सेनाको निकालने और शत्रुकी दूषित सेनाको अपने यहां बुलानेकी इच्छा करनेवाला, अथवा पीडनीय और उच्छेदनीय शत्रुका हीनके द्वारा पीडित और उच्छेदन करानेकी इच्छा रखनेवाला, अथवा सन्धि गुणको ही प्रधान समझनेवाला, कल्याणबुद्धि अधिकशक्ति सामन्त, हीनके द्वारा थोड़े दिये हुए लाभको भी स्वीकार करलेवे ॥ २४ ॥

कल्याणबुद्धिना संभूयार्थं लिप्सेत ॥ २५ ॥ अन्यथा विक्रमेत ॥ २६ ॥ एवं समः सममतिसंदध्यादनुगृह्णीयाद्वा ॥२७॥

कल्याणबुद्धि हीनके साथ मिलकर, बराबर उसकी सहायता करे ॥ २५ ॥ यदि हीन दुष्टबुद्धि हो, तो उसपर आक्रमण करदेवे ॥ २६ ॥ इसी प्रकार समशक्ति सामन्त, दूसरे समशक्ति सामन्तके साथ, दुष्टबुद्धि और कल्याणबुद्धि देखकर, विग्रह तथा अनुग्रह करे ॥ २७ ॥

परानीकस्य प्रत्यनीकं मित्राटवीनां वा शत्रोर्विभूमीनां देशिकं मूलपार्ष्णित्राणार्थं वा समः समबलेन लाभेन पणेत ॥ २८ ॥ पणितः कल्याणबुद्धिमनुगृह्णीयात् ॥२९॥ अन्यथा विक्रमेत ॥३०॥

शत्रुकी सेना, तथा शत्रुके मित्र और आटविकोंके साथ, युद्ध करनेमें समर्थ, शत्रुके पर्वतप्रान्त आदिके नक्शोंको ठीक २ जाननेवाले (विभूमीनां देशिकम्), अथवा अपने मूल और पार्ष्णिकी रक्षाके लिये समशक्ति सामन्तकी सेनाके बराबरही लाभ देकर सन्धि करे ॥ २८ ॥ सन्धि करनेपर यदि समशक्ति सामन्त कल्याणबुद्धि हो तो उसपर अनुग्रह बनाये रक्खे ॥ २९ ॥ अन्यथा दुष्टबुद्धि होनेपर आक्रमण करदेवे ॥ ३० ॥

जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रमनेकविरुद्धमन्यतो लभमानो वा समः समबलाद्धीनेन लाभेन पणेत ॥ ३१ ॥ पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत ॥ ३२ ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ ३३ ॥

मृगया आदि व्यसनोंसे तथा प्रकृति कोपसे युक्त, और अनेक अन्य सामन्तोंके विरोधी, अथवा सहायताके बिना अन्य किसी उपायसे कार्यसिद्धि होनेपर, समशक्ति सामन्तके साथ सेनाकी अपेक्षा लाभका थोड़ाही हिस्सा देकर सन्धि करे ॥ ३१ ॥ सन्धि करनेपर यदि उसके अपकार करनेमें समर्थ हो तो उसपर आक्रमण करदेवे ॥ ३२ ॥ अन्यथा चुपचाप सन्धि करलेवे ॥ ३३ ॥

एवंभूतो वा समः सामन्तायत्तकार्यः कर्तव्यबलो वा बलसमाद्विशिष्टेन लाभेन पणेत ॥ ३४ ॥ पणितः कल्याणबुद्धिमनुगृह्णीयात् ॥ ३५ ॥ अन्यथा विक्रमेत ॥ ३६ ॥

मृगया आदि व्यसन और प्रकृतिकोपसे युक्त, दूसरे सामन्तकी सहायता होनेपरही अपने कार्योंको सफल देखनेवाला, अथवा नई सेना भर्ती करनेवाला समशक्ति सामन्त दूसरे समशक्ति सामन्तके साथ सेनाकी अपेक्षा अधिक लाभ देकर सन्धि करे ॥ ३४ ॥ सन्धि होनेपर, यदि वह कल्याणबुद्धि हो तो सदा उसपर अनुग्रह दृष्टि रक्खे ॥ ३५ ॥ यदि दुष्टबुद्धि हो तो आक्रमण करदेवे ॥ ३६ ॥

जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रमभिहन्तुकामः स्वारब्धमेकान्तसिद्धिं वास्य कर्मोपहन्तुकामो मूले यात्रायां वा प्रहर्तुकामो यातव्याद्भूयो लभमानो वा ज्यायांसं हीनं समं वा भूयो याचेत ॥ ३७ ॥

मृगया आदि व्यसन तथा प्रकृतिकोपसे युक्त ज्यायान्, हीन अथवा समको नष्ट करनेकी इच्छा करनेवाला, या उसके उचित देशकालके अनुसार आरम्भ किये गये अतएव अवश्य सफल हो जानेवाले कार्यको नष्ट करनेकी कामनावाला, अथवा विजिगीषुके यात्रा करनेपर पीछेसे उसके किले आदिपर धावा करनेकी इच्छा रखनेवाला, अथवा विजिगीषुकी अपेक्षा यातव्यसे अधिक धन पाजानेवाला हीन, ज्यायान् या सम, उपर्युक्त ज्यायान् हीन अथवा समसे और अधिक लाभकी याचना करे ॥ ३७ ॥

भूयो वा याचितः स्वबलरक्षार्थं दुर्धर्षमन्यदुर्गमासारमटवीं वा परदण्डेन मर्दितुकामः प्रकृष्टेऽध्वनि काले वा परदण्डं क्षयव्ययाभ्यां योक्तुकामः परदण्डेन वा विवृद्धस्तमेवोच्छेत्तुकामः परदण्डमादातुकामो वा भूयो दद्यात् ॥ ३८ ॥

इस प्रकार अधिक की याचना किये जानेपर, अपनी सेनाकी रक्षाके लिये, अथवा दूसरेके दुर्गम दुर्ग, मित्रबल तथा आटविकोंको (अधिक धन मांगनेवाले दूसरे सामन्तकी सेनाके द्वारा ही कुचलनेकी इच्छा करनेवाला, दूर देशमें अधिक समय तक दूसरे सामन्तकी सेनाको कामपर लगाकर क्षय और व्ययसे युक्त करनेकी कामनावाला, अथवा यातव्यकी सेनाके द्वारा (उसके जीत लेनेपर) अपनी सेनाको बढ़ाकर फिर उसीका (अधिक मांगनेवालेका) उच्छेदन करनेकी कामनावला, अथवा यातव्यकी सेनाको अधिक याचक सामन्तकी सहायतासे लेनेकी इच्छा वाला, अवश्यही उतना अधिक लाभ दे देवे जितना कि दूसरे सामन्तने मांगी है ॥ ३८ ॥

ज्यायान् वा हीनं यातव्यापदेशेन हस्ते कर्तुकामः परमुच्छिद्य वा तमेवोच्छेत्तुकामस्त्यागं वा कृत्वा प्रत्यादातुकामो बलसमाद्विशिष्टेन लाभेन पणेत ॥ ३९ ॥ पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत ॥ ४० ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ ४१ ॥

ज्यायान्, हीनके साथ, उसे यातव्यके बहाने अपने वशमें करनेकी इच्छावाला, अथवा शत्रुका उच्छेद करके फिर उसीका उच्छेद करनेकी कामनावाला, अथवा देकर फिर लौटा लेनेकी इच्छा रखनेवाला अवश्यही सेनाकी अपेक्षा अधिक लाभ देकर सन्धि करलेवे ॥ ३९ ॥ सन्धि होनेपर यदि उसका अपकार करनेमें समर्थ हो, तो उसपर आक्रमण करदेवे ॥ ४० ॥ अन्यथा चुपचाप सन्धि बनाये रक्खे ॥ ४१ ॥

यातव्यसंहितो वा तिष्ठेत् ॥ ४२ ॥ दूष्यामित्राटवीदण्डं वास्मै दद्यात् ॥ ४३ ॥ जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रो वा ज्यायान्हीनं बलसमेन लाभेन पणेत ॥ ४४ ॥ पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत ॥ ४५ ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ ४६ ॥

अथवा यातव्यके साथ सन्धि करके अपने स्थानपर ही रहे ॥ ४२ ॥ अथवा अपनी दूष्य शत्रुभूत तथा आटविक सेनाको सन्धि करनेवाले अधिकशक्ति सामन्तके लिये देदेवे ॥ ४३ ॥ मृगया आदि व्यसनोंमें आसक्त तथा प्रकृतिकोप आदिसे युक्त, अधिकशक्ति सामन्त होनेके साथ सेनाके बराबर लाभ देकर सन्धि करलेवे ॥ ४४ ॥ सन्धि करनेपर यदि उसका अपकार करनेमें समर्थ हो तो उसपर आक्रमण करदेवे ॥ ४५ ॥ अन्यथा सन्धि बनाये रक्खे ॥ ४६ ॥

एवंभूतं वा हीनं ज्यायान्बलसमाद्धानेन लाभेन पणेत ॥४७॥ पणितस्तस्यापकरणसमर्थो विक्रमेत ॥ ४८ ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ ४९ ॥

व्यसनी और प्रकृतिकोप आदिसे युक्त हीनके साथ, अधिकशक्ति सामन्त, बलकी अपेक्षा न्यून लाभ देकर सन्धि करलेवे ॥ ४७ ॥ यदि अपकार करनेमें समर्थ हो तो आक्रमण करदेवे ॥ ४८ ॥ अन्यथा सन्धि बनाये रक्खे ॥ ४९ ॥

आदौ बुद्ध्येत पणितः पणमानश्च कारणम् ।
ततो वितर्क्योभयतो यतः श्रेयस्ततो व्रजेत् ॥ ५० ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे संहितप्रयाणिकं द्वैधीभाविकाः संधिविक्रमाः सप्तमो ऽध्यायः ॥ ७ ॥ आदितः पञ्चशतः ॥ १०५ ॥

इसलिये पणित (सन्धि या शर्त्त किया हुआ) और पणमान (सन्धि या शर्त्त करनेवाला) दोनों, उपर्युक्त सन्धियोंके कारणोंको ठीक २ समझें। फिर सन्धि करनेपर लाभ या हानिको तथा विग्रह करनेपर लाभ या हानिको अच्छी तरह सोच समझकर, जिसमें अपना कल्याण समझे, उसी मार्गका आश्रय लेवे ॥ ५० ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें सातवां अध्याय समाप्त ।

आठवां अध्याय ।

११४, ११५ प्रकरण ।

यातव्य सम्बन्धी व्यवहार, तथा अनुग्राह्य मित्रोंके विशेष ।

यातव्योऽभियास्यमानः संधिकारणमादातुकामो विहन्तुकामो वा सामवायिकानामन्यतमं लाभद्वैगुण्येन पणेत ॥ १ ॥

यातव्य विजिगीषु (जिसपर कोई विजिगीषु आक्रमण करे वह यातव्य कहाता है, यातव्य ही जब पहिले विजिगीषुपर आक्रमण करने लगे तो वह भी विजिगीषु ही है, इस प्रकारका यातव्य विजिगीषु), यान करनेके पहिले ही सन्धिके कारणको स्वीकार करने या अस्वीकार करनेकी इच्छावाला, अन्य सामवायिक (सहायक=साथी) सामन्तोंमेंसे किसी एकके साथ पूर्व निश्चित लाभसे दुगना लाभ देकर सन्धि करलेवे ॥ १ ॥

प्रपणितः क्षयव्ययप्रवासप्रत्यवायपरोपकारशरीराबाधांश्चास्य वर्णयेत् ॥ २ ॥ प्रतिपन्नमर्थेन योजयेत् ॥ ३ ॥ वैरं वा परैर्ग्राहयित्वा विसंवादयेत् ॥ ४ ॥

सन्धि करनेवाला; पुरुषोंका नाश, धनका व्यय, दूरदेशका आना जाना, मार्गके विघ्न, शत्रुके पक्षमें प्रवेशकर उसका उपकार करना, और शरीरकी पीड़ा (अर्थात् कदाचित् प्राणान्ततक होजाना), इन छः दोषोंको साथी सामन्तके सामने अच्छी तरह बतला देवे ॥ २ ॥ यदि वह इन सबको स्वीकार करलेवे, तो उसे प्रतिज्ञात धन देदेवे ॥ ३ ॥ यदि सन्धि कारणको ही स्वीकार न करे, तो दूसरे सामन्तोंके साथ इसका विरोध कराके सन्धि तोड़ देवे ॥ ४ ॥

दुरारब्धकर्माणं भूयः क्षयव्ययाभ्यां योक्तुकामः स्वारब्धां वा यात्रासिद्धिं विघातयितुकामो मूले यात्रायां वा प्रतिहन्तुकामो यातव्यसंहितः पुनर्याचितुकामः प्रत्युत्पन्नार्थकृच्छ्रस्तस्मिन्नविश्वस्तो वा तदात्वे लाभमल्पमिच्छेत् ॥ ५ ॥

अनुचित देश कालमें युद्धयात्राका आरम्भ करनेवाले सामन्तको फिर क्षय और व्ययसे युक्त करनेकी इच्छा करनेवाला, अथवा उचित देश कालमें यात्रा करनेपर अवश्य होनेवाली सिद्धिका विघात करनेकी इच्छा वाला, अथवा यात्रा करनेपर दुर्ग आदिके ऊपर आक्रमण करनेकी इच्छा वाला, यातव्यसे

उस समय थोड़ाही लेकर सन्धि करके फिर अधिक मांगनेकी कामना वाला, अथवा तत्काल अचानकही उत्पन्न अर्थ कष्टसे युक्त, अथवा यातव्यमें अविश्वास करनेवाला उस समय थोड़ाही लाभ लेकर सन्धि कर लेवे। और फिर भविष्यमें अधिक धन लेनेकी इच्छा करे ॥ ५ ॥

आयत्यां प्रभूतं मित्रोपकारममित्रोपघातमर्थानुबन्धमवेक्षमाणः पूर्वोपकारकं कारयितुकामो भूयस्तदात्वे महान्तं लाभमुत्सृज्यायत्यामल्पमिच्छेत् ॥ ६ ॥

किसी विशेष फलसे युक्त, मित्रके लाभ और शत्रुकी हानिको देखता हुआ, तथा पहिले उपकार करनेवालेको फिर करानेकी इच्छावाला, उस समय अधिक लाभको छोड़कर भविष्यमें भी थोड़े लाभकी कामना करे ॥ ६ ॥

दूष्यामित्राभ्यां मूलहरेण वा ज्यायसा विगृहीतं त्रातुकामस्तथाविधमुपकारं कारयितुकामः संबन्धावेक्षी वा तदात्वे चायत्यां च लाभं न प्रतिगृह्णीयात् ॥ ७ ॥

दूष्य तथा शत्रुसे अथवा किले आदि तोड़नेवाले अधिकशक्ति सामन्त से विगृहीत हुए २ साथीकी रक्षा चाहनेवाला, तथा इस प्रकारके उपकारोंको स्वयं या किसी अन्यके द्वारा करानेकी इच्छावाला, तथा यातव्यके साथ सम्बन्ध चाहनेवाला, उस समय और भविष्यमें भी अपने साथीसे लाभ न लेवे ॥ ७ ॥

कृतसंधिरतिक्रमितुकामः परस्य प्रकृतिकर्शनं मित्रामित्रसंधिविश्लेषणं वा कर्तुकामः पराभियोगाच्छङ्कमानो लाभमप्राप्तमधिकं वा याचेत ॥ ८ ॥

पहिले की हुई सन्धिको तोड़नेकी इच्छावाला, शत्रुके प्रकृतिजनोंको नष्ट करने और मित्र तथा शत्रुकी सन्धिको तोड़नेकी कामना करनेवाला, शत्रुके आक्रमणकी आशङ्का करनेवाला, अप्राप्त (न वसूल हुए २) तथा पूर्व निश्चित लाभसे अधिककी याचना करे ॥ ८ ॥

तमितरस्तदात्वे चायत्यां च क्रममपेक्षेत ॥ ९ ॥ तेन पूर्वे व्याख्याताः ॥ १० ॥

दूसरा सामन्त (जिससे लाभकी याचना की गई है), इस प्रकारकी मांगकी बाबत, उस समय तथा भविष्यमें होनेवाले लाभ हानिका अच्छी तरह विचार करे ॥ ९ ॥ इसी प्रकार पहिले तीन पक्षोंमें भी हानि लाभका विचार समझना चाहिए ॥ १० ॥

अरिविजिगीष्वोस्तु स्वं स्वं मित्रमनुगृह्णतोः शक्यकल्यभव्यारम्भिस्थिरकर्मानुरक्तप्रकृतिभ्यो विशेषः ॥ ११ ॥ शक्यारम्भी विषह्यं कर्मारभेत ॥ १२ ॥

शत्रु और विजिगीषु, जो कि अपने २ मित्रोंपर बड़ा अनुग्रह रखते हों, वे शक्यारम्भी , कल्यारम्भी, भव्यारम्भी, स्थिरकर्मा और अनुरक्त-प्रकृति, इन मित्रोंपर ही विशेष अनुग्रह करें ॥ ११ ॥ अपनी शक्तिके अनुसार कर सकने योग्य कार्यको ही आरम्भ करनेवाला शक्यारम्भी कहाता है ॥ १२ ॥

कल्यारम्भी निर्दोषम् ॥ १३ ॥ भव्यारम्भी कल्याणोदयम् ॥ १४ ॥ स्थिरकर्मा नासमाप्य कर्मोपरमते ॥ १५ ॥ अनुरक्तप्रकृतिः सुसहायत्वादल्पेनाप्यनुग्रहेण कार्यं साधयति ॥ १६ ॥

जो दोषरहित कार्य को आरम्भ करे वह कल्यारम्भी, ॥ १३ ॥ भविष्य में कल्याण रूप फल देने वाले कार्य को जो करे, वह भव्यारम्भी, ॥ १४ ॥ आरम्भ किये हुए कार्य को जो विना समाप्त किये न छोड़े वह स्थिरकर्मा, ॥१५॥ अनायास ही सहायक हो जानेके कारण, थोड़े सैन्य आदिसे भी कार्य को सिद्ध कर देने वाले अनुरक्तप्रकृति कहाते हैं ॥ १६ ॥

त एते कृतार्थाः सुखेन प्रभूतं चोपकुर्वन्ति ॥ १७ ॥ अतः प्रतिलोमे नानुग्राह्यः ॥ १८ ॥

यदि इन शक्यारम्भी आदि पांच प्रकारके मित्रों को सहायता दी जाय, तो कृतार्थ हुए २ ये बड़ी सुगमतासे बहुत अधिक सहायता देते हैं ॥ १७ ॥ जो इनसे विपरीत हों, अर्थात् अशक्यारम्भी आदि, उन पर कभी अनुग्रह न करे ॥ १८ ॥

तयोरेकपुरुषानुग्रहे यो मित्रं मित्रतरं वानुगृह्णाति सोऽतिसंधत्ते ॥ १९ ॥ मित्रादात्मवृद्धिं हि प्राप्नोति ॥ २० ॥

यदि शत्रु और विजिगीषु दोनों एकही पुरुष पर अनुग्रह करना चाहें, तो जो मित्र अथवा अतिशय मित्र हो, उसही पर अनुग्रह करना अच्छा होता है वह अत्यन्त लाभ पहुंचाता है । ॥ १९ ॥ क्योंकि मित्रसे सदा अपनी उन्नति ही होती है, अब उस पर अनुग्रह किया जाय, तो कहना ही क्या ? ॥ २० ॥

क्षयव्ययप्रवासपरोपकारानितरः ॥ २१ ॥ कृतार्थश्च शत्रुवैगुण्यमेति ॥ २२ ॥

जो मित्रके बजाय शत्रु पर अनुग्रह करता है, उसके पुरुषों का क्षय और धन का व्यय होता है, तथा दूर दूर देशमें जाना और शत्रु का उपकार करना पड़ता है। ॥ २१ ॥ और मतलब निकल आने पर शत्रु फिर विगड़ भी बैठता है। ॥ २२ ॥

मध्यमं त्वनुगृह्णतोर्यो मध्यमं मित्रं मित्रतरं वानुगृह्णाति सोऽतिसंधत्ते ॥ २३ ॥ मित्रादात्मवृद्धिं हि प्राप्नोति क्षयव्ययप्रवास-परोपकारानितरः ॥ २४ ॥

यदि मध्यवर्ती राजा पर शत्रु और विजिगीषु दोनों अनुग्रह करना चाहते हैं तो भी मित्र अथवा अतिशय मित्र परही अनुग्रह करना अच्छा तथा लाभदायक होता है। ॥ २३ ॥ क्योंकि मित्रसे सदा अपनी वृद्धि होती है। और शत्रु पर अनुग्रह करने वाले को सदा क्षय, व्यय, प्रवास तथा शत्रु का उपकार करना पड़ता है ॥ २४ ।

मध्यमश्चेदनुगृहीतो विगुणः स्यादमित्रोऽतिसंधत्ते ॥ २५ ॥ कृतप्रयासं हि मध्यमामित्रमपसृतमेकार्थोपगतं प्राप्नोति ॥ २६ ॥ तेनोदासीनानुग्रहो व्याख्यातः ॥ २७ ॥

अनुगृहीत हुआ २ मध्यम यदि बिगड़ जावे, तो अपने शत्रु को ही विशेष लाभ होता है। ॥ २५ ॥ क्योंकि पहिले मित्र बना हुआ, और अब बिगड़ जानेसे शत्रु हुआ २ मध्यम समान कार्य करने वाले मित्र को (विजिगीषु के शत्रुरूप) को प्राप्त कर लेता है। ॥ २६ ॥ इसी प्रकार उदासीन पर अनुग्रह करने का विवरण भी समझ लेना चाहिये ॥ २७ ॥

मध्यमोदासीनयोर्बलांशदाने यः शूरं कृतास्त्रं दुःखसहमनुरक्तं वा दण्डं ददाति सोऽतिसंधीयते ॥ २८ ॥ विपरीतोऽतिसंधत्ते ॥ २९ ॥

मध्यम और उदासीन राजाओं को सेना की सहायता देने के विषय में, जो शूर, अस्त्र आदि चलाने में सुचतुर, दुःख सहने वाले, अनुरक्त सैन्य को दे डालता है, वह ठगा जाता है, अर्थात् धोखा खाता है। ॥ २८ ॥ और जो अपनी इस प्रकार की सेना को नहीं देता, वह लाभ में रहता है ॥ २९ ॥

यत्र तु दण्डः प्रतिहतस्तं वा चार्थमन्यांश्च साधयति तत्र

मौलभृतश्रेणीमित्राटवीबलानामन्यतममुपलब्धदेशकालं दण्डं दद्यात् ॥ ३० ॥

जिस कार्यके किये जाते हुए पहिले भेजी हुई सेना नष्ट हो चुकी हो, उसी कार्यको पूरा करनेके लिये, या अन्य कार्योंको सिद्ध करनेके लिये, उस अवसरपर मौलबल, भृतबल, श्रेणीबल, मित्रबल तथा अटवीबल, इन पांचोंमेंसे किसी एक सेनाको उचित देश.कालके अनुसार भेजदेवे ॥ ३० ॥

अमित्राटवीबलं वा व्यवहितदेशकालम् ॥ ३१ ॥ यं तु मन्येत कृतार्थो मे दण्डं गृह्णीयादमित्राटव्यभूम्यनृतुषु वा वासयेदफलं वा कुर्यादिति दण्डव्यासङ्गापदेशेनैनमनुगृह्णीयात् ॥३२॥

अथवा दूरदेश और अधिक कालके लिये अमित्रबल या अटवीबलको ही देवे, अन्य मौल आदिको नहीं ॥ ३१ ॥ जिस उदासीन या मध्यमको यह समझे कि,—यह अपना काम निकालकर मेरी सेनाको अपने अधीन करलेगा; अथवा शत्रुके पास, आटविकोंके पास, न रहने योग्य स्थानों तथा ऋतुओंमें रक्खेगा; अथवा मेरी सेनाको जीतके धनमेंसे कुछ हिस्सा न देगा; उसको 'मेरी सेना किसी दूसरे काममें लगी हुई है' ऐसा बहाना करके सेना न देवे ॥ ३२ ॥

एवमवश्यं त्वनुगृहीतव्ये तत्कालसहमस्मै दण्डं दद्यात् ॥३३॥ आसमाप्तेश्चैनं वासयेद्योधयेच्च बलव्यसनेभ्यश्च रक्षेत् ॥ ३४ ॥

यदि इस प्रकारके राजाको अवश्य ही सहायता देनी पड़जावे, तो उस समयके लिये समर्थ सेनाको, उसे देदेवे ॥ ३३ ॥ और कार्य समाप्त होनेपर सेनाको योग्य भूमि आदिमें निवास कराये, तथा अवसर आनेपर युद्ध करावे। और सैनिक आपत्तियोंसे या हथियार आदिके टूट फूट जानेसे उन्हें सुरक्षित रक्खे ॥ ३४ ॥

कृतार्थाच्च सापदेशमपस्रावयेत् ॥ ३५ ॥ दूष्यामित्राटवीदण्डं वास्मै दद्यात् ॥३६॥ यातव्येन वा संधायैनमतिसंदध्यात् ॥३७॥

काम निकल जानेपर उदासीन या मध्यमसे, कुछ बहाना करके अपनी सेनाको वहांसे बुलवा लेवे ॥ ३५ ॥ और फिर अवसर आनेपर अपनी दूष्य सेना शत्रु सेना, या अटवीसेनाको उसे देदेवे ॥ ३६ ॥ अथवा यातव्यके साथ सन्धि करके मध्यम या उदासीनसे खूब लाभ (पूर्व निश्चितसे भी अधिक, लेवे ॥३७॥

समे हि लाभे संधिः स्याद्विषमे विक्रमो मतः ।
समहीनविशिष्टानामित्युक्तः संधिविक्रमः ॥ ३८ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे यातव्यवृत्तिरनुग्राह्यमित्रविशेषा अष्टमो ऽध्यायः ॥ ८ ॥ आदितः षट्छतः ॥ १०६ ॥

बराबर लाभ होनेपर सन्धि, और लाभमें न्यूनाधिकता होनेपर विग्रह करना चाहिये । सम हीन और विशिष्ट राजाओंके सन्धि तथा विक्रम इस अध्यायमें निरूपण किये गये हैं ॥ ३८ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें आठवां अध्याय समाप्त ।

नौवां अध्याय

११६ प्रकरण

मित्र, हिरण्य भूमि तथा कर्म (दुर्ग) आदिके द्वाराकी हुई सन्धि ।
इस नवम अध्यायमें मित्र सन्धि और हिरण्यसन्धिका ही निरूपण किया जायगा ।

संहितप्रयाणे मित्रहिरण्यभूमिलाभानामुत्तरोत्तरो लाभः श्रेयान् ॥ १ ॥ मित्रहिरण्ये हि भूमिलाभाद्भवतो मित्रं हिरण्यलाभात् ॥२॥ यो वा लाभः सिद्धः शेषयोरन्यतरं साधयति स श्रेयान् ॥ ३ ॥

मिलकर यात्रा करनेके विषयमें मित्र, हिरण्य और भूमि इन लाभोंमेंसे उत्तरोत्तर लाभ श्रेष्ठ है, अर्थात् मित्र लाभकी अपेक्षा हिरण्य लाभ और हिरण्यलाभकी अपेक्षा भूमिलाभ उत्तम समझा जाता है ॥ १ ॥ क्योंकि भूमिलाभसे मित्र और हिरण्य दोनों प्राप्त हो सकते हैं, तथा हिरण्य लाभसे मित्र लाभ हो सकता है ॥ २ ॥ अथवा जो सिद्ध हुआ २ लाभ, शेष (दोनों या) दोनोंमेंसे किसी एकको सिद्ध करसके, वही श्रेष्ठ समझना चाहिये ॥ ३ ॥

त्वं चाहं च मित्रं लभावह इत्येवमादिभिः समसंधिः ॥४॥ त्वं मित्रमित्येवमादिभिर्विषमसंधिः ॥ ५ ॥ तयोर्विशेषलाभादतिसंधिः ॥ ६ ॥ समसंधौ तु यः संपन्नं मित्रं मित्रकृच्छ्रे वा मित्रमवाप्नोति सो ऽतिसंधत्ते ॥७॥ आपाद्धि सौहृदस्थैर्यमुत्पादयति ॥८॥

तू और मैं दोनों मित्र को लाभ करें, इस प्रकार की हुई सन्धि समसन्धि होती है । ॥ ४ ॥ तू मित्र को लाभ कर मैं हिरण्य को, तू हिरण्य को लाभ कर मैं भूमिको' इस प्रकार कीहुई सन्धि विषमसन्धि कहाती है ॥ ५ ॥ उन दोनों समसन्धि और विषमसन्धिमें, पूर्व निश्चितसे अधिक लाभ हो, वह अतिसन्धि होती है ॥ ६ ॥ समसन्धिमें तो, जो सम्पन्न (देखो=यही अध्याय ९, सू. ५०) मित्रको, अथवा विपत्तिग्रस्त मित्रको प्राप्त करता है, वह अतिसन्धि निमित्तक विशेष लाभको पाता है ॥ ७ ॥ क्योंकि आपत्ति, मित्रतामें दृढ़ता को पैदा कर देती है, अर्थात् आपत्तिमें मित्रता स्थिर होजाती है ॥ ८ ॥

मित्रकृच्छ्रेऽपि नित्यमवश्यमनित्यं वश्यं वेति ॥९॥ नित्यमवश्यं श्रेयः ॥ १० ॥ तद्ध्यनुपकुर्वदपि नापकरोतीत्याचार्याः ॥ ११ ॥

मित्रकी विपत्ति दशामें भी, अपने वशमें न रहनेवाले सार्वदिक मित्र (जो सदा अपना मित्र बना रहे) का प्राप्त होना अच्छा है, या अपने वशमें रहनेवाले पर, थोड़े दिनके लिये ही मित्रता रखनेवाले मित्रका प्राप्त होना अच्छा है ॥ ९ ॥ इस विषयमें आचार्योंका मत है कि वशमें न रहनेवाले सार्वदिक मित्रका प्राप्त करनाही अच्छा है ॥ १० ॥ क्योंकि वह उपकार न करनेपर भी कभी अपकार भी नहीं कर सकता ॥ ११ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १२ ॥ वश्यमनित्यं श्रेयः ॥१३॥ यावदुपकरोति तावन्मित्रं भवत्युपकारलक्षणं मित्रमिति ॥ १४ ॥

परन्तु कौटल्य इस बातको नहीं मानता ॥ १२ ॥ उसका सिद्धान्त है कि अपने अधीन रहनेवाला थोड़े दिनका भी मित्र अच्छा होता है ॥ १३ ॥ क्योंकि वह जबतक अपना उपकार करता रहता है, तभी तक मित्र रहता है । मित्रका स्वरूपही, अपने साथीकी भलाई करना है ॥ १४ ॥

वश्ययोरपि महाभोगमनित्यमल्पभोगं वा नित्यमिति ॥१५॥ महाभोगमनित्यं श्रेयः ॥ १६ ॥ महाभोगमनित्यमल्पकालेन महदुपकुर्वन्महान्ति व्ययस्थानानि प्रतिकरोतीत्याचार्याः ॥१७॥

अपनी अधीनता स्वीकार करनेवाले दोनों मित्रोंमें भी, थोड़े ही समयके लिये अधिक कर देने वाला अच्छा है, या सर्वदाके लिये थोड़ा २ कर आदि देनेवाला अच्छा है ? ॥ १५ ॥ इस विषयमें आचार्योंका सिद्धान्त है, कि थोड़े दिनतक ही कर आदि अधिक देनेवाला अच्छा है ॥ १६ ॥ क्योंकि वह थोड़ेही दिनोंमें बहुत अधिक धन सामग्री देकर विजिगीषुका महान उपकार करता है ।

तथा अपनी सहायतासे, उसके व्ययस्थानोंका प्रतीकार कर देता है। अर्थात् विजिगीषुका, जिन २ राजकार्योंमें व्यय होता है, उस व्ययमें यह भी सहायक हो जानेसे, उसका व्ययभार कम कर देता है ॥ १७ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १८ ॥ नित्यमल्पभोगं श्रेयः ॥ १९ ॥ महाभोगमनित्यमुपकारभयादपक्रामति ॥ २० ॥ उपकृत्य वा प्रत्यादातुमीहते ॥२१॥ नित्यमल्पभोगं सातत्यादल्पमुपकुर्वन्महता कालेन महदुपकरोति ॥ २२ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्यका यह सिद्धान्त नहीं है ॥१८॥ वह कहता है कि सदाके लिये थोड़ा २ देनेवाला ही मित्र अच्छा है ॥ १९ ॥ क्योंकि एक साथ अधिक देनेवाला मित्र, इसी भयसे बहुत जल्दी मित्रता छोड़ बैठता है ॥ २०॥ और फिर वह इसके लियेभी यत्न करने लगता है कि जो कुछ मैंने इसे दिया है, वह किसी तरह वापस करना चाहिए ॥ २१ ॥ तथा सदाके लिये निरन्तर थोड़ा २ देनेवाला भी बहुत समयके पश्चात् विजिगीषुका महान उपकार कर देता है अर्थात् उसका धीरे २ लगातार थोड़ा २ उपकार किया हुआभी कालान्तरमें महान होजाता है ॥ २२ ॥

गुरुसमुत्थं महन्मित्रं लघुसमुत्थमल्पं वेति॥२३॥ गुरुसमुत्थं महन्मित्रं प्रतापकरं भवति ॥ २४ ॥ यदा चोत्तिष्ठते तदा कार्यं साधयतीत्याचार्याः ॥ २५ ॥

बड़ी कठिनतासे चिरकाल तक प्रयत्न करनेपर, शत्रुसे युद्ध करनेके तैयार होनेवाला प्रबल मित्र अच्छा है, या सरलतासे ही झट तैयार होजाने वाला अल्पशक्ति मित्र अच्छा है ? ॥ २३ ॥ आचार्योंका इस विषयमें यही सिद्धान्त है, कि कठिनतासे तैयार होनेवालाभी प्रबल मित्र अच्छा है, क्योंकि वह शत्रुओंका दमन अच्छी तरह करसकता है ॥ २४ ॥ और जबभी तैयार हो जायगा, कार्यको अवश्यही पूरा करदेगा ॥ २५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २६ ॥ लघुसमुत्थमल्पं श्रेयः ॥ २७ ॥ लघुसमुत्थमल्पं मित्रं कार्यकालं नातिपातयति दौर्बल्याच्च यथेष्टभोग्यं भवति नेतरत्प्रकृष्टभौमम् ॥ २८ ॥

परन्तु कौटल्य इसको स्वीकार नहीं करता ॥ २६ ॥ वह कहता है, कि सरलतासे झट तैयार होजाने वाला, अल्प शक्तिभी मित्र अच्छा होता है ॥२७॥ क्योंकि ऐसा मित्र अवसरको कभी नहीं चूकता। अर्थात् जब अवसर होता है तत्काल ही कार्य करनेके लिये तैयार होजाता है। कार्यके समयको टलने नहीं

देता। और अपनेसे दुर्बल होनेके कारण अपनी इच्छानुसार कार्यमें लगाया जासकता है। परन्तु ये सब बातें दूसरे मित्रमें नहीं हो सकतीं, और विशेषकर उस अवस्थामें, जबकि वह किसी दूर देशमें रहता हो ॥ २८ ॥

विक्षिप्तसैन्यमवश्यसैन्यं वेति ॥ २९ ॥ विक्षिप्तं सैन्यं शक्यं प्रतिसंहर्तुं वश्यत्वादित्याचार्याः ॥ ३० ॥

जिस मित्र राजाकी सेना, अन्य कार्योंको सिद्ध करनेके लिये अनेक स्थानोंमें भेजी हुई हो, ऐसा वश्य (अपने वशमें रहनेवाली) सेना रखनेवाला मित्र अच्छा, या जिसकी सेना वशमें तो न हो, पर सब अपने पास विद्यमान हो ऐसा मित्र अच्छा है ? ॥ २९ ॥ आचार्योंका इस विषयमें यही सिद्धान्त है कि इधर उधर बिखरी हुई सेना वालाभी मित्र अच्छा होता है क्योंकि वह सेना अपने वशमें होनेके कारण शीघ्रही इकट्ठी की जासकती है ॥ ३० ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३१ ॥ अवश्यसैन्यं श्रेयः ॥ ३२ ॥ अवश्यं हि शक्यं सामादिभिर्वश्यं कर्तुम् ॥ ३३ ॥ नेतरत्कार्येष्वासक्तं प्रतिसंहर्तुम् ॥ ३४ ॥

परन्तु कौटल्य इस बातको नहीं मानता ॥ ३१ ॥ वह कहता है कि जिसकी सेना अपने वशमें नहीं है, पर अपने पासही सब एकत्रित विद्यमान है, वही मित्र अच्छा है ॥ ३२ ॥ क्योंकि साम आदि उपायोंके द्वारा अवश्य सेनाको भी अपने वशमें किया जासकता है, और तत्काल उसे यथेच्छ कार्योंपर लगाया जासकता है ॥ ३३ ॥ परन्तु इधर उधर बिखरी हुई सेना, अपने अपने कार्योंमें लगी हुई होनेके कारण तत्काल ही एकत्रित नहीं की जासकती ॥ ३४ ॥

पुरुषभोगं हिरण्यभोगं वा मित्रमिति ॥ ३५ ॥ पुरुषभोगं मित्रं श्रेयः ॥ ३६ ॥ पुरुषभोगं मित्रं प्रतापकरं भवति ॥ ३७ ॥ यदा चोत्तिष्ठते तदा कार्यं साधयतीत्याचार्याः ॥ ३८ ॥

पुरुषोंके द्वारा उपकार करनेवाला मित्र अच्छा है, या हिरण्यके द्वारा उपकार करनेवाला अच्छा ? ॥ ३५ ॥ इस विषयमें आचार्योंका सिद्धान्त है कि पुरुषोंके द्वारा उपकार करनेवाला मित्र अच्छा है क्योंकि वह स्वयं ही शत्रुओंके ऊपर आक्रमण करसकता है, और उन्हें दबा सकता है ॥ ३७ ॥ और जबकभी भी किसी कार्यको करनेके लिये तैयार होजाता है, अवश्य ही उस कार्यको पूरा कर डालता है ॥ ३८ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३९ ॥ हिरण्यभोगं मित्रं श्रेयः ॥ ४० ॥

नित्योहि हिरण्येन योगः कदाचिद्दण्डेन दण्डश्च हिरण्येनान्ये च कामाः प्राप्यन्त इति ॥ ४१ ॥

परन्तु कौटल्य इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता ॥ ३९ ॥ वह कहता है कि हिरण्य आदिसे सहायता करनेवाला मित्रही श्रेष्ठ है ॥ ४० ॥ क्योंकि धनकी सदाही आवश्यकता रहती है, और सेना आदिकी आवश्यकता कभी २ होती है । तथा धन होनेपर उसके द्वारा सेनाका संग्रहभी किया जासकता है, और अन्य कामनाओंको भी पूरा किया जासकता है ॥ ४१ ॥

हिरण्यभोगं भूमिभोगं वा मित्रमिति ॥ ४२ ॥ हिरण्यभोगं गतिमत्त्वात्सर्वव्ययप्रतीकारकरमित्याचार्याः ॥ ४३ ॥

हिरण्य आदि धन देनेवाला मित्र अच्छा, या भूमि देनेवाला मित्र अच्छा ॥ ४२ ॥ आचार्योंका इस विषयमें यही सिद्धान्त है, कि हिरण्य आदि धनकी सहायता देनेवालाही मित्र अच्छा है । क्योंकि धनको चाहे जहां इच्छानुसार लेजाया जासकता है । और हरतरहके व्ययमें इसका उपयोग किया जा सकता है ॥ ४३ ॥

नेति कौटल्यः ॥४४॥ मित्रहिरण्ये हि भूमिलाभाद्भवत इत्युक्तं पुरस्तात् ॥४५॥ तस्माद्भूमिभोगं मित्रं श्रेय इति ॥ ४६ ॥

परन्तु कौटल्यका यह मत नहीं है ॥ ४४ ॥ वह कहता है कि 'मित्र और हिरण्य दोनोंही भूमिके द्वारा प्राप्त किये जासकते हैं' यह हम पहले कह चुके हैं ॥ ४५ ॥ इस लिये भूमिकी सहायता देनेवाला मित्र ही सबसे श्रेष्ठ होता है ॥ ४६ ॥

तुल्ये पुरुषभोगे विक्रमः क्लेशसहत्वमनुरागः सर्वबललाभो वा मित्रकुलाद्विशेषः ॥ ४७ ॥ तुल्ये हिरण्यभोगे प्रार्थितार्थता प्राभूत्यमल्पप्रयासता सातत्याच्च विशेषः ॥ ४८ ॥ तत्रैतद्भवति- ॥ ४९ ॥

दो मित्र यदि समान रूपसे पुरुषोंकी ही सहायता देनेवाले हों, तो उनमेंसे भी विक्रमशाली, क्लेशोंको सहन करनेवाला, अनुरागी और मौल भृत आदि सब तरहकी सेनाओंको देनेवाला मित्रही प्रशस्त समझा गया है ॥४७॥ समान रूपसे हिरण्य आदि धनकी सहायता देनेवाले दो मित्रोंमेंसे भी वही मित्र प्रशस्त समझा जाता है, जोकि मांगते ही बहुत, थोड़ा परिश्रम करनेपर भी बहुतधन देदेवे, और निरन्तर देतारहे ॥ ४८ ॥ अब इसके आगे मित्र तथा उनके गुणोंका निरूपण करते हैं:—॥ ४९ ॥

नित्यं वश्यं लघूत्थानं पितृपैतामहं महत् ।
अद्वैध्यं चेति संपन्नं मित्रं षड्गुणमुच्यते ॥ ॥ ५० ॥

नित्य, वश्य, लघूत्थान, पितृ पैतामह, महत् और अद्वैध्य ये छः प्रकारके मित्र परस्पर गुणोंके भेदसे होते हैं ॥ ५० ॥

ऋते यदर्थं प्रणयाद्रक्ष्यते यच्च रक्षति ।
पूर्वोपचितसंबन्धं तन्मित्रं नित्यमुच्यते ॥ ५१ ॥

धन आदि सम्बन्धके बिनाही, प्रथम उत्पन्न हुए योनिसम्बन्धके कारण अत्यन्त स्नेहसे विजिगीषु जिसकी रक्षा करता है, और इसी प्रकार जो विजिगीषु की रक्षा करता है, इस प्रकारके मित्रोंको 'नित्य' कहते हैं ॥ ५१ ॥

सर्वचित्रमहाभोगं त्रिविधं वश्यमुच्यते ।
एकतोभाग्युभयतः सर्वतोभोगि चापरम् ॥ ५२ ॥

वश्य मित्र तीन प्रकारका होता है:—सर्वभोग, चित्रभोग और महाभोग । जो सेना, धन और भूमि आदि सब तरहसे विजिगीषुकी सहायता करे, वह सर्वभोग कहाता है । केवल सेना और धनसे महान उपकार करने वाला महाभोग, तथा रत्न, तांबा, लोहा आदि खनिज पदार्थ और लकड़ी जंगल आदि भिन्न २ वस्तुओंसे सहायता करनेवाला चित्रभोग कहाता है । ये तीन भेद धनप्राप्तिके भेदसे बताये गये हैं । अनर्थ निवारणके द्वारा उपकार करनेसे भी वश्यमित्र तीन प्रकारके होते हैं:—एकतोभोगी उभयभोगी और सर्वतोभोगी । जो केवल शत्रुका प्रतीकार करे वह एकतोभोगी; जो शत्रु और शत्रुके मित्र दोनोंका प्रतीकार करे वह उभयतोभोगी; तथा जो शत्रु, शत्रुके मित्र और आटविक आदि सबका प्रतीकार करे वह सर्वतोभोगी कहाता है ॥ ५२ ॥

आदातृ वा दातॄपि वा जीवत्यरिषु हिंसया ।
मित्रं नित्यमवश्यं तद्दुर्गाटव्यपसारि च ॥ ५३ ॥

जो विजिगीषुका उपकार न करनेपर भी, शत्रुओंमें लूटमार करके कुछ ले देकर अपना निर्वाह करता है, और दुर्ग तथा अटवीमें रहनेके कारण अपनी रक्षा करता हुआ शत्रुके हाथ नहीं आता, वह विजिगीषुका वश्यमित्रता हीन नित्यमित्र होता है ॥ ५३ ॥

अन्यतो विगृहीतं वा लघुव्यसनमेव वा ।
संधत्ते चोपकाराय तन्मित्रं वश्यमध्रुवम् ॥ ५४ ॥

परन्तु जिसपर शत्रुने आक्रमण करदिया हो, अथवा और कोई छोटीसी आपत्ति जिसपर आपड़ी हो, इस कारण उपकार करनेके लिये विजिगीषुके

साथ जो सन्धि करलेवे, वह नित्य मित्रता हीन वश्यमित्र कहाता है। उपकारक होनेसे वश्य, तथा अपने उन्नतिकाल तकही मित्रता रखनेके कारण अनित्य होता है ॥ ५४ ॥

{ विना ही विशेषयत्नके जो अपनी सेनाको सहायताके लिये तैयार रक्खे वह 'लघूत्थान' जो पितृपितामह क्रमसे मित्र चला आया हो, वह पितृपैतामह, तथा जो अत्यन्त प्रतापी और अत्यधिक सेनासे युक्त हो, वह 'महत्' कहाता है। सरल होनेके कारण यहां मूलग्रन्थमें इनके लक्षण आचार्य कौटल्यने नहीं बतलाये। इनको छोड़करही अब अद्वैध्य मित्रका स्वरूप बताते हैं:—

एकार्थेनार्थसंबन्धमुपकार्यविकारि च ।
मित्रभावि भवत्येतन्मित्रमद्वैध्यमापदि ॥ ५५ ॥

समानही सुखदुःखका अनुभव करनेवाला, सदा उपकार करनेवाला, कभी विकारको प्राप्त न होनेवाला, आपत्तिमें भी भिन्न न होनेवाला मित्र 'अद्वैध्य' कहाता है। इसी लिये मित्रताका नित्यसम्बन्ध होनेके कारण इसे 'मित्रभावी' भी कहा जाता है ॥ ५५ ॥

मित्रभावाद्ध्रुवं मित्रं शत्रुसाधारणाच्चलम् ।
न कस्यचिदुदासीनं द्वयोरुभयभावि तत् ॥ ५६ ॥

इसके विपरीत एक 'उभयभावी' मित्र होता है। वह शत्रु और विजिगीषु दोनोंका उपकार न करनेके कारण, तथा दोनोंका उपकार करनेके कारण, या दुर्बल होनेसे दोनोंका सेवक होनेके कारण तीन प्रकारका होता है। इनमेंसे पहिला फिर दो प्रकारका है:—एक सामर्थ्य होनेपर भी इच्छा न होनेसे उपकार न करने वाला, और दूसरा इच्छा होनेपर भी सामर्थ्याभावसे उपकार न करने वाला। इनमेंसे पहिलेको बताते हैं:—जो मित्र होनेके कारण नित्य और शत्रुका भी मित्र होनेके कारण अनित्य, शत्रु और विजिगीषु दोनोंका ही धनादिके द्वारा उपकार न करनेवाला (नित्यानित्योभयरूप) हो, वह उभयभावी मित्र कहाता है ॥ ५६ ॥

विजिगीषोरमित्रं यन्मित्रमन्तर्धितां गतम् ।
उपकारे निविष्टं वा शक्तं वानुपकारि तत् ॥ ५७ ॥

तथा भूम्यनन्तर (अपने देशसे लगे हुए देशका राजा) होनेके कारण विजिगीषुका शत्रुभूत, तथा शत्रु और विजिगीषुके बीचमें होनेके कारण मित्र

बना हुआ, इच्छा होनेपरभी असामर्थ्यके कारण दोनोंका उपकार न करने वाला, भी उभयभावी मित्र कहाता है ॥ ५७ ॥

प्रियं परस्य वा रक्ष्यं पूज्यं संबन्धमेव वा ।
अनुगृह्णाति यन्मित्रं शत्रुसाधारणं हि तत् ॥ ५८ ॥

जो विजिगीषुका मित्र, शत्रुका प्रिय और रक्ष्य (रक्षा किये जाने योग्य) है, तथा शत्रुके साथ जिसका कोई पूज्य सम्बन्ध है, इस प्रकार शत्रु और विजगीषु दोनों का उपकार करनेवाला, दूसरा उभयभावी मित्र कहाता है ॥५८॥

प्रकृष्टभौमं संतुष्टं बलवच्चालसं च यत् ।
उदासीनं भवत्येतद्व्यसनादवमानितम् ॥ ५९ ॥

दूरदेशमें रहनेवाला, सन्तोषी बलवान्, आलसी तथा अन्य द्यूत आदि व्यसनोंके कारण तिरस्कृत हुआ २ मित्र, उपकार करनेके समय उदासीन हो जाता है ॥ ५९ ॥

अरेर्नेतुश्च यद्वृद्धिं दौर्बल्यादनुवर्तते ।
उभयस्याप्यविद्विष्टं विद्यादुभयभावि तत् ॥ ६० ॥

जो मित्र दुर्बल होनेके कारण, शत्रु और विजिगीषु दोनोंकी उन्नतिका अनुगामी होता है । किसीसे द्वेष नहीं करता, प्रत्युत दोनोंका आज्ञाकारी रहता है, वह तीसरे प्रकारका उभयभावी मित्र कहाता है ॥ ६० ॥

कारणाकरणध्वस्तं कारणाकरणागतम् ।
यो मित्रं समपेक्षेत स मृत्युमुपगूहति ॥ ६१ ॥

बिनाही कारण छोड़कर चले जानेवाले, तथा बिनाही कारण फिर आकर मिल जानेवाले मित्रको जो अपने यहां रख लेता है । वह निश्चय ही मृत्युका आलिङ्गन करता है अर्थात् इस प्रकारके मित्रको रखकर अवश्य धोखा खाता और शीघ्र ही नष्ट कर दिया जाता है ॥ ६१ ॥

क्षिप्रमल्पो लाभश्चिरान्महानिति वा ॥ ६२ ॥ क्षिप्रमल्पो लाभः कार्यदेशकालसंवादकः श्रेयानित्याचार्याः ॥ ६३ ॥

शीघ्र होजानेवाला थोड़ासा लाभ अच्छा, या देरमें होनेवाला महान लाभ अच्छा ? इसपर विचार किया जाता है ॥ ६२ ॥ प्राचीन आचार्योंका इस विषयमें यह सिद्धान्त है कि शीघ्र होजानेवाला थोड़ासा लाभही अच्छा होता है, क्योंकि शीघ्र लाभ होजानेपर, इस बातका विचार किया जासकता है कि अमुक कार्यमें अमुक देश या समयमें इतना लाभ होजायगा ॥ ६३ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६४ ॥ चिरादविनिपाती बीजसधर्मा महांल्लाभः श्रेयान्विपर्यये पूर्वः ॥ ६५ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्यका यह सिद्धान्त नहीं है ॥ ६४ ॥ वह कहता है कि चिरकालमें होनेवाला भी विघ्न रहित धान्य बीज आदिका महान लाभ होना अत्यन्त श्रेष्ठ है। परन्तु महान लाभमें विघ्न होनेकी सम्भावना होनेपर तो पूर्वोक्त आचार्योंका मत ही उपादेय है ॥ ६५ ॥

एवं दृष्ट्वा ध्रुवे लाभे लाभांशे च गुणोदयम् ।
स्वार्थसिद्धिपरो यायात्संहितः सामवायिकैः ॥ ६६ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे मित्रहिरण्यभूमिकर्मसंधौ मित्रसंधिः हिरण्यसंधिः नवमो ऽध्यायः ॥ ९ ॥

आदितः सप्तशतः ॥ १०७ ॥

इस प्रकार निश्चयरूपसे अपने लाभको जानकर, थोड़ा लाभ होनेपर मित्रकी प्राप्तिको जानकर, अन्य राजाओंसे सन्धि करके विजिगीषु, सदा अपनी अर्थ सिद्धि करनेमें तत्पर रहे ॥ ६६ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें नौवां अध्याय समाप्त।

दसवां अध्याय

११६ प्रकरण

भूमिसन्धि ।

त्वं चाहं च भूमिं लभावहे इति भूमिसंधिः ॥ १ ॥ तयोर्यः प्रत्युपस्थितार्थः संपन्नां भूमिमवाप्नोति सो ऽतिसंधत्ते ॥ २ ॥

'तुम और मैं भूमिको प्राप्त करें' इस प्रकार की हुई भूमि निमित्तक सन्धिको 'भूमिसन्धि' कहते हैं। शत्रु और विजिगीषु दोनोंको समान भावमें भूमिकी ही प्राप्ति होनेसे, यह 'समसन्धि' भी कहाती है ॥ १ ॥ शत्रु और विजिगीषु दोनोंमेंसे जो आवश्यक कार्योंमें व्यय करनेके लिये धन और गुणी भृत्य जनोंको शीघ्र उपस्थित कर, सम्पन्न समृद्ध भूमिको प्राप्त करता है, वह विशेष लाभ उठाता है ॥ २ ॥

तुल्ये संपन्नालाभे यो बलवन्तमाक्रम्य भूमिमवाप्नोति सो ऽतिसंधत्ते ॥ ३ ॥ भूमिलाभं शत्रुकर्शनं प्रतापं च हि प्राप्नोति ॥ ४ ॥

दोनोंको समानरूपसे समृद्ध भूमिके प्राप्त होनेपर भी, वहां विशेष

लाभ उठाता है, जो बलवान् शत्रुपर आक्रमण करके, उसे दबाकर भूमिको प्राप्त करता है ॥ ३ ॥ क्योंकि ऐसा करनेसे भूमिका लाभ भी होता है, और शत्रुका नाशभी, तथा सर्वत्र अपने प्रतापका विस्तार भी होजाता है ॥ ४ ॥

दुर्बलाद्भूमिलाभे सत्यं सौकर्यं भवति ॥ ५ ॥ दुर्बल एव च भूमिलाभः तत्सामन्तश्च मित्रममित्रभावं गच्छति ॥ ६ ॥

यद्यपि दुर्बलसे भूमि प्राप्त करना निस्सन्देह सुकर है ॥ ५ ॥ परन्तु इस प्रकारका भूमिलाभ अत्यन्त निकृष्ट होता है, क्योंकि यह एक दुर्बलकी हिंसा करके प्राप्त किया जाता है । तथा दुर्बलका पड़ोसी राजा भूम्यनन्तर होने-से उसका शत्रुभूत, और विजिगीषुका मित्र, विजिगीषुकी इस कार्यवाहीको देखकर उसका शत्रु बनजाता है । क्योंकि उसके हृदयमें यह सन्देह उत्पन्न हो जाता है कि अब इसने दुर्बलको दबाया है, फिर यह मुझपरभी आक्रमण कर देगा । यह सोचकर वह दुर्बलका सहायक बनजाता है । और विजिगीषुका शत्रु बनकर उसके लिये अनर्थ खड़ाकर सकता है । इसलिए दुर्बलसे भूमिलेना श्रेयस्कर नहीं ॥ ६ ॥

तुल्ये बलीयस्त्वे यः स्थितशत्रुमुत्पाट्य भूमिमवाप्नोति सोऽतिसंधत्ते ॥ ७ ॥ दुर्गावाप्तिर्हि स्वभूमिरक्षणं मित्राटवीप्रतिषेधं च करोति ॥ ८ ॥

दो शत्रुओंके समान बलशाली होनेपर, जो विजिगीषु स्थायी शत्रुको उच्छिन्न करके भूमिलाभ करता है, वही विशेष लाभ उठाता है ॥ ७ ॥ क्योंकि शत्रुके दुर्ग आदि अपने हाथमें आजानेपर, अपनी भूमिकी रक्षा तथा अन्यशत्रु और आटविकोंका प्रतीकारभी सरलतासे किया जासकता है ॥ ८ ॥

चलामित्राद्भूमिलाभे शक्यसामन्ततो विशेषः ॥९॥ दुर्बल-सामन्ता हि क्षिप्राप्यायनयोगक्षेमा भवन्ति ॥ १० ॥ विपरीता बलवत्सामन्ता कोशदण्डावच्छेदिनी च भूमिर्भवति ॥ ११ ॥

अस्थिर (जिसके पास अपना दुर्ग आदि नहीं है) शत्रुसे समानरूपसे भूमि-लाभ करनेपर भी उसी अवस्थामें विशेष लाभ रहता है, जबकि अस्थिर शत्रुका पड़ोसी दुर्बल हो ॥ ९ ॥ क्योंकि ऐसी भूमि (दुर्बलसामन्ता=जिसका सामन्त दुर्बल हो; उसका पड़ोसी राजा विजिगीषुके प्रति सामन्त कहाजाता है), विजि-गीषुके लिये शीघ्रही योग क्षेमको बढ़ानेवाली होती है ॥ १० ॥ परन्तु जिस भूमिका सामन्त बलवान हो, वह सर्वथा इसके विपरीत होती है । विजिगीषु के कोश और बलको क्षीणकरने वाली होती है ॥ ११ ॥

संपन्ना नित्यामित्रा मन्दगुणा वा भूमिरनित्यामित्रेति ॥१२॥ संपन्ना नित्यामित्रा श्रेयसी भूमिः ॥ १३ ॥ संपन्ना हि कोशदण्डौ संपादयति ॥१४॥ तौ चामित्रप्रतिघातकावित्याचार्याः ॥१५॥

विजिगीषुके लिये अत्यन्त समृद्धिशाली पर नित्य शत्रुसे युक्त भूमि लेनी श्रेयस्कर है, अथवा अत्यल्प समृद्धिशाली अनित्य शत्रुसे युक्त भूमि श्रेयस्कर है? ॥ १२ ॥ इस विषयमें प्राचीन आचार्योंका सिद्धान्त है कि अत्यन्त समृद्धिशाली नित्यशत्रुयुक्त भूमिही श्रेयस्कर है ॥ १३ ॥ क्योंकि सम्पन्न भूमिके द्वारा कोश और सेना दोनोंका संग्रह किया जासकता है ॥ १४ ॥ तथा ये दोनों शत्रुओंके नाशक हैं, अर्थात् कोश और सेनाके द्वारा फिर शत्रुओंका उच्छेद किया जासकता है ॥ १५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १६ ॥ नित्यामित्रलाभे भूयांश्शत्रुलाभो भवति ॥ १७ ॥ नित्यश्च शत्रुरुपकृते चापकृते च शत्रुरेव भवति ॥ १८ ॥ अनित्यस्तु शत्रुरपकारादनपकाराद्वा शाम्यति ॥१९॥

परन्तु कौटल्य इस सिद्धान्तको स्वीकार नहीं करता ॥ १६ ॥ वह कहता है कि नित्यशत्रुयुक्त भूमिके प्राप्त होनेपर अत्यधिक शत्रुका विरोध होजाता है। अर्थात् शत्रुता बढ़ती जाती है ॥ १७ ॥ क्योंकि जो नित्य शत्रु है, उसका चाहे उपकार कियाजाय, या अपकार; वह शत्रुही रहता है। अपनी सहज शत्रुताको कभी छोड़ नहीं सकता ॥ १८ ॥ परन्तु अनित्य शत्रुमें यह बात नहीं देखीजाती, उसके साथ उपकार या अपकार करनेसे वह अवश्यही शान्त हो जाता है। वह विजिगीषुका फिर अपकार नहीं करसकता ॥ १९ ॥

यस्या हि भूमेर्बहुदुर्गाश्चोरगणैर्म्लेच्छाटवीभिर्वा नित्याविरहिताः प्रत्यन्ताः सा नित्यामित्रा विपर्यये त्वनित्यामित्रेति ॥२०॥

जिस भूमिके सीमा प्रान्तोंमें होनेवाले बहुतसे दुर्ग, चोरों म्लेच्छों तथा आटविकोंसे सदा घिरे हुए रहते हों, वह भूमि 'नित्यामित्रा' कहाती है। और इससे विपरीत भूमि, अर्थात् जिसके सीमा प्रान्तके दुर्गोंमें चोर आदि न रहते हों, वह 'अनित्यामित्रा' कही जाती है ॥ २० ॥

अल्पा प्रत्यासन्ना महती व्यवहिता वा भूमिरिति ॥ २१ ॥ अल्पा प्रत्यासन्ना श्रेयसी ॥ २२ ॥ सुखा हि प्राप्तुं पालयितुमभिसारयितुं च भवति ॥ २३ ॥ विपरीता व्यवहिता ॥ २४ ॥

प्राप्त होनेवाली भूमियोंमें समीपकी थोड़ी भूमि अच्छी होती है, या दूरकी बहुतसी भूमि? ॥ २१ ॥ समीपकी थोड़ीभी भूमि श्रेयस्कर होती है

॥ २२ ॥ क्योंकि सुकरतासे उसकी प्राप्ति और रक्षा की जासकती है तथा विपत्ति कालमें उसका सहारा भी लिया जासकता है ॥ २३ ॥ परन्तु बहुत दूर की भूमि इसके विपरीत ही होती है ॥ २४ ॥

व्यवहिताव्यवहितयोरपि दण्डधारणात्मधारणा वा भूमिरिति ॥ २५ ॥ आत्मधारणा श्रेयसी ॥ २६ ॥ सा हि स्वसमुत्थाभ्यां कोशदण्डाभ्यां धार्यते ॥ २७ ॥ विपरीता दण्डधारणा दण्डस्थानमिति ॥ २८ ॥

दूर और समीपकी भूमिमें भी, लेनेके लिये पररक्षित भूमि अच्छी होती है, या स्वयं सुरक्षित भूमि अच्छी होती है ? ॥ २५ ॥ स्वयं सुरक्षित भूमिही अच्छी होती है ॥ २६ ॥ क्योंकि स्वयं स्थापित कियेहुए कोश और सेनाके द्वारा उसकी सुव्यवस्था की जासकती है ॥ २७ ॥ परन्तु पररक्षित भूमि इसके विपरीत होती है । दूसरे से स्थापित कियेहुए कोश और सेनाके द्वारा उसकी व्यवस्था कीजाती है । वह केवल अपनी रक्षाके लिये दूसरेसे स्थापित कीहुई सेनाके निवासका एक स्थानमात्र होती है २८ ॥

बालिशात्प्राज्ञाद्वा भूमिलाभ इति ॥ २९ ॥ बालिशाद्भूमिलाभः श्रेयान् ॥ ३० ॥ सुप्राप्यानुपाल्या हि भवत्यप्रत्यादेया च ॥ ३१ ॥ विपरीता प्राज्ञादनुरक्तेति ॥ ३२ ॥

मूर्ख शत्रुसे भूमिका लाभ होना अच्छा है या बुद्धिमान्से ? ॥ २९ ॥ मूर्ख शत्रु राजासे भूमिका मिलना श्रेयस्कर है ॥ ३० ॥ क्योंकि वह बड़ी सरलतासे प्राप्त होजाती है । और उसकी रक्षाभी सुखपूर्वक की जासकती है । तथा उसके फिर वापस लौटनेकीभी शङ्का नहीं रहती ॥ ३१ ॥ परन्तु बुद्धिमान्से प्राप्त हुई भूमि सर्वथा इसके विपरीत होती है । क्योंकि उसके अमात्य आदि प्रकृतिजन, तथा अन्य प्रजावर्ग, उसमें सदा अनुराग रखनेवाले होते हैं । ऐसी अवस्थामें यदि वह भूमि किसी तरह कठिनतासे लेभी लीजाय फिरभी उसके वापस होनेकी शङ्का बनी ही रहती है ॥ ३२ ॥

पीडनीयोच्छेदनीययोरुच्छेदनीयाद्भूमिलाभः श्रेयान् ॥३३॥ उच्छेदनीयो ह्यनपाश्रयो दुर्बलापाश्रयो वाभियुक्तः कोशदण्डावादायापसर्तुकामः प्रकृतिभिः त्यज्यते ॥ ३४ ॥ न पीडनीयो दुर्गमित्रप्रतिस्तब्ध इति ॥ ३५ ॥

पीडनीय (शत्रु आदिके द्वारा पीडित किया जानेवाला) और उच्छेद-

नीय (सर्वथा उच्छिन्न किया जानेवाला) इन दोनोंमेंसे उच्छेदनीयसे भूमिका लाभ होना श्रेयस्कर है ॥ ३३ ॥ क्योंकि निराश्रय या दुर्बलका आश्रय प्राप्त किये हुए उच्छेदनीयके ऊपर जब आक्रमण किया जाता है, तो वह कोश और सेना लेकर अपने स्थानसे भाग जानेकी इच्छा करता है। ऐसी अवस्थामें प्रकृति जन उसकी सहायता नहीं करते, उसे छोड़ देते हैं ॥ ३४ ॥ परन्तु पीडनीय, दुर्ग और मित्रोंकी सहायता प्राप्त करके, अपने स्थानपर ही स्थित रहता है, इसी लिये प्रकृतिजन उसका त्याग नहीं करते ॥ ३५ ॥

दुर्गप्रतिस्तब्धयोरपि स्थलनदीदुर्गीयाभ्यां स्थलदुर्गीयाद्भूमिलाभः श्रेयान् ॥ ३६ ॥ स्थलीयं हि सुरोधावमर्दास्कन्दमनिस्राविशत्रु च ॥ ३७ ॥ नदीदुर्गं तु द्विगुणक्लेशकरमुदकं च पातव्यं वृत्तिकरं चामित्रस्य ॥ ३८ ॥

दुर्गोंसे सुरक्षित हुए हुओंमेंसे भी स्थलदुर्गमें रहनेवालेसे भूमिलाभ होना अच्छा है, या नदीदुर्गमें रहनेवालेसे? स्थलदुर्गमें रहनेवालेसे ही भूमिलाभ होना अच्छा है ॥ ३६ ॥ क्योंकि स्थलमें रहनेवाले दुर्गको बड़ी सरलतासे घेरा जा सकता है, उच्छिन्न किया जा सकता है, तथा शत्रुको भी उसके भीतरसे निकल भागनेका सुयोग प्राप्त नहीं होसकता। अतएव शीघ्र ही वह आधीनता स्वीकार करता है। इसलिये इससे भूमिलाभ करना सरल और श्रेयस्कर है ॥ ३७ ॥ नदीदुर्ग तो दुगने कष्ट उठाकर भी वशमें नहीं आता। वहांपर पीने योग्य जलके होनेसे, तथा जलाधीन अन्न फल आदिके होजानेसे, शत्रुके निर्वाहमें कोई हानि नहीं पड़ती। अतएव इसका उच्छेद करना अत्यन्त कठिन होता है ॥ ३८ ॥

नदीपर्वतदुर्गीयाभ्यां नदीदुर्गीयाद्भूमिलाभः श्रेयान् ॥३९॥ नदीदुर्गं हि हस्तिस्तम्भसंक्रमसेतुबन्धनौभिः साध्यमनित्यगाम्भीर्यमपस्राव्युदकं च ॥ ४० ॥

नदीदुर्ग और पर्वत दुर्गमें रहने वालोंमेंसे, नदीदुर्गमें रहनेवालेसे भूमिलाभ होना अच्छा है ॥ ३९ ॥ क्योंकि नदीदुर्ग, हाथी लकड़ीके खम्भे आदि, पुल, बांधों तथा नावोंके द्वारा जलपार करके हस्तगत किया जा सकता है। जल भी उसमें सदा अधिक नहीं रहता, तथा किनारोंको तोड़कर जल निकाला भी जासकता है। अतएव इससे भूमिलाभ करना सरल है ॥ ४० ॥

पार्वतं तु स्वारक्षं दुरवरोधि कृच्छ्रारोहणं भग्ने चैकस्मिन्न सर्ववधः ॥ ४१ ॥ शिलावृक्षप्रमोक्षश्च महापकारिणाम् ॥ ४२ ॥

परन्तु पर्वत प्रदेशका दुर्ग अत्यन्त सुरक्षित पत्थर आदिसे बना हुआ सुदृढ़ होता है, इसको न सरलतासे घेरा जासकता है, और न इसपर चढ़ा जासकता है। अस्त्रोंके द्वारा एकके नष्ट होनेपर भी शेष सब सुरक्षित रहते हैं। उनकी कुछ हानि नहीं होती ॥ ४१ ॥ यदि कोई अत्यन्त बलशाली शत्रु उनपर आक्रमण करे, तो ऊपरसे उसपर शिला तथा वृक्ष आदि गिराकर बड़ी सरलतासे वे उसका प्रतीकार कर सकते हैं ॥ ४२ ॥

निम्नस्थलयोधिभ्यो निम्नयोधिभ्यो भूमिलाभः श्रेयान् ॥४३॥ निम्नयोधिनो ह्यपरुद्धदेशकालाः ॥ ४४ ॥ स्थलयोधिनस्तु सर्वदेशकालयोधिनः ॥ ४५ ॥

निम्नयोधी (नौका आदिमें बैठकर युद्ध करने वाले) और स्थलयोधी शत्रुओंमेंसे, निम्नयोधी शत्रुसे भूमिलाभ होना अच्छा है ॥ ४३ ॥ क्योंकि निम्नयोधी किसी विशेष देश या कालमें ही युद्ध कर सकते हैं, सर्वदा नहीं कर सकते। इसलिये उनसे भूमि लेना आसान है ॥ ४४ ॥ परन्तु स्थलयोधी सब देश और सब कालमें युद्ध कर सकते हैं, इसलिये उनको शीघ्र वशमें करना दुष्कर है ॥ ४५ ॥

खनकाकाशयोधिभ्यः खनकेभ्यो भूमिलाभः श्रेयान् ॥४६॥ खनका हि खातेन शस्त्रेण चोभयथा युध्यन्ते ॥ ४७ ॥ शस्त्रेणैवाकाशयोधिनः ॥ ४८ ॥

खनक योधी (खाई खोदकर उसमेंसे युद्ध करनेवाले) और आकाश योधी शत्रुओंमेंसे, खनकयोधी शत्रुसे भूमिलाभ करना अच्छा है ॥ ४६ ॥ क्योंकि वे युद्धके लिये खाई और शस्त्र दोनोंकी ही अपेक्षा रखते हैं, कभी कहीं खाईके योग्य उचित स्थान न मिलनेपर वे युद्ध नहीं कर सकते, अतः सबदेश और सब कालमें युद्ध न कर सकनेके कारण वे शीघ्र ही सरलतासे वशमें आ जाते हैं ॥ ४७ ॥ परन्तु आकाशयोधी शत्रुओंको युद्ध करनेके लिये केवल शस्त्र की ही अपेक्षा होती है। वे सबदेश और सबकालमें युद्ध कर सकते हैं। अतएव उनको वशमें करना अत्यन्त कठिन है ॥ ४८ ॥

एवंविधेभ्यः पृथिवीं लभमानोऽर्थशास्त्रवित् ।
संहितेभ्यः परेभ्यश्च विशेषमधिगच्छति ॥ ४९ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे अधिकरणे मित्रहिरण्यभूमिकर्मसंधौ भूमिसंधिः दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ आदितोऽष्टशतः ॥ १०८ ॥

अर्थशास्त्रको जाननेवाला विजिगीषु, उक्त प्रकारके सन्धि किये हुए तथा अन्य शत्रु राजाओंसे पृथ्वीका लाभ करता हुआ, सदा उन्नतिको प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें दसवां अध्याय समाप्त।

ग्यारहवां अध्याय

११६ प्रकरण

अनवसित सन्धि

निश्चयरूपसे किसी विशेष कार्यका नाम न लेकर, सामान्य रूपसे शून्य स्थानोंको नगर खान लकड़ीके जङ्गल आदिके द्वारा बसानेकी शर्त करके जो सन्धि की जाती है, उसे अनवसित सन्धि कहते हैं। जिस सन्धिमें दुर्ग आदि कार्योंका निश्चितरूपसे नाम लेदिया जाता है, वह 'कर्म सन्धि' अगले अध्यायमें बतलाई जावेगी। इन दोनों सन्धियोंमें केवल यही भेद है।

त्वं चाहं च शून्यं निवेशयावह इत्यनवसितसंधिः ॥ १ ॥ तयोर्यः प्रत्युपस्थितार्थो यथोक्तगुणां भूमिं निवेशयति सोऽतिसंधत्ते ॥ २ ॥

'आओ तुम और मैं शून्य स्थानोंको नगर आदिके द्वारा बसावें' इस प्रकार जो सन्धि की जाय, उसे अनवसित सन्धि कहते हैं ॥ १ ॥ उन दोनोंमेंसे जो, पूर्ण सामर्थ्यसे युक्त हुआ २. जनपदनिवेश आदि प्रकरणोंमें बताये हुए गुणोंसे सम्पन्न भूमिको बसाता है, वह दूसरेकी अपेक्षा विशेष लाभको प्राप्त करता है ॥ २ ॥

तत्रापि स्थलमौदकं वेति ॥ ३ ॥ महतः स्थलादल्पमौदकं श्रेय सातत्यादवस्थितत्वाच्च फलानाम् ॥ ४ ॥

यथोक्त गुण सम्पन्न होनेपर भी, स्थल अर्थात जहां केवल वृष्टिसे ही जल प्राप्त हो सके, ऐसी भूमि अच्छी है, या औदक अर्थात जहां सदा जलसे भरे तलाब अथवा नदी हो, ऐसी भूमि अच्छी है ॥ ३ ॥ बड़ी अधिक भी स्थल भूमिसे थोड़ी औदक भूमि अच्छी है। क्योंकि वहां सर्वदा निश्चित रूपसे फलों आदिकी उत्पत्ति हो सकती है ॥ ४ ॥

स्थलयोरपि प्रभूतपूर्वापरसस्यमल्पवर्षपाकमसक्तारम्भं श्रेयः

॥ ५ ॥ औदकयोरपि धान्यवापमधान्यवापाच्छ्रेयः ॥ ६ ॥

दो स्थल भूमियोंमें भी वही भूमि उत्तम होती है, जहां बराबर आगे पीछे होनेवाली वसन्त तथा शरदकी फसलें बहुत अच्छी होती हों, तथा थोड़ी ही वृष्टिसे अन्न आदि सरस होकर पकजाते हों। और जो ऊबड़ खाबड़ तथा कंकरीली पथरीली न होनेसे अच्छी तरह जोती बोई जासके ॥ ५ ॥ दो औदक भूमियोंमें भी वही भूमि उत्तम है, जहां गेहूँ धान आदि अच्छी तरह बोये जासकें। जहां ये अन्न न हों वह भूमि अच्छी नहीं ॥ ६ ॥

तयोरल्पबहुत्वे धान्यकान्तादल्पान्महदधान्यकान्तं श्रेयः ॥७॥ महत्यवकाशे हि स्थाल्याश्चानूप्याश्चौषधयो भवन्ति ॥ ८ ॥ दुर्गादीनि च कर्माणि प्राभूत्येन क्रियन्ते ॥ ९ ॥ कृत्रिमा हि भूमिगुणाः ॥ १० ॥

उसमें भी थोड़ा या बहुतका विचार करनेपर, धान्य आदिसे युक्त थोड़ी भूमिसे, धान्य आदि पैदा न करनेवाली भी बहुत भूमि श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥ क्योंकि अधिक भूमिका विस्तार होनेपर उसमें कहीं न कहीं स्थल तथा जलप्राय प्रदेशोंमें अनेक प्रकारके अन्न आदि उत्पन्न किये जासकते हैं ॥ ८ ॥ और दुर्ग आदि रक्षाके स्थायी साधनोंको अधिक संख्यामें बना या जासकता है ॥ ९ ॥ क्योंकि वस्तुतः भूमि सम्बन्धी गुण अपनी इच्छाके अनुसार बनाये जासकते हैं। तात्पर्य यह है, कि करनेवाला, भूमिको जैसा चाहे वैसा बना सकता है, इस लिये अधिकसे अधिक भूमिका हाथमें आजाना अच्छा है ॥ १० ॥

खनिधान्यभोगयोः खनिभोगः कोशकरः ॥११॥ धान्यभोगः कोशकोष्ठागारकरः ॥ १२ ॥ धान्यमूलो हि दुर्गादीनां कर्मणामारम्भः ॥१३॥ महाविषयविक्रयो वा खनिभोगः श्रेयान् ॥१४॥

खानयुक्त तथा धान्ययुक्त स्थानोंमेंसे पहिला स्थान केवल कोशकी वृद्धि करसकता है ॥ ११ ॥ परन्तु दूसरा धान्योपयोगी स्थान कोश और कोष्ठागार (अनाज रखनेके बड़े २ स्थान) दोनोंको बढ़ाता है ॥ १२ ॥ क्योंकि दुर्ग आदि कार्योंका आरम्भ भी धान्य मूलक ही होता है। इसलिये धान्योपयोगी स्थान श्रेयस्कर है ॥ १३ ॥ अथवा खानोंका स्थान भी उत्तम है, क्योंकि वहांसे उत्पन्न हुई वस्तुओंका बड़ाभारी व्यापार किया जासकता है ॥ १४ ॥

द्रव्यहस्तिवनभोगयोर्द्रव्यवनभोगः सर्वकर्मणां योनिः प्रभूतनिधानक्षमश्च ॥१५॥ विपरीतो हस्तिवनभोग इत्याचार्याः ॥१६॥

बढ़िया लकड़ीके जंगल और हाथियोंके जंगलोंमेंसे कौनसा उत्तम होता है ? आचार्योंका सिद्धान्त है कि, लकड़ीके लिये उपयोगी जंगल ही अच्छा होता है। क्योंकि दुर्ग आदि सभी कार्योंमें लकड़ी की अत्यन्त आवश्यकता होती है। तथा उसका अधिकसे अधिक संचयभी सरलता से किया जासकता है ॥ १५ ॥ परन्तु हाथीके जंगलोंमें यह बात नहीं होती, इसलिये पहिलाही उत्तम है ॥ १६ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १७ ॥ शक्यं द्रव्यवनमनेकमनेकस्यां भूमौ वापयितुं न हस्तिवनम् ॥ १८ ॥ हस्तिप्रधानो हि परानीकवध इति ॥ १९ ॥

कौटल्य इस उपयुक्त सिद्धान्तको स्वीकार नहीं करता ॥ १७ ॥ उसका कहना है कि तरह २ की लकड़ीके जंगल अनेक स्थानोंमें अपनी इच्छाके अनुसार लगाये जा सकते हैं। परन्तु हाथियोंके जंगल स्वयं उत्पन्न नहीं किये जा सकते; हाथी किसी २ जंगलमेंही उत्पन्न होते हैं ॥ १८ ॥ और शत्रुकी सेनाको नष्ट करनेके लिये हाथी एक प्रधान वस्तु है इसलिये हाथियोंकी उत्पत्तिका उपयोगी जंगलही उत्तम समझना चाहिये ॥ १९ ॥

वारिस्थलपथभोगयोरनित्यो वारिपथभोगो नित्यः स्थलपथभोग इति ॥ २० ॥

वारिपथ (जलका मार्ग) और स्थलपथ (स्थलका मार्ग), यदि ये दोनोंही अनित्य (कादाचित्क=कभी २ होने वाले हों, तो इनमेंसे वारिपथ के लिये उपयोगी स्थानही उत्तम होताहै। यदि दोनोंही नित्य (सदा होने वाले) हों, तो स्थलपथ का स्थानही श्रेष्ठ समझना चाहिये ॥ २० ॥

भिन्नमनुष्या श्रेणीमनुष्या वा भूमिरिति ॥ २१ ॥ भिन्नमनुष्या श्रेयसी ॥ २२ ॥

भिन्न मनुष्यों (आपसमें मिलकर न रहनेवाले मनुष्यों) से युक्त भूमि अच्छी होती है, अथवा श्रेणी मनुष्यों (सदा आपसमें मिलकर रहनेवाले मनुष्यों) से युक्त भूमि अच्छी होती है ? ॥२१॥ भिन्न मनुष्योंसे युक्त भूमिही श्रेयस्कर होती है ॥ २२ ॥

भिन्नमनुष्या भोग्या भवत्यनुपजाप्या चान्येषामनापत्सहा तु ॥ २३ ॥ विपरीता श्रेणीमनुष्या कोपे महादोषा ॥ २४ ॥

क्योंकि ऐसी भूमि शीघ्रही अपने अधीन होजाती है, अर्थात विजिगीषु ऐसी भूमिको शीघ्रही अपने अधिकारमें कर लेता है। तथा अन्य शत्रुओंके

द्वारा यह बहकाई भी नहीं जासकती, क्योंकि यहांके मनुष्य आपसमें मिलतेही नहीं। इसलिये आपत्तियोंका सहन करनेके लिये भी ये लोग कभी तयार नहीं हो सकते ॥ २३ ॥ परन्तु श्रेणीमनुष्य भूमि, इसके सर्वथा विपरीत होती है। वह शत्रुके द्वारा बहकाई भी जासकती है, मिलकर रहनेके कारण वहांके मनुष्य हर तरहकी आपत्ति सहनेके लिये भी तयार होजाते हैं। और कुपित होनेपर राजाका भी उच्छेद कर सकते हैं ॥ २४ ॥

तस्यां चातुर्वर्ण्याभिनिवेशं सर्वभोगसहत्वादवरवर्णप्राया श्रेयसी ॥ २५ ॥ बाहुल्याद्ध्रुवत्वाच्च कृष्याः कर्षणवतीः ॥ २६ ॥

उस भूमिमें चारों वर्णोंके निवासके सम्बन्धमें विचार होनेपर, यही निश्चय समझना चाहिये कि सब तरहके सुख दुःखादिका सहन करनेके कारण शूद्र, ग्वाले आदि नीच जातिके मनुष्योंसे युक्त भूमिही श्रेष्ठ होती है ॥ २५ ॥ खेतीके बहुत होनेसे, तथा निश्चित ही फलदायक होनेसे खेतीके योग्य भूमि श्रेयस्कर होती है ॥ २६ ॥

कृष्या चान्येषां चारम्भाणां प्रयोजकत्वात् गोरक्षकवती ॥२७॥ पण्यनिचयर्णानुग्रहादाढ्यवणिग्वती ॥ २८ ॥

कृषि सम्बन्धी व्यापार तथा अनेक कार्योंका निर्भर भी गाय या गोपालोंके ऊपर है। इसलिये गाय और गोपालोंसे युक्त भूमि भी उत्तम होती है ॥ २७ ॥ व्यापारके लिये धान्य आदि वस्तुओंका सञ्चय करने, तथा ब्याजपर ऋण आदि देकर उपकार करनेके कारण व्यापारी और धनिक पुरुषोंसे युक्त भूमि भी श्रेष्ठ होती है ॥ २८ ॥

भूमिगुणानामपाश्रयः श्रेयान् ॥ २९ ॥ दुर्गापाश्रया पुरुषापाश्रया वा भूमिरिति ॥ ३० ॥

भूमिके उपर्युक्त सबही गुणोंमेंसे केवल आश्रय देना या रक्षा करनाही सबसे श्रेष्ठ है ॥ २९ ॥ दुर्गोंका आश्रय देनेवाली भूमि अच्छी होती है, या मनुष्योंका आश्रय देनेवाली ? तात्पर्य यह है कि दुर्गोंके सहारे किसी भूमिमें आश्रय लेना अच्छा है, या पुरुषोंके सहारे ॥ ३० ॥

पुरुषापाश्रया श्रेयसी ॥ ३१ ॥ पुरुषवद्धि राज्यम् ॥ ३२ ॥ अपुरुषा गौर्वन्ध्येव किं दुहीत ॥ ३३ ॥

पुरुषोंका आश्रय देनेवाली भूमिही उत्तम होती है । अर्थात् जहां पुरुषोंका सहारा मिलसके, वही स्थान श्रेष्ठ है ॥ ३१ ॥ क्योंकि राज्य वस्तुतः

उसीका नाम है, जहाँ बहुत पुरुषोंका संयोग हो ॥ ३२ ॥ पुरुषहीन भूमि, बन्ध्या गौके समान क्या उपयोग देसकती है ? ॥ ३३ ॥

महाक्षयव्ययनिवेशात्तु भूमिमवाप्तुकामः पूर्वमेव क्रेतारं पणेत ॥ ३४ ॥ दुर्बलमराजबीजिनं निरुत्साहमपक्षमन्यायवृत्तिं व्यसनिनं दैवप्रमाणं यत्किंचनकारिणं वा ॥ ३५ ॥

जन धनका अत्यधिक व्यय करके बसाई जाने योग्य भूमिको यदि विजिगीषु प्राप्त करना चाहे, तो उसे चाहिये कि प्राप्तिके पहिले ही निम्न प्रकारके आठ राजाओंमेंसे किसीको उस भूमिका खरीदार तैयार करे ॥ ३४ ॥ दुर्बल, अराजबीजी (जो किसी राजवंशमें उत्पन्न हुआ २ न हो) उत्साहहीन, अपक्ष (जिसकी सहायता करनेवाला कोई पक्ष न हो), अन्यायवृत्ति (प्रजापर अन्याय करनेवाला), व्यसनी (शिकारी या शराबी आदि), भाग्यके भरोसेही सब काम करनेवाला, तथा जो कुछ चित्तमें आजाय, बिना विचारे वही कर डालनेवाला (यत्किञ्चनकारी)। (तात्पर्य यह है कि इनमेंसे किसीको वह जमीन खरीदवाकर, जब वह अपना धन-जन आदि व्यय करके उसे बसाले, तब उसके क्षीण होनेपर विजिगीषु उस भूमिपर अपना अधिकार जमालेवे। इसी बातको अगले सूत्रोंमें बताया जाता है) ॥ ३५ ॥

महाक्षयव्ययनिवेशायां हि भूमौ दुर्बलो राजबीजी निविष्टः सगन्धाभिः प्रकृतिभिः सह क्षयव्ययेनावसीदति ॥ ३६ ॥

जन-धन आदिका अत्यधिक व्यय करके बसाई जाने योग्य भूमिमें जब बलहीन, राजवंशमें उत्पन्न हुआ २ राजा, निवास बनादे, अर्थात जब उस भूमिको बसादेता है, तो अत्यधिक पुरुषोंका क्षय और धनका व्यय होनेके कारण, अपनी सहायता करनेवाले सजातीय अमात्य आदि प्रकृति जनोंके साथ ही वह क्षीण होजाता है ॥ ३६ ॥

बलवानराजबीजी क्षयभयादसगन्धाभिः प्रकृतिभिस्त्यज्यते ॥ ३७ ॥ निरुत्साहस्तु दण्डवानपि दण्डस्याप्रणेता सदण्डः क्षयव्ययेनावभज्यते ॥ ३८ ॥

राजवंशमें उत्पन्न न हुए २ बलवान् राजाको, पुरुषोंके क्षय और धनके व्यय होजानेके भयसे विजातीय अमात्य आदि सहायक प्रकृति जन छोड़ देते हैं ॥ ३७ ॥ उत्साहहीन राजा सेनाके होते हुए भी, उसका उचित रीतिसे उपयोग नहीं कर सकता; इसलिये सेनाके सहित ही, जन-धनका क्षय व्यय होजानेके कारण नष्ट होजाता है ॥ ३८ ॥

कोशवानप्यपक्षः क्षयव्ययानुग्रहहीनत्वान्न कुतश्चित्प्राप्नोति ॥ ३९ ॥ अन्यायवृत्तिं निविष्टमप्युत्थापयेत् ॥ ४० ॥ स कथमनिविष्टं निवेशयेत् ॥ ४१ ॥

कोश रहने हुए भी मित्र रहित राजा, क्षय व्यय (योग्य पुरुषोंके नाशका नाम क्षय, और धनका न्यून होजाना व्यय कहाता है) में सहायता न मिलनेके कारण किसी तरहभी सिद्धिको प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ३९ ॥ प्रजापर अन्याय करनेवाले बसे हुए भी राजाको जब प्रजा उखाड़ देती है, तो नये प्रदेशको वह कैसे बसा सकता है ? ॥ ४०-४१ ॥

तेन व्यसनी व्याख्यातः ॥ ४२ ॥ दैवप्रमाणो मानुषहीनो निरारम्भो विपन्नकर्मारम्भो वावसीदति ॥ ४३ ॥

व्यसनी राजाका भी यही हाल होता है ॥ ४२ ॥ केवल भाग्यपर भरोसा करनेवाला राजा भी पौरुषहीन हुआ २ किसी कार्यको प्रारम्भ नहीं करता, यदि करभी देता है, तो प्रारम्भ किये कार्यमें विघ्न आजानेपर उसे छोड़ बैठता है, और इस प्रकार जन-धनका नाश करके स्वयं भी नष्ट हो जाता है ॥ ४३ ॥

यत्किंचनकारी न किंचिदासादयति ॥४४॥ स चैषां पापिष्ठतमो भवति ॥ ४५ ॥ यत्किंचिदारभमाणो हि विजिगीषोः कदाचिच्छिद्रमासादयेदित्याचार्याः ॥ ४६ ॥

विना विचारे इच्छानुसार कार्य करनेवाला राजा कभी सिद्धिको प्राप्त नहीं होता ॥ ४४ ॥ परन्तु इन उपर्युक्त सभी राजाओंमेंसे वह विजिगीषुके लिये अत्यन्त हानिकारक हो सकता है ॥ ४५ ॥ क्योंकि जिस किसी कार्यका आरम्भ करता हुआ शत्रु, कदाचित् विजिगीषुके किसी दोषका पता लगा लेवे, और उसके द्वारा विजिगीषुको हानि पहुंचा सके। क्योंकि विजिगीषु उसे मूर्ख समझकर उसकी ओरसे उपेक्षा दृष्टि रखता है। यह प्राचीन आचार्योंका सिद्धान्त है ॥ ४६ ॥

यथा छिद्रं तथा विनाशमप्यासादयेदिति कौटल्यः ॥४७॥ तेषामलाभे यथा पार्ष्णिग्राहोपग्रहे वक्ष्यामस्तथा भूमिमवस्थापयेदित्यभिहितसंधिः ॥ ४८ ॥

परन्तु कौटल्यका मत है कि वह विजिगीषुके दोषोंको जाननेकी तरह अपने विनाशको भी प्राप्त कर सकता है, क्योंकि विजिगीषु तो उसके अनेक

दोषोंसे परिचित रहता है। इसलिये उसे जब चाहे दबा सकता है ॥ ४७ ॥ यदि इन उपर्युक्त राजाओंमेंसे कोई भी उस भूमिको खरीदनेवाला न मिले, तो जिस प्रकार पार्ष्णिग्राहके साथ सन्धि आदिके प्रकरणमें (देखो–अधि. ७, अध्या. १३) बताया जायगा, उसहीके अनुसार भूमिके बसाने आदिकी व्यवस्था करे। इसीका नाम 'अभिहितसन्धि' है। क्योंकि भूमिके लेने और देनेसे उत्पन्न होनेके कारण यह विचलित नहीं होती, बराबर बनी रहती है ॥ ४८ ॥

गुणवतीमादेयां वा भूमिं बलवता क्रयेण याचितः संधिमवस्थाप्य दद्यादित्यनिभृतसंधिः ॥ ४९ ॥

विशेष गुणयुक्त भूमिको, जो कि खरीदनेवालेकी उपेक्षासे कालान्तरमें अपनेही पास फिर वापस आजानेवाली हो, बलवान् सामन्त यदि क्रयके द्वारा मांगे, अर्थात् खरीदना चाहे, तो उसके साथ 'अवसर होनेपर तुम मेरी सहायता करोगे' इस प्रकार सामान्यसन्धि की स्थापना करके, वह भूमि उसके हाथ बेच देवे। इसका नाम 'अनिभृतसन्धि' कहाता है। क्योंकि प्रबल सामन्त, दुर्बलके प्रति अविश्वास कर सकता है, और अपनी प्रतिज्ञात सन्धिको तोड़ सकता है ॥ ४९ ॥

समेन वा याचितः कारणमवेक्ष्य दद्यात् ॥ ५० ॥ प्रत्यादेयो मे भूमिर्वश्या वानया प्रतिबद्धः परो मे वश्यो भविष्यति भूमिविक्रयाद्वा मित्रहिरण्यलाभः कार्यसामर्थ्यकरो मे भविष्यतीति ॥ ५१ ॥ तेन हीनः क्रेता व्याख्यातः ॥ ५२ ॥

यदि बराबर शक्तिवाला राजा, उस भूमिको क्रय करना चाहता है, तो निम्नलिखित कारणोंको अच्छी तरह सोच विचारकर, वह भूमि उसको बेच देवे ॥ ५० ॥ वे कारण ये हैं:—'बेचदेनेपर भी यह भूमि कालान्तर में मेरे पास आसकेगी; अथवा मेरे उपयोगमें आती रहेगी, अर्थात् बेचनेपर भी मैं इससे लाभ उठाताही रहूंगा, अथवा समशक्ति राजाके साथ इसके द्वारा सम्बन्ध होने पर दूसरा शत्रु मेरे अधीन होजायगा, अथवा भूमिके बेचनेसे, प्रत्येक कार्योंके पूर्ण करनेमें समर्थ, मित्र और धन सम्पत्तिका लाभ होगा'। इन्हीं सब कारणों को विचार पूर्वक निश्चय करके वह भूमि बेचदेवे ॥ ५१ ॥ इसीप्रकार अपनेसे हीन शक्ति क्रेताके सम्बन्धमें भी समझना चाहिये ॥ ५२ ॥

एवं मित्रं हिरण्यं च सजनामजनां च गाम् ।
लभमानोऽतिसंधत्ते शास्त्रवित्सामवायिकान् ॥ ५३ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे मित्रहिरण्यभूमिकर्मसंधौ अनवसितसंधिः एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ आदितो नवशतः ॥ १०९ ॥

अर्थशास्त्रको जाननेवाला राजा, इस प्रकार मित्र, धन सम्पत्ति, तथा आबाद एवं उजाड़ भूमिको प्राप्त करता हुआ, अपने साथी दूसरे राजाओंकी अपेक्षा सदाही विशेषलाभ उठाता है ॥ ५३ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें ग्यारहवां अध्याय समाप्त ।

बारहवां अध्याय

११६ प्रकरण

कर्म सन्धि ।

त्वं चाहं च दुर्गं कारयावह इति कर्मसंधिः ॥ १ ॥ तयोर्यो दैवकृतमविषह्यमल्पव्ययारम्भं दुर्गं कारयति सो ऽतिसंधत्ते ॥२॥

'तुम और मैं मिलकर दुर्ग बनवायें' इसप्रकार निश्चित रूपसे कार्यवस्तु कानाम लेकर जो सन्धि कीजाती है, उसे 'कर्मसन्धि' कहते हैं ॥ १ ॥ विजिगीषु और उसके साथी, दोनोंमेंसे वही विशेष लाभमें रहता है जो स्वभावसेही दुर्गम स्थानमें, अतएव शत्रुओंसे दुर्भेद्य, थोड़ाही धन व्ययकरके अपना दुर्ग बनवाता है ॥ २ ॥

तत्रापि स्थलनदीपर्वतदुर्गाणामुत्तरोत्तरं श्रेयः ॥ ३ ॥ सेतुबन्धयोरप्याहार्योदकात्सहोदकः श्रेयान् ॥ ४ ॥ सहोदकयोरपि प्रभूतवापस्थानः श्रेयान् ॥ ५ ॥

ऐसे दुर्गोंमेंभी स्थलमें बनेहुए दुर्गकी अपेक्षा, नदीका दुर्ग अच्छा होता है, और उससेभी अच्छा पर्वत प्रदेशमें बनाहुआ दुर्ग होता है ॥३॥ (पक्के बांध लगाकर जलका रोकना सेतुबन्ध कहाता है) सेतुबन्धोंमेंभी केवल वर्षा ऋतुमें जल इकट्ठा होनेवालेकी अपेक्षा स्वभावसे ही जलयुक्त सेतुबन्ध उत्तम होता है ॥ ४ ॥ उनमें भी वह श्रेष्ठ है, जहां खेती करनेके लिए स्थान पर्याप्त हो ॥ ५ ॥

द्रव्यवनयोरपि यो महत्सारवद्द्रव्याटविकं विषयान्ते नदीमातृकं द्रव्यवनं छेदयति सो ऽतिसंधत्ते ॥ ६ ॥ नदीमातृकं हि स्वाजीवमपाश्रयश्चापदि भवति ॥ ७ ॥

अनेक पदार्थोंके उत्पत्ति स्थान वन प्रदेशोंमें भी, जो राजा अपने सीमा प्रान्तमें नदियोंसे सींचेजाने वाले, तथा अच्छीतरह फल आदि उत्पन्न करनेवाले जंगलोंको ठीक कर लेता है वह विशेषलाभ प्राप्त करलेता है ॥६॥ क्योंकि नदीसे

सींचेजानेवाले स्थान सुखपूर्वक आजीविकाके साधन होते हैं और विपत्ति पड़ने पर उनमें आश्रयभी लिया जासकता है ॥ ७ ॥

हस्तिमृगवनयोरपि यो बहुशूरमृगं दुर्बलप्रतिवेशमनन्तावक्रोशि विषयान्ते हस्तिवनं बध्नाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ ८ ॥

हाथियोंके जंगलोंमें भी, जो राजा अनेक शक्तिशाली जंगली जानवरों (हाथियों) से युक्त, दुर्बलोंके लिये भी नियत स्थानवाले तथा अत्यधिक आनेजानेके मार्गोंसे युक्त, हाथियोंके जंगलोंको अपने सीमाप्रान्तमें बसाता है, वही लाभमें रहता है ॥ ८ ॥

तत्रापि बहुकुण्ठाल्पशूरयोरल्पशूरं श्रेयः ॥ ९ ॥ शूरेषु हि युद्धम् ॥ १० ॥ अल्पाः शूरा बहून्शूरान्भञ्जन्ति ते भग्नाः स्वसैन्यावघातिनो भवन्तीत्याचार्याः ॥ ११ ॥

इस प्रकारके हाथियोंके जंगलोंमें भी, जिसमें संख्यामें अधिक पर शक्तिहीन हाथी हों, उसकी अपेक्षा शक्तिशाली थोड़े हाथियोंका जंगल उत्तम है ॥ ९ ॥ क्योंकि शक्तिशाली हाथियोंके भरोसेपर ही युद्ध होता है ॥ १० ॥ थोड़े भी शक्त, बहुतसे अशक्तों को भगा देते हैं। और वह विशृंखलित (तितर बितर) हुए २ हाथी अपनी ही सेनाको कुचल डालते हैं। यह आचार्योंका सिद्धान्त है ॥ ११ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १२ ॥ कुण्ठा बहवः श्रेयांसः स्कन्धविनियोगादनेकं कर्म कुर्वाणाः स्वेषामपाश्रया युद्धे ॥१३॥ परेषां दुर्धर्षा विभीषणाश्च ॥ १४ ॥

परन्तु कौटल्य इस सिद्धान्तको नहीं मानता ॥ १२ ॥ उसके सिद्धान्त में शक्तिहीन भी बहुत हाथियोंका होना श्रेयस्कर है। क्योंकि सेनाके अनेक विभागोंमें पृथक् २ अनेक कार्य उनसे लिये जासकते हैं। इसलिये युद्धमें वे अपने अच्छे सहायक होते हैं ॥ १३ ॥ तथा शत्रुको घबरादेनेवाले, और इसी लिये उनके वशमें न आनेवाले होते हैं। तात्पर्य यह है कि शत्रु उनकी अधिक संख्याको देखकरही डरजाता है। और मैदानसे भागजाता है ॥ १४ ॥

बहुषु हि कुण्ठेषु विनयकर्मणा शक्यं शौर्यमाधातुम् ॥१५॥ न त्वेवाल्पेषु शूरेषु बहुत्वमिति ॥ १६ ॥

संख्यामें अधिक हाथी यदि कुण्ठ (युद्ध आदि करनेमें चतुरता न रखने वाले, सामर्थ्यहीन) भी हों, तोभी कोई हानि नहीं, क्योंकि युद्ध सम्बन्धी विविध शिक्षाओंके द्वारा उन्हें सुचतुर तथा समर्थ बनाया जासकता है ॥१५॥

परन्तु शक्तिशाली थोडे हाथियोंके होनेपर, उनकी संख्याको सहसा बढ़ाया नहीं जा सकता है ॥ १६ ॥

खन्योरपि यः प्रभूतसारामदुर्गमार्गामल्पव्ययारम्भां खनिं खानयति सो ऽतिसंधत्ते ॥ १७ ॥ तत्रापि महासारमल्पमल्पसारं वा प्रभूतमिति ॥ १८ ॥

खानोंमें भी, जो राजा अधिक बढ़िया माल देनेवाली, अति दुर्गम मार्गोंसे युक्त, तथा थोड़ाही धन व्ययकरके खानोंको खुदवाता है, वही विशेष लाभ उठाता है ॥ १७ ॥ खानोंमेंभी, बहुमूल्य मणि आदि श्रेष्ठ वस्तुओंको थोड़े परिमाणमें उत्पन्न करनेवाली खान अच्छी है, अथवा अल्पमूल्यकी, परिमाणमें अत्यधिक वस्तुओंको उत्पन्न करनेवाली अच्छी है ? ॥ १८ ॥

महासारमल्पं श्रेयः ॥ १९ ॥ वज्रमणिमुक्ताप्रवालहेमरूप्यधातुर्हि प्रभूतमल्पसारमत्यर्घेण ग्रसत इत्याचार्याः ॥ २० ॥

अनेक आचार्योंका मत है कि बहुमूल्य, श्रेष्ठ, थोड़ी वस्तुकी ही उत्पत्ति उत्तम है ॥ १९ ॥ क्योंकि हीरा, मणि, मोती, मूंगा, सोना, चांदी आदि बहुमूल्य पदार्थ, अपने मुकाबलेमें अल्पमूल्य अत्यधिक पदार्थकोभी मूल्यकी तुलना होनेपर दबालेते हैं । अर्थात थोड़े भी हीरा, मणि आदिका मूल्य अन्य अधिक वस्तुओंके मूल्यसे अधिकही रहता है ॥ २० ॥

नेति कौटल्यः ॥२१॥ चिरादल्पो महासारस्य क्रेता विद्यते ॥ २२ ॥ प्रभूतः सातत्यादल्पसारस्य ॥ २३ ॥ एतेन वणिक्पथो व्याख्यातः ॥ २४ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्यका यह सिद्धान्त नहीं है ॥ २१ ॥ वह कहता है कि बहुमूल्य वस्तुका खरीदनेवाला, बहुतसमयमें कोई विरलाही आदमी मिलता है ॥ २२ ॥ परन्तु अल्पमूल्य वस्तुओंको खरीदनेवाले, सदाही बहुत मिलते हैं ॥ २३ ॥ इसीसे व्यापारी मार्गोंका बनानाभी समझलेना चाहिये । अर्थात् जिस प्रकार व्यापारी मार्गोंके बनानेपर विशेषलाभ होसके, उसी तरह उनका निर्माण किया जावे ॥ २४ ॥

तत्रापि वारिस्थलपथयोर्वारिपथः श्रेयान् ॥ २५ ॥ अल्पव्ययव्यायामः प्रभूतपण्योदयश्चेत्याचार्याः ॥ २६ ॥

इनमेंभी जलीयमार्ग और स्थलमार्गोंमेंसे जलीयमार्गही श्रेयस्कर है ॥ २५ ॥ क्योंकि वह थोड़ासा धनव्यय करनेपर, थोड़ेही परिश्रमसे तैयार किया

जासकता है। तथा जलमार्गसे मालभी बड़ी आसानीके साथ लाया लेजाया जासकता है। इस लिये इनमार्गोंसे बहुत लाभ होनेकी सम्भावना रहती है। यह प्राचीन आचार्योंका मत है॥ २६॥

नेति कौटल्यः॥ २७॥ संरुद्धगतिरसार्वकालिकः प्रकृष्टभययोनिर्निष्प्रतिकारश्च वारिपथः, विपरीतः स्थलपथः॥ २८॥

परन्तु कौटल्य इस सिद्धान्तको नहीं मानता॥ २७॥ क्योंकि जलका मार्ग, विपत्ति में सब ओरसे रुक सकता है, वृष्टि आदिके समयमें उससे जाना आनाभी नहीं होसकता, इसलिये सब ऋतुओंके लिये उपयोगी भी नहीं। तथा स्थलमार्गकी अपेक्षा अधिक भयजनक है (क्योंकि जलमें डूबने आदिका डर बहुत रहताहै), और जल मार्गमें भय उपस्थित होने पर उसका प्रतीकारभी नहीं किया जासकता। परन्तु स्थलमार्ग इससे बिल्कुल विपरीत होता है। इसलिये दोनोंमेंसे स्थलमार्गकोही उत्तम समझना चाहिये॥२८॥

वारिपथे तु कूलसंयानपथयोः कूलपथः पण्यपट्टणबाहुल्याच्छ्रेयान्नदीपथो वा सातत्याद्विषह्याबाधत्वाच्च॥ २९॥

जलीयमार्ग भी दो प्रकारके होते हैं, एक जलके किनारे २ का मार्ग (कूलपथ), और दूसरा जलके मध्यका मार्ग (संयानपथ=समुद्र आदि, निरन्तर जलहीं जलमें जाना) इन दोनों मार्गोंमेंसे भी प्रथम जलीयमार्ग अच्छा होता है। क्योंकि एेसे मार्गोंपर व्यापारी नगर बहुत होते हैं, और उनसे बहुत लाभ उठाया जासकता है। अथवा नदीके द्वारा जो जलमार्ग नियत किये जाते हैं, वे भी उत्तम समझने चाहियें। क्योंकि नदीजलकी धारा निरन्तर बनी रहती है, और उस मार्गमें कोई उत्कटबाधा भी उपस्थित नहीं होती॥ २९॥

स्थलपथेऽपि हैमवतो दक्षिणापथाच्छ्रेयान्॥ ३०॥ हस्त्यश्वगन्धदन्ताजिनरूप्यसुवर्णपण्याः सारवत्तरा इत्याचार्याः॥३१॥

स्थलमार्गमें भी दक्षिण ओरके मार्गकी अपेक्षा उत्तरका मार्ग श्रेष्ठ है॥ ३०॥ क्योंकि इस ओर हाथी, घोड़े, कस्तूरी, दान्त, चर्म, चांदी और सोना आदि बहुमूल्य विक्रेय वस्तुएं बहुतायतसे मिल जाती हैं, यह आचार्यों-का मत है॥ ३१॥

नेति कौटल्यः॥ ३२॥ कम्बलाजिनाश्वपण्यवर्जाः शङ्खवज्रमणिमुक्ताः सुवर्णपण्याश्च प्रभूततरा दक्षिणापथे॥ ३३॥

परन्तु कौटल्य इस सिद्धान्तको नहींमानता॥ ३२॥ वह कहता है कि कम्बल, चर्म तथा घोड़े आदि इन विक्रेय वस्तुओंको छोड़कर शेष हाथी

आदि सबही वस्तुएं, तथा शङ्ख, हीरा, मणि, मोती, सुवर्ण आदि अन्य अनेक विक्रेय वस्तुएं उत्तरकी अपेक्षा दक्षिणकी ओर ही अधिक होती हैं। इसलिये दक्षिणकी ओरका मार्गही श्रेयस्कर है ॥ ३३ ॥

दक्षिणापथेऽपि बहुखनिः सारपण्यः प्रसिद्धगतिरल्पव्यायामो वा वणिक्पथः श्रेयान् ॥ ३४ ॥ प्रभूतविषयो वा फल्गुपण्यः ॥ ३५ ॥ तेन पूर्वः पश्चिमश्च वणिक्पथो व्याख्यातः ॥ ३६ ॥

दक्षिण मार्गमें भी बहुत खानोंसे युक्त, बहुमूल्य विक्रेय वस्तुओंवाला, तथा निर्विघ्न आनेजानेके लिये उपयोगी और थोड़ेही परिश्रमसे सिद्धहोने वाला व्यापारी मार्ग उत्तम समझना चाहिये ॥ ३४ ॥ अथवा वह मार्ग श्रेष्ठ समझना चाहिये, जिसपर थोड़ी कीमतकी भी चीजें बहुत अधिक परिमाणमें होती हों, या जहां कमकीमतकी भी वस्तुओंको खरीदनेवाले बहुत अधिक हों ॥ ३५ ॥ इससे पूर्व और पश्चिमके व्यापारी मार्गोंको भी समझ लेना चाहिये ॥ ३६ ॥

तत्रापि चक्रपादपथयोश्चक्रपथो विपुलारम्भत्वाच्छ्रेयान् ॥३७॥ देशकालसंभावनो वा खरोष्ट्रपथः॥ ३८ ॥ आभ्यामंसपथो व्याख्यातः ॥ ३९ ॥

इन व्यापारी मार्गोंमें भी, पैदलके मार्गकी अपेक्षा गाड़ी आदिका मार्ग अधिक उत्तम समझना चाहिये। क्योंकि ऐसे मार्गोंके द्वारा बहुत अधिक व्यापार किया जासकता है। विक्रेय वस्तुएं अधिक तादादमें लाई लेजाई जासकती हैं ॥ ३७ ॥ देशकालके अनुसार गधे और ऊंटोंका मार्गभी श्रेष्ठ समझना चाहिये क्योंकि इनके द्वारा भी, व्यापार अधिक परिमाणमें किया जासकता है ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार कंधोंपर भार ढोनेवाले बैल आदिके, व्यापारीमार्गोंका विवरणभी समझलेना चाहिये ॥ ३९ ॥

परकर्मोदयो नेतुः क्षयो वृद्धिर्विपर्यये ।
तुल्ये कर्मपथे स्थानं ज्ञेयं स्वं विजिगीषुणा ॥ ४० ॥

शत्रुका अपने कार्योंसे लाभ होना ही, विजिगीषुका क्षय समझना चाहिये। तथा अपने कार्योंके सफल होनेपर ही वृद्धि समझनी चाहिये। यदि कार्योंका फल दोनोंको बराबर ही हो, तो विजिगीषुको बराबर ही समझना चाहिये। कि मैं अपने उसी स्थानपर अवस्थित हूं। मैंने उन्नति या अवनति कुछ नहीं की ॥ ४० ॥

अल्पागमातिव्ययता क्षयो वृद्धिर्विपर्यये ।
समायव्ययता स्थानं कर्मसु ज्ञेयमात्मनः ॥ ४१ ॥

थोड़ी आय और अधिक व्यय हो तो क्षय; और इससे विपरीत होनेपर वृद्धि समझनी चाहिये । तथा कार्योंमें बराबर आय और व्यय होनेपर समान अवस्था समझनी चाहिये ॥ ४१ ॥

तस्मादल्पव्ययारम्भं दुर्गादिषु महोदयम् ।
कर्म लब्ध्वा विशिष्टः स्यादित्युक्ताः कर्मसंधयः ॥४२॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे मित्रहिरण्यभूमिकर्मसंधौ कर्मसंधि-द्वादशो ऽध्यायः ॥ १२ ॥ आदितो दशशतः ॥ ११० ॥

इसलिये विजिगीषुको उचित है, कि वह दुर्ग आदि कार्योंमें थोड़ा व्यय करके ही महानफलको प्राप्त करनेका यत्न करे । बड़े फल वाले कार्यको प्राप्त करके ही विजिगीषु शत्रुसे बढ़ सकता है । इसप्रकार यहांतक कर्मसन्धियोंका निरूपण किया गया ॥ ४२ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें बारहवां अध्याय समाप्त ।

तेरहवां अध्याय

११७ प्रकरण

पार्ष्णिग्राह चिन्ता

पृष्ठ स्थित शत्रुको पार्ष्णिग्राह कहते हैं । ऐसी अवस्थामें विजिगीषुको क्या करना चाहिये, इसी बातका विचार इस अध्यायमें कियागया है ।

संहत्यारिविजिगीष्वोरमित्रयोः पराभियोगिनोः पार्ष्णिं गृह्णतोर्यः शक्तिसंपन्नस्य पार्ष्णिं गृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ १ ॥

विजिगीषु और शत्रु मिलकर, जब पृष्ठवर्ती होकर किसी राजापर आक्रमण करें, तो इनमेंसे वही विशेष लाभमें रहता है, जो कि अपने शत्रुभूत, दूसरेके साथ युद्ध करनेमें लगे हुए दो राजाओंमेंसे शक्ति सम्पन्न राजाकी पार्ष्णिको ग्रहण करता है ॥ १ ॥

शक्तिसंपन्नो ह्यमित्रमुच्छिद्य पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यात् ॥ २ ॥

क्योंकि शक्तिसम्पन्न राजाही अपने शत्रुका उच्छेद करके पार्ष्णिग्राहका भी उच्छेद कर सकता है । तात्पर्य यह है:—जब शत्रु अपने शत्रुके साथ युद्ध

करता हुआ हो, तबही विजिगीषु और शत्रुको मिलकर उनपर आक्रमण करना चाहिये। क्योंकि यदि पार्ष्णिग्राह बनेहुए विजिगीषुका शत्रु अपने शत्रुको जीत लेगा तो अधिक बलवान् होकर विजिगीषुको भी पीछेसे नष्ट करडालेगा। इस लिये विजिगीषुको चाहिये, कि वह अपने शत्रुके साथ युद्ध करते हुएही शत्रुपर आक्रमण करके उसके विजयमें विघ्न डालदे, जिससे कि वह शत्रुको जीतकर बलवान् न होसके ऐसी अवस्थामें यथोक्त विजिगीषु और शत्रुमेंसे वही विशेष लाभमें रहता है, जो युद्ध करते हुए बलवान् शत्रुका पार्ष्णिग्राह बनता है। क्योंकि उसहीसे अपने उच्छेदकी अधिक आशङ्का रहती है। दुर्बल शत्रु, विजिगीषुका कुछ नहीं बिगाड़ सकता ॥ २ ॥

न हीनशक्तिरलब्धलाभ इति ॥ ३ ॥

हीनशक्ति, शत्रुराजा तो अपने शत्रुका उच्छेद करनेमें असमर्थ होनेके कारण बलयुक्त नहीं होसकता, इसीलिये उसकी ओरसे कोई शङ्का नहीं हो सकती। अतएव उसके पार्ष्णिको ग्रहण करनेवाले विजिगीषु या शत्रुको कोई विशेष लाभ नहीं होता ॥ ३ ॥

शक्तिसाम्ये यो विपुलारम्भस्य पार्ष्णिं गृह्णाति सोऽतिसंधत्ते ॥ ४ ॥

यदि शत्रु समान शक्तिके हों, तो जो अन्न आदि खाद्य पदार्थ तथा युद्ध सम्बन्धी अन्य सब प्रकारकी सामग्रीसे सम्पन्न हो (विपुलारम्भ), उस-हीके पार्ष्णिको जो ग्रहण करता है, वह विशेष लाभमें रहता है ॥ ४ ॥

विपुलारम्भो ह्यमित्रमुच्छिद्य पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यान्नाल्पारम्भः सक्तचक्र इति ॥ ५ ॥

क्योंकि विपुल युद्धयात्रा सम्बन्धी सामग्रीसे सम्पन्न हुआ २ शत्रु राजा, अपने शत्रुका उच्छेद करके पार्ष्णिग्राहका भी उच्छेद कर सकता है। इसलिये ऐसे शत्रुको कभी बढ़ने न देना चाहिये। जिसके पास युद्धयात्रा सम्बन्धी कोई विशेष सामग्री नहीं है, अपनी बिखरी हुई सेनाको अभी इकट्ठा करनेमें ही लगा है, वह न अपने शत्रुका उच्छेद कर सकता है, और न उससे विजिगीषुको भय होना चाहिये। इसलिये ऐसे राजाके पार्ष्णिपर आक्रमण करना लाभदायक नहीं होता ॥ ५ ॥

आरम्भसाम्ये यः सर्वसंदोहेन प्रयातस्य पार्ष्णिं गृह्णाति सोऽतिसंधत्ते ॥ ६ ॥

यदि युद्धयात्रा सम्बन्धी सामग्री भी समानही हो, तो इन राजाओंमेंसे

ऐसे राजाके पार्ष्णिको ग्रहण करनेपर ही विशेष लाभ हो सकता है, जो अपने सम्पूर्ण सैन्यको लेकर शत्रुके साथ युद्ध करनेके लिये चढ़गया हो ॥ ६ ॥

शून्यमूलो ह्यस्य सुकरो भवति नैकदेशबलप्रयातः कृतपार्ष्णिप्रतिविधान इति ॥ ७ ॥

क्योंकि मूलस्थानमें रक्षक सेनाके न होनेसे, इसको वशमें करना अत्यन्त सुकर है, किन्तु जो अपनी थोड़ीसी सेनाको साथ लेजाकर शेषको मूलस्थानकी रक्षाके लिये छोड़ देता है; उसके पार्ष्णि ग्रहण करनेमें लाभ नहीं होता, क्योंकि वह पार्ष्णिग्राहका अच्छी तरह प्रतीकार कर सकता है ॥ ७ ॥

बलोपादानसाम्ये यश्चलामित्रं प्रयातस्य पार्ष्णिं गृह्णाति सोऽतिसंधत्ते ॥८॥ चलामित्रं प्रयातो हि सुखेनावाप्तसिद्धिः पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यान्न स्थितामित्रं प्रयातः ॥ ९ ॥ असौ हि दुर्गप्रतिहतः पार्ष्णिग्राहे च प्रतिनिवृत्तस्थितेनामित्रेणावगृह्यते ॥ १० ॥

बराबर सेनाओंको लेजाने वाले राजाओंमेंसे भी उसहीका पार्ष्णि ग्रहण करनेमें विशेष लाभ हो सकता है; जिसने अपने दुर्ग रहित शत्रुपर आक्रमण किया हो ॥ ८ ॥ क्योंकि दुर्ग रहित शत्रुपर आक्रमण करनेवाला राजा, सहजमें ही उसे अपने अधीन करके अधिक बलवान् बन सकता है। और फिर वह पार्ष्णिग्राहका भी उच्छेद कर सकता है। परन्तु दुर्गोंसे सम्पन्न राजाके ऊपर चढ़ाई करनेपर ऐसा नहीं हो सकता ॥ ९ ॥ क्योंकि दुर्गोंके द्वारा उसका अच्छी तरह प्रतीकार किया जासकता है। इसलिये ऐसे राजाके पार्ष्णिपर आक्रमण करनेमें कोई लाभ नहीं। प्रत्युत हानिकी ही सम्भावना की जासकती है; क्योंकि जब वह दुर्गसम्पन्न राजाके साथ अपना वश न चलनेपर खिसियाया हुआ घरकी ओर वापस लौटता है, तो पार्ष्णिग्राहके साथही युद्ध करनेके लिये सन्नद्ध होजाता है। और ऐसी अवस्थामें पार्ष्णिग्राहको हानिही होती है, लाभ कुछ नहीं ॥ १० ॥

तेन पूर्वे व्याख्याताः ॥ ११ ॥

दुर्गसम्पन्न शत्रुपर आक्रमण करनेवालेके पार्ष्णिका ग्रहण करनेवालेकी तरह, हीनशक्तिके पार्ष्णिग्राही, अल्पारम्भ (५ सूत्र देखो) के पार्ष्णिग्राही, तथा कुछ सेना लेजानेवालेके पार्ष्णिग्राही राजाओंकी अवस्था भी समझ लेनी चाहिये ॥११॥

शत्रुसाम्ये यो धार्मिकाभियोगिनः पार्ष्णिं गृह्णाति सोऽतिसंधत्ते ॥१२॥ धार्मिकाभियोगी हि स्वेषां च द्वेष्यो भवति ॥१३॥ अधार्मिकाभियोगी संप्रियः ॥ १४ ॥

सर्वथा समानशक्ति शत्रुओंमेंसे उसहीका पाष्णिग्राह होनेमें विशेष लाभ होता है, जिसने अपने किसी धर्मात्मा शत्रुपर आक्रमण किया हुआ हो ॥ १२ ॥ क्योंकि ऐसा करनेपर अपने और पराये सभी उसके साथ द्वेष करने लगते हैं, ऐसी अवस्थामें पाष्णिग्राह, सरलतासेही उसे अपने वशमें कर सकता है ॥ १३ ॥ परन्तु अधर्मात्मा शत्रुपर आक्रमण करनेवाला राजा सभीका प्रिय होजाता है, उसका अपने शत्रुपर जयलाभ करना निश्चित है, इसलिये ऐसे राजाके पाष्णिका ग्रहण करना लाभदायक नहीं होता ॥ १४ ॥

तेन मूलहरतादात्विककदर्याभियोगिनां पाष्णिग्रहणं व्याख्यातम् ॥ १५ ॥

इससे मूलहर तादात्विक तथा कदर्य राजाओंपर आक्रमण करनेवालेके पाष्णिग्रहणका भी लाभालाभ समझ लेना चाहिये । तात्पर्य यह है:—पितृ पैतामह परम्पराप्राप्त सम्पत्तिको अन्यायपूर्वक खानेवाले राजाका नाम 'मूलहर' है। समय २ पर प्राप्त हुई सम्पत्तिको व्यर्थ व्ययकरने वाला 'तादात्विक' कहाता है। भृत्यों तथा अपने आपको पीड़ा पहुंचाकर सम्पत्ति इकट्ठा करनेवाले राजाको 'कदर्य' कहते हैं ॥ इस प्रकार मूलहर और तादात्विक राजाओंपर आक्रमण करनेवालोंमेंसे, मूलहरपर आक्रमण करनेवालेके पाष्णिको जो ग्रहण करता है, वही विशेष लाभमें रहता है । क्योंकि अर्थकष्टमें पड़ेहुए मूलहर राजाको उच्छेद कर, वह पाष्णिग्राहकका भी उच्छेद करसकता है । अतः पाष्णिग्राह यदि बीचमें ही विघ्न डालदे, तो उसकी अपनी रक्षा होजाना ही विशेष लाभ होता है । इसी तरह तादात्विक और कदर्य राजाओंपर आक्रमण करनेवालोंमेंसे कदर्यपर आक्रमण करनेवाले राजाके पाष्णिको जो दबाता है । वही लाभमें रहता है । क्योंकि कंजूस राजा कभी नौकरोंकी भलाई नहीं करता । इस लिये उसका सरलतासे उच्छेद करके, शत्रु, पाष्णिग्राहका भी उच्छेद कर सकता है । अतः उसके विजयमें विघ्नडालना विजिगीषुके लिये अत्यन्त आवश्यक है ॥ १५ ॥

मित्राभियोगिनोः पाष्णिग्रहणं त एव हेतवः ॥१६॥ मित्रममित्रं चाभियुञ्जानयोर्यो ऽमित्राभियोगिनः पाष्णिं गृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ १७ ॥ मित्राभियोगी हि सुखेनावाप्तसंधिः पाष्णिग्राहमुच्छिन्द्यात् ॥ १८ ॥

मित्र राजाओंपर आक्रमण करनेवालोंके पाष्णिका ग्रहण करनेमेंभी वेही कारण समझने चाहियें, जोकि ये अतिसन्धिके कारण निर्देश किये गये हैं ॥ १६ ॥ मित्र और शत्रुपर आक्रमण करनेवाले राजाओंमेंसे जो मित्रपर आक्र-

मण करनेवाले राजाके पार्ष्णिका ग्रहण करता है, वह विशेष लाभमें रहता है ॥ १७ ॥ क्योंकि मित्रपर आक्रमण करने वाला सहज ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है, और फिर बलवान् होकर पार्ष्णिग्राहका भी उच्छेद कर सकता है ॥ १८ ॥

सुकरो हि मित्रेण संधिर्नामित्रेणेति ॥ १९ ॥

क्योंकि मित्रके साथ सन्धि होजाना बहुत सुकर है। शत्रुके साथ सन्धि, कुछ कठिनतासे ही होसकती है, अतः शत्रुपर आक्रमण करनेवाला राजा, सिद्धि लाभ न करता हुआ, पार्ष्णिग्राहका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता ॥ १९ ॥

मित्रममित्रं चोद्धरतोर्योऽमित्रोद्धारिणः पार्ष्णिं गृह्णाति सोऽतिसंधत्ते ॥२०॥ वृद्धमित्रो ह्यमित्रोद्धारी पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यान्नेतरः स्वपक्षोपघाती ॥ २१ ॥

मित्र और शत्रुका उद्धार (उन्मूलन=उच्छेद) करनेवाले राजाओंमें से जो शत्रुका उद्धार करनेवाले राजाके पार्ष्णिका ग्रहण करता है, वही विशेषलाभ में रहता है ॥ २० ॥ क्योंकि शत्रुका उद्धार करनेवाला राजा, स्वपक्ष या मित्र के बढ़जानेपर अधिक बलवान हुआ २ पार्ष्णिग्राहका भी उच्छेद करसकता है। परन्तु दूसरा, मित्रकाही उद्धार करनेवाला राजा, अपनेही पक्षका घातक होनेके कारण हीन हुआ २ कभीभी पार्ष्णिग्राहका उच्छेद नहीं करसकता, इसीलिये इस की ओरसे तो कोई भय रखनाही नहीं चाहिये ॥ २१ ॥

तयोरलब्धलाभापगमने यस्यामित्रो महतो लाभाद्वियुक्तः क्षयव्ययाधिको वा स पार्ष्णिग्राहोऽतिसंधत्ते ॥ २२ ॥

मित्र और शत्रुका उद्धार करनेवाले राजाओंके कुछ विशेष लाभ प्राप्त किये बिनाही लौट आनेपर, जिसका शत्रु बड़े लाभसे रहित हो, तथा जिसके पुरुषोंका क्षय और धनका भी पर्याप्त व्यय होगया हो, ऐसे शत्रुपर आक्रमण किये हुए राजाका पार्ष्णिग्राह विशेष लाभमें रहता है। क्योंकि यह शत्रुको क्षीण करके पार्ष्णिग्राहको भी हानि पहुंचानेका यत्न करसकता है ॥ २२ ॥

लब्धलाभापगमने यस्यामित्रो लाभेन शक्त्या हीनः स पार्ष्णिग्राहोऽतिसंधत्ते ॥ २३ ॥ यस्य वा यातव्यः शत्रुर्विग्रहापकारसमर्थः स्यात् ॥ २४ ॥

तथा विशेष लाभ प्राप्त करके ही लौटनेपर जिसका शत्रु लाभसे और शक्तिसे हीन हो, ऐसे आक्रमणकारी राजाका पार्ष्णिग्राह लाभमें रहता है।

क्योंकि दूसरा, लाभ और शक्तिसे सम्पन्न शत्रुको वशमें न करसकनेके कारण पार्ष्णिग्राहका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता ॥ २३ ॥ अथवा जिसका यातव्य (जिसके ऊपर आक्रमण किया जाय, ऐसा शत्रु), शत्रु विजिगीषु रूप शत्रु, अर्थात् विजिगीषु) के साथ युद्ध करके, उसका अपकार करनेमें समर्थ हो, उसके पार्ष्णिको दबानेवाला राजाभी विशेष लाभमें रहता है ॥ २४ ॥

पार्ष्णिग्राहयोरपि यः शक्यारम्भबलोपादानाधिकः स्थितशत्रुः-पार्श्वस्थायी वा सो ऽतिसंधत्ते ॥ २५ ॥

जो पार्ष्णिग्राह राजाओंमेंसे भी, जोकि सब गुणोंमें समान हैं, वही पार्ष्णिग्राह विशेष लाभमें रहता है, जिसके पास सिद्ध होने योग्य कार्योंको प्रारम्भ करनेके लिये, दूसरेकी अपेक्षा अधिक सेना एकत्रित हो, तथा जो स्थित शत्रु अर्थात् दुर्ग आदिमें सुरक्षित शत्रु हो, अथवा जो यातव्यके समीप ही रहने वाला हो ॥ २५ ॥

पार्श्वस्थायी हि यातव्याभिसारी मूलाबाधकश्च भवति, मूलाबाधक एव पश्चात्स्थायी ॥ २६ ॥

क्योंकि समीप रहनेवाले (पार्श्वस्थायी) को यही विशेष लाभ होता है, कि यातव्यके साथ मिल सकता है; और विजिगीषुके मूलस्थानको बाधा पहुंचा सकता है परन्तु दूर रहनेवाला विजिगीषुके मूलस्थानको किसीतरह भी बाधा नहीं पहुंचा सकता ॥ २६ ॥

पार्ष्णिग्राहास्त्रयो ज्ञेयाः शत्रोश्चेष्टानिरोधकाः ।
सामन्तात्पृष्ठतो वर्गः प्रतिवेशौ च पार्श्वयोः ॥ २७ ॥

शत्रुके प्रत्येक व्यापार या कार्यको रोकनेवाले, ये पार्ष्णिग्राह तीन प्रकार के होते हैं:—(१) आक्रमण करनेवाले राजाके देशके समीप रहनेवाले, (२) पीछे अर्थात् व्यवहित देशमें रहनेवाले, (३) इधर उधर पार्श्वभागोंमें रहने वाले ॥ २७ ॥

अरेर्नेतुश्च मध्यस्थो दुर्बलो ऽन्तर्धिरुच्यते ।
प्रतिघातो बलवतो दुर्गाटव्यपसारवान् ॥ २८ ॥

आक्रमणकारी विजिगीषु और उसके शत्रुके मध्यमें होनेवाला दुर्बल राजा अन्तर्धि कहाता है । (यह अशक्त होनेके कारण 'पार्ष्णिग्राह' नहीं हो सकता । अतएव इसका पृथक् ही निरूपण किया है) यह केवल, बलवान्‌का मुकाबला होनेपर, दुर्ग अथवा अटवी (घने जंगल) में भागकर छिपजाता है । इसी लियेही इसका अन्वर्थ नाम 'अन्तर्धि' रक्खा गया है ॥ २८ ॥

मध्यमं त्वरिविजिगीष्वोर्लिप्समानयोर्मध्यमस्य पार्ष्णिं गृह्णतोर्लब्धलाभापगमने यो मध्यमं मित्राद्वियोजयत्यमित्रं च मित्रमाप्नोति सोऽतिसंधत्ते ॥ २९ ॥

मध्यमको वशमें करनेकी इच्छा रखनेवाले शत्रु और विजिगीषुमेंसे वही विशेष लाभमें रहता है, जो कि मध्यमके पार्ष्णिको ग्रहण करता हुआ, वहांसे कुछ लाभ प्राप्त करके भी, मध्यम राजाको उसको अपने मित्रसे वियुक्त कर देता है। तथा स्वयं अपने शत्रुकोभी अपना मित्र बना लेता है ॥ २९ ॥

संधेयश्च शत्रुरुपकुर्वाणो न मित्रं मित्रभावादुत्क्रान्तम् ॥३०॥ तेनोदासीनलिप्सा व्याख्याता ॥ ३१ ॥

उपकार करने वाले शत्रुके साथभी सन्धि कर लेनी चाहिये। तथा मित्र भावसे रहित हुए २ अर्थात् अपकार करनेवाले मित्रकोभी छोड़देना चाहिये ॥ ३० ॥ मध्यमको वशमें करनेकी तरह, उदासीनको वशमें करनाभी समझ लेना चाहिये ॥ ३१ ॥

पार्ष्णिग्रहणाभियानयोस्तु मन्त्रयुद्धादभ्युच्चयः ॥ ३२ ॥ व्यायामयुद्धे हि क्षयव्ययाभ्यामुभयोरवृद्धिः ॥३३॥ जित्वापि हि क्षीणदण्डकोशः पराजितो भवतीत्याचार्याः ॥ ३४ ॥

पार्ष्णिग्राह और और आक्रमणकारी इन दोनों राजाओंमेंसे वही अधिक उन्नत होसकता है, जो मन्त्रयुद्धसे शत्रुका नाश करता है। (साधारणतया युद्ध दो प्रकारका होता है— १) व्यायामयुद्ध, (२) मन्त्रयुद्ध। युद्धभूमिमें प्रवेश करके शस्त्रास्त्र आदिके प्रयोगोंके द्वारा शत्रुका नाश करदेना 'व्यायामयुद्ध' कहाता है। युद्धभूमिमें न जाकरही सत्री, रसद और तीक्ष्ण आदि गूढपुरुषोंके द्वारा शत्रुका नाश करदेना 'मन्त्रयुद्ध' कहाता है। इन दोनोंमेंसे मन्त्रयुद्धका अनुष्ठान करनेसे ही वृद्धि हो सकती है ॥ ३२ ॥ क्योंकि व्यायामयुद्धके करने पर मनुष्योंका क्षय और धनका अत्यधिक व्यय होनेके कारण, दोनों कीही हानि होती है ॥ ३ ॥ तथा युद्धमें विजय प्राप्त होजानेपर भी सेना और कोशके क्षीण होजानेके कारण, वह राजा प्रायः पराजितसाही होजाता है। यह प्राचीन आचार्योंका सिद्धान्त है ॥ ३४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३५ ॥ सुमहतापि क्षयव्ययेन शत्रुविनाशोऽभ्युपगन्तव्यः ॥ ३६ ॥

परन्तु कौटल्य इसको नहीं मानता ॥ ३५ ॥ वह कहता है कि, चाहे कितनाही मनुष्योंका क्षय और धनका व्यय होजाय, शत्रुका नाश करनाही हर हालतमें अभिमत होना चाहिये ॥ ३६ ॥

तुल्ये क्षयव्यये यः पुरस्ताद्दूष्यबलं घातयित्वा निःशल्यः पश्चाद्वश्यबलो युध्येत सो ऽतिसंधत्ते ॥ ३७ ॥

मनुष्य तथा धनकी बराबर हानि होनेपर जो राजा पहिले अपने दूष्य-बल (वह सेना, जो अपने राजाके साथ द्रोह करनेवाली हो, तथा वशमें न रहती हो) को मरवाकर, निष्कण्टक होकर, पीछेसे अपने वशमें रहनेवाली सेनाको लेकर युद्ध करता है, वही विशेष लाभमें रहता है ॥ ३७ ॥

द्वयोरपि पुरस्ताद्दूष्यबलघातिनोर्यो बहुलतरं शक्तिमत्तरमत्यन्तदूष्यं च घातयेत्सो ऽतिसंधत्ते ॥३८॥ तेनामित्राटवीबलघातो व्याख्यातः ॥ ३९ ॥

यदि दोनों राजाही पहिले अपने दूष्यबलको ही मरवावें, तो उनमेंसे वही विशेष लाभमें रहता है, जो संख्यामें अधिक, शक्तिशाली, अत्यन्तदूष्य-बलको पहिले मरवाता है ॥ ३८ ॥ दूष्यबलकी तरह शत्रुबल और अटवीबलका मरवाना भी समझलेना चाहिये ॥ ३९ ॥

पार्ष्णिग्राहो ऽभियोक्ता वा यातव्यो वा यदा भवेत् ।
विजिगीषुस्तदा तत्र नेत्रमेतत्समाचरेत् ॥ ४० ॥

विजिगीषु जब पार्ष्णिग्राह, अभियोक्ता (आक्रमणकारी) अथवा यातव्य (जिसपर आक्रमण कियाजाय) हो, उस अवस्थामें उसे यह निम्न निर्दिष्ट नेतृत्व का कार्य करना चाहिये ॥ ४० ॥

पार्ष्णिग्राहो भवेन्नेता शत्रोर्मित्राभियोगिनः ।
विग्राह्य पूर्वमाक्रन्दं पार्ष्णिग्राहाभिसारिणा ॥ ४१ ॥

विजिगीषुको उचित है कि अपने (विजिगीषुके) मित्रके ऊपर आक्रमण करनेवाले शत्रुके पश्चात् स्थित मित्रको (आक्रन्द) पहिले अपने मित्रकी सेनाके साथ युद्ध कराके, फिर स्वयं उसके पार्ष्णिका ग्रहण करे ॥ ४१ ॥

आक्रन्देनाभियुञ्जानः पार्ष्णिग्राहं निवारयेत् ।
तथाक्रन्दाभिसारेण पार्ष्णिग्राहाभिसारिणम् ॥ ४२ ॥

यदि विजिगीषु स्वयंही अभियोक्ता अर्थात् आक्रमण करनेवाला हो, तो वह अपने पार्ष्णिग्राहको मित्रके द्वारा निवारण करे । तथा पार्ष्णिग्राहकी सेनाको

मुकाबला मित्रकी सेनाके द्वाराही करे ॥ ४२ ॥

अरिमित्रेण मित्रं च पुरस्तादवघट्टयेत् ।
मित्रमित्रमरेश्चापि मित्रमित्रेण वारयेत् ॥ ४३ ॥

इस प्रकार अपने पीछेकी ओरका प्रबन्ध करके, सामनेकी ओरसे यदि शत्रुका मित्र मुकाबलेमें आवे, तो उससे अपने मित्रको भिड़ा देवे । यदि शत्रुके मित्रका मित्र आवे, तो उसका निवारण अपने मित्रके मित्रके द्वारा करे ॥ ४३ ॥

मित्रेण ग्राहयेत्पार्ष्णिमभियुक्तो ऽभियोगिनः ।
मित्रामित्रेण चाक्रन्दं पार्ष्णिग्राहं निवारयेत् ॥ ४४ ॥

यदि विजिगीषु स्वयं अभियुक्त हो अर्थात् उसके ऊपरही कोई चढ़ाई करनेवाला हो, तो आक्रमणकारीके पार्ष्णिको मित्रके द्वारा ग्रहण करावे, अर्थात् विजिगीषुका मित्र, आक्रमणकारीका पार्ष्णिग्राह बनजावे । यदि आक्रमणकारीका कोई मित्र पार्ष्णिग्राहका मुकाबला करनेके लिये आजावे, तो मित्रके मित्रके द्वारा अर्थात् पार्ष्णिग्राहके मित्रके द्वारा उसका निराकरण करे ॥ ४४ ॥

एवं मण्डलमात्मार्थं विजिगीषुर्निवेशयेत् ।
पृष्ठतश्च पुरस्ताच्च मित्रप्रकृतिसंपदा ॥ ४५ ॥

इस प्रकार विजिगीषु, मित्ररूप प्रकृति (अर्थशास्त्र प्रसिद्ध सात प्रकृतियोंमेंसे मित्रभी अन्यतम प्रकृति है) की पूर्वोक्त गुणसमृद्धिसे युक्त राजमण्डलको अपनी सहायताके लिये आगे और पीछे ठीक तौरपर स्थापित करे ॥ ४५ ॥

कृत्स्ने च मण्डले नित्यं दूतान्गूढांश्च वासयेत् ।
मित्रभूतः सपत्नानां हत्वा हत्वा च संवृतः ॥ ४६ ॥

अपनी सहायताके लिये स्थापित किये हुए इस सम्पूर्ण राजमण्डलमें, दूतों और गुप्तचरोंका सदाही प्रबन्ध रक्खे । तथा शत्रुओंके साथ ऊपरसे मित्रता रखकर, उन्हें एक एकको मारदेवे, और अपने आप ऊपरसे उदासीनसा ही बनारहे, अर्थात् इस प्रकारके अपने आन्तरिक भावोंको प्रकट न होनेदे ॥ ४६ ॥

असंवृतस्य कार्याणि प्राप्तान्यपि विशेषतः ।
निःसंशयं विपद्यन्ते भिन्नः प्लव इवोदधौ ॥ ४७ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे पार्ष्णिग्राहचिन्ता त्रयोदशो ऽध्यायः ॥ १३ ॥
आदितः ऽकादशशतः ॥ १११ ॥

जो राजा अपने आन्तरिक विचारों या मन्त्रणाओंको छिपाकर नहीं रखसकता, उसके उन्नत अवस्थाको प्राप्त हुए २ भी कार्य निस्सन्देह नष्ट हो

जाते हैं। समुद्रमें नौकाके फटजानेपर पुरुषकी जो अवस्था होती है, ठीक वही अवस्था मन्त्रके फूटजानेपर राजाकी होजाती है। इसलिये विजिगीषुको उचित है कि वह सदा अपने मन्त्रको सुरक्षित रक्खे ॥ ४७ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें तेरहवां अध्याय समाप्त।

चौदहवां अध्याय

११८ प्रकण

हीनशक्ति-पूरण।

सामवायिकैरेवमभियुक्तो विजिगीषुस्तेषां प्रधानस्तं ब्रूयात् ॥ १ ॥ त्वया मे संधिः ॥ २ ॥

यदि बहुतसे राजा मिलकर, विजिगीषुपर आक्रमण करदें, तो विजिगीषु अपनी रक्षा और वृद्धिका विचार करके, उन इकट्ठे हुए राजाओंके मुखिया राजाको इस प्रकार कहे, कि ॥ १ ॥ तुम्हारे साथ मेरी सन्धि रहो; (इतनी बात केवल उसी समय कही जासकती है, जब कि वह मुखिया धर्मात्मा हो; यदि लोभी हो, तो कहे कि:—) ॥ २ ॥

इदं हिरण्यम् ॥ ३ ॥ अहं च मित्रम् ॥ ४ ॥ द्विगुणा ते वृद्धिः ॥५॥ नार्हस्यात्मक्षयेण मित्रमुखानमित्रान्वर्धयितुम् ॥६॥ एते हि वृद्धास्त्वामेव परिभविष्यन्तीति ॥ ७ ॥

यह हिरण्य है ॥ ३ ॥ और मैं तुम्हारा मित्र हूं ॥ ४ ॥ तुम्हारी दुगुनी वृद्धि होगई है; (क्योंकि एक तो मुझ अभियोक्तासे तुम्हें पर्याप्त धन मिल गया; और आगेसमें सहायता देनेवाला मैं एक मित्र मिलगया) ॥ ५ ॥ इस लिये अपने जन और धनका नाश करके, ऊपरसे मित्रता दिखाने वाले इन शत्रुओंको बढ़ाना आपके लिये युक्त नहीं है ॥ ६ ॥ क्योंकि ये वृद्धिको प्राप्त होकर तुमकोही दबावेंगे। अर्थात् तुम्हारी सहायतासे पहिले मेरा उच्छेद करके, फिर तुम्हारा तिरस्कार करेंगे। इसलिये तुम्हें इनका साथ नहीं देना चाहिये ॥ ७ ॥

भेदं वा ब्रूयात् ॥ ८ ॥ अनपकारी यथाहमेतैः संभूयाभियुक्तस्तथा त्वामप्येते संहितबलाः स्वस्था व्यसने वाभियोक्ष्यन्ते ॥९॥ बलं हि चित्तं विकरोति ॥१०॥ तदेषां विघातयेति ॥११॥

अथवा उनमें आपसमें ही भेद डलवा देवे, (यह उसी समय करना

चाहिये, जब कि वह मुखिया पहिली बातको स्वीकार न करे) । भेद डलवानेके लिये कहे कि ॥ ८ ॥ जिस प्रकार निरपराध मुझपर इन सबने मिलकर आक्रमण किया है, इसी प्रकार ये सब इकट्ठे होकर अपनी उन्नत अवस्थामें अथवा तुम्हारे आपद्ग्रस्त होनेपर अवश्यही तुमपर आक्रमण करेंगे ॥९॥ क्योंकि एकत्रित हुआ २ बल अवश्यही चित्तको विकृत अर्थात् गर्वित बनादेता है ॥ १० ॥ इस लिये आपको उचित है, कि आप अभीसे इनके बलको छिन्नभिन्न करदें ॥ ११ ॥

भिन्नेषु प्रधानमुपगृह्य हीनेषु विक्रमयेत् ॥ १२ ॥ हीनाननुग्राह्य वा प्रधाने ॥ १३ ॥ यथा वा श्रेयोऽभिमन्यते तथा, वैरं वा परैर्ग्राहयित्वा विसंवादयेत् ॥ १४ ॥

इसप्रकार आपसमें उनका भेद पड़जाने पर, प्रधानकी सहायता लेकर अन्य सब हीन राजाओंपर आक्रमण करदेवे ॥ १२ ॥ अथवा उपर्युक्त प्रकारसे हीनोंमें साम आदिका प्रयोग करके, उनकी सहायता लेकर प्रधान राजापर आक्रमण करदेवे ॥ १३ ॥ अथवा जिस प्रकार अपना कल्याण समझे, उसीप्रकार कार्य करे । अथवा दूसरोंके साथ एक एकका विरोध कराके आपसमेंही भिड़ादे । (यह कार्य उसी समय किया जाता है, जब विजिगीषु स्वयं युद्ध करना न चाहता हो या न कर सकता हो) ॥ १४ ॥

फलभूयस्त्वेन वा प्रधानमुपजाप्य संधिं कारयेत् ॥ १५ ॥ अथोभयवेतनाः फलभूयस्त्वं दर्शयन्तः सामवायिकानतिसंहिताः स्थ इत्युद्दूषयेयुः ॥ १६ ॥

अथवा बहुतसा धन आदि देनेकी प्रतिज्ञा करके, प्रधान राजाको उधरसे तोड़कर, उसीके द्वारा अन्य राजाओंके साथ सन्धि करलेवे ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर उभयवेतन गुप्त पुरुष (दोनों ओरसे वेतन लेनेवाले, अर्थात् जो गूढपुरुष अन्दरसे तो विजिगीषुके आदमी हों, परन्तु ऊपरसे अपने आपको, पूर्णतया दूसरोंका बतलावें, वे) उन सामवायिक (एकत्रित=इकट्ठे) राजाओंको, प्रधानके लिये भारी रकम मिलनेकी बातको कहते हुए, 'तुम सबको उसने ठगलिया है' इसप्रकार भड़कावें ॥ १६ ॥

दुष्टेषु संधिं दूषयेत् ॥ १७ ॥ अथोभयवेतना भूयो भेदमेषां कुर्युरेवं तद्यदस्माभिर्दर्शितमिति ॥ १८ ॥ भिन्नेष्वन्यतमोपग्रहेण वा चेष्टेत ॥ १९ ॥

जब वे सब राजा, प्रधानसे विरुद्ध होजावें, तब वह प्रधानके साथ की हुई सन्धिको तोड़ देवे ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर फिर उभयवेतन गूढपुरुष,

इनका आपसमें भेद डालें, और कहें कि देखो, हमने पहिलेही कहा था कि इस प्रधान राजाको भारी रकम मिलने वाली है, अब उसमें कुछ गड़बड़ होजानेके कारण, इसने विजिगीषुके साथ कीहुई सन्धिको तोड़दिया है। पहिले कही हुई हमारी बात, इसकी इस कार्यवाहीसे बिल्कुल स्पष्ट होगई है ॥ १८ ॥ इन उपायोंसे आपसमें उनके भिन्न होजानेपर, दोनोंमेंसे किसी एकका सहारा लेकर, दूसरेके साथ युद्ध प्रारम्भ करदेवे ॥ १९ ॥

प्रधानाभावे सामवायिकानामुत्साहयितारं स्थिरकर्माणमनुरक्तप्रकृतिं लोभाद्भयाद्वा संघातमुपागतं विजिगीषोर्भीतं राज्यप्रतिसंबन्धं मित्रं चलामित्रं वा पूर्वानुत्तराभावे साधयेत् ॥ २० ॥

यदि उन सामवायिक राजाओंका कोई एक प्रधान राजा न हो, तो उनमेंसे जो सबको उत्साहित करनेवाला, स्थिरकर्मा (कार्यको परिणामतक पहुंचानेका साहस रखनेवाला=शत्रुका उच्छेद किये विना पीछे न हटनेवाला), अनुरक्त प्रकृति (जिसके अमात्य, तथा, प्रजाजन उसमें अनुराग रखते हों), लोभसे राजाओंके संघमें आकर मिला हुआ, अथवा भयसे उनमें आकर मिला हुआ, विजिगीषुसे डरा हुआ, अपने राज्यके साथ कुछ सम्बन्ध रखनेवाला, अपनाही मित्र (जो कि सामवायिक राजाओंके साथ जाकर मिलगया हो), और चलामित्र अर्थात् दुर्ग आदि रहित शत्रु हो; इनको ही अपने वशमें करे। परन्तु इन नोओं प्रकारके राजाओंमेंसे, अगलेके न होनेपरही पहिलेको वशमें करनेका यत्न करे। जैसे—उत्साहयिता और स्थिरकर्मा इन दोनोंमेंसे, स्थिरकर्माके न होनेपरही उत्साहयिताको वशमें करे, अन्यथा तो स्थिरकर्माको ही वशमें करनेका यत्न करे। इसीतरह आगेभी समझना चाहिये ॥ २० ॥

उत्साहयितारमात्मनिसर्गेण स्थिरकर्माणं सान्त्वप्रणिपातेनानुरक्तप्रकृतिं कन्यादानयापनाभ्यां लुब्धमंशद्वैगुण्येन भीतमेभ्यः कोशदण्डानुग्रहेण स्वतो भीतं विश्वासयेत् प्रतिभूप्रदानेन राज्यप्रतिसंबन्धमेकीभावोपगमनेन मित्रमुभयतः प्रियहिताभ्यामुपकारत्यागेन वा चलामित्रमवधृतमनपकारोपकाराभ्याम् ॥ २१ ॥

विजिगीषुको उचित है कि वह उत्साहयिताको 'मैं अमात्य और पुत्रादिके सहित तुम्हारे अधीन हूं, तुम अपनी इच्छानुसार जिसकार्यपर चाहो मुझे लगासकते हो, परन्तु मेरा उच्छेद न करो' इसप्रकार आत्मसमर्पण करके वशमें करे। स्थिरकर्माको 'आपने मुझे जीतलिया है, आप सब गुणोंमें उत्कृष्ट हैं' इसप्रकार कहकर प्रणिपात अर्थात् उसके सामने अपना सिर झुकाकर वशमें करे।

अनुरक्तप्रकृति राजाको कन्या ले या देकर वशमें करे। लोभीराजाको दूना हिस्सा देकर वशमें करे। सामवायिक राजाओंसे डरे हुएको सेना और धनकी सहायता देकर वशमें करे। अपने आपसे डरे हुएको, बीचमें किसी अन्य राजाको साक्षी बनाकर उसे इसतरहका विश्वास कराकर कि मैं तुम्हारा कोई अपकार नहीं करूँगा, अपने अनुकूल बनावे। अपने राज्यसे सम्बन्ध रखनेवाले राजाको 'मैं और तुम एकही हैं, मेरे पराजयमें तुम्हारा भी पराजय है, दूसरोंके साथ मिलकर मुझपर आक्रमण करना तुम्हारे लिये युक्त नहीं' इसप्रकार एकताका भाव दिखाकर अपने वशमें करे, मित्रराजाको, प्रिय और हितवचनों से तथा जो कर उससे अभी तक लिया जाता था उसे छोड़ देनेसे अपने वशमें करे। और अस्थिर शत्रु राजाको उसका उपकार करने और अपकार न करनेकी प्रतिज्ञासे विश्वस्त बनाकर अनुकूल बनावे ॥ २१ ॥

यो वा यथायोगं भजेत तं तथा साधयेत् ॥ २२ ॥ सामदानभेददण्डैर्वा यथापत्सु व्याख्यास्यामः ॥ २३ ॥

अथवा इन सामवायिक राजाओंमेंसे, जो भी जिस प्रकारसे भेदको प्राप्त होसके, उसी तरह उसे वशमें करनेका यत्न कियाजाय ॥ २२ ॥ अथवा साम, दान, भेद और दण्ड इन सबही उपायोंसे उनको अपने अधीन करनेका यत्न करे, जैसा कि हम आपत् प्रकरणमें कथन करेंगे। (देखो=९ अधि०, ५ अध्याय) ॥ २३ ॥

व्यसनोपघातत्वरितो वा कोशदण्डाभ्यां देशे काले कार्ये वावधृतं संधिमुपेयात् ॥ २४ ॥ कृतसंधिर्हीनमात्मानं प्रतिकुर्वीत ॥ २५ ॥

अथवा विजिगीषु अपने ऊपर आई हुई विपत्तिको शीघ्रही नष्ट करनेकी इच्छा रखता हुआ, सामवायिक राजाओंके साथ; सेना और धनके द्वारा अमुक देश, काल तथा कार्यके उपस्थित होनेपर परस्पर सहायताके लिये शपथ आदि करके निश्चित सन्धि करलेवे ॥ २४ ॥ और इस प्रकार सन्धि करनेके अनन्तर अपनी क्षीणशक्तिको पूर्ण उन्नत बनानेका यत्न करता रहे ॥ २५ ॥

पक्षे हीनो बन्धुमित्रपक्षं कुर्वीत ॥ २६ ॥ दुर्गमविषह्यं वा ॥ २७ ॥ दुर्गमित्रप्रतिस्तब्धो हि स्वेषां परेषां च पूज्यो भवति ॥ २८ ॥

अपने पक्ष अर्थात् मित्रसे रहित विजिगीषु, बन्धु और मित्ररूप पक्षको अच्छी तरह बनावे। अर्थात् जहांतक होसके, राजाओंको अपना मित्र बनावे

॥ २६ ॥ अथवा शत्रुओंसे अभेद्य दुर्ग बनवावे ॥ २७ ॥ क्योंकि इस प्रकार दुर्ग और मित्रोंसे युक्त हुआ २ विजिगीषु, अपने और पराये सबहीका पूज्य होजाता है। अर्थात् फिर उसके विरोधमें सहसा कोईभी शत्रु खड़ा नहीं हो सकता ॥ २८ ॥

मन्त्रशक्तिहीनः प्राज्ञपुरुषोपचयं विद्यावृद्धसंयोगं वा कुर्वीत ॥ २९ ॥ तथा हि सद्यःश्रेयः प्राप्नोति ॥ ३० ॥

मन्त्रशक्ति अर्थात् बुद्धिबलसे हीन राजा, बुद्धिमान् पुरुषोंका संग्रह और विद्या वृद्ध अनुभवी पुरुषोंके साथ संगति करे ॥ २९ ॥ इस प्रकार करनेसे राजा, शीघ्रही कल्याणको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

प्रभावहीनः प्रकृतियोगक्षेमसिद्धौ यतेत ॥ ३१ ॥ जनपदः सर्वकर्मणां योनिः ॥ ३२ ॥ ततः प्रभावः ॥ ३३ ॥ तस्य स्थानमात्मनश्च आपदि दुर्गम् ॥ ३४ ॥

प्रभाव अर्थात् प्रभुशक्तिसे हीन राजा, अमात्य आदि प्रकृति अथवा प्रजाओंके योग क्षेमको सिद्ध करनेमें महान यत्न करे ॥ ३१ ॥ क्योंकि जनपद सबही कार्योंका मूलकारण है; उसहीसे कोश और सेनाकी उत्पत्ति होसकती है और दुर्गोंका भी निर्माण किया जासकता है ॥ ३२ ॥ तदनन्तर सर्वत्र प्रभाव भी होसकता है ॥३३॥ उस प्रभावका मूल निवासस्थान दुर्गही है; और आपत्तिकालमें, दुर्गके द्वारा अपनीभी रक्षा होसकती है ॥ ३४ ॥

सेतुबन्धः सस्यानां योनिः ॥ ३५ ॥ नित्यानुषक्तो हि वर्षगुणलाभः सेतुवापेषु ॥ ३६ ॥

सेतुबन्ध (बड़े २ बांध लगाकर बनाये हुए जलाशय), अन्न आदिकी उत्पत्तिका प्रधान कारण है ॥ ३५ ॥ क्योंकि जो अन्न आदि, वृष्टिके द्वारा हमें कभी२ प्राप्त होसकते हैं, वे इन जलाशयोंके समीप बोई हुई भूमिमें सदाही प्राप्त होते रहते हैं। अर्थात सेतुबन्धोंके द्वारा प्रत्येक ऋतुमें अन्न आदि पदार्थ प्राप्त किये जासकते हैं ॥ ३६ ॥

वणिक्पथः परातिसंधानस्य योनिः ॥ ३७ ॥ वणिक्पथेन हि दण्डगूढपुरुषातिनयनं शस्त्रावरणयानवाहनक्रयश्च क्रियते॥३८॥ प्रवेशो निर्नयनं च ॥ ३९ ॥

व्यापारी मार्ग शत्रुओंको धोखा देनेका प्रधान कारण हैं ॥ ३७ ॥ क्योंकि सेना और तीक्ष्ण, रसद आदि गूढ़ पुरुषोंको शत्रु देशमें पहुंचाना; तथा

हर तरहके हथियार, कवच, सवारी और घोड़े आदि वस्तुओंको क्रय विक्रय व्यवहार सब व्यापारी मार्गोंके द्वाराही किया जाता है ॥ ३८ ॥ तथा दूसरे देशकी वस्तुओंको अपने देशमें लाना और अपने देशकी वस्तुओंको दूसरे देशमें भेजना भी इन्हीं मार्गोंके द्वारा होता है ॥ ३९ ॥

खनिः संग्रामोपकरणानां योनिः ॥ ४० ॥ द्रव्यवनं दुर्गकर्मणाम् ॥ ४१ ॥ यानरथयोश्च ॥ ४२ ॥

संग्रामके प्रत्येक उपकरणों (हथियार आदि साधनों) का प्रधानकारण खानही है ॥ ४० ॥ लकड़ियोंका जंगल, दुर्गों और राजप्रासाद आदि कार्योंका प्रधान कारण है ॥ ४१ ॥ और रथ तथा इसी तरहकी अन्य सवारियोंका भी यही कारण होता है ॥ ४२ ॥

हस्तिवनं हस्तिनाम् ॥ ४३ ॥ गवाश्वरथोष्ट्राणां च व्रजः ॥ ४४ ॥ तेषामलाभे बन्धुमित्रकुलेभ्यः समार्जनम् ॥ ४५ ॥

हाथियोंका जंगल, हाथियोंकी उत्पत्तिका प्रधान कारण है ॥ ४३ ॥ और हाथी, घोड़े, गधे तथा ऊँटोंकी उत्पत्तिका कारण व्रज अर्थात् गोशाला हैं। (यद्यपि 'व्रज' शब्दका अर्थ गोष्ठ या गोशाला है, परन्तु यहांपर यह शब्द सब ही पालतू पशुओंके रक्षा स्थानके लिये प्रयुक्त किया गया है) ॥ ४४ ॥ यदि ये उपर्युक्त सबही पदार्थ अपने यहां नहीं, तो अपने बन्धु और मित्रोंके कुलोंसे इनका संग्रह करना चाहिए ॥ ४५ ॥

उत्साहहीनः श्रेणीप्रवीरपुरुषाणां चोरगणाटविकम्लेच्छजातीनां परापकारिणां गूढपुरुषाणां च यथालाभमुपचयं कुर्वीत ॥ ४६ ॥ परमित्रप्रतीकारमाबलीयसं वा परेषु प्रयुञ्जीत ॥ ४७ ॥

उत्साह हीन राजा, अपनी उत्साह शक्तिको पूरा करनेके लिये, श्रेणी पुरुषों (देखो; अधि० ९ अध्याय २), दुर्वार पुरुषों, तथा शत्रुओंका अपकार करनेमें कटिबद्ध हुए २ चोरों, आटविकों और म्लेच्छ जातिके पुरुषों, एवं गूढ पुरुषोंका अपने लाभके अनुसार अच्छी तरह संग्रह करलेवे ॥ ४६ ॥ शत्रुओंका ऊपरसे बनावटी मित्र बनकर उनका प्रतीकार करता रहे। अथवा आबलीयस अधिकरणमें (बारहवां अधिकरण) बताये हुए प्रतीकारोंका शत्रुओंपर प्रयोग करे ॥ ४७ ॥

एवं पक्षेण मन्त्रेण द्रव्येण च बलेन च।
संपन्नः प्रतिनिर्गच्छेत्परावग्रहमात्मनः ॥ ४८ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे अधिकरणे हीनशक्तिपूरणं चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

आदितो द्वादशशतः ॥ ११२ ॥

इस प्रकार बन्धु और मित्ररूप पक्षसे, विद्यावृद्ध आदि पुरुषोंके संगति रूप मन्त्रसे, दुर्ग सेतुबन्ध आदिके द्वारा उत्पन्न हुए २ द्रव्यसे, और श्रेणी आदि बलसे, अपनी शक्तिको पूर्ण करता हुआ विजिगीषु सदा शत्रुका प्रतीकार करता रहे ॥ ४८ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें चौदहवां अध्याय समाप्त ।

पन्द्रहवा अध्याय

११९-१२० प्रकरण

प्रबल शत्रुके साथ विरोध करके दुर्ग प्रवेशके कारण, और विजित शत्रुका व्यवहार

दुर्बलो राजा बलवताभियुक्तः तद्विशिष्टबलमाश्रयेत यमितरो मन्त्रशक्त्या नातिसंदध्यात् ॥ १ ॥

यदि कोई बलवान् राजा, दुर्बल राजापर आक्रमण करे, तो वह आक्रमणकारी राजासे भी और अधिक बलशाली किसी राजाका आश्रय लेलेवे। जिसको कि, वह आक्रमणकारी राजाभी, मन्त्र शक्तिसे किसी तरहकाभी धोखा न देसके ॥ १ ॥

तुल्यमन्त्रशक्तीनामायत्तसंपदो वृद्धसंयोगाद्वा विशेषः ॥२॥

यदि आश्रय लेनेके योग्य, बराबर सैनिक शक्ति और मन्त्रशक्ति वाले अनेक राजा हों, तो उनमेंसे उसीका आश्रय लेवे, जिसके अमात्य आदि अत्यन्त बुद्धिमान् हों। यदि इस तरहके भी बहुतसे राजा आश्रय लेनेके योग्य मिल जावें- तो उनमेंसे उसीका आश्रय लेवे, जो राजा, अत्यन्त अनुभवी विद्वानोंसे युक्त होवे ॥ २ ॥

विशिष्टबलाभावे समबलैस्तुल्यबलसङ्घैर्वा बलवतः संभूय तिष्ठेद्यावन्न मन्त्रप्रभावशक्तिभ्यामतिसंदध्यात् ॥ ३ ॥

यदि आक्रमणकारी राजासे विशेष शक्तिशाली कोई राजा आश्रय लेनेके लिये न मिले, तो अपने समानशक्ति वाले अथवा अपनी सेनाके बराबरही सेना रखने वाले बहुतसे राजाओंके साथ मिलकर, प्रबल शत्रुका उस समय तक मुकाबला करे, जब तककि वह (अभियोक्ता-प्रबल शत्रु), मिले हुए राजाओं को मन्त्र तथा प्रभाव शक्तिके द्वारा भेद डालकर पृथक् न करदे ॥३॥

तुल्यमन्त्रप्रभावशक्तीनां विपुलारम्भतो विशेषः ॥ ४ ॥

यदि इस प्रकारके राजाभी आश्रय लेनेके योग्य, बहुतसे मिल जावें, तो उनमेंसे विपुलारम्भ राजाही विशेष होता है। अर्थात् उन सबमेंसे विपुलारम्भ राजाकाही आश्रय लेना चाहिये। (जिस राजाके पास अन्न तथा अन्य सब युद्ध सम्बन्धी सामग्री बहुत अधिक तादादमें विद्यमान हो, वह राजा 'विपुलारम्भ' कहाता है ॥ ४ ॥

समबलाभावे हीनबलः शुचिभिरुत्साहिभिः प्रत्यनीकभूतैर्बलवतः संभूय तिष्ठेद्यावन्न मन्त्रप्रभावोत्साहशक्तिभिरतिसंदध्यात् ॥ ५ ॥

यदि कोई समशक्ति राजाभी आश्रयके लिये न मिले, तो पवित्र हृदय, उत्साही बलवान शत्रुके अत्यन्त विरोधी, बहुतसे हीनशक्ति राजाओंके साथ मिलकरही उस समय तक उस प्रबल शत्रुका मुकाबला करे, जब तक कि वह, अपनी सहायता करने वाले इन राजाओंमें, मन्त्र प्रभाव तथा उत्साह शक्तिके द्वारा भेद डालकर अपनेसे पृथक् न करदे ॥ ५ ॥

तुल्योत्साहशक्तीनां स्वयुद्धभूमिलाभाद्विशेषः ॥ ६ ॥ तुल्यभूमीनां स्वयुद्धकाललाभाद्विशेषः ॥ ७ ॥

यदि इस प्रकारकेभी बहुतसे राजा आश्रयके योग्य मिलें, तो उनमेंसे वही विशेष है, जिसके पास युद्धके योग्य अपनी भूमि हो। अर्थात् जिसके पास अपनाही युद्धके योग्य देश मिल सके, उसी राजाका आश्रय लेलेवे ॥ ६ ॥ यदि इस प्रकार युद्ध योग्य भूमिभी अनेक राजाओंके पास मिलती हो, तो उनमेंसे उसहीका आश्रय लेवे, जिसके सहारे पर अपने अनुकूल युद्धके योग्य समयभी मिल सके ॥ ७ ॥

तुल्यदेशकालानां युग्यशस्त्रावरणतो विशेषः ॥ ८ ॥

यदि देश और काल दोनोंही चीजें अनेक राजाओंके पास मिल सकती हों, तो उनमेंसे उसी राजाका आश्रय लेवे जिसके पास बैल, घोड़े, ऊंट आदि सवारीके जानवर, हर तरहके हथियार और कवच आदि अधिक संख्यामें हों। अर्थात् उपर्युक्त युद्ध सामग्री जिसके पास अधिकहो वही सबमें विशेष है, उसी का आश्रय लेवे ॥ ८ ॥

सहायाभावे दुर्गमाश्रयेत यत्रामित्रः प्रभूतसैन्योऽपि भक्तयवसेन्धनोदकोपरोधं न कुर्यात् ॥ ९ ॥ स्वयं च क्षयव्ययाभ्यां युज्येत ॥ १० ॥

यदि कोईभी सहायता करनेवाला न मिले, तो दुर्गका आश्रय लेवे, जहांपर शत्रु, अत्यधिक सेनासे युक्त हुआ २ भी, अपने लिये अपेक्षित, भक्ष्यपदार्थ, और पशुओंके खानेके पदार्थ (यवस), ईंधन और जल आदिकी रुकावट किसी तरहभी न करसके ॥ ९ ॥ और स्वयं ही शत्रु, मनुष्योंके नाश तथा धनके व्ययसे युक्त होजाय। अर्थात् शत्रुके जनधनका जहां अच्छी तरह सफाया होता रहे ॥ १० ॥

तुल्यदुर्गाणां निचयापसारतो विशेषः ॥ ११ ॥ निचयापसारसंपन्नं हि मनुष्यदुर्गमिच्छेदिति कौटल्यः ॥ १२ ॥

यदि उपर्युक्त प्रकारके बहुतसे दुर्ग आश्रयके योग्य मिलते हों, तो उन मेंसे वही दुर्ग विशेष है, जहां तेल नमक आदि नित्य उपयोगकी वस्तुओंका अच्छा संचयहो तथा अवसर आनेपर जहांसे निकल जानेका मार्गभी ठीक हो ॥ ११ ॥ क्योंकि आचार्य कौटल्यका मत है कि ऐसाही दुर्ग मनुष्योंके आश्रयके योग्य होसकता है, जोकि निचय (तेल, नमक आदि नैत्यिक सामग्री) और अपसार (निकलनेका मार्ग) से सम्पन्न हो। आश्रयके लिये राजा सदा ऐसेही दुर्गकी इच्छा करे ॥ १२ ॥

तदेभिः कारणैराश्रयेत ॥ १३ ॥

इन निम्न लिखित कारणोंमेंसे कोई एक कारण होनेपर दुर्गका आश्रय लेवे। (इस अध्यायके ३० वें सूत्रतक इन्हीं कारणों या प्रयोजनोंका निरूपण किया गया है, इनमेंसे कोईभी एक बात होनेपर, राजा दुर्गका आश्रय लेलेवे) ॥ १३ ॥

पार्ष्णिग्राहमासारं मध्यममुदासीनं वा प्रतिपादयिष्यामि ॥१४॥

यदि विजिगीषु यह समझे, कि मैं पार्ष्णिग्राह, मित्रबल, मध्यम अथवा उदासीन राजाको अपने शत्रुके मुकाबलेमें युद्ध करनेके लिये खड़ा करसकूंगा, तो दुर्गका आश्रय लेवे। (यह पहिला प्रयोजन है, इसीप्रकार कुल मिलाकर १६ प्रयोजनहैं। प्रत्येकके आदिमें अथवाके आगे 'जब यह समझे, कि' यह वाक्य, और अन्तमें 'तो दुर्गका आश्रय लेवे' यह वाक्य जोड़ लेना चाहिये) ॥१४॥

सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धानामन्यतमेनास्य राज्यं हारयिष्यामि घातयिष्यामि वा ॥ १५ ॥

अथवा यह समझे, कि सामन्त, आटविक अथवा आक्रमणकारीके विरोधी उसीके किसी वंशजके द्वारा, उसका राज्य हरण करादूंगा, या उसको मरवा डालूंगा ॥ १५ ॥

कृत्यपक्षोपग्रहेण वास्य दुर्गे राष्ट्रे स्कन्धावारे वा कोपं समुत्थापयिष्यामि ॥ १६ ॥

अथवा अभियोक्ता (आक्रमणकारी) के कर्मचारीवर्गको साम आदि उपायोंके द्वारा अपने अधीन करके, दुर्गमें, राष्ट्रमें अथवा छावनीमें विप्लव (कोप) खड़ा करवादूंगा ॥ १६ ॥

शस्त्राग्निरसप्रणिधानैरौपनिषदिकैर्वा यथेष्टमासन्नं हनिष्यामि ॥ १७ ॥

अथवा हथियार, अग्नि या विष आदिसे मारनेवाले गुप्तचरोंके द्वारा, या औपनिषदिक प्रकरणमें बताये हुए योगोंके द्वारा, समीप आये हुए अभियोक्ता शत्रुको इच्छानुसार मरवाडालूंगा ॥ १७ ॥

स्वयमधिष्ठितेन वा योगप्रणिधानेन क्षयव्ययमेनमुपनेष्यामि ॥ १८ ॥

अथवा विश्वासी घातक पुरुषोंका स्वयं प्रयोग करते हुए उसके पुरुषोंका क्षय और धनका व्यय अच्छी तरह करवा सकूंगा ॥ १८ ॥

क्षयव्ययप्रवासोपतप्ते वास्य मित्रवर्गे सैन्ये वा क्रमेणोपजापं प्राप्स्यामि ॥ १९ ॥

अथवा मनुष्योंके नाश, धनके व्यय और प्रवास (यात्रा) के दुःखके कारण, इसके मित्रवर्ग और सैन्यके दुःखी होनेपर, धीरे २ इनमें परस्पर अच्छी तरह भेद डलवा सकूंगा ॥ १९ ॥

वीवधासारप्रसारवधेन वास्य स्कन्धावारावग्रहं करिष्यामि ॥ २० ॥

अथवा अभियोक्ताके अपने देशसे आनेवाले खाद्यपदार्थ, मित्रबल, तथा घास भूसा और ईंधन आदिको बीचमेंही नष्ट करके, इसकी छावनीको अत्यन्त पीड़ा पहुंचा सकूंगा ॥ २० ॥

दण्डोपनयेन वास्य रन्ध्रमुत्थाप्य सर्वसंदोहेन प्रहरिष्यामि ॥ २१ ॥

अथवा अपनी कुछ सेनाको, अभियोक्ताकी छावनीमें छिपेतौरपर लेजाकर, इसके दोषों अर्थात् निर्बलताओंको अच्छीतरह मालूम करके, फिर बहुत अधिक सैन्य समुदायके साथ, इसके ऊपर प्रहार कर सकूंगा ॥ २१ ॥

प्रतिहतोत्साहेन वा यथेष्टं संधिमवाप्स्यामि, मयि प्रतिबन्धस्य वा सर्वतः कोपाः समुत्थास्यन्ति ॥ २२ ॥

अथवा किसीतरह अभियोक्ताके उत्साहको नष्ट करके, फिर उसके साथ इच्छानुसार सन्धि कर सकूंगा। अथवा मुझपर आक्रमण करनेवाले अभियोक्ता के ऊपर चारों ओरसे सबही राजालोग कुपित हो उठेंगे ॥ २२ ॥

निरासारं वास्य मूलं मित्राटवीदण्डैरुद्घातयिष्यामि ॥ २३ ॥ महतो वा देशस्य योगक्षेममिहस्थः पालयिष्यामि ॥ २४ ॥

अथवा इसके मित्रबलको पृथक् रोककर, उसकी सहायता न पहुंचनेपर इसके मूलस्थान (प्रधान राजधानी) को अपने मित्रबल और आटविकोंके द्वारा नष्ट करादूंगा ॥ २३ ॥ अथवा अपने बड़े भारी देशके योगक्षेमका, यहींपर रहकर मैं पूर्णतया पालन करसकूंगा ॥ २४ ॥

स्वविक्षिप्तं मित्रविक्षिप्तं वा मे सैन्यमिहस्थस्यैकस्थमविषह्यं भविष्यति ॥ २५ ॥

अथवा यहींपर रहते हुए मेरे, अपने कार्यके लिये या मित्रके कार्यके लिये अन्यत्र भेजी हुई सेना यहांपर मेरेसाथ एकत्रित होकर, कदापि शत्रुके वशमें न होसकेगी ॥ २५ ॥

निम्नखातरात्रियुद्धविशारदं वा मे सैन्यं पथ्याबाधमुक्तमासन्ने कर्माणि करिष्यति ॥ २६ ॥

अथवा नीचे (मैदानमें), खाई खोदकर, और रात्रिके समय युद्ध करनेमें अत्यन्त चतुर मेरी सेना, किलेमें रास्तेकी थकावटको दूर करके, अवसर आनेपर खूब अच्छीतरह कार्य कर सकेगी ॥ २६ ॥

विरुद्धदेशकालमिहागतो वा स्वयमेव क्षयव्ययाभ्यां न भविष्यति ॥ २७ ॥

अथवा अभियोक्ता, अपनी सेनाके लिये प्रतिकूल देश और कालमें यहां आनेपर, हमारे यत्नके विनाही अपने आप मनुष्योंका क्षय तथा धनका व्यय होनेसे नष्ट होजायगा ॥ २७ ॥

महाक्षयव्ययाभिगम्योऽयं देशो दुर्गाटव्यपसारबाहुल्यात् ॥ २८ ॥

अथवा इसदेशमें वही राजा आक्रमण कर सकेगा, जो अपना महान् क्षय और व्यय करनेके लिये तैयार होगा। क्योंकि यहां दुर्ग जंगल तथा अपसार (बाहर निकलजानेके) स्थान बहुत हैं ॥ २८ ॥

परेषां व्याधिप्रायः सैन्यव्यायामानामलब्धभौमश्च तमापतद्गतः प्रवेक्ष्यति ॥२९॥ प्रविष्टो वा न निर्गमिष्यतीति ॥ ३० ॥

और परदेशसे आनेवाले लोगोंके लिये यह स्थान व्याधि-जनक है। सेना-ओंकी कवायद आदिके लिये भी यहां पर्याप्त भूमि नहीं मिल सकती। इसलिये जो भी आक्रमणकारी यहां आवेगा, वह अवश्यही आपद्ग्रस्त होगा ॥ २९ ॥ यदि किसीतरह वह यहां आ भी गया, तो फिर वहांसे उसका कल्याण पूर्वक निकलना कठिन होजायगा, इसप्रकार जब विजिगीषु समझे; तो अवश्यही दुर्ग-का आश्रय लेलेवे ॥ ३० ॥

कारणाभावे बलसमुच्छ्रये वा परस्य दुर्गमुन्मुच्यापगच्छेत् ॥ ३१ ॥ अग्निपतङ्गवदमित्रे वा प्रविशेत् ॥ ३२ ॥ अन्यतरसि-द्धिर्हि त्यक्तात्मनो भवतीत्याचार्याः ॥ ३३ ॥

यदि ये उपर्युक्त कारण न हों, और शत्रुकी सेना अत्यन्त बलवान् तथा बहुत अधिक हो तो फिर क्या करना चाहिये ? इस विषयमें आचार्योंका मत है, कि दुर्गको छोड़कर चले जाना चाहिये ॥ ३१ ॥ अथवा अग्निमें पतङ्गके समान, शत्रुपर आक्रमण करदेना चाहिये ॥ ३२ ॥ क्योंकि अपना मोह छोड़कर इसप्रकार आक्रमण करनेपर कभी २ विजय लाभ भी होजाता है। अर्थात् जैसे दीपकके ऊपर गिरा हुआ पतङ्ग, कभी २ उसे बुझाभी देता है, इसीतरह आक्र-मणकारी प्रबल शत्रु भी, कभी २ पराजित होजाता है, और दुर्बल विजिगीषु भी अद्भुत पराक्रमके द्वारा विजयलाभ करता है ॥ ३३ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३४ ॥ संधयनामात्मनः परस्य चोपलभ्य संदधीत ॥ ३५ ॥ विपर्यये विक्रमेण सिद्धिमपसारं वा लिप्सेत ॥ ३६ ॥

परन्तु कौटल्य इस सिद्धान्तको नहीं मानता ॥ ३४ ॥ वह कहता है कि सबसे प्रथम अपनी और शत्रुकी सन्धि विषयक योग्यताको देखकर सन्धि ही करलेनी चाहिये। तात्पर्य यह है कि जहांतक होसके, प्रथम, शत्रुके साथ सन्धि करनेकाही यत्न करे ॥ ३५ ॥ यदि किसीतरहभी सन्धि होनेकी सम्भावना न हो, तो फिर पराक्रमके द्वारा सिद्धिलाभ करे। (किसी पुस्तकमें 'सिद्धि' के स्थान-पर 'सन्धि' भी पाठान्तर है, उसका अर्थ इसप्रकार समझना चाहियेः—विक्र-मके द्वारा सन्धिका लाभ करे, अर्थात युद्ध प्रारम्भ करदेनेपर शत्रुके क्षय व्यय होनेसे, उसे इतना तंग करदे, कि वह दुःखी होकर सन्धि करनेके लिये तैयार होजाय)। अथवा जब समझे कि सन्धि होना सर्वथा असम्भव है, तो स्थानको छोड़कर चलाजावे ॥ ३६ ॥

यहांतक प्रबल शत्रुके साथ विरोध करके दुर्ग प्रवेशके कारणोंका निरूपण किया गया। अब इसके आगे विजित शत्रुका व्यवहार बताया जावेगा।

संधेयस्य वा दूतं प्रेषयेत् ॥ ३७ ॥ तेन वा प्रेषितमर्थमानाभ्यां सत्कृत्य ब्रूयात् ॥ ३८ ॥ इदं राज्ञः पण्यागारमिदं देवीकुमाराणां देवीकुमारवचनादिदं राज्यमहं च त्वदर्पण इति ॥३९॥

अथवा जब सन्धि सर्वथा असम्भव हो, तो सन्धेय अर्थात् धर्मविजयी शक्तिशाली अभियोक्ता राजा के, पास अपना दूत भेजे ॥ ३७ ॥ अथवा उसके भेजे हुए दूतको धन और मानसे सत्कृत करके यह कहे, कि ॥ ३८ ॥ राजाके लिये (विजेता राजाके लिये) यह बहुमूल्य भेंट है; और यह, देवी (रानी) तथा कुमारों (राजकुमारों) के कथनानुसार, उनके देवी और कुमारोंके लिये भेंट है। यह सम्पूर्ण राज्य और मैं सर्वथा तुम्हारे ही अर्पण हैं। अर्थात् इस राज्यके और मेरेभी, आपही हरतरह मालिक हैं ॥ ३९ ॥

लब्धसंश्रयः समयाचारिकवद्भर्तरि वर्तेत ॥ ४० ॥ दुर्गादीनि च कर्माण्यावाहविवाहपुत्राभिषेकाश्वपण्यहस्तिग्रहणसत्त्रयात्राविहारगमनानि चानुज्ञातः कुर्वीत ॥ ४१ ॥

इसप्रकार दूत आदि भेजनेके द्वारा, विजेताका आश्रय मिलजानेपर, नियमानुसार सेवकोंकी भांतिही उसके पास रहता हुआ, उसीतरहका वर्त्ताव करे ॥ ४० ॥ और दुर्ग आदि बनवाना, कन्या देना या लेना, (अर्थात् कन्या और पुत्रका विवाह), यौवराज्याभिषेक, घोड़ोंका खरीदना, हाथियोंका पकड़ना, यज्ञ, कहीं जाना आना, या उद्यान आदिमें क्रीडाके लिये जाना, इत्यादि सबही कार्योंको, उसकी (विजेता राजाकी) अनुमति लेकर करे ॥ ४१ ॥

स्वभूम्यवस्थितप्रकृतिसंधिमुपघातमपसृतेषु वा सर्वमनुज्ञातः कुर्वीत ॥४२॥ दुष्टपौरजानपदो वा न्यायवृत्तिरन्यां भूमिं याचेत ॥ ४३ ॥

अपने ही देशमें रहते हुए अमात्य आदि प्रकृतियोंके साथ सन्धि, या अपने देशसे भागकर दूसरी जगह गये हुए उनके लिये दण्डकी व्यवस्था, यह सब कुछभी, विजेता राजाकी अनुमतिसे ही करे ॥ ४२ ॥ स्वयं न्यायानुकूल आचरण करता हुआ राजा, (किसी पुस्तकमें 'न्यायावृत्ति' ऐसा पाठान्तर है। वह 'भूमि' का विशेषण समझना चाहिये) नगरनिवासी और जनपदनिवासी लोगोंके दुष्ट अर्थात् अपने विरोधी या अन्यायप्रवृत्ति होजानेपर, विजेतासे अपने निवासके लिये अन्य भूमिकी याचना करे। अर्थात् ऐसी अवस्थामें वंशपरम्परागत भी अपनी भूमिको छोड़कर, निवासके लिये दूसरी भूमि विजेतासे मांगे ॥ ४३ ॥

दूष्यवदुपांशुदण्डेन वा प्रतिकुर्वीत ॥ ४४ ॥ उचितां वा मित्राद्भूमिं दीयमानां न प्रतिगृह्णीयात् ॥ ४५ ॥

अथवा अन्य भूमिको न मांगता हुआही, दूष्योंके समान, उपांशुदण्डसे उन दुष्ट अन्याय्यवृत्ति पुरुषोंका प्रतिकार करे ॥ ४४ ॥ यदि विजेता राजा, अपने (विजितके) ही किसी मित्रसे छीनकर, अनुकूल भूमि उसे देना चाहे, तो उस भूमिको कदापि लेना स्वीकार न करे ॥ ४५ ॥

मन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजानामन्यतममदृश्यमाने भर्तरि पश्येत् ॥ ४६ ॥

और अपने मन्त्री, पुरोहित, सेनापति तथा युवराज इनमेंसे किसीकोभी भर्त्ता (विजेता राजा) की उपस्थितिमें न देखे। (इसका अभिप्राय यही है कि जिससे अपने नोकर, भर्त्ताकी उपस्थितिमें अपने आपको सेवककी अवस्थामें न देखसकें। अर्थात् अपने सेवक, अपनेको जब देखें, तब राजाकी हैसियतमेंही देखें, सेवकी नहीं) ॥ ४६ ॥

यथाशक्ति चोपकुर्यात् ॥ ४७ ॥ दैवतस्वस्तिवाचनेषु तत्परा आशिषो वाचयेत् ॥ ४८ ॥ सर्वत्रात्मनिसर्गं गुणं ब्रूयात् ॥४९॥

तथा यथाशक्ति अपने मालिकका, समय २ पर भेंट आदि देकर उपकार करता रहे ॥ ४७ ॥ देवताओंके आराधन और माङ्गलिक कृत्योंके अवसरों पर, अपने मालिकके लिये आशीर्वाक्योंको कहलवाये ॥ ४८ ॥ सबके सन्मुख, अपने आपको स्वामीके समर्पण करनेका, तथा उसके गुणोंका कीर्तन करे ॥४९॥

संयुक्तबलवत्सेवी विरुद्धः शङ्कितादिभिः ।
वर्तेत दण्डोपनतो भर्तर्येवमवस्थितः ॥ ५० ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे अधिकरणे बलवता विगृह्योपरोधहेतवः दण्डोपनतवृत्तं पञ्चदशो ऽध्यायः ॥ १५ ॥ आदितस्त्रयोदशशतः ॥ ११३ ॥

इस प्रकार विजित राजा, अपने विजेता राजाकी सेवामें रहता हुआ, उसके बलशाली अमात्य आदिके साथभी सदा अनुकूल बर्त्ताव रक्खे। तथा जो विजेताके विरोधी, या जिनपर वह सन्देह करता हो, उनसे सदा विरुद्ध होकर ही रहे ॥ ५० ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें पन्द्रहवां अध्याय समाप्त।

सोलहवां अध्याय

१२१ प्रकरण

विजेता विजिगीषुका व्यवहार।

अनुज्ञातस्ताद्धिरण्योद्वेगकरं बलवान्विजिगीषुमाणो यतः सुभूमिः स्वर्तुवृत्तिश्च स्वसैन्यानामदुर्गापसारः शत्रुरपार्ष्णिरनपसारश्च ततो यायात् ॥ १ ॥

सन्धि करनेके समयमें 'मैं तुमको इतना हिरण्य आदि दूंगा' इसप्रकार देनेकी प्रतिज्ञा किये हुए धनको न देनेके कारण दुःखी करनेवाले यातव्य शत्रुको विजय करनेकी इच्छा रखता हुआ बलवान् राजा, उसही देशपर आक्रमणकरे, जहांपर जानेके लिये मार्गकी भूमि अपने ही अधिकारमें हो, तथा अपनी सेनाओंके लिये अनुकूल समय, और खाने पीने आदिके सब तरहके सुभीते जहां होसकें, तथा शत्रु, जहां दुर्ग और अपसार (अपसरण मार्ग=निकल भागनेका रास्ता) से रहित हो, तथा विजिगीषुके ऊपर पार्ष्णिग्राहको भी न भेजसके, और जिसका मित्रबलभी कुछ न हो ॥ १ ॥

विपर्यये कृतप्रतीकारो यायात् ॥ २ ॥ सामदानाभ्यां दुर्बलानुपनमयेत् ॥ ३ ॥ भेददण्डाभ्यां बलवतः ॥ ४ ॥

यदि उपर्युक्त किसी तरहके भी सुभीते न हों, और शत्रुभी दुर्ग तथा अपसार आदिसे युक्तहो, तो इन सबका प्रतिविधान (प्रतीकार) करकेही, यात्रा का आरम्भ करे ॥ २ ॥ दुर्बल राजाओंको साम दानसे ही अपने अधीन करलेना चाहिये ॥ ३ ॥ तथा बलवान् राजाओंको भेद और दण्डके द्वारा अधीन करे ॥ ४ ॥

नियोगविकल्पसमुच्चयैश्चोपायानामनन्तरैकान्तराः प्रकृतीः साधयेत् ॥ ५ ॥

साम आदि उपायोंके नियोग, विकल्प और समुच्चयसे, शत्रुप्रकृति (शत्रुरूप प्रकृति=शत्रुओं) और मित्रप्रकृति (मित्ररूप प्रकृति=मित्रों) को अपने वशमें करे। ('इस विशेष पुरुषमें साम आदि चारों उपायोंमेंसे अमुक एक उपायकाही प्रयोग किया जासकता है' इस प्रकारका निर्धारण करना 'नियोग' कहाता है। तथा 'इस उपायका प्रयोग किया जाय या उसका' इस तरहके ज्ञानको 'विकल्प' और 'अमुक अमुक उपायोंका इकट्ठा ही प्रयोग करना

चाहिये ' इसको, 'समुच्चय' कहते हैं। मूल सूत्रमें, अनन्तरप्रकृति=शत्रुप्रकृति=शत्रु, और एकान्तरप्रकृति=मित्रप्रकृति=मित्र कहे गये हैं।) ॥ ५ ॥

ग्रामारण्योपजीविव्रजवणिक्पथानुपालनमुज्झितापसृतापकारिणां चार्पणमिति सान्त्वमाचरेत् ॥ ६ ॥ भूमिद्रव्यकन्यादानमभयस्य चेति दानमाचरेत् ॥ ७ ॥

गांव या जंगलमें रहनेवाली गाय भैंसों आदिकी, तथा जल और स्थल के व्यापारी मार्गोंकी रक्षा करना; और दूसरे राजाके डरसे अथवा अपना अपकार करके भागे हुए, तथा दूष्य अमात्य आदि भृत्य वर्गोंका अन्वेषण करके देना; इत्यादि रूपसे दुर्बल राजाके साथ सामका प्रयोग करे ॥ ६ ॥ भूमिदान, द्रव्यदान, कन्या दान, तथा शत्रुओंकी ओरसे भय उपस्थित होनेपर अभयदान देना, इस प्रकारसे दुर्बल राजाके सम्बन्धमें दान रूप उपायका प्रयोग करे ॥ ७ ॥

सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धानामन्यतमोपग्रहेण कोशदण्डभूमिदाययाचनमिति भेदमाचरेत् ॥ ८ ॥

सामन्त, आटविक, उस (यातव्य शत्रु) के अपने कुलमें उत्पन्न हुए २ किसी सम्बन्धी, तथा किसी नजरबन्द किये हुए यातव्यके पुत्र, इनमेंसे किसी एकको अपने अधीन करके, उसके द्वारा कोश, सेना, भूमि तथा अपने दायभागकी याचना करवाकर, बलवान् राजा और उसके सामन्त आदिमें भेद डलवा देवे। तात्पर्य यह है, कि विजिगीषुके बहकानेसे, सामंत आदि, बलवान् राजासे कोश आदिकी याचना करें, उनके न देनेपर, विजिगीषु उनमें भेदरूप उपायका प्रयोग करे ॥ ८ ॥

प्रकाशकूटतूष्णींयुद्धदुर्गलम्भोपायैरमित्रप्रग्रहणमिति दण्डमाचरेत् ॥ ९ ॥

इसी प्रकार प्रकाशयुद्ध (देश और कालकी सूचनाको देकर किया जानेवाला युद्ध), कूट युद्ध (देश कालकी सूचनाके बिनाही किये जानेवाला युद्ध), और तूष्णींयुद्ध (छिपे तौरपर गूढपुरुष आदिके द्वारा शत्रुका मरवा देना) इन ३ प्रकारके युद्धोंके द्वारा; तथा दुर्गलम्भोपाय (१३ अधि०) अधिकरणमें बतायेहुए विषदान आदि उपायोंके द्वारा शत्रुके वशमें करना चाहिये। यही दण्डरूप उपायके प्रयोगका प्रकार है ॥ ९ ॥

एवमुत्साहवतो दण्डोपकारिणः स्थापयेत् ॥ १० ॥ स्वप्रभाववतः कोशोपकारिणः प्रज्ञावतो भूम्युपकारिणः ॥ ११ ॥

इस प्रकार उक्त उपायोंके द्वारा अपने अधीन हुए राजाओंमेंसे उत्साही तथा अपनी सेनाका उपकार करनेवाले पुरुषोंको सेनासम्बन्धी कार्योंपर नियुक्त किया जाय ॥ १० ॥ इसी प्रकार प्रभुशक्तियुक्त अर्थात् कोश सम्पन्न, कोश देकर उसका उपकार करनेवाले पुरुषोंको कोश सम्बन्धी कार्योंपर; तथा बुद्धिमान् मन्त्रशक्तियुक्त, भूमि देकर उसकी वृद्धि करनेवाले पुरुषोंको भूमि सम्बन्धी कार्यों पर नियुक्त किया जाय। जो कि इनकी उचित व्यवस्था करसकें ॥ ११ ॥

तेषां पण्यपत्तनग्रामखनिसंजातेन रत्नसारफल्गुकुप्येन द्रव्यहस्तिवनव्रजसमुत्थेन यानवाहनेन वा यद्बहुश उपकरोति तच्चित्रभोगम् ॥ १२ ॥

दण्ड आदि उपायोंके द्वारा वशमें किये हुए मित्रभूत राजाओंमेंसे, जो राजा बड़े २ बाजारों, गावों तथा सुवर्ण आदिके उत्पत्ति स्थानोंमें बढ़ेहुए, मणि मुक्ता आदि रत्न, चन्दन आदि सारद्रव्य, शंख आदि फल्गुद्रव्य तथा वस्त्र आदि द्रव्योंको देकर अथवा लकड़ियोंके जंगल, हाथियोंके जंगल तथा गाय आदि पशुओंसे, बनाये या उत्पन्न हुए रथ आदि यानों तथा हाथी आदि वाहनोंको देकर, विजिगीषुका अत्यन्त उपकार करता है। वह मित्र 'चित्रभोग' कहा जाता है। क्योंकि उससे तरह तरहके भोगोंकी प्राप्ति होती रहती है ॥ १२ ॥

यद्दण्डेन कोशेन वा महदुपकरोति तन्महाभोगम् ॥ १३ ॥ यद्दण्डकोशभूमिभिरुपकरोति तत्सर्वभोगम् ॥ १४ ॥

जो मित्र राजा सेना और कोशके द्वारा विजिगीषुका महान उपकार करता है, वह 'महाभोग' कहाता है ॥ १३ ॥ तथा जो राजा, सेना कोश और भूमि इन सब चीजोंको देकर विजिगीषुका महान उपकार करता है, वह 'सर्वभोग' कहाजाता है ॥ १४ ॥

यदमित्रमेकतः प्रतिकरोति तदेकतोभोगि ॥ १५ ॥

अर्थ देकर उपकार करनेवाले मित्रोंका निरूपण करके, अब अनर्थका निवारण करके उपकार करनेवाले मित्रोंको बताते हैं:—उनमेंसे जो मित्र राजा, एकही शत्रुका प्रतीकार करके विजिगीषुका उपकार करता है, वह 'एकतो भोगी' कहाता है ॥ १५ ॥

यदमित्रमासारं चोपकरोति तदुभयतोभोगि ॥ १६ ॥ यदमित्रासारप्रतिवेशाटविकान्सर्वतः प्रतिकरोति तत्सर्वतोभोगि ॥१७॥

जो मित्र राजा, शत्रु और आसार अर्थात् शत्रुमित्र (शत्रुका मित्र) इन

दोनोंका प्रतीकार करके विजिगीषुका उपकार करता है, वह 'उभयतोभोगी' कहाता है ॥१६॥ तथा जो मित्रराजा, शत्रु, शत्रुमित्र, प्रतिवेश (पड़ौसका शत्रुराजा) तथा आटविक इन सबका प्रतीकार करके विजिगीषुका उपकार करता है, वह 'सर्वतो भोगी' कहाजाता है ॥ १७ ॥

पार्ष्णिग्राहश्चाटविकः शत्रुर्मुख्यः शत्रुर्वा भूमिदानसाध्यः कश्चिदासाद्येत ॥ १८ ॥ निर्गुणया भूम्यैनमुपग्राहयेत् ॥ १९ ॥ अप्रतिसंबद्धया दुर्गस्थम् ॥ २० ॥

यदि पार्ष्णिग्राह, आटविक, शत्रुके अमात्य आदि मुख्यपुरुष, अथवा शत्रुही, भूमि देनेपर, अपने अधीन होनेके लिये तैयार हों, तो ॥ १८ ॥ गुण रहित भूमि देकरही उन्हें अपने अधीन करे ॥ १९ ॥ यदि पार्ष्णिग्राह आदि, दुर्गमें रहनेवाला हो, तो उसे दुर्गसे किसी तरहका सम्बन्ध न रखने वाली दूरदेशकी भूमि देकर वशमें करे ॥ २० ॥

निरुपजीव्ययाटविकम् ॥ २१ ॥ प्रत्यादेयया तत्कुलीनम् ॥ २२ ॥ शत्रोरुपच्छिन्नया शत्रोरुपरुद्धम् ॥ २३ ॥

आटविकको, जीवनके योग्य, धान्य आदि जिसमें उत्पन्न न होसकें, ऐसी भूमि देकर वशमें करे ॥ २१ ॥ शत्रुकुलमें उत्पन्न हुए व्यक्तिको ऐसी भूमि देवे, जो फिर वापस अपनेही पास लौटाई जासके, अर्थात् जिसका फिर स्वयं अपहरण कर सके ॥ २२ ॥ नजरबन्द किये हुए शत्रुके पुत्र आदिको, पहिले कभी शत्रुसे छीनी हुई भूमिको ही देवे ॥ २३ ॥

नित्यामित्रया श्रेणीबलम् ॥ २४ ॥ बलवत्सामन्तया संहतबलम् ॥ २५ ॥ उभाभ्यां युद्धे प्रतिलोमम् ॥ २६ ॥

श्रेणीबल (नेता रहित मनुष्योंका समूह=सेनाविशेष) को ऐसी भूमि देवे, जिसमें चोर आटविक आदि, नित्यही उपद्रव करते रहते हों ॥ २४ ॥ संहतबल (नेताके सहित मनुष्योंका समूह=सेनाविशेष) को ऐसी भूमि देवे, जिसका सामन्त (समीप लगे हुए देशका राजा) अत्यधिक बलवान् हो ॥२५॥ युद्धमें कुटिलता करनेवाले अर्थात् कूटयुद्ध करनेवाले शत्रुको, ऐसी भूमि देवे, जहां चोर और आटविक आदिका भी सदाही उपद्रव रहता हो, तथा सामन्त भी जिसका अधिक बलवान् हो ॥ २६ ॥

अलब्धव्यायामयोत्साहिनम् ॥ २७ ॥ शून्ययारिपक्षीयम् ॥ २८ ॥ कर्शितयापवाहितम् ॥ २९ ॥

उत्साहशालि शत्रु आदिको ऐसी भूमि देवे, जिसमें सेनाओंकी कवायद

आदिके लिये योग्य स्थान न हो ॥ २७ ॥ शत्रुपक्षके किसी पुरुषको शून्यभूमि ही देवे । अर्थात् जिससे किसी तरहका फल प्राप्त न होसके ऐसी भूमि देकर उसे वशमें करे ॥२८॥ सन्धि करके फिर उसे तोड़देने वाले राजाको ऐसी भूमि देवे, जिसमें सदाही शत्रु सेना और आटविक आदिका उपद्रव बना रहता हो ॥२९॥

महाक्षयव्ययनिवेशया गतप्रत्यागतम् ॥ ३० ॥ अनपाश्रयया प्रत्यपसृतम् ॥ ३१ ॥ परेणानाधिवास्यया स्वयमेव भर्तारमुपग्राहयेत् ॥ ३२ ॥

एकवार शत्रुसे मिलकर जो फिर अपनेसे मिलना चाहे, उसे ऐसी भूमि देकर वशमें करे, जिस भूमिमें नई बसावट करनेके लिये अत्यधिक पुरुषोंका क्षय और धनका व्यय होजाय ॥ ३० ॥ शत्रुके डरसे, अपने देशसे भागे हुए पुरुषको, ऐसी भूमि देकर वशमें करे, जो कि दुर्ग आदिसे सर्वथा रहित हो ॥ ३१ ॥ जिस भूमिपर, उसके असली मालिकके सिवाय कोई नहीं रह सकता, ऐसी भूमि उस व्यक्तिको देकर वशमें करे, जो कि इस भूमिका पुराना असली मालिक हो ॥ ३२ ॥

तेषां महोपकारं निर्विकारं चानुवर्तयेत् ॥ ३३ ॥ प्रतिलोममुपांशुना साधयेत् ॥ ३४ ॥

दण्ड आदि उपायोंके द्वारा अपने वशमें किये हुए राजाओंमेंसे, जो राजा अपना (विजेताका) महान उपकार करता हो, तथा उसकी ओरसे अपने चित्तमें किसी तरहका विकार न रखता हो, उसके साथ ऐसा व्यवहार रक्खे जिससे कि उसे कभी किसी प्रकारकी हानि न हो ॥ ३३ ॥ परन्तु जो अपनेसे प्रतिकूल आचरण करे, उसे उपांशुदण्डसे (छिपे तौरपर उचित दण्ड आदि देकर) सीधा करे । क्योंकि प्रकट दण्ड देनेसे अन्य वशीभूत राजाओंमें उद्वेग फैलजानेका भय रहता है ॥ ३४ ॥

उपकारिणमुपकारशक्त्या तोषयेत् ॥ ३५ ॥ प्रयासतश्चार्थमानौ कुर्यात् ॥ ३६ ॥ व्यसनेषु चानुग्रहं स्वयमागतानां यथेष्टदर्शनं प्रतिविधानं च कुर्यात् ॥ ३७ ॥

अपना उपकार करनेवाले राजाको अपनी शक्तिके अनुसार सदा सन्तुष्ट रक्खे ॥ ३५ ॥ और उनके परिश्रमके अनुसार उन्हें धन देवे, तथा उनका अच्छीतरह सत्कार करे ॥ ३६ ॥ उनके ऊपर किसी तरहकी कोई विपत्ति आनेपर, सान्त्वना आदि देकर सदा उनपर अनुग्रह करता रहे । और यदि वे स्वयं ही अर्थात् बिना बुलायेही अपने यहां आजावें, तो उनके साथ अच्छीतरह प्रेम

पूर्वक मिले मिलावे। परन्तु उनकी ओरसे यदि किसी बुराईकी आशङ्का हो तो उससे अपनी रक्षा करनेके लिये सदा तैयार रहे ॥ ३७ ॥

परिभवापघातकुत्सातिवादांश्चैषु न प्रयुञ्जीत ॥३८॥ दत्त्वा चाभयं पितेवानुगृह्णीयात् ॥ ३९ ॥ यश्चास्यापकुर्यात्तद्दोषमभिविख्याप्य प्रकाशमेनं घातयेत् ॥ ४० ॥

तथा इन दण्डोपनत (दण्ड आदि उपायोंसे अपने अधीन किये हुए) राजाओंके विषयमें, तिरस्कार, कटुवाक्य, निन्दा या अतिस्तुति आदिका प्रयोग कभी न करे ॥ ३८ ॥ और उन्हें अभय देकर, पुत्रोंपर पिताके समान, सदा उनपर अनुग्रह करता रहे ॥ ३९ ॥ परन्तु उनमेंसे जो इसका (विजेताका) अपकार करे, उसके उस अपराधको सर्वत्र प्रकाशित करके प्रकटरूपमें उसका वध करवा देवे ॥ ४० ॥

परोद्वेगकारणाद्वा दाण्डकर्मिकवच्चेष्टेत ॥४१॥ न च हतस्य भूमिद्रव्यपुत्रदारानभिमन्येत ॥ ४२ ॥ कुल्यानप्यस्य स्वेषु पात्रेषु स्थापयेत् ॥ ४३ ॥

यदि इस बातका भय हो, कि प्रकट दण्ड देनेसे अन्य दण्डोपनत राजा उद्विग्न हो उठेंगे, तो दाण्डकर्मिक प्रकरणमें (८९ प्रकरण) बताये हुए उपायोंका प्रयोग करे अर्थात् ऐसी अवस्थामें उपांशुदण्डका प्रयोग करे ॥ ४१ ॥ तथा इस प्रकार मारे हुए दण्डोपनत राजाके भूमि, द्रव्य, पुत्र और स्त्री आदिपर कभी अधिकार न करे। अर्थात् उनका स्वयं अपहरण न करे ॥ ४२ ॥ किन्तु इनको, और इनके वंशके अन्य व्यक्तियोंको भी, उनके अपने उचित राज्य स्थानोंपर नियुक्त करदे। अर्थात् उनकी योग्यताके अनुसार अवश्य ही राज्यके भिन्न २ अधिकार पदोंपर उनकी स्थापना करे ॥ ४३ ॥

कर्मणि मृतस्य पुत्रं राज्ये स्थापयेत् ॥ ४४ ॥ एवमस्य दण्डोपनताः पुत्रपौत्राननुवर्तन्ते ॥ ४५ ॥

यदि किसी राजाको वशमें करनेके लिये किये जाने वाले युद्धमें वह राजा मारा जावे, तो उसके पुत्रकोही राज्याधिकार पर स्थापित करे। अर्थात् उसेही राजा बनावे ॥ ४४ ॥ विजिगीषुके इस प्रकार आचरण करनेसे, दण्डोपनत राजा न केवल विजिगीषुके ही अधीन रहते हैं, किन्तु उसके पुत्र और पौत्र आदिके भी अनुगामी बने रहते हैं ॥ ४५ ॥

यस्तूपनतान्हत्वा बध्वा वा भूमिद्रव्यपुत्रदारानभिमन्येत तस्योद्विग्नं मण्डलमभावायोत्तिष्ठते ॥ ४६ ॥

परन्तु जो विजिगीषु, दण्डोपनत राजाओंको मारकर अथवा कैदमें डालकर, उनके भूमि, द्रव्य, पुत्र और स्त्री आदिको अपने अधिकारमें कर लेता है, उससे कुपित हुआ राज मण्डल (बारह प्रकारके राजाओंमेंसे विजिगीषुको छोड़कर अन्य ग्यारह प्रकारके राजा) उसका (विजिगीषुका) विध्वंस करनेके लिये तैयार होजाता है। (बारह प्रकारके राजा ये हैं:—विजिगीषु, शत्रु, मित्र, शत्रुका मित्र, मित्रका मित्र, शत्रुके मित्रका मित्र, पार्ष्णिग्राह, आक्रन्द, पार्ष्णिग्राहासार, आक्रन्दासार, मध्यम, और उदासीन। देखो—अधि० ६, अध्याय २) ॥ ४६ ॥

ये चास्यामात्याः स्वभूमिष्वायत्तास्ते चास्योद्विग्ना मण्डलमाश्रयन्ते ॥ ४७ ॥ स्वयं राज्यं प्राणान्वास्याभिमन्यन्ते ॥ ४८ ॥

और जो विजिगीषुके अमात्य, अपने २ अधिकार पदोंपर कार्य करते हुए रहते हैं, वे भी इससे कुपित होकर, इसको दबानेके लिये तैयार हुए २ राजमण्डलके साथ मिलजाते हैं ॥ ४७ ॥ अथवा स्वयंही इसके राज्य या प्राणों पर अपना अधिकार करलेते हैं। अर्थात् इसके राज्यको अपहरण करलेते हैं, अथवा इसे मारडालते हैं ॥ ४८ ॥

स्वभूमिषु च राजानः तस्मात्साम्नानुपालिताः ।
भवन्त्यनुगुणा राज्ञः पुत्रपौत्रानुवर्तिनः ॥ ४९ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे दण्डोपनतावृत्तं षोडशो ऽध्यायः ॥ १६ ॥

आदितश्चतुर्दशशतः ॥ ११४ ॥

इस लिये जो राजा, अपनी २ भूमियोंमें राज्यका उपभोग करते रहते हैं, और विजिगीषु सामके द्वारा ही उनकी रक्षा करता है, वे विजिगीषुके अनुकूल रहते हुए, उसके पुत्र पौत्र आदिके भी अनुगामी बने रहते हैं ॥ ४९ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें सोलहवां अध्याय समाप्त

सत्रहवां अध्याय

१२२, १२३ प्रकरण

सन्धिका दृढ करना; और विश्वासके लिये, रक्खे हुए राजपुत्र आदिका छुड़ाना।

शमः संधिः समाधिरित्येकोऽर्थः ॥ १ ॥ राज्ञां विश्वासोपगमः शमः संधिः समाधिरिति ॥ २ ॥

शम, सन्धि, और समाधि ये तीनों शब्द एक ही अर्थको कहते हैं ॥ १ ॥ और वह है, राजाओंके परस्पर विश्वास दृढ़ होजानेका कारण। अर्थात् सत्य, शपथ और ज़ामिन, तथा राजपुत्र आदिका लेना, इत्यादि कारणोंसे, राजाओंको जो परस्पर दृढ़ विश्वास होजाता है, वही शम, सन्धि या समाधि कहाता है ॥ २ ॥

सत्यं शपथो वा चलः संधि ॥ ३ ॥ प्रतिभूः प्रतिग्रहो वा स्थावरः इत्याचार्याः ॥ ४ ॥

आचार्योंका मत है, कि जो सन्धि ' यह ऐसा ही होगा, अन्यथा नहीं होगा ' इस प्रकार सत्यता पूर्वक वचन मात्रसेही की जाती है, अथवा अपने पूज्य पिता आदिके पैर या सुवर्ण आदिको छूकर शपथ पूर्वक कीजाती है, वह सन्धि स्थिर नहीं होती ॥ ३ ॥ और जो सन्धि प्रतिभू (ज़ामिन) के द्वारा, और विश्वासके लिये राजपुत्र आदिको लेकर कीजाती है, वह स्थावर अर्थात् स्थायी= अत्यन्त विश्वसनीय होती है ॥ ४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ५ ॥ सत्यं वा शपथो वा परत्रेह च स्थावरः संधिः ॥ ६ ॥

परन्तु कौटल्य इस मतको नहीं मानता ॥ ५ ॥ वह कहता है कि जो सन्धि सत्यता पूर्वक और शपथ पूर्वक कीजाती है, वह अत्यन्त विश्वासके योग्य तथा स्थायी होती है। क्योंकि उसमें सन्धि करनेवालोंको इस बातका भय रहता है कि यदि इस सन्धिका हम उलंघन करेंगे, तो परलोकमें नरकमें पड़ेंगे और इस लोकमें झूठे कहलाकर बदनाम होंगे ॥ ६ ॥

इहार्थ एव प्रतिभूः प्रतिग्रहो वा बलापेक्षः ॥ ७ ॥

परन्तु प्रतिभू और प्रतिग्रह (राजपुत्र आदिका लेना) पूर्वक की हुई सन्धिको तोड़देनेपर केवल इसी लोकमें कुछ थोड़ाबहुत अनर्थ होसकता है, परलोकमें नहीं होसकता; इस लिये इसके तोड़नेमें भय कम रहता है। तथा प्रतिभू भी उसी समय विश्वसनीय होता है जबकि वह बलवान् हो; और प्रतिग्रह भी उसी समय विश्वसनीय समझा जाता है, जब कि वह देनेवालेका प्रेममात्र हो ॥ ७ ॥

संहिताः स्म इति सत्यसंधाः पूर्वे राजानः सत्येन संदधिरे ॥ ८ ॥ तस्यातिक्रमे शपथेन अग्न्युदकसीताप्राकारलोष्टहस्तिस्कन्धाश्वपृष्ठरथोपस्थशस्त्ररत्नबीजगन्धरससुवर्णहिरण्यान्यालेभिरे॥९॥ हन्युरेतानि त्यजेयुश्चैनं यः शपथमतिक्रामेदिति ॥ १० ॥

सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले पहिले राजा लोग 'हम सन्धि करते हैं' इस प्रकार सत्यके द्वाराही दृढसन्धि करलेते थे ॥ ८ ॥ सत्यका अतिक्रमण करनेपर अग्नि, जल, भूमि, मकान, हाथीका कन्धा, घोड़ेकी पीठ, रथमें बैठनेकी जगह, हथियार, रत्न, धान आदिके बीज, चन्दन आदि गन्ध, घृत आदि रस, सुवर्ण और हिरण्य इन चीज़ोंका स्पर्श करते थे ॥ ९ ॥ और 'ये चीज़ें उस व्यक्तिको नष्ट करदें या त्यागदें, जो इस प्रतिज्ञाका अतिक्रमण करे' इस प्रकार शपथ-पूर्वक सन्धि करलेते थे ॥ १० ॥

शपथातिक्रमे महतां तपस्विनां मुख्यानां वा प्रातिभाव्यबन्धः प्रतिभूः ॥ ११ ॥ तस्मिन्यः परावग्रहसमर्थान्प्रतिभुवो गृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ १२ ॥ विपरीतोऽतिसंधीयते ॥ १३ ॥

शपथका भी अतिक्रमण करदेनेपर बड़े २ तपस्वी अथवा ग्रामादिके मुख्य पुरुषोंको प्रतिभू बनाकर सन्धि करना उचित है। सन्धिके दृढ़ रखनेका उत्तरदायित्व इन्हीं पुरुषोंपर रहता है ॥ ११ ॥ प्रतिभू बनाकर सन्धि करने वाले राजाओंमेंसे वही राजा विशेष लाभमें रहता है, जो कि प्रतिज्ञा या सन्धि को तोड़नेवाले शत्रुओंके निग्रह अर्थात् दमन करनेमें समर्थ पुरुषको अपना प्रतिभू बनाता है ॥ १२ ॥ इससे दूसरा राजा, अवश्यही अपने शत्रुसे धोखा खाता है ॥ १३ ॥

बन्धुमुख्यप्रग्रहः प्रतिग्रहः ॥ १४ ॥ तस्मिन्यो दूष्यामात्यं दूष्यापत्यं वा ददाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ १५ ॥ विपरीतो ऽतिसंधीयते॥ १६ ॥

दूसरेके वचनपर विश्वासके लिये, उससे उसके बन्धु बान्धव या मुख्य पुरुषोंको लेलेना प्रतिग्रह कहाता है ॥ १४ ॥ इसप्रकार प्रतिग्रह (बन्धु बान्धवको देने) के द्वारा सन्धि करनेवाले राजाओंमेंसे वही राजा विशेष लाभमें रहता है, जो अपने दूष्य अमात्य या दूष्य पुत्रादिको देदेता है ॥ १५ ॥ और दूसरा राजा (दूष्य अमात्य आदिको लेनेवाला) ऐसी अवस्थामें अवश्यही अपने शत्रुसे धोखा खाता है ॥ १६ ॥

प्रतिग्रहग्रहणविश्वस्तस्य हि परः छिद्रेषु निरपेक्षः प्रहरति ॥ १७ ॥

क्योंकि लेनेवाला तो यह समझता है कि मेरे पास इसके अमात्य आदि हैं, यह मेरे विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता, इसलिये उसपर विश्वास करता है; परन्तु दूसरा देनेवाला, उसकी निर्बलताओंको ढूंढता हुआ, दोषोंके मिलजाने

पर, दियेहुए दूष्य अमात्य आदिकी कुछ अपेक्षा न करता हुआ उसपर प्रहार अर्थात् क्रमण कर देता है ॥ १७ ॥

अपत्यसमाधौ तु कन्यापुत्रदाने ददत्तु कन्यामतिसंधत्ते ॥ १८ ॥ कन्या ह्यदायादा परेषामेवार्थाय क्लेशाय च विपरीतः पुत्रः ॥ १९ ॥

पुत्र आदिको देकर सन्धि करनेवाले राजाओंमेंसे, वही राजा विशेष लाभमें रहता है, जो कि पुत्र और कन्या दोनोंमेंसे किसी एकको दिये जानेके प्रसंगमें कन्याको देदेता है ॥ १८ ॥ क्योंकि कन्या दायकी अधिकारिणी नहीं होती, तथा वह दूसरों होके उपभोगके लिये होती है। और पिताके लिये तो धनादि व्ययके द्वारा दुःखदेनेवाली ही होती है। परन्तु पुत्र ऐसा नहीं होता, वह दायभोगी, पिताके अपने लिये और उसके क्लेशोंको दूर करनेके लिये होता है ॥ १९ ॥

पुत्रयोरपि जात्यं शूरं प्राज्ञं कृतास्त्रमेकपुत्रं वा ददाति सोऽतिसंधीयते ॥ २० ॥ विपरीतोऽतिसंधत्ते ॥ २१ ॥ जात्यादजात्यो हि लुप्तदायादसंतानत्वादाधातुं श्रेयान् ॥ २२ ॥

पुत्रोंको देकर सन्धि करनेवाले राजाओंमेंसे, वह राजा अवश्यही अपने शत्रुसे धोखा खाता है, जो कि अपने कुलीन, बुद्धिमान्, शूर, अस्त्रादि चलानेमें चतुर पुत्रको, अथवा अकेलेही पुत्रको देदेता है ॥ २० ॥ इससे दूसरा राजा (अकुलीन=दासी आदिसे उत्पन्न, बुद्धिहीन पुत्रादिको देनेवाला) अवश्य ही फ़ायदेमें रहता है ॥ २१ ॥ इसलिये समान जातीय पुत्रकी अपेक्षा, असमान जातीय पुत्रको देदेनाही अच्छा है, क्योंकि उसकी सन्तान सम्पत्तिकी दायभागी नहीं होसकती ॥ २२ ॥

प्राज्ञादप्राज्ञो मन्त्रशक्तिलोपात् ॥ २३ ॥ शूरादशूर उत्साहशक्तिलोपात् ॥२४॥ कृतास्त्रादकृतास्त्रः प्रहर्तव्यसंपल्लोपात् ॥२५॥ एकपुत्रादनेकपुत्रो निरपेक्षत्वात् ॥ २६ ॥

बुद्धिमान् पुत्रकी अपेक्षा बुद्धिहीन पुत्रका देदेना इसलिये अच्छा होता है कि उसमें अपनी मन्त्रशक्ति कुछ नहीं होती। अतएव अपनी मन्त्रणासे शत्रुको कुछ लाभ नहीं पहुंचा सकता ॥ २३ ॥ शूर पुत्रकी अपेक्षा भीरु पुत्रका देदेना इसीलिये अच्छा है कि उसमें उत्साह शक्ति बिलकुल नहीं होती। वह शत्रुका लाभ या अपनी हानि कुछ नहीं कर सकता ॥ २४ ॥ शस्त्रादि चलानेमें

चतुर पुत्रकी अपेक्षा इससे विपरीत पुत्रका देदेना इसीलिये अच्छा है कि वह आक्रमण करनेकी शक्तिसे सर्वथा रहित होता है ॥ २५ ॥ एकलौते पुत्रकी अपेक्षा अनेक पुत्रोंमेंसे एकको देदेना इसीलिये अच्छा है, कि उसके विनाभी काम चल सकता है ॥ २६ ॥

जात्यप्राज्ञयोरजात्यमप्राज्ञमैश्वर्यप्रकृतिरनुवर्त्तते ॥२७॥ प्राज्ञमजात्यं मन्त्राधिकारः ॥२८॥ मन्त्राधिकारेऽपि वृद्धसंयोगाज्जात्यः प्राज्ञमतिसंधत्ते ॥ २९ ॥

जात्य (समान जातीय=कुलीन) और प्राज्ञ (बुद्धिमान्) पुत्रोंमेंसे, जात्य पर प्रज्ञाहीन पुत्रका ऐश्वर्य प्रकृति अनुगमन करती है। अर्थात् बुद्धिहीन होनेपर भी समान जातीय होनेसे सम्पूर्ण राज्य सम्पत्तिका वही उत्तराधिकारी होता है, इसलिये राज्यका दायभागी होना उसका विशेष गुण है ॥ २७ ॥ और जो असमान जातीय, पर बुद्धिमान् है, मन्त्रशक्ति उसका अनुगमन करती है। अर्थात् उसके राज्याधिकारी न होनेपर भी मन्त्रशक्तिसे युक्त होना उसका एक विशेष गुण है ॥ २८ ॥ इन दोनों पुत्रोंमेंसे, मन्त्रशक्तिसे युक्त होनेपर भी अजात्य प्राज्ञकी अपेक्षा जात्य अप्राज्ञ पुत्रही श्रेष्ठ होता है। क्योंकि वह राज्याधिकारी होकर विचार स्थानोंपर वृद्ध अनुभवी बुद्धिमान् पुरुषोंको नियुक्त करके अपनी उस कमीको पूरा कर सकता है ॥ २९ ॥

प्राज्ञशूरयोः प्राज्ञमशूरं मतिकर्मणां योगोऽनुवर्तते ॥ ३० ॥ शूरमप्राज्ञं विक्रमाधिकारः ॥ ३१ ॥ विक्रमाधिकारेऽपि हस्तिनमिव लुब्धकः प्राज्ञः शूरमतिसंधत्ते ॥ ३२ ॥

इसीप्रकार बुद्धिमान् और शूर पुत्रोंमेंसे, बुद्धिमान्, शूरताहीन पुत्रका, बुद्धिपूर्वक किये कार्य अनुगमन करते हैं। अर्थात् वह बुद्धिपूर्वक कार्योंको कर सकता है ॥ ३० ॥ और बुद्धिहीन शूर पुत्र पराक्रमके कार्योंको कर सकता है। ॥ ३१ ॥ इन दोनों पुत्रोंमेंसे, शूर किन्तु बुद्धिहीन पुत्रके पराक्रमी होनेपर भी उसकी अपेक्षा, पराक्रमहीन बुद्धिमान् पुत्रही श्रेष्ठ होता है। जैसे एक बुद्धिमान् शिकारी, शक्तिशाली भी हाथीको अपने वशमें करलेता है। इसीप्रकार बुद्धिमान पुत्र अपने बुद्धिबलसे, शूरको भी अपने वशमें कर सकता है ॥ ३२ ॥

शूरकृतास्त्रयोः शूरमकृतास्त्रं विक्रमव्यवसायोऽनुवर्तते ॥३३॥ कृतास्त्रमशूरं लक्षलम्भाधिकारः ॥ ३४ ॥ लक्षलम्भाधिकारेऽपि स्थैर्यप्रतिपत्त्यसंमोहैः शूरः कृतास्त्रमतिसंधत्ते ॥ ३५

शूर और कृतास्त्र (शस्त्रास्त्र चलानेमें अत्यन्त चतुर) पुत्रोंमेंसे, शस्त्रादि न चला सकनेवाला किन्तु शूरपुत्र, केवल पराक्रमके कार्योंको अच्छीतरह कर सकता है ॥ ३३ ॥ और शूरताहीन पर शस्त्रादि चलानेमें चतुर पुत्र, अपने लक्ष्य-को अच्छीतरह भेदन करनेकी शक्ति रखता है ॥ ३४ ॥ इन दोनोंमेंसे, लक्ष्यको ठीक भेदन करनेवाले पराक्रमहीन पुत्रकी अपेक्षा, पराक्रमी पुत्रही श्रेष्ठ होता है। क्योंकि वह अवसर आनेपर, अपनी स्थिरता, विपत्तिके समय भी तत्क्षण प्रतीकारके उपायोंका कर डालना, तथा अपनी रक्षा करनेमें सदा सावधान रहना, इत्यादि गुणोंसे कृतास्त्रको भी अपने आधीन कर सकता है ॥ ३५ ॥

बह्वेकपुत्रयोर्बहुपुत्र एकं दत्त्वा शेषवृत्तिस्तब्ध संधिमतिक्रामति नेतरः ॥ ३६ ॥

एक पुत्र और बहुत पुत्रोंमेंसे, बहुत पुत्रोंका होनाही अच्छा है। क्योंकि सन्धिकी दृढता दिखानेके लिये, उनमेंसे एक पुत्रको देकर भी, शेष पुत्रोंके भरोसेपर अभिमान रखता हुआ राजा, अवसर आनेपर की हुई सन्धिको तोड़ सकता है, परन्तु जिसके एकही पुत्र हो, वह ऐसा नहीं कर सकता ॥ ३६ ॥

पुत्रसर्वस्वदाने संधिश्चेत्पुत्रफलतो विशेषः ॥ ३७ ॥ समफलयोः शक्तप्रजननतो विशेषः ॥ ३८ ॥ शक्तप्रजननयोरप्युपस्थितप्रजननतो विशेषः ॥ ३९ ॥

यदि सन्धि करनेवाले दोनों राजाओंके एक एकही पुत्र हो, और उनके देदेनेपर ही सन्धि दृढ होती हो, तो दोनोंमेंसे वही राजा विशेष लाभमें रहता है, जिसके पुत्रका भी पुत्र होगया हो। क्योंकि सन्धि टूटनेपर पुत्रके नष्ट होनेपर भी पौत्र राज्यसिंहासनपर बैठ सकता है ॥ ३७ ॥ यदि सन्धि करनेवाले दोनोंही राजाओंके पुत्रोंके पुत्र विद्यमान हों, तो उनमेंसे वही विशेष है, जिसका पुत्र अभी युवा है, अर्थात् और पुत्र उत्पन्न करनेकी शक्ति रखता है ॥ ३८ ॥ यदि दोनोंही अन्य पुत्र उत्पन्न करनेकी शक्ति रखते हों, तो उनमेंसे वही विशेष है, जोकि आसन्नतर भविष्यमें (जल्दीसे जल्दी) पुत्र उत्पन्न कर सकता हो। परन्तु यथाशक्ति पुत्रको देना नहीं चाहिए ॥ ३९ ॥

शक्तिमत्येकपुत्रे तु लुप्तपुत्रोत्पत्तिरात्मानमादध्यान्नचैकपुत्रमिति ॥ ४० ॥

पुत्रोत्पादनकी अथवा राज्यभारको वहन करनेकी, शक्ति रखनेवाले एक ही पुत्रके होनेपर, स्वयं पुत्रोत्पादन शक्तिसे हीन हुए २ अपने आपको ही सन्धिकी दृढताके लिये देदेवे। उपर्युक्त गुणोंसे युक्त एकमात्र पुत्रको कभी न देवे।

यहांतक सन्धिकर्म अर्थात् सन्धिके दृढ़ करनेके उपायोंका निरूपण किया गया ॥ ४० ॥

अभ्युच्चीयमानः समाधिमोक्षं कारयेत् ॥४१॥ कुमारासन्नाः सत्रिणः कारुशिल्पिव्यञ्जनाः कर्माणि कुर्वाणाः सुरङ्गया रात्रावुपखानयित्वा कुमारमपहरेयुः ॥ ४२ ॥

सन्धिके कारण अच्छी तरह अपनी शक्ति बढ़ जानेपर, विश्वासके लिये दूसरे राजाके यहां रक्खे हुए राजपुत्र आदिको वहांसे मुक्त करालेवे ॥ ४१ ॥ उसको (राजपुत्र आदिको) वहांसे छुड़ानेके निम्नलिखित उपाय समझने चाहियें; राजकुमारके पास रहनेवाले अपने गूढ़ पुरुष, बढ़ई लुहार सुनार या मिस्त्री आदिके वेषमें रहनेवाले अपने अन्य गुप्त पुरुष, वहांपर अपने २ कार्योंको करते हुएही, राज कुमारके निवासके समीपसे एक सुरङ्ग खोदकर रात्रिमें उसही मार्गसे उसे लेकर भाग आवें ॥ ४२ ॥

नटनर्तकगायकवादकवाग्जीवनकुशीलवप्लवकसौभिका वा पूर्वप्रणिहिताः परमुपतिष्ठेरन् ॥ ४३ ॥ ते कुमारं परम्परयोपतिष्ठेरन् ॥ ४४ ॥

अथवा नट (अभिनय करनेवाला), नर्त्तक (नाचनेवाला), गायक (गानेवाला), वादक (बजानेवाला), वाग्जीवन (कथा आदि कहकर अपनी जीविका करनेवाला), कुशीलव (श्लोक पाठक अथवा स्तुतिपाठक), प्लवक (तलवार आदिके खेल दिखानेवाला), सौभिक (आकाशमें उड़नेवाला), ये आठ प्रकारके वेषोंमें विजिगीषुके द्वारा भेजे हुए गुप्तचर पहिले शत्रु राजाके पास आवें। ॥ ४३ ॥ फिर वे धीरे २ वहीं रहते हुए कुमार तक पहुंचे ॥ ४४ ॥

तेषामनियतकालप्रवेशस्थाननिर्गमनानि स्थापयेत् ॥ ४५ ॥ ततस्तद्व्यञ्जनो वा रात्रौ प्रतिष्ठेत ॥ ४६ ॥ तेन रूपाजीवा भार्याव्यञ्जनाश्च व्याख्याताः ॥ ४७ ॥

वह राजकुमार राजाकी अनुमतिसे, अपनी इच्छानुसार चाहे जिससमय अपने घरमें उन (नट आदि) को आनेजाने और ठहरनेकी व्यवस्था करा लेवे ॥४५॥ फिर उनहीमें से किसीका वेश बनाकर, रात्रिमें वहांसे निकल आवे। और उनके साथ २ ही अपने देशको चलाजावे ॥ ४६ ॥ इसी प्रकार वेश्या अथवा भार्याके वेशमें गये हुए गुप्त पुरुषभी, राजकुमारको वहांसे छुड़ा लानेका उपाय करें ॥ ४७ ॥

तेषां वा तूर्यभाण्डफेलां गृहीत्वा निर्गच्छेत् ॥ ४८ ॥ सूदारालिकस्नापकसंवाहकास्तरककल्पकप्रसाधकोदकपरिचारकैर्वा द्रव्यवस्त्रभाण्डफेलाशयनासनसंभोगैर्निर्ह्रियेत् ॥ ४९ ॥

अथवा नट नर्त्तक आदिके बाजों या आभरणों (अभिनयके समय सजनेके लिये वस्त्र आभूषण आदि) की पेटीको उठाकर उनके साथही बाहर निकल जावे ॥ ४८ ॥ अथवा सूद (रसोइया), आरालिक (मिष्ट आदि बनानेवाला), स्नापक (स्नान आदि करानेवाला), संवाहक (शरीरको दबानेवाला), आस्तरक (बिस्तर आदि बिछानेवाला), कल्पक (नाई), प्रसाधक (वस्त्र आदि धारण करानेवाला), और उदक परिचारक (जल आदि देनेवाला), इन लोगोंके द्वारा जब कोई वस्तु (भक्ष्य आदि, वस्त्र आभूषणों की पेटी या बिस्तर आदि अपने काममें आनेवाली चीज बाहर लेजाई जावे, तब उसके साथ ही अवसर पाकर राजकुमारभी बाहर निकल जावे ॥ ४९ ॥

परिचारकच्छद्मना वा किंचिद्रूपवेलायामादाय निर्गच्छेत् ॥ ५० ॥ सुरङ्गामुखेन वा निशोपहारेण ॥ ५१ ॥ तोयाशये वा वारुणं योगमातिष्ठेत् ॥ ५२ ॥

अथवा राजकुमार, नौकरके बहानेसे अन्धकारके समयमें कोई वस्तु लेकर बाहर निकलजावे ॥ ५० ॥ अथवा रातमें भूतबलि (भूतोंके उद्देश्यसे भेंट आदि करना) आदि देनेका बहाना करके सुरङ्गके रास्तेसे बाहर निकल जावे ॥ ५१ ॥ अथवा नदी, तालाब आदि किसी बड़े जलाशयमें वारुण योगका (जलके भीतर बैठेरहनेवाले या वहां चलने फिरनेका उपाय विशेष। देखो:—(अधि० १६, अध्याय १ सूत्र १३, १४) अनुष्ठान करके समयपर बाहर निकल जावे ॥ ५२ ॥

वैदेहकव्यञ्जना वा पक्वान्नफलव्यवहारेणारक्षिषु समवचारयेयुः ॥ ५३ ॥ दैवतोपहारश्राद्धप्रहवणनिमित्तमारक्षिषु मदनयोगयुक्तमन्नपानं रसं वा प्रयुज्यापगच्छेत् ॥ ५४ ॥

अथवा व्यापारीके भेसमें रहनेवाले गुप्तपुरुष, पकेहुए अन्न या फल आदिके व्यवहार (प्रयोग) से पहरदारों को विष देदेवें। अर्थात् राजकुमारपर पहरा देनेवाले लोगोंको, गुप्तपुरुष, अन्नादिके द्वारा विष देदेवें। और जब वे बेहोश होजावें, गुप्तपुरुष राजकुमारको लेकर बाहर निकल जावें ॥ ५३ ॥ अथवा देवताको भेंट श्राद्ध या प्रीतिभोजन के निमित्तसे, बेहोश करनेवाली औषधियों

से युक्त अन्न या पीनेकी वस्तुओंका पहरेदारोंपर प्रयोग करके, राजकुमार उनके संज्ञाहीन होनेपर बाहर निकल जावे ॥ ५४ ॥

आरक्षकप्रोत्साहनेन वा ॥ ५५ ॥ नागरककुशीलवचिकित्सकापूपिकव्यञ्जना वा रात्रौ समृद्धगृहाण्यादीपयेयुः॥ ५६ ॥

अथवा अपने रक्षापुरुषों (पहरेदारों) को बहुतसा धनदेनेकी प्रतिज्ञासे उन्हें सन्तुष्ट करके, राजकुमार बाहर निकलजावे ॥ ५५ ॥ अथवा नगररक्षक नट, चिकित्सक और आपूपिक (खोमचा आदिमें मिठाई, या अन्य प्रकारकी खाद्य वस्तुओंको फेरी लगाकर बेचनेवाले) के वेषमें, रात्रिकेसमय इधर उधर घूमनेवाले गुप्तचर पुरुष रातमें ही धनी लोगोंके घरोंमें आग लगा देवें ॥ ५६ ॥

आरक्षिणो वैदेहकव्यञ्जना वा पण्यसंस्थामादीपयेयुः ॥ ५७ ॥ अन्यद्वा शरीरं निक्षिप्य स्वगृहमादीपयेदनुपातभयात्ततः संधिच्छेदखातसुरङ्गाभिरपगच्छेत् ॥ ५८ ॥

रक्षापुरुष अथवा व्यापारियोंके भेसमें रहनेवाले गुप्तचर पुरुष बाज़ारमें दूकानोंमें आग लगादेवें। आग लगनेके कारण जब सब लोगोंमें गड़बड़ फैलजावे, तो राजकुमार अवसर पाकर बाहर निकलजावे ॥ ५७ ॥ अथवा राजकुमार अपने ही घरमें आग लगादेवे, और वहां अन्य किसीका शरीर (शव) डालदेवे, जिससे कि शत्रु शवको देखकर यह समझ लेवे कि राजकुमार जल गया है, और उसके विषयमें किसी तरहका अन्वेषण न करे, तथा स्वयं राजकुमार, पहिलेसे सेंधके छेद अथवा सुरंगसे बाहर निकल जावे ॥ ५८ ॥

काचकुम्भभाण्डभारव्यञ्जनो वा रात्रौ प्रतिष्ठेत ॥ ५९ ॥ मुण्डजटिलानां प्रवासनान्यनुप्रविष्टो वा रात्रौ तद्व्यञ्जनः प्रतिष्ठेत ॥ ६० ॥

अथवा लकड़हारों (काचभारः , कहार (कुम्भभारः), या साईस (भाण्ड भारः घोड़के साज आदिको संभालने वाला) के वेषमें, राजकुमार रात्रिके समय बाहर निकल जावे ॥ ५९ ॥ अथवा विजिगीषु जब मुण्ड और जटिलोंको कभी बाहरभेजे, तो राजकुमारभी छिपकर उनमें मिलजावे, और रातमें उन्हींकासा भेस बनाकर, उनके साथही बाहर निकल जावे ॥ ६० ॥

विरूपव्याधिकरणारण्यचरच्छद्मनामन्यतमेन वा ॥ ६१ ॥ प्रेतव्यञ्जनो वा गूढैर्निह्रियेत ॥६२॥ प्रेतं वा स्त्रीवेषेणानुगच्छेत् ॥ ६३ ॥

अथवा औपनिषदिक प्रकरणमें बतायेहुए उपायोंसे अपनी शकलको बिल्कुल बदलकर, या रोगीकासा भेस बनाकर या जंगली भील कोल आदिका भेस बनाकर, राजकुमार चुपचाप रातमें बाहर निकल जावे ॥ ६१ ॥ अथवा राजकुमारको मुर्दोंकी शकलमें अपने कन्धोंपर रखकर, गूढ़पुरुष बाहर ले जावें ॥ ६२ ॥ अथवा किसी मुर्देके पीछे २ स्त्रीका वेश बनाकर, राजकुमार बाहर निकल जावे ॥ ६३ ॥

वनचरव्यञ्जनाश्चैनमन्यतो यान्तमन्यतोऽपदिशेयुः ॥६४॥ ततोऽन्यतो गच्छेत् ॥ ६५ ॥ चक्रचराणां वा शकटवाटैरपगच्छेत् ॥ ६६ ॥

राजकुमारके बाहर निकल जानेपर, जब उसका अन्वेषण करनेवाले राजपुरुष इधर उधर जावें, तो जंगलियोंके भेसमें रहनेवाले (राजकुमार पक्षके) गुप्तपुरुष, इन ढूंढने वाले पुरुषोंको दूसराही रास्ता बतलादेवें। अर्थात् जिस रास्तेसे राजकुमार जारहा हो उससे बिल्कुल उल्टा रास्ता उन्हें बतादेवें ॥६४॥ और राजकुमार, अन्वेषकोंको बतलाये हुए मार्गसे भिन्न मार्गके द्वाराही जावे ॥ ६५ ॥ अथवा गाड़ी चलानेवाले पुरुषोंकी गाड़ियोंके झुण्डके साथ २ ही जावे ॥ ६६ ॥

आसन्ने चानुपाते सत्रं वा गृह्णीयात् ॥ ६७ ॥ सत्राभावे हिरण्यं रसाविद्धं वा भक्ष्यजातमुभयतः पन्थानमुत्सृजेत् ॥ ६८ ॥ ततोऽन्यतोऽपगच्छेत् ॥ ६९ ॥

यदि अपने ढूंढनेवाले पुरुष, बहुतही समीप आजावें, तो कहीं घने जंगलमें छिप जावे ॥ ६७ ॥ यदि छिपनेके लिये कहीं घना जंगल न मिले, तो हिरण्य, अथवा विषयुक्त खाद्यवस्तु, रास्तेके दोनों ओर डालदेवे ॥ ६८ ॥ और फिर दूसरे किसी रास्तेसे निकल जावे ॥ ६९ ॥

गृहीतो वा सामादिभिरनुपातमतिसंदध्यात् ॥ ७० ॥ रसविद्धेन वा पथ्य (पाथेय) दानेन ॥ ७१ ॥

अथवा यदि ढूंढनेवाले पुरुष इसको पकड़ लेवें, तो सामदान आदि उपायोंके द्वारा उसको धोखा देकर निकल जावे ॥ ७० ॥ अथवा विषयुक्त पाथेय (मार्गमें खानेके लिये लेजाया हुआ खाद्यपदार्थ) देकर उनको मार देवे, या मूर्च्छित करदेवे; और स्वयं वहांसे निकल भागे ॥ ७१ ॥

वारुणयोगाग्निदाहेषु वा शरीरमन्यदाधाय शत्रुमभियुञ्जीत पुत्रो मे त्वया हत इति ॥ ७२ ॥

पकड़े जानेके डरसे छिपे हुए राजकुमारको भगालेजानेका एक यह भी उपाय है, कि पूर्वोक्त वारुणयोग और अग्निदाहके अवसरोंपर, दूसरे किसी शरीरको वहां डालकर, विजिगीषु शत्रुके ऊपर अभियोग करे, कि तुमने मेरे पुत्रको मारडाला है। इस अभियोगसे, शत्रु यह समझकर कि राजकुमार मरगया है, उसका ढूंढना बन्द करदेगा। तथा राजकुमार निश्चिन्ततासे अपने देशमें चला जावे ॥ ७२ ॥

उपात्तच्छन्नशस्त्रो वा रात्रौ विक्रम्य रक्षिषु।
शीघ्रपातैरपसरेद्गूढप्रणिहितैः सह ॥ ७३ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे संधिकर्मसंधिमोक्षः सप्तदशो ऽध्यायः ॥१७॥
आदितः पञ्चदशशतः ॥ ११५ ॥

अथवा पूर्वोक्त कोई भी उपाय यदि न किया जासके, तो राजकुमारको चाहिये, कि वह रातमें छिपाकर पास हथियारोंको लेकर अपने पहरेदारोंके ऊपर आक्रमण करके या उन्हें मारकर शीघ्रगामी घोड़े आदि सवारियोंके द्वारा, गूढ पुरुषोंके साथ २ बाहर निकलजावे ॥ ७३ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें सत्रहवां अध्याय समाप्त।

अठारहवां अध्याय।

१२४—१२६ प्रकरण

मध्यम, उदासीन और अन्य राजमण्डलके प्रति विजिगीषुका व्यवहार।

मध्यमस्यात्मतृतीया पञ्चमी च प्रकृती प्रकृतयः ॥ १ ॥
द्वितीया च चतुर्थी षष्ठी च विकृतयः ॥ २ ॥

मध्यम, स्वयं और तीसरी तथा पांचवीं प्रकृति अर्थात् मित्र और मित्रका मित्र, ये तीनों (आत्मा, मित्र, मित्रमित्र), मध्यमकी प्रकृति कहाती हैं। (मध्यमके अच्छीतरह सहायक होनेके कारण, ये उसके 'प्रकृति' कहे जाते हैं।) ॥ १ ॥ शत्रु, शत्रुका मित्र, और शत्रुके मित्रका मित्र, ये तीनों मध्यमकी 'विकृति' कहे जाते हैं। क्योंकि ये मध्यमका विरोध करनेवाले होते हैं ॥ २ ॥

तच्चेदुभयं मध्यमो ऽनुगृह्णीयाद्विजिगीषुर्मध्यमानुलोमः स्यात् ॥ ३ ॥ न चेदनुगृह्णीयात्प्रकृत्यनुलोमः स्यात् ॥ ४ ॥

मध्यमको चाहिये कि वह दोनों प्रकार के (प्रकृति और विकृतिरूप) राजाओंपर पूर्ण अनुग्रहबुद्धि रक्खे। और विजिगीषुको चाहिये कि वह सदा मध्यमराजाके अनुकूल बनारहे ॥ ३ ॥ यदि मध्यम दोनों प्रकारके राजाओंपर अनुग्रह न कर सके, तो अपनी प्रकृति अर्थात् आत्मा, मित्र और मित्रका मित्र इनको तो अवश्यही अपने अनुकूल बनाये रक्खे ॥ ४ ॥

मध्यमश्चेद्विजिगीषोर्मित्रं मित्रभावि लिप्सेत मित्रस्यात्मनश्च मित्राण्युत्थाप्य मध्यमाच्च मित्राणि भेदयित्वा मित्रं त्रायेत ॥५॥

यदि मध्यम विजिगीषुके मित्रभावि मित्र (देखो=अधि. ७, अध्या. ९ सूत्र ५५) को अपने अधीन करना चाहे, तो उस समय विजिगीषुको चाहिये, कि वह अपने मित्रोंके मित्र और अपने मित्रोंको सहारा देकर, तथा मध्यमके मित्रोंका उससे भेद डलवाकर अपने मित्रकी रक्षा करे ॥ ५ ॥

मण्डलं वा प्रोत्साहयेत् ॥ ६ ॥ अतिप्रवृद्धोऽयं मध्यमः सर्वेषां नो विनाशायाभ्युत्थितः संभूयास्य यात्रां विहनाम इति ॥ ७ ॥ तच्चेन्मण्डलमनुगृह्णीयान्मध्यमावग्रहेणात्मानमुपबृंहयेत् ॥ ८ ॥

यदि विजिगीषु ऐसा न कर सके, तो मध्यमके विरुद्ध अन्य राजमण्डलको इसप्रकार प्रोत्साहित करदे, कि ॥ ६ ॥ देखो, बहुत उन्नत हुआ २ यह मध्यम, हम सबकाही नाश करनेके लिये उठ खड़ा हुआ है। हमको चाहिये, कि हम सब मिलकर इसके आक्रमणको रोकें ॥ ७ ॥ यदि इसप्रकार प्रोत्साहित किया हुआ राजमण्डल, अपनी (विजिगीषुकी) सहायता करनेके लिये तैयार होजाय, तो उनकी सहायतासे मध्यमका निग्रह करके अपने आपको अच्छीतरह उन्नत बनावे ॥ ८ ॥

न चेदनुगृह्णीयात्कोशदण्डाभ्यां मित्रमनुगृह्य ये मध्यमद्वेषिणो राजानः परस्परानुगृहीता वा बहवस्तिष्ठेयुरेकसिद्धौ वा बहवः सिद्ध्येयुः परस्पराद्वा शङ्किता नोत्तिष्ठेरंस्तेषां प्रधानमेकमासन्नं वा सामदानाभ्यां लभेत ॥ ९ ॥

यदि राजमण्डल विजिगीषुकी सहायता न करे, तो वह धन और सेनाके द्वारा अपने मित्रकी सहायता करके; जो बहुतसे राजा मध्यमके साथ द्वेष रखनेवाले हों, अथवा जो आपसमें एक दूसरेकी सहायता करके मध्यमका अपकार करना चाहते हों, या जो मध्यमके शत्रु, एकके अनुकूल (विजिगीषुके अनुकूल) होजानेपर सब अनुकूल होजावें, अथवा मिलकर सिद्धिलाभकी कामना रखते हुए

भी परस्पर एक दूसरेके भयसे जो आक्रमणके लिए तैयार न होते हों, ऐसे मध्यमके शत्रु राजाओंमेंसे एक प्रधान राजाको, अथवा अपने देशके समीपके राजाको साम और दानके द्वारा अपने वशमें करे, अर्थात् अपने अनुकूल बनावे ॥ ९ ॥

द्विगुणो द्वितीयं त्रिगुणस्तृतीयम् ॥ १० ॥ एवमभ्युच्चितो मध्यममवगृह्णीयात् ॥ ११ ॥

इसप्रकार दूसरे राजाकी सहायता मिलनेपर विजिगीषु द्विगुणबलशाली होजाता है। यदि इसीतरह तीसरे राजाकी और सहायता मिलजावे, तो विजिगीषुका, तिगुना बल होजाता है ॥ १० ॥ इसप्रकार अपनी शक्तिको बढ़ाकर विजिगीषु, मध्यमका निग्रह करे ॥ ११ ॥

देशकालातिपत्तौ वा संधाय मध्यमेतरमित्रस्य साचिव्यं कुर्यात् दूष्येषु वा कर्मसंधिम् ॥ १२ ॥

अथवा मध्यमके शत्रुओंकी सहायता लेनेके पहिलेही, देशकालके अनुसार विजिगीषु सीधा मध्यमके साथही सन्धि कर, और फिर अपने उस मित्र (मित्रभावि मित्र) के साथ भी मध्यमकी सन्धि कराकर उसकी सहायता करे। यदि ऐसा सम्भव न हो, अर्थात् मध्यम यदि सन्धि न करना चाहे, तो मध्यमके दूष्य पुरुषों (ऐसे प्रधान कर्मचारी, जो भीतरही भीतर मध्यमसे शत्रुता रखते हों) के साथ कर्म सन्धि करे। अर्थात् उनसे कहे कि तुम लोग अमुक स्थान आदिमें आग लगवादो, या इसीप्रकारका अन्य कोई उपद्रव खड़ा करदो, अनन्तर मैं इसके साथ युद्ध करूंगा, इसप्रकार दूष्योंसे सन्धि करे ॥ १२ ॥

> अपने मित्रभावि मित्रको अधीन करनेके लिये तयार हुए २ मध्यमके साथ विजिगीषुको क्या व्यवहार करना चाहिये, यह कहदिया गया। अब कर्शनीय मित्र (ऐसा मित्र जो विजिगीषुके विरुद्ध रहता हो, और इसीलिये विजिगीषु उसके धन और सेनाका क्षय करके जिसे कृश बनाना चाहता हो) को अधीन करनेके लिये प्रयत्न करते हुए मध्यमके साथ विजिगीषुको क्या व्यवहार करना चाहिये, यह बताते हैं:—

कर्शनीयं वास्य मित्रं मध्यमो लिप्सेत प्रतिस्तम्भयेदेनमहं त्वा त्रायेय इत्याकर्शनात् ॥ १३ ॥ कर्शितमेनं त्रायेत ॥ १४ ॥

विजिगीषुके कर्शनीय मित्रको यदि मध्यम अपने अधीन करना चाहे तो विजिगीषुको चाहिये, कि वह अपने उस मित्रको अपनी ओरसे यह कहकर,

अभय करदे, कि मैं मध्यमसे तुम्हारी रक्षा करूंगा, घबड़ाओ नहीं। परन्तु यह अभयवचन उसी समयतक होता है, जबतक कि मध्यमके द्वारा यह कृशताको प्राप्त करा दिया जाय। अर्थात् दुर्बल बना दिया जाय ॥ १३ ॥ कृशताको प्राप्त होनेपर तो इसकी रक्षा, विजिगीषुको अवश्यही करनी चाहिये। अर्थात् जब यह दुर्बल बना दिया जाय, तो विजिगीषु अवश्य इसकी रक्षा करे ॥ १४ ॥

उच्छेदनीयं वास्य मित्रं मध्यमो लिप्सेत कर्शितमेनं त्रायेत मध्यमवृद्धिभयात् ॥ १५ ॥ उच्छिन्नं वा भूम्यनुग्रहेण हस्ते कुर्यादन्यत्रापसारभयात् ॥ १६ ॥

यदि विजिगीषुके उच्छेदनीय मित्रको मध्यम अपने अधीन करनाचाहे तो विजिगीषुको चाहिये कि वह अपने उच्छेदनीय मित्रकी उसी समय रक्षा करे, जबकि मध्यम, उसको अच्छी तरह कष्ट पहुंचा चुका हो; परन्तु अभीतक उच्छेद न किया हो। क्योंकि उसके उच्छेद करनेपर तो मध्यम और भी शक्तिशाली होसकता है, तथा विजिगीषुको भी हानि पहुंचा सकता है ॥ १५ ॥ अथवा उच्छिन्न हुए २ उस मित्रको अपनी ओरसे कुछ भूमि देकर अपने वशमें कर लेवे, अन्यथा यह सम्भव होसकता है कि वह शत्रु पक्षमें जाकर मिलजाये ॥ १६ ॥

कर्शनीयोच्छेदनीययोश्चेन्मित्राणि मध्यमस्य साचिव्यकराणि स्युः पुरुषान्तरेण संधीयेत ॥ १७ ॥ विजिगीषोस्तयोर्मित्राण्यवग्रहसमर्थानि स्युः संधिमुपेयात् ॥ १८ ॥

यदि कर्शनीय और उच्छेदनीय राजाओंके अन्य मित्र मध्यमकीही सहायता करनेवाले हों, तो विजिगीषु को चाहिये कि वहभी अपने राजकुमार अथवा अमात्य आदिको उपस्थित करके (मध्यमके पास विश्वासकी दृढ़ताके लिये आधिरूपमें रखकर) मध्यमसे सन्धि करलेवे ॥ १७ ॥ विजिगीषुके कर्शनीय और उच्छेदनीय राजाओंके मित्र, यदि मध्यमका मुकाबला करनेमें समर्थ हों, तो विजिगीषुको चाहिये कि वह मध्यमके साथ सन्धि करलेवे। यहांतक विजिगीषुके अपने मित्रोंपर अभियोग करनेवाले मध्यमके साथ विजिगीषु का क्या व्यवहार होना चाहिये, इस बातका निरूपण किया गया। अब विजिगीषुके शत्रुओंपर अभियोग करनेवाले मध्यमके साथ विजिगीषुके व्यवहारका निरूपण करते हैं ॥ १८ ॥

अमित्रं वास्य मध्यमो लिप्सेत संधिमुपेयात् ॥ १९ ॥ एवं स्वार्थश्च कृतो भवति मध्यमस्य प्रियं च ॥ २० ॥

यदि विजिगीषुके किसी शत्रुको, मध्यम अपने अधीन करना चाहे; तो विजिगीषुको यह चाहिये कि वह मध्यमके साथ सन्धि कर लेवे ॥ १९ ॥ क्योंकि ऐसा करनेसे दोनों बातें सिद्ध हो जाती है। एक तो अपने शत्रुका नाश हो जानेसे अपना कार्यसिद्ध होजाता है, और मध्यमका भी प्रिय होजाता है ॥ २० ॥

मध्यमश्चेत्स्वमित्रं मित्रभावि लिप्सेत पुरुषान्तरेण संदध्यात् ॥ २१ ॥ सापेक्षं वा नार्हसि मित्रमुच्छेत्तुमिति वारयेदुपेक्षेत वा मण्डलमस्य कुप्यतु स्वपक्षवधादिति ॥ २२ ॥

यदि मध्यम अपने ही किसी मित्रभावी मित्रको अपने अधीन करना चाहे, तो विजिगीषुको चाहिये कि अपने सेनापति आदिको भेजकर मध्यमकी सहायता करे ॥ २१ ॥ अथवा उस मित्रसे अपनी अर्थसिद्धिको देखता हुआ, मध्यमको उसपर आक्रमण करनेसे यह कहकर रोकदेवे, कि मित्रका उच्छेद करना अच्छा नहीं होता'। ऐसा करनेसे विजिगीषु, अन्य राजाओंका अधिक विश्वस्त होजाता है। अथवा यह सोचकर इसकी उपेक्षा ही करदेवे, कि मध्यम यदि अपने मित्र परही आक्रमण करेगा, तो इसका राजमण्डल ही इससे, यह जानकर कुपितहो जायगा, कि यह अपने मित्रकाही वध करनेके लिये तैयार होगया है ॥ २२ ॥

अमित्रमात्मनो वा मध्यमो लिप्सेत ॥ २३ ॥ कोशदण्डाभ्यामेनमदृश्यमानो ऽनुगृह्णीयात् ॥ २४ ॥ उदासीनं वा मध्यमो लिप्सेत ॥ २५ ॥ उदासीनाद्भिद्यतामिति ॥२६॥ मध्यमोदासीनयोर्यो मण्डलस्याभिप्रतस्तमाश्रयेत ॥ २७ ॥

यदि मध्यम अपने किसी शत्रुको ही अपने अधीन करना चाहे ॥२३॥ तो विजिगीषुको चाहिये कि वह धन और सेनाके द्वारा छिपे तौरपर ही मध्यमके शत्रुकी सहायता करे ॥ २४ ॥ यदि मध्यम, किसी उदासीन राजाको अपने अधीन करना चाहे, तो विजिगीषु यह सोचकर कि 'मध्यम उदासीनसे सर्वथा भेदको प्राप्त होजाय' मध्यम और उदासीन दोनोंमेंसे जो राजमण्डलका अधिक प्रियहो उसहीके साथ मिल जावे। और उसकी सहायतामें लगजावे ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ २७ ॥

मध्यमचरितेनोदासीनचरितं व्याख्यातम् ॥ २८ ॥ उदासीनश्चेन्मध्यमं लिप्सेत यतः शत्रुमतिसंदध्यान्मित्रस्योपकारं कुर्या-

दुदासीनं वा दण्डोपकारिणं लभेत ततः परिणमेत ॥२९॥ एव-मुपबृह्यात्मानमरिप्रकृतिं कर्शयेन्मित्रप्रकृतिं चोपगृह्णीयात् ॥३०॥

मध्यमके चरितके समान, उदासीनका भी चरित समझ लेना चाहिये ॥ २८ ॥ यदि उदासीन राजा किसी मध्यम राजाको अपने अधीन करना चाहे तो विजिगीषुको चाहिये, कि वह इन दोनोंमेंसे, उस राजाके साथ मिलजावे, जिसके साथ मिलनेसे अपने शत्रुका उच्छेद और मित्रका उपकार करसके अथवा मध्यम वा उदासीनको सेनाकी सहायता देकर अपने वशमें करसके ॥ २९ ॥ इस प्रकार विजिगीषु अपनी वृद्धि करके शत्रुरूप प्रकृति अर्थात् शत्रुका नाशकरे और मित्ररूप प्रकृतिका उपकार करे ॥ ३० ॥

सत्यप्यमित्रभावे तस्यानात्मवान्नित्यापकारी शत्रुः शत्रुसहितः पार्ष्णिग्राहो वा व्यसनी यातव्यो व्यसने वा नेतुरभियोक्तेत्यरि-भाविनः ॥ ३१ ॥

शत्रु शब्दसे कहे जानेवाले सामन्त तीन प्रकारके होते हैं। शत्रुभावी मित्रभावी, तथा भृत्यभावी, इन सबका क्रमपूर्वक निरूपण करते हैं:— अपने राज्यके साथ लगेहुए होनेके कारण, विजिगीषुके प्रति शत्रुभावकी समता होनेपर भी, यह सामन्त निम्न रीतिके अनुसार आठ प्रकारका कहा जाता है: —अजितेन्द्रिय, सदा अपकार करनेवाला, शत्रु अर्थात् बिना ही कारण द्वेष करनेवाला, शत्रुकी सहायतासे युक्त (अर्थात् विजिगीषुके शत्रुकी सहायतासे युक्त), पार्ष्णिग्राह (किसी दूसरे राजा पर चढ़ाई करनेपर पीछेसे उपद्रव करने वाला), और बन्धु आदिकी मृत्युसे दुःखी, यातव्य (जिस पर आक्रमण किया जाय), विजिगीषुको व्यसनमें फंसा देखकर उस पर आक्रमण करने वाला, यह शत्रुभावी सामन्त कहाता है ॥ ३१ ॥

एकार्थाभिप्रयातः पृथगर्थाभिप्रयातः संभूययात्रिकः संहित-प्रयाणिकः स्वार्थाभिप्रयातः सामुत्थायिकः कोशदण्डयोरन्यतरस्य क्रेता विक्रेता द्वैधीभाविक इति मित्रभाविनः ॥ ३२ ॥

तथा विजिगीषुके साथ एकही अर्थकी सिद्धिके लिये यात्रा करनेवाला, अर्थात् जिस भूमि आदि अर्थकी सिद्धिके लिये विजिगीषु एक ओर जावे, उसी अर्थकी सिद्धिके लिये दूसरी ओर को जानेवाला, अथवा विजिगीषुके भूमिके लिये जानेपर स्वयं हिरण्यके लिये जानेवाला; विजिगीषुके साथ २ ही यात्रा अर्थात् किसीपर आक्रमण करनेवाला, विजिगीषुके साथ सन्धि करके, 'तू इधरको आ, मैं इधरको आऊंगा' इसप्रकार कहकर यात्रा करनेवाला, विजिगीषु

के ही किसी कार्यको सिद्ध करनेके लिये यात्रा करनेवाला, विजिगीषुसे मिलकर शून्य स्थानोंके बसानेके लिये प्रवृत्त हुआ २ धन और सेना इन दोनोंमेंसे किसी एकको एक दूसरेके बदलेमें खरीदने या बेचनेवाला, द्वैधीभाव गुणसे उपयोग लेने वाला, ये सब आठ प्रकारके मित्रभावी सामन्त कहाते हैं ॥ ३२ ॥

सामन्तो बलवतः प्रतिघातोऽन्तर्धिः प्रतिवेशो वा बलवतः पार्ष्णिग्राहो वा स्वयमुपनतः प्रतापोपनतो वा दण्डोपनत इति भृत्यभाविनः सामन्ताः ॥३३॥ तैर्भूम्येकान्तरा व्याख्याताः ॥३४॥

और सामन्त, बलवान् राजाका मुकाबला करनेवाला, अन्तर्धि, प्रतिवेश (पड़ोसी), बलवान् राजापर पीछेसे आक्रमण करनेवाला, स्वयंही आकर आश्रित हुआ २ अथवा अपने प्रतापसे आश्रित किया हुआ या बलपूर्वक अपने अधीन किया हुआ; ये आठ प्रकारके ही भृत्यभावी सामन्त कहलाते हैं ॥ ३३ ॥ इन तीन प्रकारके (३१, ३२, ३३, सूत्रमें कहे हुए) शत्रुओंके समानही, भूम्येकान्तर (एक देशके व्यवधानसे राज्य करनेवाले) मित्रोंकेभी भेद समझ लेने चाहियें। अर्थात् जिसतरह शत्रु, शत्रुभावी, मित्रभावी और भृत्यभावी ये तीन प्रकारके होते हैं, इसीतरह मित्रभी, शत्रुभावी, मित्रभावी और भृत्यभावी ये तीन प्रकारके ही होते हैं ॥ ३४ ॥

तेषां शत्रुविरोधे यन्मित्रमेकार्थतां व्रजेत् ।
शक्त्या तदनुगृह्णीयाद्विषहेत यया परम् ॥ ३५ ॥

उन भूम्येकान्तर मित्रोंमेंसे किसीके ऊपर यदि शत्रु आक्रमण करदेवे, तो उस मित्रके साथ जो सन्धिकरे, वह धन और सेनाकी, उसको इतनी सहायता पहुंचावे, जिससे वह शत्रुको दबासके ॥ ३५ ॥

प्रसाध्य शत्रुं यन्मित्रं वृद्धं गच्छेदवश्यताम् ।
सामन्तैकान्तराभ्यां तत्प्रकृतिभ्यां विरोधयेत् ॥ ३६ ॥

जो मित्र अपने शत्रुको जीतकर वृद्धिको प्राप्त हुआ २, वशमें (अर्थात् विजिगीषुके वशमें) नहीं रहता, उसके सामन्त और भूम्येकान्तर मित्रोंके तथा उनकी अमात्य आदि प्रकृतियोंके साथ किसी तरह उसका विरोध करादेवे ॥ ३६ ॥

तत्कुलीनावरुद्धाभ्यां भूमिं वा तस्य हारयेत् ।
यथा वानुग्रहापेक्षं वश्यं तिष्ठेत्तथा चरेत् ॥ ३७ ॥

अथवा उसे अवश्य (अपने=विजिगीषुके वशमें न रहनेवाले) मित्रके पारिवारिक बन्धुबान्धवों तथा नजरबन्द कियेहुए पुत्रादिके द्वारा उसकी भूमिका

अपहरण करावे । अथवा अपनी सहायता चाहता हुआ वह जिस तरहभी वशमें रहसके, उसीतरह उसके साथ व्यवहार कियाजाय ॥ ३७ ॥

नोपकुर्यादमित्रं वा गच्छेद्यदतिकर्शितम् ।
तदहीनमवृद्धं च स्थापयेन्मित्रमर्थवित् ॥ ३८ ॥

जो मित्र क्षीण अवस्थाको प्राप्त हुआ २ अपने (विजिगीषुका) कोई उपकार न करसके, अथवा शत्रुके साथ जाकर मिलजावे, अपने अर्थको सिद्ध करनेवाले विजिगीषुको चाहिये, कि इस प्रकारके मित्रको ऐसीही अवस्थामें रक्खे, जिससे कि वह न सर्वथा उच्छिन्न ही होजाय, और न अपनी वृद्धि ही करसके ॥ ३८ ॥

अर्थयुक्त्या चलं मित्रं संधिं यदुपगच्छति ।
तस्यापगमने हेतुं विहन्यान्न चलेद्यथा ॥ ३९ ॥

जो चल मित्र लोभके कारण सन्धि करता है, वह कदाचित सन्धि तोड़ न देवे, इस विचारसे, विजिगीषुको चाहिये कि उसके अर्थ लिप्सारूपी सन्धि विच्छेदके कारणको, स्वयं ही कुछ धन आदि देकर नष्टकरदेवे । जिससे कि वह फिर सन्धि न तोड़सके ॥३९ ॥

अरिसाधारणं यद्वा तिष्ठेत्तदरितः शठम् ।
भेदयेद्भिन्नमुच्छिन्द्यात्ततः शत्रुमनन्तरम् ॥ ४० ॥

जो धूर्तमित्र, अपने (विजिगीषुके) शत्रुके साथ मिलकर रहता हो, पहिले उसको शत्रुसे भेद करावे । और भेद कराकर उसका उच्छेद करदे । तदनन्तर शत्रुकाभी उच्छेद करदे ॥ ४० ॥

उदासीनं च यत्तिष्ठेत्सामन्तस्तद्विरोधयेत् ।
ततो विग्रहसंतप्तमुपकारे निवेशयेत् ॥ ४१ ॥

जो मित्र, शत्रु और विजिगीषु दोनोंकी ओरसे उदासीन रहे, विजिगीषुको चाहिये कि सामन्तोंके साथ उसका विरोध करादे। जब सामन्त उसके साथ युद्ध छेड़दे, और वह लड़ाईमें बहुत तंग आजावे, तब उसको अपने उपकारमें लगावे । अर्थात् उसको योग्य बनादेवे, जिससे किवह अपने द्वाराकिये जानेवाले उपकारकी अपेक्षाको अच्छीतरह समझने लगे ॥ ४१ ॥

अमित्रं विजिगीषुं च यत्संचरति दुर्बलम् ।
तद्बलेनानुगृह्णीयाद्यथा स्यान्न पराङ्मुखम् ॥ ४२ ॥

जो दुर्बल मित्र अपनी शक्ति बढ़ानेके लिये, शत्रु और विजिगीषु दोनोंका आश्रय लेना चाहता है । विजिगीषुको चाहिये कि ऐसे दुर्बल मित्रको सेना

आदिकी सहायता देकर सदा उपकृत करता रहे, जिससे कि वह पराङ्मुख न होवे; अर्थात् शत्रुसे जाकर न मिलजावे ॥ ४२ ॥

अपनीय ततो ऽन्यस्यां भूमौ वा संनिवेशयेत् ।
निवेश्य पूर्वं तत्रान्यद्दण्डानुग्रहहेतुना ॥ ४३ ॥

अथवा उसको, उसकी अपनी भूमिसे हटाकर किसी अन्य भूमिपर स्थापित करदे, अथवा जहां शत्रुकी सहायताकी कोई अपेक्षा नहो ऐसी अपनी भूमिमें ही रहनेदे। और उसकी भूमिमें उसके जानेसे पहिलेही सेनाके द्वारा सहायता पहुंचानेके लिये, इस कार्यके करनेमें समर्थ किसी अन्य व्यक्तिको स्थापित करदे ॥ ४३ ॥

अपकुर्यात्समर्थं वा नोपकुर्याद्यदापदि ।
उच्छिन्द्यादेव तन्मित्रं विश्वस्याङ्कमुपस्थितम् ॥ ४४ ॥

जो मित्र विजिगीषुका अपकार करे, तथा विजिगीषुके ऊपर कोई आपत्ति आनेपर, प्रतीकार करनेमें समर्थ हुआ २ भी उसको सहायता न देवे; विजिगीषुको चाहिये कि ऐसे मित्रको, पहिले खूब विश्वस्त बनाकर अपनी मुट्ठीमें आजानेपर उच्छिन्न करदेवे ॥ ४४ ॥

मित्रव्यसनतो वारिरुत्तिष्ठेद्यो ऽनवग्रहः ।
मित्रेणैव भवेत्साध्यः छादितव्यसनेन सः ॥ ४५ ॥

यदि विजिगीषुका शत्रु, विजिगीषुके मित्रपर कोई आपत्ति आजानेके कारण बिनाही किसी रुकावटके अपनी उन्नति करलेवे, तो विजिगीषुको चाहिये कि वह अपने मित्रकी आपत्तिके हट जानेपर अथवा आपत्तिको अप्रकाशित करके ही अर्थात् उसे बीचमेंही दबाकर उस मित्रके द्वाराही शत्रुको वशमें करने का यत्न करे ॥ ४५ ॥

अमित्रव्यसनान्मित्रमुत्थितं यद्विरज्यति ।
अरिव्यसनसिद्ध्या तच्छत्रुणैव प्रसिद्ध्यति ॥ ४६ ॥

इसी प्रकार जो मित्र, अपने शत्रुपर आपत्ति आजानेसे उन्नत होकर विजिगीषुसे अपरक्त होजाता है; अर्थात् उच्छृंखल होकर विजिगीषुके अनुकूल नहीं रहता विजिगीषुको चाहिये कि ऐसे मित्रको, शत्रुकी आपत्तिके दूर होजानेपर उसीके द्वारा वशमें करे ॥ ४६ ॥

वृद्धिं क्षयं च स्थानं च कर्शनोच्छेदनं तथा ।
सर्वोपायान्समादध्यादेतान्यश्चार्थशास्त्रवित् ॥ ४७ ॥

अर्थशास्त्र जाननेवाले राजाको उचित है, कि वह वृद्धि, क्षय, स्थान (उन्नति अवनतिसे रहित एकही अवस्थामें रहना), कर्शन और उच्छेदन, इनका तथा सब ही साम दान आदि उपायोंका अच्छी तरह विचार पूर्वक प्रयोग करें ॥ ४७ ॥

एवमन्योन्यसंचारं षाड्गुण्यं यो ऽनुपश्यति ।
स बुद्धिनिगलैर्बद्धैरिष्टं क्रीडति पार्थिवैः ॥ ४८ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे मध्यमचरितमुदासीनचरितं मण्डल-चरितमष्टादशो ऽध्यायः ।

आदितः षोडशशतः ॥ ११६ ॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य षाड्गुण्यं सप्तममधिकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार जो राजा, आपसमें जकड़े हुए इन छः गुणोंको अच्छीतरह विचारपूर्वक प्रयुक्त करता है । वह निश्चय ही अपनी बुद्धिरूपी संकलसे बांधेहुए अन्य राजाओंके साथ इच्छानुसार क्रीड़ा करता है ॥ ४८ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें अठारहवां अध्याय समाप्त ।

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरण समाप्त ।
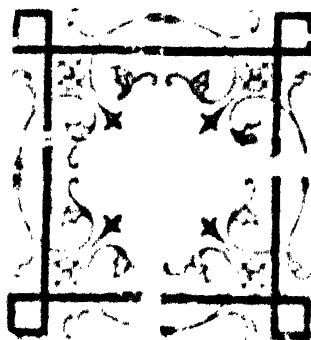
व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरण।

पहिला अध्याय

१२७ प्रकरण

प्रकृतिव्यसनवर्ग

व्यसनयौगपद्ये सौकर्यतो यातव्यं रक्षितव्यं चेति व्यसनचिन्ता ॥ १ ॥ दैवं मानुषं वा प्रकृतिव्यसनमनयापनयाभ्यां संभवति ॥ २ ॥

जब शत्रु और विजिगीषु दोनोंपर समान ही विपत्ति हो, और शत्रुपर आक्रमण तथा अपनी रक्षा करनेमें भी समानता ही दीखती हो, तब उस अवस्थामें शत्रुपर आक्रमण करना चाहिये, या अपनी रक्षा करनी चाहिये, यह विचार किया जाता है। इसलिये सबसे प्रथम इस अध्यायमें व्यसनों (विपत्तियों) का चिन्तन किया जाता है। कौनसा व्यसन बड़ा या कौनसा छोटा होता है ॥ १ ॥ व्यसन दो प्रकारका होता है, एक दैव और दूसरा मानुष। अमात्य आदि प्रकृति वर्गके ये व्यसन अनय और अपनयसे ही पैदा होते हैं। सन्धि आदिकी उचित व्यवस्था न करना अनय, और शत्रुसमूहसे पीडित होते रहना अपनय कहाता है ॥ २ ॥

गुणप्रातिलोम्यमभावः प्रदोषः प्रसङ्गः पीडा वा व्यसनम् ॥ ३ ॥ व्यस्यत्येनं श्रेयस इति व्यसनम् ॥ ४ ॥

महाकुलीनता आदि गुणोंकी प्रतिकूलता, इसी प्रकारके अन्य गुणोंका न होना, अथवा सन्धि आदि गुणोंका उचित उपयोग न करना, कोप आदि दोषोंका बढ़जाना, विषयोंमें अति आसक्त होना, और शत्रुओंके द्वारा पीडित रहना, ये पांच प्रकारके व्यसन कहाते हैं। अर्थात् उक्त प्रकारसे राजापर विपत्तिका आना ही व्यसन कहाता है ॥ ३ ॥ व्यसनका शब्दार्थ भी यही है कि जो

पुरुषको कल्याण मार्गसे भ्रष्ट करदेवे। जो कार्य राजाको उन्नत अवस्थासे नीचे गिराने वाला हो, वही उसके लिये व्यसन कहाजाता है ॥ ४ ॥

स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्रव्यसनानां पूर्वं पूर्वं गरीय इत्याचार्याः ॥ ५ ॥

आचार्योंका मत है कि स्वामी (राजा), अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, सेना और मित्र, इनपर विपत्ति आनेपर, अगलेकी अपेक्षा पहिलेपर विपत्तिका आना अत्यन्त कष्टकर है। अर्थात् राजा और अमात्य इन दोनोंपर आपत्ति आने पर राजाकी आपत्ति अधिक भयावह है, इसी तरह आगे भी समझ लेना चाहिये ॥ ५ ॥

नेति भारद्वाजः ॥ ६ ॥ स्वाम्यमात्यव्यसनयोरमात्यव्यसनं गरीय इति ॥ ७ ॥ मन्त्रो मन्त्रफलावाप्तिः कर्मानुष्ठानमायव्ययकर्म दण्डप्रणयनमामित्राटवीप्रतिषेधो राज्यरक्षणं व्यसनप्रतीकारः कुमाररक्षणमभिषेकश्च कुमाराणामायत्तममात्येषु ॥ ८ ॥

परन्तु भारद्वाज (द्रोण) आचार्य, इस सिद्धान्तको नहीं मानता ॥ ६ ॥ उसका कहना है कि, यदि स्वामी और अमात्यपर एक साथ ही व्यसन आपड़े, तो अमात्यका व्यसन ही अधिक भयावह या कष्टकर है ॥ ७ ॥ क्योंकि प्रत्येक कार्यका विचार, उनके फलाफलकी प्राप्तिका विचार, निश्चित कार्योंका करना, आय और व्ययकी व्यवस्था, सेनाकी व्यवस्था (अर्थात् सेनाका संग्रह करना और उचित स्थानोंपर उसका उपयोग करना), शत्रु और आटविकों (मारधाड़ करने वाले, या सीमा प्रान्तोंपर छापा मारने वाले जंगली आदि) का निराकरण करना, अपने राज्यकी रक्षा करना, विपत्तियोंका प्रतीकार करना, राजकुमारोंकी रक्षा और उनका अभिषेक करना, इत्यादि सब ही कार्य अमात्योंपर ही निर्भर होते हैं। इसलिये उनपर व्यसन आना अधिक भयावह होता है ॥ ८ ॥

तेषामभावे तदभावश्छिन्नपक्षस्येव राज्ञश्चेष्टानाशो व्यसनेषु चासन्नाः परोपजापाः ॥ ९ ॥ वैगुण्ये च प्राणबाधः प्राणान्तिकचरत्वाद्राज्ञ इति ॥ १० ॥

इसप्रकारके अमात्योंके न रहनेपर ये सब ही कार्य नष्टप्राय होजाते हैं। और पंख कटे हुए पक्षीके समान राजाके भी सम्पूर्ण कार्यक्रमोंका नाश होजाता है, तथा व्यसनोंके उपस्थित होनेपर वहां शत्रु अपने षड्यन्त्रोंका जाल फैलाने लगते हैं ॥ ९ ॥ तथा अमात्योंके विगुण अर्थात् व्यसनी या विपरीत होजानेपर

तो राजाओंके प्राणोंका भी भय उपस्थित होजाता है, क्योंकि अमात्य ही राजाओं के सबसे उत्तम रक्षक होनेके कारण प्राणोंके समान होते हैं ॥ १० ॥

नेति कौटल्यः ॥ ११ ॥ मन्त्रिपुरोहितादिभृत्यवर्गमध्यक्षप्रचारं पुरुषद्रव्यप्रकृतिव्यसनप्रतीकारमेधनं च राजैव करोति ॥१२॥

परन्तु कौटल्य आचार्य भारद्वाजके इस सिद्धान्तको नहीं मानता ॥११॥ क्योंकि वह कहता है कि मन्त्री और पुरोहित आदि भृत्यवर्ग तथा अन्य संपूर्ण विभागोंके अध्यक्षोंके कार्यक्रमको, और पुरुषप्रकृति अर्थात् अमात्य तथा सेना पर, आई हुई विपत्ति, एवं द्रव्यप्रकृति अर्थात् जनपद, कोश और दुर्ग आदि पर, आई हुई विपत्तियोंके प्रतीकारको और उनकी उन्नतिको राजा ही स्वयं कर सकता है ॥ १२ ॥

व्यसनिषु वामात्येष्वन्यानव्यसनिनः करोति ॥१३॥ पूज्यपूजने दूष्यावग्रहे च नित्ययुक्तस्तिष्ठति ॥१४॥ स्वामी च संपन्नः स्वसंपद्भिः प्रकृतीः संपादयति ॥ १५ ॥

अमात्योंपर यदि विपत्ति आपड़ी है, अर्थात् वे व्यसनी होगये हैं, तो उनके स्थानपर दूसरे व्यसनी अमात्योंको राजा नियुक्त कर सकता है ॥ १३ ॥ और राजा ही पूज्य व्यक्तियोंके सत्कार तथा दुष्ट व्यक्तियोंके निग्रहमें सदा तत्पर रहता है ॥ १४ ॥ राजा राजसम्पत्तिसे अर्थात् राजयोग्य गुणोंसे युक्त होनेपर, अमात्य आदि प्रकृतियोंको भी गुणसम्पन्न बना सकता है ॥ १५ ॥

स्वयं यच्छीलस्तच्छीलाः प्रकृतयो भवन्ति ॥ १६ ॥ उत्थाने प्रमादे च तदायत्तत्वात् ॥१७॥ तत्कूटस्थानीयो हि स्वामीति ॥१८॥

क्योंकि स्वयं राजाका जैसा स्वभाव होता है। प्रकृतियां भी उसी स्वभावकी बन जाती हैं ॥ १६ ॥ तथा अमात्य आदि प्रकृतियोंका अभ्युदय और अधःपात राजाके ही अधीन होता है ॥ १७ ॥ क्योंकि सातों प्रकारकी प्रकृतियोंमें, राजा सबका कूटस्थानीय अर्थात प्रधान कारण होता है। इसलिये मूलप्रकृतिका जैसा स्वभाव हो, उसकी विकृतियोंका भी वैसा ही स्वभाव होजाता है ॥ १८ ॥

अमात्यजनपदव्यसनयोर्जनपदव्यसनं गरीय इति विशालाक्षः ॥ १९ ॥ कोशो दण्डः कुप्यं विष्टिर्वाहनं निचयाश्च जनपदादुत्तिष्ठन्ते ॥ २० ॥ तेषामभावो जनपदाभावे स्वाम्यमात्ययोश्चानन्तर इति ॥ २१ ॥

विशालाक्ष आचार्यका मत है, कि अमात्यके व्यसनकी अपेक्षा जनपद पर आया हुआ व्यसनही अधिक भयावह होता है ॥ १९ ॥ क्योंकि कोश, सेना,

वस्त्र तथा लोहा तांबा आदि, सेवक या भृत्यवर्ग, घोड़े ऊँट आदि सवारियां, अन्न तथा घृत तैल आदि सभी सामान जनपदसे ही प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥ जनपदपर विपत्ति आनेसे जनपदका नाश होनेपर इन सब वस्तुओंका भी नाश होजाता है, तथा इनके प्राप्त न होनेपर फिर अमात्य और राजाका भी उच्छेद होजाता है ॥ २१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २२ ॥ अमात्यमूलाः सर्वारम्भाः ॥ २३ ॥ जनपदस्य कर्मसिद्धयः स्वतः परतश्च योगक्षेमसाधनं व्यसनप्रतीकारः शून्यनिवेशोपचयौ दण्डकरानुग्रहश्चेति ॥ २४ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य विशालाक्षके इस मतको नहीं मानता ॥ २२ ॥ क्योंकि वह कहता है कि सबही कार्योंका निर्भर अमात्यों पर है। अर्थात् अमात्योंके द्वारा ही सब कार्योंका आरम्भ किया जाता है ॥ २३ ॥ जनपदके दुर्ग तथा कृषि आदि कार्योंकी सिद्धि, राजकीय परिवार और अन्तपाल तथा आटविकोंकी ओरसे योगक्षेमका साधन, आपत्तियोंका प्रतीकार, निर्जन प्रदेशोंका बसाना और उनकी वृद्धि करना, अपराधियोंको दण्ड देना तथा राजकरका संग्रह करना इत्यादि सब कार्य अमात्योंके ही करनेके हैं। उनपर विपत्ति आने पर जनपद सम्बन्धी ये कार्य सम्पादन नहीं किये जासकते। इसलिये जनपदकी विपत्तिकी अपेक्षा अमात्योंपर विपत्तिका आनाही अधिक भयावह होना है ॥२४॥

जनपददुर्गव्यसनयोर्दुर्गव्यसनमिति पाराशराः ॥ २५ ॥ दुर्गे हि कोशदण्डोत्पत्तिरापदि स्थानं च जनपदस्य शक्तिमत्तराश्च पौरजानपदेभ्यो नित्याश्चापदि सहाया राज्ञो जानपदास्त्वमित्रसाधारणा इति ॥ २६ ॥

पराशर मतानुयायी आचार्योंका मत है कि जनपद और दुर्ग इनदोनो पर साथही विपत्ति आनेपर, जनपदकी विपत्तिकी अपेक्षा दुर्गपर आई हुई विपत्ति ही अधिक भयावह होती है ॥२५॥ क्योंकि कोश और सेनाको दुर्गमें ही सुरक्षित रक्खा जा सकता है। शत्रुके द्वारा जनपदपर कोई विपत्ति आनेपर दुर्ग ही आश्रयस्थान होता है। नगर तथा जनपदों (अर्थात वहां रहनेवाले पुरुषों) की अपेक्षा दुर्ग अधिक शक्तिशाली तथा स्थायी होते हैं, तथा किसी प्रकारकी भी आपत्ति आनेपर हर तरहसे राजाके सहायक होते हैं। इनके (दुर्गोंके) मुकाबले में जानपदों (अर्थात् जनपद निवासी पुरुषों) को तो शत्रुके समान ही समझना चाहिये। क्योंकि किसी प्रकार शत्रुके वहां आजानेपर,

उसकोभी वे कर आदि देकर उसकी सहायता के लिये भी तैयार होसकते हैं। इस लिये जनपदकी विपत्तिकी अपेक्षा दुर्गकी विपत्तिको ही अधिक भयावह समझना चाहिये ॥ २६ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २७ ॥ जनपदमूला दुर्गकोशदण्डसेतुवार्तारम्भाः शौर्यं स्थैर्यं दाक्ष्यं बाहुल्यं च जानपदेषु ॥ २८ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य पाराशरोंके इस मतको ग्राह्य नहीं समझता ॥ २७ ॥ क्योंकि वह कहता है कि दुर्ग, कोश, सेना सेतुबन्ध और कृषि आदि सबही कार्य, जनपदके ऊपर ही निर्भर हैं। तथा शूरता, स्थिरता, चतुरता और संख्याकी अधिकता भी जानपदों (जनपद निवासी पुरुषों) में ही हो सकती है ॥ २८ ॥

पर्वतान्तर्द्वीपाश्च दुर्गा नाध्युष्यन्ते जनपदाभावात् ॥ २९ ॥ कर्षकप्राये तु दुर्गव्यसनमायुधीयप्राये तु जनपदे जनपदव्यसनमिति ॥ ३० ॥

यदि जनपद पर आपत्ति आनेसे उसका नाश होजाय, तो पर्वतों और नदी जलाशयों आदिके भीतर बने हुए, अत्यन्त दृढ़ दुर्गभी सूने पड़े रहते हैं। अर्थात् जनपदके न होनेपर उनका कुछभी उपयोग नहीं हो सकता। इस लिये दुर्ग व्यसन की अपेक्षा जनपद व्यसनको ही अधिक भयावह समझना चाहिये ॥ २९ ॥ परन्तु इसमें इतना विशेष है कि जैसे जनपद रहित दुर्ग सूना पड़ा रहता है, ऐसे ही दुर्ग रहित जनपदमें भी निवास होना दुष्कर ही है। इस लिये यहां इतना विवेक करना चाहिये, कि जो कृषि प्रधान प्रदेश हैं वहां दुर्गपर आपत्ति आना अधिक भयावह है। तथा जो आयुधप्रधान देश हो अर्थात् जहां सबल योद्धा ही अधिक बसते हों, वहां जनपदपर विपत्तिका आना अधिक भयावह है। क्योंकि ऐसे प्रदेशमें दुर्गकी विपत्तिका तो योद्धा जन अच्छीतरह प्रतीकार करसकते हैं ॥ ३० ॥

दुर्गकोशव्यसनयोः कोशव्यसनमिति पिशुनः ॥ ३१ ॥ कोशमूलो हि दुर्गसंस्कारो दुर्गरक्षणं च ॥ ३२ ॥ दुर्गः कोशादुपजाप्यः परेषाम् ॥ ३३ ॥

पिशुन (नारद) आचार्यका मत है कि दुर्ग और कोश इनपर साथ ही विपत्ति आनेपर दुर्गकी आपत्तिकी अपेक्षा कोशपर आईहुई विपत्ति ही अधिक भयावह होती है ॥ ३१ ॥ क्योंकि दुर्गकी मरम्मत और उनकी रक्षा, कोशपर ही निर्भर है ॥ ३२ ॥ कोशके सहारेसे शत्रुओंके दुर्गका उच्छेद भी किया जा

सकता है। तात्पर्य यह है, कि शत्रुदुर्गस्थित पुरुषों को धनादिके द्वारा अपनी ओर मिलाकर शत्रु-दुर्गका निराकरण या विध्वंस किया जा सकता है ॥ ३३ ॥

जनपदमित्रामित्रनिग्रहो देशान्तरितानामुत्साहनं दण्डबल-व्यवहारः ॥ ३४ ॥ कोशमादाय च व्यसने शक्यमपयातुं न दुर्ग-मिति ॥ ३५ ॥

कोशके द्वारा ही जनपद, मित्र तथा शत्रुका निग्रह भी किया जा सकता है। इसीके सहारे देशान्तरित (दूर देशमें रहनेवाले) राजाओं को भी अपनी सहायताके लिये प्रोत्साहित किया जासकता है। तथा सैनिक शक्तिका उपयोग भी कोशपर ही निर्भर है ॥ ३४ ॥ यदि अचानक कोई विपत्ति आपड़े तो कोशको अपने साथ लेकर भागाभी जासकता है। परन्तु ऐसी अवस्थामें दुर्गको अपने साथ नहीं लेजाया जासकता। येही बातें हैं जिनसे मालूम होता है कि दुर्गव्यसनकी अपेक्षा कोशव्यसन अधिक कष्टकर है ॥ ३५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३६ ॥ दुर्गार्पणः कोशो दण्डस्तूष्णींयुद्धं स्वपक्षनिग्रहो दण्डबलव्यवहार आसारप्रतिग्रहः परचक्राटवीप्रतिषे-धश्च ॥ ३७ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य नारदके इस मतको ग्राह्य नहीं समझता ॥ ३६ ॥ क्योंकि वह कहता है कि हमारे कोश और सेना दोनोंकी रक्षा दुर्गके द्वाराही हो सकती है। तूष्णींयुद्ध, अर्थात् गूढ़ पुरुष आदिके द्वारा चुपचाप किसीका वध कराना, अपने पक्षके कृत्य (राजद्रोही) पुरुषोंका निग्रह करना, सैनिक शक्तिकी व्यवस्था अर्थात् उसका ठीक २ उपयोग करना, मित्र सेनाका प्रतिग्रह (स्वीकार) अर्थात् उसे आश्रय देना, और शत्रु समूह तथा आटविकोंका निरा-करण करना ये सब बातें दुर्गके द्वारा ही की जासकती हैं ॥ ३७ ॥

दुर्गाभावे च कोशः परेषाम् ॥ ३८ ॥ दृश्यते हि दुर्गवता-मनुच्छित्तिरिति ॥ ३९ ॥

तथा दुर्गपर विपत्ति आनेसे उसका नाश हो जानेपर, यह भी सम्भव है कि हमारे कोशको शत्रु छीनकर लेजावें। क्योंकि उसकी रक्षाके लिये हमारे पास कोई साधन नहीं ॥ ३८ ॥ और यह देखा जाता है कि जिनके पास कोई अधिक भारी कोश नहीं है, परन्तु दुर्ग इनके पास अत्यन्त दृढ़ हैं, उनका उच्छेद नहीं किया जासकता। इस लिये कोशव्यसनकी अपेक्षा दुर्गव्यसन ही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ ३९ ॥

कोशदण्डव्यसनयोर्दण्डव्यसनमिति कौणपदन्तः ॥ ४० ॥ दण्डमूलो हि मित्रामित्रनिग्रहः परदण्डोत्साहनं स्वदण्डप्रतिग्रहश्च ॥ ४१ ॥ दण्डाभावे च ध्रुवः कोशविनाशः ॥ ४२ ॥

कौणपदन्त (भीष्म) आचार्यका मत है कि कोश और सेना दोनोंपर व्यसन (विपत्ति) आनेपर, कोश व्यसनकी अपेक्षा सेनाका व्यसनही अधिक कष्टकर होता है ॥ ४० ॥ क्योंकि शत्रु और मित्रका निग्रह सेनाके द्वारा ही होसकता है । दूसरेकी आईहुई सेनाको सेनाके द्वारा ही प्रोत्साहित किया जासकता है, अर्थात् कार्यपर लगाया जासकता है । तथा अपनी सेनाका अधिक संग्रह भी सेनाके द्वारा ही किया जासकता है । क्योंकि अपना सैनिक बल न होनेपर, शत्रुके आगे विजिगीषु कभी अपनी सेना बढ़ा नहीं सकता ॥ ४१ ॥ यदि सेनापर विपत्ति आजानेसे वह नष्ट होजाय, तो निश्चय ही कोशका नाश होजाता है । क्योंकि उसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं रहता ॥ ४२ ॥

कोशाभावे च शक्यः कुप्येन भूम्या परभूमिस्वयंग्रहेण वा दण्डः पिण्डयितुम् ॥ ४३ ॥ दण्डवता च कोशः ॥ ४४ ॥ स्वामिनश्चासन्नवृत्तित्वादमात्यसधर्मा दण्ड इति ॥ ४५ ॥

कोशके न होनेपर भी वस्त्राभरण आदिके द्वारा, भूमिके द्वारा, अथवा बलपूर्वक ग्रहण कियेहुए शत्रुके द्रव्यके द्वारा सेनाका संग्रह अच्छी तरह किया जासकता है ॥ ४३ ॥ तथा सेनाका संग्रह होनेपर कोश भी इकट्ठा किया जा सकता है ॥ ४४ ॥ सदा स्वामी (राजा) के समीप रहनेके कारण, सेनाको अमात्योंके समान ही समझना चाहिये । अर्थात् जैसे राजाके पास रहताहुआ अमात्य, उसकी हरतरहसे भलाई करता है, इसीप्रकार राजाके समीप रहती हुई सेना भी सदा राजाका उपकार करती है । इसलिये कोशव्यसनकी अपेक्षा सेनाका व्यसन अधिक भयावह है ॥ ४५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ४६ ॥ कोशमूलो हि दण्डः ॥ ४७ ॥ कोशाभावे दण्डः परं गच्छति ॥ ४८ ॥ स्वामिनं वा हन्ति ॥ ४९ ॥ सर्वाभियोगकरश्च ॥ ५० ॥ कोशो धर्मकामहेतुः ॥ ५१ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य भीष्मके इस मतको ग्राह्य नहीं समझता ॥ ४६ ॥ वह कहता है कि सेनाकी स्थिति कोशपर ही निर्भर है ॥ ४७ ॥ कोशके न होनेपर सेना, या तो शत्रुके अधीन होजाती है ॥ ४८ ॥ या अपने स्वामीका

ही वध कर डालती है ॥ ४९ ॥ सब सामन्तोंके साथ विजिगीषुका विरोध भी सेना करासकती है। क्योंकि अर्थ (धन) के देनेपर सब ही वशमें करालिये जाते हैं ॥ ५० ॥ चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष), के अङ्गभूत धर्म और कामकी प्राप्ति भी कोश (अर्थ) के ही द्वारा होसकती है। कोश ही इनका कारण है। तात्पर्य यह है:-इस लोकमें होनेवाले धर्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्गके बीचमें अर्थ बैठाहुआ है, वह इधर उधर लगेहुए धर्म और काम दोनोंको सिद्ध करता है। अर्थात् दोनोंका निर्भर केन्द्रस्थित अर्थपर ही है ॥ ५१ ॥

देशकालकार्यवशेन तु कोशदण्डयोरन्यतरः प्रमाणीभवति ॥ ५२ ॥ लब्धपालनो हि दण्डः कोशस्य ॥ ५३ ॥ कोशः कोशस्य दण्डस्य च भवति ॥ ५४ ॥ सर्वद्रव्यप्रयोजकत्वात्कोशव्यसनं गरीय इति ॥ ५५ ॥

किन्तु इनमें इतना विशेष समझना चाहिये, कि देश, काल तथा कार्यके अनुसार कोश और सेना इन दोनोंमेंसे किसी भी एकको प्रधान माना जासकता है, जिसके कि भरोसेपर विजिगीषुका निर्वाह होसके ॥ ५२ ॥ परन्तु सेनाकी प्रधानता बतलाने वाले आचार्यने पीछे जो यह बात कही है, कि सेनाके न होनेपर निश्चय ही कोशका विनाश होजायगा; यह ठीक नहीं। क्योंकि सेना केवल कोशकी ही रक्षा करसकती है ॥ ५३ ॥ परन्तु कोश, सेना और कोश दोनोंकी रक्षा करसकता है ॥ ५४ ॥ इसलिये सब द्रव्यप्रकृतियों (दुर्ग आदि) के निर्वाहका कारण होनेके कारण कोशके ऊपर आईहुई विपत्ति, अत्यन्त कष्टकर होती है ॥ ५५ ॥

दण्डमित्रव्यसनयोर्मित्रव्यसनमिति वातव्याधिः ॥ ५६ ॥ मित्रमभृतं व्यवहितं च कर्म करोति ॥ ५७ ॥ पार्ष्णिग्राहमासाररममित्रमाटविकं च प्रतिकरोति ॥ ५८ ॥ कोशदण्डभूमिश्चोपकरोति व्यसनावस्थायोगामिति ॥ ५९ ॥

वातव्याधि (उद्धव) आचार्यका मत है कि अपनी सेना और अपने मित्र दोनोंपर एकसाथ विपत्ति आनेपर अपने मित्रपर आईहुई विपत्ति, सेनाकी विपत्तिकी अपेक्षा अधिक भयावह होती है ॥ ५६ ॥ क्योंकि मित्र दूर रहताहुआ भी, बिना ही कुछ वेतन लियेहुए विजिगीषुके कार्यको करदेता है। परन्तु सेनाके लिये वेतन और निगरानी दोनोंकी जरूरत पड़ती है ॥५७॥ और मित्र, पार्ष्णिग्राहका, पार्ष्णिग्राहके मित्रवर्गका, शत्रु तथा आटविकका

प्रतीकार करनेके लिये सदा तैयार रहता है, या प्रतीकार कर सकता है ॥५८॥ कोश, सेना और भूमिके द्वारा, विजिगीषुका बराबर उपकार करता रहता है। तथा विजिगीषुकी विपत्ति अवस्थामें भी उसका साथ नहीं छोड़ता। इसलिये सेनाके व्यसनकी अपेक्षा मित्रका व्यसन अधिक कष्टकर होता है ॥ ५९ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६० ॥ दण्डवतो मित्रं मित्रभावे तिष्ठत्यमित्रो वा मित्रभावे ॥ ६१ ॥ दण्डमित्रयोस्तु साधारणे कार्ये सारतः स्वयुद्धदेशकाललाभाद्विशेषः ॥ ६२ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य वातव्याधिके इस सिद्धान्तको ग्राह्य नहीं समझता ॥ ६० ॥ वह कहता है कि जिसके पास सेनाकी अच्छी शक्ति होती है, उसके मित्र तो मित्र बने ही रहते हैं, किन्तु शत्रु भी मित्र बनजाते हैं ॥ ६१ ॥ सेना और मित्र इनके साधारण कार्योंमें, लाभके अनुसार अपने युद्ध, देश, और कालकी अपेक्षासे विशेषता समझनी चाहिये ॥ ६२ ॥

शीघ्राभियाने त्वमित्राटविकाभ्यन्तरकोपे च न मित्रं विद्यते ॥६३॥ व्यसनयौगपद्ये परवृद्धौ च मित्रमर्थयुक्तौ तिष्ठति ॥ ६४॥ प्रकृतिव्यसनसंप्रधारणमुक्तमिति ॥ ६५ ॥

कहीं शीघ्र आक्रमण करनेपर अथवा शत्रु और आटविकोंके द्वारा अभ्यन्तरकोप (विजिगीषुके अपने देश या अमात्य आदि प्रकृतियोंमें परस्परके कोप) के उत्पन्न करादेनेपर, इसका प्रतीकार करनेके लिये मित्रका कुछ भी उपयोग नहीं होसकता। ऐसे अवसरोंपर अपनी सेना ही काम देती है ॥६३॥ एकसाथ आपत्ति आजानेपर अथवा शत्रुके बढ़जानेपर मित्र ही अर्थसिद्धिमें सहायक होता है ॥६४॥ यहां तक प्रकृतिव्यसनका निर्णय करादिया गया ॥६५॥

प्रकृत्यवयवानां तु व्यसनस्य विशेषतः ।
बहुभावोऽनुरागो वा सारो वा कार्यसाधकः ॥ ६६ ॥

स्वामी अमात्य आदि प्रकृतियोंके जो अवयव होते हैं (जैसे=स्वामी प्रकृतिके अवयव राजा युवराज आदि; अमात्य प्रकृतिके मन्त्री मन्त्रपरिषद् आदि; जनपदके किसान आयुधजीवी आदि; दुर्गके धान्वन वन आदि; कोशके रत्न सार फल्गु आदि; दण्डके मौल भृत आदि; मित्रके सहज तथा कृत्रिम आदि अवयव होते हैं) उनके एककी अपेक्षा दूसरेपर विशेष व्यसनके आपड़नेपर भी, जिस प्रकृतिपर व्यसन पड़ा है, उसकी अधिक संख्या, स्वामी में भक्ति और विशेष गुणोंसे युक्त होना, ये बात कार्यको सिद्ध करने वाली होती हैं तात्पर्य यह है कि यदि शत्रुपर दुर्ग व्यसन आकर पड़ता है और

विजिगीषुपर जनपदव्यसन; तो दुर्गव्यसनसे जनपदव्यसन यद्यपि गुरुतर अर्थात् अधिक हानिकर है, फिर भी यदि जनपदकी संख्या बहुत अधिक है, और वह अपने स्वामीमें भक्ति रखनेवाला तथा गुणशाली है; और शत्रुके दुर्गोंमें यह बात नहीं है, तो विजिगीषुको शत्रुपर आक्रमण करदेना चाहिये, इस प्रकारकी अवस्था विजिगीषुके लिये अवश्य सिद्धिकर होती है ॥ ६६ ॥

द्वयोस्तु व्यसने तुल्ये विशेषो गुणतः क्षयात् ।
शेषप्रकृतिसाद्गुण्यं यदि स्यान्नाभिधेयकम् ॥ ६७ ॥

यह उपर्युक्त कथन शत्रु और विजिगीषुपर भिन्न २ व्यसन होनेके सम्बन्धमें कियागया है, यदि दोनोंपर समान ही व्यसन हो, तो एकके गुणशाली और दूसरेके गुणहीन होनेपर ही विशेषता होती है। (मानलिया जाय, कि शत्रु और विजिगीषु दोनोंपर जनपदव्यसन आपड़ा है, यदि विजिगीषुके जनपदके अवयवोंकी संख्या बहुत है, वे स्वामिभक्त और गुणशाली हैं; तथा ये बातें शत्रुके जनपदमें नहीं हैं, तो विजिगीषुको शत्रुपर आक्रमण करदेना चाहिये, उसे अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है। परन्तु जिस प्रकृतिपर व्यसन है उससे अतिरिक्त शेष सबही प्रकृति यदि अपनी २ ठीक अवस्था में होनेके कारण विशेष शक्तिशाली है, तो यह पूर्वोक्त विशेषता न समझनी चाहिये। तात्पर्य यह है कि जनपदव्यसनके तुल्य होनेपर भी और उसमें आधिक्य आदि न होनेपर भी यदि शत्रुकी अन्य प्रकृति अच्छी शक्तिशाली हैं, तो ऐसी अवस्थामें विजिगीषुको उसके ऊपर कदापि आक्रमण न करना चाहिये ॥ ६७ ॥

शेषप्रकृतिनाशस्तु यत्रैकव्यसनाद्भवेत् ।
व्यसनं तद्गरीयः स्यात्प्रधानस्येतरस्य वा ॥ ६८ ॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमेऽधिकरणे प्रकृतिव्यसनवर्गः प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ आदितः सप्तदशशततमः ॥ ११७ ॥

यदि एक प्रकृतिपर व्यसन आनेसे शेष प्रकृतियोंका भी नाश होता हो, तो चाहे वह व्यसन प्रधानप्रकृति सम्बन्धी हो, या अप्रधान प्रकृति सम्बन्धी हो, उसे सबही व्यसनोंकी अपेक्षा गुरुतर अर्थात् अत्यधिक हानिकर समझना चाहिये। विजिगीषुको आवश्यक है, कि ऐसे व्यसनोंका सबसे प्रथम प्रतीकार करे ॥ ६८ ॥

व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरणमें पहला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्यय

१२८ प्रकरण

राजा और राज्यके व्यसनोंका विचार

[पिछले प्रकरणमें, स्वामी अमात्य आदि प्रकृतियोंमेंसे दो २ के वर्गको लेकर, उनके व्यसनोंकी परस्पर गुरुता लघुताका विचार किया गया है। इस प्रकरणमें केवल स्वामी रूप प्रधान प्रकृतिको एक ओर और शेष पांच प्रकृतियोंको दूसरी ओर रखकर, इनके व्यसनोंकी गुरुता लघुताका परस्पर विचार किया जावेगा।

राजा राज्यमिति प्रकृतिसंक्षेपः ॥ १ ॥ राज्ञो ऽभ्यन्तरो बाह्यो वा कोप इति ॥ २ ॥ अहिभयादभ्यन्तरः कोपो बाह्यको-पात्पापीयान् ॥ ३ ॥

स्वामी आदि सात प्रकृतियोंका यदि संक्षेपमें कथन किया जाय, तो उनको 'राजा और राज्य' इन दो भागोंमें विभक्त किया जासकता है। (राज्यसिंहासनपर अभिषिक्त हुए २ स्वामीको ही राजा कहते हैं। इसलिये उपर्युक्त सात प्रकृतियोंमेंसे स्वामी [विजिगीषु] और मित्र इन दोनों प्रकृतियोंको 'राजा' तथा शेष अमात्य आदि पांच प्रकृतियोंको 'राज्य' समझना चाहिये) ॥ १ ॥ राजाके प्रति राज्यका दो प्रकारका कोप होसकता है, एक अभ्यन्तर और दूसरा बाह्य ॥ २ ॥ घरमें रहने वाले सांपकी तरह अभ्यन्तरकोप, बाह्य कोपकी अपेक्षा अत्यधिक अनर्थकारी होता है। (अमात्य आदिका कोप अभ्यन्तरकोप, और शत्रु आदिका कोप बाह्यकोप समझना चाहिये) ॥ ३ ॥

अन्तरमात्यकोपश्चान्तःकोपात् ॥४॥ तस्मात्कोशदण्डशक्ति-मात्मसंस्थां कुर्वीत ॥ ५ ॥

अभ्यन्तरकोप भी दो प्रकारका होता है, एक अन्तरमात्यकोप (अर्थात् जो अमात्य आदि सदा अपने पास ही रहते हैं, उनसे उठाहुआ कोप) और दूसरा बाह्यामात्य कोप (अर्थात् अपने राज्यमें ही दूसरे स्थानपर रहने वाले अमात्य आदिसे उठाहुआ कोप)। इन दोनोंमें से भी पहला अन्तरमात्य-कोप, दूसरेकी अपेक्षा अधिक भयावह होता है ॥ ४ ॥ इसलिये विजिगीषुको चाहिये, कि वह कोश और सेनाकी सम्पूर्ण शक्तिको सदा अपने ही हाथमें रक्खे ॥ ५ ॥

द्वैराज्यवैराज्ययोर्द्वैराज्यमन्योन्यपक्षद्वेषानुरागाभ्यां परस्परसंघर्षेण वा विनश्यति ॥ ६ ॥ वैराज्यं तु प्रकृतिचित्तग्रहणापेक्षि यथास्थितमन्यैर्भुज्यत इत्याचार्याः ॥ ७ ॥

राज्यके कारण राजापर आनेवाले व्यसनका निरूपण करके, अब राजाके कारण राज्यपर आनेवाले व्यसनका निरूपण किया जाता है:-द्वैराज्य (जिस राज्यके दो स्वामी हों, वह द्वैराज्य कहाता है , और वैराज्य (जिस राज्यका अपना स्वामी न हो, अर्थात् किसीका विजित राज्य), इन दोनों प्रकारके राज्योंमें से द्वैराज्य, परस्पर दोनों पक्षोंके द्वेष तथा अनुरागके कारण अथवा परस्परकी स्पर्धाके कारण शीघ्र ही नष्ट होजाता है ॥ ६ ॥ परन्तु वैराज्य, प्रजाके विचारोंके अनुसार चलताहुआ (अर्थात् प्रजाके विचारोंके आनुकूल्यकी अपेक्षा करताहुआ) तथा ठीक २ अपनी परिस्थितिमें रहताहुआ प्रजाजनोंसे भोगा जाता है । तात्पर्य यह है कि यदि विजित देशका राजा प्रजाओंके चित्तके अनुसार कार्य करता रहे, तो प्रजा बड़े सुखपूर्वक रह सकती हैं । इसलिये इन दोनों राज्योंमें से वैराज्य ही अच्छा तथा द्वैराज्य अधिक कष्टकर होता है, यह प्राचीन अनेक आचार्योंका मत है ॥ ७ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ८ ॥ पितापुत्रयोर्भ्रात्रोर्वा द्वैराज्यं तुल्ययोगक्षेममभात्यावग्रहं वर्तयेतेति ॥ ९ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य इस सिद्धान्तको मानता ॥ ८ ॥ क्योंकि द्वैराज्य, पिता पुत्र तथा दो भाइयोंके परस्पर दायभागको झगड़ा होनेपर ही होसकता है, और उनका योग क्षेम समान ही होता है, इसलिये राज्यकार्यकी चिन्ता करने वाले अमात्योंके द्वारा वह झगड़ा शीघ्र ही शान्त किया जासकता है । इसलिये द्वैराज्यमें कोई बड़ा दोष नहीं ॥ ९ ॥

वैराज्ये तु जीवतः परस्याच्छिद्य नैतन्ममेति मन्यमानः कर्शयत्यपवाहयति ॥ १० ॥ पण्यं वा करोति ॥ ११ ॥ विरक्तं वा परित्यज्यापगच्छतीति ॥ १२ ॥

परन्तु वैराज्यमें, जीवित शत्रुको ही उच्छिन्न करके, उससे बलपूर्वक उसके राज्यको छीनकर विजिगीषु 'यह मेरा नहीं है' ऐसा मानताहुआ उसको दण्ड (जुर्माना) तथा कर (टक्स) आदिके द्वारा बहुत कष्ट पहुंचाता है, दूसरी जगह लेजाता है ॥ १० ॥ अथवा अच्छा मूल्य लेकर जिस किसीके भी हाथ बेच डालता है ॥ ११ ॥ या अपनेमें प्रजाओंको विरक्त जानकर, उसके सर्वस्वको अपहरण करके फिर उसे छोड़कर चला जाता है ॥ १२ ॥

अन्धश्चलितशास्त्रो वा राजेति ॥ १३ ॥ अशास्त्रचक्षुरन्धो यत्किंचनकारी दृढाभिनिवेशी परप्रणेयो वा राज्यमन्यायेनोपहन्ति ॥ १४ ॥ चलितशास्त्रस्तु यत्र शास्त्राच्चलितमतिर्भवति शक्यानुनयो भवतीत्याचार्याः॥ १५ ॥

अन्ध (शास्त्रोंका अध्ययन न करने वाला, अर्थात् जिसने शास्त्रोंका अध्ययन नहीं किया है), तथा चलितशास्त्र (शास्त्रोंका अध्ययन करके भी जो उसके अनुकूल आचरण नहीं करता), इन दोनों राजाओंमें से कौनसा राजा, प्रजाके लिये अधिक श्रेयस्कर (कल्याण करने वाला) होता है, इस बातका अब निरूपण किया जायगा ॥ १३ ॥ इस विषयमें प्राचीन आचार्योंका मत है, कि शास्त्र रूपी चक्षुओंसे हीन होनेके कारण अंधा राजा बिना विचारे हा कार्य करने वाला, हठपूर्वक दुष्कर्म करनेके लिये आग्रह करने वाला, या दूसरोंकी बुद्धिके अनुसार कार्य करने वाला होकर अन्यायसे राज्यको नष्ट करदेता है ॥ १४ ॥ चलितशास्त्र (शास्त्रोंको जानकर भी उनपर आचरण न करने वाला) राजा तो, जिस विषयमें शास्त्रसे चलितमति होजाता है; अर्थात् शास्त्रसे विरुद्ध चलता है, बड़ी सरलतासे अनुनय विनय करके उसे उधरसे रोका जासकता है। इसलिये अन्ध राजासे चलितशास्त्र राजा उत्तम होता है ॥ १५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १६ ॥ अन्धो राजा शक्यते सहायसंपदा यत्र तत्र वा पर्यवस्थापयितुमिति ॥ १७ ॥ चलितशास्त्रस्तु शास्त्रादन्यथाभिनिविष्टबुद्धिरन्यायेन राज्यमात्मानं चोपहन्तीति ॥ १८ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य इस मतको नहीं मानता ॥ १६ ॥ क्योंकि अन्ध राजाको, अमात्य आदिकी हितकारी सहायक बुद्धिके अनुसार जिधर चाहें उधर अच्छेसे अच्छे मार्गपर सरलतासे चलाया जासकता है ॥ १७ ॥ परन्तु चलितशास्त्र राजा तो शास्त्रसे विरुद्ध करनेमें ही हठबुद्धि होकर (अर्थात् शास्त्रको जानकर भी जानबूझकर उससे विरुद्ध आचरण करनेका हठ रखने वाला होकर), अन्यायसे अपने राज्य और अपने आपको भी नष्ट कर डालता है ॥ १८ ॥

व्याधितो नवो वा राजेति ॥१९॥ व्याधितो राजा राज्योपघातममात्यमूलं प्राणाबाधं वा राज्यमूलमवाप्नोति ॥ २० ॥

नवस्तु राजा स्वधर्मानुग्रहपरिहारदानमानकर्मभिः प्रकृतिरञ्जनोपकारैश्चरतीत्याचार्याः ॥ २१ ॥

अब व्याधिग्रस्त और नये अभिषिक्त (अभिषेक कियेहुए) राजा में से कौनसा उत्तम होता है, इस बातका निरूपण किया जायगा ॥ १९ ॥ इस विषयमें प्राचीन आचार्योंका मत है, कि व्याधिग्रस्त राजा, अमात्यमूलक (राजाका भय न होनेके कारण निरंकुश होकर काम करने वाले अमात्योंके द्वारा उत्पन्न हुए २) राज्यनाशको प्राप्त होता है; अथवा राज्यमूलक (अमात्य आदि प्रकृतियोंके द्वारा होनेवाले, अपने) प्राणनाशको प्राप्त करता है। तात्पर्य यह है; कि व्याधित राजाके अमात्य आदि या तो उसके राज्यको नष्ट करदेते हैं, या उसे ही मार डालते हैं ॥ २० ॥ नया अभिषिक्त राजा तो, शास्त्रोक्त अपने राजधर्मके अनुष्ठान, कोशसे प्रजाकी सहायता करने, कर छोड़ने, दान देने, सत्कार करने और अन्य प्रजाहितकारी कर्म (बाग कुंए आदि बनवाना) करनेसे, प्रजाओंमें अनुराग उत्पन्न करने वाले उपायोंके द्वारा व्यवहार करता है : इसलिये व्याधिग्रस्त और नये राजाओंमें से, नया राजा उत्तम समझा जाता है ॥ २१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २२ ॥ व्याधितो राजा यथाप्रवृत्तं राजप्रणिधिमनुवर्तयति ॥ २३ ॥ नवस्तु राजा बलावर्जितं ममेदं राज्यमिति यथेष्टमनवग्रहश्चरति ॥ २४ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य इस मतको नहीं मानता ॥ २२ ॥ क्योंकि व्याधिग्रस्त राजा, पहिले क्रमके अनुसार ही राजकीय व्यापारोंको बराबर चलाता रहता है ॥ २३ ॥ किन्तु नया राजा अपने बलसे प्राप्त कियेहुए राज्य को, इसका मैंने स्वयं संग्रह किया है, ऐसा मानताहुआ इच्छानुसार स्वतन्त्रता के साथ भोगता है। अर्थात् उस राज्यके साथ मनमाना बर्ताव करता है ॥ २४ ॥

सामुत्थयिकैरवगृहीतो वा राज्योपघातं मर्षयति ॥ २५ ॥ प्रकृतिष्वरूढः सुखः समुच्छेत्तुं भवति ॥ २६ ॥ व्याधिते विशेषः पापरोग्यपापरोगी च ॥ २७ ॥

अथवा जब अपनी उन्नति करने वाले साथी राजाओंसे घेरा जाता है, तो राज्यके नाशको सहन करलेता है, अर्थात् उसका प्रतीकार नहीं करसकता, और उन राजाओंके द्वारा उस राज्यको नष्ट होता देख, उसकी उपेक्षा करदेता है ॥ २५ ॥ तथा प्रजाओंमें स्नेह न होनेके कारण, शत्रुओंके द्वारा

अनायास ही उखाड़ दियाजाता है, अर्थात् नष्ट करादिया जाता है। ('सुखः समुच्छेत्तुं' इसके स्थानपर किसी २ पुस्तकमें 'सुखमुच्छेत्तुं' भी पाठ है। अर्थमें कोई भेद नहीं) ॥ २६ ॥ इसलिये नये राजाकी अपेक्षा व्याधिग्रस्त राजा ही उत्तम होता है। परन्तु यह विशेषता सामान्य व्याधिसे ग्रस्त राजामें ही समझनी चाहिये। क्योंकि व्याधिग्रस्त राजा दो प्रकारके होसकते हैं, एक पापरोगी (कुष्ठ [कोढ़] आदिके रोगीको पापरोगी कहते हैं) और दूसरे अपापरोगी (साधारण व्याधिसे ग्रस्त राजा)। इनमें से अपापरोगी राजामें ही यह उपर्युक्त विशेषता समझनी चाहिये ॥ २७ ॥

नवे ऽप्यभिजातो ऽनभिजात इति ॥ २८ ॥ दुर्बलोऽभिजातो बलवाननभिजातो राजेति ॥ २९ ॥ दुर्बलस्याभिजातस्योपजापं दौर्बल्यापेक्षाः प्रकृतयः कृच्छ्रेणोपगच्छन्ति ॥ ३० ॥ बलवतश्चानभिजातस्य बलापेक्षाः सुखेनेत्याचार्याः ॥ ३१ ॥

नए राजाओंमें भी उच्च कुलका राजा उत्तम होता है या नीच कुलका? ॥ २८ ॥ तथा इनमें से भी उच्च कुलका दुर्बल राजा उत्तम होता है, या नीच कुलका बलवान् राजा? इसका अब विचार किया जायगा ॥ २९ ॥ इस विषयमें प्राचीन आचार्योंका मत है, कि उच्चकुलोत्पन्न दुर्बल राजाके अमात्य आदि प्रकृतिजन तथा प्रजाजन, उसकी दुर्बलताके कारण बड़ी कठिनतासे उसके वशमें होते हैं। अर्थात् उन्हें अनुकूल बनानेके लिये, दुर्बल होनेके कारण राजाको बड़ी कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं ॥ ३० ॥ परन्तु नीचकुलोत्पन्न भी बलवान् राजाके बलके दबदबेके कारण बड़ी सरलतासे ही सम्पूर्ण अमात्य आदि प्रकृतिजन, उसकी अनुकूलताको स्वीकार करलेते हैं, अर्थात् शीघ्र ही उसके अनुरागी बनजाते हैं, इसलिये दुर्बल अभिजात राजाकी अपेक्षा बलवान् अनभिजात राजाको ही उत्तम समझना चाहिये ॥ ३१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३२ ॥ दुर्बलमभिजातं प्रकृतयः स्वयमुपनमन्ति, जात्यमैश्वर्यप्रकृतिरनुवर्तत इति ॥ ३३ ॥ बलवतश्चानभिजातस्योपजापं विसंवादयन्ति अनुरागे सार्वगुण्यमिति ॥ ३४ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य इस मतको नहीं मानता ॥ ३२ ॥ क्योंकि जो राजा उच्च कुलोत्पन्न हो, वह चाहे दुर्बल भी हो, प्रकृतिजन अपने आपही उसके आगे झुक जाते हैं, अर्थात् स्वयं ही उसका आश्रय लेलेते हैं। क्योंकि ऐश्वर्यकी योग्यता उच्चकुलोत्पन्न राजाका ही अनुवर्तन करती है। तात्पर्य

यह है, कि उच्च कुलका राजा स्वभावसे ही ऐश्वर्यशाली होता है ॥ ३३ ॥ परन्तु बलवान् भी नीचकुलोत्पन्न राजाकी अनुकूलताको, उसकी प्रजाएं जल्दी ही विफल करदेती हैं। तात्पर्य यह है, कि बलवान् भी नीचकुलोत्पन्न राजाकी प्रजाएं एकवार उसकी अनुकूलताको स्वीकार करके भी, फिर अवसर पाकर जल्दी ही उससे बिगड़ खड़ी होती हैं। क्योंकि उस राजामें प्रजाओंका अनुराग नहीं होता, और अनुरागका होना ही सब गुणोंकी विद्यमानताका द्योतक है। (किसी २ पुस्तकमें यह सूत्र 'अनुयोगे साद्गुण्यम्' इसप्रकारका है। परन्तु यह पाठ 'नयचन्द्रिका' व्याख्याके विरुद्ध है) ॥ ३४ ॥

प्रयासवधात्सस्यवधो मुष्टिवधात्पापीयन् ॥ ३५ ॥ निराजीवत्वादवृष्टिरतिवृष्टित इति ॥ ३६ ॥

बीज न बोनेके कारण जो अन्नकी अप्राप्ति होती है, उसकी अपेक्षा बीज बोनेके बाद तैयार हुए २ अन्नका नाश होजाना अधिक हानिकर होता है, क्योंकि उसके तैयार करनेमें जितना परिश्रम हुआ है, वह सब व्यर्थ ही चला जाता है ॥ ३५ ॥ इसी प्रकार अधिक वृष्टि होनेकी अपेक्षा, वृष्टिका न होना अधिक हानिकर होता है; क्योंकि प्राय: हर तरहकी जीविकाका प्रबन्ध जलके ही अधीन होता है, और जलके न होनेसे उसका उच्छेद होजाता है ॥ ३६ ॥

द्वयोर्द्वयोर्व्यसनयोः प्रकृतीनां बलाबलम् ।
पारम्पर्यक्रमेणोक्तं याने स्थाने च कारणम् ॥ ३७ ॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमे ऽधिकरणे राजराज्ययोर्व्यसनचिन्ता द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ आदितो ऽष्टादशशतः ॥ ११८ ॥

इसप्रकार दो दो प्रकृतियोंके व्यसनके पारस्परिक बलाबलको, क्रमपूर्वक यान और स्थानमें कारण बताया गया। इसका विवेक इस तरह समझना चाहिये:—विजिगीषु और शत्रुपर व्यसन होनेपर, यदि शत्रुकी अपेक्षा विजिगीषुपर लघुव्यसन हो, तो विजिगीषुको शत्रुपर यान अर्थात् आक्रमण करदेना चाहिये। यदि अवस्था इसके विरुद्ध हो, तो विजिगीषुको स्थानका ही अवलम्ब करना चाहिये; अर्थात् आक्रमण न करना चाहिये ॥ ३७ ॥

व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त।

तीसरा अध्याय

१२९ प्रकरण

पुरुषव्यसनवर्ग ।

{ सर्व साधारण पुरुषोंमें जो व्यसन होते हैं, उनसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंके समूहका इस अधिकरणमें निरूपण किया जायगा ।

अविद्याविनयः पुरुषव्यसनहेतुः ॥ १ ॥ अविनीतो हि व्यसनदोषान्न पश्यति ॥ २ ॥ तानुपदेक्ष्यामः ॥ ३ ॥ कोपजस्त्रिवर्गः ॥ ४ ॥ कामजश्चतुर्वर्गः ॥ ५ ॥

आन्वीक्षिकी आदि विद्याओंकी शिक्षा प्राप्त न करनेसे ही पुरुषोंमें व्यसन उत्पन्न होजाते हैं । अर्थात् शिक्षा ग्रहण न करना, पुरुषके व्यसनोंका हेतु होता है ॥ १ ॥ क्योंकि अशिक्षित पुरुष, व्यसनोंसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंको नहीं समझता ॥ २ ॥ अब इस प्रकरणमें उन व्यसनों तथा व्यसनसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंका ही निरूपण किया जायगा ॥ ३ ॥ कोपसे उत्पन्न होनेवाले तीन दोष होते हैं, इसलिये उन्हें त्रिवर्ग कहते हैं । (इनका नाम वाक्पारुष्य, अर्थदूषण और अर्थपारुष्य हैं, इनका विवरण यथास्थान किया जायगा) ॥ ४ ॥ इसी प्रकार कामसे उत्पन्न होनेवाले चार दोष होते हैं, इसलिये इन्हें चतुर्वर्ग कहते हैं । (इनका नाम मृगया द्यूत स्त्री और पान हैं) ॥ ५ ॥

तयोः कोपो गरीयान् ॥ ६ ॥ सर्वत्र हि कोपश्चरति ॥ ७ ॥ प्रायशश्च कोपवशा राजानः प्रकृतिकोपैर्हताः श्रूयन्ते ॥ ८ ॥ कामवशाः क्षयव्यसननिमित्तमतिव्याधिभिरिति ॥ ९ ॥

दोषोंको उत्पन्न करने वाले काम और क्रोधमें से क्रोधही अधिक बलवान् होता है ॥ ६ ॥ क्योंकि सब जगह क्रोधका ही दौरदौरा है । तात्पर्य यह है कि क्रोध प्रत्येक विषयमें किया जासकता है, और कामके स्त्री आदि नियत ही विषय है । इसलिये सार्वत्रिक होनेसे, कामकी अपेक्षा क्रोध ही अधिक बलवान् है ॥ ७ ॥ प्रायः कोपसे वशीभूत हुए २ राजा, अमात्य आदि प्रकृतियोंके कोपसे मारे जातेहुए सुनेगए हैं ॥ ८ ॥ तथा कामके वशीभूत हुए २ राजा, सेना तथा कोश आदिके नष्ट होजानेके कारण, या शारीरिक शक्तिके ह्रास होजानेके कारण, शत्रुओंके तथा व्याधियोंके द्वारा नष्ट किये गये हुए सुनेगये हैं । इसलिये भी कोपको ही अधिक बलवान् कहना चाहिये,

क्योंकि कुपित राजाको उसके अमात्य आदि ही कुपित होकर नष्ट करडालते हैं; और कामी राजा तो अपने बाहरके शत्रु या व्याधियोंसे ही नष्ट होता है ॥ ९ ॥

नेति भारद्वाजः ॥ १० ॥ सत्पुरुषाचारः कोपो वैरायतन-मवज्ञातवधो भीतमनुष्यता च ॥ ११ ॥ नित्यश्च कोपेन संबन्धः पापप्रतिषेधार्थः ॥ १२ ॥

परन्तु इस उपर्युक्त मतको भारद्वाज अर्थात् द्रोणाचार्य मान्य नहीं समझते। तात्पर्य यह है कि वे काम और क्रोधको दोष नहीं मानते ॥ १० ॥ क्योंकि कोप करना, श्रेष्ठ पुरुषोंका ही आचार अर्थात् धर्म है। कोप करनेसे शत्रुओंका प्रतीकार होता है; दूसरेसे कियेहुए तिरस्कारका भी बदला इसीके द्वारा लिया जाता है; और मनुष्य क्रोधी पुरुषकी बुराई करनेसे डरते रहते हैं ॥ ११ ॥ तथा कोई भी पुरुष सदाके लिये क्रोधको नहीं छोड़ सकता, क्योंकि क्रोधके ही द्वारा पापी पुरुषोंका निग्रह किया जाकता है ॥ १२ ॥

कामः सिद्धिलाभः, सान्त्वं त्यागशीलता संप्रियभावश्च ॥ १३ ॥ नित्यश्च कामेन संबन्धः कृतकर्मणः फलोपभोगार्थं इति ॥ १४ ॥

इसी प्रकार काम भी सिद्धिलाभ अर्थात् सुखोंका हेतु होता है। और इसीके कारण पुरुष यथार्थ बोलने वाला अर्थात् मधुरभाषी, त्यागी, तथा सबसे प्रियभाव रखने वाला अर्थात् सौम्य होजाता है ॥ १३ ॥ तथा अपने कियेहुए कार्योंका फलोपभोग करनेके लिये, प्रत्येक पुरुषका कामके साथ सम्बन्ध होना अवर्जनीय है। तात्पर्य यह है, कि अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये, कामका अवलम्बन करना प्रत्येक पुरुषके लिये अवश्यम्भावी है ॥ १४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १५ ॥ द्वेष्यता शत्रुवेदनं दुःखासङ्गश्च कोपः ॥ १६ ॥ परिभवो द्रव्यनाशः पाटच्चरद्यूतकारलुब्धकगाय-कवादकैश्चानर्थ्यैः संयोगः कामः ॥ १७ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य भारद्वाजके इस उपर्युक्त मतको युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ १५ ॥ क्योंकि कोप और काम कभी गुण नहीं होसकते, वे अनेक महान अनर्थोंके उत्पन्न करने वाले हैं; कोपके कारण मनुष्य सबका द्वेषी होजाता है, अर्थात् सब उससे द्वेष या उसकी निन्दा करने लगते हैं;

उसके अनेक शत्रु उत्पन्न होजाते हैं; और सदा ही उसके पीछे दुःख लगे रहते हैं। (किसी २ पुस्तकमें 'शत्रुवेदनमनर्थस्य संयोगो दुःखासङ्गश्च' इस प्रकारका सूत्रपाठ है। परन्तु प्राचीन व्याख्याकारोंने 'अनर्थस्य संयोगः' इस पदको सूत्रका अङ्ग नहीं माना॥ १६ ॥ इसी प्रकार कामके कारण भी पुरुषका सर्वत्र तिरस्कार होता है; द्रव्यों (धन आदि) का नाश होजाता है; तथा चोर जुआरी, शिकारी और गाने बजाने वाले अनर्थकारी व्यक्तियोंके साथ सदा सम्बन्ध जोड़ना पड़ता है। (कामसे उत्पन्न होनेके कारण ही इनको यहां 'काम' शब्दसे कहागया है) ॥ १७ ॥

तयोः परिभवाद्द्वेष्यता गरीयसी ॥ १८ ॥ परिभूतः स्वैः परैश्चापगृह्यते, द्वेष्यः समुच्छिद्यत इति ॥ १९ ॥ द्रव्यनाशाच्छत्रुवेदनं गरीयः ॥ २० ॥ द्रव्यनाशः कोशाबाधकः ॥ २१ ॥ शत्रुवेदनं प्राणाबाधकमिति ॥ २२ ॥

कामसे उत्पन्न होनेवाले और क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंमें से कामजन्य परिभव दोषकी अपेक्षा क्रोधजन्य द्वेष्यता रूप दोष अधिक हानिकर होता है ॥ १८ ॥ क्योंकि तिरस्कृत पुरुष, अपने और पराये आदमियोंके द्वारा कभी न कभी अनुगामी बना ही लिया जाता है परन्तु जो सबका द्वेष्य होता है, अर्थात् जिससे सब ही द्वेष करते हैं, उसका तो सर्वथा उच्छेद ही करदिया जाता है। इसलिये तिरस्कृत होनेकी अपेक्षा द्वेष्य होना अधिक कष्टकर है ॥ १९ ॥ द्रव्यनाश होजानेकी अपेक्षा शत्रुओंका पैदा होजाना अधिक हानिकर होता है ॥ २० ॥ क्योंकि द्रव्यका नाश होना केवल कोशमें ही बाधा पहुंचाने वाला होता है, उसमें प्राणोंका भय नहीं; ॥ २१ ॥ परन्तु शत्रुओंका पैदा होजाना, प्राणोंको भी संकटमें डालने वाला होता है ॥ २२ ॥

अनर्थ्यसंयोगाद्दुःखसंयोगो गरीयान् ॥ २३ ॥ अनर्थसंयोगो मुहूर्तप्रीतिकरो दीर्घक्लेशकरो दुःखानामासङ्ग इति ॥ २४ ॥ तस्मात्कोपो गरीयान् ॥ २५ ॥

चोर जुआरी आदि अनर्थकारी व्यक्तियोंके साथ सम्बन्ध होनेकी अपेक्षा, दुःखोंके साथ सम्बन्ध होना अधिक कष्टकर होता है ॥ २३ ॥ क्योंकि चोर जुआरी आदिके साथ सम्बन्ध, परिणाममें दुःखदायी होनेपर भी थोड़े समयके लिये अवश्य ही प्रसन्नताको उत्पन्न करने वाला होता है; किन्तु दुःखोंके साथ सम्बन्ध, लगातार क्लेश ही क्लेश पहुंचाता है। (किसी २

पुस्तकमें 'मुहूर्तप्रीतिकरः' के स्थानपर 'मुहूर्तप्रतीकार': पाठ है । इसका अर्थ करना चाहियेः—अनर्थ्य पुरुषोंके साथ सम्बन्धका शीघ्र ही प्रतीकार किया जासकता है, परन्तु दुःखोंका संसर्ग, चिरकाल तक क्लेशकर होता है) ॥ २४ ॥ इसलिये कामजन्य दोषोंकी अपेक्षा कोपजन्य दोषोंके अधिक कष्टकर होनेसे, कामके मुकाबलेमें क्रोधको ही अधिक महत्त्व देना चाहिये । अर्थात् कामकी अपेक्षा क्रोधसे अधिक हानि होसकती है, इसलिये क्रोधसे बहुत बचकर रहना चाहिये ॥ २५ ॥

वाक्पारुष्यमर्थदूषणं दण्डपारुष्यमिति ॥ २६ ॥ वाक्पारुष्यार्थदूषणयोर्वाक्पारुष्यं गरीय इति विशालाक्षः ॥ २७ ॥ परुषमुक्तो हि तेजस्वी तेजसा प्रत्यारोहति ॥ २८ ॥ दुरुक्तशल्यं हृदि निखातं तेजःसंदीपनमिन्द्रियोपतापि चेति ॥ २९ ॥

पहिले कहेहुए कोपजन्य त्रिवर्गके गुरु लघुभावका अब निरूपण करते हैं;—कोपज त्रिवर्ग इस प्रकार हैः—वाक्पारुष्य, अर्थदूषण और दण्डपारुष्य ॥ २६ ॥ आचार्य विशालाक्षका मत है, कि वाक्पारुष्य और अर्थदूषण इन दोनोंमें से वाक्पारुष्य ही बलवान् है ॥ २७ ॥ क्योंकि अपने तिरस्कारको सहन न करने वाले किसी पुरुषके साथ कठोर वाक्योंका व्यवहार किया जानेपर वह अवश्य ही कठोरताका व्यवहार करने वाले पुरुषपर अपने तेजके द्वारा आक्रमण करता है ॥ २८ ॥ दुर्वचन (कठोर वाक्य) रूपी शल्य (बाण=तीर), हृदयमें गड़ाहुआ, आन्तरिक तेजको दीप्त करने वाला और इन्द्रियोंको संताप पहुंचाने वाला होता है । इसलिये अर्थदूषणकी अपेक्षा वाक्पारुष्यको ही अधिक बलवान् अर्थात् कष्टकर या हानिकर समझना चाहिये ॥ २९ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३० ॥ अर्थपूजा वाक्छल्यमपहन्ति, वृत्तिविलोपस्त्वर्थदूषणम् ॥ ३१ ॥ अदानमादानं विनाशः परित्यागो वार्थस्येत्यर्थदूषणम् ॥ ३२ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य विशालाक्षके इस मतको ग्राह्य नहीं समझता ॥ ३० ॥ वह कहता है कि अर्थके द्वारा कियाहुआ सत्कार, दुर्वचन रूपी शल्यको नष्ट करदेता है । परन्तु वाणी द्वारा कीहुई पूजा अर्थदूषणको नहीं हटा सकती । किसीकी जीविकाका मारना ही अर्थदूषण कहाता है । प्रियवचन बोलनेपर भी जीविकाका विघात पूरा नहीं किया जासकता ॥ ३१ ॥ अर्थदूषण चार प्रकारका होता है, अदान (कार्य करनेपर भी कर्मचारीका वेतन न

देना), आदान (दण्ड आदिके द्वारा धन ग्रहण करना), विनाश (देशको पीड़ा पहुंचाना), और अर्थका परित्याग (अर्थात् रक्षा करने योग्य अर्थकी रक्षा न करना) । इन पूर्वोक्त युक्तियोंसे वाक्पारुष्यकी अपेक्षा अर्थदूषणको ही बलवान् समझना चाहिये ॥ ३२ ॥

अर्थदूषणदण्डपारुष्ययोरर्थदूषणं गरीय इति पाराशराः॥३३॥ अर्थमूलौ धर्मकामौ ॥ ३४ ॥ अर्थप्रतिबन्धश्च लोको वर्तते ॥ ३५ ॥ तस्योपघातो गरीयानिति ॥ ३६ ॥

पाराशर (पराशरके अनुयायी) आचार्योंका सिद्धान्त है, कि अर्थदूषण और दण्डपारुष्यमें से अर्थदूषण ही बलवान् होता है ॥ ३३ ॥ क्योंकि धर्म और काम दोनों अर्थमूलक ही होते हैं । अर्थात् इन दोनोंका अर्थपर ही निर्भर है ॥ ३४ ॥ लोकनिर्वाह भी अर्थके ही कारण हो सकता है; तात्पर्य यह है, कि संसारमें हरतरहके व्यवहारके लिये धनकी बड़ी आवश्यकता रहती है ॥ ३५ ॥ इसलिये उसका (अर्थका), उपघात (दूषण) होना अत्यन्त कष्टकर या आपज्जनक होता है । अतएव अर्थदूषण और दण्डपारुष्यमें अर्थदूषणको ही बड़ा समझना चाहिये ॥ ३६ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३७ ॥ सुमहताप्यर्थेन न कश्चन शरीरविनाशमिच्छेत् ॥ ३८ ॥ दण्डपारुष्याच्च तमेव दोषमन्येभ्यः प्राप्नोति ॥ ३९ ॥ इति कोपजस्त्रिवर्गः ॥ ४० ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य, पाराशर आचार्योंके इस मतको युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ ३७ ॥ वह कहता है कि महान अर्थ राशिकी प्राप्तिके द्वारा भी कोई पुरुष अपने शरीरका नाश नहीं चाहता अर्थात् अत्यधिक धन प्राप्तिके बदलेमें अपने आपको कोई नष्ट नहीं करना चाहता ॥ ३८ ॥ प्रत्युत दण्डपारुष्यसे अपने आपको बचानेके लिये पुरुष उतना धन अवश्य दे सकता है । इसलिये अर्थदूषणकी अपेक्षा दण्डपारुष्यको ही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ ३९ ॥ यहां तक कोपजन्य त्रिवर्गका निरूपण करदिया गया ॥ ४० ॥

कामजस्तु ॥ ४१ ॥ मृगया द्यूतं स्त्रियः पानमिति चतुर्वर्गः ॥ ४२ ॥ तस्य मृगयाद्यूतयोर्मृगया गरीयसीति पिशुनः ॥४३॥

अब इसके आगे कामजन्य चतुर्वर्गका निरूपण किया जावेगा ॥४१॥ कामजन्य चतुर्वर्ग इसप्रकार है:—मृगया (शिकार खेलना), द्यूत (जुआ), स्त्री, और पान (शराब आदिका पीना) ॥ ४२ ॥ कामजन्य इस चतुर्वर्गके

मृगया और द्यूत नामक दोषोंमें से मृगया दोष ही अधिक कष्टकर होता है; यह पिशुन अर्थात् नारद आचार्यका मत है ॥ ४३ ॥

स्तेनामित्रव्यालदावप्रस्खलनभयदिङ्मोहाः क्षुत्पिपासे च प्राणाबाधस्तस्याम् ॥ ४४ ॥ द्यूते तु जितमेवाक्षविदुषा यथा जयत्सेनदुर्योधनाभ्यामिति ॥ ४५ ॥

क्योंकि मृगयामें; चोर, शत्रु, हिंसक जानवर, जंगलकी आग तथा गिरने (चलनेमें कभी २ असावधानीके कारण गिरजाना=प्रस्खलन) आदिसे सदा ही भय रहता है, दिग्भ्रम (दिशाओंकी वास्तविक परिस्थितिको भूलकर भटकते फिरना), तथा भूख प्यास बहुत तंग करती है, और कभी २ प्राणोंपर भी आबनती है ॥ ४४ ॥ परन्तु जुएमें जो बढ़िया खिलाड़ी होता है, वह जीत ही लेता है, जैसे जयत्सेन और दुर्योधनने नल और युधिष्ठिरको जुएमें जीत ही लिया था। तात्पर्य यह है, कि जुएमें बढ़िया खिलाड़ीकी जीत होही जाती है। इसलिये जुएकी अपेक्षा शिकारमें बहुत अधिक कष्ट होते हैं ॥ ४५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ४५ ॥ तयोरप्यन्यतरपराजयोऽस्तीति नलयुधिष्ठिराभ्यां व्याख्यातम् ॥ ४७ ॥ तदेव विजितद्रव्यमामिषं वैरबन्धश्च ॥ ४८ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य पिशुनके इस सिद्धान्तको युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ ४६ ॥ क्योंकि जिस तरह मृगयामें अनेक दोष हैं, इसी तरह द्यूतमें भी दोषोंकी कमी नहीं है, जुआ खेलने वालोंमें भी एकका पराजय अवश्य ही होता है, जैसे नल और युधिष्ठिर जुएमें हार गये थे। तात्पर्य यह है, कि दोनोंमें से जैसे एकका जय होता है, वैसे ही दूसरेका पराजय भी होता है, परन्तु यह नियत नहीं कि इसीका जय और इसीका पराजय होगा, इसलिये द्यूत भी कष्टकर ही होता है ॥ ४७ ॥ तथा जुएमें जीताहुआ धन, पराये मांसके समान होता है; और जिसका धन जीत लिया जाता है, वह जीतने वालेसे द्वेष भी करने लगता है ॥ ४८ ॥

सतोऽर्थस्य विप्रतिपत्तिरसतश्चार्जनमप्रतिभुक्तनाशो मूत्रपुरीषधारणबुभुक्षादिभिश्च व्याधिलाभ इति द्यूतदोषाः ॥ ४९ ॥

तथा पहिलेसे धर्मपूर्वक कमाये हुए धनका बुरे स्थानमें उपयोग होता है, तथा जुएसे अधर्म पूर्वक नये धनका संग्रह किया जाता है, संग्रह किया हुआ भी वह धन बिना भोग किये ही नष्ट होजाता है, अर्थात् जुएमें फिर

हार दिया जाता है। पेशाब तथा पखाने आदिके रोकने और भूख आदिके रोकनेसे बीमारी भी होजाती है। तात्पर्य यह है कि जुआरी, पेशाब पखानेको रोकेहुए तथा भूख आदिको भी रोकेहुए, खलनेके कारण लगातार बैठे रहते हैं, इस प्रकार करनेसे उन्हें अनेक बीमारियां होजाती हैं, यह सब जुएका ही दोष है। इसलिये जुएको भी कम कष्ट देने वाला न समझना चाहिये ॥ ४९ ॥

मृगयायां तु व्यायामः श्लेष्मपित्तमेदःस्वेदनाशश्चले स्थिते च काये लक्ष्यपरिचयः कोपभयस्थानेहितेषु च मृगाणां चित्तज्ञानमनित्ययानं चेति ॥ ५० ॥

प्रत्युत मृगया में ये निम्नलिखित गुण भी होते हैं:—व्यायाम (शारीरिक परिश्रम), कफ और पित्त का नाश, मांस का न बढ़ना, पसीना निकलने से देह का हलका होजाना, चलते हुए तथा स्थिर शरीर पर लक्ष्य (निशाना मारने) का अभ्यास होना, क्रोध तथा भय के कारण होनेवाली भिन्न २ प्रकार की चेष्टाओं में जंगली जानवरों के चित्त का ज्ञान होना और किसी २ विशेष ऋतु में ही मृगया का होना, ये सब ऐसे गुण हैं जिनका द्यूत में होना सम्भव नहीं, इस लिये मृगया की अपेक्षा द्यूत को ही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥५०॥

द्यूतस्त्रीव्यसनयोः कितवव्यसनमिति कौणपदन्तः ॥ ५१ ॥ सातत्येन हि निशि प्रदीपे मातरि च मृतायां दीव्यत्येव कितवः ॥ ५२ ॥ कृच्छ्रे च प्रतिपृष्टः कुप्यति ॥ ५३ ॥

कौणपदन्त अर्थात् भीष्म आचार्य का मत है कि द्यूतव्यसन और स्त्रीव्यसन में से द्यूतव्यसन ही अधिक कष्टकर होता है ॥ ५१ ॥ क्योंकि जुआरी रात में भी दीपक का प्रकाश करके तथा अपनी माता के मरजाने पर भी बराबर जुआ खेलता ही रहता है (इसका तात्पर्य यह है कि जब स्वाभाविक सूर्य का प्रकाश नहीं रहता, तब भी जुआरी दीवे आदि के कृत्रिम प्रकाश में जुआ खेलता है, और एक ओर माता के मरजाने पर भी उसकी और्ध्वदैहिक क्रिया की कुछ पर्वाह न करके बराबर जुआ खेलता रहता है, यह व्यसन बहुत ही बुरा होता है) ॥ ५२ ॥ तथा किसी तरह का कार्यसंकट आपड़ने पर उससे कोई कुछ पूछता है तो वह कुपित होने लगता है ॥ ५३ ॥

स्त्रीव्यसनेषु तु स्नानप्रतिकर्मभोजनभूमिषु भवत्येव धर्मार्थपरिप्रश्नः ॥५४॥ शक्या च स्त्री राजहिते नियोक्तुम् ॥५५॥ उपांशु-

दण्डेन व्याधिना वा व्यावर्तयितुमवस्रावयितुं वेति ॥ ५६ ॥

स्त्रीव्यसनों में तो, स्त्रीव्यसनी राजा से स्नानभूमि में, वस्त्र आदि धारण करने के समय तथा भोजन आदि के समय धर्म अर्थ के सम्बन्ध में पूछा या बतलाया जासकता है ॥ ५४ ॥ तथा जिस स्त्री पर राजा आसक्त हो उसको भी राजा के कल्याणकारी व्यवहार में अमात्य आदि के द्वारा लगाया जा सकता है ॥ ५५ ॥ अथवा यदि वह स्त्री मन्त्रियों के कथनानुसार राजा के कल्याण की ओर ध्यान न देवे, तो उसे उपांशुदण्ड से (चुपचाप छिपकर मार डालने से) नष्ट किया जा सकता है । यदि उसे नष्ट भी न किया जा सके तो सविष औषधि आदि देने के कारण उत्पन हुई २ व्याधि के बहाने से उसे और किसी स्थान पर लेजाया जा सकता है । तात्पर्य यह है कि स्त्रीव्यसन होने पर भी उसका उक्त रीति से परिहार हो सकता है । इसलिये स्त्रीव्यसन की अपेक्षा द्यूतव्यसन को ही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ ५६॥

नेति कौटल्यः ॥ ५७ ॥ सप्रत्यादेयं द्यूतं निष्प्रत्यादेयं स्त्रीव्यसनमदर्शनं कार्यनिर्वेदः कालातिपातनादनर्थधर्मलोपश्च तन्त्रदौर्बल्यं पानानुबन्धश्चेति ॥ ५८ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य कौणपदन्त (भीष्म) के इस सिद्धान्त को युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ ५७ ॥ क्योंकि जुए में जो चीज हार दी जावे, वह फिर जुएके द्वारा जीती भी जासकती है, परन्तु स्त्रीव्यसनमें ऐसा नहीं होसकता, वहां तो जो चीज एक बार हाथसे निकलगई, बस वह निकली ही समझनी चाहिये । इसके अतिरिक्त स्त्रीव्यसनी राजाका मन्त्रियोंको दर्शनभी नहीं होता; और इसी कारणसे फिर उन लोगोंका कार्य करनेमें उत्साह भी नहीं रहता; इसी प्रकार कालान्तरमें जाकर अर्थ और धर्म दोनोंकी हानि होती है; राज्यतन्त्र दुर्बल होजाता है; और स्त्रीव्यसनमें स्त्रीरमण आदिके सहकारी मद्यपानका व्यसन भी लगजाता है । इसलिये द्यूतव्यसनकी अपेक्षा स्त्रीव्यसनको ही अधिक हानिकर समझना चाहिये ॥५८॥

स्त्रीपानव्यसनयोः स्त्रीव्यसनमिति वातव्याधिः ॥ ५९ ॥ स्त्रीषु हि बालिश्यमनेकविधं निशान्तप्रणिधौ व्याख्यातम् ॥६०॥ पाने तु शब्दादीनामिन्द्रियार्थानामुपभोगः प्रीतिदानं परिजनपूजनं कर्मश्रमवधश्चेति ॥ ६१ ॥

वातव्याधि (उद्धव) आचार्यका मत है, कि स्त्री-व्यसन और मद्यपानव्यसनमेंसे स्त्री-व्यसनही अधिक कष्टकर होता है ॥ ५९ ॥ क्योंकि स्त्रियोंमें

बहुत तरहकी मूर्खताएं होती हैं, वे अपने भर्त्ताओंका वध तक करनेके लिये तरह २ के उपायोंकी रचना कर डालती हैं, इत्यादि अनेक स्त्रीजन्य बाधाओंका व्याख्यान निशान्त प्रणिधि (अधि. १, अध्या. २०, प्रक. १७) नामक प्रकरणमें अच्छी तरह कर दिया गया है। मद्यपानमें इन आपत्तियोंकी सम्भावना नहीं होती ॥६०॥ मद्यपानमें तो इन्द्रियोंके विषय-भूत शब्द आदिका उपभोग ही किया जाता है। तात्पर्य यह है:—मद्यपान करनेसे चित्तकी एकाग्रता होजानेके कारण इन्द्रियोंके शब्द गन्ध रस आदि अर्थोंका अच्छा अनुभव होता है; प्रीतिदान (प्रेमका विस्तार), परिजनोंका सत्कार और अधिक कार्य करनेसे उत्पन्न हुई २ थकावट दूर होजाती है। इसलिये मद्यपान व्यसनकी अपेक्षा स्त्रीव्यसनको अधिक दुःखदायी समझना चाहिये ॥ ६१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६२ ॥ स्त्रीव्यसने भवत्यपत्योत्पत्तिरात्मरक्षणं चान्तर्दारेषु विपर्ययो वा बाह्येष्वगम्येषु सर्वोच्छित्तिः ॥ ६३ ॥ तदुभयं पानव्यसने ॥ ६४ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य वातव्याधि (उद्धव) के इस सिद्धान्तको युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ ६२ ॥ क्योंकि स्त्रीव्यसनमें, यदि वह अपनी विवाहिता स्त्रियोंमें ही परिमित होवे, तो पुत्रोंकी उत्पत्ति और उनकी सहायता से अपनी रक्षाका होना, यह बड़ा भारी लाभ है। यदि वह व्यसन गणिका आदि बाह्य स्त्रियोंमें होवे, तो यह लाभ नहीं होता; यदि अन्य कुलीन स्त्रियोंमें होवे, तो राजाके सर्वस्वका ही नाश होजाता है; इसलिये बाह्य स्त्रियों और कुलीन स्त्रियोंमें आसक्ति होना ही स्त्री व्यसनका दोष है ॥ ६३ ॥ परन्तु मद्यपान व्यसनमें ये दोनों ही दोष रहते हैं, अर्थात् पुत्रादिकी उत्पत्ति भी नहीं होती और सर्वस्वका नाश भी होजाता है। तथा इनके अतिरिक्त और भी अनेक दोष मद्यपानव्यसनमें हैं, इनका विवरण अगले सूत्रमें किया जाता है ॥ ६४ ॥

पानसंपत्–संज्ञानाशोऽनुन्मत्तस्योन्मत्तत्वमप्रेतस्य प्रेतत्वं कौपीनदर्शनं श्रुतप्रज्ञाप्राणवित्तमित्रहानिः सद्भिर्वियोगोऽनर्थ्यसंयोगस्तन्त्रीगीतनैपुण्येषु चार्थघ्नेषु प्रसङ्ग इति ॥ ६५ ॥

मद्यपान करनेसे निम्नलिखित दोष उत्पन्न होजाते हैं:—संज्ञा अर्थात् विवेक बुद्धिका लोप होजाता है, अनुन्मत्त पुरुष भी उन्मत्तके समान होजाता है, अर्थात् जिसके चित्तमें किसी तरहका भी विकार न हो मद्य पीनेसे उसका भी चित्त विकृत होजाता है; जीता हुआ ही पुरुष मरे हुएके समान

निश्चेष्ट होजाता है; उसके छिपे हुए पापोंका पता लगजाता है; शास्त्रज्ञान, शास्त्रज्ञानसे परिमार्जित बुद्धि, बल, धन और मित्र इन सबही वस्तुओंका नाश होजाता है, सज्जन पुरुषोंके साथ संसर्ग नहीं रहता; सर्वथा अनर्थकारी गाने बजाने वाले आदमियोंके साथ ही उठना बैठना रहता है; तथा धनको नष्ट करने वाले वाद्य और गीत आदिके चातुर्यमें ही आसक्ति रहती है; ये सब दोष हैं जो कि मद्यपानके साथ २ होजाते हैं। इसलिये स्त्रीव्यसनकी अपेक्षा मद्यपानको ही अधिक हानिकर समझना चाहिये ॥ ६५ ॥

द्यूतमद्ययोः द्यूतमेकेषाम् ॥६६॥ पणनिमित्तो जयः पराजयो वा प्राणिषु निश्चेतनेषु वा पक्षद्वैधेन प्रकृतिकोपं करोति ॥६७॥

द्यूत और मद्य इन दोनों व्यसनोंमें द्यूत ही अधिक कष्टकर होता है, यह किन्हीं आचार्योंका मत है ॥६६॥ क्योंकि पण (जुएमें बाजीपर लगाये हुए द्रव्यका नाम पण है, उस) के कारण होनेवाले जय और पराजय (जब बाजीपर लगाया हुआ धन अपने हाथमें आजावे तो जय, और दूसरेके हाथमें चला-जावे, तो पराजय समझना चाहिये), प्राणी तथा अप्राणी विषयक दोनों प्रकारके जुओंमें परस्पर विरुद्ध दो पक्षोंका उद्भावन होनेसे प्रकृतियोंमें कोपको उत्पन्न करदेते हैं। तात्पर्य यह है, कि जुआ खेलने वाले दो पक्षोंमें अवश्यही एक जीतने वाला और दूसरा हारने वाला पक्ष होता है, यह जय और पराजय, दोनों पक्षोंके पुरुषोंमें क्रोधको उत्पन्न करदेता है। मद्यमें यह बात नहीं, इसलिये मद्यकी अपेक्षा द्यूतको अधिक हानिकर समझना चाहिये ॥ ६७ ॥

विशेषतश्च सङ्घानां सङ्घधर्मिणां च राजकुलानां द्यूतनिमित्तो भेदः, तन्निमित्तो विनाश इति ॥ ६८ ॥ असत्प्रग्रहः पापिष्ठतमो व्यसनानां तन्त्रदौर्बल्यादिति ॥ ६९ ॥

और विशेषकर साथ २ रहने वाले तथा एकमत्यसे रहने वाले राजकुलोंका तो द्यूतके ही कारण परस्पर भेद होजाता है; और भेद होनेके कारण फिर उनका नाश होजाता है ॥ ६८ ॥ असत्प्रग्रह (जिस व्यसनमें असज्जन पुरुषोंका ही सत्कार किया जावे, ऐसा अर्थात् मद्यपानका व्यसन, अन्य सब ही व्यसनोंमें अत्यन्त पापिष्ठ है, क्योंकि इसका सेवन करनेसे सम्पूर्ण राज्यचक्र ही दुर्बल होजाता है; इस हालतमें राज्यकी उचित व्यवस्था नहीं कीजासकती। इसलिये अन्य अनेक आचार्य इसीको सब व्यसनोंमें अत्यधिक हानिकर समझते हैं। (इस सूत्रमें यद्यपि 'यह किन्हीं आचार्योंका मत है' इस अर्थको द्योतन करनेके लिये 'अन्येषां' वे 'अपरेषां' ऐसा कोई पद नहीं दीखता, परन्तु नयचन्द्रिका व्याख्यामें 'अन्येषामिति' यह प्रतीक देकर इस अर्थको

प्रकट किया गया है। उसहीके अनुसार हमने भी यहांपर उपर्युक्त अर्थ किया है। जो कि प्रकरणमें भी संगत मालूम होता है ॥ ६९ ॥

असतां प्रग्रहः कामः कोपश्चावग्रहः सताम् ।
व्यसनं दोषबाहुल्यादत्यन्तमुभयं मतम् ॥ ७० ॥
तस्मात्कोपं च कामं च व्यसनारम्भमात्मवान् ।
परित्यजेन्मूलहरं वृद्धसेवी जितेन्द्रियः ॥ ७१ ॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमे ऽधिकरणे पुरुषव्यसनवर्गस्तृतीयो ऽध्यायः ॥३॥
आदित एकोनविंशतो ऽध्यायः ॥११९॥

काम और क्रोध दोनोंही, गाने बजानेका व्यवसाय करने वाले असत्पुरुषोंके सत्कारके हेतु और सत्पुरुषोंके निग्रह अर्थात् तिरस्कारके हेतु होते हैं। दोषोंकी अधिकताके कारण दोनोंको ही महान् व्यसन माना गया है, अर्थात् काम और क्रोध दोनों ही बहुत बड़े व्यसन हैं, क्योंकि ये दोषोंसे भरे हुए हैं ॥ ७० ॥ इसलिये धीर वृद्धसेवी तथा जितेन्द्रिय राजाको चाहिये, कि वह मूलको नष्ट करने वाले (अर्थात् प्राणोंतक सर्वस्वका ही नाश करने वाले), दुःखजनक काम और क्रोधका सर्वथा परित्याग करदे ॥ ७१ ॥

व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय ।

१३०-१३२ प्रकरण ।

पीडनवर्ग, स्तम्भवर्ग और कोशसङ्गवर्ग ।

राष्ट्रपर आने वाली दैवी तथा मानुषी आपत्तियोंके समूहको 'पीडनवर्ग' कहते हैं। राजकीय धनको राजातक न पहुंचने देनेका नाम 'स्तम्भवर्ग' और कोशके धनको कोशतक न पहुँचने देनेका नाम 'कोशसङ्गवर्ग' है। इस अध्यायमें तीन प्रकरणोंसे इन्हीं तीन बातोंका निरूपण किया जायगा ।

दैवपीडनमग्निरुदकं व्याधिर्दुर्भिक्षं मरक इति ॥ १ ॥

राष्ट्रपर आने वाली दैवी आपत्ति पांच प्रकारकी होती है:—अग्नि, जल, व्याधि, दुर्भिक्ष तथा मरक (महामारी) ॥ १ ॥

अग्न्युदकयोरग्निपीडनमप्रतिकार्यं सर्वदाहि च ॥ २ ॥
शक्योपगमनं तार्याबाधमुदकपीडनमित्याचार्याः ॥ ३ ॥

इन सबमें एक दूसरेकी अपेक्षा, कौनसी आपत्ति अधिक कष्ट देने वाली, तथा कौनसी कम कष्ट देने वाली है, इस बातका अब क्रमशः निरूपण किया जायगा। इस विषयमें अनेक प्राचीन आचार्योंका मत है, कि अग्नि और जल से उत्पन्न होने वाली आपत्तियोंमें अग्निजन्य आपत्तिही अधिक कष्टकर होती है, क्योंकि आग लग जाने पर सरलतासे उसका कोईभी प्रतीकार नहीं किया जासकता, तथा आग सबही वस्तुओंको जलाकर भस्म कर डालती है ॥ २ ॥ परन्तु जलमें यह बात नहीं; क्योंकि जलके शीतल होनेसे उसका स्पर्श सह्य होनेके कारण, जलमें रहकरभी उससे अपना बचाव किया जासकता है; तथा नौका आदि साधनोंके द्वाराभी जलसे बचाव होसकता है। इस लिये जलजन्य आपत्तियोंकी अपेक्षा अग्निजन्य आपत्तिकोही अधिक भयावह समझना चाहिये ॥ ३ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ४ ॥ अग्निर्ग्राममर्धग्रामं वा दहति ॥५॥ उदकवेगस्तु ग्रामशतप्रवाहीति ॥ ६ ॥

परन्तु कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस सिद्धान्तको युक्तिसंगत नहीं मानता ॥ ४ ॥ क्योंकि अग्नि, किसी एकही गांवको या आधेही गांवको जला सकता है ॥ ५ ॥ परन्तु जलप्रवाहका वेग, सैकड़ों गांवोंको एक साथही बहा लेजाता है ॥ ६ ॥

व्याधिदुर्भिक्षयोर्व्याधिः प्रेतव्याधितापसृष्टपरिचारकव्यायामोपरोधेन कर्माण्युपहन्ति ॥ ७ ॥ दुर्भिक्षं पुनरकर्मोपघाति हिरण्यपशुकरदायि चेत्याचार्याः ॥ ८ ॥

व्याधि और दुर्भिक्ष इन दोनों आपत्तियोंमेंसे व्याधिही अधिक कष्ट देनेवाली होती है, यह अनेक प्राचीन आचार्योंका सिद्धान्त है। क्योंकि व्याधिके कारण मरे हुए, व्याधिग्रस्त हुए २ तथा रोगी पुरुषोंकी परिचर्यामें लगे हुए होनेके कारण अन्य पुरुषभी कृषि आदि कार्योंको ठीक २ नहीं निबाह सकते। तात्पर्य यह है, कि व्याधिका प्रकोप होनेपर पुरुष, अपने कृषि आदि आवश्यक कार्योंको भी नहीं करसकते, अर्थात् व्याधि होनेसे कृषि आदि कार्य ढीले पड़ जाते हैं ॥ ७ ॥ परन्तु दुर्भिक्ष, आगे किये जाने वाले कार्यमें कोई बाधा नहीं डालता। तथा दुर्भिक्षके कारण धान्यके न होनेपर भी हिरण्य या पशुके रूपमें, राजाको कर दियाही जासकता है। इसलिये दुर्भिक्ष की अपेक्षा व्याधिकोही अधिक कष्टप्रद समझना चाहिये; यही प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ ८ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ९ ॥ एकदेशपीडनो व्याधिः शक्यप्रतीकारश्च ॥ १० ॥ सर्वदेशपीडनं दुर्भिक्षं प्राणिनामजीवनायेति ॥ ११ ॥ तेन मरको व्याख्यातः ॥ १२ ॥

परन्तु कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस सिद्धान्त को युक्तिसंगत नहीं मानता ॥ ९ ॥ वह कहता है कि व्याधि, किसी एकही प्रदेशमें पीड़ा पहुंचा सकती है, अर्थात् जिस देशमें व्याधि हो, उससे उसही देशको हानि पहुंच सकती है, तथा औषधि आदिके द्वारा व्याधिका प्रतीकारभी अच्छी तरह किया जासकता है ॥ १० ॥ परन्तु दुर्भिक्ष सम्पूर्ण देशको पीड़ा पहुंचानेवाला होता है, और इसके कारण सबही प्राणियोंके जीवनभी संकटमें पड़जाते हैं। इसलिये व्याधिकी अपेक्षा दुर्भिक्षको ही अधिक कष्टप्रद समझना चाहिये ॥ ११ ॥ इसहीसे महामारीकी भी लघुता गुरुताको समझ लेना चाहिये। अर्थात् अत्यधिक प्राणियोंके मरणका हेतु होनेके कारण, महामारी दुर्भिक्षकी भी अपेक्षा अधिक कष्टप्रद होती है ॥ १२ ॥

क्षुद्रकमुख्यक्षययोः क्षुद्रकक्षयः कर्मणामयोगक्षेमं करोति ॥ १३ ॥ मुख्यक्षयः कर्मानुष्ठानोपरोधधर्मेत्याचार्याः ॥ १४ ॥

छोटे कार्यकर्ताओं (काम करनेवाले पुरुषों) और मुख्यकार्यकर्ताओं (काम करवानेवाले पुरुषों) मेंसे छोटे कार्यकर्ताओंका क्षय होना अधिक हानिकर होता है, क्योंकि काम करनेवाले आदमियोंके न रहनेपर कार्यका योगक्षेम (न चलते हुए कार्यका प्रारम्भ करना=योग; और चलते हुए कार्यकी रक्षा करना=क्षेम; कहाता है) नहीं चलसकता ॥ १३ ॥ परन्तु मुख्यकार्यकर्त्ताओंका क्षय, केवल कामकी निगरानीमें ही रुकावट डालता है। अर्थात् कार्य करानेवाले पुरुषोंकी अनुपस्थितिमें भी, करनेवाले पुरुषोंके रहनेके कारण वह कार्य हो ही सकता है। इसलिये मुख्यकार्यकर्त्ताओंकी अपेक्षा छोटेकार्यकर्त्ताओंका नाश होना अधिक हानिकर होता है; यह अनेक प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ १४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १५ ॥ शक्यः क्षुद्रक्षयः प्रतिसंधातुं बाहुल्यात्क्षुद्रकाणान्न मुख्यक्षयः ॥ १६ ॥ सहस्रेषु हि मुख्यो भवत्येको न वा सत्त्वप्रज्ञाधिक्यात्तदाश्रयत्वात्क्षुद्रकाणामिति ॥ १७ ॥

परन्तु कौटल्य, इस सिद्धान्तको युक्तिसंगत नहीं मानता ॥ १५ ॥ वह कहता है, कि छोटे कर्मचारियोंकी कमीको, उनके समान काम करनेवालोंकी बहुत अधिक संख्या होनेके कारण दूसरे पुरुषोंकी नियुक्तिके द्वारा पूरा किया जासकता है। परन्तु मुख्य कार्यकर्त्ताका क्षय होनेपर यह बात

नहीं होसकती ॥ १६ ॥ क्योंकि ऐसा मुख्य पुरुष, हजारोंमें एकही मिलता है, या कभी २ वह भी नहीं मिलता, क्योंकि वह बल और बुद्धिके कारण सबसे अधिक या बड़ा होनेसे सबही छोटे कार्यकर्त्ताओंका आश्रयभूत होता है, इसलिये उसका क्षय होनाही छोटे कार्यकर्त्ताओंकी अपेक्षा अधिक हानिकर समझना चाहिये ॥ १७ ॥

स्वचक्रपरचक्रयोः स्वचक्रमतिमात्राभ्यां दण्डकराभ्यां पीडयत्यशक्यं च वारयितुम् ॥ १८ ॥ परचक्रं तु शक्यं प्रतियोद्धुमपसारेण संधिना वा मोक्षयितुमित्याचार्याः ॥ १९ ॥

यहांतक दैवी आपत्तियोंका निरूपण करदिया गया, अब इसके आगे मानुषी आपत्तियोंका निरूपण किया जायगा:—स्वचक्र (अपनेही देशकी राजशक्ति) और परचक्र (परदेशकी राजशक्ति), इन दोनोंमेंसे स्वचक्रही, सीमातीत दण्ड (जुर्माना आदि) और कर (टैक्स) के द्वारा प्रजाको पीड़ा पहुंचाता है; तथा अपनेही देशकी राजशक्ति होनेके कारण इसका निवारण भी नहीं किया जासकता। अर्थात् जब अपना स्वामीही इतना कष्ट पहुंचाने लगे तो उसका प्रतीकार कौन करे ॥ १८ ॥ परन्तु परचक्रका प्रतीकार, उसका देश छोड़ देनेके द्वारा अथवा कुछ धन आदि देकर सन्धि करलेनेके द्वारा किया जासकता है। इसलिये परचक्रकी अपेक्षा स्वचक्रको अधिक कष्टकर समझना चाहिये ; यह सब अनेक प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ १९ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २० ॥ स्वचक्रपीडनं प्रकृतिपुरुषमुख्योपग्रहविघाताभ्यां शक्यते वारयितुमेकदेशं वा पीडयति ॥२१॥ सर्वदेशपीडनं तु परचक्रं विलोपघातदाहविध्वंसनापवाहनैः पीडयतीति ॥ २२ ॥

परन्तु कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस सिद्धान्तको युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ २० ॥ वह कहता है, कि स्वचक्रसे पहुंचाई हुई पीड़ाका, अमात्य आदि मुख्य पुरुषोंको अपने अनुकूल बनाने या उनका नाश करदेनेके द्वारा अच्छीतरह प्रतीकार किया जासकता है। तथा स्वचक्र, धनधान्य आदिसे सम्पन्न अपने किसी एक देशकोही पीड़ा पहुंचाता है ॥ २१ ॥ परन्तु परचक्र, धन आदि लूटने, मारनेधाड़ने, आग लगाकर भस्म करने, अन्य प्रकारोंसे नाश करने, तथा अपने देशसे निकाल देनेके द्वारा, सम्पूर्ण देशकोही पीड़ा पहुंचाता है; इसलिये स्वचक्रकी अपेक्षा परचक्रकोही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ २२ ॥

प्रकृतिराजविवादयोः प्रकृतिविवादः प्रकृतीनां भेदकः पराभियोगानावहति ॥ २३ ॥ राजविवादस्तु प्रकृतीनां द्विगुणभक्तवेतनपरिहारकरो भवतीत्याचार्याः ॥ २४ ॥

प्रकृतिविवाद (अमात्य आदि प्रकृतियों का परस्पर झगड़ा) और राजविवाद (राजाओं का परस्पर झगड़ा), इन दोनों में से प्रकृतिविवाद ही अधिक हानिकर होता है। क्योंकि यह अमात्य आदि में परस्पर फूट डालने वाला, तथा शत्रु के कार्यों को सहारा देने वाला होता है ॥ २३ ॥ परन्तु राजविवाद अमात्य आदि प्रकृतियों के दुगने भत्ते तथा वेतन का और अन्य प्रजाजनों के कर (टैक्स) आदि छोड़देनेका कारण होता है। तात्पर्य यह है, कि राजविवाद होनेपर, अपनी प्रजाओंको सन्तुष्ट करनेके लिये, ये उपर्युक्त कार्य करने पड़ते हैं। इनमें प्रजाकी भलाई ही होती है। इसलिये राजविवादकी अपेक्षा प्रकृतिविवादको ही अधिक हानिकर समझना चाहिये, यह अनेक प्राचीन आचार्योंका सिद्धान्त है ॥ २४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २५ ॥ शक्यः प्रकृतिविवादः प्रकृतिमुख्योपग्रहेण कलहस्थानापनयनेन वा वारयितुम् ॥ २६ ॥ विवदमानास्तु प्रकृतयः परस्परसङ्घर्षेणोपकुर्वन्ति ॥ २७ ॥ राजविवादस्तु पीडनोच्छेदनाय प्रकृतीनां द्विगुणव्यायामसाध्य इति ॥ २८ ॥

परन्तु कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इससिद्धान्तको युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ २५ ॥ वह कहता है, कि प्रकृतिविवादको, अमात्य आदि मुख्य प्रकृतियोंके अनुकूल बनाने तथा कलहके कारणोंको हटादेनेसे, अच्छीतरह रोका जासकता है ॥ २६ ॥ तथा परस्पर विवाद करते हुए प्रकृतिजन, एक दूसरेकी स्पर्धासे राजाका उपकार ही करते हैं ॥ २७ ॥ परन्तु राजविवाद, प्रजाओंकी पीड़ा और उच्छेदके लिये होता है; अर्थात् प्रजाजनोंकी जितनी शक्ति या समृद्धि होती है, वह सबही इस झगड़ेमें स्वाहा होजाती है। तथा राजविवादको शान्त करनेके लिये, प्रकृतिविवादकी अपेक्षा दुगना प्रयत्न करना पड़ता है; इसलिये राजविवादको ही प्रकृतिविवादसे अधिक हानिकर समझना चाहिये ॥ २८ ॥

देशराजविहारयोः देशविहारस्त्रैकाल्येन कर्मफलोपघातं करोति ॥ २९ ॥ राजविहारस्तु कारुशिल्पिकुशीलववाग्जीवनवैदेहकोपकारं करोतीत्याचार्याः ॥ ३० ॥

देशविहार (साधारण प्रजाजनोंकी क्रीडा अर्थात् मनोविनोदके लिये हंसी खेलकूद आदिका करना) और राजविहार (राजक्रीडा अर्थात् राजाके मनोविनोदके लिये भिन्न २ प्रकारके खेल आदिका किया जाना), इन दोनोंमें से देशविहार अधिक हानिकर होता है, क्योंकि प्रजाजनोंके खेलकूदमें लगजानेसे तीनों कालोंमें होने वाले कृषि आदि कार्योंका उच्छेद होजाता है। अर्थात् पहिले बोयेहुए खेतोंकी रक्षा नहीं होती, वर्तमानमें और खेत बोए नहीं जाते, और आगे बोनेके लिये भूमि तैयार नहीं कीजाती; इसप्रकार तीनों कालोंमें खेतीका नाश होता है। (इसीतरह अन्य कार्योंमें भी समझ लेना चाहिये) ॥२९॥ परन्तु राजविहार, कारु (मोटे कारीगर बढ़ई लुहार आदि), शिल्पी (सूक्ष्म कार्य करनेवाले कारीगर सुनार आदि), कुशीलव (गाने वाले), वाग्जीवन (स्तुतिपाठ करनेवाले, भाट चारण आदि), रूपाजीवा (वेश्या), तथा वैदेहक (अन्य व्यापारी) आदि व्यक्तियोंका अत्यन्त उपकार करने वाला होता है, तात्पर्य यह है, कि राजविहारके लिये जो सामान आदि तैयार कराये जाते हैं, या उसके आगे जैसे कार्यक्रम होते हैं, उनमें हरतरहके कारीगर, गाने बजाने वाले तथा अन्य व्यापारियोंको विशेष लाभ होता है, इसलिये राजविहारकी अपेक्षा देशविहारको अधिक हानिकर समझना चाहिये, यह अनेक प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ ३० ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३१ ॥ देशविहारः कर्मश्रमवधार्थमल्पं भक्षयति ॥ ३२ ॥ भक्षयित्वा च भूयः कर्मसु योगं गच्छति ॥ ३३ ॥ राजविहारस्तु स्वयं वल्लभैश्च स्वयंग्राहप्रणयपण्यागार-कार्योपग्रहैः पीडयतीति ॥ ३४ ॥

परन्तु कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस मतको युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ ३१ ॥ वह कहता है, कि देशविहार, कार्य करनेसे उत्पन्न हुई थकावटको दूर करनेके लिये थोड़ा ही व्यय करता है; अर्थात् प्रजाओंका मनोविनोद थोड़े ही व्ययमें होजाता है ॥ ३२ ॥ तथा इतना व्यय करके नई उमंगसे भरेहुए उन प्रजाओंको, फिर अपने २ कृषि आदि कार्योंमें लगादेता है। अर्थात् मनोविनोदके अनन्तर वे पुरुष अच्छीतरहसे फिर अपने २ कार्योंमें लगजाते हैं ॥ ३३ ॥ परन्तु राजविहार स्वयं राजाके द्वारा तथा राजाके अत्यप्रिय पुरुषोंके द्वारा, जनताकी इच्छाके विरुद्ध उससे धन लेकर, पण्यशालामें तथा अतिरिक्त कार्योंको पूरा करनेके लिये रिश्वत आदिसे धन लेकर प्रजाको बहुत कष्ट पहुंचाता है; इसलिये देशविहारकी अपेक्षा राजविहारको ही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ ३४ ॥

सुभगाकुमारयोः कुमारः स्वयं वल्लभैश्च स्वयंग्राहप्रणयपण्यागारकार्योपग्रहैः पीडयतीति ॥ ३५ ॥ सुभगा विलासोपभोगेनेत्याचार्याः ॥ ३६ ॥

देवी (रानी=सुभगा) और युवराज इन दोनोंके विहारोंमें से युवराजका विहार, स्वयं युवराजके द्वारा तथा युवराजके अन्य प्रिय पुरुषोंके द्वारा, जनपदकी इच्छाके विरुद्ध उससे धन लेकर, पण्यशालासे तथा अन्य कार्योंको पूरा करनेके लिये रिश्वत आदिसे धन लेकर प्रजाको बहुत कष्ट पहुंचाता है ॥ ३५ ॥ और देवी विलासोपभोगके द्वारा अर्थात् गन्ध माल्य आदि विलासकी सामग्रीके द्वारा ही प्रजाको पीड़ा पहुंचाती है। इसलिये देवीविहारकी अपेक्षा युवराजविहारको ही अधिक कष्टकर समझना चाहिये, यह प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ ३६ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३७ ॥ शक्यः कुमारो मन्त्रिपुरोहिताभ्यां वारयितुं न सुभगा बालिश्यादनर्थ्यजनसंयोगाच्चेति ॥ ३८ ॥

परन्तु कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस मतको युक्तिसंगत नहीं मानता ॥ ३७ ॥ वह कहता है कि युवराजको इस तरहका कार्य करनेसे मन्त्री तथा पुरोहितोंके द्वारा रोका जासकता है; अर्थात् मन्त्री और पुरोहित आदि उच्च राजकर्मचारी, कुमारको समझाकर इसतरहके अनर्थकारी कार्योंके करनेसे पृथक् रख सकते हैं। परन्तु रानियोंके सम्बन्धमें यह बात नहीं होसकती, क्योंकि उनमें प्रायः मूर्खता अधिक होती है, और फिर गाने बजाने आदिका व्यवसाय करनेवाले अनर्थकारी नीच पुरुषोंके साथ ही प्रायः उनका संसर्ग रहता है; इस अवस्थामें उन्हें समझाना भी बहुत कठिन है। इसलिये कुमारविहारकी अपेक्षा देवीविहारको ही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ ३८ ॥

श्रेणीमुख्ययोः श्रेणी बाहुल्यादनवग्रहा स्तेयसाहसाभ्यां पीडयति ॥ ३९ ॥ मुख्यः कार्यानुग्रहविघाताभ्यामित्याचार्याः ॥ ४० ॥

श्रेणी (आयुधजीवी तथा कृषिजीवी पुरुषोंके परस्पर इकट्ठे हुए २ संघका नाम श्रेणी है) और मुख्य (अपनी देखभालमें काम करानेवाले प्रधान राजकर्मचारी) पुरुषोंमेंसे श्रेणीही चोरी तथा डाका आदिसे प्रजाको कष्ट पहुंचाती है, तथा उसकी संख्या बहुत अधिक होनेके कारण उसको रोका भी नहीं जासकता ॥ ३९ ॥ मुख्यपुरुष केवल रिश्वत आदि लेकर ही कार्य करने, तथा रिश्वत न मिलनेपर कार्य बिगाड़ देनेसेही प्रजाको पीड़ा

पहुंचाते हैं। इसलिये मुख्य पुरुषोंकी अपेक्षा श्रेणी पुरुषोंकोही अधिक कष्टप्रद समझना चाहिये ; यह प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ ४० ॥

नेति कौटल्यः ॥ ४१ ॥ सुव्यावर्त्या श्रेणी समानशीलव्यसनत्वात्, श्रेणीमुख्यैकदेशोपग्रहेण वा ॥ ४२ ॥ स्तम्भयुक्तो मुख्यः परप्राणद्रव्योपघाताभ्यां पीडयतीति ॥ ४३ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस सिद्धान्तको युक्तिसंगत नहीं मानता ॥ ४१ ॥ वह कहता है, कि श्रेणीको चोरी डाके आदिसे बड़ी सरलतापूर्वक रोका जासकता है, क्योंकि जिनके यहां वे चोरी आदि करते हैं; वे भी उनके समानही स्वभाव तथा कृषि आदि समान व्यवसायवाले होते हैं। अथवा उनके गिरोहके मुख्य आदमियोंको अपने अनुकूल बना लेनेसेभी उनको चोरी आदिसे रोका जासकता है ॥ ४२ ॥ परन्तु राजकीय मुख्यपुरुष बड़े अभिमानी होते हैं, और वे दूसरोंके प्राण तथा धनका अपहरण करके अत्यन्तकष्ट पहुंचाते हैं; इसलिये श्रेणीकी अपेक्षा मुख्य पुरुषकोही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ ४३ ॥

संनिधातृसमाहर्त्रोस्संनिधाता कृतविदूषणात्ययाभ्यां पीडयति ॥ ४४ ॥ समाहर्ता करणाधिष्ठितः प्रदिष्टफलोपभोगी भवतीत्याचार्याः ॥ ४५ ॥

सन्निधाता और समाहर्त्ता, इन दोनोंमेंसे सन्निधाता (धनको कोषमें रखनेवाला अधिकारी) दीहुई भूषण आदि वस्तुओंके दूषण निकालने और समय बीतजाने आदिका बहाना करके प्रजाको पीड़ा पहुंचाता है ॥ ४४ ॥ परन्तु समाहर्ता अपने ठीक हिसाबके काममें लगा हुआ, अपनी नियमित नौकरीकोही भोगनेवाला होता है। तात्पर्य यह है, कि सन्निधाता तो किसी बहानेसे रिश्वत आदि लेकर प्रजाको पीड़ा पहुंचा सकता है; परन्तु समाहर्ता को एक २ पैसेका हिसाब रखना पड़ता है, इसलिये यह केवल अपने वेतनपर ही निर्वाह करता है ; अतएव समाहर्त्ताकी अपेक्षा सन्निधाताही प्रजाको अधिक कष्ट पहुंचाता है, यह प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ ४५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ४६ ॥ संनिधाता कृतावस्थमन्यैः कोशप्रवेश्यं प्रतिगृह्णाति ॥ ४७ ॥ समाहर्ता पूर्वमर्थमात्मनः कृत्वा पश्चाद्राजार्थं करोति, प्रणाशयति वा, परस्वादाने च स्वप्रत्ययश्चरतीति ॥ ४८ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस मतको युक्तिसंगत नहीं मानता ॥ ४६ ॥ वह कहता है, कि सन्निधाता तो दूसरे कर्मचारियोंके द्वारा व्यवस्थित कियेहुए कोशमें रखने योग्य धन को ही ग्रहण करता है। अर्थात् जिस वस्तुको कोशमें रखनेके लिये दूसरे अधिकारी निश्चित करदेते हैं; सन्निधाता उसी तरह उसको कोशमें रखदेता है, वह स्वयं किसी वस्तुको लेने या न लेनेका अधिकार नहीं रखता ॥ ४७ ॥ परन्तु समाहर्त्ता (सरकारी टैक्सको वसूल करने वाला अधिकारी) पहिले अपनी रिश्वत आदि लेकर, फिर राजाके धनका संग्रह करता है, अथवा उसमें से भी स्वयं अपहरण करके धनको नष्ट करदेता है। और दूसरोंसे टैक्स वसूल करनेके समय अपनी इच्छाके अनुसार ही सब काम करता है इसलिये सन्निधाताकी अपेक्षा समाहर्त्ताकोही अधिक पीड़ा पहुंचाने वाला समझना चाहिये ॥ ४८ ॥

अन्तपालवैदेहकयोरन्तपालश्चोरप्रसङ्गदेयात्यादानाभ्यां वणिक्पथं पीडयति ॥ ४९ ॥ वैदेहकास्तु पण्यप्रतिपण्यानुग्रहैः प्रसाधयन्तीत्याचार्याः ॥ ५० ॥

अन्तपाल और वैदेहक, इन दोनोंमें से, अन्तपाल (सीमारक्षक अधिकारी) चोरोंके द्वारा पथिकोंके धनको लुटवाकर तथा मार्गका कर अत्यधिक मात्रामें लेकर, व्यापारी मार्गोंपर चलने वाले पथिकोंको अत्यन्त कष्ट पहुंचाता है ॥ ४९ ॥ परन्तु वैदेहक (व्यापारी पुरुष), पण्य (विक्रेय पदार्थ) और प्रतिपण्य (पण्यके बदलेमें लिये जाने वाला पदार्थ) पर अनुग्रह करनेसे अर्थात् विशेष लाभके पहुंचानेसे व्यापारी मार्गोंको बराबर उन्नत बनाते हैं। इसलिये व्यापारियोंकी अपेक्षा अन्तपालोंको ही अधिक कष्टप्रद समझना चाहिये; यह प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ ५० ॥

नेति कौटल्यः ॥ ५१ ॥ अन्तपालः पण्यसंपातानुग्रहेण वर्तयति ॥ ५२ ॥ वैदेहकास्तु संभूय पण्यानामुत्कर्षापकर्षं कुर्वाणाः पणे पणशतं कुम्भे कुम्भशतमित्याजीवन्ति ॥ ५३ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस मतको युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ ५१ ॥ वह कहता है, कि अन्तपाल, एकसाथ लायेहुए विक्रेय पदार्थोंपर उचित वर्तनी (व्यापारी मार्गोंका टैक्स) लेकर व्यापारी मार्गोंको उन्नत करताहुआ उन्हें लाभप्रद सिद्ध करता है ॥ ५२ ॥ वैदेहक तो एकसाथ मिलकर अर्थात् आपसमें सलाह करके व्यापारी मालके मूल्यको घटा बढ़ाकर (जिस मालको खरीदनाहो उसके मूल्यको घटाकर और जिस माल

को बेचना हो उसके मूल्यको बढ़ाकर) एक पणके सौ पण और एक कुम्भके सौ कुम्भ (घी आदि मालसे भरेहुए वर्त्तन आदिको यहांपर 'कुम्भ' शब्दसे कहागया है) लाभ उठाते हैं। इसलिये अन्तपालकी अपेक्षा व्यापारी बनियोंको ही प्रजाके लिये अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ ५३ ॥

अभिजातोपरुद्धा भूमिः पशुव्रजोपरुद्धा वेति ॥ ५४ ॥ अभिजातोपरुद्धा भूमिः महाफलाप्यायुधीयोपकारिणी न क्षमा मोक्षयितुं व्यसनाबाधभयात् । ५५ ॥ पशुव्रजोपरुद्धा तु कृषियोग्या क्षमा मोक्षयितुम्, विवीतं हि क्षेत्रेण बाध्यत इत्याचार्याः ॥ ५६ ॥

अब कष्ट पहुंचाने वाली भूमिके छोड़ने न छोड़नेके विषयमें विचार किया जायगा विजिगीषुके वंशके पारिवारिक पुरुषोंसे घेरीहुई भूमिको छोड़ना चाहिये, अथवा गौ आदि पशुओंके समूहसे घेरीहुई भूमिको ? ॥ ५४ ॥ इस विषयमें प्राचीन आचार्योंका निर्णय है, कि अत्यधिक अन्न आदिके द्वारा लाभदायक होनेपर भी यदि वह भूमि सैनिक पुरुषोंको देकर उपकार करने वाली हो, अर्थात विजिगीषुको उस भूमिसे पर्याप्त संख्यामें सैनिक मिल सकते हैं, तो उस भूमिको न छोड़ना चाहिये; क्योंकि शत्रुके आक्रमण करनेपर सैनिक पुरुषोंके न होने से कष्ट होनेका भय रहता है ॥ ५५ ॥ पशुओंसे घेरीहुई भूमि तो, यदि कृषिके योग्य हो, तो छोड़ी जासकती है, अर्थात् उसमें से चरागाहको उठाकर खेती कराई जासकती है, क्योंकि चरागाहकी अपेक्षा खेतीसे अधिक लाभ होसकता है ॥ ५६ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ५७ ॥ अभिजातोपरुद्धा भूमिरत्यन्तमहोपकारापि क्षमा मोक्षयितुम् व्यसनाबाधभयात् ॥ ५८ ॥ पशुव्रजोपरुद्धा तु कोशवाहनोपकारिणी न क्षमा मोक्षयितुमन्यत्र सस्यवापोपरोधादिति ॥ ५९ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस निर्णयको ठीक नहीं मानता ॥ ५७ ॥ वह कहता है, कि विजिगीषुके पारिवारिक पुरुषोंके द्वारा घेरीहुई भूमि, सैनिक पुरुषोंको देकर अत्यन्त उपकार करने वाली होनेपर भी छोड़ी जासकती है। क्योंकि अपने (विजिगीषुके) दोषोंका अन्वेषण करने वाले पारिवारिक पुरुषोंके द्वारा ही आपत्ति आनेका भय रहता है ॥ ५८ ॥ पशुओंसे घिरीहुई चरागाहकी भूमि तो, कोशमें संग्रह करने योग्य घी आदि तथा बैल आदि वाहनोंको देकर अत्यन्त उपकार करने वाली होती है,

इसलिये वह नहीं छोड़ी जासकती। किन्तु उसके समीप यदि नाजके खेत हों, और चरागाहके कारण उनमें नुकसान होता हो, तो उसे भी छोड़ा जासकता है, अन्यथा नहीं ॥ ५९ ॥

प्रतिरोधकाटविकयोः प्रतिरोधकाः रात्रिसत्त्रपराः शरीराक्रमिणो नित्याः शतसहस्रापहारिणः प्रधानकोपकाश्च ॥ ६० ॥ व्यवहिताः प्रत्यन्तारण्यचराश्चाटविकाः प्रकाशा दृश्याश्चरन्त्येकदेशघातकाश्चेत्याचार्याः ॥ ६१ ॥

प्रतिरोधक और आटविक इन दोनोंमें से, प्रतिरोधक लुटेरे, जो कि भिन्न २ स्थानोंपर रहते हों) रात्रिमें तथा घने जंगलोंमें घूमने वाले, आने जाने वाले पुरुषोंके शरीरोंपर आक्रमण करने वाले, सदा ही समीप रहने वाले, सैकड़ों और हज़ारोंकी संख्यामें धनका अपहरण करने वाले, तथा राष्ट्रके प्रधान २ पुरुषोंको लूट आदिके द्वारा कुपित करने वाले होते हैं ॥ ६० ॥ और आटविक (अपने राज्यकी सीमाके जंगलोंमें रहने वाले लुटेरे) दूर रहने वाले, देशकी सीमाके जंगलोंमें घूमने फिरने वाले, प्रकट रूपमें रहने वाले तथा दृष्टिगोचर होतेहुए घूमते हैं, इसलिये ये देशके एक ही हिस्सेको पीड़ा पहुंचा सकते हैं. और मालूम होनेपर लोग इनसे अपनी रक्षा भी कर सकते हैं। अतएव आटविकोंकी अपेक्षा प्रतिरोधक पुरुष ही प्रजाके लिये अत्यधिक पीड़ा पहुंचाने वाले होते हैं, यह प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ ६१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६२ ॥ प्रतिरोधकाः प्रमत्तस्यापहरन्ति ॥ ६३ ॥ अल्पाः कुण्ठाः सुखा ज्ञातुं ग्रहीतुं च ॥ ६४ ॥ स्वदेशस्थाः प्रभूता विक्रान्ताश्चाटविकाः ॥ ६५ ॥ प्रकाशयोधिनोऽपहर्तारो हन्तारश्च देशानां राजसधर्माण इति ॥ ६६ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस मतको युक्तिसंगत नहीं मानता ॥ ६२ ॥ वह कहता है, कि प्रतिरोधक पुरुष प्रमादीके यहांसे ही (अर्थात् जो सावधानता पूर्वक नहीं रहता, उस ही के यहांसे) धन आदिका अपहरण करसकते हैं ॥ ६३ ॥ ये लोग संख्यामें बहुत थोड़े होनेके कारण सब जगह नहीं फैल सकते, इसीलिये ये लोग बड़ी सरलतासे जाने जासकते तथा पकड़े जासकते हैं ॥ ६४ ॥ और आटविक अपने देशमें स्थित तथा संख्यामें बहुत होते हैं, बहादुर होनेके कारण बड़ी कठिनतासे पकड़े जासकते हैं ॥ ६५ ॥ प्रकट रूपमें युद्ध करने वाले होते हैं, देश निवासी पुरुषोंके धन तथा

प्राणोंको अपहरण करने वाले होते हैं, तथा निरङ्कुश होनेके कारण इनकी परिस्थिति राजाओंके समान होती है। इसलिये प्रतिरोधक पुरुषोंकी अपेक्षा आटविकोंको ही अधिक पीड़ा पहुंचाने वाला समझना चाहिये ॥ ६६ ॥

मृगहस्तिवनयोः मृगाः प्रभूताः प्रभूतमांसचर्मोपकारिणो मन्दग्रासावक्लेशिनः सुनियम्याश्च ॥ ६७ ॥ विपरीता हस्तिनो गृह्यमाणा दुष्टाश्च देशविनाशायेति ॥ ६८ ॥

मृगवन और हस्तिवन इन दोनोंमें से हस्तिवन (हाथियोंके रहनेका जंगल) अधिक कष्टकर होता है; क्योंकि मृग संख्यामें बहुत अधिक, तथा अत्यधिक मांस और चमड़ेके द्वारा उपकार करने वाले, थोड़ा खाने वाले इसीलिये भागते समय जल्दी थक जाने वाले, तथा पकड़े जाकर बड़ी सरलतासे वशमें आजाने वाले होते हैं ॥ ६७ ॥ हाथी इनसे बिल्कुल विपरीत होते हैं, संख्यामें बहुत थोड़े, बहुत थोड़ा मांस चमड़ा देने वाले, बहुत खानेके कारण जल्दी न थकने वाले, तथा पकड़े जाकर भी दुष्ट होनेपर लोगोंको मार डालने वाले होते हैं ॥ ६८ ॥

स्वपरस्थानीयोपकारयोः स्वस्थानीयोपकारो धान्यपशुहिरण्यकुप्योपकारो जानपदानामापद्यात्मधारणः ॥ ६९ ॥ विपरीतः परस्थानीयोपकारः, इति पीडनानि ॥ ७० ॥

अपने नगरका उपकार करना और पराये नगरका उपकार करना, इन दोनोंमें से अपने नगरका उपकार करना (प्रत्येक वस्तुके क्रय विक्रय व्यवहारका करना और उससे अपने नगर को लाभ पहुंचाना ही यहां उपकार कहा गया है) अर्थात् धान्य पशु हिरण्य और कुप्य आदि पदार्थों का अपने ही नगरमें क्रय विक्रय करना, जनपद निवासी पुरुषों को आपत्ति (दुर्भिक्ष आदिसे उत्पन्न हुई विपत्ति) के समयमें प्राण धारणका हेतु होता है ॥ ६९ ॥ परन्तु दूसरे के नगरमें क्रय विक्रय व्यवहार करके उसे लाभ पहुंचाने से विपरीत ही परिणाम निकलता है; अर्थात् उससे दूसरोंके नगरकी वृद्धि होती है, और वह अपने (क्रय विक्रय व्यवहार करने वाले पुरुष के) देशको कष्ट पहुंचाने वाला होता है। यहांतक पीडनवर्ग अर्थात् देशको पीड़ा पहुंचाने वाले हेतुओंका निरूपण कर दिया गया ॥ ७० ॥

आभ्यन्तरो मुख्यस्तम्भो बाह्यो मित्राटवीस्तम्भ इति स्तम्भवर्गः ॥ ७१ ॥

अपने ही सरकारी मुख्य कर्मचारियोंके द्वारा अर्थ का रोका जाना

'आभ्यन्तर स्तम्भ' और मित्र तथा आटविक पुरुषोंके द्वारा अर्थका रोका जाना 'बाह्य स्तम्भ' कहा जाता है। स्तम्भ दो ही प्रकारका होता है। यह स्तम्भ वर्गका व्याख्यान कर दिया गया ॥ ७१ ॥

ताभ्यां पीडनैर्यथोक्तैश्च पीडितः सक्तो मुख्येषु परिहारोपहतः प्रकीर्णो मिथ्यासंभृतः सामन्ताटवीभृत इति कोशसङ्गाः ॥७२॥

दोनों प्रकारके आभ्यन्तर और बाह्य स्तम्भोंके द्वारा तथा पूर्वोक्त पीडाके हेतुओंके द्वारा पीड़ित हुआ २ अर्थात् उचित आमदनीकी मात्रासे घटाया हुआ, कर देनेवाले पुरुषोंसे वसूल करके मुख्य कर्मचारी पुरुषोंसे उपयोग किया हुआ, अर्थात गबन किया गया हुआ, राजाकी आज्ञानुसार कर माफ हो जाने के कारण कम हुआ २ इधर उधर बिखरा हुआ, उचित परिमाण से न्यून अथवा अधिक मात्रा में इकट्ठा किया हुआ, तथा सामन्त और आटविक पुरुषोंके द्वारा अपहरण किया हुआ धन खजानेमें नहीं आने पाता; बीचमें ही नष्ट होजाता है। इसीका नाम कोशसङ्ग है। यह कोशसङ्ग वर्गका निरूपण कर दिया गया ॥ ७२ ॥

पीडनानामनुत्पत्तावुत्पन्नानां च वारणे ।
यतेत देशवृद्ध्यर्थं नाशे च स्तम्भसङ्गयोः ॥ ७३ ॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमे ऽधिकरणे पीडनवर्गः स्तम्भवर्गः कोशसङ्गवर्गः चतुर्थो ऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदितो विंशतिशतो ऽध्यायः ॥ १२० ॥

पूर्वोक्त पीड़ाओं को उत्पन्न न होने देनेमें, अथवा उत्पन्न होजाने पर उनका निवारण करने में और स्तम्भ तथा कोशसङ्गके नाश करनेमें, राजा को सदा यत्नवान होना चाहिये, जिससे कि वह अपने देश और कोशकी वृद्धि करसके ॥ ७३ ॥

व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरण में चौथा अध्याय समाप्त

पांचवां अध्याय

१३३, १३४ प्रकरण

बलव्यसनवर्ग और मित्रव्यसनवर्ग।

अपनी सेना पर आने वाली विपत्तियों तथा मित्रपर आने वाली विपत्तियोंके समूह का इन दो प्रकरणोंमें यथाक्रम निरूपण किया जायगा।

बलव्यसनानि ॥ १ ॥ अमानितं विमानितमभृतं व्याधितं नवागतं दूरयातं परिश्रान्तं परिक्षीणं प्रतिहतं हताग्रवेगमनृतुप्राप्तमभूमिप्राप्तमाशानिर्वेदि परिसृप्तं कलत्रगर्ह्यन्तःशल्यं कुपितमूलं भिन्नगर्भमपसृतमतिक्षिप्तमुपनिविष्टं समाप्तमुपरुद्धमुपक्षिप्तं छिन्नधान्यपुरुषवीवधं स्वविक्षिप्तं मित्रविक्षिप्तं दूष्ययुक्तं दुष्टपार्ष्णिग्राहं शून्यमूलमस्वामिसंहतं भिन्नकूमन्धमिति ॥ २ ॥

सेनापर आने वाले व्यसन, निम्न लिखित प्रकारसे समझने चाहिये ॥ १ ॥ अमानित, निमानित, अभृत, व्याधित, नवागत, दुरायात, परिश्रान्त परिक्षीण, प्रति त, हताग्रवेग, अनृतुप्राप्त, अभूमिप्राप्त, आशानिर्वेदी, परिसृप्त, कलत्रगर्ही, अन्तः शल्य, कुपितमूल, भिन्नगर्भ, अपसृत, अतिक्षिप्त, उपनिविष्ट, समाप्त, उपरुद्ध, परिक्षिप्त, छिन्नधान्य, छिन्नपुरुषवीवध, स्वविक्षिप्त, मित्रविक्षिप्त, दूष्ययुक्त, दुष्टपार्ष्णिग्राह, शून्यमूल, अस्वामिसंहत, भिन्नकूट और अन्ध; ये चौंतीस प्रकारके व्यसन हैं। (इनके अर्थ और परस्पर गुरु लघुभाव का विचार, यथाक्रम अगले सूत्रोंमें किया जाता है ॥ २ ॥

तेषाममानितविमानितयोरमानितं कृतार्थमानं युध्येत न विमानितमन्तःकोपम् ॥ ३ ॥

इन अमानित आदि चौंतीस प्रकार की विशेषताओंसे युक्त सेनाओं के बीचमें, विमानित (तिरस्कार की हुई) और अमानित (सत्कार न की हुई) सेनाओंमें से, अमानित ही समय पर सत्कार आदि किये जानेपर विजिगीषु की ओरसे युद्ध कर सकती है; विमानित सेना कभी युद्ध करने को तैयार नहीं होती; क्योंकि उसके हृदयमें, पहिले किये हुए तिरस्कारके कारण कोप विद्यमान रहता है ॥ ३ ॥

अभृतव्याधितयोरभृतं तदात्वकृतवेतनं युध्यते न व्याधितमकर्मण्यम् ॥ ४ ॥

अभृत (जिसका वेतन न दिया गया हो) और व्याधित (रोगी) सेनाओंमें से अभृत सेना ही उस समय वेतनके दिये जानेपर विजिगीषु की ओरसे युद्ध करनेके लिये तैयार होसकती है, व्याधित सेना नहीं हो सकती, क्योंकि उसमें कार्य करने की शक्ति ही नहीं होती ॥ ४ ॥

नवागतदूरायातयोर्नवागतमन्यत उपलब्धदेशमनवमिश्रं युध्येत न दूरायातमायतगतपरिक्लेशम् ॥ ५ ॥

नवागत (नई आई हुई अर्थात् अभी जल्दी ही आई हुई) और दूरायात (दूरसे आई हुई) सेनाओंमें से नवागत सेना, किन्ही दूसरे अर्थात् पहिले से ही यहां रहने वाले किन्हीं मनुष्योंसे देशके संबन्धमें जानकारी प्राप्त करके, तथा पुराने आदमियोंके साथ मिलकर विजिगीषुकी ओरसे युद्ध करने को तैयार हो सकती है; और दूरायात सेना तैयार नहीं हो सकती, क्योंकि वह दूरसे आनेके कारण (लम्बी यात्रा ते करनेके कारण) बहुत थकी हुई होती है ॥ ५ ॥

परिश्रान्तपरिक्षीणयोः परिश्रान्तं स्नानभोजनस्वप्नलब्धविश्रामं युध्येत न परिक्षीणमन्यत्राहवे क्षीणयुग्यपुरुषम् ॥ ६ ॥

परिश्रान्त (ठीक आहार न मिलने तथा दूरकी यात्रा करनेके कारण थकी हुई) और परिक्षीण (दूसरे युद्धमें जिसके योग्य सैनिक पुरुष नष्ट होचुके हैं, ऐसी) सेनाओंमें से परिश्रान्त सेना ही, स्नान भोजन शयन तथा विश्राम आदिकी सुविधा होनेपर हर तरहकी थकावटको दूर करके विजिगीषुकी ओरसे युद्ध करने को तैयार हो सकती है; परिक्षीण सेना तैयार नहीं हो सकती, क्योंकि दूसरे युद्धमें उसके अनेक योग्य पुरुषों का नाश हो चुका है ॥ ६ ॥

प्रतिहतहताग्रवेगयोः प्रतिहतमग्रपातभग्नं प्रवीरपुरुषसंहतं युध्येत न हताग्रवेगमग्रपातहतप्रवीरम् ॥ ७ ॥

प्रतिहत (युद्धके आरम्भमें ही पराजय को प्राप्त हुई २ सेना), और हताग्रवेग (अपने वीर पुरुषोंके मरजाने के कारण सबसे प्रथम युद्ध करनेमें उत्साह न रखने वाली) सेनाओंमें से, पहिले वारमें हारी हुई प्रतिहत सेना ही अन्य वीर पुरुषोंके साथ मिलकर, विजिगीषुके लिये युद्ध करसकती है; हताग्रवेग सेना युद्ध करनेको तैयार नहीं होसकती, क्योंकि आगे आक्रमण करने के कारण उसके अनेक वीरोंका नाश होचुका होता है ॥ ७ ॥

अनृत्वभूमिप्राप्तयोरनृतुप्राप्तं यथर्तुयोग्यशस्त्रावरणं युध्येत नाभूमिप्राप्तमवरुद्धप्रसारव्यायामम् ॥ ८ ॥

अनृतुप्राप्त (जिसको युद्धके योग्य ऋतु अर्थात् समय प्राप्त न हो) और अभूमि प्राप्त (जिसको कवायद आदिके लिये भूमि प्राप्त न हो), इन दोनोंमें से अनृतुप्राप्त सेना, वर्तमान ऋतुके अनुसार ही सवारी हथियार तथा कवच आदिको लेकर युद्ध करनेके लिये तैयार होसकती है, अभूमिप्राप्त सेना तैयार नहीं होसकती; क्योंकि उसके चलने फिरनेके मार्ग तथा युद्ध संबन्धी कार्य सब ही रुके रहते हैं ॥ ८ ॥

आशानिर्वेदिपरिसृप्तयोराशानिर्वेदि लब्धाभिप्रायं युध्येत न परिसृप्तमपसृतमुख्यम् ॥ ९ ॥

आशानिर्वेदी (इच्छित वस्तुके न मिलनेसे निराशा को प्राप्त हुई २ सेना) और परिसृप्त (मुख्यनेतासे रहित सेना) इन दोनोंमें से आशानिर्वेदी सेना, अपनी कामनाको पूरी हुई देखकर विजिगीषु की ओरसे युद्ध करनेके लिये तैयार होजाती है, परिसृप्त सेना तैयार नहीं होसकती, क्योंकि उसका मुख्य नेता कोई नहीं होता ॥ ९ ॥

कलत्रगर्ह्यन्तःशल्ययोः कलत्रगर्ह्युन्मुच्य कलत्रं युध्येत नान्तःशल्यमन्तरमित्रम् ॥ १० ॥

कलत्रगर्ही (पोष्यवर्गको निन्दा करनेवाला, अर्थात् कलत्र आदि मेरे युद्ध संबन्धी कार्योंमें रुकावट डालने वाले हैं, इस प्रकार उनकी निन्दा करनेवाला) और अन्तःशल्य (अन्दरसे शत्रुता रखनेवाला), इन दोनों बलों (सेनाओं) में से कलत्रगर्ही बल अपने कलत्र आदिकी समुचित सुरक्षित स्थानमें व्यवस्था करके विजिगीषुकी ओरसे युद्ध करनेके लिये तैयार होसकता है; अन्तःशल्य बल तैयार नहीं होसकता, क्योंकि वह विजिगीषुके साथ अंदर से शत्रुता रखता है ॥ १० ॥

कुपितमूलभिन्नगर्भयोः कुपितमूलं प्रशमितकोपं सामादिभिर्युध्येत न भिन्नगर्भमन्योन्यस्माद्भिन्नम् ॥ ११ ॥

कुपितमूल (प्रायः क्रोध करने वाली सेना) और भिन्नगर्भ (आपसमें ही शत्रुता=फूट रखने वाली सेना), इन दोनोंमें से कुपितमूल सेना को, साम आदिके द्वारा उसका क्रोध शान्त करके युद्ध करनेके लिये तैयार किया जा सकता है; भिन्नगर्भ सेना युद्धके लिये तैयार नहीं होसकती, क्योंकि उनकी आपसमेंही फूट पड़ी रहती है ॥ ११ ॥

अपसृतातिक्षिप्तयोरपसृतमेकराज्यातिक्रान्तममन्त्रव्यायामाभ्यां सत्रिमित्रापाश्रयं युध्येत नातिक्षिप्तमनेकराज्यातिक्रान्तं बह्वाबाधत्वात् ॥ १२ ॥

आपसृत (एकही राज्यमें अन्य सेनाके द्वारा कष्ट पाई हुई सेना) और अतिक्षिप्त (अनेक राज्योंमें अन्य सेनाके द्वारा कष्ट पाई हुई सेना), इन दोनों सेनाओंमेंसे, अपसृत सेना, एकही राज्यमें कष्ट उठानेके कारण, मन्त्र (शास्त्रोंमें बताये हुए विशेष उपाय) और विशेष शिक्षारूप व्यायाम (कवा-

वद) के द्वारा जंगल और मित्रका सहारा लेकर युद्ध करनेके लिये तैयार होस-कती है। अतिक्षिप्त सेना ऐसी तैयारी नहीं करसकती, क्योंकि वह अनेक राज्योंमें बहुत कष्टोंका अनुभव किये हुए होती है ॥ १२ ॥

उपनिविष्टसमाप्तयोरुपनिविष्टं पृथग्यानस्थानमतिसन्धातारं युध्येत न समाप्तं परिणतैकस्थानयानम् ॥ १३ ॥

उपनिविष्ट (शत्रु-समीप रहने वाली सेना अर्थात् शत्रुसे सम्बन्ध न रखती हुई स्वतन्त्र रूपसे ठहरने तथा आक्रमण करने वाली सेना) और समाप्त (शत्रुके साथ २ ही ठहरने और आक्रमण करने वाली सेना), इन दोनों सेनाओंमेंसे उपनिविष्ट सेना, अपने साथ मुक़ाबला रखनेवाले शत्रुके साथ युद्ध करनेको तैयार होसकती है, क्योंकि भिन्न यान स्थान होनेके कारण, शत्रु उसका भेद नहीं पासकता; समाप्त सेना युद्ध नहीं करसकती, क्योंकि शत्रुके साथ समानही यान स्थान होनेके कारण, वह इसके भेदोंको जाने रहता है ॥ १३ ॥

उपरुद्धपरिक्षिप्तयोरुपरुद्धमन्यतो निष्क्रम्योपरोद्धारं प्रतियुध्येत न परिक्षिप्तं सर्वतः प्रतिरुद्धम् ॥ १४ ॥

उपरुद्ध (एक ओरसे घिरी हुई सेना) और परिक्षिप्त (चारों ओरसे घिरी हुई सेना), इन दोनों सेनाओंमेंसे उपरुद्ध सेना, एक ओरसे निकलकर घेरा डालने वालेका मुक़ाबला करसकती है; परिक्षिप्त सेना ऐसा नहीं करस-कती, क्योंकि वह चारों ओरसे घिरी हुई होती है ॥ १४ ॥

छिन्नधान्यपुरुषवीवधयोः छिन्नधान्यमन्यतो धान्यमानीय जङ्गमस्थावराहारं वा युध्येत न छिन्नपुरुषवीवधमनभिसारम् ॥ १५ ॥

छिन्नधान्य (अपने देशसे धान्य आदि मंगानेके लिये जिसका सम्बन्ध टूट गया हो) और छिन्नपुरुषवीवध (जिस सेनाका अपने देशसे सैनिक पुरुष तथा भार ढोनेके साधन बहंगी आदि लाने लेजानेका सम्बन्ध टूट गया हो), इन दोनों सेनाओंमेंसे छिन्नधान्य किसी दूसरे स्थानसे धान्य आदि आहार मंगाकर अथवा जंगम मृग आदि प्राणियोंका मांस खाकर या स्थावर वृक्ष आदिके फल खाकर अपना निर्वाह करती हुई, शत्रुके साथ युद्ध करसकती है। छिन्नपुरुषवीवध सेना ऐसा नहीं करसकती; क्योंकि वह सब तरहसे अस-हाय होती है। उसको किसी वस्तुकी भी सहायता नहीं पहुंचती ॥ १५ ॥

स्वविक्षिप्तमित्रविक्षिप्तयोः स्वविक्षिप्तं स्वभूमौ विक्षिप्तं सैन्य-

मापदि शक्यमवस्रावयितुं न मित्रविक्षिप्तं विप्रकृष्टदेशकालत्वात् ॥ १६ ॥

स्वविक्षिप्त (अपनेही देशमें किसी कार्यके लिये इधर उधर भेजी हुई सेना) और मित्रविक्षिप्त (मित्रके कार्यके लिये उसके देशमें भेजी हुई सेना), इन दोनों सेनाओंमेंसे, स्वविक्षिप्त सेना, अपनेही देशमें फैली हुई होनेके कारण आपत्तिके समयमें आसानीसेही इकट्ठी कीजासकती है; मित्रविक्षिप्त सेना दूर देशमें रहनेके कारण ठीक समयपर नहीं बुलाई जासकती । क्योंकि दूरसे आनेमें विलम्बकी सम्भावना रहती है ॥ १६ ॥

दूष्ययुक्तदुष्टपार्ष्णिग्राहयोर्दूष्ययुक्तमाप्तपुरुषाधिष्ठितमसंहतं युध्येत न दुष्टपार्ष्णिग्राहं पृष्ठाभिघातत्रस्तम् ॥ १७ ॥

दूष्ययुक्त (राज्यको कष्ट पहुंचानेवाले मुख्यकर्मचारियोंको दूष्य कहते हैं, उनके साथ सम्बन्ध रखनेवाली सेना) और दुष्टपार्ष्णिग्राह (जिसका पार्ष्णिग्राह, पीछेसे आघात करनेके लिये दोष ढूंढनेमेंही लगा रहता है, ऐसी सेना), इन दोनोंमेंसे दूष्ययुक्त सेना, विजिगीषुकी ओरसे युद्ध करनेके लिये तैयार होसकती है, क्योंकि विजिगीषु अपने विश्वस्त पुरुषोंको दूष्योंकी सेवामें नियुक्त करके उनसे सेनाके सम्बन्धको विच्छिन्न करसकता है । किन्तु दुष्टपार्ष्णिग्राह सेना ऐसा नहीं करसकती, क्योंकि उसे पीछेसे आघात होनेका सदाही डर बना रहता है ॥ १७ ॥

शून्यमूलास्वामिसंहतयोः शून्यमूलं कृतपौरजानपदारक्षं सर्वसंदोहेन युध्येत नास्वामिसंहतं राजसेनापतिहीनम् ॥ १८ ॥

शून्यमूल (सम्पूर्ण सैन्यके बाहर चलेजानेपर मूलस्थान [राजधानी] में रही हुई अत्यल्प सेना) और अस्वामिसंहत (राजा तथा सेनापतिसे रहित सेना), इन दोनोंमेंसे शून्यमूल सेना, नगर निवासी तथा जनपद निवासी पुरुषोंसे सहायता दियेजानेपर अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे युद्ध करसकती है। अस्वामिसंहत सेना ऐसा नहीं करसकती, क्योंकि वह राजा या सेनापतिरूप अपने नेतासे सर्वथा रहित होती है ॥ १८ ॥

भिन्नकूटान्धयोर्भिन्नकूटमन्याधिष्ठितं युध्येत नान्धमदेशिकमिति ॥ १९ ॥

भिन्नकूट (शिखरको कूट कहते हैं, उसीके समान जो सब सेनाओंका अग्रज हो उसका नाम भी कूट है, इस प्रकारके अध्यक्षसे रहित सेनाको

भिन्नकूट कहते हैं) और अन्ध (शत्रुके व्यवहारके सम्बन्धमें कुछभी जानकारी न रखने वाली सेना), इन दोनोंमें से भिन्नकूट सेना, दूसरे किसी अध्यक्ष का सहारा लेकर युद्धके लिये तैयार होसकती है। अन्ध सेना शत्रुके व्यवहार को समझाने वाले आदमीके न मिलनेसे ऐसा नहीं करसकती ॥ १९ ॥

दोषशुद्धिर्बलावापः सत्रस्थानातिसंहितम् ।
संधिश्चोत्तरपक्षस्य बलव्यसनसाधनम् ॥ २० ॥

इन सैनिक व्यसनोंके परिहारका उपाय यह समझना चाहिये:—अमानन विमानन आदि दोषोंका प्रायश्चित करना, दोष रहित सेनाको दूसरी सेनाके साथ ठहराना, जंगलमें सेनाकी स्थिति रखना, तथा कूट उपायोंसे शत्रुसेनाका भेद करना, अपनेसे बलवान पक्षके साथ सन्धि करना; ये बल-व्यसनों (सेना संबन्धी आपत्तियों) के हटानेके साधन हैं ॥ २० ॥

रक्षेत्स्वदण्डं व्यसने शत्रुभ्यो नित्यमुत्थितः ।
प्रहरेद्दण्डरन्ध्रेषु शत्रूणां नित्यमुत्थितः ॥ २१ ॥

सदा सजग रहता हुआ विजिगीषु, व्यसन के समयमें शत्रुओंसे अपनी सेनाकी अच्छी तरह रक्षा करे। और बड़ी चतुरतासे शत्रुओं की सेना संबन्धी निर्बलताओंपर सदा प्रहार करता रहे। यहांतक बलव्यसनवर्गका निरूपण किया गया ॥ २१ ॥

अभियातं स्वयं मित्रं संभूयान्यवशेन वा ।
परित्यक्तमशक्त्या वा लोभेन प्रणयेन वा ॥ २२ ॥

अब मित्रव्यसनवर्ग का निरूपण किया जायगा:—अपने प्रयोजनसे अथवा अपने किसी बन्धु आदिके प्रयोजनसे मिलकर शत्रुपर आक्रमण करनेवाले अपने मित्रको, जब विजिगीषु असमर्थ होनेके कारण, लोभ (शत्रुसे धन आदि लेने) के कारण, या स्नेह (शत्रुके साथ मित्रता होजाने) के कारण छोड़ देता है, अर्थात् ऐसे समयमें उसकी सहायता नहीं करता तो वह भिन्न हुआ २ मित्र फिर बड़ी कठिनतासे वशमें आता है। (इस श्लोकका अन्वय २७वें श्लोक के 'कृच्छ्रेण साध्यते' पदके साथ है, वहांतकके इसके आगेके श्लोकों का भी इसी तरह अन्वय समझना चाहिये) ॥ २२ ॥

विक्रीतमभियुञ्जाने संग्रामे वापवर्तिना ।
द्वैधीभावेन वा मित्रं यास्यता वान्यमन्यतः ॥ २३ ॥

युद्धके चलते हुए होनेपर ही, शत्रुसे धन आदि लेकर अपनी सहायताको पूरा न करके बीचमें ही विजिगीषुसे छोड़ा हुआ मित्र, अथवा द्वैधीभावसे अर्थात्

विजिगीषुके द्वारा अपने मित्रके शत्रुके साथ सन्धि करके अपने यातव्य पर आक्रमण करदेनेके कारण बेचा हुआ अर्थात् अपनेपनसे छोड़ा हुआ मित्र; अथवा 'तुम इधरको आक्रमण करो और मैं इधरको करूंगा' इस प्रकार एक दूसरे अपने मित्रके शत्रुके साथ सन्धि करके, किसी दूसरे अपनेही शत्रुपर आक्रमण करनेवाले विजिगीषुसे छोड़ा हुआ मित्र, फिर बड़ी कठिनतासे वशमें होता है ॥ २३ ॥

पृथग्वा सह याने वा विश्वासेनातिसंहितम् ।
भयावमानालस्यैर्वा व्यसनान्न प्रमोक्षितम् ॥ २४ ॥

पृथक् २ आक्रमण करने या साथ ही आक्रमण करनेपर, पहिले विश्वास दिलाकर, फिर छिपे तौरपर मित्रके शत्रुके साथ सन्धि करके विजिगीषुके द्वारा ठगाहुआ, अर्थात् धोखा दियाहुआ मित्र; अथवा मित्रके शत्रुके भयसे, या मित्रके विषयमें तिरस्कार बुद्धि होनेके कारण, या अपने ही आलस्यके कारण, आपत्तिसे न छुड़ाया हुआ मित्र, फिर कठिनतासे ही वशमें आता है ॥ २४ ॥

अवरुद्धं स्वभूमिभ्यः समीपाद्वा भयाद्गतम् ।
आच्छेदनाददानाद्वा दत्त्वा वाप्यवमानितम् ॥ २५ ॥

अपने (विजिगीषुके) देशमें होकर जानेसे रोका हुआ, अथवा अपने (विजिगीषुके) समीपसे ही भय (बध या बन्धन आदिके भय) के कारण गया हुआ मित्र; बलपूर्वक उसके द्रव्यका अपहरण करलेनेसे तिरस्कृत किया हुआ मित्र; देने योग्य वस्तुको न देनेके कारण, अथवा देकर भी फिर तिरस्कृत किया हुआ मित्र बड़ी कठिनतासे वशमें आता है ॥ २५ ॥

अत्याहारितमर्थं वा स्वयं परमुखेन वा ।
अतिभारे नियुक्तं वा भङ्क्त्वा परमवस्थितम् ॥ २६ ॥

अपने आपही (स्वयं विजिगीषुके द्वाराही) अथवा किसी दूसरेके द्वारा, सर्वथा धन अपहरण किया या कराया हुआ मित्र (तात्पर्य यह है, कि जिस मित्रके धनको विजिगीषु स्वयं अपहरण करले या किसीके द्वारा करवा देवे, ऐसा मित्र); अथवा विजिगीषुके शत्रुको जीतकर आया हुआ, तथा उसी समय किसी दूसरे दुस्साध्य कार्यपर लगाया हुआ मित्र, बिगड़ जानेपर बड़ी कठिनतासे वशमें आता है ॥ २६ ॥

उपेक्षितमशक्त्या वा प्रार्थयित्वा विरोधितम् ।
कृच्छ्रेण साध्यते मित्रं सिद्धं चाशु विरज्यति ॥ २७ ॥

सामर्थ्यहीन होनेके कारण उपेक्षा किया हुआ मित्र; अथवा पहिले एकवार मित्रताके लिये प्रार्थना करके फिर विरुद्ध किया हुआ मित्र; बड़ी कठिनतासे वशमें होता है। तात्पर्य यह है—उपर्युक्त रीतिसे विकारको प्राप्त हुए २ ये मित्र बड़ी कठिनतासे वशमें किये जासकते हैं, यदि किसी तरह इनमेंसे कोई फिर विजिगीषुके वशमें हो भी जाय अर्थात् विजिगीषुके अनुकूल बन भी जाय, तो वह शीघ्रही फिर अवसर पाकर विजिगीषुसे विरक्त होजाता है। यहांतक विकृतचित्त मित्रोंकी फिर दुस्साध्यताका निरूपण किया गया है ॥२७॥

कृतप्रयासं मान्यं वा मोहान्मित्रममानितम् ।
मानितं वा न सदृशं शक्तितो वा निवारितम् ॥ २८ ॥

अब इसके आगे उन मित्रोंका निरूपण किया जायगा, जो कि सरलतासेही फिर विजिगीषुके आनुकूल्यको स्वीकार करलेते हैं:—जिसने विजिगीषुके लिये संग्राम आदिमें अत्यन्त परिश्रम किया हो, इसीलिये पूजाके योग्य, भ्रमसे या प्रमादसे तिरस्कृत किया हुआ मित्र; अथवा परिश्रमके अनुकूल सत्कार न किया हुआ मित्र; अथवा विजिगीषुमें अनुराग होनेके कारण, विजिगीषुके शत्रुओंसे दुत्कारा हुआ मित्र; शीघ्रही फिर विजिगीषुके अनुकूल होजाता है॥२८॥

मित्रोपघातत्रस्तं वा शङ्कितं वारिसंहितात्।
दूष्यैर्वा भेदितं मित्रं साध्यं सिद्धं च तिष्ठति ॥ २९ ॥

विजिगीषुके द्वारा किसी दूसरे मित्रपर किये हुए आघातको देखकर डरा हुआ (अर्थात् आज विजिगीषुने अपने अमुक मित्रको धोखा दिया है, अवसर पाकर यह मुझे भी धोखा देसकता है, इस विचारसे डरा हुआ), अथवा शत्रुके साथ सन्धि करलेनेके कारण शङ्कितचित्त हुआ २ मित्र; अथवा दूष्य पुरुषोंके द्वारा भेदको प्राप्त कराया हुआ मित्र, शीघ्रही विजिगीषुके अनुकूल होजाता है। इसप्रकार ये छः तरहके मित्र, विकारको प्राप्त होकर भी फिर विजिगीषुके वशमें होजाते हैं, और उसकी अनुकूलताको फिर छोड़ते भी नहीं ॥ २९ ॥

तस्मान्नोत्पादयेदनान्दोषान्मित्रोपघातकान् ।
उत्पन्नान्वा प्रशमयेद्गुणैर्दोषोपघातिभिः ॥ ३० ॥

इसलिये विजिगीषुको चाहिये, कि वह मित्रोंके साथ भेद डालनेवाले इन दोषोंको कभी उत्पन्न न होने दे; यदि कोई दोष उत्पन्न हो भी जावें, तो उन्हें, दोषोंको नाश करनेवाले गुणोंके द्वारा तत्कालही शान्त करदे ॥३०॥

यतोनिमित्तं व्यसनं प्रकृतीनामवाप्नुयात् ।

प्रागेव प्रतिकुर्वीत तन्निमित्तमतन्द्रितः ॥ ३१ ॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमे ऽधिकरणे बलव्यसनवर्गः, मित्रव्यसनवर्गः पञ्चमो ऽध्यायः ॥ ५ ॥ आदित एकविंशतिशतो ऽध्यायः ॥ १२१ ॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य व्यसनाधिकारिके अष्टममधिकरणम् समाप्तम् ॥ ८ ॥

तथा जिन कारणोंसे, स्वामी अमात्य आदि प्रकृतियोंके सम्बन्धमें जो व्यसनप्राप्त होवे; आलस्यरहित रहते हुए विजिगीषुको चाहिये कि उस व्यसनके उत्पन्न होनेसे पहिलेही उसके कारणोंका प्रतीकार करदे। (इस श्लोक को मूल पुस्तकोंमें मित्रव्यसनवर्गका निरूपण आरम्भ होनेसे पहिलेही रक्खा गया है। परन्तु नयचन्द्रिका व्याख्यामें इसको सबसे अन्तिम श्लोक मानकर अधिकरणके अन्तमेंही इसकी व्याख्या कीगई है। उसहीके अनुसार हमने भी व्याख्यान किया है ॥ ३१ ॥

व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरणमें पांचवां अध्याय समाप्त।

व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरण समाप्त!

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरण ।

पहिला अध्याय ।

१३५-१३६ प्रकरण ।

शक्ति, देश-कालके बलाबलका ज्ञान, और यात्रा-काल ।

उत्साह प्रभाव आदि शक्ति, सम विषम आदि देश और शीत उष्ण आदि समयकी अनुकूलताका अपनी सेनाके लिये होना बल, तथा शत्रुकी सेनाके लिये शक्ति आदिका अनुकूल न होना अबल कहाता है; प्रथम प्रकरणमें इन्हींका विचार किया जायगा। तदनन्तर यात्राके समयका निरूपण होगा ।

विजिगीषुरात्मनः परस्य च बलाबलं शक्तिदेशकालयात्राकालबलसमुत्थानकालपश्चात्कोपक्षयव्ययलाभापदां ज्ञात्वा विशिष्टबलो यायात् ॥ १ ॥ अन्यथासीत ॥ २ ॥

विजिगीषुको चाहिये, कि वह अपने और शत्रुके बलाबलको जानकर अर्थात् शक्ति, देश, काल, यात्रा-काल (सेनाके, किसी देशपर आक्रमण करनेका समय), बलसमुत्थानकाल (सेनाकी उन्नतिका समय), पश्चात्कोप (दूसरे देशपर आक्रमण करदेनेके अनन्तर, पीछेसे राजधानी आदिपर पार्ष्णिग्राह आदिके द्वारा आक्रमण किया जाना), क्षय (योग्य पुरुषोंका नाश होजाना), व्यय (धन आदिका नाश होजाना), लाभ (फलसिद्धि), और आपत्ति (बाह्य और आभ्यन्तर दोनों तरहकी विपत्ति=इसका १४३ प्रकरणमें निरूपण किया जायगा), इनके सम्बन्धमें शत्रु और अपने बलाबलको जानकर, फिर शत्रुकी अपेक्षा अपनी बहुत अधिक सेना लेकरही उसपर आक्रमण करे ॥ १ ॥ यदि सेनाका अधिक प्रबंध न होसके,तो आक्रमण न करना चाहिये, प्रत्युत आसनका ही अवलम्ब करे; अर्थात् चुपचाप अपने घर बैठा रहे ॥ २ ॥

उत्साहप्रभावयोरुत्साहः श्रेयान् ॥ ३ ॥ स्वयं हि राजा शूरो बलवानरोगः कृतास्त्रो दण्डद्वितीयो ऽपि शक्तः प्रभाववन्तं राजानं जेतुम्, अल्पो ऽपि चास्य दण्डस्तेजसा कृत्यकरो भवति ॥ ४ ॥ निरुत्साहस्तु प्रभाववान्राजा विक्रमाभिपन्नो नश्यतीत्याचार्याः ॥ ५ ॥

(शक्ति तीन प्रकारकी होती है:—उत्साह शक्ति, प्रभाव शक्ति और मन्त्र शक्ति; अब इनके पारस्परिक गुरुलघुभावका निरूपण किया जाता है:—) उत्साह शक्ति और प्रभाव शक्ति इन दोनोंमेंसे उत्साह शक्तिही श्रेष्ठ होती है ॥ ३ ॥ क्योंकि स्वयं शूर, बलवान्, नीरोग, शस्त्रास्त्र विद्याको जानने वाला, केवल अपनीही सेनाकी सहायता रखने वाला (अर्थात् मित्र आदिकी सहायता न होनेपर भी) शक्ति-शाली राजा अकेलाही प्रभाव शक्तिसे युक्त राजाको अच्छी तरह जीत सकता है। और थोड़ी भी इसकी सेना, इसके तेजसे हरतरहका कार्य करनेके लिये तैयार होजाती है ॥ ४ ॥ प्रभावशाली भी उत्साहहीन राजा तो पराक्रमके समय अवश्यही नष्ट होजाता है, अर्थात् पराक्रम करनेका अवसर आनेपर वह अपनी रक्षा नहीं कर सकता, यह प्राचीन अनेक आचार्योंका मत है ॥ ५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६ ॥ प्रभाववानुत्साहवन्तं राजानं प्रभावेनातिसंधत्ते ॥ ७ ॥ तद्विशिष्टमन्यं राजानमावाह्य हृत्वा क्रीत्वा प्रवीरपुरुषान्प्रभूतप्रभावहयहस्तिरथोपकरणसंपन्नश्चास्य दण्डः सर्वत्राप्रतिहतश्चरति ॥ ८ ॥ उत्साहवतश्च प्रभाववन्तो जित्वा क्रीत्वा च स्त्रियो बालाः पङ्गवो ऽन्धाश्च पृथिवीं जिग्युरिति ॥ ९ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य इस सिद्धान्तको युक्तिसंगत नहीं मानता ॥६॥ वह कहता है कि प्रभावशाली राजा, उत्साही राजाको अपने प्रभावके द्वारा दबा लेता है ॥७॥ और उससेभी अधिक उत्साही किसी दूसरे राजाको अपने पक्षमें मिलाकर तथा प्रवीरपुरुषों (बहादुर आदमियों) को भत्ता और वेतन आदि देने अथवा अत्यधिक धन देनेसे अपने वशमें करके और भी अधिक प्रभाव और घोड़े हाथी तथा रथ आदि साधनोंसे युक्त हुई २ इसकी सेना, विना किसी रोक टोकके सब जगह विचरण करती है ॥ ८ ॥ तथा ऐतिह्यभी इस बातमें प्रमाण है, कि स्त्री बालक लंगड़े और अन्धे भी प्रभावशाली राजाओंने अपने प्रभावके कारण उत्साही राजाओंको जीतकर, तथा धन आदिके द्वारा वशमें करके, पृथिवीपर विजयलाभ किया था ॥ ९ ॥

प्रभावमन्त्रयोः प्रभावः श्रेयान् ॥ १० ॥ मन्त्रशक्तिसंपन्नो हि वन्ध्यबुद्धिरप्रभावो भवति ॥ ११ ॥ मन्त्रकर्म चास्य निश्चितमप्रभावो गर्भधान्यमवृष्टिरिवोपहन्तीत्याचार्याः ॥ १२ ॥

प्रभावशक्ति और मन्त्रशक्ति इन दोनोंमेंसे प्रभावशक्तिही अधिक श्रेष्ठ होती है ॥ १० ॥ क्योंकि मन्त्रशक्तिसे सम्पन्न भी राजा, यदि प्रभावशक्तिसे रहित हो, तो उसका मन्त्र कभी सफल नहीं होता; तात्पर्य यह है कि कोई भी प्रभावहीन राजा विचारपूर्वक कार्य नहीं कर सकता ॥ ११ ॥ प्रभावशक्तिसे हीन राजाका विचारपूर्वक निश्चित किया हुआ भी मन्त्र कर्म (मन्त्र-रूप कार्य) इसीप्रकार नष्ट होजाता है, जैसे गर्भस्थ धान्य (अपनी उत्पत्तिमें वृष्टिकी अपेक्षा करने वाला धान्य) वृष्टिके न होनेसे नष्ट होजाता है । तात्पर्य यह है, कि प्रभाव-हीनता उसी तरह मन्त्रको नष्ट करदेती है, जैसे कि वृष्टिका न होना धान्यको । यह प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ १२ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १३ ॥ मन्त्रशक्तिः श्रेयसी ॥ १४ ॥ प्रज्ञाशास्त्रचक्षुर्हि राजाल्पेनापि प्रयत्नेन मन्त्रमाधातुं शक्तः परानुत्साहप्रभाववतश्च सामादिभिर्योगोपनिषद्भ्यां चातिसन्धातुम् ॥१५॥ एवमुत्साहप्रभावमन्त्रशक्तीनामुत्तरोत्तराधिको ऽतिसंधत्ते ॥ १६ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य, इस सिद्धान्तको युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ १३ ॥ वह कहता है कि प्रभावशक्तिकी अपेक्षा, मन्त्रशक्तिही अधिक श्रेष्ठ होती है ॥१४॥ क्योंकि बुद्धि तथा शास्त्ररूपी चक्षुओंसे युक्त राजा, थोड़ा भी प्रयत्न करके अपने मन्त्रका अच्छी तरह अनुष्ठान कर सकता है । और दूसरे अपने प्रतिद्वन्द्वी उत्साही तथा प्रभावशाली राजाओंको भी, साम आदि उपायोंके द्वारा, तीक्ष्ण रसद आदि गूढ पुरुषोंके द्वारा तथा औपनिषदिक प्रकरणमें कहे हुए विष या अग्नि आदिके प्रयोगोंके द्वारा दबा सकता है, अर्थात् उत्साह प्रभावशक्ति के थोड़े होने पर भी मन्त्रशक्ति के द्वारा उनको अपने वशमें कर सकता है ॥ १५ ॥ इस प्रकार उत्साहशक्ति प्रभावशक्ति और मन्त्रशक्तियोंमें से उत्तरोत्तर अधिक शक्ति से युक्त हुआ २ राजा, पूर्व पूर्व शक्ति से युक्त राजा को दबा सकता है । यहां तक शक्ति का निरूपण किया गया ॥ १६ ॥

देशः पृथिवी ॥ १७ ॥ तस्यां हिमवत्समुद्रान्तरमुदीचीनं योजनसहस्रपरिमाणं तिर्यक्चक्रवर्तिक्षेत्रम् ॥ १७ ॥ तत्रारण्यो ग्राम्यः पार्वत औदको भौमः समो विषम इति विशेषाः ॥१९॥

अब इसके आगे देशका निरूपण किया जायगा । पृथिवीका ही नाम देश है ॥ १७ ॥ पृथिवीपर हिमालयसे दक्षिण समुद्र पर्यन्त अर्थात् उत्तर दक्षिणमें हिमालय और समुद्रके बीच का तथा एक हजार योजन तिरछा अर्थात पूर्व पश्चिमकी ओर एक हजार योजन विस्तारवाला, पूर्व पश्चिम समुद्र की सीमासे युक्त देश चक्रवर्तिक्षेत्र कहाता है । अर्थात् इतने प्रदेश पर शासन करनेवाला राजा चक्रवर्ती होता है ॥ १८ ॥ उस चक्रवर्ती क्षेत्रमें जंगल, आबादी, पहाड़ी इलाका, जलभाग, स्थलप्राय, समतल तथा ऊबड़-खाबड़ ये विशेष भाग होते हैं ॥ १९ ॥

तेषु यथास्वबलवृद्धिकरं कर्म प्रयुञ्जीत ॥ २० ॥ यत्रात्मनः सैन्यव्यायामानां भूमिरभूमिः परस्य स उत्तमो देशः, विपरीतोऽधमः, साधारणो मध्यमः ॥ २१ ॥

इन विशेष भूभागों पर, जिस प्रकार अपनी सेना की वृद्धि होसके, उस तरह कार्यों का प्रयोग करे अर्थात् उसी अवस्था में युद्ध आदि कार्यों को करे, जब कि अपना विजय और दूसरे का पराजय निश्चित हो ॥ २० ॥ जिस प्रदेश में अपनी सेना की क़वायद आदिके लिये अच्छी भूमि मिल सके, तथा शत्रु की सेना की क़वायदका कुछ भी सुभीता न हो, उसको उत्तम देश समझना चाहिये । जो इसमे विपरीत हो (अर्थात जिसमें अपनी सेनाकी क़वायदके लिये कुछ भी सुभीता न हो, और शत्रुकी सेना की क़वायदके लिये हर तरहका सुभीता हो) वह अधम, तथा जो अपने और शत्रुके लिये साधारण हो (अर्थात जिसमें दोनोंके लिये क़वायद आदिका सुभीता होना न होना बराबर हो) वह मध्यम देश होता है । यहांतक देशका निरूपण कर दिया गया ॥ २१ ॥

कालः शीतोष्णवर्षात्मा ॥ २२ ॥ तस्य रात्रिरहः पक्षो मास ऋतुरयनं संवत्सरो युगमिति विशेषाः ॥ २३ ॥ तेषु यथास्वबलवृद्धिकरं कर्म प्रयुञ्जीत ॥ २४ ॥ यत्रात्मनः सैन्यव्यायामानामृतुरनृतुः परस्य स उत्तमः कालो, विपरीतोऽधमः साधारणो मध्यमः ॥ २५ ॥

अब काल का निरूपण किया जायगा। वह तीन भागोंमें विभक्त है— सरदी, गर्मी, और वर्षा ॥ २२ ॥ उस कालके निम्न लिखित विशेष भेद हैं:—रात, दिन, पक्ष (पक्ष=पन्द्रह पन्द्रह दिन का शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष) महीना, ऋतु, अयन (छः महीने का एक अयन होता है, एक वर्ष में दो

अयन होते हैं, उत्तरायण और दक्षिणायन), संवत्सर (साल), और युग ॥ २३ ॥ समय के इन विशेष भागों में, विजिगीषु अपनी सेना की वृद्धि करने वाले कार्योंका अनुष्ठान करे, अर्थात् इस प्रकार के कार्योंको करे, जिससे अपनीही सेना की वृद्धि हो सके ॥ २४ ॥ जो ऋतु आदि अपनी सेनाके व्यायामके लिये सर्वथा अनुकूल हो और शत्रुकी सेनाके लिये सर्वथा प्रतिकूल हो, वह ऋतु आदि काल उत्तमकाल समझना चाहिये । इससे विपरीतकाल अधम, और अपने तथा शत्रु के लिये साधारण काल मध्यमकाल कहाता है। यहांतक शक्ति देश तथा काल के अवान्तर भेद तथा उनके बलाबल का विचार किया गया ॥ २५ ॥

शक्तिदेशकालानां तु शक्तिः श्रेयसीत्याचार्याः ॥ २६ ॥ शक्तिमान्हि निम्नस्थलवतो देशस्य शीतोष्णवर्षवतश्च कालस्य शक्तः प्रतीकारे भवति ॥ २७ ॥

अब इसके आगे शक्ति देश और काल इन तीनों के परस्पर बलाबल का विचार किया जायगा । आचार्यों का मत है कि शक्ति, देश और काल इन तीनों में से शक्ति ही सब की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होती है ॥ २६ ॥ क्योंकि शक्ति से युक्त राजा, ऊबड़खाबड़ तथा पथरीले प्रतिकूल देश के और सरदी गर्मी तथा वर्षासे युक्त प्रतिकूल कालके प्रतीकार करनेमें अच्छी रतह समर्थ होताहै ॥ २७ ॥

देशः श्रेयानित्येके ॥ २८ ॥ स्थलगतो हि श्वा नक्रं विकर्षति निम्नगतो नक्रः श्वानमिति ॥ २९ ॥

किन्हीं और प्राचीन आचार्यों का मत है कि शक्ति देश और काल इन तीनोंमेंसे देश ही सबकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होता है ॥ २८ ॥ क्योंकि अपने अनुकूल स्थल देशमें खड़ा हुआ कुत्ता, जलचर नक्र (नांक) को खींच लेता है तथा अपने अनुकूल निम्नस्थल (जलदेश) में खड़ा हुआ नक्र उस देशके ही प्रभावसे कुत्तेको खींच लेता है । तात्पर्य यह है कि अपने २ अनुकूल देशमें ही स्थित होकर प्रत्येक व्यक्ति अपने विरोधीको नीचा दिखा सकता है इस लिये शक्ति आदि तीनोंमेंसे देशको ही प्रधान समझना चाहिये ॥ २९ ॥

कालः श्रेयानित्येके ॥ ३० ॥ दिवा काकः कौशिकं हन्ति रात्रौ कौशिकः काकमिति ॥ ३१ ॥

इसके अतिरिक्त किन्हीं आचार्योंका यहभी मत है, कि कालको ही अन्य सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ समझना चाहिये ॥ ३० ॥ क्योंकि कालके ही प्रभाव-

से दिनमें कौआ उल्लूको मार डालता है, और रात्रिमें उल्लू कौएको मार डालता है। तात्पर्य यह है, कि जिसके अनुकूल जो काल होता है, वह उसके भरोसेपरही अपने बलवान् विरोधीको भी नष्ट कर देता है। इस लिये कालकोही सबकी अपेक्षा प्रधान समझना चाहिये ॥ ३१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३२ ॥ परस्परसाधका हि शक्तिदेशकालाः ॥ ३३ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य, पृथक् २ शक्ति आदिको प्रधान मानने वाले इन आचार्योंके मतको युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ ३२ ॥ क्योंकि वह कहता है, कि शक्ति देश और काल ये तीनोंही परस्पर एक दूसरेके साधक होते हैं। इनमेंसे किसी एकको प्रधान और दूसरेको अप्रधान न समझना चाहिये, प्रत्युत तीनोंही एक दूसरेकी अपेक्षा करके कार्यको सिद्ध करने वाले होते हैं, इस लिये सबके ऊपर समानही प्रधानता समझनी चाहिये। यहां तक शक्ति देश और कालके बलाबलका विचार किया गया ॥ ३३ ॥

तैरभ्युच्चितस्तृतीयं चतुर्थं वा दण्डस्यांशमूले पार्ष्ण्यां प्रत्यन्ताटवीषु च रक्षां विधाय कार्यसाधनसहं कोशदण्डं चादाय क्षीणपुराणभक्तमगृहीतनवभक्तमसंस्कृतदुर्गमामित्रं वार्षिकं चास्य सस्यं, हैमनं च मुष्टिमुपहन्तुं मार्गशीर्षीं यात्रां यायात् ॥३४॥

अब इसके आगे यात्राकालका निरूपण किया जायगा; शत्रुको लक्ष्य करके विजिगीषुके द्वारा किये गये आक्रमणका नाम 'यात्रा' है; उसके लिये समुचित कालोंका कथन किया जायगा:—अपने अनुकूल शक्ति देश और कालसे युक्त हुआ २ अर्थात् शक्ति आदि के द्वारा शत्रुकी अपेक्षा अधिक अतिशय को प्राप्त हुआ २ विजिगीषु, आवश्यकतानुसार सेनाके तिहाई अथवा चौथाई हिस्सेको मूल (राजधानी), पार्ष्णि (पृष्ठभाग), और सरहदी इलाकोंके जंगलोंमें रक्षाके लिये स्थापित करके, कार्यको सिद्ध करनेमें समर्थ अर्थात् कार्यको पूरा करनेमें उपयोगी कोश (खज़ाना) और सेनाको लेकर, शत्रुको नष्ट करनेके लिये मार्गशीर्ष (मंगसिर=अगहन) महीनेमें शत्रुकी ओर आक्रमण करे। इस समयमें शत्रु पर आक्रमण करनेसे विजिगीषुको बड़ा लाभ रहता है, क्योंकि इस ऋतुमें शत्रुका पुराना संगृहीत किया हुआ अन्न समाप्त हो चुकता है, नई फसलके अन्नका अभी तक संग्रह नहीं होता, और वर्षाके अनन्तर किलोंकी मरम्मतभी नहीं हो पाती। तथा वर्षा ऋतुके उत्पन्न हुए २ धान्यको, और आगे हेमन्त ऋतुमें उत्पन्न होने वाली फसलको भी नष्ट करनेके लिये यह यात्रा उपयोगी होती है। यह यात्राका पहिला समय है ॥ ३४ ॥

हैमनं चास्य सस्यं वासन्तिकं च मुष्टिमुपहन्तुं चैत्रीं यात्रां यायात् ॥ ३५ ॥ क्षीणतृणकाष्ठोदकमसंस्कृतदुर्गममित्रं वासन्तिकं चास्य सस्यं वार्षिकीं वा मुष्टिमुपहन्तुं ज्येष्ठामूलीयां यात्रां यायात् ॥ ३६ ॥

इसी प्रकार, हेमन्तऋतुमें उत्पन्न हुए २ धान्योंको, तथा वसन्तऋतुमें होनेवाली फसलको नष्ट करनेके लिये चैत्र मासमें शत्रुपर आक्रमण करना चाहिये। यह दूसरा यात्राकाल समझना चाहिये ॥ ३५ ॥ इसी तरह, वसन्त ऋतुमें तयार किये हुए धान्योंको, तथा आगे वर्षाऋतुमें उपजनेवाली फसल को नष्ट करनेके लिये ज्येष्ठ (जेठके) महीनेमें यात्रा करे। क्योंकि इस ऋतुमें शत्रुके तृण (घास फूंस आदि), काष्ठ (लकड़ी, सोख्ता आदि), तथा जल आदि पदार्थ क्षीण अर्थात् नष्ट या कम होजाते हैं, और इसीलिये वह अपने दुर्ग आदि आदिकी मरम्मत भी नहीं करा सकता। ये तीनों यात्राकाल शत्रुको हानि पहुंचानेके लिये बहुत अच्छे होते हैं। तात्पर्य यह है कि इन यात्राकालोंमें शत्रुपर आक्रमण करके, विजिगीषु शीघ्रही उसको अपने अधीन कर सकता है ॥ ३६ ॥

अत्युष्णमल्पयवसेन्धनोदकं वा देशं हेमन्ते यायात् ॥३७॥ तुषारदुर्दिनमगाधनिम्नप्रायं गहनतृणवृक्षं वा देशं ग्रीष्मे यायात् ॥३८॥ स्वसैन्यव्यायामयोग्यं परस्यायोग्यं वर्षति यायात् ॥३९॥

अब देशोंके अनुसार यात्राकालका निरूपण किया जायगा;—अत्यन्त गरम और थोड़ेही गौत (पशुओंकी खाद्य सामग्रीको गौत कहते हैं, उसके लिये यहां 'यवस' शब्द है), इंधन तथा जल वाले देशको हेमन्त ऋतुमें जावे; अर्थात् ऐसे देश पर हेमन्त ऋतुमें आक्रमण करना सुखप्रद होता है ॥ ३७ ॥ जिस देशमें लगातार बरफ़ या बारिश पड़ती हो, बड़े २ गहरे तालाब हों, बड़े घने जंगल या घासके मैदान हों; ऐसे देशको ग्रीष्म ऋतुमें जावे। गरमियोंमें आवश्यक सब चीजोंका सुभीता होनेके कारण ऐसे देशों पर गरमी में ही आक्रमण करना सुखकर होता है ॥ ३८॥ अपनी सेनाके लिये कवायद आदि करनेके योग्य, तथा शत्रुकी सेनाके लिये कवायद आदि करनेके सर्वथा अयोग्य देश पर, वर्षा ऋतुमें आक्रमण करे। अर्थात् वर्षा ऋतुमें ऐसे देश पर आक्रमण करे, जहां अपनी सेनाके लिये तो कवायद आदि का सुभीता हो, परन्तु शत्रुकी सेनाके लिये कवायद आदिका किसी तरहका भी सुभीता न हो ॥ ३९ ॥

मार्गशीर्षी तैषीं चान्तरेण दीर्घकालां यात्रां यायात् ॥४०॥ चैत्रीं वैशाखीं चान्तरेण मध्यमकालां,ज्येष्ठामूलीयामाषाढीं चान्तरेण ह्रस्वकालामुपोषिष्यन् ॥ ४१ ॥

मार्गशीर्ष और पौष इन दोनों महीनोंके बीचमें, दीर्घकालकी अपेक्षा करने वाली यात्राको करे। तात्पर्य यह है, कि जब किसी दूर देश पर आक्रमण करना हो, जहां कि निश्चित रूपसे अधिक समय लग जानेकी सम्भावना है, तो मार्गशीर्ष यात्राको ही करे, अर्थात् मार्गशीर्षमें ही आक्रमण करे, क्योंकि इस समयसे, दूरकी यात्रामें विघ्न करने वाली वर्षा ऋतु बहुत दूर रहती है ॥ ४० ॥ इसी प्रकार चैत्र और वैशाख इन दो महीनोंमें, मध्यमकाल यात्राको करे; अर्थात् जिस आक्रमणके लिये न बहुत अधिक न बहुत न्यून समयकी आवश्यकता हो, वह चैत्र वैशाखके महीनेमें करना चाहिये। और जिस आक्रमणके लिये थोड़े ही समयकी अपेक्षा हो, वह जेठ तथा असाढ़ इन दो महीनों के बीचमें करना चाहिये। क्योंकि जब शत्रुका देशके समीप जाकर केवल आग लगाना,या इसी प्रकारका अन्य उपद्रवही करना हो,जिसके लिये कि बहुत थोड़े समयकी अपेक्षा है; तो इस ऋतुमें जाना अच्छा होता है। क्योंकि युद्ध आदि के लिये तो अधिक समयकी आवश्यता होती है ॥ ४१ ॥

व्यसने चतुर्थीम् ॥४२॥ व्यसनाभियानं विगृह्ययाने व्याख्यातम् ॥ ४३ ॥

यहांतक मार्गशीर्षी आदि यात्राओंका निरूपण करके, अब शत्रुके ऊपर आपत्तिके समयमें,की जानेवाली चौथी यात्राका निरूपण कियाजायगा:—शत्रु पर आपत्ति आनेके समयमें, मार्गशीर्ष आदि काल नियम की कुछ भी अपेक्षा न करने वाली चौथी यात्राका अवलम्ब करना चाहिये। अर्थात् जब कभी भी शत्रुपर व्यसन आवे, उसी समयमें उसपर आक्रमण करदेना चतुर्थी यात्रा कहाती है ॥४२॥ शत्रुपर व्यसन आनेपर उसकी ओर यात्रा करनेका विगृह्ययान प्रकरणमें निरूपण करदिया गया है। (देखो अधि ७, अध्या० ४) ॥ ४३ ॥

प्रायशश्चाचार्याः परव्यसने यातव्यमित्युपदिशन्ति॥ ४४ ॥ शक्त्युदये यातव्यमनैकान्तिकत्वाद्व्यसनानामिति कौटल्यः ॥४५॥

प्रायः प्राचीन आचार्यही यह उपदेश करते हैं, कि शत्रुपर आपत्ति आनेपरही आक्रमण करना चाहिये ॥ ४४ ॥ कौटल्य आचार्यका तो अपना यह सिद्धांत है, कि विजिगीषु की शक्तिका अभ्युदय होनेपरही शत्रुपर आक्रमण करना चाहिये। अर्थात् शत्रुकी अपेक्षा विजिगीषु जब अधिक शक्तिसम्पन्न

हो तभी उसपर आक्रमण करदेना चाहिये; क्योंकि अपनी शक्तिका अधिक होना अवश्यही कार्य को सिद्ध करने वाला होता है । शत्रुकी आपत्तिका कोई ठिकाना नहीं, यदि शत्रुपर आपत्ति आई हुई भी हो, फिर भी विजिगीषुकी शक्ति बढी हुई न होनेके कारण यह निश्चित नहीं होसकता कि विजिगीषुको विजय लाभ हो ही जावेगा । इसलिये आक्रमण करनेके सम्बन्धमें शत्रुके व्यसनकी अपेक्षा न करके विजिगीषुको अपनी शक्तिके अभ्युदयकीही अधिक अपेक्षा करनी चाहिये ॥ ४५ ॥

यदा वा प्रयातः कर्शयितुमुच्छेत्तुं वा शक्नुयादमित्रं तदा यायात् ॥ ४६ ॥

अथवा जिस किसी समयमें भी आक्रमण करने पर विजिगीषु अपने शत्रुको निर्बल बनासके, या उसका उच्छेद करसके, उसी समय उसपर आक्रमण करना चाहिये । तात्पर्य यह है कि जब भी विजिगीषु अपने आप को इतना शक्तिसम्पन्न समझे, कि वह शत्रुको दबा या नष्ट कर सके, तभी उसपर आक्रमण करदे, शत्रुके व्यसन और अपने अभ्युदयकी भी विशेष अपेक्षा न करनी चाहिये ॥ ४६ ॥

अत्युष्णोपक्षीणे काले ऽहस्तिबलप्रायो यायात् ॥ ४७ ॥ हस्तिनो ह्यन्तःस्वेदाः कुष्ठिनो भवन्ति ॥ ४८ ॥ अनवगाहमानास्तोयमपिबन्तश्चान्तरक्षाराच्चान्धीभवन्ति ॥ ४९ ॥ तस्मात्प्रभूतोदके देशे वर्षति च हस्तिबलप्रायो यायात् ॥ ५० ॥

अब सेनाके अनुसार काल नियमका कथन कियाजायगा:—अत्यधिक उष्णतायुक्त समय में हाथियोंकी सेनाके अतिरिक्त अर्थात् हाथियोंकी सेनाको छोड़कर ऊंट आदिकी सेनाको साथ लेकर ही आक्रमण करना चाहिये ॥ ४७ ॥ क्योंकि हाथी, बाहर न निकलनेके कारण भीतर ही स्थित हुए २ पसीनेके झरनेसे कोढी होजाते हैं, अर्थात् अत्यधिक उष्ण देशमें हाथीकी खाल दूषित हो जाती है, और कुछ रोग सा होजाता है ॥ ४८ ॥ तथा पानीमें न नहानेके कारण और अच्छी तरह जल न पीनेके कारण, अन्दरका दाह अधिक बढ़ जानेसे हाथी अन्धे भी होजाते हैं ॥ ४९ ॥ इसलिये जिस देशमें जल बहुत अधिक हो, और वर्षा ऋतुमें ही, हाथियोंकी सेनाको लेकर आक्रमण करना चाहिये ॥ ५० ॥

विपर्यये खरोष्ट्राश्वबलप्रायः ॥ ५१ ॥ देशमल्पवर्षपङ्कं वर्षति मरुप्रायं चतुरङ्गबलो यायात् ॥ ५२ ॥ समविषमानिम्न

स्थलह्रस्वदीर्घवशेन वाध्वनो यात्रां विभजेत् ॥ ५३ ॥

जहां ऐसा न हो, अर्थात् जलका स्थायी प्रबन्ध भी नहो, और वर्षा ऋतु भी नहो, ऐसे देश तथा समयमें गधे ऊंट तथा घोड़ोंकी सेनाको लेकर ही आक्रमण करना चाहिये । ऐसी अवस्थामें हाथियोंकी सेनाको कभी न लेजावे ॥ ५१ ॥ जिस देशमें वर्षाके होनेपर भी कीचड़ थोड़ी ही होती हो, ऐसे मरुप्राय प्रदेशमें (रेगिस्तान आदिमें) वर्षा ऋतुमें चतुरंग सेना (हाथी, घोड़े, रथ और पदाति) को लेकर भी आक्रमण किया जासकता है ॥ ५२ ॥ अथवा मार्गके सम विषम निम्न स्थल ह्रस्व तथा दीर्घ होनेके कारण भी यात्रा को विभक्त किया जासकता है । (सम=समतल, एकसी जमीन जो ऊंची नीची नहो, विषम=ऊंची नीची, निम्न=जलप्राय, स्थल=स्थलप्राय, ह्रस्व=थोड़े ही समयमें तै किया जाने वाला, तथा दीर्घ=बहुत समयमें तै किया जाने वाला मार्ग) ॥ ५३ ॥

सर्वा वा ह्रस्वकालाः स्युर्यातव्याः कार्यलाघवात् ।
दीर्घाः कार्यगुरुत्वाद्वा वर्षावासः परत्र च ॥ ५४ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे शक्तिदेशकालबलाबलज्ञानं यात्राकालाः
प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥ आदितो द्वाविंशशततो ऽध्यायः ॥ १२२ ॥

सबही यात्राएं कार्यके थोड़ा होनेके कारण ह्रस्वकाल होती हैं । अर्थात् कार्य थोड़ा होनेपर, उनके लिये किये जाने वाले आक्रमण थोड़ाही समय लेते हैं । इसीप्रकार जो कार्य बड़े होते हैं, उनके लिये कीजाने वाली यात्रामें बहुत समय लगता है । और कभी २ कार्याधिक्यके कारणही वर्षा ऋतुमें भी (जब कि अपनेही देशमें वास करना चाहिये)दूसरे देशमें निवास करना पड़ता है । इसलिये कार्योंकी गुरुता लघुताके अनुसारही यात्राओंका ह्रस्वकाल तथा दीर्घकाल समझना चाहिये ॥ ५४ ॥

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय ।

१३७-१३९ प्रकरण ।

सेनाओंके तैयार होनेका समय, सन्नाहगुण और प्रतिबलकर्म ।

इस अध्यायमें तीन प्रकरण हैं, पहिले प्रकरणमें सेनाओंके तैयार होने या उनको उचित कार्योंपर लगानेके समयका निरूपण किया जायगा । दूसरे प्रकरणमें सेनाओंके उद्योगके गुणोंका, तथा तीसरे प्रकरणमें शत्रुकी सेनाके अनुरूपही शक्ति आदिके द्वारा अपनी सेनाको भी बनानेके उपायोंका निरूपण किया जायगा ।

मौलभृतकश्रेणीमित्रामित्राटवीबलानां समुदानकालाः ॥१॥

मौलबल (मूलस्थान अर्थात् राजधानीकी रक्षा करने वाली सेना), भृतकबल (नौकरी देकर बनाई हुई सेना), श्रेणीबल (जनपदमें अपना २ काम करने वाले शस्त्रास्त्र विद्यामें निपुण पुरुषोंकी सेना), मित्रबल (मित्रकी सेना), अमित्रबल (शत्रुकी सेना), और अटवीबल (आटविक पुरुषोंकी सेना), इनके युद्धादि कार्योंमें जानेके लिये तयार होनेके समयका निरूपण किया जायगा । तात्पर्य यह है, कि इन भिन्न २ सेनाओंको किस २ अवसरपर युद्धके लिये तैयार करना चाहिये, इसका निरूपण किया जायगा ॥ १ ॥

मूलरक्षणादतिरिक्तं मौलबलम् ॥ २ ॥ अत्यावापयुक्ता वा मौला मूले विकुर्वीरन्निति ॥ ३ ॥ बहुलानुरक्तमौलबलः सारबलो वा प्रतियोद्धा व्यायामेन योद्धव्यमिति ॥ ४ ॥

सबसे पहिले मौलबलके तयार होनेकेही कारणोंको बताया जाता है:— मूलस्थानकी रक्षा करनेके लिये जितनी सेना पर्याप्त है, उससे अधिक मौल सेना हो, तो उसे युद्धमें लेजाना चाहिये ॥ २ ॥ अथवा मौलबल इस समय अत्यन्त द्रोह करनेमें लगा हुआ होनेके कारण, हमारे चले जानेपर मूलस्थान में अवश्यही हमारे विरुद्ध आन्दोलन करेगा; ऐसी अवस्थामें भी मौलबलको अपने साथही युद्ध आदि कार्योंपर लेजाना चाहिये ॥ ३ ॥ अथवा अपना मुकाबला करनेवाला शत्रु, उसमें (शत्रुमें) अत्यन्त अनुराग रखनेवाले मौलबलको लेकर या शक्तिशाली दूसरे सैन्यको लेकर मेरे साथ युद्ध करनेके लिये आया है, इसलिये उसके साथ बहुत प्रयत्नपूर्वक युद्ध करना चाहिये;ऐसी अवस्थामें भी विजिगीषु अपने मौलबलको लेकरही उसके साथ मुकाबला करे ॥ ४ ॥

प्रकृष्टे ऽध्वनि काले वा क्षयव्ययसहत्वान्मौलानामिति ॥ ५ ॥ बहुलानुरक्तसंपाते च यातव्यस्योपजापभयादन्यसैन्यानां भृतानामविश्वासे ॥ ६ ॥ बलक्षये वा सर्वसैन्यानामिति मौलबलकालः ॥ ७ ॥

बहुत लम्बा रास्ता तै करनेके बाद, या बहुत समयमें शत्रुके साथ युद्ध करनेकी तैयारी होनेपर क्षय (मनुष्योंका नाश) और व्यय (धनका नाश) अवश्यम्भावी है; मौलबलही उसको सहन कर सकता है, इस कारणसे भी मौलबलको युद्धपर लेजाना चाहिये ॥ ५ ॥ अपने स्वामीमें अत्यन्त अनुराग रखने वाले शत्रुके दूत, यहां आकर अवश्यही मेरी सेनाओंमें भेद डालनेका यत्न करेंगे, इस प्रकार शत्रुके द्वारा भेद डालजानेके भयसे, और मौल सेनाके अतिरिक्त अन्य भृत आदि सेनाओंपर पूरा विश्वास न होनेके कारण, ऐसे अवसरपर मौलबलकोही युद्धके लिये लेजाना चाहिये; क्योंकि मौलबल अत्यन्त विश्वस्त होता है, उसमें भेद नहीं डाला जासकता ॥ ६ ॥ अथवा अन्य सब सेनाओंका क्षय होजानेपर मौलबलको युद्धके लिये लेजावे तात्पर्य यह है, कि जब अन्य सेनाओंके प्रधान पुरुषोंका नाश होजाय, और विजिगीषुको यह डर हो, कि अब यह सेना कहीं खेत छोड़कर भाग न खड़ी हो, उस समय मौलबलको बुलाकर युद्धके लिये तयार करदे। ये सब मौलबलके युद्धादि कार्योंपर नियुक्त होनेके अवसर समझने चाहियें ॥ ७ ॥

प्रभूतं मे भृतबलमल्पं च मौलबलमिति ॥ ८ ॥ परस्याल्पं विरक्तं वा मौलबलं फल्गुप्रायमसारं वा भृतसैन्यमिति ॥ ९ ॥ मन्त्रेण योद्धव्यमल्पव्यायामेनेति ॥ १० ॥

अब भृतबलके उन अवसर या कारणोंका निरूपण किया जायगा:— मेरे (विजिगीषुके) पास भृतबल बहुत अधिक है, और मौलबल थोड़ा है, ऐसे अवसर पर भृतबलको ही युद्धपर लेजाना चाहिये ॥ ८ ॥ शत्रुका मौल बल थोड़ा है, तथा उसमें अनुराग भी नहीं रखता, इसलिये मेरा भृतबल ही उसके मुकाबलेमें कार्य सिद्ध करनेके लिये पर्याप्त है; इस कारणसे भी भृतबल को ही युद्धके लिये लेजावे। अथवा शत्रुका भृतसैन्य शक्तिहीन तथा न होनेके बराबर है, अर्थात बहुत थोड़ा है; तब भी विजिगीषु अपने भृतबल को ही युद्धके लिये तैयार करे ॥ ९ ॥ अथवा मन्त्रसे ही युद्ध करना पड़ेगा, अर्थात इस समयमें शत्रुके साथ तूष्णींयुद्ध ही करना पड़ेगा, उसमें थोड़े ही श्रमसे कार्य हो सकता है, इस कारण से भी भृतबलकोही युद्धके लिये ले जावे ॥ १० ॥

ह्रस्वो देशः कालो वा तनुक्षयव्यय इति ॥ ११ ॥ अल्पसम्पातं शान्तोपजापं विश्वस्तं वा मे सैन्यमिति ॥ १२ ॥ परस्याल्पः प्रसारो हन्तव्य इति भृतबलकालः ॥ १३ ॥

अथवा युद्धके लिये गन्तव्य देश बहुत दूर नहीं है, समय भी थोड़ा लगना है, तथा क्षय और व्यय भी बहुत थोड़ा ही होगा; ऐसा निमित्त होने परभी भृतबलको ही युद्धके लिये लेजावे ॥ ११ ॥ शत्रुके दूत मेरी सेनामें बहुत कम आसकते हैं, तथा वह भेदभी नहीं डाल सकते, यदि थोड़ा बहुत डाल भी दें, तो उसको अच्छी तरह शान्त भी किया जासकता है, क्योंकि यह मेरी सेना बहुत विश्वस्त है, ऐसा निमित्त होने परभी अपने भृतबलको ही युद्धके लिये लेजावे ॥ १२ ॥ शत्रुके थोड़े ही फैलाव का विघात करना है, अर्थात् तृणकाष्ठ आदि साधारण वस्तुओं को ही उसके पासतक न पहुंचने देनेके लिये यत्न करना है, और उसके लिये मेरा भृतबल ही पर्याप्त है; ऐसा अवसर होने परभी भृतबलको ही युद्ध करनेके लिये लेजावे । यहां तक भृतबलके तयार होनेके अवसरोंका निरूपण किया गया ॥ १३ ॥

प्रभूतं मे श्रेणीबलं शक्यं मूले यात्रायां चाधातुमिति ॥१४॥ ह्रस्वः प्रवासः श्रेणीबलप्रायः प्रतियोद्धा मन्त्रव्यायामाभ्यां प्रतियोद्धुकामो दण्डबलव्यवहार इति श्रेणीबलकालः ॥ १५ ॥

अब श्रेणी बलके समयका निरूपण किया जाता है:—मेरे (=विजिगीषुके) पास श्रेणीबल बहुत अधिक है, उसको मूलस्थानकी रक्षामें भी लगा सकता हूं, और शत्रुके साथ युद्ध करनेके समयमें भी उसे साथ लेजा सकता हूं ॥ १४ ॥ थोड़ी दूरका सफर है, मुकाबलेमें लड़ने वाला शत्रु भी प्रायः श्रेणीबलको ही लेकर युद्ध करनेको तयार है, अथवा शत्रु मन्त्र (तूष्णींयुद्ध) या व्यायाम (प्रकाशयुद्ध) के द्वारा मुकाबला करना चाहता है, अथवा जब शत्रु दण्डसे डरा हुआ होनेके कारण अपनी सेनाको किसी दूसरे राजाके सुपर्द करके युद्ध व्यापारको चलाने वाला हो; विजिगीषुको चाहिये, कि वह इन सब अवसरोंपर अपने श्रेणीबलका उपयोग करे ॥ १५ ॥

प्रभूतं मे मित्रबलं शक्यं मूले यात्रायां चाधातुमल्पः प्रवासो मन्त्रयुद्धाच्च भूयो व्यायामयुद्धमिति ॥ १६ ॥ मित्रबलेन वा पूर्वमटवीं नगरस्थानमासारं वा योधयित्वा पश्चात्स्वबलेन योधयिष्यामि ॥ १७ ॥

अब मित्र सेनाके उपयोगका समय बताते हैं:—मेरे (=विजिगीषुके) पास मित्रसेना बहुत है, मैं उसको मूलस्थानकी रक्षामें भी लगा सकता हूं, और शत्रुके साथ युद्ध करनेके लिये भी लेजा सकता हूं। सफ़र भी बहुत थोड़ा है, मन्त्रयुद्ध (तूष्णीयुद्ध) की अपेक्षा वहां अधिकतर व्यायामयुद्ध (प्रकाशयुद्ध) ही होगा, इसलिये अधिक क्षय व्ययकी भी सम्भावना नहीं है ॥ १६ ॥ अथवा शत्रुकी आटविक सेना या मित्रसेनाको, जो कि उसके नगरमें आकर ठहरी हुई है, पहिले अपनी मित्रसेनाके साथ लड़ाकर, फिर अपनी सेनाके साथ लड़ाऊंगा ॥ १७ ॥

मित्रसाधारणं वा मे कार्यम्, मित्रायत्ता वा मे कार्यसिद्धिः ॥ १८ ॥ आसन्नमनुग्राह्यं वा मे मित्रमत्यात्मापं वास्य साधयिष्यामीति मित्रबलकालः ॥ १९ ॥

अथवा इस युद्धादि कार्यमें जितना मेरा प्रयोजन है, उतनाही मेरे मित्रका भी है; अथवा इस कार्यकी सिद्धि मित्रके ही अधीन है ॥ १८ ॥ अथवा मेरा मित्र मेरे अत्यन्त समीप या मेरा अन्तरंग है, मुझे अवश्यही इसका कुछ उपकार करना चाहिये। अथवा अपने मित्रके दूष्य बलको (मित्रसे द्रोह रखने वाली सेनाको) शत्रुके साथ भिड़ाकर मरवा डालूंगा, इत्यादि निमित्तोंसे मित्रसेनाको युद्धपर लेजाना चाहिये। अर्थात् मित्रसेनाको युद्धपर लेजानेके लिये उपर्युक्त ये अवसर या समय समझने चाहिये ॥ १९ ॥

प्रभूतं मे शत्रुबलं शत्रुबलेन योधयिष्यामि नगरस्थानमटवीं वा ॥ २० ॥ तत्र मे श्ववराहयोः कलहे चण्डालस्येवान्यतरसिद्धिर्भविष्यति ॥ २१ ॥

अब शत्रुसेनाके समयका निरूपण करते हैं:—मेरे पास शत्रुसेना बहुत अधिक है, अर्थात् मेरी शक्तिके सामने झुकी हुई बहुतसी शत्रु सेना मेरे वशमें है, जो कि मेरे नगरमें ठहरी हुई है। इसी सेनाको मैं अपने दूसरे शत्रुके साथ लड़ाऊंगा; अथवा आटविक सेनाको शत्रुसेनाके साथ लड़ाऊंगा ॥ २० ॥ इसप्रकार दोनों शत्रुसेनाओंके आपसमेंही भिड़जानेपर, दोनोंमेंसे किसी एकके नाश होनेपर मेरे अभीष्टकी सिद्धि होगी; जैसे कुत्ते और सूअरके आपसमें लड़नेपर, दोनोंमेंसे किसी एकके मरजानेपर, (कुत्ता और सूअर दोनोंको खा जाने वाले) चण्डालका लाभही होता है। इस निमित्तके होनेपर एक शत्रुसेनाकोही दूसरे शत्रुके सेनाके साथ लड़नेके लिये भेजे ॥ २१ ॥

आसाराणामटवीनां वा कण्टकमर्दनमुत्पादयिष्यामि ॥ २२ ॥

अत्युपचितं वा कोपभयान्नित्यमासन्नमरिबलं वासदयेन्यत्राभ्यन्तरकोपशङ्कायाः शत्रुयुद्धावरयुद्धकालश्चेत्यमित्रबलकालः ॥ २३ ॥

अथवा अपने मित्र की सेना तथा आटविक सेनाके कण्टकों (कष्ट देने वालों)का इस रीतिसे उन्मूलन करसकूंगा, तात्पर्य यह है, कि शत्रुकी सेनाके जो व्यक्ति, मित्रसेना तथा आटविक सेनाको कष्ट पहुंचाने वाले हैं, उनका इस रीतिसे उच्छेद कर दिया जाएगा; इस निमित्तसे भी शत्रु सेनाकोही शत्रुके मुकाबलेमें युद्धके लिये भेजे ॥ २२ ॥ अथवा अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुई २ शत्रु की सेनाको, कुपित होजानेके डरसे विजिगीषु सदा अपने पास रक्खे। परन्तु उसके पास रखनेमें यदि अपने ही अन्तरंग अमात्य पुरोहित आदिके कुपित होजानेका भय हो, तो ऐसा न करे। अर्थात् ऐसी अवस्थामें शत्रु सेनाको अपने समीप न रक्खे। यदि विजिगीषुका शत्रु, अपनेही किसी दूसरे शत्रुके साथ युद्धमें प्रवृत्त होरहा हो तो उस युद्धके समाप्त होनेपर जो दूसरा युद्धके योग्य समय आवे, उस समय भी शत्रुबलकोही दूसरे शत्रुके मुकाबलेमें युद्धके लिये भेजे। ये सब अवसर शत्रुसेनाको युद्धपर भेजनेके हैं ॥ २३ ॥

तेनाटवीबलकालो व्याख्यातः ॥ २४ ॥ मार्गदेशिकं परभूमियोग्यमरियुद्धप्रतिलोममटवीबलप्रायः शत्रुर्वा बिल्वं बिल्वेन हन्यतामल्पः प्रसारो हन्तव्य इत्यटवीबलकालः ॥ २५ ॥

इसीके अनुसार आटविक सेनाको युद्धपर भेजनेके समयको भी व्याख्यात समझलेना चाहिये अर्थात् जो २ कारण शत्रुसेनाके युद्धपर जानेके लिये बताये हैं वे ही आटविक सेनाके लिये समझने चाहियें ॥२४॥ आटविक सेनाके सम्बन्धमें जो और विशेष बात है, उनका यहां निर्देश किया जाता है:—शत्रुके देशपर आक्रमण करनेके समय आटविक सेना मार्गोंको अच्छी तरह पहचान सकती है; आटविक सेना शत्रुकी भूमिमें युद्ध करनेके योग्य आयुधोंकी शिक्षा प्राप्त किये हुये होती है; अथवा शत्रुके साथ युद्ध करनेके सम्बन्धमें विजिगीषुकी आज्ञाके बिनाही आटविक सेना, शत्रुके प्रतिपक्ष रूपसे तयार रहती है अथवा शत्रु प्रायः आटविक सेनाको लेकरही मुकाबला करनेके लिये तयार है, इसलिये एक बिल्वफल (बेल) को दूसरे बिल्वफलके साथ टकराकर फोड़ दिया जाता है, ऐसेही हमारी ओरसे भी उसके समानजातीय आटविक बलके द्वारा ही आक्रमण किया जाना चाहिये; अथवा शत्रुके तृण काष्ठ आदि छोटे २ पदार्थोंको शत्रु तक न पहुंचने देनेके लिये, अर्थात् इनको बीचमें ही नष्ट करदेनेके लिये आटविक सेनाही उपयुक्त होसकती है, इत्यादि निमित्तोंके होनेपर भी आटविक सेनाको ही शत्रुके मुकाबलेमें लड़नेके लिये भेजना

चाहिये। यहांतक मौल आदि छः प्रकारकी सेनाओंके शत्रुपर आक्रमण करनेके अवसरोंका निरूपण करादिया गया ॥ २५ ॥

सैन्यमनेकमनेकजातीयस्थमुक्तमनुक्तं वा विलोपार्थं यदुत्तिष्ठति तदौत्साहिकम् ॥ २६ ॥ भक्तवेतनविलोपविष्टिप्रतापकरं भेद्यं परेषामभेद्यं तुल्यदेशजातिशिल्पप्रायं संहतं महदिति बलोपादानकालाः ॥ २७ ॥

इन छः प्रकारकी सेनाओंके अतिरिक्त, एक सातवीं सेना 'औत्साहिक' नाम की होती है। जो सेना एक मुख्य नेतासे रहित, भिन्न २ देशोंमें रहने वाली, राजासे स्वीकार की हुई अथवा स्वीकार न की हुई, केवल दूसरे देशोंको लूटनेके लिये उठ खड़ी होती है, उसी सेनाका नाम 'औत्साहिक' है ॥ २६ ॥ इस सेनाके दो भेद हैं, एक भेद्य और दूसरा अभेद्य। प्रतिदिन भत्ता लेकर, तथा मासके अनन्तर हिरण्य आदिके रूपमें नियत वेतन लेकर, शत्रुके देशमें लूट मचाने वाला, दुर्गोंमें काम करने वाला तथा राजाकी सामयिक आज्ञाका पालन करने वाला औत्साहिक बल 'भेद्य' कहाता है। क्योंकि शत्रु अधिक भत्ता आदि देकर इसको अपनी ओर झुका सकता है। परन्तु जो औत्साहिक सेना प्रायः एक ही देश जातिकी तथा समान व्यवसाय करने वाली होती है, वह अभेद्य कही जाती है, शत्रु उसे अपनी ओर नहीं मिला सकता, क्योंकि वह सेना भत्ता तथा वेतन आदिकी कुछ अपेक्षा नहीं करती, उसे अपने देश आदिका अधिक ध्यान होता है। इसीलिये वह सेना सुसंघटित और शक्तिसम्पन्न समझी जाती है। इसलिये इस सेनाका भी यथावसर संग्रह करना चाहिये। यहांतक सेनाओंके आक्रमणके, समय आदिका निरूपण किया गया ॥ २७ ॥

तेषां कुप्यभृतमामित्राटवीबलं विलोपभृतं वा कुर्यात् ॥२८॥

इन सात प्रकारकी सेनाओंमें से, शत्रु सेना और आटविक सेनाको वस्त्र आस्तरण आदि द्रव्य अथवा शत्रुके देशका जीता हुआ या लूटा हुआ माल ही, वेतनके रूपमें देदिया जावे। तात्पर्य यह है कि शत्रु सेना तथा आटविक सेनाको नियत मासिक न दिया जावे, प्रत्युत वे परदेशमें लूटेहुए मालको ही अपने वेतन रूपमें लेकर कार्य करें ॥ २८ ॥

अमित्रस्य वा बलकाले प्रत्युत्पन्नं शत्रुमवगृह्णीयात् ॥२९॥ अन्यत्र वा प्रेषयेत् ॥ ३० ॥ अफलं वा कुर्यात् ॥ ३१ ॥

विक्षिप्तं वा वासयेत् ॥ ३२ ॥ काले वातिक्रान्ते विसृजेत् ॥३३॥ परस्य चैतद्बलसमुद्दानं विघातयेत्, आत्मनः संपादयेत् ॥३४॥

पूर्वोक्त जो २ सेना सम्बन्धी समय विजिगीषुके लिये वर्णन किये गये हैं, वे ही यदि शत्रुपर आजांय, अर्थात् उसको भी यह आवश्यकता पड़े, कि अमुक २ अवसर पर मैं अपनी सेनाका संग्रहकर अपने शत्रुपर आक्रमण करूं; उस समय विजिगीषुको चाहिये कि जो शत्रुकी सेना उसके पास सहायताके लिये आईहुई हो, उसको अपने ही अधीन रक्खे; अर्थात् उस मौकेपर उसकी सेना को न छोड़े ॥२८॥ अथवा अपने ही किसी दूसरे कार्यका बहाना करके और किसी जगहपर भेजदे ॥ ३० ॥ यदि ऐसे अवसरपर शत्रुकी सेना जल्दी ही छावनी पड़जाय, तो पहिले उसको कार्य करनेके बदलेमें जितनी सहायता देनेकी प्रतिज्ञा की थी, उसको न देकर ही छोड़ देवे ॥ ३१ ॥ अथवा उस सेनाको कई जगह बांट २ कर बसावे । अर्थात् थोड़ी २ सेना करके भिन्न २ छावनियोंमें उसके ठहरनेका प्रबन्ध करे ॥ ३२ ॥ अथवा जब शत्रुकी सहायताका समय बीतजावे, अर्थात् जब शत्रुको अपनी सहायताके लिये सेनाकी आवश्यकता थी, वह समय बीतजावे; तब उस सेनाको छोड़े ॥ ३३ ॥ अथवा उपर्युक्त रीतिसे बतायेहुए सेनासंग्रहके अवसरोंके आनेपर, विजिगीषु शत्रुके अवसरोंमें विघ्न डालता रहे, अर्थात् शत्रु जब भी अपनी सेनाओंके संग्रह करनेका इस प्रकार अवसर निकाले, तभी विजिगीषु उसमें कुछ न कुछ रुकावट डालता रहे । और अपनी सेनाका संग्रह सदा करता रहे । तथा शत्रुसे कियेगये विघ्नका प्रतीकार भी करता रहे ॥ ३४ ॥

पूर्वं पूर्वं चैषां श्रेयः संनाहयितुम् ॥ ३५ ॥ तद्भावभावित्वा-न्नित्यसत्कारानुगमाच्च मौलबलं भृतबलाच्छ्रेयः ॥ ३६ ॥ नित्या-नन्तरं क्षिप्रोत्थायि वश्यं च भृतबलं श्रेणीबलाच्छ्रेयः ॥३७॥

यहांतक सेनाओंके संग्रहके विषयमें निरूपण कियागया; अब सेना-ओंके उपयोगके गुणोंका, अर्थात् कौनसी सेना किसकी अपेक्षा कार्य करनेमें श्रेष्ठ समझना चाहिये, इसका निरूपण किया जायगा:—इन मौल आदि आत्साहिक पर्यन्त सात प्रकारकी सेनाओंमें से, उत्तर उत्तरकी अपेक्षा पूर्व पूर्वकी सेनाका संग्रह करना अधिक सिद्धिकर होता है ॥ ३५ ॥ अपने स्वामीके होनेपर होने और न होनेपर न होनेसे, अर्थात् सदा स्वामीके साथ रहनेके कारण, और सदा ही सेनाके विषयमें स्वामीकी आदरबुद्धि होनेके

कारण तथा स्वामीके विषयमें सेनाका अनुराग होनेके कारण, भृतबलकी अपेक्षा मौलबल ही श्रेष्ठ होता है ॥ ३६ ॥ तथा श्रेणीबलकी अपेक्षा भृतबल अधिक श्रेयस्कर होता है क्योंकि वह (भृतबल) राजाके सदा समीप रहता है, बिना किसी विलम्बके बहुत जल्दी ही युद्धके लिये तैयार किया जासकता है, और अपने अधीन भी रहता है, श्रेणीबलमें यह बात नहीं होती, वह दूर भी रहता है तैयार होनेमें देर लगाता, तथा अपने वशमें भी नहीं होता ॥ ३७ ॥

जानपदमेकार्थोपगतं तुल्यसङ्घर्षामर्षसिद्धिलाभं च श्रेणीबलं मित्रबलाच्छ्रेयः ॥ ३८ ॥ अपरिमितदेशकालमेकार्थोपगमाच्च मित्रबलममित्रबलाच्छ्रेयः ॥ ३९ ॥

मित्रबलकी अपेक्षा श्रेणीबल अधिक श्रेयस्कर होता है, क्योंकि वह अपने मालिकके ही देश का होता है, एक ही प्रयोजनके लिये उसका संग्रह किया जाता है अर्थात् देशके स्वतन्त्र रहनेमें जैसा विजिगीषुको लाभ है, वैसा वहांकी प्रजाको भी, तथा अपने मालिकके समान ही संघर्ष अमर्ष और सिद्धिसे युक्त होता है, तात्पर्य यह है कि मालिक जिसके साथ संघर्ष करना चाहता है, श्रेणीबल भी उसके अनुसार ही चाहता है, मालिकको जिसपर क्रोध होता है, श्रेणीबलको भी उसपर क्रोध होता है, मालिकको जिस प्रकारकी सिद्धि होती है, श्रेणीबलको भी वही सिद्धि अभीष्ट होती है। परन्तु मित्रबलमें ये बात नहीं होसकती ॥ ३८ ॥ मित्रबल भी अमित्रबल (शत्रुसेना) की अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर होता है, क्योंकि मित्रबलमें अपनी इच्छानुसार प्रत्येक देश तथा प्रतिसमयमें सहायता ली जासकती है, तथा विजिगीषुके प्रयोजनके अनुसार ही मित्रबलका भी प्रयोजन होता है, परन्तु अमित्रबलमें यह बात नहीं होती, क्योंकि उसको स्वतन्त्रतापूर्वक उसकी इच्छानुसार, चाहे जिस देशमें चाहे जिस समय युद्धपर नहीं भेजा जासकता; क्योंकि इसप्रकार शत्रुसेनाको चाहे जहां भेजनेमें डर ही रहता है। तथा विजिगीषु और शत्रुसेनाके प्रयोजनमें भी भेद होता है, यह स्पष्ट है। (महामहोपाध्याय त० गणपति शास्त्रीने इस सूत्रके दो भाग करदिये हैं, एक 'अपरिमितदेशकालमेकार्थोपगमाच्च' । और दूसरा 'मित्रबलममित्रबलाच्छ्रेयः' । पहिले सूत्रको उन्होंने मित्रबलकी अपेक्षा श्रेणीबलकी श्रेष्ठतामें लगाया है, तथा अमित्रबलसे मित्रबलकी श्रेष्ठता बतलानेमें उन्होंने किसी हेतुकी आवश्यकता नहीं समझी; यह व्याख्यान कुछ क्रम-विरुद्धसा प्रतीत होता है। और नयचन्द्रिका व्याख्याके भी विरुद्ध है) ॥ ३९ ॥

आर्याधिष्ठितममित्रबलमटवीबलाच्छ्रेयः ॥ ४० ॥ तदुभयं विलोपार्थम् ॥ ४१ ॥ अविलोपे व्यसने च ताभ्यामाहिभयं स्यात् ॥ ४२ ॥

अमित्रबल भी अटवीबलकी अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर होता है, क्योंकि अमित्रबल, आर्य अर्थात् सद्गुणोंसे युक्त विश्वस्त पुरुषोंके नेतृत्वमें रहता है, अटवीबल, ऐसा नहीं होता ॥ ४० ॥ ये दोनों ही प्रकारकी सेनाएं अर्थात् शत्रु-सेना और आटविकसेना, विलोपकेही लिये अर्थात् शत्रुदेशको लूटने आदिकेही लिये प्रयुक्त की जाती हैं ॥ ४१ ॥ क्योंकि लूट आदिके अतिरिक्त यदि युद्ध आदिमें उन्हें लगाया जाय, तथा अपनी विपत्तिके समयमें उन्हें कहीं कार्यपर लगाया जाय, तो उनसे आस्तीनके सांपकी तरह सदा डरही रहता है। अर्थात् वह अपनेही पक्षमें कुछ झगड़ा आदि करके नया बखेड़ा खड़ा करसकता है ॥ ४२ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रसैन्यानां तेजःप्राधान्यात्पूर्वं पूर्वं श्रेयः। संनाहयितुमित्याचार्याः ॥ ४३ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णोंकी पृथक् २ सेनाओंमें उत्तरोत्तर सेनाकी अपेक्षा पूर्व २ सेना, तेजकी प्रधानता होनेके कारण अधिक श्रेयस्कर होती है। यह आचार्योंका मत है (यहां तेजकी प्रधानताका तात्पर्य शौर्यकी प्रधानता न लेनी चाहिये, क्योंकि ब्राह्मणमें शौर्यकी अधिकता नहीं होती, इसलिये कृतज्ञता धार्मिकता आदि गुण सम्पत्ति ही तेज शब्दका भाव समझना चाहिये) ॥ ४३ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ४४ ॥ प्रणिपातेन ब्राह्मणबलं परोऽभिहारयेत ॥ ४५ ॥ प्रहरणविद्याविनीतं तु क्षत्रियबलं श्रेयः ॥४६॥ बहुलसारं वा वैश्यशूद्रबलमिति ॥ ४७ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्यका यह मत नहीं है ॥ ४४ ॥ शत्रु, ब्राह्मणबलको प्रणिपात नमस्कार, सत्कार या आगे झुकजाना आदिसे ही अपने आधीन कर लेता है ॥ ४५ ॥ इसलिये शस्त्रास्त्रकी विद्यामें सुशिक्षित क्षत्रियबलकोही सबकी अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर समझना चाहिये ॥ ४६ ॥ अथवा वैश्य शूद्रबलको भी श्रेयस्कर समझा जासकता है, जब कि उसमें वीर पुरुषोंकी अच्छी तरह अधिकता हो ॥ ४७ ॥

तस्मादेवंबलः परस्यैतत्प्रतिबलमिति बलसमुदानं कुर्यात् ॥ ४८ ॥

सेनाओंकी इसतरह परस्पर आपेक्षिक श्रेष्ठताको जानके अनन्तर शत्रु-के पास इसप्रकारकी सेना है, और उसके मुकाबलेकी अमुक सेना होसकती है, इसप्रकार विचार करके उपयुक्त सेनाओंका संग्रह करे ॥ ४८ ॥

हस्तियन्त्रशकटगर्भकुन्तप्रासहाटकवेणुशल्यवद्धास्तिबलस्य प्रतिबलम् ॥ ४९ ॥

हस्तिसेनाके मुकाबलेके लिये, हाथी, यन्त्र (जामदग्न्य आदि) शकटगर्भ (जिसका मध्यभाग शकटके समान हो, ऐसा आयुधविशेष), कुन्त (भाला), प्रास (बरछा), हाटक (तीन फलों वाला अर्थात् तीन कांटों वाला भाला; किसी २ पुस्तकमें ' हाटक ' पदके स्थानपर ' खर्वटक ' पाठ है, पर यह पाठ अधिक संगत नहीं मालूम होता), वेणु (लम्बा बेंत या लाठी आदि), शल्य (चारों ओरसे लोहेकी कीलों वाला, लोहेकाही बना हुआ डण्डा), आदि साधनोंसे युक्त सेनाकी आवश्यकता होती है ॥ ४९ ॥

तदेव पाषाणलगुडावरणाङ्कुशकचग्रहणीप्रायं रथबलस्य प्रतिबलम् ॥ ५० ॥

वही सेना, अर्थात् जो सेना, हस्तिसेनाके मुकाबलेके लिये बतलाई गई है, यदि पाषाण (बड़ी २ शिलाएं या पत्थर), लगुड (पटे या छोटा २ गदा), आवरण (कवच), अंकुश, और कचग्रहणी (कांचा=बहुत लम्बी लोहेकी छड़, जिसके आगे बढ़ाम: हुक, लगा हुआ हो) आदि साधनोंसे युक्त हो, तो रथबल (रथ सवार सेना) को उसे प्रतिबल (मुकाबलेमें प्रतीकार करने वाली सेना) समझना चाहिये ॥ ५० ॥

तदेवाश्वानां प्रतिबलम् ॥ ५१ ॥ वर्मिणो वा हस्तिनोऽश्वा वा वर्मिणः कवचिनो रथा आवरणिनः पत्त्यश्चतुरङ्गबलस्य प्रतिबलम् ॥ ५२ ॥

हाथीसवार सेनाके मुकाबलेकी जो सेना बताई गई है, वही सेना घुड़सवार सेनाका भी मुकाबला करने वाली समझनी चाहिये। तात्पर्य यह है, कि अश्वबल का भी वही प्रतिबल समझना चाहिये, जो हस्तिबलका प्रतिबल कहा गया है ॥ ५१ ॥ कवच धारण करने वाले हाथी इसी प्रकार कवच धारण करने वाले ही घोड़े, तथा मजबूत लोहेके पत्तोंसे मढ़े हुए रथ, और कवच धारण करनेवाली ही पैदल सेना; ये साधारणतया यथासंख्य हाथीसवार घुड़सवार रथसवार तथा पैदल चतुरंग सेनाके प्रतिबल समझने चा-

हियें। अर्थात् चतुरंग सेना का मुकाबला, कवच पहिनने वाले हाथी आदिके द्वारा ही किया जासकता है ॥ ५२ ॥

एवं बलसमुद्दानं परसैन्यनिवारणम् ।
विभवेन स्वसैन्यानां कुर्यादङ्गविकल्पशः ॥ ५३ ॥

इत्याभियास्यत्कर्मणि नवमेऽधिकरणे बलोपादानकालाः संनाहगुणाः प्रतिबलकर्म द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ आदितस्त्रयोविंशशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

इस पूर्वोक्त रीतिके अनुसार ही, सेनाओंकी पारस्परिक श्रेष्ठता, तथा गुरुता लघुता का विचार करके ही उपयुक्त सेनाओंका संग्रह करे। तथा मौल भृत आदि अपनी सेनाओंकी शक्तिके अनुसार, एवं हाथी घोड़े आदि सेनाओंके अङ्गभूत पदार्थोंकी बहुलता और अल्पताके कारण किये गये विभागोंके अनुसार ही शत्रुकी सेनाका निराकरण करना चाहिये। अर्थात् विजिगीषु को चाहिये कि वह यथाशक्ति अपनी सेनाओंका संग्रह करता रहे; तथा शत्रुकी सेनाओंका प्रतीकार करता रहे ॥ ५३ ॥

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त।

तीसरा अध्याय

१४०-१४१ प्रकरण

पश्चात्कोपचिन्ता, बाह्य और अभ्यन्तर प्रकृतिके कोपका प्रतीकार।

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं। आगे होने वाले लाभके उद्देश्यसे विजिगीषुके द्वारा शत्रु पर आक्रमण किये जाने पर पीछेसे पार्ष्णिग्राह आटविक तथा अन्य दूष्य व्यक्तियोंके द्वारा राजधानीमें जो उपद्रव किया जाता है, उसीका नाम 'पश्चात्कोप' है। पहिले प्रकरणमें आगे होनेवाले लाभकी अपेक्षा पश्चात्कोपके गुरुलघुभावका विचार किया जायेगा; और दूसरे प्रकरणमें बाह्य तथा अभ्यन्तर प्रकृतिजन्य कोपके प्रतीकारका निरूपण होगा।

अल्पः पश्चात्कोपो महान्पुरस्ताल्लाभ इति ॥ १ ॥ अल्पः पश्चात्कोपो गरीयान् ॥ २ ॥ अल्पं पश्चात्कोपं प्रयातस्य दूष्यामित्राटविका हि सर्वतः समेधयन्ति प्रकृतिकोपो वा ॥ ३ ॥

थोड़ा पश्चात्कोप और अत्यधिक, आगे होने वाला लाभ; इन दोनोंमें से कौन गुरुतर है इस बातका विचार किया जायगा। तात्पर्य यह, कि थोड़े पश्चात्कोपके कारण बड़े लाभकी उपेक्षा करदी जावे, या बड़े लाभके कारण थोड़े पश्चात्कोपकी, उपेक्षा करदी जावे ॥ १ ॥ इस विषयमें निर्णय यही है, कि थोड़ा भी पश्चात्कोप, बड़े लाभकी अपेक्षा गुरुतर होता है। अर्थात् थोड़े पश्चात्कोपके कारण, बड़ेभी लाभकी उपेक्षा कीजासकती है ॥ २ ॥ क्योंकि थोड़े भी पश्चात्कोपको, विजिगीषुके बाहर चले जानेपर, दूष्यव्यक्ति शत्रु तथा आटविक पुरुष, चारों ओरसे अच्छी तरह बढ़ा देते हैं। अथवा मन्त्री पुरोहित आदि अभ्यन्तर प्रकृतिमेंही उत्पन्न हुआ २ कोप, उस थोड़े भी पश्चात्कोपको और अधिक बढ़ा देता है। इस लिये महान् पुरस्ताल्लाभ (आगे होनेवाले लाभ) की अपेक्षा थोड़े पश्चात्कोपकोही गुरुतर समझना चाहिये ॥ ३ ॥

लब्धमपि च महान्तं पुरस्ताल्लाभमेवंभूते भृत्यमित्रक्षयव्यया ग्रसन्ते ॥ ४ ॥ तस्मात्सहस्रैकीयः पुरस्ताल्लाभस्यायोगः शतैकीयो वा पश्चात्कोप इति न यायात् ॥ ५ ॥ सूचीमुखा ह्यनर्था इति लोकप्रवादः ॥ ६ ॥

पश्चात्कोपकी पहिले कुछ पर्वाह न करके यदि आक्रमणमें होनेवाले बड़े भारी लाभको प्राप्त कर भी लिया जाय, तो भी इस प्रकारके पश्चात्कोपके बढ़नेपर फिर उसका प्रतीकार करनेके लिये भृत्य और मित्रसम्बन्धी क्षय व्यय उस लाभको बराबर कर देते हैं। अर्थात जो कुछ लाभ होता है, वह बढ़े हुए पश्चात्कोपको शान्त करने में सब कुछ खर्च होजाता है ॥ ४ ॥ इसलिये जब कि आगे होनेवाले लाभकी सिद्धि, प्रतिसहस्र एक अंश मात्र होनेवाली हो, उसके मुकाबलेमें पश्चात्कोपसे होनेवाला अनर्थ प्रतिशतके एक अंश समझना चाहिये। अर्थात पश्चात्कोपजन्य अनर्थकी अपेक्षा आगे होनेवाले लाभमें दसगुनी असारता होती है। इसलिये पश्चात्कोपकी आशंका होनेपर कभी यात्रा न करे ॥ ५ ॥ लोकमें कहावत है कि अनर्थ सदा सूचीमुख होते हैं। तात्पर्य यह है कि अनर्थ पहिले तो सुई की नोककी तरह बहुत सूक्ष्म मालूम होते हैं, परन्तु पीछेसे वे सदा बहुत ही भयावह रूप धारण कर लेते हैं ॥ ६ ॥

पश्चात्कोपे सामदानभेददण्डान्प्रयुञ्जीत ॥ ७ ॥ पुरस्ताल्लाभे सेनापतिं कुमारं वा दण्डचारिणं कुर्वीत ॥ ८ ॥

यदि पश्चात्कोपकी अधिक सम्भावना हो तो साम दान भेद और दण्ड, इन सब ही उपायोंका प्रयोग करे। अर्थात् विजिगीषु स्वयं आक्रमणके लिये न जाकर ही पश्चात्कोपको शान्त करनेके लिये साम आदि सब ही उपायोंका प्रयोग करे ॥ ७ ॥ और आक्रमणसे होनेवाले लाभको यदि न छोड़ना हो, तो उसकी भी प्राप्तिके लिये यात्रामें सेनापति अथवा युवराजको ही प्रधान सेनानायक बनाकर भेज देवे। अर्थात् इनमेंसे किसीकी अधीनतामें सेनाको करके उसे युद्धके लिये भेज देवे ॥ ८ ॥

बलवान्वा राजा पश्चात्कोपावग्रहसमर्थः पुरस्ताल्लाभमादातुं यायात् ॥ ९ ॥ अभ्यन्तरकोपशङ्कायां शङ्कितानादाय यायात् ॥ १० ॥

अथवा बलवान् राजा जो कि पश्चात्कोपका प्रतीकार करनेमें समर्थ हो; तात्पर्य यह है कि जिस राजाके पास पर्याप्त सेना हो, और इसीलिये उसके अपीसपर अपनी अनुपस्थितिमें भी पश्चात्कोपको शान्त कर सकता हो, वह थोड़ीसी सेना पीछे छोड़कर, आगे होनेवाले लाभकी प्राप्तिके लिये स्वयं ही यात्रा कर सकता है ॥ ९ ॥ यदि उसको आभ्यन्तर कोपकी आशंका हो, अर्थात् यह सन्देह हो कि मेरे चले जानेपर अमात्य पुरोहित आदि ही उपद्रव खड़ा करदेंगे; तो उनको अपने साथ लेकर ही शत्रुपर आक्रमण करे। अर्थात् ऐसे शङ्कित व्यक्तियोंको अपने साथ ही युद्धपर लेजावे ॥१०॥

बाह्यकोपशङ्कायां वा पुत्रदारमेषामभ्यन्तरावग्रहं कृत्वा शून्यपालमनेकबलवर्गमनेकमुख्यं च स्थापयित्वा यायान्न यायाद्वा ॥ ११ ॥ अभ्यन्तरकोपो बाह्यकोपात्पापीयानित्युक्तं पुरस्तात् ॥ १२ ॥

बाह्यकोप (अन्तपाल आटविक आदिके द्वारा, विजिगीषुके बाहर चले जानेपर राजधानी आदिमें जो उपद्रव कियाजाय, उसे बाह्यकोप कहते हैं; इसका निरूपण इसी अध्यायके २७ वें सूत्र में किया जायगा) की आशंका होनेपर, बाह्यकोपको करनेवाले अन्तपाल आदिके पुत्र तथा स्त्रियोंको अपने अमात्योंके अधीन करके विजिगीषु युद्धपर चलाजावे। बाह्य तथा अभ्यन्तर दोनों ही ओरसे उपद्रवकी आशंका होनेपर तो, अनेक प्रकारकी मौल भृत आदि सेनाओंके समूहसे युक्त, तथा अनेक मुख्य सेनाध्यक्षोंसे युक्त शून्यपाल (शत्रुके मुकाबलेमें विजिगीषुके चले जानेपर पीछेसे स्वामी रहित राजधानीकी रक्षा करनेवाला अधिकारी) को स्थापित करके फिर यात्रा करे। यदि फिर

भी अभ्यन्तर कोपकी आशंका बनी ही रहे, तो विजिगीषु न जावे। (किसी २ पुस्तकमें 'न यायाद्वा' के स्थानपर 'न वा यायात्' ऐसा भी पाठ है, परन्तु अर्थ में कोई किसी तरहका भेद नहीं) ॥ ११ ॥ क्योंकि अभ्यन्तर कोप, बाह्यकोपकी अपेक्षा अत्यधिक हानिकर होता है; इस बातको पहिले कहा जाचुका है ॥ १२ ॥

मन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजानामन्यतरकोपो ऽभ्यन्तरकोपः ॥ १३ ॥ तमात्मदोषत्यागेन परशक्त्यपराधवशेन वा साधयेत् ॥ १४ ॥

मन्त्री, पुरोहित, सेनापति और युवराज इन चारोंमें से किसीके द्वारा किये जानेवाले उपद्रवको 'अभ्यन्तरकोप' कहते हैं ॥ १३ ॥ इस अभ्यन्तरकोपको यदि विजिगीषु अपने ही किसी दोषसे उत्पन्न हुआ २ समझे, तो उस दोषका परित्यागकर अभ्यन्तर कोपको शान्त करे। यदि मन्त्री पुरोहित आदिके दोषके कारण ही वह उपद्रव उठा हो, तो उनको उनके अपराधके अनुसार वध (प्राणदण्ड) बन्धन (कैदमें रखना) तथा अर्थदण्ड (जुरमाना आदि करना) आदिके द्वारा सीधा करे ॥ १४ ॥

महापराधे ऽपि पुरोहिते संरोधनमपस्रावणं वा सिद्धिः ॥१५॥ युवराजे संरोधनं निग्रहो वा गुणवत्यन्यास्मिन्सति पुत्रे ॥ १६ ॥ ताभ्यां मन्त्रिसेनापती व्याख्यातौ ॥ १७ ॥

यदि पुरोहित; इसतरहका कोई महान अपराध भी करदे; तो भी उसका वध नहीं होना चाहिये, क्योंकि वह ब्राह्मण होता है, ब्राह्मणका वध निषिद्ध है। इसलिये या तो उसको कैदमें डालदिया जावे, या अपने देशसे बाहर निकाल दिया जावे। उसके लिये यही दण्ड है ॥ १५ ॥ यदि युवराज ही इसप्रकारका महान अपराध करदेवे, तो उसे या तो बन्धनागारमें डाल दिया जावे, या उसका वध करादिया जावे, अर्थात् उसे प्राणदण्ड दियाजावे; परन्तु यह प्राणदण्ड उसी अवस्थामें देना चाहिये, जब कि अत्यन्त गुणी कोई दूसरा पुत्र विद्यमान हो ॥ १६ ॥ पुरोहित और युवराजके समान; अथवा बन्धन और वधके द्वारा मन्त्री और सेनापतिके भी दण्डका व्याख्यान समझ लेना चाहिये। अर्थात् यदि वह ब्राह्मण हो तो अपराधके अनुसार बन्धन या देशनिकाला; और अब्राह्मण हो तो अपराधानुसार बन्धन या वधका दण्ड दियाजावे ॥ १७ ॥

पुत्रं भ्रातरमन्यं वा कुल्यं राज्यग्राहिणमुत्साहेन साधयेत् ॥ १८ ॥ उत्साहाभावे गृहीतानुवर्तनसंधिकर्मभ्यामरिसंधानभयात् ॥ १९ ॥ अन्येभ्यस्तद्विधेभ्यो वा भूमिदानैर्विश्वासयेदेनम् ॥ २० ॥

अपने पुत्र, अपने भाई तथा अपने ही कुलमें उत्पन्न हुए अन्य व्यक्तिको, जो कि राज्य लेनेकी इच्छा रखते हों, उत्साह देकर शान्त करे। अर्थात् उनके योग्य सेनापति आदि पदोंपर उन्हें नियुक्त करके अपने वशमें करे ॥ १८ ॥ यदि उनको उत्साह न दे सके तो जो सम्पत्ति राज्यकी ओरसे उन्हें भोगनेको मिली हुई है, उसे सदाके लिये उन्हें ही देकर तथा और अधिक सम्पत्ति आदि देकर उनसे सन्धि करके अपने वशमें करे। क्योंकि यदि उन्हें अपने वशमें न किया जाय, तो विजिगीषुको इस बातका सदा ही डर बना रहता है, कि कहीं ये मेरे शत्रुके साथ न मिल जावें ॥ १९ ॥ अथवा उसी तरहके दूसरे खानदानी आदमियोंको ज़मीन आदि देकर, इनको अपना विश्वासी बनाले। तात्पर्य यह है कि जो अपना खानदानी आदमी राज्य लेनेकी इच्छा रखता हो उसको वशमें करनेका एक यह भी उपाय है, कि उसी जैसे अपने अन्य खानदानी आदमियोंको भूमि आदि देवे; ऐसा करनेसे यह पुरुष भी अपना विश्वस्त होजायगा ॥ २० ॥

तद्विशिष्टं स्वयंग्राहं दण्डं वा प्रेषयेत् ॥ २१ ॥ सामन्ताटविकान्वा, तैर्विगृहीतमतिसंदध्यात् ॥ २२ ॥ अवरुद्धादानं पारग्रामिकं वा योगमातिष्ठेत् ॥ २३ ॥ एतेन मन्त्रिसेनापती व्याख्यातौ ॥ २४ ॥

अथवा इसकी अध्यक्षतामें (जो पुरुष राज्य लेना चाहे, उसकी अध्यक्षतामें) स्वयंग्राह सेना (जिस सेनाके सम्बन्धमें यह घोषणा कर दी जावे, कि जो कुछ लूटमें इसको मिलेगा, वह उसीका होगा, इस सेनाको 'स्वयंग्राह सेना' कहते हैं) को देकर कहीं युद्ध करनेके लिए भेज दिया जावे ॥ २१ ॥ अथवा सामन्त और आटविकोंको ही उसकी अध्यक्षतामें कहीं युद्धपर भेज दिया जावे; और उनके साथ (अर्थात् स्वयंग्राह सेना, सामन्त तथा आटविकोंके साथ) विरोध कराके अर्थात् किसी बातपर झगड़ा कराके उसे बन्धनमें लेलिया जावे ॥ २२ ॥ जब स्वयंग्राह सेना आदि उसको गिरफ्तार कर लें, तो उनसे विजिगीषु उसे ले लेवे; अथवा दुर्गलम्भोपाय अधिकरणमें बतलाये हुए पारग्रामिक नामक योगका अनुष्ठान

करे। अर्थात् उस योगके द्वारा उसे सीधा करे ॥ २३ ॥ इसीके अनुसार, मन्त्री और सेनापतिके द्वारा उत्पन्न किये हुए कोप, तथा उसके प्रतीकारका भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये ॥ २४ ॥

मन्त्र्यादिवर्जानामन्तरमात्यानामन्यतमकोपो ऽन्तरमात्यकोपः ॥२५॥ तत्रापि यथार्हमुपायान्प्रयुञ्जीत ॥ २६ ॥

मन्त्री, पुरोहित, युवराज और सेनापति, इन चारोंके अतिरिक्त, अन्य अन्तरमात्य अर्थात् दौवारिक (द्वारपाल) या अन्तर्वंशिक (महलोंमें काम करने वाले विशेष कर्मचारी) आदि पुरुषोंमेंसे किसी एकके द्वारा उठाये हुए उपद्रवको 'अन्तरमात्यकोप' कहते हैं ॥ २५ ॥ उसके शान्त करनेके लिये भी यथायोग्य उपर्युक्त उपायोंकाही प्रयोग करे। यहांतक अभ्यन्तरकोपके सम्बन्धमें निरूपण करदिया गया ॥ २६ ॥

राष्ट्रमुख्यान्तपालाटविकदण्डोपनतानामन्यतमकोपो बाह्यकोपः ॥ २७ ॥ तमन्योन्येनावग्राहयेत् ॥ २८ ॥

अब बाह्यकोप और उसके परिहारका निरूपण किया जायगा:—राष्ट्रके प्रधान व्यक्ति, अन्तपाल (सीमारक्षक अधिकारी), आटविक और दण्डोपनत (सैनिक शक्तिके द्वारा अर्थात बलपूर्वक अपने अधीन किया हुआ व्यक्ति), इन चारोंमेंसे किसीके द्वारा उठाये हुए उपद्रवको 'बाह्यकोप' कहते हैं ॥ २७॥ उस कोपको, आपसमेंही उन्हें एक दूसरेके साथ टकराकर शान्त करे। अर्थात राष्ट्रमुख्यके कोपको अन्तपाल आदिके द्वारा और अन्तपाल आदिके कोपको राष्ट्रमुख्यके द्वारा शान्त करवावे ॥ २८ ॥

अतिदुर्गप्रतिस्तब्धं वा सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धानामन्यतमेनावग्राहयेत् ॥ २९ ॥ मित्रेणोपग्राहयेद्वा, यथा नामित्रं गच्छेत् ॥ ३० ॥

अथवा प्रबल दुर्गसे युक्त राष्ट्रमुख्य या अन्तपाल आदिको, सामन्त आटविक या उनके कुलमें उत्पन्न हुआ २ कोई रोका हुआ पुरुष (राजपुत्र आदि), इन सबमेंसे किसीके द्वारा पकड़वावे। तात्पर्य यह है, कि बाह्यकोपको उठाने वाले राष्ट्रमुख्य आदिको सामन्त आदिके द्वारा पकड़वा देवे ॥२९॥ अथवा अपने मित्रके साथ उसकी भी मित्रता करवा देवे। जिससे कि वह शत्रुकी ओर जाकर न मिलजावे ॥ ३० ॥

अमित्रात्सत्री भेदयेदेनम् ॥ ३१ ॥ अयं त्वां योगपुरुषं मन्यमानो भर्तर्येव विक्रमयिष्यति ॥ ३२ ॥ अवाप्तार्थो दण्ड

चारिणममित्राटविकेषु कृच्छ्रे वा प्रवासे योक्ष्यति ॥ ३३ ॥

सत्री (गूढ पुरुष=एक विशेष गुप्तचर), इस बाह्य राष्ट्रमुख्य आदिको शत्रुसे सदा भिन्न बनाये रक्खे, अर्थात् इनका आपसमें सदा भेद डलवाये रक्खे ॥ ३१ ॥ क्या कहकर भेद डलवावे, अब इसका निरूपण किया जायगा:— सत्री, राष्ट्रमुख्य आदिको कहे कि तुम जिसके साथ (विजिगीषुके जिस शत्रुके साथ) मिलना चाहते हो, वह तुमको विजिगीषुका गुप्त पुरुष समझेगा, और यह समझता हुआ तुमको तुम्हारे मालिकके ऊपरही हमला करनेको कहेगा ॥ ३२ ॥ और तुम्हारे मालिकपर किये गये आक्रमणके परिणामको देखकर, तुमको अपनी सेनाका नायक बनाकर अपने शत्रु या आटविकके मुकाबलेमें किसी दुष्कर आक्रमणके लिये नियुक्त करेगा; अर्थात् तुमको किसी दूर देशके कठिन प्रवासके लिये बाध्य करेगा ॥ ३३ ॥

विपुत्रदारमन्ते वा वासयिष्यति ॥ ३४ ॥ प्रतिहतविक्रमं त्वां भर्तरि पणं करिष्यति ॥ ३५ ॥ त्वया वा संधिं कृत्वा भर्तारमेव प्रसादयिष्यति ॥ ३६ ॥ मित्रमुपकृष्टं वास्य गच्छेदिति ॥ ३७ ॥

अथवा तुमको, तुम्हारे स्त्री पुत्रोंसे वियुक्त करके, अपने सरहद्दी इलाकेमें रक्खेगा। तात्पर्य यह है, कि तुम्हारे स्त्री पुत्रोंको अपनी अधीनतामें रक्खेगा, और तुम्हें किसी सरहद्दी इलाकेमें कार्य करनेके लिये नियुक्त करेगा ॥ ३४ ॥ अथवा अपनेही मालिकके मुकाबलेमें लड़नेके लिये खड़ा हुआ २ तू यदि उससे हार जायगा, तो यह तेरे मालिकसे कीमत लेकर उसीके हाथ तुझे बेच डालेगा। अर्थात् तेरे असफल होजानेके कारण, तुझपर प्रसन्न न होता हुआ, वह, तेरे मालिकसे कुछ धन लेकर उसीके हाथमें तुझे सौंपदेगा ॥ ३५ ॥ अथवा तुम्हेंही स्वामीको अर्पण करके अर्थात् शर्तके तौरपर तुम्हें तुम्हारे मालिकके लिये देकर, सन्धि करके, स्वामीको प्रसन्न करलेगा ॥ ३६ ॥ अथवा तुम्हारी शर्त लगाकर अपने किसी मित्रके साथही तुम्हारे स्वामीकी सन्धि करादेगा। इत्यादि बातोंको कहकर सत्री, राष्ट्रमुख्य आदिका शत्रुसे भेद डल-वाये रक्खे ॥ ३७ ॥

प्रतिपन्नमिष्टाभिप्रायैः पूजयेत् ॥ ३८ ॥ अप्रतिपन्नस्य संश्रयं भेदयेदसौ ते योगपुरुषः प्रणिहित इति ॥ ३९ ॥

यदि इस भेदके उपदेशको, यह व्यक्ति स्वीकार करले, तो उसे उसकी अभीष्ट वस्तुओंको देकर सत्कृत किया जावे ॥ ३८ ॥ यदि स्वीकार न करे, तो

उसके संश्रय (सन्धि विग्रह आदि छः गुणोंमेंसे एक संश्रय भी होता है। किसी बलवान् राजाके अधीन रहकर अपनी शक्तिको बढ़ाना 'संश्रय' कहाता है। इसलिये जिस राजाके अधीन रहे, उसको भी संश्रय कहदेते हैं) को ही यह कहकर उससे भिन्न करदेवे, कि अमुक पुरुष जो तुम्हारे आश्रित रहनेके लिये उपस्थित होता है, वह दूसरेका भेजा हुआ गुप्तपुरुष है, तुम्हें उससे संभलकर रहना चाहिये ॥ ३९ ॥

मन्त्री चैनमभिव्यक्तशासनैर्घातयेत् गूढपुरुषैर्वा ॥ ४० ॥ सहप्रस्थायिनो वास्य प्रवीरपुरुषान्यथाभिप्रायकरणेनावाहयेत् ॥ ४१ ॥

तथा मन्त्री, अभिव्यक्त (वधके लिये निश्चित हुए २) पुरुषोंके हाथ नकली चिट्ठियां भिजवाकर (जिनके लिखित विषयका यह अभिप्राय हो, कि तुम छिपकर शत्रुको मारडालो) शत्रुके मनमें सन्देह डालकर उसके द्वाराही (राष्ट्रमुख्य आदि) व्यक्तिको मरवाडाले। अथवा साक्षात् गूढपुरुषोंके द्वाराही मरवाडाले ॥ ४० ॥ अथवा शत्रुका आश्रय लेनेके लिये, बाह्य (राष्ट्रमुख्य अन्तपाल आदि) के साथ जो वीर पुरुष जानेके लिये तयार होवें; उनको उनके अभिप्रायके अनुसार कार्य करके अर्थात् उनकी इच्छाकी पूर्ति करके अपनी ओर मिला लेवे। ('आवाहयेत' के स्थानपर किसी २ पुस्तकमें 'वाहयेत' भी पाठ है, अर्थ दोनोंका समान है) ॥ ४१ ॥

तेन प्रणिहितान्मन्त्री ब्रूयादिति सिद्धिः ॥ ४२ ॥ परस्य चैनान्कोपानुत्थापयेत् ॥ ४३ ॥ आत्मनश्च शमयेत् ॥ ४४ ॥

यदि वे वीर पुरुष अपने पक्षमें आनेके लिये तयार न होवें, तो मन्त्री उनके सम्बन्धमें शत्रुसे इसप्रकार कहे, कि ये सब वीर पुरुष विजिगीषुने तुम्हारे मारनेके लिये भेजे हैं, ये सबही गूढपुरुष हैं। इसप्रकार शत्रुको समझाकर और उसकेही द्वारा उन्हें नष्ट करवाकर बाह्यकोपका प्रतीकार करे ॥ ४२ ॥ तथा शत्रुपक्षमें अभ्यन्तरकोप और बाह्यकोपको उत्पन्न करनेके लिये पूरा यत्न करे ॥ ४३ ॥ और अपने पक्षमें शत्रुके द्वारा उत्पन्न किये हुए कोपोंका पूर्ण रीतिसे प्रतीकार करे ॥ ४४ ॥

यः कोपं कर्तुं शमयितुं वा शक्तस्तत्रोपजापः कार्यः ॥४५॥ यः सत्यसंधः शक्तः कर्मणि फलावाप्तौ चानुग्रहीतुं विनिपाते च त्रातुं तत्र प्रतिजापः कार्यः ॥ ४६ ॥ तर्कयितव्यश्च कल्याणबुद्धिरुताहो शठ इति ॥ ४७ ॥

जो कोपको उत्पन्न करने और शान्त करनेमें समर्थ हो, वहींपर उपजाप (कोपको उत्पन्न करनेके लिये भेद डालने या फूट डालनेको ही 'उपजाप' कहते हैं) का प्रयोग करना चाहिये। तात्पर्य यह है, कि जो पुरुष इतना सामर्थ्य रखता हो, कि स्वयं खड़े होकर उपद्रव करसके, और दूसरेके द्वारा उठायेहुए उपद्रवको शान्त करसके, उसीपर उपजापका प्रयोग करना चाहिये, अर्थात उसका दूसरेके साथ भेद डालदिया जावे ॥ ४५ ॥ इसी प्रकार जो पुरुष सत्यप्रतिज्ञ, कार्यके तथा फलसिद्धिके समय अनुग्रह करने और आपत्तिके समय उससे रक्षा करनेमें समर्थ हो; वहांपर प्रतिजाप (उपजापके स्वीकार करलेनेको 'प्रतिजाप' कहते हैं) का प्रयोग ठीक है। तात्पर्य यह है, कि उपजापको स्वीकार करलेनेसे पहिले यह समझलेना चाहिये, कि यह उपजाप करनेवाला पुरुष सत्यवादी तथा समयपर उपकार करने और रक्षा करनेमें भी समर्थ है, तभी प्रतिजापका होना अर्थात उपजापको स्वीकार करना ठीक होता है ॥ ४६ ॥ यदि उपजपिता (उपजाप करनेवाले) के सम्बन्धमें प्रतिजपिता (उपजापको स्वीकार करने अर्थात मानने वाले) को यह आशंका होजावे, कि कहीं यह वञ्चक तो नहीं है? मुझे ठगनेके लिये ऐसा कह रहा है, तो उसकी कल्याणबुद्धि अथवा शठबुद्धि की परीक्षा करलेवे, कि यह मुझे हितबुद्धिसे ऐसा कह रहा है या ठगना चाहता है ॥ ४७ ॥

शठो हि बाह्यो ऽभ्यन्तरमेवमुपजपति—॥ ४८ ॥ भर्तारं चेद्धत्वा मां प्रतिपादयिष्यति शत्रुवधो भूमिलाभश्च मे द्विविधो लाभो भविष्यति ॥ ४९ ॥

उपजापके दो ही विषय होसकते हैं, या तो बाह्य उपजपिता अभ्यन्तरके साथ उपजापका प्रयोग करसकता है, या अभ्यन्तर उपजपिता बाह्यके साथ; इनमें से शठबुद्धि उपजपिता किसप्रकार उपजाप करता है, और कल्याणबुद्धि किसप्रकार ? इस बातका विवेचन कियाजायगा:-इनमेंसे शठबुद्धि बाह्य, अभ्यन्तरके साथ इसप्रकार उपजाप करता है:—॥ ४८ ॥ मेरे द्वारा भेदको प्राप्त करायाहुआ मन्त्री, यदि मालिकको मारकर उसके स्थानपर मुझे राजा बनादेगा, तो शत्रुका नाश और भूमिका लाभ, ये दोनों ही फायदे होजायेंगे ॥ ४९ ॥

अथ वा शत्रुरेनमाहनिष्यतीति हतबन्धुपक्षस्तुल्यदोषदण्डेन वोद्विग्नश्च ॥ ५० ॥ मे भूयान् कृत्यपक्षो भविष्यति ॥ ५१ ॥

अथवा यदि शत्रु ही मन्त्रीको मार डालेगा, तो मारेहुए मन्त्रीका बन्धुवर्ग; तथा मन्त्रीके समान ही अपराध करनेवाला क्रुद्ध तथा लुब्धवर्ग

(देखोः—प्रथम अधिकरणका तेरहवां चौदहवां अध्याय), मन्त्रीके वधके कारण, राजासे अत्यन्त उद्विग्न होजावेगा ॥ ५० ॥ इसप्रकार वहांपर मेरा बहुतसा कृत्यपक्ष बनजायगा; अर्थात् मारेहुए मन्त्रीके बन्धुवर्ग आदिको बड़ी सरलतासे मैं अपने वशमें करसकूंगा ॥ ५१ ॥

तद्विधे वान्यस्मिन्नपि शङ्कितो भविष्यति ॥ ५२ ॥ अन्यमन्यं चास्य मुख्यमभिव्यक्तशासनेन घातयिष्यामीति ॥ ५३ ॥

तथा इसप्रकारके अन्य कर्मचारियोंपर भी विजिगीषुको विश्वास नहीं रहेगा। अर्थात वह अपने दूसरे कर्मचारियोंपर भी सन्देह करने लगेगा ॥ ५२ ॥ इसतरह एक २ करके (राजाके) सब ही मुख्य कर्मचारियोंको, अभिव्यक्त पुरुषोंके हाथ नकली चिट्ठियां भिजवाकर मरवा डालूंगा। तात्पर्य यह है, कि उन कर्मचारियोंके नाम, विजिगीषुके वध तथा बन्धन आदिके सम्बन्धमें कूट चिट्ठियां लिख २ कर विजिगीषुको उनसे विरुद्ध कराडूंगा; और वह विजिगीषु उन सबको नष्ट करदेगा; इसप्रकार मेरी कार्यसिद्धि होजायगी। यहांतक अभ्यन्तर मन्त्री आदिको फाड़नेके लिये बाह्य शठके उपजापका प्रकार बतायागया ॥ ५३ ॥

अभ्यन्तरो वा शठो बाह्यमेवमुपजपति—॥ ५४ ॥ कोशमस्य हरिष्यामि ॥ ५५ ॥ दण्डं वास्य हनिष्यामि ॥ ५६ ॥ दुष्टं वा भर्तारमनेन घातयिष्यामि ॥ ५७ ॥ प्रतिपन्नं बाह्यममित्राटविकेषु विक्रमयिष्यामि ॥ ५८ ॥ चक्रमस्य सज्यताम् ॥ ५९ ॥ वैरमस्य प्रसज्यताम् ॥ ६० ॥ ततः स्वाधीनो मे भविष्यति ॥ ६१ ॥ ततो भर्तारमेव प्रसादयिष्यामि ॥ ६२ ॥

अब इसके आगे अभ्यन्तर शठ, बाह्यको फाड़नेके लिये किसप्रकार उपजाप करता है, इसका निरूपण किया जायगाः—अभ्यन्तर शठ, बाह्यके प्रति इसप्रकारका उपजाप करता है, कि:—॥ ५४ ॥ इस बाह्यके कोशका अपहरण करूंगा ॥ ५५ ॥ अथवा इसकी सेनाको मार डालूंगा ॥ ५६ ॥ अथवा अपने दुष्ट मालिकको इसके द्वारा मरवाऊंगा ॥ ५७ ॥ अथवा जब यह मेरे मालिकको मारनेके लिये स्वीकार करलेगा, तो इस बाह्यको शत्रु तथा आटविकोंके साथ मुकाबलेमें युद्ध करनेके लिये भेजूंगा ॥ ५८ ॥ इसकी सेना, शत्रु और आटविकोंके साथ मुकाबला करनेमें लगी रहेगी ॥ ५९ ॥ तथा उनसे (शत्रु आदिके) साथ इसका बराबर वैर बढ़ता जायगा ॥ ६० ॥ उस अवस्थामें यह मेरे अपने अधीन होजायगा, अर्थात् मेरा आज्ञाकारी होजायगा ॥ ६१ ॥

इससे मैं अपने मालिकको ही प्रसन्न करलूंगा, अर्थात् बाह्यके अपने वशमें होजानेके कारण, मालिक मुझसे अवश्य प्रसन्न होजायगा ॥ ६२ ॥

स्वयं वा राज्यं ग्रहीष्यामि ॥६३॥ बद्ध्वा वा बाह्यभूमिं भर्तृभूमिं चोभयमवाप्स्यामि ॥६४॥ विरुद्धं वावाहयित्वा बाह्यं विश्वस्तं घातयिष्यामि ॥ ६५ ॥ शून्यं वास्य मूलं हरिष्यामीति ॥६६॥

अथवा मैं स्वयं ही बाह्यके राज्यको लेलूंगा, क्योंकि वह मेरा आज्ञाकारी होगा, मुझे रोक नहीं सकता ॥ ६३ ॥ अथवा बाह्यको बांधकर अर्थात् उसे कैद करके, उसकी भूमिको और अपने मालिककी भूमिको दोनोंको ही प्राप्त करलूंगा; तात्पर्य यह है, कि दोनों राज्योंपर मेरा शासन होगा ॥ ६४ ॥ अथवा बाह्यके किसी विरोधीको बुलवाकर, उसके द्वारा ही इस विश्वस्त (विश्वास करनेवाले बाह्यको मरवा डालूंगा ॥ ६५ ॥ अथवा इसके शून्य मूलस्थानको लूटलूंगा अर्थात् जब यह, शत्रु या आटविक आदिपर आक्रमण करनेके लिये चलाजायगा, इसकी रिक्त राजधानी आदिका अपहरण करूंगा । यहांतक अभ्यन्तर शत्रुके, बाह्यका उपजाप करनेके प्रकारोंका निरूपण कर दियागया; अर्थात इन उपर्युक्त प्रकारोंसे अभ्यन्तर शठ, बाह्यको भिन्न करता है ॥ ६६ ॥

कल्याणबुद्धिस्तु सहजीव्यर्थमुपजपति ॥६७॥ कल्याणबुद्धिना संदधीत ॥ ६८ ॥ शठं तथेति प्रतिगृह्यातिसंदध्यात् इति ॥ ६९ ॥

कल्याण बुद्धि तो साथी बनकर ही उपजाप करता है; अर्थात् उपजाप्यके साथ ही साथ अपनी जीवन वृत्तिको समझकर, उसके हितका ध्यान करके ही उपजापका प्रयोग करता है, वह उसका अहित कभी नहीं चाहता ॥ ६७ ॥ इसलिये कल्याणबुद्धिके साथ अवश्य सन्धि करलेनी चाहिये ॥ ६८ ॥ और शठको तो 'जैसा तुमने कहा है, मैं वैसा ही करूंगा; इस प्रकारका वचन देकर पीछेसे धोखा देवे । अर्थात पहिले उसकी बातको मानकर, फिर अवसर पाकर उसे ठगलेवे ॥ ६९ ॥

एवमुपलभ्य:—

परे परेभ्यः स्वे स्वेभ्यः स्वे परेभ्यः स्वतः परे ।
रक्ष्याः स्वेभ्यः परेभ्यश्च नित्यमात्मा विपश्चिता ॥ ७१ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे पश्चात्कोपचिन्ता, बाह्याभ्यन्तरप्रकृतिकोपप्रतीकारश्च तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥ आदितश्चतुर्विंशशततमो ऽध्यायः ॥ १२४ ॥

इसप्रकार कल्याणबुद्धि और शठबुद्धिका निश्चय करके ॥ ७० ॥ विद्वान्, कार्यके तत्वको जाननेवाले विजिगीषुको चाहिये, कि वह, जिन दूसरोंके सम्बन्धमें यह जानता है, कि ये शठ हैं, उनकी दूसरोंसे रक्षा करे, अर्थात् उनकी इस बातको किसी तरह भी प्रकाशित न होने दे। इसीप्रकार जो अपने आदमी शठ हों, उनको अपनोंसे ही रक्षा करे, अर्थात् उनके इस भावको अपनोंपर भी प्रकट न होने दे। इसी तरह अपनोंको दूसरोंसे और दूसरोंको अपनोंसे भी रक्षा करे; अर्थात् एक दूसरेके इन भावोंको किसीपर प्रकाशित न करे। तथा अपने और पराये दोनोंसे, अपने आपकी रक्षा करे; अर्थात् अपने परायोंके प्रति कोई भी उनके अनुकूल या प्रतिकूल अभिप्राय अपनी ओरसे प्रकट न करे ॥ ७१ ॥

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त।

चौथा अध्याय।

१४२ प्रकरण।

क्षय व्यय तथा लाभका विचार।

युग्य अर्थात् वाहन और पुरुषोंका नाश होजाना 'क्षय', धान्य हिरण्य आदिका नाश होजाना 'व्यय' और भूमि आदिकी प्राप्ति होना 'लाभ' कहाता है। इन्हींकी परस्पर लघुता गुरुताका विचार इस प्रकरणमें किया जायगा।

युग्यपुरुषापचयः क्षयः ॥ १ ॥ हिरण्यधान्यापचयो व्ययः ॥ २ ॥ ताभ्यां बहुगुणविशिष्टे लाभे यायात् ॥ ३ ॥

हाथी घोड़े आदि सवारियों, तथा कर्मचारी पुरुषोंके नाश होजानेकोही 'क्षय' कहते हैं ॥ १ ॥ हिरण्य (सोने आदिके सिक्के=धन) और धान्य (व्रीहि आदि) का नाश होना 'व्यय' कहाता है ॥ २ ॥ क्षय और व्ययका ध्यान रखते हुए, जिस समयमें अत्यधिक गुणोंसे युक्त लाभकी सम्भावना हो, उसी समय आक्रमणके लिये जाना चाहिये। (वे गुण कौनसे होते हैं ? इनका निरूपण अगलेही सूत्रमें किया जाता है ॥ ३ ॥

आदेयः प्रत्यादेयः प्रसादकः प्रकोपको ह्रस्वकालस्तनुक्षयोऽल्पव्ययो महान्वृद्ध्युदयः कल्यो धर्म्यः पुरोगश्चेति लाभसंपत् ॥ ४ ॥

वे निम्न-लिखित बारह गुण होते हैं:—आदेय, प्रत्यादेय, प्रसादक, प्रकोपक, ह्रस्वकाल, तनुक्षय, अल्पव्यय, महान, वृद्ध्युदय, कल्य, धर्म्य और पुरोग; ये बारह, लाभकी सम्पत्ति या गुण कहाते हैं। (इन सबके स्वरूपका निरूपण क्रमशः अगले सूत्रमें किया जाता है ॥ ४ ॥

सुप्राप्यानुपाल्यः परेषामप्रत्यादेय इत्यादेयः ॥ ५ ॥ विपर्यये प्रत्यादेयः ॥ ६ ॥ तमाददानस्तत्रस्थो वा विनाशं प्राप्नोति ॥ ७ ॥

जो वही सरलतासे प्राप्त किया जासके, तथा प्राप्तिके अनन्तर सरलतासे ही रक्षा किया जासके; और कालान्तरमें भी जिसको शत्रु न छीन सके, ऐसे लाभको 'आदेय' कहा जाता है। अर्थात् यह लाभका एक विशेष गुण है ॥ ५ ॥ जो इससे विपरीत लाभ हो; अर्थात जिसकी प्राप्ति और रक्षामें भी अत्यन्त कठिनता हो, कालान्तरमें शत्रु भी जिसको छीन सके, ऐसे लाभका नाम 'प्रत्यादेय' है ॥ ६ ॥ इसप्रकारके भूमि आदिके लाभको प्राप्त करता हुआ, अथवा वहींपर रहकर जीवन निर्वाह करता हुआ विजिगीषु, अवश्यही नाशको प्राप्त होता है। (महामहोपाध्याय त० गणपति शास्त्रीने इस सूत्रके 'विपर्यये' पदका सम्बन्ध पहिले सूत्रके केवल 'अप्रत्यादेय' पदके साथही किया है। सुप्राप्य और अनुपाल्य होनेपर भी जो लाभ, कालान्तरमें शत्रुके द्वारा छीना जासके, उसको 'प्रत्यादेय' कहना चाहिये) ॥ ७ ॥

यदि वा पश्येत्—॥ ८ ॥ प्रत्यादेयमादाय कोशदण्डनिचयरक्षानिधानान्यवस्रावयिष्यामि ॥ ९ ॥ खनिद्रव्यहस्तिवनसेतुबन्धवणिक्पथानुद्धृतसारान्करिष्यामि ॥ १० ॥ प्रकृतीरस्य कर्शयिष्यामि ॥ ११ ॥ आवाहयिष्याम्यायोगेनाराधयिष्यामि वा ॥ १२ ॥

अवस्था विशेषमें 'प्रत्यादेय' नामक लाभको भी ग्रहण करना चाहिये, इसबातका अब निरूपण किया जायगा:—विजिगीषु यदि यह समझे, कि:—॥ ८ ॥ मैं प्रत्यादेय लाभको लेकर, उस लाभके नाशसे (अर्थात् शत्रुके द्वारा किये गये, उस लाभके नाशसे), अपने शत्रुके कोश (खज़ाना), दण्ड (सेना), धान्य आदिके सञ्चय और दुर्ग तथा परकोटे आदिकी रक्षाके प्रकारोंको हीन बनादूंगा ॥ ९ ॥ अथवा शत्रुकी खान, द्रव्यवन (लकड़ियोंके जंगल) हस्तिवन (हाथियोंके जंगल), सेतुबन्ध (बड़े २ जलाशय), तथा व्यापारी मार्गोंको लूट खसोटकर नष्टकर डालूंगा ॥ १० ॥ अथवा शत्रुकी अमात्य आदि

प्रकृतियोंको कष्ट पहुंचाकर कृश (निर्बल), बनाडालूंगा ॥ ११ ॥ शत्रुकी प्रकृतियोंको वहींपर बुलालूंगा; अर्थात् उस भूमिको प्राप्त करके उसका फल भोगनेके लिये शत्रुकी प्रजाओंको वहां लाकर बसा दूंगा; अथवा उनकी इच्छानुसार सब तरहके सुखसाधनोंकी स्वीकृति देकर उन्हें प्रसन्न करलूंगा । (इस सूत्रमें 'आवाहयिष्यामि' के स्थानपर किसी २ पुस्तकमें 'अपवाहयिष्यामि' भी पाठ है । अर्थमें कोई विशेष भेद नहीं; परन्तु पहिला पाठ अच्छा मालूम होता) ॥ १२ ॥

ताः परः प्रयोगेण कोपयिष्यति ॥ १३ ॥ प्रतिपक्षे वास्य पण्यमेनं करिष्यामि ॥ १४ ॥ मित्रमवरुद्धं वास्य प्रतिपादयिष्यामि ॥ १५ ॥ मित्रस्य स्वस्य वा देशस्य पीडामत्रस्थस्तस्करेभ्यः परेभ्यश्च प्रतिकरिष्यामि ॥१६॥ मित्रमाश्रयं वास्य वैगुण्यं ग्राहयिष्यामि ॥ १७ ॥

अथवा शत्रु, इन प्रजाओंको, उनके प्रतिकूल आचरण करनेसे, अपनी ओरसे कुपित करदेगा, तात्पर्य यह है, कि जब मुझसे (विजिगीषुसे) गृहीत उस भूमिको शत्रु वापिस छीन लेगा, तब मैंने प्रजाओंपर जो अनुग्रह किया था उसके विपरीत आचरण करनेके कारण, वह उन प्रजाओंको अपनी ओरसे कुपित करलेगा ॥ १३ ॥ अथवा उस लाभको (प्राप्त की हुई भूमिको) शत्रुके विरोधी पक्षमें बेचडालूंगा ॥ १४ ॥ अथवा विशेष लाभ आदिसे रहित, शत्रुके उस स्थानमें, अपने मित्र या अपने पुत्र आदिको अधिकारी बनाकर स्थापित करदूंगा ॥ १५ ॥ अथवा प्राप्त की हुई भूमिमें स्थित होकर मैं, अपने तथा अपने मित्रके देशको, चोरों और शत्रुओंसे पहुंचाई जाने वाली पीडाका अच्छी तरह प्रतीकार कर सकूंगा ॥ १६ ॥ अथवा इस शत्रुके मित्र, तथा इस के आश्रय (आश्रय शब्दसे उस बलवान् राजाका ग्रहण किया जाता है, जिसकी छत्र-च्छायामें रहता हुआ दूसरा छोटा राजा अपनी शक्तिको बढाता है, इसप्रकारके आश्रयभूत राजा) को, इससे प्रतिकूल बनादूंगा; अर्थात् उस भूमिमें रहकर इनका परस्पर वैमनस्य करवादूंगा ॥ १७ ॥

तदमित्रं विरक्तं तत्कुलीनं प्रतिपत्स्यते, सत्कृत्य वास्मै भूमिं दास्यामीति संहितसमुत्थितं मित्रं मे चिराय भविष्यतीति प्रत्यादेयमपि लाभमाददीत ॥ १८ ॥ इत्यादेयप्रत्यादेयौ व्याख्यातौ ॥ १९ ॥

अथवा प्राप्त कीहुई भूमिमें बैठकर मैं, शत्रुके मित्र अथवा उसके आश्रयभूत राजाके सम्मुख, प्रजासे ठीक २ कर ग्रहण करनेमें शत्रुकी अयोग्यताके तथा प्रजाको पीड़ा पहुंचानेके सम्बन्धमें बहुत कुछ कहूंगा, इसतरह शत्रुका मित्र, उससे विरक्त होकर, उसके कुलके किसी अन्य योग्य व्यक्तिको या उसके पुत्र आदिको ही राजसिंहासनपर बैठानेका यत्न करेगा। अथवा मैं स्वयंही प्राप्त कीहुई उस भूमिको सत्कार पूर्वक शत्रुकोही वापस देदूंगा; इस प्रकार सन्धि होनेके कारण वह मेरा चिरस्थायी मित्र बनजावेगा; इत्यादि सब विशेष अवस्थाओंको देखकर विजिगीषु 'प्रत्यादेय' लाभको भी अवश्य ग्रहण करलेवे ॥ १८ ॥ इसप्रकार यहांतक 'आदेय' और 'प्रत्यादेय' दोनों लाभोंका निरूपण किया गया ॥ १९ ॥

अधार्मिकाद्धार्मिकस्य लाभो लभ्यमानः स्वेषां परेषां च प्रसादको भवति ॥ २० ॥ विपरीतः प्रकोपक इति ॥ २१ ॥ मन्त्रिणामुपदेशाल्लाभो ऽलभ्यमानः कोपको भवति ॥ २२ ॥ अयमस्माभिः क्षयव्ययौ ग्राहित इति ॥ २३ ॥

अधार्मिक राजासे धार्मिक राजाको प्राप्त हुआ २ लाभ (अर्थात् भूमि आदिका लाभ) अपने और पराये अर्थात् धार्मिक और अधार्मिक दोनों प्रकारके पुरुषोंको प्रसन्न करने वाला होता है; इसीलिये इस लाभको 'प्रसादक' कहते हैं ॥ २० ॥ इससे विपरीत लाभ 'प्रकोपक' कहाता है। अर्थात् धार्मिक राजासे अधार्मिक राजाको प्राप्त हुआ २ लाभ, धार्मिक और अधार्मिक दोनोंकोही कुपित करने वाला होता है। इसीलिये इसका नाम 'प्रकोपक' है ॥ २१ ॥ प्रकोपक लाभके और भी दो प्रकार होते हैं:—मन्त्रियोंके उपदेशसे, अर्थात् मन्त्रियोंके कहनेके अनुसार काम करनेपर भी लाभका न होना स्वामीको कुपित करने वाला होता है। अर्थात् ऐसी अवस्थामें राजा, मन्त्रियोंसे कुपित होजाता है ॥ २२ ॥ तथा, व्यर्थमेंही हमने अमुक व्यक्तिका क्षय और व्यय करवाया यह विचारकर मन्त्रियोंके लिये भी वह कार्य शङ्काजनक हो जाता है ॥ २३ ॥

दूष्यमन्त्रिणामनादराल्लाभो लभ्यमानः कोपको भवति, सिद्धार्थो ऽयमस्मान्विनाशयिष्यतीति ॥ २४ ॥ विपरीतः प्रसादकः ॥ २५ ॥ इति प्रसादककोपकौ व्याख्यातौ ॥ २६ ॥

इसीप्रकार दूष्य मन्त्रियोंका अनादर करनेसे, प्राप्त हुआ २ लाभ भी इनको कुपित करने वाला होता है। तात्पर्य यह है, कि राजा दूष्य मन्त्रियोंका

तिरस्कार करता है, और इसमें उसे विशेष लाभ होजाता है, यह बात मन्त्रियोंके चित्तमें शंकाको उत्पन्न करदेती है, और वे उसकी ओरसे कुपित होजाते है। मन्त्रियोंके चित्तमें शंकाका इसप्रकार प्रादुर्भाव होता है; कि यदि यह सफलप्रयत्न होगया, तो अवश्यही हमको नष्ट करदेगा ॥ २४ ॥ इनसे विपरीत लाभ, प्रसन्न करने वाला होनेके कारण 'प्रसादक' कहा जाता है। अर्थात् मन्त्रियोंके उपदेशके अनुसार प्राप्त हुआ २ लाभ, और दुष्यमन्त्रियोंके तिरस्कारसे न प्राप्त हुआ २ लाभ, सबको प्रसन्न करने वाला होता है, इसलिये इसको 'प्रसादक' कहते हैं ॥ २५ ॥ इसप्रकार यहांतक 'प्रसादक' और 'प्रकोपक' लाभोंका निरूपण किया गया ॥ २६ ॥

गमनमात्रसाध्यत्वाद्ध्रस्वकालः ॥ २७ ॥ मन्त्रसाध्यत्वात्तनुक्षयः ॥ २८ ॥ भक्तमात्रव्ययत्वादल्पव्ययः ॥ २९ ॥ तदात्ववैपुल्यान्महान् ॥ ३० ॥ अर्थानुबन्धकत्वाद्वृद्ध्युदयः ॥ ३१ ॥ निराबाधकत्वात्कल्यः ॥ ३२ ॥ प्रशस्तोपादानाद्धर्म्यः ॥ ३३ ॥ सामवायिकानामनिर्बन्धगामित्वात्पुरोग इति ॥ ३४ ॥

थोड़ा ही सा परिश्रम करनेसे, अर्थात् जाने मात्रसे ही जो लाभ प्राप्त होजाय, उसे ह्रस्वकाल कहते हैं ॥ २७ ॥ जो लाभ केवल मन्त्र अर्थात् उपजाप आदिसे ही प्राप्त होजाने वाला हो, उसे 'तनुक्षय' कहते हैं। (मन्त्र में चतुर, थोड़ी शक्ति वाला भी राजा इस लाभको प्राप्त करसकता है) ॥ २८ ॥ जो लाभ केवल भोजन आदिका व्यय करके ही प्राप्त होजाय, उसे 'अल्पव्यय' कहते हैं ॥ २९ ॥ जो तत्काल ही अर्थात् एक साथ ही अत्यधिक लाभ प्राप्त होजाय, उसे 'महान्' कहते हैं ॥ ३० ॥ जो लाभ भविष्यमें भी अत्यधिक अर्थप्राप्तिको करानेवाला हो, उसे 'वृद्ध्युदय' कहते हैं ॥ ३१ ॥ जिस लाभमें आगे किसी तरहकी भी बाधा उपस्थित न होसके, उसे 'कल्य' कहा जाता है ॥ ३२ ॥ जो लाभ प्रकाशयुद्ध आदिसे धर्मपूर्वक ग्रहण किया जावे, उसे 'धर्म्य' कहते हैं ॥ ३३ ॥ आपसमें मिलकर आक्रमण करने वाले राजाओंके, प्राप्तिके सम्बन्धमें पहिलेसे कोई शर्त न होनेके कारण, अपने २ प्राप्त कियेहुए लाभको 'पुरोग' कहते हैं ॥ ३४ ॥

तुल्ये लाभे देशकालौ शक्त्युपायौ प्रियाप्रियौ जवाजवौ सामीप्यविप्रकर्षौ तदात्वानुबन्धौ सारत्वसातत्ये बाहुल्यबाहुगुण्ये च विमृश्य बहुगुणयुक्तं लाभमाददीत ॥ ३५ ॥

उभयपक्षमें बराबर ही लाभ होनेपर, देशकाल आदिके अनुसार अच्छीतरह विचारकर, जो लाभ बहुत गुणोंसे युक्त हो, उस ही का ग्रहण करे। उसका विचार या विवेचन इसप्रकार करना चाहिये:—देश और काल किसी एक ही वस्तुमें गुणविशेषकी उत्पत्तिके, कारण होते हैं; मन्त्र प्रभाव और उत्साह इन तीनों शक्तियोंमें पहिली पहिली शक्तिसे प्राप्त किया हुआ लाभ, उत्तरोत्तर शक्तिसे प्राप्त कियेहुए लाभकी अपेक्षा अधिक प्रशस्त (अच्छा) होता है; इसीप्रकार साम दान भेद और दण्ड, इन चार उपायोंमें अगले २ उपायसे प्राप्त कियेहुए लाभकी अपेक्षा पहिले पहिले उपायसे प्राप्त कियाहुआ लाभ, उत्तम होता है; हिरण्य आदिका लाभ अर्थात नकद धन का लाभ, अन्य लाभोंकी अपेक्षा प्रिय होनेके कारण गुणयुक्त समझा जाता है, और लाभ इसके मुकाबले में प्रिय नहीं समझे जाते; इसीतरह शीघ्र प्राप्त होजानेवाला लाभ, विलम्बसे प्राप्त होनेवाले लाभकी अपेक्षा उत्तम होता है; अपनी भूमिके समीप ही होनेवाला लाभ, भूमिसे दूर होनेवाले लाभकी अपेक्षा उत्तम होता है; तत्काल ही होनेवाले लाभकी अपेक्षा, भविष्यमें भी लगातार होनेवाला लाभ प्रशस्त होता है; बहुमूल्य लाभ तथा अत्यधिक उपयोगमें आनेवाला लाभ; संख्या या परिमाणमें अधिक लाभ और बहुत गुणोंसे युक्त लाभ; ये सब बात लाभोंमें गुण बतलानेकी निमित्त हैं अर्थात् लाभोंमें गुणोंका होना इस प्रकार मालूम करलेना चाहिये। तदनन्तर जो लाभ अत्यधिक गुणोंसे युक्त हो, उसीका ग्रहण करना उपयुक्त होता है ॥ ३५ ॥

लाभविघ्नाः—कामः कोपः साध्वसं कारुण्यं ह्रीरनार्यभावो मानः सानुक्रोशता परलोकापेक्षा दाम्भिकत्वमत्याशित्वं दैन्यमसूया हस्तगतावमानो दौरात्मिकमविश्वासो भयमप्रतीकारः शीतोष्णवर्षाणामाक्षम्यं मङ्गलतिथिनक्षत्रेष्टित्वमिति ॥ ३६ ॥

लाभमें निम्नलिखित विघ्न उपस्थित होसकते हैं:—काम (स्त्रीप्रसंग), क्रोध, साध्वस (अप्रगल्भता अर्थात शत्रु मित्र आदिमें उचित व्यवहारका न करना), करुणा (दया=प्राणियोंके वधकी आशंकासे युद्ध आदिका न करना), लज्जा, अनार्यभाव (विश्वासघात आदिका करना), मान (मैं ही सब कुछ हूं, इसप्रकार अहंकारका होना), सानुक्रोशता (किसीके कुछ भेट आदि देदेनेपर, झट उसपर दयालु होजाना, अर्थात् जहां तीक्ष्ण वृत्तिका उपयोग करना चाहिये वहां थोड़ेसे निमित्तसे मृदु बनजाना), परलोकापेक्षा (परलोकको बिगाड़ने वाले पापकी आशंकासे आग लगाने या लूट आदिके विरुद्ध होना), दाम्भिकता (दम्भी होना=अपनेपर विश्वास करनेवालोंको

ही ठगना; किसी २ पुस्तकमें इसकी जगह 'धार्मिकत्वं' भी पाठ है), अत्याशित्व (अन्यायसे अत्यधिक लाभका खाना; किसी पुस्तकमें 'अत्यागित्वं भी पाठ है), दीनता (अपनेसे नीच व्यक्तियोंसे भी सहायता मांगना), असूया (अमात्य पुरोहित आदिके गुणी होनेपर भी उनमें दोषारोपण करना), हस्तगतावमान (हाथमें आईहुई चीजका तिरस्कार करदेना), दौरात्म्यिक (पीड़ा देनेके योग्य अयोग्य सब ही को पीड़ा पहुंचाना), अविश्वास (विश्वास करने योग्य पुरुषोंमें भी विश्वासका न करना), भय (युद्ध आदिमें पराजयकी आशंकाका होना), अनिकार (शत्रुका तिरस्कार न करना; किसी २ पुस्तकमें 'अप्रतीकार' भी पाठ है, अर्थात् लाभसिद्धिके पूर्व ही आनेवाले विघ्नोंका प्रतीकार न करना), सरदी गर्मी तथा वर्षा आदिका न सहसकना, कार्योंके प्रारम्भमें माङ्गलिक तिथि नक्षत्र आदिका देखना; ये सब ही बातें लाभ होनेमें रुकावट डालनेवाली होती हैं ॥ ३६ ॥

नक्षत्रमतिपृच्छन्तं बालमर्थोऽतिवर्तते ।
अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्रं किं करिष्यन्ति तारकाः ॥ ३७ ॥
नाधनाः प्राप्नुवन्त्यर्थान्नरा यत्नशतैरपि ।
अर्थैरर्थाः प्रबध्यन्ते गजाः प्रतिगजैरिव ॥ ३८ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमेऽधिकरणे क्षयव्ययलाभविपरिमर्शः

चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ आदितः पञ्चत्रिंशशतः ॥१३५॥

कार्यके प्रारम्भमें अत्यधिक नक्षत्रोंकी अनुकूलताको पूछनेवाले, अर्थात् घरमें तो आग लगीहुई है, और इधर उसके प्रतीकारके अनुकूल नक्षत्रकी खोज होरही है; इसप्रकार करनेवाला प्रमादी राजा, कभी अपने अभीष्ट अर्थको प्राप्त नहीं करसकता; प्रत्येक कार्यकी सिद्धिके लिये आवश्यक धन आदि उपायोंको ही नक्षत्र समझना चाहिये; ये तारका किसीका क्या बिगाड़ या सुधार सकती हैं ॥ ३७ ॥ धन आदिसे हीन अर्थात् आवश्यक उपायोंसे रहित पुरुष सैकड़ों यत्न करनेपर भी अपने अभीष्ट फलको प्राप्त नहीं करसकते; अर्थोंका ही अर्थोंके साथ सम्बन्ध है, धन ही धनको खींचता है; जैसे एक हाथीके सहारेसे दूसरे हाथीको पकड़ लिया जाता है ॥ ३८ ॥

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवां अध्याय

१४३ प्रकरण

बाह्य तथा अभ्यन्तर आपत्तियां ।

{ राष्ट्रमुख्य तथा अन्तपाल आदिके द्वारा उत्पन्न की हुई आपत्तियोंको 'बाह्य' और मन्त्री पुरोहित आदिके द्वारा उत्पन्न हुई आपत्तियोंको 'अभ्यन्तर' कहते हैं। इस प्रकरणमें उन आपत्तियों का और उनके प्रतीकारका निरूपण किया जायगा।

संध्यादीनामयथोद्देशावस्थापनमपनयः ॥ १ ॥ तस्मादापदः संभवन्ति ॥ २ ॥ बाह्योत्पत्तिरभ्यन्तरप्रतिजापा, अभ्यन्तरोत्पत्तिर्बाह्यप्रतिजापा, बाह्योत्पत्तिर्बाह्यप्रतिजापा, अभ्यन्तरोत्पत्तिरभ्यन्तरप्रतिजापा, इत्यापदः ॥ ३ ॥

सन्धि विग्रह आदि छः गुणोंके, उचित स्थानोंपर प्रयोग न करनेको ही 'अपनय' कहते हैं; अर्थात् सन्धिके स्थानपर विग्रहका उपयोग, तथा विग्रहके अवसरपर यानका, और यानके मौकेपर सन्धि आदिका उपयोग करना अपनय (नीति मार्गसे भ्रष्ट होना) कहाता है ॥ १ ॥ इस अपनयसे ही सम्पूर्ण आपत्तियोंका प्रादुर्भाव होता है ॥ २ ॥ बाह्य और अभ्यन्तर आपत्तियोंके, उपजपिता तथा प्रतिजपिताके भेदसे चार भेद होते हैं:-(१) बाह्य अर्थात् राष्ट्रमुख्य, अन्तपाल आदि जिस आपत्तिमें उपजपिता (उपजाप अर्थात् भेद आदि डालकर आपत्तिको उत्पन्न करनेवाले) हों; और अभ्यन्तर अर्थात् मन्त्री पुरोहित आदि जिसमें प्रतिजपिता (अर्थात् राष्ट्रमुख्य आदिके द्वारा कियेगये उपजापको स्वीकार करके उसके अनुसार कार्य करने वाले) हों; यह पहिली आपत्ति है। (२) इसी प्रकार जिसमें अभ्यन्तर उपजपिता और बाह्य प्रतिजपिता हों, वह दूसरी आपत्ति कही जाती है। इन दोनों आपत्तियोंके उपजपिता और प्रतिजपिता परस्पर विजातीय होते हैं। (३)-जिसका बाह्य ही उपजपिता और बाह्य ही प्रतिजपिता हो, वह तीसरी आपत्ति है। (४)-और जिसका अभ्यन्तर ही उपजपिता और अभ्यन्तर ही प्रतिजपिता हो, वह चौथी आपत्ति समझी जाती है; इन दोनों आपत्तियोंमें समानजातीय ही उपजपिता और प्रतिजपिता होते हैं। इसप्रकार मिलकर ये चार प्रकारकी आपत्तियां हैं ॥ ३ ॥

यत्र बाह्या अभ्यन्तरानुपजपन्त्यभ्यन्तरा वा बाह्यांस्तत्रोभययोगे प्रतिजपतः सिद्धिर्विशेषवती ॥ ४ ॥ सुव्याजा हि प्रतिजपितारो भवन्ति नोपजापितारः ॥ ५ ॥ तेषु प्रशान्तेषु नान्याञ्छक्नुयुरुपजपितुमुपजपितारः ॥ ६ ॥

जहां बाह्य, अभ्यन्तरोंका अथवा अभ्यन्तर बाह्योंका उपजाप करते हैं, अर्थात् जिन दो आपत्तियोंमें उपजपिता और प्रतिजपिता भिन्नजातीय होते हैं; वहां इन दोनोंमें से, आपत्तिका प्रतीकार करनेके लिये प्रतिजपिताको साम दान आदिके द्वारा शान्त करदेना अर्थात् अपने अनुकूल बना लेना अधिक श्रेयस्कर (या लाभप्रद) होता है ॥ ४ ॥ क्योंकि प्रतिजपिता पुरुषों के प्रतिजापका कारण धनग्रहण आदि ही होता है, इसलिये उनको धन आदिके द्वारा सुखपूर्वक वशमें किया जासकता है; परन्तु उपजपिता पुरुषों को इसप्रकार वशमें नहीं किया जासकता, क्योंकि उनके उपजापके कारणका पता लगना कठिन होता है ॥ ५ ॥ इसप्रकार किन्हीं प्रतिजपिताओंके प्रशान्त होजानेपर, उपजपिता फिर अन्य व्यक्तियोंमें उपजाप करनेके लिये तैयार नहीं हो सकते, क्योंकि उनको अपने उपजापके फूट जानेका डर रहता है ॥ ६ ॥

कृच्छ्रोपजापा हि बाह्यानामभ्यन्तरास्तेषामितरे वा, महतश्च प्रयत्नस्य वधः, परेषामर्थानुबन्धश्चात्मनोऽन्य इति ॥ ७ ॥

तथा बाह्योंके लिये अभ्यन्तरोंका और अभ्यन्तरोंके लिये बाह्योंका उपजाप करना बड़ा कठिन होता है; क्योंकि ये दोनों प्रकारके व्यक्ति एक दूसरेसे सर्वथा पृथक् रहते हैं। और यदि उपजाप्य व्यक्ति (जिनके ऊपर उपजापका प्रयोग किया जाता है) उस उपजापको स्वीकार न करें, तथा उसे फोड़ देवें, तो उपजपिताका बड़ा भारी प्रयत्न निष्फल होजाता है। इसप्रकार उपजापके फोड़ देनेसे उपजाप्य पुरुष अपने स्वामीकी प्रसन्नता रूप अभीष्ट सिद्धिको प्राप्त करते हैं; और उपजपिता स्वामीके अप्रसाद (अप्रसन्नता) रूप अनर्थका भागी होता है। इसलिये भी अभ्यन्तर और बाह्यका परस्पर उपजाप करना अत्यन्त कठिन है। (नयचन्द्रिकाके व्याख्याके कर्ता माधवयज्वान इस सूत्रके अन्तिम 'अन्य' पदसे रहित 'महतश्च प्रयत्नस्य वधः, परेषामर्थानुबन्धश्चात्मनः' इतना ही सूत्र पाठ मानकर इसप्रकार व्याख्यान किया है:—यद्यपि बाह्य और अभ्यन्तरका परस्पर उपजाप अति कठिन है, फिर भी उसे छोड़ना न चाहिये; क्योंकि उपजापमें दूसरेके उत्साह का नाश, और अपने उत्साहकी वृद्धि होती है) ॥ ७ ॥

अभ्यन्तरेषु प्रतिजपत्सु सामदाने प्रयुञ्जीत ॥ ८ ॥ स्थानमानकर्म सान्त्वम् ॥ ९ ॥ अनुग्रहपरिहारौ कर्मस्वायोगो वा दानम् ॥ १० ॥

प्रतिजपिताओंको शान्त करनेके लिये उपायोंका निरूपण किया जाता है:-यदि मन्त्री पुरोहित आदि अभ्यन्तर पुरुष ही प्रतिजपिता होवें तो साम और दानका प्रयोग करना चाहिये ॥ ८ ॥ विशेष अधिकार स्थानोंपर नियुक्त करना (=स्थानकर्म), तथा छत्र चामर आदि रखनेकी स्वीकृति देदेना (=मानकर्म) साम कहाता है; अर्थात् सामका प्रयोग इसप्रकार करना चाहिये ॥ ९ ॥ अनुग्रह (धनका देना) और परिहार (लिये जाने वाले धनका न लेना, या कर आदिका छोड़देना); तथा विशेष कार्योंमें उसके सम्पूर्ण फलको स्वयं लेलेनेका अनुमति देदेना, (अर्थात् कियेगये कार्यके सम्पूर्ण फलको, उस कार्यका करनेवाला ही लेलेवे, राजा उसमेंसे अपना अंश सर्वथा न लेवे) यह दान कहाता है। अर्थात यह दानके प्रयोगका प्रकार है ॥ १० ॥

बाह्येषु प्रतिजपत्सु भेददण्डौ प्रयुञ्जीत ॥ ११ ॥ मन्त्रिणो मित्रव्यञ्जना वा बाह्यानां चारमेषां ब्रूयुः ॥ १२ ॥ अयं वो राजा दूष्यव्यञ्जनैरतिसंधातुकामो बुध्यध्वमिति ॥ १३ ॥

यदि बाह्य प्रतिजपिता हों, तो उन्हें शान्त करनेके लिये भेद और दण्डका प्रयोग करना चाहिये ॥ ११ ॥ बाह्योंके प्रतिजपिता होनेपर, उनके मित्रके वेषमें रहनेवाले मन्त्री (गुप्तचर विशेष), उन बाह्योंके सामने राजाके गुप्त भेदका इस प्रकार उद्घाटन करें:— ॥ १२ ॥ यह आपका राजा, दूष्य अमात्य आदिके द्वारा (अर्थात् ऊपरसे आपके प्रिय की बात कहनेवाले, पर अन्दरसे अप्रिय चिन्तन करनेवाले अमात्य आदिके द्वारा) आपको प्रतिजपिता बनाकर धोखा देना चाहता है; इस रहस्यको आप अच्छी तरह जान कर प्रतिजपिताके कार्यमें कभी कदम न रक्खें ॥ १३ ॥

दूष्येषु वा दूष्यव्यञ्जनाः प्रणिहिता दूष्यान्बाह्यैर्भेदयेयुर्बाह्यान्वा दूष्यैः ॥ १४ ॥ दूष्याननुप्रविष्टा वा तीक्ष्णाः शस्त्ररसाभ्यां हन्युः ॥ १५ ॥ आहूय वा बाह्यान्घातयेयुरिति ॥ १६ ॥

अथवा राजाके अप्रियकारी अभ्यन्तर अमात्य आदि तथा बाह्य शत्रु-मुख्य आदिके प्रतिजपिता होनेपर, दूष्य (राजाके अप्रियकारी) के वेषमें

रहनेवाले गुप्तचर, दूष्योंको बाह्योंसे और बाह्योंको दूष्योंसे भिन्न २ कर दें, अर्थात् उनका आपसमें भेद डाल दें ॥ १४ ॥ अथवा दूष्योंके मध्यमें प्रविष्ट हुए २ तीक्ष्ण पुरुष, शस्त्र अथवा विष आदिके द्वारा उनको (दूष्योंको) मार देवें ॥ १५ ॥ अथवा बाह्योंको किसी बहानेसे अलहदा बुलाकर मार डालें। यहां तक पहिली दो आपत्तियोंके प्रतीकारका निरूपण किया गया॥१६॥

यत्र बाह्या बाह्यानुपजपन्त्यभ्यन्तरानभ्यन्तरा वा, तत्रैकान्तयोगमुपजापितुः सिद्धिर्विशेषवती ॥ १७ ॥ दोषशुद्धौ हि दूष्या न विद्यन्ते ॥ १८ ॥ दूष्यशुद्धौ हि दोषः पुनरन्यान्दूषयति॥१९॥

अब अन्तिम दो आपत्तियोंके प्रतीकारका कथन किया जायगा:---
जहांपर बाह्य, बाह्योंको और अभ्यन्तर अभ्यन्तरोंको उपजाप करते हैं, वहां समानजातीयके उपजाप प्रतिजाप प्रयोगमें; उपजापिताओंको अपने अनुकूल बना लेना ही अधिक श्रेयस्कर होता है ॥ १७ ॥ क्योंकि उपजाप रूप दोषके न रहनेसे, दूष्य पुरुषोंका भी प्रादुर्भाव नहीं हो सकता तात्पर्य यह है, कि उपजापमें ही दूष्य पुरुषोंकी उत्पत्ति होती है, यदि उपजापिता पुरुषोंको ही अपने अनुकूल बना लिया जाय, तो उपजापकी आशंका ही नहीं रहती ॥ १८ ॥ दूष्य पुरुषों (उपजाप रूप दोषसे दूषित बुद्धि वाले प्रतिजापिता पुरुषों) के शान्त करनेके लिये यत्न करनेपर भी, उपजाप रूप दोष अन्य पुरुषोंको फिर दूषित कर सकता है; इसलिये उपजापिताओंको ही शान्त करने का यत्न करना चाहिये ॥ १९ ॥

तस्माद्बाह्येषूपजपत्सु भेददण्डौ प्रयुञ्जीत ॥ २० ॥ सत्रिणो मित्रव्यञ्जना वा ब्रूयुः ॥ २१ ॥ अयं वो राजा स्वयमादातुकामो विगृहीताः स्थानेन राज्ञा बुध्यध्वमिति ॥ २२ ॥

इसलिये (=उपजापिताओंको ही अनुकूल बनानेके कारण) उपजाप करनेवाले बाह्य पुरुषोंमें भेद और दण्डका ही प्रयोग करना चाहिये ॥ २० ॥ इनके (उपजापिताओंके) मित्रके वेषमें रहनेवाले सत्री, उपजापिताओंको इस प्रकार कहें: — ॥ २१ ॥ यह राजा तुमको प्रतिजापिता पुरुषोंके द्वारा अपने अधीन करना चाहता है, इसलिये इस राजासे तुम्हें विग्रह कर देना चाहिये; आप लोगोंको यह सब सोचते हुए सम्भल कर रहना चाहिये; अर्थात् किसीपर भी विश्वासपूर्वक उपजापका प्रयोग मत करो ॥ २२ ॥

प्रतिजपितुर्वा ततो दूतदण्डाननुप्रविष्टास्तीक्ष्णाः शस्त्ररसादिभिरेषां छिद्रेषु प्रहरेयुः ॥ २३ ॥ ततः सत्रिणः प्रतिजपितारमभिशंसेयुः ॥ २४ ॥

अथवा प्रतिजपिताके पाससे उपजपिताके समीप बातचीत करनेके लिये जाते हुए (प्रतिजापितुर्वाऽनतः), या जहां उपजपिता है, वहां जाते हुए दूत अथवा सैनिक पुरुष में प्रविष्ट हुए २ तीक्ष्ण पुरुष, शस्त्र तथा रस आदिके द्वारा अवसर पाकर इनपर हमला करें। अर्थात् ये तीक्ष्ण पुरुष, उपजपिताको शस्त्रके द्वारा अथवा विष आदि देकर मार डालें ॥ २३ ॥ तदनन्तर मन्त्री, इस तरह की मृत्युके सम्बन्धमें प्रतिजपिता पुरुषोंका नाम लेवें। अर्थात वे मिथ्या ही इस बातको प्रसिद्ध कर दें, कि उपजपिता पुरुषों को प्रतिजपिताओंने ही मारा है जिससे कि प्रत्येक उपजाप करनेवाले पुरुषका, प्रतिजपितामें अविश्वास हो जावे ॥ २४ ॥

अभ्यन्तरानभ्यन्तरेषूपजपत्सु यथार्हमुपायं प्रयुञ्जीत ॥२५॥ तुष्टलिङ्गमतुष्टं विपरीतं वा साम प्रयुञ्जीत ॥ २६ ॥

इसी प्रकार अभ्यन्तरोंको उपजाप करनेवाले अभ्यन्तर पुरुषोंमें भी यथायोग्य साम आदि उपायोंका प्रयोग किया जावे ॥ २५ ॥ सन्तोषके सूचक, पर वस्तुतः असन्तोषप्रद सामका प्रयोग किया जावे, अथवा असन्तोषके सूचक, वस्तुतः सन्तोषजनक सामका ही प्रयोग किया जावे। तात्पर्य यह है, कि अवस्थाके अनुसार इनमेंसे किसी तरहके सामका प्रयोग किया जावे ॥ २६ ॥

शौचसामर्थ्यापदेशेन व्यसनाभ्युदयावेक्षणेन वा प्रतिपूजनमिति दानम् ॥ २७ ॥

शौच अथवा सामर्थ्यके बहाने, तथा बन्धुवियोग आदिके दुःखमय, और पुत्रोत्सव आदिके सुखमय अवसरोंकी अपेक्षा करके वस्त्र तथा आभरण आदिके द्वारा सत्कार किया जाना दान होता है। अर्थात दानके प्रयोगका यह प्रकार समझना चाहिए ॥ २७ ॥

मित्रव्यञ्जनो वा ब्रूयादेतान् ॥ २८ ॥ चित्तज्ञानार्थमुपधास्यति वो राजा ॥ २९ ॥ तदस्याख्यातव्यमिति ॥ ३० ॥ परस्पराद्वा भेदयेदेनान् ॥ ३१ ॥ असौ च वो राजन्येवमुपजपतीति भेदः ॥ ३२ ॥

अथवा इनके मित्रके वेषमें रहनेवाला मन्त्री इनको (अभ्यन्तर उपजपिता पुरुषोंको) इस प्रकार कहे:—॥ २८ ॥ तुम्हारे हृदयगत अभिप्रायको जाननेके लिये राजा, भय आदिके द्वारा तुम्हारी परीक्षा करेगा ॥ २९ ॥ इसलिये तुम लोगोंको अपने २ हृदयगत अभिप्राय साफ २ कह देने चाहियें।

इस प्रकार कह देने पर उपजाप्य पुरुष, किसी तरह भी, भयके कारण उपजापको स्वीकार न करेंगे ॥ ३० ॥ अथवा इनको परस्पर भिन्न कर देवे; अर्थात् आपसमेंही इनकी फूट डलवा देवे ॥ ३१ ॥ उनसे कहे, कि अमुक अमुक व्यक्ति, राजाके समीप इस प्रकार तुम्हारे दोषोंको बतलाते हैं। इस तरह इनमें भेदका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३२ ॥

दाण्डकर्मिकवच्च दण्डः ॥ ३३ ॥ एतासां चतसृणामापदामभ्यन्तरामेव पूर्वं साधयेत् ॥ ३४ ॥ अहिभयादभ्यन्तरकोपो बाह्यकोपात्पापीयानित्युक्तं पुरस्तात् ॥ ३५ ॥

दाण्डकर्मिक प्रकरणमें (देखो=अधि० ५ अध्याय १) बतलाई हुई रीतिके अनुसार ही यहां दण्डका प्रयोग समझना चाहिए। अर्थात यहां उपांशुदण्डका प्रयोग करना ही उचित है ॥ ३३ ॥ इस प्रकार यहां तक निरूपण की हुई इन चार प्रकारकी आपत्तियोंमेंसे, सबसे प्रथम अभ्यन्तर आपत्तिका ही प्रतीकार करना चाहिये। क्योंकि यह अनर्थकारी होती है, और इसका प्रतीकार भी बड़ी कठिनतासे होता है ॥ ३४ ॥ इस बातका पहिले भी प्रतिपादन किया जा चुका है, कि सर्पके भयके समान, बाह्यकोपकी अपेक्षा अभ्यन्तर कोप अधिक कष्टकर होता है। तात्पर्य यह है कि जैसे घरका सांप या आस्तीनका सांप, बाहरके सांपकी अपेक्षा अधिक भयावह होता है, इसी तरह यहां भी समझना चाहिये ॥ ३५ ॥

पूर्वां पूर्वां विजानीयाल्लघ्वीमापदमापदाम् ।
उत्थितां बलवद्भ्यो वा गुर्वीं लघ्वीं विपर्यये ॥ ३६ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमेऽधिकरणे बाह्याभ्यन्तराश्चापदः पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥
आदितः षड्विंशशतः ॥ १२६ ॥

क्रमपूर्वक कही हुई इन चार आपत्तियोंमेंसे, उत्तर उत्तरकी अपेक्षा पूर्व पूर्व आपत्तिको लघु समझना चाहिए। और इसीलिये पूर्व पूर्वकी अपेक्षा से उत्तरोत्तर आपत्तिको गुरु समझे। परन्तु जो आपत्ति बलवान् उपजापिता आदिके द्वारा उत्पन्न हुई २ हो, वह पूर्वकी होनेपर भी गुरु समझनी चाहिये। और इसी प्रकार निर्बल उपजापिता आदिके द्वारा उत्पन्न हुई २ उत्तर आपत्तिको भी लघु ही समझना चाहिये ॥ ३६ ॥

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरणमें पांचवां अध्याय समाप्त ।

छठा अध्याय

१४४ प्रकरण

दूष्य तथा शत्रुजन्य आपत्तियां।

(राजकार्योंमें विघ्न डालनेवाले अपने ही मुख्य पुरुषोंको 'दूष्य' कहाजाता है; सहज तथा कृत्रिम आदि भेदोंसे 'शत्रु' भी अनेक प्रकारके होते हैं। इन सबके कारण उत्पन्न हुई २ बाह्य और आभ्यन्तर आपत्तियोंका तथा उनके प्रतीकारका, इस प्रकरणमें निरूपण कियाजायगा।)

दूष्येभ्यः शत्रुभ्यश्च द्विविधाः शुद्धाः ॥ १ ॥ दूष्यशुद्धायां पौरेषु जानपदेषु वा दण्डवर्जानुपायान्प्रयुञ्जीत ॥ २ ॥

जो आपत्तियां केवल दूष्य पुरुषोंसे, अथवा केवल शत्रुओंसे उत्पन्न हों, वे दो प्रकारकी 'शुद्ध' आपत्तियां कहलाती हैं। अर्थात् एक 'दूष्यशुद्धा' और दूसरी 'शत्रुशुद्धा' ॥ १ ॥ दूष्यशुद्ध अर्थात् दूष्यपुरुषोंके द्वारा उत्पन्न हुई शुद्ध आपत्तियोंके विषयमें, उनके प्रतीकारके लिये नगरनिवासी तथा जनपदनिवासी दूष्य पुरुषोंपर दण्डको छोड़कर शेष सब ही उपायोंका (साम दान और भेदका) यथायोग्य प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

दण्डो हि महाजने क्षेप्तुमशक्यः ॥ ३ ॥ क्षिप्तो वा तं चार्थं न कुर्यात् ॥ ४ ॥ अन्यं चानर्थमुत्पादयेत् ॥ ५ ॥ मुख्येषु त्वेषां दाण्डकर्मिकवच्चेष्टेत ॥ ६ ॥

क्योंकि बहुत आदमियोंपर सहसा दण्डका प्रयोग करदेना अशक्य है ॥ ३ ॥ यदि इसप्रकार दण्डका प्रयोग कर भी दिया जाता है, तो वह कदापि अभीष्ट अर्थको सिद्ध करने वाला नहीं होता ॥ ४ ॥ प्रत्युत किसी दूसरे अनर्थको ही उत्पन्न करदेता है ॥ ५ ॥ इसप्रकार यदि साम आदिके द्वारा इनमें (दूष्य मुख्यपुरुषोंमें) किसी तरह भी शान्ति न होवे, तो दाण्डकर्मिक प्रकरणमें (देखो=अधि० ५, अध्याय १) कहीहुई रीतिके अनुसार ही, इन मुख्य पुरुषोंमें उपांशुदण्डका प्रयोग किया जाय। उससे ही ये शान्त किये जा सकते हैं ॥ ६ ॥

शत्रुशुद्धायां यतः शत्रुः प्रधानः कार्यो वा, ततः सामादिभिः सिद्धिं लिप्सेत ॥ ७ ॥

शत्रुशुद्ध अर्थात् केवल शत्रुके द्वारा उत्पन्न की हुई आपत्तिमें तो (चाहे वह आपत्ति स्वयं शत्रुके द्वारा या उसके मन्त्रीके द्वारा, या उसके अमात्यके द्वारा, या मन्त्री और अमात्य इन दोनोंके द्वारा उत्पन्न हुई २ हो, अर्थात् शत्रुकी ओरसे ये चार प्रकारकी आपत्ति होसकती हैं, इनमें से कोई भी आपत्ति हो, उसको तो); शत्रु जिस सामन्त आदिके अधीन है, मन्त्री जिसके अधीन है, या अमात्य आदि जिसके अधीन हैं, उनमें साम आदिका यथायोग्य प्रयोग करके विजिगीषुको सिद्धिकी प्राप्ति करनी चाहिये ॥ ७ ॥

स्वामिन्यायत्ता प्रधानसिद्धिः ॥ ८ ॥ मन्त्रिष्वायत्तायत्तसिद्धिः ॥ ९ ॥ उभयायत्ता प्रधानायत्तसिद्धिः ॥ १० ॥

प्रधान विषयक सिद्धि, अर्थात् मन्त्रीसे उत्पन्न की हुई आपत्तिका प्रतीकार, स्वामीके अधीन होता है; तात्पर्य यह है, कि मन्त्रीके आपत्तिजनक होनेपर उसके स्वामीको ही साम आदिके द्वारा अनुकूल बनानेका यत्न करना चाहिये ॥ ८ ॥ आयत्तसिद्धि, अर्थात् कार्य शब्दसे कहेहुए (७ वें सूत्रमें) अमात्य आदिके द्वारा उत्पन्न की हुई आपत्तिका प्रतीकार, मन्त्रियोंके अधीन होता है; अर्थात् उसके प्रतीकारके लिये मन्त्रियोंको ही साम आदि प्रयोगोंके द्वारा अनुकूल बनाना चाहिये ॥ ९ ॥ इसीप्रकार मन्त्री और अमात्य दोनोंसे उत्पन्न की हुई आपत्तिका प्रतीकार, स्वामी और मन्त्री इन दोनोंके ही अधीन होता है। अर्थात् इस आपत्तिके प्रतीकारके लिये स्वामी और मन्त्री दोनोंको ही साम आदिके प्रयोगसे अनुकूल बनाना चाहिये ॥ १० ॥

दूष्यादूष्याणामामिश्रितत्वादामिश्रा ॥ ११ ॥ आमिश्रायामदूष्यतः सिद्धिः ॥ १२ ॥ आलम्बनाभावे ह्यालम्बिता न विद्यते ॥ १३ ॥

केवल शत्रु आदिसे उत्पन्न हुई शुद्ध आपत्तिका निरूपण करनेके अनन्तर अब दूष्य और अदूष्य (शत्रु) दोनोंके द्वारा मिलकर उत्पन्न कीहुई 'आमिश्र' आपत्तिके सम्बन्धमें निरूपण किया जायगा—दूष्य और अदूष्य दोनोंके द्वारा उत्पन्न कीहुई आपत्ति 'आमिश्र' या मिश्रित कहाती है; (पहिले दो प्रकारकी 'शुद्ध' आपत्तिका निरूपण किया जा चुका है) ॥ ११ ॥ आमिश्र आपत्तिमें अदूष्यके द्वारा ही सिद्धि प्राप्त होसकती है। अर्थात् आमिश्र आपत्तिका प्रतीकार करनेके लिये अदूष्यको ही साम आदि उपायोंसे अनुकूल बनाना चाहिये ॥ १२ ॥ क्योंकि अदूष्योंका ही सहारा लेकर दूष्य आपत्तिजनक हो सकता है, अदूष्यके अनुकूल हो जानेपर वह स्वयं ही शान्त हो जाता है ॥ १३ ॥

मित्रामित्राणामेकीभावात्परमिश्रा, परमिश्रायां मित्रतः सिद्धिः ॥ १४ ॥ सुकरो हि मित्रेण सन्धिर्नामित्रेणेति ॥ १५ ॥

मित्र और शत्रु इन दोनोंके द्वारा मिलकर उत्पन्न की हुई आपत्ति 'परमिश्र' (अर्थात जिसमें शत्रु विशेष रूपसे मिलकर आपत्तिका जनक होता है,) कहाती है; इसको 'शत्रुमिश्र' भी कहते हैं। परमिश्र आपत्तिमें मित्रके द्वारा ही सिद्धि प्राप्त होसकती है; अर्थात उस मित्रके द्वारा ही इस आपत्तिका प्रतीकार किया जाता है ॥ १४ ॥ क्योंकि मित्रके साथ सन्धि होजाना सुकर होता है; शत्रु के साथ इस तरह सन्धि होना कठिन है (किसी २ पुस्तकमें 'सन्धिः' पदके स्थानपर 'सिद्धिः' ऐसा पाठ है; अर्थमें कोई विशेष भेद नहीं) ॥ १५ ॥

मित्रं चेन्न संधिमिच्छेदभीक्ष्णमुपजपेत् ॥ १६ ॥ ततः सत्रिभिरमित्राद्भेदयित्वा मित्रं लभेत ॥ १७ ॥ मित्रामित्रसंघस्य वा योऽन्तःस्थायी तं लभेत ॥ १८ ॥ अन्तःस्थायिनि लब्धे मध्यस्थायिनो भिद्यन्ते ॥ १९ ॥

मित्र, यदि सन्धि न करना चाहे, तो बार २ उसका उपजाप करे अर्थात् शत्रुसे भिन्न करनेका यत्न करे ॥ १६ ॥ इसप्रकार सत्री गुप्तपुरुषोंके द्वारा, शत्रुसे उसकी फूट डलवाकर मित्रको प्राप्त करे अर्थात् उसको फिर अपने अनुकूल बनालेवे ॥ १७ ॥ एक देशके व्यवधानसे अथवा देशके साथ ही लगेहुए यथाक्रम मित्र और शत्रुके संघके अवसानमें रहनेवाले सामन्तोंको अपनी ओर मिलावे ॥ १८ ॥ क्योंकि अन्तमें रहनेवाले सामन्तके अपने वशमें होजानेपर मध्यस्थित राजा, परस्पर स्वयं ही फूट जाते हैं ॥ १९ ॥

मध्यस्थायिनं वा लभेत । २० ॥ मध्यस्थायिनि वा लब्धे नान्तःस्थायिनःसंहन्यन्ते ॥ २१ ॥ यथा चैपामाश्रयभेदस्तानुपायान्प्रयुञ्जीत ॥ २२ ॥

अथवा मध्यस्थायी सामन्तको ही अपने अधीन करे ॥ २० ॥ क्योंकि मध्यस्थायी सामन्तके वशमें होजानेपर, अर्थात् जब वह अपने वशीभूत होजाता है, तो अन्तमें रहनेवाले राजा भी आपसमें मिल नहीं सकते। अर्थात उनका परस्पर भेद होजाता है ॥ २१ ॥ तथा जिस प्रकारसे शत्रु और मित्र, अपने आश्रय अर्थात् अपनेको सहारा देनेवाले शक्तिशाली राजासे भिन्न रहसकें, इसीप्रकारके उपायोंका प्रयोग कियाजावे ॥ २२ ॥

धार्मिकं जातिकुलश्रुतवृत्तस्तवेन संबन्धेन पूर्वेषां त्रैकाल्योपकारानपकाराभ्यां वा सान्त्वयेत् ॥ २३ ॥

धार्मिक राजाके विषयमें सामके प्रयोगका यह प्रकार है:-जाति, कुल, श्रुत (पढ़ाई लिखाई), और वृत्त (सद्व्यवहार या आचार) आदिकी स्तुतिके सम्बन्धसे, तथा उनके कुलवृद्धोंके सदा उपकार या अनपकारके द्वारा धार्मिक राजाको शान्त करे ॥ २३ ॥

निवृत्तोत्साहं विग्रहश्रान्तं प्रतिहतोपायं क्षयव्ययाभ्यां प्रवासेन चोपतप्तं शौचेनान्यं लिप्समानमन्यस्माद्वा शङ्कमानं मैत्रीप्रधानं वा कल्याणबुद्धिं साम्ना साधयेत् ॥ २४ ॥

उत्साहहीन, लड़ाईसे थकेहुए, अर्थात युद्ध करनेमें रुचि न रखने वाले, निष्फल उपाय वाले (अर्थात जिसके प्रयोग कियेहुए साम आदि उपाय सफल न हुए हों, ऐसे), क्षय (सवारी तथा आदमियोंके नाश), व्यय (धन धान्य आदिके नाश) और प्रवास (दूरदेशकी यात्रा) से संतप्त हुए २, पवित्रता पूर्वक (अर्थात ईमानदारीसे) किसी दूसरे राजाको अपना मित्र बनानेकी इच्छा रखने वाले, दूसरेसे शङ्का रखनेवाले अर्थात दूसरेपर विश्वास न करनेवाले, और सबके साथ मित्रभावका ही व्यवहार करनेवाले कल्याणबुद्धि राजाको, सामके द्वारा ही शान्त करनेका प्रयत्न करे ॥ २४ ॥

लुब्धं क्षीणं वा तपस्विमुख्यावस्थापनापूर्वं दानेन साधयेत् ॥ २५ ॥ तत्पञ्चविधम्—॥ २६ ॥ देयविसर्गो गृहीतानुवर्तनमात्तप्रतिदानं स्वद्रव्यदानमपूर्वं परस्वेषु स्वयंग्राहदानं चेति दानकर्म ॥ २७ ॥

लोभी, अथवा धनहीन राजाको, तपस्वी और अन्य मुख्य व्यक्तियोंकी प्रामाणिकतासे दानके द्वारा वशीभूत करे। तात्पर्य यह है, कि देनेके समय तपस्वी तथा प्रधान व्यक्तियोंको इस बातका साक्षी बनावे, कि अमुक राजाको मैंने अमुक समयमें इस शर्तपर इतना धन आदि दिया है जिससे कि आगे किसी तरहके झगड़ेकी सम्भावना न हो ॥ २५ ॥ यह दान पांच प्रकारका होता है ॥ २६ ॥ देयविसर्ग (ग्रहण कीहुई भूमियों, ब्राह्मण आदिके लिये पहिलेके अनुसार ही छोड़ाहुआ), गृहीतानुवर्तन (पहिले पूर्वजोंके द्वारा लीहुई भूमि आदिको मांगनेके लिये प्रतिषेध न करना), आत्तप्रतिदान (लीहुई भूमि आदिका फिर वापस देदेना), नये तौरपर अपने ही द्रव्यका देना, और शत्रुके देशसे लूटेहुए धनको लूटने वालेको ही देदेना, अर्थात शत्रुके

देश पर चढ़ाई करने पर वहांसे जितना धन लूटमें तुम्हारे हाथ लगेगा, वह तुम्हारा ही होगा; इसप्रकार दानके ये पांच भेद होते हैं ॥ २७ ॥

परस्परद्वेषवैरभूमिहरणशङ्कितमतो ऽन्यतमेन भेदयेत् ॥२८॥ भीरुं वा प्रतिघातेन ॥ २९ ॥ कृतसंधिरेष त्वयि कर्म करिष्यति मित्रमस्य निसृष्टम् ॥ ३० ॥ संधौ वा नाभ्यन्तर इति ॥ ३१ ॥

अब भेदका निरूपण किया जाता है:—जो राजा आपसके द्वेष (उसी समय कियेहुए अपकारके द्वारा उत्पन्न हुआ २ विरोधीभाव), वैर (चिरकालसे उत्पन्न हुआ २ विरोधीभाव), तथा भूमिका अपहरण आदि करनेकी आशङ्का रखता हो; उसे इन्हींमें से किसी एकके द्वारा भिन्न करदेवे। अर्थात् द्वेष आदिके द्वारा ही उनकी आपसमें फूट डालदे ॥ २८ ॥ भीरु (डरपोक) राजाको प्रतिघात के द्वारा (शत्रु बलवान् है, यदि तू इस समय युद्ध आदि करेगा, तो मारा जायगा, इसप्रकार भय दिखाकर) भिन्न करदेवे ॥ २९ ॥ अथवा यह कहकर भेद डाले, कि देखो, इस समय तो यह तुमसे सन्धि करलेगा, पर सन्धि करके फिर पीछेसे तुमपर आक्रमण करदेगा; क्योंकि सन्धि करनेके लिये विजिगीषुके पास इसने अपने मित्रको भेजदिया है ॥३०॥ अथवा यह कहकर भेद डाले, कि देखो—शत्रु और मित्रके साथ सन्धि करनेके समयमें इन्होंने तुमको उसमें सम्मिलित नहीं किया, अर्थात् उस कार्यसे तुम्हारा बहिष्कार करदिया ॥ ३१ ॥

यस्य वा स्वदेशादन्यदेशाद्वा पण्यानि पण्यागारतया गच्छेयुस्तान्यस्य यातव्याल्लब्धानीति सत्त्रिणश्चारयेयुः ॥ ३२ ॥ बहुलीभूते शासनमभित्यक्तेन प्रेषयेत् ॥ ३३ ॥

मित्र या शत्रु किसीके अपने देशसे या दूसरेके देशसे, पण्यागार (विक्रेय वस्तुओंके रखनेका स्थान विशेष) में रखनेके लिये जो पण्य (बिकने आदिका सामान) आवे; उसके सम्बन्धमें सत्री यह प्रसिद्ध करदें कि छिपे तौरपर सन्धि करनेकी इच्छा रखनेवाले यातव्य (जिसके ऊपर आक्रमण कियाजाने वाला हो, उस) से ही यह सामान प्राप्त हुआ है ॥ ३२ ॥ इस मिथ्या वृत्तान्तके बहुत अधिक फैल जानेपर, एक कपटलेख (बनावटी पत्र लिखकर) अभित्यक्त (सर्वथा वध्यरूपसे निश्चित हुआ २ पुरुष; इसी अर्थको प्रकट करनेके लिये-अधि० ९, अध्याय ३, सूत्र ५३ की व्याख्यामें 'अभित्यक्त' के स्थानपर 'अभित्यक्त' शब्दका प्रयोग किया है; यद्यपि मूल सूत्रमें वहां 'अभित्यक्त' पाठ ही छपगया है, पर नयचन्द्रिका व्याख्याके

अनुसार वहां 'अभित्यक्त' पाठ ही है । परन्तु इस स्थलमें नयचन्द्रिका व्याख्यामें भी 'अभिव्यक्त' ही पाठ है) पुरुषके हाथमें देकर उसे भेजे ॥ ३३ ॥

एतत्ते पण्यं पण्यागारं वा मया ते प्रेषितम् ॥ ३४ ॥ सामवायिकेषु विक्रमस्वापगच्छ वा ॥ ३५ ॥ ततः पणशेषमवाप्स्यसीति ॥ ३६ ॥ ततः सत्त्रिणः परेषु ग्राहयेयुः ॥ ३७ ॥ एतदरिप्रदत्तमिति ॥ ३७ ॥

उस लेखका भाव यह होना चाहियेः—यह थोड़ा बहुत सामान मैंने आपके लिये भेजा है, तथा यह पण्यागार अर्थात् पण्य गृहके समान, शकट आदि बड़ा २ सामान भी मैंने आपके पास भेजा है ॥ ३४ ॥ तुम्हारे अपने साथ ही उठनेवाले अर्थात मेरे शत्रुकी सहायता करनेवाले राजाओंपर आक्रमण करो, अथवा उन्हें छोड़कर अलहदा होजाओः अर्थात मेरी सहायता करनेके लिये तैयार होजाओ ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर तुमको, शर्त किया हुआ शेष धन भी प्राप्त होजावेगा, अर्थात् मेरी ओरसे तुम्हें शेष धन उसी समय मिल सकेगा, जब तुम उनपर चढ़ाई करोगे, या उन्हें छोड़दोगे । इसप्रकार बनावटी पत्र लिखवाकर उसके पास भेजा जावे ॥ ३६ ॥ तदनन्तर सत्त्री, अन्य सामवायिक राजाओंमें इस बातका निश्चय करादे, कि यहपत्र विजिगीषुका अर्थात आपके शत्रुका दिया हुआ है ॥ ३७ ॥

शत्रुप्रख्यातं वा पण्यमविज्ञातं विजिगीषुं गच्छेत् ॥ ३८ ॥ तदस्य वैदेहकव्यञ्जनाः शत्रुमुख्येषु विक्रीणीरन् ॥ ३९ ॥ ततः सत्त्रिणः परेषु ग्राहयेयुः, एतत्पण्यमरिप्रदत्तमिति ॥ ४० ॥

अथवा शत्रु अर्थात् सामवायिक राजाओंमें से किसी एकके साथ सम्बन्ध जोड़ेहुए रत्न आदि पण्य (सामान) को, बिना ही किसीके जानेहुए, किसीतरह विजिगीषुके पास पहुंचाया जावे ॥ ३८ ॥ तदनन्तर व्यापारियोंके वेषमें रहनेवाले उसके गुप्तचर, उस सामानको अन्य, शत्रुके समान मुख्य सामवायिक राजाओंमें लेजाकर बेचें ॥ ३९ ॥ और इसके बाद सत्त्री (गुप्तचरपुरुष), उस सामानको, अन्य सामवायिक राजाओंमें जाकर रक्षकपुरुषोंके द्वारा यह कहकर पकड़वा देवें, कि यह सब सामान आपके शत्रु अर्थात् विजिगीषुके द्वारा यहां इन (अमुक) पुरुषोंके पास बेचनेके लिये भेजा गया है । इसका परिणाम यह निकलेगा, कि सामवायिक राजाओंके हृदयमें यह निश्चित होजायगा, कि हममें से कोई राजा विजिगीषुके साथ मिल गया है । और इसतरह उनमें परस्पर अवश्य फूट होजायगी ॥ ४० ॥

महापराधानर्थमानाभ्यामुपगृह्य वा शस्त्ररसाग्निभिरमित्रे प्रणिदध्यात् ॥ ४१ ॥ अथैकममात्यं निष्पातयेत् ॥ ४२ ॥ तस्य पुत्रदारमुपगृह्य रात्रौ हतमिति ख्यापयेत् ॥ ४३ ॥ अथामात्यः शत्रोस्तानेकैकशः प्ररूपयेत् ॥ ४४ ॥

महान अपराध करनेवाले अमात्य आदिको, भूमि हिरण्य आदि धन तथा छत्र चामर आदि सत्कारके देनेसे अपने वशमें करके, उन्हें शत्रुपर शस्त्र तथा रस आदिके द्वारा आक्रमण करनेके लिये नियुक्त करे। तात्पर्य यह है, कि विजिगीषु इस प्रकारके अपराधी अमात्योंसे 'तुम लोग जाकर शस्त्र विष तथा अग्नि आदिके द्वारा शत्रुको मार डालो, यह कहकर छिपे तौरपरही उन्हें इस कामके लिये भेज देवे ॥ ४१ ॥ पहिले एकही अमात्यको अपने पाससे निकालकर शत्रुके पास पहुंचा देवे ॥ ४२ ॥ तदनन्तर उसके स्त्री और पुत्रोंको पकड़कर अर्थात् किसी एकान्त स्थानमें छिपे तौरपर सुरक्षित करके, रात्रिमें उन्हें राजाने मार डाला है, इस प्रकार मिथ्या वृत्तान्तकोही प्रसिद्ध करादेवे। (यह इसीलिये किया जाता है, कि जिससे शत्रु, भेजे हुए अमात्यके सम्बन्धमें विजिगीषुकी शत्रुता का विश्वास करसके) ॥ ४३ ॥ जब वह अमात्य, शत्रुके यहां स्थान पाजावे, अर्थात् शत्रु जब उसपर पूरा विश्वास करने लगे; तो वह विजिगीषुके यहांसे आये हुए अन्य अमात्योंको भी एक एक करके यह कहकर परिचय करा देवे, कि यह लोग विजिगीषुके द्वेषके कारण यहां आये हैं और आपकी सेवामें रहनेके योग्य हैं ॥ ४४ ॥

ते चेद्यथोक्तं कुर्युर्न चैनान्ग्राहयेत् ॥ ४५ ॥ अशक्तिमतो वा ग्राहयेत् ॥ ४६ ॥ आप्तभावोपगतो मुख्यादस्यात्मानं रक्षणीयं कथयेत् ॥ ४७ ॥ अथामित्रशासनमुख्यायोपघाताय प्रेषितमुभयवेतनो ग्राहयेत् ॥ ४८ ॥

यदि वे अमात्य, विजिगीषुकी आज्ञानुसार सब कार्य करदें, अर्थात् उस शत्रुको शस्त्र आदिके द्वारा मार डालें; तो उन्हें न पकड़वावे। अर्थात् ये लोग दोनों ओरसे वेतन लेते हैं, यह कहकर शत्रुके द्वारा उन्हें गिरफ्तार न करवावे ॥ ४५ ॥ यदि ये लोग शत्रुके मारनेमें अपना असामर्थ्य प्रकट करें, तो इन्हें पकड़वा देवे ॥ ४६ ॥ विजिगीषुके द्वारा निकाला हुआ वह अमात्य, सामवायिक राजाओंके मुखियाके साथ इस प्रकार भेद डाले:—जब वह अमात्य शत्रुका अत्यन्त विश्वस्त होजावे, तो वह शत्रुसे कहे, कि आपको सामवायिक राजाओंके मुखियोंसे अपने आपकी रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि वे

लोग विश्वास करनेके योग्य नहीं हैं ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर, अमुख्य सामवायिकके उपघातके लिये शत्रुके द्वारा भेजा हुई लिखित कूट आज्ञाको उभयवेतन पुरुष (दोनों ओर से वेतन लेनेवाले), रक्षक पुरुषोंके द्वारा मुख्य सामवायिकके पास पहुंचवा देवें । (किसी २ पुस्तकमें 'अमुख्याय' के स्थानपर 'मुख्याय' भी पाठ है) ॥ ४८ ॥

उत्साहशक्तिमतो वा प्रेषयेत् ॥ ४९ ॥ अमुष्य राज्यं गृहाण यथास्थितो न संधिरिति ॥ ५० ॥ ततः सत्त्रिणः परेषु ग्राहयेयुः ॥ ५१ ॥

अथवा उत्साह तथा विक्रम शक्तिसे युक्त किसी एक सामवायिकके पासही उस नकली आज्ञाको भिजवावे । ॥ ४९ ॥ उस आज्ञापत्रका विषय इस प्रकार होना चाहिये:—आप उस मुख्य सामवायिकके राज्यको ले लेवें; पहिले निश्चिय की हुई सन्धिको अब स्वीकार नहीं किया जासकता ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर वे सत्री (गुप्त) पुरुष, अन्य सामवायिक राजाओंके पास जाकर इस बात की सूचना देदेवें । अर्थात अमुक सामवायिकपर इस २ तरहका कोई पत्र आया है, इस बातसे उन्हें सूचित करदेवें ॥ ५१ ॥

एकस्य स्कन्धावारं विवधमासारं वा घातयेयुः ॥ ५२ ॥ इतरेषु मैत्रीं ब्रुवाणाः ॥ ५३ ॥ तं सत्त्रिणः त्वमेतेषां घातयितव्य इत्युपजपेयुः ॥ ५४ ॥

अथवा यह करना चाहिये, कि सत्रीपुरुष, किसी एक सामवायिक राजाके स्कन्धावार (छावनी अथवा पड़ाव), उसके अपने देशसे धान्य आदिके आगम, तथा उसके मित्रबलको नष्ट करडालें ॥ ५२ ॥ और अन्य सामवायिक राजाओंसे अपनी मित्रताका कथन करते रहें । जिससे कि उनके सामने यह बात सर्वथा छिपी रहे ॥ ५३ ॥ तदनन्तर सत्रीपुरुष, उस एक सामवायिक राजाको, अन्य सामवायिक राजाओंसे, यह कहकर भेद डाले, कि ये सामवायिक राजा तुझे मारना चाहते हैं, ऐसी अवस्थामें इनके साथ तेरी सन्धि कैसे होसकती है ॥ ५४ ॥

यस्य वा प्रवीरपुरुषो हस्ती हयो वा म्रियेत गूढपुरुषैर्हन्येत ह्रियेत वा तं सत्त्रिणः परस्परेणोपहतं ब्रूयुः ॥ ५५ ॥ ततः शासनमभिशस्तस्य प्रेषयेत् ॥ ५६ ॥ भूयः कुरु ततः पणशेषमवाप्स्यसीति ॥ ५७ ॥ तदुभयवेतना ग्राहयेयुः ॥ ५८ ॥

अथवा जिस किसी सामवायिक का कोई बहादुर आदमी, हाथी या घोड़ा स्वयं मर जावे, गूढ़ पुरुषों के द्वारा मार दिया जावे, अथवा अपहरण कर लिया जावे; उसके सम्बन्धमें सत्री पुरुष, उसे एक दूसरेके द्वारा मारा हुआ बतलावें। अर्थात् जिनके वे आदमी आदि मर गये हैं, उनको यह समझावें, कि तुम्हारे यह आदमी आदि अन्य सामवायिक राजाओंके द्वारा ही मारे गये हैं ॥ ५५ ॥ तदनन्तर जिस सामवायिक का मारने वालों में नाम लिया गया है, उसके पास एक बनावटी आज्ञापत्र भेजा जावे ॥ ५६ ॥ इस का मजमून यह होना चाहिये:—कि फिर तुम इसी प्रकार करो, अर्थात् अन्य सामवायिकोंके बहादुर आदमी और घोड़े आदिकों को इसी प्रकार नष्ट करते रहो, इसके बाद ही तुम्हें शेष धन दिया जासकेगा ॥ ५७ ॥ उस बनावटी आज्ञापत्र को, उभयवेतन (विजिगीषु और सामवायिक दोनों की ओर से वेतन लेने वाले) पुरुष, गूढ़ पुरुषों द्वारा सामवायिक राजा तक भिजवा देवें। इस प्रकार सामवायिक राजाओं में परस्पर भेद डालने का यत्न करना चाहिये ॥५८॥

भिन्नेष्वन्यतमं लभेत ॥ ५९ ॥ तेन सेनापतिकुमारदण्डचारिणो व्याख्याताः ॥ ६० ॥ साङ्घिकं च भेदं प्रयुञ्जीतेति भेदकर्म ॥ ६१ ॥

जब सामवायिक राजा आपसमें फूट जावें, तो उनमें से एकको पकड़ कर अपने अधीन करले ॥ ५९ ॥ भेद डालने का जो उपाय सामवायिक राजाओं के लिये कहा गया है, वही उपाय सेनापति युवराज तथा अन्य सेना-सम्बन्धी व्यक्तियोंमें भेद डालनेके लिये भी समझना चाहिये ॥ ६० ॥ सङ्घवृत्त अधिकरण (ग्यारहवें अधिकरण)में निरूपण किये जाने वाले, भेद डालने के उपायों का यहां भी प्रयोग किया जासकता है। यहां तक भेद सम्बन्धी कार्यों का प्रतिपादन कर दिया गया ॥ ६१ ॥

तीक्ष्णमुत्साहिनं व्यसनिनं स्थितशत्रुं वा गूढपुरुषाः शस्त्राग्निरसादिभिः साधयेयुः ॥ ६२ ॥ सौकर्यतो वा तेषामन्यतमः ॥ ६३ ॥ तीक्ष्णो ह्येकः शस्त्ररसाग्निभिः साधयेत् ॥ ६४ ॥ अयं सर्वसंदोहकर्म विशिष्टं वा करोतीत्युपायचतुर्वर्गः ॥ ६५ ॥

तीक्ष्ण (अत्यधिक क्रोधी अथवा असहनशील), उत्साही (बहादुर=पराक्रमशाली), व्यसनी (शिकार आदि खेलनेमें लगा रहने वाला), तथा दुर्ग आदिसे युक्त शक्तिशाली शत्रु को, गूढ़पुरुष शस्त्र अग्नि तथा विष आदि के द्वारा मिलकर मार डालें ॥ ६२ ॥ अथवा उनमें से कोई एक ही गूढ़पुरुष

जो कि सुगमता से ही शत्रु का वध कर सकता हो, वह अकेला ही किसी उपायसे इन उपर्युक्त प्रकारके शत्रुओं को मार डाले ॥ ६३ ॥ (वह कौन एक ऐसा होसकता है, उसका ही निरूपण करते हैं-) क्योंकि एकही तीक्ष्ण पुरुष (एक प्रकार का गूढ पुरुष, जो कि शस्त्र आदिसे ही अपने कार्यों को सिद्ध करता है, वह) शस्त्र, विष आदि रस तथा अग्निके द्वारा उक्त सब प्रकार के ही शत्रुओंको ठीक कर सकता है, अर्थात् मार सकता है ॥ ६४ ॥ इस प्रकार का यह तीक्ष्ण गूढपुरुष, न केवल सब तरहके गूढपुरुषोंसे मिलकर किये जाने वाले कार्य को ही अकेला कर सकता है, प्रत्युत उनकी अपेक्षा अधिक भी कार्य कर सकता है। अर्थात् वे मिलकर भी जिस काम को नहीं कर सकते हैं, उस कामको भी यह अकेला ही कर सकता है। यहां तक साम दान भेद और दण्ड इन चार उपायों के सम्बन्धमें निरूपण कर दिया गया ॥ ६५ ॥

पूर्वः पूर्वश्चास्य लघिष्ठः ॥ ६६ ॥ सान्त्वमेकगुणम् ॥६७॥ दानं द्विगुणं सान्त्वपूर्वम् ॥ ६८ ॥ भेदस्त्रिगुणः सान्त्वदानपूर्वः ॥ ६९ ॥ दण्डश्चतुर्गुणः सान्त्वदानभेदपूर्वः ॥ ७० ॥

अब इनके गुरुलघुभावका विचार किया जाता है:—इन चारों उपायों में से पहला उपाय, अगले उपायों की अपेक्षा लघु होता है, अर्थात् इसका प्रयोग अनायास ही किया जा सकता है, क्योंकि यह थोड़े अवयव वाला होता है ॥ ६६ ॥ साम एकही गुण वाला होता है, अर्थात् प्रयोक्ता स्वयं अपने आप ही उसका एक गुण (=अवयव) होता है ॥ ६७ ॥ दान दो गुण (=अवयव) वाला होता है, क्योंकि साम अर्थात् सान्त्वना और देना, दोनों ही इसके अवयव होते हैं ॥ ६८ ॥ भेद तीन गुणों वाला होता है, पहिले दो उपाय और तीसरा अपने आप, ये तीनों ही अवयव रूपसे उसमें मिले रहते हैं ॥ ६९ ॥ इसी प्रकार दण्ड चौगुना होता है, अर्थात् पहिले तीन उपाय और एक स्वयं, ये चारों ही इसके अवयव होते हैं ॥ ७० ॥

इत्यभियुञ्जानेषूक्तम् ॥ ७१ ॥ स्वभूमिष्ठेषु तु त एवोपायाः ॥ ७२ ॥ विशेषस्तु— ॥ ७३ ॥ स्वभूमिष्ठानामन्यतमस्य पण्यागारैरभिज्ञानान्दूतमुख्यानभीक्ष्णं प्रेषयेत् ॥ ७४ ॥

जो मित्र अथवा शत्रु, यातव्यकी ओर, मिलकर आक्रमण करनेके लिए चल पड़े हों, और उसके समीप ही कहीं पड़ाव डालकर पड़े हों, उन आक्रमणकारी सामवायिक राजाओंके विषयमें ही यह इसप्रकारका साम आदि उपायों

का विधान बताया गया है ॥ ७१ ॥ और जब वह आक्रमण के लिये चल न पड़े हों, किन्तु अपनी २ भूमि में ही स्थित हों, तबभी इन्हीं उपायों का प्रयोग किया जावे ॥ ७२ ॥ उस अवस्थामें इनका प्रयोग करनेमें जो विशेष बात है उसका अब निरूपण किये देते हैं:— ॥ ७३ ॥ मिलकर आक्रमण करनेसे पहिले, जब कि मित्र और शत्रु सब अपने २ देशोंमें स्थित रहते हैं, उनमें से किसी एकके पास अत्यधिक मणि मुक्ता आदि सामानके साथ, उन राजाओंके सम्बन्धमें अच्छी जानकारी रखने वाले दूतमुख्यों को विजिगीषु बार २ भेजे ॥ ७४ ॥

त एनं संधौ परहिंसायां वा योजयेयुः ॥ ७५ ॥ अप्रतिपद्यमानं कृतो नः संधिरित्यावेदयेयुः ॥ ७६ ॥ तमितरेषामुभयवेतनाः संक्रामयेयुः ॥ ७७ ॥ अयं वो राजा दुष्ट इति ॥७८॥

वे दूतमुख्य, उस मित्र अथवा शत्रु को, अपने साथ सन्धि, अथवा दूसरेके मारनेमें नियुक्त करें ॥ ७५ ॥ यदि वह सन्धि करना स्वीकार न करे, तो भी 'इसने हमारे साथ सन्धि करली है', इस प्रकार वे दूतमुख्य मिथ्या ही प्रसिद्धि करदें ॥ ७६ ॥ उभयवेतन पुरुष, अन्य मित्र तथा शत्रुओंके पास भी उस समाचार को पहुंचा देवें ॥ ७७ ॥ और यह कहें कि आप लोगोंमेंसे अमुक राजा बड़ा दुष्ट है, क्योंकि इसने आप लोगोंसे कुछ न कहकर चुपचाप ही विजिगीषुसे सन्धि करली है ॥ ७८ ॥

यस्य वा यस्माद्भयं वैरं द्वेषो वा तं तस्माद्भेदयेयुः ॥७९॥ अयं ते शत्रुणा संधत्ते ॥ ८० ॥ पुरा त्वामतिसंधत्ते क्षिप्रतरं संधीयस्व ॥ ८१ ॥ निग्रहे चास्य प्रयतस्वेति ॥ ८२ ॥

जिसको जिससे शत्रुता द्वेष तथा भय हो, उसको उससे भिन्न कर देवें। अर्थात् गूढपुरुष, इस प्रकारके दो राजाओं में कभी सन्धि न होने दें ॥७९॥ उसको इस प्रकार कहें, कि देखो, यह तुम्हारे शत्रुके साथ सन्धि करता है ॥ ८० ॥ फिर यह तुमको ही दबाने के लिये तयार होजाएगा, इस लिये तुम बहुत जल्दी उस शत्रुके (अर्थात् विजिगीषुके) साथ स्वयं सन्धि करलो ॥८१॥ और इसका निग्रह करनेके लिये अर्थात् इसको अपने काबूमें करने के लिये प्रयत्न करो ॥ ८२ ॥

आवाहविवाहाभ्यां वा कृत्वा संयोगमसंयुक्तान्भेदयेत् ॥ ८३ ॥

आवाह (कन्याका स्वीकार करना) अथवा विवाह (कन्या का देना) के द्वारा आपसमें सम्बन्ध करके, सम्बन्ध रहित दूसरे राजाओंके साथ उसका

भेद डाल दिया जावे। यहां तक अपनी २ भूमिमें रहने वाले राजाओं में परस्पर भेद डालने के प्रकारों का निरूपण कर दिया गया ॥ ८३ ॥

सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धैश्चैषां राज्यान्निघातयेत् ॥८४॥ सार्थव्रजाटवीर्वा, दण्डं वाभिसृतं, परस्परापाश्रयाश्चैषां जातिसङ्घाश्छिद्रेषु प्रहरेयुः ॥ ८५ ॥ गूढाश्चाग्निरसशस्त्रेण ॥ ८६ ॥

सामन्त (उनकी भूमिके समीप रहने वाले राजा), आटविक (जंगल के स्वामी), अथवा उनके (मित्र या शत्रुओंके) कुलमें ही उत्पन्न हुए अवरुद्ध राजपुत्रादिके द्वारा ही विजिगीषु उनके राज्यको हानि पहुंचाने का यत्न करे ॥ ८४ ॥ अथवा उनके व्यापारी भारको ढोने वाले पशु, अन्य गाय भैंस आदि पशु, तथा द्रव्यवन और हस्तिवनोंको नष्ट करवा देवे, अथवा रक्षा करने वाली सेना को ही नष्ट करवा देवे। (किसी पुस्तकमें 'सार्थव्रजाटवीर्वा' के स्थान पर 'सार्थव्रजाटवीभिर्वा' ऐसा तृतीयान्त पाठ है; इस पाठमें सार्थ, व्रज तथा अटवी के साथ २ रक्षक सेनाको भी नष्ट करवा देवे, यही अर्थ करना चाहिये) । और एक दूसरेसे पृथक् किये हुए जातिसंघ (विच्छिलिक आदि नाम वाले जाति समूह; इनका संघवृत्त अधिकरणमें निरूपण किया जायगा), इन मित्र या शत्रुओंके प्रमादस्थानोंमें बराबर प्रहार करते रहें, अर्थात् जहां उनको कमजोर देखें, वहीं उनपर प्रहार करदें ॥ ८५ ॥ और अन्य तीक्ष्ण रसद आदि गूढपुरुष, अग्नि, विष आदि रस तथा हथियारोंके द्वारा प्रहार करें ॥ ८६ ॥

वितंसगिलवच्चारीन्योगैराचरितैः शठः ।
घातयेत्परमिश्रायां विश्वासेनामिषेण च ॥ ८७ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे दूष्यशत्रुसंयुक्ताः षष्ठो ऽध्यायः ॥ ६ ॥
आदितः सप्तविंशशतः ॥ १२७ ॥

परमिश्र अर्थात् मित्र और शत्रु दोनोंसे मिलकर उत्पन्न हुई आपत्तिमें, शठ (गूढ व्यवहार करने वाला) विजिगीषु, वितंस (पक्षियोंके विश्वासके लिये पक्षियोंके विविध चित्रोंसे युक्त, शरीरको ढकने वाला वस्त्र) और गिल (खाने का मांस) के समान, प्रयुक्त किये हुए कपट उपायोंके द्वारा अपने अन्दर विश्वास उत्पन्न कराके, तथा कुछ सार वस्तु देकर अपने शत्रुओं को वशमें करे ॥ ८७ ॥

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरणमें छठा अध्याय समाप्त।

सातवां अध्याय

१४५-१४६ प्रकरण

अर्थ, अनर्थ तथा संशयसम्बन्धी आपत्तियां, और उन आपत्तियोंके प्रतीकारके लिये साम आदि उपायोंके प्रयोग विशेषसे होनेवाली सिद्धियां

हिरण्य भूमि आदिको 'अर्थ' कहते हैं; उनके नाश तथा शरीरके नाशका नाम 'अनर्थ' है, अर्थ और अनर्थ विषयक सन्देहकोही 'संशय' कहा जाता है, इनसे युक्त आपत्तियोंका, पहले प्रकरणमें निरूपण किया जायगा। और दूसरे प्रकरणमें साम आदि उपायों के कारण इन्हीं आपत्तियोंके प्रतीकारका निरूपण किया जायगा।

कामादिरुत्सेकः स्वाः प्रकृतीः कोपयति ॥ १ ॥ अपनयो बाह्याः ॥ २ ॥ तदुभयमासुरी वृत्तिः ॥ ३ ॥ स्वजनविकारः कोपः परवृद्धिहेतुष्वापदर्थोऽनर्थः संशय इति ॥ ४ ॥

काम क्रोध आदि दोषोंका अधिक होना, अपनेही मन्त्री आदि अभ्यन्तर प्रकृतिजनोंको कुपित करनेवाला होता है ॥ १ ॥ अपनय अर्थात् नीतिमार्गसे भ्रष्ट होना, राष्ट्रमुख्य अन्तपाल आदि बाह्य प्रकृतियोंको कुपित करदेता है ॥ २ ॥ इसलिये काम आदि दोष और अपनय इन दोनोंकोही आसुरीवृत्ति कहा गया है, अर्थात् ये दोनों, असुरोंके करने योग्य कार्य हैं ॥ ३ ॥ अपनेही अमात्य आदि पुरुषोंका विकाररूप कोप, शत्रुकी वृद्धिके, कारण उपस्थित होनेपर, आपत्तिका रूप धारण करलेता है। यह आपत्ति अर्थरूप अनर्थरूप और संशयरूप तीन प्रकारकी होती है ॥ ४ ॥

यो ऽर्थः शत्रुवृद्धिमप्राप्तः करोति, प्राप्तः प्रत्यादेयः परेषां भवति, प्राप्यमाणो वा क्षयव्ययोदयो भवति, स भवत्यापदर्थः॥५॥

जो अर्थ (उपेक्षा करनेके कारण) अपने हाथमें न आया हुआ, शत्रुकी ही वृद्धिको करता है; तथा जो अर्थ अपने हाथमें आजानेपर भी फिर शत्रुके द्वारा लौटाया जासकता है; और इसी प्रकार जो अर्थ प्राप्त किया जाता हुआ अत्यधिक क्षय तथा व्ययको करनेवाला होता है, उसे 'आपदर्थ' कहते हैं; अर्थात् यह अर्थरूप आपत्ति कहीजाती है ॥ ५ ॥

यथा—सामन्तानामामिषभूतः, सामन्तव्यसनजो लाभः, शत्रुप्रार्थितो वा स्वभावाधिगम्यो लाभः, पश्चात्कोपेन पार्ष्णिग्राहेण विगृहीतः पुरस्ताल्लाभो, मित्रोच्छेदेन संधिव्यतिक्रमेण वा मण्डलविरुद्धो लाभ इत्यापदर्थः ॥ ६ ॥

जैसे—बहुतसे सामन्तोंका भोग्यभूत पदार्थ, यदि एकही सामन्तको प्राप्त होजावे, तो वह अन्य सामन्तोंके द्वारा मिलकर लौटाये जानेके कारण आपत्तिका जनक होजाता है। इसी प्रकार सामन्त की व्यसन दशामें, उससे छीना हुआ लाभ; स्वभावसेही प्राप्त होनेके योग्य, शत्रुके द्वारा मांगा हुआ लाभ; पश्चात्कोप (मूलस्थानमें दूष्य आदिके द्वारा उठाये हुए उपद्रव) तथा पार्ष्णिग्राह (पीछेके शत्रु) के द्वारा बाधा पहुंचाये जानेपर, यातव्य राजासे प्राप्त किया हुआ लाभ; मित्रका उच्छेदन करने तथा सन्धिको उल्लंघन करनेके कारण, राजमण्डलकी इच्छाके विरुद्ध प्राप्त किया हुआ लाभ; ये सबही लाभ 'आपदर्थ' होते हैं ॥ ६ ॥

स्वतः परतो वा भयोत्पत्तिरित्यनर्थः ॥ ७ ॥ तयोरर्थो न वेति, अनर्थो न वेति, अर्थोऽनर्थ इति, अनर्थोऽर्थ इति संशयः ॥८॥

स्वयं या अन्य किसीसे प्राप्त हुए २ अर्थके कारण जो भयकी उत्पत्ति होती है, इसको अनर्थरूप आपत्ति कहते हैं ॥ ७ ॥ अब अर्थ और अनर्थ विषयक संशयरूप आपत्तिका निरूपण करते हैं:—१. यह अर्थ है, या नहीं ? (अर्थात् अर्थके भाव और अभावको लेकर संशयका होना); २. यह अनर्थ है या नहीं ? (अर्थात् अनर्थके भाव और अभावको लेकर संशयका होना); ३. यह अर्थ है या अनर्थ है ? (अर्थात् अर्थ और अनर्थ विषयक संशयका होना); ४. यह अनर्थ है या अर्थ है ? (इस प्रकार अनर्थ और अर्थ विषयक संशयका होना); इस तरह अर्थ अनर्थको लेकर यह चार प्रकारका संशय होता है, यह भी आपत्तिका मूल होनेसे आपत्ति कहाता है। (इनके उदाहरण क्रमशः निम्नलिखित रीतिपर समझने चाहियें) ॥ ८ ॥

शत्रुमित्रमुत्साहयितुमर्थो न वेति संशयः ॥ ९ ॥ शत्रुबलमर्थमानाभ्यामावाहयितुमनर्थो न वेति संशयः ॥ १० ॥ बलवत्सामन्तां भूमिमादातुमर्थोऽनर्थ इति संशयः ॥ ११ ॥ ज्यायसा सम्भूययानमनर्थोऽर्थ इति संशयः ॥ १२ ॥ तेषामर्थसंशयमुपगच्छेत् ॥ १३ ॥

शत्रुके मित्रको उत्साहित करनेमें. अर्थात् शत्रुके मित्रको शत्रुके ही साथ लड़ाने के लिये तैयार करनेमें, पहिला संशय होता है। अर्थात् ऐसा करनेमें अर्थ है या नहीं ? इस प्रकार का संशय होता है ॥ ९ ॥ शत्रुकी सेना को, धन तथा सत्कारके द्वारा बुलानेमें दूसरा संशय होता है। अर्थात् इस प्रकारसे शत्रु सेनाको बुलानेमें कोई अनर्थ तो न होजावेगा ? इस तरह का संशय होता है ॥ १० ॥ बलवान् सामन्तवाली भूमिको (अर्थात् जिस भूमिका सामन्त [उस भूमिके समीप का राजा] अपनेसे बलवान् हो, उस भूमिको) लेनेमें तीसरा संशय होता है; अर्थात् ऐसा करनेमें अर्थ होगा या अनर्थ ? इस प्रकार का संशय होता है ॥ ११ ॥ बलवान राजाके साथ मिलकर, यातव्य (जिस राजा पर आक्रमण किया जावे, उस) पर आक्रमण करनेमें चौथा संशय होता है। अर्थात् ऐसा करनेमें अनर्थ होगा या अर्थ ? इस प्रकार का संशय होता है ॥ १२ ॥ इन सब संशयोंमें से जो संशय अर्थ विषयक हो अनर्थके साथ जिसका स्पर्श भी न होता हो, ऐसे संशयके विषयमें विजिगीषु उद्योग करे ॥ १३ ॥

अर्थो ऽर्थानुबन्धः ॥ १४ ॥ अर्थो निरनुबन्धः ॥ १५ ॥ अर्थो ऽनर्थानुबन्धः ॥ १६ ॥ अनर्थो ऽर्थानुबन्धः ॥ १७ ॥ अनर्थो निरनुबन्धः ॥ १८ ॥ अनर्थो ऽनर्थानुबन्ध इत्यनुबन्धषड्वर्गः ॥ १९ ॥

प्रत्येक अर्थ और अनर्थके साथ अनुबन्धका योग करने और न करने से इसके छः भेद होजाते हैं। इसको 'अनुबन्धषड्वर्ग' कहते हैं। उसके भेद इस प्रकार हैं—अर्थानुबन्ध अर्थ, निरनुबन्ध (अर्थ और अनर्थके अनुबन्धसे रहित) अर्थ, अनर्थानुबन्ध अर्थ, यह तीन प्रकारका अर्थ है; और अर्थानुबन्ध अनर्थ, निरनुबन्ध (अर्थ और अनर्थके अनुबन्धसे रहित) अनर्थ तथा अनर्थानुबन्ध अनर्थ, यह तीन प्रकारका अनर्थ है। इन दोनोंको मिला कर ही 'अनुबन्धषड्वर्ग' कहा जाता है। (किसी पुस्तकमें 'इत्यनुबन्धषड्वर्गः' के स्थानपर 'इत्यनर्थषड्वर्गः' ऐसा पाठ है; पर यह पाठ संगत नहीं मालूम होता ॥ १४ ॥ १९ ॥

शत्रुमुत्पाद्य पार्ष्णिग्राहादानमर्थो ऽर्थानुबन्धः ॥ २० ॥ उदासीनस्य दण्डानुग्रहः फलेन अर्थो निरनुबन्धः ॥ २१ ॥ परस्यान्तरुच्छेदनमर्थो ऽनर्थानुबन्धः ॥ २२ ॥

अब क्रमशः इन सबके उदाहरण दिखाये जाते हैं:—यातव्य शत्रुका उच्छेद करके, फिर पार्ष्णिग्राहको भी अपने वशमें कर लेना; यह अर्थानुबन्ध अर्थ होता है ॥ २० ॥ उदासीन राजासे धन आदि लेकर उसको सेना की सहायता देना, यह निरनुबन्ध अर्थ होता है, यह अर्थ और अनर्थ किसी का का भी उत्पादक नहीं होता ॥ २१ ॥ शत्रुके अन्तर्द्धि (यहां अन्तः' शब्दका अर्थ अन्तर्धि है; अन्तर्धिका अर्थ जाननेके लिये, देखो:—अधि० ७ अध्याय १३ सू० २८) राजाका उच्छेद कर देना, अनर्थानुबन्ध अर्थ होता है; क्यों कि इससे बलवान शत्रुका निवारण नहीं होता । यह अर्थ त्रिवर्गका निरूपण हुआ ॥ २२ ॥

शत्रुप्रतिवेशस्यानुग्रहः कोशदण्डाभ्यामनर्थो ऽर्थानुबन्धः ॥ २३ ॥ हीनशक्तिमुत्साह्य निवृत्तिरनर्थो निरनुबन्धः ॥ २४ ॥ ज्यायांसमुत्थाप्य निवृत्तिरनर्थो ऽनर्थानुबन्धः ॥ २५ ॥

कोश और सेनाके द्वारा शत्रुके पड़ौसी की सहायता करना, अर्थानुबंध अनर्थ होता है । (क्योंकि कोश और अपनी सेनाको उस समय देना पड़ता है, इस लिये अनर्थ, पर भविष्यमें शत्रुके निग्रहका कारण होनेसे अर्थानुबन्ध होता है, अर्थात् अर्थका जनक होता है) ॥ २३ ॥ हीनशक्ति राजाको 'तू शत्रुसे लड़जा, मैं तुझे सहायता दूंगा' इस तरह उत्साहित करके फिर स्वयं ही उस कार्यसे हट जाना, निरनुबन्ध अनर्थ होता है; (तात्पर्य यह है, कि उस समय तो धन आदिका व्यय होनेसे अनर्थ है, पर इससे आगे किसी अर्थ या अनर्थ के उत्पन्न होनेकी सम्भावना नहीं रहती; इसलिये यह 'निरनुबन्ध अनर्थ' कहा जाता है) ॥ २४ ॥ अपनेसे प्रबल अर्थात् अधिक शक्तिशाली राजाको 'मैं तुम्हारा सहायक रहूंगा' इस तरह कहकर पहिले उत्साहित करके, फिर अपने आप उस कार्यसे हट जाना; अनर्थानुबन्ध अनर्थ होता है । (तात्पर्य यह है, एकतो पहिले धन आदिके व्यय होनेसे अनर्थ, और फिर सबल राजा से वचनभङ्ग होजानेके कारण उसके कोपसे दूसरे अनर्थ की सम्भावना, यह अनर्थानुबन्ध अनर्थ होता है) ॥ २५ ॥

तस्य पूर्वः पूर्वः श्रेयानुपसंप्राप्तुम् ॥ २६ ॥ इति कार्यावस्थापनम् ॥ २७ ॥

इस अनुबन्धषड्वर्गमेंसे, पहिला २ प्राप्त करनेके लिये अच्छा है । अर्थात् उत्तर उत्तरकी अपेक्षा पूर्व पूर्वका अर्थ या अनर्थ उपादेय होता है ॥ २६ ॥ यहांतक अर्थ और अनर्थरूप कार्योंके स्वरूपका व्यवस्थापन (प्रतिपादन) करदिया गया ॥ २७ ॥

समन्ततो युगपदर्थोत्पत्तिः समन्ततो ऽर्थापद्भवति ॥ २८ ॥ सैव पार्ष्णिग्राहविगृहीता समन्ततो ऽर्थसंशयापद्भवति ॥ २९ ॥ तयोर्मित्राक्रन्दोपग्रहात्सिद्धिः ॥ ३० ॥

आगे पीछे और इधर उधर सब ओरसेही यदि एक साथही अर्थोंकी उत्पत्ति होने लगे, तो उसे 'समन्ततोऽर्थापत्' कहते हैं ॥ २८ ॥ यदि उस समन्ततोर्थापत् (चारों ओरसे अर्थ विषयक आपत्ति) में पार्ष्णिग्राहके द्वारा विरोध किया जावे, अर्थात् पार्ष्णिग्राह उसमें विघ्न उपस्थित करे, तो उसे 'समन्ततोर्थसंशयापद्' कहा जाता है ॥ २९ ॥ इन दोनोंकी सिद्धि अर्थात् समन्ततोऽर्थापत् और समन्ततोऽर्थसंशयापद् इनका प्रतीकार, मित्र (आगेकी ओर रहनेवाला मित्र) और आक्रन्द (पीछेकी ओर रहनेवाला मित्र) की सहायता लेनेपर किया जासकता है ॥ ३० ॥

समन्ततः शत्रुभ्यो भयोत्पत्तिः समन्ततो ऽनर्थापद्भवति ॥३१॥ सैव मित्रविगृहीता समन्ततो ऽनर्थसंशयापद्भवति ॥३२॥ तयोश्चलामित्राक्रन्दोपग्रहात्सिद्धिः ॥ ३३ ॥ परमिश्राप्रतीकारो वा ॥ ३४ ॥

चारों ओरसे, शत्रुओंसे भयकी उत्पत्ति होना 'समन्तोऽनर्थापत्' होता है ॥ ३१ ॥ वही यदि मित्रसे विगृहीत होजावे, अर्थात् उस समन्ततो-ऽनर्थापद्‌मेंही यदि मित्र विघ्न उपस्थित करे, तो उसे 'समन्ततोऽनर्थसंशया-पद् कहा जाता है ॥ ३४ ॥ इन दोनोंका प्रतीकार, चलशत्रु (अर्थात् दुर्ग आदिसे रहित शत्रु) और आक्रन्दको अपने अनुकूल बनाकर अर्थात् उनकी सहायता लेकर किया जासकता है ॥ ३३ ॥ अथवा 'परमिश्रा' आपत्तिका जो प्रतीकार (देखो, अधि. ९, अध्या. ६, सू. १४) बता गया है, उसको भी यहां प्रयोग में लाया जावे ॥ ३४ ॥

इतो लाभ इतरतो लाभ इत्युभयतो ऽर्थापद्भवति ॥ ३५ ॥ तस्यां समन्ततो ऽर्थायां च लाभगुणयुक्तमर्थमादातुं यायात् ॥ ३६ ॥ तुल्ये लाभगुणे प्रधानमासन्नमनतिपातिनमूनो वा येन भवेत्तमादातुं यायात् ॥ ३७ ॥

जहांपर एक ओर, और दूसरी ओर अर्थात् दोनों ओरसेही अर्थविषयक आपत्तिका लाभ हो, उसे 'उभयतोऽर्थापद्' कहा जाता है ॥ ३५ ॥ उभयतो-ऽर्थापद् और समन्ततोऽर्थापद्‌में से किसीमें यदि आदेय प्रत्यादेय आदि लाभ

गुणों (देखो, अधि. ९, अध्या. ४, सू. ४) से युक्त अर्थके प्राप्त होनेकी सम्भावना हो, तो उस अर्थको लेनेके लिये अवश्य चला जावे। अर्थात् ऐसी अवस्थामें विजिगीषु आक्रमण करसकता है ॥ ३६ ॥ यदि दोनों ओर लाभगुण समानही हो, तो उनमेंसे जो प्रधानफल अर्थात् प्रशस्त या श्रेष्ठफलसे युक्त हो, अथवा अपने देशके समीप हो, या थोड़ेही समयमें प्राप्त होसकता हो; अथवा जिसके प्राप्त न करनेपर अपनेमें कुछ न्यूनता प्रतीत हो; उस अर्थको लेनेके लिये चला जावे; अर्थात् इस अवस्थामें विजिगीषु यानकाही अवलम्ब करे। (किसी २ पुस्तकमें 'ऊनो वा येन भवेत्' के स्थानपर 'ऊनोपायेन भवेत्' ऐसा भी पाठ है; उसका अर्थ करना चाहियेः—जहांपर थोड़ेही उपायसे अर्थकी प्राप्तिकी संभावना हो, वहां भी यानकाही अवलम्ब करे) ॥ ३७ ॥

इतो ऽनर्थ इतरतो ऽनर्थ इत्युभयतो ऽनर्थापत् ॥ ३८ ॥ तस्यां समन्ततो ऽनर्थायां च मित्रेभ्यः सिद्धिं लिप्सेत ॥ ३९ ॥

इधरसे अनर्थ और उधरसे भी अनर्थ, इस प्रकार जब दोनों ओरसे अनर्थ कीही उत्पत्ति हो, तो उसे 'उभयतोऽनर्थापद्' कहा जाता है ॥ ३८ ॥ उसमें (उभयतोऽनर्थापत्में) और समन्ततोऽनर्थापत्में मित्रोंसेही सिद्धि लाभकी इच्छा करे। अर्थात् इन दोनों आपत्तियोंका प्रतीकार मित्रोंके द्वाराही किया जासकता है ॥ ३९ ॥

मित्राभावे प्रकृतीनां लघीयस्यैकतोऽनर्थां साधयेत् ॥ ४० ॥ उभयतोऽनर्थाञ्ज्यायस्या, समन्ततो ऽनर्थां मूलेन प्रतिकुर्यात् ॥ ४१ ॥ अशक्ये समुत्सृज्यापगच्छेत् ॥ ४२ ॥ दृष्टा हि जीवतः पुनरावृत्तिर्यथा सुयात्रोदयनाभ्याम् ॥ ४३ ॥

यदि मित्रोंकी सहायता न प्राप्त हो सके, तो अपनी प्रकृतियोंमेंसे छोटी प्रकृतिके द्वारा (अर्थात् किसी छोटे राजकर्मचारीके त्यागके द्वारा; अर्थात् उसे देकर) 'एकतोऽनर्थापद्' का प्रतीकार किया जासकता है ॥ ४० ॥ उभयतोऽनर्थापद्का ज्येष्ठ प्रकृतिके द्वारा और समन्ततोऽनर्थापद्का मूलस्थानको त्यागनेकेही द्वारा प्रतीकार किया जासकता है ॥ ४१ ॥ यदि इतनेपर भी इन आपत्तियोंका प्रतीकार न किया जासके, तो अपना सब कुछ छोड़कर चला जावे ॥ ४२ ॥ यदि पुरुष जीवित रहता है, अर्थात् विपत्तिके समय कहीं अन्यत्र लेजाकर अपने आपको सुरक्षित रखता है, तो वह फिर भी अपने स्थानको पासकता है। जैसा कि राजा नल (सुयात्र) और वत्सराज उदयनके जीवनसे मालूम होता है ॥ ४३ ॥

इतो लाभ इतरतो राज्याभिमर्श इत्युभयतो ऽर्थानर्थापद्भवति ॥४४॥ तस्यामनर्थसाधको यो ऽर्थस्तमादातुं यायात् ॥४५॥ अन्यथा हि राज्यभिमर्शं वारयेत् ॥ ४६ ॥

एक ओर से लाभ और दूसरी ओर से राज्यपर अर्थात् अपने ही जनपदपर (किसी शत्रु आदिके द्वारा) आक्रमण किया जाना, इसको दोनों ओर से अर्थ और अनर्थसे युक्त होनेके कारण 'उभयतोऽर्थानर्थापद्' कहा जाता है ॥ ४४ ॥ इस निरुक्त आपत्तिमें, ग्रहण किया जाता हुआ जो अर्थ, अनर्थका भी प्रतीकार कर सके, उस ही को ग्रहण करनेके लिये यत्न करना चाहिये ॥ ४५ ॥ यदि वह अर्थ, अनर्थका प्रतीकार करनेमें समर्थ न हो, तो उसके लिये न जाया जावे। अर्थात् उसकी उपेक्षा करके, राज्यपर किये जाने वाले आक्रमणका ही प्रतीकार किया जावे ॥ ४६ ॥

एतया समन्ततो ऽर्थानर्थापद्व्याख्याता ॥ ४७ ॥ इतो ऽनर्थ इतरतो ऽर्थसंशय इत्युभयतो ऽनर्थार्थसंशया ॥ ४८ ॥ तस्यां पूर्वमनर्थं साधयेत् तत्सिद्धावर्थसंशयम् ॥ ४९ ॥ एतया समन्ततो ऽनर्थार्थसंशया व्याख्याता ॥ ५० ॥

इसके निरूपण से 'समन्ततोऽर्थानर्थापद्' का व्याख्यान भी समझ लेना चाहिये । अर्थात् 'उभयतोऽर्थानर्थापद्' के प्रतीकार आदिके लिये जो उपाय बताये गये हैं, 'समन्ततोऽर्थानर्थापद्' में भी उनका प्रयोग करना चाहिये ॥ ४७ ॥ एक ओर से आवश्यक अनर्थका होना, तथा दूसरी ओर से अर्थ में संशय होना, यह 'उभयतोनर्थार्थसंशयापत्' कहाती है ॥ ४८ ॥ इस आपत्तिमें पहिले अनर्थका ही प्रतीकार करना चाहिये; उसका प्रतीकार होजानेपर फिर अर्थ संशयका प्रतीकार करना उचित होता है ॥ ४९ ॥ इसीप्रकार 'समन्ततोनर्थार्थसंशयापद्' का भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये। अर्थात् 'उभयतोऽनर्थार्थसंशयापद्' के समान इसमें भी पहिले अनर्थका प्रतीकार करके ही फिर अर्थसंशयके प्रतीकारके लिये यत्न करे ॥ ५० ॥

इतो ऽर्थ इतरतो ऽनर्थसंशय इत्युभयतो ऽनर्थार्थसंशयापत् ॥ ५१ ॥ एतया समन्ततो ऽर्थानर्थसंशया व्याख्याता ॥५२॥ तस्यां पूर्वां पूर्वां प्रकृतीनामनर्थसंशयान्मोक्षयितुं यतेत ॥५३॥

एक ओर से अर्थ, और दूसरी ओर से अनर्थका संशय होनेपर 'उभयतोऽर्थानर्थसंशयापद्' कही जाती है ॥ ५१ ॥ इसके समान ही 'सम-

न्ततोऽर्थानर्थसंशयापद्' को भी समझ लेना चाहिये ॥ ५२ ॥ इनके प्रतीकारका क्रम यह है;—पहिले अनर्थ संशयको हटाकर फिर अर्थके लिये यत्न करे। स्वामी आदि प्रकृतियोंकी ओरसे ही अनर्थके होनेका संशय रहता है। स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड (सेना) और मित्र, इस क्रमसे प्रकृतियोंका निरूपण किया गया है, इनमेंसे अगलीकी अपेक्षा पहिली २ प्रकृतियोंके अनर्थसंशयसे छूटनेका यत्न करे। तात्पर्य यह है कि पूर्व पूर्वकी अपेक्षा उत्तर उत्तर प्रकृति अप्रधान हैं; अप्रधान प्रकृतिसे होनेवाले अनर्थकी उपेक्षा करके प्रधान प्रकृतिसे होनेवाले अनर्थका ही प्रथम प्रतीकार करना चाहिये ॥ ५३ ॥

श्रेयो हि मित्रमनर्थसंशये तिष्ठन्न दण्डः ॥ ५४ ॥ दण्डो वा न कोश इति ॥ ५५ ॥

मित्रकी ओरसे यदि अनर्थका संशय हो, तो वह सेनाकी ओरसे होनेवाले अनर्थके संशयकी अपेक्षा अच्छा है; क्योंकि मित्र इतनी पीड़ा नहीं पहुंचा सकता, जितनी कि पीड़ा सेना पहुंचा सकती है; इसलिये सेनाकी ओरसे होनेवाले अनर्थसंशयका पहिले ही प्रतीकार करना चाहिये ॥ ५४ ॥ तथा सेनाका भी अनर्थसंशय, कोशसे होनेवाले अनर्थसंशयकी अपेक्षा अच्छा होता है। (क्योंकि कोशके ठीक रहनेपर सेनाको फिर ठीक किया जासकता है) । इसलिये सेनाकी ओरसे अनर्थसंशयकी अपेक्षा, कोशकी ओरसे होनेवाले अनर्थसंशयका प्रथम ही प्रतीकार करना चाहिये ॥ ५५ ॥

समग्रमोक्षणाभावे प्रकृतीनामवयवान्मोक्षयितुं यतेत ॥५६॥ तत्र पुरुषप्रकृतीनां च बहुलमनुरक्तं वा तीक्ष्णलुब्धवर्जम् ॥५७॥

प्रकृतियां पुरुष रूप और द्रव्य रूप होती हैं; यदि समग्र प्रकृतियोंका अनर्थ संशय एक साथ न छुड़ाया जासके, तो प्रकृतियोंके कुछ अवयवोंको ही अनर्थ संशयसे छुड़ाया जावे। अर्थात् थोड़ा २ करके ही अनर्थ संशयका प्रतीकार कियाजावे ॥ ५६ ॥ अवयवसे अनर्थ संशयका प्रतीकार करनेमें, पुरुष प्रकृतियोंमेंसे तीक्ष्ण और लोभी पुरुषोंको छोड़कर पहिले उनसे ही अनर्थ संशयका प्रतीकार कियाजावे, जो संख्या आदिमें बहुत हों, तथा अपनेमें कुछ अनुराग रखते हों ॥ ५७ ॥

द्रव्यप्रकृतीनां सारं महोपकारं वा ॥ ५८ ॥ संधिनासनेन द्वैधीभावेन वा लघूनि विपर्ययैः गुरूणि ॥ ५९ ॥

द्रव्य प्रकृतियोंके बीच में अत्यधिक मूल्यवाले, तथा उपकार पहुंचाने वाले द्रव्योंको ही अनर्थसंशयापद् से छुड़ानेका यत्न करें ॥ ५८ ॥ सन्धि, आसन तथा द्वैधीभावके द्वारा लघुद्रव्योंको छुड़ानेका यत्न करे, और विग्रह, यान तथा संश्रय रूप गुणोंके द्वारा गुरुद्रव्योंके छुड़ानेका यत्न करे ॥ ५९ ॥

क्षयस्थानवृद्धीनां चोत्तरोत्तरं लिप्सेत ॥६०॥ प्रातिलोम्येन वा क्षयादीनामायत्यां विशेषं पश्येत् ॥ ६१ ॥

क्षय (शक्ति और सिद्धिके अपचयको क्षय कहते हैं), स्थान (शक्ति और सिद्धिका उसी अवस्थामें रहना स्थान कहाता है), और वृद्धि (शक्ति और सिद्धिके उपचयका नाम वृद्धि है), इनमेंसे उत्तरोत्तरको प्राप्त करनेकी इच्छा करे। अर्थात क्षयसे स्थान और स्थानसे वृद्धिको प्राप्त करनेकी इच्छा करे ॥ ६० ॥ अथवा यदि भविष्यमें किसी वृद्धिके अतिशयकी सम्भावना हो, तो प्रतिलोम गतिसे भी क्षय आदिकी इच्छा करे। अर्थात् वृद्धिसे स्थान और स्थानसे क्षयकी इच्छा करे। यह उसी समय है, जबकि भविष्यमें अच्छी वृद्धि होनेका निश्चय हो ॥ ६१ ॥

इति देशावस्थापनम् ॥ ६२ ॥ एतेन यात्रामध्यान्तेष्वर्थानर्थसंशयानामुपसंप्राप्तिर्व्याख्याता ॥ ६३ ॥

यहांतक देशनिमित्तक आपत्तियोंका निरूपण करादिया गया ॥ ६२ ॥ देशनिमित्तक आपत्तियोंके स्वरूप और प्रतीकारके समान ही, यात्रा (आक्रमण) के आदि, मध्य तथा अन्तमें होनेवाले अर्थ अनर्थ तथा संशयोंकी प्राप्ति और प्रतीकारका भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये ॥ ६३ ॥

निरन्तरयोगित्वाच्चार्थानर्थसंशयानां यात्रादावर्थः श्रेयानुपसंप्राप्तुं पार्ष्णिग्राहासारप्रतिघातक्षयव्ययप्रवासप्रत्यादेयमूलरक्षणेषु च भवति ॥ ६४ ॥

यदि यात्राके आदिमें, अर्थ अनर्थ संशय इनकी एक साथ ही उत्पत्ति होजावे, तो इनमेंसे अर्थका ग्रहण करना ही श्रेयस्कर होता है। पार्ष्णिग्राह (पृष्ठस्थित शत्रु) और आसार (यातव्यकी मित्र सेना) के प्रतिघातका साधक होनेके कारण ही अर्थकी श्रेष्ठता समझी जाती है। क्षय (घोड़े आदि सवारी तथा पुरुषोंका नाश), व्यय (धान्य हिरण्य आदिका नाश), प्रवास (दूरकी यात्रा), प्रत्यादेय (यातव्यसे लौटाने योग्य भूमि आदि अर्थात् यातव्यसे अपहरण कीहुई भूमिको फिर वापिस करना) और मूलस्थान (राजधानी आदि); इन सबकी रक्षा करनेमें अर्थकी सहायता अत्यन्त

अपेक्षित होता है । अर्थात् इन सबकी रक्षा करनेमें अर्थ ही प्रधान कारण होता है ॥ ६४ ॥

तथानर्थः संशयो वा स्वभूमिष्ठस्य विपह्यो भवति ॥ ६५ ॥ एतेन यात्रामध्येऽर्थानर्थसंशयानामुपसंप्राप्तिर्व्याख्याता॥६६॥

अर्थके समान ही, अनर्थ और संशय भी यदि यात्राके आरम्भमें ही होवें, तो अपनी ही भूमिमें स्थित हुए २ विजिगीपुके लिये ये सुखसाध्य ही होते हैं । तात्पर्य यह है, कि यात्रासे पहिले ही हुए २ अनर्थ या संशयोंका प्रतीकार, विजिगीपु अपनी भूमिमें स्थित होनेके कारण, बड़ी अच्छीतरह कर सकता है ॥ ६५ ॥ इसी तरह यात्राके मध्यमें भी अर्थ अनर्थ और संशयकी प्राप्ति तथा प्रतीकारका व्याख्यान भी समझ लेना चाहिये ॥ ६६ ॥

यात्रान्ते तु कर्शनीयमुच्छेदनीयं वा कर्शयित्वोच्छिद्य वार्थः श्रेयानुपसंप्राप्तुं नानर्थः संशयो वा पराबाधभयात् ॥ ६७ ॥

यात्राके अन्तमें तो कर्शनीय (निर्बल बनाने योग्य) तथा उच्छेदनीय (जड़से उखाड़ने योग्य; उच्छिन्न करने योग्य) शत्रुको, निर्बल बनाकर या उच्छिन्न करके परभूमिमें स्थित हुए २ विजिगीपुके लिये, अर्थका ही ग्रहण करना श्रेयस्कर होता है । अनर्थ या संशयका ग्रहण करना किसी तरह भी अच्छा नहीं होसकता; क्योंकि ऐसी अवस्थामें दोपान्वेषी शत्रुकी ओरसे हरसमय बाधा पहुंचानेकी सम्भावना बनी ही रहती है ॥ ६७ ॥

सामवायिकानामपुरोगस्य तु यात्रामध्यान्तगो ऽनर्थः संशयो वा श्रेयानुपसंप्राप्तुमनुबन्धगामित्वात् ॥ ६८ ॥

यहांतक प्रधान सामवायिक राजाओंका ध्यान करके ही उपर्युक्त विधिका निरूपण किया गया है । परन्तु सामवायिक राजओंमें से अप्रधान राजाके मुकाबलेमें, अर्थात् जब अप्रधान सामवायिकके ऊपर आक्रमण किया जाय, उस समय यात्राके मध्यमें और अन्तमें होनेवाले अनर्थ तथा संशयका प्रतीकार करना ही श्रेयस्कर होता है । क्योंकि प्रधान सामवायिक, नेता होनेके कारण रुके रहते हैं, अर्थात् इधर उधर नहीं जासकते; परन्तु अप्रधान सामवायिक, इस तरह प्रतिबन्ध (रुकावट) में न रहनेके कारण चाहे जहां जासकता है ॥ ६८ ॥

अर्थो धर्मः काम इत्यर्थत्रिवर्गः ॥ ६९ ॥ तस्य पूर्वः पूर्वः श्रेयानुपसंप्राप्तुम् ॥ ७० ॥ अनर्थो ऽधर्मः शोक इत्यनर्थत्रिवर्गः

॥ ७१ ॥ तस्य पूर्वः पूर्वः श्रेयान्प्रतिकर्तुम् ॥ ७२ ॥ अर्थोऽनर्थ इति धर्मोऽधर्म इति कामः शोक इति संशयत्रिवर्गः ॥ ७३ ॥ तस्योत्तरपक्षसिद्धौ पूर्वपक्षः श्रेयानुपसंप्राप्तुम् ॥ ७४ ॥ इति कालावस्थापनम् ॥ ७५ ॥ इत्यापदः ॥ ७६ ॥

अर्थ, धर्म और काम इनको 'अर्थत्रिवर्ग' कहा जाता है ॥ ६९ ॥ इस अर्थत्रिवर्गके बीचमें पूर्व पूर्वका ग्रहण करना ही श्रेयस्कर होता है; अर्थात् कामसे धर्म और धर्मसे अर्थ श्रेष्ठ समझना चाहिये ॥ ७० ॥ अनर्थ, अधर्म, और शोक, यह 'अनर्थत्रिवर्ग' कहाता है ॥ ७१ ॥ इस अनर्थत्रिवर्ग के बीचमेंसे पूर्व पूर्वका प्रतीकार करना कल्याणकारी है ॥ ७२ ॥ अर्थ अनर्थ, धर्म अधर्म और काम शोक, इन तीन जोड़ोंको लेकर इनमें परस्पर संशय होना 'संशयत्रिवर्ग' कहाता है ॥ ७३ ॥ इस संशयत्रिवर्गमें से उत्तरपक्षका (अनर्थ, अधर्म, शोकका) प्रतीकार होने पर, पूर्वपक्षका (अर्थ, धर्म, काम का) ग्रहण करना श्रेयस्कर होता है ॥ ७४ ॥ यहां तक यात्राके आदि मध्य अन्तकालादि निमित्तक अर्थ अनर्थ आदि की व्यवस्थाका निरूपण कर दिया गया ॥ ७५ ॥ यहां तक अर्थ अनर्थ तथा संशययुक्त सब प्रकारकी आपत्तियों का निरूपण कर दिया गया ॥ ७६ ॥

तासां सिद्धिः—पुत्रभ्रातृबन्धुषु सामदानाभ्यां सिद्धिरनुरूपा, पौरजानपददण्डमुख्येषु दानभेदाभ्यां सामन्ताटविकेषु भेददण्डाभ्याम् ॥ ७७ ॥

अब उन आपत्तियोंके प्रतीकारके लिये जिन उपायों की आवश्यकता होती है, उन उपायोंकी यथायथ व्यवस्थाका निरूपण किया जायगा—पुत्र भाई तथा बन्धुओंके विषयमें जिस प्रतीकारका पहिले निरूपण कर दिया गया है, वह प्रतीकार साम और दानके अनुरूप होने पर ही उचित समझा जाता है। अर्थात् पुत्रादि जन्य आपत्तिके प्रतीकारके लिये साम और दान उपायोंका प्रयोग करना ही उचित है। इसी प्रकार नगर तथा जनपद निवासी पुरुषों, सेनाओं और राष्ट्रमुख्य व्यक्तियोंमें, दान और भेद उपायोंका ही प्रयोग करना चाहिये। तथा सामन्त और आटविकोंके विषयमें भेद और दण्ड उपायों का प्रयोग करना ही उचित होता है ॥ ७७ ॥

एषानुलोमा विपर्यये प्रतिलोमा ॥ ७८ ॥ मित्रामित्रेषु व्यामिश्रा सिद्धिः ॥ ७९ ॥ परस्परसाधका ह्युपायाः ॥८०॥

इस नियमके अनुसार किया हुआ प्रतीकार 'अनुलोम' अर्थात अनुकूल प्रतीकार कहाता है। इसमें विपर्यय होनेपर 'प्रतिलोम' अर्थात् प्रतिकूल प्रतीकार कहाजाता है ॥ ७८ ॥ मित्र तथा शत्रुओंके विषयमें मिले हुए उपायोंका प्रयोग करके ही प्रतीकार करना चाहिये ॥ ७९ ॥ क्योंकि उपाय परस्पर एक दूसरेके सहकारी ही होते हैं। इसलिये मित्र और शत्रुओंके सम्बन्धमें जहां जैसा उचित हो, उसके अनुसार ही पृथक् २ या मिलाकर उपायोंका प्रयोग करना चाहिये। ॥ ८० ॥

शत्रोः शङ्कितामात्येषु सान्त्वं प्रयुक्तं शेषप्रयोगं निवर्तयति ॥ ८१ ॥ दूष्यामात्येषु दानं, सङ्घातेषु भेदः, शक्तिमत्सु दण्ड इति ॥ ८२ ॥

शत्रुके शङ्कित अमात्योंमें (अर्थात् शत्रु जिन पर क्रोध आदि दोषोंके कारण सन्देह रखता हो, और इसी लिये विजिगीषु जिनको अपनी ओर फोड़ सकता हो, ऐसे अमात्योंमें) प्रयुक्त किया हुआ साम, अन्य उपायोंको निवृत्त करदेता है। अर्थात् सामसे ही काम होजाने पर दूसरे उपायोंका प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं रहती ॥ ८१ ॥ इसी प्रकार शत्रुके दूष्य अमात्योंमें दान, आपसमें मिले हुए अमात्योंमें भेद, और शक्तिशाली अमात्योंमें दण्डका प्रयोग किया हुआ, शेष उपायोंको निवृत्त करदेता है। अर्थात् उपर्युक्त प्रकारके अमात्यादिमें, निर्दिष्ट एक २ उपायका प्रयोग करनेसे ही कार्यसिद्धि हो जाती है। उससे अतिरिक्त उपायोंका प्रयोग करनेकी आवश्यकता नहीं रहती ॥८२॥

गुरुलाघवयोगाच्चापदां नियोगविकल्पसमुच्चया भवन्ति ॥ ८३ ॥ अनेनैवोपायेन नान्येनेति नियोगः ॥ ८४ ॥ अनेन वान्येन वेति विकल्पः ॥ ८५ ॥ अनेनान्येन चेति समुच्चयः ॥ ८६ ॥

आपत्तियोंके लघुगुरुभावके अनुसार ही, उपायोंके नियोग विकल्प तथा समुच्चय होते हैं ॥ ८३ ॥ 'इस ही उपायसे कार्य सिद्धि होसकती है, अन्यसे नहीं' इसका नाम 'नियोग' है ॥ ८४ ॥ 'इस उपायसे इस कार्यकी सिद्धि होसकती है, अथवा अन्य उपायसे भी' इसका नाम विकल्प होता है ॥ ८५ ॥ 'इस उपायसे और दूसरे उपायसे अर्थात् दोनों उपायोंसे मिलकर इस कार्यकी सिद्धि होसकती है' इसको 'समुच्चय' कहते हैं ॥ ८६ ॥

तेषामेकयोगाश्चत्वारस्त्रियोगाश्च ॥ ८७ ॥ द्वियोगाः षट् ॥ ८८ ॥ एकश्चतुर्योग इति पञ्चदशोपायाः ॥ ८९ ॥ तावन्तः प्रतिलोमाः ॥ ९० ॥

साम आदि चार उपायोंका पृथक् २, दो २ मिलाकर तथा तीन २, और चारों को एक साथ मिलाकर पन्द्रह तरहसे प्रयोग किया जासकता है। केवल साम, केवल दान, केवल भेद तथा केवल दण्ड, यह चार तरहका पृथक् २ प्रयोग, और चार तरहका ही तीन २ को मिलाकर प्रयोग; जैसे—सामदानभेद, सामदानदण्ड, सामभेददण्ड, और दानभेददण्ड, इसतरह ये मिलकर आठ प्रकारके प्रयोग हुए ॥ ८७ ॥ दो दो को मिलाकर छः प्रकारके प्रयोग होते हैं; जैसः—सामदान सामभेद, सामदण्ड, दानभेद, दानदण्ड, और भेददण्ड; पहिले आठके साथ ये छः मिलाकर चौदह हुए ॥ ८८ ॥ साम दान भेद दण्ड इन चारोंको मिलाकर एक प्रयोग; इसप्रकार ये सब मिलाकर पन्द्रह प्रकारके प्रयोग हुए ॥ ८९ ॥ पन्द्रह प्रकारके ही प्रतिलोम उपाय होते हैं; जैसे:—दण्ड, भेद, दान, साम ये चार पृथक् २; दण्डभेददान, दण्डभेदसाम, भेददानसाम, दण्डदानसाम, ये चार तीन २ उपायोंको मिलाकर; दण्डभेद, दण्डदान, दण्डसाम, भेददान, भेदसाम, दानसाम ये छः दो दो को मिलाकर; तथा दण्ड आदि चारों एक साथ; ये सब मिलाकर पन्द्रह प्रतिलोम उपाय कहाते हैं ॥ ९० ॥

तेषामेकेनोपायेन सिद्धिरेकसिद्धिः ॥ ९१ ॥ द्वाभ्यां द्विसिद्धिः ॥ ९२ ॥ त्रिभिस्त्रिसिद्धिः ॥ ९३ ॥ चतुर्भिश्चतुःसिद्धिरिति ॥ ९४ ॥

इन उपायोंमें से एक ही उपायके द्वारा जो सिद्धि होजाती है, उसे 'एकसिद्धि' कहते हैं ॥ ९१ ॥ दो उपायोंसे हुई २ सिद्धिको 'द्विसिद्धि' ॥ ९२ ॥ तीन उपायोंसे हुई २ सिद्धिको 'त्रिसिद्धि' ॥ ९३ ॥ तथा चार उपायोंसे हुई २ सिद्धिको 'चतुःसिद्धि कहा जाता है ॥ ९४ ॥

धर्ममूलत्वात्कामफलत्वाच्चार्थस्य धर्मार्थकामानुबन्धा यार्थस्य सिद्धिः सा सर्वार्थसिद्धिः ॥ ९५ ॥ इति सिद्धिः ॥ ९६ ॥

प्रतीकाररूप इन सिद्धियोंसे होनेवाले अनेक लाभोंमें से धर्म काम और अर्थका साधक होनेके कारण, अर्थका लाभ ही सबसे श्रेष्ठ होता है; अर्थकी सिद्धि या लाभको ही 'सर्वार्थसिद्धि' नामसे कहा जाता है ॥ ९५ ॥ यहांतक सिद्धियोंका-अर्थात् आपत्तियोंके प्रतीकारपूर्वक लाभोंका—निरूपण

करदिया गया। यह सब मानुषी आपत्तियोंको लेकर निरूपण किया गया है ॥ ९६ ॥

दैवादाग्निरुदकं व्याधिः प्रमारो विद्रवो दुर्भिक्षमासुरी सृष्टिरित्यापदः ॥९७॥ तासां दैवतब्राह्मणप्रणिपाततः सिद्धिः ॥९८॥

दैवी आपत्ति इसप्रकार समझनी चाहियें:—पूर्वजन्मके सञ्चित धर्माधर्मके कारण होनेवाली; अग्नि जल, व्याधि, महामारी, राष्ट्रविप्लव, दुर्भिक्ष, और आसुरी सृष्टि (अर्थात् चूहे इत्यादि हानिकर जन्तुओंकी अत्यधिक उत्पत्ति होजाना), ये सब दैवी आपत्तियां समझनी चाहियें ॥ ९७ ॥ इन दैवी आपत्तियोंका प्रतीकार, देवता तथा ब्राह्मणोंको नमस्कार करनेसे ही किया जासकता है ॥ ९८ ॥

अवृष्टिरतिवृष्टिर्वा सृष्टिर्वा यासुरी भवेत् ।
तस्यामाथर्वणं कर्म सिद्धारम्भाश्च सिद्धयः ॥ ९९ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे अर्थानर्थसंशययुक्तास्तासामुपायविकल्पजाः सिद्धयश्च सप्तमो ऽध्यायः ॥ ७ ॥ आदितो ऽष्टाविंशशतः ॥ १२८ ॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य अभियास्यत्कर्म नवममधिकरणं समाप्तम् ॥ ९ ॥

अवृष्टि (सर्वथा वर्षाका न होना), अतिवृष्टि (आवश्यकतासे अत्यधिक वृष्टिका होजाना), अथवा आसुरी सृष्टि (चूहे आदि जन्तुओंका अत्यधिक होजाना), इन सबके कारण जो आपत्ति उत्पन्न होवें, उनके प्रतीकारके लिये, अथर्ववेदमें प्रतिपादित शान्तिकर्मोंका अनुष्ठान किया जावे। तथा सिद्ध तपस्वी महात्मा पुरुषोंके द्वारा प्रारम्भ कियेगये अन्य शान्तिकर्मोंको भी, इन आपत्तियोंके प्रतीकार करनेमें कारण समझना चाहिये ॥ ९९ ॥

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरणमें सातवां अध्याय समाप्त

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरण समाप्त।
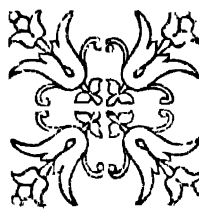
सांग्रामिक दशम अधिकरण

पहिला अध्याय

१४७ प्रकरण

स्कन्धावारनिवेश ।

युद्धभूमिके समीप ही सेनाके आवास स्थानको 'स्कन्धावार' (छावनी) कहते हैं। उसका निवेश अर्थात् निर्माण किसतरह करना चाहिये; इस बातका निरूपण, इस प्रकरणमें किया जायगा।

वास्तुकप्रशस्ते वास्तुनि नायकवर्धकिमौहूर्तिकाः स्कन्धावारं वृत्तं दीर्घं चतुरश्रं वा भूमिवशेन वा चतुर्द्वारं षट्पथं नवसंस्थानं मापयेयुः ॥ १ ॥ खातवप्रसालद्वाराट्टालकसंपन्नं भये स्थाने च ॥ २ ॥

वास्तुविद्या (गृहनिर्माण आदि विद्या) में सुचतुर मनुष्योंके द्वारा प्रशंसा कियेहुए प्रदेशमें, नायक (सेनापति), वर्धकि (स्थपति=कारीगर), और मौहूर्त्तिक (निर्माण आदिके शुभकालका निश्चय करनेवाला ज्योतिषी) मिलकर, गोलाकार लम्बे या चौकोर, अथवा वहां जैसी भूमि हो उसके अनुसार, चार दरवाजे वाले (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओंमें एक एक दरवाजे से युक्त) छः मार्गोंसे युक्त (तीन मार्ग, पूर्वसे पश्चिम हों, और तीन ही उत्तरसे दक्षिणकी ओर हों), तथा नौ संस्थान (सन्निवेश=अर्थात् जिसमें पृथक् २ नौ मुहल्ले से हों, ऐसे) वाले स्कन्धावारका निर्माण करावें ॥ १ ॥ खाई, नीचेकी सफ़ील या ढांग, परकोटा, एक प्रधान द्वार तथा अट्टालिकाओं (अटारियों) से युक्त स्कन्धावार, उसी अवस्थामें तैयार कराया जावे, जबकि शत्रुओंकी ओरसे आक्रमण होनेके भय, तथा वहां चिरकाल तक ठहरनेकी सम्भावना हो ॥ २ ॥

मध्यमस्योत्तरे नवभागे राजवास्तुकं धनुःशतायाममर्धविस्तारं, पश्चिमार्धे तस्यान्तःपुरमन्तर्वंशिकसैन्यं चान्ते निविशेत ॥३॥

स्कन्धावारके मध्यभागसे उत्तरकी ओर, नौवें हिस्सेमें, सौ धनुष् (देखो—अधि० २, अध्या० २०) लम्बा तथा इससे आधा चौड़ा, राजाका निवासस्थान बनवाया जावे। उससे पश्चिमकी ओर उसके आधे हिस्सेमें अन्तःपुर (राजाकी स्त्रियोंके निवासस्थान) का निर्माण कराया जावे। और अन्तःपुरकी रक्षा करनेवाले सैनिक पुरुषोंका स्थान, अन्तःपुरके समीपमें ही नियत किया जावे। (किसी २ पुस्तकमें इस सूत्रके 'राजवास्तुकं' पदके स्थान पर 'राजवास्तुनिवेशं कारयेत्' ऐसा पाठ है। अर्थ में कोई भेद नहीं) ॥ ३ ॥

पुरस्तादुपस्थानं दक्षिणतः कोशशासनकार्यकरणानि वामतो राजोपवाह्यानां हस्त्यश्वरथानां स्थानम् ॥ ४ ॥ अतो धनुःशतान्तराश्चत्वारः शकटमेथीप्रततिस्तम्भसालपरिक्षेपाः ॥ ५ ॥

राजगृहके सामनेकी ओर, राजाका उपस्थानगृह बनवाया जावे, (उपस्थानगृह उसको कहते हैं, जहांपर बैठकर राजाके दर्शनार्थी पुरुष राजासे मिलते हैं।) राजगृहसे दाहिनी ओर कोश (खजानेकी जगह), शासनकरण (अक्षपटल=आय व्यय आदिका प्रधान कार्यालय=सेक्रेटरियेट), तथा कार्यकरण (कार्योंके निरीक्षण करनेका स्थान), इन स्थानोंका निर्माण कराया जावे। और राजगृहसे बाईं ओर, राजाकी सवारीमें काम आने वाले हाथी घोड़े तथा रथोंके लिये स्थान बनवाया जावे ॥ ४ ॥ राजगृहसे दूरीपर चारों ओर, उसकी रक्षाके लिये चार बाड़ लगाई जावें; इनमें से पहिली बाड़ शकट अर्थात् गाड़ियोंकी होनी चाहिये; दूसरी बाड़, कांटोंसे लदीहुई बड़ी शाखाओंकी; तीसरी मज़बूत लकड़ीके खम्भों या फट्टोंकी; और चौथी मज़बूत चिनीहुई परकोटेके ढंगकी बाड़ होनी चाहिये। प्रत्येक बाड़का आपसमें सौ सौ धनुषका फ़ासला होवे। इसप्रकार सौ सौ धनुषके फ़ासलेपर ये चार प्रकारकी बाड़, राजगृहके चारों ओर उसकी रक्षाके लिये होनी चाहियें ॥ ५ ॥

प्रथमे पुरस्तान्मन्त्रिपुरोहितौ, दक्षिणतः कोष्ठागारं महानसं च, वामतः कुप्यायुधागारम् ॥ ६ ॥ द्वितीये मौलभृतानां स्थानमश्वरथानां सेनापतेश्च ॥ ७ ॥ तृतीये हस्तिनः श्रेण्यः प्रशास्ता च ॥ ८ ॥

पहिली बाड़के बीचमें सामनेकी ओर मन्त्रियों और पुरोहितोंके स्थान बनवाये जावें। दाहिनी ओर कोष्ठागार (वस्तुभण्डार) और महानस (पाकशाला=रसोईघर) बनवाया जावे। तथा बाईं ओर कुप्यागार (लोहा

तांबा लकड़ी चमड़ा आदि रखनेका स्थान) और आयुधागार (हथियार रखनेका स्थान) बनवाया जावे ॥ ६ ॥ दूसरी बाड़ अर्थात् घेरेके बीचमें मौल भृत आदि सेनाओंके स्थान; हाथी और घोड़े तथा सेनापतिके स्थानका निर्माण कराया जावे ॥ ७ ॥ तीसरे घेरेमें हाथी, श्रेणीबल तथा प्रशास्ता (कण्टकशोधनाध्यक्ष) आदिके स्थान बनवाये जावें ॥ ८ ॥

चतुर्थे विष्टिर्नायको मित्रामित्राटवीबलं स्वपुरुषाधिष्ठितम् ॥ ९ ॥ वणिजो रूपाजीवाश्चानुमहापथम् ॥ १० ॥ बाह्यतो लुब्धकश्वगणिनः सतूर्याग्नयः गूढाश्चारक्षाः ॥ ११ ॥

चौथे घेरेमें विष्टि (कर्मचारीवर्ग=सेवकवर्ग), नायक (दश सेना पतियोंका एक प्रधान अधिकारी), और अपने ही किसी पुरुषसे अधिष्ठित (अर्थात् अपने पुरुषके ही नेतृत्वमें; जिनका अधिकारी अपना ही आदमी हो, ऐसी) मित्र सेना, शत्रु सेना तथा आटविक सेनाके लिये स्थान बनवाये जावें ॥ ९ ॥ व्यापारी बनिये और वेश्याओंके लिये बड़े बाज़ारके साथ ही स्थान बनवाये जावें ॥ १० ॥ बहेलिये शिकारी, बाजे तथा अग्नि आदिके इशारेसे शत्रुके आगमनको बतलाने वाले, और ग्वाले आदिके वेषमें छिपे तौरपर रहने वाले रक्षक पुरुषोंको सबसे बाहरकी ओर रक्खा जावे ॥ ११ ॥

शत्रूणामापाते कूपकूटावपातकण्टकिनीश्च स्थापयेत् ॥ १२ ॥ अष्टादशवर्गाणामारक्षविपर्यासं कारयेत् ॥ १३ ॥ दिवायामं च कारयेदपसर्पज्ञानार्थम् ॥ १४ ॥

जिस मार्गसे शत्रुओंके आनेकी सम्भावना हो, उस मार्गमें कुछ छिपेहुए धोखेके गढ़ों (नीचे गढ़े खोदकर ऊपर घास आदिसे ढक देना) को खोदकर और कांटों या लोहेकी कीलोंसे युक्त तख्तोंको ज़मीनपर बिछाकर शत्रुके रोकनेका प्रबन्ध किया जावे ॥ १२ ॥ पहरेके लिये अर्थात् हरसमयकी रक्षाके लिये, अठारह वर्गोंका पर्यायसे आयोजन करे। तात्पर्य यह है, मौल भृत आदि छः प्रकारकी सेना होती है (देखो—अधि० ९, अध्या० २, सूत्र १), प्रत्येक सेनाके तीन २ अधिकारी होते हैं—पदिक सेनापति और नायक; इसप्रकार प्रत्येक सेनाके अपने २ अधिकारीकी अधीनतामें तीन २ वर्ग होकर, छः प्रकारकी सेनाओंके अठारह वर्ग होजाते हैं; इनको बदल २ कर रक्षाके लिये नियुक्त करें; क्योंकि ऐसा करनेसे शत्रुके द्वारा उपजाप

किये जानेका भय नहीं रहता ॥ १३ ॥ शत्रुके गुप्तचरोंको जाननेके लिये दिनरातमें अपने आदमियोंके इधर उधर घूमनेका भी नियम करे ॥ १४ ॥

विवादसौरिकसमाजद्यूतवारणं च कारयेत् ॥ १५ ॥ मुद्रारक्षणं च ॥ १६ ॥ सेनानिवृत्तमायुधीयमशासनं शून्यपालोऽनुबध्नीयात् ॥ १७ ॥

आपसके झगड़े, शराब आदि पीने, गोष्ठी करने, तथा जुआ आदि खेलनेसे, सैनिकोंको सर्वथा रोकदेवे ॥ १५ ॥ छावनीके बाहर भीतर आने जानेके लिये; राजकीय मुहरका बड़ा कड़ा प्रबन्ध रक्खे। तात्पर्य यह है, कि जिनके पास खास शाही पास हों, उन्हींको बाहर भीतर आने जाने दिया जावे ॥ १६ ॥ राजाकी लिखित आज्ञा लिये बिना ही युद्ध भूमिसे भागकर वापस लौटेहुए सैनिक पुरुषोंको शून्यपाल (राजासे रहित राजधानीकी रक्षा करने वाला अधिकारी) गिरफ्तार करलेवे। (किसी पुस्तकमें 'शून्यपाल' के स्थानपर 'अन्तपाल' भी पाठ है) ॥ १७ ॥

पुरस्तादध्वनः सम्यक्प्रशास्ता रक्षणानि च ।
यायाद्वर्धकिविष्टिभ्यामुदकानि च कारयेत् ॥ १८ ॥

इति सांग्रामिके दशमे ऽधिकरणे स्कन्धावारनिवेशः प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥
आदितः एकोनत्रिंशच्छतः ॥ १२९ ॥

प्रशास्ता (कण्टकशोधनाध्यक्ष), सेना आदिके सहित राजाके प्रस्थान करनेसे पहिले ही, शिल्पी तथा कर्मकर पुरुषों या उनके अध्यक्षोंके साथ चलाजावे; और मार्गकी हरतरहसे रक्षाका, तथा आवश्यक स्थानोंमें जल आदिका अच्छीतरह प्रबन्ध करे। (मार्गकी रक्षाका तात्पर्य—मार्गके ऊंचे नीचे स्थानोंको बराबर कराना, कांटे आदिको साफ़ कराना, तथा हानिकर हिंसक प्राणियोंको दूर भगाने आदिसे है। किसी पुस्तकमें 'रक्षणानि' की जगह 'ग्रहणानि' पाठ भी है; पर यह पाठ कुछ संगत नहीं मालूम होता) ॥ १८ ॥

सांग्रामिक दशम अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

१४८-१४९ प्रकरण

स्कन्धावारप्रयाण; तथा बलव्यसन और अवस्कन्दकालसे सेना की रक्षा ।

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं, पहिले प्रकरणमें स्कन्धावारका और सेना सहित राजाके प्रस्थानका निरूपण किया जायगा । और दूसरे प्रकरणमें अमानित विमानित आदि सेना सम्बन्धी व्यसनोंसे तथा लम्बा रास्ता या घने जंगल आदिमें चलनेके कष्टोंसे अपनी सेनाको बचानेके उपायोंका निरूपण किया जायगा ।

ग्रामारण्यानामध्वनि निवेशान् यवसेन्धनोदकवशेन परिसंख्याय स्थानासनगमनकालं च यात्रां यायात् ॥ १ ॥ तत्प्रतीकारद्विगुणं भक्तोपकरणं वाहयेत् ॥ २ ॥ अशक्तो वा सैन्येष्वेव प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥ अन्तरेषु वा निचिनुयात् ॥ ४ ॥

ग्राम अर्थात् आबादीके मार्गोंमें ठहरनेके योग्य स्थानोंका घास लकड़ी तथा जल आदिके अनुसार निर्णय करके; और उन स्थानोंमें पहुंचने ठहरने तथा चलने आदिके समयका पहिलेसेही ठीक २ निर्णय करके, फिर यात्राके लिये जाया जावे । अर्थात् विजिगीषु, इन सब बातोंको, आक्रमण करनेसे पहिले निश्चय करलेवे । (नयचन्द्रिका व्याख्याकार माधवयज्वाने इस सूत्रके 'स्थान' 'आसन' और 'गमन' शब्दोंका अर्थ निम्नलिखित रीतिसे किया है:—किसी नियत स्थानपर दो तीन महीने तक ठहरना 'स्थान', पांच छः दिनतक ठहरना 'आसन' और केवल एक रातके लियेही ठहरना 'गमन' कहाता है) । ॥ १ ॥ उस यात्रामें, जितने खाने पीनेके सामान और वस्त्र आदि की आवश्यकता हो, उससे दुगना लेजावे ॥ २ ॥ यदि इतना सामान सवारियोंपर ढोकर न लेजाया जासके, तो थोड़ा २ सामान सैनिक पुरुषोंको देदेवे ॥ ३ ॥ अथवा बीचमें ठहरनेके लिये नियत हुए २ प्रदेशोंमेंही, इन सब सामानोंका संग्रह करवावे ॥ ४ ॥

पुरस्तान्नायकः ॥ ५ ॥ मध्ये कलत्रं स्वामी च ॥ ६ ॥ पार्श्वयोरश्वा बाहूत्सारः ॥ ७ ॥ चक्रान्तेषु हस्तिनः ॥ ८ ॥ प्रसारवृद्धिर्वा सर्वतः ॥ ९ ॥ वनाजीवः प्रसारः ॥ १० ॥ स्वदे-

शादन्वायतिर्वीवधः ॥ ११ ॥ मित्रबलमासारः ॥ १२ ॥ कलत्रस्थानमपसारः ॥ १३ ॥ पश्चात् सेनापतिः पर्यायान्निविशेत ॥ १४ ॥

सेनाके सबसे अगले हिस्सेमें नायक (दस सेनापतियोंके प्रधान अधिकारी) को चलना चाहिये ॥ ५ ॥ बीचमें अन्तःपुर तथा राजा चले ॥ ६ ॥ इधर उधर बाजुओंमें, अपनी भुजाओंसे ही शत्रुके आघातको रोकने वाली घुड़सवार सेना चले ॥ ७ ॥ सेनाके पिछले भागमें हाथी चलें ॥ ८ ॥ प्रसार अर्थात् अन्न और घास भूसा आदि बहुत अधिक सामान, सब ओरसे लेजाया जावे ॥९॥ जंगलमें उत्पन्न होनेवाली, आजीविका योग्य (अन्न तथा घास भूसा आदि) वस्तुओंको 'प्रसार' कहते हैं ॥ १० ॥ अपने ही देशसे, अन्न आदि द्रव्योंके लगातार चले आनेको, 'वीवध' कहते हैं ॥ ११ ॥ मित्रकी सेनाको 'आसार' कहा जाता है ॥ १२ ॥ कलत्र अर्थात् अन्तःपुर (रानियों) के ठहरनेके स्थानको 'अपसार' कहते हैं ॥ १३ ॥ सबसे पिछले हिस्सेमें सेनापति, पर्यायसे अर्थात् अपनी २ सेनाके पीछे, नियत रहे। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक सेनापति अपनी सेनाके पीछेके भागमें मिलकर चले ॥ १४ ॥

पुरस्तात् अभ्याघाते मकरेण यायात्पश्चाच्छकटेन पार्श्वयोर्वज्रेण समन्ततः सर्वतोभद्रेणैकायने सूच्या ॥ १५ ॥

यदि सामनेकी ओरसे शत्रुके आक्रमण करनेकी सम्भावना हो, तो मकराकार (मकरके मुखके समान आकृति रखने वाला, देखो—अधि० १०, अध्या० ६) व्यूहकी रचना करके शत्रुकी ओर चले। यदि पीछेकी ओरसे शत्रुके आक्रमणकी सम्भावना हो, तो शकटव्यूह बनाकर ही आगे बढ़े। यदि इधर उधर बाजुओंकी ओरसे शत्रुके आक्रमणकी सम्भावना हो, तो वज्रव्यूह बनाकर आगे बढ़े। इसी प्रकार चारों ओरसे आक्रमणकी सम्भावना होनेपर सर्वतोभद्र व्यूहके द्वारा आगेको चले; यदि मार्ग इतना तंग हो, कि उससे एक समयमें एक ही एक आदमी जासके, तो सूचीव्यूह बनाकर आगे की ओर चले। (इन सब व्यूहोंका निरूपण इसी अधिकरणके छठे अध्यायमें देखिये) ॥ १५ ॥

पथि द्वैधीभावे स्वभूमितो यायात् ॥ १६ ॥ अभूमिष्ठानां हि स्वभूमिष्ठा युद्धे प्रतिलोमा भवन्ति ॥ १७ ॥ योजनमधमा अध्यर्धं मध्यमा द्वियोजनमुत्तमा संभाव्या वा गतिः ॥ १८ ॥

यदि मार्गमें किसी तरहकी द्विविधा हो, अर्थात् कोई मार्ग अपने अनुकूल या प्रतिकूल हो, तो उनमें से जो मार्ग अपने हाथी घोड़े रथ और पैदल सेनाके लिये ठीक पड़े, उसी मार्गसे होकर जावे ॥ १६ ॥ क्योंकि युद्धके अवसर पर, अनुकूल मार्गसे न चलने वाले राजाओंके वे आक्रमणीय नहीं होते, जो कि अपने अनुकूल ही मार्गसे गमन करते हैं। तात्पर्य यह है कि प्रतिकूल मार्गसे चलने वाले राजा, अनुकूल मार्गसे चलने वाले राजाओं पर आक्रमण नहीं कर सकते ॥ १७ ॥ अब यह बताते हैं, कि एक दिनमें कितना रास्ता चलना चाहिये;—प्रतिदिन एक योजन (चार कोसका एक योजन होता है) चलना अधम गति कहाती है। डेढ़ योजन चलना मध्यम गति, और दो योजन प्रतिदिन चलना, उत्तम गति कहाती है। अथवा हर एक सुभीतेके साथ, प्रतिदिन जितना सम्भव होसके, उतना ही चले ॥ १८ ॥

आश्रयकारी संपन्नघाती पार्ष्णिरासारो मध्यम उदासीनो वा प्रतिकर्तव्यः ॥ १९ ॥ सङ्कटो मार्गः शोधयितव्यः ॥ २० ॥ कोशो दण्डो मित्रामित्राटवीबलं विष्टिर्ऋतुर्वा प्रतीक्ष्याः ॥ २१ ॥

विजिगीषु जब यह सोचे, कि मैं अपनी उन्नतिके लिए किसीको अपना आश्रय बनाऊंगा, अथवा धन धान्य आदिसे समृद्ध शत्रुके दलको नष्ट करूंगा, अथवा पार्ष्णिग्राह (पृष्ठस्थित शत्रु), आसार (मित्रबल), मध्यम (शत्रु और विजिगीषुके देशोंके बीचमें रहने वाला सामन्त), और उदासीन राजा का प्रतिकार करूंगा, अर्थात् इनके क्रोध को शान्त करूंगा; तो धीरे २ यात्रा करे। (इन सूत्रोंका अन्वय २२वें सूत्रके 'इति शनैर्यायात्' इस पदके साथ कर लेना चाहिये) ॥ १९ ॥ अथवा ऊबड़खाबड़ (सङ्कट=विषम) रास्तेको साफ करना है, यह सोचकरभी धीरे २ जावे ॥ २० ॥ अथवा जब कोश (धन संग्रह), दण्ड (अपनी सेना=अर्थात बिखरी हुई सेनाको मिलाना चाहे), मित्र सेना, शत्रु सेना, आटविक सेना, विष्टि (कर्मकर पुरुष) और अपनी सेनाके अनुकूल ऋतु की प्रतीक्षा करनी हो, तो भी धीरे २ ही जावे ॥ २१ ॥

कृतदुर्गकर्मनिचयरक्षाक्षयः क्रीतबलनिर्वेदो मित्रबलनिर्वेदश्चागमिष्यति, उपजापितारो वा नातित्वरयन्ति, शत्रुरभिप्रायं वा पूरयिष्यतीति शनैर्यायात् ॥ २२ ॥ विपर्यये शीघ्रम् ॥ २३ ॥

अथवा जब यह सम्भावना हो, कि शत्रुके अपने दुर्गकी पहिले कीहुई मरम्मत नष्ट होजायगी, उसके संगृहीत धान्य आदिका भी नाश होजायगा, तथा रक्षा (रक्षा सम्बन्धी प्रबन्ध) का भी नाश हो जायगा; धन देकर अपने वशमें की हुई सेना खिन्न होजायगी (अर्थात् शत्रुसे उसकी यह सेना विरक्त होजायगी), और मित्रकी सेना भी विरक्त हो जायगी, तबभी धीरे २ ही यात्रा करे। अथवा जब यह समझे कि शत्रुके उपजपिता पुरुष अभी शीघ्रता नहीं कर रहे हैं, अथवा शत्रु, युद्धके बिना ही विजिगीषुके अभिप्रायको पूरा करदेगा, तबभी धीरे २ ही यात्रा करे ॥ २२ ॥ और इन उपर्युक्त अवस्थाओं से विपरीत अवस्था होने पर शीघ्र ही यात्रा करे ॥२३॥

हस्तिस्तम्भसंक्रमसेतुबन्धनौकाष्ठवेणुसङ्घातैरलाबुचर्मकरण्डदृतिप्लवगण्डिकावेणिकाभिश्चोदकानि तारयेत् ॥ २४ ॥

अब इस बातका निरूपण करते हैं, कि सेनाएं नदी आदिको किन साधनों से पार करें:—हाथी, स्तम्भ संक्रम (नदीमें खंभे गाड़कर और उनपर फट्टे आदि रखकर), सेतुबन्ध (पुल आदि बांधकर), नाव, लकड़ी तथा बांसोंके बेड़े बनाकर; तूंबी, चर्मकाण्ड (चमड़ेसे मढ़ा हुआ, बांसके छिलकों से बनाया गया एक खोखला पात्रविशेष), दृति (भस्त्रा=धौंकनीके समान बना हुआ चमड़े का एक तरनेका साधन), प्लव (सोमजामे आदि कपड़ेका, तकियेके गिलाफके समान बना हुआ; इसको फूंकसे भरकर फिर तरनेके काम में लाया जाता है), गण्डिका (काग नामकी लकड़ीके बने हुए तरनेके विशेष साधन), और वेणिका (मजबूत रस्सियां), आदि साधनोंके द्वारा सेनाएं जलोंको पार करें ॥ २४ ॥

तीर्थाभिग्रहे हस्त्यश्वैरन्यतो रात्रावुत्तार्य सत्त्रं गृह्णीयात् ॥ २५ ॥ अनुदके चक्रिचतुष्पदं चाध्वप्रमाणेन शक्त्योदकं वाहयेत् ॥ २६ ॥

नदी आदिसे पार उतरनेके घाटोंको यदि शत्रुने रोका हुआ हो, या रोकने की सम्भावना हो, तो हाथी और घोड़ोंके द्वारा, बिना ही घाटके दूसरी जगहोंसे, रात्रिमें ही अपनी सेनाको पार उतार कर, विजिगीषु, सत्त्र (कूट युद्ध विकल्प प्रकरणमें इसका निरूपण किया जायगा, देखो:—अधि० १०, अध्या० ३) का ग्रहण करे ॥ २५ ॥ जिस प्रदेशमें जल न हो, वहांपर, गाड़ी तथा बैल आदि चौपायोंके ऊपर, उतने मार्गके लिये पर्याप्त जल, शक्तिके अनुसार लेजावे। इस प्रकार यहांतक स्कन्धावारप्रयाणका निरूपण करदिया गया ॥२६॥

दीर्घकान्तारमनुदकं यवसेन्धनोदकहीनं वा कृच्छ्राध्वानमभियोगप्रस्कन्नं क्षुत्पिपासाध्वक्लान्तं पङ्कतोयगम्भीराणां वा नदीदरीशैलानामुद्यानापयाने व्यासक्तमेकायनमार्गे शैलाविषमे सङ्कटे वा बहुलीभूतं निवेशे प्रस्थिते विसंनाहं भोजनव्यासक्तमायतगतपरिश्रान्तमवसुप्तं व्याधिमरकदुर्भिक्षपीडितं व्याधितपत्त्यश्वाद्विपमभूमिष्ठं वा बलव्यसनेषु वा स्वसैन्यं रक्षेत् ॥ २७ ॥ परसैन्यं चाभिहन्यात् ॥ २८ ॥

विजिगीषु लम्बा रास्ता तै करने वाली तथा जंगलमें होकर सफ़र करने वाली अपनी सेना की रक्षा करे। (इस सूत्रके अन्तिम पद 'स्वसैन्यं रक्षेत्' का प्रत्येक वाक्यके साथ अन्वय समझना चाहिये) मार्गमें जल प्राप्त न करने वाली सेना की भी, विजिगीषु रक्षा करे। इसी प्रकार घास भूसा (गौत=यवस) ईंधन और जलसे हीन (दूसरी बार जलका ग्रहण उसकी प्रधानता द्योतन करनेके लिये किया गया है), कठिन मार्गमें चलने वाली; चिरकालसे मुकाबला करनेके कारण खिन्न हुई २, भूख प्यास और सफ़र के कारण बेचैन हुई २; भारी दलदल, गहरे जल, नदी, गुफा और पर्वताके पार करने तथा चढ़ने उतरनेमें लगी हुई; एक हीके जाने योग्य तंग मार्गमें, पथरीले पहाड़ी विषम स्थानमें या इस प्रकारके पहाड़ी किलेमें इकट्ठी हुई २; ठहरने तथा यात्राके समयमें हथियार और कवच आदिसे रहित, भोजनमें लगी हुई; लंबा सफर करनेसे थकी हुई; नींद लेती हुई; ज्वर आदि रोग, संक्रामक महामारी तथा दुर्भिक्षसे पीड़ित हुई २; बीमार, पैदल हाथी और घोड़ोंसे युक्त, (अर्थात् जिस सेनाके सिपाही और हाथी घोडे बीमार होगये हों, ऐसी); अपने युद्ध के अनुरूप भूमिमें न ठहरी हुई; अथवा युद्धके समयमें सैनिक आपत्तियोंसे युक्त अपनी सेना की, विजिगीषु हर तरहसे रक्षा करे ॥ २७ ॥ तथा इन्हीं अवस्थाओं को प्राप्त हुई २ शत्रुकी सेना को नष्ट भ्रष्ट कर डाले, अर्थात् मार डाले ॥ २८ ॥

एकायनमार्गप्रयातस्य सेनानिश्चारग्रासाहारशय्याप्रस्ताराग्निनिधानध्वजायुधसंख्यानेन परबलज्ञानं, तदात्मनो गूहयेत् ॥२९॥

शत्रुके साथ सन्धि या लड़ाई करनेमें, उसकी सेना का परिमाण जानना अत्यन्त आवश्यक होता है, इसलिये उसके परिमाणके जानने का ढंग बताया जाता है:—जब शत्रु, एकके ही जाने योग्य तंग रास्तेमे जारहा हो,

उस समय वहांसे निकलते हुए उसके सैनिक पुरुषोंके गिननेसे; हाथी आदि की भोज्य सामग्री की गणना करनेसे; उनके सोनेके स्थानों की गिनती से, भोजन पकानेके चूल्हों की गणना करनेसे, ध्वजा (झण्डियां=पताकाएं) तथा हथियारों की गिनती करनेसे; शत्रुकी सेना की इयत्ता का (अर्थात् शत्रुकी इतनी सेना है, इस बातका) पता लगा लेना चाहिये । और अपनी सेना की इयत्ता का पता देदेने वाले इन साधनों को छिपा देवे अथवा नष्ट कर देवे ॥ २९ ॥

पार्वतं वा नदीदुर्गं सापसारप्रतिग्रहम् ।
स्वभूमौ पृष्ठतः कृत्वा युध्येत निविशेत च ॥ ३० ॥

इति सांग्रामिके दशमे अधिकरणे स्कन्धावारप्रयाणं, बलव्यसनावस्कन्दकाल-रक्षणं च द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥ आदितस्त्रिंशच्छतः ॥ १३० ॥

अपसार (पराजय होनेपर भाग जानेकी जगहको ' अपसार ' कहते हैं) और प्रतिग्रह (आक्रमण करतीहुई शत्रुकी सेनाको गिरफ्तार करनेकी जगहका नाम 'प्रतिग्रह' है) से युक्त (अर्थात जिनमें अवसरपर भागने और शत्रुकी सेनाको पकड़नेका काफी सुभीता हो, ऐसे) पार्वतदुर्ग (पहाड़ी किले, देखो-अधि० २, अध्या० ३, सूत्र २) और वनदुर्गको अच्छी तरह तैयार करके, अपने लिये सर्वथा अनुकूल भूमिमें ही ठहरकर युद्ध करे; अथवा चिन्ता रहित होकर वासकरे ॥ ३० ॥

सांग्रामिक दशम अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त

तीसरा अध्याय

१५०-१५२ प्रकरण

कूटयुद्ध के भेद, अपनी सेना का प्रोत्साहन, तथा अपनी और पराई सेना का व्यवस्थापन ।

इस अध्यायमें तीन प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें कपटपूर्वक कियेजाने वाले युद्धों का निरूपण किया जायगा । दूसरे प्रकरणमें प्रकटयुद्धके समय अपनी सेनाओं को प्रोत्साहन देनेके सम्बन्धमें निरूपण किया जायगा । तथा तीसरे प्रकरणमें शत्रुकी सेनाकी अपेक्षा अपनी सेनाकी विशेष व्यवस्था अर्थात विशेष व्यूहरचना आदिके सम्बन्धमें निरूपण किया जायगा ।

बलविशिष्टः कृतोपजापः प्रतिविहितकर्तुः स्वभूम्यां प्रकाशयुद्धमुपेयात् ॥ १ ॥ विपर्यये कूटयुद्धम् ॥ २ ॥

बड़ी बहादुर और अधिक सेनासे युक्त, शत्रुपक्षमें उपजाप करनेके लिये समर्थ, युद्धयोग्य समयको अपने अनुकूल बनाने वाला विजिगीषु, अपनी भूमिमें अर्थात् अपने अनुकूल प्रदेशमें प्रकाशयुद्ध करना स्वीकार करे। तात्पर्य यह है, कि प्रकाशयुद्ध करनेके लिये, विजिगीषुको इसप्रकार शक्तिशाली होना अत्यन्त आवश्यक है ॥ १ ॥ यदि अवस्था इसके विपरीत हो, तो कूटयुद्ध ही करना चाहिये ॥ २ ॥

बलव्यसनावस्कन्दकालेषु परमभिहन्यात् ॥ ३ ॥ अभूमिष्ठं वा स्वभूमिष्ठः ॥ ४ ॥ प्रकृतिप्रग्रहो वा स्वभूमिष्ठं दूष्यामित्राटवीबलैर्वा भङ्गं दत्त्वा विभूमिप्राप्तं हन्यात् ॥ ५ ॥ संहतानीकं हस्तिभिर्भेदयेत् ॥ ६ ॥

अमानित विमानित आदि (देखो—अधि० ८, अध्या० ५, सू० १, २) सेना सम्बन्धी व्यसनोंमें, आक्षेपक या लम्बा सफ़र जङ्गलका सफ़र तथा जल आदिके न मिलनेसे सन्तापयुक्त आदि अवस्थाओंमें; शत्रुके ऊपर आक्रमण किया जाय। अर्थात् जब शत्रुकी सेनाकी उपर्युक्त अवस्था हो, तब उस पर आक्रमण किया जाय ॥ ३ ॥ अथवा शत्रुकी स्थिति युद्धके प्रतिकूल होनेपर, और अपनी स्थिति युद्धके अनुकूल होनेपर, विजिगीषु शत्रुके ऊपर आक्रमण करे ॥ ४ ॥ अथवा शत्रुकी अमात्य आदि प्रकृतियोंको उपजापके द्वारा अपने वशमें करनेवाला विजिगीषु, युद्धके अनुकूल प्रदेशमें स्थित हुए २ भी शत्रुपर आक्रमण कर देवे। अथवा अपनी दूष्यसेना, शत्रुसेना और आटविक सेनाके द्वारा पराजय देकर, अनुकूल भूमि समझाकर (वस्तुतः प्रतिकूल भूमिमें ही) अपने विजयके विश्वासमें आयेहुए शत्रुको, मारडाले ॥ ५ ॥ अपनी अनुकूल भूमि में, मिलकर ठहरी हुई शत्रु सेनाको हाथियोंके द्वारा छिन्न भिन्न करदेवे ॥ ६ ॥

पूर्वं भङ्गप्रदानेनानुप्रलीनं भिन्नमभिन्नं प्रतिनिवृत्य हन्यात् ॥ ७ ॥ पुरस्तादभिहत्य प्रचलं विमुखं वा पृष्ठतो हस्त्यश्वेनाभिहन्यात् ॥ ८ ॥ पृष्ठतोऽभिहत्य प्रचलं विमुखं वा पुरस्तात्सारबलेनाभिहन्यात् ॥ ९ ॥

पहिले पराजयके कारण छिन्न भिन्न हुई २ शत्रुकी सेनाको, स्वयं इकट्ठी हुई २ (अभिन्नम्) विजिगीषुकी सेना लौटकर फिर मारे ॥ ७ ॥ सामने

की ओरसे आक्रमण करनेके कारण छिन्न भिन्न हुई २, अथवा विमुख हुई २ शत्रुकी सेनाको, पीछेकी ओरसे हाथी और घोड़ोंके द्वारा नष्ट करे ॥ ८ ॥ तथा पीछेकी ओरसे आक्रमण करनेके कारण छिन्न भिन्न हुई २, या उलटी भागी हुई शत्रुकी सेना को, सामनेकी ओरसे बहादुर सेनाके द्वारा नष्ट करे ॥ ९ ॥

ताभ्यां पार्श्वाभिघातौ व्याख्यातौ ॥ १० ॥ यतो वा दूष्य-फल्गुबलं ततो ऽभिहन्यात् ॥ ११ ॥

आगेकी ओर और पीछेकी ओरसे किये जानेवाले आक्रमणोंके अनुसार ही, इधर उधर बाजुओंकी ओरसे किये जानेवाले आक्रमणोंका भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये ॥ १० ॥ अथवा जिस ओर शत्रुकी दूष्य या निर्बल सेना हो, उसी ओरसे शत्रुपर धावा मारे ॥ ११ ॥

पुरस्ताद्विषमायां पृष्ठतो ऽभिहन्यात् ॥ १२ ॥ पृष्ठतो विषमायां पुरस्तादभिहन्यात् ॥ १३ ॥ पार्श्वतो विषमायामितरतो-ऽभिहन्यात् ॥ १४ ॥

यदि सामनेकी ओरसे आक्रमण करना अपने अनुकूल न पड़े, तो पीछेकी ओर से ही आक्रमण करे ॥ १२ ॥ इसीप्रकार पीछेकी ओरसे आक्रमण की अनुकूलता न होनेपर, सामनेसे ही आक्रमण करे ॥ १३ ॥ इधर उधर पार्श्वभागोंसे आक्रमणकी अनुकूलता न होनेपर, दूसरी ओरसे आक्रमण करे। (इन सब सूत्रोंमें आक्रमणकी अनुकूलता पृथिवी के आधारपर ही बताई गई है। अर्थात् जिस ओर भूमि ऊबड़खाबड़ हो, उस ओरसे आक्रमण न करे, किन्तु उसके दूसरी ओरसे आक्रमण करे, जिससे कि शत्रुकी सेना, उलटी भागकर उस विषम भूमिमें फंस जावे, और फिर उसको सरलतासे ही नष्ट किया जासके ॥ १४ ॥

दूष्यामित्राटवीबलैर्वा पूर्वं योधयित्वा श्रान्तमश्रान्तः परम-भिहन्यात् ॥ १५ ॥ दूष्यबलेन वा स्वयं भङ्गं दत्त्वा जितमिति विश्वस्तमविश्वस्तः सत्त्रापाश्रयो ऽभिहन्यात् ॥ १६ ॥

अथवा पहिले अपनी दूष्यसेना, शत्रुसेना तथा आटविक सेनाके साथ शत्रुका मुकाबला कराके उसे खूब अच्छी तरह थकाकर, फिर अपने आप न थका हुआ ही विजिगीषु स्वयं, शत्रुपर आक्रमण करे ॥ १५ ॥ अथवा पहिले दूष्यबल के साथ लड़ाकर स्वयं ही उसको पराजय देकर (अर्थात् अपने दूष्यबलके पराजित होजानेपर), जब शत्रुको इस बातका विश्वास होजाय, कि मैंने

विजिगीषुको जीत लिया है; तब स्वयं उसका विश्वास न करता हुआ सत्रका आश्रय लेकर ('सत्र' का निरूपण इसी अध्यायके २५ वें सूत्रमें किया जायगा) शत्रुपर आक्रमण करदेवे ॥ १६ ॥

सार्थव्रजस्कन्धावारसंवाहविलोपप्रमत्तमप्रमत्तो ऽभिहन्यात् ॥ १७ ॥ फल्गुबलावच्छन्नः सारबलो वा परवीराननुप्रविश्य हन्यात् ॥ १८ ॥ गोग्रहणेन श्वापदवधेन वा परवीरानाकृष्य सत्रच्छन्नो ऽभिहन्यात् ॥ १९ ॥

व्यापारी समूह, गौओंके समूह तथा छावनियोंकी रक्षा करनेमें, और इनके लुटने की अवस्थामें भी प्रमादी बने हुए शत्रुको, प्रमाद रहित विजिगीषु नष्ट कर देवे। तात्पर्य यह है, कि जब शत्रु प्रमादी बना हुआ हो, उस समय प्रमादहीन विजिगीषु उसपर आक्रमण कर देवे ॥ १७ ॥ अथवा बाहर की ओर अपनी निर्बल सेनाको लगाकर और बीचमें बहादुर सेनाको रखकर विजिगीषु, शत्रुके वीर सैनिकोंमें घुसकर उन्हें नष्ट कर देवे ॥ १८ ॥ अथवा शत्रुके देशमें गाय आदि पशुओंका अपहरण करने और व्याघ्र वराह आदि जङ्गली पशुओंका शिकार करनेसे, शत्रुके वीर पुरुषोंको अपनी ओर बुलाकर अर्थात् उसका प्रतीकार करनेके लिए उद्यत होकर अपनी ओर खिंचे पुरुषोंको, सत्रमें छिपकर मार डाले। इसतरह धोखेसे उन्हें अपनी ओर लाकर नष्ट कर डाले ॥ १९ ॥

रात्राववस्कन्देन जागरयित्वाऽनिद्राक्लान्तानवसुप्तान्वा दिवा हन्यात् ॥ २० ॥ सपादचर्मकोशैर्वा हस्तिभिः सौप्तिकं दद्यात् ॥ २१ ॥ अहःसंनाहपरिश्रान्तानपराह्णे ऽभिहन्यात् ॥ २२ ॥

रात्रिमें इधर उधर लूटमार या मारधाड़ करके, उन्हें भयके कारण जगाकर, रातमें निद्रा न आनेसे बेचैन हुए २, इसीलिए शत्रुके सोये हुए वीर पुरुषोंको दिनमें मार डाले। तात्पर्य यह है, कि रातमें कुछ न कुछ उपद्रव करके उन्हें सोने न देवे, और जब वे दिनमें सोवें, तो अवसर पाकर उन्हें नष्ट कर डाले ॥ २० ॥ चमड़ेका खोल पैरोंपर लगे हुए (अर्थात् जिनके पैरों पर चमड़ेका खोल लगा दिया गया हो, ऐसे) हाथियोंके द्वारा, सोते हुए पुरुषोंपर आक्रमण कर दिया जावे ॥२१॥ दिनमें दोपहरसे पहिले कवायद आदि करनेके कारण अच्छी तरह थके हुए पुरुषोंका, दोपहरके बाद वध करवावे ॥२२॥

शुष्कचर्मवृत्तशर्कराकोशकैर्गोमहिषोष्ट्रयूथैर्वा त्रस्नुभिरकृतहस्त्यश्वं भिन्नमभिन्नः प्रतिनिवृत्तं हन्यात् ॥ २३ ॥ प्रतिसूर्यवातं वा सर्वमभिहन्यात् ॥ २४ ॥

सूखे चमड़ेके बीचमें लिपटे हुए, मट्टीके छोटे २ गोल ढेलोंसे; (अथवा सूखे चमड़े और मट्टीको मिलाकर, पत्थरके समान सख्त बनाये हुए, छोटे २ गोलाकार ढेलोंसे); या घबड़ाजानेवाले गाय, भैंस और ऊंटोंके झुण्डोंके द्वारा; हाथी घोड़ोंसे रहित, छिन्न भिन्न हुई २ शत्रुकी सेनाको स्वयं अपनी सेनाको इकट्ठा ही रखता हुआ विजिगीषु नष्ट करे ॥ २३ ॥ सूर्यके सामने और हवाके सामने आई हुई सब ही तरह की सेनाको नष्ट कर डाले। तात्पर्य यह है, कि जब शत्रुकी सेनाके सामने की ओर सूर्य की तीव्र धूप आनेका समय हो, या जब तेज हवा उसके सामने की ओरसे चल रही हो; उस समय शत्रुकी हरतरह की सेनापर आक्रमण करके उसे नष्ट कर देवे ॥ २४ ॥

धान्वनवनसङ्कटपङ्कशैलनिम्नविषमनावो गावः शकटव्यूहो नीहारो रात्रिरिति सत्राणि ॥ २५ ॥

अब 'सत्र किन विशेष स्थानों या वस्तुओंका नाम है इस बातका निरूपण किया जाता है; धान्वन (मरुस्थलका दुर्ग), वन (जङ्गलमें बना हुआ दुर्ग), सङ्कट (घने कांटों तथा झाड़ियों आदिसे भरे हुए होनेके कारण, जिसमें सरलतासे प्रवेश न किया जा सके ऐसे प्रदेश), पङ्क (कीचड़= अर्थात् जिन प्रदेशोंमें कीचड़ बहुत हो), शैल (पहाड़=अर्थात् पहाड़ी इलाके), निम्न (नीचे-गहरे प्रदेश), विषम (ऊंचे नीचे या ऊबड़खाबड़ प्रदेश), नावें, गाओं के झुण्ड, शकटव्यूह (गाड़ी आदिसे बनाया हुआ व्यूहविशेष; देखो—अधि० १०, अध्या० ५), नीहार (कुहरा आदिका पड़ना), और रात्रि; इन सबको 'सत्र' कहा जाता है। ये विजिगीषुके, छिपकर गति करनेके साधन हैं ॥ २५ ॥

पूर्वे च प्रहरणकालाः कूटयुद्धहेतवः ॥ २६ ॥ संग्रामस्तु निर्दिष्टदेशकालो धर्मिष्ठः ॥ २७ ॥

पहिले, प्रहार करनेके अवसर (अर्थात् प्रहार करनेके जिन अवसरों को पहिले कहा जा चुका है, वे) और (चकारसे ग्रहण किये हुए) ये सत्र, सब ही कूटयुद्धके कारण होते हैं। अर्थात् इनका उपयोग कूटयुद्ध में होता है। यहांतक कूटयुद्धके भिन्न २ प्रकारोंका निरूपण कर दिया गया ॥ २६ ॥

देश और कालको पहिलेही निर्देश करके, धर्मपूर्वक जो युद्ध किया जाय, उसे संग्राम या प्रकाशयुद्ध (=प्रकटयुद्ध, कूटयुद्धसे विपरीत) कहा जाता है ॥ २७ ॥

संहत्य दण्डं ब्रूयात्—॥ २८ ॥ तुल्यवेतनोऽस्मि ॥ २९ ॥ भवद्भिः सह भोग्यमिदं राज्यम् ॥ ३० ॥ मयाभिहितः परोऽभिहन्तव्य इति ॥ ३१ ॥

सेनाको उत्साह देनेके निम्नलिखित प्रकार हैं:—इकट्ठी होकर ठहरी हुई सेनाको राजा कहे:—॥ २८ ॥ मैं भी आपकेही समान वेतन लेनेवाला हूँ ॥ २९ ॥ आप लोगोंके साथही मैं इस राज्यका उपभोग करसकता हूँ ॥ ३० ॥ मैं जिसके लिये कहूँ, वह शत्रु आप लोगोंको अवश्य मार डालना चाहिये। इसप्रकार राजा स्वयंही अपनी सेनाको उत्साह देवे ॥ ३१ ॥

वेदेष्वप्यनुश्रूयते समाप्तदक्षिणानां यज्ञानामवभृथेषु—॥३२॥ "सा ते गतिर्या शूराणाम्" इति ॥३३॥ अपीह श्लोकौ भवतः—॥ ३४ ॥

अनन्तर मन्त्रियों और पुरोहितोंसे इसप्रकार सेनाको उत्साहित करावे-वेदोंमें भी, अच्छी तरह दक्षिणा आदि लेनेके बाद पूर्ण यज्ञानुष्ठानके समाप्त होजानेपर, उसका फल इस प्रकार सुना जाता है:—॥ ३२ ॥ 'तुम्हारी वही गति होवे, जो शूरोंकी होती है'। तात्पर्य यह है, कि युद्धमें जीवन त्याग-देनेवाले पुरुषोंकी गति होती है, वही गति अच्छी तरह पूर्ण यज्ञ समाप्त करनेवालोंकी होती है। युद्धमें प्राणत्याग और अनेक किये हुए यज्ञोंका समानही फल होता है ॥ ३३ ॥ इसी बातको पुष्ट करनेवाले, ये पूर्वाचार्यों के दो श्लोक भी हैं ॥ ३४ ॥

यान्यज्ञसङ्घैस्तपसा च विप्राः स्वर्गैषिणः पात्रचयैश्च यान्ति।
क्षणेन तानप्यतियान्ति शूराः प्राणान्सुयुद्धेषु परित्यजन्तः॥३५॥

अनेक यज्ञोंको करके, तप करके, और यज्ञियपात्रोंका चयन करके (अथवा दानके योग्य अनेक सुपात्रोंको दान देकर) ब्राह्मण, जिन उच्च लोकोंको प्राप्त करते हैं। शूरवीर क्षत्रिय, उनसे भी अधिक उच्च लोकोंको एक क्षणमेंही धर्मयुद्धोंमें अपने प्राणोंको देकर प्राप्त करलेते हैं ॥ ३५ ॥

नवं शरावं सलिलस्य पूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य माभून्नरकं च गच्छेद्यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥३६॥
इति मन्त्रिपुरोहिताभ्यामुत्साहयेद्योधान् ॥ ३७ ॥

जलसे भरा हुआ, मन्त्रोंसे संस्कृत किया हुआ, तथा दर्भ (दाभ=एक प्रकार की घास) से ढका हुआ, नया शकोरा (शराव=मट्टी का बना हुआ, कटोरेके आकारका एक पात्र) उस पुरुषको प्राप्त नहीं होता, तथा वह नरकमें पड़ता है, जो अपने मालिकके लिये युद्ध नहीं करता । अर्थात् उसके स्वत्वों की रक्षाके लिये अपने जीवनको नहीं लगा देता ॥ ३६ ॥ इस प्रकार मन्त्री और पुरोहितोंके द्वारा अपने योद्धा पुरुषोंको उत्साहित करावे ॥ ३७ ॥

व्यूहसंपदा कार्तान्तिकादिश्चास्य वर्गः सर्वज्ञदैवसंयोगख्यापनाभ्यां स्वपक्षमुद्धर्षयेत् ॥ ३८ ॥ परपक्षं चोद्वेजयेत् ॥ ३९ ॥

इस विजिगीषु राजाके ज्योतिषी और शकुनशास्त्री पुरुष, पृथक् २ व्यूहों की विशेष रचनाके द्वारा अपनी सर्वज्ञताकी प्रसिद्धि करने, तथा दैवके साक्षात्कार होनेकी ख्याति करके, अपने पक्षको खूब हर्षयुक्त बनावें । अर्थात् उनको अच्छीतरह उत्साहित करें ॥ ३८ ॥ तथा शत्रुके पक्षको खूब बेचैन करें ॥ ३९ ॥

श्वो युद्धमिति कृतोपवासः शस्त्रवाहनं चाधिशयीत ॥४०॥ अथर्वभिश्च जुहुयात् ॥ ४१ ॥ विजययुक्ताः स्वर्गीयाश्चाशिषो वाचयेत् ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणेभ्यश्चात्मानमतिसृजेत् ॥ ४३ ॥

'कलको युद्ध है' ऐसा निश्चय होनेपर, पहिले दिन उपवास करता हुआ अपने हथियार और हाथी घोड़े आदि सवारियोंके समीपही रात्रिमें शयन करे ॥ ४० ॥ तथा अथर्ववेदमें बतलाये हुए मन्त्रोंके द्वारा, शत्रुओंका विध्वँस करनेके लिये यज्ञ करे ॥ ४१ ॥ शत्रुके हार जानेपर, अपने विजयके अनुकूल, तथा अपनेही आदमियोंके मारे जानेपर स्वर्गसम्बन्धी आशीर्वादोंको ब्राह्मणोंके द्वारा पढ़वावे ॥ ४२ ॥ अपनी रक्षाके लिये अपने आपको ब्राह्मणोंके ही अर्पण करदेवे ॥ ४३ ॥

शौर्यशिल्पाभिजनानुरागयुक्तमर्थमानाभ्यामविसंवादितमनीकगर्भं कुर्वीत ॥ ४४ ॥ पितृपुत्रभ्रातृकाणामायुधीयानामध्वजं मुण्डानीकं राजस्थानम् ॥ ४५ ॥

बहादुर, कारीगर, खानदानी, तथा मुहब्बत रखनेवाली, और धन तथा सत्कार आदिसे सदा अनुकूल बनाई हुई सेनाको, अपनी बड़ी सेनामें, अपनी रक्षाके लिये नियुक्त करे ॥ ४४ ॥ राजाके पिता, पुत्र तथा भाई आदि अन्तरंग सम्बन्धियोंके, राजाकी रक्षाके लिये हथियार उठानेवाले (अर्थात् राजाके अंगरक्षक=बॉडीगॉर्ड), और राजाके सम्बन्धको बतलानेवाले वेषको न

धारण करनेवाली प्रधान सेनाके निवासस्थानको राजाके समीपही रक्खे । अर्थात् जहां राजा ठहरा हो, वहींपर इनको भी ठहरावे ॥ ४५ ॥

हस्ती रथो वा राजवाहनमश्वानुबन्धे ॥ ४६ ॥ यत्प्रायः सैन्यो यत्र वा विनीतः स्यात्तदधिरोहयेत् ॥ ४७ ॥ राजव्यञ्जनो व्यूहानुष्ठानमायोज्यः ॥ ४८ ॥

हाथी तथा रथ, राजाकी सवारी समझी जावे । अर्थात् राजा, हाथी पर या रथ पर सवार होकर चले; और उसकी रक्षाके लिये उसके साथ अश्वारोही पुरुष होवें ॥ ४६ ॥ अथवा प्रायः जिन सवारियों पर सेना होवे, या राजाको जिस सवारी पर चढ़ने का अच्छा अभ्यास होवे, उसी सवारी पर राजा चढ़े ॥ ४७ ॥ पूर्णतया राजाके वेषमें, किसी पुरुषको व्यूह रचनाका अधिष्ठाता नियुक्त किया जावे । तात्पर्य यह है, कि राजाके समान स्पष्ट रूपमें सेनाकी देख रेख करनेके लिये, पूरे तौरपर राजाकेही वेषमें रहने वाले किसी आदमीको रक्खा जावे; जिससे कि शत्रुपक्षके पुरुष राजाको प्रकट रूपमें पहचान न सकें ॥ ४८ ॥

सूतमागधाः शूराणां स्वर्गमस्वर्गं भीरूणां जातिसंघकुलकर्मवृत्तस्तवं च योधानां वर्णयेयुः ॥ ४९ ॥

सूत और मागध (सूत=पुराने इतिहासको जानने वाले; मागध=स्तुतिपाठक) पुरुष, शूरवीर सिपाहियोंके स्वर्ग, डरपोकोंके नरक, तथा अन्य योद्धाओंके जाति (ब्राह्मण आदि), संघ (उनके अपने देशकी सामूहिक एकता), कुल, कर्म (कार्य जीविका आदि), तथा उनके शीलस्वभाव अथवा व्यवहार आदिकी स्तुतिका अच्छी तरह वर्णन करें । अर्थात् उनके उत्साहके लिये उनके सामने इन बातोंका भलीभान्ति वर्णन करें ॥ ४९ ॥

पुरोहितपुरुषाः कृत्याभिचारं ब्रूयुः ॥ ५० ॥ सत्त्रिकवर्धकिमौहूर्तिकाः स्वकर्मसिद्धिमसिद्धिं परेषाम् ॥ ५१ ॥

तथा पुरोहित पुरुष, शत्रुओंके नष्ट करने वाली कृत्या देवताके द्वारा अभिचार यज्ञोंका अनुष्ठान करें । तात्पर्य यह है, कि जो शत्रुओंके नाश करने के लिये अथर्व मन्त्रोंका प्रयोग किया जाता है, उसही को 'कृत्याभिचार' कहते हैं । पुरोहित, अपने राजाकी विजयके लिये इसका अनुष्ठान करें ॥ ५० ॥ सत्री (एक प्रकारका गुप्तचर), बढ़ई, तथा युद्धके प्रारम्भमें मुहूर्त्त आदिका निश्चय करने वाला ज्योतिषी; ये सदा अपने कार्योंकी सिद्धि और शत्रुके कार्योंकी असिद्धिकोही बतलावें ॥ ५१ ॥

सेनापतिरर्थमानाभ्यामभिसंस्कृतमनीकमाभाषेत ॥ ५२ ॥ शतसाहस्रो राजवधः ॥ ५३ ॥ पञ्चाशत्साहस्रः सेनापतिकुमारवधः ॥ ५४ ॥ दशसाहस्रः प्रवीरमुख्यवधः ॥ ५५ ॥ पञ्चसाहस्रो हस्तिरथवधः ॥ ५६ ॥ साहस्रो ऽश्ववधः ॥ ५७ ॥ शत्यः पत्तिमुख्यवधः ॥ ५८ ॥ शिरो विंशतिकम् ॥ ५९ ॥ भोगद्वैगुण्यं स्वयंग्राहश्चेति ॥ ६० ॥ तदेषां दशवर्गाधिपतयो विद्युः ॥ ६१ ॥

सेनापति, धन और सत्कार आदिसे पूजा कीहुई—बढ़ाई हुई सेनाको इसप्रकार कहे:—॥ ५२ ॥ आप लोगोंमेंसे जो सैनिक, शत्रु राजाको मार डालेगा, उसे एक लाख सुवर्ण मुद्राकी प्राप्ति होगी; अर्थात् शत्रु राजाके मारने वालेको इतना इनाम दिया जावेगा ॥ ५३ ॥ इसीप्रकार, आप लोगोंमेंसे जो सैनिक, शत्रुके सेनापति, या राजकुमारको मार डालेगा, उसे पचास हज़ार सुवर्णमुद्रा इनाम दिया जायगा ॥ ५४ ॥ तथा इसी प्रकार शत्रुके बहादुर आदमियोंमेंसे मुख्य व्यक्तिके मारने वालेको दस हज़ार; ॥ ५५ ॥ हाथी और रथोंके नष्ट करने वालेको पांच हज़ार; ॥ ५६ ॥ घुड़ सवारों (या मुख्य घोड़ें) के नष्ट करने वालेको एक हज़ार; ॥ ५७ ॥ पैदल सेनाके मुख्य व्यक्तियोंको नष्ट करने वालेको एक सौ; ॥ ५८ ॥ तथा साधारण सिपाहीका सिर काटकर लाने वालेको बीस सुवर्णमुद्रा इनाममें दिये जावेंगे ॥ ५९ ॥ और युद्धमें इसप्रकार हिस्सा लेने वाले सिपाहियोंका भत्ता और वेतन दुगना कर दिया जावेगा। तथा शत्रुके यहां लूटमें सिपाहियोंको जो कुछ माल मिलेगा, वह सब उनका ही समझा जायगा, अर्थात् उस माल पर उनकाही अधिकार होगा ॥ ६० ॥ इस उपर्युक्त राजवध आदिके समाचारको, केवल दशवर्गाधिपति (पदिक, सेनापति तथा नायक; देखो:—अधि० १०, अध्या० ६, सूत्र ४६–४८) ही जानें ॥ ६१ ॥

चिकित्सकाः शस्त्रयन्त्रागदस्नेहवस्त्रहस्ताः स्त्रियश्चान्नपानरक्षिण्यः पुरुषाणामुद्धर्षणीयाः पृष्ठतस्तिष्ठेयुः ॥ ६२ ॥

चिकित्सक (चिकित्सा करने वाले शल्यशास्त्रके ज्ञाता वैद्य) तथा शस्त्र (व्रण आदि को काटनेके औजार) यन्त्र (चीमटी आदि, जिनका मुंह आगे की ओर से मुड़ा हुआ हो, ऐसे चिकित्सा में काम आने वाले औज़ार), अगद (औषधि), स्नेह (घी तेल आदि=घाव आदि के लिये उपयुक्त औषध मिश्रित घी तेल आदिका ही यहां ग्रहण करना चाहिये), और वस्त्रों (पट्टी आदि बांधनेके वस्त्रों) को हाथ में लिये हुए अन्य पुरुष (चिकित्सकके कार्य में

सहायता देने वाले), और खाने पीने आदि की सामग्री की रक्षा करने वाली स्त्रियां, जो कि सैनिक पुरुषोंको खूब प्रसन्न रखने वाली हों, इन सबको युद्ध भूमि में, सेनाके पिछले हिस्से में रक्खा जावे ॥ ६२ ॥

अदक्षिणामुखं पृष्ठतः सूर्यमनुलोमवातमनीकं स्वभूमौ व्यूहेत ॥ ६३ ॥ परभूमिव्यूहे चाश्वांश्चारयेयुः ॥ ६४ ॥

विजिगीषुको, अपनी सेनाको युद्धके समय, दक्षिण की ओर मुंह न करके (दक्षिण की ओर मुंह करके खड़ा होना अमांगलिक समझा जाता है, इसलिये उस ओर को मुंह न कर और किसी ओर को ही मुंह करके), जब कि सूर्य पीछे की ओर रहे (अर्थात् सेना को खड़ा करने में इस बात का पूरा ध्यान रक्खे, कि सूर्य सेना के सामने न पड़ने पावे) और जसे वायु भी अनुकूल हो (अर्थात् सेना के सामने की ओरसे हवा न चल रही हो) इस प्रकार व्यूहरचना करके खड़ा करना चाहिये ॥ ६३ ॥ यदि युद्ध भूमि शत्रुके अनुकूल हो, और वहीं पर विजिगीषु को व्यूहरचना करनी पड़े तो शत्रुका विघात करनेके लिये उस भूमि में अपने घोड़ों को फिरावे ॥ ६४ ॥

यत्र स्थानं प्रजवश्चाभूमिव्यूहस्य तत्र स्थितः प्रजवितश्चोभयथा जीयेत ॥ ६५ ॥ विपर्यये जयति उभयथा स्थाने प्रजवे च ॥ ६६ ॥

जिस प्रदेश में ठहरने अर्थात् चिरकाल तक रहकर कार्य करने या बहुत जल्दी ही कार्य करनेका मौका न हो, ऐसे स्थानमें ठहरता हुआ या जल्दी ही कार्य करता हुआ विजिगीषु दोनों अवस्थाओंमें अवश्यही शत्रुके द्वारा मारा जाता है ॥ ६५ ॥ इससे विपरीत अवस्था होने पर अर्थात् दोनों तरहके अवसरके योग्य भूमि होने पर, ठहरने पर भी और जल्दी काम करने पर भी दोनों ही अवस्थाओंमें विजिगीषु अपने शत्रु को अवश्य जीत लेता है ॥ ६६ ॥

समा बिषमा व्यामिश्रा वा भूमिरिति पुरस्तात्पार्श्वाभ्यां पश्चाच्च ज्ञेया ॥ ६७ ॥ समायां दण्डमण्डलव्यूहाः ॥ ६८ ॥ विषमायां भोगसंहतव्यूहाः ॥६९॥ व्यामिश्रायां विषमव्यूहाः ॥७०॥

व्यूहरचना की अनुकूलता भूमिके आधार पर ही हो सकती है। इस लिये अब भूमिके विभाग बताते हैं:—भूमि तीन प्रकार की होती है:—सम, विषम, और व्यामिश्र। इनमेंसे प्रत्येकके फिर तीन ३ भेद हैं:—आगे होना, इधर उधर होना अर्थात् पार्श्वभागोंमें होना, तथा पीछेकी ओर होना, (अर्थात्

सम भूमि आगे हो, पीछे हो, या इधर उधर हो, इन तीन अवस्थाओंमें ही हो सकती है, इसी तरह दूसरी विषम आदि को भी समझ लेना चाहिये ॥ ६७ ॥ तीनों प्रकार की सम भूमिमें दण्डव्यूह (दण्डाकार सेना की स्थापना) और मण्डलव्यूह (मण्डलाकार=गोलाकार सेना की स्थापना) की रचना की जावे ॥ ६८ ॥ इसीप्रकार तीनों तरह की विषम भूमिमें भोगव्यूह और संहत-व्यूहों की रचना की जावे। (व्यूहों की रचना का प्रकार इसी अधिकरणके पांचवें अध्यायमें देखें) ॥ ६९ ॥ और तीनों प्रकार की व्यामिश्र भूमिमें विषम-व्यूहों की रचना कीजावे ॥ ७० ॥

विशिष्टबलं भङ्क्त्वा संधिं याचेत ॥ ७१ ॥ समबलेन याचितः संदधीत ॥ ७२ ॥ हीनमनुहन्यात् ॥ ७३ ॥ न त्वेव स्वभूमिप्राप्तं त्यक्तात्मानं वा ॥ ७४ ॥

विजिगीषुको चाहिये, कि अपनेसे अधिक शक्तिशाली शत्रुकी सेनाको पहिले अच्छी तरह नष्ट करके, फिर उससे सन्धिकी स्वयंही प्रार्थना करे ॥ ७१ ॥ यदि शत्रु, समान शक्तिवाला ही होवे, तो उससे प्रार्थना किये जाने परही सन्धि करे ॥ ७२ ॥ अपनेसे हीनशक्ति शत्रुको तो सर्वथा नष्ट कर डाले, जिससे कि वह फिर मुकाबलेके लिये कदापि न उठ सके ॥ ७३ ॥ परन्तु हीनशक्ति शत्रुको भी, यदि वह अनुकूल स्थान (भूमि) में पहुंचा हुआ हो, या अपने जीवनसे निराश हो चुका हो, तो न मारे। (क्योंकि इन अवस्थाओंमें हीनशक्ति भी शत्रु, विजिगीषुकी अधिकसे अधिक हानिको कर गुजरता है) ॥ ७४ ॥

पुनरावर्तमानस्य निराशस्य च जीविते ।
अधार्यो जायते वेगस्तस्माद्भग्नं न पीडयेत् ॥ ७५ ॥

इति सांग्रामिके दशमे ऽधिकरणे कूटयुद्धविकल्पाः स्वसैन्योत्साहनं स्वबलान्यबलव्यायोगश्च तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥ आदित एकत्रिंशच्छतं ॥ १३१ ॥

जीवनसे निराश होनेके कारण, फिर लौटे हुए हीनबल शत्रुका भी युद्धवेग धारण नहीं किया जा सकता, इसलिए भग्न हुए २ अर्थात् पहिलेसे शक्तिहीन बनाए हुए शत्रुको, फिर पीड़ा पहुंचाकर कुपित न करे ॥ ७५ ॥

सांग्रामिक दशम अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय

१५३, १५४ प्रकरण

युद्धयोग्य भूमि; और पदाति, अश्व, रथ तथा हाथी आदिके कार्य ।

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं, पहिले प्रकरणमें युद्धके योग्य भूमियोंका निरूपण किया जायगा । और दूसरे प्रकरणमें पैदल सेना, तथा घोड़े रथ और हाथीपर सवार होकर युद्ध करनेवाली सेनाओंके कार्योंका निरूपण किया जायगा ।

स्वभूमिः पत्त्यश्वरथद्विपानामिष्टा युद्धे निवेशे च ॥ १ ॥

पैदल, घुड़सवार, रथसवार, तथा हाथीसवार सेनाओंके युद्धके समय और उनकी अवस्थितिके समयमें अनुकूल भूमिका होना अत्यन्त अपेक्षित है । तात्पर्य यह है, कि सबतरह की सेनाओंके युद्ध और ठहरनेके लिये, अपने अनुकूल भूमिका ही अवलम्बन लेना चाहिये ॥ १ ॥

धान्वनवननिम्नस्थलयोधिनां खनकाकाशदिवारात्रियोधिनां च पुरुषाणां नादेयपार्वतानूपसारसानां च हस्तिनामश्वानां च यथास्वमिष्टा युद्धभूमयः कालाश्च ॥ २ ॥

धान्वन दुर्गमें युद्ध करनेवाले, वनदुर्गमें युद्ध करनेवाले, जल तथा स्थलमें युद्ध करने वाले, खाई खोदकर उनमें बैठकर युद्ध करने वाले, आकाश में युद्ध करनेवाले, दिन तथा रातमें युद्ध करनेवाले, (अर्थात् उपर्युक्त आठ प्रकारके, पैदल सेनामें काम करनेवाले पुरुषोंके); और नदी पहाड़ जलमय-प्रदेश तथा बड़े २ तालाबोंके सहारे युद्ध करनेवाले हाथियों और घोड़ोंके; उनके अपने अनुकूल ही युद्धयोग्य प्रदेश तथा ऋतु आदि समय अपेक्षित होते हैं ॥ २ ॥

समा स्थिराभिकाशा निरुत्खातिन्यचक्रखुरानक्षग्राहिण्यवृक्षगुल्मप्रततिस्तम्भकेदारश्वभ्रवल्मीकसिकताभङ्गभङ्गुरा दरणहीना च रथभूमिः ॥ ३ ॥

रथके योग्य भूमियोंका अब निरूपण करते हैं:—बराबर (अर्थात् जो ऊंची नीची न हो), नीचेसे मजबूत (=स्थिरा=जो नीचेसे पोलीसी न हो), साफ (तिनके आदिसे रहित), खाई खड्डे आदिसे रहित, जिसमें रथके

पहिये तथा घोड़ोंके सुम आदि न गड़ते हों, धुरेको न पकड़नेवाली; पेड़, गुल्म (घनी बेलोंसे ढकी हुई जगह,) लता, ठूंठ, क्यारियां, गढ़े, बमई, रेत, कीचड़ तथा तिरछेपन आदिसे रहित; और दरड़ोंसे रहित भूमि ही रथोंके चलनेके योग्य समझनी चाहिये । अर्थात् रथसवार सेनाके लिए ऐसी ही भूमि योग्य होती है ॥ ३ ॥

हस्त्यश्वयोर्मनुष्याणां च समे विषमे हिता युद्धे निवेशे च ॥ ४ ॥ अण्वश्मवृक्षा ह्रस्वलङ्घनीयश्वभ्रा मन्ददरणदोषा चाश्वभूमिः ॥ ५ ॥

रथ के उपयुक्त भूमि ही, हाथी घोड़े और मनुष्यों के भी अनुकूल, सम विषम देशमें और युद्ध तथा ठहरनेके समयमें समझनी चाहिये । अर्थात् इन उपर्युक्त अवस्थाओंमें, जो भूमि रथके लिये उपयुक्त बताई गई है, वही भूमि हाथी घोड़े और मनुष्योंके लिये भी उपयुक्त समझनी चाहिये ॥ ४ ॥ घोड़े आदिके लिये विशेष भूमि, निम्नलिखित रीतिसे समझनी चाहियेः—छोटे २ कंकड़ तथा वृक्षोंसे युक्त, छोटे लांघने योग्य गढ़ोंसे युक्त, तथा कहीं २ छोटी २ दरड़ों वाली भूमि को घोड़ोंके लिये विशेष उपयुक्त समझना चाहिये ॥ ५ ॥

स्थूलस्थाण्वश्मवृक्षप्रततिवल्मीकगुल्मा पदातिभूमिः ॥ ६ ॥ गम्यशैलनिम्नविषमा मर्दनीयवृक्षा छेदनीयप्रततिः पङ्कभंगुरदरणहीना च हस्तिभूमिः ॥ ७ ॥

मोटे २ ठूंठ, पत्थर या कंकड़, वृक्ष, लता (बेल), बमई, तथा गुल्म आदिसे युक्त भूमि, पैदल सैनिकोंके लिये अधिक उपयुक्त होती है ॥ ६ ॥ हाथियोंके जासकने योग्य पहाड़ तथा ऊंचे नीचे भागोंसे युक्त, हाथियोंके रगड़ने (अर्थात् खुजली करने) के योग्य वृक्षोंसे युक्त, काटने योग्य लताओं वाली, कीचड़ गढ़े तथा दराड़ोंसे रहित भूमि, हाथियोंके लिये अधिक उपयुक्त समझनी चाहिये ॥ ७ ॥

अकण्टकिन्यबहुविषमा प्रत्यासारवतीति पदातीनामतिशयः ॥ ८ ॥ द्विगुणप्रत्यासारा कर्दमोदकखञ्जनहीना निःशर्करेति वाजिनामतिशयः ॥ ९ ॥

कांटोंसे रहित, तथा जो बहुत ऊंची नीची नहो, और जिसमें अवसर आने पर लौटनेके लिये अच्छा सुभीता हो, वह भूमि पैदल सेनाके लिये अत्युत्तम होती है ॥ ८ ॥ इसी प्रकार जिस भूमिमें आगे बढने की अपेक्षा

पीछे लौटनेके लिये दुगना सुभीता होता है, और जो कीचड़, जल, दलदल तथा कंकड़ीली मट्टीसे रहित होती है, वह भूमि घोड़ोंके लिये अतिशय लाभ-प्रद होती है ॥ ९ ॥

पांसुकर्दमोदकनलशराधानवती श्वदंष्ट्राहीना महावृक्षशाखाघातवियुक्तेति हस्तिनामतिशयः ॥ १० ॥ तोयाशयाश्रयवती निरुत्खातिर्नी केदारहीना व्यावर्तनसमर्थेति रथानामतिशयः ॥ ११ ॥ उक्ता सर्वेषां भूमिः ॥ १२ ॥

धूल, कीचड़, जल, (कीचड़से मिला हुआ जल ही यहां 'उदक' शब्द से अभिप्रेत है), नड़सल, मूंज और इन दोनों की (नड़सल और मूंज की) जड़, इन सब वस्तुओंसे युक्त; गोखुरुओंसे रहित, तथा बड़े २ वृक्षों की शाखाओं की टक्करसे रहित (अर्थात् हाथी पर चढ़ कर जिस भूमिमें बड़े वृक्षोंके टहनोंसे टक्कर न लग सके, ऐसी) भूमि हाथियोंके अत्यन्त उपयोगी होती है ॥ १० ॥ स्नान आदिके योग्य जलाशयोंसे तथा विश्राम करनेके योग्य स्थानोंसे युक्त, उखड़े हुए स्थानोंसे रहित, क्यारियोंसे रहित, अवसर आने पर लौटनेके योग्य स्थानोंसे युक्त (अर्थात् जिसमें लौटनेके लिए पर्याप्त स्थान मिलसके, ऐसी) भूमि, रथोंके लिये अधिक उपयोगी होती है ॥ ११ ॥ यहांतक सब प्रकार की भूमियोंके सम्बन्धमें निरूपण करादिया गया ॥ १२ ॥

एतया सर्वबलनिवेशा युद्धानि च व्याख्यातानि भवन्ति ॥ १३ ॥

इसप्रकार भूमिके व्याख्यानके अनुसार ही सब सेनाओंके निवेश अर्थात् ठहरनेके साथ सम्बन्ध रखने वाले सब कार्यों और युद्धसम्बन्धी कार्योंका भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये। तात्पर्य यह है, कि भूमिके समान, सेनानिवेश और युद्ध कार्योंका विचार करना भी अत्यन्त आवश्यक है ॥ १३ ॥

भूमिवासवननिचयो विषमतोयतीर्थवातरश्मिग्रहणं वीवधासारयोर्घातो रक्षा वा विशुद्धिस्थापना च बलस्य प्रसारवृद्धिर्याहूत्सारः पूर्वप्रहारो व्यावेशनं व्यावेधनमाश्वासो ग्रहणं मोक्षणं मार्गानुसारविनिमयः कोशकुमाराभिहरणं जघनकोट्यभिघातो हीनानुसारणमनुयानं समाजकर्मेत्यश्वकर्माणि ॥ १४ ॥

अब इसके आगे पैदल, घोड़े रथ तथा हाथियोंकी सेनाके कार्योंका निरूपण किया जायगाः—सबसे प्रथम घोड़ेके कार्योंका निरूपण करते हैं:—

भूमि, वासस्थान, तथा वनका संशोधन घोड़ोंके द्वारा किया जाना चाहिये, (उस भूमिसे, छिपेहुए शत्रुके बलको हटाना 'भूमिविचय' या भूमिका संशोधन कहाता है, इसीप्रकार सेनाके निवासस्थानोंमें से उपद्रवका दूर करना 'वासविचय' और जंगली रास्तोंमें से चोरों आदिका हटाना 'वनविचय' कहाता है); विषम (जहांपर शत्रु आक्रमण न करसके), तोय (जहांपर जलके भरेहुए तालाव आदि हों), तीर्थ (नदी आदि उतरनेका जहांसे अच्छा सुभीता हो), वात (जहांपर वायु अच्छीतरह आजासके), और रश्मि (जहां सूर्यके प्रकाश पहुंचनेमें किसी प्रकारकी बाधा न हो) आदिके लिये उपयुक्त स्थानोंको पहिलेसे ही अपने काबूमें करलेना, शत्रुके वीवध (उसके अपने देशसे लगातार जीविका योग्य द्रव्योंका आना) और आसार (शत्रुके मित्रकी सेनाका आना) का नाश तथा अपने वीवध और आसारकी रक्षा करना; छिपकर प्रविष्टहुई शत्रुसेनाकी सफाई करना तथा अपनी सेनाके गड़बड़ होजानेपर उसकी ठीक २ स्थापना करना; प्रसार (जंगलोंमें होनेवाले धान्य तथा घास आदिको प्रसार कहते हैं) की वृद्धि करना; बाहुओंके समान घोड़ोंके द्वारा शत्रुकी सेनाको हटाना; शत्रुकी सेनापर पहिले ही प्रहार करना; शत्रुकी सेनामें घुसकर उसे विचलित करदेना; शत्रु सेनाको तरह २ की तकलीफ़ पहुंचाना; अपनी सेनाको आश्वासन (तसल्ली) देना ; शत्रुकी सेनाको पकड़ना; शत्रुसे पकड़ेहुए अपने योद्धाओंको छुड़ाना; अपनी सेनाके मार्गपर शत्रुओंकी सेनाके चले जानेपर स्वयं शत्रुकी सेनाके मार्गका अनुसरण करना; शत्रुके कोश और राजकुमारका अपहरण करना; पीछे तथा सामनेकी ओर आघात अर्थात् आक्रमण करना; घोड़े मरेहुए सैनिकोंका (अर्थात् जिनके घोड़े मरगये हैं, ऐसे सैनिकोंका) पीछा करना; भागीहुई शत्रुसेनाका पीछा करना; तथा बिखरीहुई अपनी सेनाको इकट्ठी करना इत्यादि ये सब ही कार्य 'अश्वकर्म' अर्थात् घोड़ोंके करनेके काम कहे जाते हैं; इन कार्योंको घोड़ोंके द्वारा करानेमें ही सुगमता रहती है ॥ १४ ॥

पुरोयानमकृतमार्गवासतीर्थकर्म बाहूत्सारस्तोयतरणावतरणे स्थानगमनावतरणं विषमसंबाधः प्रवेशोऽग्निदानशमनमेकाङ्गविजयः भिन्नसंधानमभिन्नभेदनं व्यसने त्राणमभिघातो बिभीषिका त्रासनमौदार्यं ग्रहणं मोक्षणं सालद्वाराट्टालकभञ्जनं कोशवाहनमिति हस्तिकर्माणि ॥ १५ ॥

अब हाथीके कार्योंका निरूपण किया जाता है:—अपनी सेनाके आगे चलना, पहिलेसे न बनेहुए मार्ग, वासस्थान तथा तीर्थ (घाट) आदिका

बनाना, भुजाओंके समान, शत्रुकी सेनाको अपनी सेनाके पास खड़े होकर हटाना; मद्दी आदिके जलमें उसके नापनेके लिये तरना या भीतर प्रवेश करना; शत्रु सेनाके आक्रमण करनेपर पंक्ति बांधकर खड़े होजाना (=स्थान) इसीप्रकार मार्ग में चलना; तथा ऊंचे स्थानसे इसीतरह नीचेकी ओर उतरना; घने जंगल तथा शत्रुसेनाकी भीड़में घुसजाना; शत्रुके पड़ावमें आग लगाना, तथा अपने पड़ावमें लगीहुई आगको बुझाना; सेनाके एक अङ्गभूत हाथीके द्वारा ही शत्रुपर विजय लाभ करना; बिखरीहुई सेनाको इकट्ठा करना; शत्रुकी इकट्ठी हुई २ सेनाको छिन्नभिन्न करना; आपत्तिके समयमें रक्षा करना; शत्रुकी सेनाका कुचलना; केवल दिखानेसे ही उसे डराना; मद आदिकी अवस्थाके द्वारा उन्हें विचलित करदेना; सेनाका महत्व दिखलाना; शत्रुके योद्धाओंको पकड़ना; शत्रुके पकड़ेहुए अपने योद्धाओंको छुड़ाना; शत्रुके परकोट, प्रधान द्वार तथा ऊपरकी अटारी आदिको गिराना; शत्रुके खजाने तथा सवारी आदिको भगा लेजाना, ये सब 'हास्तिकर्म' अर्थात हाथीके करने योग्य काम कहाते हैं ॥ १५ ॥

स्वबलरक्षा चतुरङ्गबलप्रतिषेधः संग्रामे ग्रहणं मोक्षणं भिन्नसंधानमभिन्नभेदनं त्रासनमौदार्यं भीमघोषश्चेति रथकर्माणि ॥१६॥

अब इसके आगे रथके कार्योंका निरूपण किया जायगा:—अपनी सेनाकी रक्षा करना; संग्रामके समय शत्रुकी सेनाका रोकना; शत्रुके योद्धाओंको पकड़ना; शत्रुसे पकड़ेहुए अपने योद्धाओंको छुड़ाना; बिखरीहुई अपनी सेनाको इकट्ठी करना, इकट्ठी हुई २ शत्रुकी सेनाको छिन्नभिन्न करना; भय आदि दिखाकर शत्रुकी सेनाको विचलित करना; अपनी सेनाका औदार्य अर्थात् महत्त्व दिखलाना; और भयङ्कर घोष अर्थात ध्वनि (आवाज़) का करना; ये सब 'रथकर्म' अर्थात रथके करने योग्य कार्य कहेजाते हैं ॥ १६ ॥

सर्वदेशकालशस्त्रवहनं व्यायामश्चेति पदातिकर्माणि ॥१७॥

अब पैदल सेनाका निरूपण करते हैं:—सबही सम विषम आदि स्थानों और वर्षा शरद् आदि ऋतुओंमें शस्त्रोंका धारण करना; तथा नियम पूर्वक क़वायद आदि करना और अवसर आनेपर युद्ध करना, ये सब पैदल सेनाके करने योग्य कार्य (पदातिकर्म) कहाते हैं ॥ १७ ॥

शिबिरमार्गसेतुकूपतीर्थशोधनकर्मयन्त्रायुधावरणोपकरणग्रासवहनमायोधनाच्च प्रहरणावरणप्रतिविद्धापनयनमिति विष्टिकर्माणि ॥ १८ ॥

अपने पास हथियार आदि न रखकर फौजमें काम करने वाले कर्मचारियोंको 'विष्टि' कहा जाता है; अब इन्हींके कार्योंका निरूपण किया जायगा:—शिविर (=सेनानिवेश=पड़ाव), मार्ग, सेतु (नदी आदिका जल रोकनेके साधन=पुल आदि), कुए तथा घाट आदिके तैयार करानेका काम कराना या घास आदि उखाड़कर इन्हें साफ रखना; यन्त्र, हथियार, कवच, अन्य प्रकारके उपयोगी साधन तथा घास आदिको ढोना या इनका ठीक २ प्रबन्ध रखना; और युद्ध भूमिसे हथियार कवच तथा घायल सिपाहियोंको दूसरी जगह लेजाना; ये सब विष्टि नामक कर्मचारियोंके करने योग्य कार्य होते हैं ॥ १८ ॥

कुर्याद्गवाश्वव्यायोगं रथेष्वल्पहयो नृपः ।
खरोष्ट्रशकटानां वा गर्भमल्पगजस्तथा ॥ १९ ॥

इति सांग्रामिके दशमे ऽधिकरणे युद्धभूमयः पत्त्यश्वरथहस्तिकर्माणि चतुर्थो ऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदितो द्वात्रिंशशतः ॥ १३२ ॥

जिस राजाके पास बहुत थोड़ेही घोड़े हों, वह रथोंमें बैल और घोड़ोंको मिलाकर काम लेवे; अर्थात् घोड़ोंके साथ २ बैलोंको भी रथोंमें जोतकर उनसे उपयोग लेवे । इसी प्रकार जिस राजाके पास हाथी बहुत थोड़े होवें, वह अपनी सेनाको; गधे ऊंट और गाड़ियोंके बीचमें या गधे और ऊंटोंसे युक्त गाड़ियोंके बीचमें करके सुरक्षित रक्खे । तात्पर्य यह है, कि जो सेना हाथियोंके बीचमें रहकर सुरक्षित रहती थी, वह हाथियोंके अभावमें गधे ऊंट और गाड़ी आदिके बीचमें करके ही सुरक्षित रक्खी जावे ॥ १९ ॥

सांग्रामिक दशम अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवां अध्याय ।

१५५-१५७ प्रकरण ।

पक्ष कक्ष तथा उरस्य इत्यादि व्यूह विशेषोंका, सेनाके परिमाणके अनुसार व्यूहविभाग; सार तथा फल्गु बलका विभाग; और पदाति अश्व, रथ, तथा हाथियोंका युद्ध ।

इस अध्यायमें तीन प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें पक्ष, कक्ष तथा उरस्य इन विशेष सैनिक समूहोंकी, सेनाकी संख्याके अनुसार

व्यूहरचनाका निरूपण किया जायगा, (सेनाके अगले दोनों ओरके हिस्सोंका नाम 'पक्ष' पीछेकी ओरके दोनों हिस्सोंका नाम 'कक्ष' और मध्यके हिस्सेको 'उरस्य' कहते हैं। इन पांच विशेष समूहोंके आधारपर ही व्यूहकी रचना करनेका निरूपण पहिले प्रकरणमें किया जायगा)। इसी तरह दूसरे प्रकरणमें सबल तथा निर्बल सेनाका विभाग; और तीसरे प्रकरणमें पैदल आदि चारों प्रकारकी सेनाओंके युद्धके सम्बन्धमें निरूपण किया जायगा।

पञ्चधनुःशतापकृष्टदुर्गमवस्थाप्य युद्धमुपेयात्, भूमिवशेन वा ॥ १ ॥ विभक्तमुख्यामचक्षुर्विषये मोक्षयित्वा सेनां सेनापति-नायकौ व्यूहेयाताम् ॥ २ ॥

जहांपर छावनी पड़ी हुई हो, उससे पांचसौ धनुष (देखो–अधि. २, अध्याय २०) के फासलेपर युद्धस्थलका अङ्गीकार करे। अर्थात् युद्धका मैदान छावनीसे इतनी दूरीपर होना चाहिये, अथवा भूमिके अनुसार इससे अधिक या कम दूर भी लड़ाईका मैदान होसकता है ॥ १ ॥ मुख्य सैनिकोंको विभक्त करके, फिर उस सेनाको इसप्रकार सुरक्षित या छिपाकर रक्खा जावे, जिससे दूसरे लोग (शत्रुजन) उसको न जान सकें; तदनन्तर सेनापति और नायक उस सेनाको व्यूहरचनाके ढंगमें विभक्त करके खड़ा करें ॥ २ ॥

शमान्तरं पत्तिं स्थापयेत् ॥ ३ ॥ त्रिशमान्तरमश्वं, पञ्च-शमान्तरं रथं हस्तिनं वा, द्विगुणान्तरं त्रिगुणान्तरं वा व्यूहेत ॥ ४ ॥ एवं यथासुखमसंबाधं युध्येत ॥ ५ ॥

पैदल सेनाके प्रत्येक सिपाहीको एक २ शम (चौदह अंगुलका एक शम होता है, देखो–अधि. २, अध्या. २०, सूत्र १२) के फासलेपर खड़ा किया जावे ॥ ३ ॥ इसीप्रकार घोड़ोंको (अर्थात घुड़सवार सिपाहियोंको) तीन २ शमके फासलेपर, रथ और हाथियोंको पांच २ शमके फासलेपर; अथवा भूमिके अनुसार इससे और अधिक दुगने या तिगुने फासलेपर फौजका खड़ा करके व्यूहकी रचना करे ॥ ४ ॥ इसप्रकार सुखपूर्वक तथा बाधारहित होकर युद्ध करे। तात्पर्य यह है कि अधिक फासलेसे फौजको खड़ा करके युद्ध करनेमें बड़ा सुभीता रहता है; और एक दूसरेको किसी तरहकी आपसमें बाधा नहीं पहुंचती ॥ ५ ॥

पञ्चारत्नि धनुः ॥ ६ ॥ तस्मिन्धन्विनं स्थापयेत् ॥ ७ ॥ त्रिधनुष्यश्वं, पञ्चधनुषि रथं हस्तिनं वा ॥ ८ ॥ पञ्चधनुरनीक-संधिः पक्षकक्षोरस्यानाम् ॥ ९ ॥

पांच अरत्निका (हाथका) एक धनुष् होता है। (यहांपर पांच अर-त्निका एक धनुष बताया गया है। परन्तु अधि. २, अध्या. २० में [देश-काल मान ' प्रकरणमें] चार अरत्निकाही एक धनुष् बताया गया है। उस अध्या यके १९ वें सूत्रके साथ इसकी तुलना करें) ॥ ६ ॥ धनुष-बाणसे युद्ध करने वाले योधाओंको इतने फ़ासलेसे (अर्थात् पांच हाथके फ़ासलेसे) खड़ा करे ॥ ७ ॥ तीन धनुष (अर्थात् पन्द्रह हाथ) के फ़ासलेसे घोड़ोंको; और पांच धनुष् (अर्थात् पच्चीस हाथ) के फ़ासलेसे रथ और हाथियोंको खड़ा करे ॥ ८ ॥ पक्ष कक्ष तथा उरस्यकी पांचों सेनाओंका आपसका फ़ासला पांच धनुष् (अर्थात् पच्चीस २ हाथ होना चाहिये , अर्थात् एक फ़ौज दूसरी फ़ौजसे पच्चीस हाथके फासलेपर खड़ी कीजावे ॥ ९ ॥

अश्वस्य त्रयः पुरुषाः प्रतियोद्धारः ॥ १० ॥ पञ्चदश रथस्य हस्तिनो वा पञ्च चाश्वाः ॥ ११ ॥ तावन्तः पादगोपा वाजिरथद्विपानां विधेयाः ॥ १२ ॥

घुड़सवार सिपाहीके आगे २ रहकर उसकी सहायतार्थ युद्ध करनेके लिये तीन पुरुष नियुक्त किये जावें ॥ १० ॥ इसी प्रकार हाथी और रथके आगे पन्द्रह २ आदमी; अथवा पांच २ घुड़सवार सिपाही खड़े किये जावें ॥ ११ ॥ घोड़े रथ तथा हाथियोंके उतनेही (अर्थात् पांच) पादगोप (=पाद-रक्षक अर्थात् उनकी सेवा या टहल टकोरी करने वाले सेवक जन=साईस आदि) नियुक्त किये जावें। इसप्रकार एक २ रथके आगे पांच घोड़े, और एक २ घोड़ेके आगे तीन २ आदमी मिलाकर कुल पन्द्रह आदमी आगे चलने वाले, और पांच सेवक; इसी तरह हाथीके साथ भी समझने चाहियें। (माधवयज्वाने अपनी नयचन्द्रिका व्याख्यामें लिखा है, कि जैसे एक घोड़ेके आगे चलने वाले तीन आदमी होते हैं, इसीतरह उसके सेवक भी तीनही आदमी होने चाहियें) ॥ १२ ॥

त्रीणि त्रिकाण्यनीकं रथानामुरस्यं स्थापयेत् ॥ १३ ॥ तावत्कक्षं पक्षं चोभयतः ॥ १४ ॥ पञ्चचत्वारिंशत् एवं रथा रथव्यूहे भवन्ति ॥ १५ ॥

उरस्य स्थानमें अर्थात् व्यूहरचनाके मध्यस्थानमें इसप्रकारके नौ रथों (तीन त्रिक=३×३=९) की स्थापना करे । तात्पर्य यहहै कि तीन २ रथोंकी एक २ पंक्ति बनाकर तीन पंक्तियोंमें नौ रथों को खड़ा करे ॥ १३ ॥ इसीप्रकार कक्ष और पक्ष स्थानोंमें दोनों ओर नौ २ रथोंको खड़ा करे ॥ १४ ॥ इस तरह एक व्यूह में पैंतालीस रथ होजाते हैं । (९ उरस्य=१८ कक्ष=और १८ पक्ष=४५) ॥ १५ ॥

द्वे शते पञ्चविंशतिश्चाश्वाः ॥ १६ ॥ षट्शतानि पञ्चसप्ततिश्च पुरुषाः प्रतियोद्धारः ॥ १७ ॥ तावन्तः पादगोपा वाजिरथद्विपानाम् ॥ १८ ॥

प्रत्येक रथके आगे पांच घोड़े होनेके कारण, पैंतालीस रथोंके आगे दो सौ पच्चीस (२२५) घोड़े होने चाहियें ॥ १६ ॥ और प्रत्येक रथके आगे पन्द्रह आदमी होनेके कारण, पैंतालीस रथोंके आगे छः सौ पिचहत्तर (६७५) पुरुष, एक दूसरेकी सहायतार्थ युद्ध करनेके लिये होने चाहियें ॥ १७ ॥ घोड़े रथ और हाथियोंके इतनेही पादगोप होने चाहियें । अर्थात् घोड़ोंके आगे चलने वाले जितने पुरुष हों, उतनेही उनके पादगोप; और रथ तथा हाथियोंके आगे चलने वाले जितने घोड़े और आदमी हों, उतनेही उनके पादगोप होते हैं ॥ १८ ॥

एष समव्यूहः ॥ १९ ॥ तस्य द्विरथो वृद्धिरा एकविंशतिरथात् ॥ २० ॥ इत्येवमोजा दश समव्यूहप्रकृतयो भवन्ति ॥ २१ ॥

इस तरहके व्यूहको 'समव्यूह' कहते हैं । (क्योंकि यह बराबर २ के तीन २ त्रिकोंसे तैयार किया जाता है ॥ १९ ॥ इसी व्यूहमें दो २ रथोंकी वृद्धि, इक्कीस रथ पर्यन्त और कीजासकती है । (तात्पर्य यह है, कि पहिला एक व्यूह तीन त्रिकोंसे तयार होता है, इसीमें यदि दो रथोंकी वृद्धि करदी जाय, तो पांच रथोंके पांच पंचकोंसे यह व्यूह तैयार किया जायगा; अर्थात् दोनों कक्ष दोनों पक्ष और एक उरस्यमें पांच २ रथोंकी पांच पंक्तियां लगाई जावेंगी; इसप्रकार कक्ष आदि पांचों स्थानोंमें एकसौ पच्चीस रथ होजावेंगे, उन्हींके अनुसार घोड़े और मनुष्योंकी तादाद समझ लेनी चाहिये । इसी तरह इसमें दो रथ और बढ़ाकर प्रत्येक स्थानमें सात २ रथोंकी सात २ पंक्ति लगाकर व्यूह रचना कीजावेगी । इसी प्रकार दो २ रथ बढ़ाकर इक्कीस रथ पर्यन्त व्यूहोंकी कल्पना करलेनी चाहिये) ॥ २० ॥ इसप्रकार अयुग्म रूपमें तीन रथोंसे लगाकर इक्कीस रथ पर्यन्त, दस तरहकी सम व्यूह रचना कहाती है । अर्थात् इस तरहके समव्यूहके ये दस भेद हैं ॥ २१ ॥

पक्षकक्षोरस्यानामतो विषमसंख्याने विषमव्यूहः ॥ २२ ॥ तस्यापि द्विरथोत्तरा वृद्धिरा एकविंशतिरथात् ॥ २३ ॥ इत्येवमोजा दश विषमव्यूहप्रकृतयो भवन्ति ॥ २४ ॥

पक्ष कक्ष और उरस्य स्थानोंमें रथोंकी परस्पर विषम संख्या होनेपर ये ही व्यूह 'विषम' कहाते हैं। (तात्पर्य यह है, कि जब उरस्यमें तीन २ त्रिक, और पक्ष या कक्षमें पांच २ पञ्चक हों; अथवा उरस्यमें सात २ सप्तक और पक्ष कक्षमें पांच २ पञ्चक ही हों; अथवा उरस्यमें पांच २ पञ्चक और पक्ष कक्षमें सात २ सप्तक हों; इसप्रकार जब इनकी संख्यामें विषमता हो, तो ये 'विषमव्यूह' कहे जाते हैं) ॥ २२ ॥ इनमें भी तीनसे आगे दो २ की वृद्धि करके इक्कीस तक, अयुग्म रूपसेही दश विषमव्यूहोंकी रचना कीजाती है। अर्थात् विषमव्यूहके भी इसतरह दश भेद हैं ॥ २३-२४ ॥

अतः सैन्यानां व्यूहशेषमावापः कार्यः ॥ २५ ॥ रथानां द्वौ त्रिभागावङ्गेष्वावापयेत् ॥ २६ ॥ शेषमुरस्यं स्थापयेत् ॥२७॥ एवं त्रिभागोनो रथानामावापः कार्यः ॥ २८ ॥

यदि इसप्रकार व्यूहरचना करनेके अनन्तर इसमेंसे कुछ सेना बच रहे, तो उसेभी व्यूहके अन्दर इधर उधर डाल देवे। २५ उसके डालनेका प्रकार यह है:—बची हुई सेनाका दो तिहाई हिस्सातो पक्ष कक्षमें डाल देवे ॥ २६ ॥ बाकी एक हिस्सा उरस्यमें सम्मिलित कर देवे ॥ २७ ॥ व्यूहरूपमें खड़ी हुई रथोंकी सेनामें, जो बचे हुए रथ पीछेसे सम्मिलित किये जावें, उनकी तादाद, व्यूहरूपमें खड़ी हुई सेनाके एक तिहाई से कम होनी चाहिये। अर्थात् उसकी बराबर या उससे अधिक सेना कभी भी न मिलानी चाहिये ॥ २८ ॥

तेन हस्तिनामश्वानामावापो व्याख्यातः ॥ २९ ॥ यावदश्वरथद्विपानां युद्धसंबाधनं न कुर्यात्तावदावापः कार्यः ॥ ३० ॥

इसीतरह हाथी और घोड़ोंके मिलानेके सम्बन्धमेंभी समझ लेना चाहिये ॥ २९ ॥ अभिप्राय यह है, कि जब तक युद्धके समय, घोड़े रथ और हाथियोंमें परस्पर भीड़ मालूम न हो, उस समय तक अधिक सेनाको उसमें मिलाते रहना चाहिये। (तिहाई हिस्से आदिका कथनतो केवल ढंग बतलाने के लिये किया गया है ॥ ३० ॥

दण्डबाहुल्यमावापः ॥ ३१ ॥ पत्तिबाहुल्यं प्रत्यावापः ॥ ३२ ॥ एकाङ्गबाहुल्यमन्वावापः ॥ ३३ ॥ दूष्यबाहुल्यमत्यावापः ॥ ३४ ॥

व्यूहरचनासे अतिरिक्त सेनाका शेष रहजाना, तथा उसको फिर व्यूहके अन्दरही मिलादेना 'आवाप' कहाता है ॥ ३१ ॥ केवल पैदल सेनाका इसप्रकार व्यूहरचनाके अन्दर मिलाना 'प्रत्यावाप' कहाता है ॥ ३२ ॥ घोड़े रथ हाथी इन तीनोंमेंसे किसी एक अंगके द्वारा इसप्रकार सेनाको बढ़ाना 'अन्वावाप' कहाता है ॥ ३३ ॥ दूष्य (=राजाके साथ विरोध रखने वाले मुख्य) पुरुषोंके द्वारा इसप्रकार सेनाके बढ़ानेको 'अत्यावाप' कहते हैं ॥३४॥

परावापात्प्रत्यावापादाचतुर्गुणादाष्टगुणादिति वा विभवतः सैन्यानामावापः कार्यः ॥ ३५ ॥ रथव्यूहेन हस्तिव्यूहो व्याख्यातः ॥ ३६ ॥

शत्रु अपनी सेनामें जितना आवाप या प्रत्यावाप करे उससे चौगुनेसे लगाकर अठगुने तक, विजिगीषु अपनी सेनामें आवाप करे। अथवा अपनी शक्तिके अनुसार जितना संभव होसके, उतनेही आवाप आदिके द्वारा अपनी सेनाको बढ़ावे ॥ ३५ ॥ रथोंकी व्यूहरचनाके अनुसारही हाथियोंकी व्यूहरचनाका भी व्याख्यान समझलेना चाहिये ॥ ३६ ॥

व्यामिश्रो वा हस्तिरथाश्वानाम् ॥ ३७ ॥ चक्रान्तयोर्हस्तिनः पार्श्वयोरश्वमुख्या रथा उरस्ये ॥ ३८ ॥ हस्तिनामुरस्यं रथानां कक्षावश्वानां पक्षाविति मध्यभेदी ॥३९॥ विपरीतोऽन्तभेदी ॥४०॥

अथवा हाथी रथ और घोड़ोंको मिलाकर व्यूहरचना कीजावे ॥ ३७ ॥ उस रचना का प्रकार यह है:—सेनाके अन्त अर्थात् सामने दोनों ओर हाथियोंको खड़ा किया जावे; पिछले हिस्सेमें दोनों ओर बढ़िया घोड़ोंको खड़ा किया जावे; और उरस्य अर्थात् मध्यभागमें रथोंको खड़ा किया जावे। (पक्ष स्थान में अर्थात अगले हिस्सेमें दोनों ओर हाथियोंको खड़े करनेके कारण इस व्यूहरचनाका 'पक्षभेदी' भी एक विशेष नाम है) ॥ ३८ ॥ इसी व्यूहरचनाका एक और प्रकार यह भी है:—हाथियोंको मध्यमें, रथोंको पीछेकी ओर, और घोड़ोंको आगेकी ओर रक्खा जावे; इस व्यूहरचनामें हाथियोंको मध्यमें रखनेके कारण, इसका विशेष नाम 'मध्यभेदी' होता है ॥ ३९ ॥ इससे विपरीत व्यूहरचनाका नाम 'अन्तभेदी' होता है। अर्थात् हाथियोंको पीछेकी ओर रखना; मध्यमें घोड़े और आगेकी ओर रथोंको रखना। इसका नाम 'अन्तभेदी' इसी लिये है, कि इस व्यूहमें हाथियोंको अन्त अर्थात् कक्षमें रक्खा जाता है ॥ ४० ॥

हस्तिनामेव तु शुद्धः ॥ ४१ ॥ सांनाह्यानामुरस्यमौपवाह्यानां जघनं व्यालानां कोट्याविति ॥ ४२ ॥

केवल हाथियोंके ही बनाये हुए व्यूहको शुद्ध कहा जाता है, अर्थात् इसमें घोड़े आदिका मिश्रण नहीं होता ॥ ४१ ॥ इन हाथियोंमेंसे जो युद्धके योग्य (=सान्नाह्य) हाथी होवें, उनको उरस्य अर्थात् मध्यभागमें रक्खा जावे। जो हाथी राजाकी सवारी आदि के हों, उनको कक्ष अर्थात् पिछले हिस्सेमें रक्खा जावे। इसी प्रकार जो हाथी दुष्ट या उन्मत्त हों, उनको अगले दोनों हिस्सोंमें नियुक्त किया जावे। यहां तक हाथियोंके शुद्ध व्यूहके सम्बन्धमें निरूपण करदिया गया ॥ ४२ ॥

अश्वव्यूहो वर्मिणामुरस्यं शुद्धानां कक्षपक्षाविति ॥ ४३ ॥ पत्तिव्यूहः पुरस्तादावरणिनः पृष्ठतो धन्विन इति शुद्धाः ॥४४॥

घोड़ोंके शुद्ध व्यूहमें घोड़ोंको निम्न लिखित रीतिसे खड़ा किया जावेः— कवचसे युक्त घोड़ोंको उरस्य अर्थात् मध्यस्थानमें खड़ा किया जावे; और कवच रहित घोड़ोंको पक्ष (सामने की ओर दोनों भागोंमें) तथा कक्षमें (पीछे की ओर दोनों भागोंमें) खड़ा किया जावे ॥ ४३ ॥ इसी तरह पैदल सेनाके शुद्ध व्यूहमें, पैदल सेनाको इस प्रकार खड़ा किया जावेः—कवच पहिनने वाले सिपाहियोंको आगेकी ओर दोनों हिस्सोंमें, और धनुर्धारी सिपाहियोंको पीछेकी ओर दोनों हिस्सोंमें खड़ा किया जावे। (उरस्यमें कैसे सिपाहियों को खड़ा किया जाय, यह इस सूत्रमें निर्देश नहीं किया गया; प्रकरणानुसार यहीं समझना चाहिये, कि अन्य साधारण सिपाहियोंको मध्यभागमें खड़ा किया जावे)। यहां तक हाथी घोड़े तथा पैदल सेनाओंके शुद्ध व्यूहोंका यथाक्रम निरूपण करदिया गया ॥ ४४ ॥

पत्तयः पक्षयोरश्वाः पार्श्वयोर्हस्तिनः पृष्ठतो रथाः पुरस्तात्परव्यूहवशेन वा विपर्यास इति द्व्यङ्गबलविभागः ॥ ४५ ॥ तेन त्र्यङ्गबलविभागो व्याख्यातः ॥ ४६ ॥

मिश्रव्यूहोंमें सेनाके दो २ अंगोंको लेकर इसप्रकार व्यूहरचना कीजासकती हैः—पैदल सिपाहियोंको आगे की ओर दोनों भागोंमें खड़ा किया जावे, तथा घोड़ोंको पिछले दोनों हिस्सोंमें (अथवा हाथियोंको पीछेकी ओर दोनों भागोंमें, और रथोंको आगे की ओर। अथवा शत्रु की व्यूहरचनाके अनुकूल (अर्थात् जिस तरह की व्यूहरचना करनेसे शत्रुका मुकाबला अच्छी तरह किया जासके, ऐसा) इसमें विपर्यय कर लेवे। इस तरह सेनाके दो

अंगों को लेकर तीन प्रकारका व्यूहविभाग किया जासकता है ॥ ४५ ॥ इसी के अनुसार सेनाके तीन अंगों को लेकर भी व्यूहरचना का विभाग समझ लेना चाहिये। यहां तक पक्ष कक्ष तथा उरस्योंके रूपमें सेना की संख्याके अनुसार व्यूहविभाग का वर्णन कर दिया गया ॥ ४६ ॥

दण्डसंपत्सारबलं पुंसाम् ॥ ४७ ॥ हस्त्यश्वयोर्विशेषः-कुलं जातिः सत्त्वं वयःस्थता प्राणो वर्ष्म जवस्तेजः शिल्पं स्थैर्यमुदग्रता विधेयत्वं सुव्यञ्जनाचारतेति ॥ ४८ ॥

अब सार और फल्गु सेना का विभाग किस प्रकार करना चाहिये, इसका निरूपण किया जायगा:—जो पैदल सेना पितृपैतामह क्रमसे लगातार चली आने वाली, नित्य तथा वशमें रहने वाली हो, उसको सारबल अर्थात् सारभूत सेना कहा जाता है ॥ ४७ ॥ हाथी और घोड़ोंमें इतना और विशेष समझना चाहिये:-कुल, जाति, धीरता, कार्य करने योग्य आयु, शारीरिकबल, आवश्यक ऊंचाई और चौड़ाई आदि (= वर्ष्म), वेग, पराक्रम (=अथवा तिरस्कार का न सहना), सुशिक्षा (युद्ध सम्बन्धी शिक्षाओं का होना) स्थिरता (अर्थात् प्रहार होने परभी अपने कार्यसे न हटना), उदग्रता (सदा-ऊपर को मुंह उठाकर रखना), सवार की आज्ञामें रहना, अन्य शुभलक्षण और शुभचेष्टाओंसे युक्त होना, इत्यादि गुणोंसे युक्त हाथी और घोड़े 'सारबल समझे जाते हैं ॥ ४८ ॥

पत्त्यश्वरथद्विपानाम् सारत्रिभागमुरस्यं स्थापयेत् ॥ ४९ ॥ द्वौ त्रिभागौ कक्षं पक्षं चोभयतः ॥ ५० ॥ अनुलोमनुसारम् ॥ ५१ ॥ प्रतिलोमं तृतीयसारम् ॥ ५२ ॥ फल्गु प्रतिलोमम् ॥ ५३ ॥ एवं सर्वमुपयोगं गमयेत् ॥ ५४ ॥

पैदल घोड़े रथ तथा हाथियोंके सारभूत बलके एक तिहाई हिस्से को मध्यभागमें स्थापित किया जावे ॥४९॥ बाकी दो तिहाई हिस्सों को दोनों ओर पक्षमें और दोनों ओर कक्षमें नियुक्त किया जावे ॥५०॥ यह सबसे उत्तम सेना के, खड़े करने का प्रकार बताया गया, जो सेना उससे कुछ न्यूनशक्ति रखती हो, उसको 'अनुसार' कहाजाता है। ऐसी सेनाको सारबलके पीछे की ओर खड़ा करे ॥ ५१ ॥ इससे भी कुछ न्यून शक्ति वाली 'तृतीयसार' सेनाको पहिली सेनासे उलटा अर्थात् सारबलके आगे की ओर खड़ा करे। यह सारबल के खड़े करने का प्रकार बताया गया ॥ ५२ ॥ फल्गुबलको (अर्थात् जो सेना तृतीयसारसे भी निर्बल हो, या जिसमें पितृपैतामह, नित्य, वश्य, आदि गुण

न हों, उसको फल्गुबल कहा जाता है, ऐसे बलको) तृतीयसार सेनाके भी आगे खड़ा किया जावे ॥ ५३ ॥ इसप्रकार सब तरह की सेनाओंको उपयोग में लावे ॥ ५४ ॥

फल्गुबलमन्तेष्ववधाय वेगाभिहूतो भवति ॥ ५५ ॥ सारबलमग्रतः कृत्वा कोटीष्वनुसारं कुर्यात् ॥ ५६ ॥ जघने तृतीयसारं, मध्ये फल्गुबलमेतत्सहिष्णु भवति ॥ ५७ ॥

फल्गुबलको पक्षस्थानमें खड़ा करके लड़ानेपर, शत्रुके आक्रमणका वेग उसीपर शान्त होजाता है। तात्पर्य यह है, कि यदि फल्गुबलका नाश भी होजाय, तो उससे इतनी हानि नहीं, जितनी कि सारबलके नाश होनेसे होसकती है। इसलिये फल्गुबलको पक्षस्थानमें ही रक्खे ॥ ५५ ॥ यदि सारबलको आगे कियाजावे, और कोटी अर्थात् किनारोंमें 'अनुसार' बलको नियुक्त कियाजावे ॥ ५६ ॥ पीछेकी ओर कक्षभागमें 'तृतीयसार' सेनाको खड़ा कियाजाये, तथा मध्यमें फल्गुसेनाको खड़ा किया जावे। इसप्रकार सब सेनाओंको खड़ा करके भी एक व्यूहकी रचना कीजाती है। यह व्यूह, शत्रुके आक्रमणका सहन करनेवाला होता है। अर्थात् शत्रुके आक्रमणसे इस प्रकारके व्यूह में खड़ीहुई सेना का पराजय नहीं हो सकता ॥ ५७ ॥

व्यूहं तु स्थापयित्वा पक्षकक्ष्योरस्यानामेकेन द्वाभ्यां वा प्रहरेत् ॥ ५८ ॥ शेषैः प्रतिगृह्णीयात् ॥ ५९ ॥

पक्ष कक्ष तथा उरस्य स्थानोंमें पहिले व्यूहकी ठीक २ स्थापना करके; फिर सेनाके एक अंगके द्वारा अथवा दो अंगोंके द्वारा शत्रुपर आक्रमण करे ॥ ५८ ॥ और सेना के शेष अंगों से, शत्रु के आक्रमण को रोके ॥ ५९ ॥

यत्परस्य दुर्बलं वीतहस्त्यश्वं दूष्यामात्यकं कृतोपजापं वा तत्प्रभूतसारेणाभिहन्यात् ॥ ६० ॥ यद्वा परस्य सारिष्ठं तद्द्विगुणसारेणाभिहन्यात् ॥ ६१ ॥ यदङ्गमल्पसारमात्मनस्तद्बहुनोपचिनुयात् ॥ ६२ ॥ यतः परस्यापचयस्ततोऽभ्याशे व्यूहेत यतो वा भयं स्यात् ॥ ६३ ॥

शत्रुकी जो सेना दुर्बल, हाथी घोड़ोंसे रहित, दूष्य अमात्योंसे युक्त तथा उपजाप कीहुई (अर्थात् भेदडालीहुई) हो, उसको बहुतसी सारभूत

सेनाके द्वारा नष्ट कर डाले ॥ ६० ॥ और शत्रुकी जो सेना सारभूत हो, उसको अपनी दुगनी सारभूत सेनाके द्वारा नष्ट करडाले ॥ ६१ ॥ अपनी सेनाका जो अंग अल्पसार (=थोड़ी शक्ति वाला) हो, उसको बहुतसी सेनाके साथ युक्त करदे। अर्थात् उसकी सहायताके लिये, अपनी बहुतसी सेना उसके साथ लगादे ॥ ६२ ॥ जिस ओरसे शत्रुकी सेनाका अपचय (क्षय=विनाश) होरहा हो, उस ही के समीप अपनी सेनाकी व्यूह रचना करे। तात्पर्य यह है, कि शत्रु जिस ओरसे दुर्बल हो, उस ओरसे ही उसपर आक्रमण करे। अथवा जिस ओरसे अपने ऊपर आक्रमण होनेका भय हो, उस ओरसे व्यूहरचना करे ॥ ६३ ॥

अभिसृतं परिसृतमतिसृतमपसृतमुन्मथ्यावधानं वलयो गोमूत्रिका मण्डलं प्रकीर्णिका व्यावृत्तपृष्ठमनुवंशमग्रतः पार्श्वाभ्यां पृष्ठतो भग्नरक्षा भग्नानुपात इत्यश्वयुद्धानि ॥ ६४ ॥

अब इसके आगे घोड़े हाथी रथ तथा पैदल सेनाओंके युद्धोंका निरूपण किया जायगा। सबसे पहिले घोड़ोंके युद्धोंका निरूपण करते हैं:- अभिसृत (अपनी सेनासे शत्रुकी सेनाकी ओर जाना), परिसृत (शत्रु की सेनाके चारों ओर चोट पहुंचाते हुए घूमना), अतिसृत (शत्रुकी सेनाको बीचसे छिन्न भिन्न करके सुईकी तरह चले जाना), अपसृत (उसी मार्गसे फिर दुबारा निकलना), बहुत से घोड़ोंके द्वारा शत्रुकी सेनाको उन्माथित करके फिर उनका इकट्ठा होजाना, दो ओरसे सुईके समान मार्ग बनाकर जाना, गोमूत्रिका (गौ के मूत्रकी तरह वक्रगतिसे जाना), मण्डल (शत्रु की सेनाके किसी एक देशको काटकर चारों ओरसे उसे घेरलेना), प्रकीर्णिका (सब ही चालोंको मिलाकर प्रयोग करना), अनुवंश (शत्रुसेनाके अभिमुख हुई २ अपनी सेनाका अनुवर्त्तन करना), नष्ट होतीहुई अपनी सेनाकी, आगे पीछे तथा इधर उधरसे घूमकर रक्षा करना (=भग्नरक्षा), छिन्न भिन्न हुई २ शत्रुकी सेनाका पीछा करना; ये तरह प्रकारके घोड़ोंके युद्ध होते हैं ॥ ६४ ॥

प्रकीर्णिकावर्जान्येतान्येव चतुर्णामङ्गानां व्यस्तसमस्तानां वा घातः ॥ ६५ ॥ पक्षकक्षोरस्यानां च प्रभञ्जनमवस्कन्दः सौप्तिकं चेति हस्तियुद्धानि ॥ ६६ ॥

प्रकीर्णिकाको छोड़कर घोड़ोंके शेष सब युद्ध, बिखरे हुए या इकट्ठे हुए सेनाके चारों अंगोंका हनन करना ॥ ६५ ॥ पक्ष कक्ष तथा उरस्यमें

खड़ी हुई सेनाका मर्दन करना, शत्रुकी सेनाकी कहींसे निर्बलता देखकर उसपर प्रहार करना, और सोते शत्रुओंको मार डालना; ये सब हाथियोंके युद्ध होते हैं ॥ ६६ ॥

उन्मथ्यावधानवर्जान्येतान्येव स्वभूमावभियानापयान-स्थितयुद्धानीति रथयुद्धानि ॥ ६७ ॥ सर्वदेशकालप्रहरणमुपांशु-दण्डश्चेति पत्तियुद्धानि ॥ ६८ ॥

उन्मथ्यावधान (बहुतसे हाथियोंके द्वारा शत्रुकी सेनाको उन्मथित करके फिर उनका इकट्ठा हो जाना) को छोड़कर शेष सब हाथियोंके युद्ध, अपने योग्य भूमिमें ठहरकर शत्रुपर आक्रमण करना, शत्रु सेनाको हराकर भाग जाना, अपनी रक्षा करके बैठे हुए शत्रुके चारों ओर घेरा डालकर उसके साथ युद्ध करना; ये सब रथोंके युद्ध कहाते हैं ॥ ६७ ॥ सब देश और सब कालोंमें हथियारोंका धारण करना, और चुपचाप शत्रुसेनाका नाश करना; ये सब पैदल सेनाओंके युद्ध होते हैं ॥ ६८ ॥

एतेन विधिना व्यूहानोजान्युग्मांश्च कारयेत् ।
विभवो यावदङ्गानां चतुर्णां सदृशो भवेत् ॥ ६९ ॥
द्वे शते धनुषां गत्वा राजा तिष्ठेत्प्रतिग्रहे ।
भिन्नसंघातनार्थं तु न युध्येताप्रतिग्रहः ॥ ७० ॥

इति सांग्रामिके दशमे ऽधिकरणे पक्षकक्षोरस्यानां बलाग्रतो व्यूहविभागः, सारफल्गुबलविभागः, पत्त्यश्वरथहस्तियुद्धानि च पञ्चमो ऽध्यायः ॥ ५ ॥
आदितस्त्रयस्त्रिंशच्छतः ॥ ११३ ॥

इस विधिसे विजिगीषु, ओज (अयुग्म) तथा युग्म व्यूहोंकी रचना करे। अपने पास हाथी घोडे रथ तथा पैदल, इन सेनाके चारों अंगोंकी जितनी सम्पत्ति हो, उसहीके अनुकूल अपने व्यूहोंकी रचना करे ॥ ६९ ॥ युद्ध प्रारम्भ हो जानेपर राजा सेनाके पिछले हिस्सेमें दो सौ धनुषके फासले पर ठहरे। ऐसा करनेसे शत्रुके द्वारा छिन्न भिन्न की हुई अपनी सेनाको राजा फिर इकट्ठी कर सकता है। इसलिये सेनाके पृष्ठ भागका आश्रय लिये बिना राजा कदापि युद्ध न करे। (किसी पुस्तकमें 'भिन्नसंघातनार्थं तु' के स्थानपर 'भिन्नसंघातनं तस्मात्' भी पाठ है। अर्थमें कोई भेद नहीं) ॥ ७० ॥

सांग्रामिक दशम अधिकरणमें पांचवां अध्याय समाप्त।

छठा अध्याय

१५८, १५९ प्रकरण

दण्डव्यूह, भोगव्यूह, मण्डलव्यूह, असंहत-व्यूह; इनके प्रकृतिव्यूहों और विकृति-व्यूहोंकी रचना; तथा उपर्युक्त दण्डादि-व्यूहोंके प्रतिव्यूहकी स्थापना।

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं। पहिले प्रकरणमें दण्डव्यूह आदि चार प्रकारके व्यूहोंकी रचनाका प्रकार बताया जायगा। दूसरे प्रकरणमें इन उपर्युक्त व्यूहोंके मुकाबलेके लिये दूसरे व्यूहोंकी स्थापनाका कथन किया जायगा।

पक्षावुरस्यं प्रतिग्रह इत्यौशनसो व्यूहविभागः ॥ १ ॥ पक्षौ कक्षावुरस्यं प्रतिग्रह इति बार्हस्पत्यः ॥ २ ॥

पक्ष (अगले दोनों ओरके हिस्से), उरस्य (मध्यभाग) और प्रतिग्रह (पिछला हिस्सा) ये चार ही अवयव व्यूहमें होते हैं, इस प्रकारका व्यूहविभाग उशना (शुक्र) आचार्यने किया है ॥ १ ॥ पक्ष, कक्ष (पिछले दोनों ओरके दो हिस्से), उरस्य और प्रतिग्रह ये छः अवयव व्यूहमें होने चाहियें; इसप्रकारका व्यूहविभाग बृहस्पति आचार्यने किया है ॥ २ ॥

प्रपक्षकक्षोरस्या उभयोः दण्डभोगमण्डलासंहताः प्रकृतिव्यूहाः ॥ ३ ॥ तत्र तिर्यग्वृत्तिर्दण्डः ॥ ४ ॥ समस्तानामन्वावृत्तिर्भोगः ॥ ५ ॥ सरतां सर्वतोवृत्तिः मण्डलः ॥ ६ ॥ स्थितानां पृथगनीकवृत्तिरसंहतः ॥ ७ ॥

शुक्र और बृहस्पति दोनों ही आचार्योंके मतमें, पृथक् २ पक्ष कक्ष तथा उरस्य स्थानोंमें खड़ी होनेवाली सेनाके दण्ड भाग मण्डल तथा असंहत नामक चार प्रकारके व्यूह होते हैं। ये व्यूह प्रकृतिव्यूहके नामसे कहे जाते हैं ॥ ३ ॥ इनमेंसे, सेनाको तिरछे खड़ा करके जो व्यूह बनाया जाय, उसे 'दण्डव्यूह' कहते हैं ॥ ४ ॥ शुक्रके मतसे उपर्युक्त चार अवयवों, और बृहस्पतिके मतसे उपर्युक्त छः अवयवोंका लगातार कई बार घुमाव डालकर जो व्यूह बनाया जाय, उसे 'भोगव्यूह' कहते हैं ॥ ५ ॥ शत्रुकी सेनाकी ओर

जाती हुई सेनाओंका चारों ओरसे घिरकर शत्रुपर आक्रमण करना 'मण्डल' नामक व्यूह होता है ॥ ६ ॥ शत्रुकी ओर चलनेसे पहिले, चार या छः ठहरी हुई सेनाओंको, अपने आपको एक दूसरे से पृथक् २ दिखलाते हुये शत्रुपर आक्रमण करना 'असंहत' नामक व्यूह कहाता है ॥ ७ ॥

पक्षकक्षोरस्यैः समं वर्तमानो दण्डः ॥ ८ ॥ स कक्षाभिक्रान्तः प्रदरः ॥ ९ ॥ स एव पक्षाभ्यां प्रतिक्रान्तो दृढकः ॥ १० ॥ स एवातिक्रान्तः पक्षाभ्यामसह्यः ॥ ११ ॥ पक्षाववस्थाप्योरस्याभिक्रान्तः श्येनः ॥ १२ ॥ विपर्यये चापं चापकुक्षिः प्रतिष्ठः सुप्रतिष्ठश्च ॥ १३ ॥

ऊपर जो लक्षण व्यूहोंके किये गये हैं, वे शुक्र और बृहस्पतिके मतसे किये गये हैं; अब व्यूहके कक्ष अवयवको न मानने वाले शुक्राचार्यके मतके विरुद्ध, दण्ड आदि व्यूहोंका अपने मतके अनुकूल लक्षण किया जाता है:— कक्ष पक्ष तथा उरस्य इन पांचों बराबर २ सेनाओंके द्वारा, स्थानगमनादि पूर्वक ठीक २ किया जाता हुआ व्यूह 'दण्डव्यूह' कहाता है। यह दण्डव्यूह, प्रकृतिव्यूह होता है; इसके विकृतिव्यूहोंका अब निरूपण करते हैं:—॥ ८ ॥ जब कक्ष भागोंकी ओरसे शत्रुकी सेनापर आक्रमण कियाजाय, तो उस ही दण्डव्यूहको 'प्रदर' नामक व्यूह कहाजाता है ॥ ९ ॥ जब कि पक्षस्थित सेना मुड़कर, शत्रुकी सेनापर वारकरे, तब इस अवस्थामें वह दण्डव्यूह ही 'दृढक' नामक व्यूह कहाता है ॥ १० ॥ पक्षस्थित सेना जब अत्यधिक वेगसे शत्रुकी सेनामें घुसजावे, तब वह दृढक व्यूह 'असह्य' नामक व्यूह कहाता है ॥ ११ ॥ दोनों पक्षोंको अपने २ स्थानपर स्थापित करके उरस्यके द्वारा शत्रुकी सेनाकी ओर आक्रमण करना 'श्येन' नामक व्यूह कहा जाता है ॥ १२ ॥ इन उपर्युक्त प्रदर आदि चारों व्यूहोंसे सर्वथा विपरीत व्यूह यथाक्रम चाप चापकुक्षि प्रतिष्ठ और सुप्रतिष्ठ कहे जाते हैं ॥ १३ ॥

चापपक्षः सञ्जयः ॥ १४ ॥ स एवोरस्यातिक्रान्तो विजयः ॥ १५ ॥ स्थूलकर्णपक्षः स्थूलकर्णः ॥ १६ ॥ द्विगुणपक्षस्थूलो विशालविजयः ॥ १७ ॥ त्र्यभिक्रान्तपक्षश्चमूमुखः ॥ १८ ॥ विपर्यये झषास्यः ॥ १९ ॥ ऊर्ध्वराजिर्दण्डः सूची ॥ २० ॥ द्वौ दण्डौ वलयः ॥२१॥ चत्वारो दुर्जय इति दण्डव्यूहाः ॥२२॥

जिस व्यूहके पक्ष चापके समान हों, वह 'सञ्जय' नामक व्यूह होता है ॥ १४ ॥ जब कि उरस्यके द्वारा शत्रुपर आक्रमण करके उसकी सेनाके अन्दर प्रवेश करदिया जावे, उस समय वह दण्डव्यूह, 'विजय' नामक व्यूह कहाता है ॥ १५ ॥ बड़े कानके समान, जिस व्यूहके पक्ष हों, वह 'स्थूलकर्ण' नामक व्यूह कहाता है ॥ १६ ॥ विजय व्यूहकी अपेक्षा पक्षस्थानोंमें जो दुगना बड़ा हो, वह 'विशालविजय' नामक व्यूह कहाता है ॥ १७ ॥ जिस व्यूहके पक्ष, दोनों कक्ष और उरस्य तीनोंकी बराबर हों, वह 'चमूमुख' नामक व्यूह कहाता है ॥ १८ ॥ और इससे विपरीत अर्थात् जिस व्यूहके कक्ष, दोनों पक्ष और उरस्यकी बराबर हों, वह 'झषास्य' नामक व्यूह कहाजाता है ॥ १९ जिस व्यूहमें शत्रुकी ओरको ऊंचा होकर सेना आक्रमण करे, वह दण्डव्यूह 'सूची व्यूह' कहाजाता है ॥ २० ॥ जब कि पक्ष कक्ष तथा उरस्य स्थानोंमें दो दण्डव्यूहोंको तिरछा खड़ा करदिया जावे, तब उसको 'वलय' कहाजाता है ॥ २१ ॥ यदि इसी प्रकार चार दण्डव्यूह खड़े करदिये जावें तब उसको 'दुर्जय' कहते हैं । यहांतक दण्डव्यूहोंका निरूपण करदिया गया ॥२२॥

पक्षकक्षोरस्यैर्विषमं वर्तमानो भोगः, स सर्पसारी गोमूत्रिका वा ॥ २३ ॥ स युग्मोरस्यो दण्डपक्षः शकटः ॥ २४ ॥ विपर्यये मकरः ॥ २५ ॥ हस्त्यश्वरथैर्व्यतिकीर्णः शकटः पारिपतन्तक इति भोगव्यूहाः ॥ २६ ॥

कक्ष पक्ष आदि स्थानोंके द्वारा विषम संख्यामें रचा जाता हुआ व्यूह 'भोगव्यूह' कहाता है । पक्ष आदिमें समानता रखनेवाला 'दण्डव्यूह' पहिले कहा जाचुका है । इस व्यूहमें सर्पके समान कुटिल स्थिति होनेके कारण पक्ष आदि स्थानोंमें सेनाओंकी तादाद न्यूनाधिक होती है; इसीलिये इसको 'भोगव्यूह' कहाजाता है । वह भोगव्यूह या तो सर्पके समान इकट्ठा एक रूपमें ही खड़ा किया जाता है, या गोमूत्रके समान विविध रूपोंमें खड़ा किया जाता है; इसलिये भोगव्यूहके ये दो भेद होते हैं—एक सर्पसारी, दूसरा गोमूत्रिका ॥ २३ ॥ वही भोगव्यूह उस समय 'शकट' नामक व्यूह कहाता है, जबकि उसका अग्रभाग युग्म अर्थात् दो भागोंमें विभक्त, दण्डके आकारके समान हो, और दोनों पक्ष एक २ दण्डके समान स्थित होवें ॥ २४ ॥ इससे विपरीत होनेपर उसही को 'मकरव्यूह' कहाजाता है ॥ २५ ॥ हाथी घोड़े और रथोंसे भरेहुए (=युक्त) शकट व्यूहको ही 'पारिपतन्तक' व्यूह कहा जाता है । यहांतक भोगव्यूहोंका निरूपण करदिया गया ॥ २६ ॥

पक्षकक्षोरस्यानामेकीभावे मण्डलः ॥ २७ ॥ स सर्वतोमुखः सर्वतोभद्रो ऽष्टानीको दुर्जय इति मण्डलव्यूहाः ॥ २८ ॥

जिस व्यूहमें कक्ष पक्ष और उरस्य इकट्ठे मिलजावें, उसको 'मण्डलव्यूह' कहते हैं ॥ २७ ॥ जबकि चारों ओरसे शत्रुके ऊपर आक्रमण किया जाय, तब उस मण्डलव्यूहको 'सर्वतोभद्र' व्यूह कहा जाता है। इसी प्रकार जब उसमें आठ सेना मिलकर (दो उरस्यमें, दो दो दोनों पक्षस्थानोंमें और दो दोनों कक्ष स्थानोंमें) कामकरें, अर्थात् शत्रुपर एकसाथ आक्रमण करें, तब उसे 'दुर्जय' नामक व्यूह कहाजाता है। यहांतक मण्डलव्यूहोंका निरूपण करदिया गया ॥ २८ ॥

पक्षकक्षोरस्यानामसंहतादसंहतः ॥ २९ ॥ स पञ्चानीकानामाकृतिस्थापनाद्वज्रो गोधा वा ॥ ३० ॥ चतुर्णामुद्यानकः काकपदी वा ॥ ३१ ॥ त्रयाणामर्धचन्द्रिकः कर्कटकशृङ्गी वेत्यसंहतव्यूहाः ॥ ३२ ॥

पक्ष आदि पांचों स्थानोंमें स्थित सेनाओंके, शत्रुपर आक्रमण करनेमें असंहत (आपसमें न मिलना) होनेसे 'असंहत' नामक व्यूह कहाजाता है ॥२९॥ यह दो प्रकारका होता है, एक 'वज्र' दूसरा 'गोधा'। जबकि पक्ष आदि पांचों स्थानोंकी सेनाओंको वज्रके आकारमें खड़ा किया जावे, तब उसे 'वज्र' और जब उन्हें गोधा (गोह=एक जलका जानवर) के आकारमें खड़ा किया जावे, तब 'गोधा' कहते हैं ॥ ३० ॥ जबकि दोनों पक्ष उरस्य तथा प्रतिग्रह इन चार स्थानोंमें ही उस असंहत सेनाको खड़ा किया जावे, तब उस असंहत व्यूहको 'उद्यानक' अथवा 'काकपदी' कहाजाता है ॥ ३१ ॥ जब दोनों पक्ष, और उरस्य तथा प्रतिग्रह इनमेंसे कोई एक, इन तीन स्थानोंमें ही सेनाको स्थापित किया जाता है, तब उस व्यूहको 'अर्धचन्द्रिक' अथवा 'कर्कटकशृङ्गी' कहा जाता है। यहां तक असंहतव्यूहों का निरूपण कर दिया गया ॥ ३२ ॥

रथोरस्यो हस्तिकक्षोऽश्वपृष्ठोऽरिष्टः ॥ ३३ ॥ पत्तयोऽश्वा रथा हस्तिनश्चानुपृष्ठमचलः ॥ ३४ ॥ हस्तिनोऽश्वा रथः पत्तयश्चानुपृष्ठमप्रतिहतः ॥ ३५ ॥

इन उपर्युक्त भेदोंसे अतिरिक्त, व्यूहोंके निम्नलिखित और भी तीन भेद हैं:—जिस व्यूहके मध्यभागमें रथ हों, कक्ष स्थानोंमें हाथी, पिछले

हिस्सेमें (अर्थात् प्रतिग्रह स्थानमें) घोड़े और परिशेष होनेसे पक्ष स्थानोंमें पैदल होवें, उस व्यूहको 'अरिष्ट' कहते हैं। क्योंकि इसमें किसी तरहका अशुभ नहीं होता ॥ ३३ ॥ और जिस व्यूहमें पैदल पक्ष स्थानोंमें, घोड़े उरस्य स्थानमें, रथ कक्ष स्थानोंमें और हाथी प्रतिग्रह स्थानमें खड़े किये जावें, उस व्यूहको 'अचल' कहते हैं ॥ ३४ ॥ तथा जिस व्यूहमें हाथी पक्ष स्थानोंमें, घोड़े उरस्य स्थानमें, रथ कक्ष स्थानोंमें और पैदल सेना प्रतिग्रह स्थानमें नियुक्त हों, उस व्यूहको 'अप्रतिहत' कहा जाता है ॥ ३५ ॥

तेषां प्रदरं दृढकेन घातयेत् ॥ ३६ ॥ दृढकमसह्येन ॥३७॥ श्येनं चापेन ॥ ३८ ॥ प्रतिष्ठं सुप्रतिष्ठेन ॥ ३९ ॥ संजयं विजयेन ॥ ४० ॥ स्थूलकर्णं विशालविजयेन ॥ ४१ ॥ पारिपतन्तकं सर्वतोभद्रेण ॥ ४२ ॥

इसके पहिले सब तरहके व्यूहोंका निरूपण करदिया गया। अब उनका मुकाबला करनेवाले व्यूहोंका निरूपण किया जायगा; अर्थात् किस २ व्यूहका कौन २ से व्यूहसे प्रतीकार करना चाहिये, इस बातका निरूपण किया जायगा:—उन व्यूहोंमें से 'प्रदर' नामक व्यूहको दृढक व्यूहसे नष्टकरे ॥ ३६ ॥ इसीप्रकार दृढक व्यूहको असह्य व्यूहके द्वारा नष्टकरे ॥ ३७ ॥ श्येनव्यूहको चापव्यूहके द्वारा; ॥ ३८ ॥ प्रतिष्ठ व्यूहको सुप्रतिष्ठ व्यूहके द्वारा; ॥ ३९ ॥ संजय व्यूहको विजय व्यूहके द्वारा; ॥ ४० ॥ स्थूलकर्ण व्यूहको विशालविजय व्यूहके द्वारा; ॥ ४१ ॥ पारिपतन्तक व्यूहको सर्वतोभद्र व्यूहके द्वारा ॥ ४२ ॥

दुर्जयेन सर्वान्प्रतिव्यूहेत ॥ ४३ ॥ पत्त्यश्वरथद्विपानां पूर्वं पूर्वमुत्तरेण घातयेत् ॥ ४४ ॥ हीनाङ्गमधिकाङ्गेन चेति ॥ ४५ ॥

और दुर्जय व्यूहके द्वारा सब ही व्यूहोंको नष्टकरे ॥ ४३ ॥ पैदल घोड़ा रथ और हाथी इन सेनाके अंगोंमें से पहिले २ अंगको, अगले २ अंगसे नष्टकरे ॥ ४४ ॥ और हीन अंगको (अर्थात् शक्ति आदि से रहित अंगको) अधिक अंगसे (अर्थात् शक्तिसंपन्न अंगके द्वारा) नष्ट करे ॥ ४५ ॥

अङ्गदशकस्यैकः पतिः पदिकः ॥ ४६ ॥ पदिकदशकस्यैकः सेनापतिः ॥ ४७ ॥ तद्दशकस्यैको नायक इति ॥ ४८ ॥

अब सेना संचालक अधिकारियोंके सम्बन्धमें निरूपण किया जाता है:—दश सेनाङ्गोंके एक पति अर्थात् अधिकारीको 'पादिक' कहते हैं। इसका अभिप्राय यों समझना चाहिये:—सेनाङ्ग चार प्रकारके होते हैं, परन्तु यहांपर

प्रधानभूत रथ और हाथी दो ही अंगोंका ग्रहण करना चाहिये। इसलिये दश रथ और दश हाथियोंका जो एक अधिकारी हो, उसीको 'पदिक' कहा जाता है। प्रत्येक रथ या हाथीके साथ कितने घोड़े और पैदल होते हैं, इसको जाननेके लिये देखोः–अधि० १०, अध्या० ५, सूत्र १०-१२ ॥ ४६ ॥ इसीतरहके दस पदिक अधिकारियोंके ऊपर एक सेनापति होता है ॥ ४७ ॥ और दस सेनापति अधिकारियोंके ऊपर एक नायक होता है ॥ ४८ ॥

स तूर्यघोषध्वजपताकाभिर्व्यूहाङ्गानां संज्ञाः स्थापयेत् ॥४९॥ अङ्गविभागे संघाते स्थाने गमने व्यावर्तने प्रहरणे च ॥ ५० ॥ समे व्यूहे देशकालयोगात्सिद्धिः ॥ ५१ ॥

वह सबसे प्रधान अधिकारी नायक, बाजोंके विशेष २ शब्दोंके द्वारा अथवा ध्वजा पताकाओंके द्वारा, व्यूहमें खड़ी हुई सेनाओंके व्यवहारके लिये विशेष संज्ञाओं (चिन्हों=इशारों) की स्थापना करे ॥ ४९ ॥ इन संज्ञाओंको सेनाके निम्नलिखित कार्योंमें काम लाया जावेः—व्यूहमें खड़ी हुई सेनाके अंगोंको अवसर पड़नेपर विभक्त करनेमें, बिखरी हुई सेनाको इकट्ठी करनेमें, चलती हुई सेनाको रोकनेमें, खड़ी हुई सेनाको चलानेमें, आक्रमण करती हुई सेनाको लौटानेमें, और यथावसर आक्रमण करनेमें, इन इशारोंको काममें लाया जावे ॥ ५० ॥ बराबरकी व्यूहरचना होनेपर अर्थात् शत्रुसेना और अपनी सेनाकी समानता होनेपर देश (सम विषम आदि) काल (रात्रि दिन आदि) और सार (शौर्य विक्रम आदि) के योग (सम्बन्ध) से ही सिद्धि प्राप्त हो सकती है। अर्थात् जिसको देशकाल आदिकी अनुकूलता होगी, वही उस युद्धमें विजय प्राप्त कर सकेगा ॥ ५१ ॥

दण्डैरुपनिषद्योगैस्तीक्ष्णैर्व्यासक्तघातिभिः ।
मायाभिर्दैवसंयोगैः शकटैर्हस्तिभूषणैः ॥ ५२ ॥

यन्त्र (जामदग्न्य आदि), उपनिषद्योग (औपनिषदिक प्रकरणमें बताये हुए विष आदिके प्रयोग), छिपकर या मिलकर मारनेवाले तीक्ष्ण पुरुषों, छल कपट, राजाके भाग्यके कथन, और हाथीके योग्य वेषोंसे ढके हुए रथोंके द्वारा शत्रुको बेचैन किया जावे। (इसका अन्वय ५४ वें श्लोकमें समझना चाहिये; इसी तरह अगले श्लोक का भी) ॥ ५२ ॥

दूष्यप्रकोपैर्गोयूथैः स्कन्धावारप्रदीपनैः ।
कोटीजघनघातैर्वा दूतव्यञ्जनभेदनैः ॥ ५३ ॥

शत्रुके दूष्य पुरुषोंमें कोप उत्पन्न करने, आगे गौओंका झुण्ड खड़ा करने, छावनीमें आग लगा देने, सेनाके आगे या पीछेके हिस्सोंमें छापा मारने, दूतके वेषमें गुप्तचर पुरुषोंको शत्रुकी सेनामें भेजकर उनमें भेद डालनेसे भी शत्रुको विचलित करे ॥ ५३ ॥

दुर्गं दग्धं हृतं वा ते कोपः कुल्यः समुत्थितः ।
शत्रुराटविको वेति परस्योद्वेगमाचरेत् ॥ ५४ ॥

तथा 'तेरे दुर्गमें आग लगा दी गई है, तेरे दुर्गमें लूट मच गई है अर्थात् तेरे दुर्गको अधीन कर लिया गया है, तेरे कुलका ही कोई पुरुष तेरे विरुद्ध उठ खड़ा हुआ है, तेरा सामन्त शत्रु युद्ध करनेके लिए तैयार हो गया है, अथवा तेरा आटविक शत्रु तेरे विरुद्ध संग्राम करनेके लिये सन्नद्ध हो चुका है' इन बातोंको कहकर भी विजिगीषु, शत्रुको उद्विग्न (बेचैन=खिन्न) करे । क्योंकि व्यग्र हो जानेसे शत्रु शीघ्र ही वशमें आ जाता है ॥ ५४ ॥

एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुः क्षिप्तो धनुष्मता ।
प्राज्ञेन तु मतिः क्षिप्ता हन्याद्गर्भगतानपि ॥ ५५ ॥

इति सांग्रामिके दशमे अधिकरणे दण्डभोगमण्डलासंहतव्यूहव्यूहनं, तस्य प्रतिव्यूहस्थापनं च षष्ठो ऽध्यायः ॥ ६ ॥ आदितश्चतुस्त्रिंशच्छतः ॥ १३४ ॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य सांग्रामिकं
दशममधिकरणं समाप्तम् ॥ १० ॥

युद्धसे मन्त्र बलवान् होता है, इस बातको अन्तिम श्लोकसे उपसंहार करते हुए कहते हैं:—धनुर्धारीके धनुषसे छोड़ा हुआ बाण, सम्भव है किसी एक भी पुरुषको मारे या न मारे । परन्तु बुद्धिमान व्यक्तिके द्वारा किया हुआ बुद्धिका प्रयोग, गर्भस्थित प्राणियोंको भी नष्ट कर देता है । इसलिये युद्ध की अपेक्षा बुद्धिको ही अधिक शक्तिसम्पन्न समझना चाहिये ॥५५॥

सांग्रामिक दशम अधिकरणमें छठा अध्याय समाप्त ।

सांग्रामिक दशम अधिकरण समाप्त ।

संघवृत्त एकादश अधिकरण

पहिला अध्याय

१६०–१६१ प्रकरण ।

भेदके प्रयोग और उपांशुदण्ड ।

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं। पहिले प्रकरणमें भेदक (भेद डालने वाले=संघका विश्लेष करने वाले) उपायोंके प्रयोगोंका निरूपण किया जायगा। दूसरे प्रकरणमें उपांशुदण्ड (=छिपकर एकान्त में किसीका वध करादेना इस) का निरूपण किया जायगा।

संघलाभो दण्डमित्रलाभानामुत्तमः ॥ १ ॥ संघा हि संहतत्वादधृष्याः परेषाम् ॥ २ ॥ताननुगुणान्भुञ्जीत सामदानाभ्याम् ॥ ३ ॥ विगुणान्भेददण्डाभ्याम् ॥ ४ ॥

संघलाभ, सेनालाभ और मित्रलाभ; इन सब ही लाभोंमें से संघलाभ उत्तम होता है ॥ १ ॥ क्योंकि इकट्ठा रहनेसे संघोंको, शत्रु दबा नहीं सकते ॥ २ ॥ यदि वे संघ अपने अनुकूल हों, तो विजिगीषु साम और दानके द्वारा उनका उपभोग करे। अर्थात् अपने अनुकूल कार्योंमें उनका उपयोग लेवे ॥ ३ ॥ यदि वे प्रतिकूल होवें, तो भेद और दण्डके द्वारा उनका उपयोग करे ॥ ४ ॥

काम्बोजसुराष्ट्रक्षत्रियश्रेण्यादयो वार्ताशस्त्रोपजीविनः ॥५॥ लिच्छिविकव्रजिकमल्लकमद्रककुकुरकुरुपाञ्चालादयो राजशब्दोपजीविनः ॥ ६ ॥

वे संघ किनके होते हैं, इस बातका निरूपण इस सूत्रमें कियाजाता है:–काम्बोज और सुराष्ट्र (गुजरात) देशोंमें उत्पन्न होनेवाले क्षत्रिय आदि वर्गोंके (मूल सूत्रके आदि पदसे वैश्य आदिके वर्गोंका भी ग्रहण करलेना चाहिये) ही वे संघ होते हैं। ये लोग वार्त्ता (कृषि व्यापार आदि) और शस्त्रके द्वारा ही अपनी जीविका करते हैं ॥ ५ ॥ इनके अतिरिक्त लिच्छिविक व्रजिक

मल्लक मद्रक कुकुर कुरु और पाञ्चाल आदि देशोंके, केवल नाममात्रको राजा कहलानेवाले पुरुषोंके भी ये संघ होते हैं। (इनमें से लिच्छिविक और वृजिक नामकी क्षत्रियोंकी जातियां पाटलिपुत्र वर्त्तमान पटनाके उत्तरकी ओरके देशोंमें रहा करती थीं। प्राकृतमें इन जातियोंको लिच्छवी और विज्जी कहते हैं। लिच्छिवी क्षत्रियोंकी राजधानीका नाम 'वैशालि' था; जिसके चिन्ह अभी तक भी पायेजाते हैं। मल्लक जाति भी पटनाके आस पास बसती थी। इनकी राजधानीका नाम 'पावा' था। मद्रक और कुकुर जातियां पञ्जाबके मध्य देशोंमें निवास करती थीं। मद्रक देशका, पञ्जाबी भाषाका अपभ्रंश नाम आजकल 'माज्झा' है। कुरुदेश वर्त्तमान अम्बाला करनाल आदिके ज़िलोंका इलाका है। कन्नौज आदिके प्रान्तोंको 'पाञ्चाल' कहते हैं। इन स्थानोंमें रहनेवाले क्षत्रिय आदि वर्गोंके ही ये संघ होते थे) ॥ ६ ॥

सर्वेषामासन्नाः सत्त्रिणः संघानां परस्परन्यङ्गद्वेषवैरकलहस्थानान्युपलभ्य क्रमाभिनीतं भेदमुपचारयेयुः ॥ ७ ॥ असौ त्वा विजल्पतीति ॥ ८ ॥ एवमुभयतः ॥ ९ ॥

इन सब ही प्रकारके संघोंके समीप, सत्री (एक प्रकारके गुप्तचर) पुरुष रहें, और वे उन सब संघोंके परस्पर दोषोंको, तथा द्वेष (कठोर वाक्यों आदिके द्वारा प्रकट कियाहुआ क्रोध), वैर (अपकार आदिके कारण किसीके साथ द्रोह करना), और कलह स्थानोंको जानकर, धीरे २ उन्हें सामने लाकर उन संघोंमें ही परस्पर इसप्रकार भेद डालनेका उपक्रम करें ॥ ७ ॥ 'अमुक संघ तुम्हारी इसतरह निन्दा करता है' यह कहकर उस संघको दूसरेसे भड़कावें ॥ ८ ॥ इसीप्रकार कहकर दूसरेको भी उससे भड़का देवें। अर्थात् इधर उधर जाकर दोनोंको एक दूसरेसे भिन्न करदेवें ॥ ९ ॥

बद्धरोषाणां विद्याशिल्पद्यूतवैहारिकेष्वाचार्यव्यञ्जना बालकलहानुत्पादयेयुः ॥ १० ॥ वेशशौण्डिकेषु वा प्रतिलोमप्रशंसाभिः संघमुख्यमनुष्याणां तीक्ष्णाः कलहानुत्पादयेयुः ॥ ११ ॥ कृत्यपक्षोपग्रहेण वा ॥ १२ ॥

एक दूसरेके साथ क्रुद्ध हुए २ संघोंके बालकोंका विद्या शिल्प द्यूत तथा प्रश्नोत्तर आदिके विषयमें, आचार्यके वेषमें रहनेवाले गुप्तचर कलह उत्पन्न करादेवें ॥ १० ॥ अथवा वेश्या तथा सुरापान आदिमें आसक्त हुए २, संघके मुख्य मनुष्यों की उलटी प्रशंसा करवाकर तीक्ष्णपुरुष, आपसमें ही उनका कलह उत्पन्न करा देवें ॥ ११ ॥ अथवा संघके मुख्य मनुष्योंके जो कृत्य

(क्रुद्ध लुब्ध भीत तथा अवमानित देखो–अधि० १ अध्या० १४) व्यक्ति हों, उनको अपने अनुकूल बनाकर, फिर उनका ही संघोंके साथ कलह उत्पन्न करादेवें ॥ १२ ॥

कुमारकान्विशिष्टच्छन्दिकया हीनच्छन्दिकानुत्साहयेयुः ॥ १३ ॥

संघके कुमारोंमें जो अधिक योग्य वस्तुओंको लेकर सुखपूर्वक रहते हों, उनके मुकाबलेमें थोड़ी योग्य सामग्रीको लेकर निर्वाह करनेवाले संघ-कुमारोंको भड़कावें । अर्थात् मन्त्री उनको यह कहकर उत्तेजित करें कि देखो ये भी कुमार और तुम भी कुमार; फिर ये तुमसे अधिक सुख सामग्रीको उपभोग क्यों करते हैं ॥ १३ ॥

विशिष्टानां चैकपात्रं विवाहं हीनेभ्यो वारयेयुः ॥ १४ ॥ हीनान्वा विशिष्टैरेकपात्रे विवाहे वा योजयेयुः ॥ १५ ॥ अवहीनान्वा तुल्यभावोपगमने कुलतः पौरुषतः स्थानविपर्यासतो वा ॥ १६ ॥

जो हैसियतमें बड़े होवें, उनका छोटी हैसियत वालोंसे, एक पंक्तिमें बैठकर भोजन आदिके करने तथा विवाह आदि सम्बन्धोंको रोकें ॥ १४ ॥ अथवा हीन अर्थात् छोटी हैसियत वालोंको, बड़ी हैसियत वालोंके साथ एक पंक्ति में भोजन आदि करने तथा विवाह आदि सम्बन्धोंके लिये प्रेरित करें ॥ १५ ॥ अथवा संघके अवहीन (छोटी हैसियतके) पुरुषोंको, खानदान बहादुरी या जगहके तबादलेसे, बड़ी हैसियतके आदमियोंकी बराबरीके लिये उत्साहित करें ॥ १६ ॥

व्यवहारमवस्थितं वा प्रतिलोमस्थापनेन निशामयेयुः ॥१७॥ विवादपदेषु वा द्रव्यपशुमनुष्याभिघातेन रात्रौ तीक्ष्णाः कलहानुत्पादयेयुः ॥ १८ ॥

अथवा संघने जिस किसी व्यवहारका अर्थात् विवादास्पद विषयका जो न्याय्य निर्णय किया हो, उसके विपरीतही व्यवहर्त्ता पुरुषको जाकर सुनावें । अर्थात् उस विपरीत बात का ही उनके हितके लिये समर्थनकरें ॥ १७ ॥ अथवा तीक्ष्ण पुरुष रात्रिमें, स्वयंही किसी संघके द्रव्य, पशु तथा मनुष्योंको नष्ट करके, दूसरे संघकेआदमियोंने ऐसा किया है, इस प्रकार मिथ्या प्रसिद्धि कर देवें, और इन विवादास्पद विषयोंको लेकर आपसमेंही उनका झगड़ा खड़ा करा देवें ॥ १८ ॥

सर्वेषु च कलहस्थानेषु हीनपक्षं राजा कोशदण्डाभ्यामुपगृह्य प्रतिपक्षवधे योजयेत् ॥ १९ ॥ भिन्नानपवाहयेद्वा ॥ २० ॥

इस तरहके सबही कलहके अवसरों पर राजा, हीनपक्ष (जिसको संघके साथ कोई पक्षपात न हो, ऐसे किसी संघकेही) पुरुषको, कोश और दण्ड के द्वारा अपने अनुकूल बनाकर, प्रतिपक्ष (शत्रु) के बध करनेमें नियुक्त कर देवे ॥ १९ ॥ अथवा संघके प्रतिकूल हुए २ उन पुरुषोंको संघसे पृथक् कर देवे ॥ २० ॥

एकदेशे समस्तान्वा निवेश्य भूमौ चैषां पञ्चकुलीं दशकुलीं वा कृष्यां निवेशयेत् ॥ २१ ॥ एकस्था हि शस्त्रग्रहणसमर्थाः स्युः ॥ २२ ॥ समवाये चैषामत्ययं स्थापयेत् ॥ २३ ॥

अथवा किसी एक प्रदेशमें इन सबको इकट्ठा बसाकर, इनकी भूमिमें कृषि करनेके योग्य पञ्चकुली या दशकुली गांवोंको बसावे। अर्थात् इनके पांच २ दस २ कुलोंके छोटे २ गांवोंको पृथक् २ बसावे ॥ २१ ॥ क्योंकि यदि इनको एक साथही बसा दिया जायगा, तो सम्भव है, ये लोग फिर कभी विजिगीषुके विरुद्ध हथियार उठानेमें समर्थ होजावें ॥ २२ ॥ इनकी आबादीके बीच २ में थोड़ी २ सेना अवश्य नियुक्त कीजावे ॥ २३ ॥

राजशब्दिभिरवरुद्धमवक्षिप्तं वा कुल्यमभिजातं राजपुत्रत्वे स्थापयेत् ॥ २४ ॥ कार्तान्तिकादिश्चास्य वर्गो राजलक्षण्यतां संघेषु प्रकाशयेत् ॥ २५ ॥

अब नाममात्रको राजा कहलाने वाले संघोंको आपसमें भिन्न करनेके उपाय बताये जाते हैः—राजा नामको धारण करने वाले लिच्छिवी आदि क्षत्रियोंसे घेरे हुए अथवा तिरस्कृत किये हुए, उच्च कुलोत्पन्न गुणी व्यक्तिको राजपुत्रके रूपमें स्थापित करे। अर्थात् 'यह राजपुत्र है' इस प्रकार विजिगीषु उसकी प्रसिद्धि करे ॥ २४ ॥ और इससे सम्बन्ध रखने वाले दैवज्ञ (ज्योतिषी) तथा सामुद्रिकशास्त्री पुरुष, इसको लिच्छिवी आदि संघोंमें, राजलक्षणोंसे युक्त प्रकाशित करें ॥ २५ ॥

संघमुख्यांश्च धर्मिष्ठानुपजपेत् ॥ २६ ॥ स्वधर्ममुष्य राज्ञः पुत्रे भ्रातरि वा प्रतिपद्यध्वमिति ॥ २७ ॥ प्रतिपन्नेषु कृत्यपक्षोपग्रहार्थमर्थं दण्डं च प्रेषयेत् ॥ २८ ॥

तथा जो संघोंके मुख्य धार्मिक पुरुष हों, उनका इस प्रकार उपजाप किया जावे:—॥ २६ ॥ कि आप अमुक राजपुत्र या राजभ्राताके विषयमें अपने धर्मको स्वीकार करें : तात्पर्य यह है: उनको कहा जाय, कि 'अमुक राजपुत्र या राजभ्राताको संघके पुरुष बन्धन आदिमें डालकर उन्हें इस तरह कष्ट पहुंचा रहे हैं, आपही यहां एक धर्मात्मा पुरुष हैं, आप उनके कष्ट निवारण करनेमें अपने धर्मका योग करें' । इसप्रकार कहकर संघके पुरुषोंसे उनको भिन्न किया जावे ॥ २७ ॥ जब संघके मुख्य पुरुष इस बातको स्वीकार करलें, तब कृत्य पक्षको अपने अनुकूल बनानेके लिये मुख्य पुरुषोंके पास उनकी सहायतार्थ धन और सेनाको भेजे ॥ २८ ॥

विक्रमकाले शौण्डिकव्यञ्जनाः पुत्रदारप्रेतापदेशेन नैषेचनिकमिति मदनरसयुक्तान्मद्यकुम्भाञ्शतशः प्रयच्छेयुः ॥ २९ ॥

लड़ाईका मौका आने पर शराब बेचने वालोंके भेसमें गुप्तचर पुरुष, अपने लड़के और स्त्रियोंके मर जानेके बहानेसे (अर्थात् हमारे पुत्र स्त्री आदि मर गये हैं उनके निमित्तसे हम, यह भेंट आप लोगोंको देते हैं, इस बहानेसे) "यह 'नैषेचनिक' मद्य है" इस प्रकार कहते हुए, मद करने वाले विष रससे युक्त सैकड़ों मद्यके घड़ोंको लाकर उन्हें देदेवें ॥ २९ ॥

चैत्यदेवतद्वाररक्षास्थानेषु च सत्त्रिणः समयकर्मनिक्षेपं सहिरण्याभिज्ञानमुद्राणि हिरण्यभाजनानि च प्ररूपयेयुः ॥ ३० ॥ दृश्यमानेषु च संघेषु राजकीया इत्यावेदयेयुः ॥ ३१ ॥ अथावस्कन्दं दद्यात् ॥ ३२ ॥

देवालय तथा अन्य पवित्र स्थानोंके दरवाजों पर और रक्षास्थानोंमें; सत्री पुरुष, संघके मुखियाके साथ शर्त्त करनेके लिये अमानतके तौर पर देने का धन, सुवर्णकी अभिज्ञान मुद्राके सहित अन्य सुवर्णके पात्र आदि पदार्थोंको प्रकाशित कर देवें । अर्थात् इस तरहसे उन्हें प्रकट करें, जिसमें कि संघके पुरुष इस बातको जानलेवें ॥ ३० ॥ इन सब बातोंके देखलेने पर, जब साक्षात् संघ इस बातको पूछें, कि 'ये सुवर्णके सामान किसके हैं' तब 'ये राजाके सामान हैं' यह उनको कह दिया जावे । (इस सूत्रमें 'राजकीयाः' पदके स्थान पर कहीं 'विक्रीताः' भी पाठ है । यह पाठ प्रकरणानुसार कुछ संगत नहीं मालूम होता) ॥ ३१ ॥ इस प्रकार जब संघोंमें परस्पर भेद पड़ जावे, तो विजिगीषु इनपर फौज लेकर चढ़ाई कर देवे ॥ ३२ ॥

संघानां वा वाहनहिरण्ये कालिके गृहीत्वा संघमुख्याय प्रख्यातं द्रव्यं प्रयच्छेत् ॥ ३३ ॥ तदेषां याचिते दत्तममुष्मै मुख्यायेति ब्रूयात् ॥ ३४ ॥ एतेन स्कन्धावाराटवीभेदो व्याख्यातः ॥ ३५ ॥

अथवा सत्री पुरुष, संघोंके वाहन (घोड़े आदि सवारी) और हिरण्यको किसी नियत समय पर वापस करदेनेका वादा करके लेलेवे; और सब लोगोंके सामने प्रगटरूपमें वह सब सामान, संघके मुखिया पुरुषको देदेवे ॥ ३३ ॥ जब वे लोग इससे मांगें; तो कह देवे, कि वह सब सामान मैंने आपके मुखिया पुरुषको दे दिया है। इसप्रकार सत्री पुरुष, संघ और मुखियामें परस्पर भेद डलवावें ॥ ३४ ॥ अपनी छावनीमें प्रविष्ट हुए २ अटविक पुरुषोंके परस्पर भेद डालनेमें इन सब उपर्युक्त उपायोंको काममें लाना चाहिये ॥ ३५ ॥

संघमुख्यपुत्रमात्मसंभावितं वा सत्री ग्राहयेत् ॥ ३६ ॥ अमुष्य राज्ञः पुत्रस्त्वं शत्रुभयादिह न्यस्तोऽसीति ॥ ३७ ॥ प्रतिपन्नं राजा कोशदण्डाभ्यामुपगृह्य संघेषु विक्रमयेत् ॥ ३८ ॥ अवाप्तार्थस्तमपि प्रवासयेत् ॥ ३९ ॥

अब इसके आगे उपांशुवधका निरूपण किया जायगाः—संघमुख्यके अभिमानी पुत्रको सत्री इसप्रकार समझावेः—॥ ३६ ॥ 'तू अमुक राजाका पुत्र है, शत्रुके डरसे यहां रक्खा हुआ है' ॥ ३७ ॥ यदि संघमुख्यका पुत्र इस बातको मानजावे, तो राजा (विजिगीषु), कोश और सेनाके द्वारा उसको अपने अनुकूल बनाकर अर्थात् कोश और सेनाकी उसे सहायता देकर, संघोंके ऊपर ही उससे चढ़ाई करवादेवे ॥ ३८ ॥ जब अपने कार्यकी सिद्धि होजाय, अर्थात् संघमुख्यके पुत्रके पराक्रमके द्वारा संघोंका निग्रह होजाय, तो उसको भी पीछेसे प्रवासित करदेवे । अर्थात् मरवाडाले ॥ ३९ ॥

बन्धकीपोषकाः प्लवकनटनर्तकसौभिका वा प्रणिहिताः स्त्रीभिः परमरूपयौवनाभिः संघमुख्यानुन्मादयेयुः ॥ ४० ॥ जातकामानामन्यतमस्य प्रत्ययं कृत्वान्यत्र गमनेन प्रसभहरणेन वा कलहानुत्पादयेयुः ॥ ४१ ॥ कलहे तीक्ष्णाः कर्म कुर्युः ॥४२॥ हतोऽयमित्थं कामुक इति ॥ ४३ ॥

कुलटा स्त्रियोंका पालन पोषण करनेवाले, अथवा प्लवक, नट, नर्त्तक, और सौभिकके वेषमें रहनेवाले गुप्तचर पुरुष; अत्यन्त सुन्दर जवान स्त्रियोंके

द्वारा उन्माद युक्त बनावें। अर्थात् स्त्रियोंके फन्देमें फंसाकर उन्हें प्रमादी बनावें ॥ ४० ॥ जब उनमें से बहुतसे संघमुख्य स्त्रियोंकी कामना करनेलगें, तो किसी एकको कहीं विशेष स्थानपर स्त्रीके मिलनेका संकेत करके, उस स्त्रीको वहां से अन्य किसी संघमुख्य पुरुषके द्वारा दूर करदेवें, या उससे ही उस स्त्रीका अपहरण करादेवें। तदनन्तर यही बहाना लेकर उन संघ-मुख्योंमें आपसमें ही झगड़ा पैदा करादेवें ॥ ४१ ॥ झगड़ा होनेपर तीक्ष्ण पुरुष अपना कामकरें; अर्थात् आपसमें झगड़ा करनेवाले उन संघमुख्य पुरुषोंमें से किसी एकको मारडालें ॥ ४२ ॥ तदनन्तर यह प्रसिद्ध करदें, कि इस कामी पुरुषको इसके प्रतिद्वन्द्वी दूसरे कामुक पुरुष ने मारडाला है ॥ ४३ ॥

विसंवादितं वा मर्षयमाणमभिसृत्य स्त्री ब्रूयात् ॥ ४४ ॥ असौ मां मुख्यस्त्वयि जातकामां बाधते ॥ ४५ ॥ तस्मिञ्जीवति नेह स्थास्यामीति घातमस्य प्रयोजयेत् ॥ ४६ ॥

यदि उन संघमुख्योंमें परस्पर झगड़ा होनेकी सम्भावना होनेपर एक उनमें से सहन करजावे: और दूसरेके साथ स्त्रीके लिये झगड़ा करना न चाहे, तो स्वयं उसके पास आकर इसप्रकार कहे: -- ॥ ४४ ॥ अमुक संघमुख्य पुरुष; आपके अन्दर मेरी अभिलाषा होनेपर भी मुझे रोकता है । अर्थात् मैं आपको दिलसे चाहती हूं, और वह इसमें बाधा पहुंचाता है ॥ ४५ ॥ उसके जीवित रहते हुए मैं यहां नहीं रह सकूंगी, अर्थात् आपके पास नहीं ठहर सकूंगी' । इसप्रकार कहकर उसके वधका आयोजन करवादेवे ॥ ४६ ॥

प्रसह्यापहृता वोपवनान्ते क्रीडागृहे वापहर्तारं रात्रौ तीक्ष्णेन घातयेत् ॥ ४७ ॥ स्वयं वा रसेन ॥ ४८ ॥ ततः प्रकाशयेत् ॥ ४९ ॥ अमुना मे प्रियो हत इति ॥ ५० ॥

अथवा बलात्कार अपहरण की हुई स्त्री, जंगलमें या क्रीडागृहमें, अपहरण करनेवाले पुरुषको, रात्रिके समय तीक्ष्णपुरुषके द्वारा मरवाडाले। अथवा स्वयं ही विष आदि देकर उसे मारडाले ॥ ४८ ॥ और फिर यह प्रकट करे, कि: - ॥ ४९ ॥ अमुक प्रतिद्वन्द्वी कामुक पुरुषने मेरे प्यारेको मार डाला है । (अर्थात् उस संघमुख्यके मारनेमें अन्य किसी संघमुख्यका नाम लगादेवे) ॥ ५० ॥

जातकामं वा सिद्धव्यञ्जनः सांवननिकीभिरोषधीभिः संवास्य रसेनातिसंधायापगच्छेत् ॥ ५१ ॥ तस्मिन्नपक्रान्ते सत्त्रिणः परप्रयोगमभिशंसेयुः ॥ ५२ ॥

अथवा संघमुख्यकी, स्त्रीमें उत्कण्ठा उत्पन्न होजानेपर, सिद्धके वेषमें रहनेवाला गुप्तचर, वशीकरणके लिये उपयुक्त औषधियोंके बहानेसे, विष-मिश्रित औषधोंके द्वारा उस संघमुख्य पुरुषको मारकर भागजावे ॥ ५१ ॥ उसके भाग जानेपर अन्य सत्री पुरुष, इस बातको प्रसिद्ध करदें, कि इसके प्रतिद्वन्द्वी दूसरे कामी पुरुषने ही यह काम किया है। अर्थात् उसकी प्रेरणासे ही सिद्ध पुरुषने इसको विष देकर मारडाला है ॥ ५२ ॥

आढ्यविधवा गूढाजीवा योगस्त्रियो वा दायनिक्षेपार्थं विवदमानाः संघमुख्यानुन्मादयेयुरिति ॥ ५३ ॥ अदितिकौशिकस्त्रियो नर्तकी गायना वा ॥ ५४ ॥ प्रतिपन्नान्गूढवेश्मसु रात्रिसमागमप्रविष्टांस्तीक्ष्णा हन्युर्बध्वा हरेयुर्वा ॥ ५५ ॥

धनी विधवा स्त्रियां, गूढाजीवा (सधवा भी दरिद्रताके कारण व्यभिचार आदिसे अपनी जीविका करने वाली स्त्रियां), अथवा कपटपूर्वक स्त्रीका वेष धारण करने वाले पुरुषही दायभाग तथा निक्षेप (अमानत) आदिके लिये विवाद करते हुए, संघ मुख्य पुरुषोंको उन्मादयुक्त बनावें। अर्थात् विवादके निर्णयके बहानेसे उनके पास जाकर उन्हें अपने वशमें करनेका यत्न करें ॥ ५३ ॥ अथवा अदितिस्त्रियां (तरह २ के देवताओंके चित्रोंको दिखाकर अपनी आजीविका करने वाली स्त्रियां), कौशिकस्त्रियां (सांपोंको पकड़ने वाले सपेरोंकी स्त्रियां), या नाचने गाने वाली स्त्रियांही जाकर संघ मुख्योंको अपने फन्देमें फंसावें ॥ ५४ ॥ जब संघमुख्य पुरुष इन स्त्रियोंकी बातोंमें आजावें, और उनसे समागम करनेके लिये किन्हीं निश्चित स्थानोंका संकेत करदें, तब उन छिपे हुए घरोंमें रात्रिके समय समागम करनेके लिये प्रविष्ट हुए २ संघमुख्य पुरुषोंको, तीक्ष्णपुरुष मारडालें; अथवा उनको बांधकर अपहरण करलेजावें ॥ ५५ ॥

सत्त्री वा स्त्रीलोलुपं संघमुख्यं प्ररूपयेत् ॥ ५६ ॥ अमुष्मिन्ग्रामे दरिद्रकुलमपसृतम्, तस्य स्त्री राजार्हा, गृहाणैनामिति ॥ ५७ ॥ गृहीतायामर्धमासानन्तरं सिद्धव्यञ्जनो दूष्यसंघमुख्यं मध्ये प्रक्रोशेत् ॥ ५८ ॥ असौ मे मुख्यां भार्यां स्नुषां भगिनीं दुहितरं वाधिचरतीति ॥ ५९ ॥

अथवा सत्री, स्त्रीलोलुप संघमुख्य पुरुषको इसप्रकार कहे:—॥ ५६ ॥ अमुक ग्राममें एक दरिद्र कुलका पुरुष, जीविकाके लिये बाहर विदेशमें चला

गया है, उसकी स्त्री राजाके योग्य है, आप इसको लेलेवें ॥ ५७ ॥ यदि वह संघमुख्य पुरुष, उस स्त्रीको लेलेवे, तो पन्द्रह दिनके बाद सिद्धके वेषमें एक दूष्य पुरुष (=राजाके साथ झगड़ा करके रहने वाला पुरुष), संघमुख्यके बीचमें आकर इस प्रकार चिल्लावे, अर्थात् शोर मचावेः—॥ ५८ ॥ कि यह संघ-मुख्य पुरुष मेरी मुख्यभार्या, पुत्रभार्या, बहिन या लड़कीको बलात्कार उपभोग करता है। अर्थात् भार्या आदि किसी एकका नाम लेकर वह आक्रन्दन करे ॥ ५९ ॥

तं चेत्संघो निगृह्णीयाद्राजैनमुपगृह्य विगुणेषु विक्रमयेत् ॥ ६० ॥ अनिगृहीते सिद्धव्यञ्जनं रात्रौ तीक्ष्णाः प्रवासयेयुः ॥ ६१ ॥ ततस्तद्व्यञ्जनाः प्रक्रोशेयुः ॥ ६२ ॥ असौ ब्रह्महा ब्राह्मणीजारश्चेति ॥ ६३ ॥

यदि इस बात पर संघ, उसको (संघमुख्य पुरुषको) गिरफ्तार कर-लेवे; तो विजिगीषु राजा, निगृहीत हुए २ उसको अपनी ओर मिलाकर अर्थात् अपने अनुकूल बनाकर; विरोधी संघोंके मुकाबलेमें उसे युद्ध करनेके लिये खड़ा करदेवे ॥ ६० ॥ यदि संघ, उसको गिरफ्तार न करे, तो सिद्धके वेषमें आने वाले उस दूष्य पुरुषको, तीक्ष्ण पुरुष रातमें मार डालें ॥ ६१ ॥ तद-नन्तर स्वयं ही सिद्धके वेषमें आकर इसप्रकार कोलाहल मचावेंः-॥ ६२ ॥ यह संघमुख्य पुरुष ब्रह्महत्यारा है, और यह ब्राह्मणीके साथ जारकर्म करता है। अर्थात् उस सिद्ध ब्राह्मणकी भार्याके साथ दुष्कर्म करता है और इसीने उस सिद्धको मरवा डाला है ॥ ६३ ॥

कार्तान्तिकव्यञ्जनो वा कन्यामन्येन वृतामन्यस्य प्ररूपयेत् ॥ ६४ ॥ अमुष्य कन्या राजपत्नी राजप्रसविनी च भविष्यति ॥ ६५ ॥ सर्वस्वेन प्रसह्य वैनां लभस्वेति ॥ ६६ ॥ अलभ्यमा-नायां परपक्षमुद्धर्षयेत् ॥ ६७ ॥ लब्धायां सिद्धः कलहः ॥६८॥

अथवा दैवज्ञ (ज्योतिषीके) वेषमें रहने वाला सत्री, अन्य किसी संघमुख्यसे वरण कीहुई कन्याको, और किसी संघमुख्यके लिये बतला देवे। और उससे इस प्रकार कहेः—॥ ६४ ॥ अमुक पुरुषकी कन्या, राजपत्नी और राजमाता होगी; अर्थात् उससे जो विवाह करेगा, वहभी राजा होगा, और उससे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वहभी अवश्य राजा होगा ॥ ६५ ॥ इसलिये अपना सर्वस्व देकरभी, अथवा बलात्कारसे इसको अवश्यही प्राप्त करो। अर्थात् जैसेभी होसके, इसको अपने अधीन अवश्य करो ॥ ६६ ॥ इस तरह कहनेके

बाद प्रयत्न करने परभी यदि वह संघमुख्य पुरुष उस कन्याको प्राप्त न करसके; तो पहिले वरण करने वाले पक्षकोही, इसके विरुद्ध उत्साहित करे ॥ ६७ ॥ यदि कन्याको वह प्राप्त करले, तो दोनोंका झगड़ा होजाना निश्चितही है ॥ ६८ ॥

भिक्षुकी वा प्रियभार्यं मुख्यं ब्रूयात् ॥ ६९ ॥ असौ ते मुख्यो यौवनोत्सिक्तो भार्यायां मां प्राहिणोत् ॥ ७० ॥ तस्याहं भयाल्लेख्यमाभरणं गृहीत्वाऽऽगतास्मि ॥ ७१ ॥ निर्दोषा ते भार्या ॥ ७२ ॥ गूढमस्मिन्प्रतिकर्तव्यम् ॥ ७३ ॥ अहमपि तावत्प्रतिपत्स्यामीति ॥ ७४ ॥

अथवा भिक्षुकी (भिक्षुकी=भिखारिनके भेसमें गुप्तचर–स्त्री या पुरुष), अपनी भार्यासे प्यार करने वाले किसी संघमुख्य पुरुषके पास आकर इस प्रकार कहे ॥ ६९ ॥ अपनी जवानीका घमण्ड करने वाले अमुक संघमुख्य पुरुषने, आपकी स्त्रीके पास अपने समागमकी लिप्सा लगानेके लिये मुझे दूती बनाकर भेजा है ॥ ७० ॥ मैं उसके डरसे यह लेखपत्र और आभूषण आदि लेकर आई हूं ॥ ७१ ॥ इस विषयमें आपकी स्त्री सर्वथा निर्दोष है ॥ ७२ ॥ आप छिपे तौरपर इस बातका अच्छीतरह प्रतीकार करें। अर्थात् चुपचापही इस संघमुख्य पुरुषको मरवा डालें ॥ ७३ ॥ मैंभी तब तक तुम्हारे समीपही रहना अङ्गीकार करूंगी। (तात्पर्य यह है, कि यदि उस संघमुख्य पुरुषके मरवा देनेके पहिलेही मैं यहांसे चली गई, तो वह अवश्यही मुझे नष्ट करादेगा। इसलिये जब तक आप उसे नहीं मरवा देते, तबतक मैं आपकीही सेवामें रहूंगी) ॥ ७४ ॥

एवमादिषु कलहस्थानेषु स्वयमुत्पन्ने वा कलहे तीक्ष्णैरुत्पादिते वा हीनपक्षं राजा कोशदण्डाभ्यामुपगृह्य विगुणेषु विक्रमयेदपवाहयेद्वा ॥ ७५ ॥

इसप्रकारके कलहकारणोंकी उपस्थितिमें, स्वयंही झगड़ोंके उत्पन्न होजेपर, अथवा तीक्ष्ण आदि पुरुषोंके द्वारा उत्पन्न किये जाने पर; हीनपक्ष (जिसका पक्ष कुछ शक्ति सम्पन्न न हो, ऐसे) संघमुख्य आदि पुरुषको, विजिगीषु राजा, कोश तथा सेनाकी उचित सहायता देकर अपने अनुकूल बना लेवे; और अवसर आनेपर, विरोध करनेवाले संघोंके मुकाबलेमें युद्ध करनेके लिये उसे तैयार कर देवे। यदि वह युद्ध करनेमें असमर्थहो, तो उसे अपने देशसे निकाल देवे ॥ ७५ ॥

संघेष्वेवमेकराजो वर्तेत ॥ ७६ ॥ संघाश्चाप्येवमेकराजादेतेभ्यो ऽतिसंधानेभ्यो रक्षयेयुः ॥ ७७ ॥

इसप्रकार विजिगीषु, संघोंमें एक मुख्य राजा बनकर रहे । अर्थात् उन सबके ऊपर अपना पूर्ण आधिपत्य रखता हुआही अपने व्यवहारको चलावे ॥ ७६ ॥ और संघभी इसप्रकार चेष्टा (व्यवहार) करते हुए राजासे, और उसके द्वारा फैलाये हुए इन जालोंसे अपने आपकी रक्षा करें । यहांतक संघोंमें राजाके, और राजामें संघोंके व्यवहारका निरूपण करदिया गया ॥७७॥

संघमुख्यश्च संघेषु न्यायवृत्तिर्हितः प्रियः ।
दान्तो युक्तजनस्तिष्ठेत्सर्वचित्तानुवर्तकः ॥ ७८ ॥

इति संघवृत्ते एकादशे ऽधिकरणे भेदोपादानानि, उपांशुदण्डश्च प्रथमो ऽध्यायः । आदितः पञ्चत्रिंशच्छतः ॥ १३५ ॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य संघवृत्तमेकादशमधिकरणं समाप्तम् ॥ ११ ॥

अब उपसंहार श्लोकसे, संघोंमें संघमुख्यके व्यवहारका निरूपण किया जाता है:—संघमुख्यको चाहिये, कि वह संघोंमें सदा न्याययुक्त हितकारी तथा प्रिय व्यवहार करे । कभी उद्धततासे काम न लेवे; तथा अपने अनुकूल पुरुषोंकोही अपने समीप रक्खे, और सब संघके पुरुषोंके मतानुसारही व्यवहारोंको करे ॥ ७८ ॥

सङ्घवृत्त एकादश अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

सङ्घवृत्त एकादश अधिकरण समाप्त ।

आबलीयस द्वादश अधिकरण

पहिला अध्याय

१६२ प्रकरण

दूतकर्म ।

यह आबलीयस बारहवां अधिकरण है। इसमें 'प्रबल अभियोक्ता के प्रति दुर्बल राजाको क्या करना चाहिये' इस बातका निरूपण किया जायगा। सबसे प्रथम इस अधिकरणके पहिले अध्यायमें दूतके कार्योंका कथन करते हैं।

बलीयसाभियुक्तो दुर्बलः सर्वत्रानुप्रणतो वेतसधर्मा तिष्ठेत् ॥ १ ॥ इन्द्रस्य हि स प्रणमति यो बलीयसो नमतीति भारद्वाजः ॥ २ ॥

जब किसी दुर्बल राजापर कोई बलवान् राजा आक्रमण करे, तो वह उसके सामने, हरतरहका तिरस्कार होनेपर भी झुका रहे। जिसप्रकार जलके वेगके सामने बेतका पेड़ झुका हुआ या उसके अनुसार रहकर, अपनी स्थितिको बनाये रखता है; इसीप्रकार दुर्बल राजा बलवान् राजाके सामने नम्र या उसके अनुकूल रहता हुआ अपनी स्थितिको दृढ़ बनाये रक्खे ॥ १ ॥ जो अपनेसे बलवान् राजाके सामने झुकता है, वह इन्द्रके सामने झुकता है, यही समझना चाहिये। यह सब भारद्वाज आचार्यका मत है ॥ २ ॥

सर्वसंदोहेन बलानां युध्येत ॥ ३ ॥ पराक्रमो हि व्यसनमपहन्ति ॥ ४ ॥ स्वधर्मश्चैष क्षत्रियस्य ॥ ५ ॥ युद्धे जयः पराजयो वेति विशालाक्षः ॥ ६ ॥

विशालाक्ष आचार्यका इस विषयमें यह मत है, कि दुर्बल राजा, बलवान् राजाके मुकाबलेमें भी अपनी सेनाओंके सम्पूर्ण सामर्थ्यके साथ युद्ध करे ॥ ३ ॥ क्योंकि पराक्रम ही आपत्तियोंको नष्ट करदेता है ॥ ४ ॥ और क्षत्रियका यह (पराक्रम करना) अपना धर्म है ॥ ५ ॥ युद्धमें जय

हो, या पराजय हो, क्षत्रियको अपने धर्म पराक्रम का ही पालन करना चाहिये। शत्रुके पैरोंमें कभी न गिरना चाहिये ॥ ६ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ७ ॥ सर्वत्रानुप्रणतः कुलैडक इव निराशो जीविते वसति ॥ ८ ॥ युध्यमानश्चाल्पसैन्यः समुद्रमिवाप्लवोऽवगाहमानः सीदति ॥ ९ ॥ तद्विशिष्टं तु राजानमाश्रितो दुर्गमविषह्यं वा चेष्टेत ॥ १० ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य भारद्वाज और विशालाक्षके इन दोनों ही मतोंको नहीं मानता ॥ ७ ॥ वह कहता है, कि जो दुर्बल राजा, हरतरहका तिरस्कार होनेपर भी नम्र ही बना रहता है, वह अपने झुंडसे अलहदा हुए २ कुलके मेंढेके समान (जो मेंढा मारनेके लिये ही रक्खा जाता है, उसको 'कुलडक' कहते हैं। उसके जीवनमें सदा ही सन्देह रहता है, न मालूम किस समय मारदिया जाय। हिन्दीमें इसीसे एक कहावत बनगई है—'बकरेकी मां कब तक खैर मनायेगी'। इसी तरह) जीवनसे निराश हुआ २ जैसे तैसे निवास करता है। अर्थात् ऐसे दुर्बल राजाको अपना जीवन भी भारी होजाता है ॥ ८ ॥ और इसीतरह थोड़ी सेनाकी सहायता लेकर ही जो युद्ध करने लगजाता है, वह राजा, तरणसाधनके बिना ही समुद्रमें प्रवेश करजानेवाले पुरुषके समान अवश्य दुःख उठाता है ॥ ९ ॥ इसलिये दुर्बल राजाको चाहिये, कि वह अपने प्रतिद्वन्द्वी राजाके समान या उससे भी अधिक शक्ति रखनेवाले किसी अन्य राजाका आश्रय लेलेवे। अथवा ऐसे दुर्गमें जाकर अपना कार्य आरम्भ करे, जिसपर शत्रुका कुछ बस न चलसकता हो। अर्थात् ऐसे राजा या दुर्गका आश्रय लेकर ही दुर्बल राजा अपने शत्रुका मुकाबला करे ॥ १० ॥

त्रयो ऽभियोक्तारो धर्मलोभासुरविजयिन इति ॥ ११ ॥ तेषामभ्यवपत्त्या धर्मविजयी तुष्यति ॥ १२ ॥ तमभ्यवपद्येत परेषामपि भयात् ॥ १३ ॥

अभियोक्ता (दुर्बल राजापर आक्रमण करनेवाला बलवान् राजा) तीन प्रकारके होसकते हैं। धर्मविजयी, लोभविजयी और असुरविजयी ॥ ११ ॥ उनमेंसे धर्मविजयी, आत्मसमर्पण करने ('मैं तुम्हारा हूं' इस प्रकार कहने) से ही सन्तुष्ट होजाता है ॥ १२ ॥ उस धर्मविजयी राजाको सन्तुष्ट रक्खे ; न केवल इस विचारसे कि उससे भय न रहे, किन्तु इस विचारसे भी कि ऐसा करनेपर दूसरे शत्रुसे भी भय न होगा। तात्पर्य यह है

कि धर्मविजयी अभियोक्ता सन्तुष्ट होनेपर, स्वयं तो बाधा पहुंचाताही नहीं, किन्तु अन्यशत्रुसे भी उस दुर्बल राजाकी सदा रक्षा करता है ॥ १३ ॥

भूमिद्रव्यहरणेन लोभविजयी तुष्यति ॥ १४ ॥ तमर्थेनाभ्यवपद्येत ॥ १५ ॥ भूमिद्रव्यपुत्रदारप्राणहरणेनासुरविजयी ॥ १६ ॥ तं भूमिद्रव्याभ्यामुपगृह्याग्राह्यः प्रतिकुर्वीत ॥ १७ ॥

लोभविजयी अभियोक्ता, भूमि और द्रव्य लेनेसेही सन्तुष्ट होता है ॥ १४ ॥ इसलिये दुर्बल राजा, धनादिके द्वारा उसको सन्तुष्ट रक्खे ॥ १५ ॥ असुरविजयी अभियोक्ता तो, भूमि द्रव्य पुत्र स्त्री और प्राणों तकका भी अपहरण करलेने परही सन्तुष्ट रहता है ॥ १६ ॥ इसलिये उससे कभी भी न मिलकर दूरही रहते हुए, उसकी इच्छानुसार भूमि और द्रव्य देकर उसको अनुकूल बनावे, तथा सन्धि आदिके द्वारा उसका प्रतीकार करे ॥ १७ ॥

तेषामुत्तिष्ठमानं संधिना मन्त्रयुद्धेन कूटयुद्धेन वा प्रतिव्यूहेत ॥ १८ ॥ शत्रुपक्षमस्य सामदानाभ्याम् ॥ १९ ॥ स्वपक्षं भेददण्डाभ्याम् ॥ २० ॥ दुर्गं राष्ट्रं स्कन्धावारं वास्य गूढाः शस्त्ररसाग्निभिः साधयेयुः ॥ २१ ॥

उनमेंसे किसी एकको, जो अपने ऊपर आक्रमण करनेके लिये तयार हो, सन्धिके द्वारा, मन्त्रयुद्धसे अथवा कूटयुद्धसे मुकाबला करे। (किसी २ पुस्तकमें 'तेषामुत्तिष्ठमानं' के स्थानपर 'तेषामन्यतममुत्तिष्ठमान' ऐसा भी पाठ है। अर्थमें कोई विशेषता नहीं) ॥ १८ ॥ मन्त्रयुद्धका यह ढंग है:— इसके शत्रुपक्षको अर्थात् प्रबल अभियोक्ताके शत्रुपक्षको, साम और दानके द्वारा अपने अनुकूल बनानेका यत्न करे ॥ १९ ॥ और अपने पक्षको, अर्थात् अपने अमात्य आदि प्रकृतिवर्गको भेद और दण्ड के द्वारा अपने वशमें रक्खे ॥ २० ॥ कूटयुद्धका यह ढंग समझना चाहिये:—प्रबल अभियोक्ताके दुर्ग राष्ट्र तथा छावनियोंको अपने गूढपुरुषोंके द्वारा, छिपकर शस्त्रप्रहार करने, विष देने तथा आग आदि लगा देनेसे नष्ट करवा देवे ॥ २१ ॥

सर्वतः पार्ष्णिमस्य ग्राहयेत् ॥ २२ ॥ अटवीभिर्वा राज्यं घातयेत् ॥ २३ ॥ तत्कुलीनावरुद्धाभ्यां वा हारयेत् ॥ २४ ॥

पीछे तथा इधर उधरसे, प्रबल अभियोक्ताकी पार्ष्णिका ग्रहण करवावे। अभिप्राय यह है, कि अवसर पानेपर अभियोक्ताके पीछे की ओरसे, या इधर उधर बाजुओंकी ओरसे उसपर छापा मारनेका प्रयत्न करवावे ॥ २१ ॥

अथवा आटविक पुरुषोंके द्वारा, इसके राज्य अर्थात् दुर्ग जनपद आदिको नष्ट करवादेवे ॥ २३ ॥ अथवा अभियोक्ताकेही किसी अन्य बन्धु बान्धवके द्वारा; या रोके हुए (बन्धनमें डाले हुए) उसके (अभियोक्ताके) पुत्र आदिके द्वाराही, इसके राज्यका अपहरण करादेवे ॥ २४ ॥

अपकारान्तेषु चास्य दूतं प्रेषयेत् ॥ २५ ॥ अनपकृत्य वा संधानम् ॥ २६ ॥ तथाप्यभिप्रयान्तं कोशदण्डयोः पादोत्तरमहोरात्रोत्तरं वा संधिं याचेत ॥ २७ ॥

इसतरह उसका अपकार कराकर, तदनन्तर सन्धिके लिये उसके पास अपना दूत भेजे। क्योंकि ऐसी अवस्थामें सरलतासेही सन्धि होजाया करती है ॥ २५ ॥ अथवा यदि दुर्बल राजा, प्रबल अभियोक्ताका किसी तरह का भी अपकार करनेमें समर्थ न हो, तो ऐसी अवस्थामें भी स्वयं सन्धि की याचना करे ॥ २६ ॥ यदि फिर भी वह सन्धि न करे, और चढ़ाई करनेके लियेही उतारू होरहा हो, तो सन्धि की शर्त्तके लिये पहिलेसेही नियतसंख्यक धन और सेनामें चौथाई हिस्सा और बढ़ाकर सन्धि की याचना करे। अथवा दिन और रातकी संख्या बढ़ाकर भी सन्धि की याचना करे। इसका अभिप्राय यह है:—दुर्बलके द्वारा नियत समयतक सन्धिकी याचना करनेपर और अपना अभिलषित धन देने पर भी यदि अभियोक्ता सन्धि करनेको तैयार न हो, तो अभियोक्ताकी इच्छाके अनुसारही धन देकर, उतने समयमें और अधिक दिन जोड़कर सन्धि की याचना करे अर्थात् सन्धिके दिनोंकी अवधि और बढ़वा लेवे ॥ २७ ॥

स चेद्दण्डसंधिं याचेत कुण्ठमस्मै हस्त्यश्वं दद्यादुत्साहितं वा गरयुक्तम् ॥ २८ ॥

यदि अभियोक्ता, सेनाकी सन्धिकी याचना करे, अर्थात् सन्धिकी शर्त्तोंमें सेनाको ही लेना चाहे; तो दुर्बल राजाको चाहिये, कि वह अपने कुण्ठ अर्थात् कार्य करनेमें सर्वथा अशक्त हाथी घोड़ोंको देदेवे। अथवा उत्साही (कार्य करनेमें समर्थ) हाथी घोड़ोंको भी ऐसा विष खिलाकर देडाले, जिससे कि वे पन्द्रह बीस दिन या महीने भर के बाद तक मर जावें ॥ २८ ॥

पुरुषसंधिं याचेत दूष्यामित्राटवीबलमस्मै दद्याद्योगपुरुषाधिष्ठितम् ॥ २९ ॥ तथा कुर्याद्यथोभयविनाशः स्यात् ॥ ३० ॥

यदि अभियोक्ता, पुरुष-सन्धिकी याचना करे, अर्थात् सन्धिकी शर्तोंमें पैदल सेनाको लेना चाहे; तो अपने योगपुरुषोंसे (विष, गैस तथा दूषित जल आदिको देकर दूष्य आदि सेनाको मारडालने वाले, अपने विश्वस्त गूढ़पुरुषोंसे) युक्त, दूष्यबल, शत्रुबल तथा आटविक बलको इसके लिये देदेवे ॥ २९ ॥ और इसप्रकारका प्रबन्ध करे, जिससे कि अपनी दीहुई दूष्य आदि सेना, तथा शत्रुकी सेना दोनोंका ही अवश्य विनाश होजावे ॥३०॥

तीक्ष्णबलं वास्मै दद्यात् यदवमानितं विकुर्वीत ॥ ३१ ॥ मौलमनुरक्तं वा, यदस्य व्यसने ऽपकुर्यात् ॥ ३२ ॥

अथवा अभियोक्ताके लिये, अपने तीक्ष्णबलको देदेवे, जो कि थोड़ासा अपमान करनेपर ही बिगड़ उठे, और शत्रुका अपकार करडाले ॥ ३१ ॥ अथवा दुर्बल राजा, अपनी मौल (वंशपरम्परासे आईहुई) अनुरक्त (राजामें अत्यन्त अनुराग रखने वाली, जिसपर राजाको भी पूरा विश्वास हो, ऐसी) सेनाको ही अभियुक्तके लिये देदेवे । जो कि शत्रुपर आपत्तिके समयमें उसका (शत्रुका) अच्छीतरह अपकार करसके ॥ ३२ ॥

कोशसंधिं याचेत सारमस्मै दद्याद्यस्य क्रेतारं नाभिगच्छेत् ॥ ३३ ॥ कुप्यमयुद्धयोग्यं वा ॥ ३४ ॥

यदि अभियोक्ता, कोशसन्धिकी याचना करे, अर्थात् सन्धिकी शर्तोंमें धन ही लेना चाहे; तो सार अर्थात् बहुमूल्य रत्न आदि धनको ही इसके लिये देदेवे । जिस (रत्न आदि) का खरीदने वाला भी इसे कोई न मिले ॥ ३३ ॥ अथवा वस्त्र आस्तरण आदि कुप्य, और युद्धमें काम न आनेवाले अन्य सामान इसको देदेवे ॥ ३४ ॥

भूमिसंधिं याचेत प्रत्यादेयां नित्यामित्रामनपाश्रयां महाक्षयव्ययनिवेशां वास्मै भूमिं दद्यात् ॥ ३५ ॥ सर्वस्वेन वा राजधानीवर्जं संधिं याचेत बलीयसः ॥ ३६ ॥

यदि अभियोक्ता, भूमिसन्धिकी याचना करे, तो इसके लिये ऐसी भूमि देवे, जो फिर आसानीसे वापस लीजासकती हो, अथवा जिसमें हमेशा दुश्मन नज़दीक रहे, या जिसमें कोई किसी तरहका भी दुर्ग न हो, और जिसमें निवास करनेके लिये अत्यधिक धनका व्यय और पुरुषोंका क्षय होनेकी सम्भावना हो ॥ ३५ ॥ अथवा जो अत्यन्त बलवान् अभियोक्ता हो, उसको राजधानीके अतिरिक्त और अपना सर्वस्व देकर भी उससे सन्धिकी याचना करे ॥ ३६ ॥

यत्प्रसह्य हरेदन्यः तत्प्रयच्छेदुपायतः ।
रक्षेत्स्वदेहं न धनं का ह्यनित्ये धने दया ॥ ३७ ॥

इत्याबलीयसे द्वादशे ऽधिकरणे दूतकर्माणि संधियाचन
प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥ आदितः षट्त्रिंशच्छतः ॥ १३६ ॥

यदि कोई अन्य प्रबल अभियोक्ता, बलपूर्वक अपने (दुर्बल अभियुक्त राजाके) धन आदिका अपहरण करे; तो उस धन आदि सम्पत्तिको उपायके साथ अर्थात् सन्धि आदिके बहानेसे उसे ही देदेवे । धनकी अपेक्षा अपनी देहकी ही सर्वथा रक्षा करे, क्योंकि अवश्य ही नष्ट होजाने वाले धन पर दया दिखाना व्यर्थ है । यदि देह सुरक्षित रहेगी, तो नष्ट हुआ २ धन भी फिर पैदा किया जासकता है ॥ ३७ ॥

आबलीयस द्वादश अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

१६३ प्रकरण

मन्त्रयुद्ध

मति=बुद्धिके उत्कर्षको ही मन्त्र कहते हैं, उसके द्वारा युद्ध करना अर्थात् बुद्धिमत्तासे शत्रुको ठगनाही 'मन्त्रयुद्ध' कहाता है । जब शत्रु सन्धिकी याचना करनेपर भी सन्धि न करे, तो उसे मंत्रयुद्ध के द्वाराही सीधा किया जावे ; इसीलिये इस प्रकरणमें मन्त्रयुद्धका ही निरूपण किया जायगा ।

स चेत्संधौ नावतिष्ठेत ब्रूयादेनम्:—॥ १ ॥ इमे षड्वर्गवशगा राजानो विनष्टाः तेषामनात्मवतां नार्हसि मार्गमनुगन्तुम् ॥ २ ॥ धर्ममर्थं चावेक्षस्व ॥ ३ ॥

यदि प्रबल अभियोक्ता या शत्रु, सन्धिमें स्थित न रहे, अर्थात् सन्धिको स्वीकार न करे, तो उससे यह कहे:— ॥ १ ॥ देखो ये षड्वर्ग (काम, क्रोध, लोभ, मान मद हर्ष । देखो अधि. १ अध्या. ६ । किसी २ पुस्तकमें 'षड्वर्ग' के स्थानपर शत्रुषड्वर्ग' भी पाठ है । अर्थ करनेमें किसी प्रकारका भेद नहीं) के अधीन हुए २ राजा लोग नष्ट होगये । तुम्हें उन नीच राजाओंके मार्गका कभी अनुसरण न करना चाहिये ॥ २ ॥ अपने धर्म और

अर्थ की ओर अच्छी तरह देखो ; अर्थात् उनके सुरक्षित रखनेमें पूरा यत्न रक्खो ॥ ३ ॥

मित्रमुखा ह्यमित्रास्ते ये त्वां साहसमधर्ममर्थातिक्रमं च ग्राहयन्ति ॥ ४ ॥ शूरैस्त्यक्तात्मभिः सह योद्धुं साहसम् ॥ ५ ॥ जनक्षयमुभयतः कर्तुमधर्मः ॥ ६ ॥ दृष्टमर्थं मित्रमदुष्टं च त्यक्तुमर्थातिक्रमः ॥ ७ ॥

ये लोग ऊपरसे मित्र, और वास्तविक रूपमें तुम्हारे शत्रु हैं, जो तुम्हें साहस (युद्ध), अधर्म, और धन आदिका व्यय करनेके लिये प्रेरित या उत्साहित करते रहते हैं ॥ ४ ॥ अपनी देहों की या अपने आपकी कुछ पर्वाह न करनेवाले बहादुर आदमियोंके साथ युद्ध करनेके लिये, ये तुम्हें प्रोत्साहित करते हैं, यही साहस है ॥ ५ ॥ इसमें दोनों ओरकेही आदमियोंका क्षय (नाश) होता है, यही इसमें अधर्म है ॥ ६ ॥ विद्यमान धनको और अत्यन्त सज्जन मित्रको छोड़नेके लिये ये तुम्हें प्रेरणा करते हैं, यही इसमें अर्थका नाश या धनका नाश है ॥ ७ ॥

मित्रवांश्च स राजा भूयश्चैतेनार्थेन मित्राण्युद्योजयिष्यति यानि त्वा सर्वतोऽभियास्यन्ति ॥ ८ ॥ न च मध्यमोदासीनयोर्मण्डलस्य वा परित्यक्तः ॥ ९ ॥ भवांस्तु परित्यक्तो ये त्वां समुद्युक्तमुपप्रेक्षन्ते ॥ १० ॥ भूयः क्षयव्ययाभ्यां युज्यताम् ॥ ११ ॥ मित्राच्च भिद्यताम् ॥ १२ ॥ अथैनं परित्यक्तमूलं सुखेनोच्छेत्स्याम इति ॥ १३ ॥

उस राजाके बहुत मित्र हैं, और फिर वह इसी धनके द्वारा अपने मित्रोंको और भी साथ लगा लेगा ; जोकि सब मिलकर तेरे ऊपर आक्रमण करदेंगे ॥ ८ ॥ मध्यम और उदासीन राजाओंके मण्डल (समूह) ने भी उसका परित्याग नहीं किया हुआ है । अर्थात् वे भी उसका साथ देनेके लिये तैयार हैं ॥ ९ ॥ परन्तु तुम्हारा तो उन्होंने परित्याग करदिया है । जोकि युद्धके लिये तैयार हुआ २ तुम्हें देखकर अब चुपचाप इस बातकी प्रतीक्षा कर रहे हैं:— ॥ १० ॥ कि फिर तुम्हारे आदमियोंका नाश और धनका व्यय होजावे ॥ ११ ॥ और तुम अपने मित्रसे भिन्न होजाओ ॥ १२ ॥ इसप्रकार जब तुम्हारी शक्ति सर्वथा क्षीण होजाय, और तुम्हारी जड़ ढीली पड़जाय, अर्थात्

जब तुम अपने मूल स्थानको छोड़दो, तो तुम्हारा बड़ी सरलतासे उच्छेद करेंगे। ('उच्छेत्स्यामः' के स्थानपर किसी पुस्तकमें 'उच्छेत्स्यामहे' ऐसा आत्मनेपद पाठ भी है) ॥ १३ ॥

स भवान्नार्हति मित्रमुखानाममित्राणां श्रोतुं मित्राण्युद्वेजयितुममित्रांश्च श्रेयसा योक्तुं प्राणसंशयमनर्थं चोपगन्तुमिति यच्छेत् ॥ १४ ॥

इसलिये आपको यह योग्य नहीं है, कि आप, ऊपरसे मित्रता दिखानेवाले उन वास्तविक शत्रुओं की किसी भी बातको सुनें ; अपने मित्रों को खिन्न करें शत्रुओंके कल्याणके साधन बनें; अपने प्राणोंको संशयमें डालें, और अनर्थको प्राप्त हों, अर्थात् धन आदिका भी नाश करें । इसप्रकार उपदेश किये हुए राजाको, जो धन, सन्धि की शर्तके लिये तै किया हुआ हो, वह देदेवे ; और सन्धिको दृढ़ बनानेका यत्न करे ॥ १४ ॥

तथापि प्रतिष्ठमानस्य प्रकृतिकोपमस्य कारयेद्यथासंघवृत्ते व्याख्यातं योगवामने च ॥ १५ ॥ तीक्ष्णरसदप्रयोगं च ॥ १६ ॥ यदुक्तमात्मरक्षितके रक्ष्यं तत्र तीक्ष्णान्रसदांश्च प्रयुञ्जीत ॥ १७ ॥

यदि इसप्रकार उपदेश करनेपर भी वह न माने, और युद्ध करनेहीके लिये तैयार हो, तो उसके अमात्य आदि प्रकृतिजनोंको, उससे कुपित करादेवे। जैसा कि सङ्घवृत्त नामक एकादश अधिकरणमें, तथा योगवामन नामक तेरहवें अधिकरणके दूसरे अध्यायमें निरूपण किया गया है ॥ १५ ॥ और उस अभियोक्ता (आक्रमणकारी राजा) को मारनेके लिये तीक्ष्ण (छिपकर हथियारसे मारदेनेवाले) तथा रसद (भोजन या औषध आदिमें विष देकर मार देनेवाले) आदि पुरुषोंका यथायोग्य प्रयोग करे ॥ १६ ॥ तथा 'आत्मरक्षितक' नामक प्रकरणमें (देखो:—अधि. १ अध्या. २१) जिन रक्षाके योग्य स्थानोंको (अर्थात् जहां रहकर अपने आपकी रक्षा बड़ी सरलतासे की जासकती है, ऐसे स्थानोंका) निरूपण किया गया है ; वहींपर तीक्ष्ण तथा रसद पुरुषोंका यथायोग्य प्रयोग करे । अर्थात् उन्हें वहीं नियुक्त करके, उनकेही द्वारा राजाको चुपचाप छिपकर मरवा डाले ॥ १७ ॥

बन्धकीपोषकाः परमरूपयौवनाभिः स्त्रीभिः सेनामुख्यानुन्मादयेयुः ॥ १८ ॥ बहूनामेकस्यां द्वयोर्वा मुख्ययोः कामे जाते

तीक्ष्णाः कलहानुत्पादयेयुः ॥ १९ ॥ कलहे पराजितपक्षं परत्रा-त्रापगमने यात्रासाहाय्यदाने वा भर्तुर्योजयेयुः ॥ २० ॥

कुलटा स्त्रियोंका पालन पोषण करनेवाले गुप्तचर पुरुष, अत्यन्त सुन्दर रूपवती और युवती (जवान) स्त्रियोंके द्वारा, सेनाके मुख्य पुरुषोंको उन्मादयुक्त (प्रमादी) बनावे ॥ १८ ॥ जब एक ही स्त्रीमें, बहुतसे सेनामुख्योंका, अथवा दो ही का काम उत्पन्न होजावे, अर्थात जब कम से कम दो सेनामुख्य या इससे अधिक, एक ही स्त्रीको चाहने लगें, तब तीक्ष्ण पुरुष उनमें परस्पर कलह (झगड़ा) उत्पन्न करादेवें ॥ १९ ॥ उनका आपसमें झगड़ा होनेपर, जिसका पक्ष हार जावे, उसको दूसरे स्थानपर अर्थात् विजिगीषुके पक्षमें भेजदिया जावे; और उसके वहां चले जानेपर जब विजिगीषु कहीं आक्रमण करनेलगे, तब उसको (विजिगीषु भर्त्ताकी) सहायता करनेमें उसे नियुक्त कियाजावे ॥ २० ॥

कामवशान् वा सिद्धव्यञ्जनाः सांवननिकीभिरौषधीभिरति-संधानाय मुख्येषु रसं दापयेयुः ॥ २१ ॥

अथवा सेनामुख्योंके बीचमें जो पुरुष कामके वशीभूत होजावें; उनको, सिद्धके वेषमें रहनेवाले गुप्तचर पुरुष, वशीकरणमें उपयुक्त होनेका बहाना करके विशेष औषधों के द्वारा, उन्हें मारने के लिये विष खिला देवें ॥ २१ ॥

वैदेहकव्यञ्जनो वा राजमहिष्याः सुभगायाः प्रेष्यामासन्नां कामनिमित्तमर्थेनाभिवृष्य परित्यजेत् ॥ २२ ॥ तस्यैव परिचार-कव्यञ्जनोपदिष्टः सिद्धव्यञ्जनः सांवननिकीमोषधीं दद्यात्-वैदे-हकशरीरे ऽवधातव्येति ॥ २३ ॥

अब राजाको विष देनेका प्रकार बताते हैं:—व्यापारीके वेषमें रहने वाला गुप्तचर पुरुष, अति सुन्दर राजमहिषी (पटरानी) की अन्तरंग परिचारिकाको, प्रचुर धन आदि देकर अपने कामके लिये (=स्वयं उसका भोग करनेके लिये) फुसलाकर फिर उसको छोड़देवे, अर्थात् एक बार उसके पास आकर फिर न जावे ॥ २२ ॥ तदनन्तर व्यापारीके वेषमें रहनेवाले गुप्त पुरुषके नौकरके भेसमें रहनेवाले किसी पुरुषके द्वारा प्रेरणा कियाहुआ सिद्धव्यञ्जन (=सिद्धके वेषमें रहने वाला गुप्तचर पुरुष), उस महारानीकी परिचारिकाको, वशीकरणकी औषधि देवे, और उससे यह कहे, कि इस

ओषधिको अपने प्रिय व्यापारीके शरीरपर छिड़कदेना, वह तुम्हारे वशमें होजावेगा ॥ २३ ॥

सिद्धे सुभगाया अप्येनं योगमुपदिशेद्-राजशरीरे ऽवधातव्येति ॥ २४ ॥ ततो रसेनातिसंदध्यात् ॥ २५ ॥

जब यह कार्य सिद्ध होजावे (अर्थात् व्यापारीके शरीर वह ओषधि छिड़के जानेपर जब वह ऊपरसे दिखानेके लिये उसके वशमें रहने लगे), तब उस सुन्दर महारानीको भी इस वशीकरणके योगका उपदेश दिया जावे। और उससे कहा जावे, कि इस ओषधिको राजाके शरीरपर छिड़क देना, वह अवश्य तुम्हारे वशमें होजायगा ॥ २४ ॥ उसी योगमें विष मिलाकर राजाको मारडाले ॥ २५ ॥

कार्तान्तिकव्यञ्जनो वा महामात्रं राजलक्षणसंपन्नं क्रमाभिनीतं ब्रूयात् ॥ २६ ॥ भार्यामस्य भिक्षुकी-राजपत्नी राजप्रसविनी वा भविष्यसीति ॥ २७ ॥

अब महामात्रको भिन्न करनेका प्रकार बताते हैं:—अथवा कार्तान्तिक (शरीरके चिन्ह आदिको देखकर भविष्य की बात बतानेवाले) के वेषमें रहनेवाला गुप्तपुरुष महामात्र अर्थात् राजलक्षणोंसे (राजा होने की सूचना देनेवाले चिन्होंसे) युक्त व्यक्तिको, जोकि अपने ऊपर (=कार्तान्तिक पर)पूरा विश्वास रखता हो, इस प्रकार कहे, कि 'तू राजा अवश्य होजायगा' ॥ २६ ॥ और इस महामात्र की भार्याको, भिक्षुकी (भिखारिनके भेसमें रहनेवाला गुप्तचर, पुरुष या स्त्री), यह कहे, कि तू राजाकी स्त्री होगी, और राजा होने योग्य पुत्रको जनेगी'। इसप्रकार राजा होनेकी लालसासे, महामात्रका राजाके साथ विरोध होजायगा ॥ २७ ॥

भार्याव्यञ्जना वा महामात्रं ब्रूयात्—॥ २८ ॥ राजा किल मामवरोधयिष्यति ॥ २९ ॥ तवान्तिकाय पत्त्रलेख्यमाभरणं चेदं परिव्राजिकयाहृतमिति ॥ ३० ॥

अथवा महामात्र की भार्या बनकर रहनेवाली गुप्तस्त्री (बन्धकी आदि जोकि विजिगीषुकी ओरसे गुप्तचरका कार्य कररही हो), महामात्रको इसप्रकार कहे:— ॥ २८ ॥ राजा मुझको अवश्य रोकेगा, अर्थात् अपने अन्तःपुरमें लेजायगा ॥ २९ ॥ तुम्हारे लिये, राजाके दिये हुए इस लेखपत्र और आभरणको, दूती बनी हुई परिव्राजिका (भिक्षुकी या सन्यासिनीके वेषमें

रहनेवाली स्त्री) लाई है । इस निमित्तसे भी महामात्रका राजाके साथ द्वेष होजायगा ॥ ३० ॥

सूदारालिकव्यञ्जनो वा रसप्रयोगार्थं राजवचनमर्थं चास्य लोभनीयमभिनयेत् ॥ ३१ ॥

अथवा सूद (पाचक=रसोईया) या आरालिक (मांस आदि बनानेवाले) के वेषमें रहनेवाला गुप्तचर (जोकि महामात्रके यहां काम करता हो, वह), रसका अर्थात् विष आदिका प्रयोग करनेके लिये राजाके कथनको तथा लोभमें डालनेवाले राजाके द्वारा दिये जानेवाले धनको महामात्रके सामने प्रकट करे। तात्पर्य यह है, कि सूद या आरालिक, महामात्रके सामने यह बात कहे, कि हमको राजाने विष देनेके लिये कहा है, और उसके लोभके लिये प्रचुर धन देनेका वादा किया है । (इस सूत्रमें 'राजवचनमर्थं' के स्थानपर किसी २ पुस्तक में 'राजवचनादर्थं' ऐसा पाठ है; परन्तु प्रकरणानुसार इस पाठका कोई संगत अर्थ प्रतीत नहीं होता) ॥ ३१ ॥

तदस्य वैदेहकव्यञ्जनः प्रतिसंदध्यात् ॥ ३२ ॥ कार्यसिद्धिं च ब्रूयात् ॥ ३३ ॥ एवमेकेन द्वाभ्यां त्रिभिरित्युपायैरेकैकमस्य महामात्रं विक्रमायापगमनाय वा योजयेदिति ॥ ३४ ॥

जब सूद या अरालिक, महामात्रको इसप्रकार कहे, तो उनकी बात को सत्य सिद्ध करनेके लिये, व्यापारी वेषमें रहनेवाला (विष आदि बेचने वाला) गुप्तपुरुष, महामात्रके पास आकर इस बातकी साक्षी देवे ; और कहे कि 'राजाके कहनेसे मैंने तुम्हारे सूद और अरालिकको विष दिया था, यह मैं नहीं जानता कि वे किस लिये लेगये थे ॥ ३२ ॥ तथा कार्य सिद्धिका भी कथन करदे ; अर्थात इस बातको भी कहदे, कि उस विषसे बहुत जल्दीही मृत्यु होसकती है ॥ ३३ ॥ इसप्रकार विजिगीषुके सत्रीपुरुष, एक दो या तीनों उपायोंसे, इस राजाके एक २ महामात्रको, राजाके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये उत्साहित करदेवें । इसतरह यहांतक महामात्र और राजाओंके परस्पर भेद डालनेका प्रकार बताया गया ॥ ३४ ॥

दुर्गेषु चास्य शून्यपालासन्नाः सत्त्रिणः पौरजानपदेषु मैत्रीनिमित्तमावेदयेयुः ॥ ३५ ॥ "शून्यपालेनोक्ता योधाश्चाधिकरणस्थाश्च ॥ ३६ ॥ कृच्छ्रगतो राजा जीवन्नागमिष्यति न वा ॥ ३७ ॥ प्रसह्य वित्तमार्जयध्वममित्रांश्च हत" इति ॥ ३८ ॥

अब शून्यपाल (राजधानीसे राजाके बाहर चले जानेपर, पीछेसे राजरहित=शून्य राजधानी की रक्षाके लिये नियुक्त किए हुए अधिकारी पुरुष) से, नगरनिवासियोंके भेद डालनेका प्रकार बताते हैं:—इस शत्रु राजाके स्थानीय दुर्गोंमें, शून्यपालके समीप रहनेवाले सत्रीपुरुष, नगरनिवासी तथा जनपद निवासी पुरुषोंमें मैत्रीके लिये (अर्थात् शून्यपालके प्रति अनुराग उत्पन्न करनेके लिये) इसप्रकार निवेदन करें:— ॥ ३५ ॥ शून्यपालने सब योद्धाओं और कचहरीके सब बड़े अधिकारियोंको (अर्थात् न्यायाधीश आदिको इसप्रकार कहा है, कि:—॥ ३६ ॥ राजा इस समय बड़ी कठिनतामें फंसा हुआ है ; कहा नहीं जासकता, कि वह जीता भी आसकेगा या नहीं ॥३७॥ इसलिये आप लोग, बलपूर्वक प्रजासे अच्छी तरह धन वसूल करें, और जो आपके साथ शत्रुता रखते हों, उनको आप निस्सन्देह मारडालें ॥ ३८ ॥

बहुलीभूते तीक्ष्णाः पौरान्निशास्वाहारयेयुर्मुख्यांश्चाभिहन्युः ॥ ३९ ॥ एवं क्रियन्ते ये शून्यपालस्य न शुश्रूषन्ते इति ॥४०॥ शून्यपालस्थानेषु च सशोणितानि शस्त्रवित्तबन्धनान्युत्सृजेयुः ॥ ४१ ॥ ततः सत्त्रिणः शून्यपालो घातयति विलोपयति चेत्यावेदयेयुः ॥ ४२ ॥ एवं जानपदान्समाहर्तुर्भेदयेयुः ॥ ४३ ॥

जब शून्यपालकी यह आज्ञा सर्वत्र फैल जावे, तब तीक्ष्णपुरुष, नगरनिवासियोंको रातमें लूटनेके लिये अपने आदमियोंको प्रेरणा करदें । और नगरके किन्हीं मुख्य व्यक्तियोंको मरवा डालें ॥ ३९ ॥ तथा सर्वत्र इस बातको प्रसिद्ध करदें, कि जो लोग शून्यपालकी शुश्रूषा नहीं करते, अर्थात् उसके अनुगामी नहीं बनते; उनकी यही हालत कीजाती है ॥ ४० ॥ और खूनसे भरे हुए हथियार धन तथा रस्सी आदिको, शून्यपालके स्थानमें छोड़ देवें ॥ ४१ ॥ तदनन्तर सत्री पुरुष, इस बातको प्रसिद्ध करदें, कि यह शून्यपालही सब लोगोंको मरवाता तथा लुटवाता है । इसतरह सत्री, शून्यपाल तथा प्रजाजनोंमें परस्पर झगड़ा डलवा देवें ॥ ४२ ॥ और इसीप्रकार समाहर्त्ता (कलक्टर=प्रजाओंसे कर वसूल करने वाला अधिकारी) सेभी, जनपदनिवासी पुरुषोंको भिन्न करा देवें । अर्थात् इनकाभी आपसमें विरोध डलवा देवें ॥ ४३ ॥

समाहर्तृपुरुषांस्तु ग्राममध्येषु रात्रौ तीक्ष्णा हत्वा ब्रूयुः ॥४४॥ एवं क्रियन्ते ये जनपदमधर्मेण बाधन्त इति ॥ ४५ ॥ समुत्पन्ने

दोषे शून्यपालं समाहर्तारं वा प्रकृतिकोपेन घातयेयुः ॥ ४६ ॥ तत्कुलीनमवरुद्धं वा प्रतिपादयेयुः ॥ ४७ ॥

प्रजाजनोंसे समाहर्त्ताको भिन्न करनेका यह प्रकार है:—समाहर्त्ता पुरुषोंको, गांवके बीचमें रातके समय मारकर तीक्ष्ण पुरुष इसप्रकार कहें ॥ ४४ ॥ जो लोग जनपदको अर्थात् प्रजावर्गको अधर्मसे कष्ट पहुंचाते हैं, उनकी यही अवस्था कीजाती है। (इस बातको सुनकर अन्य समाहर्त्ताभी प्रजावर्गसे भिन्न होजाते हैं ॥ ४५ ॥ जब शून्यपाल और समाहर्त्ता पुरुषोंके ये दोष सर्वत्र विस्तृत होजावें, तब प्रकृतिके कोपके कारण, सत्री पुरुष उनको दुर्दशापूर्वक जानसे मारडालें ॥ ४६ ॥ तथा शत्रुके किसी सम्बन्धी बन्धुबान्धव आदिको या नज़रबन्द राजपुत्रकोही राजसिंहासन पर बैठा देवें ॥ ४७ ॥

अन्तःपुरपुरद्वारद्रव्यधान्यपरिग्रहान् ।
दहेयुस्तांश्च हन्युर्वा ब्रूयुरस्यार्तवादिनः ॥ ४८ ॥

इत्याबलीयसे द्वादशे ऽधिकरणे दूतकर्माणि वाक्ययुद्धं मन्त्रयुद्धं द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥ आदितः सप्तत्रिंशच्छतः ॥ १३७ ॥

तदनन्तर तीक्ष्णपुरुष, इस शत्रु राजाके अन्तःपुर पुरद्वार (गोपुर= नगरका प्रधान द्वार), द्रव्यपरिग्रह (जिन स्थानोंमें लकडी वस्त्र आदि भरे हुए हों), और धान्यपरिग्रह (जिन स्थानोंमें अन्न भरा हुआ हो, ऐसे) स्थानोंको जला देवें; और उन स्थानोंके रक्षकोंको मारडालें। तथा स्वयं इस घटनाके लिये बहुत दुःख प्रकट करते हुए, इस कामको नगरनिवासी और जनपद-निवासी पुरुषोंकाही किया हुआ बतलावें ॥ ४८ ॥

आबलीयस द्वादश अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त।

तीसरा अध्याय

१६४–१६५ प्रकरण

सेनापतियोंका वध और मित्र आदि राज-मण्डलका प्रोत्साहन

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें सेना-मुख्य अर्थात सेनाके अध्यक्ष (=अधिकारी) पुरुषोंके वध करनेका

प्रकार बताया जायगा । अथवा सूत्रके 'सेना' शब्दसे सेनाके अध्यक्ष या सेनापतियोंका और 'मुख्य' शब्दसे महामात्रोंका ग्रहण करना चाहिये; पहिले प्रकरणमें इन दोनोंकेही वधका प्रकार बताया जायगा। और दूसरे प्रकरणमें मित्र आदि दश प्रकारके राजमण्डलको प्रोत्साहित करनेके सम्बन्धमें निरूपण किया जायगा।

राज्ञो राजवल्लभानां चासन्नाः सत्त्रिणः पत्त्यश्वरथद्विपमुख्यानां राजा क्रुद्ध इति सुहृद्विश्वासेन मित्रस्थानीयेषु कथयेयुः ॥ १ ॥

राजा तथा राजाके प्रिय पुरुषोंके समीप मित्र बनकर रहनेवाले सत्री पुरुष, पैदल, घुड़सवार, रथसवार तथा हाथीसवार सेनाओंके अध्यक्षों और महामात्रोंके मित्ररूप (अथवा मित्रोंके) स्थानोंमें जाकर मित्रसमान विश्वाससे यह कहें, कि सेनाध्यक्ष आदिके प्रति राजा कुपित होगया है ॥ १ ॥

बहुलीभूते तीक्ष्णाः कृतरात्रिचारप्रतीकारा गृहेषु स्वामिवचनेनागम्यतामिति ब्रूयुः ॥ २ ॥ तान्निर्गच्छत एवाभिहन्युः ॥ ३ ॥ स्वामिसंदेश इति चासन्नान् ब्रूयुः ॥ ४ ॥

जब राजाके कुपित होनेका प्रवाद सब जगह फैल जावे, तब तीक्ष्ण पुरुष रातमें भ्रमण करनेके दोषका प्रतीकार करके (अर्थात् किसी प्रकारसे इस बातकी अनुमति पाकर, कि वे रातमें यथेच्छ घूम सकते हैं), घरोंमें जाकर 'आप लोगोंको स्वामी की आज्ञासेही स्वामीके पास आना चाहिये' इसप्रकार सेनाध्यक्ष आदिको कहें ॥ २ ॥ और उनको निकलतेही हुए मार डालें ॥ ३ ॥ तदनन्तर मित्रके वेषमें रहनेवाले सत्रीपुरुषोंको, तीक्ष्ण पुरुष कहें, कि हमने यह सब काम स्वामीकी ही आज्ञासे किया है ॥ ४ ॥

ये च प्रवासितास्तान्सत्त्रिणो ब्रूयुः ॥ ५ ॥ एतत्तद्यदस्माभिः कथितं जीवितुकामेनापक्रान्तव्यमिति ॥ ६ ॥

तथा राजाको छोड़कर पहिलेही गये हुए सेनापति आदिको सत्रीपुरुष कहें, कि:—॥ ५ ॥ देखो, यह वही बात आगई, जो कि हम पहिले कहते थे, कि जो अपनी जान बचाना चाहे, वह यहांसे भाग जावे; अब वही बात ठीक होगई है। (ऐसा कहनेसे, जो सेनापति आदि अभीतक राजाकी सेवा कररहे हैं, वे भी भाग जानेके लिये तैयार किये जासकते हैं। और इस तरह शत्रुको दुर्बल बनाया जासकता है ॥ ६ ॥

येभ्यश्च राजा याचितो न ददाति तान्सत्त्रिणो ब्रूयुः ॥७॥ उक्तः शून्यपालो राज्ञा ॥ ८ ॥ अयाच्यमर्थमसौ चासौ मा याचते ॥ ९ ॥ मया प्रत्याख्याताः शत्रुसंहिताः ॥ १० ॥ तेषामुद्धरणे प्रयतस्वेति ॥ ११ ॥ ततः पूर्ववदाचरेत् ॥ १२ ॥

कोई वस्तु मांगनेपर राजा जिनके लिये उस वस्तुको नहीं देता है; सत्री उनको कहेः— ॥ ७ ॥ राजाने शून्यपालको कह दिया है, किः—॥ ८ ॥ अमुक २ पुरुष मुझसे अयाच्य वस्तुको (जो वस्तु मुझसे नहीं मांगनी चाहिये ऐसी वस्तुको) मांगता है ॥ ९ ॥ मैंने उनको मना करादिया है, इसलिये वे शत्रुसे जाकर मिलगये हैं ॥ १० ॥ उनको उच्छेद करनेमें तुम अच्छी तरह प्रयत्न करो ॥ ११ ॥ ऐसा कहनेके अनन्तर, पहिलेकी तरहही सब काम किया जाय । अर्थात् तीक्ष्ण पुरुष, रातमें कुछ आदमियोंको मारडालें; तथा जिनको न मारें, उनको वह वध दिखलाकर राजाके पाससे भगादेवें । इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिये ॥ १२ ॥

येभ्यश्च राजा याचितो ददाति तान्सत्त्रिणो ब्रूयुः ॥ १३ ॥ उक्तः शून्यपालो राज्ञा ॥ १४ ॥ अयाच्यमर्थमसौ चासौ च मा याचते ॥ १५ ॥ तेभ्यो मया सोऽर्थो विश्वासार्थं दत्तः, शत्रुसंहिताः ॥ १६ ॥ तेषामुद्धरणे प्रयतस्वेति ॥ १७ ॥ ततः पूर्ववदाचरेत् ॥ १८ ॥

कोई वस्तु मांगनेपर राजा जिनको देदेता है, उनसे सत्री इसप्रकार कहेः—॥ १३ ॥ राजाने शून्यपालसे कह दिया है, कि—॥ १४ ॥ अमुक २ पुरुष मुझसे अयाच्य वस्तुकी याचना करते थे ॥ १५ ॥ मैंने उनको वह वस्तु विश्वासके लिये देदी है (अर्थात् जिससे कि उनका मुझपर विश्वास बनारहे, इसलिये वह वस्तु मैंने उनको देदी है), परन्तु वे आदमी, शत्रुसे मिले हुए हैं ॥ १६ ॥ इसीलिये उनको उच्छेद करनेमें तुम्हें अच्छी तरह प्रयत्न करना चाहिये ॥ १७ ॥ इतना कहनेके अनन्तर पूर्ववत् आचरण किया जावे । (देखो पिछला, सूत्र १२) ॥ १८ ॥

ये चैनं याच्यमर्थं न याचन्ते तान्सत्त्रिणो ब्रूयुः ॥ १९ ॥ उक्तः शून्यपालो राज्ञा ॥ २० ॥ याच्यमर्थमसौ चासौ च मा न याचते ॥ २१ ॥ किमन्यत् स्वदोषशङ्कितत्वात् ॥ २२ ॥

तेषामुद्धरणे प्रयतस्वेति ॥ २३ ॥ ततः पूर्ववदाचरेत् ॥ २४ ॥ एतेन सर्वः कृत्यपक्षो व्याख्यातः ॥ २५ ॥

जो पुरुष (महामात्र आदि) राजासे मांगने योग्य पदार्थकोभी नहीं मांगते हैं; उन पुरुषोंको सत्री इसप्रकार कहें:—॥ १९ ॥ राजाने शून्यपाल-को कह दिया है, कि:—॥ २० ॥ अमुक २ पुरुष, मुझसे मांगने योग्य पदार्थ-कोभी नहीं मांगता है; ॥ २१ ॥ इसका कारण सिवाय इसके और क्या हो सकता है, कि वे पुरुष अपने दोषोंके कारण मुझसे शङ्कित रहते हैं, इसीलिये मेरे पास नहीं आसकते ॥ २२ ॥ तुम उनका उच्छेद करनेमें पूरा प्रयत्न करो ॥ २३ ॥ यह कहनेके अनन्तर पूर्ववतही सब व्यवहार करना चाहिये ॥ २४ ॥ इससे सम्पूर्ण कृत्यपक्ष (क्रुद्ध, लुब्ध भीत आदि । देखो–अधि० १ अध्या० १४) के भेदक प्रकारकाभी व्याख्यान समझ लेना चाहिये ॥ २५ ॥

प्रत्यासन्नो वा राजानं सत्त्री ग्राहयेत् ॥ २६ ॥ असौ चासौ च ते महामात्रः शत्रुपुरुषैः संभाषत इति ॥ २७ ॥ प्रतिपन्ने दूष्यानस्य शासनहरान्दर्शयेत् ॥ २८ ॥ एतत्तदिति ॥ २९ ॥

अथवा राजाके समीप रहने वाला सत्री (राजाके विश्वस्त पुरुषोंमें कपटपूर्वक प्रविष्ट हुआ २ सत्री), राजाको इसप्रकार समझावे:—॥ २६ ॥ अमुक २ महामात्र तुम्हारे शत्रु पुरुषोंके साथ बातचीत करता है ॥ २७ ॥ जब राजा, सत्रीकी इतनी बातको मान लेवे; तो सत्री, इस राजाके दूष्यपुरुषों-को महामात्रका संदेश ले जाते हुए दिखलावे ॥ २८ ॥ और कहे, कि देखो यही वह बात है ; अर्थात् मैं जो कुछ आपसे पहिले कहता था, वह इस तरह ठीक है; यह दूष्य पुरुष, अमुक महामात्रके संदेशको शत्रुके पास लेजाता है । सत्री, इसप्रकार महामात्रोंसे राजाका भेद करवादेवे ॥ २९ ॥

सेनामुख्यप्रकृतिपुरुषान्वा भूम्या हिरण्येन वा लोभयित्वा स्वेषु विक्रमयेदपवाहयेद्वा ॥ ३० ॥ यो ऽस्य पुत्रः समीपे दुर्गे वा प्रतिवसति तं सत्त्रिणोपजापयेत् ॥ ३१ ॥

अथवा सत्री; सेनाके अध्यक्षों, अमात्य आदि प्रकृतियों और राजाके अन्य नौकर चाकरोंको, भूमि तथा धन आदिसे लोभ देकर (अर्थात् मैं तुमको भूमि या हिरण्य खूब दूंगा, इसप्रकार उनको लोभमें फंसाकर), उनके अपनेही आदमियों पर उनके द्वारा चढ़ाई करवादेवे; अथवा उनको राजाके पाससे कहीं दूसरी जगह भगा देवे ॥ ३० ॥ और इस राजाका जो पुत्र,

समीप राजधानीमेंही रहता है, या अन्तपाल आदिके पास दुर्गमें रहता है; उस राजपुत्रको सत्रीके द्वारा फुसलावे ॥ ३१ ॥

आत्मसंपन्नतरस्त्वं पुत्रः तथाप्यन्तर्हितः ॥ ३२ ॥ तत्किमुपेक्षसे ॥ ३३ ॥ विक्रम्य गृहाण ॥ ३४ ॥ पुरा त्वा युवराजो विनाशयतीति ॥ ३५ ॥

उसको फुसलाने का (=उपजाप करनेका) यह ढंग समझना चाहिये; उससे कहे, कि:—राजाने जिस पुत्रको युवराज बनाया हुआ है, तुम उसकी अपेक्षा अपने व्यक्तित्वमें बहुत बढ़े चढ़े हो; फिर भी राजाने तुमको नियन्त्रणमें रक्खा है, अर्थात् नज़रबन्द किया हुआ है ॥ ३२ ॥ अब तुम इस बातकी उपेक्षा (लापर्वाही) क्यों करते हो ॥ ३३ ॥ राजा पर चढ़ाई करो, और अपने अधिकारको लेलो; अर्थात् राज्यको अपने अधीन करलो ॥ ३४ ॥ नहीं तो सम्भव है, कि जो इस समय युवराज बना हुआ है, वह तुमकोही पहिले नष्ट कर डालेगा ॥ ३५ ॥

तत्कुलीनमवरुद्धं वा हिरण्येन प्रतिलोभ्य ब्रूयात् ॥ ३६ ॥ अन्तर्बलं प्रत्यन्तस्कन्धमन्यं वास्य प्रमृद्गीहीति ॥ ३७ ॥ आटविकानर्थमानाभ्यामुपगृह्य राज्यमस्य घातयेत् ॥ ३८ ॥

अथवा शत्रुकेही वंशमें उत्पन्न हुए किसी अन्य विशेष व्यक्तिको (बन्धु बान्धव आदिको) या अवरुद्ध अर्थात् नज़रबन्द राजपुत्र आदिको, सत्री धन आदिका लोभ देकर इसप्रकार कहे:—॥ ३६ ॥ आप राजाके मौलबलको, या देशकी सीमा पर रहने वाली सेनाको, अथवा अन्य किसी सेनाको नष्ट करडालें । (इस सूत्रमें 'अन्यं' पदके स्थानपर किसी २ पुस्तकमें 'अन्तं' भी पाठ है। परन्तु प्रकरणानुसार इस पाठका कोई संगत अर्थ प्रतीत नहीं होता) ॥ ३७ ॥ तथा आटविकोंको धन और सत्कारके द्वारा अपने वशमें करके, शत्रुके राज्यको इन्हींके द्वारा नष्ट करवा डाले । यहांतक सेनामुख्य व्यक्तियोंके वधके सम्बन्धमें निरूपण करदिया गया ॥ ३८ ॥

पार्ष्णिग्राहं वास्य ब्रूयात् ॥ ३९ ॥ एष खलु राजा मामुच्छिद्य त्वामुच्छेत्स्यति ॥ ४० ॥ पार्ष्णिमस्य गृहाण ॥ ४१ ॥ त्वयि निवृत्तस्याहं पार्ष्णिं ग्रहीष्यामीति ॥ ४२ ॥

अब राजमण्डलके प्रोत्साहनके सम्बन्धमें निरूपण किया जायगा:—सबसे प्रथम पार्ष्णिग्राहके प्रोत्साहनके सम्बन्धमें कहते हैं:—शत्रुके पार्ष्णिग्राह

(देखो अधि. ७, अध्या. १३) को विजिगीषु इसप्रकार कहे:—॥ ३९ ॥ देखो, यह राजा, मेरा उच्छेद करके, तुम्हारा भी उच्छेद अवश्य करदेगा ॥ ४० ॥ इसलिये तुम इसकी पार्ष्णिका ग्रहण करो, अर्थात् पीछेसे इसके ऊपर हमला करो ॥ ४१ ॥ जब यह इस बातको देखकर तुम्हारी ओर आक्रमण करेगा, तो उस समय मैं इसकी पार्ष्णिका ग्रहण करूंगा ; अर्थात् मैं इसके पीछेकी ओरसे हमला करूंगा ॥ ४२ ॥

मित्राणि वास्य ब्रूयात् ॥ ४३ ॥ अहं वः सेतुः ॥ ४४ ॥ मयि विभिन्ने सर्वानेष वो राजा प्लावयिष्यतीति ॥ ४५ ॥ संभूय वास्य यात्रां विहनाम इति ॥ ४६ ॥

अब मित्रोंके प्रोत्साहनके सम्बन्धमें कहते हैं:—अथवा इसके मित्रोंको विजिगीषु इसप्रकार कहे:—॥ ४३ ॥ मैंही तुम्हारा सेतु अर्थात् पुल हूं। तात्पर्य यह है, कि जैसे प्राणियोंको जलसे बचानेके लिये पुल एक साधन होता है, इसीप्रकार शत्रुके आक्रमणसे बचानेमें, आप लोगोंके लिये मैंही एक साधन हूं ॥ ४४ ॥ मेरे नष्ट होजानेपर, यह शत्रु राजा, आप सबको भी नष्ट करडालेगा ॥ ४५ ॥ इसलिये आओ, हम सब मिलकर इसके आक्रमणको विफल करें ॥ ४६ ॥

तत्संहतानामसंहतानां च प्रेषयेत् ॥ ४७ ॥ एष खलु राजा मामुत्पाट्य भवत्सु कर्म करिष्यति ॥ ४८ ॥ बुध्यध्वम्, अहं वः श्रेयानभ्यवपत्तुमिति ॥ ४९ ॥

तदनन्तर विजिगीषु, शत्रुके साथ मिलकर रहनेवाले, तथा उससे पृथक् रहनेवाले सबही राजाओंके पास, निम्नलिखित समाचार (संदेश) भेजे ॥ ४७ ॥ निश्चयही यह अमुक राजा मेरा उच्छेद करके, आपका भी उच्छेद करेगा। अर्थात् आपके ऊपर आक्रमण करके, आप लोगोंको भी नष्ट कर डालेगा ॥ ४८ ॥ इसलिये आप लोग विचार करें, और यह समझें, कि आपत्तिके समयमें, आप लोगोंके द्वारा मैं अवश्यही रक्षा किये जाने योग्य हूं। अर्थात् इस आपत्कालमें आप लोगोंको मेरी अवश्य रक्षा करनी चाहिये।.४९॥

मध्यमस्य प्रहिणुयादुदासीनस्य वा पुनः ।
यथासन्नस्य मोक्षार्थं सर्वस्वेन तदर्पणम् ॥ ५० ॥

इत्याबलीयसे द्वादशे ऽधिकरणे सेनामुख्यवधः मण्डलप्रोत्साहनं च तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥ आदितो ऽष्टात्रिंशच्छतः ॥ १३८ ॥

दुर्बल राजा, बलवान् अभियोता के आक्रमणसे बचनेके लिये; मध्यम उदासीन और अपने समीप रहनेवाले सबही सामन्तोंके पास इसप्रकारका सन्देश भेजे, कि मैं सर्वथा आपही लोगोंके अर्पण हूं। मैं अपना सर्वस्व देकर भी आप लोगोंके आश्रयसे पृथक् नहीं होना चाहता। जब मैं सर्वस्वका शर्त लगाकर आपकेही अर्पण होचुका हूं, तो आप लोगोंको सर्वात्मना मेरी रक्षा करनी चाहिये॥५०।

आबलीयस द्वादश अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त।

चौथा अध्याय

१६६-१६७ प्रकरण

शस्त्र, अग्नि तथा रसोंका गूढप्रयोग, और वीवध, आसार तथा प्रसारका नाश।

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं। जब प्रोत्साहित करनेपर भी राजमण्डल, सहायताके लिये तैयार न हो, उस समय विजिगीषु को, हथियार, आग तथा विष आदिके गूढप्रयोग करके शत्रुका नाश करना चाहिये; पहिले प्रकरणमें हथियार आदिके गूढप्रयोगोंकाही निरूपण किया जायगा। दूसरे प्रकरणमें, शत्रुके वीवध आसार और प्रसारका किसप्रकार नाश करना चाहिये, इस बातका निरूपण होगा।

ये चास्य दुर्गेषु वैदेहकव्यञ्जनाः, ग्रामेषु गृहपतिकव्यञ्जनाः, जनपदसंधिषु गोरक्षकतापसव्यञ्जनास्ते सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धानां पण्यागारपूर्वं प्रेषयेयुः ॥ १ ॥ अयं देशो हार्य इति ॥ २ ॥

शत्रुके स्थानीय दुर्गोंमें (राजधानी आदिमें), व्यापारीके वेषमें जो विजिगीषुके गुप्तचर हों; इसीप्रकार जो गांवोंमें गृहपति (गृहस्थ) के वेषमें हों; तथा सरहदी इलाकोंमें जो ग्वाले और तपस्वियोंके वेषमें गुप्तचर हों; वे गुप्तचर, शत्रुके साथ स्वभावसेही विरोध करनेवाले सामन्त आटविक शत्रुके बन्धु बान्धव तथा नजरबन्द राजपुत्र आदिके समीप कुछ भेंट करनेके सामान के साथ २ निम्नलिखित सन्देश भिजवावें ॥ १ ॥ वह सन्देश इस प्रकार है:—'शत्रुके अमुक प्रदेशको, दुर्बल होनेके कारण, आप लोग हरण करसकते हैं ॥ २ ॥

आगतांश्चैषां दुर्गे गूढपुरुषानर्थमानाभ्यामभिसत्कृत्य प्रकृतिच्छिद्राणि प्रदर्शयेयुः ॥ ३ ॥ तेषु तैः सह प्रहरेयुः ॥ ४ ॥

इस सन्देशको पाकर, जब शत्रुके दुर्गमें, सामन्त आदिके गूढपुरुष आजावें; तो उनको प्रथम धन, और सत्कार आदिसे अच्छी तरह सत्कृत करके, फिर शत्रुकी अमात्य आदि प्रकृतियोंके दोषोंको, उनके सामने अच्छी तरह दिखला देवें ॥ ३ ॥ जब अमात्य आदि प्रकृतियोंके दोष उन्हें मालूम होजांय, तब उन सामन्त आदिके साथही, अर्थात् उनकी सहायता लेकर, ये लोग शत्रुपर आक्रमण करदेवें ॥ ४ ॥

स्कन्धावारे वास्य शौण्डिकव्यञ्जनः पुत्रमभियुक्तं स्थापयित्वावस्कन्दकाले रसेन प्रवासयित्वा नैषेचनिकमिति मदनरसयुक्तान्मद्यकुम्भांच्छतशः प्रयच्छेत् ॥ ५ ॥

अथवा शत्रुकी छावनीमें, शराब बेचने वालेके वेषमें एक सत्री, किसी वध्य पुरुषको अपना पुत्र बनाकर, रात्रिके अवसान कालमें विष आदिके द्वारा उसे मारकर; मृत व्यक्ति की तृप्तिके लिये यह 'नैषेचनिक' द्रव्य है, ऐसा बहाना करके मादकता उत्पन्न करने वाले विषसे युक्त मद्यके सैकड़ों घड़ों को वहां दे डाले। तात्पर्य यह है कि अपने मृत पुत्रके निमित्त, सैकड़ों घड़े विष युक्त शराब, दानके तौर पर फौजियों को पिला देवे। जिससे वे मरजावेंगे, और शत्रुकी सेनाकी शक्ति घट जावेगी ॥ ५ ॥

शुद्धं वा मद्यं माद्यं वा मद्यं दद्यादेकमहः ॥ ६ ॥ उत्तरं रससिद्धं प्रयच्छेत् ॥ ७ ॥ शुद्धं वा मद्यं दण्डमुख्येभ्यः प्रदाय मदकाले रससिद्धं प्रयच्छेत् ॥ ८ ॥

अथवा उन लोगोंके विश्वासके लिये पहिले विष रहित मद्य देवें। अथवा पहिले दिन मद्य का चौथाई हिस्सा विष मिलाकर देवे ॥ ६ ॥ तदनन्तर पर्याप्त विषसे युक्त मद्य देवे ॥ ७ ॥ अथवा सेनाके मुखिया अर्थात् अध्यक्षोंको पहिले विषरहित मद्य देवे, (क्योंकि प्रायः ये लोग पहिले किसी और आदमी को पिलाकर फिर अपने आप पीते हैं, इस लिये पहिले इनको विषरहित ही मद्य देवे), अनन्तर जब ये शराबसे बेहोश होने लगें, तब विष मिली हुई शराब देदेवे ॥ ८ ॥

दण्डमुख्यव्यञ्जनो वा पुत्रमभित्यक्तमिति समानम् ॥ ९ ॥ पक्वमांसिकौदनिकशौण्डिकापूपिकव्यञ्जना वा पण्यविशेषमवघो-

षयित्वा परस्परसंघर्षेण कालिकं समर्घतरमिति वा परानाहूय रसेन स्वपण्यान्यपचारयेयुः ॥ १० ॥

अथवा सेनाके मुखियाके वेषमें सत्री, किसी वध्य को अपना पुत्र बनाकर शेष सब काम पहिले ही की तरह करे ॥ ९ ॥ अथवा पका मांस, पका अन्न, शराब तथा चटपटे पुए या पकौड़े आदि बेचने वालेके वेषमें सत्री, एक दूसरे की स्पर्धासे अपनी २ दुकानों की खूब तारीफ करके बहुत थोड़ा तथा फिरभी कालान्तरमें मूल्य लेन का वादा करके, शत्रुके आदमियों को बुलाकर विषसे युक्त अपने सब सौदे को उन्हें दे डाले ॥ १० ॥

सुराक्षीरदधिसर्पिस्तैलानि वा तद्व्यवहर्तृहस्तेषु गृहीत्वा स्त्रियो बालाश्च रसयुक्तेषु स्वभाजनेषु परिकिरेयुः ॥ ११ ॥ अनेनार्घेण विशिष्टं वा भूयो दीयतामिति तत्रैवावकिरेयुः ॥ १२ ॥

शराब दूध दही घी तथा तेल को, इनका व्यवहार करने वाले पुरुषों के हाथोंसे लेकर स्त्री तथा बालक, अपने विषयुक्त बर्तनोंमें लौटलेवें ॥ ११ ॥ और फिर उनके साथ यह झगड़ा करें, कि अमुक वस्तु को इतने ही मूल्यमें हमको दो, नहीं तो हम तुम्हारा कुछभी सामान न खरीदेंगे । जब वे व्यवहर्ता पुरुष न मानें तो उन शराब दूध आदि वस्तुओं को फिर उन्हींके बर्तनोंमें लौट देवें, ऐसा करनेसे वे सब चीजें विषयुक्त हो जावेंगी ॥ १२ ॥

एतान्येव वैदेहकव्यञ्जनाः पण्यविक्रयेणाहर्तारो वा हस्त्यश्वानां विधायवसेषु रसमासन्ना दद्युः ॥ १३ ॥

फिर व्यापारीके वेषमें रहने वाले सत्री, अथवा शराब आदि सौदेके बेचने के बहानेसे लाने वाले अन्य व्यक्ति इन्हीं सब विषयुक्त वस्तुओं को लाकर हाथी और घोड़ोंके खाने योग्य अन्न तथा घास आदिमें उनको विषरूप से मिलाकर देदेवें । ये व्यापारी प्रायः छावनीके साथ ही रहने वाले होते हैं ॥ १३ ॥

कर्मकरव्यञ्जना वा रसाक्तं यवसमुदकं वा विक्रीणीरन् ॥ १४ ॥ चिरसंसृष्टा वा गोवाणिजका गवामजावीनां वा यूथान्यवस्कन्दकालेषु परेषां मोहस्थानेषु प्रमुञ्चेयुः ॥ १५ ॥

अथवा मजदूरके भेसमें रहने वाले गुप्तचर, विषसे युक्त घास अथवा जलको बेचें ॥ १४ ॥ अथवा चिरकालसे मित्र बने हुए, गौओं का व्यापार करने वाले सत्री, अपनी गाय बकरी तथा भेड़ोंके झुण्डोंको, भरी रात्रिके समय

में शत्रुओंके मोह अवस्था को प्राप्त हो जाने पर उनकी व्याकुलता बढ़ानेके निमित्त छोड़देवें ॥ १५ ॥

अश्वखरोष्ट्रमहिषादीनां दुष्टांश्च तद्व्यञ्जना वा चुचुन्दरीशोणिताक्ताक्षान् ॥१६॥ लुब्धकव्यञ्जना वा व्यालमृगान्पञ्जरेभ्यः प्रमुञ्चेयुः ॥१७॥ सर्पग्राहा वा सर्पानुग्रविषान् ॥ १८ ॥ हस्तिजीविनो वा हास्तिनः ॥१९॥ अग्निजीविनो वाग्निमवसृजेयुः ॥२०॥

इसी प्रकार घोड़ा गधा ऊंट तथा भैंस आदि जानवरोंमेंसे जो दुष्ट अर्थात् कटखने मरखने या उन्मत्त हों, उनको, उनके व्यापारी वेषमें रहने वाले सत्री उनकी आंखोंमें छछूंदर का खून आंज कर छोड़देवें ॥ १६ ॥ शिकारीके वेषमें रहने वाले सत्री, अपने हिंसक जंगली जानवरों को पिंजड़ोंसे छोड़देवें ॥ १७ ॥ इसी तरह सांपों को पकड़ने वाले, अपने तीव्र विष वाले सांपों को; ॥ १८ ॥ और हाथियोंसे जीविका करने वाले (अर्थात् उनका व्यापार आदि करने वाले) सत्री अपने हाथियों को छोड़देवें । यह सब काम शत्रुकी सेना को व्याकुल करनेके लिये किया जाता है । ऐसी आकुलतामें शत्रु पर आक्रमण करके विजिगीषु उसे हरा देता है ॥ १९ ॥ और इसी प्रकार जो गुप्तचर, अग्निसे अपनी जीविका करते हों, वे (रसोईये, लुहार आदि) अपनी अग्नि को छोड़देवें । अर्थात् शत्रुके आदमियोंके मदोन्मत्त होने पर छावनीमें आग लगा देवें ॥ २० ॥

गूढपुरुषा वा विमुखान्पत्त्यश्वरथद्विपमुख्यानभिहन्युः ॥२१॥ आदीपयेयुर्वा मुख्यावासान् ॥ २२ ॥ दूष्यामित्राटविकव्यञ्जनाः प्रणिहिताः पृष्ठाभिघातमवस्कन्दप्रतिग्रहं वा कुर्युः ॥ २३ ॥ वनगूढा वा प्रत्यन्तस्कन्धमुपनिष्कृष्याभिहन्युः ॥ २४ ॥

अथवा गूढपुरुष, विमुख हुए २ पैदल घुड़सवार रथसवार तथा हाथीसवार सेनाओंके मुखियाओं अर्थात् अध्यक्षों को मार डालें ॥ २१ ॥ अथवा अध्यक्षोंके निवास स्थानों में आग लगावें ॥ २२ ॥ अथवा दूष्य शत्रु या आटविक के वेषमें रहते वाले गूढपुरुष, लौटी हुई सेनाके पीछे की ओरसे आक्रमण करें; अथवा सोते समय उनको नष्ट कर डालें; या युद्ध से लौटते समय उनका फिर मुकाबला करें ॥ २३ ॥ अथवा वनमें छिपकर रहने वाले गूढपुरुष, सरहद्दी इलाकों की रक्षाके लिये रक्खी हुई सेनाको किसी बहानेसे अपनी ओर बुलाकर मार डालें । यहां तक शस्त्र अग्नि तथा विषके प्रयोगों का निरूपण कर दिया गया ॥ २४ ॥

एकायने वीवधासारप्रसारान्वा ॥ २५ ॥ ससङ्केतं वा रात्रि-युद्धे भूरितूर्यमाहत्य ब्रूयुः ॥ २६ ॥ अनुप्रविष्टाः स्मो लब्धं राज्यमिति ॥ २७ ॥ राजावासमनुप्रविष्टा वा संकुलेषु राजानं हन्युः ॥ २८ ॥

अब इसके आगे वीवध आसार तथा प्रसारके नाशका प्रतिपादन किया जायगा:-जब वीवध आसार और प्रसार को किसी एक तंग रास्तेसे लेजाया जारहा हो, तो उन्हें नष्टकर दिया जावे। (धान्य आदिकी प्राप्तिको वीवध, मित्रसेनाकी प्राप्तिको आसार, और छावनीमें लकड़ी घास आदिके पहुंचनेको प्रसार कहते हैं) ॥ २५ ॥ रात्रिके युद्धमें, विशेष संकेतोंके साथ बाजोंको खूब बजाते हुए इस प्रकार कहें:—॥ २६ ॥ 'हम लोग शत्रुदलको चीरकर भीतर प्रविष्ट होगये हैं, हमने राज्य लेलिया है' इत्यादि ॥ २७ ॥ अथवा राजाके निवासस्थानमें प्रविष्ट होकर, भीड़में राजाको मारडालें ॥ २८ ॥

सर्वतो वा प्रयातमेनं म्लेच्छाटविकदण्डचारिणः सत्त्रापाश्रयाः स्तम्भवाटापाश्रया वा हन्युः ॥ २९ ॥ लुब्धकव्यञ्जना वावस्कन्दसंकुलेषु गूढयुद्धहेतुभिरभिहन्युः ॥ ३० ॥

सब ओरको (अर्थात् चाहे जिस ओरको) भागे हुए इस राजाको, सत्र (देखो—अधि. १०, अध्या. ३ सूत्र २५) तथा स्तम्भवाट (स्तम्भयुक्त आवरण विशेष ; अथवा स्तम्भ और वाटको पृथक् २ भी समझना चाहिये) के आश्रयसे रहनेवाले, तथा सेनाके रूपमें घूमनेवाले म्लेच्छ और आटविक मारडालें ॥ २९ ॥ अथवा शिकारीके वेषमें रहनेवाले सत्री, रातको सोनेके समय सबके इकट्ठे होनेपर, कूटयुद्ध प्रकरणमें बतलाये हुए तरीकोंसे शत्रुको मारडालें ॥ ३० ॥

एकायने वा शैलस्तम्भवाटखञ्जनान्तरुदके वा स्वभूमिबलेनाभिहन्युः ॥ ३१ ॥ नदीसरस्तटाकसेतुबन्धभेदवेगेन वाप्लावयेयुः ॥ ३२ ॥ धान्वनवननिम्नदुर्गस्थं वा योगाग्निधूमाभ्यां नाशयेयुः ॥ ३३ ॥

अथवा तंग रास्तेमेंसे गुजरती हुई, या पहाड़ी ऊबड़खाबड़, दलदल तथा जलके रास्तेसे गुजरती हुई शत्रुसेनाको नष्ट करडालें ॥ ३१ ॥ अथवा नदी झील और बड़े २ तालाबोंके बांधोंको यथावसर तोड़कर जलके वेगके

द्वारा बहाकर शत्रुसेनाको नष्ट करडालें ॥ ३२ ॥ धान्वनदुर्ग, वनदुर्ग तथा निम्नदुर्गमें स्थित हुए २ शत्रुको, योगाग्नि (छलपूर्वक विशेष द्रव्योंके योगसे उत्पन्नकी हुई अग्नि), और योगधूम (विषैली गैस आदि) के द्वारा नष्ट करदियाजावे ॥ ३३ ॥

सङ्कटगतमग्निना धान्वनगतं धूमेन निधानगतं रसेन तोयावगाढं दुष्टग्राहैरुदकचरणैर्वा तीक्ष्णाः साधयेयुः ॥ ३४ ॥

घने जंगलोंसे घिरे हुए (जहांपर आना जाना भी अत्यन्त कठिन हो, ऐसे) प्रदेशमें प्रविष्ट हुए २ शत्रुको अग्निके द्वारा ; धान्वनदुर्गमें स्थित हुए २ शत्रुको खास गैस आदिके द्वारा, बहुतही छिपे हुए प्रदेशमें शत्रुको विष आदि रसके द्वारा ; अथवा जलके भीतर छिपे हुए शत्रुको भयङ्कर मगरमच्छ आदि जलजन्तुओंके द्वारा ; अथवा जलमें जानेके अन्य साधनोंके द्वारा (देखो— अधि. १३, अध्या. १), तीक्ष्णपुरुष पकड़ लेवें, या नष्ट करडालें ॥ ३४ ॥

आदीप्तावासान्निष्पतन्तं वा—॥ ३५ ॥
योगवामनयोगाभ्यां योगेनान्यतमेन वा ।
अमित्रमतिसंदध्यात्सक्तमुक्तासु भूमिषु ॥ ३६ ॥

इत्याबलीयसे द्वादशे ऽधिकरणे शस्त्राग्निरसप्रणिधयः वीवधासारप्रसारवधश्च चतुर्थो ऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदित एकोनचत्वारिंशच्छतः ॥ १३९ ॥

अथवा आग लगे हुए घरसे निकलकर भागते हुए राजाको ॥ ३५ ॥ तथा अपनी रक्षाके लिये धान्वन आदि भूमियोंमें पहुंचे हुए शत्रु राजाको, योगवामन (देखो—अधि. १३, अध्या. २) और योग(अर्थात् योगातिसन्धान, देखो - अधि. १२, अध्या. ५) के द्वारा, अथवा अकेले योगकेही द्वारा वशमें किया जावे । तात्पर्य यह है, कि शत्रुको वशमें करनेके लिये जितने भी उपाय बताये गये हैं, उनमेंसे किसी एक योग्य उपायके द्वारा शत्रुको वशमें करे ॥ ३६ ॥

आबलीयस द्वादश अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवां अध्याय

१६८–१७० प्रकरण

योगातिसन्धान, दण्डातिसन्धान और एकविजय।

इस अध्यायमें तीन प्रकरण हैं। पहिले प्रकरणमें शत्रुको कपट उपायोंसे ठगनेका अर्थात् अपने वशमें करनेका प्रकार बताया जायगा दूसरे प्रकरणमें सेनाओंके वशमें करनेका प्रकार, तथा तीसरे प्रकरणमें 'अकेलाही विजिगीषु किस तरह शत्रुका अभिभव करसकता है' इस बातको बताया जायगा।

देवतेज्यायां यात्रायाममित्रस्य बहूनि पूज्यागमस्थानानि भक्तितः, तत्रास्य योगमुञ्जयेत् ॥ १ ॥

देवताकी पूजा करनेके समय, या देवताके निमित्तसे होनेवाले किसी विशेष उत्सवके लिये यात्राके समयमें, अर्थात् इस प्रकारके अवसरोंपर; शत्रु राजाके, देवतामें उसकी भक्तिके अनुसार, पूजाके लिये आने जानेके अनेक प्रसंग आसकते हैं। इन्हीं अवसरोंपर शत्रु राजाके प्रति कूट उपायोंका प्रयोग किया जावे ॥ १ ॥

देवतागृहप्रविष्टस्योपरि यन्त्रमोक्षणेन गूढभित्तिं शिलां वा पातयेत् ॥ २ ॥ शिलाशस्त्रवर्षमुत्तमागारात् ॥ ३ ॥ कवाटमवपातितं वा, भित्तिप्रणिहितमेकदेशबन्धं वा परिघं मोक्षयेत् ॥४॥

अब उन प्रयोगोंकाही प्रकार बताते हैं:—जब राजा देवतागृहके अन्दर प्रविष्ट हो, तब उसके ऊपर, यन्त्रके छोड़देनेसे (यह यन्त्र, भींत और शिला इन दोनोंके सम्बन्धको जोड़नेवाला तथा दोनोंका आधारभूत होना चाहिये, जिसके निकालनेसे वह गूढभित्ति या शिला गिर पड़े), गूढभित्ति (खास तौरसे अधर बनी हुई दीवार) और शिलाको गिरा दिया जावे ॥ २ ॥ ऊपरके मकानकी छतसे उस शत्रुपर पत्थर तथा हथियारोंकी वर्षा कीजावे ॥ ३ ॥ अथवा नीचेसे उखाड़कर किवाड़कोही शत्रुके ऊपर डाल दिया जावे। अथवा भींतमें छिपे हुए तथा एक ओरसे बंधे हुए अर्गलेकोही शत्रुपर छोड़ दियाजावे ॥ ४ ॥

देवतादेहस्थप्रहरणानि वास्योपरिष्टात्पातयेत् ॥ ५ ॥ स्थानासनगमनभूमिषु वास्य गोमयप्रदेहेन गन्धोदकप्रसेकेन वा रस-

मतिचारयेत् पुष्पचूर्णोपहारेण वा ॥ ६ ॥ गन्धप्रतिच्छिन्नं वास्य तीक्ष्णं धूममतिनयेत् ॥ ७ ॥

अथवा देवताकी देहपर धारण कराये हुए हथियारोंको ही, शत्रुके ऊपर गिरा दियाजावे ॥ ५ ॥ अथवा इसके ठहरने बैठने और जानेकी भूमियों में, विषयुक्त गोबरसे लेपन करदिया जावे, विषयुक्त सुगन्धित जलोंसे छिड़काव कियाजावे; तथा विषयुक्त फूलोंके चूरेको, देवताकी भेंटके निमित्त, उसे लाकर दियाजावे ॥ ६ ॥ अथवा विषकी गन्धको दबाने वाली विशेष गन्ध से युक्त, तीव्र धुआं (गैस), इसको अत्यधिक मात्रा में ग्रहण कराया जावे ॥ ७ ॥

शूलकूपमवपातनं वा शयनासनस्याधस्ताद्यन्त्रबद्धतलमेनं कीलमोक्षणेन प्रवेशयेत् ॥ ८ ॥ प्रत्यासन्ने वामित्रे जनपदाच्चानवरोधक्षममतिनयेत् ॥ ९ ॥ दुर्गाच्चानवरोधक्षममपनयेत् ॥१०॥

अथवा इसके शयन और आसनके नीचे, लोहेकी अतितीक्ष्ण शलाकाओंसे युक्त कूआ तथा गहरा गढ़ा होवे, उसके ऊपर शत्रुकी चारपाई या अन्य कोई उठने बैठनेकी वस्तु, एक यन्त्रके आधारपर अधर बांधीजावे, जब शत्रु इसपर बैठे, तब ही उस यन्त्रकीलको खींच लेनेसे, चारपाई आदिके समेत उस शत्रुको, गढ़े आदिमें ढकेल दियाजावे ॥ ८ ॥ अथवा जब शत्रु समीप ही होवे, अर्थात् उसका देश अपने देशसे लगा हुआ ही होवे; तब अपने कार्यमें बाधा डालने वाले, उसके जनपदके पुरुषोंको पकड़कर जेलमे डालदेवे, जिससे कि वे फिर विजिगीषुको बाधा न पहुंचा सकें ॥ ९ ॥ तथा जो पुरुष विजिगीषुको बाधा पहुंचानेमें असमर्थ हों, और शत्रुने उनको बन्धन (जल आदि) में डाला हुआ हो, तो विजिगीषु उन्हें छुड़ा देवे ॥ १० ॥

प्रत्यादेयमरिविषयं वा प्रेषयेत् ॥ ११ ॥ जनपदं चैकस्थं शैलवननदीदुर्गेष्वटवीव्यवहितेषु वा पुत्रभ्रातृपरिगृहीतं स्थापयेत् ॥ १२ ॥ उपरोधहेतवो दण्डोपनतवृत्ते व्याख्याताः ॥ १३ ॥

शत्रुके प्रान्तसे लायाहुआ जो आदमी, अवश्य ही लौटाना पड़े, उसे स्वयं ही शत्रुके देशमें भेजदेवे ॥ ११ ॥ जो जनपद अकेले ही शत्रु राजाके शासनमें स्थित हो, उसके पर्वतदुर्ग वनदुर्ग और नदीदुर्गोंको तथा घने जंगलोंसे घिरेहुए अन्यप्रदेशको शत्रुके पुत्र या शत्रुके भाईकी अधीनतामें

करादेवे । अर्थात् एकच्छत्र शत्रुके जनपदमें से, इन उपर्युक्त प्रदेशोंपर शत्रुपुत्र आदिका आधिपत्य करादेवे ॥ १२ ॥ उपरोधके हेतुओंका व्याख्यान, दण्डोपनतवृत्त नामक प्रकरण में करादिया गया है। (देखो अधि० ७, अध्या० १५) ॥ १३ ॥

तृणकाष्ठमायोजनाद्दाहयेत् ॥ १४ ॥ उदकानि च दूषयेत् ॥ १५ ॥ अवास्रावयेच्च ॥ १६ ॥ कूटकूपावपातकण्टकिनीश्च बहिरुब्जयेत् ॥ १७ ॥

शत्रुके पड़ावके चारों ओर एक २ योजन (एक योजन=चार कोस) तक, घास तथा लकड़ी आदिको जलवादेवे; जिससे ये चीजें शत्रुको मिल न सकें ॥ १४ ॥ और जलोंको विष आदि मिलाकर दूषित करवादेवे ॥ १५ ॥ तथा जलाशयोंके किनारे या बांध आदिको तुड़वाकर जलको बाहर निकलवादेवे ॥ १६ ॥ और बाहर शत्रुकी सेनाके आनेके मार्गमें अन्धेरे कूए घास आदिसे ढकेहुए गढ़े तथा स्थान २ पर कांटेदार लोहेकी जंजीरोंके जाल बनवा देवे ॥ १७ ॥

सुरङ्गाममित्रस्थाने बहुमुखीं कृत्वा विचयमुख्यानभिहारयेत् ॥ १८ ॥ अमित्रं वा ॥ १९ ॥ परप्रयुक्तायां वा सुरङ्गायां परिखामुदकान्तिकीं खानयेत् ॥२०॥ कूपशालामनुसालं वा॥२१॥

शत्रुके ठहरनेके स्थानमें, बहुत मुंहवाली एक सुरंग बनवाकर, शत्रुके प्रधान व्यक्तियोंको उसीमें फंसा देवे ॥ १८ ॥ अथवा अवसर आनेपर शत्रुको भी उस ही में फंसादेवे ॥ १९ ॥ यदि शत्रु ही, विजिगीषुके दुर्गमें आनेके लिये सुरंग बनवावे, तो विजिगीषुको चाहिये, कि वह दुर्गके चारों ओर इतनी गहरी खाई खुदवावे, जिसमें कि जल निकल आवे। अर्थात् जल निकल आनेतक उस खाईको खुदवाता ही जावे ॥ २० ॥ यदि इतनी खाई खुदवानेमें असुविधा हो, तो परकोटेकी लम्बाईके मुताबिक उसके चारों ओर कूपशाला बनवादी जावे। (कूपशालासे तात्पर्य, चारों ओर बनाए जाने वाले गहरे २ कुओंसे है। ऐसा करनेसे शत्रुको दुर्गके भीतर आनेके लिये, सुरंग बनानेका रास्ता नहीं मिल सकेगा) ॥ २१ ॥

अतीयकुम्भान्कांस्यभाण्डानि वा शङ्कास्थानेषु स्थापयेत्खाताभिज्ञानार्थम् ॥२२॥ ज्ञाते सुरङ्गापथे प्रतिसुरङ्गां कारयेत् ॥२३॥ मध्ये भित्वा धूममुदकं वा प्रयच्छेत् ॥ २४ ॥

अथवा जिन स्थानोंमें सुरंग बनाये जानेकी आशंका हो, वहां जल रहित घड़ोंको अथवा कांसेके छोटे २ स्तूप या टुकड़ोंको रखदिया जावे, जिससे कि खुदेहुए सुरंगके मार्गका पता लगता रहे ॥ २२ ॥ शत्रुकी सुरंगके मार्गके मालूम होजानेपर, उसके विरुद्ध दूसरी सुरंग खुदवा देवे ॥ २३ ॥ अथवा बीचमें से उसको फोड़कर, विषैला धुआं (अथवा साधारण धुआं ही) या जल उसमें भरदेवे । (विषैले धुएंकी तरह जल भी उसमें विषयुक्त भरा जासकता है) ॥ २४ ॥

प्रतिविहितदुर्गो वा मूले दायादं कृत्वा प्रतिलोमामस्य दिशं गच्छेत् ॥ २५ ॥ यतो वा मित्रबन्धुभिराटविकैर्वा संसृज्येत ॥ २६ ॥ परस्यामित्रदूष्यैर्वा महद्भिः ॥ २७ ॥ यतो वा गतोऽस्य मित्रैर्वियोगं कुर्यात् ॥ २८ ॥ पार्ष्णिं वा गृह्णीयात् ॥ २९ ॥ राज्यं वास्य हारयेत् ॥ ३० ॥ वीवधासारप्रसारान्वा वारयेत् ॥ ३१ ॥

अथवा शक्तिके अनुसार दुर्गकी रक्षा करनेपर भी यदि पूर्ण सफलता न दीखे, तो दुर्बल राजा, मूलस्थानमें अपने पुत्र आदिको नियुक्त करके स्वयं शत्रुकी प्रतिकूल दिशाको चलाजावे । अर्थात् उसी दिशामें जावे, जहां जाकर शत्रुकी हानि करसके ॥ २५ ॥ अथवा जिस ओर जाकर, अपने मित्र, बन्धु-बान्धव और आटविकोंके साथ मिलकर शत्रुका अपकार करनेके लिये उचित अवसर प्राप्त करसके ॥ २६ ॥ अथवा अपने शत्रुके शत्रु, और अत्यन्त शक्ति-शाली दूष्य पुरुषोंके साथ मिलकर शत्रुकी हानि करसके ॥ २७ ॥ अथवा जहां जाकर शत्रुका, उसके मित्रोंसे भेद करवा देवे ॥ २८ ॥ अथवा शत्रुपर पीछेकी ओरसे हमला करसके ॥ २९ ॥ अथवा शत्रुके राज्यको अपहरण करसके ॥ ३० ॥ अथवा शत्रुके वीवध आसार और प्रसारको उसके पास तक न पहुंचने देवे ॥ ३१ ॥

यतो वा शक्नुयादाक्षिकवदपक्षेपेणास्य प्रहर्तुम् ॥ ३२ ॥ यतो वा स्वं राज्यं त्रायेत ॥ ३३ ॥ मूलस्योपचयं वा कुर्यात् ॥ ३४ ॥ यतः संधिमभिप्रेतं लभेत ततो वा गच्छेत् ॥ ३५ ॥

अथवा जहां जाकर कपटी जुआरीकी तरह, कपट प्रयोगोंको करके शत्रुपर प्रहार करसके ॥ ३२ ॥ अथवा जहां जाकर अपने राज्यकी रक्षा करसके ॥ ३३ ॥ अथवा अपने मूलस्थानकी भलीभांति वृद्धि कर सके ॥ ३४ ॥

अथवा जहांसे अपनी इच्छाके अनुसार सन्धि करनेका अवसर मिलसके, ऐसे स्थानपर चला जावे ॥ ३५ ॥

सहप्रस्थायिनो वास्य प्रेषयेयुः ॥ ३६ ॥ अयं ते शत्रुरस्माकं हस्तगतः ॥ ३७ ॥ पण्यं विप्रकारं चापदिश्य हिरण्यमन्तःसारबलं च प्रेषयस्व एनमर्पयेम बद्धं प्रवासितं वेति ॥ ३८ ॥ प्रतिपन्ने हिरण्यं सारबलं चाददीत ॥ ३९ ॥

अथवा दुर्बल राजाके साथ २ जानेवाले, उसके (दुर्बल राजाके) गूढपुरुष, शत्रुके पास इस प्रकार सन्देश भिजवावें ॥ ३६ ॥ यह तुम्हारा शत्रु, इस समय हमारे हाथमें आया हुआ है ॥ ३७ ॥ इसलिये, किसी सौदेके बहानेसे सुवर्ण आदि धनको, और किसी अपकार आदिके बहानेसे अन्तस्सार सेनाको हमारे पास भेजो । तदनन्तर हम, कैद किये हुए या मारे हुए तुम्हारे इस शत्रुको, तुम्हारे अर्पण करसकते हैं ॥ ३८ ॥ जब शत्रु इस बातको मानकर, सुवर्ण आदि धन और अन्तस्सार सेनाको (बहुत ही मजबूत बहादुर सेनाको) भेजदेवे, तो दुर्बल राजा उस सब सामानको अपने अधीन करलेवे ॥ ३९ ॥

अन्तपालो वा दुर्गसंप्रदानेन बलैकदेशमतिनीय विश्वस्तं घातयेत् ॥ ४० ॥ जनपदमेकस्थं वा घातयितुममित्रानीकमावाहयेत् ॥ ४१ ॥ तदवरुद्धदेशमतिनीय विश्वस्तं घातयेत् ॥ ४२ ॥

अथवा अन्तपाल (सीमारक्षक अधिकारी), अपना दुर्ग, शत्रुके सुपुर्द करके, उसकी सेनाके कुछ हिस्सेको ऐसी जगह लेजावे, जहांसे उनका लौटना असम्भव हो, और विश्वासपूर्वक उन्हें वहींपर मारडाले ॥ ४० ॥ अथवा किसी उच्छृंखल, एकत्रित हुए २ जनपदको काबूमें करनेके लिये, अन्तपाल, शत्रुकी सेनाको बुलवालेवे ॥ ४१ ॥ तदनन्तर उस सेनाको ऐसे देशमें लेजावे, जहांसे निकलना अत्यन्त दुष्कर हो, वहां जाकर विश्वासपूर्वक उस सेनाको मरवाडाले ॥ ४२ ॥

मित्रव्यञ्जनो वा बाह्यस्य प्रेषयेत् ॥ ४३ ॥ क्षीणमस्मिन्दुर्गे धान्यं स्नेहाः क्षारो लवणं वा ॥ ४४ ॥ तदमुष्मिन्देशे काले च प्रवेक्ष्यति ॥ ४५ ॥ तदुपगृहाणेति ॥ ४६ ॥

अथवा मित्रके वेषमें रहनेवाला सत्री, शत्रुके पास इसप्रकार सन्देश भिजवावे ॥ ४३ ॥ इस दुर्गमें धान्य (अन्न आदि), स्नेह (घी तेल आदि), क्षार (गुड़ शक्कर आदि) तथा लवण (नमक) आदि सब पदार्थ समाप्त

होचुके हैं ॥ ४४ ॥ ये सब सामान, अमुक २ देश तथा अमुक कालमें लाये जावेंगे । (अर्थात् इन पदार्थोंके लानेके मार्ग और समय आदिसे, शत्रुको ठीक २ सूचित करदेवे) ॥ ४५ ॥ आप इस सब सामानको लेलेवें । अर्थात् रास्तेमेंही ठीक समयपर पहुंचकर इस सब सामानको लूटकर अपने अधीन करलेवें ॥ ४६ ॥

ततो रसविद्धं धान्यं स्नेहं क्षारं लवणं वा दूष्यामित्राटविकाः प्रवेशयेयुः ॥ ४७ ॥ अन्ये वाभित्यक्ताः ॥ ४८ ॥ तेन सर्वभाण्डवीवधग्रहणं व्याख्यातम् ॥ ४९ ॥

तदनन्तर विजिगीषुके दूष्य, शत्रु तथा आटविक पुरुष, विषसे युक्त हुए २ धान्य, स्नेह, क्षार तथा लवण आदि पदार्थोंको लेकर ठीक समयपर उन्हीं निर्दिष्ट मार्गोंसे होकर गुजरें ॥ ४७ ॥ अथवा अन्य वध्यपुरुष इस कार्यको करें । अर्थात् विषयुक्त धान्य आदिको लेकर निर्दिष्ट समयपर निर्दिष्ट मार्गोंसे होकर दुर्गकी ओर जावें । (तात्पर्य यह है, कि इसप्रकार शत्रु, लूटमें विषयुक्त धान्य आदि लेजाकर अपने कार्यमें लावेगा, और मारा जायगा) ॥ ४८ ॥ इसीप्रकार सब तरहके अन्य खाद्य पदार्थोंको विषयुक्त बनाकर, शत्रुको ग्रहण करानेके सम्बन्धमें भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये ॥ ४९ ॥

संधिं वा कृत्वा हिरण्यैकदेशमस्मै दद्यात् ॥ ५० ॥ विलम्बमानः शेषम् ॥ ५१ ॥ ततो रक्षाविधानान्यवस्रावयेत् ॥ ५२ ॥ अग्निरसशस्त्रैर्वा प्रहरेत् ॥ ५३ ॥ हिरण्यप्रतिग्राहिणो वास्य वल्लभाननुगृह्णीयात् ॥ ५४ ॥

अथवा दुर्बल राजा, शत्रुके साथ सन्धि करके, प्रतिज्ञात धनका कुछ भाग उसे तत्कालही देदेवे ॥ ५० ॥ और शेष भाग विलम्ब करके, देनेको कहकर, फिर ठीक समयपर देदेवे ॥ ५१ ॥ तदनन्तर शत्रुपर अपना विश्वास जमाकर (अर्थात् शत्रु जब उसपर पूरा विश्वास करने लगे) अपने चारों ओर रक्षाके लिये रक्खी हुई शत्रु सेनाको हटवा देवे ॥ ५२ ॥ इसके अनन्तर स्वतन्त्र होकर, अग्नि विष तथा शस्त्रोंके द्वारा शत्रुपर प्रहार करे । (५२वें सूत्र का यह भी अभिप्राय होसकता है, कि शत्रुराजा, दुर्बलपर विश्वास होनेके कारण, उसके सामने अपनी रक्षाकी अपेक्षा न रक्खे ; इस प्रकार जब कभी दुर्बलके सामने शत्रु सर्वथा अरक्षित हो, तो आग, विष तथा शस्त्र आदिके द्वारा उसे नष्ट करवा डाले) ॥ ५३ ॥ अथवा धन आदि लेकर काबूमें आने

वाले, शत्रुके प्रिय पुरुषोंकोही इस कार्यके करनेके लिये तैयार करे । अर्थात् धन आदि देकर उन्हींके द्वारा शत्रुको मरवा देवे ॥ ५४ ॥

परिक्षीणो वास्मै दुर्गं दत्त्वा निर्गच्छेत् सुरुङ्गया ॥ ५५ ॥ कुक्षिप्रदरेण वा प्राकारभेदेन निर्गच्छेत् ॥ ५६ ॥

अथवा यदि दुर्बल राजा, सर्वथाही हीनशक्ति होजावे, अर्थात् शत्रुका निवारण करनेमें किसी तरह भी समर्थ न होसके, तो अपना दुर्ग शत्रुको देकर सुरंगके रास्तेसे बाहर निकल जावे । अर्थात् दुर्गको छोड़कर भाग जावे ॥ ५५ ॥ अथवा किलेमें सुरंग न होनेपर, परकोटेकी दीवार जहांसे कमज़ोर हो, वहींसे उसे फोड़कर बाहर निकल जावे ॥ ५६ ॥

रात्राववस्कन्दं दत्त्वा सिद्धस्तिष्ठेत् ॥ ५७ ॥ असिद्धः पार्श्वेनापगच्छेत् ॥ ५८ ॥ पाषण्डच्छद्मना मन्दपरिवारो निर्गच्छेत् ॥ ५९ ॥ प्रेतव्यञ्जनो वा गूढैर्निर्ह्रियेत ॥ ६० ॥ स्त्रीवेषधारी वा प्रेतमनुगच्छेत् ॥ ६१ ॥

रातमें सोते समय शत्रुसेनाके ऊपर छापा मारकर यदि कार्यसिद्धि होजावे, तो दुर्बल अपने दुर्गमेंही ठहरा रहे । ५७ ॥ यदि कार्यसिद्धि न होवे, तो पाससे होकर निकल जावे ॥ ५८ ॥ निकलनेके प्रकार ये हैं:—पाषण्ड (पाखण्डी=धर्मध्वजी) का वेष बनाकर थोड़ेसे परिवारके साथ बाहर निकल जावे ॥ ५९ ॥ अथवा मरे हुएके वेषमें, गूढ पुरुषोंके द्वारा लेजाया जावे । अर्थात् गूढ पुरुष, राजाको मरे हुएके समान अर्थीपर बांधकर दुर्गसे बाहर निकाल लेजावें ॥ ६० ॥ अथवा स्त्रीका वेष धारण करके किसी मृतपुरुषके पीछे २ निकल जावे ॥ ६१ ॥

दैवतोपहारश्राद्धप्रहवणेषु वा रसविद्धमन्नपानमवसृज्य कृतोपजापो दूष्यव्यञ्जनैर्निष्पत्य गूढसैन्योऽभिहन्यात् ॥ ६२ ॥

दैवतोपहार (देवताओंको बलि देने), श्राद्ध, तथा प्रहवण आदि (उद्यान आदिमें मित्रोंको भोजन कराने=पार्टियों) के अवसरोंपर शत्रुको विषयुक्त अन्नपान आदि देकर; या दूष्यके वेषमें रहनेवाले सत्रियोंके द्वारा शत्रु पक्षमें प्रवेश करके, और उनको वहां अच्छी तरह उपजाप करके (अर्थात् उनको उनके स्वामीसे भिन्न करके), छिपी हुई अपनी सेनाके सहित दुर्बल राजा, शत्रुको नष्ट करदेवे ॥ ६२ ॥

एवं गृहीतदुर्गो वा प्राश्यप्राशं चैत्यमुपस्थाप्य दैवतप्रतिमाच्छिद्रं प्रविश्यासीत ॥ ६३ ॥ गूढभित्तिं वा दैवतप्रतिमायुक्तं भूमिगृहम् ॥ ६४ ॥

अब अकेलाही विजिगीषु किसप्रकार शत्रुका अभिभव करसकता है, इस बातका निरूपण किया जायगा:—इसप्रकार शत्रुके द्वारा अपने दुर्गके छिन जानेपर विजिगीषु, खाने योग्य प्रचुर अन्नसे युक्त किसी देवालयमें उपस्थित होकर, वहां देवताकी प्रतिमाके छेदमें प्रवेश करके निवास करे ॥ ६३ ॥ अथवा छिपकर रहने योग्य किसी दीवारके बीचमेंही रहरे। अर्थात् जिस दीवारपर पहचाने जानेके लिये कोई बाह्यचिन्ह न हो, वहीं छिपकर बैठजावे। या देवताकी प्रतिमासे युक्त किसी तखाने (=भूमिगृह) में जाकर छिपजावे ॥ ६४ ॥

विस्मृते सुरुङ्गया रात्रौ राजावासमनुप्रविश्य सुप्तममित्रं हन्यात् ॥६५॥ यन्त्रविश्लेषणं वा विश्लेष्याधस्तादवपातयेत् ॥६६॥ रसाग्नियोगेनावलिप्तं गृहं जतुगृहं वाधिशयानममित्रमादीपयेत् ॥ ६७ ॥

जब शत्रु राजा इस बातको भूलजावे, अर्थात् शत्रुको जब यह निश्चय होजावे, कि हमारा विरोधी अमुक राजा सर्वथा नष्ट होचुका है, इसलिये इसकी ओरसे जब शत्रुकी उपेक्षादृष्टि होजावे, तो यह सुरंगके द्वारा रातमें, राजाके निवास करनेके मकानमें प्रविष्ट होकर, सोतेहुए शत्रुराजाको मारडाले ॥६५॥ अथवा यन्त्रको ढीला करके उसे शत्रुके ऊपर गिरादेवे। (संभवतः इसका यह अभिप्राय प्रतीत होता है, कि राजाओंके शयनगृह आदिमें कोई इस प्रकारके विशेष यन्त्र होते थे, जिनके हिलाने डुलानेसे मकानकी परिस्थितिमें विशेष अन्तर पड़सकता था; अथवा ऊपरसे झाड़फानूस आदिके गिरानेकी भी कल्पना कीजासकती है) ॥ ६६ ॥ अथवा आग लगानेमें सहायता देनेवाले खास तरहके मसाले से लिपेहुए (औपनिषदिक अधिकरणके प्रलम्भन प्रकरण में इसतरहके मसालोंका ज़िक्र किया गया है) घरमें; या लाखके घरमें शत्रुके सोतेहुए होनेपर, उस घरको आग लगादेवे ॥ ६७ ॥

प्रमदवनविहाराणामन्यतमे वा विहारस्थाने प्रमत्तं भूमिगृहसुरुङ्गागूढभित्तिप्रविष्टास्तीक्ष्णा हन्युः ॥ ६८ ॥ गूढप्रणिहिता वा रसेन ॥ ६९ ॥ स्वपतो वा निरुद्धे देशे गूढाः स्त्रियः सर्पर-

साग्निधूमानुपरि मुञ्चेयुः ॥ ७० ॥

प्रमदस्थान वनस्थान और विहारस्थानमें अथवा इनमेंसे एक विहार-स्थानमें ही प्रमत्त हुए २ शत्रुको; भूमिगृह सुरंग या गूढभित्तियोंमें छिपेहुए तीक्ष्ण पुरुष, मारडालें ॥ ६८ ॥ अथवा छिपकर रहनेवाले सूद आरालिक आदि गूढपुरुष, विष देकर शत्रुको मारडालें ॥ ६९ ॥ अथवा किसी घिरेहुए स्थानमें (जहां पर लोगोंके आने जाने का सर्वथा निषेध हो) सोतेहुए शत्रुराजाके ऊपर, गुप्त वेषमें रहने वाली स्त्रियां, सर्प, विष अग्नि तथा विषैले धुंएको छोड़देवें ! अर्थात् शत्रुको मारनेके लिये सोते समय उसपर इन चीजों का प्रयोग करें ॥ ७० ॥

अन्युत्पन्ने वा कारणे यद्यदुपपद्येत तत्तदमित्रेऽन्तःपुरगते गूढसंचारः प्रयुञ्जीत ॥ ७१ ॥ ततो गूढमेवापगच्छेत् ॥ ७२ ॥ स्वजनसंज्ञां च प्ररूपयेत् ॥ ७३ ॥

अथवा समयानुसार उन २ कारणोंके उत्पन्न होनेपर, जैसा अवसर हो उसीके अनुकूल, विजिगीषु, अन्तःपुरमें गयेहुए शत्रुके ऊपर, गूढ रीतिसे उसे नष्ट करनेवाले उपायोंका प्रयोग करे ॥ ७१ ॥ तदनन्तर छिपे तौरपर ही वहांसे बाहर निकलआवे ॥ ७२ ॥ तथा अपने आदमियोंको (जो वहींपर इधर उधर छिपे हों) इशारोंसे इस बातकी खबर देदेवे ॥ ७३ ॥

द्वाःस्थान्वर्षवरांश्चान्यान्निगूढोपहितान्परे ।
तूर्यसंज्ञाभिराहूय द्विषच्छेषाणि घातयेत् ॥ ७४ ॥

इत्याबलीयसे द्वादशेऽधिकरणे योगातिसंधानं दण्डातिसंधानं एकविजयश्च पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ आदितश्चत्वारिंशच्छतः ॥ १४० ॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य आबलीयसं द्वादशमधिकरणं समाप्तम् ॥ १२ ॥

अन्तिम उपसंहार श्लोकमें इसी बातका स्पष्ट निरूपण कियाजाता है:- द्वारपाल, नपुंसक, तथा अन्तःपुर आदिके अन्य कर्मचारियोंके वेषमें रहनेवाले; तथा शत्रुके ऊपर छिपे तौरपर नियुक्त कियेहुए अपने गुप्तपुरुषोंको बाजे आदि के इशारोंसे बुलाकर, शत्रुके शेष आदमियोंको भी, विजिगीषु, उन्हींके द्वारा मरवाडाले । अर्थात् वे गुप्तपुरुष ही दुश्मनके बाकी आदमियोंको मारडालें। (इस श्लोकमें 'घातयेत्' पदके स्थानपर किसी पुस्तकमें 'कारयेत्' भी पाठ है । अर्थ उसका भी यही करना चाहिये) ॥ ७४ ॥

आबलीयस द्वादश अधिकरण में पांचवां अध्याय समाप्त ।

आबलीयस द्वादश अधिकरण समाप्त ।

दुर्गलम्भोपाय त्रयोदश अधिकरण

पहिला अध्याय

१७१ प्रकरण

उपजाप

यह दुर्गलम्भोपाय तेरहवां अधिकरण है। इस अधिकरणमें शत्रुके दुर्गोंको प्राप्त करनेके उपायोंका निरूपण किया जायगा। अब सबसे पहिले प्रकरणमें उपजाप अर्थात् भेदका निरूपण किया जाता है।

विजिगीषुः परग्राममवाप्तुकामः सर्वज्ञदैवतसंयोगख्यापनाभ्यां स्वपक्षमुद्धर्षयेत् ॥ १ ॥ परपक्षं चोद्वेजयेत् ॥ २ ॥

शत्रुके ग्राम या नगर आदिको प्राप्त करनेकी इच्छा रखता हुआ विजिगीषु, अपने आपको सर्वज्ञ तथा देवताका साक्षात्कार करनेवाला प्रसिद्ध करके अपने पक्षको उत्साहित करे ॥ १ ॥ और इन्हीं कारणोंसे शत्रुके पक्षको उद्विग्न (=खिन्न=बेचैन) करे ॥ २ ॥

सर्वज्ञख्यापनं तु—॥ ३ ॥ गृहगुह्यप्रवृत्तिज्ञानेन प्रत्यादेशो मुख्यानाम् ॥ ४ ॥ कण्टकशोधनापसर्पागमेन प्रकाशनं राजद्विष्टकारिणाम् ॥ ५ ॥ विज्ञाप्योपायनख्यापनमदृष्टसंसर्गविद्यासंज्ञादिभिः ॥ ६ ॥ विदेशप्रवृत्तिज्ञानं तदहरेव गृहकपोतेन मुद्रासंयुक्तेन ॥ ७ ॥

अपनी सर्वज्ञताको प्रसिद्ध करनेके लिये विजिगीषु निम्नलिखित उपायोंका प्रयोग करे—॥३॥ मुख्य व्यक्तियोंके घरोंमें होनेवाले किन्हीं छिपेहुए बुरे कामोंको गूढपुरुषोंके द्वारा जानकर, मुख्य पुरुषोंको ऐसे काम करनेसे रोके ॥ ४ ॥

कण्टकशोधन अधिकरणके पांचवें अध्यायमें बतलाये हुए अपसर्पोपदेश (गूढ पुरुषोंके कथन । देखो, अधि० ४, अध्या० ५, सू० २०-२५) के द्वारा, राजाके साथ शत्रुता करनेवाले पुरुषोंके छिपे भेदोंको जानकर, उन्हें उनके सामने प्रकट करे, और ऐसा करनेसे उन लोगोंको रोके ॥ ५ ॥ अन्य पुरुषोंसे न जानीहुई संसर्गविद्या (नाचना, गाना बजाना आदि विशेष विद्या) के इशारोंसे तथा गुप्तचर आदिसे जानकर, राजाके पास आनेवाली भेटको आनेसे पहिले ही प्रकट करदेवे ॥ ६ ॥ विदेशमें होनेवाली घटनाको जिसदिन वह घटना होवे उसी दिन, अपने घरमें रहनेवाले मुद्रायुक्त कबूतरके द्वारा बतला देवे (अभिप्राय यह मालूम होता है, कि दूर देशकी किन्हीं विशेष घटनाओंको बहुत जल्दी जान लेनेके लिये कबूतरों का उपयोग उस समय किया जाता था; इसीतरह जब कोई शिक्षित कबूतर, लिखेहुए पत्रके रूपमें किसी समाचारको राजाके पास लावे, तो राजा उसको इसप्रकार प्रकट करे, जैसे उसने किसी अदृष्ट या अज्ञेय कारणसे ही यह सब जान लिया है ॥ ७ ॥

दैवतसंयोगख्यापनं तु—॥ ८ ॥ सुरुङ्गामुखेनाग्निचैत्यदैवतप्रतिमाच्छिद्रानुप्रविष्टैरग्निचैत्यदैवतव्यञ्जनैः संभाषणं पूजनं च ॥ ९ ॥ उदकादुत्थितैर्वा नागवरुणव्यञ्जनैः संभाषणं पूजनं च ॥ १० ॥

देवताके साथ साक्षात् संयोगकी प्रसिद्धि करनेके लिये, इन उपायोंको प्रयोगमें लावे ॥ ८ ॥ सुरंगके द्वारा अग्निके बीचमें तथा पोली देवताओंकी प्रतिमाओंके बीचमें प्रविष्ट हुए २, अग्निचैत्य (अग्निके बीचमें रहने वाले गूढपुरुषोंके साथ राजा सम्भाषण करे, और उनका पूजन भी करे ॥ ९ ॥ अथवा जलसे उठेहुए अर्थात् जलसे निकले हुए, नाग (सर्पदेव) और वरुणदेवके वेषमें रहनेवाले गूढपुरुषोंके साथ राजा सम्भाषण करे, तथा उनका पूजन भी करे ॥ १० ॥

रात्रावन्तरुदके समुद्रवालुकाकोशं प्रणिधायाग्निमालादर्शनम् ॥ ११ ॥ शिलाशिक्यावगृहीते प्लवके स्थानम् ॥ १२ ॥

रात्रिके समय जलाशय आदिके बीचमें मुहर लगी हुई मजबूत पेटियोंके अन्दर (जिनमें कि सर्वथा जलका प्रवेश न होसके) रेता भरकर छिपा दिया जावे; उसके सहारेसे रक्खी हुई आगको जलमेंसे निकालकर फिर दिखलाया जावे ॥ ११ ॥ भारी शिलासे युक्त छींके आदिके द्वारा जकड़ी हुई छोटी २ नावोंको

पानीकी तेज़धारमें स्थिरतासे खड़े करदेना। (अभिप्राय यह प्रतीत होता है, एक छोटी सी नावको, पानीकी तेज़ धारमें, उसके ऊपर रस्सियोंमें पत्थर बांधकर नीचे पानीमें उन्हें लटकाकर, खड़ा करदेवे। अनन्तर लोगों को बतलावें, कि देखो, राजाका इतना प्रभाव देवताओंके साथ सम्बन्ध होनेके कारण ही है, इसीलिये इसने जलकी तेज़ चलती हुई धारमें नावको निश्चल खड़ा करदिया है) ॥ १२ ॥

उदकवस्तिना जरायुणा वा शिरोऽवगूढनासः पृषतान्त्रकुलीरनक्रशिंशुमारोद्रवसाभिर्वा शतपाक्यं तैलं नस्तः प्रयोगः ॥ १३ ॥ तेन रात्रिगणश्चरतीत्युदकचरणानि ॥ १४ ॥

उदकवस्ती (जलको भीतर प्रवेश करनेसे रोकनेवाला एक वस्त्र विशेष), अथवा जरायु (गर्भकी थैलीके समान बनीहुई चमड़ेकी एक थैली) से सिर और नासिकाको ढककर, चितल हरिणकी आंत तथा केंकड़ा, नाकू, शिशुमार (शिरस नामकी मछली) और उद्र (हूद नामकी मछली) की चरबीके साथ तेलको एकसौ बार पकाकर, नासिकामें उसका प्रयोग कियाजावे; अर्थात् उस तैलको नाकमें डालाजावे ॥ १३ ॥ ऐसा करनेसे रात्रिमें झुण्डके झुण्ड पुरुष, जलमें सञ्चरण करसकते हैं ॥ १४ ॥

तैर्वरुणनागकन्यावाक्याक्रिया संम्भाषणं च ॥१५॥ कोपस्थानेषु मुखादग्निधूमोत्सर्गः ॥ १६ ॥

जलमें घूमनेवाले उन पुरुषोंके द्वारा, राजा, वरुण तथा सर्पदेवोंकी कन्याओंके समान आवाज करवावे। अर्थात् वे पुरुष, वरुण आदिकी कन्याओं के समान शब्द करें; और राजा उनके साथ बातचीत करे ॥ १५ ॥ कोपके कारण उपस्थित होनेपर अर्थात् क्रोध आने के अवसरों में राजा, अपने मुंहसे आग और धुएंको निकाले। अर्थात् मुंहसे औषध आदिके योगसे इसतरहका कार्य करे ॥ १६ ॥

तदस्य स्वविषये कार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकपौराणिकेक्षणिकगूढपुरुषाः साचिव्यकरास्तद्दर्शिनश्च प्रकाशयेयुः ॥ १७ ॥ परस्य विषये दैवतदर्शनं दिव्यकोशदण्डोत्पत्तिं चास्य ब्रूयुः ॥१८॥

राजाकी इन सब उपर्युक्त बातोंको, इसके अपने देशमें; इसकी (राजाकी) सहायता करनेवाले तथा इन सब कामोंको देखनेवाले कार्तान्तिक (वैद्य) नैमित्तिक (यथायोग्य लक्षणोंको देखकर शुभाशुभकी सूचना देनेवाले=भरारे), मौहूर्त्तिक (ज्योतिषी), पौराणिक (पुराण आदिकी

कथा करनेवाले), ईक्षणिक (प्रश्न करके भविष्य शुभाशुभको बतानेवा), तथा गूढपुरुष, सर्वत्र प्रकाशित करदेवें ॥ १७ ॥ तथा शत्रुके देशमें, इसके देवताओंके दर्शन और दिव्य कोश तथा दिव्य सेनाके प्रादुर्भावको बतावें। अर्थात् 'इसका देवताओंके साथ साक्षात्कार होता है, यह अपनी इच्छानुसार जब चाहे, अपनी सहायताके लिये अपरिमित दिव्य कोश तथा दिव्य सेनाको उत्पन्न करसकता है' इत्यादि बातोंको शत्रुदेशमें प्रसिद्ध करदेवें ॥ १८ ॥

दैवतप्रश्ननिमित्तवायसाङ्गविद्यास्वप्नमृगपक्षिव्याहारेषु चास्य विजयं ब्रूयुः ॥ १९ ॥ विपरीतममित्रस्य सदुन्दुभिम् ॥ २० ॥ उल्कां च परस्य नक्षत्रे दर्शयेयुः ॥ २१ ॥

दैवतप्रश्न (शुभाशुभ कर्म विषयक प्रश्न=अर्थात् अपने भाग्य के सम्बन्धमें पूछना), निमित्त (शकुन), कौए आदिका बोलना, अङ्गविद्या (शरीरके अंगोंका स्पर्श करनेसे शुभाशुभको बतलाने वाली विद्या=सामुद्रिकका विशेष भाग), स्वप्न, तथा पशु पक्षी आदिके बोलनेके समयमें इस राजाके विजय का ही सदा कथन करें। अर्थात् प्रत्येक निमित्तके होनेपर यही कहें, कि देखो—इस लक्षणसे मालूम होता है, कि इस राजाका विजय अवश्य होगा ॥ १९ ॥ शत्रु राजाके सम्बन्धमें, नक्षत्र (आकाश) में उल्का दर्शन करावें। अर्थात् उल्कापात आदिके दिखानेसे इस बातको प्रसिद्ध करें, कि शत्रुका कोई भारी अनिष्ट होनेवाला है ! (उल्कापातके सम्बन्धमें देखो,—अधि० १४, अध्या० २, सू० ३२ के लगभग) ॥ २१ ॥

परस्य मुख्यान्मित्रत्वेनापदिशन्तो दूतव्यञ्जनाः स्वामिसत्कारं ब्रूयुः ॥ २२ ॥ स्वपक्षबलाधानं परपक्षप्रतिघातं च तुल्ययोगक्षेममात्यानामायुधीयानां च कथयेयुः ॥ २३ ॥ तेषु व्यसनाभ्युदयावेक्षणमपत्यपूजनं च प्रयुञ्जीत ॥ २४ ॥

शत्रुके मुख्य पुरुषोंके साथ मित्र रूपसे व्यवहार करने वाले, दूत वेषधारी पुरुष; उन मुख्य व्यक्तियोंके सन्मुख, अपने स्वामीके द्वारा किएहुए अपने सत्कारका खूब बखान करें। (जिससे कि उनके हृदयमें भी इस सत्कारको प्राप्त करनेका लोभ उत्पन्न होजावे) ॥ २२ ॥ शत्रुके अमात्य तथा सैनिक पुरुषोंके सामने, अपने पक्षकी सेनाकी उन्नति और शत्रु पक्षकी सेनाके ह्रासका, तथा दोनोंके तुल्य योगक्षेमका अच्छीतरह कथन करें ॥ २३ ॥ और अमात्य तथा सैनिक पुरुषोंके सामने, ये पुरुष यह भी कहें, कि हमारा राजा अपने अनुचरोंके आपत्तिकालमें पूर्ण सहायता करता है, तथा

अभ्युदयके समयमें अभिनन्दन आदिसे उन्हें अच्छीतरह सन्तुष्ट करता है। तथा अमात्य आदिके मरजानेपर उनके पुत्रोंका भी बहुत अच्छीतरह सत्कार करता है ॥ २४ ॥

तेन परपक्षमुत्साहयेद्यथोक्तं पुरस्तात् ॥ २५ ॥ भूयश्च वक्ष्यामः—॥ २६ ॥ साधारणगर्दभेन दक्षान् ॥ २७ ॥ लकुटशाखाहननाभ्यां दण्डचारिणः ॥ २८ ॥ कुलैलकेन चोद्विग्नान् ॥ २९ ॥ अशनिवर्षेण विमानितान् ॥ ३० ॥

इन सबही उपर्युक्त प्रकारोंसे शत्रुपक्षको उत्साहित करे। अर्थात् शत्रुके अमात्य आदि कर्मचारियोंको शत्रुसे भिन्न करदेवे ॥ २५ ॥ शत्रु पक्षमें भेद डालनेके अन्य उपायोंका भी अब निरूपण किया जायगा:—॥ २६ ॥ जो पुरुष आलस्य रहित होकर कार्य करनेमें अत्यन्त चतुर तथा तत्पर रहते हों, उनको गर्दभ आदि शब्दोंके द्वारा, उनके स्वामीसे भिन्न करें। इसका अभिप्राय यह है, कि इस तरह कार्य करनेवाले, शत्रुके कर्मचारियोंको यह कहा जाय, कि तुम लोग बिल्कुल गधेकी बराबर हो, जैसे गधा लगातार काम करता रहता है, परन्तु उसको उस कार्यके फलका कुछ भी ज्ञान नहीं होता, इसी तरह आप लोग भी अपने कार्यके फलसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। इसी तरहके उदाहरण देकर उनको उस कार्यसे अन्यमनस्क करदिया जाय; इसीसे उनको अपने स्वामीके साथ मनमुटाव होजायगा। अगले सूत्रोंमेंभी इसी तरहके अभिप्राय समझने चाहियें) ॥ २७ ॥ सैनिक पुरुषोंको, लाठी तथा कुल्हाड़े आदिका उदाहरण देकर उत्साहित करे, अर्थात् उनके स्वामीसे उन्हें भिन्न करे ॥ २८ ॥ उद्विग्न अर्थात् शत्रुसे डरनेवाले कर्मचारियोंको, अपने झुण्डसे अलहदा हुए २ जीवनसे निराश मेंढे या बकरेका उदाहरण देकर, उत्साहित किया जावे ॥ २९ ॥ शत्रुसे तिरस्कृत हुए २ व्यक्तियोंको, 'तुमने वज्रपातके समान तिरस्कारको कैसे सहन करलिया' यह कहकर उत्साहित किया जावे ॥ ३० ॥

विदुलेनावकेशिना वायसपिण्डेन कैतवजमेघेनेति विहताशान् ॥ ३१ ॥ दुर्भगालंकारेण द्वेषिणेतिपूजाफलान् ॥ ३२ ॥ व्याघ्रचर्मणा मृत्युकूटेन चोपहितान् ॥ ३३ ॥ पीलुविखादनेन करकयोष्ट्र्या गर्दभीक्षीराभिमन्थनेनेति ध्रुवापकारिण इति ॥३४॥

शत्रुसे भग्न मनोरथ हुए २ (अर्थात् जिनको अपने स्वामीकी ओरसे किसी तरहकी भी आशा न रही हो, ऐसे) पुरुषोंको, फलहीन बेंत अथवा लोहमय अर्थात् खानेके सर्वथा अयोग्य अन्नपिण्ड, या न बरसनेवाले बादलकी उपमा देकर, उनके स्वामीके विरुद्ध उत्साहित किया जावे ॥ ३१ ॥ अलङ्कार आदि देकर पूजा किये हुए पुरुषोंको (अर्थात् पूजाके साथ जिनको विशेष अलङ्कार आदि मिले हों, और उसे ये अपने कर्मोंका फल समझते हों, ऐसे पुरुषोंको) बुराई करनेवाले अनिष्टकारक अलङ्कारोंका उदाहरण देकर उत्साहित करें ॥ ३२ ॥ शत्रुके द्वारा प्रयुक्त हुई २ चालोंसे ठगे हुए पुरुषोंको, मृत्युके स्थान–बनावटी व्याघ्रका उदाहरण देकर (अर्थात् व्याघ्र चर्म पहिनकर बनावटी बने हुए व्याघ्रका उदाहरण देकर) उनके स्वामीके विरुद्ध उत्साहित करें ॥ ३३ ॥ जो पुरुष सदाही अपकार करते रहते हैं उनको पीलुफलके खाने, करका (तिक्तरसका एक शाक विशेष), उष्ट्री (यह भी तिक्तरसकी एक ओषधि होती है), तथा गधीके दूधके बिलोनेका उदाहरण देकर, उनके स्वामीसे भिन्न करें ॥ ३४ ॥

प्रतिपन्नानर्थमानाभ्यां योजयेत् ॥ ३५ ॥ द्रव्यभक्तच्छिद्रेषु चैनान्द्रव्यभक्तदानैरनुगृह्णीयात् ॥ ३६ ॥ अप्रतिगृह्णतां स्त्रीकुमारालंकारानभिहरेयुः ॥ ३७ ॥

जो पुरुष, इन बातोंको मानकर शत्रुके विरुद्ध कार्य करें, उनको धन और मान (सत्कार) से युक्त किया जावे । अर्थात् धन मान आदिसे उनको अच्छी तरह सत्कृत किया जावे ॥ ३५ ॥ तथा इनपर जब धनसम्बन्धी या अन्नसम्बन्धी संकट आवे, तब धन और अन्न देकर इनकी अच्छी तरह सहायता की जावे ॥ ३६ ॥ यदि ये लोग अपना गौरव नष्ट होजानेके विचारसे, इस प्रकार धन और अन्न आदि न लेना चाहें, तो इनकी स्त्री और बच्चों आदिके लिये सत्कारपूर्वक आभूषण आदि बनवाकर देवे ॥ ३७ ॥

दुर्भिक्षस्तेनाटव्युपघातेषु च पौरजानपदानुत्साहयन्तः सत्त्रिणो ब्रूयुः ॥ ३८ ॥ राजानमनुग्रहं याचामहे ॥ ३९ ॥ निरनुग्रहाः परत्र गच्छाम इति ॥ ४० ॥

दुर्भिक्ष, और चोर तथा आटविकोंके आक्रमण करनेपर (अर्थात् दुर्भिक्ष की अवस्थामें और जब चोर तथा आटविक, प्रान्तमें प्रायः लूट मारकर प्रजा को सता रहे हों, तब) सत्री पुरुष, नगर निवासी तथा जनपदनिवासी पुरुषोंको उत्साहित करते हुए, इसप्रकार कहें:—॥ ३८ ॥ हम लोग, राजासे

सहायताके लिये याचना करते हैं ॥ ३९ ॥ यदि राजा, हमको सहायता नहीं देता है, तो हमसब लोग, दूसरे राजाके आश्रयमें चले जावेंगे । इसप्रकार सत्री, पौर जानपदोंको उनके स्वामीसे भिन्न करें ॥ ४० ॥

तथेति प्रतिपन्नेषु द्रव्यधान्यपरिग्रहैः ।
साचिव्यं कार्यमित्येतदुपजापाद्भुतं महत् ॥ ४१ ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशे ऽधिकरणे उपजापः प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥
आदित एकचत्वारिंशच्छतः ॥ १४१ ॥

जब पौर जानपद पुरुष अपने स्वामीसे सहायता प्राप्त न कर, सत्री पुरुषोंके कथनको स्वीकार करनेके लिये तैयार होजावें ; तब धन धान्य और वासस्थान आदि देकर इनकी सहायता कीजावे । अर्थात् विजिगीषु उनकी इसप्रकार सहायता करे । शत्रुके आदमियोंका शत्रुसे भेद डालनेके लिये, यह एक बहुतही अद्भुत उपाय है ॥ ४१ ॥

दुर्गलम्भोपाय त्रयोदश अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

१७२ प्रकरण

योगवामन

{ योग अर्थात् कपटसे, शत्रुको दुर्गसे बाहर निकालदेना 'योगवामन' कहाता है । इस प्रकरणमें शत्रुको, कपटपूर्वक दुर्गसे बाहर निकाल देनेका ही निरूपण किया जायगा ।

मुण्डो जटिलो वा पर्वतगुहावासी चतुर्वर्षशतायुर्ब्रुवाणः प्रभूतजटिलान्तेवासी नगराभ्याशे तिष्ठेत् ॥ १ ॥ शिष्याश्चास्य मूलफलोपगमनैरमात्यान् राजानं च भगवद्दर्शनाय योजयेयुः ॥२॥

पहाड़की गुफ़ामें रहनेवाला, चारसौ बरसकी अपनी उमर बतानेवाला, बहुतसे जटाधारी छात्रोंसे युक्त, मुण्ड अथवा जटिल (जटाधारी) के वेषमें रहताहुआ गूढपुरुष, नगरके समीप ही अपनी स्थिति करे ॥ १ ॥ और इसके शिष्य, फल मूल (कन्द) आदि लेकर राजा और अमात्योंको भगवद्दर्शन (भगवानके दर्शन=उस जटाधारी सिद्धके वेषमें रहतेहुए गूढपुरुषके दर्शन करने) के लिये प्रेरित करें ॥ २ ॥

समागतश्च राज्ञा पूर्वराजदेशाभिज्ञानानि कथयेत् ॥ ३ ॥ शते शते च वर्षाणां पूर्णे ऽहमग्निं प्रविश्य पुनर्बालो भवामि ॥ ४ ॥ तदिह भवत्समीपे चतुर्थमग्निं प्रवेक्ष्यामि ॥ ५ ॥ अवश्यं मे भवान्मानयितव्यः ॥ ६ ॥ त्रीन्वरान्वृणीष्वेति ॥ ७ ॥

राजाके साथ समागम होनेपर, वह गूढपुरुष, पहिले राजा और देशोंके चिन्होंको बतलावे ॥ ३ ॥ और कहे कि–'मैं सौ सौ बरसके पूरे होनेपर, अग्निमें प्रवेश करके फिर बालक बनजाता हूं ॥ ४ ॥ अब यहां आपके पास चौथीबार अग्निमें प्रवेश करूंगा ॥ ५ ॥ मेरी ओरसे आपका, वर आदिके द्वारा अवश्य सत्कार होना चाहिये ॥ ६ ॥ आप मुझसे, इच्छानुसार तीन वर मांग सकते हैं ॥ ७ ॥

प्रतिपन्नं ब्रूयात् ॥ ८ ॥ सप्तरात्रमिह सपुत्रदारेण प्रेक्षाप्रहवणपूर्वं वस्तव्यमिति ॥ ९ ॥ वसन्तमवस्कन्देत ॥ १० ॥

यदि राजा इन सब बातोंको स्वीकार करले, तो उससे इस प्रकार कहे ॥ ८ ॥ आप सात रात्रि पर्यन्त, अपने पुत्र और स्त्री सहित, खेल तमाशा आदि करातेहुए (=प्रेक्षापूर्व) और प्रसन्नता पूर्वक सब ही आगन्तुक पुरुषोंको भोजन आदि देतेहुए (=प्रहवणपूर्व) यहां मेरे पास निवास करें ॥ ९ ॥ जब वह राजा, वहां इसप्रकार रहने लगे, तो छिपकर या सोते समयमें उसे मार डाले ॥ १० ॥

मुण्डो वा जटिलो वा स्थानिकव्यञ्जनः प्रभूतजटिलान्तेवासी वस्तशोणितदिग्धां वेणुशलाकां सुवर्णचूर्णेनावलिप्य वल्मीके निदध्यात्, उपजिह्विकानुसरणार्थं, स्वर्णनालिकां वा ॥ ११ ॥ ततः सत्त्री राज्ञः कथयेत् ॥ १२ ॥ असौ सिद्धः पुष्पितं निधिं जानातीति ॥ १३ ॥

अथवा किसी विशेष स्थानके अध्यक्षके रूपमें रहनेवाला (=स्थानिकव्यञ्जनः) मुण्ड या जटिल गूढपुरुष, बहुतसे जटाधारी छात्रोंको अपने समीप रखताहुआ, बकरेके खूनसे सनीहुई और सोनेके बुरादे (चूरे) से लिपटी हुई एक बांसकी शलाकाको; अथवा सुवर्णसे युक्त एक बांसकी नलीको, बमीकी पहिचानके लिये उस बमी (जंगलोंमें दीमक, जमीनसे मट्टी उठा २ कर जो ऊंचा सा ढेर बना देती है, उस ही को बमी कहते हैं) में ही रखदेवे ॥ ११ ॥ इसके बाद सत्री, राजाको जाकर कहे, कि—॥ १२ ॥ वह सिद्ध

पुरुष फूलेहुए खजानेको (=पुष्पितं निधिं=ऐसा खजाना, जो अभी तक फल न लाया हो, फल आनेसे पहिलेकी अवस्थामें रक्खाहुआ; ऐसे खजानेको) जानता है ॥ १३ ॥

स राज्ञा पृष्टस्तथेति ब्रूयात् ॥ १४ ॥ तच्चाभिज्ञानं दर्शयेत् ॥ १५ ॥ भूयो वा हिरण्यमन्तराधाय ब्रूयाच्चैनम् ॥ १६ ॥ नागरक्षितो ऽयं निधिः प्रणिपातसाध्य इति ॥ १७ ॥ प्रतिपन्नं ब्रूयात् ॥ १८ ॥ सप्तरात्रमिति समानम् ॥ १९ ॥

जब राजा, उस सिद्ध पुरुषसे पूछे, कि तुम ऐसा जानते हो ? तो वह कहदेवे, कि हां जानता हूं ॥ १४ ॥ और उस चिन्हको दिखलादेवे, (अर्थात् बमीमें लगीहुई, सुवर्णयुक्त बांसकी नलीको दिखलादेवे) ॥ १५ ॥ अथवा फिर वहां और भी बहुत अधिक सुवर्ण रखकर राजाको कहे, कि—॥ १६ ॥ यह खजाना सांपोंसे सुरक्षित है; इसलिये नम्रतापूर्वक ही वशमें किया जासकता है ॥ १७ ॥ जब राजा, सिद्धकी इन सब बातोंको स्वीकार करले, तो उससे कहे, कि ॥ १८ ॥ आपको सात रात्रि पर्यन्त मेरे यहां रहना चाहिये; इत्यादि आगे सब पहिलेकी तरह ही समझना चाहिये। अर्थात् जब राजा पुत्रस्त्रीसहित वहां पूर्ववत् रहनेलगे, तो उसे मारडाले ॥ १९ ॥

स्थानिकव्यञ्जनं वा रात्रौ तेजनाग्नियुक्तमेकान्ते तिष्ठन्तं सत्त्रिणः क्रमाभिनीतं राज्ञः कथयेयुः ॥ २० ॥ असौ सिद्धः सामेधिक इति ॥ २१ ॥ तं राजा यमर्थं याचेत तमस्य करिष्यमाणः सप्तरात्रमिति समानम् ॥ २२ ॥

अथवा रात्रि में तेजन अग्नि (अपने शरीरको अग्निके समान प्रज्वलित करके अद्भुत रूपमें दिखानेवाले प्रयोग; देखो—अधि० १४, अध्या० २) से युक्त हुए २ तथा एकान्तमें बैठेहुए, धीरे २ अपना रूप दिखातेहुए, उस स्थानिकव्यञ्जन गूढपुरुषको, सत्री पुरुष, राजाको दिखाकर, राजासे यह कहें, कि—॥ २० ॥ वह सिद्ध पुरुष भविष्यमें होनेवाली समृद्धिको बतला देता है ॥ २१ ॥ तदनन्तर राजा, उस सिद्ध पुरुषसे जिस अर्थकी याचना करे, उसीको भविष्यमें पूरा करदेनेका वादा करके उससे कहे, कि आप सात रात्रि पर्यन्त मेरे पास रहें। शेष पूर्ववत् ही समझना चाहिये ॥ २२ ॥

सिद्धव्यञ्जनो वा राजानं जम्भकविद्याभिः प्रलोभयेत् ॥ २३ ॥ तं राजेति समानम् ॥ २४ ॥ सिद्धव्यञ्जनो वा देशदे-

वतामभ्यर्हितामाश्रित्य प्रहवणैरभीक्ष्णं प्रकृतिमुख्यानभिसंवास्य क्रमेण राजानमतिसंदध्यात् ॥ २५ ॥

अथवा सिद्धके वेषमें रहने वाला गूढपुरुष, राजाको कपट विद्याओंसे वशमें करे ॥ २३ ॥ जब राजा, उसके प्रलोभनमें फंस जावे, तो उससे कहे, कि सात रात्रिपर्यन्त मेरे समीप रहो । शेष सब पूर्ववत्ही समझना चाहिये ॥ २४ ॥ अथवा सिद्धके वेषमें रहने वाला गूढपुरुष देशकी पूज्य देवताका आश्रय लेकर (उस देशमें जो सबसे प्रधान देवता मानी जातीहो, उसीका आश्रय लेकर) निरन्तर उत्सव और सहभोज (पार्टियां) आदिके द्वारा, वहां-की अमात्य आदि प्रधान प्रकृतियोंको अपने वशमें करके, फिर धीरे २ अर्थात् उन अमात्य आदिके द्वाराही, वहांके राजाकोभी वञ्चना करे ॥ २५ ॥

जटिलव्यञ्जनमन्तरुदकवासिनं वा सर्पचैत्यसुरङ्गाभूमिगृहा-पसरणं वरुणं नागराजं वा सत्त्रिणः क्रमाभिनीतं राज्ञः कथयेयुः ॥ २६ ॥ तं राजेति समानम् ॥ २७ ॥

उदकचारी विद्याओंके द्वारा, जलके बीचमेंही रहने वाले, सब अंगों-से सफेद (अर्थात् अत्यन्त बूढे=जिनके सबही स्थोंके बाल सफेद होगये हों; अथवा देवताके वर्णके समानही जिसके सब अंगोंका सफेद वर्ण होगया, जिसके देखनेसे यह विश्वास होजाय, कि यह वस्तुतः देवतासम्बन्धीही रूप है; इस तरहके श्वेतवर्ण) हुए २, किनारेकी सुरंग (छेद) या भूमिगृहसे निकलने वाले, वरुणके रूपमें या नागराजके रूपमें धीरे २ अपने अनुकूल बनाये हुए, जटिल वेषधारी सिद्ध पुरुषके सम्बन्धकी सब बातोंको सत्री पुरुष, राजासे कहें ॥ २६ ॥ जब राजा, उससे अपने किसी अभिलषित पदार्थकी याचना करे, तब वह शेष सम्पूर्ण व्यवहार पूर्ववत्ही करे ॥ २७ ॥

जनपदान्तेवासी सिद्धव्यञ्जनो वा राजानं शत्रुदर्शनाय योजयेत् ॥ २८ ॥ प्रतिपन्नं बिम्बं कृत्वा शत्रुमावाहयित्वा निरुद्धे देशे घातयेत् ॥ २९ ॥

अथवा जनपदकी सीमामें रहनेवाला, सिद्धका वेष धारण किये हुए गूढपुरुष, वहांके राजाको शत्रुके देखनेके लिये प्रेरित करे। अर्थात् उन दोनोंको उस सीमाप्रान्तमें परस्पर मिलानेकी योजना करे ॥ २८ ॥ जब राजा इस बातको स्वीकार करले, तो पहिलेसे संकेत किये हुए विशेष चिन्होंके द्वारा शत्रु-को वहां बुलाकर, किसी छिपे हुए स्थानमें उसे मरवाडाले ॥ २९ ॥

अश्वपण्योपयाता वैदेहकव्यञ्जनाः पण्योपयाननिमित्तमाहूय राजानं पण्यपरीक्षायामासक्तमश्वव्यतिकीर्णं वा हन्युरश्वैश्च प्रहरेयुः ॥ ३० ॥

घोड़े आदि बेचने वाले व्यापारीके वेषमें रहते हुए गूढपुरुष, बिक्रीके योग्य घोड़ोंको साथ लेकर, उस सौदेको दिखलानेके बहानेसे शत्रुराजाको वहां बुलवावें । जब वह उस सौदेकी (=घोड़ोंकी) परीक्षा अर्थात् अच्छी तरह देखभालमें लगा हुआ हो; या घोड़ोंकी भारी भीड़में घिर गया हो; तब उसको मारडालें । और उन घोड़ोंके द्वाराही (अर्थात् उन घोड़ों पर सवार होकरही) उसके मूलस्थान पर हमला कर देवें ॥ ३० ॥

नगराभ्याशे वा चैत्यमारुह्य रात्रौ तीक्ष्णाः कुम्भेषु नालीन्वा विदलानि धमन्तः 'स्वामिनो मुख्यानां वा मांसानि भक्षयिष्यामः पूजा नो वर्तता' मित्यव्यक्तं ब्रूयुः ॥ ३१ ॥ तदेषां नैमित्तिकमौहूर्तिकव्यञ्जनाः ख्यापयेयुः ॥ ३२ ॥

अथवा नगरके समीप रातमें किसी निर्दिष्ट (श्मशान आदिके) विशेष वृक्षपर चढ़कर सत्री पुरुष, अव्यक्त (अस्पष्ट) रूपमें इसप्रकार बोलें;—'हम स्वामीके (राजाके) या अमात्य आदि मुख्य प्रकृतियोंके मांसको अवश्य खावेंगे, हमारी पूजा होनी चाहिये' ॥ ३१ ॥ इन गूढपुरुषोंकी इस कही हुई बातको, नैमित्तिक (शकुन आदि बताने वाले) तथा मौहूर्तिक (ज्योतिषी) के वेषमें रहने वाले गुप्तपुरुष, सर्वत्र प्रसिद्ध करदेवें ॥ ३२ ॥

मङ्गल्ये वा ह्रदे तटाकमध्ये वा रात्रौ तेजनतैलाभ्यक्ता नागरूपिणः शक्तिमुसलान्ययोमयानि निष्पेषयन्तस्तथैव ब्रूयुः ॥ ३३ ॥

अथवा किसी मांगलिक गहरे जलाशय (तालाब) में रातके समय, दीप्तियुक्त तैलकी मालिश किये हुए, नाग देवताके रूपमें दीखने वाले सिद्ध वेषधारी गूढपुरुष, लोहेके बने हुए शक्ति और मूसलोंको परस्पर रगड़ते हुए उसी प्रकार बोलें । अर्थात् यह कहें, कि 'हम राजा और मन्त्रियोंका मांस खावेंगे, हमारी पूजा होनी चाहिये' ॥ ३३ ॥

ऋक्षचर्मकञ्चुकिनो वाग्निधूमोत्सर्गयुक्ता रक्षोरूपं वहन्तस्त्रिरपसव्यं नगरं कुर्वाणाः शिवसृगालवाशितान्तरेषु तथैव ब्रूयुः ॥ ३४ ॥ चैत्यदैवतप्रतिमां वा तेजनतैलेनाभ्रपटलच्छन्नेनाग्निना

वा रात्रौ प्रज्वाल्य तथैव ब्रूयुः ॥ ३५ ॥ तदन्ये ख्यापयेयुः ॥ ३६ ॥

अथवा रीछके चमड़ेको ऊपर ओढ़े हुए मुंहसे आग और धुआं निकालते हुए राक्षसोंका रूप धारण किये हुए, नगरके चारों ओर बाईं ओरसे तीनवार घूमते हुए, गूढपुरुष, कुत्ते तथा शृगाल (गीदड़) आदिके शब्दोंमें उसी प्रकार बोलें ॥ ३४ ॥ अथवा श्मशानके देवताकी, प्रतिमाको, दीप्तियुक्त तैलसे या अभ्रकके बीचमें छिपी हुई (ढकी हुई) आगसे रातमें प्रज्वलित करके, गूढपुरुष, उसी प्रकार बोलें ॥ ३५ ॥ तदनन्तर दूसरे सत्री पुरुष, इनकी कही हुई इस बातको सर्वत्र प्रसिद्ध करदेवें ॥ ३६ ॥

दैवतप्रतिमानामभ्यर्हितानां वा शोणितेन प्रस्रावमतिमात्रं कुर्युः ॥ ३७ ॥ तदन्ये दैवरुधिरसंस्रावे संग्रामे पराजयं ब्रूयुः ॥ ३८ ॥

अथवा गूढपुरुष, देवताओंमेंसे प्रधान देवताओंकी प्रतिमाओंका अत्यन्त रुधिरस्राव करें । तात्पर्य यह है, कि बकरे आदिका खून लेकर गूढपुरुष, उसको प्रतिमाओंके अन्दरसे होकर निकालें, जिससे देखने वालोंको यह प्रतीत हो, कि यह प्रतिमाही स्वयं खून बाहर निकाल रही है ॥ ३७ ॥ तदनन्तर उस दैवी रुधिरके बहने पर, अन्य सत्री पुरुष, सर्वत्र इस बातको प्रसिद्ध करें, कि इनलक्षणोंसे मालूम होता है, कि संग्राममें अवश्यही राजाका पराजय हो जायगा ॥ ३८ ॥

संधिरात्रिषु श्मशानप्रमुखे वा चैत्यमूर्ध्वभक्षितैर्मनुष्यैः प्ररूपयेयुः ॥ ३९ ॥ ततो रक्षोरूपी मनुष्यकं याचेत ॥ ४० ॥ यश्चात्र शूरवादिको ऽन्यतमो वा द्रष्टुमागच्छेत्तमन्ये लोहमुसलै- र्हन्युः ॥ ४१ ॥ यथा रक्षोभिर्हत इति ज्ञायेत ॥ ४२ ॥

अथवा पर्वकी रातोंमें (अर्थात् पूर्णमासी अमावस्या आदिकी रातमें) मुख्य श्मशान स्थानमें, ऊपरसे खाये हुए मनुष्योंके द्वारा चिताके चिन्होंको. गूढपुरुष दिखलावें ॥ ३९ ॥ तदनन्तर राक्षसके रूपमें, एक गूढपुरुष; अपने खानेके लिये एक पुरुषको मांगे ॥ ४० ॥ जो कोई अपने आपको बहादुर कहने वाला, या और कोई पुरुष, वहां इसको देखनेके लिये आवे, उस पुरुषको दूसरे सत्री आदि मिलकर लोहेके मूसलोंसे मार डालें ॥ ४१ ॥ जिससे सब पुरुषों- को यही मालूमहो, कि अमुक मनुष्यको राक्षसोंने मारडाला है ॥ ४२ ॥

तदद्भुतं राज्ञस्तद्दर्शिनः सत्त्रिणश्च कथयेयुः ॥ ४३ ॥ ततो नैमित्तिकमौहूर्तिकव्यञ्जनाः शान्तिं प्रायश्चित्तं ब्रूयुः ॥ ४४ ॥ अन्यथा महदकुशलं राज्ञो देशस्य चेति ॥ ४५ ॥ प्रतिपन्नमेतेषु सप्तरात्रमेकैकमन्त्रबलिहोमं स्वयं राज्ञा कर्तव्यमिति ब्रूयुः ॥४६॥ ततः समानम् ॥ ४७ ॥

इस अद्भुत समाचारको, यह सब कुछ देखने वाले, अथवा दूसरे सत्री पुरुष, राजासे जाकर कहें ॥ ४३ ॥ तदनन्तर नैमित्तिक तथा मौहूर्त्तिकके वेषमें रहने वाले गुप्तपुरुष, शान्ति और प्रायश्चित्तके सम्बन्धमें राजासे कहें ॥ ४४ ॥ और यहभी कहें, कि यदि इस प्रकार न किया जायगा, तो राजाका और देशका बड़ा अमंगल होगा ॥ ४५ ॥ जब राजा सब बातोंको स्वीकार करले, तब ये पुरुष कहें, कि इन दुर्निमित्तोंके सम्बन्धमें सात रात्रि पर्यन्त राजाको स्वयंही, एक २ दुर्निमित्तके लिये एक २ बलि मन्त्र होम करना चाहिये। अर्थात् एक बलि (एक बकरे आदिकी भेंट चढ़ाना,) एक मन्त्र (= विशेष मन्त्रका जप करना), एक होम (अग्निमें आहुति डालकर यज्ञ करना), सात दिन तक प्रतिदिन करना चाहिये ॥ ४६ ॥ जब राजा वहां आकर रहता हुआ इस कामको करने लगे, तो अवसर पाकर गूढ़पुरुष, उसको मार डालें, यह सब पूर्ववत् ही समझना चाहिये ॥ ४७ ॥

एतान्वा योगानात्मनि दर्शयित्वा प्रतिकुर्वीत परेषामुपदेशार्थम् ॥ ४८ ॥ ततः प्रयोजयेद्योगान् ॥ ४९ ॥ योगदर्शनप्रतीकारेण वा कोशाभिसंहरणं कुर्यात् ॥ ५० ॥

राजको चाहिये, इन सब योगोंको अपने आप दिखलाकर इनका प्रतीकार करे, और अपनी सहायता करने वाले पुरुषोंको सिखलावे। (अभिप्राय यह है, जो गूढ़पुरुष, विजिगीषुके मुकाबलेमें इन प्रयोगोंको आकर करें, विजिगीषु स्वयं इन प्रयोगोंको उन्हें दिखाकर कहे, कि देखो, मैं यह सब कुछ जानता हूं, तुम इन बातोंसे मुझे धोखा नहीं दे सकते, इस तरह कहकर शत्रुसे प्रयुक्त हुये इन प्रयोगोंका प्रतीकार करे। और अपने सहायक पुरुषोंको इन सब प्रयोगोंकी शिक्षा देवे,) ॥ ४८ ॥ तदन्तर अवसर आनेपर, शत्रुके ऊपर उनका प्रयोग करावे। अर्थात् उन प्रयोगोंके द्वारा शत्रुको अपने वशमें करे ॥ ४९ ॥ अथवा इन्हीं प्रयोगोंके द्वारा (अर्थात् इन उपायोंसे लोगोंके

दैवी कष्टोंका प्रतीकार करके) कोश बढ़ानेके लिये धनसञ्चयभी करे। (यह सूत्र पहिलेभी आया है। देखो अधि० ५, अध्या० २, सूत्र ५२) ॥ ५० ॥

हस्तिकामं वा नागवनपाला हस्तिना लक्षण्येन प्रलोभयेयुः ॥ ५१ ॥ प्रतिपन्नं गहनमेकायनं वातिनीय घातयेयुर्बध्वा वापहरेयुः ॥ ५२ ॥ तेन मृगयाकामो व्याख्यातः ॥ ५३ ॥

अथवा हाथीकी इच्छा रखने वाले शत्रु राजाको, हाथियोंके जंगलोंकी रक्षा करने वाले, विजिगीषु पक्षके पुरुष, शुभलक्षणयुक्त हाथीके द्वारा प्रलोभन देवें। अर्थात् उस प्रकारका हाथी पकड़वा देनेकी अभिलाषा उसके हृदयमें उत्पन्न करा देवें ॥ ५१ ॥ जब वह इस बातको स्वीकार करले, तो उसे अकेलेही घने जंगलमें लेजाकर मरवा डालें, अथवा बांधकर अपने विजिगीषु राजाके पास लेजावें ॥ ५२ ॥ इसीके अनुसार, शिकार खेलनेकी इच्छा रखने वाले शत्रु राजाके सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिये ॥ ५३ ॥

द्रव्यस्त्रीलोलुपमाढ्यविधवाभिर्वा परमरूपयौवनाभिः स्त्रीभिर्दायादनिक्षेपार्थमुपनीताभिः सत्त्रिणः प्रलोभयेयुः ॥ ५४ ॥ प्रतिपन्नं रात्रौ सत्त्रिच्छन्नाः समागमे शस्त्ररसाभ्यां घातयेयुः ॥ ५५ ॥

अथवा जो शत्रुराजा, धन और स्त्रियोंकी कामना रखता हो, उसको सत्री पुरुष, धनी विधवा स्त्रियोंके द्वारा, या अपने दायभाग तथा अमानत आदिके मुक़दमोंके बहानेसे वहां लाई हुई अन्य अत्यन्त रूपवती और जवान स्त्रियोंके द्वारा प्रलोभन देवें। अर्थात् इन स्त्रियोंके जालमें उस राजाको फंसावें ॥ ५४ ॥ जब राजा उनके काबूमें होजाय, और उनकी बातको स्वीकार करले, तब रातके समय उनके साथ समागम करनेके लिये किसी संकेतित स्थानमें राजाके आनेपर, सत्री पुरुषके साथ सम्बन्ध रखने वाले गूढपुरुष, शस्त्रप्रहार और विष आदि खिलाकर उस राजाको मार डालें ॥ ५५ ॥

सिद्धप्रव्रजितचैत्यस्तूपदैवतप्रतिमानामभीक्ष्णाभिगमनेषु वा भूमिगृहसुरङ्गागूढभित्तिप्रविष्टास्तीक्ष्णाः परमभिहन्युः ॥ ५६ ॥

अथवा सिद्ध (साधु), प्रव्रजित (भिक्षु), श्मशानके स्तूप या देवताओं की प्रतिमाओंके देखनेके लिये बार २ जानेके अवसरोंपर ; भूमिगृह, सुरंग तथा गूढभित्तियोंमें छिपे हुए गूढपुरुष, शत्रुराजाको मार डालें ॥ ५६ ॥

येषु देशेषु याः प्रेक्षाः प्रेक्षते पार्थिवः स्वयम् ।
यात्राविहारे रमते यत्र क्रीडति वाम्भसि ॥ ५७ ॥

जिन देशोंमें राजा स्वयं, जिन नाचने गाने आदिके तमाशोंको देखता है, और यात्रा (विशेष उत्सव आदिमें सम्मिलित होनेके लिये जाना) तथा विहार (खेलकूद) आदिमें खूब लगा रहता है ; अथवा जहां जलक्रीडा आदिमें ही अपना खूब जीलगाता है; ॥ ५७ ॥

धिगुक्त्यादिषु सर्वेषु यज्ञप्रहवणेषु वा ।
सूतिकाप्रेतरोगेषु प्रीतिशोकभयेषु वा ॥ ५८ ॥

अथवा सब तरहकी धिक्कारोक्ति आदिमें (अर्थात् नाराज होकर गाली आदि देनेमें । किसी २ पुस्तकमें 'धिगुक्त्यादिषु सर्वेषु' के स्थानपर 'चाटूक्त्यादिषु कृत्येषु' ऐसा भी पाठ है ; इसका यह अर्थ करना चाहियेः—खुशामद आदि करनेके कामोंमें में, या इसी प्रकारके अन्य कामोंमें), यज्ञ और प्रीति-भोजन आदिमें, अथवा सूतक (बच्चा पैदा होना) मृत और रोगके अवसरोंपर यथाक्रम प्रसन्न, दुःखी और भयभीत रहनेमें, लगा रहता है; ॥ ५८ ॥

प्रमादं याति यस्मिन्वा विश्वासात्स्वजनोत्सवे ।
यत्रास्यारक्षिसंचारो दुर्दिने संकुलेषु वा ॥ ५९ ॥

अथवा जब किसी अपने सम्बन्धी जनोंके उत्सवमें विश्वासके कारण प्रमादको प्राप्त होता है, अर्थात् धोखा खाता है; अथवा जहां रक्षक पुरुषोंसे रहित होकर इसका आना जाना होता है; अथवा दुर्दिन में या भारी भीड़के अवसरोंपर; ॥ ५९ ॥

विप्रस्थाने प्रदीप्ते वा प्रविष्टे निर्जने ऽपि वा ।
वस्त्राभरणमाल्यानां फेलाभिः शयनासनैः ॥ ६० ॥

अथवा मार्ग छोड़कर निर्जन स्थानसे चलनेपर, अथवा नगर आदिमें आग लगजानेपर, या घने जनशून्य जंगलमें शत्रुके प्रविष्ट होजानेपर; उपभोग से बचेहुए वस्त्र आभरण तथा माला सम्बन्धी शयन और आसनों (सोने बैठनेके वस्त्र आदि) के द्वारा; ॥ ६० ॥

मद्यभोजनफेलाभिस्तूर्यवादाभिहतैः सह ।
प्रहरेयुररींस्तीक्ष्णाः पूर्वप्रणिहितैः सह ॥ ६१ ॥

अथवा मद्य और भोजनके उच्छिष्टके द्वारा प्रसन्न हुए २, तथा इशारे के लिये नियमानुसार बाजे बजातेहुए, और पहिलेसे नियुक्त हुए २ अपने

साथी गूढपुरुषोंके साथ २ ही तीक्ष्ण पुरुष, शत्रुओंके ऊपर प्रहार करके उन्हें मारडालें। (५७ वें श्लोकसे लगाकर यहांतक पांच श्लोकोंका इकट्ठा ही अन्वय समझना चाहिये) ॥ ६१ ॥

यथैव प्रविशेयुश्च द्विषतः सत्त्रहेतुभिः ।
तथैव चापगच्छेयुरित्युक्तं योगवामनम् ॥ ६२ ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशे ऽधिकरणे योगवामनं द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥
आदितो द्विचत्वारिंशच्छतः ॥ १४२ ॥

जिसप्रकारसे शत्रुओंके बीचमें, सत्री पुरुष, कपटपूर्वक प्रवेश करें, उसी प्रकार कपटपूर्वक उन्हें, उनके बीचमें से बाहर निकल आना चाहिये। अन्यथा शत्रुओंके द्वारा उनके पकड़े जानेकी सम्भावना होसकती है। यहांतक योगवामनका निरूपण करदिया गया ॥ ६२ ॥

दुर्गलम्भोपाय त्रयोदश अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त।

तीसरा अध्याय

१७३ प्रकरण

गूढपुरुषोंका शत्रुदेशमें निवास।

गूढपुरुषोंका ही नाम 'अपसर्प' है। उनको शत्रुके देशमें भेजकर, वहां रखना ही 'अपसर्पप्रणिधि' कहाजाता है। इस प्रकरणमें इसी बातका निरूपण किया जायगा।

श्रेणीमुख्यमाप्तं निष्पातयेत् ॥ १ ॥ स परमाश्रित्य पक्षापदेशेन स्वविषयात्साचिव्यकरणसहायोपादानं कुर्वीत ॥ २ ॥ कृतापसर्पोपचयो वा परमनुमान्य स्वामिनो दूष्यग्रामं वीतहस्त्यश्वं दूष्यामात्यं दण्डमाक्रन्दं वा हत्वा परस्य प्रेषयेत् ॥ ३ ॥

विजिगीषु, अपने अत्यन्त विश्वस्त श्रेणीमुख्य पुरुषको, अपने यहांसे निकाल देवे। (इसका अभिप्राय यही है, कि ऊपरसे बनावटी शत्रुता दिखाकर उसको अपने यहांसे बाहर करदेवे, जिससे कि बिना सन्देहके वह शत्रुके पास आश्रय लेसके) ॥ १ ॥ वह विश्वस्त पुरुष, शत्रुका आश्रय लेकर, शत्रुपक्षके कार्यके बहानेसे, अपने देशसे अपनी सहायता करनेवाले पदार्थोंका संग्रह करे ॥ २ ॥ जब अपनी सहायताके लिये बहुतसे गूढपुरुषोंको इकट्ठा करलेवे,

तो शत्रुकी अनुमति लेकर, विजिगीषु (अपने वास्तविक स्वामी) के दूष्यवर्ग को, घोड़े तथा हाथियोंसे रहित, और दूष्य अमात्योंसे युक्त सेनाको, और आक्रन्द अर्थात् पृष्ठस्थित मित्रको जीतकर शत्रुके पास भेजदेवे ॥ ३ ॥

जनपदैकदेशं श्रेणीमटवीं वा सहायोपादानार्थं संश्रयेत ॥ ४ ॥ विश्वासमुपगतः स्वामिनः प्रेषयेत् ॥ ५ ॥ ततः स्वामी हस्तिबन्धनमटवीघातं वापदिश्य गूढमेव प्रहरेत् ॥ ६ ॥ एतेनामात्याटविका व्याख्याताः ॥ ७ ॥

जनपदके एकदेश, श्रेणी (बलवान् पुरुषोंका कोई संघ), अथवा आटविक पुरुषोंको स्वामीकी सहायताके बहानेसे अपने वशमें करके, उनके साथ गूढ व्यवहार करे ॥ ४ ॥ जब ये लोग अपने पूर्ण विश्वस्त होजावें, तो अपने असली मालिक विजिगीषुकी सहायताके लिये, उन्हें उसके पास भेज देवे ॥ ५ ॥ तदनन्तर स्वामी अर्थात् विजिगीषु, अपने हाथियोंके पकड़े जाने या जंगलके नष्ट करदेनेका बहाना करके, चुपचाप ही (शत्रुके तैयार हुए बिना ही), शत्रुपर चढ़ाई करदेवे ॥ ६ ॥ इसीके अनुसार, अमात्य तथा आटविकको गूढपुरुष बनाकर, शत्रुके देशमें भेजनेका प्रकार भी समझ लेना चाहिये ॥ ७ ॥

शत्रुणा मैत्रीं कृत्वामात्यानवक्षिपेत् ॥ ८ ॥ ते तच्छत्रोः प्रेषयेयुः ॥ ९ ॥ भर्तारं नः प्रसादयेति ॥ १० ॥ स यं दूतं प्रेषयेत् तमुपालभेत ॥ ११ ॥ भर्ता ते माममात्यैर्भेदयति ॥१२॥ न च पुनरिहागन्तव्यमिति ॥ १३ ॥

गूढपुरुषको शत्रुके देशमें भेजनेका अब और प्रकार बताते हैं:—विजिगीषु, अपने शत्रुके साथ ऊपरसे बनावटी मित्रता करके, अपने अमात्योंको धिक्कारपूर्वक तिरस्कृत करे ॥ ८ ॥ वे अमात्य, उस शत्रुके पास अपने दूत को निम्नलिखित सन्देश देकर भेजें, कि ॥ ९ ॥ आप हमारे मालिकको प्रसन्न करा दीजिये ॥ १० ॥ तदनन्तर वह शत्रु, अपने जिस दूतको, विजिगीषुके पास वह काम करनेके लिये भेजे, विजिगीषु उसको यह कहकर घुड़क देवे, कि ॥ ११ ॥ 'तुम्हारा मालिक हमारे अमात्योंसे मेरा भेद कराना चाहता है ॥ १२ ॥ याद रक्खो ! इस तरहका सन्देश लेकर मेरे पास फिर कभी मत आना ॥ १३ ॥

अथैकममात्यं निष्पातयेत् ॥ १४ ॥ स परमाश्रित्य योगापसर्पापरक्तदूष्यानशक्तिमतः स्तेनाटविकानुभयोपघातकान्वा परस्योपहरेत् ॥ १५ ॥ आप्तभावोपगतः प्रवीरपुरुषोपघात-मस्योपहरेत् ॥ १६ ॥

इसके अनन्तर, विजिगीषु, उन अमात्योंमेंसे एक अमात्यको अपने यहां-से निकाल देवे ॥ १४ ॥ वह अमात्य शत्रुका आश्रय लेकर; कपटी गूढपुरुष, स्वामीमें अपरक्त हुए २ दूष्यपुरुष, शक्तिरहित चोर तथा आटविक पुरुषोंको, अथवा विजिगीषु और शत्रु दोनोंका ही नाश करनेवाले पुरुषोंको, यह कहता हुआ शत्रुके पास ले जावे, कि मैंने तुम्हारे इतने नये सहायक तैयार किये हैं ॥ १५ ॥ जब शत्रु इस अमात्य पर पूरा विश्वास करने लगे, तो वह अमात्य शत्रुके शक्तिशाली पुरुषोंको मार डाले ॥ १६ ॥

अन्तपालमाटविकं दण्डचारिणं वा ॥ १७ ॥ दृढमसौ चासौ च ते शत्रुणा संधत्त इति ॥ १८ ॥ अथ पश्चादभित्यक्तशासनैरेनान्घातयेत् ॥ १९ ॥ दण्डबलव्यवहारेण वा शत्रुमुद्योज्य घातयेत् ॥ २० ॥

उनके नष्ट करनेका उपाय निम्नलिखित रीतिसे समझना चाहिये:—वह अमात्य, आटविक (जंगलकी रक्षा करने वाला) तथा सैनिक पुरुषोंकी दुष्टता-की सूचना, शत्रु राजाको देवे । अर्थात् राजाको कहे, कि आपके ये आटविक और सैनिक पुरुष बड़े दुष्ट होगये हैं ॥ १७ ॥ मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं; कि अमुक २ आटविक या सैनिक पुरुष, शत्रुके साथ सन्धि कररहे हैं ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर, विजिगीषुके वध्य पुरुषोंके पास, आटविक और विजिगीषुकी परस्पर मित्रताको प्रकट करनेवाले कपट लेखोंको शत्रुको दिखाकर अन्तपाल आदिको मरवा डाले ॥ १९ ॥ अथवा, शत्रुको सैनिक सहायता देनेका वादा करके, उसके शत्रुसे उसे भिड़ादेवे, बादमें उसे सहायता न देकर, उसके शत्रुके द्वाराही उसे मरवा डाले ॥ २० ॥

कृत्यपक्षोपग्रहेण वा परस्यामित्रं राजानमात्मन्यपकारयित्वाभियुञ्जीत ॥ २१ ॥ ततः परस्य प्रेषयेत् ॥ २२ ॥ असौ ते वैरी ममापकरोति ॥ २३ ॥ तमेहि संभूय हनिष्यावः ॥ २४ ॥ भूमौ हिरण्ये वा ते परिग्रह इति ॥ २५ ॥

अथवा शत्रुके कृत्यपक्ष (क्रुद्ध, लुब्ध तथा भीतवर्ग) को अपने अनुकूल बनाकर विजिगीषु, शत्रुके शत्रुराजासे अपने ऊपर कुछ अपकार करवाकर, उसपर चढ़ाई करनेकी तैयारी करदेवे ॥ २१ ॥ तदनन्तर शत्रुके पास निम्न-लिखित सन्देश देकर अपने दूतको भेजे ॥ २२ ॥ वह तुम्हारा शत्रु, बराबर मेरा अपकार कररहा है ॥ २३ ॥ आओ, हम दोनों मिलकर उसपर चढ़ाई करेंगे ; अर्थात् उसको मिलकर मारेंगे ॥ २४ ॥ शत्रुपर विजय प्राप्त होनेपर भूमि और हिरण्य (धन) में तुम्हारा हिस्सा होगा ॥ २५ ॥

प्रतिपन्नमभिसत्कृत्यागतमवस्कन्देन प्रकाशयुद्धेन वा शत्रुणा घातयेत् ॥ २६ ॥ अभिविश्वासनार्थं भूमिदानपुत्राभिषेकरक्षाप-देशेन वा ग्राहयेत् ॥ २७ ॥ अविषह्यमुपांशुदण्डेन वा घातयेत् ॥ २८ ॥

जब शत्रु इस बातको स्वीकार करले, और अपने पास आजावे, तो पहिले उसको अच्छी तरह सत्कार करके, फिर सोनेके समय छिपकर मारडाले । अथवा प्रकाशयुद्धके समय शत्रुके द्वाराही मरवा डाले ॥ २६ ॥ यदि ये दोनों मिलकर शत्रुको जीत लेवें, तो विजिगीषु, प्रथम प्रतिज्ञा की हुई भूमिको देने, पुत्रके राज्याभिषेक करने तथा अपनी रक्षा करनेके बहानेसे शत्रुको पकड़वा देवे ॥ २७ ॥ यदि शत्रु, इस प्रकार भी काबूमें न आवे, तो उपांशुदण्डके द्वारा उसका वध करवा देवे । अर्थात् छिपकर तीक्ष्ण पुरुषोंके द्वारा मरवा देवे ॥ २८ ॥

स चेद्दण्डं दद्यान्न स्वयमागच्छेत्तमस्य वैरिणा घातयेत् ॥ २९ ॥ दण्डेन वा प्रयातुमिच्छेन्न विजिगीषुणा, तथाप्येनमु-भयतः संपीडनेन घातयेत् ॥ ३० ॥

शत्रुको नष्ट करनेके ये पूर्वोक्त उपाय उसी समय किये जासकते हैं, जब शत्रु स्वयंही विजिगीषुकी सहायताके लिये आजावे । यदि वह अपनी सेनाकोही विजिगीषुकी सहायताके लिये भेजदेवे, और स्वयं न आवे ; तो उसकी सेनाको उसके शत्रुके द्वारा मरवा डाले । अर्थात् शत्रुके मुकाबलेमें लड़ाकर नष्ट करवा देवे ॥ २९ ॥ यदि विजिगीषुके साथ मिलकर, अपने शत्रुसे युद्ध करनेके लिये आया हुआ शत्रु, अपनी सेनाके साथही चलना चाहता है, विजिगीषुके साथ चलना नहीं चाहता, तोभी इसको दोनों ओरसे घेरकर मरवा डाले ॥ ३० ॥

अविश्वस्तो वा प्रत्येकशो यातुमिच्छेत्तद्राज्यैकदेशं वा यातव्यस्यादातुकामस्तथाप्येनं वैरिणा सर्वसन्दोहेन वा घातयेत् ॥ ३१ ॥ वैरिणा वा सक्तस्य दण्डोपनयेन मूलमन्यतो हारयेत् ॥ ३२ ॥

यदि शत्रु, विजिगीषुपर अविश्वास रखनेके कारण, अपनी सेनाको अलहदाही लेकर इस कामनासे उस शत्रु राजापर चढ़ना चाहता है; कि उसके राज्यके एक हिस्सेको मैं अपने वशमें करलूंगा; तोभी विजिगीषु, इस शत्रुको इसके शत्रुके द्वारा अथवा अपनेही सम्पूर्ण सैनिक शक्तिके द्वारा अवश्य मरवा डाले ॥ ३१ ॥ अथवा अपने शत्रुके ऊपर चढ़ाई करके, उसके साथ लड़ाईमें लगे हुए शत्रुके मूलस्थानकोही; विजिगीषु, सेना भेजकर अपहरण करवा लेवे। अर्थात् शत्रु, अपने शत्रुपर चढ़ाई करके जावे, और विजिगीषु उसकी राजधानीपर लूटमार करदेवे ॥ ३२ ॥

शत्रुभूम्या वा मित्रं पणेत ॥ ३३ ॥ मित्रभूम्या वा शत्रुम् ॥ ३४ ॥ ततः शत्रुभूमिलिप्सायां मित्रेणात्मन्यपकारयित्वाभियुञ्जीत ॥ ३५ ॥ इति समानाः पूर्वेण सर्वे एव योगाः ॥ ३६ ॥

अथवा विजिगीषु, मित्रके साथ निम्नलिखित रीतिसे छिपे तौरपर सन्धि करे, कि यदि हम दोनोंने मिलकर शत्रुको जीत लिया, तो उसकी भूमिको आधा २ बांटलेंगे ॥ ३३ ॥ इसीप्रकार विजिगीषु, शत्रुके साथ भी छिपे तौरपर शर्त्त करे, कि हम तुम मिलकर, तुम्हारे अमुक शत्रुपर (अर्थात् विजिगीषुके मित्रपर) चढ़ाई करके, उसकी भूमिको बराबर बांटलेंगे ॥ ३४ ॥ इसतरह जब शत्रुकी भूमिको लेने की इच्छा हो, तो विजिगीषु, मित्रके द्वारा अपने ऊपर कुछ अपकार करवाके, इसी बहानेसे उसके ऊपर आक्रमण करने की तैयारी करदेवे ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर सब कार्य पूर्ववत् ही करना चाहिये। (अर्थात् मिलकर चढ़ाई करनेके लिये शत्रुको अपने समीप बुलाकर, उसे उपर्युक्त विविध उपायोंसे मारडाले) ॥ ३६ ॥

शत्रुं वा मित्रभूमिलिप्सायां प्रतिपन्नं दण्डेनानुगृह्णीयात् ॥३७॥ ततो मित्रगतमतिसंदध्यात् ॥ ३८ ॥ कृतप्रतिविधानो वा व्यसनमात्मनो दर्शयित्वा मित्रेणामित्रमुत्साहयित्वात्मानमभियोजयेत् ॥ ३९ ॥

अथवा जब शत्रुको, विजिगीषुके मित्रको भूमि लेनेकी इच्छा हो, तो शत्रुके तैयार होनेपर, उसको अपनी ओरसे सैनिक सहायता देवे। अर्थात् अपनी सेना साथ देकर मित्रके देशपर उससे चढ़ाई करवादेवे ॥ ३७ ॥ जब वह मित्रके देशमें पहुंचजावे, तो मित्रसे मिलकर, शत्रुको नष्ट करवादेवे ॥३८॥ अथवा हरतरहकी आपत्तिका प्रतीकार करके विजिगीषु, अपने आपके ऊपर कोई बनावटी आपत्ति दिखाकर, अपने मित्रके द्वारा शत्रुको उत्साहित करके अपने ऊपर चढ़ाई करवादेवे (इस सूत्रमें 'कृतप्रधानो वा' इसके स्थानपर किसी २ पुस्तकमें 'ततः प्रतिविधानेन वा' ऐसा भी पाठ है। परन्तु दोनों पाठोंका अर्थ समान ही है) ॥ ३९ ॥

ततः संपीडनेन घातयेत् ॥ ४० ॥ जीवग्राहेण वा राज्यविनिमयं कारयेत् ॥ ४१ ॥ मित्रेणाहूतश्चेच्छत्रुरग्राह्यः स्थातुमिच्छेत्सामन्तादिभिर्मूलमस्य हारयेत् ॥ ४२ ॥ दण्डेन वा त्रातुमिच्छेत्तमस्य घातयेत् ॥ ४३ ॥

इसप्रकार विजिगीषुके मित्रके साथ मिलकर, जब शत्रु विजिगीषुपर चढ़ाई करदेवे, तो विजिगीषु और उसका मित्र, दोनों ही, शत्रुको बीचमें घेरकर मारडालें ॥ ४० ॥ अथवा जीते हुए ही उसे पकड़कर, उसके राज्यका परिवर्त्तन करदें। अर्थात् उसको बन्धनमें डालदेवें, और उसकी गद्दीपर, अपने आज्ञाकारी उसके पुत्र या अन्य किसी सम्बन्धीको बैठा देवें ॥ ४१ ॥ यदि विजिगीषुके मित्रसे बुलायाहुआ शत्रु, उस मित्रसे अलहदा रहना चाहे अर्थात् उसके साथ २ मिलकर लड़ाई करनेको न जाना चाहे, किन्तु पृथक् होकर ही जाना चाहे; तो सामन्त (शत्रुके समीप देशके राजा) आदिके द्वारा इसकी राजधानीका अपहरण करवादेवे ॥ ४२ ॥ यदि सेनाके द्वारा वह अपनी रक्षा करना चाहे, तो उस सेनाको मरवा दियाजावे ॥ ४३ ॥

तौ चेन्न भिद्येयातां प्रकाशमेवान्योन्यस्य भूम्या पणेत ॥ ४४ ॥ ततः परस्परं मित्रव्यञ्जनोभयवेतना वा दूतान्प्रेषयेयुः ॥ ४५ ॥ अयं ते राजा भूमिं लिप्सते शत्रुसंहित इति ॥ ४६ ॥ तयोरन्यतरो जाताशङ्कारोषः पूर्ववच्चेष्टेत ॥ ४७ ॥

मित्र और शत्रु, यदि छिपे तौरपर शर्त्त करनेसे भेदको प्राप्त न होवें, तो प्रकटरूपमेंही एक दूसरेकी भूमिकी शर्त्त करे। अर्थात् मित्रकी भूमिसे शत्रुके साथ, और शत्रुकी भूमिसे मित्रके साथ खुले तौरपरही शर्त्त करलेवे

॥ ४४ ॥ तदनन्तर शत्रु और मित्र दोनोंकेही पास, शत्रु और मित्रके दोनोंके मित्रके वेषमें रहनेवाले गूढ़पुरुष, अथवा दोनों ओरसे (विजिगीषु और मित्रकी ओरसे) वेतन पानेवाले गुप्तपुरुष, निम्नलिखित संदेशको देकर अपने दूतोंको भेजें ॥ ४५ ॥ वह संदेश यह है:— 'यह राजा, शत्रुके साथ मिलकर तुम्हारी भूमिको लेना चाहता है ॥ ४६ ॥ उन दोनों (मित्र शत्रुओं) मेंसे कोई एक शङ्कितचित्त तथा क्रुद्ध होकर, पूर्ववत्‌ही चेष्टा करे। अभिप्राय यह है, उन दोनों मेंसे जो क्रुद्ध होकर विजिगीषुपर चढ़ाई करे, उससे दूसरेके साथ मिलकर विजिगीषु, पूर्वोक्त उपायोंके द्वारा आक्रमणकारीको नष्ट करडाले ॥ ४७ ॥

दुर्गराष्ट्रदण्डमुख्यान्वा कृत्यपक्षहेतुभिरभिविख्याप्य प्रव्राजयेत ॥ ४८ ॥ ते युद्धावस्कन्दावरोधव्यसनेषु शत्रुमतिसंदध्युः ॥ ४९ ॥ भेदं वास्य स्ववर्गेभ्यः कुर्युः ॥ ५० ॥ अभित्यक्तशासनैः प्रतिसमानयेयुः ॥ ५१ ॥

अथवा दुर्ग (मूलस्थान=राजधानी), राष्ट्र (जनपद) और सेनाके मुख्य व्यक्तियोंको : अपने (विजिगीषुके) कृत्यपक्ष (क्रुद्ध लुब्ध भीतवर्ग) की सहायता करनेका बहाना करके, अर्थात् ये लोग मेरे कृत्यरक्षको सहायता देते हैं, इस प्रकार सर्वत्र प्रसिद्ध करके, उनको विजिगीषु, अपने देशसे बाहर निकाल देवे ॥ ४८ ॥ वे सब लोग, शत्रुके आश्रयमें जाकर ; कभी युद्धके अवसरपर, सोते समय, अन्तःपुरमें रहनेके समय, या किसी विशेष आपत्तिके समयमें मौका पाकर शत्रुको मारडालें ॥ ४९ ॥ अथवा इसके अपने अमात्य आदि वर्गोंसेही इसका भेद करवा देवें ॥ ५० ॥ और विजिगीषुके वध्य पुरुषोंके द्वारा लाये गये कपटपूर्ण लेखोंके साथ, अपनी मिथ्याकल्पित बातोंको मिला देवें। अभिप्राय यह है, कि इस प्रकार अमात्य आदिके साथ राजाका भेद डलवा देवे॥५१॥

लुब्धकव्यञ्जना वा मांसविक्रयेण द्वाःस्था दौवारिकापाश्रयाश्चोराभ्यागमं परस्य द्विस्त्रिरिति निवेद्य लब्धप्रत्यया भर्तुरनीकं द्विधा निवेश्य ग्रामवधे ऽवस्कन्दे च द्विषतो ब्रूयुः ॥ ५२ ॥ आसन्नश्चोरगणो महांश्चाक्रन्दः प्रभूतं सैन्यमागच्छत्विति ॥ ५३ ॥

अथवा शिकारीके वेषमें रहनेवाले गूढपुरुष, मांस बेचनेके बहानेसे दरवाजेपर ठहरकर, द्वारपालोंके आश्रयसे, दो तीन बार चिल्लाकर इस बातको कहें, कि शत्रुके गांवोंमें चोर आते हैं। इस तरह जब राजाको इन बातोंपर विश्वास होजावे, तो ये अपने राजाकी सेनाको, ग्रामवध और रात्रिको सोते समयकी लूटमारके लिये दो भागोंमें विभक्त करके शत्रुसे कहें:—॥ ५२ ॥

चोरोंका झुण्ड बहुत नजदीक आया हुआ है; आदमियोंका बहुत कोलाहल मचरहा है; आपकी बहुतसी सेना उनके प्रतीकारके लिये हमारे साथ आनी चाहिये ॥ ५३ ॥

तदर्पयित्वा ग्रामघातदण्डस्य सैन्यमितरदादाय रात्रौ दुर्गद्वारेषु ब्रूयुः ॥ ५४ ॥ हतश्चोरगणः ॥ ५५ ॥ सिद्धयात्रमिदं सैन्यमागतम् ॥ ५६ ॥ द्वारमपाव्रियतामिति ॥ ५७ ॥ पूर्वप्रणिहिता वा द्वाराणि दद्युः ॥ ५८ ॥ तैः सह प्रहरेयुः ॥ ५९ ॥

इसप्रकार उस सेनाको, ग्रामवधके लिये नियुक्त हुई सेनाके सुपुर्द करके, अपनी सेनाके दूसरे हिस्सेको लेकर, रातके समय दुर्गके दरवाजोंपर आकर इसतरह कहें:—॥ ५४ ॥ चोरोंके समूहको हम लोगोंने मारडाला है ॥ ५५ ॥ यह सेना अपनी यात्राको सफल करके, अर्थात् अपने कार्यको पूरा करके यहां पहुंच गई है ॥ ५६ ॥ इसलिये दुर्गके दरवाजोंको खोलदिया जावे' ॥ ५७ ॥ अथवा पहिले नियुक्त हुए २ गूढपुरुषही इशारा पाकर दरवाजा खोलदेवें ॥ ५८ ॥ और आई हुई सेनाके साथही वे लोग भी दुर्गपर हमला बोलदेवें ॥ ५९ ॥

कारुशिल्पिपाषण्डकुशीलववैदेहकव्यञ्जनानायुधीयान्वा परदुर्गे प्रणिदध्यात् ॥ ६० ॥ तेषां गृहपतिकव्यञ्जनाः काष्ठतृणधान्यपण्यशकटैः प्रहरणावरणान्यभिहरेयुः ॥ ६१ ॥ देवध्वजप्रतिमाभिर्वा ॥ ६२ ॥

अथवा कारु, शिल्पी, पाखण्डी, कुशीलव (नट) और वैदेहक (व्यापारी) के वेषमें रहनेवाले या आयुधजीवीके वेषमें रहनेवाले गूढपुरुषोंको शत्रुके दुर्गमें भेदिया बनाकर नियुक्त किया जावे ॥ ६० ॥ उनमेंसे गृहस्थके वेषमें रहनेवाले गूढपुरुष, लकड़ी घास अनाज और दूसरे सौदोंकी गाड़ियों द्वारा हथियार तथा कवच आदि युद्धोपयोगी सामग्रीका संग्रह करके, उन कारु आदिके वेषमें रहनेवाले गूढपुरुषोंको देदेवें ॥ ६१ ॥ अथवा देवताओंकी ध्वजारूप तलवारोंके साथ या प्रतिमाओंके साथ लाकर भी हथियार आदिका संग्रह करके; कारु आदि गुप्तपुरुषोंको देदेवें ॥ ६२ ॥

ततस्तद्व्यञ्जनाः प्रमत्तवधमवस्कन्दप्रतिग्रहमभिप्रहरणं पृष्ठतः शङ्खदुन्दुभिशब्देन वा प्रविष्टमित्यावेदयेयुः ॥ ६३ ॥ प्राकारद्वाराट्टालकदानमनीकभेदं घातं वा कुर्युः ॥ ६४ ॥

तदनन्तर कारु आदिके वेषमें रहने वाले गूढपुरुष, प्रमादी पुरुषोंके वध, बलात्कार लूटमार और चारों ओरसे आक्रमणके सम्बन्धमें; तथा शंख और नगाड़ेके शब्दके साथ, पीछेकी ओरसे हमला करनेके सम्बन्धमें निवेदन करदेवें । अर्थात् आसन्न भविष्यमें होने वाली इस घटनाकी सूचना, शत्रुको देदेवें ॥ ६३ ॥ जब शत्रु, उनके प्रतीकारके लिये, अपनी सेनाके साथ पीछेकी ओरको जावे, तो इधरसे कारु आदिके वेषमें गूढपुरुष; परकोटा, प्रधान दरवाजा तथा दरवाजेके ऊपरके चौबारे आदिको तोड़नेके साथ २ ही पूर्ववत् शत्रुकी सेनाकोभी विभक्त करदेवें । अथवा अवसर पाकर सर्वथा नष्टही करडालें ॥६४॥

सार्थगणवासिभिरातिवाहिकैः कन्यावाहिकैरश्वपण्यव्यवहारिभिरुपकरणहारकैर्धान्यक्रेतृविक्रेतृभिर्वा प्रव्रजितलिङ्गिभिर्दूतैश्च दण्डातिनयनं संधिकर्म विश्वासनार्थमिति राजापसर्पाः ॥ ६५ ॥

शत्रुकी सेनामें भेद डालनेके समान, उसे दुर्गम मार्गोंसे लंघानाभी गूढपुरुषकाही कार्य है, इसी बातका अब निरूपण करते हैं:—दुर्गम मार्गोंसे पार करने वाले व्यापारियोंके झुण्डके रूपमें रहते हुए, कन्याओंको लेजाते हुए, घोड़ोंका व्यापार करते हुए, उसके साथ सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे सौदे बेचते हुए या उनको इधरसे उधर ढोते हुए, अनाज आदिकी खरीद फ़रोख्त करते हुए तथा संन्यासियोंके वेषमें रहते हुए दूतही, सेनाओंको दुर्गम मार्गोंसे निकाल कर बाहर लेजावें; तथा शत्रुके विश्वासके लिये सन्धिकी शर्त्तोंका पूरा २ ध्यान रक्खें । इसप्रकार यहां तक राजाओंके गूढपुरुषोंका निरूपण कर दिया गया ॥ ६५ ॥

एत एवाटवीनामपसर्पाः कण्टकशोधनोक्ताश्च ॥ ६६ ॥ व्रजमटव्यासन्नमपसर्पाः सार्थं वा चोरैर्घातयेयुः ॥ ६७ ॥ कृतसंकेतमन्नपानं चात्र मदनरसविद्धं वा कृत्वापगच्छेयुः ॥ ६८ ॥ गोपालकवैदेहकाश्च ततश्चोरान् गृहीतलोप्त्रभाराः मदनरसविकारकाले ऽवस्कन्दयेयुः ॥ ६९ ॥

कण्टकशोधन अधिकरणमें कहे हुए, तथा ये यहां कहे हुए गूढपुरुषही, आटविकोंकेभी समझने चाहियें । तात्पर्य यह है, कि आवश्यकता होने पर आटविकोंमेंभी येही गूढपुरुष कार्य करें ॥ ६६ ॥ आटविकोंमें, गूढपुरुष, यह कार्य करें:—जंगलके समीपकी गोशालाओं तथा मार्गमें चलने वाले पुरुषोंको, आटविकों (=चोरों=चोरवृत्ति पुरुषही आटविक कहलाते हैं) के साथ मिलकर लूटलें, या उन्हें नष्ट करडालें ॥ ६७ ॥ तदनन्तर संकेत पाकर, उनके खाने

पीनेकी वस्तुओंमें, मादकता करने वाले विषोंको मिलाकर, अवसर पातेही वहांसे भाग जावें ॥ ६८ ॥ तदनन्तर ग्वाले और व्यापारी, चोरोंसे चुराये हुए माल (=भार) को पकड़कर, अर्थात् उनसे स्वयं लेकर, विषका विकार होनेके समयमें (अर्थात् विषयुक्त खाद्य पदार्थ खाजानेके कारण, उसका असर होनेके समयमें) चोरोंको गिरफ्तार करलेवें ॥ ६९ ॥

संकर्षणदैवतीयो वा मुण्डजटिलव्यञ्जनः प्रहवणकर्मणा मदनरसयोगाभ्यामतिसंदध्यात् ॥ ७० ॥ अथावस्कन्दं दद्यात् ॥ ७१ ॥ शौण्डिकव्यञ्जनो वा दैवतप्रेतकार्योत्सवसमाजेष्वाट-विकान्सुराविक्रयोपायननिमित्तं मदनरसयोगाभ्यामतिसंदध्यात् ॥ ७२ ॥ अथावस्कन्दं दद्यात् ॥ ७३ ॥

अथवा संकर्षण देवताको माननेवाला (शराबके साथ बहुत मुहब्बत रखनेवाले बलभद्रको ही अपना इष्टदेव समझनेवाला), मुण्ड तथा जटाधारी के वेषमें रहता हुआ गूढपुरुष ही, सन्तुष्ट होकर सहभोज आदिके कराने (अर्थात् पार्टी देने) के द्वारा, तथा मादकतायुक्त विष या अन्य प्रयोगोंसे आटाविकोंको ठगे; अर्थात् उन्हें वशमें करे ॥ ७० ॥ इसके बाद जब उनको विष आदिका असर हो जावे, तो उन्हें गिरफ्तार कर लेवे ॥ ७१ ॥ अथवा शराब बेचनेवालेके वेषमें रहनेवाला गूढपुरुष; देवतासम्बन्धी कार्य, प्रेतकार्य, उत्सव तथा अन्य सभा समाजोंके अवसरोंपर, आटविक पुरुषोंको, विक्रयार्थ सुराके लानेका बहाना करके मदकारक विष आदि रस, तथा अन्य योगोंके द्वारा अपने वशमें करे ॥ ७२ ॥ जब उनके ऊपर, इन रस आदिका प्रभाव होजाय तो उनको गिरफ्तार कर लिया जावे ॥ ७३ ॥

ग्रामघातप्रविष्टां वा विक्षिप्य बहुधाटवीम् ।
घातयेदिति चोराणामपसर्पाः प्रकीर्तिताः ॥ ७४ ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशे ऽधिकरणे अपसर्पप्रणिधिस्तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥
आदितस्त्रिचत्वारिंशच्छतः ॥ १४३ ॥

ग्राम आदि को नष्ट करनेके लिये, गांवमें प्रविष्ट हुए २ आटविक पुरुषों को, भिन्न २ प्रकारसे उनके चित्तमें विकार उत्पन्न करके, नष्ट करदिया जावे । यहां तक आटविक अर्थात् चोरोंके सम्बन्धमें, गूढपुरुषोंके कार्यों का निरूपण करादिया गया ॥ ७४ ॥

दुर्गलम्भोपाय त्रयोदश अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त

चौथा अध्याय

१७४-१७५ प्रकरण

शत्रुके दुर्गको घेरना तथा शत्रुके दुर्गका अवमर्द

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं। पहिले प्रकरणमें 'शत्रुके दुर्गको चारों ओरसे घेरकर, फिर सेनाको क्या करना चाहिये' इस बातका निरूपण किया जायगा। शत्रुके दुर्गको अपने अधिकारमें करलेना 'अवमर्द' कहाता है; यह अवमर्द कब और किस समय करना चाहिये; इत्यादि बातोंका दूसरे प्रकरणमें निरूपण किया जायगा।

कर्शनपूर्वं पर्युपासनकर्म ॥ १ ॥ जनपदं यथानिविष्टमभये स्थापयेत् ॥ २ ॥ उत्थितमनुग्रहपरिहाराभ्यां निवेशयेदन्यत्रापसरतः ॥ ३ ॥

शत्रुके कोश और सैन्यका नाश करते हुए, तथा अमात्य आदिका वध करते हुएही, विजिगीपुको शत्रुके दुर्गके चारों ओर घेरा डालनेका काम करना चाहिये ॥ १ ॥ परन्तु इस अवस्थामेंभी विजिगीपु, शत्रुके जनपदको पहिलेके समानही अभयस्थानमें रक्खे, अर्थात् जनपदको किसी तरहकी पीड़ा न होने देवे, प्रत्युत उसकी रक्षाही करे ॥ २ ॥ यदि जनपद, विजिगीपुके विरुद्ध आन्दोलन करे, तो उसे धन आदि देने तथा टैक्स आदिके छोड़ देनेसे, शान्त करे। परन्तु यह उसी अवस्थामें करना चाहिये, जब कि जनपद अपने स्थानको छोड़ कर कहीं बाहर न जारहा हो। बाहर जानेके लिये तैयार होनेपर तो उसे किसी तरहकी भी सहायता न देवे ॥ ३ ॥

समग्रमन्यस्यां भूमौ निवेशयेदेकस्यां वा वासयेत् ॥ ४ ॥ न ह्यजनो जनपदो राज्यमजनपदं वा भवतीति कौटल्यः ॥५॥ विषमस्थस्य मुष्टिं सस्यं वा हन्याद्वीवधप्रसारौ च ॥ ६ ॥

उस जनपदमें भिन्न२ स्थानोंपरही, अधिक आदमियोंको बसावे; अथवा कहीं एक स्थानपर भी अधिक आदमियोंको बसावे॥४॥ क्योंकि मनुष्योंसे रहित प्रदेश, जनपद नहीं कहला सकता; और जनपदसे रहित, राज्य नहीं होसकता; क्योंकि, यदि जनपदही न होगा, तो राज्य किस पर किया जायगा, यह कौटल्य आचार्यका अपना मत है ॥५॥ अब शत्रुको पीड़ा पहुंचानेके प्रकारोंका

निरूपण किया जाता है:-जब शत्रुपर कोई आपत्ति आई हुईहो, तो विजिगीषु, उसकी फ़सलको, तथा उत्पन्न हुए अन्न आदिको नष्ट करदेवे, और वीवध (अनाज घी तैल आदिका प्रदेशमें आना) तथा प्रसार (घास लकड़ी आदिका राज्यमें आना; इन दोनों) को भी नष्ट करडाले ॥ ६ ॥

प्रसारवीवधच्छेदान्मुष्टिसस्यवधादपि ।
वमनाद्गूढघाताच्च जायते प्रकृतिक्षयः ॥ ७ ॥

अब शत्रुकी अमात्य आदि प्रकृतियोंके क्षय होनेका प्रकार बताते हैं:-प्रसार तथा वीवधका उच्छेद होनेसे, और फ़सल तथा अनाज आदिका नाश करदेनेसे; इसीप्रकार प्रकृतियोंको कहीं दूसरी जगह लेजाने, या छिपकर मार देनेसेभी उसका क्षय (नाश) होजाता है ॥ ७ ॥

प्रभूतगुणवद्धान्यकुप्ययन्त्रशस्त्रावरणविष्टिरश्मिसमग्रं मे सैन्यमृतुश्च पुरस्तात् ॥ ८ ॥ अपतुः परस्य व्याधिदुर्भिक्षनिचयरक्षाक्षयः क्रीतबलनिर्वेदो मित्रबलनिर्वेदश्चेति पर्युपासीत ॥ ९ ॥

किस अवस्थामें शत्रुके दुर्गको घेरना चाहिये, इसका अब निरूपण करते हैं:-जबकि अपनी सेना, अत्यधिक गुणोंसे युक्त, तथा धान्य (अनाज), कुप्य (लोहा तांबा वस्त्र आस्तरण आदि) यन्त्र (मैशीन), शस्त्र (हथियार) आवरण (चमड़ेकी पेटी आदि, तथा अन्य कवच आदि), विष्टि (सेवा करने वाले कर्मचारी) और रश्मि (रस्सी) आदि सम्पूर्ण सामग्रीसे युक्तहो, और ऋतुभी अपने अनुकूल हो । अर्थात् जिस समय अपनी सेना और ऋतु आदिकोंतो इसतरह अनुकूलता हो ॥ ८ ॥ परन्तु शत्रुके लिये ऋतु सर्वथा विपरीत हो; व्याधि, दुर्भिक्ष, धान्य आदिके संग्रहका तथा रक्षक पुरुषोंका अभाव उपस्थितहो; खरीदी हुई अर्थात् केवल वेतनभोगी सेना सहायता देनेसे इन्कार करती हो, और मित्रकी सेनाभी खिन्न होचुकी हो; इस अवस्थामें शत्रुके दुर्गका घेरा डाला जावे ॥ ९ ॥

कृत्वा स्कन्धावारस्य रक्षां वीवधासारयोः पथश्च परिक्षिप्य दुर्गं खातसालाभ्यां दूषयित्वोदकमवस्राव्य परिखाः संपूरयित्वा वा सुरङ्गाबलकुटिकाभ्यां वप्रप्राकारौ हारयेत् ॥ १० ॥

घेरा डालनेका यह प्रकार समझना चाहियेः—पहिले विजिगीषु अपनी छावनी, वीवध, आसार (मित्रसेना), तथा अपने मार्गकी रक्षा करके; दुर्गकी खाई और परकोटेके अनुसार दुर्गको चारों ओरसे घेरकर ; विष आदिसे

जलको दूषित करके अथवा बांध आदिके तोड़देनेसे उसे बहाकर; खाईयोंको भरकर, सुरंग तथा टेढ़ी खुदी हुई खाईयोंके द्वारा बाहरकी ओरके परकोटे तथा बाड़के ऊपर हमला करे ॥ १० ॥

दारं च गुलेन निम्नं वा पांसुमालयाच्छादयेत् ॥ ११ ॥ बहुलारक्षं यन्त्रैर्घातयेत् ॥ १२ ॥ निष्करादुपनिष्कृष्याश्वैश्च प्रहरेयुः ॥ १३ ॥ विक्रमान्तेषु च नियोगविकल्पसमुच्चयैश्चोपाया· नां सिद्धिं लिप्सेत दुर्गवासिनः ॥ १४ ॥

फटी हुई दरड़ोंको डलोंसे, तथा गहरी नीची जगहको मट्टीसे आटकर ढक दिया जावे ॥ ११ ॥ दुर्गके जिस प्रदेशमें रक्षाका बहुत अधिक प्रबन्ध हो, उसे यन्त्रोंके द्वारा नष्ट करवा देवे ॥ १२ ॥ कपटसे (=निष्करात्) अथवा हाथियोंकी सूंड लम्बी करके खड़ा करनेसे रक्षक पुरुषोंको बाहर निकालकर, घोड़े तथा हाथियोंके द्वारा उनपर आक्रमण कर देवें ॥ १३ ॥ जब शत्रुकी सेना युद्धमें विशेष पराक्रम दिखाने लगे, तब उपायोंके (साम दान दण्ड और भेद ये चार उपाय होते हैं) नियोग (अमुक अवसरपर इसी उपायसे काम लेना चाहिये दूसरसे नहीं, इस प्रकारकी व्यवस्था करना 'नियोग' कहाता है), विकल्प (इस अवसरपर चाहे इस उपायसे काम लेना चाहिये, चाहे इस दूसरे उपायसे; इस प्रकारकी व्यवस्थाको 'विकल्प' कहते हैं) और समुच्चय (इस अवसरपर अमुक २ दोनों या दो से भी अधिक उपायोंसे इकट्ठाही काम लेना चाहिये; इसको 'समुच्चय' कहते हैं) से यथावसर काम लेकर 'दुर्गनिवासी शत्रुसे सिद्धिलाभ (विजयलाभ) की इच्छा करे ॥ १४ ॥

श्येनकाकनप्तृभासशुकशारिकोलूककपोतान्ग्राहयित्वा पुच्छे- ष्वग्नियोगयुक्तान्परदुर्गे विसृजेयुः ॥ १५ ॥ अपकृष्टस्कन्धावा- रादुच्छ्रितध्वजधन्वारक्षा वा मानुषेणाग्निना परदुर्गमादीपयेयुः ॥ १६ ॥

श्येन (बाज), कौआ, नप्ता (मुर्गेके समान एक पक्षी), भास (गिद्ध), तोता, मैना, उल्लू, तथा कबूतर, इन पक्षियोंको पकड़वाकर; इनकी पूछमें, आग लगाने वाली औषधियोंका संसर्ग करके इनको शत्रुके दुर्गमें छोड़ देवें। जिससे वहां आग लग जावे ॥ १५ ॥ शत्रुके दुर्गसे बाहर नीचेकी ओर पड़ी हुई अपनी (विजिगीषुकी) छावनीसे, शत्रुके दुर्गपर आग फेंकनेके लिये ध्वजा तथा धनुष आदिको उठाये हुए पुरुष, शत्रुके दुर्गमें, मानुष अग्निके

द्वारा (शत्रुसे मारे हुए या शूलीपर चढ़ाकर मारे हुए पुरुषकी हड्डीमें चितकबरे बांसके घिसनेसे उत्पन्न हुई २ अग्निके द्वारा) शत्रुके दुर्गमें आग लगा देवें। अथवा पहरेदारही इस कामको करें ॥ १६ ॥

गूढपुरुषाश्चान्तदुर्गपालका नकुलवानरविडालशुनां पुच्छेष्व-ग्नियोगमाधाय काण्डनिचयरक्षाविधानवेश्मसु विसृजेयुः ॥१७॥ शुष्कमत्स्यानामुदरेष्वग्निमाधाय वल्लूरे वा वायसोपहारेण वयो-भिर्हारयेयुः ॥ १८ ॥

अन्तपाल या दुर्गपालके वेषमें रहने वाले गूढपुरुष; नेवला, बन्दर, बिलाव तथा कुत्तेकी पूंछमें, आग लगा देनेवाली औषधियोंको लगाकर, इनको शत्रुके उन घरोंमें छोड़ देवें, जहांपर बाण तथा कुप्य आदि सबही रक्षा करनेके सामान रक्खे हुए हों ॥ १७ ॥ सूखी मछलीके पेटमें, अथवा सूखे हुए मांसमें अग्नियोग (आग लगानेवाली औषधियोंके समूह) को रखकर उस मांसको, पक्षियोंको खिलानेके बहानेसे पक्षियोंके द्वारा अपहरण करा देवें। (अर्थात् पक्षियोंके द्वारा, उस शत्रुके दुर्गमें पहुंचाकर, वहां आग लगा देवें) ॥ १८ ॥

सरलदेवदारुपूतितृणगुग्गुलुश्रीवेष्टकसर्जरसलाक्षागुलिकाः खरोष्ट्राजावीनां लण्डं चाग्निधारणम् ॥ १९ ॥ प्रियालचूर्णमव-ल्गुजमषीमधूच्छिष्टमश्वखरोष्ट्रगोलण्डमित्येष क्षेप्यो ऽग्नियोगः ॥ २० ॥

सरु, देवदार, पूतितृण (एक प्रकारकी घास, जिसमेंसे सुगन्ध आती है), गूगल, सरुका गोंद, राल और लाख, इन सब चीजोंकी बनाई हुई गोलियां, तथा गधा ऊंट बकरा और मेंढा, इन जानवरोंका लिङ्ग ; अग्निको धारण करनेवाले होते हैं अर्थात् इनमें अग्निका अंश बहुत अधिक होता है ॥ १९ ॥ चिरोंजीका चूरा, बावचीका दड़दड़ा चूरा (अर्थात् जौकुटसा हुआ२) शहद, और घोड़ा गधा ऊंट तथा बैलका लिंग, इन सब चीजोंको मिलाकर, फेंककर काममें आनेवाला अग्नियोग तैयार होता है ॥ २० ॥

सर्वलोहचूर्णमग्निवर्णं वा कुम्भीसीसत्रपुचूर्णं वा पारिभद्रकप-लाशपुष्पकेशमषीतैलमधूच्छिष्टकश्रीवेष्टकयुक्तो ऽग्नियोगो विश्वा-सघाती वा ॥ २१ ॥ तेनावलिप्तः शणत्रपुसवल्कवेष्टितो बाण इत्यग्नियोगः ॥ २२ ॥

अथवा अग्निके समान वर्णवाला, सब तरहके लोहेका चूरा ; अथवा कायफल सीसा और रांग इन सब चीजों का चूरा; नीम और ढाकके फूल, नेत्रवाला का चूरा, तेल, शहद तथा सरूका गोंद, इन सब वस्तुओंके साथ मिलाकर बनाया हुआ अग्नियोग निश्चय ही विश्वासघाती होता है, अर्थात् जहां आग लगने की सम्भावना भी न हो, वहां भी इसका प्रयोग किये जाने पर अवश्य आग लग जाती है, इसलिये इसको बड़ा तीव्र अग्नियोग माना गया है ॥ २१ ॥ उपर्युक्त इन सब चीजों से सनाहुआ, तथा सन और ककड़ी की बेलकी छालसे लपेटा हुआ बाणभी अग्नियोग होता है । अर्थात् वह जहां जाकर लगेगा, वहीं आग लगा देगा । (इस सूत्रमें आये हुए 'बाण' शब्दका अर्थ, महामहोपाध्याय त. गणपति शास्त्रीने 'अर्जुनवृक्ष' किया है ॥ २२ ॥

न त्वेव विद्यमाने पराक्रमे ऽग्निमवसृजेत् ॥ २३ ॥ अविश्वास्यो ह्यग्निः दैवपीडनं च ॥ २४ ॥ अप्रतिसंघातप्राणिधान्यपशुहिरण्यकुप्यद्रव्यक्षयकरः ॥ २५ ॥ क्षीणनिचयं चावाप्तमपि राज्यं क्षयायैव भवति ॥ २६ ॥ इति पर्युपासनकर्म ॥ २७ ॥

पराक्रमके समयमें, (अर्थात् जिस समय युद्ध प्रारम्भ हुआ २ हो, उस समयमें) इन अग्नियोगोंको न छोड़ें ॥ २३ ॥ क्योंकि अग्नि का कुछ विश्वास नहीं होता, और यह दैवपीडन बताया गया है (देखो अधि० ८ अध्या० ४ सू० १) ॥ २४ ॥ तथा यह अग्नि, असंख्यात प्राणियों, धान्य पशु धन तथा अन्य कुप्य आदि द्रव्यों का नाश करने वाला होता है ॥ २५ ॥ जिस राज्यमें सब प्रकारके संग्रहोंका क्षय होगया हो वह राज्य अपने हाथमें आजाने पर भी क्षयके लिये ही होता है । अर्थात् ऐसे राज्य को जीतकर भी विजिगीषु कभी उन्नत नहीं होसकता ॥ २६ ॥ यहांतक शत्रुके दुर्गको चारों ओरसे घेरनेके सम्बन्धमें निरूपण करादिया गया ॥ २७ ॥

सर्वारम्भोपकरणविष्टिसंपन्नो ऽस्मि ॥ २८ ॥ व्याधितः पर उपधाविरुद्धप्रकृतिरकृतदुर्गकर्मनिचयो वा निरासारः सासारो वा पुरा मित्रैः संधत्ते इत्यवमर्दकालः ॥ २९ ॥

अब इसके आगे शत्रुके दुर्ग को, कब और किस समय अपने अधिकारमें करना चाहिये, इस बात का निरूपण किया जाता है:-जब विजिगीषु यह समझे, कि मैं सब तरहके युद्धोपयोगी साधनोंसे युक्त हूं, मेरे पास सब तरह का कार्य करनेके लिये आदमी मौजूद हैं ॥ २८ ॥ शत्रु व्याधिग्रस्त है,

उसकी अमात्य आदि प्रकृति उसको धोखा देनेवाली हैं, दुर्ग आदिकी मरम्मत तथा धान्य आदि का संग्रह भी इसने अभी तक नहीं किया है, मित्र की भी इसे कोई सहायता नहीं है, अथवा सहायता की सम्भावना होने पर भी अभी तक उनके साथ सन्धि ही कररहा है, अर्थात् इसका सबसे पहिला काम मित्रोंके साथ सन्धि करने का है, वह भी अभी तक शत्रुने निश्चय करके समाप्त नहीं किया है। इसप्रकार जब विजिगीषु समझे, उसी समयमें शत्रुपर आक्रमण करदेवे। अर्थात् शत्रुके कुचलने का यही समय होता है ॥ २९ ॥

स्वयमग्नौ जाते समुत्थापिते वा प्रहवणे प्रेक्षानीकदर्शनसङ्गसौरिककलहेषु नित्ययुद्धश्रान्तबले बहुलयुद्धप्रतिविद्धप्रेतपुरुषे जागरणक्लान्तसुप्तजने दुर्दिने नदीवेगे वा नीहारसंप्लवे वावमृद्नीयात् ॥ ३० ॥

अथवा शत्रुके दुर्ग आदिमें स्वयं अग्नि लगजाने पर, या आनन्दोत्सव आदिके मनाने का ही दौरदौरा होने पर (तात्पर्य यह है कि जब राजा सहभोज या पार्टी आदिमें ही लगातार लगा रहता हो, या तमाशे और चांदमारीमें ही अधिक आसक्त रहता हो, या शराबियोंके द्वारा कोई झगड़ा खड़ा करदेने पर, लगातार युद्ध करनेसे सेनाके थक जाने पर, लम्बा युद्ध होनेके कारण अत्यधिक आदमियोंके जखमी होजाने और मरजानेपर, जागनेके कारण बेचैन हुए २ पुरुषोंके सोजाने पर, दुर्दिनमें अर्थात् जिस दिन आंधीमेह आदि बहुत होरहा हो, या जब शत्रु किसी वेगवती नदीको पार कररहाहो, या जिस दिन कुहरा आदि बहुत पड़रहा हो, ऐसे समयमें अर्थात् शत्रुकी ऐसी अवस्था होने पर, विजिगीषु उसको कुचल डाले ॥ ३० ॥

स्कन्धावारमुत्सृज्य वा वनगूढः शत्रुं सत्रान्निष्क्रान्तं घातयेत् ॥ ३१ ॥ मित्रासारमुख्यव्यञ्जनो वा संरुद्धेन मैत्रीं कृत्वा दूतमभित्यक्तं प्रेषयेत् ॥ ३२ ॥ इदं ते छिद्रम् ॥ ३३ ॥ इमे दूष्याः ॥ ३४ ॥ संरोद्धुर्वा छिद्रमयं ते कृत्यपक्ष इति ॥ ३५ ॥

अथवा छावनी को छोड़कर विजिगीषु, जंगलमें जाकर कहीं छिपजावे और वहां जंगलसे निकलते हुए शत्रुको मरवाडाले ॥ ३१ ॥ मित्रके वेषमें रहने वाला अथवा मित्रकी सेनाके मुखियाके वेषमें रहने वाला गूढपुरुष, संरुद्ध (घिरे हुए) शत्रु राजाके साथ मित्रता करके, अपने एक वध्य दूतको निम्न लिखित संदेश देकर उसके पास भेजे ॥ ३२ ॥ तुम्हारे अन्दर अमुक २ दोष

या निर्बलता है ॥ ३३ ॥ वे अमुक २ तुम्हारे दूष्य पुरुष हैं ॥ ३४ ॥ संरोद्धा विजिगीषु की अमुक २ निर्बलता है, और यह तुम्हारा कृत्यपक्ष है, अर्थात् संरोद्धा विजिगीषुके क्रुद्ध लुब्ध भीत आदि वर्गमेंसे अमुक पुरुष तुम्हारी ओर मिलने को तैयार हैं ॥ ३५ ॥

तं प्रतिदूतमादाय निर्गच्छन्तं विजिगीषुर्गृहीत्वा दोषमभिविख्याप्य प्रवास्यापगच्छेत् ततः ॥ ३६ ॥ मित्रासारव्यञ्जनो वा संरुद्धं ब्रूयात् ॥ ३७ ॥ मां त्रातुमुपनिर्गच्छ ॥ ३८ ॥ मया वा सह संरोद्धारं जहीति ॥ ३९ ॥

जब वह दूत, उस संदेशका उत्तर लेकर लौटकर आवे, तो मार्गमें निकलते हुए उस दूतको विजिगीषु पकड़लेवे; और उसके इसी दोषको प्रसिद्ध करके, कि यह हमारा अपकार करता है, उसको मारकर, वहांसे चलाजावे। (तथा उस उत्तर लेखपत्रको अपने काबू में रक्खे) ॥ ३६ ॥ अथवा मित्रके वेषमें या मित्रकी सेनाके वेषमें रहनेवाला गूढपुरुष, संरुद्ध राजाको ही कहे ॥ ३७ ॥ 'मेरी रक्षाके लिये तुम्हें उठ खड़ा होना चाहिये ॥ ३८ ॥ अथवा मेरे साथ चलकर संरोद्धा (रोकनेवाले विजिगीषु राजा) को मारो; अर्थात् चलो, हम दोनों मिलकर विजिगीषुको मारें ॥ ३९ ॥

प्रतिपन्नमुभयतः संपीडनेन घातयेत् ॥ ४० ॥ जीवग्राहेण वा राज्यविनिमयं कारयेत् ॥ ४१ ॥ नगरं वास्य प्रमृद्नीयात् ॥ ४२ ॥ सारबलं वास्य वमयित्वाभिहन्यात् ॥ ४३ ॥ तेन दण्डोपनताटविका व्याख्याताः ॥ ४४ ॥

वह जब इस बातको स्वीकार करले, तो दोनों ओरसे घेरकर उसे मारदिया जावे ॥ ४० ॥ अथवा उसे जीवित ही पकड़कर उसके राज्यको बदल दियाजावे ॥ ४१ ॥ या उसके नगरको (अर्थात राजधानीको बरबाद करादिया जावे ॥ ४२ ॥ अथवा इसके सारबलको (बढ़िया मजबूत सेनाको) दुर्गसे बाहर निकालकर मारडाले ॥ ४३ ॥ इसीके अनुसार दण्डोपनत (अपनी सैनिक शक्तिके भरोसेपर बलपूर्वक अपने वशमें कियेहुए राजा) और आटविकोंके सम्बन्धमें भी व्याख्यान समझलेना चाहिये ॥ ४४ ॥

दण्डोपनताटविकयोरन्यतरो वा संरुद्धस्य प्रेषयेत् ॥ ४५ ॥ अयं संरोद्धा व्याधितः पार्ष्णिग्राहेणाभियुक्तश्छिद्रमन्यदुत्थितमन्यस्यां भूमावपयातुकाम इति ॥ ४६ ॥ प्रतिपन्ने संरोद्धा

स्कन्धावारमादीप्यापययात् ॥ ४७ ॥ ततः पूर्ववदाचरेत् ॥ ४८ ॥

अथवा दण्डोपनत और आटविक, इन दोनोंमेंसे कोई एक, संरुद्ध (घिरेहुए) शत्रु राजाके पास यह निम्नलिखित संदेश भेजे ॥ ४५ ॥ 'यह संरोद्धा (घेरा डालनेवाला विजिगीपु राजा) आजकल व्याधिपीड़ित होरहा है, पार्ष्णिग्राहने इसपर हमला करदिया है यह एक और भी उपद्रव खड़ा होगया है, अब यह, यहांसे दूसरी किसी जगहमें भागजानेकी इच्छा कररहा है' इत्यादि ॥ ४६ ॥ जब घिराहुआ शत्रु राजा, इन सब बातोंको स्वीकार करले, तब संरोद्धा विजिगीपु अपनी छावनीमें आग लगाकर वहांसे चला जावे ॥ ४७ ॥ तदनन्तर पूर्ववत् ही सब काम कियाजावे । अर्थात् जब शत्रु, विजिगीपुपर धावा करनेलगे, तो उसे बीचमें घेरकर मारदिया जावे ॥ ४८ ॥

पण्यसंपातं वा कृत्वा पण्येनैनं रसविद्धेनातिसंदध्यात् ॥४९॥ आसारव्यञ्जनो वा संरुद्धस्य दूतं प्रेषयेत् ॥ ५० ॥ मया बाह्यमभिहतमुपनिर्गच्छाभिहन्तुमिति ॥ ५१ ॥ प्रतिपन्नं पूर्ववदाचरेत् ॥ ५२ ॥ मित्रं बन्धुं वापादिश्य योगपुरुषाः शासनमुद्राहस्ताः प्रविश्य दुर्गं ग्राहयेयुः ॥ ५३ ॥

अथवा व्यापारियोंके संघका आगमन दिखलाकर (अर्थात् यह प्रकट करके, कि बाहरसे एक व्यापारियोंका संघ आया है, उसके द्वारा दी हुई) विष आदि रसमिश्रित खाद्य वस्तुओंके द्वारा ही, इस शत्रुको नष्ट करदिया जावे ॥ ४९ ॥ अथवा मित्रसेनाके वेषमें रहनेवाला गूढपुरुष, संरुद्ध शत्रु राजाके पास निम्नलिखित संदेश देकर एक दूतको भेजे ॥ ५० ॥ मैंने तुम्हारे इस बाह्य शत्रुको मार २ कर खूब कमजोर बना रक्खा है, अब इसे सर्वथा नष्ट करनेके लिये तुम दुर्गसे बाहर निकल आओ ॥ ५१ ॥ जब शत्रु, इस बातको स्वीकार करले, तो पहिलेकी तरह दोनों ओरसे, उसे घेरकर मारदिया जावे ॥ ५२ ॥ अथवा अपने आपको मित्र या बन्धु बतलाकर, मुहर लगेहुए बनावटी लेखपत्रको हाथमें लेकर गूढपुरुष, दुर्गके भीतर चलेजावें । और वहां किसी उपायसे द्वार आदि खोलकर, दुर्गको विजिगीपुके अधिकारमें करवा देवें ॥ ५३ ॥

आसारव्यञ्जनो वा संरुद्धस्य प्रेषयेत् ॥ ५४ ॥ अमुष्मिन्देशे काले च स्कन्धावारमभिहनिष्यामि ॥ ५५ ॥ युष्माभिरपि

योद्धव्यामिति ॥ ५६ ॥ प्रतिपन्नं यथोक्तमभ्याघातसंकुलं दर्शयित्वा रात्रौ दुर्गान्निष्क्रान्तं घातयेत् ॥ ५७ ॥

अथवा मित्र सेनाके वेषमें, रहनेवाला गूढपुरुष, घिरेहुए शत्रुराजाके पास यह सन्देश भिजवावे ॥ ५४ ॥ 'मैं अमुक देश और अमुक समयमें छावनीके ऊपर हमला करूंगा ॥ ५५ ॥ आपको भी उस समय मेरी ओरसे ही युद्ध करना चाहिये ॥ ५६ ॥ जब शत्रु राजा इस बातको स्वीकार करले, तो पूर्व कथनानुसार विजिगीषुकी छावनीमें लड़ाईका घमासान दिखलावे; जब उसे देखकर रातमें शत्रु विश्वासपूर्वक अपने दुर्गसे बाहर निकले, तो उसे बीचमें घेरकर मारदिया जावे ॥ ५७ ॥

यद्वा मित्रमावाहयेत् आटविकं वा, तमुत्साहयेत् ॥ ५८ ॥ विक्रम्य संरुद्धे भूमिमस्य प्रतिपद्यस्वेति ॥ ५९ ॥ विक्रान्तं प्रकृतिभिर्दूष्यमुख्योपग्रहेण वा घातयेत्, स्वयं वा रसेन ॥ ६० ॥ मित्रघातको ऽयमित्यवाप्तार्थः ॥ ६१ ॥

अथवा विजिगीषु, अपने मित्र या आटविकको वहां बुलवावे, तथा उसको इसतरह उत्साहित करे ॥ ५८ ॥ 'संरुद्ध शत्रु राजापर आक्रमण करके, उसकी भूमिको अर्थात् उसके राज्यको अपने अधीन करलो ॥ ५९ ॥ जब वह या आटविक, उस घिरेहुए शत्रुपर आक्रमण करदेवे, तब उसको, उसकी अमात्य आदि प्रकृतियोंके द्वारा, या अपने अनुकूल बनाएहुए उसके दूष्य मुख्य पुरुषोंके द्वारा ही उसको मरवाडाले। अथवा आप ही विष आदिके योगसे उसे मारडाले ॥ ६० ॥ तदनन्तर 'यह शत्रु मेरे मित्रको मारनेवाला है' इस बातको प्रसिद्ध करके अपने कार्यको सिद्ध करे ॥ ६१ ॥

विक्रमितुकामं वा मित्रव्यञ्जनः परस्याभिशंसेत् ॥ ६२ ॥ आप्तभावोपगतः प्रवीरपुरुषानस्योपघातयेत् ॥ ६३ ॥ संधिं वा कृत्वा जनपदमेनं निवेशयेत् ॥ ६४ ॥ निविष्टमन्यजनपदमविज्ञातो हन्यात् ॥ ६५ ॥

अथवा मित्रके वेषमें रहनेवाला गूढपुरुष, शत्रुको इसप्रकार कहे, कि 'विजिगीषु' तुम्हारे ऊपर आक्रमण करना चाहता है ॥ ६२ ॥ इसतरह जब यह शत्रुका अत्यन्त विश्वस्त होजावे, तब उसके प्रवीर पुरुषों (मुख्य बहादुर आदमियों) को मरवाडाले ॥ ६३ ॥ अथवा शत्रुके साथ सन्धि करके इसको उसी जनपदमें रहनेदेवे। अथवा इसके ही द्वारा एक अन्य जनपदको

आबाद करवावे ॥ ६४ ॥ और उस नये आबाद हुए २ जनपदको, शत्रुके बिना जाने ही फिर नष्ट करडाले । अर्थात् स्वयं उसे बरबाद करडाले ॥६५॥

अपकारयित्वा दूष्याटविकेषु वा बलैकदेशमतिनीय दुर्गमवस्कन्देन हारयेत् ॥ ६६ ॥ दूष्यामित्राटविकद्वेष्यप्रत्यपसृताश्च कृतार्थमानसंज्ञाचिह्नाः परदुर्गमवस्कन्देयुः ॥ ६७ ॥

अथवा अपने दूष्य और आटविकोंके द्वारा अपना कुछ अपकार करवाकर उन दूष्य और आटविकोंपर आक्रमण करनेके बहानेसे, शत्रुकी सेनाके एक हिस्सेको बहुत दूर किसी देशमें लेजावे । और फिर थोड़ी सेनासे युक्त, शत्रुके दुर्गको आक्रमणकर बलपूर्वक छीन लेवे ॥ ६६ ॥ शत्रुके दुर्गपर आक्रमण करनेके लिये कौन पुरुष सहायक होवें यह बतलाते हैं:-शत्रुके दूष्य पुरुष, शत्रु, आटविक, जिनसे शत्रु द्वेष रखता हो, तथा शत्रुके पाससे एकबार जाकर फिर वापस उसीके पास आये हुए, तथा विजिगीषुके द्वारा धन मान आदि से सत्कृत किये हुए, और आक्रमणके समय, आदिसे सूचित कियेहुए, शत्रुके दुर्गका अपहरण करनेमें सहायता देवें ॥ ६७ ॥

परदुर्गमवस्कन्द्य स्कन्धावारं वा पतितपराङ्मुखाभिपन्नमुक्तकेशशस्त्रभयविरूपेभ्यश्चाभयमयुध्यमानेभ्यश्च दद्युः ॥ ६८ ॥ परदुर्गमवाप्य विशुद्धशत्रुपक्षः कृतोपांशुदण्डप्रतीकारमन्तर्बहिश्च प्रविशेत् ॥ ६९ ॥

शत्रुके दुर्गको अथवा उसकी छावनीको हस्तगत करके, विजिगीषुपक्षके पुरुषोंको उचित है, कि वे पतित (युद्धके मैदानमें गिरे हुए), पराङ्मुख (युद्धसे भागे हुए), विपद्ग्रस्त, मुक्तकेश (बिखरे हुए बालोंवाले), हथियारोंसे डरकर विकृत आकारवाले, तथा युद्ध न करनेवाले पुरुषोंके लिये सर्वथा अभय देदेवें ॥ ६८ ॥ शत्रुके दुर्गको प्राप्त करके, और वहांसे शत्रुपक्षके सबही पुरुषोंकी सफाई करके, विजिगीषु, अपना विरोध करनेवाले पुरुषोंका उपांशुदण्डसे प्रतीकार करता हुआ, दुर्गके अन्दर और बाहर प्रवेश करे । (इस सूत्रमें 'विशुद्धशत्रुपक्षः' के स्थानपर किसी पुस्तकमें 'विशुद्धशत्रुत्रपक्षं' भी पाठ है । इस पाठमें यह पद क्रियाविशेषण समझना चाहिये) ॥ ६९ ॥

एवं विजिगीषुरमित्रभूमिं लब्ध्वा मध्यमं लिप्सेत ॥ ७० ॥ तत्सिद्धावुदासीनम् ॥ ७१ ॥ एष प्रथमो मार्गः पृथिवीं जेतुम् ॥ ७२ ॥

इस प्रकार विजिगीषु, शत्रुकी भूमिको प्राप्त करके, मध्यमको प्राप्त करनेकी इच्छा करे ॥ ७० ॥ उसको भी प्राप्त करलेनेपर, उदासीन राजाको अपने अधीन करनेका यत्न करे ॥ ७१ ॥ पृथिवीको विजय करनेके लिये यह प्रथम मार्ग है ॥ ७२ ॥

मध्यमोदासीनयोरभावे गुणातिशयेनारिप्रकृतीः साधयेत् ॥ ७३ ॥ तत उत्तराः प्रकृतीः ॥ ७४ ॥ एष द्वितीयो मार्गः ॥ ७५ ॥

मध्यम और उदासीन राजाओंके न होनेपर, अपने गुणोंके आधिक्य के द्वारा (अर्थात् शत्रुके गुणोंकी अपेक्षा अपने गुणोंके अतिशयसे) शत्रुकी अमात्य आदि प्रकृतियोंको अपने अनुकूल बनावे ॥ ७३ । तदनन्तर शत्रुकी, अन्य कोश सेना आदि प्रकृतियोंको अपने वशमें करनेका प्रयत्न करे ॥ ७४ ॥ पृथिवीको विजय करनेका यह द्वितीय मार्ग है ॥ ७५ ॥

मण्डलस्याभावे शत्रुणा मित्रं मित्रेण वा शत्रुमुभयतः संपीडनेन साधयेत् ॥ ७६ ॥ एष तृतीयो मार्गः ॥ ७७ ॥

सम्बद्ध राजमण्डलके न होनेपर (दश प्रकारके राजाओंके समूहका नामही 'मण्डल' या राजमण्डल होता है ; देखोः—अधि. ७, अध्या. १८), शत्रुके द्वारा मित्रको और मित्रके द्वारा शत्रुको, दोनों ओरसे घेरकर या दबाकर अपने अनुकूल बनावे ॥ ७६ ॥ पृथिवीको विजय करनेका यह तृतीय मार्ग है ॥ ७७ ॥

शक्यमेकं वा सामन्तं साधयेत् ॥ ७८ ॥ तेन द्विगुणो द्वितीयं त्रिगुणस्तृतीयम् ॥ ७९ ॥ एष चतुर्थो मार्गः पृथिवीं जेतुम् ॥ ८० ॥ जित्वा च पृथिवीं विभक्तवर्णाश्रमां स्वधर्मेण भुञ्जीत ॥ ८१ ॥

अथवा जीतसकने योग्य एकही सामन्त (समीपस्थित राजा) को अपने अनुकूल बनावे ॥ ७८ ॥ उसके अनुकूल बनजानेपर जब अपनी शक्ति द्विगुण होजावे, तो और दूसरे सामन्तको अपने अनुकूल बनानेका प्रयत्न करे । जब उसके अनुकूल बनजानेपर अपनी शक्ति त्रिगुण होजावे, तो विजिगीषु, तीसरे सामन्तको अपने वशमें करनेका प्रयत्न करे ॥ ७९ ॥ पृथिवीको विजय करनेका यह चतुर्थ मार्ग है ॥ ८० ॥ इसप्रकार पृथिवीको जीतकर, वर्ण और आश्रमोंका ठीक २ विभाग करके, राजा, धर्मपूर्वक पृथवीका भोग करे ॥ ८१ ॥

उपजापापसर्पौ च वामनं पर्युपासनम् ।
अवमर्दश्च पञ्चैते दुर्गलम्भस्य हेतवः ॥ ८२ ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशे ऽधिकरणे पर्युपासनकर्म, अवमर्दश्च चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदितश्चतुश्चत्वारिंशच्छतः ॥ १४४ ॥

उपजाप (शत्रुके आदमियोंको बहकाना), अपसर्प (अपने गूढ़पुरुषोंके द्वारा शत्रुपक्षका नाश करना), वामन (विष आदि विषम उपायोंका प्रयोग करके शत्रुका नाश करना), पर्युपासन (शत्रुके दुर्गके चारों ओर घेरा डालना), तथा अवमर्द (अन्य उपायोंसे शत्रुके दुर्ग आदिका विध्वंस करना) ये पांच, शत्रुके दुर्गको प्राप्त करनेके हेतु बताये गये हैं। (इस सूत्रमें 'उपजापापसर्पौ च' के स्थानपर किसी पुस्तकमें 'उपजापोऽपसर्पो वा' ऐसा भी पाठ है । अर्थमें कोई भेद नहीं) ॥ ८२ ॥

दुर्गलम्भोपाय त्रयोदश अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवां अध्याय

१७६ प्रकरण

विजित दुर्ग आदि में शान्ति स्थापित करना

विजिगीषु को चाहिये कि वह शत्रुके दुर्ग आदि को जीतकर उनमें शान्ति की स्थापना करे। इसका यही प्रयोजन होता है। कि दुर्ग आदिमें निवास करने वाले पुरुषों को अपने नये स्वामी के विषयमें कोई शङ्का नहीं रहती; प्रजाजन उसपर पूर्ण विश्वास करने लगते हैं। इन्हीं सब बातोंका इस प्रकरणमें निरूपण किया जायगा।

द्विविधं विजिगीषोः समुत्थानम् ॥ १ ॥ अटव्यादिकमेकग्रामादिकं च ॥ २ ॥ त्रिविधश्चास्य लम्भः ॥ ३ ॥ नवो भूतपूर्वः पित्र्य इति ॥ ४ ॥

विजिगीषु का समुत्थान (=अभ्युत्थान=उद्योग) दो प्रकार का होता है अर्थात् विजिगीषु का उद्योग, दो रूपोंमें फलता है ॥ १ ॥ एक अटवी आदिके (आदि शब्दसे खान आदिका भी ग्रहण करलेना चाहिये) और दूसरा एकग्राम आदिके रूपमें (आदि शब्दसे नगर आदि का भी ग्रहण करलेना चाहिये)॥ २ ॥

विजिगीषु का लाभ, तीन प्रकार का होता है ॥ ३ ॥ (१) नव (=नया, जो विजिगीषुने शत्रुको जीतकर प्राप्त किया हो), (२) भूतपूर्व (जो पहिले अपने ही पास हो, परन्तु बीचमें शत्रुके पास जाकर फिर विजिगीषु ने उस से अपहरण कर लिया हो , (३) और पित्र्य (अपने पिता आदि से प्राप्त हुआ २, जो बीचमें शत्रुके हाथमें जाकर, विजीगीषुने फिर उससे वापस ले लिया हो) ॥ ४ ॥

नवमवाप्य लाभं परदोषान्स्वगुणैश्छादयेत् गुणान्गुणद्वैगुण्येन ॥ ५ ॥ स्वधर्मकर्मानुग्रहपरिहारदानमानकर्मभिश्च प्रकृतिप्रियहितान्यनुवर्तेत ॥ ६ ॥ यथासंभाषितं च कृत्यपक्षमुपग्राहयेत् ॥ ७ ॥ भूयश्च कृतप्रयासम् ॥ ८ ॥

नये लाभ को प्राप्त करके विजीगीषु, शत्रु के दोषों को अपने गुणों से ढक दे, तथा शत्रु के गुणों को अपने दुगने गुणों से ढक देवे ॥ ५ ॥ विजिगीषु, सदा अपने धर्म (प्रजा पालन आदि), कर्म (यज्ञानुष्ठान आदि), अनुग्रह (समय २ पर प्रजावर्ग की सहायता करना), परिहार (भूमि पर राजकीय कर आदि को छोड़ देना), दान, और सत्कार आदि कार्यों के द्वारा प्रजा के अनुकूल हित करने में ही लगा रहे ॥ ६ ॥ अपने पूर्व कथन के अनुसार कृत्यपक्ष (क्रुद्ध लुब्ध भीतवर्ग) को, धन आदि देने के द्वारा सदा प्रसन्न रक्खे ॥ ७ ॥ तथा जिसने विजिगीषुके लिये बहुत परिश्रम किया हो, उसे और भी अधिक धन आदि देकर खूब प्रसन्न रक्खे ॥ ८ ॥

अविश्वास्यो हि विसंवादकः स्वेषां परेषां च भवति प्रकृतिविरुद्धाचारश्च ॥ ९ ॥ तस्मात्समानशीलवेषभाषाचारतामुपगच्छेत् ॥ १० ॥ देशदैवतसमाजोत्सवविहारेषु च भक्तिमनुवर्तेत ॥ ११ ॥

क्योंकि पहिले कहकर फिर मुकरजानेवाला राजा, अपने और पराये सबहीके लिये अविश्वसनीय होजाता है । तथा वह राजा भी सबका अविश्वसनीय होजाता है; जोकि अपने प्रजावर्गके विरुद्ध आचरण करता है ॥ ९ ॥ इसलिये राजाको उचित है, कि वह अपने प्रजावर्गके समानही शील, वेष, भाषा तथा आचरणका ग्रहण करे ॥ १० ॥ और देशकी देवता, समाज, उत्सव तथा विहारोंमें, भक्तिभावना रक्खे । अर्थात् इन कार्योंमें समय २ पर सहयोग देता रहे ॥ ११ ॥

देशग्रामजातिसंघमुख्येषु चाभीक्ष्णं सत्त्रिणः परस्यापचारं दर्शयेयुः ॥ १२ ॥ माहाभाग्यं भक्तिं च तेषु स्वामिनः स्वामिसत्कारं च विद्यमानम् ॥ १३ ॥ उचितैश्चैनान्भोगपरिहाररक्षावेक्षणैः भुञ्जीत ॥ १४ ॥

देश, ग्राम, जाति, संघ और मुख्योंमें जाकर, विजिगीषुके सत्रीपुरुष, बारबार, शत्रुके अहित अनुष्ठानको (प्रजाके प्रति किये गये अपकारको) दिखलावें ॥ १२ ॥ और उनके विषयमें (देश ग्राम आदिके विषयमें) अपने स्वामीकी (नये राजा विजिगीषुकी) महाभागता (उदारता), भक्ति (प्रेम) तथा स्वामीके द्वारा किये गये विद्यमान सत्कारकोभी अच्छीतरह दिखलावें। (इसका प्रयोजन यही है, कि प्रजावर्गकी आस्था, शत्रुकी ओरसे हटकर, सर्वथा विजिगीषुकी ओरही होजावे) ॥ १३ ॥ तथा उचित भोग (राजभागका देना), परिहार (टैक्स आदिका न लेना), और रक्षावेक्षणोंसे (कण्टक शोधन अधिकरणमें कहे हुए कण्टकोंका उद्धार करनेसे) अर्थात् प्रजाजनोंके लिये ये सुभीते करके, उनको समयानुसार अपने उपयोगमें लावे ॥ १४ ॥

सर्वदेवताश्रमपूजनं च विद्यावाक्यधर्मशूरपुरुषाणां च भूमिद्रव्यदानपरिहारान्कारयेत् ॥ १५ ॥ सर्वबन्धनमोक्षणमनुग्रहं दीनानाथव्याधितानां च ॥ १६ ॥

विजिगीषु, सब देवताओं और आश्रमोंका पूजन करवावे। तथा विद्याशूर (विद्वान्) वाक्यशूर (वाग्मी=बहुत अच्छा बोलने वाले), और धर्मशूर (धार्मिक) पुरुषोंके लिये भूमि और द्रव्य देवे, तथा उनसे भूमि आदिका कर न लेवे ॥ १५ ॥ दीन अनाथ तथा व्याधित पुरुषोंको, सब तरहसे अनुगृहीत करे, अर्थात् हरतरहसे इनकी सहायता करे; और सबही पुरुषोंको, कारागार आदिके बन्धनसे छुड़वा देवे ॥ १६ ॥

चातुर्मास्येष्वर्धमासिकमघातम् ॥ १७ ॥ पौर्णमासीषु च चातूरात्रिकम् ॥ १८ ॥ राजदेशनक्षत्रेष्वैकरात्रिकम् ॥ १९ ॥ योनिबालवधं पुंस्त्वोपघातं च प्रतिषेधयेत् ॥ २० ॥

चार २ महीनोंके वर्गोंमेंसे पन्द्रह दिनतक, प्राणदण्ड आदिका प्रतिषेध करदेवे। अर्थात् चार महीनेमें पन्द्रह दिन ऐसे रक्खे, जिनमें कि प्राणदण्ड आदि न दिये जावें ॥ १७ ॥ तथा सम्पूर्ण पूर्णमासियोंमेंसे चार पूर्णमासी तिथियोंमें किसीका वध न किया जावे ॥ १८ ॥ राजाके गद्दीपर बैठनेके, तथा

देशकी प्राप्तिके नक्षत्रमें भी एक दिनतक किसीका वध न किया जावे ॥ १९॥ बच्चे पैदा करनेकी शक्ति रखनेवाले मादा जानवरों, तथा छोटे बच्चोंको विजिगीषु न मारने देवे । और नर जानवरोंको पुंस्त्वहीन न बनाने दिया जावे ॥२० ॥

यच्च कोशदण्डोपघातिकमधार्मिष्ठं वा चरित्रं मन्येत तदपनीय धर्म्यव्यवहारं स्थापयेत् ॥ २१ ॥ चोरप्रकृतीनां म्लेच्छजातीनां च स्थानविपर्यासमनेकस्थं कारयेत् दुर्गराष्ट्रदण्डमुख्यानां च ॥ २२ ॥

जिस चरित्रको विजिगीषु, कोश और सेनाके नष्ट करनेवाला तथा अधर्म युक्त समझे, उसको हटाकर धर्मयुक्त व्यवहारकी स्थापना करे ॥ २१ ॥ चोरप्रकृति म्लेच्छ जातियोंका, तथा दुर्ग, राष्ट्र और सेनाके मुख्य व्यक्तियोंका, दूर २ पर स्थानविपर्यय करता रहे। तात्पर्य यह है, कि इन लोगोंको इकट्ठा एक स्थानपर न रहनेदेवे ॥ २२ ॥

परोपगृहीतानां च मन्त्रिपुरोहितादीनां परस्य प्रत्यन्तेष्वनेकस्थं वासं कारयेत् ॥ २३ ॥ अपकारसमर्थाननुक्षियतो वा भर्तृविनाशमुपांशुदण्डेन प्रशमयेत् ॥ २४ ॥ स्वदेशीयान्वा परेण वावरुद्धानपवाहितस्थानेषु स्थापयेत् ॥ २५ ॥

शत्रुसे उपकृत मंत्री और पुरोहित आदिको, शत्रुके सीमाप्रान्तोंमें भिन्न २ स्थानोंपर निवास कराये । जिससे ये परस्पर एक दूसरेके साथ मिलने न पावें ॥ २३ ॥ तथा जो व्यक्ति, अपना (विजिगीषुका) अपकार करनेमें समर्थ हों, अथवा विजिगीषुका विनाश करनेके विचारसेही वहां रहते हों, उनको उपांशुदण्डसे नष्ट करडाले ॥ २४ ॥ अपने देशके पुरुषोंको, अथवा शत्रुके द्वारा कारागारके बन्धनमें डाले गये पुरुषोंको ; विजिगीषु, अपने २ अधिकारोंसे च्युत किये गये शत्रुपक्षीय पुरुषोंके अधिकार पदोंपर नियुक्त करे। अर्थात् शत्रुपक्षके पुरुषोंको अधिकार पदसे हटाकर, उन स्थानोंपर इनको नियुक्त करे ॥ २५ ॥

यश्च तत्कुलीनः प्रत्यादेयमादातुं शक्तः प्रत्यन्ताटवीस्थो वा प्रबाधितुमभिजातस्तस्मै विगुणां भूमिं प्रयच्छेत् ॥ २६ ॥

शत्रुसे छीनी हुई भूमिको, उसके वंशकाही कोई पुरुष, यदि फिर वापस लेनेके लिये समर्थ हो, अथवा सीमाप्रान्तके सामन्त या आटविकके

द्वारा उस भूमिपर बाधा पहुंचाये जासकनेकी आशंका हो ; तो विजिगीषु उनके लिये, किसी गुणहीन भूमिका कुछ हिस्सा देदेवे ॥ २६ ॥

गुणवत्याश्चतुर्भागं वा कोशदण्डदानमवस्थाप्य, यदुपकुर्वाणः पौरजानपदान्कोपयेत् ॥ २७ ॥ कुपितैस्तैरेनं घातयेत् ॥ २८ ॥ प्रकृतिभिरुपक्रुष्टमपनयेत् ॥ २९ ॥ औपघातिके वा देशे निवेशयेदिति ॥ ३० ॥

अथवा गुणवाली भूमिकाही चौथा हिस्सा इस शर्तपर देदेवे, कि वह सामन्त, विजिगीषुके लिये कोश और सेनाकी बहुत अधिक संख्या देता रहेगा। जिसके लिये (अर्थात् जिस कोश और सेनाको इकट्ठा करनेके लिये) वह अपने नगरनिवासी तथा जनपदनिवासी पुरुषोंको कुपित करलेगा । अर्थात् उतना धन और सेनाको इकट्ठा करनेके लिये प्रजाको तंग किये जानेपर, प्रजा उससे कुपित हो उठेगी ॥ २७ ॥ प्रजाजनोंके कुपित होनेपर, विजिगीषु, उन्हींके द्वारा, उस सामन्तको मरवा डाले ॥ २८ ॥ अथवा अमात्य आदि प्रकृतियोंसे निन्दा किये जानेपर उसको वहांसे हटा देवे ॥ २९ ॥ या उसको ऐसे प्रदेशमें भेजदेवे, जहां उसके नाश करनेके लिये अनेक साधन उपस्थित हों ॥ ३० ॥

भूतपूर्वे येन दोषेणापवृत्तस्तं प्रकृतिदोषं छादयेत् ॥ ३१ ॥ येन च गुणेनोपावृत्तस्तं तीव्रीकुर्यादिति ॥ ३२ ॥ पित्र्ये पितृदोषांश्छादयेत् ॥ ३३ ॥ गुणांश्च प्रकाशयेदिति ॥ ३४ ॥

पहिले जिस दोषके कारण, अपना राज्य शत्रुके हाथमें चलागया हो, उस प्रकृतिदोषको सदा दबाये रक्खे ॥ ३१ ॥ तथा जिस गुणके कारण, शत्रुके हाथमें गयाहुआ राज्य फिर वापस लेलिया गया हो, उस गुणको सदा तीव्र करता रहे, अर्थात् बढ़ाता रहे ॥ ३२ ॥ यदि राज्यके शत्रुहस्तगत होनेमें पिताका दोष हो, तो उन दोषोंको भी छिपाये रक्खे ॥ ३३ ॥ और पिताके जो कुछ गुण हों, उन सबको बराबर प्रकट करता रहे ॥ ३४ ॥

चरित्रमकृतं धर्म्यं कृतं चान्यैः प्रवर्तयेत् ।
प्रवर्तयेन्न चाधर्म्यं कृतं चान्यैर्निवर्तयेत् ॥ ३५ ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशेऽधिकरणे लब्धप्रशमनं पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥
आदितः पञ्चचत्वारिंशच्छतः ॥ १४५ ॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य दुर्गलम्भोपायस्त्रयोदशाधिकरणं समाप्तम् ॥ १३ ॥

जिन धर्मयुक्त चरित्रोंका आचरण न कियाजाता हो, विजिगीषु उनको प्रवृत्त करे; तथा अन्य पुरुषोंसे क्रियेगये धर्मयुक्त व्यवहारोंको भी प्रवृत्त रक्खे। अधर्मयुक्त व्यवहारोंको कभी प्रवृत्त न होने दे; तथा जो अधर्मयुक्त व्यवहार प्रवृत्त हुए २ हों, उनको प्रयत्नपूर्वक रोके ॥ ३५ ॥

दुर्गलम्भोपाय त्रयोदश अधिकरणमें पांचवां अध्याय समाप्त ।

दुर्गलम्भोपाय त्रयोदश अधिकरण समाप्त

औपनिषदिक चतुर्दश अधिकरण

पहिला अध्याय

१७७ प्रकरण

परघातप्रयोग

(इस चौदहवें अधिकरणका नाम 'औपनिषदिक' है। औषध और मन्त्रों के रहस्यको 'उपनिषद्' कहते हैं। इसीका निरूपण करनेके कारण यह अधिकरण 'औपनिषदिक' कहाता है। इसके पहिले प्रकरणमें, शत्रुका वध करनेके लिये औषध प्रयोगका कथन किया जायगा।)

चातुर्वर्ण्यरक्षार्थमौपनिषदिकमधार्मिकेषु प्रयुञ्जीत ॥ १ ॥ कालकूटादिः विषवर्गः श्रद्धेयदेशवेषशिल्पभाजनापदेशैः कुब्जवामनकिरातमूकबधिरजडान्धच्छद्मभिः म्लेच्छजातीयैरभिप्रेतैः स्त्रीभिः पुंभिश्च परशरीरोपभोगेष्ववधातव्यः ॥ २ ॥

विजिगीषु, चातुर्वर्ण्यकी रक्षाके लिये, अधार्मिक पुरुषोंमें औपनिषदिकका प्रयोग करे ॥ १ ॥ कालकूट आदि (आदि शब्दसे वत्सनाभ हलाहल आदिका भी ग्रहण करलेना चाहिये) विषसमूहको; अपने विश्वसनीय देश वेष शिल्प तथा सुपात्रत्व (योग्यता) को प्रकट करनेवाले, कुबड़े बौने पस्तकद गूंगे बहिरे मूर्ख तथा अन्धेके वेषमें रहनेवाले, और म्लेच्छ जातिके प्रिय पुरुषों तथा स्त्रियोंके द्वारा; शत्रुके शरीरसे उपभोग्य वस्त्र आदिमें संयुक्त करादिया जावे। तात्पर्य यह है, कि ये उपर्युक्त पुरुष या स्त्री आदि, शत्रुके वस्त्र आदिमें विष का संसर्ग करदेवें ॥ २ ॥

राजक्रीडाभाण्डनिधानद्रव्योपभोगेषु गूढाः शस्त्रनिधानं कुर्युः ॥ ३ ॥ सत्त्राजीविनश्च रात्रिचारिणोऽग्निजीविनश्चाग्निनिधानम् ॥ ४ ॥

शत्रु राजाके खेलनेकी वस्तुओंके रखनेके स्थानमें, भूषण रखनेके स्थानमें, तथा सुगन्धि द्रव्योंके रखनेके स्थानमें, गूढपुरुष हथियारोंको छिपा

कर रखदेवें । अथवा इस सूत्रका अर्थ इसप्रकार करना चाहिये:—विजिगीषु के गूढपुरुष, शत्रुके खेलनेके समय, भूषण आदि धारण करनेके समय, तथा सुगन्धि आदि द्रव्योंका उपभोग करनेके समयमें, उसपर (शत्रुपर) शस्त्रोंका प्रयोग करें ॥ ३ ॥ और रात्रिमें इधर उधर घूमनेवाले सत्री पुरुष, तथा लुहार आदि अग्निजीवी (अग्निके द्वारा अपनी जीविका करनेवाले) पुरुष, शत्रुस्थानमें अग्निको रख देनेका कार्य करें ॥ ४ ॥

चित्रभेककौण्डिन्यककृकणपञ्चकुष्ठशतपदीचूर्णमुच्चिदिङ्गकंबलीशतकन्देध्मकृकलासचूर्णं गृहगोलिकान्धाहिककृकणकपूतिकीटगोमारिकाचूर्णं भल्लातकावल्गुकारसयुक्तं सद्यःप्राणहरमेतेषां वा धूमः ॥ ५ ॥

चितकबरा मेंडक, कौण्डिन्यक (एक प्रकारका कीड़ा, जिसका पेशाब और पखाना, विषके समान होता है), जंगली तीतर, कूटके पांचों अंग (कूट एक वृक्ष होता है, उसके पत्ते फल फूल छाल और जड़ ये पांच अंग), कानखजूरा, इन सब चीजोंका चूर्ण ; अथवा उच्चिदिङ्ग (एक प्रकारका कीड़ा); कम्बली (=कमला=छोटी अंगुलीकी तरह लम्बा गोल कीड़ा होता है), शत (=शतमूली=शतावरी), जमीकन्द, ढाककी लकड़ी, और कृकलास (=करकैंटा=गिरगट), इन सब चीजोंका चूर्ण ; अथवा छपकली (किरली), अन्धाहिक (विषरहित सांप; त. गणपति शास्त्रीने इसका अर्थ 'एक प्रकारकी मछली' किया है), कृकणक (जंगली तीतर), पूतिकीट (एक प्रकारका कीड़ा), गोमारिका (एक प्रकारकी औषधि) इन सब चीजोंका चूर्ण; भिलावा और बावचीके रसके साथ मिला लिया जावे ; ये चीजें, तथा इन चीजोंका धुआं, तत्कालही प्राणोंको हरण करने वाला होता है ॥ ५ ॥

कीटो वान्यतमस्तप्तः कृष्णसर्पप्रियङ्गुभिः ।
शोषयेदेष संयोगः सद्यः प्राणहरो मतः ॥ ६ ॥

ऊपर कहे हुए कीड़ोंमेंसे किसी एक कीड़ेको अग्निमें तपाकर घ्राण आदिसे यदि उसका उपयोग किया जावे, तो वह सूंघनेवालेके शरीरको सुखा देता है । यदि काले सांप और कांगनीके साथ इसका योग करदिया जावे, तो यह तत्कालही प्राणोंको हरण करनेवाला माना गया है ॥ ६ ॥

धामार्गवयातुधानमूलं भल्लातकपुष्पचूर्णयुक्तमार्धमासिकः ॥ ७ ॥ व्याघातकमूलं भल्लातकपुष्पचूर्णयुक्तं कीटयोगो मासिकः

॥ ८ ॥ कलामात्रं पुरुषाणां द्विगुणं खराश्वानां चतुर्गुणं हस्त्युष्ट्राणाम् ॥ ९ ॥

धामार्गव (=अपामार्ग=चिडचिड़ा=पुठकंडा, या कड़वी तोरई), और यातुधान (इस नामकी या राक्षस नामकी एक औषधि), की जड़को, यदि भिलावेके फूलोंके चूर्णके साथ मिला लिया जावे, तो वह योग पन्द्रह दिनमें प्राण हरलेता है ॥ ७ ॥ अमलतासकी जड़, भिलावेके फूलके चूर्णके साथ मिलाकर, उसमें यदि किसी भी तसकीटका योग करादिया जावे, तो यह प्रयोग, एक महीनेतक प्राण हरण करता है। (इस सूत्रमें 'व्याघातकमूलं' के स्थानपर यदि 'व्याधिघातकमूलं' ऐसा पाठ हो, तो युक्त मालूम होता है, क्योंकि 'व्याधिघातक' शब्दही अमलतासका पर्याय है। प्राचीन व्याख्याकारों ने 'व्याघातक' शब्दका भी अर्थ अमलतासही किया है ॥ ८ ॥ इस कीटयोग की मात्रा पुरुषको एक कला (थोड़ीसी) देनी चाहिये; उससे दुगनी गधे और घोड़ोंको, तथा चौगुनी हाथी और ऊंटोंको देनी चाहिये ॥ ९ ॥

शतकर्दमोच्चिदिङ्गकरवीरकटुतुम्बीमत्स्यधूमो मदनकोद्रवपलालेन हस्तिकर्णपलाशपलालेन वा प्रवातानुवाते प्रणीतो यावच्चरति तावन्मारयति ॥ १० ॥

शतावरी, कर्दम (=यक्षकर्दम, कपूर अगर कस्तूरी और कंकोल इन चारों चीजोंके पिसे हुए लेपको यक्षकर्दम या कर्दम कहते हैं), उच्चिदिंग, कनेर, कड़वी तूंबी, और मछली इन सब चीजोंका धुआं; धतूरा कोदों और पुरालके (धान आदिकी बालको काटकर नीचेके रहे हुए हिस्सेके) साथ, अथवा धनिया ढाक और पुरालके साथ, यदि सामने तेज हवाके चलते हुए होनेपर किया जावे, तो यह धुआं जहांतक जाता है, वहांतकके प्राणियोंको मार देता है ॥ १० ॥

पूतिकीटमत्स्यकटुतुम्बाशितकर्दमेन्द्रगोपचूर्णं पूतिकीटक्षुद्राराला हेमविदारीचूर्णं वा बस्तशृङ्गखुरचूर्णयुक्तमन्धीकरो धूमः ॥ ११ ॥

पूतिकीट (एक प्रकारका कीड़ा, इसके ऊपर कुछ २ कांटेसे होते हैं) मछली, कड़वीतूम्बी, शतावरी, कर्दम, ढाककी लकड़ी, और इन्द्रगोप (मखमलकी तरह लाल रंगका कीड़ा, जिसको 'रामजीकी भैंस' कहते हैं), इन सब चीजोंका चूर्ण; अथवा पूतिकीट, कटेहरी या कटेरी, राल, धतूरा और विदारीकन्द, इन सब चीजोंका चूर्ण; यदि बकरेके सींग और खुरके

चूर्णके साथ मिलादिया जावे; तो इन सब वस्तुओंका किया हुआ धुआं प्राणियोंको अन्धा बनादेता है ॥ ११ ॥

पूतिकरञ्जपत्रहरितालमनःशिलागुञ्जारक्तकार्पासपललान्यास्फोटकाचगोशकृद्रसपिष्टमन्धीकरो धूमः ॥ १२ ॥ सर्पनिर्मोकं गोश्वपुरीषमन्धाहिकशिरश्चान्धीकरो धूमः ॥ १३ ॥

कांटेदार करंजुआ, पत्रक, हरताल, मनसिल, चूंटली (रत्ती), लाल रंगकी (नरमा) कपास, और पलल (फल रहित धान आदिका काण्ड=पुराल), इन सब चीजोंको, आस्फोट (आक), काच तथा गोबरके रसमें पीसा जावे; इन सब चीजोंका धुआं भी प्राणियोंको अन्धा करदेता है ॥ १२ ॥ सांपकी कैंचुली, गोबर और घोड़ेकी लीद, तथा अन्धाहिक (विषरहित सांप या विशेष मछली) का सिर, इन सब चीजोंका पृथक् २ धुआं भी प्राणियोंको अन्धा बनादेता है ॥ १३ ॥

पारावतप्लवकक्रव्यादानां हस्तिनरवराहाणां च मूत्रपुरीषं कासीसहिङ्गुयवतुषकणतण्डुलाः कार्पासकुटजकोशातकीनां च बीजानि गोमूत्रिकाभाण्डीमूलं निम्बशिग्रुफणिज्जकाक्षीबपीलुकभङ्गः सर्पशफरीचर्म हस्तिनखशृङ्गचूर्णमित्येष धूमो मदनकोद्रवपलालेन हस्तिकर्णपलाशपलालेन वा प्रणीतः प्रत्येकशो यावच्चरति तावन्मारयति ॥ १४ ॥

कबूतर, बतख, गिद्ध हाथी, मनुष्य और सूअर, इन सब प्राणियोंका मूत्र और पुरीष; या कसीस, हींग, जौका छिलका, टूटा दाना (कण) तथा पूरा दाना (अथवा जौका छिलका, दाना, और चावल), और कपास कुटज (=कुटकी=कुड़ा) तथा कड़वी तोरई या पुटकंडे (चिरचिड़ा) के बीज; या गोमूत्रिका (एक प्रकारकी घास जो कि गौके पेशाबकी तरह टेढ़ी २ जमीन पर फैलती है) और मंजीठकी जड़, या नीम, सेंजना, फणिज्ज (जंबीरका एक भेद=सफेद मरवा), काक्षीव (सेंजनेका ही एक भेद) और पीलु, इन पांचों वृक्षोंका छिलका; या सांप और मछलीकी खाल; या हाथीके नाखून और दांतोंका चूरा; इन वस्तुओंके अपने प्रत्येक वर्गका धुआं; धतूरा कोद्रों और पलाल (फल रहित धान आदिके पेड़ोंका नीचेका हिस्सा=पुराल) के साथ; अथवा धनिया पलाश और पलालके साथ बनायाहुआ, जितनी दूरतक फैलता जाता है, उतने ही में सब प्राणियोंको मारता जाता है ॥ १४ ॥

कालीकुष्ठनडशतावरीमूलं सर्पप्रचलाककृकणपञ्चकुष्ठचूर्णं वा धूमः पूर्वकल्पेनार्द्रशुष्कपलालेन वा प्रणीतः संग्रामावतरणावस्कन्दनसंकुलेषु कृततेजनोदकाक्षिप्रतीकारैः प्रणीतः सर्वप्राणिनां नेत्रघ्नः ॥ १५ ॥

चकोतरा, कूठ, नरसल, और शतावरी, इन चीजोंकी जड़का; या सांप, मोरकी पूंछ, जंगली तीतर, कूटके पांचों अंग ('कूट' एक वृक्षका नाम है, उसके पत्ते फल फूल छाल और जड़, ये पांच अंग कहेजाते हैं), इन सब चीजोंके चूर्णका; पूर्वकल्प अर्थात् पहिले सूत्रमें बतलायेहुए योग (धतूरा, कोदों, पलाल; या धनिया, पलाश, पलाल; देखो सूत्र १४) के साथ मिलाकर जो धुआं बनाया जाता है; अथवा कुछ गीले और कुछ सूखे केवल पलाल (पुराल) के साथ जो धुआं बनाया जाता है; संग्राममें उतरने और रात्रिके बलात्कार आक्रमणकी भीड़के समयमें, तेजनोदक (देखो० अधि० १४, अध्या० ४, सूत्र १) के सहारेसे आंखोंका प्रतीकार कियेहुए पुरुषोंके द्वारा बनाया गयाहुआ वह धुआं, सब ही प्राणियोंके नेत्रोंको नष्ट करडालता है। तात्पर्य यह है, कि इस उपर्युक्त धुएंका प्रयोग करते समय, प्रयोग करनेवाले पुरुष, इसके प्रतीकारका प्रयोग अपनी आंखोंपर अवश्य करलें, नहीं तो उनकी भी आंखें नष्ट होजावेंगी (इस सूत्रमें 'आर्द्रशुष्कपलालेन' इस पदके स्थानपर किसी पुस्तकमें 'आर्द्रे शुष्कपलाले' ऐसा सप्तम्यन्त पाठ है। अर्थमें कोई भेद नहीं आता) ॥ १५ ॥

शारिकाकपोतबकबलाकालण्डमर्काक्षिपीलुकस्नुहिक्षीरपिष्टमन्धीकरणमञ्जनमुदकदूषणं च ॥ १६ ॥

मैंना, कबूतर, बगला और बगली, इन पक्षियोंकी विष्ठाको; आख (आक), अक्षी (सैंजने या बहेड़ेकी किसमका एक पेड़), पीलु, तथा सेंढ, इन चारों वृक्षोंके दूधमें पीसकर, अंजन तैयार किया जावे, यह अंजन प्राणियोंके अन्धा करनेवाला, तथा जलको दूषित करनेवाला होता है॥ १६ ॥

यवकशालिमूलमदनफलजातीपत्रनरमूत्रयोगः प्लक्षविदारीमूलयुक्तो मूकोदुम्बरमदनकोद्रवक्काथयुक्तो हस्तिकर्णपलाशक्काथयुक्तो वा मदनयोगः ॥ १७ ॥

यवक (जौ, अथवा जलपीपल) और शाली (धान) की जड़, मैनफल, चमेली, पत्रक, और नरमूत्र (आदमी का पेशाब) इन सब चीजों को

मिलाकर, तथा इनमें पिलखन या लाख देने वाले पीपल और बिदारी की जड़ का योग करके, अथवा मलिन जल में बने हुए गूलर धतूरा और कोदों के क्वाथ का योग करके, अथवा धनियां और पलाश के क्वाथ का योग करके, 'मदनयोग' तैयार होजाता है। अर्थात् यह योग चित्त का उन्मादक, चित्त को भ्रममें डालने वाला होता है ॥ १७ ॥

शृङ्गिगौतमवृक्षकण्टकारमयूरपदीयोगो गुञ्जालाङ्गलीविषमूलिकेङ्गुदीयोगः करवीराक्षिपीलुकार्कमृगमारणीयोगो मदनकोद्रवक्वाथयुक्तो हस्तिकर्णपलाशक्वाथयुक्तो वा मदनयोगः ॥ १८ ॥ समस्ता वा यवसेन्धनोदकदूषणाः ॥ १९ ॥

शृङ्गी नामकी मछलीका पित्ता (=शृङ्गिगौतम), लोध, सिंभल और मोरशिखा (अजमोदा) इन चीजों का योग; तथा चौंटली (रत्ती), जलपीपल या नारियल (गणपति शास्त्रीने 'लाङ्गली' का अर्थ 'पृथक्पर्णी' अर्थात् पिठवन किया है), कालकूट आदि विष और इंगुदी (हिंगनबेट, या गोंदी। गणपति शास्त्री ने इसका अर्थ 'कटभी' अर्थात् मालकंगनी किया है), इन सब चीजों का योग; करवीर (कनेर), अक्षि (सेंजना या बहेड़े की किस्म का एक पेड़), पीलु, आक, मृगमारणी (मृगको मारने वाली कोई औषधि विशेष), इन सब चीजोंका योग; धतूरा और कोदोंके क्वाथ के साथ, अथवा धनिया और पलाश के क्वाथके साथ 'मदनयोग' अर्थात् उन्माद करदेने वाला योग होजाता है ॥ १८ ॥ अथवा ये सब ही मदनयोग, पशुओंके चारे, ईन्धन और जल को भी दूषित करने वाले होते हैं ॥ १९ ॥

कृतकण्डलकृकलासगृहगोलिकान्धाहिकधूमो नेत्रवधमुन्मादं च करोति ॥ २० ॥

पकाई हुई नस नाड़ियोंवाले (जिनके स्नायु अर्थात् नस नाड़ियोंको पकालिया गया है ऐसे) गिरगट, छपकली और अन्धाहिक का धुआं नेत्रों को नष्ट कर देता है, तथा उन्माद का करने वाला भी होता है ॥ २० ॥

कृकलासगृहगोलिकायोगः कुष्ठकरः ॥२१॥ स एव चित्रभेकान्त्रमधुयुक्तः प्रमेहमापादयति ॥ २२ ॥ मनुष्यलोहितयुक्तः शोषम् ॥ २३ ॥

गिरगट और छपकली का योग, अर्थात् इन दोनों का धुआं कुष्ठको पैदा करनेवाला होता है ॥२१॥ यही योग (अर्थात् गिरगट और छपकली का योग),

चितकबरे मेंडककी आंत और मधुसे युक्त हुआ २, प्रमेह रोगको उत्पन्न करता है ॥ २२ ॥ यदि इस योग में मनुष्य का रक्त मिला दिया जावे, तो यह योग, क्षयरोग को उत्पन्न करता है ॥ २३ ॥

दूषीविषं मदनकोद्रवचूर्णमुपजिह्विकायोगः मातृवाहकाञ्जलिकारप्रचलाकभेकाक्षिपीलुकयोगो विषूचिकाकरः ॥ २४ ॥ पञ्चकुष्ठककौण्डिन्यकराजवृक्षमधुपुष्पमधुयोगो ज्वरकरः ॥ २५ ॥

ओषधि आदिके योगसे हीनशक्ति हुआ २ विष (अर्थात् शुद्ध हुआ २ विष), धतूरा, और कोदोंका चूर्ण, दीमकके साथ युक्त करके, फिर मातृवाहक (एक विशेष पक्षी), अञ्जलिकार एक ओषधि विशेष), प्रचालक (मोरपंच=मोर की पूंछ का चंदोवा) मेंडक, अक्षी (सेंजने या बहेड़े की किस्म का एक पेड़), और पीलुके साथ मिलाकर योग तैयार किया जावे; यह योग, विषूचिका अर्थात् हैज़ा करने वाला होता है । २४ ॥ कूटके पांचों अंग (कूट एक वृक्ष का नाम है, उसके पत्ता फल फूल छाल और जड़, ये पांचों अंग), कौण्डिन्यक (एक प्रकारका कीड़ा, जिसका मल मूत्र विषके समान होता है) राजवृक्ष (अमलतास), शहद और पुष्पमधु (=मधूक=महुआ) इन सब चीजों का योग, ज्वर उत्पन्न करने वाला होता है ॥ २५ ॥

भासनकुलजिह्वाग्रन्थिकायोगः खरीक्षीरपिष्टो मूकबधिरकरो मासार्धमासिकः ॥ २६ ॥ कलामात्रं पुरुषाणामिति समानं पूर्वेण ॥ २७ ॥

गिद्ध, नेवला, और मंजीठ, इन चीजोंको मिलाकर, इन्हें गधीके दूधमें पीसा जावे, यह योग एक महीने या पन्द्रह दिनके अन्दर मनुष्यको गूंगा और बहिरा बना देता है ॥ २६ ॥ इन सब ही योगोंकी मात्रा पुरुषोंके लिये एक कला होनी चाहिये, शेष पूर्ववत् जान लेवें । अर्थात् घोड़े गधे आदिके लिये मनुष्योंसे दुगनी, और ऊंट हाथी आदिके लिये चौगुनी मात्रा देनी चाहिये ॥ २७ ॥

मञ्जकाथोपनयनमौषधानां चूर्णं प्राणभृताम् ॥ २८ ॥ सर्वेषां वा काथोपनयनमेवं वीर्यवत्तरं भवति ॥ २९ ॥ इति योगसंपत् ॥ ३० ॥

उपर्युक्त सबही योगोंमें, औषधोंका उपयोग कूटकर क्वाथ बनाकर लेना चाहिये । और प्राणियोंका उपयोग चूर्ण बनाकर लिया जावे ॥ २८ ॥

अथवा सबही चीजोंका काथ (काढ़ा) बनाकर ही उपयोग लिया जावे। क्योंकि इसप्रकार उपयोग करनेसे औषधमें बहुत शक्ति आजाती है ॥ २९ ॥ यहांतक योगसम्पत्ति (विशेष २ योगों) का निरूपण कर दिया गया ॥३०॥

शाल्मलीविदारीधान्यसिद्धो मूलवत्सनाभसंयुक्तश्चुचुन्दरीशोणितप्रलेपेन दिग्धो बाणो यं विध्यति स विद्धोऽन्यान्दशपुरुषान्दशति ॥ ३१ ॥ ते दष्टाश्चान्यान्दशन्ति पुरुषान् ॥ ३२ ॥

सिंभल, बिदारी और धनियेमें सिद्ध किया हुआ (अर्थात् भावना दिया हुआ), तथा पिप्पलीमूल और वत्सनाभ (इसी नामसे प्रसिद्ध एक प्रकारका विष) से युक्त, और छछूंदरके रक्तके लेपसे सना हुआ बाण जिसको जाकर लगता है (अर्थात् बिंधता है), वह बाणसे चोट खाया हुआ आदमी अन्य दश पुरुषोंको काट लेता है ॥ ३१ ॥ काटे हुए वे दश पुरुष, अन्य दश २ पुरुषोंको काट खाते हैं, (इसी प्रकार विष फैल जानेसे शत्रुकी सम्पूर्ण सेना नष्ट हो जाती है ॥ ३२ ॥

भल्लातकयातुधानापामार्गबाणानां पुष्पैरेलकाक्षिगुग्गुलुहालाहलानां च कषायं बस्तनरशोणितयुक्तं दंशयोगः ॥ ३३ ॥

भिलावा, यातुधान (इस नामकी या राक्षस नामकी एक विशेष ओषधि), अपामार्ग (चिरचिड़ा=पुठकंडा) और बाण (अर्जुनवृक्ष), इन सब चीजोंके फूलोंसे सिद्ध किया हुआ, और इलायची, अक्षी, गूगल तथा हलाहल विष इन सब चीजोंका बनाया हुआ काढ़ा, बकरे और मनुष्यके रक्तसे युक्त करदिया जावे ; यह दंशयोग अर्थात् काटनेके लिये काममें लाये जानेवाला योग है । यह काढ़ा, जिसके शरीरमें चलाजाय, वह पुरुष भी अन्य अनेक पुरुषोंको काट लेता है ॥ ३३ ॥

ततोऽर्धधरणिको योगः सक्तुपिण्याकाभ्यामुदके प्रणीतो धनुःशतायाममुदकाशयं दूषयति ॥ ३४ ॥ मत्स्यपरम्परा ह्येतेन दष्टाभिमृष्टा वा विषीभवन्ति ॥ ३५ ॥ यश्चैतदुदकं पिबति स्पृशति वा ॥ ३६ ॥

उस कषाय (काढ़े) से आधा धरणिक प्रमाण योग, सत्तू और तिलकुटके साथ जलमें बनाया हुआ; सौधनुष् (धनुष् एक परिमाण होता है, देखोः—अधि. २, अध्या. २० । धरणिक एक तोलका नाम है, देखोः—अधि. २, अध्या. १९) पर्यन्त लम्बे चौड़े जलाशयको दूषित करदेता है ॥ ३४ ॥ इसके

दूषित होनेसे वहांकी मछलियां, लगातार एक दूसरेको काटने और स्पर्श करनेसे विषयुक्त होजाती हैं । (सूत्रके 'विषीभवन्ति' पदके स्थानपर कहीं २ 'विषीभवति' ऐसा एकवचनान्त पाठ भी है) ॥ ३५ ॥ और जो इस जलको पीता है, अथवा स्पर्श करता है, वह भी विषयुक्त होजाता है ॥ ३६ ॥

रक्तश्वेतसर्षपैर्गोधा त्रिपक्षमुष्टिकायां भूमौ निखातायां निहिता वध्येनोद्धृता यावत्पश्यति तावन्मारयति ॥ ३७ ॥ कृष्णसर्पो वा ॥ ३८ ॥

लाल और सफेद सरसोंके साथ एक गोधा (गोह) को, तीन पक्ष अर्थात् पैंतालीस दिनतक, ऊंटोंसे युक्त (अर्थात् जहांपर ऊंट आदि बंधते हों, ऐसी) भूमिमें एक गढ़ा खोदकर, घड़े आदिमें बन्द करके रक्खें; (अथवा 'उष्ट्रिका' शब्दका ही अर्थ मृद्भाण्ड करना चाहिये) । नियत अवधिके बाद किसी वध्य पुरुषके द्वारा उसे निकलवावे; वह निकालनेवाला जबतक उसे देखता है, उतने ही में वह गोधा, उस पुरुषको मारदेती है । तात्पर्य यह है, कि उसके देखते ही पुरुष मरजाता है ॥ ३७ ॥ गोह की तरह काला सांप भी, इसी तरह गाड़कर उखाड़ा जावे, तो वह भी पुरुषको मारदेता है । अर्थात् उसके भी देखनेसे पुरुष तत्काल ही मरजाता है ॥ ३८ ॥

विद्युत्प्रदग्धोङ्गारोऽज्वालो वा विद्युत्प्रदग्धैः काष्ठैर्गृहीतश्चानुवासितः कृत्तिकासु भरणीषु वा रौद्रेण कर्मणाभिहुतोऽग्निः प्रणीतश्च निष्प्रतीकारो दहति ॥ ३९ ॥

अथवा बिजलीसे जले हुए ज्वाला (लपट) रहित अंगारेकी (अर्थात् दहकते हुए अंगारेमें प्रविष्ट हुई २) अग्निको, बिजलीसे जली हुई लकड़ियोंके द्वारा लेकर उसे खूब बढ़ाया जावे ; अर्थात् उस आगको बिजलीकी जली लकड़ियोंमें ही लगाकर सुलगाया जावे ; और कृत्तिका अथवा भरणी नक्षत्रमें, रौद्रकर्मके द्वारा (रुद्र देवताको लक्ष्य करके विशेष कर्मके द्वारा) उस अग्निमें हवन किया जावे । इसप्रकार बनाई हुई इस आगका प्रतीकार नहीं होसकता । अर्थात् शत्रुके दुर्ग आदिमें लगाये जानेपर, बिना किसी प्रतीकारके, यह उसको जला देती है ॥ ३९ ॥

कर्मारादग्निमाहृत्य क्षौद्रेण जुहुयात्पृथक् ।
सुरया शौण्डिकादग्निं भार्ग्यायोग्निं घृतेन च ॥ ४० ॥

अब चार श्लोकोंसे एक और योगका निरूपण करते हैं;—कुम्हारके यहांसे आग लेकर, पृथक् (अर्थात् आग बताई जानेवाली आगोंसे पृथक्

रखकर) ही, शहदसे उसमें हवन करे; इसीप्रकार शराब बेचनेवालेके घरसे आग लेकर, उसमें शराबसे हवन करे; तथा लुहारके यहांसे आग लेकर उसमें भार्गी (भारंगी नामकी औषधि) तथा घृतसे हवन करे ॥ ४० ॥

माल्येन चैकपत्न्यग्निं पुंश्चल्यग्निं च सर्षपैः ।
दध्ना च सूतिकास्वग्निमाहिताग्निं च तण्डुलैः ॥ ४१ ॥

पतिव्रता स्त्रीके पाससे लाई हुई अग्निको, माल्य (फूलोंकी माला) से हवन करे। व्यभिचारिणी स्त्रीके पाससे लाई हुई आगमें सरसोंसे हवन करे। सूतिकागृह (जच्चाघर) में विद्यमान अग्निको लाकर, उसमें दहीसे हवन करे। अग्निहोत्रीके घरसे लाई हुई आगमें चावलोंसे हवन करे ॥ ४१ ॥

चण्डालाग्निं च मांसेन चिताग्निं मानुषेण च ।
समस्तान्बस्तवसया मानुषेण ध्रुवेण च ॥ ४२ ॥

चंडालके यहांसे लाई हुई आगमें मांससे हवन करे; चिताकी अग्निमें मनुष्यसे हवन करे। फिर इन सब अग्नियोंको इकट्ठा करके, इनमें बकरेकी मज्जा (चर्बी), मनुष्य और ध्रुव (सूखी लकड़ी, या सालवनकी लकड़ी। गणपति शास्त्रीने 'ध्रुव' का अर्थ 'वट' अर्थात् बरगद या बड़ किया है) से हवन करे ॥ ४२ ॥

जुहुयादग्निमन्त्रेण राजवृक्षस्य दारुभिः ।
एष निष्प्रतिकारोऽग्निर्द्विषतां नेत्रमोहनः ॥ ४३ ॥

तथा अमलतासकी लकड़ियोंसे, अग्निकी स्तुति करनेवाले मन्त्रोंके द्वारा इस अग्निमें हवन करे। इस अग्निका प्रतीकार नहीं होसकता। अर्थात् शत्रुके दुर्ग आदिमें लगाई हुई इस आगका प्रतीकार करनेके लिये, शत्रु सर्वथा असमर्थ होता है। यह अग्नि न केवल दुर्ग आदिकोही जलाता है; किन्तु शत्रुओंको उसके देखने मात्रसे, मूढ भी बना देता है। अर्थात् उसके देखनेपर शत्रुकी विवेकदृष्टि नष्ट होजाती है ॥ ४३ ॥

अदिते नमस्ते ॥ ४४ ॥ अनुमते नमस्ते ॥ ४५ ॥ सरस्वति नमस्ते ॥ ४६ ॥ सवितर्नमस्ते ॥ ४७ ॥ अग्नये स्वाहा ॥ ४८ ॥ सोमाय स्वाहा ॥ ४९ ॥ भूः स्वाहा ॥ ५० ॥ भुवः स्वाहा ॥ ५१ ॥

इत्यौपनिषदिके चतुर्दशेऽधिकरणे परघातप्रयोगः प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

आदितः षट्चत्वारिंशदुत्तरशतः ॥ १४६ ॥

हवन करनेके लिये इन मन्त्रोंका उपयोग करना चाहिये ॥ ४४-५१ ॥

औपनिषदिक चतुर्दश अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त।

दूसरा अध्याय

१७८ प्रकरण

प्रलम्भनमें अद्भुतोत्पादन

औषध तथा मन्त्रोंके प्रयोगके द्वारा, भूखप्यासके नष्ट करने या आकृति आदिके बदल लेनेसे शत्रुको ठगना 'प्रलम्भन' कहाता है। इसके दो भेद हैं, अद्भुतोत्पादन और भैषज्यमन्त्रप्रयोग। इसीको लेकर यह प्रकरण, दो अध्यायोंमें विभक्त करदिया है। अब इस पहिले अध्यायमें अद्भुतोत्पादनका निरूपण किया जायगा।

शिरीषोदुम्बरशमीचूर्णं सर्पिषा संहृत्यार्धमासिकः क्षुद्योगः ॥ १ ॥ कशेरुकोत्पलकन्देक्षुमूलबिसदूर्वाक्षीरघृतमण्डासिद्धो मासिकः ॥ २ ॥

शिरीष (सिरस), उदुम्बर (गूलर), और शमी (छोंकरा), इनके चूर्णको घीके साथ मिलाकर खानेसे, पन्द्रह दिनतक भूख नहीं लगती ॥ १ ॥ कशेरुक (कसेरु, यह मीठा, छोटासा कन्द होता है, जंगली तालाबोंके किनारे अधिकतर पैदा होता है), कमलकी जड़, गन्नेकी जड़, कमलकी डंडी (बिस=भिस=भें) दूब घास, दूध, घी तथा मांड, इन सब चीजोंको मिलाकर तैयार किया हुआ योग, खालेनेपर एक महीनेतक भूख नहीं लगने देता ॥ २ ॥

माषयवकुलुत्थदर्भमूलचूर्णं वा क्षीरघृताभ्याम् ॥ ३ ॥ वल्लीक्षीरघृतं वा समसिद्धं, सालपृश्निपर्णीमूलकल्कं पयसा पीत्वा ॥४॥ पयो वा तत्सिद्धं मधुघृताभ्यामशित्वा मासमुपवसति ॥ ५ ॥

उड़द, जौ, कुलथी और दाभकी जड़, इन चीजोंको दूध घीके साथ मिलाकर पीलेनेपर एक महीनेतक पुरुष, उपवास करसकता है ॥ ३ ॥ अथवा अजमोद, दूध और घीको बराबर २ मिलाकर पीलेनेपर भी एक महीनेतक भूख नहीं लगती। इसीप्रकार सालपर्णी और पृश्निपर्णी (इन्हीं नामोंसे प्रसिद्ध ओषधि विशेष, हिन्दीमें इनको यथाक्रम सालवन और पिठवन कहाजाता है। गणपति शास्त्रीने 'साल' शब्दको पृथक् और पृश्निपर्णीको पृथक् मानकर, सालका अर्थ अर्जुन, और पृश्निपर्णीका अर्थ लाङ्गली किया है; लाङ्गलीके दो अर्थ हैं—जलपीपल और नारियल) की जड़के कल्कको दूधसे पीकर भी एक महीनेतक भूख नहीं लगती ॥ ४ ॥ अथवा सालपर्णी और पृश्निपर्णीके साथ

दूधको पकाकर, शहद और घीके साथ मिलाकर खानेसे भी, एक महीनेतक उपवास करसकता है ॥ ५ ॥

श्वेतवस्तमूत्रे सप्तरात्रोषितैः सिद्धार्थकैः सिद्धं तैलं कटुकालाबौ मासार्धमासस्थितं चतुष्पदद्विपदानां विरूपकरणम् ॥ ६ ॥ तक्रयवभक्षस्य सप्तरात्रादूर्ध्वं श्वेतगर्दभस्य लण्डयवैः सिद्धं गौरसर्षपतैलं विरूपकरणम् ॥ ७ ॥

सफेद बकरेके पेशाबमें सात राततक रक्खी हुई सरसोंसे निकाला हुआ तेल, कड़वी तूंबीमें एक महीना या पन्द्रह दिनतक रक्खा जावे, तदनन्तर उस तेलको जिन चौपायों या दुपायोंपर लगाया जायगा, उनकी आकृति अर्थात् रंग रूपमें भेद पड़जायगा । यह विरूपकरण योग होता है ॥ ६ ॥ इसीप्रकार मठा (छाछ) और जौ खानेवाले आदमीके, सात दिनके बाद (अर्थात् सात दिनतक मठा और जो खानेपर, तदनन्तर) सफेद गधेके लेंड (लीदके गोलेसे)और जौके साथ पकाये हुए सफेद सरसोंके तेलको लगाने या खानेसे, आकारमें भेद पड़जाता है ॥ ७ ॥

एतयोरन्यतरस्य मूत्रलण्डरससिद्धं सिद्धार्थतैलमर्कतूलपतङ्गचूर्णप्रतिवापं श्वेतीकरणम् ॥ ८ ॥ श्वेतकुक्कुटाजगरलण्डयोगः श्वेतीकरणम् ॥ ९ ॥

सफेद बकरा और सफेद गधा, इन दोनोंमेंसे किसी एकके, पेशाब और लेंडके रसके साथ पकाया हुआ सरसोंका तेल ; आक, पारसपीपल, और धानके चूर्णके साथ मिलाया जाकर, श्वेतीकरण योग बनजाता है । अर्थात् इस प्रकारसे तैयार किया हुआ तेल, लगानेवाले या खानेवालेको सफेद बनादेता है । ॥ ८ ॥ सफेद मुर्गा और अजगर सांप इन दोनोंकी विष्ठाको मिलाकर तैयार किया हुआ योग भी, सफेद बनादेता है ॥ ९ ॥

श्वेतवस्तमूत्रे श्वेतसर्षपाः सप्तरात्रोषितास्तक्रमर्कक्षीरमर्कतूल कटुकमत्स्यविलङ्गाश्च, एष पक्षास्थितो योगः श्वेतीकरणम् ॥१०॥ समुद्रमण्डूकीशङ्खसुधाकदलीक्षारतक्रयोगः श्वेतीकरणम् ॥ ११ ॥

सफेद बकरेके पेशाबमें, सात रात्रि पर्यन्त सफेद सरसोंको रक्खा जावे, तदनन्तर पन्द्रह दिनतक, उस सरसोंको मठा, अर्कक्षीर (आकका दूध), आक, पारसपीपल, पटोल (कड़वा परवल), मत्स्य, तथा वायविडंग, इन सब चीजोंके साथ मिलाकर रक्खाजावे, इसके बाद तैयार कियाहुआ यह

योग भी सफ़ेद करनेवाला होता है ॥ १० ॥ समुद्रकी मेंडकी, शंख, सुधा (=मूर्वा=मरोरफली), कदली (केला), क्षार (जवाखार) और मठा (छाछ), इन सब चीजोंका योग भी सफ़ेद करनेवाला होता है ॥ ११ ॥

कदल्यवल्गुजक्षाररसयुक्ताः सुरायुक्तास्तक्रार्कतूलस्नुहिलवणं धान्याम्लं च पक्षस्थितो योगः श्वेतीकरणम् ॥ १२ ॥ कटुकालाबौ वल्लीगते नगरमर्धमासस्थितं गौरसर्षपपिष्टं रोम्णां श्वेतीकरणम् ॥ १३ ॥

केली, बावची जवाखार, पारद, और कोई कठिन खट्टी चीज (फल मूल आदि), इन सब वस्तुओंको शराबमें भिगो दियाजावे; तदनन्तर छाछ, आक, पारसपीपल, सेंढ, नमक और कांजीको उसमें मिलाकर पन्द्रह दिनतक रक्खा रहने दियाजावे। इसतरह बनाया हुआ यह योग भी सफ़ेद करनेवाला होता है ॥ १२ ॥ बेलमें लगीहुई कड़वीतूंबीमें, पन्द्रह दिनतक सोंठको रखदियाजावे, बादमें निकालकर सफ़ेद सरसों (बंगा सरसों) के साथ उसे पीसलिया जावे, यहभी श्वेतीकरण योग होता है ॥ १३ ॥

अर्कतूलोऽर्जुने कीटः श्वेता च गृहगोलिका ।
एतेन पिष्टेनाभ्यक्ताः केशाः स्युः शङ्खपाण्डराः ॥ १४ ॥

आक, पारसपीपल, अर्जुनवृक्षपर उत्पन्न होनेवाला एक प्रकारका कीड़ा, और सफ़ेद छपकली, इन सब वस्तुओंको पीसकर यदि बालोंपर लगाया जावे, तो बाल, शंखके समान सफ़ेद होजाते हैं ॥ १४ ॥

गोमयेन तिन्दुकारिष्टकल्केन वा मर्दिताङ्गस्य भल्लातकरसानुलिप्तस्य मासिकः कुष्ठयोगः ॥ १५ ॥ कृष्णसर्पमुखे गृहगोलिकामुखे वा सप्तरात्रोषिता गुञ्जाः कुष्ठयोगः ॥ १६ ॥ शुकपित्ताण्डरसाभ्यङ्गः कुष्ठयोगः ॥ १७ ॥ कुष्ठस्य प्रियालकल्ककषायः प्रतीकारः १८ ॥

गोबर अथवा तिन्दुक (टेंभुरना=छोटा तेंदुआ) और नीमके कल्कसे अंगोंका मर्दन करनेके बाद भिलावा और पारेको मिलाकर देहपर लगालेने वाले पुरुषको एक महीने तक कोढ़ होजाता है ॥ १५ ॥ काले सांपके मुंहमें अथवा छपकलीके मुंहमें, सात रात तक रक्खीहुई चोंटली (रत्ती) भी कुष्ठयोग होता है; अर्थात् इसको फिर देहपर लगानेसे कोढ़ होजाता है ॥ १६ ॥ तोतेके पित्त तथा अण्डेके रससे, शरीरपर मालिश करनेपर कुष्ठ होजाता है

॥ १७ ॥ चिरोंजीके कल्कसे बनाया हुआ काढ़ा, कुष्ठका प्रतीकार होता है ॥ १८ ॥

कुक्कुटकोशातकीशतावरीमूलयुक्तमाहारयमाणो मासेन गौरो भवति ॥ १९ ॥ वटकषायस्नातः सहचरकल्कादिग्धः कृष्णो भवति ॥ २० ॥ शकुनकङ्गुतैलयुक्ता हरितालमनःशिलाः श्यामीकरणम् ॥२१॥ खद्योतचूर्णं सर्षपतैलयुक्तं रात्रौ ज्वलति ॥२२॥

मुर्गी, तथा कड़वी तोरई या परवल और शतावरीकी जड़को खाता हुआ पुरुष, एक महीनेमें गौरवर्ण होजाता है ॥ १९ ॥ बरगद (बड़) के काढ़ेसे नहायाहुआ, तथा पियावांसके कल्ककी मालिश करके, पुरुष काला होजाता है । (इस सूत्रके 'सहचर' शब्दकी व्याख्या करतेहुए, गणपति शास्त्रीने 'अव्यथा' और 'कुरवक' को पर्य्यायवाची लिखदिया है । परन्तु अव्यथा हरड़को कहते हैं, और 'कुरवक' कुरंटे या पियावांसेका नाम है ॥२०॥ गिद्ध (पक्षी) और कांगनीके तेलसे युक्त हड़ताल और मनसिल भी 'श्यामीकरण' योग है । अर्थात् हड़ताल और मनसिलको गिद्ध तथा कांगनीके तेलमें मिलाकर लगानेसे, पुरुष काला होजाता है ॥ २१ ॥ खद्योत (जुगनू=पटबीजना) का चूर्ण, सरसोंके तेलके साथ मिलादेनेपर, रातमें जलने लगता है ॥ २२ ॥

खद्योतगण्डूपदचूर्णं समुद्रजन्तूनां भृङ्गकपालानां खदिरकर्णिकाराणां पुष्पचूर्णं वा शकुनकङ्गुतैलयुक्तं तेजनचूर्णम् पारिभद्रकत्वङ्मषी मण्डूकवसया युक्ता गात्रप्रज्वालनमग्निना ॥ २३ ॥

जुगनू और गेंडुए (यह लम्बा २ कीड़ा वर्षा ऋतुमें होता है) का चूर्ण, समुद्रके इसीतरहके छोटे २ जानवरोंका चूर्ण, भृङ्ग (मस्तकचूड) नामक पक्षीके सिरकी हड्डियोंका चूर्ण, खैर और कनेरके फूलोंका चूर्ण गिद्ध (पक्षी) और कांगनीके तेलसे युक्त बांसका चूर्ण, मेंडककी चर्बीसे युक्त नीमकी छालकी स्याही, इन सब वस्तुओंमें से प्रत्येक, अग्निके द्वारा शरीरके चमकाने या जलानेके समय काम आती है । अर्थात् इन औषधोंको देहपर मलकर, देहमें बिना ही किसी पीड़ाके अग्नि प्रज्वालन किया जासकता है ॥ २३ ॥

पारिभद्रकत्वग्वज्रकदलीतिलकल्कप्रदिग्धं शरीरमग्निना ज्वलति ॥२४॥ पीलुत्वङ्मषीमयः पिण्डो हस्ते ज्वलति ॥२५॥ मण्डूकवसादिग्धोऽग्निना ज्वलति ॥ २६ ॥ तेन प्रदिग्धमङ्गं

कुशाम्रफलतैलसिक्तं समुद्रमण्डूकीफेनकसर्जरसचूर्णयुक्तं वा ज्वलति ॥ २७ ॥

नीमकी छाल, थोहर, कदली और तिलके कल्कसे लिपटाहुआ शरीर अग्निके संसर्गसे जलने लगता है। अर्थात् बिना ही किसी कष्टके अग्निकी तरह चमकने लगता है ॥ २४ ॥ पीलु वृक्षकी छालकी स्याहीका बनाहुआ गोला, बिना ही अग्नि संसर्गके, हाथमें जलने लगता है ॥ २५ ॥ मेंडककी चर्बीसे सनाहुआ वही गोला, अग्निके संसर्गसे जलने लगता है ॥ २६ ॥ उस गोलेसे सनाहुआ अंग, कुशके तेल और आम्रफल (आम) के तैलसे गीला कियाहुआ, अथवा समुद्रकी मेंडकी, समुद्रझाग, और राल, इनके चूर्णसे युक्त हुआ २, अग्निका संसर्ग होनेपर जलने लगता है ॥ २७ ॥

मण्डूकवसासिद्धेन पयसा कुलीरादीनां वसया समभागं तैलं सिद्धमभ्यङ्गो गात्राणामग्निप्रज्वालनम् ॥ २८ ॥ मण्डूकवसादिग्धोऽग्निना ज्वलति ॥ २९ ॥

मेंडककी चर्बीके साथ पकेहुए दूध, तथा केंकड़े आदिकी चर्बीसे, समभागमें बराबर २ मिलाहुआ तेल (अर्थात् उस दूध और चर्बीसे तुल्य परिमाणमें मिलाहुआ तेल), शरीरपर मालिश कियाहुआ, अग्निके समान प्रज्वलित करदेता है। अर्थात् इस तेलकी मालिश करलेनेसे देह अग्निके समान दीप्त होजाती है ॥ २८ ॥ मेंडककी चर्बीसे सनाहुआ पुरुष, अग्निके संसर्गसे जलने लगता है ॥ २९ ॥

वेणुमूलशैवललिप्तमङ्गं मण्डूकवसादिग्धमग्निना ज्वलति ॥३०॥ पारिभद्रकप्रतिबलावञ्जुलवज्रकदलीमूलकल्केन मण्डूकवसादिग्धेन तैलेनाभ्यक्तपादोऽङ्गारेषु गच्छति ॥ ३१ ॥

बांसकी जड़ और सिवालसे लिप्त अंग, तथा मेंडककी चर्बीसे युक्त अंगवाला पुरुष अग्निके संसर्गसे जलने लगता है ॥ ३० ॥ नीम, खरैंटी, वञ्जुल (तिवस या तेंदुआ, बेंत, अथवा अशोक; वञ्जुल शब्दके ये तीनों अर्थ हैं), थोहर और कदली, इन सब वृक्षोंकी जड़का कल्क बनाकर, उसमें मेंडककी चर्बीके साथ तेल मिलाकर, उस तैलको पैरोंमें मालिश करके पुरुष, अंगारोंके ऊपर चल सकता है ॥ ३१ ॥

उपोदका प्रतिबला वञ्जुलः पारिभद्रकः।
एतेषां मूलकल्केन मण्डूकवसया सह ॥ ३२ ॥

साधयेत्तैलमेतेन पादावभ्यज्य निर्मलौ ।
अङ्गारराशौ विचरेद्यथा कुसुमसंचये ॥ ३३ ॥

पोदीना, खरैटी, वञ्जुल (तेंदुआ, बेंत अथवा अशोक), नीम, इन सब वृक्षोंकी जड़का कल्क बनाकर, तथा इनके साथ मेंडककी चर्बी मिलाकर, इन सब चीजोंमें तेलको सिद्ध किया जावे, अर्थात् इन वस्तुओंमें तेलको मिलाकर पकाया जावे निर्मल धुले हुए पैरोंको इस तेलसे मालिश करके पुरुष अंगारोंके ढेरपर उसी तरह घूम सकता है, जैसे कि फूलोंके ढेरपर ॥३२-३३॥

हंसक्रौञ्चमयूराणामन्येषां वा महाशकुनीनामुदकप्लवानां पुच्छेषु बद्धा नलदीपिका रात्रावुल्कादर्शनम् ॥ ३४ ॥ वैद्युतं भस्माग्निशमनम् ॥ ३५ ॥

हंस, क्रौञ्च (कुंज), और मयूरों (मोरोंकी), अथवा अन्य जलमें घूमने वाले बतख आदि बड़े २ पक्षियोंकी पूंछोंमें बांधी हुई नलदीपिका (नरसलका नाम 'नल' है, उस पर लगाई हुई छोटीसी, दीपिका=बत्ती) रातमें उल्काके समान दीखती है । अर्थात् रातमें दूरसे यह मनुष्योंको भयभीत कर देती है; ये समझते हैं, कि कोई भयंकर राक्षस आदिही इस कृत्यको कर रहे हैं (एक लकड़ीके सिरेमें आग लगाकर, उस लकड़ीको इधर उधर घुमाने या हिलानेसे आगकी जो शकल होजाती है; उसीको अलात या उल्का कहते हैं) ॥ ३४ ॥ बिजलीमें जली हुई लकड़ीकी राख, अग्निको शान्त करने वाली होती है ॥ ३५ ॥

स्त्रीपुष्पपायिता माषा व्रजकुलीमूलमण्डूकवसामिश्रं चुल्ल्यां दीप्तायामपाचनम् ॥ ३६ ॥ चुल्लीशोधनं प्रतीकारः ॥ ३७ ॥

रजस्वलाके रजसे मिले हुए उड़द; और मेंडककी चर्बीमें मिली हुई, गोष्ठ (गौओंके रहनेकी जगह) में उत्पन्न होने वाली बड़ी कटेलीकी जड़, इस हालतमें ये दोनों चीजें, चूल्हेके अच्छी तरह जलने परभी नहीं पकतीं । अर्थात् इन चीजोंके नीचे चाहे जितनी आग लगाई जाय, इनमें पाक नहीं होता ॥ ३६ ॥ चूल्हेसे उतारकर इनको साफ करदेनाही, इस पाकप्रतिबन्धका प्रतीकार है ॥ ३७ ॥

पीलुमयो मणिरग्निगर्भः सुवर्चलामूलग्रन्थिः सूत्रग्रन्थिर्वा पिचुपरिवेष्टितो मुखादग्निधूमोत्सर्गः ॥ ३८ ॥ कुशाम्रफलतैल-सिक्तोऽग्निर्वर्षप्रवातेषु ज्वलति ॥ ३९ ॥

पालुकी लकड़ीसे बनाया हुआ मटका अग्निगर्भ होता है; (अर्थात् इसमें अग्निका अंश अधिक होनेसे, बाहरकी थोड़ी आगका संसर्ग भी, इसपर तत्कालही प्रभाव करदेता है !), अलसीकी जड़की गांठ, अथवा अलसीके सूतोंकी गांठ, रुईसे लिपटा हुई, मुंहसे आग और धुआं छोड़नेका साधन होती है ॥ ३८ ॥ कुश (एक प्रकारकी घास, जिसके आसन आदि बनाये जाते हैं) आम्रफल (आम), और तेलके सहारेसे जलाई हुई आग, आंधी और वर्षामें भी जलती रहती है ॥ ३९ ॥

समुद्रफेनकस्तैलयुक्तोऽम्भसि प्लवमानो ज्वलति ॥ ४० ॥ प्लवङ्गमानामास्थिषु कल्माषवेणुना निर्मथितोऽग्निर्नोदकेन शाम्यत्युदकेन च ज्वलति ॥ ४१ ॥

समुद्रझाग, तेलसे युक्त हुआ २, पानीमें तैरता हुआ भी जलता रहता है ॥४०॥ बन्दरकी हड्डियोंमें, विचित्र वर्णके बांससे निर्मथन करके उत्पन्नकी हुई अग्नि, जलसे शान्त नहीं होती, प्रत्युत जलसे और भी जलने लगती है ॥४१॥

शस्त्रहतस्य शूलप्रोतस्य वा पुरुषस्य वामपार्श्वपर्शुकास्थिषु कल्माषवेणुना निर्मथितोऽग्निर्यत्र त्रिरपसव्यं गच्छति न चात्रान्योऽग्निर्ज्वलति ॥ ४२ ॥

हथियार (तलवार भाले आदि) से मारेहुए, या जिसके देहमें शूली आदिका प्रवेश कियागया हो, ऐसे पुरुषके, बाईं ओरकी पसलीकी हड्डियोंमें विचित्र वर्णके बांससे निर्मथन करके निकाली हुई अग्नि; अथवा स्त्री या पुरुषकी हड्डियोंमें मनुष्यकी पसलीसे निर्मथन करके पैदा कीहुई अग्नि; जहांपर तीनबार बाईं ओरको घुमादी जाती है, वहांपर दूसरी अग्निका प्रभाव नहीं होसकता; अर्थात् और कोई आग उस जगह नहीं लग सकती । (इसका उपयोग 'आत्मरक्षितक' प्रकरणमें बताया गया है । देखो-अधि० १, अध्या० २१) ॥ ४२ ॥

चुचुन्दरी खञ्जरीटः खारकीटश्च पिष्यते ।
अश्वमूत्रेण संसृष्टा निगलानां तु भञ्जनम् ॥ ४३ ॥

छछूंदर, खञ्जन (कबूतरकी बराबर, नरमा कपासकेसे रंगका एक पक्षी. प्रायः जलके किनारे रम्य जंगलोंमें रहता है), और खारकीट (ऊसर भूमिमें उत्पन्न होने वाला एक प्रकारका कीड़ा), इनको घोड़ेके पेशाबके साथ अलहदा २ पीसलिया जावे, फिर इनको मिला लिया जावे, इनका यह मिश्रण घोड़े या मनुष्य आदिको बांधने वाली संकलों को तोड़ देता है ॥ ४३ ॥

अयस्कान्तो वा पाषाणः ॥ ४४ ॥

अथवा अयस्कान्त नामक पाषाण (मणि) भी संकलोंका तोड़ने वाला होता है ॥ ४४ ॥

कुलीराण्डदर्दुरखारकीटवसाप्रदेहेन द्विगुणो दारकगर्भः कङ्कभासपार्श्वोत्पलोदकपिष्टश्चतुष्पदाद्विपदानां पादलेपः, उलूकगृध्रवसाभ्यामुष्ट्रचर्मोपानहावभ्यज्य वटपत्रैः प्रतिच्छाद्य पञ्चाशद्योजनान्यश्रान्तो गच्छति ॥ ४५ ॥

केकड़े के अण्ड और मेडक तथा खारकीटकी चर्बी से बढ़ाए हुए, अच्छी तरह घनताको प्राप्त हुए २ सूकरगर्भको, कंक (इसी नामसे प्रसिद्ध एक पक्षी), और गिद्धकी पसलियों तथा कमलके जलसे पीसकर, चौपायों या दुपायोंके पैरोंसे उसका लेप कर लिया जावे; और उल्लू तथा गिद्धकी चर्बीसे, ऊंटके चमड़ेकी बनी हुई जूतियोंको चुपड़कर, तथा बड़के पत्तेसे ढककर, उन जूतियोंको पहनकर, पैरोंमें उपर्युक्त लेप किया हुआ पुरुष, पचास योजन तक (एक योजन=चारकोस) बिना थकावट के चला जाता है ॥ ४५ ॥

श्येनकङ्ककाकगृध्रहंसक्रौञ्चवीचिरल्लानां मज्जानो रेतांसि वा योजनशताय ॥ ४६ ॥ सिंहव्याघ्रद्वीपिकाकोलूकानां मज्जानो रेतांसि वा सार्ववर्णिकानि गर्भपतनान्युष्ट्रिकायामभिषूय श्मशाने प्रेतशिशून्वा तत्समुत्थितं मेदो योजनशताय ॥ ४७ ॥

बाज, कंक, कौआ, गिद्ध, हंस, कुंज, बीचिरल्ल (एक प्राणी, जिसकी पीठ पर लहरों की तरह कम्बल की सी रेखाएं होती हैं, इन प्राणियोंकी चर्बी और रेतस (वीर्य) को मिलाकर, पूर्ववत् पैरों में लेप किया जावे, तथा जूतियों पर चुपड़ा जावे, इससे, पुरुष सौ योजन तक बिना थकावट के जा सकता है ॥ ४६ ॥ सिंह, बघेरा, गेंडा, कौआ और उल्लू, इनकी चर्बी और रेतस्; अथवा सब ही वर्णोंके गिरे हुए गर्भोंको मिट्टीके किसी पात्रमें अभिषव करके, अथवा मरे हुए छोटे बच्चोंको श्मशान भूमिमें ही अभिषव करके, उनसे उत्पन्न हुआ २ अर्थात् उनके शरीरसे निकाला हुआ मेदस् (शरीरका मज्जा नामक धातु), इन दोनों ही वस्तुओंको पैर आदिमें लेप करके चलने वाला पुरुष, बिना थकावट के सौ योजन तक चला जा सकता है। (४५–४७ इन तीन सूत्रोंका अर्थ बहुत अस्पष्ट है। मूल पाठ में भी भिन्न २

पुस्तकों में बहुत भेद है । इसलिये और भी अर्थका ठीक निश्चय नहीं होता । ४५ वें सूत्रमें, शामशास्त्री आदि की सम्पादित पुस्तकों में ‘ नारकगर्भः ’ ऐसा पाठ है, परन्तु गणपति शास्त्री की सम्पादित पुस्तकमें ‘ दारकगर्भः ’ पाठ है । शामशास्त्री तो यहां पर प्रायः विचारणीय सब ही शब्दोंके आगे यह (?) सन्देहद्योतक चिन्ह लगा गये हैं । आपने अपनी सम्पादित मूल पुस्तक में 'नारकगर्भः' पाठ रखकर भी इंग्लिश अनुवादमें ‘ नारक ’ शब्दके आगे संदेह चिन्ह लगाकर, आगे A Donkey (=गधा) लिखा हुआ है, न मालूम यह अर्थ आप किस शब्द का कररहे हैं, मालूम ऐसा होता है, कि कहीं आप ‘ गर्भ ’ का अर्थ ‘ गर्दभ ’ समझ रहे हैं । इसी तरह सूत्रोंकी पूर्वापरके साथ योजना भी बहुत उलट पुलट की है । ४७ वें सूत्र में तो गर्भवती ऊंटणीको भूनकर, बहुत बड़ी अर्थ सम्बन्धी गड़बड़ की है । उस जगह का पाठ आपकी मूल पुस्तक में इस प्रकार है—‘ सा[illegible]पर्णिकानि गर्भयानान्युष्ट्रिकायामभिष्टूय’ । इन वाक्यों में से यह अर्थ न मालूम आपने किस दिव्यशैलीके आधार पर निकाला है इसी सूत्रके सिंहव्याघ्र आदि लम्बेचौड़े पदका अर्थ करना आप बिलकुल ही भूल गये हैं । गणपति शास्त्रीके भी अर्थ कुछ निश्चयात्मक प्रतीत नहीं होते । ४५ वें सूत्रमें ‘ उत्पल ’ का अर्थ ‘ मत्स्य ’ किया है, फिर उसके आगे के ‘ उदक ’ शब्दका समन्वय न मालूम क्या होगा । ४७ वें सूत्रमें जहां शामशास्त्रीने ऊंटनी भूनी है, वहांका मूलपाठ गणपति शास्त्री का पुस्तक में इस प्रकार है:—‘सार्वत्रिकाणि गर्भपतनान्युष्ट्रिकायामभिषूय’ । इसने भी इसी पाठके अनुसार सूत्र का अर्थ कर दिया है, पर आर्थिक वास्तविकता का कुछ निश्चय नहीं हुआ । इसी तरह ४५वें सूत्रमें ‘ दारकगर्भः ’ का अर्थ गणपति शास्त्री ने ‘ सूकरगर्भः ’ कर दिया है, पर इससे भी अर्थ स्पष्ट नहीं खुलता ; तात्पर्य यह है, कि इन तीनों ही सूत्रों में, व्याख्याकारों और मूल सम्पादकोंके अनेक स्खलन दीख रहे हैं । विचारशील विद्वान् पाठक, स्वयं ही गोता लगाकर इसमें से कुछ रहस्य ढूंढने का यत्न करें) ॥ ४७ ॥

अनिष्टैरद्भुतोत्पातैः परस्योद्वेगमाचरेत् ।
आराज्यायेति निर्वादः समानः कोप उच्यते ॥ ४८ ॥

इत्यौपनिषदिके चतुर्दशेऽधिकरणे प्रलम्भने अद्भुतोत्पादनं द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

आदितः सप्तचत्वारिंशदुत्तरशतः ॥ १४७ ॥

इसप्रकार आश्चर्यचकित करने वाले इन अद्भुत, तथा अनिष्टकारक उत्पातों से विजिगीषु, शत्रुको अच्छीतरह बेचैन करे । अर्थात् उसको खूब

भयभीत बनावे, जिससे उसके प्रदेशमें अराजकता फैल जावे। इसप्रकार का व्यापार, अनिष्टकारक तथा कलङ्कका हेतु होनेपर भी, परस्पर राजाओं के द्वेषभाव के बढ़नेपर करना ही पड़ता है; इसीलिये इसका यहांपर निरूपण कर दिया गया है ॥ ४७ ॥

औपनिषदिक चतुर्दश अधिकरण में दूसरा अध्याय समाप्त।

तीसरा अध्याय।

१७८ प्रकरण।

प्रलम्भनमें भैषज्यमन्त्रयोग।

{ शत्रु को धोखा देने के लिये, इस प्रकरण में भैषज्य और मन्त्रों के योग का निरूपण किया जायगा ॥

मार्जारोष्ट्रवृकवराहश्वाविद्वागुलीनप्तृकाकोलूकानामन्येषां वा निशाचराणां सत्त्वानामेकस्य द्वयोर्बहूनां वा दक्षिणानि वामानि चाक्षीणि गृहीत्वा द्विधा चूर्णं कारयेत् ॥१॥ ततो दक्षिणं वामेन वामं दक्षिणेन समभ्यज्य रात्रौ तमसि च पश्यति ॥२॥

पहिले भैषज्ययोग का कथन किया जाता है:—बिलाव, ऊंट, भेड़िया, सूअर, सेह, बगली, नप्ता (एक प्रकार का पक्षी) कौआ और उल्लू, अथवा रात्रिमें विचारण करने वाले अन्य प्राणियों में से, एक दो या बहुतों की दाईं बाईं आंखों को लेकर, उनका पृथक् २ दो जगह चूर्ण बना लेवे ॥ १ ॥ तदनन्तर बाईं आंख के चूर्णसे दाहिनी आंखको आंजकर, और दाईं आंखों के चूर्णसे बाईं आंखको आंजकर, रातमें अन्धकारके समय भी पुरुष, प्रत्येक वस्तु को देख सकता है ॥ २ ॥

एकाम्लकं वराहाक्षि खद्योतः कालशारिवा।
एतेनाभ्यक्तनयनो रात्रौ रूपाणि पश्यति ॥ ३ ॥

एक बढल (या बड़हल, यह एक प्रसिद्ध फल, गेरुए से रंगका मीठा होता है), सूअर की आंख, जुगनू, और काला शारिवा (इसी नाम से प्रसिद्ध एक औषधि), इन सब चीजों को मिलाकर आंख में लगाने से पुरुष, रात में भी रूपों को अच्छी तरह देख सकता है ॥ ३ ॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्ये शस्त्रहतस्यशूलप्रोतस्य वा पुंसः शिरः-कपाले मृत्तिकायां यवानावास्याविक्षीरेण सेचयेत् ॥ ४ ॥ ततो यवविरूढमालामाबद्धय नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ ५ ॥

तीन रात्रि पर्यन्त उपवास रक्खा हुआ पुरुष, पुष्य नक्षत्रसे युक्त काल में हथियार से मारे हुए, अथवा शूलप्रोत पुरुषके (जिसके शरीर में शूल का प्रवेश किया गया हो, ऐसे) सिर की हड्डी में मट्टी भरके उसमें जौ बोकर, उन्हें भेड़के दूध से सींचे ॥ ४ ॥ तदनन्तर उन उपजे हुए जौओं की माला को गले में बांधकर, छाया और रूप से रहित होकर विचरण करता है। अर्थात् उसकी छाया और रूप किसी पुरुष को नहीं दीखते, तथा वह सबको देख लेता है ॥ ५ ॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण श्वमार्जारोलूकवागुलीनां दक्षिणानि वामानि चाक्षीणि द्विधा चूर्णं कारयेत् ॥ ६ ॥ ततो यथास्वमभ्यक्ताक्षो नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ ७ ॥

अथवा तीन रात्रि पर्यन्त उपवास रखता हुआ पुरुष, पुष्य नक्षत्रसे युक्त कालमें, कुत्ता बिलाव, उल्लू और बागुली (एक प्रकारका पक्षी संभवतः बगली का यह नाम हो). इन चारों जानवरोंको दाईं और बाईं आंखोंको पृथक् २ दो जगह चूर्ण कराये ॥ ६ ॥ तदनन्तर दाईं आंख के चूर्ण को दाईं आंख, और बाईं आंखके चूर्णको बाईं आंख में लगाकर, छाया और रूपसे रहित होकर विचरण करता है ॥ ७ ॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण पुरुषघातिनः काण्डकस्य शलाकामञ्जनीं च कारयेत् ॥ ८ ॥ ततोऽन्यतमेनाक्षिचूर्णेनाभ्यक्ताक्षो नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ ९ ॥

अथवा तीन रात्रि पर्यन्त उपवास रखता हुआ पुरुष, पुष्य नक्षत्रसे युक्त कालमें, पुरुषको मारने वाले बाणके लोहेकी एक सुरमा डालनेकी सलाई और एक सुरमादानी बनवावे ॥ ८ ॥ तदनन्तर कुत्ता, बिलाव, उल्लू और बागुली, इन चारोंमेंसे किसी एकको दाईं बाईं आंखोंका पृथक् २ चूर्ण बनाकर उसी सलाई और सुरमेदानीके द्वारा उसे आंखोंमें आंजकर वह पुरुष, छाया और रूपसे रहित होकर विचरण करता है ॥ ९ ॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण कालायसीमञ्जनीं शलाकां च कारयेत् ॥ १० ॥ ततो निशाचराणां सत्त्वानामन्यतमस्य शिरः

कपालमञ्जनेन पूरयित्वा मृतायाः स्त्रिया योनौ प्रवेश्य दाहयेत् ॥११॥ तदञ्जनं पुष्येणोद्धृत्य तस्यामञ्जन्यां निदध्यात् ॥१२॥ तेनाभ्यक्ताक्षो नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ १३ ॥

अथवा तीन रात्रिपर्यन्त उपवास रखता हुआ पुरुष, पुष्यनक्षत्रसे युक्त कालमें, फौलाद (लोहे) की एक सुरमादानी और सलाई बनवावे ॥ १० ॥ तदनन्तर, रातमें घूमने वाले जानवरोंमेंसे किसी एक की खोपड़ीको अञ्जनसे भरकर, उसे मरीहुई स्त्री की योनिमें प्रविष्ट करके जला देवे ॥ ११ ॥ बादमें पुष्यनक्षत्रसे युक्तकालमें उस अञ्जनको वहांसे उठावे, और उस लोहेकी सुरमेदानीमें रख देवे ॥ १२ ॥ उस अञ्जनको, उसी पूर्वोक्त सलाईसे आंखोंमें आंजकर पुरुष, छाया और रूपसे रहित होकर सर्वत्र विचरण करता है ॥१३॥

यत्र ब्राह्मणमाहिताग्निं दग्धं दह्यमानं वा पश्येत्तत्र त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण स्वयंमृतस्य वाससा प्रसेवं कृत्वा चिताभस्मना पूरयित्वा तमाबध्य नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ १४ ॥

अथवा जहांपर आहिताग्नि (अग्निहोत्री) ब्राह्मणको जला हुआ या जलता हुआ देखे, वहांपर तीन रात्रिपर्यन्त उपवास रखता हुआ पुरुष, पुष्यनक्षत्रसे युक्तकालमें, स्वयं मरेहुए किसी मनुष्यके वस्त्रसे एक पोटली (थैली-सी) बनाकर, उसको उसी मनुष्यकी चिताकी राखसे भरलेवे, और उस पोटलीको अपने शरीरमें किसी जगह बांधलेवे; ऐसा करनेसे वह पुरुष, छाया और रूपसे रहित होकर सर्वत्र विचरण करता है ॥ १४ ॥

ब्राह्मणस्य प्रेतकार्ये या गौः मार्यते तस्या अस्थिमज्जाचूर्णपूर्णाहिभस्त्रा पशूनामन्तर्धानम् ॥ १५ ॥ सर्पदष्टस्य भस्मना पूर्णा प्रचलाकभस्त्रा मृगाणामन्तर्धानम् ॥ १६ ॥

ब्राह्मणके प्रेतकार्य अर्थात् श्राद्धमें जो गाय मारी जाती है, उसकी हड्डी और मज्जाके चूर्णसे, सांपकी कांचलीको भर दिया जावे; यह पशुओंके अन्तर्धान करनेका योग है। अर्थात् उस चूर्णसे भरी हुई सांपकी कांचलीका संसर्ग होनेपर पशु, किसीको भी नहीं दीखता (इस सूत्रमें 'या गौः मार्यते तस्या अस्थि' के स्थानपर किसी पुस्तकमें 'या गौ मार्यते तस्यास्थि' ऐसा पुल्लिङ्ग पाठ भी है) ॥ १५ ॥ सर्पसे काटेहुए किसी जानवरकी राखसे, मोरपंखकी बनाई हुई थैलीको भरदिया जावे, यह योग सभी जंगली पशुओंके अन्तर्धानके लिये है ॥ १६ ॥

उलूकवागुलीपुच्छपुरीषजान्वस्थिचूर्णपूर्णाहिभस्त्रा पक्षिणामन्तर्धानम् ॥ १७ ॥ इत्यष्टावन्तर्धानयोगाः ॥ १८ ॥

उल्लू और वागुलीकी पूंछ, विष्टा, जानु (घोंटू, टांग) और हड्डियोंके चूर्णसे, सांपकी कैंचलीको भर दिया जावे; यह योग सभी पक्षियोंके अन्तर्धानके लिये होता है। अर्थात् उस चूर्णसे भरीहुई सांपकी कैंचलीका संसर्ग होनेपर, वह पक्षी किसीको भी नहीं दीखता ॥ १७ ॥ यहांतक अन्तर्धानके लिये आठ योगोंका निरूपण कर दिया गया ॥ १८ ॥

बलिं वैरोचनं वन्दे शतमायं च शम्बरम् ।
भण्डीरपाकं नरकं निकुम्भं कुम्भमेव च ॥ १९ ॥
देवलं नारदं वन्दे वन्दे सावर्णिगालवम् ।
एतेषामनुयोगेन कृतं ते स्वापनं महत् ॥ २० ॥

यथा स्वपन्त्यजगराः स्वपन्त्यपि चमूखलाः ।
तथा स्वपन्तु पुरुषा ये च ग्रामे कुतूहलाः ॥ २१ ॥

भण्डकानां सहस्रेण रथनेमिशतेन च ।
इमं गृहं प्रवेक्ष्यामि तूष्णीमासन्तु भाण्डकाः ॥ २२ ॥

नमस्कृत्वा च मनवे बध्वा शुनकफेलकाः ।
ये देवा देवलोकेषु मानुषेषु च ब्राह्मणाः ॥ २३ ॥

अद्ध्ययनपारगाः सिद्धा ये च कैलासतापसाः ।
एतेभ्यः सर्वसिद्धेभ्यः कृतं ते स्वापनं महत् ॥ २४ ॥

अतिगच्छति च मय्यपगच्छन्तु संहताः ॥ २५ ॥
अलिते पलिते मनवे स्वाहा ॥ २६ ॥

अब इसके आगे सबको सुला देनेके चार योगोंका निरूपण किया जायगा; इन योगोंमें मन्त्रोंका भी प्रयोग करना पड़ता है; १९ से २६ संख्या तक आठ मन्त्र यहां बतलाये गये हैं, जिनमें पहिला मन्त्र 'बलिं वैरोचनं वन्दे' से प्रारम्भ होता है; और आठवां मन्त्र 'अलिते पलिते मनवे स्वाहा' पर समाप्त होजाता है। इन मन्त्रोंके अर्थ बिल्कुल स्पष्ट हैं, और इनका यहां उपयोग भी केवल पाठ मात्रमेंही पर्यवसित होजाता है; ये आठों मन्त्र पहिले दो योगोंके लिये साधारण हैं, अर्थात् निम्न प्रतिपादित दोनों योगोंमें इन्हीं मन्त्रोंका उप-

योग होना चाहिये। २४वें श्लोकमें 'एतेभ्यः' के स्थानपर 'एते च' और २६ वें मन्त्रमें 'पलिते' के स्थानपर 'वलिते' पाठान्तर है ॥ १९—२६ ॥

एतस्य प्रयोगः— ॥ २७ ॥ त्रिरात्रोपोषितः कृष्णचतुर्दश्यां पुष्ययोगिन्यां श्वपाकीहस्तादिलखावलेखनं क्रीणीयात् ॥ २८ ॥ तन्माषैः सह कुण्डोलिकायां कृत्वा प्रकीर्णे आदहने निखानयेत् ॥ २९ ॥ द्वितीयस्यां चतुर्दश्यामुद्धृत्य कुमार्या पेषयित्वा गुलिकाः कारयेत् ॥ ३० ॥ तत एकां गुलिकामभिमन्त्रयित्वा यत्रैतेन मन्त्रेण क्षिपति तत्सर्वं प्रस्वापयति ॥ ३१ ॥

इस मन्त्र समूहका प्रयोग [illegible] समझना चाहिये ॥ २७ ॥ तीन रात्रियोंतक उपवास रखता हुआ पुरुष, पुष्यनक्षत्रसे युक्त, कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें, किसी चाण्डालीके हाथसे खुरेरा एक टुकड़ा खरीद लेवे ॥ २८ ॥ उसको उड़दके साथ एक छोटीसी पिटारीमें रखकर, खुले विस्तृत श्मशानमें गड्ढा खोदकर वहाँ इसे गाड़ देवे ॥ २९ ॥ दूसरी चतुर्दशीमें (अर्थात् जिस चतुर्दशीमें गाड़ा था, उससे अगली चतुर्दशीमें) वहाँसे इसे उखाड़कर, किसी कुमारीसे इसको पिसवावे, और इसकी गोली बनवा लेवे ॥ ३० ॥ तदनन्तर एक गोलीको मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके, जहाँपर इस उक्त मन्त्र-समूहको पढ़ता हुआ गोलीको फेंक देता है, वहाँ वह पुरुष, सबको सुला देता है। अर्थात् उस स्थानमें विद्यमान सब ही प्राणी, उस मन्त्रयुक्त गोलीके प्रभावसे सो जाते हैं। यहाँतक पहले योगका निरूपण किया गया ॥३१॥

एतेनैव कल्पेन श्वाविधः शल्यकं त्रिकालं त्रिश्वेतमप्रकीर्णे आदहने निखानयेत् ॥ ३२ ॥ द्वितीयस्यां चतुर्दश्यामुद्धृत्य दहनभस्मना सह यत्रैतेन मन्त्रेण क्षिपति तत्सर्वं प्रस्वापयति ॥३३॥

पूर्वोक्त प्रकारके अनुसार ही (अर्थात् नियत समयतक उपवास करके पुष्ययुक्त कृष्ण चतुर्दशीमें), चाण्डालके हाथसे, तीन जगहसे काली और तीन जगहसे सफेद सेहीके काँटे खरीदे; और उन्हें खुले विस्तृत श्मशानके मैदानमें पूर्ववत् ही गड्ढा खोदकर गाड़ देवे ॥ ३२ ॥ उससे अगली चतुर्दशीमें उसे उखाड़कर, श्मशानकी राखके साथ जहाँ उसको मन्त्रपूर्वक फेंक देता है, वहीं सबको सुला देता है। यह दूसरे योगका निरूपण किया गया ॥३३॥

सुवर्णपुष्पीं ब्रह्माणीं ब्रह्माणं च कुशध्वजम् ।
सर्वाश्च देवता वन्दे वन्दे सर्वांश्च तापसान् ॥ ३४ ॥

वशं मे ब्राह्मणा यान्तु भूमिपालाश्च क्षत्रियाः ।
वशं वैश्याश्च शूद्राश्च वशतां यान्तु मे सदा ॥ ३५ ॥
स्वाहा अमिले किमिले वयुजारे प्रयोगे फक्के वयुश्वे विहाले दन्तकटके स्वाहा ॥ ३६ ॥
सुखं स्वपन्तु शुनका ये च ग्रामे कुतूहलाः ।
श्वाविधः शल्यकं चैतत्त्रिश्वेतं ब्रह्मनिर्मितम् ॥ ३७ ॥
प्रसुप्ताः सर्वसिद्धा हि एतत्ते स्वापनं कृतम् ।
यावद्ग्रामस्य सीमान्तः सूर्यस्योद्गमनादिति ॥ ३८ ॥
स्वाहा ॥ ३९ ॥

पहिले और दूसरे योगमें समानही मन्त्रोंका उपयोग होता है। तीसरे योगके लिये मन्त्र भिन्न हैं, वे मन्त्र ३४ वीं संख्यासे लगाकर ३९ वीं संख्या तक समझने चाहियें। इन मन्त्रोंका प्रारम्भ 'सुवर्णपुष्पीं ब्रह्माणीं' और समाप्ति 'सूर्यस्योद्गमनादिति स्वाहा' है। अर्थ सबके स्पष्ट हैं; यहां इनका उपयोग, केवल इनके पाठमात्रसे है। ३६ वीं संख्याके मन्त्रवाक्यमें 'वयुजारे' के स्थानपर 'वसुजारे' या 'वयुचारे'; और 'वयुश्वे' के स्थानपर 'वयुह्वे' या 'घुट्टे' तथा 'कटके' के स्थानपर 'कट्टके' पाठान्तर हैं ॥ ३४-३९ ॥

एतस्य प्रयोगः—॥ ४० ॥ श्वाविधः शल्यकानि त्रिश्वेतानि सप्तरात्रोषितः कृष्णचतुर्दश्यां खादिराभिः समिधाभिरग्निमेतेन मन्त्रेणाष्टशतसंपातं कृत्वा मधुघृताभ्यामभिजुहुयात् ॥ ४१ ॥ तत एकमेतेन मन्त्रेण ग्रामद्वारि गृहद्वारि वा यत्र निखन्यते तत्सर्वं प्रस्वापयति ॥ ४२ ॥

इस मन्त्रसमूहका प्रयोग इसप्रकार समझना चाहिये—॥ ४० ॥ पूर्ववत्‌ही तीन जगहसे सफेद सेहीके कांटेको श्मशान भूमिमें गाड़ देवे। सात रात पर्यन्त उपवास रखता हुआ पुरुष, कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें खैर आदि वृक्षोंकी समिधाओंमें, इस मन्त्रसमूहके द्वारा; शहद और घी मिलाकर उसकी एकसौ आठ वार अग्निमें आहुति देवे ॥ ४१ ॥ इस कृत्यके अनन्तर श्मशानमें गड़े हुए कांटोंको उखाड़कर, उनमेंसे एक कांटा लेकर, इस मन्त्रसमूहके द्वारा उसको जहांकहीं, किसी ग्राम या घरके दरवाजेपर गाड़ देता है, वहींपर सबको सुला देता है। यह तीसरे योगका निरूपण करदिया गया ॥ ४२ ॥

बलिं वैरोचनं वन्दे शतमायं च शम्बरम् ।
निकुम्भं नरकं कुम्भं तन्तुकच्छं महासुरम् ॥ ४३ ॥
अमालवं प्रमीलं च मण्डोलूकं घटोद्गलम् ।
कृष्णकंसोपचारं च पौलोमीं च यशस्विनीम् ॥ ४४ ॥

अभिमन्त्रय्य गृह्णामि सिद्धार्थं शवसारिकाम् ।
जयतु जयति च नमः शलकभूतेभ्यः स्वाहा ॥ ४५ ॥
सुखं स्वपन्तु शुनका ये च ग्रामे कुतूहलाः ॥ ४६ ॥

सुखं स्वपन्तु सिद्धार्था यमर्थं मार्गयामहे ।
यावदस्तमयादुदयो यावदर्थं फलं मम ॥ ४७ ॥
इति स्वाहा ॥ ४८ ॥

अब चौथे योगका निरूपण किया जाता है । इसमें उपयोग करनेके लिये 'बलिं वैरोचनं वन्दे' से लगाकर 'यावदर्थं फलं मम । इति स्वाहा' तक मन्त्र निर्दिष्ट है । इनमें ४४ वीं संख्याके मन्त्रमें 'घटोद्गलम्' के स्थानपर 'घटोबलम्'; ४५ वीं संख्याके मन्त्रमें 'अभिमन्त्रय्य' के स्थानपर 'अभिमन्त्रयित्वा' और 'शवसारिकाम्' के स्थानपर 'शवशारिकाम्' ये पाठान्तर हैं ॥ ४३–४८ ॥

एतस्य प्रयोगः—॥ ४९ ॥ चतुर्भक्तोपवासी कृष्णचतुर्दश्यामसंकीर्णे आदहने बलिं कृत्वा एतेन मन्त्रेण शवशारिकां गृहीत्वा पौत्रीपोट्टलिकां बध्नीयात् ॥ ५० ॥ तन्मध्ये श्वाविधः शल्यकेन विध्वा यत्रैतेन मन्त्रेण निखन्यते तत्सर्वं प्रस्वापयति ॥ ५१ ॥

इस मन्त्रसमूहका प्रयोग, इसप्रकार समझना चाहिये:—॥ ४९ ॥ चार रात्रिपर्यन्त उपवास रखता हुआ पुरुष, कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें, विस्तृत खुले श्मशानके मैदानमें बलि देकर, इस मन्त्रसमूहके द्वारा एक मरी हुई मैनाको लेकर, छोटेसे कपड़ेमें उसकी पोटली बांध लेवे ॥ ५० ॥ उसके बीचमें सेहीका एक कांटा बींधकर, जहांकहीं भी इस मन्त्रसमूहको पढ़ता हुआ, उसे गाड़ देता है, वहांपर सबको सुला देता है । यहांतक सुला देनेके चारों योगोंका, मन्त्रनिर्देशपूर्वक वर्णन करदिया गया ॥ ५१ ॥

उपैमि शरणं चाग्निं दैवतानि दिशो दश ।
अपयान्तु च सर्वाणि वशतां यान्तु मे सदा ॥ ५२ ॥
स्वाहा ॥ ५३ ॥

अब इसके आगे दरवाजा खोलदेनेके योगका निरूपण करते हैं, ५२ और ५३ संख्यामें, उसके मन्त्रका निर्देश किया गया है ॥ ५२–५३ ॥

एतस्य प्रयोगः—॥ ५४ ॥ त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण शर्करा एकविंशतिसंपातं कृत्वा मधुघृताभ्यामभिजुहुयात् ॥ ५५ ॥ ततो गन्धमाल्येन पूजयित्वा निखानयेत् ॥ ५६ ॥ द्वितीयेन पुष्येणोद्धृत्यैकां शर्करामभिमन्त्र्य कवाटमाहन्यात् ॥ ५७ ॥ अभ्यन्तरं चतसृणां शर्कराणां द्वारमपाव्रियते ॥ ५८ ॥

इस मन्त्रका प्रयोग निम्नलिखित रीतिसे समझना चाहिये:— ॥५४॥ तीन रात्रिपर्यन्त उपवासपूर्वक, पुष्यनक्षत्रके योगमें बहुतसी कंकड़ियोंको लेकर (=शर्करा: । इस शब्दका अर्थ गणपति शास्त्रीने खोपड़ी भी किया है), उनके ऊपर अग्निमें, शहद और घीसे इक्कीसवार आहुति डालकर हवन करे ॥ ५५ ॥ तदनन्तर, गन्ध और मालाओंसे उनकी (कंकड़ियों, या खोपड़ियोंकी) पूजा करके, एक गढ़ा खोदकर उसमें उन्हें गाड़देवे ॥ ५६ ॥ जब दूसरीवार पुष्यनक्षत्रका योग होवे, तब उन्हें उखाड़कर, उनमेंसे एक कंकड़ीको, मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके किवाड़पर मारे । अर्थात् मन्त्रपूर्वक उस कंकड़ीको, किवाड़ोंपर आघात करे ॥ ५७ ॥ इस आघातसे चार कंकड़ियोंके बराबर जगहमें, किवाड़में छेद होजायगा । इसीतरह सम्पूर्ण दरवाजेको, चुपचाप किवाड़ तोड़कर खोला जासकता है ॥ ५८ ॥

चतुर्नक्तोपवासी कृष्णचतुर्दश्यां भग्नस्य पुरुषस्यास्थ्ना ऋषभं कारयेत् ॥ ५९ ॥ अभिमन्त्रयेच्चैतेन ॥ ६० ॥ द्विगोयुक्तं गोयानमाहृतं भवति ॥ ६१ ॥ ततः परमाकाशे विक्रामति ॥ ६२ ॥

इसी मन्त्रका एक और भी प्रयोग बताते हैं:—चार रात्रिपर्यन्त उपवासपूर्वक रहता हुआ पुरुष, कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको, टूटे हुए पुरुषकी हड्डीसे एक बैलकी मूर्ति बनवावे । (किसी २ पुस्तकमें 'चतुर्नक्तोपवासी' के स्थानपर 'चतुर्भक्तोपवासी' भी पाठ है। अर्थ दोनोंका एकही है) ॥ ५९ ॥ इस उपर्युक्त मन्त्रके द्वारा, उस मूर्तिका अभिमन्त्रण करे । अर्थात् उपर्युक्त विधिसे होम पूजा आदि करके, उसको सिद्ध करे ॥ ६० ॥ ऐसा करनेसे दो बैलोंसे युक्त

एक बैल गाड़ी वहां उपस्थित होजाती है ॥ ६१ ॥ तदनन्तर उसके द्वारा पुरुष, परम आकाशमें घूम सकता है; और सर्वत्र प्रवेश करसकता है; अर्थात् उसे द्वार आदि, कहीं बाधा नहीं दे सकते ॥ ६२ ॥

सदारविरविः स्वगणइपरिघाति सर्वं भणति ॥ ६३ ॥ चण्डालीकुम्भीतुम्भकटुकसारीघः सनारीभगोऽसि स्वाहा ॥६४॥

अब एक मन्त्र ताला खोलने, और सुला देने, इन दोनों कामोंमें आनेवाला बताते हैं, यह मन्त्र ६३ और ६४ संख्यासे बताया गया है। ६४ वीं संख्याके वाक्यमें 'कुम्भीतुम्भ' के स्थानपर 'कुम्भीत्तम्ब' ऐसा पाठान्तर भी है ॥ ६३-६४ ॥

तालोद्घाटनं प्रस्वापनं च ॥ ६५ ॥

इस मन्त्रका प्रयोग ठीक उसी तरह करना चाहिये, जैसाकि दरवाजा खोलनेके मन्त्रका पहिला प्रयोग बतलाया गया है। इसी रीतिसे इस मन्त्रके द्वारा ताला भी खोला जासकता है, और लोगोंको सुलाया भी जासकता है ॥ ६५ ॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण शस्त्रहतस्य शूलप्रोतस्य वा पुंसः शिरःकपाले मृत्तिकायां तुवरीरा वास्योदकेन सेचयेत् ॥६६॥ जातानां पुष्येणैव गृहीत्वा रज्जुकां वर्तयेत् ॥ ६७ ॥ ततः सज्यानां धनुषां यन्त्राणां च पुरस्ताच्छेदनं ज्याच्छेदनं करोति ॥ ६८ ॥

अब धनुषकी डोरी काट देनेका योग बतलाते हैं—तीन रात्रिपर्यन्त उपवासपूर्वक रहता हुआ पुरुष, पुष्यनक्षत्रसे युक्तकालमें, शस्त्रद्वारा मारे हुए, या शूलप्रोत (जिसके शरीरमें लोहेकी शलाका, या सूली आदिका प्रवेश हुआ हो, ऐसे) पुरुषकी खोपड़ीमें मट्टी भरकर उसमें थोरको बोदेवे और जलसे उसको सींचता रहे ॥ ६६ ॥ जब वह अङ्कुरित होजावे तो, पुष्यनक्षत्रसे युक्तकालमेंही उसे उखाड़कर उसकी रस्सी बटवावे ॥ ६७ ॥ उस रस्सीके द्वारा वह पुरुष, डोरी सहित धनुषोंका, और अन्य यन्त्रोंका भी सामनेसे छेदन करसकता है; तथा, धनुषकी डोरीका भी छेदन करसकता है ॥ ६८ ॥

उदकाहिमस्त्रामुच्छ्वासमृत्तिकया स्त्रियाः पुरुषस्य वा पूरयेत् ॥ ६९ ॥ नासिकाबन्धनं मुखग्रहश्च ॥ ७० ॥ वराहबस्तिमुच्छ्वासमृत्तिकया पूरयित्वा मर्कटस्नायुना बध्नीयात् ॥ ७१ ॥ आनाहकारणम् ॥ ७२ ॥ कृष्णचतुर्दश्यां शस्त्रहताया गोः कपि-

लायाः पित्तेन राजवृक्षमयीममित्रप्रतिमां अञ्ज्यात् ॥ ७३ ॥ अन्धीकरणम् ॥ ७४ ॥

जलके सांपकी केंचुलीको, किसी स्त्री या पुरुषकी चिताके ऊपरकी मिट्टीसे भर देवे ॥ ६९ ॥ यह योग नासिका और मुखका निरोध करनेवाला होता है ॥ ७० ॥ इसीतरह सूअरकी वस्तीमें चिताके ऊपरकी मिट्टी भरकर उसे किसी बन्दरकी नाड़ीसे बांध दिया जावे ॥ ७१ ॥ यह योग मलके रोकनेवाला होता है ॥ ७२ ॥ कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें, हाथियारसे मारी हुई कपिला गायके पित्तसे, अमलतासकी लकड़ीसे बनी हुई शत्रुकी प्रतिमाको आंजे । अर्थात् उस प्रतिमाकी आंखमें, उस पित्तको अंजनकी तरह लगावे ॥ ७३ ॥ शत्रुको अन्धा बना देनेके लिये यह योग है. अर्थात् ऐसा करनेसे शत्रु अन्धा हो जाता है ॥ ७४ ॥

चतुर्भक्तोपवासी कृष्णचतुर्दश्यां बलिं कृत्वा शूलप्रोतस्य पुरुषस्यास्थ्ना कीलकान्कारयेत् ॥ ७५ ॥ एतेषामेकः पुरीषे मूत्रे वा निखात आनाहं करोति ॥ ७६ ॥ पादे ऽस्यासने वा निखातः शोषेण मारयति ॥ ७७ ॥ आपणे क्षेत्रे गृहे वा वृत्तिच्छेदं करोति ॥७८॥ एतेन कल्पेन विद्युद्दग्धस्य वृक्षस्य कीलका व्याख्याताः ॥ ७९ ॥

चार रात्रिपर्यन्त उपवास-पूर्वक रहता हुआ पुरुष, कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें विधिपूर्वक बलि देकर, शूलप्रोत पुरुषकी हड्डीसे बहुतसी कीलें बनवावे ॥ ७५ ॥ इनमेंसे एक कील, जिसके पाखाने या पेशाबमें गाड़ देता है, उसीका पाखाना बन्द हो जाता है ॥ ७६ ॥ यदि किसीके पैर अथवा आसनमें इस कीलको गाड़ देता है, तो वह पुरुष सूख २ कर मर जाता है ॥ ७७ ॥ जिसकी दूकान खेत या घरमें यह कील गाड़ दी जाती है, उसकी आजीविका को नष्ट कर देती है ॥ ७८ ॥ इसीप्रकार बिजलीसे जले हुए वृक्षकी बनाई हुई कीलोंका भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये ॥ ७९ ॥

पुनर्नवमवाचीनं निम्बः काकमधुश्च यः ।
कपिरोम मनुष्यास्थि बध्वा मृतकवाससा ॥ ८० ॥
निखन्येत गृहे यस्य पिष्ट्वा वा यं प्रपाययेत् ।
सपुत्रदारः सधनस्त्रीन्पक्षान्नातिवर्तते ॥ ८१ ॥

दक्खिनकी ओर होनेवाला पुनर्नवा (इसी नामसे प्रसिद्ध एक बूटी) और जिसका फल कौओंके लिए बहुत मीठा लगनेवाला हो, ऐसा नींम ('काकमधु' के स्थानपर कहीं २ 'कामसधु' भी पाठ है), बन्दरके बाल और मनुष्यकी हड्डी; इन सब चीजोंको, मृतक पुरुषके कपड़ेसे बांधकर; ॥ ८० ॥ जिसके घरमें गाड़ दिया जाता है, अथवा जिसको पीसकर पिला दिया जाता है, ('प्रपाययेत्' की जगह किसी पुस्तकमें 'पदं नयेत्' भी पाठ है) तो वह पुरुष, अपने पुत्र स्त्री और धनके सहित, तीन पक्ष अर्थात् डेढ़ महीना समयको भी पार नहीं कर सकता। तात्पर्य यह है, कि इतने समयके अन्दर २, वह अपने पुत्र स्त्री और धन सहित नष्ट हो जाता है ॥ ८१ ॥

पुनर्नवमवाचीनं निम्बः काकमधुश्च यः ।
स्वयंगुप्ता मनुष्यास्थि पदे यस्य निखन्यते ॥ ८२ ॥
द्वारे गृहस्य सेनाया ग्रामस्य नगरस्य वा ।
सपुत्रदारः सधनस्त्रीन्पक्षान्नातिवर्तते ॥ ८३ ॥

दक्खिनकी ओर होनेवाला पुनर्नवा, काकमधु, नींम, धमासा (=स्वयं गुप्ता=कच्छुरा, हिन्दी नाम धमासा है), और मनुष्यकी हड्डी, इन सब चीजों को जिसके स्थानपर गाड़ दिया जाता है ॥ ८२ ॥ अथवा जिस किसी घर, सेना, गांव या नगरके दरवाजेपर गाड़ दिया जाता है, वहांका निवासी पुरुष अपने पुत्र स्त्री और धनके सहित डेढ़ महीनेके अन्दर २ अवश्य नष्ट होजाता है ॥ ८३ ॥

अजमर्कटरोमाणि मार्जारनकुलस्य च ।
ब्राह्मणानां श्वपाकानां काकोलूकस्य चाहरेत् ॥ ८४ ॥
एतेन विष्ठावक्षुण्णा सद्य उत्सादकारिका ।

बकरा, बन्दर, बिलाव, नेवला, ब्राह्मण, चाण्डाल, कौआ और उल्लू, इन सब प्राणियोंके रोम अर्थात् बालोंको इकट्ठा करे ॥ ८४ ॥ फिर जिस पुरुषको मारना हो, उसकी विष्ठाको, इन सब बालोंके साथ पीस लिया जावे, उस पिसी हुई चीजको स्पर्श करते ही वह पुरुष तत्काल मर जाता है।

प्रेतनिर्मालिकाकिण्वं रोमाणि नकुलस्य च ॥ ८५ ॥
वृश्चिकाल्यहिकृत्तिश्च पदे यस्य निखन्यते ।
भवत्यपुरुषः सद्यो यावत्तन्नापनीयते ॥ ८६ ॥

मुर्देपर डाली हुई माला, सुराबीज, और नेवलेके बाल ॥ ८५ ॥

तथा बिच्छू, भौंरा और सांप, इन तीनों जानवरोंकी खाल, इन सब चीजोंको मिलाकर जिसके स्थानपर गाड़ दिया जाता है, वह पुरुष तत्कालही अपुरुष हो जाता है, जबतक कि उन गाड़ी हुई चीजोंको वहांसे हटाया न जावे। (अपुरुष होनेका तात्पर्य यही मालूम होता है, कि वह अपने आपको पुरुषसम्बन्धी कार्योंके करनेमें असमर्थ समझने लगता है) ॥ ८६ ॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण शस्त्रहतस्य शूलप्रोतस्य वा पुंसः शिरःकपाले मृत्तिकायां गुञ्जा आवास्योदकेन च सेचयेत् ॥८७॥ जातानाममावास्यायां पौर्णमास्यां वा पुष्ययोगिन्यां गुञ्जावल्लीर्ग्राहयित्वा मण्डलिकानि कारयेत् ॥ ८८ ॥ तेष्वन्नपानभाजनानि न्यस्तानि न क्षीयन्ते ॥ ८९ ॥

तीन रात्रि पर्यन्त उपवास पूर्वक रहता हुआ पुरुष, पुष्य नक्षत्र से युक्त समयमें, हथियार से मारे हुए अथवा शूलप्रोत पुरुष की खोपड़ी में मट्टी भरकर, उसमें गुञ्जा (चौंटली=रत्ती) बोदेवे, और उन्हें जलसे बराबर सींचता रहे ॥ ८७ ॥ जब वह उत्पन्न होजावें, तब पुष्यनक्षत्र से युक्त अमावस्या अथवा पौर्णमासी में गुञ्जा की उन बेलों को उखड़वाकर, उनके द्वारा चारों ओर गोल घेरे बनवावे ॥ ८८ ॥ उन घेरोंके बीचमें रक्खे हुए, खाने पीनेके पात्र, क्षीणताको प्राप्त नहीं होते ॥ ८९ ॥

रात्रिप्रेक्षायां प्रवृत्तायां प्रदीपाग्निषु मृतधेनोः स्तनानुत्कृत्य दाहयेत् ॥ ९० ॥ दग्धान्वृषमूत्रेण पेषयित्वा नवकुम्भमन्तर्लेपयेत् ॥ ९१ ॥ तं ग्राममपसव्यं परिणीय यत्तत्र न्यस्तं नवनीतमेषां तत्सर्वमागच्छतीति ॥ ९२ ॥

रातको तमाशा होनेके समयमें, प्रदीप की आगों पर, मरी हुई गाय के थनों को काटकर जलावे ॥ ९० ॥ जले हुए अर्थात् भुने हुए उन थनों को, बैलके पेशाबके साथ पीसकर, एक नये घड़ेके भीतर चारों ओर लीप देवे ॥ ९१ ॥ उस घड़े को बाईं ओर से उस गांव की परिक्रमा कराके जहां रख देता है; ग्रामीण पुरुषों का सब मक्खन, वहीं पर (अर्थात् उस घड़े में) आजाता है (!) ॥ ९२ ॥

कृष्णचतुर्दश्यां पुष्ययोगिन्यां शुनो लग्नकस्य योनौ कालायसीं मुद्रिकां प्रेषयेत् ॥९३॥ तां स्वयं पतितां गृह्णीयात् ॥९४॥ तया वृक्षफलान्याकारितान्यागच्छन्ति ॥ ९५ ॥

पुष्य नक्षत्र से युक्त; कृष्णपक्ष की चतुर्दशीमें, कामासक्त कुत्ती की योनि में (सूत्र में 'शुनः' शब्द पुल्लिङ्ग निर्देश किया गया है, परन्तु योनि शब्दके निर्देश से यहां लिंगकी अविवक्षा ही समझनी चाहिये), लोहे की बनी हुई एक मुद्रिका (अंगूठी सी) लगा देवे ॥ ९३ ॥ जब वह अपने आप वहां से निकलकर गिर पड़े, तो उसे लेलेवे ॥ ९४ ॥ उसके द्वारा वृक्षोंके फल, बुलाए जानेपर, आजाते हैं ॥ ९५ ॥

मन्त्रभैषज्यसंयुक्ता योगा मायाकृताश्च ये ।
उपहन्यादमित्रांस्तैः स्वजनं चाभिपालयेत् ॥ ९६ ॥

इत्यौपनिषदिके चतुर्दशे ऽधिकरणे प्रलम्भने भैषज्यमन्त्रयोगः तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥ आदितो ऽष्टचत्वारिंशच्छतः ॥ १४८ ॥

मन्त्र और ओषधियों से युक्त, जिन योगों का निरूपण किया गया है, और मायासे युक्त जिन योगोंका निरूपण किया गया है; (अपने शरीर को जलाना, अंगारों के ढेर पर चलना; इत्यादि प्रयोगोंको ही मायाकृत योग समझना चाहिये) । उन सब योगों से शत्रुका नाश करे, और स्वजनों की परिपालना करे ॥ ९६ ॥

औपनिषदिक चतुर्दश अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त ॥

चौथा अध्याय ।

१७९ प्रकरण

शत्रुके द्वारा अपनी सेनापर कियेगये घातक प्रयोगों का प्रतीकार ।

शत्रुका नाश करनेके लिये जिन उपायों को पीछे बताया गया है, यदि शत्रुही, विजिगीषुके नाशके लिये उन उपायों का प्रयोग करने लगे, तब ऐसी अवस्थामें विजिगीषुको उनका क्या प्रतीकार करना चाहिये ? इन्हीं सब बातों का इस प्रकरणमें निरूपण किया जायगा ।

स्वपक्षे परप्रयुक्तानां दूषिविषगराणां प्रतीकारे श्लेष्मातकक-पित्थदन्तिदन्तशठगोजीशिरीषपाटलीबलास्योनाकपुनर्नवाश्वेता-

वरणक्काथयुक्तं चन्दनसालावृकीलोहितयुक्तं तेजनोदकं राजोपभोग्यानां गुह्यप्रक्षालनं स्त्रीणां सेनायाश्च विषप्रतीकारः ॥ १ ॥

शत्रुके द्वारा प्रयुक्त किये गये, जलादि दूषक तथा विष आदि प्रयोगों का अपने पक्षमें प्रतीकार करने की अभिलाषा होने पर; विषके प्रतीकारके लिये निम्नलिखित तेजनोदक का उपयोग करे। वह इसप्रकार बनाना चाहिये:—लहसोड़ा, कैथ, जमालगोटा, जंभीरी नींबू, गोभी, सिरस, काली पांढरी या पाढल, खरैटी, सोनापाठा, पुनर्नवा, शराब और वरना नामक वृक्ष, इन सब चीजों का क्वाथ बनाया जावे, और चन्दन तथा शालावृकी (इस शब्दके तीन अर्थ हैं, बन्दरी, गीदड़ी और कुत्ती; इन तीनोंमें से किसी एक का खून लेना चाहिये) का खून एक जगह मिलाकर रक्खा जावे, उस क्वाथ और इस रक्तसे मिला हुआ तेजनोदक (तेजन, बांस को कहते हैं, उसके पानीमें इन सब चीजोंको हल करना होता है, इसीलिये यह तेजनोदक कहाता है), राजाके उपभोगमें आने वाली स्त्रियोंके गुह्यस्थानों को साफ करने वाला, तथा सेना सम्बन्धी अर्थात् सेनामें प्रयुक्त किये हुए विषका प्रतीकार करने वाला होता है ॥ १ ॥

पृषतनकुलनीलकण्ठगोधापित्तयुक्तं मषीराजिचूर्णं सिन्दुवारितवरणवारुणीतण्डुलीयकशतपर्वाग्रपिण्डीतकयोगो मदनदोषहरः ॥ २ ॥ सृगालविन्नामदनसिन्दुवारितवरणवारणवल्लीमूलकषायाणामन्यतमस्य समस्तानां वा क्षीरयुक्तं पानं मदनदोषहरम् ॥३॥

चीतल(एक प्रकारका मृग,जिसके ऊपर दाग़से होते हैं), नेवला,मोर और गोह, इन सब जानवरोंके पित्तासे युक्त, काले संभालू और राईका चूर्ण; उन्मादक द्रव्योंसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंको अपहरण करनेवाला होता है। तथा संभालू, वरना, दूबघास, चौलाई, बांसका अग्रभाग और मैनफल, इन सब चीजोंका योग भी उन्मादकद्रव्यजन्य दोषोंका अपहरण करनेवाला होता है ॥ २ ॥ सृगालविन्ना (एक औषधिका नाम है), धतूरा, संभालू, वरना, और गजपीपल, इन पांचों चीजोंकी जड़ोंको मिलाकर, या पृथक् २ एक २ काही काढ़ा, दूधके साथ पीलेनेसे, उन्मादकद्रव्यजन्य दोषोंका अपहरण करनेवाला होता है ॥ ३ ॥

कैडर्यपूतितिलतैलमुन्मादहरं नस्तःकर्म ॥ ४ ॥ प्रियङ्गुनक्तमालयोगः कुष्ठहरः ॥५॥ कुष्ठलोध्रयोगः पाकशोषघ्नः ॥ ६ ॥ कट्फलद्रवन्तीविलङ्गचूर्णं नस्तःकर्म शिरोरोगहरम् ॥ ७ ॥

कायफल, कांटेदार करंजुआ और तिल; इन चीजोंका तेल, नासिकाके द्वारा उपयुक्त किया हुआ, उन्माद अर्थात् चित्तविभ्रमको हरण करनेवाला होता है ॥ ४ ॥ प्रियंगु (मेंहदी या कांगनी) और नक्तमाल (करंजुआ), इन दोनोंका योग कुष्ठको नष्ट करनेवाला होता है ॥ ५ ॥ कूठ और लोध, इन दोनोंका योग, पाक (पकना, बाल आदिका सफेद होजाना) तथा शोष (क्षयरोग) का नष्ट करनेवाला होता है ॥ ६ ॥ कायफल, द्रवन्ती (मूषापर्णी नामकी एक बूटी), और वायविडंग, इन तीनों चीजोंका चूर्ण, नासिकाके द्वारा उपयुक्त किया हुआ, सिरके रोगोंको नष्ट करनेवाला होता है ॥ ७ ॥

प्रियङ्गुमञ्जिष्ठतगरलाक्षारसमधुकहरिद्राक्षौद्रयोगो रज्जूदकविषप्रहारपतननिःसंज्ञानां पुनः प्रत्यानयनाय ॥ ८ ॥ मनुष्याणामक्षमात्रं गवाश्वानां द्विगुणं चतुर्गुणं हस्त्युष्ट्राणाम् ॥९॥

मेंहदी या कांगनी, मंजीठ, तगर, लाक्षा, (लाख), महुआ, हलदी, और शहद, इन सब चीजोंका योग ; रस्सी, दूषितजल, विष, प्रहार, तथा ऊपरसे गिरनेके कारण बेहोश हुए २ पुरुषोंको फिर होशमें लानेके लिये, अत्यन्त उपयुक्त होता है ॥ ८ ॥ प्रतीकारके लिये दी जानेवाली ओषधियोंकी मात्रा, मनुष्यके लिये केवल एक अक्ष (सोलह माषकका एक अक्ष होता है । माषक तोलके लिये, देखो-अधि० २, अध्या० १९) होनी चाहिये । गाय और घोड़ोंके लिये मनुष्यसे दुगनी, तथा हाथी और ऊंटोंके लिये चौगुनी होनी चाहिये ॥९॥

रुक्मगर्भश्चैषां मणिः सर्वविषहरः ॥ १० ॥ जीवन्तीश्वेतामुष्ककपुष्पवन्दाकानामक्षीवे जातस्याश्वत्थस्य मणिः सर्वविषहरः ॥ ११ ॥

आठवें सूत्रमें बेहोशीको दूर करनेवाला जो योग बताया गया है, उसको यदि सोनेके पत्तरके बीचमें रखकर तावीज बना लियाजाय, तो उस तावीजको धारण करनेसे सब तरहके विषोंका प्रतीकार होता है ॥ १० ॥ गुडूची (गिलोय), सफेद संभालू या चोरबेल, काली पांढरी, पुष्प (औषधि विशेष), और अमरवेल, इन सब चीजोंका तावीज (=मणि); अथवा सेहजने या मोमके पेड़पर पैदा हुए २ पीपलका तावीज, सब तरहके विषोंको अपहरण करनेवाला होता है ॥ ११ ॥

तूर्याणां तैः प्रलिप्तानां शब्दो विषविनाशनः ।
लिप्तध्वजं पताकां वा दृष्ट्वा भवति निर्विषः ॥ १२ ॥

एतैः कृत्वा प्रतीकारं स्वसैन्यानामथात्मनः ।
अमित्रेषु प्रयुञ्जीत विषधूमाम्बुदूषणान् ॥ १३ ॥

इत्यौपनिषदिके चतुर्दशे ऽधिकरणे स्वबलोपघातप्रतीकारः चतुर्थो ऽध्यायः ॥४॥
आदित एकोनपञ्चाशच्छतः ॥ १४९ ॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्यौ-
पनिषदिकं चतुर्दशमधिकरणं समाप्तम् ॥ १४ ॥

जीवन्ती (गिलोय) आदि औषधियोंसे पोते हुए (लिबड़े हुए) बाजों का शब्द, विषको नष्ट करने वाला होता है । इसीप्रकार इन औषधियों से लिप्त शिखरवाली झंडीको देखकर भी विषका प्रभाव नहीं रहता ॥ १२ ॥ इन औषधियोंके द्वारा, अपनी सेना और अपने आपकी रक्षा करके, विजिगीषु, विष धूम और जलदूषणों का सदा शत्रुओंमें ही प्रयोग करे ॥ १३ ॥

औपनिषादिक चतुर्दश अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ॥

औपनिषदिक चतुर्दश अधिकरण समाप्त ।

तन्त्रयुक्ति पञ्चदश अधिकरण।

पहिला अध्याय।

१८० प्रकरण।

तन्त्रयुक्ति।

प्रकृतमें 'तन्त्र' का अर्थ 'अर्थशास्त्र' है। इस शास्त्रमें अर्थके निर्णयके लिये उपयोगी युक्तियों का, लक्षण और उदाहरण निरूपण, इस प्रकरणमें किया जायगा॥

मनुष्याणां वृत्तिरर्थः ॥१॥ मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः ॥२॥ तस्याः पृथिव्या लाभपालनोपायः शास्त्रमर्थशास्त्रमिति ॥ ३ ॥ तद्द्वात्रिंशद्युक्तियुक्तम् ॥ ४ ॥ अधिकरणं विधानं योगः पदार्थो हेत्वर्थ उद्देशो निर्देश उपदेशोऽपदेशोऽतिदेशः प्रदेश उपमानमर्थापत्तिः संशयः प्रसङ्गो विपर्ययो वाक्यशेषोऽनुमतं व्याख्यानं निर्वचनं निदर्शनमपवर्गः स्वसंज्ञा पूर्वपक्ष उत्तरपक्ष एकान्तोऽनागतावेक्षणमतिक्रान्तावेक्षणं नियोगो विकल्पः समुच्चय ऊह्यमिति ॥ ५ ॥

मनुष्योंके व्यवहार या जीविकाको 'अर्थ' कहते हैं ॥ १ ॥ मनुष्यों से युक्त भूमिका भी नाम 'अर्थ' है ॥ २ ॥ इस भूमिको प्राप्त करने और रक्षा करनेके उपायोंका निरूपण करने वाला शास्त्र 'अर्थशास्त्र' कहाता है ॥ ३ ॥ वह बत्तीस प्रकारकी युक्तियों से युक्त है ॥ ४ । वे युक्तियां ये हैं:—अधिकरण, विधान, योग, पदार्थ, हेत्वर्थ, उद्देश, निर्देश, उपदेश, अपदेश, अतिदेश, प्रदेश, उपमान, अर्थापत्ति. संशय, प्रसंग, विपर्यय, वाक्यशेष, अनुमत, व्याख्यान, निर्वचन, निदर्शन, अपवर्ग, स्वसंज्ञा, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष, एकान्त, अनागतावेक्षण, अतिक्रान्तावेक्षण, नियोग, विकल्प, समुच्चय, और ऊह्य ॥ ५ ॥

यमर्थमधिकृत्योच्यते तदाधिकरणम् ॥ ६ ॥ पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्तावितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतमिति ॥ ७ ॥

जिस अर्थका अधिकार करके कथन किया जाय, उसे अधिकरण कहते हैं ॥ ६ ॥ जैसे सबसे पहिले सूत्रमें पृथिवीके लाभ का कथन करके, सम्पूर्ण शास्त्रको एक अधिकरण बताया गया है। इसीप्रकार प्रधानतया उन २ अर्थोंका निरूपण करने से, विनयाधिकारिक, अध्यक्षप्रचार आदि अधिकरण हैं। इस सूत्रका अर्थ देखनेके लिये, देखो, अधि० १, अध्या० १, सूत्र० १ ॥ (आगे सब युक्तियोंके लक्षणोंके साथ २ उदाहरण बतानेके लिये, हम केवल उन २ स्थलोंका पता लिखते जायेंगे, पाठक, उनको वहीं से देख लेवें ॥ ७ ॥

शास्त्रस्य प्रकरणानुपूर्वी विधानम् ॥ ८ ॥ विद्यासमुद्देशो वृद्धसंयोग इन्द्रियजयो ऽमात्योत्पत्तिरित्येवमादिकमिति ॥ ९ ॥

प्रकरणानुसार शास्त्रकी आनुपूर्वी का कथन करना 'विधान' कहाता है ॥ ८ ॥ देखो—अधि. १, अध्या. १, सू. ३–६ ॥ ९ ॥

वाक्ययोजना योगः ॥ १० ॥ चतुर्वर्णाश्रमो लोक इति ॥ ११ ॥

वाक्यों की योजनाको 'योग' कहते हैं ॥ १० ॥ देखो—अधि. १, अध्या. ४, सू. १९ ॥ ११ ॥

पदावधिकः पदार्थः ॥ १२ ॥ 'मूलहर' इति पदम् ॥१३॥ यः पितृपैतामहमर्थमन्यायेन भक्षयति स मूलहर इत्यर्थ ॥ १४ ॥

केवल पदके अर्थको 'पदार्थ' कहते हैं ॥ १२ ॥ जैसे 'मूलहर' यह एक पद है ॥१३॥ इसका अर्थ, 'पदार्थ' होगा; इसके जाननेके लिये, देखो—अधि. २, अध्या. ९, सू. २४ ॥ १४ ॥

हेतुरर्थसाधको हेत्वर्थः ॥ १५ ॥ अर्थमूलौ हि धर्मकामाविति ॥ १६ ॥

अर्थको सिद्ध करने वाला हेतु ही 'हेत्वर्थ' कहाता है ॥ १५ ॥ देखो अधि. १, अध्या. ७, सू. ११ ॥ १६ ॥

समासवाक्यमुद्देशः ॥ १७ ॥ विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजय इति ॥ १८ ॥

संक्षिप्त वाक्य का कहना 'उद्देश' कहा जाता है ॥ १७ ॥ देखो—अधि. १, अध्या. ६, सू. १ ॥ १८ ॥

व्यासवाक्यं निर्देशः ॥ १९ ॥ कर्णत्वगक्षिजिह्वाघ्राणेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेष्वविप्रतिपत्तिरिन्द्रियजय इति ॥ २० ॥

विस्तृत वाक्यका कथन करना 'निर्देश' कहाता है ॥ १९ ॥ देखो—अधि. १, अध्या. ६, सू. २ ॥ २० ॥

एवं वर्तितव्यमित्युपदेशः ॥ २१ ॥ धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत न निःसुखः स्यादिति ॥ २२ ॥

'इस प्रकार वर्तना चाहिये' ऐसे कथनको 'उपदेश' कहते हैं ॥ २१ ॥ देखो—अधि. १, अध्या. ७, सू० ६,७ ॥ २२ ॥

एवमसावाहेत्यपदेशः ॥२३॥ मन्त्रिपरिषदं द्वादशामात्यान्कुर्वीतेति मानवाः ॥ २४ ॥ षोडशेति बार्हस्पत्याः ॥ २५ ॥ विंशतिमित्यौशनसाः ॥ २६ ॥ यथासामर्थ्यमिति कौटल्य इति ॥ २७ ॥

'अमुक पुरुषने इस विषयमें यह कहा है' ऐसा कथन करना 'अपदेश' कहाता है ॥ २३ ॥ देखो—अधि. १, अध्या. १५, सू. ५२–५५ ॥ २४–२७ ॥

उक्तेन साधनमतिदेशः ॥ २८ ॥ दत्तस्याप्रदानमृणादानेन व्याख्यातमिति ॥ २९ ॥

कही हुई बातसे न कही हुई बातको भी सिद्ध करदेना 'अतिदेश' कहाता है ॥ २८ ॥ देखो–अधि. ३, अध्या. १६, सू. १ ॥ २९ ॥

वक्तव्येन साधनं प्रदेशः ॥ ३० ॥ सामदानभेददण्डैर्वा यथापत्सु व्याख्यास्याम इति ॥ ३१ ॥

आगे कही जानेवाली बातसे, न कही गई बातको सिद्ध करना 'प्रदेश' कहाता है ॥ ३० ॥ देखो—अधि. ७, अध्या. १४, सू २४ ॥ ३१ ॥

दृष्टेनादृष्टस्य साधनमुपमानम्॥ ३२ ॥ निवृत्तपरिहारान्पितेवानुगृह्णीयादिति ॥ ३३ ॥

देखी हुई वस्तुसे, न देखी हुई वस्तुको सिद्ध करना 'उपमान' कहाता है ॥ ३२ ॥ देखो—अधि. २, अध्या. १, सू. २० ॥ ३३ ॥

यदनुक्तमर्थादापद्यते सार्थापत्तिः ॥ ३४ ॥ लोकयात्राविद्राजानमात्मद्रव्यप्रकृतिसंपन्नं प्रियहितद्वारेणाश्रयेत ॥३५॥नाप्रियहितद्वारेणाश्रयेतेत्यर्थादापन्नं भवतीति ॥ ३६ ॥

न कही हुई बात, जो अर्थसे आपन्न (प्राप्त) होजाय, उसे 'अर्थापत्ति' कहते हैं ॥ ३४ । देखो—अधि. ५, अध्या. ४ सू. १ ॥ ३५ ॥ अर्थात् अप्रिय और अहित पुरुषके द्वारा, राजाका आश्रय न लेवे, यह वहां अर्थापत्ति से जाना जाता है ॥ ३६ ॥

उभयतोहेतुमानर्थः संशयः । ३७ ॥ क्षीणलुब्धप्रकृतिमपचरितप्रकृतिं वेति ॥ ३८ ॥

किसी अर्थमें दोनों (विरुद्ध) पक्षके हेतुओंका होना 'संशय' कहाता है ॥ ३७ ॥ देखो—अधि. ७, अध्या. ५, सू. १८ ॥ ३८ ॥

प्रकरणान्तरेण समानोऽर्थः प्रसङ्गः ॥ ३९ ॥ कृषिकर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेणेति ॥ ४० ॥

दूसरे प्रकरणके साथ अर्थकी समानता होना 'प्रसङ्ग' कहाता है ॥ ३९ ॥ देखो—अधि. १, अध्या. ११, सू. १३ ॥ ४० ॥

प्रतिलोमेन साधनं विपर्ययः ॥ ४१ ॥ विपरीतमतुष्टस्येति ॥ ४२ ॥

कही हुई बातके वैपरीत्यसे किसी वस्तुका निर्देश करना 'विपर्यय' कहाता है ॥ ४१ ॥ देखो—अधि. १, अध्या. १६, सू. १४ ॥ ४२ ॥

येन वाक्यं समाप्यते स वाक्यशेषः ॥ ४३ ॥ छिन्नपक्षस्येव राज्ञश्चेष्टानाशश्चेति ॥ ४४ ॥ तत्र शकुनेरिति वाक्यशेषः ॥ ४५ ॥

जिसके द्वारा वाक्यकी समाप्ति हो, वह 'वाक्यशेष कहाता है ॥ ४३ ॥ देखो—अधि. ८, अध्या. १, सू. ९ ॥ ४४ ॥ वहांपर सामर्थ्यसे प्राप्त (=अध्याहृत) 'शकुनि' पद वाक्यशेष है ॥ ४५ ॥

परवाक्यमप्रतिषिद्धमनुमतम् ॥ ४६ ॥ पक्षावुरस्यं प्रतिग्रह इत्यौशनसो व्यूहविभाग इति ॥ ४७ ॥

प्रतिषेध न किया हुआ दूसरेका वाक्य 'अनुमत' कहाता है ॥ ४६ ॥ देखो–अधि. १०, अध्या. ६, सू. १ ॥ ४७ ॥

अतिशयवर्णना व्याख्यानम् ॥ ४८ ॥ विशेषतश्च संघानां संघधर्मिणां च राजकुलानां द्यूतनिमित्तो भेदः ॥ ४९ ॥ तन्निमित्तो विनाश इत्यसत्परिग्रहः पापिष्ठतमो व्यसनानां तन्त्रदौर्बल्यादिति ॥ ५० ॥

सिद्ध किये हुए अर्थका, अत्यधिक युक्तियोंसे विस्तारपूर्वक समर्थन करना 'व्याख्यान' कहाता है ॥ ४८ ॥ देखो—अधि. ८, अध्या.३, सू. ६८,६९ ॥ ४९–५० ॥

गुणतः शब्दनिष्पत्तिर्निर्वचनम् ॥ ५१ ॥ व्यस्यत्येनं श्रेयस इति व्यसनमिति ॥ ५२ ॥

गुणके द्वारा (अर्थान्वयपूर्वक) किसी शब्दकी सिद्धि करना 'निर्वचन' कहाता है ॥ ५१ ॥ देखो–अधि. ८, अध्या. १, सू. ४ ॥ ५२ ॥

दृष्टान्तो दृष्टान्तयुक्तो निदर्शनम् ॥ ५३ ॥ विगृहीतो हि ज्यायसा हस्तिना पादयुद्धमिवाभ्युपैतीति ॥ ५४ ॥

दृष्टान्त सहित दृष्टान्तका निर्देश करना 'निदर्शन' कहाता है ॥ ५३ ॥ देखो–अधि. ७, अध्या. ३, सू. ४ ॥ ५४ ॥

अभिप्लुतव्यपकर्षणमपवर्गः ॥ ५५ ॥ नित्यमासन्नमरिबलं वासयेदन्यत्राभ्यन्तरकोपशङ्काया इति ॥ ५६ ॥

किसी विधिको सामान्यतया व्यापक रूपसे कहते २, उसके विषयका संकोच करदेना 'अपवर्ग' कहाता है ॥ ५५ ॥ देखो–अधि. ९, अध्या. २, सू. २३ ॥ ५६ ॥

परैरसंज्ञितः शब्दः स्वसंज्ञा ॥ ५७ ॥ प्रथमा प्रकृतिस्तस्य भूम्यन्तरा द्वितीया भूम्येकान्तरा तृतीयेति ॥ ५८ ॥

दूसरोंसे संकेत न कियाहुआ शब्द, 'स्वसंज्ञा' कहाता है ॥ ५७ ॥ देखो–अधि. ६, अध्या. २, सू. ॥ ५८ ॥

प्रतिषेद्धव्यं वाक्यं पूर्वपक्षः ॥ ५९ ॥ स्वाम्यमात्यव्यसनयोरमात्यव्यसनं गरीय इति ॥ ६० ॥

प्रतिषेध किया जानेवाला वाक्य 'पूर्वपक्ष' कहाता है ॥ ५९ ॥ देखो–अधि. ८, अध्या. १, सू. ७ ॥ ६० ॥

तस्य निर्णयनवाक्यमुत्तरपक्षः ॥६१॥ तदायत्तत्वात् ॥६२॥ तत्कूटस्थानीयो हि स्वामीति ॥ ६३ ॥

उस पूर्वपक्षका निर्णय करनेवाला वाक्य 'उत्तरपक्ष' कहाता है ॥६१॥ देखो—अधि. ८, अध्या. १, सू, १८ ॥ ६२ ॥—॥ ६३ ॥

सर्वत्रायत्तमेकान्तः ॥ ६४ ॥ तस्मादुत्थानमात्मनः कुर्वीतेति ॥ ६५ ॥

जो अर्थ किसी देश या कालमें न छोड़ा जासके, उसे 'एकान्त' कहते है ॥ ६४ ॥ देखो—अधि. १, अध्या. १९, सू. ५ ॥ ६५ ॥

पश्चादेवं विहितमित्यनागतावेक्षणम् ॥ ६६ ॥ तुलाप्रतिमानं पौतवाध्यक्षे वक्ष्याम इति ॥ ६७ ॥

'पीछेसे इसप्रकारका विधान किया जायगा' ऐसा कथन करना 'अनागतावेक्षण' कहाता है ॥ ६६ ॥ देखो—अधि. २, अध्या. १३, सू. ३१ ॥ ६७ ॥

पुरस्तादेवं विहितमित्यतिक्रान्तावेक्षणम् ॥ ६८ ॥ अमात्यसंपदुक्ता पुरस्तादिति ॥ ६९ ॥

'इस बातका पहिले निरूपण करदिया गया है' ऐसा कथन करना 'अतिक्रान्तावेक्षण' कहाता है ॥६८॥ देखो—अधि. ६, अध्या. १, सू. ७ ॥६९॥

एवं नान्यथेति नियोगः ॥ ७० ॥ तस्माद्धर्ममर्थं चास्योपदिशेन्नाधर्ममनर्थं चेति ॥ ७१ ॥

'अमुक कार्य इसीतरह करना चाहिये, अन्यथा नहीं' ऐसा कथन करना 'नियोग' कहाता है ॥७०॥ देखो—अधि. १, अध्या. १७, सू. ३५ ॥७१॥

अनेन वानेन वेति विकल्पः ॥ ७२ ॥ दुहितरो वा धार्मिष्ठेषु विवाहेषु जाता इति ॥ ७३ ॥

'अमुक कार्य इसतरह किया जासकता है, अथवा इसतरह' ऐसा कथन करना 'विकल्प' कहाता है ॥ ७२ ॥ देखो—अधि, ३, अध्या. ५, सू. ९ ॥ ७३ ॥

अनेन चानेन चेति समुच्चयः ॥ ७४ ॥ स्वयं (यं) जातः पितृबन्धूनां च दायाद इति ॥ ७५ ॥

'अमुक कार्य इसतरह भी होसकता है, और इसतरह भी' ऐसा कथन करना 'समुच्चय' कहाता है ॥ ७४ ॥ देखो—अधि. ३, अध्या. ७ सू. १३ ॥७५॥

अनुक्तकरणमूह्यम् ॥ ७६ ॥ यथावद्दाता प्रतिगृहीता च नोपहतौ स्यातां तथानुशयं कुशलाः कल्पयेयुरिति ॥ ७७ ॥

न कहीहुई बातका करलेना 'ऊह्य' कहाता है ॥ ७६ ॥ देखो–अधि. ३, अध्या. १६, सू. ४ ॥ ७७ ॥

एवं शास्त्रमिदं युक्तमेताभिस्तन्त्रयुक्तिभिः ।
अवाप्तौ पालने चोक्तं लोकस्यास्य परस्य च ॥ ७८ ॥
धर्ममर्थं च कामं च प्रवर्तयति पाति च ।
अधर्मानर्थविद्वेषानिदं शास्त्रं निहन्ति च ॥ ७९ ॥
येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः ।
अमर्षणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम् ॥ ८० ॥

इति तन्त्रयुक्तौ पञ्चदशेऽधिकरणे तन्त्रयुक्तयः प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
आदितः पञ्चाशच्छततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥ एतावता
कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य तन्त्रयुक्तिः पञ्चदशम-
धिकरणं समाप्तम् ॥ १५ ॥

इसप्रकार यह शास्त्र, इन तन्त्रयुक्तियोंसे युक्त है । इस लोक और परलोककी प्राप्ति तथा रक्षा करनेमें यही शास्त्र साधन बताया गया है ॥७८॥ क्योंकि यह अर्थशास्त्र, धर्म अर्थ और कामको प्रवृत्त करता है, तथा उनकी रक्षा करता है । और अर्थके साथ विरोध रखनेवाले अधर्मोंको नष्ट करता है ॥ ७९ ॥ जिसने शास्त्र, शस्त्र और नन्दराजाके अधीन हुई २ भूमिका क्रोधके कारण बहुत जल्दी उद्धार करदिया; उसी विष्णुगुप्त कौटल्यने इस शास्त्रको बनाया है ॥ ८० ॥

तन्त्रयुक्ति पञ्चदश अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

तन्त्रयुक्ति पञ्चदश अधिकरण समाप्त

दृष्ट्वा विप्रतिपत्तिं बहुधा शास्त्रेषु भाष्यकाराणाम् ।
स्वयमेव विष्णुगुप्तश्चकार सूत्रं च भाष्यं च ॥

कौटलीय अर्थशास्त्र समाप्त

चाणक्य प्रणीत सूत्र

सुखस्य मूलं धर्मः ॥ १ ॥ धर्मस्य मूलमर्थः ॥ २ ॥ अर्थस्य मूलं राज्यम् ॥ ३ ॥ राज्यमूलमिन्द्रियजयः ॥ ४ ॥ इन्द्रियजयस्य मूलं विनयः ॥ ५ ॥ विनयस्य मूलं वृद्धोपसेवा ॥ ६ ॥ वृद्धसेवाया विज्ञानम् ॥ ७ ॥ विज्ञानेनात्मानं संपादयेत् ॥ ८ ॥ संपादितात्मा जितात्मा भवति ॥ ९ ॥ जितात्मा सर्वार्थैस्संयुज्येत ॥ १० ॥ अर्थसंपत्प्रकृतिसंपदं करोति ॥ ११ ॥ प्रकृतिसंपदा ह्यनायकमपि राज्यं नीयते ॥ १२ ॥ प्रकृतिकोपस्सर्वकोपेभ्योः गरीयान् ॥ १३ ॥

सुखका मूल (कारण) धर्म है ॥ १ ॥ धर्मका मूल, अर्थ है ॥ २ ॥ अर्थका मूल, राज्य है ॥ ३ ॥ इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करनाही राज्यका मूल है ॥ ४ ॥ इन्द्रियोंके विजयका मूल, विनय है ॥ ५ ॥ वृद्धोंकी सेवा करना, विनयका मूल है ॥ ६ ॥ वृद्धोंकी सेवाका मूल, विज्ञान है ॥ ७ ॥ इसलिये पुरुष, विज्ञानसे अपने आपको संपन्न बनावे ॥ ८ ॥ जो पुरुष विज्ञानसे संपन्न होता है, वह अपने ऊपर कावू पासकता है ॥ ९ ॥ अपने ऊपर कावू रखनेवाला पुरुष, सब अर्थोंसे संयुक्त होजाता है ॥ १० ॥ अर्थसम्पत्ति, प्रकृतिसम्पत्ति (अमात्य, सेना, मित्र आदि सम्पत्ति) को उत्पन्न करनेवाली होती है ॥ ११ ॥ प्रकृतिसंपत्तिके द्वारा, नेतारहित राज्यका भी संचालन किया जासकता है ॥ १२ ॥ प्रकृतिकोप, सब कोपोंसे बलवान् होता है ॥ १३ ॥

अविनीतस्वामिलाभादस्वामिलाभः श्रेयान् ॥ १४ ॥ संपाद्यात्मानमन्विच्छेत्सहायवान् ॥ १५ ॥ नासहायस्य मन्त्रनिश्चयः ॥ १६ ॥ नैकं चक्रं परिभ्रमयति ॥ १७ ॥ सहायस्समसुखदुःखः ॥ १८ ॥

विनयहीन स्वामीके लाभसे, स्वामीका लाभ न होनाही अच्छा है ॥ १४ ॥ अपने आपको शक्तिसम्पन्न बनाकर, फिर सहायकोंकी इच्छा करे

(सूत्रमें 'सहायवान्' के स्थानपर 'सहायकान्' पाठ संगत मालूम होता है) ॥ १५ ॥ क्योंकि सहायकहीन राजाके मन्त्रका, कभी निश्चय नहीं होसकता ॥ १६ ॥ एक पहिया कभी गाड़ीको घुमा नहीं सकता ॥ १७ ॥ सहायक वही होता है, जो अपने सुख और दुःखमें बराबर साथी रहे ॥ १८ ॥

मानी प्रतिमानिनमात्मनि द्वितीयं मन्त्रमुत्पादयेत् ॥१९॥ अविनीतं स्नेहमात्रेण न मन्त्रे कुर्वीत ॥ २० ॥ श्रुतवन्तमुपधाशुद्धं मन्त्रिणं कुर्वीत ॥ २१ ॥ मन्त्रमूलास्सर्वारम्भाः ॥ २२ ॥ मन्त्ररक्षणे कार्यसिद्धिर्भवति ॥ २३ ॥ मन्त्रविस्रावी कार्यं नाशयति ॥ २४ ॥ प्रमादात् द्विषतां वशमुपयास्यति ॥ २५ ॥ सर्वद्वारेभ्यो मन्त्रो रक्षितव्यः ॥ २६ ॥ मन्त्रसंपदा राज्यं वर्धते श्रेष्ठतमां मन्त्रगुप्तिमाहुः ॥ २८ ॥ कार्यान्धस्य प्रदीपो मन्त्रः ॥ २९ ॥ मन्त्रचक्षुषा परच्छिद्राण्यवलोकयन्ति ॥ ३० ॥

मानी पुरुष, अपने समान दूसरे मानी पुरुषकोही अपना सलाहकार बनावे ॥ १९ ॥ विनयहीन पुरुषको, केवल स्नेहके कारण, कभी मन्त्र (सलाह करने) में सम्मिलित न करे ॥ २० ॥ विद्वान् तथा सब तरहसे परीक्षा किये हुए शुद्ध हृदय पुरुषको, मन्त्री बनावे ॥ २१ ॥ सब कार्य, मन्त्रपरही निर्भर होते हैं ॥ २२ ॥ मन्त्रकी रक्षा करनेमें कार्यकी सिद्धि होती है ॥ २३ ॥ मन्त्रको फोड़ देनेवाला पुरुष, कार्यको नष्ट करदेता है ॥ २३ ॥ प्रमादसे शत्रुओंके वशमें चला जाता है ॥ २५ ॥ इसलिये सब ओरसे, मन्त्रकी अवश्य रक्षा करना चाहिये ॥ २६ ॥ मन्त्रसंपत्तिसे (अर्थात मन्त्रके सुरक्षित रहनेसे) राज्य बढ़ता है ॥ २७ ॥ मन्त्रको गुप्त रखना सबसे श्रेष्ठ बात कही गई है ॥ २८ ॥ कार्यके (कर्त्तव्याकर्त्तव्यके) विषयमें अन्धे हुए २ पुरुषके लिये, मन्त्र प्रदीप होता है ॥ २९ ॥ मन्त्ररूपी चक्षुसेही, पुरुष, शत्रुके दोषोंको देखपाते हैं ॥ ३० ॥

मन्त्रकाले न मत्सरः कर्तव्यः ॥ ३१ ॥ त्रयाणामेकवाक्ये संप्रत्ययः ॥ ३२ ॥ कार्याकार्यतत्त्वार्थदर्शिनो मन्त्रिणः ॥ ३४ ॥ षड्गुणाद्भिद्यते मन्त्रः ॥ ३४ ॥

मन्त्रके समयमें किसीसे डाह नहीं करनी चाहिये ॥ ३१ ॥ तीन पुरुषोंकी एक सम्मति होनेपरही, किसी अर्थका निश्चय किया जासकता है ॥ ३२ ॥ कार्य और अकार्यके वास्तविक अर्थको देखनेवालेही मन्त्री होते हैं

॥ ३३ ॥ छः कानोंसे मन्त्र फूट जाता है, अर्थात् छः कानोंमें आतेही मन्त्र, प्रकट होजाता है ॥ ३४ ॥

आपत्सु स्नेहसंयुक्तं मित्रम् ॥ ३५ ॥ मित्रसंग्रहणे बलं संपद्यते ॥ ३६ ॥ बलवानलब्धलाभे प्रयतते ॥ ३७ ॥ अलब्धलाभो नालसस्य ॥ ३८ ॥ अलसस्य लब्धमपि रक्षितुं न शक्यते ॥ ३९ ॥ स चालसस्य रक्षितं विवर्धते ॥ ४० ॥ न भृत्यान् प्रेषयति ॥ ४१ ॥

जो पुरुष आपत्तिकालमें भी, स्नेह पूर्वक अपने साथ रहे, वही मित्र कहाता है ॥ ३५ ॥ मित्रों का संग्रह कर लेने पर अपना बल बढ़ जाता है ॥ ३६ ॥ बलवान् पुरुष, अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करता है ॥ ३७ ॥ आलसी पुरुष को कभी अप्राप्त वस्तु प्राप्त नहीं होसकती ॥ ३८ ॥ आलसी को, अपनी प्राप्त वस्तु की रक्षा करनी भी अशक्य होजाती है ॥३९॥ आलसी पुरुष का, रक्षित (रक्षा किया हुआ) भी अर्थ कभी वृद्धि को प्राप्त नहीं होता । (मूल पुस्तक में 'स चालसस्य' पाठ छपा हुआ है, परन्तु यह पाठ असंगत मालूम होता है; 'न चालसस्य' पाठ होना चाहिये ॥४०॥ वृद्धि को प्राप्त न होनेके कारण ही, आलसी पुरुष अपने भृत्यों तक को भी धन वितरण नहीं कर सकता ॥ ४१ ॥

अलब्धलाभादिचतुष्टयं राज्यतन्त्रम् ॥ ४२ ॥ राज्यतन्त्रायत्तं नीतिशास्त्रम् ॥४३॥ राज्यतन्त्रेष्वायत्तौ तन्त्रावापौ ॥४४॥ तन्त्रं स्वविषयकृत्येष्वायत्तम् ॥ ४५ ॥ आवापो मण्डलनिविष्टः ॥ ४६ ॥ सन्धिविग्रहयोनिर्मण्डलः ॥ ४७ ॥

अलब्धलाभ आदि चारों वस्तु (अलब्धलाभ, लब्ध परिरक्षण, रक्षित विवर्धन, और वर्धित का भृत्योंमें वितरण) ही राज्य तन्त्र है, अर्थात् राज्यकी परिस्थिति यही है, इन्हींका नाम राज्यसत्ता है ॥ ४२ ॥ राज्य तन्त्र (=राज्यसत्ता या राज्य परिस्थिति) का आधार, नीति शास्त्र ही होता है ॥ ४३ ॥ तन्त्र और आवाप, राज्यसत्ता के ही अधीन होते हैं ॥ ४४ ॥ अपने देशके कार्यों में ही तन्त्र, आयत्त है । अर्थात् अपने देशमें, सामदान आदि उपायों का प्रयोग करने में तन्त्र (राज्यकी सत्ता) का निर्भर है ॥ ४५ ॥ मण्डल (बारह प्रकार के राज मण्डल) में निविष्ट (प्रयुक्त=प्रयोग किये गये') साम आदि को ही आवाप कहते हैं ॥ ४६ ॥ मण्डल, सन्धि और विग्रह का कारण

होता है ; अर्थात् सन्धि और विग्रह का होना, मण्डल (राज समूह) पर ही निर्भर होता है । (सन्धि विग्रह यहां उपलक्षण मात्र हैं, यान, आसन, संश्रय, द्वैधीभाव, इन शेष चार गुणों का भी ग्रहण करलेना चाहिये) ॥४७॥

नीतिशास्त्रानुगो राजा ॥४८॥ अनन्तरप्रकृतिश्शत्रुः ॥४९॥ एकान्तरितं मित्रमिष्यते ॥५०॥ हेतुतश्शत्रुमित्रे भविष्यतः ॥५१॥ हीयमानस्सन्धिं कुर्वीत ॥ ५२ ॥ तेजो हि संधानहेतुस्तदर्थानाम् ॥ ५३ ॥ नातप्तलोहो लोहेन संधीयते ॥ ५४ ॥

नीति शास्त्रके अनुसार कार्य करने वाला, राजा होता है अर्थात् राजा, उसी को कहा जासकता है, जो नीतिशास्त्रके अनुसार कार्य करे ॥ ४८ ॥ अपने देशके, साथ लगे हुए (=अनन्तर=अव्यवहित) देशमें राज्य करने वाला राजा, मित्र होता है ॥ ५० ॥ शत्रु और मित्र, किसी कारणसे ही बन जाते हैं ॥ ५१ ॥ क्षीण शक्ति होता हुआ पुरुष, सन्धि कर लेवे ॥ ५२ ॥ उन २ अर्थोंके जोड़ने का कारण, तेज ही होता है ॥ ५३ ॥ बिना तपा हुआ लोहा, लोहेके साथ जुड़ नहीं सकता ॥ ५४ ॥

बलवान् हीनेन विगृह्णीयात् ॥५५॥ न ज्यायसा समेन वा ॥ ५६ ॥ गजपादयुद्धमिव बलवद्विग्रहः । ५७ ॥ आमपात्रमामेन सह विनश्यति ॥ ५८ ॥ अरिप्रयत्नमभिसमीक्षेत ॥ ५९ ॥ संधायैकतो वा ॥ ६० ॥

बलवान् राजा, हीन (दुर्बल) के साथ विग्रह (झगड़ा) कर देवे ॥५५॥ अपने बड़े या बराबर वालेके साथ कभी झगड़ा न करे ॥ ५६ ॥ बलवान्के साथ लड़ाई करना, हाथी (हाथी सवार) और पैदल की लड़ाईके समान होता है ॥ ५७ ॥ कच्चा बर्त्तन, कच्चे बर्त्तनकेसाथ भिड़कर टूट जाताहै, इसलिये बराबर वालेके साथ भी लड़ाई नहीं करनी चाहिये ॥ ५८ ॥ शत्रुके प्रयत्नका सदा, अच्छा तरह निरीक्षण करता रहे ॥ ५९ ॥ अथवा एक ओर से सन्धि करके रहे । अर्थात् अनेक शत्रु होने पर एक शत्रुसे सन्धि कर लेवे ॥ ६० ॥

अमित्रविरोधादात्मरक्षामावसेत् ॥ ६१ ॥ शक्तिहीनो बलवन्तमाश्रयेत् ॥ ६२ ॥ दुर्बलाश्रयो दुःखमावहति ॥ ६३ ॥ अग्निवद्राजानमाश्रयेत् ॥ ६४ ॥ राज्ञः प्रतिकूलंनाचरेत् ॥ ६५ ॥

उद्धतवेषधरो न भवेत् ॥ ६६ ॥ न देवचरितं चरेत् ॥ ६७ ॥ द्वयोरपीर्ष्यतोः द्वैधीभावं कुर्वीत ॥ ६८ ॥

शत्रुके द्वारा किये जाने वाले विरोधसे, अपने आपकी रक्षा करे ॥६१॥ शक्तिहीन राजा, बलवान् का आश्रय लेलेवे ॥ ६२ ॥ दुर्बलका आश्रय लेने वाला राजा, सदा दुःख उठाता है ॥ ६३ ॥ अग्निके समान ही राजा का आश्रय लेवे । अर्थात् आगके समीप जिस तरह पुरुष रहता है, उसी तरह राजाके समीप रहे ॥ ६४ ॥ राजाके प्रतिकूल, कदापि आचरण न करे ॥ ६५ ॥ उद्धत वेषको कभी धारण न करे; अर्थात् सदा सौम्यवेष ही रक्खे ॥ ६६ । देवताओंके चरित की नकल न उतारे ॥ ६७ ॥ परस्पर ईर्ष्या रखने वाले दो राजाओं में फूट डाल देवे ॥ ६८ ॥

न व्यसनपरस्य कार्यावाप्तिः ॥ ६९ ॥ इन्द्रियवशवर्ती चतुरङ्गवानपि विनश्यति ॥७०॥ नास्ति कार्यं द्यूतप्रवृत्तस्य ॥७१॥ मृगयापरस्य धर्मार्थौ विनश्यतः ॥ ७२ ॥ अर्थेषणा न व्यसनेषु गण्यते ॥ ७३ ॥ न कामासक्तस्य कार्यानुष्ठानम् ॥ ७४ ॥ अग्निदाहादपि विशिष्टं वाक्पारुष्यम् ॥ ७५ ॥ दण्डपारुष्यात्सर्वजनद्वेष्यो भवति ॥७६॥ अर्थतोषिणं श्रीः परित्यजति ॥७७॥

व्यसनोंमें फंसे हुए राजाकी कार्यसिद्धि कभी नहीं होती ॥ ६९ ॥ इन्द्रियोंके वशमें हुआ २ राजा, चतुरंग सेनाके होने पर भी नष्ट होजाता है ॥ ७० ॥ जुएमें लगे हुए राजा का कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता ॥ ७१ ॥ शिकारमें ही तत्पर रहने वाले राजा के धर्म और अर्थ नष्ट होजाते हैं ॥ ७२ ॥ अर्थकी अभिलाषाको व्यसनोंमें नहीं गिना जाता ॥ ७३ ॥ कामासक्त (कामी) राजा के कार्य, कभी नहीं किये जाते ॥ ७४ ॥ वाणी की कठोरता, अग्निके जलाने से भी बढ़कर होती है ॥ ७५ ॥ दण्डकी कठोरतासे, राजा, सब जनता का द्वेष्य होजाता है ॥ ७६ ॥ अर्थके विषयमें सन्तोष रखने वाले राजाको लक्ष्मी छोड़ देती है ॥ ७७ ॥

अमित्रो दण्डनीत्यामायत्तः ॥ ७८ ॥ दण्डनीतिमधितिष्ठन् प्रजास्संरक्षति ॥ ७९ ॥ दण्डस्संपदा योजयति ॥ ८० ॥ दण्डाभावे मन्त्रिवर्गाभावः ॥८१॥ न दण्डादकार्याणि कुर्वन्ति ॥८२॥ दण्डनीत्यामायत्तमात्मरक्षणम् ॥ ८३ ॥ आत्मनि रक्षिते सर्वं

राक्षितं भवति ॥ ८४ । आत्मायत्तौ वृद्धिविनाशौ ॥ ८५ ॥ दण्डो हि विज्ञाने प्रणीयते ॥ ८६ ॥

शत्रुकी अधीनता दण्डनीति पर ही निर्भर है ॥ ७८ ॥ दण्डनीतिका ही आश्रय लेता हुआ राजा, सम्पूर्ण प्रजाओंकी रक्षा करता है ॥ ७९ ॥ दण्ड, संपत्तिसे युक्त करदेता है। अर्थात् संपत्ति का बढ़ना, दण्ड नीति पर ही निर्भर है ॥ ८० ॥ दण्डकी शक्ति न रहने पर, मन्त्रिसमूह का अभाव होजाता है। अर्थात् वे लोग नियममें नहीं रहते ॥ ८१ ॥ दण्डके होने पर वे लोग, न करने योग्य कार्योंको नहीं करते ॥ ८२ ॥ अपनी रक्षाभी दण्डनीति पर निर्भर रहती है ॥ ८३ । अपनी रक्षा होने पर, सबकी रक्षा की जासकती है ॥ ८४ ॥ वृद्धि और विनाश, अपने ही ऊपर निर्भर होते हैं ॥ ८५ ॥ अच्छीतरह सोच विचार करलेने पर ही दण्ड का प्रयोग किया जाना चाहिये ॥ ८६ ॥

दुर्बलोपि राजा नावमन्तव्यः ॥ ८७ ॥ नास्त्यग्नेर्दौर्बल्यम् ॥ ८८ ॥ दण्डे प्रतीयते वृत्तिः ॥ ८९ ॥ वृत्तिमूलमर्थलाभः ॥ ९० ॥ अर्थमूलौ धर्मकामौ ॥ ९१ ॥ अर्थमूलं कार्यम् ॥९२॥ यदल्पप्रयत्नात्कार्यसिद्धिर्भवति ॥ ९३ ॥ उपायपूर्वं न दुष्करं स्यात् ॥ ९४ ॥ अनुपायपूर्वं कार्यं कृतमपि नश्यति ॥ ९५ ॥ कार्यार्थिनामुपाय एव सहायः ॥ ९६ ॥ कार्यं पुरुषकारेण लक्ष्यं संपद्यते ॥ ९७ ॥ पुरुषकारमनुवर्तते दैवम् ॥ ९८ ॥ दैवं विनाऽतिप्रयत्नं करोति यत्तद्विफलम् ॥ ९९ ॥

राजाको दुर्बल समझकर, कभी उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिये ॥ ८७ ॥ अग्नि, कभी दुर्बल नहीं होती ॥ ८८ ॥ व्यवहार, दण्डके आधारपर ही जाना जाता है ॥ ८९ ॥ अर्थकी प्राप्ति, व्यवहारमूलक होती है ॥ ९० ॥ धर्म और काम, अर्थमूलक होते हैं ॥ ९१ ॥ कार्यही अर्थका मूल होता है ॥ ९२ ॥ क्योंकि थोड़ा भी प्रयत्न करनेसे कार्यकी सिद्धि होजाती है ॥ ९३ ॥ उपायपूर्वक किया जाता हुआ कोई भी कार्य, कठिन मालूम नहीं होता ॥९४॥ जो कार्य, उपायसे नहीं किया जाता, वह किया कराया भी नष्ट होजाता है ॥ ९५ ॥ कार्यमें सफलता चाहनेवालोंके लिये, उपायही परम सहायक होता है ॥ ९६ ॥ कोई भी कार्य, पुरुषार्थके द्वाराही लक्ष्य बनसकता है ॥ ९७ ॥

दैव भी पुरुषार्थके पीछे २ चलता है ॥ ९८ ॥ दैवके बिना, अत्यन्त प्रयत्नसे किया हुआ कार्य भी विफल होजाता है ॥ ९९ ॥

असमाहितस्य वृत्तिर्न विद्यते ॥ १०० ॥ पूर्वं निश्चित्य पश्चात्कार्यमारभेत् ॥ १०१ ॥ कार्यान्तरे दीर्घसूत्रता न कर्तव्या ॥ १०२ न चलचित्तस्य कार्यावाप्तिः ॥ १०३ ॥ हस्तगतावमाननात्कार्यव्यतिक्रमो भवति ॥ १०४ ॥ दोषवर्जितानि कार्याणि दुर्लभानि ॥ १०५ ॥ दुरनुबन्धं कार्यं नारभेत ॥ १०६॥

असावधान रहते हुए पुरुषका कोई भी व्यवहार नहीं चल सकता ॥ १०० ॥ पहिले निश्चय करके, फिर कार्यका आरम्भ करे । १०१ । दूसरे कार्यके करनेमें दीर्घसूत्रता न करनी चाहिये ॥ १०२ ॥ चञ्चलचित्त पुरुषकी, कभी कार्यसिद्धि नहीं होती ॥ १०३ ॥ हाथमें आई हुई वस्तुका तिरस्कार करदेनेसे, काम बिगड़ जाता है ॥ १०४ ॥ ऐसे कार्य, संसारमें बहुत दुर्लभ हैं, जो दोषोंसे सर्वथा रहित हों ॥ १०५ ॥ दुःख या कठिनताओंसे भरे हुए कार्योंका आरम्भ न करे ॥ १०६ ॥

कालवित् कार्यं साधयेत् ॥ १०७ ॥ कालातिक्रमात्काल एव फलं पिबति ॥ १०८ ॥ क्षणं प्रति कालविक्षेपं न कुर्यात्सर्वकृत्येषु ॥१०९॥ देशफलविभागौ ज्ञात्वा कार्यमारभेत ॥११०॥ दैवहीनं कार्यं सुसाधमपि दुस्साधं भवति ॥ १११ ॥

समयको पहिचाननेवाला पुरुष, अपने कार्यको सिद्ध करे, तात्पर्य यह है, कि वही पुरुष अपने कार्यको सिद्ध करसकता है, जो समयकी गति या परिस्थितिको खूब पहिचानता है ॥ १०७ ॥ कार्यके उचित कालके चूक जानेसे, कालही, उस कार्यके फलको पीजाता है ॥ १०८ ॥ इसलिये सबही कामोंमें एक क्षण भी कालविक्षेप न करे ॥ १०९ ॥ देश और फलका विवेचन करकेही कार्यका आरम्भ करे ॥ ११० । आसान भी काम, दैवके विपरीत होनेपर कठिन होजाता है । १११ ॥

नीतिज्ञो देशकालौ परीक्षेत ॥ ११२ ॥ परीक्ष्यकारिणि श्रीश्चिरं तिष्ठति ॥ ११३ ॥ सर्वाश्च संपदः सर्वोपायेन परिग्रहेत् ॥ ११४ ॥ भाग्यवन्तमपरीक्ष्यकारिणं श्रीः परित्यजति ॥११५॥ ज्ञानानुमानैश्च परीक्षा कर्तव्या ॥ ११६ ॥

नीतिज्ञ पुरुष, देश और कालका अच्छीतरह विचार करे ॥ ११२ ॥ विचारपूर्वक कार्य करनेवाले पुरुषके पास, लक्ष्मी चिरकालतक निवास करती है ॥ ११३ ॥ सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका, सबही उपायोंसे (साम, दान, दण्ड भेद ये चार उपाय होते हैं) संग्रह करे ॥ ११४ ॥ भाग्यशाली भी, अपरीक्ष्यकारी (बिना विचारेही काम करनेवाले) राजाको, लक्ष्मी छोड़ देती है ॥ ११५ ॥ प्रत्येक वस्तुकी परीक्षा, प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणोंसे करनी चाहिये ॥ ११६ ॥

यो यस्मिन् कर्मणि कुशलस्तं तस्मिन्नेव योजयेत् ॥११७॥ दुस्साधमपि सुसाधं करोत्युपायज्ञः ॥ ११८ ॥ अज्ञानिना कृतमपि न बहुमन्तव्यम् ॥ ११९ ॥ यादृच्छिकत्वात् कृमिरपि रूपान्तराणि करोति ॥ १२० ॥ सिद्धस्यैव कार्यस्य प्रकाशनं कर्तव्यम् ॥ १२१ ॥ ज्ञानवतामपि दैवमानुषदोषात्कार्याणि दुष्यन्ति ॥ १२२ ॥

जो जिस कार्यके करनेमें चतुर हो, उसको उसी कार्यपर लगाना चाहिये ॥ ११७ ॥ उपायोंका जाननेवाला पुरुष, कठिन कामोंको भी सीधा बना लेता है ॥ ११८ ॥ अज्ञानीके द्वारा किये गये, कार्यको बहुत नहीं मानना चाहिये ॥ ११९ ॥ क्योंकि कीड़ा भी यदृच्छासेही, अनेक रूप रूपान्तरोंको बना देता है ॥ १२० ॥ सिद्ध हुए २ कार्यकाही प्रकाश किया जाना चाहिये ॥ १२१ ॥ ज्ञानी पुरुषोंके भी कार्य, दैवदोष या मानुष दोषोंसे दूषित होजाते हैं, अर्थात् सफल नहीं होपाते ॥ १२२ ॥

दैवं शान्तिकर्मणा प्रतिषेद्धव्यम् ॥ १२३ ॥ मानुषीं कार्यविपत्तिं कौशलेन विनिवारयेत् ॥ १२४ ॥ कार्यविपत्तौ दोषान् वर्णयन्ति बालिशाः ॥१२५॥ कार्यार्थिना दाक्षिण्यं न कर्तव्यम् ॥ १२६ ॥ क्षीरार्थी वत्सो मातुरूधः प्रतिहन्ति ॥ १२७ ॥ अप्रयत्नात्कार्यविपत्तिर्भवेत् ॥ १२८ ॥ न दैवप्रमाणानां कार्यसिद्धिः ॥ १२९ ॥

शान्तिकर्मके द्वारा, दैवका प्रतीकार करना चाहिये ॥ १२३ ॥ और अपने कार्योंमें, जो विपत्तियां, मनुष्यके द्वारा प्राप्त हों, उनका निवारण (प्रतीकार) अपने कौशल अर्थात् चातुर्यसे करे ॥ १२४ ॥ कार्यके समय

विपत्ति आनेपर, मूर्ख पुरुषही, उनमें दोषोंका वर्णन करते हैं ॥ १२५ ॥ जो पुरुष, अपने कार्यमें सफलता चाहे, उसे सर्वथा सरल न होना चाहिये ॥ १२६ ॥ बछड़ा भी जब दूध चाहता है, अपनी माताके अयन (एन=ऊधस्) में आघात करता है ॥ १२७ ॥ प्रयत्न न करनेसे, अवश्यही कार्योंमें विपत्ति या विघ्न आजाता है ॥ १२८ ॥ दैवकोही प्रमाण माननेवाले पुरुषकी कार्यसिद्धि कभी नहीं होती ॥ १२९ ॥

कार्यबाह्यो न पोषयत्याश्रितान् ॥ १३० ॥ यः कार्यं न पश्यति सोऽन्धः ॥ १३१ ॥ प्रत्यक्षपरोक्षानुमानैः कार्याणि परीक्षेत ॥ १३२ ॥ अपरीक्ष्यकारिणं श्रीः परित्यजति ॥ १३३ ॥ परीक्ष्य तार्या विपत्तिः ॥ १३४ ॥ स्वशक्तिं ज्ञात्वा कार्यमारभेत ॥१३५॥ स्वजनं तर्पयित्वा यश्शेषभोजी सोऽमृतभोजी ॥१३६॥ सर्वानुष्ठानादायमुखानि वर्धन्ते ॥ १३७ ॥ नास्ति भीरोः कार्यचिन्ता ॥ १३८ ॥

कार्यसे पृथक् रहनेवाला पुरुष, अपने आश्रित व्यक्तियोंका कदापि पालन पोषण नहीं करसकता ॥ १३० ॥ जो अपने कार्यको नहीं देखता, वही अन्धा है ॥ १३१ ॥ प्रत्यक्ष, परोक्ष (शब्द) और अनुमान प्रमाणोंसे कार्योंकी परीक्षा करे ॥ १३२ ॥ बिना विचारे काम करनेवाले पुरुषको लक्ष्मी छोड़ देती है ॥ १३३ ॥ अच्छीतरह विवेकपूर्वक विपत्तिको पार करे ॥ १३४ ॥ अपनी शक्तिको समझकर, कार्यको आरम्भ करे ॥ १३५ ॥ अपने आदमियोंको तृप्त कराके, जो शेष अन्न खानेवाला होता, वही अमृतभोजी (अमृत खानेवाला) समझना चाहिये ॥ १३६ ॥ सब तरहके उचित कार्योंके करनेसे, आमदनीके रास्ते बढ जाते हैं ॥ १३७ ॥ भीरु (=अपरिश्रमी=कामचोर) पुरुषको, अपने कार्योंकी कोई चिन्ता नहीं होती ॥ १३८ ॥

स्वामिनश्शीलं ज्ञात्वा कार्यार्थी कार्यं साधयेत् ॥ १३९ ॥ धेनोश्शीलज्ञः क्षीरं भुङ्क्ते ॥ १४० ॥ क्षुद्रे गुह्यप्रकाशनमात्मवान्न कुर्यात् ॥१४१॥ आश्रितैरप्यवमन्यते मृदुस्वभावः ॥१४२॥ तीक्ष्णदण्डस्सर्वैरुद्वेजनीयो भवति ॥ १४३ ॥ यथार्हदण्डकारी स्यात् ॥ १४४ ॥

कार्य करनेकी इच्छा रखनेवाला पुरुष, अपने स्वामीके स्वभावको

जानकरही, कार्यको सिद्ध करे, या कार्यको सफल बनावे ॥ १३९ ॥ जो पुरुष, गायके स्वभावसे परिचित होता है, वही उसके दूधका उपभोग करता है ॥ १४० ॥ आत्मवान् (अपनी कुछ हैसियत रखनेवाला) पुरुष, छोटे विचार रखनेवाले आदमीपर, अपने छिपे भेदोंको प्रकट न करे ॥ १४१ ॥ जो राजा सरल स्वभावका हो उसका, उसके आश्रित पुरुषभी तिरस्कार कर देतेहैं ॥ १४२ ॥ और जो राजा तीव्र स्वभावका होता है, उससे सभी पुरुष उद्विग्न (खिन्न=बेचैन) रहते हैं ॥ १४३ ॥ इसलिये राजाको, उचित दण्ड देने वालाही होना चाहिये ॥ १४४ ॥

अल्पसारं श्रुतवन्तमपि न बहुमन्यते लोकः ॥ १४५ ॥ अतिभारः पुरुषमवसादयति ॥१४६॥ यः संसदि परदोषं शंसति स स्वदोषबहुत्वं प्रख्यापयति ॥ १४७ ॥ आत्मानमेव नाशयत्यनात्मवतां कोपः ॥ १४८ ॥ नास्त्यप्राप्यं सत्यवताम् ॥ १४९ ॥ साहसेन न कार्यसिद्धिर्भवति ॥ १५० ॥ व्यसनार्तो विस्मरत्यप्रवेशेन ॥ १५१ ॥

शास्त्रपारगामी भी दुर्बल राजाको, जनता बहुत नहीं मानती ॥१४५॥ अधिक भार, पुरुषको खिन्न करदेता है ॥ १४६ ॥ जो पुरुष, सभामें दूसरेके दोषका कथन करता है, वह अपनेही दोषोंकी अधिकताको प्रसिद्ध करता है ॥ १४७ ॥ अपने आपको वशमें न रखनेवाले पुरुषोंका क्रोध, स्वयं उनकोही नष्ट करदेता है ॥ १४८ ॥ सत्यका आचरण करनेवाले पुरुषोंके लिये कोई वस्तु अप्राप्य नहीं होती ॥ १५० ॥ विपद्ग्रस्त पुरुष, विपत्तियोंके टलजानेपर, उन्हें भूल जाता है ॥ १५१ ॥

नास्त्यनन्तरायः कालविक्षेपे ॥ १५२ ॥ असंशयविनाशात्संशयविनाशश्श्रेयान् ॥ १५३ ॥ अपरधनानि निक्षेप्तुः केवलं स्वार्थम् ॥ १५४ ॥ दानं धर्मः ॥ १५५ ॥ नार्यागतोऽर्थवद्विपरीतोऽनर्थभावः ॥ १५६ ॥ यो धर्मार्थौ न विवर्धयति स कामः ॥ १५७ ॥ तद्विपरीतोऽनर्थसेवी ॥ १५८ ॥

समय चूकजानेपर कार्योंमें अवश्यही विघ्न, उपस्थित होजाते हैं ॥ १५२ ॥ संदेह रहित विनाशसे (अर्थात् अवश्यम्भावी विनाशसे) संदिग्ध विनाश (जिस विनाशमें सन्देह हो, ऐसा विनाश) अच्छा होता है ॥ १५३ ॥ दूसरेके धनोंको अमानत रखनेवाले पुरुषका केवल स्वार्थही प्रयोजन होता है

॥ १५४ ॥ दान देना धर्म है ॥ १५५ ॥ वैश्यवृत्तिसे किया हुआ यह धर्म, सफल नहीं होता। तथा दान धर्मका न करना, तो सर्वथाही अनर्थका हेतु होता है ॥ १५६ ॥ 'काम' वही होता है, जो कि धर्म और अर्थको नहीं घटाता ॥ १५७ ॥ धर्म और अर्थके घटानेवाले अथवा न बढ़ने देनेवाले 'काम' का सेवन करना तो, अनर्थकाही सेवन करना है ॥ १५८ ॥

ऋजुस्वभावपरो जनेषु दुर्लभः ॥ १५९ ॥ अवमानेनागतमैश्वर्यमवमन्यते साधुः ॥ १६० ॥ बहूनपि गुणानेकदोषो ग्रसति ॥ १६१ ॥ महात्मना परेण साहस न कर्तव्यम् ॥ १६२ ॥ कदाचिदपि चारित्रं न लङ्घयेत् ॥ १६३ ॥ क्षुधाऽऽर्तो न तृणं चरति सिंहः ॥ १६४ ॥ प्राणादपि प्रत्ययो रक्षितव्यः ॥१६५॥ पिशुनश्श्रोता पुत्रदारैरपि त्यज्यते ॥ १६६ ॥

मनुष्योंमें, सर्वथा सरल स्वभावका पुरुष, दुर्लभ होता है ॥ १५९ ॥ तिरस्कारपूर्वक आये हुए ऐश्वर्यको, सज्जन पुरुष, तिरस्कृत कर देते हैं। अर्थात् उसे नहीं अपनाते ॥ १६० ॥ बहुतसे गुणोंको भी, अकेलाही दोष खा जाता है ॥ १६१ ॥ महात्मा (श्रेष्ठ धर्मात्मा) शत्रुके साथ, युद्ध नहीं करना चाहिये ॥ १६२ ॥ चरित्र (सदाचार) का कभी उलङ्घन न करे ॥ १६३ ॥ भूखा भी सिंह, कभी तिनके नहीं चरता ॥ १६४ ॥ प्राण देकर भी अपने विश्वासकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १६५ ॥ चुगली करनेवाले और सुननेवाले पुरुषको, उसके स्त्रीपुत्रादि भी छोड़ देते हैं ॥ १६६ ॥

बालादप्यर्थजातं शृणुयात् ॥ १६७ ॥ सत्यमप्यश्रद्धेयं न वदेत् ॥ १६८ ॥ नाल्पदोषाद्बहुगुणास्त्यज्यन्ते ॥ १६९ ॥ विपश्चित्स्वपि सुलभा दोषाः ॥ १७० ॥ नास्ति रत्नमखण्डितम् ॥ १७१ ॥ मर्यादातीतं न कदाचिदपि विश्वसेत् ॥ १७२ ॥ अप्रिये कृतं प्रियमपि द्वेष्यं भवति ॥ १७३ ॥ नमन्त्यपि तुलाकोटिः कूपोदकक्षयं करोति ॥ १७४ ॥

बालकसे भी उचित बातको सुनलेवे ॥ १६७ ॥ विश्वासके अयोग्य सत्य भी न बोले ॥ १६८ ॥ थोड़ेसे दोषसे, बहुतसे गुणोंको छोड़ा नहीं जाता ॥ १६९ ॥ विद्वानोंमें भी दोषका होजाना आसान है ॥ १७० ॥ जैसे कोई भी रत्न अखण्डित नहीं होता ॥ १७१ ॥ कभी भी मर्यादासे अधिक विश्वास

न करे ॥ १७२ ॥ अप्रियपुरुष (शत्रु) के सम्बन्धमें किया हुआ प्रिय कार्य (उस शत्रुके अनुकूल) भी द्वेष्य (प्रतिकूल) ही समझा जाता है ॥ १७३ ॥ झुकती हुई भी ढींकली, कुएके जलका क्षय करदेती है ॥ १७४ ॥

सतां मतं नातिक्रमेत् ॥ १७५ ॥ गुणवदाश्रयान्निर्गुणोपि गुणी भवति ॥१७६॥ क्षीराश्रितं जलं क्षीरमेव भवति ॥१७७॥ मृत्पिण्डोपि पाटलिगन्धमुत्पादयति ॥ १७८ ॥ रजतं कनकसंगात्कनकं भवति ॥१७९॥ उपकर्तर्यपकर्तुमिच्छत्यबुधः॥१८०॥ न पापकर्मणामाक्रोशभयम् ॥ १८१ ॥

श्रेष्ठ पुरुषोंके मन्तव्यका अतिक्रमण न करे ॥ १७५ ॥ गुणी पुरुषका आश्रय लेनेसे, गुणहीन भी गुणी होजाता है ॥ १७६ ॥ दूधके आश्रित (अर्थात् दूधमें मिला हुआ) जल भी, दूधही होजाता है ॥ १७७ ॥ मट्टीका ढेला भी, पाटली (एक प्रकारका फूल) के गन्धको उत्पन्न करता है ॥ १७८ ॥ चांदी भी, सोनेके साथ मिलनेसे सोना होजाती है ॥ १७९ ॥ बुद्धिहीन पुरुष, उपकार करनेवालेपर भी, अपकारही करना चाहता है ॥ १८० ॥ पाप कर्म करनेवाले पुरुषोंको निन्दा का भय नहीं होता ॥ १८१ ॥

उत्साहवतां शत्रवोपि वशीभवन्ति ॥ १८२ ॥ विक्रमधना राजानः ॥ १८३ ॥ नास्त्यलसस्यैहिकामुष्मिकम् ॥१८४॥ निरुत्साहाद्दैवं पतति ॥ १८५ ॥ मत्स्यार्थीव जलमुपयुज्यार्थं गृह्णीयात् ॥ १८६ । अविश्वस्तेषु विश्वासो न कर्तव्यः ॥ १८७ ॥ विषं विषमेव सार्वकालम् ॥ १८८ ॥

उत्साही राजाओंके, शत्रु भी, वशमें होजाते हैं ॥ १८२ ॥ राजाओंका मुख्यधन विक्रम (बहादुरी) ही होता है ॥ १८३ ॥ आलसी व्यक्तिको, न ऐहलौकिक और न पारलौकिकही सुख मिलता है ॥ १८४ ॥ उत्साहहीन होनेसे भाग्य भी गिर जाता है ॥ १८५ ॥ मछियारा जैसे जलको, इसी प्रकार पुरुष उपयोग करके अर्थको ग्रहण करे । अथवा उपयोगमें आनेके योग्य अर्थको ग्रहण करे ॥ १८६ ॥ अविश्वस्त पुरुषोंपर कभी विश्वास न करना चाहिये ॥ १८७ ॥ क्योंकि विष प्रत्येक समयमें विषही रहता है ॥ १८८ ॥

अर्थसमादाने वैरिणां सङ्ग एव न कर्तव्यः ॥ १८९ ॥ अर्थसिद्धौ वैरिणं न विश्वसेत ॥ १९० ॥ अर्थाधीन एव नियत-

संबन्धः ॥ १९१ ॥ शत्रोरपि सुतस्सखा रक्षितव्यः ॥ १९२ ॥ यावच्छत्रोश्छिद्रं पश्यति तावद्धस्तेन वा स्कन्धेन वा वाह्यः ॥१९३॥ शत्रुं छिद्रे परिहरेत् ॥ १९४ ॥ आत्मच्छिद्रं न प्रकाशयेत् ॥ १९५ ॥ छिद्रप्रहारिणश्शत्रवः ॥ १९६ ॥ हस्तगतमपि शत्रुं न विश्वसेत् ॥ १९७ ॥

अर्थका संग्रह करनेमें, शत्रुओंका साथही न करना चाहिये ॥ १८९ ॥ अर्थकी प्राप्ति होजानेपर भी शत्रुका विश्वास न करे ॥ १९० ॥ निश्चित सम्बंध, अर्थकेही अधीन होता है ॥ १९१ शत्रुका भी पुत्र यदि अपना मित्र हो, तो उसकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १९२ ॥ जबतक शत्रुके दोष या उसकी निर्बलताको नहीं देख लेता ; तबतक उसको अपने हाथ या कन्धेसे वहन करे ॥१९३ ॥ जहां शत्रुकी दुर्बलता देखे, वहीं उसपर प्रहार करे ॥ १९४ ॥ अपने दोष या दुर्बलताको कभी प्रकट न होने देवे ॥ १९५ ॥ जो छिद्र (दोष या दुर्बलता) पर प्रहार करनेवाले होते हैं, वेही शत्रु समझने चाहियें ॥ १९६ ॥ अपने हाथमें आये हुए शत्रुका भी कभी विश्वास न करे ॥ १९७ ॥

स्वजनस्य दुर्वृत्तं निवारयेत् ॥ १९८ ॥ स्वजनावमानोपि मनस्विनां दुःखमावहति ॥ १९९ ॥ एकाङ्गदोषः पुरुषमवसादयति ॥ २०० ॥ शत्रुं जयति सुवृत्तता ॥ २०१ ॥ निकृतिप्रिया नीचाः ॥ २०२ ॥ नीचस्य मतिर्न दातव्या ॥ २०३ ॥ तेषु विश्वासो न कर्तव्यः ॥ २०४ ॥ सुपूजितोपि दुर्जनः पीडयत्येव ॥ २०५ ॥ चन्दनादीनपि दावोऽग्निर्दहत्येव ॥ २०६ ॥

अपने आदमियोंके दुर्व्यवहारको रोके ॥ १९८ ॥ अपने आदमियोंका अपमान भी, मनस्वी पुरुषोंके लिये दुःखदाई होता है १९९ ॥ एक अंगका दोष भी पुरुषको नष्ट करदेता है ॥ २०० ॥ सद्व्यवहारही शत्रुको जीतता है ॥ २०१ ॥ नीच पुरुषोंको तिरस्कार करनाही अच्छा मालूम होता है ॥ २०२ ॥ नीच पुरुषको कभी सुमति न देनी चाहिये ॥ २०३ ॥ और न उनपर कभी विश्वास करना चाहिये ॥ २०४ ॥ सत्कार किया हुआ भी दुष्ट पुरुष, पीडाही पहुंचाता है ॥ २०५ ॥ जंगलकी आग, चन्दन आदिको भी जलाही देती है ॥ २०६ ॥

कदाऽपि पुरुषं नावमन्येत ॥ २०७ ॥ क्षन्तव्यमिति पुरुषं न बाधेत ॥ २०८ ॥ मन्त्रोऽधिकं रहस्युक्तं वक्तुमिच्छन्त्यबुद्धयः

॥ २०९ ॥ अनुरागस्तु फलेन सूच्यते ॥ २१० ॥ प्रज्ञाफलमैश्वर्यम् ॥ २११ ॥ दातव्यमपि बालिशः परिक्लेशेन दास्यति ॥ २१२ ॥ महदैश्वर्यं प्राप्याप्यधृतिमान् विनश्यति ॥ २१३ ॥ नास्त्यधृतेरैहिकामुष्मिकम् ॥ २१४ ॥

पुरुषका कभी भी तिरस्कार न करे॥ २०७ ॥ 'क्षमा करदेना चाहिये' इसप्रकार पुरुषको कभी बाधित न करे ॥ २०८ ॥ अपने मालिकके द्वारा एकान्तमें कही हुई बातको, बुद्धिहीन पुरुष, बहुत अधिक कहना चाहते हैं ॥ २०९ ॥ अनुराग अर्थात् प्रेम, परिणामके द्वाराही प्रतीत होता है ॥ २१० ॥ बुद्धिकाही परिणाम ऐश्वर्य होता है ॥ २११ ॥ देने योग्य वस्तुको भी, मूर्ख पुरुष, बड़े क्लेशसे देता है ॥ २१२ ॥ महान ऐश्वर्यको प्राप्त करके भी धैर्यहीन पुरुष नष्ट होजाता है ॥ २१३ ॥ धैर्यहीन पुरुषको न ऐहलौकिक और न पारलौकिकही सुख मिल सकता है ॥ २१४ ॥

न दुर्जनैस्सह संसर्गः कर्तव्यः ॥ २१५ ॥ शौण्डहस्तगतं पयोप्यवमन्येत ॥ २१६ ॥ कार्यसंकटेष्वर्थव्यवसायिनी बुद्धिः ॥ २१७ ॥ मितभोजनं स्वास्थ्यम् ॥२१८॥ पथ्यमपथ्यं वाजीर्णे नाश्नीयात् ॥ २१९ ॥ जीर्णभोजिनं व्याधिर्नोपसर्पति ॥२२०॥ जीर्णशरीरे वर्धमानं व्याधिं नोपेक्षेत ॥ २२१ ॥ अजीर्णे भोजनं दुःखम् ॥ २२२ ॥ शत्रोरपि विशिष्यते व्याधिः ॥ २२३ ॥

दुर्जनोंके साथ कभी संसर्ग न करना चाहिये ॥ २१५ ॥ कलालके हाथमें गया हुआ दूध भी बुरा समझा जाता है ॥ २१६ ॥ कार्यसंकटोंमें अर्थको निश्चय करनेवाली ही, बुद्धि होती है ॥ २१८ ॥ परिमित भोजन करना ही स्वास्थ्य समझना चाहिये ॥ २१८ ॥ अजीर्ण होनेपर, पथ्य या अपथ्य कुछ न खावे ॥ २१९ ॥ पहिला खायाहुआ पचजानेपर खानेवाले पुरुषको कोई व्याधि नहीं सताती ॥ २२० ॥ बूढ़े शरीरमें बढ़तीहुई व्याधि की, कभी उपेक्षा न करनी चाहिये ॥ २२१ ॥ अजीर्ण होनेपर भोजन करना दुःखदाई होता है ॥ २२२ ॥ व्याधि शत्रुसे भी अधिक कष्टप्रद होती है ॥ २२३ ॥

दानं निधानमनुगामि ॥ २२४ ॥ पटुतरे तृष्णापरे सुलभमतिसन्धानम् ॥ २२५ ॥ तृष्णया मतिश्छाद्यते ॥ २२६ ॥ कार्यबहुत्वे बहुफलमायतिकं कुर्यात् ॥ २२७ ॥ स्वयमेवावस्कन्नं

कार्यं निरीक्षेत ॥२२८॥ मूर्खेषु साहसं नियतम् ॥२२९॥ मूर्खेषु विवादो न कर्तव्यः ॥ २३० ॥ मूर्खेषु मूर्खवत्कथयेत् ॥ २३१ ॥ आयसैरायसं छेद्यम् ॥ २३२ ॥ नास्त्यधीमतस्सखा ॥ २३३ ॥

दान, कोशका अनुगामी होता है; अर्थात् जैसा अपना कोश हो, उसके अनुसार ही दान कियाजाता है ॥ २२४ ॥ जो पुरुष अत्यन्त तृष्णापर हो, अर्थात् जिसकी तृष्णा बहुत बढ़ीहुई हो, उसको वशमें करलेना, बहुत आसान होता है ॥ २२५ ॥ तृष्णा, बृद्धिको ढक लेती है ॥ २२६ ॥ बहुतसे कार्योंके होनेपर उनमेंसे उसी कार्यको करना चाहिये, जो भविष्यमें अधिक फल देनेवाला हो ॥ २२७ ॥ आक्रमण आदिके कार्यका, राजा स्वयं ही निरीक्षण करे ॥ २२८ ॥ मूर्खोंमें निश्चित ही साहस (लड़ाई झगड़ा करनेका माद्दा) होता है ॥ २२९ ॥ मूर्खोंमें कभी विवाद न करना चाहिये ॥ २३० ॥ मूर्खोंमें मूर्खके समान ही कहना चाहिये ॥ २३१ ॥ लोहेको लोहेसे ही काटाजासकता है ॥ २३२ ॥ बुद्धिहीन पुरुषका कोई मित्र नहीं होता ॥ २३३ ॥

धर्मेण धार्यते लोकः ॥ २३४ ॥ प्रेतमपि धर्माधर्मावनुगच्छतः ॥ २३५ ॥ दया धर्मस्य जन्मभूमिः ॥ २३६ ॥ धर्ममूले सत्यदाने ॥ २३७ ॥ धर्मेण जयति लोकान् ॥ २३८ ॥ मृत्युरपि धर्मिष्ठं रक्षति ॥ २३९ ॥ धर्माद्विपरीतं पापं यत्र यत्र प्रसज्यते तत्र धर्मावमतिर्महती प्रसज्यते ॥ २४० ॥ उपस्थितविनाशानां प्रकृत्या कार्येण लक्ष्यते ॥ २४१ ॥ आत्मविनाशं सूचयत्यधर्मबुद्धिः ॥ २४२ ॥

धर्मने ही लोकको धारण कियाहुआ है ॥ २३४ ॥ धर्म और अधर्म, मृत पुरुषके साथ २ जाते हैं ॥ २३५ ॥ दया ही धर्मकी जन्मभूमि है ॥ २३६ ॥ सत्य और दान, धर्ममूलक ही होते हैं ॥ २३७ ॥ धर्मके द्वारा लोकोंको जीतलेता है ॥ २३८ ॥ मृत्यु भी धर्मात्मा पुरुषकी रक्षा करती है ॥ २३९ ॥ धर्मके विरुद्ध पापका जहां २ प्रसार होता है, वहां धर्मका महान तिरस्कार होता है ॥ २४० ॥ उपस्थित विनाशोंकी परिस्थिति, स्वभावसे या कार्यसे पहिचानी जाती है। ('प्रकृत्या कार्येण' के स्थानपर 'प्रकृतिराकारेण' ऐसा पाठ शामशास्त्रीने ठीक माना है। 'होनेवाले विनाशोंकी प्रकृति, आकारसे पहिचानी जाती है' यही उसका अर्थ करना चाहिये) ॥ २४१ ॥ अधर्मबुद्धि अपने (अधर्मात्माके) विनाशकी सूचना देदेती है ॥ २४२ ॥

पिशुनवादिनो न रहस्यम् ॥ २४३ ॥ पररहस्यं नैव श्रोतव्यम् ॥ २४४ ॥ वल्लभस्य कारकत्वमधर्मयुक्तम् ॥ २४५ ॥ स्वजनेष्वतिक्रमो न कर्तव्यः ॥ २४६ ॥ माताऽपि दुष्टा त्याज्या ॥ २४७ ॥ स्वहस्तोपि विषदिग्धश्छेद्यः ॥ २४८ ॥ परोपि च हितो बन्धुः ॥ २४९ ॥ कक्षादप्यौषधं गृह्यते ॥ २५० ॥ नास्ति चोरेषु विश्वासः ॥ २५१ ॥ अप्रतीकारेष्वनादरो न कर्तव्यः ॥ २५२ ॥ व्यसनं मनागपि बाधते ॥ २५३ ॥

चुगलखोर आदमीकी बात कभी छिपी नहीं रहती ॥ २४३ ॥ दूसरे की छिपीहुई बातको कभी न सुनना चाहिये ॥ २४४ ॥ मालिकका कठोर होना, अधर्मयुक्त होता है (?) ॥ २४५ ॥ अपने आदमियोंमें व्यवहारका उल्लंघन नहीं करना चाहिये ॥ २४६ ॥ दुष्ट माताको भी छोड़देना चाहिये ॥ २४७ ॥ विषसे भरेहुए अपने हाथको भी काटदेना चाहिये ॥ २४८ ॥ दूसरा आदमी भी हित करनेवाला अपना बन्धु ही होता है ॥ २४९ ॥ सूखे जंगलसे भी औषधका ग्रहण कियाजाता है ॥ २५० ॥ चोरोंमें कभी विश्वास नहीं होता ॥ २५१ ॥ विघ्नरहित कार्योंके करनेमें कभी उपेक्षा न करनी चाहिये ॥ २५२ ॥ थोड़ा भी व्यसन अवश्य पीड़ा पहुंचाता ही है ॥ २५३ ॥

अमरवदर्थजातमार्जयेत् ॥ २५४ ॥ अर्थवान् सर्वलोकस्य बहुमतः ॥ २५५ ॥ महेन्द्रमप्यर्थहीनं न बहुमन्यते लोकः ॥ २५६ ॥ दारिद्र्यं खलु पुरुषस्य जीवितं मरणम् ॥ २५७ ॥ विरूपोऽर्थवान् सुरूपः ॥ २५८ ॥ अदातारमप्यर्थवन्तमर्थिनो न त्यजन्ति ॥ २५९ ॥ अकुलीनोपि कुलीनाद्विशिष्टः ॥२६०॥ नास्त्यमानभयमनार्यस्य ॥ २६१ ॥ न चेतनवतां वृत्तिभयम् ॥ २६२ ॥ न जितेन्द्रियाणां विषयभयम् ॥ २६३ ॥ न कृतार्थानां मरणभयम् ॥ २६४ ॥

अपने आपको अमर समझकर अर्थोंका संग्रह करे ॥ २५४ ॥ धनवान् पुरुष, सब ही लोगोंका बहुत मान्य होता है ॥ २५५ ॥ अर्थहीन इन्द्रको भी, संसार बड़ा नहीं मानता ॥ २५६ ॥ पुरुषकी दारिद्रता, निश्चित ही, जीते हुए ही मरना है ॥ २५७ ॥ रूपहीन भी धनी पुरुष सुन्दर रूपवाला समझा जाता है ॥ २५८ ॥ न देनेवाले भी धनी पुरुषको, याचक नहीं छोड़ते ॥२५९॥

नीच कुलमें उत्पन्न हुआ २ भी धनी पुरुष, उच्च कुलमें उत्पन्न हुए पुरुषसे बड़ा समझा जाता है ॥ २६० ॥ नीच पुरुषको अपने तिरस्कारका डर नहीं होता ॥ २६१ ॥ ज्ञानवान् चतुर पुरुषको, अपनी जीविकाका भय नहीं होता ॥ २६२ ॥ जितेन्द्रिय पुरुषको, विषयोंसे भय नहीं होता ॥ २६३ ॥ कृतकृत्य अर्थात् आत्मज्ञानी पुरुषको मृत्युका भय नहीं होता ॥ २६४ ॥

कस्यचिदर्थं स्वमिव मन्यते साधुः ॥ २६५ ॥ परविभवेष्वादरो न कर्तव्यः ॥ २६६ ॥ परविभवेष्वादरोपि नाशमूलम् ॥ २६७ ॥ पलालमपि परद्रव्यं न हर्तव्यम् ॥ २६८ ॥ परद्रव्यापहरणमात्मद्रव्यनाशहेतुः ॥ २६९ ॥ न चौर्यात्परं मृत्युपाशः ॥ २७० ॥ यवागूरपि प्राणधारणं करोति काले ॥ २७१ ॥ न मृतस्यौषधं प्रयोजनम् ॥ २७२ ॥ समकाले स्वयमपि प्रभुत्वस्य प्रयोजनं भवति ॥ २७३ ॥

सज्जन पुरुष, किसी भी दूसरेके अर्थको, अपने ही अर्थके समान समझता है ॥ २६५ ॥ दूसरेकी संपत्तियोंपर कभी दांत न लगाना चाहिये ॥ २६६ ॥ दूसरेकी संपत्तियोंको अपनानेका विचार भी नाशका कारण होता है ॥ २६७ ॥ पुरालके समान भी दूसरेका द्रव्य, हड़प नहीं करना चाहिये ॥ २६८ ॥ दूसरेके द्रव्योंका अपहरण करना, अपने द्रव्योंके नाशका हेतु होता है ॥ २६९ ॥ चोरीसे अधिक और कोई भी, दुःखमें डालनेवाला बन्धन नहीं होता ॥ २७० ॥ समयपर लपसी भी प्राणोंको धारण करनेमें सहारा होतीहै ॥ १७१ ॥ मरेहुए आदमीको दवाईसे कुछ मतलब नहीं रहता ॥२७२॥ किसी २ समयमें अपने आप भी, प्रभुताका प्रयोजन होता है ? ॥ २७३ ॥

नीचस्य विद्याः पापकर्मणि योजयन्ति ॥ २७४ ॥ पयःपानमपि विषवर्धनं भुजङ्गस्य नामृतं स्यात् ॥ २७५ ॥ न हि धान्यसमो ह्यर्थः ॥ २७६ ॥ न क्षुधासमश्शत्रुः ॥ २७७ ॥ अकृतेर्नियता क्षुत् ॥ ३७८ ॥ नास्त्यभक्ष्यं क्षुधितस्य ॥ २७९ ॥ इन्द्रियाणि जरावशं कुर्वन्ति ॥ २८० ॥ सानुक्रोशं भर्त्तारमाजीवेत् ॥२८१॥ लुब्धसेवी पावकेच्छया खद्योतं धमति ॥२८२॥ विशेषज्ञं स्वामिनमाश्रयेत् ॥ २८३ ॥

नीच पुरुषकी विद्याएं, उसको पापकर्ममें लगा देती है ॥ २७४ ॥ सांपको दूध पिलाना भी विष बढ़ानेवाला ही होता है, वह अमृत कभी नहीं बनसकता ॥ २७५ ॥ धान्य (अन्न) के समान कोई अर्थ (धन) नहीं है ॥ २७६ ॥ भूखके समान कोई शत्रु नहीं है ॥ २७७ ॥ धनहीन पुरुषको निश्चित ही भूख बहुत सताती है ॥ २७८ ॥ भूखे आदमीके लिये कोई वस्तु अभक्ष्य नहीं होती ॥ २७९ ॥ इन्द्रियां पुरुषको बुढ़ापेके अधीन करदेती हैं ॥ २८० ॥ दयालु मालिकके पास अपनी जीविका करे ॥ २८१ ॥ लोभी मालिककी सेवा करनेवाले पुरुषकी, वही हालत होती है, जो आगके लिये, जुगनूको लेकर उसमें फूंक मारनेवालेकी होती है ॥ २८२ ॥ खूब समझदार मालिकका आश्रय लेवे ॥ २८३ ॥

पुरुषस्य मैथुनं जरा ॥२८४॥ स्त्रीणाममैथुनं जरा ॥२८५॥ न नीचोत्तमयोर्वैवाहः ॥२८६॥ अगम्यागनादायुर्यशःपुण्यानि क्षीयन्ते ॥ २८७ ॥ नास्त्यहङ्कारसमःशत्रुः ॥ २८८ ॥ संसदि शत्रुं न परिक्रोशेत् ॥ २८९ ॥ शत्रुव्यसनं श्रवणसुखम् ॥२९०॥ अधनस्य बुद्धिर्न विद्यते ॥ २९१ ॥ हितमप्यधनस्य वाक्यं न गृह्यते ॥ २९२ ॥ अधनस्स्वभार्ययाऽप्यवमन्यते ॥ २९३ ॥ पुष्पहीनं सहकारमपि नोपासते भ्रमराः ॥ २९४ ॥ विद्या धनमधनानाम् ॥ २९५ ॥ विद्या चौरैरपि न ग्राह्या ॥ ॥२९६॥ विद्यया ख्यापिता ख्यातिः ॥ २९७ ॥ यशश्शरीरं न विनश्यति ॥ २९८ ॥

मैथुन, पुरुषका बुढ़ापा है ॥ २८४ ॥ अमैथुन स्त्रियोंका बुढ़ापा है ॥ २८५ ॥ नीच और उत्तमका आपसमें विवाह नहीं होना चाहिये ॥२८६॥ अगम्य स्त्रीके साथ गमन करनेसे आयु, यश और पुण्य, क्षीण होजाते हैं ॥ २८७ ॥ अहङ्कारके समान कोई शत्रु नहीं है ॥ २८८ ॥ सभामें शत्रुकी निन्दा न करे ॥ २८९ ॥ शत्रुकी विपत्ति, कानोंके लिये बड़ी सुखदाई होती है ॥ २९० ॥ धनहीन पुरुषके बुद्धि नहीं होती ॥ २९१ ॥ धनहीन पुरुषका हितकारक वाक्य भी ग्रहण नहीं कियाजाता ॥ २९२ ॥ धनहीन पुरुष अपनी भार्यासे भी तिरस्कृत होता है ॥ २९३ ॥ भौंरे, पुष्पहीन आम्रवृक्षके पास भी, नहीं फटकते ॥ २९४ ॥ धनहीन पुरुषोंका विद्या ही धन है ॥ २९५ ॥ विद्याको, चोर भी नहीं लेसकते ॥ २९६ ॥ विद्यासे सर्वत्र यश फैलजाता है ॥ २९७ ॥ यश रूपी शरीरका कभी नाश नहीं होता ॥ २९८ ॥

यः परार्थमुपसर्पति न सत्पुरुषः ॥ २९९ ॥ इन्द्रियाणां प्रशमं शास्त्रम् ॥ ३०० ॥ अशास्त्रकार्यवृत्तौ शास्त्रांकुशं निवारयति ॥ ३०१ ॥ नीचस्य विद्या नोपेतव्या ॥ ३०२ ॥ म्लेच्छभाषणं न शिक्षेत ॥ ३०३ ॥ म्लेच्छानामपि सुवृत्तं ग्राह्यम् ॥ ३०४ गुणे न मत्सरः कर्तव्यः॥३०५॥शत्रोरपि सुगुणो ग्राह्यः ॥ ३०६ ॥ विषादप्यमृतं ग्राह्यम् ॥ ३०७ ॥ अवस्थया पुरुषस्संमान्यते ॥ ३०८ ॥ स्थान एव नराः पूज्यन्ते ॥ ३०९ ॥ आर्यवृत्तमनुतिष्ठेत् ॥ ३१० ॥ कदाऽपि मर्यादां नातिक्रमेत् ॥ ३११ ॥

जो दूसरोंके लिये कार्य करता है, वही सत्पुरुष कहाता है ॥ २९९ ॥ इन्द्रियोंको शान्त करनेवाला शास्त्र होता है ॥ ३०० ॥ अशास्त्रीय कार्य करनेमें लगजानेपर, शास्त्ररूपी अंकुश ही उसको रोकता है ॥ ३०१ ॥ नीच पुरुषको विद्या ग्रहण नहीं करनी चाहिये ॥ ३०२ ॥ म्लेच्छोंके समान बोलचाल की शिक्षा, न लेनी चाहिये ॥ ३०३ ॥ म्लेच्छोंका भी अच्छा व्यवहार ग्रहण करलेना चाहिये ॥ ३०४ ॥ गुणमें कभी मात्सर्य न करना चाहिये ॥ ३०५ ॥ शत्रुका भी अच्छा गुण ग्रहण करलेना चाहिये ॥ ३०६ ॥ विषसे भी अमृतका ग्रहण करलेना चाहिये ॥ ३०७ ॥ अवस्था से ही पुरुषका संमान होता है ॥ ३०८ ॥ अपने स्थानपर ही पुरुषोंकी पूजा होती है ॥ ३०९ ॥ सदा श्रेष्ठ पुरुषोंके आचारका ही अनुष्ठान करे ॥ ३१० ॥ मर्यादाका उल्लंघन कभी न करे ॥ ३११ ॥

नास्त्यर्घः पुरुषरत्नस्य ॥ ३१२ ॥ न स्त्रीरत्नसमं रत्नम् ॥ ३१३ ॥ सुदुर्लभं रत्नम् ॥ ३१४ ॥ अयशो भयं भयेषु ॥ ३१५ ॥ नास्त्यलसस्य शास्त्राधिगमः ॥ ४१६ ॥ न स्त्रैणस्य स्वर्गाप्तिर्धर्मकृत्यं च ॥३१७॥ स्त्रियोऽपि स्त्रैणमवमन्यन्ते ॥३१८॥ न पुष्पार्थी सिञ्चति शुष्कतरुम् ॥ ३१९ ॥ अद्रव्यप्रयत्नो वालुकाक्वथनादनन्यः ॥३२०॥ न महाजनहासः कर्तव्यः ॥३२१॥ कार्यसंपदं निमित्तानि विशेषयन्ति ॥ ३२२ ॥ नक्षत्रादपि निमित्तानि विशेषयन्ति ॥३२३॥ न त्वरितस्य नक्षत्रपरीक्षा ॥३२४॥

पुरुष रत्नका (पुरुषरूपी रत्नका, अर्थात् पुरुषोंमें जो रत्नके समान श्रेष्ठ हो) कोई मूल्य नहीं होता ॥ ३१२ ॥ स्त्री रत्नके समान कोई रत्न नहीं

॥ ३१३ ॥ रत्नका मिलना अत्यन्त कठिन होता है ॥ ३१४ ॥ सब भयोंमें अपकीर्ति ही बड़ा भय है ॥ ३१५ ॥ आलसी पुरुषको कभी शास्त्रकी प्राप्ति (ज्ञान) नहीं होसकती ॥ ३१६ ॥ स्त्रियोंमें आसक्त रहनेवाले पुरुषको, न स्वर्गकी प्राप्ति होती है, और न वह धर्मकार्योंको ही करसकता है ॥ ३१७ ॥ ऐसे पुरुषका स्त्रियां भी तिरस्कार करती हैं ॥ ३१८ ॥ फूलोंको चाहनेवाला आदमी, सूखे पेड़को नहीं सींचता ॥ ३१९ ॥ बिना ही द्रव्यके प्रयत्न करना, रेतेको पकानेसे भिन्न नहीं होसकता ॥ ३२० ॥ बड़े आदमियोंकी हंसी नहीं उड़ानी चाहिये ३२१ ॥ निमित्त, कार्यसिद्धिको बतादेते हैं ॥ ३२२ ॥ निमित्त, नक्षत्रसे भी अधिक विशेषता रखते हैं ॥ ३२३ ॥ जल्दीके काममें लगेहुए आदमीको, नक्षत्रकी देखभाल करनेकी आवश्यकता नहीं होती ॥ ३२४ ॥

परिचये दोषा न छाद्यन्ते ॥ ३२५ ॥ स्वयमशुद्धः परानाशङ्कते ॥ ३२६ ॥ स्वभावो दुरतिक्रमः ॥ ३२७ ॥ अपराधानुरूपो दण्डः ॥ ३२८ ॥ कथानुरूपं प्रतिवचनम् ॥ ३२९ ॥ विभवानुरूपमाभरणम् ॥ ३३० ॥ कुलानुरूपं वृत्तम् ॥ ३३१ ॥ कार्यानुरूपः प्रयत्नः ॥ ३३२ ॥ पात्रानुरूपं दानम् ॥ ३३३ ॥ वयोऽनुरूपो वेषः ॥ ३३४ ॥ स्वाम्यनुकूलो भृत्यः ॥ ३३५ ॥ भर्तृवशवर्तिनी भार्या ॥३३६॥ गुरुवशानुवर्ती शिष्यः ॥३३७॥ पितृवशानुवर्ती पुत्रः ॥ ३३८ ॥

परिचय होनेपर दोष नहीं ढकेजाते ॥ ३२५ ॥ जो पुरुष, स्वयं अपवित्रहृदय होता है, वह दूसरोंपर आशंका करता है ॥ ३२६ ॥ स्वभावका अतिक्रमण करना बहुत कठिन है ॥ ३२७ ॥ अपराधके अनुसार ही दण्ड होना चाहिये ॥ ३२८ ॥ कथाके अनुकूल ही उत्तर होना चाहिये ॥ ३२९ ॥ सम्पत्तिके अनुसार ही आभरण (आभूषण) होना चाहिये ॥ ३३० ॥ कुलके अनुरूप आचरण होना चाहिये ॥३३१॥ कार्यके अनुकूल ही प्रयत्न करना चाहिये ॥ ३३२ ॥ पात्रके अनुसार ही दान दियाजाता है ॥ ३३३ ॥ आयुके अनुसार ही वेष होना चाहिये ॥ ३३४ ॥ स्वामीके अनुकूल ही भृत्य होना चाहिये ॥ ३३५ ॥ भार्याको, भर्त्ताके वशवर्ती रहना चाहिये ॥ ३३६ ॥ शिष्यको गुरुके अधीन रहना चाहिये ॥ ३३७ ॥ पुत्रको, पिताके अधीन रहना चाहिये ॥ ३३८ ॥

अत्युपचारश्शङ्कितव्यः ॥ ३३९ ॥ स्वामिनमेवानुवर्तेत ॥ ३४० ॥ मातृताडितो वत्सो मातरमेवानुरोदिति ॥ ३४१ ॥

स्नेहवतस्स्वल्पो हि रोषः ॥ ३४२ ॥ आत्मच्छिद्रं न पश्यति परच्छिद्रमेव पश्यति बालिशः ॥ ३४३ ॥ सोपचारः कैतवः ॥ ३४४ ॥ काम्यैर्विशेषैरुपचरणमुपचारः ॥ ३४५ ॥ चिरपरिचितानामत्युपचारश्शङ्कितव्यः ॥ ३४६ ॥ गौर्दुष्करा श्वसहस्रादेकाकिनी श्रेयसी ॥३४७॥ श्वोमयूरादद्यकपोतो वरः ॥ ३४८ ॥

अत्यधिक उपचार (सेवा) शङ्काका स्थान होता है ॥३३९॥ मालिकके कुपित होजानेपर, मालिकके अनुसार ही कार्य करे ॥ ३४० ॥ मातासे पीटाहुआ बालक, माताके ही पास जाकर रोता है ॥ ३४१ ॥ स्नेह करनेवाले व्यक्तिका क्रोध बहुत थोड़ा होता है ॥ ३४२ ॥ मूर्ख पुरुष, अपने दोषोंको नहीं देखता, दूसरोंके दोषोंको ही देखता है ॥ ३४३ ॥ छल, सदा सेवाके साथ ही होता है ॥ ३४४ ॥ विशेष कामनाओंके साथ किसीकी परिचर्या करनेको ही 'उपचार' कहते हैं ॥ ३४५ ॥ अपने चिरपरिचित पुरुषोंका अत्यन्त उपचार, शङ्काका स्थान होता है ॥ ३४६ ॥ दुष्कर अकेली गाय भी, हज़ार कुत्तोंसे अच्छी होती है ॥ ३४७ ॥ कल मिलेहुए मोरसे, आज मिलाहुआ कबूतर अच्छा होता है ॥ ३४८ ॥

अतिसंगो दोषमुत्पादयति ॥ ३४९ ॥ सर्वं जयत्यक्रोधः ॥३५०॥ यद्यपकारिणि कोपः कोपे कोप एव कर्तव्यः ॥३५१॥ मतिमत्सु मूर्खमित्रगुरुवल्लभेषु विवादो न कर्तव्यः ॥ ३५२ ॥ नास्त्यपिशाचमैश्वर्यम् ॥३५३॥ नास्ति धनवतां शुभकर्मसु श्रमः ॥ ३५४ ॥ नास्ति गतिश्रमो यानवताम् ॥ ३५५ ॥ अलोहमयं निगळं कलत्रम् ॥ ३५६ ॥ यो यस्मिन् कुशलस्स तस्मिन् योक्तव्यः ॥ ३५७ ॥ दुष्कलत्रं मनस्विनां शरीरकर्शनम् ॥३५८॥

अत्यन्त संग करना दोषको उत्पन्न करदेता है ॥ ३४९ ॥ क्रोध न करना, सबको जीतलेता है ॥ ३५० ॥ यदि बुराई करनेवालेपर क्रोध करते हो, तो पहिले क्रोधपर ही क्रोध करना चाहिये ॥ ३५१ ॥ बुद्धिमानोंमें और मूर्ख, मित्र, गुरु तथा अपने प्रिय पुरुषोंमें विवाद नहीं करना चाहिये ॥३५२॥ ऐश्वर्य, पिशाचतासे रहित नहीं होसकता ॥ ३५३ ॥ अच्छे कार्योंके करनेमें धनी पुरुषोंका श्रम नहीं होता ॥ ३५४ ॥ सवारी रखनेवाले आदमियोंको, चलनेका श्रम नहीं उठाना पड़ता ॥ ३५५ ॥ स्त्री, लोहेकी न बनीहुई बेड़,

मज़बूत जंजीर है ॥ ३५६ ॥ जो जिस कार्यमें चतुर हो, उसको उसी कार्यपर लगाना चाहिये ॥ ३५७ ॥ दुष्ट स्त्री, मनस्वी पुरुषोंके शरीरको चूसनेवाली होती है ॥ ३५८ ॥

अप्रमत्तो दारान् निरीक्षेत ॥ ३५९ ॥ स्त्रीषु किंचिदपि न विश्वसेत् ॥ ३६० ॥ न समाधिः स्त्रीषु लोकज्ञता च ॥ ३६१ ॥ गुरूणां माता गरीयसी ॥ ३६२ ॥ सर्वावस्थासु माता भर्तव्या ॥ ३६३ ॥ वैदुष्यमलङ्कारेणाच्छाद्यते ॥ ३६४ ॥ स्त्रीणां भूषणं लज्जा ॥ ३६५ ॥ विप्राणां भूषणं वेदः ॥ ३६६ ॥ सर्वेषां भूषणं धर्मः ॥ ३६७ ॥ भूषणानां भूषणं सविनया विद्यते ॥ ३६८ ॥ अनुपद्रवं देशमावसेत् ॥ ३६९ ॥ साधुजनबहुलो देशः ॥३७०॥

प्रमादरहित होकर स्त्रीका निरीक्षण करे ॥ ३५९ ॥ स्त्रियोंपर कुछ भी विश्वास न करे ॥ ३६० ॥ स्त्रियोंमें निश्चलता तथा व्यवहारपटुता नहीं होती ॥ ३६१ ॥ सब बड़ी चीजोंमें माता ही सबसे बड़ी होती है ॥ ३६२ ॥ सब अवस्थाओंमें माताका भरण पोषण करना चाहिये ॥ ३६३ ॥ विद्वत्ता, अलङ्कार (आभूषण आदि) से ढकदी जाती है ॥ ३६४ ॥ स्त्रियोंका भूषण लज्जा है ॥ ३६५ ॥ ब्राह्मणोंका भूषण वेद है ॥ ३६६ ॥ सबका भूषण धर्म है ॥ ३६७ ॥ लज्जा आदिका, विनयसे सहित होना, भूषणोंका भी भूषण होता है ॥ ३६८ ॥ उपद्रवरहित देशमें निवास करे ॥ ३६९ ॥ जहां साधुजन बहुत रहते हों, वही देश होता है ॥ ३७० ॥

राज्ञो भेतव्यं सार्वकालम् ॥ ३७१ ॥ न राज्ञः परं दैवतम् ॥ ३७२ ॥ सुदूरमपि दहति राजवह्निः ॥ ३७३ ॥ रिक्तहस्तो न राजानमभिगच्छेत् ॥ ३७४ ॥ गुरुं च दैवं च ॥ ३७५ ॥ कुटुम्बिनो भेतव्यम् ॥ ३७६ ॥ गन्तव्यं च सदा राजकुलम् ॥ ३७७ ॥ राजपुरुषैस्संबन्धं कुर्यात् ॥ ३७८ ॥ राजदासी न सेवितव्या ॥ ३७९ ॥ न चक्षुषाऽपि राजानं निरीक्षेत ॥३८०॥ पुत्रे गुणवति कुटुम्बिनः स्वर्गः ॥ ३८१ ॥ पुत्रा विद्यानां पारं गमयितव्याः ॥ ३८२ ॥

राजासे सदा डरना चाहिये ॥ ३७१ ॥ राजासे बढ़कर कोई दैवत नहीं होता ॥ ३७२ ॥ राजारूपी आग, बहुत दूर रहतेहुए भी जलादेती है

॥ ३७३ ॥ खाली हाथ राजाके पास न जावे ॥ ३७४ ॥ गुरु और देवताके पास भी रीते हाथ न जावे ॥ ३७५ ॥ कुटुम्बीसे डरना चाहिये ॥ ३७६ ॥ और राजकुलमें सदा जाना चाहिये ॥ ३७७ ॥ यथाशक्ति राजपुरुषोंके साथ सम्बन्ध करे ॥ ३७८ ॥ राजाकी दासीके साथ संग न करे ॥ ३७९ ॥ राजा को भी आंखसे (अर्थात् उसकी ओर आंख उठाकर) न देखे ॥ ३८० ॥ पुत्रके गुणवान् होनेपर कुटुम्बी पुरुषका यहीं स्वर्ग होजाता है ॥ ३८१ ॥ पुत्रोंको विद्याओंके पार पहुंचादेना चाहिये अर्थात् उसको पूरा विद्वान् बना देना चाहिये ॥ ३८२ ॥

जनपदार्थं ग्रामं त्यजेत् ॥ ३८३ ॥ ग्रामार्थं कुटुम्बस्त्यज्यते ॥३८४॥ अतिलाभः पुत्रलाभः ॥ ३८५ ॥ दुर्गतेः पितरौ रक्षति स पुत्रः ॥ ३८६ ॥ कुलं प्रख्यापयति पुत्रः ॥ ३८७ ॥ नानपत्यस्य स्वर्गः ॥ ३८८ । या प्रसूते भार्या ॥३८९॥ तीर्थसमवाये पुत्रवतीमनुगच्छेत् ॥ ३९० ॥ सतीर्थाभिगमनाद्ब्रह्मचर्यं नश्यति ॥ ३९१ ॥ न परक्षेत्रे बीजं विनिक्षिपेत् ॥ ३९२ ॥ पुत्रार्था हि स्त्रियः ॥ ३९३ ॥

जनपदके हितके लिये गांवको छोड़देवे ॥ ३८३ ॥ गांवके लिये कुटुम्ब छोड़ दिया जाता है ॥ ३८४ ॥ पुत्रका लाभ, बहुत बड़ा लाभ है ॥ ३८५ ॥ दुर्गतिसे जो अपने माता पिताकी रक्षा करता है, वही पुत्र है ॥ ३८६ ॥ पुत्र, अपने कुलको प्रसिद्ध करदेता है ॥ ३८७ ॥ पुत्रहीन पुरुषको स्वर्गकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ३८८ ॥ जो स्त्री ऐसे पुत्रको उत्पन्न करती है, वही भार्या समझनी चाहिये ॥ ४८१ ॥ अनेक स्त्रियोंके एक साथही ऋतुमती होनेपर, उसी स्त्रीके पास जावे, जो पहिलेसे पुत्रवती हो ॥ ३९० ॥ रजस्वला स्त्रीके गमन करनेसे ब्रह्मचर्य नष्ट होजाता है ॥ ३९१ ॥ दूसरेके खेतमें बीज न डाले। अर्थात् परस्त्रीके साथ कदापि संग न करे ॥ ३९२ ॥ पुत्रोंके लियेही स्त्रियां होती है ॥ ३९३ ॥

स्वदासीपरिग्रहो हि स्वदासभावः ॥ ३९४ ॥ उपस्थितविनाशः पथ्यवाक्यं न शृणोति ॥ ३९५ ॥ नास्ति देहिनां सुखदुःखाभावः ॥ ३९६ ॥ मातरमिव वत्साः सुखदुःखानि कर्तारमेवानुगच्छन्ति ॥ ३९७ ॥ तिलमात्रमप्युपकारं शैलमात्रं मन्यते साधुः ॥ ३९८ ॥ उपकारोऽनार्येष्वकर्तव्यः ॥ ३९९ ॥ प्रत्युप-

कारभयादनार्यश्शत्रुर्भवति ॥ ४०० ॥ स्वल्पमप्युपकारकृते प्रत्यु-पकारं कर्तुमार्यो न स्वपिति ॥ ४०१ ॥

अपनी दासीको स्वीकार करलेनाही, अपने आपको दास बना लेना है ॥ ३९४ ॥ जिसका विनाश उपस्थित होता है, वह हितकर वाक्यको नहीं सुनता ॥ ३९५ ॥ प्राणियोंके सुख और दुःखका अभाव नहीं होता । अर्थात् प्राणियोंके सुख और दुःख बनेही रहते हैं ॥ ३९६ ॥ जैसे बच्चे माताके साथही जाते हैं, इसी तरह सुख और दुःख, कर्त्ताके साथही लगे रहते हैं ॥ ३९७ ॥ तिलमात्र उपकारको भी साधु पुरुष पर्वतके समान मानता है ॥ ३९८ ॥ नीच पुरुषोंपर उपकार न करना चाहिये ॥ ३९९ ॥ उपकारका बदला देनेके डरसे, नीच पुरुष शत्रु होजाता है ॥ ४०० ॥ श्रेष्ठपुरुष, थोड़ेसे उपकारके बदलेमें भी प्रत्युपकार करनेके लिये कभी चुप नहीं रहता ॥ ४०१ ॥

न कदाऽपि देवताऽवमन्तव्या ॥ ४०२ ॥ न चक्षुषः समं ज्योतिरस्ति ॥ ४०३ ॥ चक्षुर्हि शरीरिणां नेता ॥ ४०४ ॥ अप-चक्षुषः किं शरीरेण ॥ ४०५ ॥ नाप्सु मूत्रं कुर्यात् ॥ ४०६ ॥ न नग्नो जलं प्रविशेत् ॥ ४०७ ॥ यथा शरीरं तथा ज्ञानम् ॥ ४०८ ॥ यथा बुद्धिस्तथा विभवः ॥ ४०९ ॥ अग्नावग्निं न निक्षिपेत् ॥ ४१० ॥ तपस्विनः पूजनीयाः ॥ ४११ ॥ परदारान् न गच्छेत् ॥ ४१२ अन्नदानं भ्रूणहत्यामपि मार्ष्टि ॥ ४१३ ॥ न वेदबाह्यो धर्मः ॥ ४१४ ॥ कदाचिदपि धर्मं निषेवेत ॥४१५॥

देवताका कभी तिरस्कार न करना चाहिये ॥ ४०२ ॥ चक्षुके समान, कोई ज्योति नहीं है ॥ ४०३ ॥ चक्षुही प्राणियोंका नेता है ॥ ४०४ ॥ चक्षु रहित प्राणीको शरीरसे क्या ॥ ४०५ ॥ जलमें मूत्र न करे, ॥ ४०६ ॥ नंगा होकर जलमें प्रवेश न करे ॥ ४०७ ॥ जैसा शरीर होता है, वैसाही ज्ञान होता है ॥ ४०८ ॥ जैसी बुद्धि होती है, उसीके अनुसार विभव अर्थात् ऐश्वर्य होता है ॥ ४०९ ॥ आगमें आगको न फेंके ॥ ४१० ॥ तपस्वियोंकी सदा पूजा करनी चाहिये ॥ ४११ ॥ परस्त्रियोंके साथ गमन न करे ॥ ४१२ ॥ अन्नका दान करना, भ्रूणहत्याको भी साफ करदेता है ॥ ४१३ ॥ वेदबाह्य, धर्म नहीं होता ॥ ४१४ ॥ सदाही धर्मकी सेवन करता रहे ॥ ४१५ ॥

स्वर्गं नयति सूनृतम् ॥ ४१६ ॥ नास्ति सत्यात्परं तपः ॥ ४१७ ॥ सत्यं स्वर्गस्य साधनम् ॥ ४१८ ॥ सत्येन धार्यते

लोकः ॥४१९॥ सत्याद्देवो वर्षति ॥४२०॥ नानृतात्पातकं परम् ॥ ४२१ ॥ न मीमांस्या गुरवः ॥ ४२२ ॥ खलत्वं नोपेयात् ॥ ४२३ ॥ नास्ति खलस्य मित्रं ॥ ४२४ ॥ लोकयात्रा दरिद्रं बाधते ॥ ४२५ ॥ अतिशूरो दानशूरः ॥ ४२६ ॥

सत्याचरण, स्वर्गको लेजाता है। अर्थात् सत्याचरणसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥ ४१६ ॥ सत्यसे बढ़कर कोई तप नहीं है ॥ ४१७ । सत्य, स्वर्गका साधन होता है । ४१८ ॥ सत्यनेही लोकको धारण किया हुआ है ॥ ४१९ ॥ सत्यसेही देव (मेघ) बरसता है ॥ ४२० । झूठसे बढ़कर कोई पाप नहीं ॥ ४२१ ॥ गुरुओंकी आलोचना नहीं करनी चाहिये ॥ ४२२ ॥ धूर्त्तताको कभी अंगीकार न करे ॥ ४२३ ॥ धूर्त्तपुरुषका कोई मित्र नहीं होता । ४२४॥ दरिद्र मनुष्यको, जीवननिर्वाह (लोकयात्रा) बहुत पीड़ा पहुंचाता है ॥४२५॥ दानशूर पुरुषही, बड़ा शूर कहा जाता है । ४२६ ॥

गुरुदेवब्राह्मणेषु भक्तिर्भूषणम् ॥ ४२७ ॥ सर्वस्य भूषणं विनयः ॥४२८॥ अकुलीनोपि विनीतः कुलीनाद्विशिष्टः ॥४२९॥ आचारादायुर्वर्धते कीर्तिश्च ॥ ४३० ॥ प्रियमप्यहितं न वक्तव्यम् ॥ ४३१ ॥ बहुजनविरुद्धमेकं नानुवर्तेत ॥ ४३२ ॥ न दुर्जनेषु भागधेयः कर्तव्यः ॥ ४३३ ॥ न कृतार्थेषु नीचेषु सम्बन्धः ॥ ४३४ ॥ ऋणशत्रुव्याधिष्वशेषः कर्तव्यः ॥ ४३५ ॥ भूत्याऽनुवर्तनं पुरुषस्य रसायनम् ॥ ४३६ ॥ नार्थिष्ववज्ञा कार्या ॥४३७॥

गुरु, देवता और ब्राह्मणमें भक्ति रखना, मनुष्यका एक भूषण होता है ॥ ४२७ ॥ सबका भूषण विनय है ॥ ४२८ । नीचकुलमें उत्पन्न हुआ २ भी विनीत पुरुष, उच्चकुलमें उत्पन्न हुए पुरुषसे बड़ा होता है ॥ ४२९ ॥ सदाचारसे आयु और यश दोनों बढ़ते हैं ॥ ४३० । कल्याण न करनेवाला प्रिय, कभी न कहना चाहिये ॥ ४३१ ॥ बहुत पुरुषोंसे विरुद्ध रहनेवाले एक पुरुषका अनुगामी न बने ॥ ४३२ ॥ दुर्जन पुरुषोंमें कभी हिस्सा नहीं करना चाहिये ॥ ४३३ ॥ सफल हुए २ भी नीच पुरुषोंमें कभी सम्बन्ध न करना चाहिये ॥ ४३४ ॥ ऋण, शत्रु और व्याधि इनको कभी बाकी नहीं रखना चाहिये ॥ ४३५ ॥ कल्याण पूर्वक व्यवहार करना, पुरुषके लिये रसायन होता है ॥ ४३६ ॥ याचकोंका कभी तिरस्कार न करना चाहिये ॥ ४४७ ॥

दुष्करं कर्म कारयित्वा कर्तारमवमन्यते नीचः ॥ ४३८ ॥ नाकृतज्ञस्य नरकान्निवर्तनम् ॥ ४३९ ॥ जिह्वायत्तौ वृद्धिविनाशौ ॥ ४४० ॥ विषामृतयोराकरी जिह्वा ॥ ४४१ ॥ प्रियवादिनो न शत्रुः ॥ ४४२ ॥ स्तुता अपि देवतास्तुष्यन्ति ॥ ४४३ ॥ अनृतमपि दुर्वचनं चिरं तिष्ठति ॥ ४४४ ॥ राजद्विष्टं न च वक्तव्यम् ॥ ४४५ ॥ श्रुतिसुखात् कोकिलालापात्तुष्यन्ति ॥४४६ ॥ स्वधर्महेतुस्सत्पुरुषः ॥ ४४७ ॥

नीच पुरुष, पहिले किसीसे कठिन कार्य करवाकर फिर उस कार्यकर्त्ता को तिरस्कृत करदेता है। ४३८ ॥ कृतघ्न पुरुष, कभी नरकसे नहीं लौटता ॥ ४३९ ॥ वृद्धि और विनाश, जिह्वकेही अधीन है ॥ ४४० ॥ जिह्वा, विष और अमृत दोनोंकीही खान है ॥ ४४१ ॥ प्रियवादी पुरुषका कोई शत्रु नहीं होता ॥ ४४२ ॥ स्तुति किये जानेपर देवता भी सन्तुष्ट होजाते हैं ॥ ४४३ ॥ झूठा भी दुर्वचन चिरकालतक याद रहता है ॥ ४४४ ॥ राजाके विरुद्ध न कहना चाहिये ॥ ४४५ ॥ कानोंको सुख देनेवाले कोयलके समान आलापसे पुरुष सन्तुष्ट होजाते हैं ॥ ४४६ ॥ अपनेही धर्मके कारण पुरुष, सत्पुरुष कहाता है ॥ ४४७ ॥

नास्त्यर्थिनो गौरवम् ॥ ४४८ ॥ स्त्रीणां भूषणं सौभाग्यम् ॥ ४४९ ॥ शत्रोरपि न पातनीया वृत्तिः ॥ ४५० ॥ अप्रयत्नोदकं क्षेत्रम् ॥ ४५१ ॥ एरण्डमवलम्ब्य कुञ्जरं न कोपयेत् ॥४५२॥ अतिप्रवृद्धा शाल्मली वारणस्तम्भो न भवति ॥ ४५३॥ अतिदीर्घोपि कर्णिकारो न मुसली ॥ ४५४ ॥ अतिदीप्तोपि खद्योतो न पावकः ॥ ४५५ ॥ न प्रवृद्धत्वं गुणहेतुः ॥ ४५६ ॥ सुजीर्णोपि पिचुमन्दो न शङ्कुलायते ॥ ४५७ ॥

याचकका कभी गौरव नहीं होता ॥ ४४८ ॥ सौभाग्यही स्त्रियोंका भूषण है ॥ ४४९ ॥ शत्रुके भी जीवननिर्वाहको, नष्ट न करना चाहिये ॥४५०॥ विशेष प्रयत्नके विनाही जहां जल प्राप्त होसके, वहीं खेत समझना चाहिये ॥ ४५१ ॥ ऐरंडका सहारा लेकर हाथीको कुपित न करे ॥ ४५२ ॥ बहुत लम्बा चौड़ा या बढा हुआ भी सिंभलका वृक्ष, हाथीको रोकनेवाले खम्भेका काम नहीं देता ॥ ४५३ ॥ बहुत बड़ा भी कनेरका वृक्ष, मूसल बनानेके

योग्य नहीं होता ॥ ४५४ ॥ बहुत अधिक चमकता हुआ भी जुगनू, आग नहीं होता ॥ ४५५ ॥ बहुत लम्बा चौड़ा होना, गुणोंका हेतु नहीं होता ॥ ४५६ ॥ बहुत पुराना भी नींम शकुर (सरोता) नहीं होसकता ॥ ४५७ ॥

यथा बीजं तथा निष्पत्तिः ॥४५८॥ यथा श्रुतं तथा बुद्धिः ॥ ४५९ ॥ यथा कुलं तथाऽऽचारः ॥ ४६० ॥ संस्कृतः पिचुमन्दो न सहकारो भवति ॥ ४६१ ॥ न चागतं सुखं त्यजेत् ॥ ४६२ ॥ स्वयमेव दुःखमधिगच्छति ॥ ४६३ ॥ रात्रिचारणं न कुर्यात् ॥ ४६४ ॥ न चार्धरात्रं स्वपेत् ॥ ४६५ ॥ तद्विद्वद्भिः परीक्षेत ॥ ४६६ ॥ परगृहमकारणतो न प्रविशेत् ॥ ४६७ ॥ ज्ञात्वाऽपि दोषमेव करोति लोकः ॥ ४६८ ॥

जैसा बीज होता है, वैसाही फल निकलता है ॥४५८॥ जैसा अध्ययन होता है, वैसीही बुद्धि होती है ॥४५९॥ जैसा कुल होता है वैसाही आचार होताहै ॥४६०॥ संस्कार किया हुआ भी नींम, आम नहीं होसकता ॥४६१॥ प्राप्त हुए सुखको कदापि न छोड़े ॥ ४६२ ॥ स्वयंही पुरुष दुःखको प्राप्त करता है ॥ ४६३ ॥ रातमें इधर उधर न घूमे ॥ ४६४ ॥ आधी रातमें न सोवे ॥ ४६५ ॥ विद्वानोंके द्वाराही इसकी परीक्षा करे ॥ ४६६ ॥ बिना कारणही दूसरेके घरमें प्रवेश न करे ॥ ४६७ ॥ जानकर भी लोग बुरा काम करतेही हैं ॥ ४६८ ॥

शास्त्रप्रधाना लोकवृत्तिः ॥ ४६९ ॥ शास्त्राभावे शिष्टाचारमनुगच्छेत् ॥ ४७० ॥ नाचरिताच्छास्त्रं गरीयः ॥ ४७१ ॥ दूरस्थमपि चारचक्षुः पश्यति राजा ॥ ४७२ ॥ गतानुगतिको लोकः ॥ ४७३ ॥ यमनुजीवेत् तं नापवदेत् ॥ ४७४ ॥ तपस्सार इन्द्रियनिग्रहः ॥ ४७५ ॥ दुर्लभस्त्रीबन्धनान्मोक्षः ॥ ४७६ ॥ स्त्री नाम सर्वाशुभानां क्षेत्रम् ॥४७७॥ न च स्त्रीणां पुरुषपरीक्षा ॥ ४७८ ॥ स्त्रीणां मनः क्षणिकम् ॥४७९॥ अशुभद्वेषिणः स्त्रीषु न प्रसक्ताः ॥ ४८० ॥

लोगोंके व्यवहार, शास्त्रकेही अनुसार होने चाहिये ॥ ४६९ ॥ शास्त्रके अभावमें, शिष्ट पुरुषोंके आचारकाही अनुगमन करना चाहिये ॥ ४७० ॥ सदाचार या शिष्टाचारसे बढ़कर शास्त्र नहीं होता ॥ ४७१ ॥ चार (गुप्तचर) रूपी चक्षुओंसे युक्त राजा, दूरस्थित वस्तुको भी देख लेता है ॥ ४७२ ॥ लोक

गतानुगतिके अर्थात् बिना विचारे एक दूसरेके पीछे चलनेवाला होता है ॥ ४७३ ॥ जिसके सहारेसे जीवननिर्वाह होता हो, उसकी कभी निन्दा न करे ॥ ४७४ ॥ इन्द्रियोंको वशमें रखनाही, तपका सार है ॥ ४७५ ॥ स्त्रीरूपी बन्धनसे छुटकारा पाना दुर्लभ है ॥ ४७६ ॥ स्त्री, यह, निश्चितही सब अशुभोंका क्षेत्र है ॥ ४७७ ॥ स्त्रियोंकी, पुरुषोंको परीक्षा नहीं होती ॥ ४७८ ॥ स्त्रियोंका मन क्षणिक, अर्थात् चञ्चल होता है ॥ ४७९ ॥ जो पुरुष, अशुभ अर्थात् अमंगलके साथ द्वेष रखते हैं, वे कभी स्त्रियोंमें आसक्त नहीं होते ॥ ४८० ॥

यज्ञफलज्ञास्त्रिवेदविदः ॥ ४८१ ॥ स्वर्गस्थानं न शाश्वतं यावत्पुण्यफलम् ॥४८२॥ न च स्वर्गपतनात्परं दुःखम् ॥४८३॥ देही देहं त्यक्त्वा ऐन्द्रपदं न वाञ्छति ॥ ४८४ ॥ दुःखानामौषधं निर्वाणम् । ४८५ ॥ अनार्यसंबन्धाद्वरमार्यशत्रुता ॥४८६॥ निहन्ति दुर्वचनं कुलम् ॥ ४८७ ॥ न पुत्रसंस्पर्शात्परं सुखम् ॥ ४८८ ॥ विवादे धर्ममनुस्मरेत् ॥ ४८९ ॥ निशान्ते कार्यं चिन्तयेत् ॥ ४९० ॥ प्रदोषे न संयोगः कर्तव्यः ॥ ४९१ ॥

तीनों वेदोंको जाननेवाले पुरुषही, यज्ञके फलोंको जान सकते हैं ॥ ४८१ ॥ स्वर्गस्थान नित्य नहीं होता, पुण्यके अनुसारही वह फल मिलता है ॥ ४८२ ॥ स्वर्गसे नीचे गिरनेसे बढ़कर और कोई दुःख नहीं होता ॥४८३॥ प्राणी, अपनी देहको छोड़कर, इन्द्रपदको नहीं चाहता ॥ ४८४ ॥ निर्वाण अर्थात् मोक्षपदही सब दुःखोंकी औषध है ॥ ४८५ ॥ अनार्यके साथ सम्बन्ध होनेकी अपेक्षा, आर्यके साथ शत्रुता होना अच्छा है ॥ ४८६ ॥ दुर्वचन, कुलको नष्ट करदेता है ॥ ४८७ ॥ पुत्रस्पर्शसे बढ़कर कोई सुख नहीं ॥ ४८८ ॥ विवाद होनेपर धर्मका अनुस्मरण करे । अर्थात् जिस विषयमें झगड़ा हो, उसका फैसला धर्मके अनुसार किया जावे ॥ ४८९ ॥ रात्रिके अन्तमें, अर्थात् प्रातःकाल शयन अनन्तर उठकर, आगामी कार्योंका चिन्तन करे ॥ ४९० ॥ प्रदोष समयमें, संयोग न करना चाहिये ॥ ४९१ ॥

उपस्थितविनाशः दुर्नयं मन्यते ॥ ४९२ ॥ क्षीरार्थिनः किं करिण्या ॥ ४९३ ॥ न दानसमं वश्यम् ॥ ४९४ ॥ परायत्तेषूत्कण्ठां न कुर्यात् ॥ ४९५ ॥ असत्समृद्धिरसद्भिरेव भुज्यते ॥४९६॥ निम्बफलं काकैर्भुज्यते ॥ ४९७ ॥ नाम्भोधिस्तृष्णामपोहति

॥ ४९८ ॥ वालुका अपि स्वगुणमाश्रयन्ते ॥ ४९९ ॥ सन्तोऽसत्सु न रमन्ते ॥ ५०० ॥ हंसः प्रेतवने न रमते ॥ ५०१ ॥

जिसका विनाश, शीघ्रही उपस्थित होनेवाला होता है, वह अन्याय करने लगता है ॥ ४९२ ॥ जो दूध चाहता है, उसे हथिनीसे क्या ? ॥४९३ ॥ दानसे बढ़कर, दूसरेको वशमें करनेवाली कोई वस्तु नहीं ॥ ४९४ ॥ दूसरोंके अधीन वस्तुओंमें कभी अभिलाषा न करे ॥ ४९५ ॥ पापियोंकी सम्पत्तिको पापीही भोगते हैं ॥ ४९६ ॥ नींमके फल (निबौरी) को कौएही खाते हैं ॥ ४९७ ॥ समुद्र कभी प्यासको नहीं बुझा सकता ॥ ४९८ ॥ वालुका भी अपनेही गुणोंका अवलम्ब करता है ॥ ४९९ ॥ सज्जन पुरुष, कभी दुर्जनोंमें आनन्दित नहीं होसकते ॥ ५०० ॥ हंस कभी, सुनसान श्मशान स्थानमें रमण नहीं करता ॥ ५०१ ॥

अर्थार्थं प्रवर्तते लोकः ॥ ५०२ ॥ आशया बध्यते लोकः ॥ ५०३ ॥ न चाशापरैश्श्रीस्सह तिष्ठति ॥ ५०४ ॥ आशापरे न धैर्यम् ॥ ५०५ ॥ दैन्यान्मरणमुत्तमम् ॥ ५०६ ॥ आशा लज्जां व्यपोहति ॥५०७॥ न मात्रा सह वासः कर्तव्यः ॥५०८॥ आत्मा न स्तोतव्यः ॥ ५०९ ॥ न दिवा स्वप्नं कुर्यात् ॥५१०॥ न चासन्नमपि पश्यत्यैश्वर्यान्धः न शृणोतीष्टं वाक्यम् ॥५११॥

अर्थके लियेही संसार प्रवृत्त होता है ॥ ५०२ ॥ आशासेही लोक बंधा हुआ है ॥ ५०३ ॥ आशामेंही तत्पर हुए २, पुरुषोंके, साथ लक्ष्मी नहीं ठहरती ॥ ५०४ ॥ इसी तरह आशामें तत्पर हुए पुरुषमें धैर्य नहीं रहता ॥ ५०५ ॥ दीनतामें मरना अच्छा है ॥ ५०६ ॥ आशा, लज्जाको दूर करदेती है ॥ ५०७ ॥ माताके साथ कभी वास न करना चाहिये ॥ [illegible]०८ ॥ स्वयं अपनीही स्तुति न करनी चाहिये ॥ ५०९ ॥ [illegible] में कभी न सोना चाहिये ॥ [illegible] ॥ ऐश्वर्यसे अन्धे हुए पुरुष न अपने समीप [illegible] पुरुषको [illegible] है, और न अपने हितकर वाक्योंको सुनता है ॥ ५११ ॥

स्त्रीणां न भर्तुः परदैवतम् ॥ ५१२ ॥ तदनुवर्तनमुभयसौख्यम् ॥ ५१३ ॥ अतिथिमभ्यागतं पूजयेद्यथाविधि ॥ ५१४ ॥ नास्ति हव्यस्य व्याघातः ॥ ५१५ ॥ शत्रुर्मित्रवत्प्रतिभाति ॥ ५१६ ॥ मृगतृष्णा जलवद्भाति ॥ ५१७ ॥ दुर्मेधसामसच्छास्त्रं मोहयति ॥ ५१८ ॥ सत्सङ्गः स्वर्गवासः ॥ ५१९ ॥ आर्यः

स्वामिव परं मन्यते ॥ ५२० ॥ रूपानुवर्ती गुणः ॥ ५२१ ॥ यत्र सुखेन वर्तते तदेव स्थानम् ॥ ५२२ ॥

स्त्रियोंके लिये अपने भर्त्तासे बढ़कर कोई देवता नहीं है ॥ ५१२ ॥ उसके पीछे चलना, दोनों लोकोंमें सुखदाई होता है ॥ ५१३ ॥ अभ्यागत अतिथिका विधिपूर्वक सत्कार करे ॥ ५१४ ॥ हव्य अर्थात् यज्ञ आदि कर्मोंका कभी व्याघात नहीं होता ॥ ५१५ ॥ शत्रु, कभी मित्रकी तरह प्रतीत होता है ॥ ५१६ ॥ मृगतृष्णा, जलके समान मालूम पड़ती है ॥ ५१७ ॥ दुर्बुद्धि पुरुषोंको असच्छास्त्र, अपने वशमें करलेता है ॥ ५१८ ॥ सज्जनोंका संगही स्वर्गवास है ॥ ५१९ ॥ आर्य, अपने समान दूसरोंको मानता है ॥ ५२० ॥ रूपके अनुसारही गुण होता है ॥ ५२१ ॥ जहां मनुष्य सुखपूर्वक रहे, वही स्थान समझना चाहिये ॥ ५२२ ॥

विश्वासघातिनो न निष्कृतिः ॥ ५२३ ॥ दैवायत्तं न शोचेत् ॥ ५२४ ॥ आश्रितदुःखमात्मन इव मन्यते साधुः ॥५२५॥ हृद्गतमाच्छाद्यान्यद्वदत्यनार्यः ॥५२६॥ बुद्धिहीनः पिशाचतुल्यः ॥ ५२७ ॥ असहायः पथि न गच्छेत् ॥ ५२८ ॥ पुत्रो न स्तोतव्यः ॥ ५२९ ॥ स्वामी स्तोतव्योऽनुजीविभिः ॥ ५३० ॥ धर्मकृत्येष्वपि स्वामिन एव घोषयेत् ॥ ५३१ ॥ राजाज्ञां नातिलङ्घयेत् ॥ ५३२ ॥ यथाऽऽज्ञप्तं तथा कुर्यात् ॥ ५३३ ॥

विश्वासघाती पुरुषका कभी उद्धार नहीं होसकता ॥ ५२३ ॥ दैवके अधीन वस्तुके लिये शोक न करे ॥ ५२४ ॥ आश्रित हुए २ दुःखी पुरुषको साधुजन अपने ही समान मानता है ॥ २२५ ॥ अनार्य पुरुष, अपने हार्दिक भावोंको छिपाकर प्रकटमें और कुछ कहदेता है ॥ ५२६ ॥ बुद्धिहीन पुरुष, पिशाचके समान होता है ॥ ५२७ ॥ अकेला मार्गमें न चले ॥ २२८ ॥ अपने पुत्रकी स्तुति न करना चाहिये ॥ २२९ ॥ भृत्योंको अपने स्वामीकी स्तुति अवश्य करनी चाहिये ॥ ५३० ॥ धर्मकार्योंमें भी स्वामीकी ही घोषणा करे ॥ ५३१ ॥ राजाकी आज्ञाका कभी उलंघन न करे ॥ ५३२ ॥ जैसी आज्ञा हो, उसीके अनुसार कार्य करे ॥ ५३३ ॥

नास्ति बुद्धिमतां शत्रुः ॥ ५३४ ॥ आत्मच्छिद्रं न प्रकाशयेत् ॥ ५३५ ॥ क्षमावानेव सर्वं साधयति ॥ ५३६ ॥ आपदर्थं धनं रक्षेत् ॥ ५३७ ॥ साहसवतां प्रियं कर्तव्यम् ॥ ५३८ ॥

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत ॥ ५३९ ॥ आपराह्णिकं पूर्वाह्ण एव कर्तव्यम् ॥ ५४० ॥ व्यवहारानुलोमो धर्मः ॥ ५४१ ॥ सर्वज्ञता लोकज्ञता ॥ ५४२ ॥ शास्त्रज्ञोऽप्यलोकज्ञो मूर्खतुल्यः ॥ ५४३ ॥

बुद्धिमान् पुरुषोंका कोई शत्रु नहीं होता ॥ ५३४ ॥ अपने दोषको कभी प्रकाशित न करे ॥ ५३५ ॥ क्षमाशील पुरुष ही सब कार्योंको साध लेता है ॥ ५३६ ॥ आपत्ति समयमें काम आनेके लिये धनकी रक्षा करे ॥ ५३७ ॥ साहसी पुरुषोंको, कर्तव्य बहुत प्रिय होता है ॥ ५३८ ॥ कल कियेजानेवाले कार्यको आज ही करलेवे ॥ ५३९ ॥ दोपहरके बाद कियेजाने वाले कामको दोपहरके पहिले ही करलेवे ॥ ५४० ॥ व्यवहारके अनुसार ही धर्म होता है ॥ ५४१ ॥ लोकज्ञताको सर्वज्ञता समझना चाहिये ॥ ५४२ ॥ शास्त्रको जाननेवाला भी जो पुरुष, लोक व्यवहारमें पटु नहीं होता, वह मूर्खके समान है ॥ ५४३ ॥

शास्त्रप्रयोजनं तत्त्वदर्शनम् ॥ ५४४ ॥ तत्त्वज्ञानं कार्यमेव प्रकाशयति ॥ ५४५ ॥ व्यवहारे पक्षपातो न कार्यः ॥ ५४६ ॥ धर्मादपि व्यवहारो गरीयान् ॥ ५४७ ॥ आत्मा हि व्यवहारस्य साक्षी ॥ ५४८ ॥ सर्वसाक्षी ह्यात्मा ॥ ५४९ ॥ न स्यात्कूटसाक्षी ॥ ५५० ॥ कूटसाक्षिणो नरके पतन्ति ॥ ५५१ ॥ प्रच्छन्नपापानां साक्षिणो महाभूतानि ॥ ५५२ ॥ आत्मनः पापमात्मैव प्रकाशयति ॥ ५५३ ॥

सब वस्तुओंका यथार्थ ज्ञान करवाना ही शास्त्रका प्रयोजन होता है ॥ ५४४ ॥ कार्य अर्थात् लोकव्यवहार ही उस यथार्थ ज्ञानको प्रकाशित करता है ॥ ५४५ ॥ व्यवहारमें कभी पक्षपात न करना चाहिये ॥ ५४६ ॥ व्यवहार धर्मसे भी बढकर होता है ॥ ५४७ ॥ आत्मा ही व्यवहारका साक्षी समझना चाहिये ॥ ५४८ ॥ क्योंकि आत्मा ही सबका साक्षी होता है ॥५४९॥ कपटसाक्षी कभी न बने ॥ ५५० ॥ कपटसाक्षी नरकमें गिरते हैं ॥ ५५१ ॥ छिपकर पाप करनेवाले पुरुषके, ये महाभूत ही साक्षी होते हैं ॥ ५५२ ॥ अपने कियेहुए पापको अपना आत्मा ही प्रकट करदेता है ॥ ५५३ ॥

व्यवहारेऽन्तर्गतमाकारस्सूचयति ॥ ५५४ ॥ आकारसंवरणं देवानामशक्यम् ॥५५५॥ चोरराजपुरुषेभ्यो वित्तं रक्षेत् ॥५५६॥ दुर्दर्शना हि राजानः प्रजा नाशयन्ति ॥ ५५७ ॥ सुदर्शना हि

राजानः प्रजा रञ्जयन्ति ॥५५८॥ न्याययुक्तं राजानं मातरं मन्यन्ते प्रजाः॥५५९॥ तादृशस्स राजा इह सुखं ततस्स्वर्गमाप्नोति ॥५६०॥

व्यवहारके समय, आन्तरिक भावोंको, आकृति सूचित करदेती है ॥ ५५४ ॥ आकारका छिपाना (अर्थात् आकृतिपर प्रकट होनेवाले भावोंको छिपाना) देवताओंके लिये भी अशक्य है ॥ ५५५ ॥ चोर और राजपुरुषोंसे अपने धनकी रक्षा करे ॥ ५५६ ॥ कठिनतासे दर्शन देनेवाले राजा अपनी प्रजाओंको नष्ट करादेते हैं ॥ ५५७ ॥ सरलतासे दर्शन देनेवाले राजाजन, अपनी प्रजाओंको सदा प्रसन्न रखते हैं ॥ ५५८ ॥ न्याययुक्त राजाको, प्रजाजन, अपनी माताके समान मानते हैं ॥ ५५९ ॥ उस प्रकारका वह राजा, इस लोक में सुखको भोगता है; और मृत्यु के अनन्तर स्वर्गको प्राप्त होता है ॥ ५६० ॥

अहिंसालक्षणो धर्मः ॥ ५६१ ॥ स्वशरीरमपि परशरीरं मन्यते साधुः ॥ ५६२ ॥ मांसभक्षणमयुक्तं सर्वेषाम् ॥ ५६३ ॥ न संसारभयं ज्ञानवताम् ॥ ५६४ ॥ विज्ञानदीपेन संसारभयं निवर्तते ॥ ५६५ ॥ सर्वमनित्यं भवति ॥ ५६६ ॥ कृमिशकृन्मूत्रभाजनं शरीरं पुण्यपापजन्महेतुः ॥५६७॥ जन्ममरणादिषु दुःखमेव ॥५६८॥ तपसा स्वर्गमाप्नोति ॥ ५६९ ॥ क्षमायुक्तस्य तपो विवर्धते ॥ ५७० ॥ तस्मात्सर्वेषां कार्यसिद्धिर्भवति ॥ ५७१ ॥

॥ इति चाणक्यसूत्राणि ॥

अहिंसा ही मुख्य धर्म है ॥ ५६१ ॥ अपने शरीरको भी सज्जन, परशरीरके समान मानता है ॥ ५६२ ॥ मांसखाना सबके लिये अयुक्त है ॥ ५६३ ॥ ज्ञानी पुरुषोंको संसारका भय नहीं होता ॥ ५६४ ॥ विज्ञान रूपी दीपकसे संसार का भय निवृत्त होजाता है ॥ ५६५ ॥ संसारमें सब ही वस्तु अनित्य हैं ॥ ५६६ ॥ क[illegible] मल [illegible] और मूत्रका [illegible] न [illegible] शरीर ही, पुण्य और पापमय जन्मके कारण [illegible] ॥ ५६७ ॥ [illegible] और मरण आदिमें दुःख ही दुःख है ॥ ५६८ ॥ तपसे स्वर्गका प्राप्त [illegible]ती है ॥ ५६९ ॥ क्षमाशील पुरुषका तप सदा बढता रहता है ॥ ५७० ॥ इसीसे सबकी कार्यसिद्धि होती है ॥ ५७१ ॥

चाणक्यप्रणीत सूत्र समाप्त